

## ॥ प्रस्तावना ॥

### सूत्रकार माणिक्यनन्दि

जैनन्यायशास्त्र में माणिक्यनन्दि आचार्य का परीक्षामुखसूत्र आद्य सूत्रग्रन्थ है। प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्याचार्य लिखते हैं कि—

“अकलङ्कवचोऽस्मोमेः सद्ग्रे येन धीमता ।

न्यायविद्यामृतं तस्यै नमो माणिक्यनन्दिने ॥”

अर्थात्—जिस धीमात्र ने अकलङ्क के वचनसागर का मथन करके न्याय-विद्यामृत निकाला उस माणिक्यनन्दि को नमस्कार हो। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि माणिक्यनन्दि ने अकलङ्कन्याय का मन्थन कर अपना सूत्रग्रन्थ बनाया है। अकलङ्कदेवने जैनन्यायशास्त्र की रूपरेखा बॉधकर तदनुसार दार्शनिकपदार्थों का विवेचन किया है। उनके लघीयलक्ष्य, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाण-संग्रह आदि न्यायप्रकरणों के आधार से माणिक्यनन्दि ने परीक्षामुखसूत्र की रचना की है। बौद्धदर्शन में हेतुमुख, न्यायमुख जैसे ग्रन्थ थे। माणिक्यनन्दि जैनन्याय के कोषागार में अपना एकमात्र परीक्षामुखरूपी माणिक्य को ही जमा करके अपना अमरस्थान बना गए हैं। इस सूत्रग्रन्थ की संक्षिप्त पर विशदसारवाली निर्दोष शैली अपना अनोखा स्थान रखती है। इसमें सूत्रका यह लक्षण—

“अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विद्यतो मुखम् ।

अस्तोभंभनवयश्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥”

सर्वांशतः पाया जाता है। अकलङ्क के ग्रन्थों के साथही साय दिभाग के न्याय-प्रवेश और धर्मकीर्ति के न्यायबिन्दु का भी परीक्षामुख पर प्रभाव है। उत्तरकालीन वादिदेवसूरि के प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार और हेमचन्द्र की प्रमाण-मीमांसा पर परीक्षामुख सूत्र अपना अमिट प्रभाव रखता है। वादिदेवसूरि ने तो अपने सूत्र ग्रन्थके बहु भाग में परीक्षामुख को अपना आदर्श रखा है। उन्होंने प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार में नय, सप्तभंगी और वाद का विवेचन बढ़ाकर उसके आठ परिच्छेद बनाए हैं जबकि परीक्षामुख में मात्र प्रमाण के परिकर क ही वर्णन होने से ६ परिच्छेद ही हैं। परीक्षामुख में प्रज्ञाकरशुत के भाविकारण-वाद और अतीतकारणवाद की समालोचना की गई है। प्रज्ञाकर शुत के वार्ति-कालङ्कार का मिष्ठुर राहुलसाकृत्यायन के अद्वैत साहस परिश्रम ने फलस्वरूप उद्धार हुआ है। उनकी प्रेसकापी में भाविकारणवाद और भूतकारणवाद का निम्नलिखित शब्दों में समर्थन किया गया है—

“अविद्यमानस्य करणमिति कोऽर्थः ? तदनन्तरमाविनी तस्य सत्ता, तदेतदा

नन्तर्यसुभयापेक्षयापि समानम्—यच्चैव भूतापेक्षया तथा भाव्यपेक्षयापि । नचानन्तर्यमेव तत्त्वे निबन्धनम्, व्यवहितस्य कारणत्वात्—

गाढयुक्तस्य विज्ञानं प्रबोधे पूर्ववेदनात् ।

जायते व्यवधानेन कालेनेति विनिश्चितम् ॥

तस्मादन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वं निबन्धनम् ।

कार्यकारणभावस्य तद् भाविन्यपि विद्यते ॥

भावेन च भावो भाविनापि लक्ष्यत एव । मृत्युप्रयुक्तमरिष्टमिति लोके व्यवहारः, यदि चतुर्न भविष्यन्न भवेदेवम्भूतमरिष्टमिति ।”—प्रमाणवार्तिकालङ्कार पृ० १७६ । परीक्षासुख के निम्नलिखित सूत्र में प्रज्ञाकरगुप्त के इन दोनों सिद्धान्तों का खंडन किया गया है—

“भाव्यतीतयोः मरणजाग्रद्वोधयोरपि नारिष्टोद्वोधौ प्रति हेतुत्वम् । तव्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम् ।”—परीक्षासु० ३।६२, ६३ ।

छठे अध्याय के ५७ वे सूत्र में प्रभाकर की प्रमाणसंख्या का खंडन किया है । प्रभाकर शुरु का समय ईसा की ८ वीं सदी का प्रारम्भिक भाग है ।

माणिक्यनन्दि का समय—प्रमेयरत्नमालाकार के उल्लेखानुसार माणिक्यनन्दि आचार्य अकलंकदेव के अनन्तरवर्ती हैं । मैं अकलङ्कग्रन्थत्रय की प्रस्तावना में अकलंकदेव का समय ई० ७२० से ७८० तक सिद्ध कर आया हूँ । अकलङ्कदेव के लघीयल्लय और न्यायविनिश्चय आदि तर्कग्रन्थों का परीक्षासुख पर पर्याप्त प्रभाव है, अतः माणिक्यनन्दि के समयकी पूर्वावधि ई० ८०० निर्वाचनी जा सकती है । प्रज्ञाकरगुप्त ( ई० ७२५ तक ) प्रभाकर ( ८ वीं सदी का पूर्वभाग ) आदि के मतों का खंडन परीक्षासुख में है, इससे भी माणिक्यनन्दि की उक्त पूर्वावधि का समर्थन होता है । आ० प्रभाचन्द्र ने परीक्षासुख पर प्रमेयकमलभार्तण्डनामक व्याख्या लिखी है । प्रभाचन्द्र का समय ई० की ११ वीं शताब्दी है । अतः इनकी उत्तरावधि ईसा की १० वीं शताब्दी समझना चाहिए । इस लम्बी अवधि को सङ्कुचित करने का कोई निश्चित प्रमाण अभी दृष्टि में नहीं आया । अधिक संभव यही है कि ये विद्यानन्द के समकालीन हों और इसलिए इनका समय ई० ९ वीं शताब्दी होना चाहिए ।

## आ० प्रभाचन्द्र

आ० प्रभाचन्द्रके समयविषयक इस निबन्धको वर्गीकरणके ध्यानसे तीन स्थूल भागों में बाँट दिया है—१ प्रभाचन्द्र की इतर आचार्यों से तुलना, २ समय-विचार, ३ प्रभाचन्द्र के ग्रन्थ ।

### §१. प्रभाचन्द्र की इतर आचार्यों से तुलना—

इस तुलनात्मक भागको प्रत्येक परम्पराके अपने क्रमविकासको लक्ष्यमें रख-



कर निम्नलिखित उपभागोंमें क्रमशः विभाजित कर दिया है । १ वैदिक दर्शन—वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, महाभारत, वैयाकरण, सांख्य योग, वैशेषिक न्याय; पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा । २ अवैदिक दर्शन—बौद्ध, जैन—दिगम्बर, श्वेताम्बर ।

### ( वैदिकदर्शन )

**वेद और प्रभाचन्द्र**—आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्डमें पुरातनवेद ऋग्वेदसे “पुरुष एवेदं यद्भूतं” “हिरण्यगर्भः समवर्तताम्रे” आदि अनेक वाक्य उद्धृत किये हैं । कुछ अन्य वेदवाक्य भी न्यायकुमुदचन्द्र ( पृ० ७२६ ) में उद्धृत हैं—“प्रजापतिः सोमं राजानमन्वसृजत्, तत्तत्तयो वेदा अन्वसृज्यन्त” “रुद्रं वेदकर्तारम्” आदि । न्यायकुमुदचन्द्र ( पृ० ७७० ) में “आदौ ब्रह्मा मुखतो ब्राह्मणं ससर्ज, बाहुभ्यां क्षत्रियमुखभ्यां वैश्यं पद्भ्यां शूद्रम्” यह वाक्य उद्धृत है । यह ऋग्वेद के “ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्” आदि सूक्ती छाया रूप ही है ।

**उपनिषद् और प्रभाचन्द्र**—आ० प्रभाचन्द्रने अपने दोनों न्यायग्रन्थोंमें ब्रह्माद्वैतवाद तथा अन्य प्रकरणोंमें अनेकों उपनिषदों के वाक्य प्रमाणरूपसे उद्धृत किये हैं । इनमें बृहदारण्यकोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, कठोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्, तैत्तिरीयुपनिषद्, ब्रह्मविन्दूपनिषद्, रामतापिन्धुपनिषद्, जाबालोपनिषद् आदि उपनिषद् मुख्य हैं । इनके अवतरण अवतरणसूची में देखना चाहिये ।

**स्मृतिकार और प्रभाचन्द्र**—महर्षि मनुकी मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यकी याज्ञवल्क्यस्मृति प्रसिद्ध हैं । आ० प्रभाचन्द्रने कारकस्ताकृत्यवादके पूर्वपक्ष ( प्रमेयक० पृ० ८ ) में याज्ञवल्क्यस्मृति ( २।२२ ) का “लिखितं साक्षिणो भुक्तिः” वाक्य कुछ शाब्दिक परिवर्तनके साथ उद्धृत किया है । न्यायकुमुदचन्द्र ( पृ० ५७५ ) में मनुस्मृतिका “अकुर्वन् विहितं कर्म” श्लोक उद्धृत है । न्यायकुमुदचन्द्र ( पृ० ६३४ ) में मनुस्मृतिके “यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः” श्लोकका “न हिंस्यात् सर्वा भूतानि” इस कूर्मपुराणके वाक्यसे विरोध दिखाया गया है ।

**पुराण और प्रभाचन्द्र**—प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रमें मत्स्यपुराणका “प्रतिमन्वतरस्यैव श्रुतिरन्या विधीयते ।” यह श्लोकाश उद्धृत मिलता है । न्यायकुमुदचन्द्र ( पृ० ६३४ ) में कूर्मपुराण ( अ० १६ ) का “न हिंस्यात् सर्वा भूतानि” वाक्य प्रमाणरूपसे उद्धृत किया गया है ।

**व्यास और प्रभाचन्द्र**—महाभारत तथा गीताके प्रणेता महर्षि व्यास माने जाते हैं । प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० ५८० ) में महाभारत वनपर्व ( अ० ३०।१८ ) से “अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः...” श्लोक उद्धृत किया है । प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० ३६८ तथा ३०९ ) में भगवद्गीताके निम्नलिखित श्लोक ‘व्यासवचन’ के नामसे उद्धृत हैं—“यथैषांस्ति समिद्धोऽग्निः...” [ गीता ४।३७ ] “द्वाविमौ पुरुषौ लोके, उत्तमपुरुषस्तन्यः...” [ गीता

१५११६, १७ ] इसी तरह न्यायकुसुदचन्द्र ( पृ० ३५८ ) में गीता ( २।१६ ) का “नामावो विद्यते सतः” अंश प्रमाणरूपसे उद्धृत किया गया है ।

**पतञ्जलि और प्रभाचन्द्र**—पाणिनिस्त्रुके ऊपर महाभाष्य लिखनेवाले ऋषि पतञ्जलिका समय इतिहासकारोंने ईसवी सन् से पहिले माना है । आ० प्रभाचन्द्रने जैनैन्द्रव्याकरणके साथ ही पाणिनिव्याकरण और उसके महाभाष्यका गभीर परिशीलन और अध्ययन किया था । वे शब्दाम्भोजमास्करके प्रारम्भमें स्वयं ही लिखते हैं कि—

“शब्दानामनुगासनानि निखिलान्याध्यायताऽहर्निशम्”

आ० प्रभाचन्द्रका पातञ्जलमहाभाष्यका तलस्पर्शी अध्ययन उनके शब्दाम्भोजमास्करमें पद पद पर अनुभूत होता है । न्यायकुसुदचन्द्र ( पृ० २७५ ) में वैयाकरणोंके मतसे गुण शब्दका अर्थ बताते हुये पातञ्जलमहाभाष्य ( ५।१।११९ ) से “यस्य हि गुणस्य भावाद् गन्धे द्रव्यविनिवेशः” इत्यादि वाक्य उद्धृत किया गया है । शब्दोंके साधुलासाधुल-विचारमें व्याकरणकी उपयोगिता का समर्थन भी महाभाष्यकी ही शैलीमें किया है ।

**भर्तृहरि और प्रभाचन्द्र**—ईसकी ७ वीं शताब्दीमें भर्तृहरि नामके प्रसिद्ध वैयाकरण हुए हैं । इनका वाक्यपदीय ग्रन्थ प्रसिद्ध है । ये शब्दाद्वैतदर्शनके प्रतिष्ठाता माने जाते हैं । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रमें शब्दाद्वैतवादके पूर्वपक्षको वाक्यपदीय की अनेक कारिकाओंको उद्धृत करके ही परिपुष्ट किया है । शब्दोंके साधुल-असाधुल विचार में पूर्वपक्षका खुलासा करनेके लिए वाक्यपदीयकी सरणीका पर्याप्त सहारा लिया है । वाक्यपदीयके द्वितीयकाण्डमें आए हुए “आख्यातशब्द ” आदि दशविध या अष्टविध वाक्यलक्षणोंका सविस्तर खण्डन किया है । इसी तरह प्रभाचन्द्रकी कृति जैनैन्द्रन्यासके अनेक प्रकरणोंमें वाक्यपदीयके अनेक श्लोक उद्धृत मिलते हैं । शब्दाद्वैतवादके पूर्वपक्षमें वैखरी आदि चतुर्विधवाणीके स्वरूपका निरूपण करते समय प्रभाचन्द्रने जो “स्थानेषु विवृते वायौ” आदि तीन श्लोक उद्धृत किये हैं वे मुद्रित वाक्यपदीयमें नहीं हैं । टीकामें उद्धृत हैं ।

**व्यासभाष्यकार और प्रभाचन्द्र**—योगसूत्र पर व्यासऋषि का व्यासभाष्य प्रसिद्ध है । इनका समय ईसकी पञ्चम शताब्दी तक समझा जाता है । आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुदचन्द्र ( पृ० १०९ ) में योगदर्शनके आधारसे ईश्वरवादका पूर्वपक्ष करते समय योगसूत्रोंके अनेक उद्धरण दिए हैं । इसके विवेचनमें व्यासभाष्यकी पर्याप्त सहायता ली गई है । अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्यका वर्णन योगभाष्यसे मिलता जुलता है । न्यायकुसुदचन्द्रमें योगभाष्यसे “चैतन्यं पुरुषस्य स्वतन्त्रम्” “विच्छक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसङ्गमा” आदि वाक्य उद्धृत किये गये हैं ।

**ईश्वरकृष्ण और प्रभाचन्द्र**—ईश्वरकृष्णकी सांख्यसप्तति या सांख्यकारिका

प्रसिद्ध है। इनका समय ईसाकी दूसरी शताब्दी समझा जाता है। सांख्यदर्शनके मूलसिद्धान्तों का सांख्यकारिकामें संक्षिप्त और स्पष्ट विवेचन है। आ० प्रभाचन्द्रने सांख्यदर्शनके पूर्वपक्षमें सर्वत्र सांख्यकारिकाओंका ही विशेष उपयोग किया है। न्यायकुसुदचन्द्रमें सांख्योके कुछ वाक्य ऐसे भी उद्धृत हैं जो उपलब्ध सांख्यग्रन्थोंमें नहीं पाये जाते। यथा—“बुध्यध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते” “आसर्ग-प्रत्ययदेका बुद्धिः” “प्रतिनियतदेशा वृत्तिरभिव्यज्येत” “प्रकृतिपरिणामः शुक्लं कृष्णश्च कर्म” आदि। इससे ज्ञात होता है कि ईश्वरकृष्णकी कारिकाओंके सिवाय कोई अन्य प्राचीन सांख्य ग्रन्थ प्रभाचन्द्रके सामने था जिससे ये वाक्य उद्धृत किये गए हैं।

**माठराचार्य और प्रभाचन्द्र**—सांख्यकारिकाकी पुरातन टीका माठर-वृत्ति है। इसके रचयिता माठराचार्य ईसाकी चौथी शताब्दीके विद्वान् समझे जाते हैं। प्रभाचन्द्रने सांख्यदर्शनके पूर्वपक्षमें सांख्यकारिकाओंके साथ ही साथ माठरवृत्तिको भी उद्धृत किया है। जहाँ कहीं सांख्यकारिकाओं की व्याख्याका प्रसंग आया है, माठरवृत्तिके ही आधारसे व्याख्या की गई है।

**प्रशस्तपाद और प्रभाचन्द्र**—कणादसूत्र पर प्रशस्तपाद आचार्यका प्रशस्तपादभाष्य उपलब्ध है। इनका समय ईसाकी पौचवीं शताब्दी माना जाता है। आ० प्रभाचन्द्रने प्रशस्तपादभाष्यकी “एवं धर्मेर्विना धर्मिणामेव विदेशः कृतः” इस पङ्क्तिको प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० ५३१ ) में ‘पदार्थप्रवेशकग्रन्थ’ के नामसे उद्धृत किया है। न्यायकुसुदचन्द्र तथा प्रमेयकमलमार्तण्ड दोनोंकी षट्-पदार्थपरीक्षाका यावत् पूर्वपक्ष प्रशस्तपादभाष्य और उसकी पुरातनटीका व्योमवतीसे ही स्पष्ट किया गया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० २७० ) के ईश्वरवादके पूर्वपक्षमें ‘प्रशस्तमतिना च’ लिखकर ‘सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारो’ इत्यादि अनुमान उद्धृत है। यह अनुमान प्रशस्तपादभाष्यमें नहीं है। तत्त्वसंग्रह की पंजिका ( पृ० ४३ ) में भी यह अनुमान प्रशस्तमतिके नामसे उद्धृत है। ये प्रशस्तमति, प्रशस्तपादभाष्यकारसे भिन्न मालूम होते हैं, पर इनका कोई ग्रन्थ अब्यावधि उपलब्ध नहीं है।

**व्योमशिव और प्रभाचन्द्र**—प्रशस्तपादभाष्यके पुरातन टीकाकार आ० व्योमशिवकी व्योमवती टीका उपलब्ध है। आ० प्रभाचन्द्रने अपने दोनों ग्रन्थोंमें, न केवल वैशेषिकमतके पूर्वपक्षमें ही व्योमवतीको अपनाया है किन्तु अनेक मतोंके खंडनमें भी इसका पर्याप्त अनुसरण किया है। यह टीका उनके विशिष्ट अध्ययनकी वस्तु थी। इस टीकाके तुलनात्मक अंशोंको न्यायकुसुदचन्द्रकी टिप्पणीमें देखना चाहिए। आ० व्योमशिवके समयके विषयमें विद्वानोंका मतभेद चल आ रहा है। डॉ० कीथ इन्हें नवमशताब्दी का कहते हैं तो डॉ० दासगुप्ता इन्हें छठीवीं शताब्दीका। मे इनके समयका कुछ विस्तार से विचार करता हूँ—

राजशेखरने प्रशस्तपादभाष्यकी ‘कन्दली’ टीकाकी ‘पंजिका’ में प्रशस्तपाद-

भाष्यकी चार टीकाओंका इस क्रमसे निर्देश किया है—सर्वप्रथम ‘व्योमवती’ (व्योमशिवाचार्य), तत्पश्चात् ‘न्यायकन्दली’ (श्रीधर), तदनन्तर ‘किरणावली’ (उदयन) और उसके बाद ‘लीलावती’ (श्रीवत्साचार्य) । ऐतिहासिकपर्यालोचनासे भी राजशेखरका यह निर्देशकम संगत जान पड़ता है । यहाँ हम व्योमवतीके रचयिता व्योमशिवाचार्यके विषयमें कुछ विचार प्रस्तुत करते हैं ।

व्योमशिवाचार्य शैव थे । अपनी गुरु-परम्परा तथा व्यक्तिके विषयमें स्वयं उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा । पर रणिपदपुर रानोद, वर्तमान नारोद ग्राम की एक बापी प्रशस्ति \* से इनकी गुरुपरम्परा तथा व्यक्तिल-विषयक बहुतसी बातें मालूम होती हैं, जिनका कुछ सार इस प्रकार है—

“कदम्बगुहाधिवासी मुनीन्द्रके शंखमठिकाधिपति नामक शिष्य थे, उनके तेर-म्बिपाल, तेरम्बिपालके आमर्दकतीर्थनाथ और आमर्दकतीर्थनाथके पुरन्दरगुरु नामके अतिशय प्रतिभाशाली तार्किक शिष्य हुए । पुरन्दरगुरुने कोई ग्रन्थ अवश्य लिखा है; क्योंकि उची प्रशस्ति-शिलालेखमें अत्यन्त स्पष्टतासे यह उल्लेख है कि—“इनके वचनोंका खण्डन आज भी बड़े बड़े नैयायिक नहीं कर सकते ।”† स्याद्वादरत्नाकर आदि ग्रन्थोंमें पुरन्दरके नामसे कुछ वाक्य उद्धृत मिलते हैं, सम्भव है वे पुरन्दर थे ही हों । इन पुरन्दरगुरुको अवन्तिवर्मा उपेन्द्रपुरसे अपने देशको ले गया । अवन्तिवर्मने इन्हें अपना राज्यभार सौंप कर शैवरीक्षा धारण की और इस तरह अपना जन्म सफल किया । पुरन्दरगुरुने मतमयूरमें एक बड़ा मठ स्थापित किया । दूसरा मठ रणिपदपुरमें भी इन्होंने स्थापित किया था । पुरन्दरगुरुका कवचशिव और कवचशिवका सदाशिव नामक शिष्य हुआ, जो कि रणिपदपुरके ताप्रसाश्रम में तपःसाधन करता था । सदाशिवका शिष्य हृदयेश और हृदयेशका शिष्य व्योमशिव हुआ, जोकि अच्छा प्रभावशाली, उत्कट प्रतिभासम्पन्न और समर्थ विद्वान् था ।” व्योमशिवाचार्यके प्रभावशाली होनेका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इनके नामसे ही व्योममन्त्र प्रचलित हुए थे ।‡ ये सद्-उद्धानपरायण, मृदु-मितभाषी, विनय-नय-संयमके अद्भुत स्थान तथा अप्रतिम प्रतापशाली थे । इन्होंने रणिपदपुरका तथा रणिपदमठका उद्धार एवं सुचारु किया था और वहीं एक शिवमन्दिर तथा बापीका भी निर्माण कराया था । इसी बापीपर उक्त प्रशस्ति खुदी है ।

इनकी विद्वत्ताके विषयमें शिलालेखके ये श्लोक पर्याप्त हैं—

“सिद्धान्तेषु महेश एष नियतो न्यायेऽक्षपादो मुनिः ।

गन्मीरे च कणाधिनस्तु कण्मुक्त्वाज्ञे श्रुतौ जैमिनिः ॥

\* प्राचीन लेखमाला दि० भाग शिलालेख नं० १०८

† “यस्याधुनापि विदुषैरतिकूलशक्तिरित्याह्वयते न वचनं नयमार्गेतिह्निः ॥”

‡ “अस्य व्योमपदादिमन्त्ररचनाख्यातामिमानस्य च ।”—बापीप्रशस्तिः

सांख्येऽनर्त्यमतिः स्वयं स कपिलो लोकायते सद्गुरुः ।  
 बुद्धो बुद्धमते जिनोक्तिषु जिनः को वाय नायं कृती ॥  
 यद्भूतं यदनागतं यदधुना किञ्चित्किञ्चिद्वर्ध (तै) ते ।  
 सम्यग्दर्शनसम्पदा तदिह पश्यन् प्रमेयं महत् ॥  
 सर्वज्ञः स्फुटमेष कोपि भगवानन्यः क्षितौ सं(शं)करः ।  
 घटे किन्तु न शान्तधीर्विषमहग्रौद्रं वपुः केवलम् ॥”

इन श्लोकोंमें बतलाया है कि ‘व्योमशिवान्वार्य शैवसिद्धान्तमें स्वयं शिव, न्यायमें अक्षपाद, वैशेषिक शास्त्रमें कणाद, मीमांसामें जैमिनि, सांख्यमें कपिल, चार्वाकशास्त्रमें बृहस्पति, बुद्धमतमें बुद्ध तथा जिनमतमें स्वयं जिनदेवके समान थे । अधिक क्या; अतीतानागतवर्तमानवर्ती यावत् प्रमेयोंको अपनी सम्यग्दर्शनसम्पत्तिसे स्पष्ट देखने जानने वाले सर्वज्ञ थे । और ऐसा मात्सर्य होता था कि मात्र विषमनेत्र (चुतीयनेत्र) तथा रौद्रशरीर को चारण किए बिना वे पृथ्वी पर दूसरे शंकर भगवान् ही अवतरे थे । इनके गगनेश, व्योमशम्भु, व्योमेश, गगन-शशिमौलि आदि भी नाम थे ।

शिलाखेखे आधारसे समय—व्योमशिवके पूर्ववर्ती चतुर्थगुरु पुरन्दरको अवन्तिवर्मा राजा अपने नगरमें ले गया था । अवन्तिवर्मा के चाँदीके सिक्कों पर “विजितावनिरवनिपतिः श्री अवन्तिवर्मा दिवं जयति” लिखा रहता है तथा संवत् २५० पड़ा गया है \* । यह संवत् संभवतः गुप्त-संवत् है । डॉ० फ़्लीड्के मतानुसार गुप्त संवत् ई० सन् ३२० की २६ फरवरी को प्रारम्भ होता है † । अतः ५७० ई० में अवन्तिवर्माका अपनी मुद्राको प्रचलित करना इतिहाससिद्ध है । इस समय अवन्तिवर्मा राज्य कर रहे होंगे । तथा ५७० ई० के आसपास ही वे पुरन्दरगुरुको अपने राज्यमें लाए होंगे । ये अवन्तिवर्मा मोखरीवंशीय राजा थे । शैव होने के कारण शिवोपासक पुरन्दरगुरुको अपने यहाँ लाना भी इनका ठीक ही था । इनके समयके सम्बन्ध में दूसरा प्रमाण यह है कि—वैसवंशीय राजा हर्षवर्द्धनकी छोटी वहिन राज्यश्री, अवन्तिवर्माके पुत्र प्रहवर्माको विवाही गई थी । हर्षका जन्म ई० ५९० में हुआ था । राज्यश्री उससे १ या २ वर्ष छोटी थी । प्रहवर्मा हर्षसे ५-६ वर्ष बड़ा जल्द होगा । अतः उसका जन्म ५८४ ई० के करीब मानना चाहिए । इसका राज्यकाल ई० ६०० से ६०६ तक रहा है । अवन्तिवर्माका यह इकलौता लड़का था । अतः मात्सर्य होता है कि ई० ५८४ में अर्थात् अवन्तिवर्माकी डलती अवस्थामें यह पैदा हुआ होगा । अस्तु: यहाँ तो इतना ही प्रयोजन है कि ५७० ई० के आसपास ही अवन्तिवर्मा पुरन्दरको अपने यहाँ ले गए थे ।

\* देखो, भारतके प्राचीन राजवंश, द्वि० भाग पृ० ३७५ ।

† देखो, भारतके प्राचीन राजवंश, द्वितीय भाग पृ० २२९ ।

व्योमवती (पृ० २० क) के “नवानामात्मविशेषगुणानां सन्तानोऽत्यन्तमुच्छिद्यते सन्तानत्वात्.....यथा प्रदीपसन्तानः ।” इस अनुमानको ‘तार्किकाः’ तथा ‘आचार्याः’ शब्दके साथ उद्धृत किया है। कन्दली (पृ० २०) में व्योमवती (पृ० १४९) के ‘द्रव्यलोपलक्षितः समवाय. द्रव्यलेन योगः’ इस मतकी आलोचना की गई है। इसी तरह कन्दली (पृ० १८) में व्योमवती (पृ० १२९) के ‘अनित्यत्वं तु प्रागभावप्रर्चसाभावोपलक्षिता वस्तुसत्ता ।’ इस अनित्यत्वके लक्षणका खण्डन किया है। कन्दली (पृ० २००) में व्योमवती (पृ० ५९३) के ‘अनुमान-लक्षणमें विद्याके सामान्यलक्षणकी अनुवृत्ति करके संगत्यादिका व्यवच्छेद करना’ तथा स्मरणके व्यवच्छेदके लिये ‘द्रव्यादिषु उत्पद्यते’ इस पदका अनुवर्तन करना’ इन दो मतोंका समालोचन किया है। कन्दलीकार श्रीधरका समय कन्दलीके अन्तमें दिए गए “अधिकदशोत्तरनवशतशकाब्दे” पदके अनुसार ९१३ शक अर्थात् ९९१ ई० है। और उदयनाचार्यका समय ९८४ ई० है।

वादिराज अपने न्यायविनिश्चय-विवरण (लिखित पृ० १११ B. तथा १११ A.) में व्योमवतीसे पूर्वपक्ष करते हैं। वादिदेवसूरि अपने स्याद्वादरत्नाकर (पृ० ३१८ तथा ४१८) में पूर्वपक्षरूपसे व्योमवतीका उद्धरण देते हैं।

सिद्धार्थि न्यायावतारवृत्ति (पृ० ९) में, हेमचन्द्र प्रमाणमीमांसा (पृ० ७) में तथा गुणरत्न अपनी षड्दर्शनसमुच्चयकी वृत्ति (पृ० ११४ A) में व्योमवतीके प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगम रूप प्रमाणत्रिलकी वैशेषिकपरम्पराका पूर्वपक्ष करते हैं। इस तरह व्योमवतीकी संक्षिप्त तुलनासे ज्ञात हो सकता है कि व्योमवतीका जैनग्रन्थोंसे विशिष्ट सम्बन्ध है।

इस प्रकार हम व्योमशिवका समय शिलालेख तथा उनके ग्रन्थके उल्लेखोंके आधारसे ईस्वी सातवीं शताब्दीका उत्तर भाग अनुमान करते हैं। यदि ये आठवीं या नवमी शताब्दीके विद्वान् होते तो अपने समसामयिक शंकराचार्य और शान्तरक्षित जैसे विद्वानोंका उल्लेख अवश्य करते। हम देखते हैं कि—व्योमशिव शंकरवेदान्तका उल्लेख भी नहीं करते तथा विपर्यय ज्ञानके विषयमें अलौकिका-ख्याति, स्मृतिप्रमोप आदिका खण्डन करने पर भी शंकरके अनिर्वचनीयार्थ-ख्यातिवादका नाम भी नहीं लेते। व्योमशिव जैसे बहुश्रुत एवं सैकड़ों मतमतान्तरोंका उल्लेख करनेवाले आचार्यके द्वारा किसी भी अष्टमशताब्दी या नवम शताब्दीवर्ती आचार्यके मतका उल्लेख न किया जाना ही उनके सप्तमशताब्दी-वर्ती होनेका प्रमाण है।

अतः डॉ० फ्रीडका इन्हें नवमी शताब्दीका विद्वान् लिखना तथा डॉ० एस० एन० दासगुप्ताका इन्हें छठी शताब्दीका विद्वान् बतलाना ठीक नहीं जैचता।

श्रीधर और प्रभाचन्द्र-प्रणस्तपाद भाष्यकी टीकाओंमें न्यायकन्दली टीका भी अपना अच्छा स्थान है। इसकी रचना श्रीधरने शक ९१३

( ई० १९१ ) में की थी । श्रीधराचार्य अपने पूर्व टीकाकार व्योमशिवका शब्दाः सुसरण करते हुए भी उनसे मतभेद प्रदर्शित करनेमें नहीं चूकते । व्योमशिव बुद्ध्यादि विशेष गुणोंकी सन्ततिके अत्यन्तोच्छेदको मोक्ष कहते हैं और उसकी सिद्धिके लिए 'सन्तानत्वात्' हेतुका प्रयोग करते हैं (प्रश्न० व्यो० पृ० २० क) । श्रीधर आत्यन्तिक अहितनिवृत्तिको मोक्ष मानकर भी उसकी सिद्धिके लिए प्रयुक्त होनेवाले 'सन्तानत्वात्' हेतुको पार्थिवपरमाणुकी रूपादिसन्तानसे व्यभिचारी बताते हैं ( कन्दली पृ० ४ ) । आ० प्रभाचन्द्रने भी वैशेषिकोंकी मुक्तिका खंडन करते समय न्यायकुसुद० ( पृ० ८२६ ) और प्रमेयकमल० ( पृ० ३१८ ) में 'सन्तानत्वात्' हेतुको पाकजपरमाणुओंकी रूपादिसन्तानसे व्यभिचारी बताया है । इसी तरह और भी एकाधिकस्थलोंमें हम कन्दलीकी आभा प्रभाचन्द्रके ग्रन्थों पर देखते हैं ।

वात्सायन और प्रभाचन्द्र-न्यायसूत्रके ऊपर वात्सायनकृत न्यायभाष्य उपलब्ध है । इनका समय ईसाकी तीसरी-चौथी शताब्दी समझा जाता है । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुदचन्द्रमें इनके न्यायभाष्यका कहीं न्यायभाष्य और कहीं भाष्य शब्दसे उल्लेख किया है । वात्सायनका नाम न लेकर सर्वत्र न्यायभाष्यकार और भाष्यकार शब्दोंसे ही इनका निर्देश किया गया है ।

उद्योतकर और प्रभाचन्द्र-न्यायसूत्रके उपर न्यायवार्तिक ग्रन्थके रचयिता आ० उद्योतकर ई० ६ वी सदी, अन्ततः सातवी सदीके पूर्वपादके विद्वान् हैं । इन्होंने दिङ्नागके प्रमाणसमुच्चयके खंडनके लिए न्यायवार्तिक बनाया था । इनके न्यायवार्तिकका खंडन धर्मकीर्ति ( ई० ६३५ के बाद ) ने अपने प्रमाणवार्तिकमें किया है । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्डके सृष्टिकर्तृत्व प्रकरणके पूर्वपक्षमें ( पृ० २६८ ) उद्योतकरके अनुमानोंको 'वार्तिककारेणापि' शब्दके साथ उद्धृत किया है । प्रमेयकमलमार्तण्डमें एकाधिकस्थानोंमें 'उद्योतकर' का नामोल्लेख करके न्यायवार्तिकसे पूर्वपक्ष किए गए हैं । न्यायकुसुदचन्द्रके षोडशपदार्थवादका पूर्वपक्ष भी उद्योतकरके न्यायवार्तिकसे पर्याप्त पुष्टि पाया है । "पूर्ववच्छेषवत्" आदि अनुमानसूत्रकी वार्तिककारकृत विविध व्याख्याएँ भी प्रमेयकमलमार्तण्डमें खंडित हुई हैं । वार्तिककारकृत साधकतमलका "भावाभावयोस्तद्वत्ता" यह लक्षण प्रमेयकमलमार्तण्डमें प्रमाणरूपसे उद्धृत है ।

भट्ट जयन्त और प्रभाचन्द्र-भट्ट जयन्त जरनैयायिकके नामसे प्रसिद्ध थे । इन्होंने न्यायसूत्रोंके आधारसे न्यायकलिका, और न्यायमञ्जरी ग्रन्थ लिखे हैं । न्यायमञ्जरी तो कतिपय न्यायसूत्रोंकी विशद व्याख्या है । अब हम भट्ट जयन्तके समयका विचार करते हैं—

जयन्तकी न्यायमञ्जरीका प्रथम संस्करण विजयनगर सीरीजने सन १८९५ में प्रकाशित हुआ है । इसके संपादक म० म० गंगाधर शास्त्री मानवल्ली हैं ।

उन्होंने भूमिकामें लिखा है की—“जयन्तभट्टका गंगेशोपाध्यायने उपमान-चिन्तामणि (पृ० ६१) में जरजैयायिक शब्दसे उल्लेख किया है, तथा जयन्त-भट्टने न्यायमंजरी (पृ० ३१२) में वाचस्पति मिश्रकी तात्पर्य-टीकासे “जातं च सम्बद्धं चेत्येकः कालः” यह वाक्य ‘आचार्यैः’ करके उद्धृत किया है। अतः जयन्तका समय वाचस्पति (841 A. D.) से उत्तर तथा गंगेश (1175 A. D.) से पूर्व होना चाहिये।” इन्हींका अनुसरण करके न्यायमंजरीके द्वितीय संस्करणके सम्पादक पं० सूर्यनारायणजी शुक्लने, तथा ‘संस्कृतसाहित्यका सक्षिप्त इतिहास’के लेखकोने भी जयन्तको वाचस्पतिका परवर्ती लिखा है। ख० डॉ० शतीशचन्द्र विद्याभूषण भी उक्त वाक्यके आधार पर इनका समय ९ वीं से ११ वीं शताब्दी तक मानते थे<sup>‡</sup>। अतः जयन्तको वाचस्पतिका उत्तरकालीन माननेकी परम्पराका आधार म० म० गंगाधर शास्त्री-द्वारा “जातं च सम्बद्धं चेत्येकः कालः” इस वाक्यको वाचस्पति मिश्रका लिख देना ही मालूम होता है। वाचस्पति मिश्रने अपना समय ‘न्याय-सूची निबन्ध’ के अन्तमें खर्य दिया है। यथा—

“न्यायसूचीनिबन्धोऽयमकारि सुधियां मुदे ।

श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वर्यकवसुवत्सरे ॥”

इस श्लोकमें ८९८ वत्सर लिखा है ।

म० म० विन्ध्येश्वरीप्रसादजीने ‘वत्सर’ शब्दसे शकसंवत् लिया है<sup>†</sup>। डॉ० शतीशचन्द्र विद्याभूषण विक्रम संवत् लेते हैं<sup>‡</sup>। म० म० गोपीनाथ कविराज लिखते हैं<sup>§</sup> कि ‘तात्पर्यटीकाकी परिशुद्धिटीका बनानेवाले आचार्य उदयनने अपनी ‘लक्षणावली’ शक सं० ९०६ (984 A. D.) में समाप्त की है। यदि वाचस्पतिका समय शक सं० ८९८ माना जाता है तो इतनी जल्दी उस पर परिशुद्धि जैसी टीकाका बन जाना संभव मालूम नहीं होता ।

अतः वाचस्पतिमिश्रका समय विक्रम संवत् ८९८ (841 A. D.) प्रायः सर्वसम्मत है। वाचस्पतिमिश्रने नैपेक्षिकदर्शनको छोड़कर सर्मो दर्शनों पर टीकाएँ लिखीं हैं। सर्वप्रथम इन्होंने मंडनमिश्रके विधिविवेक पर ‘न्यायकणिका’ नामकी टीका लिखी हैं, क्योंकि इनके दूसरे ग्रन्थोंमें प्रायः इसका निर्देश हैं। उसके बाद मंडनमिश्रकी ब्रह्मसिद्धिकी व्याख्या ‘ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा’ तथा ‘तत्त्वविन्दु’, इन दोनों ग्रन्थोंका निर्देश तात्पर्य-टीकामें मिलता है, अतः उनके बाद ‘तात्पर्य-टीका’ लिखी गई। तात्पर्य-टीकाके साथही ‘न्यायसूची-निबन्ध’ लिखा

<sup>‡</sup> रिस्डी ऑफ दि इण्डियन लॉजिक, पृ० १४६।

<sup>†</sup> न्यायवार्तिक-भूमिका, पृ० १४५।

<sup>‡</sup> रिस्डी ऑफ दि इण्डियन लॉजिक, पृ० १३३।

<sup>§</sup> रिस्डी एंड विन्डोग्राफी ऑफ न्यायवैशेषिक लिटरेचर Vol. III, पृ० १०१।



होगा; क्योंकि न्यायसूत्रोंका निर्णय तात्पर्य-टीकामें अत्यन्त अपेक्षित है। 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' में तात्पर्य-टीका उद्धृत है, अतः तात्पर्य-टीकाके बाद 'सांख्य-तत्त्वकौमुदी' की रचना हुई। योगभाष्यकी तत्त्ववैशारदी टीकामें 'सांख्यतत्त्व-कौमुदी' का निर्देश है, अतः निर्दिष्ट कौमुदीके बाद 'तत्त्ववैशारदी' रची गई। और इन सभी ग्रन्थोंका 'भामती' टीकामें निर्देश होनेसे 'भामती' टीका सबके अन्तमें लिखी गई है।

जयन्त वाचस्पति मिश्रके समकालीन वृद्ध हैं—वाचस्पतिमिश्र अपनी आद्यकृति 'न्यायकणिका' के मङ्गलाचरणमें न्यायमञ्जरीकारको बड़े महत्त्व-पूर्ण शब्दोंमें गुरुरूपसे स्मरण करते हैं। यथा.—

“अज्ञानतिमिरशमनीं परदमनीं न्यायमञ्जरीं कविराम्।  
प्रसवित्रे प्रभवित्रे विद्यातरवे नमो गुरुवे ॥”

अर्थात्—जिनने अज्ञानतिमिरका नाश करनेवाली, प्रतिवादियोंका दमन करने-वाली, खचिर न्यायमञ्जरीको जन्म दिया उन समर्थ विद्यातरु गुरुको नमस्कार हो।

इस श्लोकमें स्पष्ट 'न्यायमञ्जरी' भट्ट जयन्तकृत न्यायमञ्जरी जैसी प्रसिद्ध 'न्यायमञ्जरी' ही होनी चाहिये। अभी तक कोई दूसरी न्यायमञ्जरी तो सुनने में भी नहीं आई। अब वाचस्पति जयन्तको गुरुरूपसे स्मरण करते हैं तब जयन्त वाचस्पति के उत्तरकालीन कैसे हो सकते हैं। यद्यपि वाचस्पतिने तात्पर्य-टीकामें 'त्रिलोचनगुरुजीत' इत्यादि पद देकर अपने गुरुरूपसे 'त्रिलोचन' का उल्लेख किया है, फिर भी जयन्तको उनके गुरु अथवा गुरुसम होने में कोई बाधा नहीं है, क्योंकि एक व्यक्तिने अनेक गुरु भी हो सकते हैं।

अभी तक 'जातञ्च सम्बद्धं चेत्येकः कालः' इस वचनके आधार पर ही जयन्तको वाचस्पतिक उत्तरकालीन माना जाता है। पर, यह वचन वाचस्पतिकी तात्पर्य-टीकाका नहीं है, किन्तु न्यायवार्तिककार श्री उद्योतकरका है (न्यायवार्तिक पृ० २३६), जिस न्यायवार्तिक पर वाचस्पतिकी तात्पर्य-टीका है। इनका समय धर्मकीर्तिसे पूर्व होना निर्विवाद है।

म० म० गोपीनाथ कविराज अपनी 'हिस्ट्री एण्ड निक्लोग्राफी ऑफ न्याय वैशेषिक लिटरेचर' में लिखते हैं\* कि—“वाचस्पति और जयन्त समकालीन होने चाहिए, क्योंकि जयन्तके ग्रन्थों पर वाचस्पतिका कोई असर देखने में नहीं आता।” ‘जातञ्च’ इत्यादि वाक्यके विषय में भी उन्होंने सन्देह प्रकट करते हुए लिखा है कि—“यह वाक्य किसी पूर्वाचार्य का होना चाहिये।” वाचस्पतिके पहले भी शंकराचार्य आदि नैयायिक हुए हैं, जिनका उल्लेख तत्त्व-संग्रह आदि ग्रन्थोंमें पाया जाता है।

म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने जयन्तको वाचस्पतिका उत्तरकालीन मानकर

न्यायमञ्जरी (पृ० १२०) में उद्धृत 'यन्नेनानुमितोऽप्यर्थः' इस पद्यको टिप्पणीमें 'भामती' टीकाका लिख दिया है। पर वस्तुतः यह पद्य वाक्यपदीय (१-३४) का है और न्यायमञ्जरी की तरह भामती टीकामें भी उद्धृत ही है, मूलका नहीं है।

न्यायसूत्रके प्रत्यक्ष-लक्षणसूत्र (१-१-४) की व्याख्यामें वाचस्पति मिश्र लिखते हैं कि—'व्यवसायात्मक' पदसे सविकल्पक प्रत्यक्षका ग्रहण करना चाहिये तथा 'अव्यपदेश्य' पदसे निर्विकल्पक ज्ञानका। संशयज्ञानका निराकरण तो 'अव्यभिचारी' पदसे हो ही जाता है, इसलिये संशयज्ञानका निराकरण करना 'व्यवसायात्मक' पदका मुख्य कार्य नहीं है। यह बात मैं 'गुरुजीत मार्ग' का अनुगमन करके कह रहा हूँ। इसी तरह कोई व्याख्याकार 'अयमम्बः' इत्यादि शब्दसंस्पृष्ट ज्ञानको उभयजज्ञान कहकर उसकी प्रत्यक्षताका निराकरण करनेके लिये अव्यपदेश्य पदकी सार्थकता बताते हैं। वाचस्पति 'अयमम्बः' इस ज्ञानको उभयजज्ञान न मानकर ऐन्द्रियक कहते हैं। और वह भी अपने गुरुके द्वारा उपदिष्ट इस गथाके आधार पर—

शब्दजत्वेन शब्दञ्चेत् प्रत्यक्षं चाक्षजत्वतः।

स्पष्टग्रहरूपत्वात् युक्तमैन्द्रियकं हि तत् ॥

इसलिये वे 'अव्यपदेश्य' पदका प्रयोजन निर्विकल्पका संग्रह करना ही बताते हैं।

न्यायमञ्जरी (पृ० ७८) में 'उभयजज्ञानका व्यवच्छेद करना अव्यपदेश्यपदका कार्य है' इस मतका 'आचार्याः' इस शब्दके साथ उल्लेख किया गया है। उसपर व्याख्याकारकी अनुपपत्ति दिखाकर न्यायमञ्जरीकारने उभयजज्ञानका र्थजन किया है।

म० म० गङ्गाधरशास्त्रीने इस 'आचार्याः' पदके नीचे 'तात्पर्यटीकायां वाचस्पतिमिश्राः' यह टिप्पणी की है। यहाँ यह विचारणीय है कि—यह मत वाचस्पति मिश्र का है या अन्य किसी पूर्वाचार्यका ? तात्पर्य-टीका (पृ० १४८) में तो स्पष्ट ही उभयजज्ञान नहीं मानकर उसे ऐन्द्रियक कहा है। इसलिये वह मत वाचस्पतिका तो नहीं है। ज्योमवती\* टीका (पृ० ५५५) में

\* "न, इन्द्रियसत्कारिणा शब्देन यज्जन्त्यते तस्य व्यवच्छेदार्थत्वात्, तथा शङ्कत-समयो रूप पञ्चमपि चक्षुषा रूपमिति न जानीते रूपमिति शब्दोच्चारणानन्तरं प्रतिपद्यत इत्युभयं ज्ञानम्; ननु च शब्देन्द्रिययोरैकसिन् काले व्यापाराऽसम्भवादयुक्तमेतत् । सभादि-मनसाऽपिष्ठित न ओत्र शब्द गृह्यति पुनः कियत्कमेण चक्षुषा सम्बन्धे सति रूपग्रहणम् । न च शब्दज्ञानस्यैतावत्कालमवस्थान सम्भवतीति कथमुभयवं ज्ञानम् ? अत्रैका ओत्रसम्बद्धे मनसि कियोत्पन्ना विभागमारभते...ततः स्वज्ञानसहायशब्दसहकारिणा चक्षुषा रूपज्ञानमुत्पद्यते इत्युभयं ज्ञानम् । यदि वा...मवलेबोमयजं ज्ञानम्"—प्रस० न०० पृ० ५५५।

उभयजज्ञानका स्पष्ट समर्थन है, अतः यह मत व्योमशिवाचार्यका हो सकता है। व्योमवतीने न केवल उभयजज्ञानका समर्थन ही है किन्तु उसका व्यवच्छेद भी अव्यपदेश्य पदसे किया है। हाँ, उसपर जो व्याख्याकार की अनुपपत्ति है वह कदाचित् वाचस्पतिकी तरफ लगे सकती है, सो भी ठीक नहीं; क्योंकि वाचस्पतिने अपने गुरुकी जिस गाथाके अनुसार उभयजज्ञानको ऐन्द्रियक माना है, उससे साफ मालूम होता है कि वाचस्पतिके गुरुके सामने उभयजज्ञानको माननेवाले आचार्य (सम्भवतः व्योमशिवाचार्य) की परम्परा थी, जिसका खण्डन वाचस्पतिके गुरुने किया। और जिस खण्डनको वाचस्पतिने अपने गुरुकी गाथाका प्रमाण देकर तात्पर्य-टीकामें स्थान दिया है।

इसी तरह तात्पर्य-टीकामें (पृ० १०२) 'यदा ज्ञानं तदा ह्यानोपादानोपेक्षाबुद्धयः फलम्' इस भाष्यका व्याख्यान करते हुए वाचस्पति मिश्रने उपादेयताज्ञानको 'उपादान' पदसे लिया है और उसका क्रम भी 'तोयालोचन, तोयविकल्प, दृष्टतज्जातीयसंस्कारोद्बोध, स्मरण, 'तज्जातीयं चेदम्' इत्याकारकपरा-मर्थ' इत्यादि बताया है।

न्यायमंजरी (पृ० ६६) में इसी प्रकरणमें शङ्का की है कि—'प्रथम आलोचन-ज्ञानका फल उपादानादिबुद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें कई क्षणोंका व्यवधान पड़ जाता है'। इसका उत्तर देते हुए मंजरीकारने 'आचार्याः' शब्द लिखकर 'उपादेयताज्ञानको उपादानबुद्धि कहते हैं' इस मतका उल्लेख किया है। इस 'आचार्याः' पद पर भी म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने 'न्यायवार्त्तिक-तात्पर्य-टीकायां वाचस्पतिमिश्राः' ऐसा टिप्पण किया है। न्यायमंजरीके द्वितीय संस्करणके संपादक पं० सूर्यनारायणजी न्यायाचार्यने भी उन्हींका अनुसरण करके उसे बड़े टाइपमें हेडिंग देकर छपाया है। मंजरीकारने इस मतके बाद भी एक व्याख्याताका मत दिया है। जो इस परामर्शात्मक उपादेयता-ज्ञानको नहीं मानता। यहाँ भी वह विचारणीय है कि—यह मत स्वयं वाचस्प-  
-तिका है या उनके पूर्ववर्ती उनके गुरुका? यद्यपि यहाँ उन्होंने अपने गुरुका नाम नहीं लिया है, तथापि जब व्योमवती\* जैसी प्रशस्तपादकी प्राचीन टीका (पृ० ५६१) में इसका स्पष्ट समर्थन है, तब इस मतकी परम्परा भी प्राचीन ही मानना होगी और 'आचार्याः' पदसे वाचस्पति न लिए जाकर व्योमशिव जैसे कोई प्राचीन आचार्य लेना होंगे। मालूम होता है म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने "जातञ्च सम्बद्धं चैत्येकः कालः" इस वचनको वाचस्पतिका माननेके कारण ही उक्त दो स्थलों में 'आचार्याः' पद पर 'वाचस्पतिमिश्राः' ऐसी

\* "द्रव्यादिजातीयस्य पूर्वं सुखदुःखसाधनत्वोपलब्धेः तज्ज्ञानानन्तरं यथा द्रव्यादि-जातीयं तत्तत्सुखसाधनमिलाविनाभावसरणम्, तथा चेद द्रव्यादिजातीयमिति परा-मर्शज्ञानम्, तस्मात् सुखसाधनमिति विनिश्चयः तत्त उपादेयज्ञानम्\*\*\*"—प्रश० व्यो० पृ० ५६१।

टिप्पणी कर दी है, जिसकी परम्परा चलती रही। हाँ, म० म० गोपीनाथ कविराजने अवश्य ही उसे सन्देह कोटिमें रखा है।

भट्ट जयन्तकी समयावधि—जयन्त मंजरीमें धर्मकीर्तिके मतकी समा-लोचनाके साथ ही साथ उनके टीकाकार धर्मोत्तरकी आदिवाक्यकी चर्चाको स्थान देते हैं। तथा प्रज्ञाकरगुप्तके ‘एकमेवेदं हर्षविपादाद्यनेकाकार-विवर्त्तं पद्यामः तत्र यथेष्टं संज्ञाः क्रियन्ताम्’ (मिश्र राहुलजीकी वार्तिकालंकारकी प्रेसकॉपी पृ० ४२९) इस वचनका खंडन करते हैं, (न्यायमंजरी पृ० ७४)।

मिश्र राहुलजीने टिबेटियन गुरुपरम्पराके अनुसार धर्मकीर्तिका समय ई० ६२५, प्रज्ञाकरगुप्तका ७००, धर्मोत्तर और रविगुप्तका ७२५ ईस्वी लिखा है। जयन्तने एक जगह रविगुप्तका भी नाम लिया है। अतः जयन्तकी पूर्वावधि ७६० A. D. तथा उत्तरावधि ८४० A. D. होनी चाहिए। क्योंकि वाचस्पतिका न्यायसूचीनिबन्ध ८४१ A. D. में बनाया गया है, इसके पहिले भी वे ब्रह्मसिद्धि, तत्त्वचिन्दु और तात्पर्यटीका लिख चुके हैं। संभव है कि वाचस्पतिने अपनी आद्यकृति न्यायकणिका ८१५ ई० के आसपास लिखी हो। इस न्यायकणिका में जयन्तकी न्यायमंजरीका उल्लेख होनेसे जयन्तकी उत्तरावधि ८४० A. D. ही मानना समुचित ज्ञात होता है। यह समय जयन्तके पुत्र अभिनन्द द्वारा दी गई जयन्तकी पूर्वजावलीसे भी संगत बैठता है। अभिनन्द अपने कादम्बरीकथासारमें लिखिते हैं कि—

“भारद्वाज कुलमें शक्ति नामका गौड़ ब्राह्मण था। उसका पुत्र मित्र, मित्रका पुत्र शक्तिसाम्नी हुआ। यह शक्तिसाम्नी कर्कोटवंशके राजा मुक्तापीड ललितादित्यके मंत्री थे। शक्तिसाम्नीके पुत्र कल्याणसाम्नी, कल्याणसाम्नीके पुत्र चन्द्र तथा चन्द्रके पुत्र जयन्त हुए, जो नववृत्तिकारके नामसे मशहूर थे। जयन्तके अभिनन्द नामका पुत्र हुआ।”

काश्मीरके कर्कोट वंशीय राजा मुक्तापीड ललितादित्यका राज्य काल ७३३ से ७६८ A. D. तक रहा है\*। शक्तिसाम्नी के, जो अपनी गौड़ अवस्थामें मन्त्री होंगे, अपने मन्त्रित्वकालके पहिले ही ई० ७२० में कल्याणसाम्नी उत्पन्न हो चुके होंगे। इसके अनन्तर यदि प्रत्येक पीढ़ीका समय २० वर्ष भी मान लिया जाय तो कल्याण साम्नीके ईस्वी सन् ७४० में चन्द्र, चन्द्रके ई० ७६० में जयन्त उत्पन्न हुए और उन्होंने ईस्वी ८०० तकमें अपनी ‘न्यायमंजरी’ बनाई होगी। इसलिये वाचस्पतिके समयमें जयन्त वृद्ध होंगे और वाचस्पति इन्हें आदर की दृष्टिसे देखते होंगे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी आद्यकृतिमें न्यायमंजरीकारका स्मरण किया है।

\* देखो, संस्कृतसाहित्यका इतिहास, परिशिष्ट (४) पृ० १५।

जयन्तके इस समयका समर्थक एक प्रबल प्रमाण यह है कि-हरिभद्रसूरिने अपने पङ्दर्शनसमुच्चय (श्लो० २०) में न्यायमंजरी (विजयानगरं सं० पृ० १२९) के—

“गम्भीरगर्जितारम्भनिर्मिन्नगिरिगह्वराः ।

रोलम्बगचलव्यालतमालमलिनत्विषः ॥

त्वङ्गच्छदिल्लतासङ्गपिशङ्गोत्तुङ्गविप्रहाः ।

वृष्टिं व्यभिचरन्तीह नैवंप्रायाः पयोमुचः ॥”

इन दो श्लोकोंके द्वितीय पादोंको जैसाका तैसा शामिल कर लिया है । प्रसिद्ध इतिवृत्तज्ञ मुनि जिनविजयजीने ‘जैन साहित्यसंशोधक’ (भाग १ अंक १) में अनेक प्रमाणोंसे, खासकर उद्योतनसूरिकी कुवलयमाला कथामें हरिभद्रका गुरुरूपसे उल्लेख होनेके कारण हरिभद्रका समय ई० ७०० से ७७० तक निर्धारित किया है । कुवलयमाला कथाकी समाप्ति शक ७०० (ई० ७७८) में हुई थी । मेरा इस विषयमें इतना संशोधन है कि उस समयकी आयु स्थिति देखते हुए हरिभद्रकी निर्धारित आयु स्वल्प मालूम होती है । उनके समयकी उत्तरावधि ई० ८१० तक माननेसे वे न्यायमंजरीको देख सकेंगे । हरिभद्र जैसे सैकड़ों प्रकरणोंके रचयिता विद्वान्के लिए १०० वर्ष जीना अस्वाभाविक नहीं हो सकता । अतः ई० ७१० से ८१० तक समयवाले हरिभद्रसूरिके द्वारा न्यायमंजरीके श्लोकोंका अपने ग्रन्थमें शामिल किया जाना जयन्तके ७६० से ८४० ई० तकके समयका प्रबल साधकप्रमाण है ।

आ० प्रभाचन्द्रने वात्स्यायनभाष्य एवं न्यायवार्तिककी अपेक्षा जयन्तकी न्यायमंजरी एवं न्यायकलिकाका ही अधिक परिशीलन एवं समुचित उपयोग किया है । षोडशपदार्थके निरूपणमें जयन्तकी न्यायमंजरीके ही शब्द अपनी आभा दिखाते हैं । प्रभाचन्द्रको न्यायमंजरी खम्ब्यस्त थी । वे कहीं कहीं मंजरीके ही शब्दोंको ‘तथा चाह भाष्यकारः’ लिखकर उद्धृत करते हैं । भूतचैतन्यवादके पूर्वपक्षमें न्यायमंजरी में ‘अपि च’ करके उद्धृत की गई १७ कारिकाएँ न्यायकुमुदचन्द्रमें भी ज्योंकी त्यों उद्धृत की गई हैं । जयन्तके कारकसाकक्ष्यका सर्वप्रथम खण्डन प्रभाचन्द्रने ही किया है । न्यायमंजरीकी निम्नलिखित तीन कारिकाएँ भी न्यायकुमुदचन्द्रमें उद्धृत की गई हैं ।

(न्यायकुमुद० पृ० ३३६) “ज्ञातं सम्यगसम्यग्वा यन्नोक्षाय भवाय वा ।

तत्प्रमेयमिहामीष्टं न प्रमाणार्थमात्रकम् ॥” [न्यायमं० पृ० ४४७]

(न्यायकुमुद० पृ० ४९१) “भूयोऽवयवसमान्ययोगो यद्यपि मन्यते ।

सादृश्यं तस्य तु ज्ञप्तिः गृहीते प्रतियोगिनि ॥” [न्यायमं० पृ० १४६]

(न्यायकुमुद० पृ० ५११) “नन्वस्त्वेव गृहद्वारवर्तिनः संगतिप्रहः ।

भावेनाभावसिद्धौ तु कथमेतद्विज्यति ॥” [न्यायमं० पृ० ३८]

इस तरह न्यायकुमुदचन्द्रके आधारभूत ग्रन्थोंमें न्यायमंजरीका नाम लिखा जा सकता है ।

**वाचस्पति और प्रभाचन्द्र**—पद्धदर्शनटीकाकार वाचस्पतिने अपना न्यायसूचीनिबन्ध ई० ८४१ में समाप्त किया था । इनने अपनी तात्पर्यटीका (पृ० १६५) में साख्यों के अनुमान के मात्रामात्रिक आदि सात भेद गिनाए हैं और उनका खंडन किया है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ४६२) में भी साख्योंके अनुमानके इन्हीं सात भेदोंके नाम निर्दिष्ट हैं । वाचस्पतिने शाकरभाष्यकी भामती टीकामें अविद्यासे अविद्याके उच्छेद करने के लिए “यथा पयः पयोऽन्तरं जरयति स्वयं च जीर्यति, विषं विषान्तरं क्षमयति स्वयं च क्षाम्यति, यथा वा कतकरजो रजोऽन्तराविले पायसि प्रक्षिप्तं रजोन्तराणि भिन्दत् स्वयमपि भिद्यमानमनाविलं पायः करोति...” इत्यादि दृष्टान्त दिए हैं । प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ६६) में इन्हीं दृष्टान्तों को पूर्वपक्ष में उपस्थित किया है । न्यायकुमुदचन्द्रके विधिवादके पूर्वपक्षमें विधिविवेकके साथही साथ उसकी वाचस्पतिकृत न्यायकणिका टीकाका भी पर्याप्त सादृश्य पाया जाता है । वाचस्पतिके उक्त ई० ८४१ समयका साधक एक प्रमाण यह भी है कि इन्होंने तात्पर्यटीका (पृ० २१७) में शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रह (श्लो० २००) से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—“नर्तकीभ्रूलताक्षेपो न ह्येकं पारमार्थिकः । अनेकाश्रुतमूहलात् एकलं तस्य कल्पितम् ॥” शान्तरक्षितका समय ई० ७६२ है ।

**शाबर ऋषि और प्रभाचन्द्र**—जैमिनिसूत्र पर शाबरभाष्य लिखने वाले महर्षि शाबरका समय ईसाकी तीसरी सदी तक समझा जाता है । शाबरभाष्यके ऊपर ही कुमारिल और प्रभाकर ने व्याख्याएँ लिखी हैं । आ० प्रभाचन्द्रने शब्द-नित्यत्ववाद, वेदापौरुषेयत्ववाद, आदिमें कुमारिल के श्लोकवार्तिकके साथ ही साथ शाबरभाष्य की दलीलों को भी पूर्वपक्षमें रखा है । शाबरभाष्य से ही “गौरित्यत्र कः शब्दः ? गङ्गारौकारविसर्जनीया इति भगवानुपवर्षः” यह उपवर्ष ऋषि का मत प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४६४) में उद्धृत किया गया है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २७९) में शब्दको वायवीय माननेवाले शिक्षाकार गीमासकोंका मत भी शाबरभाष्यसे ही उद्धृत हुआ है । इसके सिवाय न्यायकुमुदचन्द्र में शाबरभाष्यके कई वाक्य प्रमाणरूपमें और पूर्वपक्ष में उद्धृत किए गए हैं ।

**कुमारिल और प्रभाचन्द्र**—भट्टकुमारिलने शाबरभाष्य पर गीमासकश्लोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक और उपटीका नामकी व्याख्या लिखी है । कुमारिलने अपने तन्त्रवार्तिक (पृ० २५१-२५३) में वाक्यपदीयके निम्नलिखित श्लोककी समालोचना की है—

“अस्त्यर्थः सर्वगन्दानामिति प्रत्याख्यलक्षणम् ।

अपूर्वदेवतास्वर्गं सममाहुर्गवादिषु ॥” [वाक्यप० २।१२१]

इसी तरह तन्त्रवार्तिक (पृ० २०९-१०) में वाक्यपदीय (१।७) के

“तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादये” अश उद्धृत होकर खंडित हुआ है। मीमांसाश्लोकवार्तिक (वाक्याधिकरण श्लो० ५१) में वाक्यपदीय (२।१-२) में निर्दिष्ट दशविध या अष्टविध वाक्यलक्षणोंका समालोचन किया गया है। भर्तृहरिके स्फोटवादकी आलोचना भी कुमारिलने मीमांसाश्लोकवार्तिकके स्फोटवादमें बड़ी प्रखरतासे की है। चीनी यात्री ह्वित्संगने अपने यात्राविवरणमें भर्तृहरिका मृत्युसमय ई० ६५० बताया है अतः भर्तृहरिके समालोचक कुमारिलका समय ईस्वी ७ वीं शताब्दी का उत्तर भाग मानना समुचित है। आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रमें सर्वज्ञवाद, शब्दनित्यत्ववाद, वेदापौरुषेयत्ववाद, आगमादिप्रमाणोंका विचार, प्रामाण्यवाद आदि प्रकरणोंमें कुमारिलके श्लोकवार्तिकसे पचासो कारिकाएँ उद्धृत कीं हैं। शब्दनित्यत्ववाद आदि प्रकरणोंमें कुमारिलकी युक्तियोंका सिलसिलेवार सप्रमाण उत्तर दिया गया है। कुमारिलने आत्माको व्यावृत्त्यनुगमात्मक या नित्यानित्यात्मक माना है। प्रभाचन्द्रने आत्माकी नित्यानित्यात्मकताका समर्थन करते समय कुमारिलकी “तस्मादुभयद्वानेन व्यावृत्त्यनुगमात्मकः” आदि कारिकाएँ अपने पक्षके समर्थनमें भी उद्धृत कीं हैं। इसी तरह सृष्टिकर्तृत्वखंडन, ब्रह्मवादखंडन, आदिमें प्रभाचन्द्र कुमारिलके साथ साथ चलते हैं। सारांश यह है कि प्रभाचन्द्रके सामने कुमारिलका मीमांसाश्लोकवार्तिक एक विशिष्ट ग्रन्थके रूप में रहा है। इसीलिए इसकी आलोचना भी जमकर की गई है। श्लोकवार्तिक की मूढ़ उन्वैककृत तात्पर्यटीका अभी ही प्रकाशित हुई है। इस टीकाका आलोचन भी प्रभाचन्द्रने खूब किया है। सर्वज्ञवादमें कुछ कारिकाएँ ऐसी भी उद्धृत हैं जो कुमारिलके मौजूदा श्लोकवार्तिकमें नहीं पाई जाती। संभव है ये कारिकाएँ कुमारिलकी बृहद्गीका या अन्य किसी ग्रन्थ की हों।

मंडनमिश्र और प्रभाचन्द्र-आ० मंडनमिश्रके मीमांसासुक्रमणी, विधिविवेक, भावनाविवेक, नैष्कर्म्यसिद्धि, ब्रह्मसिद्धि, स्फोटसिद्धि आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका पूर्वभाग है। आचार्य विद्यानन्दने (ई० ९ वीं शताब्दी का पूर्वभाग) अपनी अष्टसहस्रीमें मण्डनमिश्र का नाम लिया है। यतः मण्डनमिश्र अपने ग्रन्थोंमें सप्तमशतकवर्ती कुमारिलका नामोल्लेख करने हैं। अतः इनका समय ई० की सप्तमशताब्दीका अन्तिमभाग तथा ८ वीं सदी का पूर्वार्ध अनुचित होता है। आ० प्रभाचन्द्र ने न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० १४९) में मंडनमिश्रकी ब्रह्मसिद्धिका “आहुर्विधातु प्रत्यक्षं” श्लोक उद्धृत किया है। न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ५७२) में विधिवादके पूर्वपक्षमें मंडनमिश्रके विधिविवेकमें वर्णित अनेक विधिवादियोंका निर्देश किया गया है। उनके मतनिरूपण तथा समालोचन में विधिविवेक ही आधारभूत माध्यम होता है।

प्रभाकर और प्रभाचन्द्र-भावरभाष्यकी बृहती टीकाके रचयिता प्रभाकर करीब करीब कुमारिलके समकालीन थे । मद्भ कुमारिलका शिष्य परिवार भाट्टके नामसे ख्यात हुआ तथा प्रभाकर के शिष्य प्रभाकर या गुप्तमताजुयायी कहलाए । प्रभाकर विपर्ययज्ञानको स्मृतिप्रमोप या विवेकाख्याति रूप मानते हैं । ये अभावको स्वतन्त्र प्रमाण नहीं मानते । वेदवाक्योंका अर्थ नियोगपरक करते हैं । प्रभाचन्द्रने अपने ग्रन्थोंमें प्रभाकरके स्मृतिप्रमोप, नियोगवाद आदि सभी सिद्धान्तों का विस्तृत खंडन किया है ।

शालिकनाथ और प्रभाचन्द्र-प्रभाकरके शिष्योंमें शालिकनाथका अपना विशिष्ट स्थान है । इनका समय ईसवी ८ वीं शताब्दी है । इन्होंने बृहतीके ऊपर ऋजुविमला नाम की पञ्चिका लिखी है । प्रभाकरगुरुके सिद्धान्तोंका विवेचन करनेके लिए इन्होंने प्रकरणपञ्चिका नामका स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखा है । ये अन्धकारको स्वतन्त्र पदार्थ नहीं मानते किन्तु ज्ञानानुत्पत्तिको ही अन्धकार कहते हैं । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० २३८ ) तथा न्यायकुमुदचन्द्र ( पृ० ६६६ ) में शालिकनाथके इस मतकी विस्तृत समीक्षा की है ।

शाङ्कराचार्य और प्रभाचन्द्र-आद्य गङ्गाचार्यके ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, गीताभाष्य, उपनिषद्भाष्य आदि अनेकों ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । इनका समर्थ ई० ७८८ से ८२० तक माना जाता है । शाङ्करभाष्यमें धर्मकीर्तिके 'सरोपलम्भनियमात्' हेतुका खण्डन होनेसे यह समय समर्थित होता है । आ० प्रभाचन्द्रने शाङ्करके अनिवचनीयार्थख्यातिवादकी समालोचना प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रमें की है । न्यायकुमुदचन्द्रके परमब्रह्मवादके पूर्वपक्षमें शाङ्करभाष्यके आधार से ही वैषम्य नैर्घृण्य आदि दोषोंका परिहार किया गया है ।

सुरेश्वर और प्रभाचन्द्र-गङ्गाचार्यके शिष्योंमें सुरेश्वराचार्यका नाम उल्लेखनीय है । इनका नाम विश्वरूप भी था । इन्होंने तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य-वार्तिक, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक, मानसोल्लास, पञ्चीकरणवार्तिक, काशीसू-तिमोक्षविचार, मैकर्म्यसिद्धि आदि ग्रन्थ बनाए हैं । आ० विद्यानन्द ( ईसवी ९ वीं शताब्दी ) ने अष्टसहस्री ( पृ० १६२ ) में बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिकसे "ब्रह्माविद्याविदितं चेन्ननु" इत्यादि कारिकाएँ उद्धृत की हैं । अतः इनका समय भी ईसवी ९ वीं शताब्दीका पूर्वभाग होना चाहिए । ये गङ्गाचार्य ( ई० ७८८ से ८२० के साक्षात् शिष्य थे । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० ४४-४५ ) तथा न्यायकुमुदचन्द्र ( पृ० १४१ ) में ब्रह्मवादके पूर्वपक्षमें उनके बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक ( ३।५।४३-४४ ) से "यथा विशुद्धमाकाशं" आदि दो कारिकाएँ उद्धृत की हैं ।

१ द्रष्टव्य-अच्युतपत्र वर्ष ३ अङ्क ४ में म० म० गोपीनाथ कविराव का लेख ।



**भामह और प्रभाचन्द्र**—भामहका काव्यालङ्कार ग्रन्थ उपलब्ध है। शान्तरक्षितने तत्त्वसंग्रह (पृ० २९१) में भामहके काव्यालङ्कारकी अपोह-खण्डन वाली “यदि गौरिलयं शब्दः” आदि तीन कारिकाओंकी समालोचना की है। ये कारिकाएँ काव्यालङ्कारके ६ वें परिच्छेद (श्लो० १७-१९) में पाई जाती हैं। तत्त्वसंग्रहकारका समय ई० ७०५-७६२ तक सुनिर्णीत है। बौद्धसम्मत प्रत्यक्षके लक्षणका खण्डन करते समय भामहने (काव्यालङ्कार ५।६) दिङ्नागके मात्र ‘कल्पनापोढ’ पदवाले लक्षणका खंडन किया है, धर्मकीर्तिके ‘कल्पनापोढ और अभ्रान्त’ उभयविशेषणवाले लक्षणका नहीं। इससे ज्ञात होता है कि भामह दिङ्नागके उत्तरवर्ती तथा धर्मकीर्तिके पूर्ववर्ती हैं। अन्ततः इनका समय ईसाकी ७ वीं शताब्दी का पूर्वभाग है। आ० प्रभाचन्द्रने अपोहवादका खण्डन करते समय भामहकी अपोहखण्डनविषयक “यदि गौरिलयं” आदि तीनों कारिकाएँ प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४३२) में उद्धृत की हैं। यह भी संभव है कि ये कारिकाएँ सीधे भामहके ग्रन्थसे उद्धृत न होकर तत्त्वसंग्रहके द्वारा उद्धृत हुई हों।

**वाण और प्रभाचन्द्र**—प्रसिद्ध गद्यकाव्य कादम्बरीके रचयिता वाणभट्ट, सम्राट् हर्षवर्धन (राज्य ६०६ से ६४८ ई०) की समाके कविरत्न थे। इन्होंने हर्षचरितकी भी रचना की थी। वाण, कादम्बरी और हर्षचरित दोनों ही ग्रन्थोंको पूर्ण नहीं कर सके। इनकी कादम्बरीका आद्यश्लोक “रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये” प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० २९८) में उद्धृत है। आ० प्रभाचन्द्रने वेदायौख्येयत्नप्रकरणमें (प्रमेयक० पृ० ३९३) कादम्बरीके कर्तृत्वके विषयमें सन्देहात्मक उल्लेख किया है—“कादम्बरीदीनां कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेः”—अर्थात् कादम्बरी आदिके कर्तृत्वके विषयमें विवाद है। इस उल्लेखसे ज्ञात होता है कि प्रभाचन्द्रके समयमें कादम्बरी आदि ग्रन्थोंके कर्ता विवादग्रस्त थे। हम प्रभाचन्द्रका समय आगे ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दी सिद्ध करेंगे।

**माघ और प्रभाचन्द्र**—शिशुपालवध काव्यके रचयिता माघ कविका समय ई० ६६०-६७५ के लगभग है<sup>१</sup>। माघकविके पितामह सुप्रभदेव राजा बर्म-लातके मन्त्री थे। राजा बर्मलात का उल्लेख ई० ६२५ के एक शिलालेखमें विद्यमान है अतः इनके नाती माघ कविका समय ई० ६७५ तक मानना समुचित है। प्रभाचन्द्रने माघकाव्य (१।२३) का “युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो....” श्लोक प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ६८८) में उद्धृत किया है। इससे ज्ञात होता है कि प्रभाचन्द्रने माघकाव्यको देखा था।

### ( अवैदिकदर्शन )

**अश्वघोष और प्रभाचन्द्र**—अश्वघोषका समय ईसाका द्वितीय शतक माना जाता है। इनके बुद्धचरित और सौन्दरनन्द दो महाकाव्य प्रसिद्ध हैं।

<sup>१</sup> देखो संस्कृत साहित्यका इतिहास पृ० १४३।

सौन्दरनन्दमें अश्वघोषने प्रसङ्गतः बौद्धदर्शनके कुछ पदार्थोंका भी सारगर्भ निवे-  
चन किया है। आ० प्रभाचन्द्रने शून्यनिर्वाणवादका खंडन करते समय पूर्व-  
पक्षमें (प्रमेयक० पृ० ६८७) सौन्दरनन्दकाव्यसे निम्नलिखित दो श्लोक उद्धृत  
किए हैं—

“धीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनि गच्छति नान्तरिक्षम् ।

दिशं न काचिद् विदिशं न काचित् स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥

जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनि गच्छति नान्तरिक्षम् ।

दिशं न काचिद्विदिशं न काचित्क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥”

[ सौन्दरनन्द १६।२८, २९ ]

नागार्जुन और प्रभाचन्द्र—नागार्जुन की माध्यमिककारिका और विप्रह-  
व्यावर्तिनी दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ये ईसाकी तीसरी शताब्दीके विद्वान् हैं। इन्हें  
शून्यवादके प्रस्थापक होनेका श्रेय प्राप्त है। माध्यमिककारिकामें इन्होंने विस्तृत  
परीक्षाएँ लिखकर शून्यवादको दार्शनिक रूप दिया है। विप्रहव्यावर्तिनी भी  
इसी तरह शून्यवादका समर्थन करनेवाला छोटा प्रकरण है। प्रभाचन्द्रने न्याय-  
कुमुदचन्द्र (पृ० १३२) में माध्यमिकके शून्यवादका खंडन करते समय  
पूर्वपक्षमें प्रमाणवार्तिककी कारिकाओंके साथ ही साथ माध्यमिककारिकासे भी  
‘न स्वतो नापि परतः’ और ‘यथा मया यथा स्वप्नो...’ ये दो कारिकाएँ  
उद्धृत की हैं।

वसुबन्धु और प्रभाचन्द्र—वसुबन्धुका अभिधर्मकोश ग्रन्थ प्रसिद्ध है।  
इनका समय ई० ४०० के करीब माना जाता है। अभिधर्मकोश बहुत अंशोंमें  
बौद्धदर्शनके सूत्रग्रन्थका कार्य करता है। प्रभाचन्द्रने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ०  
३९०) में वैभाषिक सम्मत द्वादशाङ्ग प्रतीत्यसमुत्पादको खंडन करते समय  
प्रतीत्यसमुत्पादका पूर्वपक्ष वसुबन्धुके अभिधर्मकोशके आधारसे ही लिखा है।  
उसमें यथावसर अभिधर्मकोशसे २।३ कारिकाएँ भी उद्धृत की हैं। देखो न्याय-  
कुमुदचन्द्र पृ० ३९५।

दिङ्नाग और प्रभाचन्द्र—आ० दिङ्नागका स्थान बौद्धदर्शनके विशिष्ट  
संस्थापकोंमें है। इनके न्यायप्रवेश, और प्रमाणसमुच्चय प्रकरण मुद्रित हैं।  
इनका समय ई० ४२५ के आसपास माना जाता है। प्रमाणसमुच्चयमें प्रत्यक्षका  
कल्पनापोड लक्षण किया है। इसमें अवप्रान्तपद धर्मकीर्तिने जोड़ा है। इन्हींके  
प्रमाणसमुच्चय पर धर्मकीर्तिने प्रमाणवार्तिक रचा है। मिश्र राहुलजीने दिङ्नाग  
के आलम्बनपरीक्षा, त्रिकालपरीक्षा, और हेतुचक्रडमर आदि ग्रन्थोंका भी  
उल्लेख किया है। आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ८०) में  
‘स्तुतस्य अद्वैतादिप्रकरणानामादौ दिङ्नागादिभिः सद्भिः’ लिखकर प्रमाणसमुच्चयका

‘प्रमाणभूताय’ इत्यादि मंगलश्लोकांश्च उद्धृत किया है। इसी तरह अपोहवादके पूर्वपक्ष (प्रमेयक० पृ० ४३६) में दिभागेके नामसे निम्नलिखित गद्यांश भी उद्धृत किया है—“दिभागेन विशेषणविशेष्यभावसमर्थनार्थम् ‘नीलोत्पलादिशब्दा अर्थान्तरनिवृत्तिविशिष्टानर्थानाहुः’ इत्युक्तम्।”

**धर्मकीर्ति और प्रभाचन्द्र**—बौद्धदर्शनके युगप्रधान आचार्य धर्मकीर्ति इसाकी ७ वी शताब्दीमें नालन्दाके बौद्धविद्यापीठके आचार्य थे। इनकी लेखनीने भारतीय दर्शनशास्त्रोंमें एक युगान्तर उपस्थित कर दिया था। धर्मकीर्तिने वैदिकसंस्कृति पर दृढ़ प्रहार किए हैं। यद्यपि इनका उद्धार करनेके लिए ज्योतिष, जयन्त, नाचस्पतिमिश्र, उदयन आदि आचार्योंने कुछ उठा नहीं रखा। पर बौद्धोंके खंडनमें जितनी कुशलता तथा सतर्कतासे जैनआचार्योंने लक्ष्य दिया है उतना अन्यने नहीं। यही कारण है कि अकलङ्क, हरिभद्र, अनन्तवीर्य, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, अमरदेव, चादिदेवसूरि आदिके जैनन्यायशास्त्रके ग्रन्थोंका बहुभाग बौद्धोंके खंडनने ही रोक रखा है। धर्मकीर्तिके समयके विषयमें मैं विशेष कदापोह “अकलङ्कग्रन्थत्रय” की प्रस्तावना (पृ० १८) में कर आया हूँ। इनके प्रमाणवार्तिक, हेतुबिन्दु, न्यायबिन्दु, सन्तानान्तरसिद्धि, वादन्याय, सम्बन्धपरीक्षा आदि ग्रन्थोंका प्रभाचन्द्रको गहरा अभ्यास था। इन ग्रन्थों की अनेकों कारिकाएँ, खासकर प्रमाणवार्तिक की कारिकाएँ प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंमें उद्धृत हैं। मालूम होता है कि सम्बन्धपरीक्षाकी अथ से इति तक २३ कारिकाएँ प्रमेयकमलमार्तण्डके सम्बन्धवादके पूर्वपक्ष में ज्यों की त्यों रखी गई हैं, और खण्डित हुई हैं। विद्यानन्दके तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में इसकी कुछ कारिकाएँ ही उद्धृत हैं। बादन्यायका “हसति हसति स्वामिनि” आदि श्लोक प्रमेयकमलमार्तण्डमें उद्धृत है। संवेदनाद्वैतके पूर्वपक्षमें धर्मकीर्तिके ‘सहोपलम्भनियमात्’ आदि हेतुओंका निर्देश कर बहुविध विकल्पजालोंसे खण्डन किया गया है। बादन्यायकी “असाधनाहवचनमदोषोद्भावनं द्रव्यो.” कारिकाका और इसके विविध व्याख्यानोंका संयुक्तिक उत्तर प्रमेयकमलमार्तण्डमें दिया गया है। इन सब ग्रन्थोंके अवतरण और उनसे की गई तुलना न्यायकुसुमदचन्द्रके टिप्पणोंमें देखनी चाहिए।

**प्रज्ञाकरगुप्त और प्रभाचन्द्र**—धर्मकीर्तिके व्याख्याकारोंमें प्रज्ञाकरगुप्तका अपना खास स्थान है। उन्होंने प्रमाणवार्तिक पर प्रमाणवार्तिकालङ्कार नामकी विस्तृत व्याख्या लिखी है इनका समय भी इसाकी ७ वी शताब्दीका अन्तिम भाग और आठवींका प्रारम्भिक भाग है। इनकी प्रमाणवार्तिकालङ्कार टीका वार्तिकालङ्कार और अलङ्कारके नामसे भी प्रख्यात रही है। इन्हींके वार्तिका-लङ्कारसे भावना विधि नियोगकी विस्तृत चर्चा विद्यानन्दके ग्रन्थों द्वारा प्रभाचन्द्रके न्यायकुसुमदचन्द्रमें अवतीर्ण हुई है। इतना विशेष है कि—विद्यानन्द और प्रभाचन्द्रने प्रज्ञाकरगुप्तकृत भावना विधि आदिके खंडनका भी स्थान स्थान पर विशेष समालोचन किया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ३८०) में प्रज्ञाकरके

भाषिकारणवाद और भूतकारणवादका उल्लेख प्रज्ञाकरका नाम देकर किया गया है। प्रज्ञाकरगुप्तने अपने इस मतका प्रतिपादन प्रमाणवार्तिकालङ्कार में किया है<sup>१</sup>। भिक्षु राहुलसांकृत्यायनके पास इसकी हस्तलिखित कापी है। प्रभाचन्द्रने धर्मकीर्तिके प्रमाणवार्तिककी तरह उनके शिष्य प्रज्ञाकरके वार्तिकालङ्कारका भी आलोचन किया है।

प्रभाचन्द्रने जो ब्राह्मणलजातिका खण्डन लिखा है, उसमें शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहके साथ ही साथ प्रज्ञाकरगुप्त के वार्तिकालङ्कारका भी प्रभाव मालूम होता है। ये बौद्धाचार्य अपनी संस्कृतिके अनुसार सदैव जातिवाद पर खड़े रहते थे। धर्मकीर्तिने प्रमाणवार्तिकके निम्नलिखित श्लोकमें जातिवादके मदको जड़ताका चित्त बताया है—

“विदप्रामाण्यं कस्यचित्कर्तृवादः ज्ञाने धर्मेच्छा जातिवादावलम्बः।

सन्तापारम्भः पापहानाय चेति प्लक्षप्रज्ञानां पक्ष लिङ्गानि जात्ये ॥”

उत्तराध्यायनसूत्रमें ‘कम्मुणा बम्हणो होइ कम्मुणा होइ खतिओ’ लिखकर कर्मणा जातिका स्पष्ट समर्थन किया गया है।

दि० जैनाचार्योंमें बराह्मचरित्रके कर्ता जटासिंहनन्दिने बराह्मचरितके २५ वे अध्यायमें ब्राह्मणलजातिका निरास किया है। और सी रविपेण, अमितागति आदिने जातिवादके खिलाफ बड़ा बहुत लिखा है पर तर्कमन्थोंमें सर्वप्रथम हम प्रभाचन्द्रके ही ग्रन्थोंमें जन्मना जातिका सयुक्तिक खण्डन यथेष्ट विस्तारके साथ पाते हैं।

कर्णकगोमि और प्रभाचन्द्र—प्रमाणवार्तिकके तृतीयपरिच्छेद पर धर्मकीर्तिकी खोपश्रुति भी उपलब्ध है। इस श्रुतिपर कर्णकगोमिकी विस्तृत टीका है। इस टीकामें प्रज्ञाकर गुप्तके प्रमाणवार्तिकालङ्कारका ‘अलङ्कार’ शब्दसे उल्लेख है। इसमें मण्डनमिश्रकी ग्रहसिद्धिका ‘आहुर्विवात्’ श्लोक उद्धृत है। अतः इनका समय ई० ८ वीं सदीका पूर्वार्ध संभव है। न्यायकुमुदचन्द्रके शब्दनिलल्लास, वेदापौरुषेयत्ववाद, स्फोटवाद आदि प्रकरणों पर कर्णकगोमिकी खश्रुतिटीका अपना पूरा असर रखती है। इसके अवतरण इन प्रकरणोंके टिप्पणोंमें देखना चाहिये।

शान्तरक्षित, कमलशील और प्रभाचन्द्र—तत्त्वसंग्रहकार शान्तरक्षित तथा तत्त्वसंग्रहपत्रिकाके रचयिता कमलशील नालन्दाविश्वविद्यालयके आचार्य थे। शान्तरक्षितका समय ई० ७०५ से ७६२ तथा कमलशीलका समय ई० ७१३ से ७६३ है। शान्तरक्षितकी अपेक्षा कमलशीलकी प्राबाहिक प्रसाद-

१ इसके अवतरण अकलंक ग्रन्थत्रयी प्रस्तावना पृ० २७ में देखना चाहिये।

२ इन आचार्योंके ग्रन्थोंके अवतरणके लिए देखो न्यायकुमुदचन्द्र पृ० ७७८ दि० ९।

३ देखो तत्त्वसंग्रहकी प्रस्तावना पृ० Xovi

शुणमयी भाषाने प्रमाचन्द्रको अत्यधिक आकृष्ट किया है। यों तो प्रमाचन्द्रके प्रायः प्रत्येक प्रकरणपर कमलशीलकी पञ्जिका अपना उन्मुक्त प्रभाव रखती है पर इसके लिए शब्दपदार्थपरीक्षा, शब्दब्रह्मपरीक्षा, ईश्वरपरीक्षा, प्रकृतिपरीक्षा, शब्दनित्यत्वपरीक्षा आदि परीक्षाएँ खास तौरसे द्रष्टव्य हैं। तत्त्वसंग्रहकी सर्वज्ञ-परीक्षामें कुमारिलकी पचासों कारिकाएँ उद्धृत कर पूर्वपक्ष किया गया है। इनमेंसे अनेकों कारिकाएँ ऐसी हैं जो कुमारिलके लोकवार्तिकमें नहीं पाई जाती। कुछ ऐसी ही कारिकाएँ प्रमाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय-कुमुदचन्द्रमें भी उद्धृत हैं। संभव है कि ये कारिकाएँ कुमारिलके ग्रन्थसे न लेकर तत्त्वसंग्रहसे ही ली गई हों। तात्पर्य यह कि प्रमाचन्द्रके आधारभूत ग्रन्थोंमें तत्त्वसंग्रह और उसकी पञ्जिका अग्रस्थान पानेके योग्य है।

अर्चट और प्रमाचन्द्र-धर्मकीर्तिके हेतुविन्दु पर अर्चटकृत टीका उपलब्ध है। इसका उल्लेख अनन्तवीर्यने अपनी सिद्धिविनिश्चयटीकामें अनेकों स्थलोंमें किया है। 'हेतुलक्षणसिद्धि' में तो धर्मकीर्तिके हेतुविन्दुके साथही साथ अर्चटकृत विवरणका भी खण्डन है। अर्चटका समय भी करीब ईसाकी ९ वीं शताब्दी होना चाहिये। अर्चटने अपने हेतुविन्दुविवरणमें सहकारित दो प्रकारका बताया है—१ एकार्यकारित, २ परस्परातिशयाभावकल। आ० प्रमाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० १०) में कारकसाकल्यवादकी समीक्षा करते समय सहकारितके यही दो विकल्प किये हैं।

धर्मोत्तर और प्रमाचन्द्र-धर्मकीर्तिके न्यायविन्दु पर आ० धर्मोत्तरने टीका रची है। मिश्र राहुलजी द्वारा लिखित टिबेटियन गुप्तपरम्पराके अनुसार इनका समय ई० ७२५ के आसपास है। आ० प्रमाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० २) तथा न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २०) में सम्बन्ध, अभिव्यक्ति, शक्यालुछानेष्टप्रयोजनरूप अनुबन्धत्रयकी चर्चामें, जो उन्मत्तवाक्य, काकदन्त-परीक्षा, मातृविवाहोपदेश तथा सर्वज्वरहरतक्षकबूडारलालङ्कारोपदेशके उदाहरण दिए हैं वे धर्मोत्तरकी न्यायविन्दुटीका (पृ० २) के प्रभावसे अछूते नहीं हैं। इनकी शब्दरचना करीब करीब एक जैसी है। इसी तरह न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २६) में प्रत्यक्ष शब्दकी व्याख्या करते समय अक्षाभितलको प्रत्यक्ष शब्दका न्युत्पत्तिनिमित्त बताया है और अक्षाभितलोपलक्षित अर्थसाक्षात्कारित को प्रवृत्तिनिमित्त। ये प्रकार भी न्यायविन्दुटीका (पृ० ११) से अक्षरशः मिलते हैं।

ज्ञानश्री और प्रमाचन्द्र-ज्ञानश्रीने क्षणमंगाध्याय आदि अनेक प्रकरण लिखे हैं। उदयनाचार्य ने अपने आत्मतत्त्वविवेकमें ज्ञानश्रीके क्षणमंगाध्यायका नामोल्लेखपूर्वक आज्ञापूर्वी से खंडन किया है। उदयनाचार्यने अपनी लक्षणावली तर्कान्तरांक (९०६) शक, ई० ९८४ में समाप्त की थी। अतः ज्ञानश्रीका

समय ई० १८४ से पहिले तो होना ही चाहिए । मिश्र राहुल सांकृत्यायनजीके नोट्स देखनेसे ज्ञात हुआ है कि-ज्ञानश्रीके क्षणमंगाच्याय या अपोहसिद्धि(?)के प्रारम्भमें यह कारिका है-

“अपोहः अवलिङ्गाभ्यां न वस्तु विविनोच्यते ।”

विद्यानन्दकी अष्टसहस्रीमें भी यह कारिका उद्धृत है । आ० प्रभाचन्द्रने भी अपोहवाद के पूर्वपक्षमें “अपोहः अवलिङ्गाभ्यां” कारिका उद्धृत की है । वाचस्पतिमिश्र ( ई० ८४१ ) के ग्रन्थों में ज्ञानश्रीकी समालोचना नहीं है पर उदयनाचार्य ( ई० १८४ ) के ग्रन्थोंमें है, इसलिए भी ज्ञानश्रीका समय ईसाकी १० वीं शताब्दीके बाद तो नहीं जा सकता ।

जयसिंहराशिभट्ट और प्रभाचन्द्र-भट्ट श्री जयसिंहराश्रीका तत्त्वोपप्लवसिंह नामक ग्रन्थ गायकवाट सीरीजमें प्रकाशित हुआ है । इनका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दी है । तत्त्वोपप्लवग्रन्थ में प्रमाण प्रमेय आदि सभी तत्त्वोंका बहुविध विकल्पजालसे खंडन किया गया है । आ० विद्यानन्दके ग्रन्थोंमें सर्वप्रथम तत्त्वोपप्लववादीका पूर्वपक्ष देखा जाता है । प्रभाचन्द्रने संशयज्ञानका पूर्वपक्ष तथा बाधकज्ञानका पूर्वपक्ष तत्त्वोपप्लव ग्रन्थसे ही किया है और उसका उतने ही विकल्पो द्वारा खंडन किया है । प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० ६४८ ) में ‘तत्त्वोपप्लववादि’ का दृष्टान्त भी दिया गया है । न्यायकुसुदचन्द्र ( पृ० ३३९ ) में भी तत्त्वोपप्लववादिका दृष्टान्त पाया जाता है । तात्पर्य यह कि परमतके खंडनमें क्वचित् तत्त्वोपप्लववादिकृत विकल्पोंका उपयोग कर देने पर भी प्रभाचन्द्रने स्थान स्थान पर तत्त्वोपप्लववादिके विकल्पोंकी भी समीक्षा की है ।

कुन्दकुन्द और प्रभाचन्द्र-दिगम्बर आचार्यों में आ० कुन्दकुन्दका विशिष्ट स्थान है । इनके सारत्रय-प्रवचनसार, पञ्चास्तिक्यसमयसार और समयसार-के सिवाय बारसमणुवेक्ता अष्टपाहुड आदि ग्रन्थ उपलब्ध हैं । प्रो० ए० एन० उपाध्येने प्रवचनसारकी भूमिकामें इनका समय ईसाकी प्रथमशताब्दी सिद्ध किया है । कुन्दकुन्दाचार्यने बोधपाहुड ( गा० ३७ ) में केवलीको आहार और निहारसे रहित बताकर कलहाहारका निषेध किया है । सत्रप्रामृत ( गा० २३-३६ ) में श्रीको प्रव्रज्यान्नि निषेध करके श्रीमुक्तिका निरास किया है । कुन्दकुन्दके इस मूलमार्गका दार्शनिकरूप हम प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंमें केवलिकलहाहारवाद तथा श्रीमुक्तिवादके रूपमें पाते हैं । यद्यपि शाकटायनने अपने केवलिमुक्ति और श्रीमुक्ति प्रकरणोंमें दिगम्बरोंकी मान्यताका विस्तृत खंडन किया है, जिससे ज्ञात होता है कि शाकटायनके सामने दिगम्बराचार्योंका उक्त सिद्धान्तद्वयका समर्थक विकसित साहित्य रहा है । पर आज हमारे सामने प्रभाचन्द्रके ग्रन्थ ही इन दोनों मान्यताओंके समर्थनरूपमें समुपस्थित हैं । आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुदचन्द्रमें प्रवचनसारकी ‘जियहु य मरहु य’ गाथां, भावपाहुडकी ‘एगो मे संस्तदो’

गाथा, तथा प्रा० सिद्धमक्तिकी 'पुर्वैदं वेदन्ता' गाथा उद्धृत की है । प्राकृत दशमफिर्यो भी कुन्दकुन्दाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं ।

समन्तभद्र और प्रभाचन्द्र-आद्यस्तुतिकार स्वामि समन्तभद्राचार्यके बृहत्संख्यम्भूस्तोत्र, आत्ममीमांसा, युक्त्यनुशासन आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । इनका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दी माना जाता है । किन्हीं विद्वानोंका विचार है कि इनका समय विक्रमकी पाँचवीं या छठीवीं शताब्दी होना चाहिए । प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुमचन्द्रमें बृहत्संख्यम्भूस्तोत्रसे "अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः" "मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्" "तदेव च स्याज्ज तदेव" इत्यादि श्लोक उद्धृत किए हैं ।

आ० विद्यानन्दने आत्मपरीक्षाका उपसंहार करते हुए यह श्लोक लिखा है कि—

"श्रीमत्तत्त्वार्थशास्त्राद्भुतसलिलनिधेरिद्वरजोद्भवस्य

प्रोत्थानारम्भकाले सकलमलमिदे शास्त्रकारैः कृतं यत् ।

स्तोत्रं तीर्थोपमानं प्रथितपृथुपयं स्वामिमीमांसितं तत्

विद्यानन्दैः स्वशक्त्या कथमपि कथितं सत्यवाक्यार्थसिद्धौ ॥ १२३ ॥"

अर्थात् तत्त्वार्थशास्त्ररूपी अद्भुत समुद्रसे धीतरजोंके उद्भवके प्रोत्थानारम्भ-काल-प्रारम्भिक समयमें, शास्त्रकारने, पापोंका नाश करनेके लिए, मोक्षके पथको बतानेवाला, तीर्थस्वरूप जो स्तवन किया था और जिस स्तवनकी स्वामीने भीमांसा की है, उसीका विद्यानन्दने अपनी स्वल्पशक्तिके अनुसार सत्यवाक्य और सत्यार्थकी सिद्धिके लिए विवेचन किया है । अथवा, जो धीतरजों के उद्भव-उत्पत्ति का स्थान है उस अद्भुत सलिलनिधि के समान तत्त्वार्थशास्त्र के प्रोत्थानारम्भकाल-उत्पत्तिका निमित्त बताते समय या प्रोत्थान-उत्थानिका भूमिका बाँधने के प्रारम्भिक समय में शास्त्रकारने जो मंगलस्तोत्र रचा और जिस स्तोत्र में वर्णित आत्मकी स्वामीने भीमांसा की उसीकी मैं (विद्यानन्द) परीक्षा कर रहा हूँ ।

वे इस श्लोकमें स्पष्ट सूचित करते हैं कि स्वामी समन्तभद्रने 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्' मंगलश्लोकमें वर्णित जिस आत्मकी भीमांसा की है उसी आत्मकी मैंने परीक्षा की है । वह मंगलस्तोत्र तत्त्वार्थशास्त्ररूपी समुद्रसे धीतरजोंके उद्भवके प्रारम्भिक समयमें या तत्त्वार्थशास्त्र की उत्पत्तिका निमित्त बताते समय शास्त्रकारने बनाया था । यह तत्त्वार्थशास्त्र यदि तत्त्वार्थसूत्र है तो उसका मथन करके रजोंके निकालनेवाले या उसकी उत्थानिका बाँधनेवाले-उसकी उत्पत्ति का निमित्त बतानेवाले आचार्य पूज्यपाद हैं । यह 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' श्लोक स्वयं सूत्रकारका तो नहीं मालूम होता; क्योंकि पूज्यपाद, भट्टाकलङ्कदेव और विद्यानन्दने सर्ववार्थसिद्धि, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकमें इसका व्याख्यान नहीं किया है । यदि विद्यानन्द इसे सूत्रकारकृत ही मानते होते तो वे अवश्य

ही श्लोकवार्तिकमें उसका व्याख्यान करते । परन्तु यही विद्यानन्द आप्तपरीक्षा (पृ० ३) के प्रारम्भमें इसी श्लोकको सूत्रकारकृत भी लिखते हैं । यथा—

“किं पुनस्तत्परमेष्ठिनो गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ सूत्रकाराः प्राहुरिति निगद्यते—मोक्षमार्गस्य नेतारं...” इस पंक्तिमें यही श्लोक सूत्रकारकृत कहा गया है । किन्तु विद्यानन्दकी ऋलीका ध्यानसे समीक्षण करने पर यह स्पष्टरूपसे विदित हो जाता है कि वे अपने ग्रन्थोंमें किसी भी पूर्वाचार्यको सूत्रकार और किसी भी पूर्वग्रन्थको सूत्र लिखते हैं । तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (पृ० १८४) में वे अकलङ्कदेवका सूत्रकार शब्दसे तथा राजवार्तिकस्य सूत्र शब्दसे उल्लेख करते हैं—“तेन इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षमतीतव्यभिचारं साकारग्रहणम्” इत्येतत्सूत्रोपात्तमुक्तं भवति । ततः, प्रत्यक्षलक्षणं प्राहुः स्पष्टं साकारमजसा । द्रव्यपर्यायसामान्यविशेषार्थात्मवेदनम् ॥ ४ ॥ सूत्रकारा इति ज्ञेयमाकलङ्कावबोधने” इस अवतरणमें ‘इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्ष’ वाक्य राजवार्तिक (पृ० ३८) का है तथा ‘प्रत्यक्षलक्षणं’ श्लोक न्यायविनिश्चय (श्लो० ३) का है । अतः मात्र सूत्रकारके नामसे ‘मोक्षमार्गस्य नेतारं’ श्लोकको उद्धृत करनेके कारण हम ‘विद्यानन्दका प्रकाश इसे मूल सूत्रकारकृत माननेकी ओर है’ यह नहीं समझ सकते । अन्यथा वे इसका व्याख्यान श्लोकवार्तिकमें अवश्य करते । अतः इस पंक्तिमें सूत्रकार शब्दसे भी इन्द्रियोंके उद्भवकर्ता या तत्त्वार्थशास्त्र की भूमिका बोधनेवाले आचार्यका ही ग्रहण करना चाहिए । आप्तपरीक्षा के

“इति तत्त्वार्थशास्त्रादौ मुनीन्द्रस्तोत्रगोचरा ।

प्रणीताप्तपरीक्षेयं कुविवादनिवृत्तये ॥”

इस अनुष्टुप् श्लोक में तत्त्वार्थशास्त्रादौ पद ‘प्रोत्थानारम्भकाले’ पद के अर्थमें ही प्रयुक्त हुआ है । ३२ अक्षरवाले इस संक्षिप्त श्लोक में इससे अधिक की गुंजाइश ही नहीं है । ‘मोक्षमार्गस्य नेतारं’ श्लोक वस्तुतः सर्वार्थसिद्धि का ही मंगलश्लोक है । यदि पूज्यपाद स्वयं भी इसे सूत्रकारकृत मानते होते तो उनके द्वारा उसका व्याख्यान सर्वार्थसिद्धि में अवश्य किया जाता । और जब समन्तभद्रने इसी श्लोकके ऊपर अपनी आप्तमीमांसा बनाई है, जैसा कि विद्यानन्दका उल्लेख है, तो समन्तभद्र कमसे कम पूज्यपादके समकक्षीन तो सिद्ध होते ही हैं । पं० सुखलालजी का यह तर्क कि—“यदि समन्तभद्र पूज्यपादके प्राक्कालीन होते तो वे अपने इस युगप्रधान आचार्य की आप्तमीमांसा जैसी अद्भुती कृति का उल्लेख

१ आ० विद्यानन्द अष्टसप्तती के मंगलश्लोक में भी लिखते हैं कि—

“शास्त्रावताररचितस्तुतिगोचराप्तमीमांसितं कृतिरलङ्कियते मयाऽस्य ।”

अर्थात्—शास्त्र तत्त्वार्थशास्त्रके अवतार—अवतरणिका—भूमिका के समय रची गई स्तुति में वर्णित आप्त की भीमांसा करनेवाले आप्तमीमांसा नामक ग्रन्थका व्याख्यान किया जाता है । यहाँ ‘शास्त्रावताररचितस्तुति’ पद आप्तपरीक्षा के ‘प्रोत्थानारम्भकाल’ पद का समानार्थक है ।



किए बिना नहीं रहते” हृदयको छगता है । यद्यपि ऐसे नकारात्मक प्रमाणों से किसी आचार्यके समयका खतत्र भावसे सार्धन बाधन नहीं होता फिर भी विचार की एक स्पष्ट कोटि तो उपस्थित हो ही जाती है । और जब विद्यानन्द के उल्लेखों के प्रकाश में इसका विचार करते हैं तब यह पर्याप्त पुष्ट मालूम होता है । समन्तभद्रकी आत्ममीमांसाके चौथे परिच्छेदमें वर्णित “विरूपकार्या-रम्भाय” आदि कारिकाओंके पूर्वपक्षों की समीक्षा करनेसे ज्ञात होता है कि समन्तभद्रके सामने संभवतः दिभागके ग्रन्थ भी रहे हैं । बौद्धदर्शन की इतनी स्पष्ट विचारधाराकी सम्भावना दिभागसे पहिले नहीं की जा सकती ।

हेतुविन्दुके अर्चटकृत विवरणमें समन्तभद्रकी आत्ममीमांसाकी “द्रव्यपर्याय-ओरेक्यं तयोरव्यतिरेकतः” कारिकाके खंडन करनेवाले ३०-३५ श्लोक उद्धृत किए गए हैं । ये श्लोक हुवेकमित्र की हेतुविन्दुटीकानुटीका के लेखानुसार खर्च अर्चटने ही बनाए हैं । अर्चटका समय ९ वीं सदी है । कुमारिके मीमांसा-श्लोकवार्तिकमें समन्तभद्रकी “घटमौलिसुवर्णार्थी” कारिकासे समानता रखनेवाले निम्न श्लोक पाये जाते हैं—

“वर्धमानकमत्रे च रुचकः क्रियते यदा ।

तदा पूर्वार्थिनः शोकः प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिनः ॥

हेमार्थिनस्तु माष्यस्थं तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम् ।

न नाशेन विना शोको नोत्पादेन विना दुःखम् ॥

स्थित्या विना न माष्यस्थं तेन सामान्यनित्यता ॥”

[ मी० श्लो० पृ० ६१९ ]

कुमारिका समय ईसाकी ७ वीं सदी है । अतः समन्तभद्रकी उत्तरावधि सातवीं सदी मानी जा सकती है । पूर्ववधिका नियामक प्रमाण दिभागका समय होना चाहिए । इस तरह समन्तभद्रका समय इसकी ५ वीं और सातवीं शताब्दीका मध्यभाग अधिक संभव है । यदि विद्यानन्दके उल्लेखमें ऐतिहासिक दृष्टि भी निविष्ट है तो समन्तभद्रकी स्थिति पूज्यपादके बाद या समसमय में होनी चाहिए ।

पूज्यपाद के जैनेन्द्रव्याकरण के अभयनन्दिसम्मत प्राचीनसूत्रपाठ में “चतुष्टयं समन्तभद्रस्य” सूत्र पाया जाता है । इस सूत्र में यदि इन्हीं समन्तभद्र का निर्देश है तो इसका निर्वाह समन्तभद्रको पूज्यपाद का समकालीनबुद्ध मानकर ही किया जा सकता है ।

पूज्यपाद और प्रभाचन्द्र—आ० देवनन्दिका अपर नाम पूज्यपाद था । ये विक्रम की पाचवी और छठी सदीके ख्यात आचार्य थे । आ० प्रभाचन्द्रने पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धि पर तर्तार्यवृत्तिपदविवरण नामकी लघुवृत्ति लिखी है । इसके सिवाय इन्होंने जैनेन्द्रव्याकरण पर शब्दाम्भोजभास्कर नामका व्यास

१. देखो अनेकान्त वर्ष १ पृ० १९७। प्रेमी जी सूचित करते हैं कि इसकी प्रति गंवईके थैलक पञ्चालाखसरस्वती मन्चमें मौजूद है ।

लिखा है। पूज्यपादकी संस्कृत सिद्धमन्त्रिसे 'सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः' पद भी न्यायकुमुदचन्द्रमे प्रमाणरूपसे उद्धृत किया गया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रमे जहां कहीं भी व्याकरणके सूत्रोंके उद्धरण देनेकी आवश्यकता हुई है वहां प्रायः जैनेन्द्रव्याकरणके अभयनन्दिसम्मत सूत्रपाठसेही सूत्र उद्धृत किए गए हैं।

**धनञ्जय और प्रभाचन्द्र**—‘संस्कृतसाहित्यका सक्षिप्त इतिहास’ के लेखक-द्वयने धनञ्जयका समय ई० १२ वें शतकका मध्य निर्धारित किया है (पृ० १७३)। और अपने इस मतकी पुष्टिके लिए के० बी० पाठक महाशयका यह मत भी उद्धृत किया है कि—“धनञ्जयने द्विसन्धान महाकाव्यकी रचना ई० ११२३ और ११४० के मध्यमें की है।” डॉ० पाठक और उक्त इतिहास के लेखकद्वय अन्य कई जैन कवियोंके समय निर्धारणकी भांति धनञ्जयके समयमें भी भ्रान्ति कर बैठे हैं। क्योंकि विचार करनेसे धनञ्जयका समय ईसाकी ८ वीं शतीका अन्त और नवीका प्रारम्भिक भाग सिद्ध होता है—

१ जल्हण ( ई० द्वादशशतक ) विरचित सुक्तिसुक्तावलीमें राजशेखरके नामसे धनञ्जयकी प्रशंसामें निम्न लिखित पद्य उद्धृत है—

“द्विसन्धाने निपुणता सता चक्रे धनञ्जय ।

यया जार्त फल तस्य स तां चक्रे धनञ्जय ॥”

इस पद्यमें राजशेखरने धनञ्जयके द्विसन्धानकाव्यका मनोमुरधकर सरणिसे निर्देश किया है। संस्कृत साहित्यके इतिहासके लेखकद्वय लिखते हैं कि—“यह राजशेखर प्रबन्धकोशका कर्ता जैन राजशेखर है। यह राजशेखर ई० ११४८ में विद्यमान था।” आश्चर्य है कि १२ वीं शताब्दीके विद्वान् जल्हणके द्वारा विरचित ग्रन्थमें उल्लिखित होने वाले राजशेखरको लेखकद्वय १४ वीं शताब्दीका जैन राजशेखर बताते हैं। यह तो मोटी बात है कि १२ वीं शताब्दीके जल्हणने १४ वीं शताब्दीके जैन राजशेखरका उल्लेख न करके १० वीं शताब्दीके प्रसिद्ध काव्यमीमांसाकार राजशेखरका ही उल्लेख किया है। इस उल्लेखसे धनञ्जयका समय ९ वीं शताब्दीके अन्तिम भागके बाद तो किसी भी तरह नहीं जाता। ई० ९६० में विरचित सोमदेवके यशस्तिलकचम्पूमें राजशेखरका उल्लेख होनेसे इनका समय करीब ई० ९१० ठहरता है।

२ वादिराजसूरि अपने पार्श्वनाथचरित (पृ० ४) में धनञ्जयकी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—

“अनेकमेदसन्धानाः खनन्तो हृदये सुहुः ।

बाणा धनञ्जयान्मुक्ताः कर्णसेव प्रिया कथम् ॥”

- इस स्थिष्ट श्लोकमें “अनेकमेदसन्धानाः” पदसे धनञ्जयके ‘द्विसन्धानकाव्य’ का उल्लेख बड़ी कुशलतासे किया गया है। वादिराजसूरिने पार्श्वनाथचरित ९४७ श्ल

( ई० १०२५ ) में समाप्त किया था । अतः धनञ्जयका समय ई० १० वीं शताब्दीके बाद तो किसी भी तरह नहीं जा सकता ।

३ आ० वीरसेनने अपनी ध्वलाटीका ( अमरावतीकी प्रति पृ० ३८७ ) में धनञ्जयकी अनेकार्थनाममालाका निम्न लिखित श्लोक उद्धृत किया है—

“हेतावेवं प्रकारादौ व्यवच्छेदे निपर्यये ।

प्राबुर्भावे सप्तातौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः ॥”

आ० वीरसेनने ध्वलाटीकाकी समाप्ति शक ७३८ ( ई० ८१९ ) में की थी । श्रीमान् प्रेमीजीने बनारसीविलास की उत्थानिका में लिखा है कि “ध्वन्या-लोक के कर्ता आनन्दवर्धन, हरचरित्र के कर्ता रत्नाकर और अल्हण ने धनञ्जय की स्तुति की है ।” संस्कृत साहित्य के संक्षिप्त इतिहास में आनन्दवर्धन का समय ई० ८४०-७०, एवं रत्नाकर का समय ई० ८५० तक निर्धारित किया है । अतः धनञ्जयका समय ८ वीं शताब्दीका उत्तरभाग और नवीं शताब्दीका पूर्व-भाग सुनिश्चित होता है । धनञ्जयने अपनी नाममालाके—

“प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।

धनञ्जयकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥”

इस श्लोकमें अकलङ्कदेवका नाम लिया है । अकलङ्कदेव ईसाकी ८ वीं सदीके आचार्य हैं अतः धनञ्जयका समय ८ वीं सदीका उत्तरार्ध और नवींका पूर्वार्ध मानना सुसंगत है । आचार्य प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० ४०२ ) में धनञ्जयके द्विसन्धानकाव्यका उल्लेख किया है । न्यायकुमुदचन्द्रमें इसी स्थल पर द्विसन्धानकी जगह त्रिसन्धान नाम लिया गया है ।

रविभद्रशिष्य अनन्तवीर्य और प्रभाचन्द्र-रविभद्रपादोपजीवि अनन्तवीर्याचार्यकी सिद्धिविनिश्चयटीका समुपलब्ध है । वे अकलङ्कके प्रकरणोंके सल्लग्ना, विवेचयिता, व्याख्याता और मर्मज्ञ थे । प्रभाचन्द्रने इनकी उक्तियोंसे ही दुरवगाह अकलङ्कवाक्यका सुष्ठु अभ्यास और विवेचन किया था । प्रभाचन्द्र अनन्तवीर्यके प्रति अपनी कृतज्ञताका भाव न्यायकुमुदचन्द्रमें एकाधिक बार प्रदर्शित करते हैं । इनकी सिद्धिविनिश्चयटीका अकलङ्कवाक्यके टीकासाहित्यका शिरोरत्न है । उसमें सैकड़ों मतमतान्तरोंका उल्लेख करके उनका सविस्तर निरास किया गया है । इस टीकामें धर्मकीर्ति, अर्चेष्ट, धर्मोत्तर, प्रज्ञाकरणम्, आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध धर्मकीर्तिसाहित्यके व्याख्याकारोंके मत उनके ग्रन्थोंके लम्बे लम्बे अवतरण देकर उद्धृत किए गए हैं । यह टीका प्रभाचन्द्रके ग्रन्थों पर अपना विशिष्ट प्रभाव रखती है । शान्तिसूरिने अपनी जैनतर्कवार्तिकवृत्ति ( पृ० ९८ ) में ‘एकं अनन्तवीर्यादयः’ पदसे संभवतः इन्हीं अनन्तवीर्यके मतका उल्लेख किया है ।

विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र-आ० विद्यानन्दका जैनतार्किकोंमें अपना निविष्ट स्थान है। इनकी श्लोकार्थिक, अष्टसहस्री, आत्मपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, सत्यशासनपरीक्षा, युक्त्यनुशासनटीका आदि तार्किककृतियों इनके अतुल्य तल्लक्षणी पाण्डित्य और सर्वतोमुख अध्ययन का पदे पदे अनुभव कराती हैं। इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थमें अपना समय आदि नहीं दिया है। आ० प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र दोनों ही प्रमुखग्रन्थों पर विद्यानन्दकी कृतियोंकी सुनिश्चित अमिट छाप है। प्रभाचन्द्रको विद्यानन्दके ग्रन्थोंका अनूठा अभ्यास था। उनकी शब्दरचना भी विद्यानन्दकी शब्दभंगीसे पूरी तरह प्रभावित है। प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्डके प्रथमपरिच्छेदके अन्तमें-

“विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतो नित्यं मनोनन्दनम्”

इस श्लोकमें छिष्टरूपसे विद्यानन्दका नाम लिया है। प्रमेयकमलमार्तण्डमें पत्रपरीक्षासे पत्रका लक्षण तथा अन्य एक श्लोक भी उद्धृत किया गया है। अतः विद्यानन्दके ग्रन्थ प्रभाचन्द्रके लिए उपजीव्य निर्विवादरूपसे सिद्ध हो जाते हैं।

आ० विद्यानन्द अपने आत्मपरीक्षा आदि ग्रन्थोंमें ‘सत्यवाक्यार्थसिद्धौ’ ‘सत्यवाक्याधिपाः’ विशेषणसे तत्कालीन राजाका नाम भी प्रचुरान्तरसे सूचित करते हैं। बाबू कामताप्रसादजी (जैनसिद्धान्तमास्कर भाग ३ किरण ३ पृ० ८७) लिखते हैं कि-“बहुत संभव है कि उन्होंने गंगवादि प्रदेश में बहुवास किया हो, क्योंकि गंगवादि प्रदेशके राजा राजमल्लने भी गंगवंशमें होनेवाले राजाओंमें सर्वप्रथम ‘सत्यवाक्य’ उपाधि या अपरनाम धारण किया था। उपर्युक्त श्लोकोंमें यह संभव है कि विद्यानन्दजीने अपने समयके इस राजाके ‘सत्यवाक्याधिप’ नामको ध्वनित किया हो। युक्त्यनुशासनालंकारमें उपर्युक्त श्लोक प्रदानि रूप है और उसमें रचयिता द्वारा अपना नाम और समय सूचित होना ही चाहिए। समयके लिए तत्कालीन राजाका नाम ध्वनित करना पर्याप्त है। राजमल्ल सत्यवाक्य विजयादित्यका लड़का था और वह सन् ८१६ के लगभग राज्याधिकारी हुआ था। उनका समय भी विद्यानन्दके अनुकूल है। युक्त्यनुशासनालंकारके अन्तिम श्लोकके “प्रोक्तं युक्त्यनुशासनं विजयिभिः श्रीसत्यवाक्याधिपैः” इस अंशमें सत्यवाक्याधिप और विजय दोनों शब्द हैं, जिनसे गंगराज सत्यवाक्य और उसके पिता विजयादित्यका नाम ध्वनित होता है।” इस अन्तरणये यह सुनिश्चित हो जाता है कि विद्यानन्दने अपनी कृतियों राजमल्ल मल्लनाथ (८१६ ई०) के राज्यकालमें बनाई हैं। आ० विद्यानन्दने सर्वप्रथम अपना तत्त्वार्थश्लोकार्थिक ग्रन्थ बनाया है, तदुपरान्त अष्टसहस्री और विद्यानन्दमहोदय, इसके अनन्तर अपने आत्मपरीक्षा आदि परीक्षान्तनामवाले छपु प्रकरण तथा युक्त्यनुशासनटीका; क्योंकि अष्टसहस्रीमें तत्त्वार्थश्लोकार्थिकका, तथा आत्मपरीक्षा आदिमें अष्टसहस्री और विद्यानन्दमहोदयका उल्लेख पाया जाता

है। विद्यानन्दने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक और अष्टसहस्रीमें, जो उनकी भाष्य रचनाएँ हैं, 'सत्यवाक्य' नाम नहीं लिया है, पर आप्तपरीक्षा आदिमें 'सत्यवाक्य' नाम लिया है। अतः मालूम होता है कि विद्यानन्द श्लोकवार्तिक और अष्टसहस्रीको सत्यवाक्यके राज्यसिंहासनासीन होनेके पहिले ही बना चुके होंगे। विद्यानन्दके ग्रन्थोंमें 'मंडनमिश्रके मतका खंडन है और अष्टसहस्रीमें सुरेश्वरके सम्बन्धवार्तिकसे ३।४ करिकाएँ भी उद्धृत की गई हैं। मंडनमिश्र और सुरेश्वरका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका पूर्वभाग माना जाता है। अतः विद्यानन्दका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध और नवींका पूर्वार्ध मानना सयुक्तिक मालूम होता है। प्रभाचन्द्रके सामने इनकी समस्त रचनाएँ रही हैं। तत्त्वोपप्लववादके खंडन तो विद्यानन्दकी अष्टसहस्रीमें ही विस्तारसे मिलता है, जिसे प्रभाचन्द्रने अपने ग्रन्थोंमें स्थान दिया है। इसी तरह अष्टसहस्री और श्लोकवार्तिकमें पाई जानेवाली भावना विधि नियोगके विचारकी दुरवगाह चर्चा प्रभाचन्द्रके न्यायकुमुदचन्द्रमें प्रसन्नरूपसे अवतीर्ण हुई है। आ० विद्यानन्दने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (पृ० २०६) में न्यायदर्शनके 'पूर्ववत्' आदि अनुमानसूत्रका निरास करते समय केवल भाष्यकार और वार्तिककारका ही मत पूर्वपक्ष रूपसे उपस्थित किया है। वे न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकाकारके अभिप्रायको अपने पूर्वपक्षमें शामिल नहीं करते। बाचस्पतिमिश्रने तात्पर्यटीका ई० ८४१ के लगभग बनाई थी। इससे भी विद्यानन्दके उक्त समयकी पुष्टि होती है। यदि विद्यानन्दका ग्रन्थरचनाकाल ई० ८४१ के बाद होता तो वे तात्पर्यटीका उल्लेख किये बिना न रहते।

अनन्तकीर्ति और प्रभाचन्द्र-लघुसर्वज्ञयादि संग्रहमें अनन्तकीर्तिल्लुप्तसर्वज्ञसिद्धि और बृहत्सर्वज्ञसिद्धि प्रकरण मुद्रित हैं। लघुसर्वज्ञयादिसंग्रहकी प्रस्तावनामें पं० नाथूरामजी त्रेनीने इन अनन्तकीर्तिके समयकी उत्तरावधि विक्रम संवत् १०८२ के पहिले निर्धारित की है, और इस समयके समर्थनमें वादिराजके पार्श्वनाथचरितका यह श्लोक उद्धृत किया है—

“आत्मनैवाद्वितीयेन जीवसिद्धिं निबध्नता ।

अनन्तकीर्तिना भुक्तिरात्रिमार्गेण लब्धयते ॥”

वादिराजने पार्श्वनाथचरित की रचना विक्रम संवत् १०८२ में की थी। संभव तो यह है कि इन्हीं अनन्तकीर्तिने जीवसिद्धिकी तरह लघुसर्वज्ञसिद्धि और बृहत्सर्वज्ञसिद्धि ग्रन्थ बनाये हों। सिद्धिविनिश्चयटीकामें अनन्तवीर्यने भी एक अनन्तकीर्तिका उल्लेख किया है। यदि पार्श्वनाथ चरितमें स्मृत अनन्तकीर्ति और सिद्धिविनिश्चयटीकामें उल्लिखित अनन्तकीर्ति एक ही व्यक्ति हैं तो मानना होगा कि इनका समय प्रभाचन्द्रके समयसे पहिले है, क्योंकि प्रभाचन्द्रने अपने ग्रन्थोंमें सिद्धिविनिश्चयटीकाकार अनन्तवीर्यका सबहुमान स्मरण किया है। अस्तु। अनन्तकीर्तिके लघुसर्वज्ञसिद्धि तथा बृहत्सर्वज्ञसिद्धि ग्रन्थोंका और प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रके सर्वज्ञसिद्धि प्रकरणोंका आभ्यन्तर

परीक्षण यह स्पष्ट बताता है कि इन ग्रन्थोंमें एकका दूसरेके ऊपर पूरा पूरा प्रभाव है ।

बृहत्सर्वजसिद्धि—( पृ० १८१ से २०४ तक ) के अन्तिम पृष्ठ तो कुछ थोड़ेसे हेरफेरसे न्यायकुसुदचन्द्र ( पृ० ८३८ से ८४७ ) के मुक्तिवाद प्रकरणके साथ अपूर्व सादृश्य रखते हैं । इन्हें पढ़कर कोई भी साधारण व्यक्ति कह सकता है कि इन दोनोंमेंसे किसी एकने दूसरेका पुस्तक सामने रखकर अनुसरण किया है । मेरा तो यह विश्वास है कि अनन्तकीर्तितकृत बृहत् सर्वजसिद्धिका ही न्याय-कुसुदचन्द्र पर प्रभाव है । उदाहरणार्थ—

“किन्तु अजो जन. दु.खानुपकमुखसाधनमपश्यन् आत्मज्ञेहात् सासारिकेषु दुःखानुपकमुखसाधनेषु प्रवर्तते । हिताहितविवेकज्ञस्तु तादालिकमुखसाधनं क्यादिकं परित्यज्य आत्मज्ञेहात् आत्यन्तिकमुखसाधने मुक्तिमार्गे प्रवर्तते । यथा पथ्यापथ्यविवेकमजानन्नातुर. तादालिकमुखसाधनं व्याविविचिद्विनिमित्तं दध्यादि-कमुपादत्ते, पथ्यापथ्यविवेकज्ञस्तु तत्परित्यज्य पेयादी आरोग्यसाधने प्रवर्तते । उक्तय-तदालमुखसङ्गेषु भावेज्जोऽनुरज्यते । हितमेवानुरूप्यन्ते प्रपरीक्ष्य परी-क्षकाः ॥”—न्यायकुसुदचन्द्र पृ० ८४२ ।

“किन्तु तज्जो जनो दु.खानुपकमुखसाधनमपश्यन् आत्मज्ञेहान् संसारान्त-पतिवेषु दु.खानुपकमुखसाधनेषु प्रवर्तते । हिताहितविवेकज्ञस्तु तादालिकमुख-साधनं क्यादिकं परित्यज्य आत्मज्ञेहात् आत्यन्तिकमुखसाधने मुक्तिमार्गे प्रवर्तते । यथा पथ्यापथ्यविवेकमजानन्नातुर तादालिकमुखसाधनं व्याविविचिद्विनिमित्तं दध्यादिकमुपादत्ते, पथ्यापथ्यविवेकज्ञस्तु आतुरस्तादालिकमुखसाधनं दध्यादिकं परित्यज्य पेयादावारोग्यसाधने प्रवर्तते । तथा च कस्यचिद्विदुषः सुभाषितम्—तदालमुखसङ्गेषु भावेज्जोऽनुरज्यते । हितमेवानुरूप्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः ॥”—बृहत्सर्वजसिद्धि पृ० १८१ ।

दस तरह यह समूचा ही प्रकरण इसी प्रकारके गन्दानुसरणसे ओत-जोत है ।

शाकटायन और प्रभाचन्द्र—राष्ट्रकूटवंशीय राजा अमोघवर्षके राज्यकाल ( ईस्वी ८१४-८७७ ) में शाकटायन नामके प्रसिद्ध व्याकरण हो गए हैं । ये दायनीय संपके आचार्य थे । दायनीयसंघमा बाह्य आचार बहुत कुछ दिगम्बरोंसे मिलता जुलता था । ये नग्न रहते थे । श्वेताम्बर आगमोंसे आदरकी दृष्टिसे देरते थे । आ० शाकटायनने अमोघवर्षके नामसे अपने शाकटायनव्याकरण पर ‘अनोपपत्ति’ नामकी टीका बनाई थी । अत इनका समय भी लगभग ई०

१ देग्रे-५० नाथुरामभेमीका ‘दायनीय सारिलकी खोज’ ( अनेकाल वर्ष ३ निरुग १ ) तथा प्रो० ए० एन्. ए. उनाय्यायका ‘दायनीयसंघ’ ( जैनदर्शन वर्ष ४ अंक ७ ) देख ।

८०० से ८७५ तक समझना चाहिए। यापनीयसंघके अनुयायी दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंकी कुछ कुछ बातोंको स्वीकार करते थे। एक तरहसे यह संघ दोनों सम्प्रदायोंके जोड़नेके लिए मंखलाका कार्य करता था। आचार्य मलयगिरिने अपनी नन्दीसूत्रकी टीका (पृ० १५) में शाकटायनको 'यापनीय-यतिप्रामाप्रणी' लिखा है—“शाकटायनोऽपि यापनीययतिप्रामाप्रणी. खोपज्ञगब्दानु-शासनवृत्तौ”। शाकटायन आचार्यने अपनी अमोघवृत्तिमें छेदसूत्र निर्युक्ति कालि-कसूत्र आदि श्वे० ग्रन्थोंका बड़े आदरसे उल्लेख किया है। आचार्य शाकटायनने केवलिकबलाहार तथा ज्ञीमुक्तिके समर्थनके लिए 'ज्ञीमुक्ति और केवलिभुक्ति नामके दो प्रकरण बनाए हैं'। दिगम्बर और श्वेताम्बरोंके परस्पर बिलगावमें ये दोनों सिद्धान्त ही मुख्य माने जाते हैं। यों तो दिगम्बर ग्रन्थोंमें कुन्दकुन्दाचार्य पूज्यपाद आदिके ग्रन्थोंमें ज्ञीमुक्ति और केवलिभुक्तिका स्वरूपसे निरसन किया गया है, परन्तु इन्हीं विषयोंके पूर्वोत्तरपक्ष स्थापित करके शास्त्रार्थका रूप आ० प्रभाचन्द्रने ही अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुमद्वन्द्वमें दिया है। श्वेताम्बरोंके तर्कसाहित्यमें हम सर्वप्रथम हरिभद्रसूरिकी ललितविस्तारमें ज्ञीमुक्तिका संक्षिप्त समर्थन देखते हैं, परन्तु इन विषयोंको शास्त्रार्थका रूप सन्मतिटीकाकार अमयदेव, उत्तराध्ययन पाइयटीकाके रचयिता शान्तिसूरि, तथा स्याद्वादरत्नाकर-कार बादिदेवसूरिने ही दिया है। पीछे तो यशोमित्र उपाध्याय, तथा मेघवि-जयगणि आदिने पर्याप्त साम्प्रदायिक रूपसे इनका विस्तार किया है। इन विवादग्रस्त विषयोंपर लिखे गए अमयपक्षीय साहित्यका ऐतिहासिक तथा तारिखक-दृष्टिसे सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ज्ञीमुक्ति और केवलिभुक्ति विषयोंके समर्थनका प्रारम्भ श्वेताम्बर आचार्योंकी अपेक्ष यापनीयसंघ-वालोंने ही पहिले तथा दिलचस्पी के साथ किया है। इन विषयोंको शास्त्रार्थका रूप देनेवाले प्रभाचन्द्र, अमयदेव, तथा शान्तिसूरि करीब करीब समकालीन तथा समदेशीय थे। परन्तु इन आचार्योंने अपने पक्षके समर्थनसे एक दूसरेका उल्लेख या एक दूसरेकी दलीलोंका साक्षात् खंडन नहीं किया। प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमद्वन्द्वमें ज्ञीमुक्ति और केवलिभुक्तिका जो विस्तृत पूर्वपक्ष लिखा गया है वह किसी श्वेताम्बर आचार्यके ग्रन्थका न होकर यापनीयाप्रणी शाक-टायनके केवलिभुक्ति और ज्ञीमुक्ति प्रकरणोंसे ही लिया गया है। इन ग्रन्थोंके उत्तरपक्षमें शाकटायनके उक्त दोनों प्रकरणोंकी एक एक दलीलका शब्दशः पूर्वपक्ष करके संयुक्तिक निरास किया गया है। इसी तरह अमयदेवकी सन्मतितर्कटीका, और शान्तिसूरिकी उत्तराध्ययन पाइयटीका और जैनतर्कवार्तिकमें शाकटायनके इन्हीं प्रकरणोंके आधारसे ही उक्त बातोंका समर्थन किया गया है। हाँ, बादिदे-वसूरिके रत्नाकरमें इन मतभेदोंमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सामने सामने आते हैं। रत्नाकरमें प्रभाचन्द्रकी दलीलें पूर्वपक्ष रूपमें पाई जाती हैं। तालयें यह कि-प्रभाचन्द्रने ज्ञीमुक्तिवाद तथा केवलिकबलाहारवादमें श्वेताम्बर आचा-

जैकी बजाय शाकटायनके केवलमुक्ति और त्रीमुक्ति प्रकरणोंको ही अपने खंडनका प्रधान लक्ष्य बनाया है । न्यायकुमुदचन्द्र ( पृ० ८६९ ) के पूर्व-पक्षमें शाकटायनके त्रीमुक्ति प्रकरणकी यह कारिका भी प्रमाण रूपसे उद्धृत की गई है—

“गार्हस्थ्येऽपि मुसत्त्वा विख्याता शीलवत्तया जगति ।

सीतादयः कथं तास्तपसि विहीला विसत्त्वाश्च ॥” [ त्रीमु० श्लो० ३१ ]

अभयनन्दि और प्रभाचन्द्र-जैनेन्द्रव्याकरणपर आ० अभयनन्दिकृत महावृत्ति उपलब्ध है । इसी महावृत्तिके आधारसे प्रभाचन्द्रने ‘शब्दाम्भोजभा-स्कर’ नामका जैनेन्द्रव्याकरणका महान्यास बनाया है । पं० नाथूरामजी प्रेमीने अपने ‘जैनेन्द्रव्याकरण और आचार्य देवनन्दी’ नामक लेखमें जैनेन्द्रव्याकरणके प्रचलित दो सूत्र पाठोंमेंसे अभयनन्दिसम्मत सूत्रपाठको ही प्राचीन और पूज्य-पादकृत सिद्ध किया है । इसी पुरातनसूत्रपाठ पर प्रभाचन्द्रने अपना न्यास बनाया है । प्रेमीजीने अपने उक्त गवेषणापूर्ण लेखमें महावृत्तिकार अभयनन्दिको चन्द्रप्रभचरित्रकार वीरनन्दिका गुरु बताया है और उनका समय विक्रमकी ग्यार-हवीं शताब्दीका पूर्वभाग निर्धारित किया है । आ० नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तिके गुरु भी यही अभयनन्दि थे । गोम्मटसार कर्मकाण्ड ( गा० ४३६ ) की निम्न-लिखित गाथासे भी यही बात पुष्ट होती है—

“जस्स य पायपसाएण्णंतससारजलहिमुत्तिण्णो ।

वीरिदणंदिचच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥”

इस गाथासे तथा कर्मकाण्डकी गाथा नं० ७८४, ८९६ तथा लब्धिसार गा० ६४८ से यह सुनिश्चित हो जाता है कि वीरनन्दिके गुरु अभयनन्दि ही नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तिके गुरु थे । आ० नेमिचन्द्रने तो वीरनन्दि, इन्द्रनन्दि और इन्द्रनन्दिके शिष्य कनकनन्दि तकका गुरुरूपसे स्मरण किया है । इन सब उल्लेखों से ज्ञात होता है कि अभयनन्दि, उनके शिष्य वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि, तथा इन्द्रनन्दिके शिष्य कनकनन्दि सभी प्रायः नेमिचन्द्रके समकालीन वृद्ध थे ।

बादिराजसूरिने अपने पार्थचरितमें चन्द्रप्रभचरित्रकार वीरनन्दिका स्मरण किया है । पार्थचरित शकसंवत् ९४७, ई० १०२५ में पूर्ण हुआ था । अतः वीरनन्दिकी उत्तरावधि ई० १०२५ तो सुनिश्चित है । नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्र-वर्तनि गोम्मटसार ग्रन्थ चामुण्डरायके सम्बोधनार्थ बनाया था । चामुण्डराय गंगवंशीय महाराज मारसिद्ध द्वितीय ( ९७५ ई० ) तथा उनके उत्तराधिरासी राजमाल द्वितीयके मन्त्री थे । चामुण्डरायने श्रवणवेल्लुल्लस्थ बाहुबलि गोम्मटे-शरफी मूर्तिकी प्रतिष्ठा ई० ९८१ में करवाई थी, तथा अपना चामुण्डपुराण

१ इसका परिचय ‘प्रभाचन्द्रके ग्रन्थ’ शीर्षक स्तम्भमें देरना चाहिए ।

२ तैल सादिलसशोधक भाग १ अंक २ ।

३ देखो त्रिलोकान्तर की प्रस्तावना ।



ई० ९७८ में समाप्त किया था। अतः आ० नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका समय ई० ९८० के आसपास सुनिश्चित किया जा सकता है। और लगभग यही समय आचार्य अमयनन्दि आदिका होना चाहिए। इन्होंने अपनी महावृत्ति (लिखित पृ० २२१) में मर्तुहरि (ई० ६५०) की वाक्यपदीयका उल्लेख किया है। पृ० ३९३ में माघ (ई० ७ वी सदी) काव्यसे 'सटाच्छटाभिज्ञ' श्लोक उद्धृत किया है। तथा ३।२।५५ की वृत्तिमें 'तत्त्वार्थवार्तिकमधीयते' प्रयोगसे अकलङ्कदेव (ई० ८ वी सदी) के तत्त्वार्थराजवार्तिकका उल्लेख किया है। अतः इनका समय ९ वीं शताब्दीसे पहिले तो नहीं ही है। यदि यही अमयनन्दि जैनचन्द्र महावृत्तिके रचयिता हैं तो कहना होगा कि उन्होंने ई० ९६० के लगभग अपनी महावृत्ति बनाई होगी। इसी महावृत्ति पर ई० १०६० के लगभग आ० प्रभाचन्द्रने अपना शब्दाम्भोजमास्कर न्यास बनाया है; क्योंकि इसकी रचना न्यायकुसुदचन्द्रके बाद की गई है और न्यायकुसुदचन्द्र जयसिंहदेव (राज्य १०५६ से) के राज्य के प्रारम्भकाल में बनाया गया है।

**मूलाचारकार और प्रभाचन्द्र**—मूलाचार ग्रन्थके कर्ताके विषयमें विद्वान् मतमेव रखते हैं। कोई इसे कुन्दकुन्दकृत कहते हैं तो कोई वट्टकैरिकृत। जो हो, पर इतना निश्चित है कि मूलाचारकी सभी गाथाएँ खरं उसके कर्ताने नहीं रची हैं। उसमें अनेकों ऐसी प्राचीन गाथाएँ हैं, जो कुन्दकुन्दके ग्रन्थोंमें, भगवती आराधनामें तथा आवश्यकनिर्गुक्ति, पिण्डनिर्गुक्ति और सम्मतितर्क आदि में भी पाई जाती हैं। संभव है कि गोम्मटसार की तरह यह भी एक संग्रह ग्रन्थ हो। ऐसे संग्रहग्रन्थोंमें प्राचीन गाथाओंके साथ कुछ संग्रहकाररचित गाथाएँ भी होती हैं। गोम्मटसारमें बहुभाग खरचित है जब कि मूलाचारमें खरचित गाथाओंका बहुभाग नहीं मालूम होता। आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ८४५) में "एगो मे सस्सदो" "संजोगमूलं जीवेन" ये दो गाथाएँ उद्धृत की हैं। ये गाथाएँ मूलाचारमें (२।४८, ४९) दर्ज हैं। इनमें पहिली गाथा कुन्दकुन्दके आवपाहुड तथा नियमसारमें भी पाई जाती है। इसी तरह प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ३३१) में "आचेलकुहेसिय" आदि गाथांच दशविध स्थितिकल्पका निर्देश करने के लिए उद्धृत है। यह गाथा मूलाचार (गाथा नं. ९०९) में तथा भगवती आराधनामें (गाथा ४२१) विद्यमान है। यहाँ यह बात खास ध्यान देने योग्य है कि प्रभाचन्द्रने इस गाथाको श्वेताम्बर आगममें आचेलक्यके समर्थनका प्रमाण बताने के लिए श्वेताम्बर आगमके रूपमें उद्धृत किया है। यह गाथा जीतकल्पमाध्य (गा० १९७२) में पाई जाती है। गाथाओं की इस संक्रान्त स्थितिको देखते हुए यह सहज ही कहा जा सकता है कि—कुछ प्राचीन गाथाएँ परम्परासे चली आई हैं, जिन्हें दिगं और आ०- दोनों आचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें स्थान दिया है।

यह कि—

सिद्धान्तचक्रवर्ती और प्रभाचन्द्र—आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त-  
३ ये प्रकरण जैनशास्त्र श्री चामुण्डरायके समकालीन थे। चामुण्डराय गंगव-



( ई० ९३३ ) में अपना दर्शनसार ग्रन्थ बनाया था । दर्शनसारके बाद इन्होंने भावसंग्रह ग्रन्थकी रचना की थी; क्योंकि उसमें दर्शनसारकी अनेकों गाथाएँ उद्धृत मिलती हैं । इनके आराधनासार, तत्त्वसार, नयचक्रसंग्रह तथा आलाप-पद्धति ग्रन्थ भी हैं । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० ३०० ) तथा न्यायकुसुमद्वन्द्व ( पृ० ८५६ ) के कवलाहारवादमें देवसेनके भावसंग्रह ( गा० ११० ) की यह गाथा उद्धृत की है—

“णोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो ।

ओज मणोवि य कमसो आहारो छन्विहो नेयो ॥”

यद्यपि देवसेनसुरिने दर्शनसार ग्रन्थके अन्तमें लिखा है कि—

“पुब्बायरियक्याहं गाहाहं संचिलण एयत्थ ।

सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥

रइयो दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए णवए ।

सिरिपासणांहगेहे सुविमुद्धं माहसुद्धदसमीए ॥”

अर्थात् पूर्वाचार्यकृत गाथाओंका संचय करके यह दर्शनसार ग्रन्थ बनाया गया है । तथापि बहुत खोज करने पर भी यह गाथा किसी प्राचीन ग्रंथमें नहीं मिल सकी है । देवसेन धारानगरीमें ही रहते थे, अतः धारानिवासी प्रभाचन्द्रके द्वारा भावसंग्रहसे भी उक्त गाथाका उद्धृत किया जाना असंभव नहीं है । चूंकि दर्शनसारके बाद भावसंग्रह बनाया गया है, अतः इसका रचनाकाल संभवतः विक्रम संवत् ९९७ ( ई० ९४० ) के आसपास ही होगा ।

श्रुतकीर्ति और प्रभाचन्द्र-जैनेन्द्रके प्राचीन सूत्रपाठपर आचार्य श्रुत-कीर्तिकृत पंचवस्तुप्रक्रिया उपलब्ध है । श्रुतकीर्तिने अपनी प्रक्रियाके अन्तमें श्रीमद्भुक्तिशब्दसे अमयनन्दिकृत महाद्युति और न्यासशब्दसे संभवतः प्रभाचन्द्र-कृत न्यास, दोनोंका ही उल्लेख किया है । यदि न्यासशब्द पूज्यपादके जैनेन्द्र-न्यासका निर्देशक हो तो “टीकामाल” शब्दसे तो प्रभाचन्द्रकी टीकाका उल्लेख किया ही गया है । यथा—

“सूत्रस्तम्भसमुद्धृतं प्रविलसन्ध्यासोरलक्षिति,

श्रीमद्भुक्तिपाटसंपुटयुतं भाष्यौघसन्ध्यातलम् ।

टीकामालमिहारुल्लुरचितं जैनेन्द्रशब्दागमम्,

प्रासादं पृथुपक्षवस्तुकमिदं सोपानमारोहतात् ॥”

कनडी भाषाके चन्द्रप्रभवचरित्रके कर्ता अगलकविने श्रुतकीर्तिके अपना शुभ बताया है—

“इति परमपुरुषनाथकुलभूसुत्सुद्धतप्रवचनसरित्सरिचाश्रुतकीर्तित्रैविशचक्रव-

१ देखो प्रेमीजीका ‘जैनेन्द्र व्याकरण और , आचार्यदेवजगन्नी’ लेख जैनसा० स० भाग १ अंक २८ ।

तिपदपञ्चनिधानवीपवर्तिश्रीमदगलदेवविरचिते चन्द्रप्रमचरिते” । यह चरित्र शक सेवक १०११, ई० १०८९ में बनकर समाप्त हुआ था । अतः श्रुतकीर्तिका समय लगभग १०८० ई० मानना सुकिसंगत है । इन श्रुतकीर्तिने न्यासको जेनेन्द्र व्याकरण रूपी प्रासादकी रत्नभूमिकी उपमा दी है । इससे शब्दाम्मोज-भास्करका रचनासमय लगभग ई० १०६० समर्थित होता है ।

**श्ले० आगमसाहित्य और प्रभाचन्द्र-म० महावीरकी अर्धभागवी दिव्यध्वनिको गणधरो ने द्वादशांगी रूपसे गूँथा था । उस समय उन अर्धभागवी भाषामय द्वादशांग आगमोंकी परम्परा श्रुत और स्पृत रूपमें रही, लिपिवद्ध नहीं थी । इन भागमोका आखरी संकलन वीर सं० ९८० ( वि० ५१० ) में श्वेताम्बरार्चार्थ देवद्विगणि क्षमाभ्रमणने किया था । अंगग्रन्थोंके सिवाय कुछ अंगवाद्या या अनंगात्मक श्रुत भी है । छेदसूत्र अनंगश्रुतमें शामिल है । आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुदचन्द्र ( पृ० ८६८ ) के श्रीसुक्तिवादके पूर्वपक्षमें कल्पसूत्र ( ५।२० ) से “नो कल्पइ णिमंगीए अचेलाए होत्तए” यह सूत्रवाक्य उद्धृत किया है ।**

**तत्त्वार्थभाष्यकार और प्रभाचन्द्र-तत्त्वार्थसूत्रके दो सूत्रपाठ प्रचलित हैं । एक तो वह, जिस पर स्वयं वाचक उमास्वातिका खोपसभाष्य प्रसिद्ध है, और दूसरा वह जिस पर पूज्यपादकृत सर्वार्थसिद्धि है । दिगम्बर परम्परामें पूज्यपादसम्मत सूत्रपाठ और श्वेताम्बरपरम्परामें भाष्यसम्मत सूत्रपाठ प्रचलित है । उमास्वातिके खोपसभाष्यके कर्तृत्वके विषयमें आज कल विवाद चल रहा है । सुफ़्तरसा० आदि कुछ विद्वान् भाष्यकी उमास्वातिकर्तृकताके विषयमें सन्दिग्ध हैं । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुदचन्द्रमें दिगम्बरसूत्रपाठसे ही सूत्र उद्धृत किए हैं । उन्होंने न्यायकुसुदचन्द्र ( पृ० ८५९ ) के श्रीसुक्तिवादके पूर्वपक्षमें तत्त्वार्थभाष्यकी सम्बन्धकारिकाओंमेंसे “श्रूयन्ते चानन्ताः सामायिकमात्रसंसिद्धाः” कारिकांश उद्धृत किया है । तत्त्वार्थ-राजवार्तिक ( पृ० १० ) में भी “अन्ताः सामायिकमात्रसंसिद्धाः” वाक्य उद्धृत मिलता है । इसी तरह तत्त्वार्थभाष्यके अन्तमें पाई जाने वाली ३२ कारिकाएँ राजवार्तिकके अन्तमें “उक्तञ्च” लिखकर उद्धृत हैं । पृ० ३६१ में भाष्यकी “दरवे चीजे” कारिका उद्धृत की गई है । इत्यादि प्रमाणोंके आधारसे यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि प्रस्तुत भाष्य अकलहदेवके सामने थी था । उनने इसके कुछ मन्तव्योंकी समीक्षा भी की है ।**

**सिद्धसेन और प्रभाचन्द्र-आ० सिद्धसेनके सन्मतितर्क, न्यायावतार, द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशतिका ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । इनके सन्मतितर्क पर अभयदेवसुरिने विस्तृत व्याख्या लिखी है । डॉ० जैशेवी न्यायावतारके अत्यस्त लक्षणमें अत्रास्त**

प्रद देखकर इनको धर्मेकीर्तिका समकालीन, अर्थात् ईसाकी ७ वीं शताब्दीका विद्वान् मानते हैं। पं० सुखलाल जी इन्हें विक्रमकी पांचवीं सदीका विद्वान् सिद्ध करते थे। पर अब उनका विश्वास है कि “सिद्धसेन ईसाकी छठी या सातवीं सदीमें हुए हो और उन्होंने संभवतः धर्मेकीर्तिके ग्रन्थोंको देखा हो”। न्यायावतारकी रचनामें न्यायप्रवेशके साथ ही साथ न्यायविन्दु भी अपना अतिशुद्ध स्थान रखता ही है। आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ४३७) में पक्षप्रयोगका समर्थन करते समय ‘वायुष्क’ का दृष्टान्त दिया है। इसकी तुलना न्यायावतारके श्लोक १४-१६ से भलीभांति की जा सकती है। न केवल मूलश्लोकसे ही, किन्तु इन श्लोकोंकी सिद्धर्षिकृत व्याख्या भी न्यायकुसुदचन्द्रकी भाव्यरचनासे तुलनीय है।

धर्मेदासगणि और प्रभाचन्द्र-वे० आचार्य धर्मेदासगणिका उपदेश-माला ग्रन्थ प्राकृतगाथानिबद्ध है। प्रसिद्धि तो यह रही है कि ये महावीरस्वामीके दीक्षित शिष्य थे। पर यह इतिहासविरुद्ध है; क्योंकि इन्होंने अपनी उपदेश-मालामें वज्रसुरि आदिके नाम लिए हैं। अस्तु। उपदेशमाला पर सिद्धर्षिसुरिकृत प्राचीन टीका उपलब्ध है<sup>१</sup>। सिद्धर्षिने उपमितिमवप्रपञ्चकथा वि० सं० ९६२ पृष्ठे शुद्ध पंचमीके दिन समाप्त की थी। अतः धर्मेदासगणिकी उत्तरावधि विक्रम की ९ वीं शताब्दी माननेमें कोई बाधा नहीं है। प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमल-मार्तण्ड (पृ० ३३०) में उपदेशमाला (गा० १५) की ‘वतिससवदिवन्ध्याए अजाए अज्ज दिवन्धवो साहु’ इत्यादि गाथा प्रमाणरूपसे उद्धृत की है।

हरिमद्र और प्रभाचन्द्र-आ० हरिमद्र वे० सम्प्रदायके पुण्यप्रधान आचार्योंमेंसे हैं। कहा जाता है कि इन्होंने १४०० के करीब ग्रन्थोंकी रचना की थी। मुनि श्री जिनविजयजीने अनेक प्रबल प्रमाणोंसे इनका समय ई० ७०० से ७७० तक निर्धारित किया है। मेरा इसमें इतना संशोधन है—कि इनके समयकी उत्तरावधि ई० ८१० तक होनी चाहिए; क्योंकि जयन्त भट्टकी न्यायमंजरीका ‘गम्भीरगर्जितारम्भ’ श्लोक षट्दर्शनसमुच्चयमें शामिल हुआ है। मैं विस्तारसे लिख चुका हूँ कि जयन्तने अपनी मंजरी ई० ८०० के करीब बनाई है अतः हरिमद्रके समयकी उत्तरावधि कुछ और लम्बानी चाहिए। उस युगमें १०० वर्षकी आयु तो साधारणतया अनेक आचार्यों की देखी गई है। हरिमद्रसूरिके दार्शनिक ग्रन्थोंमें ‘षट्दर्शनसमुच्चय’ एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसका—

“प्रत्यक्षमनुमानश्च शब्दश्रोतमया सह।

अर्थात्परितिरभावश्च यद् प्रमाणाणि जैमिनेः ॥ ७२ ॥”

यह श्लोक न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ५०५) में उद्धृत है। यद्यपि इसी भावक

<sup>१</sup>—इंग्लिश सम्प्रतितर्क की प्रस्तावना।

<sup>२</sup> जैनसाहित्यको इतिहास पृ० ३८६।

एक श्लोक—“प्रत्यक्षमनुमानस्य शब्दस्रोपमया सह । अर्थापत्तिरभावश्च षडेते साध्यसाधकाः ॥” इस शब्दावलीके साथ कमलशीलकी तत्त्वसंग्रहपत्रिका (पृ० ४५०) में मिलता है और उससे संभावना की जा सकती है कि जैमि-निकी षट्प्रमाणसंख्याका निदर्शक यह श्लोक किसी जैमिनिमतानुयायी आचार्यके ग्रन्थसे लिया गया होगा । यह संभावना हृदयको लगती भी है । परन्तु जबतक इसका प्रसाधक कोई समर्थ प्रमाण नहीं मिलता तबतक उसे हरिभद्रकृत माननेमें ही लाघव है । और बहुत कुछ संभव है कि प्रभाचन्द्रने इसे षट्दर्शनसमुच्चयसे ही उद्धृत किया हो । हरिभद्रने अपने ग्रन्थोंमें पूर्वपक्षके पल्लवन और उत्तरपक्षके पोषणके लिए अन्यग्रन्थकारोंकी कारिकाएँ, पर्याप्त मात्रामें, कहीं उन आचार्योंके नामके साथ और कहीं बिना नाम लिए ही शामिल की हैं । अतः कारिकाओंके विषयमें यह निर्णय करना बहुत कठिन हो जाता है कि ये कारिकाएँ हरिभद्रकी स्वरचित हैं या अन्यरचित होकर संगृहीत हैं ? इसका एक और उदाहरण यह है कि—

“विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ।  
समुदेति यतो लोके रागादीनां गणोऽखिल ॥  
आत्मात्मीयस्वभावाख्य समुदाय स सम्मतः ।  
क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इत्येवं वासना यका ॥  
स मार्ग इति विज्ञेयो निरोधो मोक्ष उच्यते ।  
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषया पञ्च मानसम् ॥  
वर्मापसनमेतानि द्वादशावतनानि च....”

ये चार श्लोक षट्दर्शनसमुच्चयके बौद्धदर्शनमें मौजूद हैं । इसी आज्ञापूर्वसे ये ही श्लोक किञ्चित् शब्दभेदके साथ जिनसेनके आदिपुराण (पर्व ५ श्लो० ४२-४५) में भी विद्यमान हैं । रचनासे तो ज्ञात होता है कि ये श्लोक किसी बौद्धाचार्यने बनाए होंगे, और उसी बौद्धग्रन्थसे षट्दर्शनसमुच्चय और आदि-पुराणमें पहुँचे हों । हरिभद्र और जिनसेन प्रायः समकालीन हैं, अतः यदि ये श्लोक हरिभद्रके होकर आदिपुराणमें आए हैं तो इसे उससमयके असाम्प्रदायिक भावकी महत्त्वपूर्ण घटना समझनी चाहिए । हरिभद्रने तो शास्त्रवार्तासमुच्चयमें समन्तभद्रकी आप्तमीमांसाके श्लोक उद्धृत कर अपनी षट्दर्शनसमुच्चयक युक्तिके प्रेरणा वीजको ही मूर्तरूपमें अङ्कुरित किया है । यदि न्यायप्रवेशद्वारिकार हरिभद्र ये ही हरिभद्र हैं तो उस वृत्ति (पृ० १३) में पाई जाने वाली पक्षशब्दकी ‘पच्यते व्यक्तीक्रियते योऽर्थः सः पक्षः’ इस व्युत्पत्तिकी अस्पष्ट छाया न्यायकुसुद-चन्द्र (पृ० ४३८) में की गई पक्षकी व्युत्पत्ति पर आभासित होती है ।

सिद्धार्थि और प्रभाचन्द्र—श्रीसिद्धार्थिगणि श्वे० आचार्य दुर्गस्वामीदे शिष्य थे । इन्होंने ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी, विक्रम संवत् ९६२ ( १ मई ९०६ ई० ) के दिन उपमितिभवप्रपञ्चा कथाकी समाप्ति की थी । सिद्धसेन दिखाकरके न्यायावता-

रपर भी इनकी एक टीका उपलब्ध है। न्यायानुसार (खो० १६) में पक्षप्रयोगों के समर्थनके प्रसंगमें लिखा है कि—“जिस तरह लक्ष्यनिर्देशके बिना अपनी अनुविद्याका प्रदर्शन करने वाले धनुर्धारीके गुण-दोषोंका यथावत् निर्णय नहीं हो सकता, गुण भी दोषरूपसे तथा दोष भी गुणरूपसे प्रतिभासित हो सकते हैं, उसी तरह पक्षका प्रयोग किए बिना साधनवादीके साधन सम्बन्धी गुण-दोष भी विपरीत रूपमें प्रतिभासित हो सकते हैं, प्राक्तिक तथा प्रतिवादी आदिको उनका यथावत् निर्णय नहीं हो सकता।” न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ४३७) के ‘पक्षप्रयोगविचार’ प्रकरणमें भी पक्षप्रयोगके समर्थनमें धनुर्धारी का दृष्टान्त दिया गया है। उसकी सन्दर्भरचना तथा भावव्यञ्जनामें न्यायानुसारके मूलश्लोकके साथ ही साथ सिद्धविकृत व्याख्याका भी पर्याप्त सन्दर्भसादृश्य पाया जाता है। अवतार-णोंके लिए देखो—न्यायकुमुदचन्द्र पृ० ४३७ टि० १।

**अभयदेव और प्रभाचन्द्र**—चन्द्रगच्छमें प्रद्युम्नसूरि बड़े ख्यात आचार्य थे। अभयदेव सूरि इन्हीं प्रद्युम्नसूरिके शिष्ये थे। न्यायबनसिंह और तर्कप्रमानन इनके विरुद्ध थे। सन्मति-तर्ककी गुजराती प्रस्तावना (पृ० ८३) में श्रीमान् पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीने इनका समय विक्रमकी दशवीं सदीका उत्तरार्ध और ग्यारहवींका पूर्वार्ध निश्चित किया है। उत्तराख्ययनकी पाइयटीकाके रचयिता शान्तिसूरिने उत्तराख्ययनटीकाकी प्रस्तावमें एक अभयदेव को प्रमाणविद्याका शुरु लिखा है। पं० सुखलालजीने शान्तिसूरिके गुरुरूपमें इन्हीं अभयदेव-सूरिकी संभावना की है। प्रभावकचरित्रके उल्लेखानुसार शान्तिसूरिका स्वर्गवास वि० सं० १०-१६ में हुआ था। इन्हीं शान्तिसूरिने धनपालकविकी तिलकमञ्जरी आख्यायिका का संशोधन किया था, और उस पर एक टिप्पण लिखा था। धनपाल कवि गुज तथा भोज दोनोंकी राजसभाओं में सम्मानित हुए थे। इन सब घटनाओंको मंद् नजर रखते हुए अभयदेव सूरिका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग तक मान लेने में कोई बाधा प्रतीत नहीं होती। अभयदेव सूरिकी प्रामाणिकप्रकाण्डताका जीवन्त रूप उनकी सन्मतिटीका में पद पद पर मिलता है। इस सुविस्तृत टीका की ‘वादमहार्णव’ के नामसे भी प्रसिद्धि रही है।

प्रभाचन्द्रके न्यायकुमुदचन्द्रकी अपेक्षा प्रमेयकमलमार्तण्डका अकल्पित सादृश्य इस टीका में पाया जाता है। अभयदेवसूरिने सन्मतिटीका में जीसुक्ति और केवलिकवलाहारका समर्थन किया है। इसमें वी गई दलीलमें तथा प्रभाचन्द्रके द्वारा किए गए उक्त वादोंके खण्डन की युक्तियोंमें परस्पर कोई पूर्वोत्तरपक्षता नहीं देखी जाती। अभयदेव, शान्तिसूरि, और प्रभाचन्द्र करीब करीब समकालीन और समदेशीय थे। इसलिए यह अधिक संभव था कि जीसुक्ति और केवलिकमुक्ति जैसे साम्प्रदायिक प्रकरणोंमें एक दूसरेका खंडन करते। पर हम इनके ग्रन्थोंमें परस्पर खंडन नहीं देखते। इसका कारण मेरी समझमें तो यही आता है कि उस समय दिगम्बर आचार्य यापनीयोंके साथ ही इस विषयकी

चरचा करते होंगे। यही कारण है कि जब प्रमाचन्द्रने शाकटायनके श्रीमुक्ति और केवलमुक्ति प्रकरणोंका ही शब्दशः खंडन किया है तब श्वेताम्बराचार्य अभयदेव और शान्तिसूरिने शाकटायनकी दलीलोंके आधारसे ही अपने ग्रन्थोंके उक्त प्रकरण पुष्ट किए हैं। वादिदेवसूरिने अवश्य ही प्रमाचन्द्रके ग्रन्थोंके उक्त प्रकरणोंको पूर्वपक्षमें प्रमाचन्द्रका नाम लेकर उपस्थित किया है।

सन्मतितर्कके सम्पादक श्रीमान् पं० सुखलालजी और वैचरदासजीने सन्मतितर्क प्रथम भाग (पृ० १३) की गुंजराती प्रस्तावनामें लिखा है कि—“जो के आ टीकामां सैकड़ों दार्शनिकग्रन्थों जु दोहन जणाय छे, छतां सामान्यरीते नीमासककुमारिलभट्टनुं श्लोकवार्तिक, नालन्दाविश्वविद्यालयना आचार्य शान्तरक्षितकृत तत्त्वसंग्रह कजरनी कमलशीलकृत पंजिका अने दिगम्बराचार्य प्रमाचन्द्रना प्रमेयकमलमार्तण्ड अने न्यायकुसुमदचन्द्रोदय विगेरे ग्रंथोंनुं प्रतिबिम्ब मुख्यपणे आ टीकामां छे।” अर्थात् सन्मतितर्कटीका पर भीमांशाश्लोकवार्तिक, तत्त्वसंग्रहपंजिका प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमदचन्द्र आदि ग्रन्थोंका प्रतिबिम्ब पड़ा है। सन्मतितर्कके विद्वद्रूप सम्पादकोंकी उक्त बातसे सहमति रखते हुए भी मैं उसमें इतना परिवर्धन और कर देना चाहता हूं कि—“प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमदचन्द्रका सन्मतितर्कसे शब्दसादृश्य मात्र साक्षात् बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होनेके कारण ही नहीं हैं, किन्तु तीनों ग्रन्थोंके बहुभागमें जो अकल्पित सादृश्य पाया जाता है वह तृतीयराशिमूलक भी है। ये तृतीय राशिके ग्रंथ हैं—भट्टजयसिंहराशिका तत्त्वोपप्लवसिंह, ज्योमशिवकी ज्योमवती, जयन्तकी न्यायमञ्जरी, शान्तरक्षित और कमलशीलकृत तत्त्वसंग्रह और उसकी पंजिका तथा विद्यानन्दके अष्टसहस्री, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, प्रमाणपरीक्षा, आप्तपरीक्षा आदि प्रकरण। इन्हीं तृतीयराशिके ग्रन्थोंका प्रतिबिम्ब सन्मतितर्क और प्रमेयकमलमार्तण्डमें आया है।” सन्मतितर्कटीका, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमदचन्द्रका तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि सन्मतितर्कका प्रमेयकमलमार्तण्डके साथ ही अधिक शब्दसादृश्य है। न्यायकुसुमदचन्द्रमें जहाँ भी यत्किञ्चित् सादृश्य देखा जाता है वह प्रमेयकमलमार्तण्डप्रयुक्त ही है साक्षात् नहीं। अर्थात् प्रमेयकमलमार्तण्डके जिन प्रकरणों के जिस सन्दर्भसे सन्मतितर्कका सादृश्य है उन्हीं प्रकरणोंमें न्यायकुसुमदचन्द्रसे भी शब्दसादृश्य पाया जाता है। इससे यह तर्कणा की जा सकती है कि—सन्मतितर्ककी रचनाके समय न्यायकुसुमदचन्द्रकी रचना नहीं हो सकी थी। न्यायकुसुमदचन्द्र जयसिंहदेवके राज्यमें सन् १०५७ के आसपास रचा गया था जैसा कि उसकी अन्तिम प्रशस्तिसे विदित है। सन्मतितर्कटीका, प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुमदचन्द्रकी तुलनाके लिए देखो प्रमेयकमलमार्तण्ड प्रथम अध्यायके टिप्पण तथा न्यायकुसुमदचन्द्रके टिप्पणोंमें दिए गए सन्मतितर्क के अवतरण।



चादि देवसूरि और प्रभाचन्द्र-देवसूरि श्रीमुनिचन्द्रसूरिके शिष्य थे । प्रभावक चरित्रके लेखानुसार मुनिचन्द्रने शान्तिसूरिसे प्रमाणविद्याका अध्ययन किया था । ये प्राग्वाटवंशके राजा थे । इन्होंने वि० सं० ११४३ में गुर्जर देशको अपने जन्मसे पूत किया था । ये मडोच नगरमें ९ वर्षकी अल्पवयमें वि० सं० ११५२ में वीक्षित हुए थे तथा वि० सं० ११७४ में इन्होंने आचार्यपद पाया था । राजर्षि कुमारपालके राज्यकालमें वि० सं० १२२६ में इनका स्वर्गवास हुआ । प्रसिद्ध है कि-वि० सं० ११८१ वैशाख शुद्ध पूर्णिमाके दिन सिद्धराजकी सभामें इनका दिगम्बरवादी कुमुदचन्द्रसे वाद हुआ था और इसी वादमें विजय पानेके कारण देवसूरि बरि देवसूरि कहे जाने लगे थे । इन्होंने प्रमाणनयतत्वालोकालङ्कार नामक सूत्र ग्रन्थ तथा इसी सूत्रकी स्याद्वादरत्नाकर नामक विस्तृत व्याख्या लिखी है । इनका प्रमाणनयतत्वालोकालङ्कार माणिक्यनन्दिकृत परीक्षा-मुखसूत्रका अपने ढंगसे किया गया दूसरा संस्करण ही है । इन्होंने परीक्षामुखके ६ परिच्छेदोंका विषय ठीक उसी क्रमसे अपने सूत्रके आद्य ६ परिच्छेदोंमें वृत्तिबिह्न शब्दभेद तथा अर्थभेदके साथ प्रयुक्त किया है । परीक्षामुखसे अतिरिक्त इसमें नयपरिच्छेद और वादपरिच्छेद नामक दो परिच्छेद और जोड़े गए हैं । माणिक्यनन्दिके सूत्रोंके सिवाय अकलङ्कके स्वविद्युतियुक्त लघीयलज्ज, न्यायविनिश्चय तथा विद्यानन्दके तत्त्वार्थलोकवार्तिकका भी पर्याप्त साहाय्य इस सूत्रग्रन्थमें लिखा गया है । इस तरह भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें विशाकलित जैन-पदार्थोंका शब्द एवं अर्थदृष्टिसे सुन्दर संकलन इस सूत्रग्रन्थमें हुआ है ।

परीक्षामुखसूत्रपर प्रभाचन्द्रकृत प्रमेयकमलमार्तण्ड नामकी विस्तृत व्याख्या है तथा अकलङ्कदेवके लघीयलज्जपर इन्हीं प्रभाचन्द्रका न्यायकुमुदचन्द्र नामका बृहत्काय टीकाग्रन्थ है । प्रभाचन्द्रने इन मूल ग्रन्थोंकी व्याख्याके साथही साथ मूलग्रन्थसे सम्बद्ध विषयोंपर विस्तृत लेख भी लिखे हैं । इन लेखोंमें विविध निकल्पजालोंसे परपक्षका खंडन किया गया है । प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय-कुमुदचन्द्रके तीक्ष्ण एवं व्याद्वादक प्रकाशमें जब हम स्याद्वादरत्नाकरको तुलनात्मक दृष्टिसे देखते हैं तब वादिदेवसूरिकी गुणग्राहिणी संप्रहृष्टिकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते । इनकी संप्राहक बीजबुद्धि प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रसे अर्थ शब्द और भावोंको इतने चेतश्चमत्कारक ढंगसे चुन लेती है कि अकेले स्याद्वादरत्नाकरके पद लेनेसे न्यायकुमुदचन्द्र तथा प्रमेयकमलमार्तण्डका यावद्विषय विशद रीतिसे अवगत हो जाता है । वस्तुतः यह रत्नाकर उक्त दोनों ग्रन्थोंके शब्द-अर्थरत्नोंका सुन्दर आकर ही है । यह रत्नाकर मार्तण्डकी अपेक्षा चन्द्र (न्यायकुमुदचन्द्र) से ही अधिक उद्वेलित हुआ है । प्रकरणोंके क्रम और पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्षके जमानेकी पद्धतिमें कहीं कहीं तो न्यायकुमुदचन्द्रका इतना अधिक शब्दसादृश्य है कि दोनों ग्रन्थोंकी पाठशुद्धिमें एक दूसरेका मूलप्रतिकी तरह उपयोग किया जा सकता है ।

प्रतिबिम्बवाद नामक प्रकरणमें बादि देवसूरिने अपने रत्नाकर (पृ० ८६५) में न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ४५५) में निर्दिष्ट प्रमाचन्द्रके मतके खंडन करनेका प्रयास किया है। प्रमाचन्द्रका मत है कि-प्रतिबिम्बकी उत्पत्तिमें जल आदि द्रव्य उपादान कारण हैं तथा चन्द्र आदि बिम्ब निमित्तकारण। चन्द्रादि बिम्बोंका निमित्त पाकर जल आदिके परमाणु प्रतिबिम्बाकारसे परिणत हो जाते हैं।

बादि देवसूरि कहते हैं कि-मुखादिबिम्बोंसे छायापुद्गल निकलते हैं और वे जाकर दर्पण आदिमें प्रतिबिम्ब उत्पन्न करते हैं। यहाँ छायापुद्गलोंका मुखादि बिम्बोंसे निकलनेका सिद्धान्त देवसूरिने अपने पूर्वाचार्य श्रीहरिभद्रसूरिके धर्म-सारप्रकरणका अनुसरण करके लिखा है। वे इस समय यह भूल जाते हैं कि हम अपनेही ग्रन्थमें नैयायिकोंके चक्षुसे रश्मियोंके निकलनेके सिद्धान्तका खंडन कर चुके हैं। जब इस भासुरूपवाली आंखसे भी रश्मियोंका निकलना युक्ति एवं अनुभवसे विरुद्ध बताते हैं तब मुख आदि मलिन बिम्बोंसे छायापुद्गलोंके निकलनेका समर्थन किस तरह किया जा सकता है? मजेदार बात तो यह है कि इस प्रकरणमें भी बादि देवसूरि न्यायकुसुदचन्द्रके साथही साथ प्रमेयकमल-मार्तण्डका भी शब्दशः अनुसरण करते हैं, और न्यायकुसुदचन्द्रमें निर्दिष्ट प्रमाचन्द्रके मतके खंडनकी धुनमें स्वयं ही प्रमेयकमलमार्तण्डके उसी आशयके शब्दोंको सिद्धान्त मान बैठते हैं। वे रत्नाकरमें (पृ० ६९८) ही प्रमेयकमल-मार्तण्ड का शब्दानुसरण करते हुए लिख जाते हैं कि-“स्वच्छताविशेषादि जलदर्पणादयोः मुखादित्यादिप्रतिबिम्बाकारविकारधारिणः सम्पद्यन्ते।”-अर्थात् विशेष स्वच्छताके कारण जल और दर्पण आदि ही मुख और सूर्य आदि बिम्बोंके आकारवाली पर्यायों को धारण करते हैं। कवलाहारके प्रकरणमें इन्होंने प्रमाचन्द्रके न्यायकुसुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्डमें भी गई दलीलोंका नामोल्लेख पूर्वक पूर्वपक्षमें निर्देश किया है और उनका अपनी दृष्टिसे खंडन भी किया है। इस तरह बादि देवसूरिने जब रत्नाकर लिखना प्रारम्भ किया होगा तब उनकी आंखोंके सामने प्रमाचन्द्रके ये दोनों ग्रन्थ बराबर नाचते रहे हैं।

हेमचन्द्र और प्रमाचन्द्र-विक्रमकी १२ वीं शताब्दीमें आ० हेमचन्द्रसे जैनसाहित्यके हेमयुगका प्रारम्भ होता है। हेमचन्द्रने व्याकरण, काव्य, छन्द, योग, न्याय आदि साहित्यके सभी विभागोंपर अपनी प्रौढ़ संप्राप्त कृतियों चलाकर भारतीय साहित्यके भंडारको खूब समृद्ध किया है। अपने बहुमुख पाण्डित्यके कारण ये ‘कलिकालसर्वेश्वर’ के नामसे भी ख्यात हैं। इनका जन्म-समय कार्तिकी पूर्णिमा विक्रमसंवत् ११४५ है। वि० सं० ११५४ (ई० सन् १०९७) में ८ वर्षकी लघुवयमें इन्होंने वीक्षा धारण की थी। विक्रमसंवत् ११६६ (ई० सन् १११०) में २१ वर्षकी अवस्थामें वे सूरिपद पर प्रतिष्ठित हुए। ये महाराज जयसिंह सिद्धराज तथा राजर्षि कुमारपालकी राजसभाओंमें सबहुमान लब्धप्रतिष्ठ थे। वि० सं० १२२९ (ई० ११७३) में ८४ वर्षकी आयुमें वे दिवंगत हुए। इनकी न्यायविषयक रचना प्रमाणभीमांसा जैनन्यायके

ग्रन्थोंमें अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है । प्रमाणमीमांसाके निम्न-स्थानके निरूपण और खंडनके समूचे प्रकरणमें तथा अनेकान्तमें दिए गए आठ दोषोंके परिहारके प्रसंगमें प्रमाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डका शब्दशः अनुसरण किया गया है । प्रमाणमीमांसाके अन्य स्थलोंमें प्रमाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डकी छाप साक्षात् न पड़कर प्रमेयरत्नमालाके द्वारा पड़ी है । प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्यने प्रमेयकमलमार्तण्डको ही संक्षिप्त कर प्रमेयरत्नमालाकी रचना की है । अतः मध्यकदवाली प्रमाणमीमांसामें बृहत्काय प्रमेयकमलमार्तण्डका सीधा अनुसरण न होकर अपने समान परिमाणवाली प्रमेयरत्नमालाका अनुसरण होना ही अधिक संगत मालूम होता है । प्रमाणमीमांसाके प्रायः प्रत्येक प्रकरण पर प्रमेयरत्नमालाकी शब्दरचनाने अपनी स्पष्ट छाप लगाई है । इस तरह आ० हेमचन्द्रने कहीं साक्षात् और कहीं परम्परया प्रमाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डको अपनी प्रमाणमीमांसा बनाते समय मद्देनजर रखा है । प्रमेयरत्नमाला और प्रमाणमीमांसाके स्थलोंकी तुलनाके लिए सिंधी धीरिजसे प्रकाशित प्रमाणमीमांसाके भाषा-टिप्पण देखना चाहिए ।

**मलयगिरि और प्रमाचन्द्र**—विक्रमकी १२ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध तथा तेरहवीं शताब्दीका प्रारम्भ जैनसाहित्यका हेमयुग कहा जाता है । इस युगमें आ० हेमचन्द्रके सहविहारी, प्रख्यात टीकाकार आचार्य मलयगिरि हुए थे । मलयगिरिने आवश्यकनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्ति, नन्दीसूत्र आदि अनेकों आगमिकग्रन्थों पर संस्कृत टीकाएँ लिखी हैं । आवश्यकनिर्युक्ति की टीका (पृ० ३७१ A.) में वे अकलङ्कदेवके 'नयवाक्यमें भी स्यात्पदका प्रयोग करना चाहिए' इस मतसे असहमति जाहिर करते हैं । इसी प्रसंगमें वे पूर्वपक्षरूपसे लघीयल्लयल्लविवृति (का० ६२) का 'नयोऽपि तथैव सम्यगेकान्तविषयः स्यात्' यह वाक्य उद्धृत करते हैं । और इस वाक्यके साथ ही साथ प्रमाचन्द्रकृत 'न्यायकुमुदचन्द्र' (पृ० ६९१) से उक्त वाक्यकी व्याख्या भी उद्धृत करते हैं । व्याख्याका उद्धरण इस प्रकारसे लिया गया है—“अत्र टीकाकारेण व्याख्या कृता नयोऽपि नयप्रतिपादकमपि वाक्यं न केवलं प्रमाणवाक्यमित्यपिशब्दार्थः, तथैव स्यात्पदप्रयोगप्रकारेणैव सम्यगेकान्तविषयः स्यात्, यथा स्यादस्त्वेव जीव इति स्यात्पदप्रयोगाभावे तु मिथ्यैकान्तगोचरतया दुर्नय एव स्यादिति ।”—इस अवतरणसे यह निश्चित हो जाता है कि मलयगिरिके सामने लघीयल्लयकी न्यायकुमुदचन्द्र नामकी व्याख्या थी ।

अकलङ्कदेवने प्रमाण, नय और दुर्नयकी निम्नलिखित परिभाषाएँ की हैं—अनन्तधर्मात्मक वस्तुको अखंडभावसे ग्रहण करनेवाला ज्ञान प्रमाण है । एकधर्मको मुख्य तथा अन्यधर्मोंको गौण करनेवाला, उनको अपेक्षा रखनेवाला ज्ञान नय है । एकधर्मको ही ग्रहण करके जो अन्य धर्मोंका निषेध करता है—उनकी अपेक्षा नहीं रखता वह दुर्नय कहलाता है । अकलंकने प्रमाणवाक्यकी तरह नयवाक्यमें भी नयान्तरसापेक्षता दिखानेके लिए 'स्यात्' पदके प्रयोगका विधान किया है ।

आ० मलयगिरि कहते हैं कि—जब नयवाक्यमें स्यात्प्रदका प्रयोग किया जाता है तब 'स्यात्' शब्दसे सूचित होनेवाले अन्य अशेषधर्मोंको भी विषय करनेके कारण नयवाक्य नयरूप न होकर प्रमाणरूप ही हो जायगा। इनके मतसे जो नय एक धर्मको अवधारणपूर्वक विषय करके इतरनयसे निरपेक्ष रहता है वही नय कहा जा सकता है। इसीलिए इन्होंने सभी नयोंको मिथ्यावाद कहा है। मलयगिरिके कोषमें सुनय नामका कोई शब्द ही नहीं है। जब स्यात्प्रदका प्रयोग किया जाता है, तब वह प्रमाणकोटिमें पहुँचेगा तथा जब नयान्तरनिरपेक्ष रहेगा तब वह नयकोटिमें जाकर मिथ्यावाद हो जायगा। इन्होंने अकलंकदेवके इस तत्त्वको मद्देनजर नहीं रखा कि—नयवाक्यमें स्यात् शब्दसे सूचित होनेवाले अशेषधर्मोंका मात्र सङ्काव ही जाना जाता है, सो भी इसलिए कि कोई वादी उनका ऐकान्तिक निषेध न समझ ले। प्रमाणवाक्यकी तरह नयवाक्यमें स्याच्छब्दसे सूचित होनेवाले अशेषधर्म प्रधानमात्रसे विषय नहीं होते। यही तो प्रमाण और नयमें भेद है कि—जहाँ प्रमाणमें अशेष ही धर्म एकरूपसे—अखण्डभावसे विषय होते हैं वहाँ नयमें एकधर्म मुख्य होकर अन्य अशेषधर्म गौण हो जाते हैं, 'स्यात्' शब्दसे मात्र उनका सङ्काव सूचित होता रहता है। दुर्नयमें एकधर्म ही विषय होकर अन्य अशेषधर्मोंका तिरस्कार हो जाता है। अतः दुर्नयसे सुनयका पार्यवक्य करनेके लिए सुनयवाक्यमें स्यात्प्रदका प्रयोग आवश्यक है। मलयगिरिके द्वारा की गई अकलंककी यह समालोचना उन्हीं तक सीमित रही। हेमचन्द्र आदि सभी आचार्यों अकलंकके उक्त प्रमाण, नय और दुर्नयके विभागको निर्विवादरूपसे मानते आए हैं। इतना ही नहीं, उपाध्याय यशोविजयने मलयगिरिकी इस समालोचनाका सयुक्तिक उत्तर युक्ततत्त्वविनिबन्ध (पृ० १७ B.) में दे ही दिया है। उपाध्यायजी लिखते हैं कि यदि नयान्तरसापेक्ष नयका प्रमाणमें अन्तर्भाव किया जायगा तो व्यवहारनय तथा शब्दनय भी प्रमाण ही हो जायेंगे। नयवाक्यमें होनेवाला स्यात्प्रदका प्रयोग तो अनेक धर्मोंका मात्र द्योतन करता है, वह उन्हें विवक्षितधर्मकी तरह नयवाक्यका विषय नहीं बनाता। इसलिए नयवाक्यमें मात्र स्यात्प्रदका प्रयोग होनेसे वह प्रमाण कोटिमें नहीं पहुँच सकता।

**देवभद्र और प्रभाचन्द्र**—देवभद्रसूरि मलधारिगच्छके श्रीचन्द्रसूरिके शिष्य थे। इन्होंने न्यायावतारटीका पर एक टिप्पण लिखा है। श्रीचन्द्रसूरिने वि० संवत् ११९३ (सन् ११३६) के दिवालीके दिन 'सुनिष्ठप्रतत्तरित्र' पूर्ण किया था। अतः इनके साक्षात् शिष्य देवभद्रका समय भी करीब सन् ११५० से १२०० तक अनुनिश्चित होता है। देवभद्रने अपने न्यायावतार टिप्पणमें प्रभाचन्द्रकृत न्यायकुसुदचन्द्रके निम्नलिखित दो अवतरण लिए हैं—

१—“परिमण्डलाः परमाणवः तेषां भावः...पारिमण्डल्यं वर्तुल्लक्ष्म, न्यायकुसुदचन्द्रे प्रभाचन्द्रेणाप्येवं व्याख्यातत्वात्।” (पृ० २५)

२-“प्रभाचन्द्रस्तु न्यायकुसुमचन्द्रे विभाषा सद्धर्मप्रतिपादको ग्रन्थविशेषः - तां विदन्ति अधीयते वा वैभाषिकाः इत्युवाच ।” (पृ० ७९)

ये दोनों अवतरण न्यायकुसुमचन्द्रमें क्रमशः पृ० ४३८ पं० १३ तथा पृ० ३९० पं० १ में पाए जाते हैं । इसके सिवाय न्यायावतारटिप्पणमें अनेक स्थानोंपर न्यायकुसुमचन्द्रका प्रतिबिम्ब स्पष्टरूपसे झलकता है ।

**मल्लिषेण और प्रभाचन्द्र**-आ० हेमचन्द्रकी अन्ययोगव्यवच्छेदिकाके ऊपर मल्लिषेण की स्याद्वादर्मजरी नामकी सुन्दर टीका सुदृढ है । ये श्वेताम्बर सम्प्रदायके नागेन्द्रगच्छीय श्रीउदयप्रमसूरिके शिष्य थे । स्याद्वादर्मजरीके अन्तमें ही हुई प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि-इन्होंने शक संवत् १२१४ (ई० १२९३) में वीपमालिका शनिवारके दिन जिनप्रमसूरिकी सहायतासे स्याद्वादर्मजरी पूर्ण की थी । स्याद्वादर्मजरीकी शब्दरचनापर न्यायकुसुमचन्द्रका एक विलक्षण प्रभाव है । मल्लिषेणने का० १४ की व्याख्यामें विधिवादकी चर्चा की है । इसमें उन्होंने विधिवान्वियोंके आठ मतोंका निर्देश किया है । साथही साथ अपनी प्रथमर्थादाके विचारसे इन मतोंके पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्षोंके विशेष परिज्ञानके लिए न्यायकुसुमचन्द्र ग्रन्थ देखनेका अजुरोध निम्नलिखित शब्दोंमें किया है-  
“एतेषां निराकरणं सपूर्वोत्तरपक्षं न्यायकुसुमचन्द्रादनसेयम् ।” इस वाक्यसे स्पष्ट हो जाता है कि मल्लिषेण न केवल न्यायकुसुमचन्द्रके निशिष्ट अभ्यासी ही थे किन्तु वे स्याद्वादर्मजरीमें अर्चयित या अल्पचर्चित विषयोंके ज्ञानके लिए न्यायकुसुमचन्द्रको प्रमाणभूत आकरग्रन्थ मानते थे । न्यायकुसुमचन्द्रमें विधिवादकी विस्तृत चर्चा पृ० ५७३ से ५९८ तक है ।

**गुणरत्न और प्रभाचन्द्र**-विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें तपागच्छामे श्रीदेवसुन्दरसूरि एक प्रभावक आचार्य हुए थे । इनके पट्टशिष्य गुणरत्नसूरिने हरिमद्रकृत ‘षट्दर्शनसमुच्चय’ पर तर्करहस्यदीपिका नामकी बृहद्दृष्टि लिखी है । गुणरत्नसूरिने अपने कियारत्नसमुच्चय ग्रन्थकी प्रतियोंका लेखनकाल विक्रम संवत् १४६८ दिया है । अतः इनका समय भी विक्रमकी १५ वीं सदीका उत्तरार्ध सुनिश्चित है । गुणरत्नसूरिने षट्दर्शनसमुच्चय टीकाके जैनमत निरूपणमें मोक्षतरङ्गक सविस्तर विशद विवेचन किया है । इस प्रकरणमें इन्होंने स्वामिमत मोक्षस्वरूपके समर्थनके साथही साथ वैशेषिक, सांख्य, वेदान्ती तथा बौद्धोंके द्वारा माने गए मोक्षस्वरूपका बड़े विस्तारसे निराकरण भी किया है । इस परखंडनके भागमें न्यायकुसुमचन्द्रका मात्र अर्थ और मानकी दृष्टिसे ही नहीं, किन्तु शब्दरचना तथा युक्तियोंके-कोटिक्रमकी दृष्टिसे भी पर्याप्त अनुसरण किया गया है । इस प्रकरणमें न्यायकुसुमचन्द्रका इतना अधिक शब्दसादृश्य है कि इससे न्यायकुसुमचन्द्रके पाठकी शब्दशुद्धि करनेमें भी पर्याप्त सहायता मिली है । इसके

सिवाय इस शक्तिके अन्य स्थलोंपर खासकर परपक्षखंडनके मागोंपर न्यायकुसुद-चन्द्रकी शुभ्रज्योत्स्ना जहाँ तहाँ छिटक रही है ।

**यशोविजय और प्रभाचन्द्र**-उपाध्याय यशोविजयजी विक्रमकी १८ वीं सदीके युगप्रवर्तक विद्वान् थे । इन्होंने विक्रम संवत् १६८८ ( ईस्वी १६३१ ) में पं० नयविजयजीके पास दीक्षा ग्रहण की थी । इन्होंने काशीमें नव्यन्यायका अध्ययन कर बादमें किसी विद्वान् पर विजय पानेसे 'न्यायविशारद' पद प्राप्त किया था । श्रीविजयप्रभसूरिने वि० सं० १७१८ में इन्हें 'वाचक-उपाध्याय' का सम्मानित पद दिया था । उपाध्याय यशोविजय वि० सं० १७४३ ( सन् १६८६ ) में अनशन पूर्वक स्वर्गस्थ हुए थे । दशवीं शताब्दीसे ही नव्य-न्यायके विकासने भारतीय दर्शनशास्त्रमें एक अपूर्व क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी । यद्यपि दसवीं सदीके बाद अनेकों बुद्धिशाली जैनाचार्य हुए पर कोई भी उस नव्यन्यायके शब्दजालके जटिल अध्ययनमें नहीं पड़ा । उपाध्याय यशोविजय ही एकमात्र जैनाचार्य हैं जिन्होंने नव्यन्यायका समग्र अध्ययन कर उसी नव्यपद्धतिसे जैनपदार्थोंका निरूपण किया है । इन्होंने सैकड़ों ग्रन्थ बनाए हैं । इनका अध्ययन अत्यन्त तलस्पर्शी तथा बहुमुख था । सभी पूर्ववर्ती जैनाचार्योंके ग्रन्थोंका इन्होंने विधिवत् पारायण किया था । इनकी तीक्ष्ण दृष्टिसे धर्मभूषण-यतिकी छोटीसी पर सुविशद रचनावाली न्यायदीपिका भी नहीं छूटी । जैनतर्क-भाषामें अनेक जगह न्यायदीपिकाके शब्द आनुपूर्वीसे ले लिए गए हैं । इनके शास्त्रवार्तासमुच्चयकी आदि बृहद्ग्रन्थोंके परपक्ष खंडनवाले अंशोंमें प्रभाचन्द्रके विविध विकल्पजाल स्पष्टरूपसे प्रतिबिम्बित हैं । इन्होंने प्रभाचन्द्रका केवल अनुसरण ही नहीं किया है किन्तु साम्प्रदायिक आसुक्ति और कबलाहार जैसे प्रकार-गोंमें प्रभाचन्द्रके मन्तव्योंकी समालोचना भी की है ।

उपरिलिखित वैदिक-अवैदिकदर्शनोंकी तुलनासे प्रभाचन्द्रके अगाध, तलस्पर्शी, सूक्ष्म दार्शनिक अध्ययनका यत्किंचित् आभास हो जाता है । बिना इस प्रकारके बहुश्रुत अवलोकनके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्र जैसे जैनदर्शनके प्रतिनिधि ग्रन्थोंके प्रणयनका उल्लास ही नहीं हो सकता था । जैनदर्शनके मध्य-युगीन ग्रन्थोंमें प्रभाचन्द्रके ये ग्रन्थ अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । ये पूर्वयुगीन ग्रन्थोंका प्रतिबिम्ब लेकर भी पारदर्शी दर्पणकी तरह उत्तरकाळीन ग्रन्थोंके लिए आधारभूत हुए हैं, और यही इनकी अपनी विशेषता है । बिना इस आदान-प्रदानके दार्शनिक साहित्यका विकास इस रूपमें तो हो ही नहीं सकता था ।

**प्रभाचन्द्रका आयुर्वेदज्ञान**-प्रभाचन्द्र शुष्क तार्किक ही नहीं थे, किन्तु उन्हें जीवनोंपयोगी आयुर्वेदका भी परिज्ञान था । प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० ५२४ ) में वे वधिरता तथा अन्य कर्णरोगोंके लिए बलातैलका उल्लेख करते हैं । न्यायकुसुदचन्द्र ( पृ० ६६९ ) में छाया आदिको पौद्गलिक सिद्ध करते समय

उनमें गुणोंका सङ्गाव दिखानेके लिए उनने वैयकशास्त्रका निम्नलिखित श्लोक प्रमाणरूपसे उद्धृत किया है—

“आतपः कटुको रुक्षः छाया मधुरशीतला ।

कषायमधुरा ज्योत्स्ना सर्वव्याधिहरः(करं) तमः ॥

यह श्लोक राजनिषण्ड आदिमें कुछ पाठभेदके साथ पाया जाता है । इसी तरह वैशेषिकोंके गुणपदार्थका खंडन करते समय (न्यायकु० पृ० २७५) वैयक-तन्त्रमें प्रसिद्ध विषाद, स्थिर, खर, पिच्छल आदि गुणोंके नाम लिए हैं । प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ८) में नङ्गलोदक-गुणविशेषके जलसे पादरोगकी उत्पत्ति बताई है ।

प्रभाचन्द्रकी कल्पनाशक्ति-सामान्यतः वस्तुकी अनन्तात्मकता या अनेकधर्माधारताकी सिद्धिके लिए अकलंक आदि आचार्योंने चित्रज्ञान, सामान्य-विशेष, मेचकज्ञान और नरसिंह आदिके दृष्टान्त दिए हैं । पर प्रभाचन्द्रने एक ही वस्तुकी अनेकरूपताके समर्थनके लिए न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ३६९) में “उमेश्वर” का दृष्टान्त भी दिया है । वे लिखते हैं कि जैसे एक ही शिव वामाङ्गमें उमा-पार्वतीरूप होकर भी वक्षिणाङ्गमें विरोधी शिवरूपको धारण करते हैं और अपने अर्धनारीश्वररूपको दिखाते हुए अखंड बने रहते हैं उसी तरह एक ही वस्तु विरोधी दो या अनेक आकारोंको धारण कर सकती है । इसमें कोई विरोध नहीं होना चाहिए ।

उदारविचार-आ० प्रभाचन्द्र सचे तार्किक थे । उनकी तर्कणाशक्ति और उदार विचारोंका स्पष्ट परिचय ब्राह्मणल जातिके खण्डनके प्रसङ्गमें मिलता है । इस प्रकरणमें उन्होंने ब्राह्मणल जातिके नित्यस और एकत्वका खण्डन करके उसे सदृशपरिणमन रूप ही सिद्ध किया है । वे जन्मना जातिका खण्डन बहुविध विकल्पोसे करते हैं और स्पष्ट शब्दोंमें उसे गुणकर्माजुसारिणी मानते हैं । वे ब्राह्मणलजातिनिमित्तक वर्णाश्रमव्यवस्था और तप दान आदिके व्यवहारको भी क्रियाविशेष और यज्ञोपवीत आदि चिह्नसे उपलक्षित व्यक्ति-विशेषमें ही करनेकी सलाह देते हैं—

“ननु ब्राह्मणत्वादिसामान्यानभ्युपगमे कथं भवतां वर्णाश्रमव्यवस्था तन्निबन्धनो वा तपोदानादिव्यवहारः स्यात् ? इत्यप्यचोद्यम् ; क्रियाविशेषयज्ञोपवीतादिभिर्दो-पलक्षिते व्यक्तिविशेषे तद्व्यवस्थायाः तद्व्यवहारस्य चोपपत्तेः । तच्च भवत्कल्पितं नित्यादिस्वभावं ब्राह्मण्यं कृतमिदमपि प्रमाणात् प्रसिद्ध्यतीति क्रियाविशेषनिबन्धनं एवार्थं ब्राह्मणादिव्यवहारो युक्तः ।”

[ न्यायकुसुमचन्द्र पृ० ७७८ । प्रमेयकमलमार्तण्ड पृ० ४८६ ]

.. “अथ—यदि ब्राह्मणल आदि जातियों नहीं हैं तब जैनमतमें वर्णाश्रमव्यवस्था और ब्राह्मणल आदि जातियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला तप दान आदि व्यवहार कैसे होगा ? उत्तर—जो व्यक्ति यज्ञोपवीत आदि निहोंको धारण करें तथा

ब्राह्मणोंके योग्य विशिष्ट क्रियाओंका आचरण करें उनमें ब्राह्मणत्व जातिसे सम्बन्ध रखनेवाली वर्णाश्रमव्यवस्था और तप धान आदि व्यवहार भली भाँति किये जा सकते हैं। अतः आपके द्वारा माना गया नित्य आदि स्वभाववाच्य ब्राह्मणत्व किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता, इसलिये ब्राह्मण आदि व्यवहारों को क्रियासुसार ही मानना युक्तिसंगत है।”

वे प्रमेयकमलमार्तण्ड ( पृ० ४८७ ) में और भी स्पष्टतासे लिखते हैं कि—  
“ततः सदृशक्रियापरिणामादिनिवन्धनैवेवं ब्राह्मणक्षत्रियादिव्यवस्था—इसलिये यह समस्त ब्राह्मण क्षत्रिय आदि व्यवस्था सदृश क्रिया रूप सदृश परिणमन आदिके निमित्तसे ही होती है।”

बौद्धोंके धम्मपद और वे० आगम उत्तराख्ययनसूत्रमें स्पष्ट शब्दोंमें ब्राह्मणत्व जातिको गुण और कर्मके अनुसार बताकर उसको जन्मना माननेके सिद्धान्तका खण्डन किया है—

“न जटाहिं न गोतेहिं न जन्मा होति ब्राह्मणो ।

जम्हि सब्बं च धम्मो च सो झुची सो च ब्राह्मणो ॥

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसंभवं ।” [ धम्मपद गा० ३९३ ]

“कम्मूणा वंमणो होइ कम्मूणा होइ खत्तिओ ।

वईसो कम्मूणा होइ सुइ होइ कम्मूणा ॥” [ उत्तरा० २५।३३ ]

विगम्बर आचार्योंमें ब्राह्मचरित्रके कर्ता श्री जटासिंहनन्दि कितने स्पष्ट शब्दोंमें जातिको क्रियानिमित्तक लिखते हैं—

“क्रियाविशेषाद् व्यवहारमात्रात् क्यामिरक्षाकृषिविश्लेषमेवात् ।

षिष्टाश्च वर्णाश्रमपुरो वदन्ति न चान्यथा वर्णचतुष्टयं स्यात् ॥”

[ ब्राह्मचरित २५।११ ]

“शिष्टजन इन ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको ‘अहिंसा आदि व्रतोंका पालन, रक्षा करना, खेती आदि करना, तथा शिल्पवृत्ति’ इन चार प्रकारकी क्रियाओंसे ही मानते हैं। यह सब वर्णव्यवस्था व्यवहार मात्र है। क्रियाके सिवाय और कोई वर्णव्यवस्थाका हेतु नहीं है।”

ऐसे ही विचार तथा उद्गार पद्मपुराणकार रविवेण, आदिपुराणकार जिनसेन, तथा धर्मपरीक्षाकार अमरतगति आदि आचार्योंके पाए जाते हैं। आ० प्रमाचन्द्रने, इन्हीं वैदिक संस्कृति द्वारा अनभिभूत, परम्परागत जैनसंस्कृतिके विशुद्ध विचारोंका, अपनी प्रखर तर्कधारासे परिसिद्धान्त कर पोषण किया है। यद्यपि ब्राह्मणत्वजातिके खण्डन करते समय प्रमाचन्द्रने प्रवानतया उसके नित्य और ब्रह्मप्रभवत्व आदि अंशोंके खण्डनके लिए इस प्रकरणको लिखा है और इसके लिखनेमें प्रज्ञाकर गुप्तके प्रमाणवार्तिकालङ्कार तथा शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहने



पर्याप्त प्रेरणा दी है परन्तु इससे प्रमाचन्द्रकी अपनी जातिविषयक स्वतन्त्र चिन्तनशक्तिमें कोई कमी नहीं आती। उन्होंने उसके हर एक पहलू पर विचार करके ही अपने उक्त विचार स्थिर किए।

## § २. प्रमाचन्द्रका समय—

कार्यक्षेत्र और गुरुकुल—आ० प्रमाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुसुमसुदचन्द्र आदिकी प्रशस्तिमें 'पद्मनन्दि सैद्धान्त' को अपना गुरु लिखा है। श्रवणवेल्लोलाके शिलालेख (नं० ४०) में गोह्लाचार्यके शिष्य पद्मनन्दि सैद्धान्तिकका उल्लेख है। और इसी शिलालेखमें आगे चलकर प्रथिततर्क-ग्रन्थकार, शब्दाम्भोरुहभास्कर प्रमाचन्द्रका शिष्यरूपसे वर्णन किया गया है। प्रमाचन्द्रके प्रथिततर्कग्रन्थकार और शब्दाम्भोरुहभास्कर ये दोनों विशेषण यह स्पष्ट बतला रहे हैं कि ये प्रमाचन्द्र न्यायकुसुमसुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे प्रथित तर्कग्रन्थोंके रचयिता थे तथा शब्दाम्भोजभास्करनामक जैनन्द्रन्यासके कर्ता भी थे। इसी शिलालेखमें पद्मनन्दि सैद्धान्तिकको अविद्वक्कर्णादिक और कौमारदेवप्रती लिखा है। इन विशेषणोंसे ज्ञात होता है कि—पद्मनन्दि सैद्धान्तिकने कर्णवेध होनेके पहिले ही बीक्षा धारण की होगी और इसीलिए ये कौमारदेवप्रती कहे जाते थे। ये मूलसंघान्तर्गत नन्दिगणके प्रमेदरूप देशीगणके श्रीगोह्लाचार्यके शिष्य थे। प्रमाचन्द्रके सधर्मा श्रीकुलभूषणमुनि थे। कुलभूषण मुनि भी सिद्धान्त शास्त्रोंके पारगामी और चारित्रसागर थे। इस शिलालेखमें कुलभूषणमुनिकी शिष्य-परम्पराका वर्णन है, जो दक्षिणदेशमें हुई थी। तात्पर्य यह कि आ० प्रमाचन्द्र मूलसंघान्तर्गत नन्दिगणकी आचार्यपरम्परामें हुए थे। इनके गुरु पद्मनन्दि सैद्धान्त थे और सधर्मा थे कुलभूषणमुनि। मालूम होता है कि प्रमाचन्द्र पद्मनन्दिसे शिक्षा-बीक्षा लेकर धारानगरीमें चले आए, और वहीं उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की। ये धारावीश मोजके मान्य विद्वान् थे। प्रमेयकमलमार्तण्डकी "श्रीभोज-देवराज्ये धारानिवासिना" आदि अन्तिम प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि—यह ग्रन्थ धारा-नगरीमें भोजदेवके राज्यमें बनाया गया है। न्यायकुसुमसुदचन्द्र, आराधनागद्य-कथाकोश और महापुराणटिप्पणकी अन्तिम प्रशस्तिवॉके "श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना" शब्दोंसे इन ग्रन्थोंकी रचना मोजके उत्तराधिकारी जयसिंह-देवके राज्यमें हुई ज्ञात होती है। इसलिए प्रमाचन्द्रका कार्यक्षेत्र धारानगरी ही मालूम होता है। संभव है कि इनकी शिक्षा-बीक्षा दक्षिणमें हुई हो।

श्रवणवेल्लोलाके शिलालेख नं० ५५ में मूलसंघके देशीगणके देवेन्द्रसैद्धान्तदे-वका उल्लेख है। इनके शिष्य चतुर्मुखदेव और चतुर्मुखदेवके शिष्य गोपनन्दि थे। इसी शिलालेखमें इन गोपनन्दिके सधर्मा एक प्रमाचन्द्रका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

“अवर सधर्मरू-

श्रीधाराधिपभोजराजमुकुटप्रोताहमरश्मिच्छद्य-

च्छायाकुङ्कुमपङ्कजित्तरणाम्भोजातलक्ष्मीधवः ।

न्यायान्जाकरमण्डने दिनमणिकुशब्दान्जरोदोमणिः,

स्थेयात्पण्डितपुण्डरीकतरणि. श्रीमान् प्रभाचन्द्रमाः ॥ १७ ॥

श्रीचतुर्मुखदेवानां शिष्योऽपृष्यः प्रवादिभिः ।

पण्डितश्रीप्रभाचन्द्रो रुद्रवादिगजाङ्कुश ॥ १८ ॥”

इन श्लोकोंमें वर्णित प्रभाचन्द्र भी धाराधीश भोजराजके द्वारा पूज्य थे, न्यायरूप कमलसमूह ( प्रमेयकमल ) के दिनमणि ( मार्तण्ड ) थे, शब्दरूप अञ्ज ( शब्दान्मोज ) के विकास करनेको रोदोमणि ( भास्कर ) के समान थे । पंडित रूपी कमलके प्रफुल्लित करने वाले सूर्य थे, रुद्रवादि गजोंको बश करनेके लिए अंकुशके समान थे तथा चतुर्मुखदेवके शिष्य थे । क्या इस शिलालेखमें वर्णित प्रभाचन्द्र और पद्मनन्दि सैद्धान्तिके शिष्य, प्रथिततर्कग्रन्थकार एवं शब्दान्मोजभास्कर प्रभाचन्द्र एक ही व्यक्ति हैं ? इस प्रश्न का उत्तर ‘हो’ में दिया जा सकता है, पर इसमें एक ही बात नहीं है । यह है-गुरुरूपसे चतुर्मुखदेवके उल्लेख होनेकी । मैं समझता हूँ कि-यदि प्रभाचन्द्र धारामें आनेके बाद अपने ही देशीयगणके श्री चतुर्मुखदेवको आदर और गुरुकी दृष्टिसे देखते हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । पर यह अनुनिश्चित है कि प्रभाचन्द्रके आद्य और परमादरणीय उपास्य गुरु पद्मनन्दि सैद्धान्त ही थे । चतुर्मुखदेव द्वितीय गुरु या गुरुसम हो सकते हैं । यदि इस शिलालेखके प्रभाचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि के रचयिता एक ही व्यक्ति हैं तो यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि प्रभाचन्द्र धाराधीश भोजके समकालीन थे । इस शिलालेखमें प्रभाचन्द्रको गोपनन्दिका सधर्मा कहा गया है । हलेबेल्लो-ल्लके एक शिलालेख ( नं० ४९२, जैनशिलालेखसंग्रह ) में होयसल्लनरेश परेयज्ञ द्वारा गोपनन्दि पण्डितदेवको दिए गए दानका उल्लेख है । यह दान पौष शुक्ल १३, संवत् १०१५ में दिया गया था । इस तरह सन् १०९४ में प्रभाचन्द्रके सधर्मा गोपनन्दिकी स्थिति होनेसे प्रभाचन्द्रका समय सन् १०६५ तक माननेका पूर्ण समर्थन होता है ।

**समयविचार-आचार्य प्रभाचन्द्रके समयके विषयमें डॉ० पाठक, प्रेमीजी\***

\* श्रीमान् प्रेमीजीका विचार अब बदल गया है । वे अपने “श्रीचन्द्र और प्रभाचन्द्र” लेख (अनेकान्त वर्ष ४ अंक १) में महापुराणटिप्पणकार प्रभाचन्द्र तथा प्रमेयकमलमार्तण्ड और गद्यकलाकोश आदिके कर्त्ता प्रभाचन्द्रका एक ही व्यक्ति होना सूचित करते हैं । वे अपने एक पत्रमें मुझे लिखते हैं कि-“हम समझते हैं कि प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रके कर्त्ता प्रभाचन्द्र ही महापुराणटिप्पणके कर्त्ता हैं । और तत्त्वार्थवृत्तिपद (सर्वाधिसिद्धिके पदोंका प्रकटीकरण), समाधितत्रटीका, आत्माशुभासन-तिलक, क्रियाकलापटीका, अवचनसारसरोजभास्कार (अवचनसारकी टीका) आदिके कर्त्ता, और शायद रतकरण्डीकाके कर्त्ता भी वही हैं ।”

तथा मुस्तार सा० आदिका प्रायः सर्वसम्मत मत यह रहा है कि आचार्य प्रभाचन्द्र इसाकी ८ वीं-शताब्दीके उत्तरार्ध एवं नवी शताब्दीके पूर्वार्धवर्ती विद्वान् थे । और इसका मुख्य आधार है जिनसेनकृत आदिपुराण का यह श्लोक—

“चन्द्रांशुशुभ्रयसं प्रभाचन्द्रकविं स्तुवे ।

कृत्वा चन्द्रोदयं येन शशदाहादितं जगत् ॥”

अर्थात्—‘जिनका यश चन्द्रमाकी किरणोंके समान घबल है उन प्रभाचन्द्रक-  
विकी स्तुति करता हूँ । जिन्होंने चन्द्रोदयकी रचना करके जगत् को आह्लादित  
किया था ।’ इस श्लोकमें चन्द्रोदयसे न्यायकुसुदचन्द्रोदय (न्यायकुसुदचन्द्र)  
ग्रन्थका सूचन समझ गया है । आ० जिनसेनने अपने गुरु वीरसेनकी अधूरी  
जयधवला टीकाको शक सं० ७५९ (ईसवी ८३७) की फाल्गुन शुक्ला दशमी  
तिथिको पूर्ण किया था । इस समय अमोघवर्षका राज्य था । जयधवलाकी समा-  
प्तिके अनन्तर ही आ० जिनसेनने आदिपुराणकी रचना की थी । आदिपुराण  
जिनसेनकी अन्तिम कृति है । वे इसे अपने जीवनमें पूर्ण नहीं कर सके थे । उसे  
इनके शिष्य गुणभद्रने पूर्ण किया था । तात्पर्य यह कि जिनसेन आचार्यने ईसवी  
८४० के लगभग आदिपुराणकी रचना प्रारम्भ की होगी । इसमें प्रभाचन्द्र तथा  
उनके न्यायकुसुदचन्द्रका उल्लेख मानकर डॉ० पाठक आदिने निर्बिधादरूपसे प्रभा-  
चन्द्रका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध तथा नवी का पूर्वार्ध निश्चित  
किया है ।

सुहृद्दर पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने न्यायकुसुदचन्द्र प्रथमभाग की प्रस्तावना  
(पृ० १९३) में डॉ० पाठक आदिके मतका निरास करते हुए प्रभाचन्द्रका

† पं० कैलाशचन्द्रजीने आदिपुराणके ‘चन्द्रांशुशुभ्रयसं’ श्लोकमें चन्द्रोदयकार  
किती अन्य प्रभाचन्द्रकविता उल्लेख बताया है, जो ठीक है । पर उन्होंने आदिपुराण-  
कार जिनसेनके द्वारा न्यायकुसुदचन्द्रकार प्रभाचन्द्रके स्मृत होनेमें बाधक जो अन्य तीन  
हेतु दिए हैं वे बलवत् नहीं मान्य होते । अतः (१) आदि-पुराणकार इसके लिए बाध्य  
नहीं माने जा सकते कि यदि वे प्रभाचन्द्रका स्मरण करते हैं तो उन्हें प्रभाचन्द्रके द्वारा  
स्मृत अनन्तवीर्य और विद्यानन्दका स्मरण करना ही चाहिए । विद्यानन्द और अनन्तवीर्यका  
समय ईसाकी नवी शताब्दीका पूर्वार्ध है, और इसलिये वे आदिपुराणकारके समकालीन  
होते हैं । यदि प्रभाचन्द्र भी ईसाकी नवी शताब्दीके विद्वान् होते, तो भी वे अपने  
समकालीन विद्यानन्द आदि आचार्योंका स्मरण करके भी आदिपुराणकार द्वारा स्मृत हो-  
सकते थे । (२) ‘जयन्त और प्रभाचन्द्र’ की तुलना करते समय मैं जयन्तका समय  
ई० ७५० से ८४० तक सिद्ध कर आया हूँ । अतः समकालीनवृद्ध जयन्त से प्रभावित  
होकरभी प्रभाचन्द्र आदिपुराणमें उल्लेख हो सकते हैं । (३) गुणभद्रके आत्मानुशासन से  
‘अन्धादयं महानन्धः’ श्लोक उद्धृत किया जाना अवश्य ऐसी बात है जो प्रभाचन्द्रका  
आदिपुराणमें उल्लेख होनेकी बाधक हो सकती है । क्योंकि आत्मानुशासनके “जिन-  
सेनाचार्यपादस्मरणाधीनचेतसायुः गुणभद्रमदन्वानां कृतिरात्मानुशासनम् ॥”

समय ई० ९५० से १०२० तक निर्धारित किया है। इस निर्धारित समयकी शताब्दियाँ तो ठीक हैं पर दशकोंमें अन्तर है। तथा जिन आधारोंसे यह समय निश्चित किया गया है वे भी अब्रान्त नहीं हैं। पं० जीने प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंमें ज्योमशिवचार्यकी ज्योमवती टीकाका प्रभाव देखकर प्रभाचन्द्रकी पूर्वविधि ९५० ई० और पुष्पदन्तकृत महापुराणके प्रभाचन्द्रकृत टिप्पणको वि० सं० १०८० (ई० १०२३) से समाप्त मानकर उत्तरावधि १०२० ई० निश्चित की है। मैं 'ज्योमशिव और प्रभाचन्द्र' की तुलना करते समय (पृ० ८) ज्योमशिवका समय ईसाकी सातवीं शताब्दीका उत्तरार्ध निर्धारित कर आया हूँ। इसलिए मात्र ज्योमशिवके प्रभावके कारण ही प्रभाचन्द्रका समय ई० ९५० के बाद नहीं जा सकता। महापुराणके टिप्पणकी वस्तुस्थिति तो यह है कि—पुष्पदन्तके महापुराण पर श्रीचन्द्र आचार्यका भी टिप्पण है और प्रभाचन्द्र आचार्यका भी। बलात्कारगणके श्रीचन्द्रका टिप्पण भोजदेवके राज्यमें बनाया गया है। इसकी प्रशस्ति निम्न लिखित है—

इस अन्तिमश्लोकसे ज्ञात होता है की यह ग्रन्थ जिनसेन स्वामीकी मृत्युके बाद बनाया गया है, क्योंकि वही समय जिनसेनके पादोंके सरणके लिए ठीक जँचता है। अतः आत्मानुशासनका रचनाकाल सन् ८५० के करीब माहस होता है। आत्मानुशासन पर प्रभाचन्द्रकी पक़ टीका उपलब्ध है। उसमें प्रथम श्लोकका उद्घाटन नाम इस प्रकार है—  
 “बृहस्पतिर्ब्राह्मणलोकसेनस्य विषयव्यामुग्धबुद्धेः सम्बोधनव्याजेन सर्वसत्त्वोप-  
 कारकं सम्मार्गमुपदर्शयितुकामो गुणभद्रदेवः...” अर्थात्—गुणभद्र स्वामीने विषयोकी ओर चक्क चित्तवृत्तिवाले बड़े धर्ममार्ह (?) लोकसेनको समझानेके बहाने आत्मानुशासन ग्रन्थ बनाया है। ये लोकसेन गुणभद्रके प्रियशिष्य थे। उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें इन्हीं लोकसेनको स्वयं गुणभद्रने 'विदितसकलशास्त्र, मुनीश, कवि अविकल-  
 वृत्त' आदि विशेषण दिए हैं। इससे ज्ञाना अनुमान तो सहज ही किया जा सकता है कि आत्मानुशासन उत्तरपुराणके बाद तो नहीं बनाया गया; क्योंकि उस समय लोकसेन मुनि विषयव्यामुग्धबुद्धि न होकर विदितसकलशास्त्र एवं अविकलवृत्त हो गए थे। अतः लोकसेनकी प्रारम्भिक अवस्थामें, उत्तर पुराणकी रचनाके पहिले ही आत्मानुशासनका रचा जाना अधिक संभव है। पं० नाथूरामजी प्रेमीने विद्वद्ब्रह्ममाला (पृ० ७५) में यही संभावना की है। आत्मानुशासन गुणभद्रकी प्रारम्भिक कृति ही माहस होती है। और गुणभद्रने इसे उत्तरपुराणके पहिले जिनसेन की मृत्युके बाद बनाया होगा। परन्तु आत्मानुशासनकी आन्तरिक जाँच करने से हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि इसमें अन्य कवियोंके सुभाषितोंका भी यथावसर समावेश किया गया है। उदाहरणार्थ—  
 आत्मानुशासनका ३२ वाँ पद्य 'नेता यस्य बृहस्पतिः' मरुहरिके नीतिशतकका ८८ त्रांश्लोक है, आत्मानुशासनका ६७ वाँ पद्य 'यदेतत्सञ्चन्द्रं' वैराग्यशतकका ५० वाँ श्लोक है। ऐसी स्थितिमें 'अन्धादयं महानन्धः' सुभाषित पद्य भी गुणभद्रका स्वरचित ही है यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते। तथापि किसी अन्य अवक प्रमाणके अभावमें अभी इस विषयमें अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।

“श्री विक्रमादित्यसंवत्सरे वर्षाणामशीलधिकसहस्रे महापुराणविषमपदविवरणं सागरसेनसैद्धान्तान् परिज्ञाय मूलटिप्पणिकाद्यालोच्य कृतमिदं समुच्चयटिप्पणम् अज्ञपातमीतेन श्रीमद्बला [ त्कार ] गणश्रीसंघाचार्यसत्कविशिष्येण श्रीचन्द्रमुनिना निजदोर्दण्डाभिभूतरिपुराब्जविजयिनः श्रीमोजदेवस्य ॥ १०२ ॥ इति उत्तरपुराण-टिप्पणकं प्रभाचन्द्राचार्य (१) विरचितं समाप्तम् ।”

प्रभाचन्द्रकृत टिप्पण जयसिंहदेवके राज्यमें लिखा गया है। इसकी प्रशस्तिके श्लोक रत्नकरण्डश्रावकाचारकी प्रस्तावनासे न्यायकुमुदचन्द्र प्रथम भागकी प्रस्तावना (पृ० १२०) में उद्धृत किये गये हैं। श्लोकोंके अनन्तर—“श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्भारानिवासिना परापरपरमेष्ठिप्रणामोपाजितामलपुष्पनिराकृताखिलमलकलङ्घेन श्रीप्रभाचन्द्रपण्डितेन महापुराणटिप्पणके क्षतग्र्यधिकसहस्रत्रयपरिमाणं कृतमिति” यह पुष्पिकालेख है। इस तरह महापुराण पर दोनों आचार्योंके पृथक् पृथक् टिप्पण हैं। इसका झुलसा प्रेमीजीके लेखसे स्पष्ट हो ही जाता है। पर टिप्पण-लेखकने श्रीचन्द्रकृत टिप्पणके ‘श्रीविक्रमादित्य’ वाले प्रशस्तिलेखके अन्तमें ‘अम-वशा’ इति उत्तरपुराणटिप्पणकं प्रभाचन्द्राचार्यविरचितं समाप्तम्’ लिख दिया है। इसी लिए डॉ० पी० एल० वैद्य, प्रो० हीराळजी तथा पं० कैलाशचन्द्रजीने अमवशा प्रभाचन्द्रकृत टिप्पणका रचना काल संवत् १०८० समझ लिया है। अतः इस भ्रान्त आधारसे प्रभाचन्द्रके समयकी उत्तरावधि सन् १०२० नहीं ठह-राई जा सकती। अब हम प्रभाचन्द्रके समयकी निश्चित अवधिके साधक कुछ प्रमाण उपस्थित करते हैं—

१—प्रभाचन्द्रने पहिले प्रमेयकमलमार्तण्ड बनाकर ही न्यायकुमुदचन्द्रकी रचना की है। मुद्रित प्रमेयकमलमार्तण्डके अन्तमें “श्री मोजदेवराज्ये श्रीमद्भारानिवा-सिना परापरपरमेष्ठिपदप्रणामोपाजितामलपुष्पनिराकृतनिखिलमलकलङ्घेन श्रीमत्प्रभा-चन्द्रपण्डितेन निखिलप्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्योतिपरीक्षासुखपदमिदं विद्वत्तमिति ।” यह पुष्पिकालेख पाया जाता है। न्यायकुमुदचन्द्रकी कुछ प्रतियोंमें उक्त पुष्पिकालेख ‘श्रीमोजदेवराज्ये’ की जगह ‘श्रीजयसिंहदेवराज्ये’ पदके साथ जैसाका तैसा उपलब्ध है। अतः इस स्पष्ट लेख से प्रभाचन्द्रका समय जयसिंहदेवके राज्यके कुछ वर्षों तक, अन्ततः सन् १०६५ तक माना जा सकता है। और यदि प्रभाचन्द्रने ८५ वर्षकी आयु पाई हो तो उनकी पूर्वावधि सन् १८० सानी जानी चाहिए।

श्रीमान् मुख्तारसा० तथा पं० कैलाशचन्द्रजी प्रमेयकमल० और न्यायकुमुद-चन्द्रके अन्तमें पाए जानेवाले उक्त ‘श्रीमोजदेवराज्ये’ और ‘श्री जयसिंहदेवराज्ये’ आदि प्रस्तिशेषश्लोकोंको स्वयं प्रभाचन्द्रकृत नहीं मानते। मुख्तारसा० इस प्रशस्ति-वाक्यको टीकाटिप्पणकार द्वितीय प्रभाचन्द्रका मानते हैं तथा पं० कैलाशचन्द्रजी

१ देखो पं० नाथूरामजी प्रेमी लिखित ‘श्रीचन्द्र और प्रभाचन्द्र’ शीर्षक लेख अनेकान्तो वर्ष ४ किरण १। २ महापुराणकी प्रस्तावना पृ० XIV। ३ रत्नकरण्ड-प्रस्तावना पृ० ५९-६०। ४ न्यायकुमुदचन्द्र प्रथमभागकी प्रस्तावना पृ० १२२।

इसे भीछेके किसी व्यक्तिकी करता बताते हैं । पर प्रशस्तिवाक्य को प्रभाचन्द्र-  
कृत नहीं माननेमें दोनोंके आधार जुदे जुदे हैं । मुस्तारसा० प्रभाचन्द्रको  
जिनसेन के पहिलेका विद्वान् मानते हैं, इसलिए 'भोजदेवराज्ये' आदिवाक्य  
वे स्वयं उन्हीं प्रभाचन्द्रका नहीं मानते । पं० कैलाशचन्द्रजी प्रभाचन्द्रको  
इंसाकी १० वीं और ११ वीं शताब्दीका विद्वान् मानकर भी महापुराणके  
टिप्पणकार श्रीचन्द्रके टिप्पणके अन्तिमवाक्यको अवशय प्रभाचन्द्रकृत टिप्प-  
णका अन्तिमवाक्य समझ लेनेके कारण उक्त प्रशस्तिवाक्योंको प्रभाचन्द्रकृत  
नहीं मानना चाहते । मुस्तारसा० ने एक हेतु यह भी दिया है कि-प्रमेयकमल-  
मार्तण्डकी कुछ प्रतियों में यह अन्तिमवाक्य नहीं पाया जाता । और इसके लिए  
भाण्डारकर इन्टीक्यूटकी प्राचीन प्रतियोंका हवाला दिया है । मैंने भी इस  
ग्रन्थका पुनः सम्पादन करते समय जैनसिद्धान्तभवन आराकी प्रतिके पाठा-  
न्तर लिए हैं । इसमें भी उक्त 'भोजदेवराज्ये' वाला वाक्य नहीं है । इसी तरह  
न्यायकुमुदचन्द्रके सम्पादनमें जिन आ०, ब०, अ०, और ना० प्रतियोंका उपयोग  
किया है, उनमें आ० और ब० प्रतिमें 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' वाला प्रशस्ति  
श्लोक नहीं है । हाँ, मा० और अ० प्रतियाँ, जो ताड़पत्र पर लिखी हैं, उनमें  
'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' वाला प्रशस्तिवाक्य है । इनमें मा० प्रति शालिवाहनशक  
१७६४ की लिखी हुई है । इस तरह प्रमेयकमलमार्तण्डकी किन्हीं प्रतियोंमें उक्त  
प्रशस्तिवाक्य नहीं है, किन्हींमें 'श्रीपद्मनन्दि' श्लोक नहीं है तथा कुछ प्रतियोंमें  
सभी श्लोक और प्रशस्ति वाक्य हैं । न्यायकुमुदचन्द्रकी कुछ प्रतियोंमें 'जयसिंह-

१ रत्नकारण्ड० प्रस्तावना पृ० ६० । २ देखो इनका परिचय न्यायकु० अ० भाग के  
सम्पादकीयमें ।

३ पं० नाथूरामजी प्रेमी अपनी नोटबुकके आधारसे सूचित करते हैं कि—“भाण्डा-  
रकर इन्टीक्यूटकी नं० ८३६ ( सन् १८७५-७६ ) की प्रतिमें प्रशस्तिका 'श्रीपद्म-  
नन्दि' वाला श्लोक और 'भोजदेवराज्ये' वाक्य नहीं । वही की नं० ६३८ ( सन्  
१८७५-७६ ) वाली प्रतिमें 'श्री पद्मनन्दि' श्लोक है पर 'भोजदेवराज्ये' वाक्य नहीं  
है । पहिली प्रति संवत् १४८९ तथा दूसरी संवत् १७९५ की लिखी हुई है ।”  
वीरवाणीविलास भवनके अध्यक्ष पं० लोकनाथ पार्श्वनाथशास्त्री अपने यहाँ की ताड़प-  
त्रकी दो पूर्ण प्रतियोंको देखकर लिखते हैं कि—“प्रतियोंकी अन्तिम प्रशस्तिमें मुद्रितपु-  
स्तकानुसार प्रशस्ति श्लोक पूरे हैं और 'श्री भोजदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना' आदि  
वाक्य हैं । प्रमेयकमलमार्तण्डकी प्रतियोंमें बहुत शैथिल्य है, परन्तु करीब ६०० वर्ष  
पहिले लिखित होगी । उन दोनों प्रतियोंमें शकसंवत् नहीं है ।” सोलापुरकी प्रतिमें  
“श्रीभोजदेवराज्ये” प्रशस्ति नहीं है । दिल्लीकी आधुनिक प्रतिमें भी उक्तवाक्य नहीं  
है । अनेक प्रतियोंमें प्रथम अध्यायके अन्तमें पाप जानेवाले “सिद्ध सर्वजनप्रबोध”  
श्लोककी व्याख्या नहीं है । रुन्दौरकी लुप्तोपलब्धकी प्रतिमें प्रशस्तिवाक्य है और उक्त  
श्लोककी व्याख्या भी है । मुरादकी प्रतिमें 'भोजदेवराज्ये' प्रशस्ति नहीं है, पर चारों  
प्रशस्तिश्लोक हैं ।

देवराज्ये' प्रशस्तिवाक्य नहीं है। श्रीमान् मुख्तारसा० प्रायः इसीसे उक्त प्रशस्तिवाक्योंको प्रमाचन्द्रकृत नहीं मानते।

इसके विषयमें मेरा यह वक्तव्य है कि—लेखक प्रमादवश प्रायः मौजूद पाठ तो छोड़ देते हैं पर किसी अन्यकी प्रशस्ति अन्यग्रन्थमें लगानेका प्रयत्न कम करते हैं। लेखक आखिर नकल करनेवाले लेखक ही तो हैं, उनमें इतनी बुद्धिमानीकी भी कम संभावना है कि वे 'श्री भोजदेवराज्ये' जैसी सुन्दर गद्य प्रशस्तिको खकपोलकल्पित करके उसमें जोड़ दें। जिन प्रतियोंमें उक्त प्रशस्ति नहीं है तो संमझना चाहिए कि लेखकोंके प्रमादसे उनमें वह प्रशस्ति लिखी ही नहीं गई। जब अन्य अनेक प्रमाणोंसे प्रमाचन्द्रका समय करीब करीब भोजदेव और जयसिंहके राज्यकाल तक पहुँचता है तब इन प्रशस्तिवाक्योंको टिप्पणकारकृत या किसी पीछे होनेवाले व्यक्तिकी करतूत कहकर नहीं ढाला जा सकता। मेरा यह विश्वास है कि 'श्रीभोजदेवराज्ये' या 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' प्रशस्तियाँ सर्वप्रथम प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमदचन्द्रके रचयिता प्रमाचन्द्रने ही बनाई हैं। और जिन जिन ग्रन्थोंमें ये प्रशस्तियाँ पाई जाती हैं वे प्रसिद्ध तर्कग्रन्थकार प्रमाचन्द्र के ही ग्रन्थ होने चाहिए।

२—यापनीयसंचाग्रणी शाकटायनाचार्यने शाकटायन व्याकरण और अमोघवृत्तिके सिवाय केवलभुक्ति और बीभुक्ति प्रकरण लिखे हैं। शाकटायनने अमोघवृत्ति, महाराज अमोघवर्षके राज्यकाल (ई० ८१४ से ८७७) में रची थी। आ० प्रमाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमदचन्द्रमें शाकटायनके इन दोनों प्रकरणोंका खंडन आनुपूर्वसे किया है। न्यायकुसुमदचन्द्रमें बीभुक्तिप्रकरणसे एक कारिका भी उद्धृत की है। अतः प्रमाचन्द्रका समय ई० ९०० से पहिले नहीं माना जा सकता।

३—सिद्धसेनदिवाकरके न्यायावतारपर सिद्धविगणिकी एक वृत्ति उपलब्ध है। हम 'सिद्धवि और प्रमाचन्द्र' की तुलना में बता आए हैं कि प्रमाचन्द्रने न्यायावतारके साथ ही साथ इस वृत्तिको भी देखा है। सिद्धविने ई० ९०६ में अपनी उपसमितभवनप्रपञ्चाकथा बनाई थी। अतः न्यायावतारवृत्तिके द्रष्टा प्रमाचन्द्रका समय सन् ९१० के पहिले नहीं माना जा सकता।

४—भासर्वज्ञका न्यायसार ग्रन्थ उपलब्ध है। कहा जाता है कि इसपर भासर्वज्ञकी खोपज्ञ न्यायभूषणा नामकी वृत्ति थी। इस वृत्तिके नामसे उत्तरकालमें इनकी सी 'भूषण' रूपमें प्रसिद्धि हो गई थी। न्यायलीलावतीकारके कथनसे ज्ञात होता है कि भूषण कियाको संयोग रूप मानते थे। प्रमाचन्द्रने न्यायकुसुमदचन्द्र (पृ० २८२) में भासर्वज्ञके इस मतका खंडन किया है। प्रमेयकमलमार्तण्डके छठवे अध्यायमें जिन विशेष्यासिद्ध आदि हेत्वाभासोंका निरूपण है वे सब न्यायसारसे ही लिए गए हैं। स्व० डॉ० शतीशचन्द्र विद्याभूषण इनका समय

ई० ९०० के लगभग मानते हैं। अतः प्रभाचन्द्रका समय भी ई० ९०० के बाद ही होना चाहिए।

५-आ० देवसेनने अपने दर्शनसार ग्रंथ (रचनासमय ९९० वि० ९३३ ई०) के बाद भावसंग्रह ग्रंथ बनाया है। इसकी रचना संभवतः सन् ९४० के आसपास हुई होगी। इसकी एक 'नोकम्मकम्महारो' गाथा प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुमदर्शनमें उद्धृत है। यदि यह गाथा स्वयं देवसेनकी है तो प्रभाचन्द्रका समय सन् ९४० के बाद होना चाहिए।

६-आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमल० और न्यायकुसुम० बनानेके बाद शब्दाम्भोजमास्कर नामका जैनेन्द्रन्यास रचा था। यह न्यास जैनेन्द्रमहावृत्तिके बाद इसीके आधारसे बनाया गया है। जै 'अभयनन्दि और प्रभाचन्द्र' की तुलना (पृ० ३९) करते हुए लिखा आया है कि जैमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिके पुत्र अभयनन्दिने ही यदि महावृत्ति बनाई है तो इसका रचनाकाल अनुमानतः ९६० ई० होना चाहिए। अतः प्रभाचन्द्रका समय ई० ९६० से पहिले नहीं माना जा सकता।

७-पुष्पदन्तकृत अपभ्रंशभाषाके महापुराण पर प्रभाचन्द्रने एक टिप्पण रचा है। इसकी प्रशस्ति रत्नकरणश्रावकाचार की प्रस्तावना (पृ० ६१) में दी गई है। यह टिप्पण जयसिंहदेवके राज्यकालमें लिखा गया है। पुष्पदन्तने अपना महापुराण सन् ९६५ ई० में समाप्त किया था। टिप्पणकी प्रशस्तिसे तो यही मालूम होता है कि प्रसिद्ध प्रभाचन्द्र ही इस टिप्पणकर्ता हैं। यदि यही प्रभाचन्द्र इसके रचयिता हैं, तो कहना होगा कि प्रभाचन्द्रका समय ई० ९६५ के बाद ही होना चाहिए। यह टिप्पण इन्होंने न्यायकुसुमदर्शनकी रचना करके लिखा होगा। यदि यह टिप्पण प्रसिद्ध तर्कग्रन्थकार प्रभाचन्द्रका न माना जाय तब भी इसकी प्रशस्तिके श्लोक और पुष्पिकालेख, जिनमें प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमदर्शनके प्रशस्तिश्लोकोंका एवं पुष्पिकालेखका पूरा पूरा अनुकरण किया गया है, प्रभाचन्द्रकी उत्तरावधि जयसिंहके राज्य कालतक निश्चित करनेमें साधक तो हो ही सकते हैं।

८-श्रीधर और प्रभाचन्द्रकी तुलना करते समय हम बता आए हैं कि प्रभाचन्द्रके ग्रन्थों पर श्रीधरकी कन्दली भी अपनी आभा दे रही है। श्रीधरने कन्दली टीका ई० सन् ९९१ में समाप्त की थी। अतः प्रभाचन्द्रकी पूर्वावधि ई० ९९० के करीब मानना और उनका कार्यकाल ई० १०२० के लगभग मानना संगत मालूम होता है।

९-श्रवणवैजोलाके लेख नं० ४० (६४) में एक पद्मनन्दिसैद्धान्तिकका उल्लेख है और इन्हींके विष्णु कुलभूषणके सधर्मा प्रभाचन्द्रकी शब्दाम्भोजमास्कर और प्रथिततर्कग्रन्थकार लिखा है—

१ देखो महापुराणकी प्रस्तावना।



“अविद्वकर्णादिकपद्मनन्दिसैद्धान्तिकाख्योऽजनिं यस्य लोके ।

कौमारदेवव्रतिताप्रसिद्धिर्जीयान्तु सो ज्ञाननिधिस्त घोरः ॥ १५ ॥

तच्छिष्यः कुलभूषणाख्ययतिपञ्चारित्रवारांनिधिः,

सिद्धान्ताम्बुधिपारगो नतविनेवस्तत्सधर्मो महान् ।

शब्दाम्भोरुहभास्करः प्रथिततर्कग्रन्थकारः प्रभा-

• चन्द्राख्यो मुनिराजपण्डितवरः श्रीकुण्डकुन्दान्वयः ॥ १६ ॥”

इस लेखमें वर्णित प्रभाचन्द्र, शब्दाम्भोरुहभास्कर और प्रथिततर्कग्रन्थकार विशेषणोंके बलसे शब्दाम्भोजभास्कर नामक जैनग्रन्थास और प्रमेयकमलमार्तण्ड न्यायकुमुदचन्द्र आदि ग्रन्थोंके कर्ता प्रस्तुत प्रभाचन्द्र ही हैं । बबला-टीका पु० २ की प्रस्तावनामें ताड़पत्रीय प्रतिका इतिहास बताते हुए प्रो० हीरा-लालजीने इस शिलालेखमें वर्णित प्रभाचन्द्रके समय पर सयुक्तिक ऐतिहासिक प्रकाश डाला है । उसका सारांश यह है—“उक्त शिलालेखमें कुलभूषणसे आगेकी शिष्यपरम्परा इस प्रकार है—कुलभूषणके सिद्धान्तवारांनिधि सद्गत कुलचन्द्र नामके शिष्य हुए, कुलचन्द्रदेवके शिष्य माघनन्दि मुनि हुए, जिन्होंने कोलापुरमें तीर्थ स्थापन किया । इनके आवक शिष्य थे—सामन्तकेदार नाकरस, सामन्त निम्बदेव और सामन्त कामदेव । माघनन्दिके शिष्य हुए—गण्डविभुकादेव, जिनके एक छात्र सेनापति भरत थे, व दूसरे शिष्य मानुकीर्ति और देवकीर्ति, आदि । इस शिलालेखमें बताया है कि महामण्डलाचार्य देवकीर्ति पंडितदेवने कोलापुरकी रूपनारायण वसतिके अवीन केळंगरेय प्रतापपुरका पुनरुद्धार कराया था, तथा जिननाथपुरमें एक दानशाला स्थापित की थी । उन्होंने अपने गुरुकी परोक्ष विनयके लिए महाप्रधान सर्वाधिकारि हिरिय भंडारी, अभिनवगह्वदंडनायक श्री हुल्लराजने उनकी निषथा निर्माण कराई, तथा गुरुके अन्य शिष्य लक्ष्मणनन्दि, माधव और त्रिभुवनदेवने महादान व पूजाभिषेक करके प्रतिष्ठा की । देवकीर्तिके समय पर प्रकाश डालने वाला शिलालेख नं० ३९ है । इसमें देवकीर्तिकी प्रशस्तिके अतिरिक्त उनके स्वर्गवासका समय शक १०८५ सुभानु संवत्सर आषाढ शुक्ल ९ बुधवार सूर्योदयकाल बतलाया गया है । और कहा गया है कि उनके शिष्य लक्ष्मणनन्दि माधवचन्द्र और त्रिभुवनमल्लने गुरुमूर्तिसे उनकी निषथाकी प्रतिष्ठा कराई । देवकीर्ति पद्मनन्दिसे पाँच पीढी तथा कुलभूषण और प्रभाचन्द्रसे चार पीढी बाद हुए हैं । अतः इन आचार्योंको देवकीर्तिके समयसे १००—१२५ वर्ष अर्थात् शक ९५० (ई० १०२८) के लगभग हुए मानना अनुचित न होगा । उक्त आचार्योंके कालनिर्णयमें सहायक एक और प्रमाण मिलता है—कुलचन्द्र मुनिके उत्तराधिकारी माघनन्दि कोलापुरीय कहे गए हैं । उनके गृहस्थ शिष्य निम्बदेव सामन्तका उल्लेख मिलता है जो शिलाहारनरेश गंडरादित्यदेवके एक सामन्त थे । शिलाहार गंडरादित्यदेवके उल्लेख शक सं० १०३० से १०५८ तक के लेखों में पाए जाते हैं । इससे भी पूर्वोक्त काल-निर्णयकी पुष्टि होती है ।”

यह विवेचन शक सं० १०८५ में लिखे गए शिलालेखोंके आधारसे किया गया है। शिलालेखकी वस्तुओंका ध्यानसे समीक्षण करने पर यह प्रश्न होता है कि जिस तरह प्रभाचन्द्रके सधर्मा कुलभूषणकी शिष्यपरम्परा दक्षिण प्रान्तमें चली उस तरह प्रभाचन्द्रकी शिष्य परम्पराका कोई उल्लेख क्यों नहीं मिलता? मुझे तो इसका संभाव्य कारण यही मालूम होता है कि पद्मनन्दके एक शिष्य कुलभूषण तो दक्षिणमें ही रहे और दूसरे प्रभाचन्द्र उत्तर प्रातमें आकर धारा नगरीके आसपास रहे हैं। यही कारण है कि दक्षिणमें उनकी शिष्य परम्पराका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस शिलालेखीय अकगणनासे निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि प्रभाचन्द्र भोजदेव और जयसिंह दोनोंके समयमें विद्यमान थे। अतः उनकी पूर्ववधि सन् ९९० के आसपास माननेमें कोई बाधक नहीं है।

१०-बादिराजसूरिने अपने पार्श्वचरितमें अनेकों पूर्वाचार्योंका स्मरण किया है। पार्श्वचरित शक सं० ९४७ (ई० १०२५) में बनकर समाप्त हुआ था। इन्होंने अकलंकदेवके न्यायविनिश्चय प्रकरण पर न्यायविनिश्चयविवरण या न्यायविनिश्चयतात्पर्यावद्योतनी व्याख्यानरत्नमाला नामकी विस्तृत टीका लिखी है। इस टीकामें पचासों जैन-जैनतर आचार्योंके ग्रन्थोंसे प्रमाण उद्धृत किए गए हैं। संभव है कि बादिराजके समयमें प्रभाचन्द्रकी प्रसिद्धि न हो पाई हो, अन्यथा तर्कशास्त्रके रसिक बादिराज अपने इस वशस्वी ग्रन्थकारका नामोल्लेख किए बिना न रहते। यद्यपि ऐसे नकारात्मक प्रमाण स्वतन्त्रभावसे किसी आचार्यके समयके साधक या बाधक नहीं होते फिर भी अन्य प्रबल प्रमाणोंके प्रकाशमें इन्हें प्रसङ्गसाधनके रूपमें तो उपस्थित किया ही जा सकता है। यही अधिक संभव है कि बादिराज और प्रभाचन्द्र समकालीन और सम-व्यक्तिलशाही रहे हैं अतः बादिराजने अन्य आचार्योंके साथ प्रभाचन्द्रका उल्लेख नहीं किया है।

अब हम प्रभाचन्द्रकी उत्तरावधिके नियामक कुछ प्रमाण उपस्थित करते हैं—

१-ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके विद्वान् अभिनवधर्मभूषणने न्यायकीपिका (पृ० १६) में प्रमेयकमलभार्तृण्डक उल्लेख किया है। इन्होंने अपनी न्यायकीपिका वि० सं० १४४२ (ई० १३८५) में बनाई थी\*। ईसाकी १३ वीं शताब्दीके विद्वान् मल्लिषेणने अपनी स्याद्वादमञ्जरी (रचना समय ई० १२९३) में न्यायकुसुदचन्द्रका उल्लेख किया है। ईसाकी १२ वीं शताब्दीके विद्वान् आ० मलयगिरिने आवश्यकनिर्मुक्तिटीका (पृ० ३७१ A.) में लवीयक्यकी एक कारिकाका व्याख्यान करते हुए 'टीकाकारके' नामसे न्यायकुसुदचन्द्रमें की गई उक्त कारिकाकी व्याख्या उद्धृत की है। ईसाकी १२ वीं शताब्दीके विद्वान् देवभद्रने न्यायावतारटीकाटिप्पण (पृ० २१, ७६) में तथा माणिक्यचन्द्र ने काव्यप्रकाश की टीका (पृ० १४) में प्रभाचन्द्र और उनके न्यायकुसुदचन्द्रका नामोल्लेख किया है। अतः इन १२ वीं शताब्दी तकके

\* स्वामी समन्तभद्र पृ० २२७।

विद्वानों के उल्लेखों के आधारसे यह प्रामाणिकरूपसे कहा जा सकता है कि प्रभाचन्द्र ई० १२ वीं शताब्दीके बाद के विद्वान् नहीं हैं ।

२-रत्नकरण्डभाषकाचार और समाधितन्त्र पर प्रभाचन्द्रकृत टीकाएँ उपलब्ध हैं । पं० जुगलकिशोर जी सुख्तार \* ने इन दोनों टीकाओंको एक ही प्रभाचन्द्रके द्वारा रची हुई सिद्ध किया है । आपके मतसे ये प्रभाचन्द्र प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके रचयितासे भिन्न हैं । रत्नकरण्डटीकाका उल्लेख पं० आशाधरजी द्वारा अनागारधर्माश्रित टीका ( अ० ८ खो० १३ ) में किये जाने के कारण इस टीकाका रचना काल वि० सं० १३०० से पहिलेका अनुमान किया गया है; क्योंकि अनागारधर्माश्रित टीका वि० सं० १३०० में बनकर समाप्त हुई थी । अन्ततः सुख्तारसा० इस टीकाका रचनाकाल विक्रमकी १३ वीं शताब्दीका मध्यभाग मानते हैं । अस्तु, फिलहाल सुख्तारसा० के निर्णयके अनुसार इसका रचनाकाल वि० १२५० ( ई० ११९३ ) ही मान कर प्रस्तुत विचार करते हैं ।

रत्नकरण्डभाषकाचार ( पृ० ६ ) में कैवलिकवलाहारके खंडनमें न्यायकुसुदचन्द्रगत शब्दावलीका पूरा पूरा अनुसरण करके लिखा है कि-“तदलमतिप्रसङ्गेन प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे प्रपञ्चतः प्ररूपणात् ।” इसी तरह समाधितन्त्र टीका ( पृ० १५ ) में लिखा है कि-“यैः पुनर्योगसांख्यैः मुक्तौ तत्प्रच्युतिरात्मनोऽभ्युपगता ते प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे च मोक्षविचारे विस्तरतः प्रत्याख्याताः ।” इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्र ग्रन्थ इन टीकाओंसे पहिले रचे गए हैं । अतः प्रभाचन्द्र ईसा की १२ वीं शताब्दीके बादके विद्वान् नहीं हैं ।

३-बादिदेवसूरिका जन्म वि० सं० ११४३ तथा स्वर्गवास वि० सं० १२२२ में हुआ था । ये वि० सं० ११७४ में आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए थे । संभव है इन्होंने वि० सं० ११७५ ( ई० १११८ ) के लगभग अपने असिद्ध ग्रन्थ स्याद्वावरत्नाकरकी रचना की होगी । स्याद्वावरत्नाकरमें प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रका न केवल शब्दार्थानुसरण ही किया गया है किन्तु कवलाहारसमर्थन-प्रकरणमें तथा प्रतिबिम्ब चर्चामें प्रभाचन्द्र और प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डका नामोल्लेख करके खंडन भी किया गया है । अतः प्रभाचन्द्रके समयकी उत्तरावधि अन्ततः ई० ११०० सुनिश्चित हो जाती है ।

४-जैनेन्द्रव्याकरणके अभयचन्द्रिसम्मत सूत्रपाठ पर श्रुतकीर्तिने पंचवस्तु-प्रक्रिया बनाई है\* । श्रुतकीर्ति कनडीचन्द्रप्रमचरित्रके कर्ता अगलकविके गुरु थे । अगलकविने शक १०११ ई० १०८९ में चन्द्रप्रमचरित्र पूर्ण किया था । अतः श्रुतकीर्तिका समय भी लगभग ई० १०७५ होना चाहिए । इन्होंने अपनी प्रक्रियामें एक न्यास ग्रन्थका उल्लेख किया है । संभव है कि यह प्रभाचन्द्रकृत

\* रत्नकरण्डभाषकाचार सूत्रिका पृ० ६६ से ।

१ देखो-इसी प्रस्तावनाका ‘श्रुतकीर्ति और प्रभाचन्द्र’ अंश, पृ० ४२ ।

॥ प्रमेयकमलमार्तण्डके प्रथमसंस्करणके सम्पादक पं० बंशीधरजी शास्त्री सोल-  
पुरने उक्त संस्करण के उपोद्घातमें श्रीगोणदेवराज्ने प्रशस्तिके अनुसार प्रभाचन्द्रका  
समय ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दी सूचित किया है । और आपने इसके समर्थनके लिये  
'नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रनटीका' गायार्णोका प्रमेयकमलमार्तण्डमें उद्धृत होना' यह प्रमाण  
उपस्थित किया है । पर आपका यह प्रमाण अत्रान्त नहीं है; प्रमेयकमलमार्तण्डमें  
'विग्गहग्रहमावण्ण' और 'डोयायासपपेसे' गायार्ण उद्धृत हैं । पर ये गायार्ण नेमिचन्द्र-  
कृत नहीं हैं । पहिली गाथा धवलटीका (रचनाकाल ई० ८१६) में उद्धृत है  
और उमास्वातिकृत आनकप्रशस्तिमें भी पाई जाती है । दूसरी गाथा पूज्यपाद (ई०  
६ मी.) कृत सवार्थसिद्धिमें उद्धृत है । अतः इन प्राचीन गाथाओंको नेमिचन्द्रकृत नहीं  
माना जा सकता । अवश्य ही इन्हें नेमिचन्द्रने जीवकाण्ड और द्रव्यसमग्रमें सगृहीत  
किया है । अतः इन गाथाओंका उद्धृत होना ही प्रभाचन्द्रके समयको ११ वीं सदी  
नहीं साध सकता ।

है। यहाँ उनके शब्दाम्भोजभास्कर ( जैनैन्द्रव्याकरण महान्यास ); प्रवचनसारस-  
रोजभास्कर ( प्रवचनसारटीका ) और गद्यकथाकोश का परिचय दिया जाता है।  
महापुराणटिप्पण आदि भी इन्हींके ग्रन्थ हैं। इस परिचयके पहिले हम 'शाकटा-  
यनन्यास' के कर्तुल पर विचार करते हैं—

भाई पं० कैलाशचन्द्रजी साहनीने शिलालेख तथा किंवदन्तियोंके आधारसे  
शाकटायनन्यासको प्रभाचन्द्रकृत लिखा है\* । शिमोगा जिलेके नगरतालुकके  
शिलालेख नं० ४६ ( एपि० कर्ना० पु० ८ भा० २ पृ० २६६-२७३ ) में  
प्रभाचन्द्रकी प्रशंसापरक ये दो श्लोक हैं—

“भाणिक्यनन्दिजिनराजवाणीप्राणाधिनाथः परवादिमर्दौ ।

चित्रं प्रभाचन्द्र इह क्षमायां मार्तण्डवृद्धौ नितरां व्यवीपित ॥

‘सुखि...न्यायकुसुदचन्द्रोदयकृते नमः ।

शाकटायनकृत्सूत्रन्यासकर्त्रे त्रीन्दवे ॥”

जैनसिद्धान्तमवन आरामें वर्षमानमुनिकृत दशमलयादिमहाशाल है। उसमें  
भी ये श्लोक हैं। उनमें ‘सुखि...’ की जगह ‘सुखीशे’ तथा ‘त्रीन्दवे’ के  
स्थानमें ‘प्रमेन्दवे’ पाठ है। यह शिलालेख १६ वीं शताब्दीका है और वर्ष-  
मानमुनिका समय भी १६ वीं शताब्दी ही है। शाकटायनन्यासके प्रथम दो  
अध्यायोंकी प्रतिलिपि स्याद्रादविद्यालयके सरस्वतीमठने मौजूद है। उसको  
सरसरी तौर से पढ़ने पर उसे इसके प्रभाचन्द्रकृत होनेमें निमललिखित कारणों  
से सन्देह उत्पन्न हुआ है—

\* न्यायकुसुदचन्द्र प्रथमभागकी प्रस्तावना पृ० १२५ ।

† इस शिलालेखके अनुवादमें राक्ष सा० ने आ० पूज्यपादकी ही न्यायकुसुद-  
चन्द्रोदय और शाकटायनन्यासका कर्ता लिख दिया है। वह गलती आपसे इसलिये हुई  
कि इस श्लोकके बाद ही पूज्यपादकी प्रशंसा करनेवाला एक श्लोक है, उसका अन्वय  
आपने भूलसे “सुखि” इत्यादि श्लोकके साथ कर दिया है। वह श्लोक यह है—

“न्यासं जैनैन्द्रसंज्ञं सकलबुधनुतं पाणिनीयस्य श्रुयो

न्यासं शब्दावतारं मनुजततिहितं वैधशास्त्रं च कृत्वा ।

यस्तत्त्वार्थस्य टीकां व्यरचयदिह तां भात्यसौ पूज्यपाद-

स्वामी सुपालवन्धः स्वपरहितवचः पूर्णदृग्बोधवृत्तः ॥”

भोडी सी सप्तशतीसे विचार करने पर यह स्पष्ट मालूम होता जाता है कि ‘सुखि’  
इत्यादि श्लोकके चतुर्थ्यन्त पदोंका ‘न्यास’ वाले श्लोकसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। ज०  
शीतलप्रसादजीने ‘भद्रास और मैसूरप्रान्तके सारक’ में तथा प्रो० हीरालालजीने ‘जैन-  
शिलालेख संग्रह’ की सूचिका (पृ० १४१) में भी राक्ष सा० का अनुसरण करके  
इसी गलतीको दुहराया है।

१-इस ग्रन्थमें मंगलश्लोक नहीं है जब कि प्रभाचन्द्र अपने प्रत्येक ग्रन्थमें मंगलचरण नियमित रूपसे करते हैं\* ।

२-सन्धियोंके अन्तमें तथा ग्रन्थमें कहीं भी प्रभाचन्द्रका नामोल्लेख नहीं है जब कि प्रभाचन्द्र अपने प्रत्येक ग्रन्थमें 'इति प्रभाचन्द्रविरचिते' आदि पुष्पिकालेख या 'प्रमेन्दुर्जितः' आदि रूप से अपना नामोल्लेख करनेमें नहीं चूकते ।

३-प्रभाचन्द्र अपनी टीकाओंके प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुसुमदचन्द्र, शब्दा-म्भोजभास्कर आदि नाम रखते हैं जब कि इस ग्रन्थके इन श्लोकोंमें इसका कोई खास नाम सूचित नहीं होता-

“शब्दानां शासनाख्यस्य शास्त्रस्यान्वयनामतः ।

प्रसिद्धस्य महाभोषकृतेरपि विशेषतः ॥

सूत्राणां च विवृतिर्लिख्यते च यथामति ।

ग्रन्थस्यास्य च न्यासेति (?) क्रियते नामनामतः ॥”

४-शाकटायन यापनीयसचके आचार्य ये और प्रभाचन्द्र ये कट्टर दिगम्बर । इन्होंने शाकटायनके स्त्रीशक्ति और केवलशुक्तिप्रकरणोंका खंडन भी किया है । अतः शाकटायनके व्याकरणपर प्रभाचन्द्रके द्वारा न्यास लिखा जाना कुछ समझमें नहीं आता ।

५-इस न्यासमें शाकटायनके लिए प्रयुक्त 'संघाधिपति, महाश्रमणसंघप' आदि विशेषणों का समर्थन है । यापनीय आचार्यके इन विशेषणोंके समर्थनकी आशा प्रभाचन्द्र द्वारा नहीं की जा सकती । यथा-

“एवंभूतमिदं शास्त्रं चतुरध्यायरूपतः, संघाधिपतिः श्रीमानाचार्यः शाकटायनः ।

महतारभते तत्र महाश्रमणसंघपः, श्रमेण शब्दतरुं च विशदं च विशेषतः ॥

महाश्रमणसंघाधिपतिरित्यनेन मनःसमाधानमाख्यायते । विषयेषु विक्षिप्तचेतसो न मनःसमाधिः असमाहितचेतसश्च किं नाम शास्त्रकरणम्, आचार्य इति तु शब्दविद्याया शुद्धं शाकटायन इति अन्वयबुद्धिप्रकर्षः, विशुद्धान्वयो हि शिष्टैरुप-लीयते । महाश्रमणसंघाधिपते. सम्मार्गानुशासनं युक्तमेव...”

६-प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमदचन्द्रमें जैनेन्द्रव्याक-रणसे ही सूत्रोंके उद्धरण दिए हैं जिसपर उनका शब्दाम्भोजभास्कर न्यास है ।

\* मैसूर युनि० में न्यासग्रन्थकी दूसरे अध्यायके चौथे पादके १२४ सूत्र तक की कापी है (नं० A. 605) । उसमें निम्नलिखित मंगलश्लोक है-

“प्रणम्य जयिनः प्रासविश्वव्याकरणश्रियः । शब्दानुशासनस्येयं वृत्तेर्विव-रणोत्तमः ॥ अस्मिन् भाष्याणि भाष्यन्ते वृत्तयो वृत्तिमाभिताः । न्यासा न्यस्ताः कृताः टीकाः पारं पारायणान्यथुः ॥ तत्र वृत्ता (त्या) दावयं मंगलश्लोकः श्रीवीरमश्रुतमित्यादि ॥”

परन्तु इन श्लोकोंकी रचनाबैली प्रभाचन्द्रकृत न्यायकुसुमदचन्द्र आदि के मंगलश्लोकोंसे असन्त विवेक्षण है ।

यदि शाकटायनपर भी उनका न्यास होता तो वे एकाध स्थानपर तो शाकटायनव्याकरणके सूत्र सङ्कृत करते ।

७-प्रभाचन्द्र अपने पूर्वग्रन्थोंका उत्तरग्रन्थोंमें प्रायः उल्लेख करते हैं । यथा न्यायकुमुदचन्द्रमें तत्पूर्वकालीन प्रमेयकमलमार्तण्डका तथा शब्दाम्भोजभास्करमें न्यायकुमुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड दोनोंका उल्लेख पाया जाता है । यदि शाकटायनन्यास उन्होंने प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके पहिले बनाया होता तो प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिमें शाकटायनव्याकरणके सूत्रों के उद्धरण होते और इस न्यासका उल्लेख भी होता । यदि यह उत्तरकालीन रचना है तो इसमें प्रमेयकमल आदिका उल्लेख होना चाहिये या जैसा कि शब्दाम्भोजभास्करमें देखा जाता है ।

८-शब्दाम्भोजभास्करमें प्रभाचन्द्रकी भाषाकी जो प्रसङ्गता तथा प्रावाहिकता है वह इस डुरूह न्यासमें नहीं देखी जाती । इस शैलीवैचित्र्यसे भी इसके प्रभाचन्द्रकृत होनेमें सन्देह होता है । प्रभाचन्द्रने शब्दाम्भोजभास्कर नामका न्यास बनाया था और इसलिये उनकी न्यासकारके रूपसे भी प्रसिद्धि रही है । मालूम होता कि वर्धमानमुनिने प्रभाचन्द्रकी इसी प्रसिद्धिके आधार से, इन्हें शाकटायनन्यासका कर्ता लिख दिया है । मुझे तो ऐसा लगता है कि यह न्यास स्वयं शाकटायनने ही बनाया होगा । अनेक वैयाकरणोंने अपने ही व्याकरण पर न्यास लिखे हैं ।

शब्दाम्भोजभास्कर-भ्रवणवेल्लोलके शिलालेख नं० ४० ( ६४ ) में प्रभाचन्द्रके लिये 'शब्दाम्भोजदिवाकर' विशेषण भी दिया गया है । इस अर्थ-गर्म विशेषणसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र जैसे प्रथिततर्क ग्रन्थोंके कर्ता प्रथिततर्कग्रन्थकार प्रभाचन्द्रही शब्दाम्भोजभास्कर नामक जैनेन्द्रव्याकरण महान्यासके रचयिता हैं । ऐलक पञ्चालाल दि० जैन सरस्वतीभवनकी अधूरी प्रतिके आधारसे इसका ठूक परिचय यहाँ दिया जाता है । यह प्रति संवत् १९८० में देहलीकी प्रतिसे लिखाई गई है । इसमें जैनेन्द्रव्याकरणके मात्र तीन अध्यायका ही न्यास है सो भी बीचमें जगह जगह त्रुटित है । ३९ से ६७ नं० के पत्र इस प्रतिमें नहीं हैं । प्रारम्भके २८ पत्र किसी दूसरे लेखकने लिखे हैं । पत्रसंख्या २२८ है । एक पत्रमें १३ से १५ तक पंक्तियाँ और एक पंक्तिमें ३९ से ४३ तक अक्षर हैं । पत्र बड़ी साइजके हैं ।

मंगलाचरण-

“श्रीपूज्यपादमलङ्कमनन्तबोधम्, शब्दार्थसंज्ञयहरं निखिलेषु बोधम् ।

सच्छब्दलक्षणमशेषमतः प्रसिद्धं वक्ष्ये परिस्पृष्टमलं प्रणिपत्य सिद्धम् ॥ १ ॥

सविस्तरं यद् गुरुभिः प्रकाशितं महामतीनामभिधानलक्षणम् ।

मनोहरैः खल्पपदैः प्रकाश्यते महद्भिरुपदिष्टि याति सर्वापिमानं ( ? )

...तद्वक्तुं कृतशिक्ष ( ? ) श्लाघ्यते तद्धि तस्य ।

किमुक्तमखिलज्ञैर्गर्भाभाणे गणेन्द्रो विविक्तमखिलार्थं श्लाघ्यतेऽतो मुनीन्द्रैः ॥३॥

शब्दानांमनुशासनानि निखिलान्याध्यायतादृनिश्चम्,

यो यः सारतरो विचारचतुरस्रलक्षणो गतः ।

तं स्वीकृत्य तिलोत्तमेव विदुषां चेतश्चमत्कारकः,

सुव्यक्तैरसमैः प्रसन्नवचनैर्न्यासः समारभ्यते ॥ ४ ॥

श्रीपूज्यपादस्वामि (भी) विनेयानां शब्दसाधुत्वासाधुत्वविवेकप्रतिपत्त्यर्थं शब्द-  
लक्षणप्रणयनं कुर्वाणो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकमभिलषन्निष्ठदेवतास्तुतिविषयं  
नमस्कृवंशाह—लक्ष्मीरालन्तिकी यस्य....”

यह न्यास अभयनन्दिनृत जैनेन्द्रमहावृत्तिके बाद बनाया गया है । इसमें  
महावृत्तिके शब्द आनुपूर्वसे के लिए गए हैं और कहीं उनका व्याख्यान भी  
किया है । यथा—

“सिद्धिरनेकान्तात्—प्रकृत्यादिविभागेन व्यवहाररूपा भोजप्राज्ञतया परमार्थतो-  
पेता प्रकृत्यादिविभागेन च शब्दानां सिद्धिरनेकान्ताद् भवतीत्यर्थाधिकार आशा-  
रूपपरिसम्पत्तेर्वेदितव्यः । अस्तित्वनास्तित्वनित्यत्वसामान्यसामानाधिकरण्यविशेषणवि-  
शेष्यादिकोऽनेकः अन्तः स्वभावो यस्मिन् भावे सोऽयमनेकान्तः अनेकान्ता  
इत्यर्थः”—महावृत्ति पृ० ९ ।

“द्विविधा च शब्दानां सिद्धिः व्यवहाररूपा परमार्थरूपा चेति । तत्र प्रकृ-  
तीय (?) विकारागमादिविभागेन रूपा तत्सिद्धिः तद्भेदस्यात्र प्राधान्यात् । भोज-  
प्राज्ञौ(श्चाः) परमार्थतो ये प्रकृत्यादिविभागाः प्रमाणनयादिभिरभिगमोपायैः  
शब्दानां तत्त्वप्रतिपत्तिः परमार्थरूपा सिद्धिः तद्भेदस्यात्र प्राधान्यात्, सामयितेषां  
सिद्धिरनेकान्ताद्भवतीत्येवोऽधिकारः आशाकूपरिसमाप्तेर्वेदितव्यः । अयं कोऽयमने-  
कान्तो नामेत्याह—अस्तित्वनास्तित्वनित्यत्वसामान्यसामानाधिकरण्यविशेषण-  
विशेष्यादिकोऽनेकान्तः स्वभावो यस्यार्थस्यासावनेकान्तः अनेकान्तात्मक इत्यर्थः”—  
शब्दाम्भोजमास्कर पृ० २ A ।

इस अनुल्लासे तथा तृतीयाध्यायके अन्तमें लिखे गए इस श्लोकसे अत्यन्त  
स्पष्ट हो जाता है कि यह न्यास जैनेन्द्रमहावृत्तिके बाद बनाया गया है—

“नमः श्रीवर्धमानाय महते देवनन्दिने ।

प्रभाचन्द्राय गुरवे तस्मै चाभयनन्दिने ॥”

इस श्लोकमें अभयनन्दिनको नमस्कार किया गया है । प्रत्येक पादकी समाप्तिमें  
“इति प्रभाचन्द्रविरचिते शब्दाम्भोजमास्क्रे जैनेन्द्रव्याकरणमहान्यासे द्विती-  
याध्यायस्य तृतीयः पादः” इसी प्रकारके पुष्पिकालेख हैं ।

तृतीय अध्यायके अन्तमें निम्नलिखित पुष्पिका तथा श्लोक है—

“इति प्रभाचन्द्रविरचिते शब्दाम्भोजमास्क्रे जैनेन्द्रव्याकरणमहान्यासे तृती-  
याध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ श्रीवर्धमानाय नमः ॥

सन्मार्गप्रतिबोधको बुधजनैः सस्त्यमानो हठात् ।

अज्ञानान्धतमोपहः क्षितितले श्रीपूज्यपादो महान् ॥



सार्वः सन्ततसत्रिसन्धिनियतः पूर्वोपरानुक्रमः ।  
 गव्दाम्भोजदिवाकरोऽस्तु सहसा नः श्रेयसे यं च वै ॥  
 नमः श्रीवर्धमानाय महते देवनन्दिने ।  
 प्रभाचन्द्राय गुरुवे तस्मै चामयनन्दिने ॥ छ ॥

श्री बासुपूज्याय नमः । श्री नृपतिविक्रमादित्यराज्येन संवत् १९८० मासो-  
 त्तममासे चैत्रशुक्लपक्षे एकादश्यां ११ श्री महावीर संवत् २४४९ । हस्ताक्षर  
 छाजूराम जैन विजेश्वरी लेखक पालम ( सूवा ठेहली )”

जैनेन्द्रव्याकरणके दो सूत्र पाठ प्रचलित हैं—एक तो वह जिस पर ‘अभय-  
 नन्दिने’ महावृत्ति, तथा श्रुतकीर्तिने पञ्चवस्तु नामकी प्रक्रिया बनाई है; और  
 दूसरा वह जिस पर सोमदेवसुरिकृत शब्दार्णवचन्द्रिका है । पं० नाथूरामजी प्रेमीने  
 अनेक पुष्ट-प्रमाणोंसे अभयनन्दिसम्मत सूत्रपाठको ही प्राचीन तथा पूज्यपादकृत  
 मूलसूत्रपाठ सिद्ध किया है । प्रभाचन्द्रने इसी अभयनन्दिसम्मत प्राचीन सूत्रपाठ  
 पर ही अपना यह गव्दाम्भोजभास्कर नामका महान्यास बनाया है ।

आ० प्रभाचन्द्रने इस ग्रन्थको प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रकी  
 रचनाके बाद बनाया है जैसा कि उनके निम्नलिखित वाक्यसे सूचित होता है—

“तदात्मकलं चार्थस्य अध्यक्षतोऽनुमानादेव यथा सिद्ध्यति तथा प्रपञ्चतः  
 प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे च प्ररूपितमिह द्रष्टव्यम् ।”

प्रभाचन्द्र अपने न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ३२९) में प्रमेयकमलमार्तण्ड ग्रन्थ  
 देखनेका अनुरोध इसी तरहके शब्दोंमें करते हैं—“एतच्च प्रमेयकमलमार्तण्डे  
 सप्रपञ्चं प्रपञ्चितमिह द्रष्टव्यम् ।”

व्याकरण जैसे शुद्ध शब्दविषयक इस ग्रन्थमें प्रभाचन्द्रकी प्रसन्न लेखनीसे  
 प्रसूत दर्शनशास्त्रीकी कचित् अर्थप्रधान चर्चा इस ग्रन्थके गौरवको असाधारणतया  
 बढ़ा रही है । इसमें विधिविचार, कारकविचार, लिंगविचार जैसे अनुष्ठे प्रकरण  
 हैं जो इस ग्रन्थको किसी भी दर्शनग्रन्थकी कोटिमें रख सकते हैं । इसमें  
 समन्तसमूहके शुक्तयनुगासन तथा अन्य अनेक आचार्योंके पद्योंको प्रमाण रूपसे

१ देखो—‘जैनेन्द्रव्याकरण और आचार्य देवनन्दी’ लेख, जैनसाहित्य संशोधक  
 माग १ अंक २ ।

२ पठित नाथूखाल शास्त्री इन्दौर सूचित करते हैं कि तुकोगब इन्दौरके ग्रन्थ-  
 भण्डारमें भी गव्दाम्भोजभास्करके तीन ही अध्याय हैं । उसका मंगलचरण तथा अन्तिम  
 प्रशस्ति-लेख वन्देकी प्रतिके ही समान है । पं० सुबलजी शास्त्रीके पत्रसे ज्ञात हुआ  
 है कि कारकलके मठमें भी इसकी प्रति है । इस प्रति में भी तीन अध्यायका न्यास  
 है । प्रेमीजी सूचित करते हैं कि वदईके भवनमें इसकी एक प्राचीन प्रति है उसमें  
 चतुर्थ अध्यायके तीसरे पादके २११ वें सूत्र तकका न्यास है, आगे नहीं । हो  
 सकता है कि यह प्रभाचन्द्रकी अन्तिमकृति ही हो और इसलिये पूर्ण न हो सकी हो ।

उद्धृत किया है। पृ० ९१ में 'विश्वदृष्ट्याऽऽय पुत्रो जनिता' प्रयोगका हृदयग्राही व्याख्यान किया है। इस तरह क्या भाषा, क्या विषय और क्या प्रसन्नशैली, हर एक दृष्टिसे प्रभाचन्द्रका निर्मल और प्रौढ़ पाण्डित्य इस ग्रन्थमें उदात्तभावसे निहित है।

**प्रवचनसारसरोजभास्कर**—यदि प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलको विकसित करनेके लिए मार्तण्ड बनानेके पहिले प्रवचनसारसरोजके विकासार्थ भास्करका उदय किया हो तो कोई अनहोनी बात न होकर अधिक संभव और निश्चित बात मालूम होती है। ( प्रमेय ) कमलमार्तण्ड, ( न्याय ) कुमुदचन्द्र, ( शब्द ) अम्भोजभास्कर जैसे सुन्दर नामोंकी कल्पिका प्रभाचन्द्रनीय बुद्धिने ही ( प्रवचन-सार ) सरोजभास्करका उदय किया है। इस ग्रन्थकी संवत् १५५५ की लिखी हुई जीर्ण प्रति हमारे सामने है। यह प्रति ऐलक पञ्जालाल सरस्वती भवन बम्बईकी है। इसका परिचय संक्षेपमें इस प्रकार है—

पत्रसंख्या ५३, श्लोकसंख्या १७४६, साइज १३×६ । एक पत्रमें १२ पंक्तियां तथा एक पंक्तिमें ४२-४३ अक्षर हैं। लिखावट अच्छी और शुद्धप्राय है। प्रारम्भ—

“ओं नमः सर्वज्ञाय विष्णुनाथः ।

वीरं प्रवचनसारं लिखितार्थं निर्मलजनानन्दम् ।

वक्ष्ये सुखावबोधं निर्वाणपदं प्रणम्यासम् ॥

श्रीकुन्दकुन्दाचार्यः सकललोकोपकारकं मोक्षमार्गमध्ययनरुचिविनेयाश्रयवशेनो-  
पदर्शयितुकामो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं फलमभिलषन्निष्टदेवताविशेषं  
शास्त्रस्यादौ नमस्कुर्वन्नाह ॥ छ ॥ एस सुरासुर...।”

अन्त—“इति श्रीप्रभाचन्द्रदेवविरचिते प्रवचनसारसरोजभास्करे शुभोपयोगा-  
धिकाः समाप्तः ॥ छ ॥ संवत् १५५५ वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे पून्य(र्णि)मायां तिथौ  
गुरुवासरे गिरिपुरे व्या० गुरुषोत्तम लि० ग्रन्थसंख्या षट्चत्वारिंशदधिकानि  
सप्तदशशतानि ॥ १७४६ ॥”

मध्यकी सन्धियोंका पुष्पिकालेख—“इति श्री प्रभाचन्द्रदेवविरचिते प्रवचन-  
सारसरोजभास्करे...” है।

इस टीका में जगह जगह उद्धृत दार्शनिक अवतरण, दार्शनिक व्याख्यापद्धति एवं सरल प्रसन्नशैली इसे न्यायकुमुदचन्द्रादिके रचयिता प्रभाचन्द्रकी कृति सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त हैं। अवतरण—( गा० २।१० ) “नाशोत्पादौ समं यद्व्या-  
मोक्षमौ बुलान्तयोः” ( गा० २।२८ ) “स्वोपात्तकर्मवशाद् भवाद भवान्तरा-  
वाप्तिः संसारः” इनमें दूसरा अवतरण राजवार्तिकका तथा प्रथम किसी वैद

ग्रन्थका है। ये दोनों अवतरण प्रमेयकमल० और न्यायकुसुद० में भी पाए जाते हैं। इस व्याख्याकी दार्शनिक शैलीके नमूने—

( गा० २।१३ ) “यदि हि द्रव्यं स्वयं सदात्मकं न स्यात् तदा स्वयमसदात्मकं सत्तातः पृथग्वा ? तत्राद्यः पक्षो न भवति, यदि सत् सद्रूपं द्रव्यं तदा असद्रूपं भुवं निश्चयेन न तं तत् भवति । कथं केन प्रकारेण द्रव्यं खरविषाणवत् । हवदिपुणो अणुं वा । अथ सत्तातः पुनरन्यद्वा पृथग्भूतं द्रव्यं भवति तदा अतः पृथग्भूतस्यापि सत्त्वे सत्ताकल्पना व्यर्था । सत्तासम्बन्धात्सत्त्वे चान्योन्याश्रयः—सिद्धे हि तत्सत्त्वे सत्तासम्बन्धसिद्धिः, तस्याच्च सम्बन्धसिद्धौ सत्यां तत्सत्त्वसिद्धिरिति । तत्सत्त्वसिद्धिमन्तरेणापि सत्तासम्बन्धे स्वपुण्यादेरपि तत्प्रसङ्गः । तस्मात् द्रव्यं स्वयं सत्ता स्वयमेव सवभ्युपगन्तव्यम् ।” (गा० २।१६) “...तथाहि—द्रवति श्रेण्यत्वाद्द्रवत्तास्त्रान् गुणपर्यायात् गुणपर्यायैर्वा श्रेण्यते हृतं वा द्रव्यमिति । गम्यते उपलभ्यते द्रव्यमनेनेति गुणः । द्रव्यं वा द्रव्यान्तरात् येन विशिष्यते स गुणः । इत्येतस्मादर्थविशेषात् यद् द्रव्यस्य गुणरूपेण गुणरूपेण गुणस्य वा द्रव्यरूपेणाभिवर्ण एव हि अतः प्रावः ।” इन् गाथाओंकी अमृतचन्द्रीय और जयसेनीय टीकाओंसे इस टीकाकी तुलना करने पर इसकी दार्शनिकप्रसृतता अपने आप झलक मारती है न इस टीकाका जयसेनीयटीका पर प्रभाव है और जयसेनीयटीकासे यह निश्चय ही पूर्वकालीन है ।

अमृतचन्द्राचार्यने प्रवचनसारकी जिन ३६ गाथाओंकी व्याख्या नहीं की है प्रायः वे गाथाएँ प्रवचनसारसरोजभास्करमें यथास्थान व्याख्यात हैं। जयसेनीयटीकामें प्रभाचन्द्रका अनुसरण करते हुए इन गाथाओंकी व्याख्या की गई है। हाँ, जयसेनीयटीकामें दो तीन गाथाएँ अतिरिक्त भी हैं। इस टीकाका लक्ष्य है गाथाओंका संक्षेपसे खुलसा करना। परन्तु प्रभाचन्द्र प्रारम्भसे ही दर्शनशास्त्रके विशिष्ट अभ्यासी रहे हैं इसलिए जहाँ ज्ञास अवसर आया जहाँ उन्होंने संक्षेपसे दार्शनिक मुद्दोंका भी निर्देश किया है।

प्रो० ए० एन० उपाध्येने प्रवचनसारकी भूमिकामें भावत्रिसंगीकार श्रुतमुनिके ‘सारत्रयनिपुण प्रभाचन्द्र’ के उल्लेखसे प्रवचनसारसरोजभास्करके कर्ताका समय १४ वीं सदीका प्रारम्भिक भाग सूचित किया है। परन्तु यह संभावना किसी दृढ़ आधार से नहीं की गई है।

जयसेनीय टीकापर इसका प्रभाव होनेसे ये उनसे प्राक्कालीन तो हैं ही। आ० जयसेन अपनी टीका में (पृ० २९) केवलिकवलाहारके खंडनका उपसंहार करते हुए लिखते हैं कि—“अन्येपि पिण्डश्रुदिकथिता बहवो दोषाः ते नान्यत्र तर्कशास्त्रे ज्ञातव्या अत्र चाप्यात्मग्रन्थसाधोच्यन्ते ।” सम्भव है यहाँ तर्कशास्त्रसे प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिकी विवक्षा हो। अस्तु, मुझे तो यह संक्षिप्त पर विशद टीका प्रभाचन्द्राचार्यकी प्रारम्भिककृति मालूम होती है।

गद्यकथाकोश—यह ग्रन्थ भी इन्हीं प्रभाचन्द्रका मालूम होता है । इसकी प्रतियों ८९ वीं कथाके बाद “श्रीजयसिंहदेवराज्ये” प्रशस्ति है । इसके अशस्ति श्लोकोंका प्रभाचन्द्रकृत न्यायकुसुदचन्द्र आदिके अशस्तिश्लोकोंसे पूरा पूरा सादृश्य है । इसका मंगलश्लोक यह है—

“प्रणम्य मोक्षप्रदमस्तदोषं प्रकृष्टपुण्यप्रभवं जिनेन्द्रम् ।

वक्ष्येऽत्र भव्यप्रतिबोधनार्थमाराधनासत्सुकथाप्रबन्धः ॥”

८९ वीं कथाके अनन्तर “जयसिंहदेवराज्ये” प्रशस्ति लिखकर ग्रन्थ समाप्त कर दिया गया है । इसके अनन्तर भी कुछ कथाएँ लिखी हैं । और अन्तमें “सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः” श्लोक तथा “इति भट्टारकप्रभाचन्द्रकृतः कथाकोशः समाप्तः” यह पुष्पिकालेख है । इस तरह इसमें दो स्थलों पर ग्रन्थसमाप्तिकी सूचना है जो खासतौरसे विचारणीय है । हो सकता है कि प्रभाचन्द्रने प्रारम्भकी ८९ कथाएँ ही बनाई हों और बादकी कथाएँ किसी दूसरे भट्टारकप्रभाचन्द्रने । अथवा लेखकने भूलते ८९ वीं कथाके बाद ही ग्रन्थसमाप्तिसूचक पुष्पिकालेख लिख दिया हो । इसको खासतौरसे जॉन्चे विना अभी विशेष कुछ कहना शक्य नहीं है ।

मेरे विचारसे प्रभाचन्द्रने तत्त्वार्थवृत्तिपदविवरण और अवचनसारसरोजभास्कर भोजदेवके राज्यसे पहिले अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें बनाए होंगे यही कारण है कि उनमें ‘भोजदेवराज्ये’ या ‘जयसिंहदेवराज्ये’ कोई प्रशस्ति नहीं पाई जाती और न उन ग्रन्थोंमें त्रैमेयकमलमार्त्तण्ड आदिका उल्लेख ही पाया जाता है । इस तरह हम प्रभाचन्द्रकी ग्रन्थरचनाका क्रम इस प्रकार समझते हैं—तत्त्वार्थवृत्तिपदविवरण, अवचनसारसरोजभास्कर, त्रैमेयकमलमार्त्तण्ड, न्यायकुसुदचन्द्र, शब्दा-

१ न्यायकुसुदचन्द्र ग्रन्थभागकी प्रस्तावना पृ० १२२—

“वैराग्य चतुर्विधमनुपमाभाराधना निर्यलात् ।

प्राप्त सर्वसुखापद निरुपम स्वर्गापवर्गप्रदा ( ? ) ।

तेषां धर्मकथाप्रपञ्चरचनाभाराधना सस्मिता ।

स्नेयात् कर्मविशुद्धिहेतुरमला चन्द्रार्कतारावधि ॥ १ ॥

सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः पदैः प्रभाचन्द्रकृतः प्रबन्धः ।

कल्याणकालेऽत्र जिनेश्वरणां सुरेन्द्रदन्तीव विरागतेऽसौ ॥ २ ॥

श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्भारुनिवासिना परापरपञ्चपरमेष्ठिप्रणामोपाजितमलपुण्य-  
निराकृतनिखिलमलकलङ्गेन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन आराधनासत्सुकथाप्रबन्धः कृतः ।”

२ योगसूत्रपर भोजदेवकी राजमार्त्तण्ड नामक टीका पाई जाती है । संभव है त्रैमेय-  
कमलमार्त्तण्ड और राजमार्त्तण्ड नाम परस्पर प्रभावित हों ।

- श्रीमज्जिमास्कर, महापुराणटिप्पण और गद्यकथाकोश । श्रीमान् प्रेमीजीने रत्नकरण्ड-

१ पं० जुगलकिशोर जी मुख्तारने रत्नकरण्डभावकाचार की प्रस्तावनामें रत्नकरण्ड-  
भावकाचारकी टीका और समाधितत्रटीकाकी एकही प्रभावचन्द्र द्वारा रचित सिद्ध किया  
है; जो ठीक है । पर आपने इन प्रभावचन्द्रको प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके रचयिता  
तर्कग्रन्थकार प्रभावचन्द्रसे भिन्न सिद्ध करनेका जो प्रयत्न किया है वह वस्तुतः दृढ़ प्रमाणों  
पर अवलम्बित नहीं है । आपके मुख्यप्रमाण है कि—“प्रभावचन्द्रका आदिपुराणकारने  
स्मरण किया है इस लिये ये ईसाकी नवमशताब्दीके विद्वान् हैं, और इस टीकामें  
यशस्विलकचम्पू (ई० ९५९) वसुनन्दिभावकाचार ( अनुमानतः वि० की १३ वीं  
शताब्दीका पूर्व भाग ) तथा पद्मनन्दि उपासकाचार ( अनुमानतः वि० सं० ११८० )  
के श्लोक उद्धृत पाये जाते हैं, इसलिये वह टीका प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके रचयिता  
प्रभावचन्द्रकी नहीं हो सकती ।” इनके विषयमें मेरा यह वक्तव्य है कि—जब प्रभा-  
वचन्द्र का समय अन्य अनेक पुष्ट प्रमाणोंसे ईसाकी चारहवीं शताब्दी सिद्ध होता है तब  
यदि ये टीकार्थ भी वही प्रभावचन्द्रकी ही हों तो भी इनमें यशस्विलकचम्पू और  
नीतिवाक्यानुक्तके वाक्योंका उद्धृत होना अस्वाभाविक एवं अनैतिहासिक नहीं है ।  
वसुनन्दि और पद्मनन्दि का समय भी क्रिस्तकी १२ वीं और तेरहवीं सदी अनुमान-  
मात्र है, कोई दृढ़ प्रमाण इसके साधक नहीं दिए गए हैं । पद्मनन्दि प्रभावचन्द्रके शिष्य  
ये यह बात पद्मनन्तिके ग्रन्थसे तो नहीं माछस होती । वसुनन्दि की ‘पवित्राष्टसुचट्टाण’  
गान्धा स्वयं वही की बनाई है या अन्य किसी आचार्यकी यह भी अभी निश्चित नहीं  
है । पद्मनन्दिभावकाचारके ‘अनुवासरणे’ आदि श्लोक भी रत्नकरण्डटीकामें पद्मनन्दि का  
नाम लेकर उद्धृत नहीं है और न इन श्लोकोंके पहिले ‘उक्तं च, तथा चोक्तम्’ आदि  
कोई पद ही दिया गया है जिससे उन्हें उद्धृत ही माना जाय । तालिय यह कि मुख्तार  
सा० ने इन टीकाओंके प्रसिद्ध प्रभावचन्द्रकृत न होने में जो प्रमाण दिए हैं वे दृढ़ नहीं  
हैं । रत्नकरण्डटीका तथा समाधितत्रटीकामें प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमद्वन्द्वका  
एक साथ विशिष्टशैलीसे उल्लेख होना इसकी सूचना करता है कि ये टीकार्थ भी प्रसिद्ध  
प्रभावचन्द्रकी ही होनी चाहिए । वे उल्लेख इस प्रकार हैं—

“तदुल्लमतिप्रसङ्गेन प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुमद्वन्द्वे प्रपञ्चतः प्ररूप-  
णात्”—रत्नक० टी० पृ० ६ । “यैः पुनर्योगसांख्यैर्मुक्तौ तत्पञ्च्युतिरात्मनोऽ-  
भ्युपगता ते प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुमद्वन्द्वे च भोक्षविचारे विस्तरतः  
प्रत्याख्याताः ।”—समाधितत्रटी० पृ० १५ ।

इन दोनों अवतरणोंकी प्रभावचन्द्रकृत शब्दाम्मोजभास्करके निम्नलिखित अवतरणसे  
तुलना करने पर स्पष्ट माछस हो जाता है कि शब्दाम्मोजभास्करके कर्त्ताने ही उक्त  
टीकाओंको बनाया है—

“तदुल्लमत्त्वं चार्थस्य अध्यक्षतोऽनुमानादेश्च कथा सिञ्चति तथा प्रमेयकमल-  
मार्तण्डे न्यायकुसुमद्वन्द्वे च प्ररूपितमिदं द्रष्टव्यम् ।”—शब्दाम्मोजभास्कर ।

प्रभावचन्द्रकृत गद्यकथाकोशमें पाई जानेवाली अञ्जनचोर आदिकी कथाओंसे रत्न-  
करण्डटीकागत कथाओंका अक्षरशः सादृश्य है । इति ।

टीका, समाधितन्त्रटीका, क्रियाकलापटीका\*, आत्मानुशासनतिलका आदि ग्रन्थोंकी

\* क्रियाकलापटीकाकी एक लिखित प्रति बम्बईके सरस्वती भवनमें है। उसके मंगल और प्रशस्ति श्लोक निम्नलिखित हैं—

मंगल—“जिनेन्द्रमुन्मूलितकर्मबन्धं प्रणम्य सन्मार्गकृतस्वरूपम् ।

अनन्तबोधादिभवं गुणौघं क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये ॥”

प्रशस्ति—“बन्धे मोहतमोविनाशनपटुस्त्रैलोक्यदीपप्रभुः

संसृष्टवर्तिसमन्वितस्य निखिलचेहस्य संशोषकः ।

सिद्धान्तादिसमस्तशास्त्रकिरणः श्रीपद्मनन्दिप्रभुः

तच्छिष्याभ्यक्तार्थतां स्तुतिपदं प्राप्तं प्रभाचन्द्रतः ॥ १ ॥

यो रात्रौ दिवसे श्रुति प्रयता (?) दोषा यतीनां कृतो ज्योपाताः (?)

प्रलये शु...रमलक्षेपां महादर्शितः ।

श्रीमद्गौतमनाभिभिर्गणधरैर्लोकत्रयोद्घोतकैः, सज्जक (?)

सकलोऽप्यसौ यतिपतेर्जातः प्रभाचन्द्रतः ॥ २ ॥

यः (यत्) सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दिदौर्घ्यम्,

नो बान्धाकलितञ्च दोषमलिनं न चासतुह्य (रुद्ध) क्रमम् ।

शान्तामर्ष्यविषयैः (मर्षविषयैः) समं परशु (पशु) गणैराकर्णितं कर्णतः,

तद्वत् सर्वविदः प्रणष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥ ३ ॥”

इन प्रशस्तिश्लोकोंसे ज्ञात होता है कि जिन प्रभाचन्द्रने क्रियाकलापटीका रची है वे पद्मनन्दिशैवान्तिकके शिष्य थे । न्यायकुमुदचन्द्र आदिके कर्ता प्रभाचन्द्र श्री पद्मनन्दि शैवान्तिकके ही शिष्य थे, अतः क्रियाकलापटीका और प्रमेयकमलमातृण्ड आदिके कर्ता एक ही प्रभाचन्द्र है इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता । प्रशस्तिश्लोकोंकी रचनाशैली भी प्रमेयकमल० आदिकी प्रशस्तियोंसे मिलती जुलती है ।

† आत्मानुशासनतिलकानी प्रति श्री ग्रेमीजीने भेजी है । उसका मंगल और प्रशस्ति इस प्रकार है—

मंगल—“वीरं प्रणम्य भववारिमिधिप्रपोतमुद्घोतिताखिलपदार्थमनल्पपुण्यम् ।

निर्वाणमार्गमनवद्यगुणप्रबन्धमात्मानुशासनमहं प्रवरं प्रवक्ष्ये ॥”

प्रशस्ति—“मोक्षोपायमनल्पपुण्यममलज्ञानोद्यं विमूलम् ।

मध्यार्थं परमं प्रमेन्दुकृतिना व्यक्तैः प्रसजैः पदैः ।

व्याख्यानं वरमात्मशासनमिदं व्यामोहविच्छेदतः ।

सुक्तार्थेषु कृताद्वरैरहरहश्चेतसलं चिन्धताम् ॥ १ ॥

इतिश्री आत्मानुशासन(नं) सतिलक(कं) प्रभाचन्द्राचार्य-

विरचित(तं) सम्पूर्णम्-॥”

श्री प्रभावनेंद्रकृत होनेकी संभावना की है, वह खास तौरसे विचारणीय है । यथावसर इन ग्रन्थोंके विषयमें विशेष प्रकाश डाल जायगा । अन्तमें मैं-सब सब ग्रन्थकार विद्वानोंके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनके ग्रन्थोंसे इस प्रस्तावनामें सहायता मिली है ।

फाल्गुनशुक्ल द्वादशी  
आष्टादिकपर्य  
बीर नि० सं० २४६७

न्यायाचार्य महेन्द्रकुमार शास्त्री.  
स्याद्वाद विद्यालय काशी.



## परीक्षामुखसूत्राणां तुलना ।

- न्यायप्र०—न्यायप्रवेशः [ बडौदा सीरिज् ]  
 न्यायवि०—न्यायविन्दु [ चौखम्बा सीरिज् ]  
 न्यायविनि०—न्यायविनिश्चय [ अंकलङ्कप्रन्थत्रयान्तर्गतः सिंधी सीरिज् कलकत्ता ]  
 न्यायसा०—न्यायसारः [ एशियाटिक सो० कलकत्ता ]  
 न्याया०—न्यायावतारः [ खे० कार्नेस बम्बई ]  
 प्रमाणनय०—प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारः [ यथो० काशी ]  
 प्रमाणप०—प्रमाणपरीक्षा [ जैनसिद्धान्तप्र० कलकत्ता ]  
 प्रमाणमी०—प्रमाणमीमांसा [ सिंधी जैन सीरिज् कलकत्ता ]  
 प्रमाणसं०—प्रमाणसंग्रहः [ सिंधी जैन सीरिज् ]  
 लघी० खट्ट०—लघीयसंख्यं खट्टतियुतम् [ सिंधी जैन सीरिज् कलकत्ता ]

### परीक्षामु०

- १११.—प्रमाणनय० ११२, प्रमाणमी० ११११२,  
 ११२.—लघी० पृ० २१ पं० ६, प्रमाणनय० ११३,  
 ११३.—प्रमाणनय० ११६,  
 ११६, ७, ८.—प्रमाणनय० १११६,  
 ११११.—प्रमाणनय० १११७,  
 १११३.—प्रमाणनय० ११२०, प्रमाणमी० ११११८,  
 २११, २.—लघी० का० ३, प्रमाणनय० २११, प्रमाणमी० ११११९, १०,  
 २१३.—न्याया० का० ४, लघी० का० ३, प्रमाणनय० २१३, प्रमाणमी० ११११३,  
 २१४.—लघी० का० ४, प्रमाणनय० २१३, प्रमाणमी० ११११४,  
 २१५.—लघी० ख० का० ६१, प्रमाणमी० ११११२०,  
 २१६.—लघी० खट्ट० का० ५५, प्रमाणमी० ११११२५,  
 ३१७.—लघी० का० ५५,  
 २१११.—न्याया० का० २७, लघी० खट्ट० का० ४, प्रमाणनय० २१२४,  
 प्रमाणमी० ११११५,  
 ३११.—न्याया० का० ३१, लघी० का० ३, प्रमाणनय० ३११, प्रमाणमी० ११२११,  
 ३१२.—लघी० का० १०, प्रमाणनय० ३११, प्रमाणमी० ११२१२,  
 ३१३, ४.—प्रमाणप० पृ० ६१, प्रमाणनय० ३११, २, प्रमाणमी० ११२१३,  
 ३१५-१०.—प्रमाणप० पृ० ६९, प्रमाणनय० ३१४, प्रमाणमी० ११२१४,  
 ३१११, १२, १३.—प्रमाणसं० का० १२, प्रमाणप० पृ० ७०, प्रमाणनय० ३१५, ६,  
 प्रमाणमी० ११२१५,



- ૩૧૧૪.—ન્યાયા૦ કા૦ ૫. લઘી૦ કા૦ ૧૨. ન્યાયવિનિ૦ કા૦ ૧૭૦.  
પ્રમાણપ૦ પૃ૦ ૭૦. પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૭.
- ૩૧૧૫.—ન્યાયવિનિ૦ કા૦ ૨૬૯. પ્રમાણસં૦ કા૦ ૨૧. પ્રમાણપ૦ પૃ૦ ૭૦.  
પ્રમાણનય૦ ૩૧૯.
- ૩૧૧૬.—પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૧૦.
- ૩૧૧૯.—ન્યાયવિનિ૦ કા૦ ૩૨૯. પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૧૧.
- ૩૧૨૦.—ન્યાયપ્ર૦ પૃ૦ ૧ પં ૭. ન્યાયવિનિ૦ પૃ૦ ૭૯ પં ૩, ૧૨. ન્યાયવિનિ૦  
કા૦ ૧૭૨. પ્રમાણસં૦ કા૦ ૨૦. પ્રમાણનય૦ ૩૧૧૨. પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૧૩.
- ૩૧૨૧.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૧૩.
- ૩૧૨૨.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૧૪, ૧૫.
- ૩૧૨૫.—પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૧૫.
- ૩૧૨૭.—ન્યાયપ્ર૦ પૃ૦ ૧ પં ૬. પ્રમાણનય૦ ૩૧૧૮. પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૧૬.
- ૩૧૨૮-૩૦.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૧૯, ૨૦. પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૧૭.
- ૩૧૩૨.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૧૬.
- ૩૧૩૪, ૩૫.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૨૨. પ્રમાણમી૦ ૨૧૧૧૮.
- ૩૧૩૬.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૨૩.
- ૩૧૩૭.—ન્યાયવિનિ૦ પૃ૦ ૧૧૭ પં ૧૧. પ્રમાણનય૦ ૩૧૨૬. પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૧૮.
- ૩૧૩૮.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૩૧.
- ૩૧૩૯.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૩૨.
- ૩૧૪૦.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૩૩.
- ૩૧૪૧.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૩૪.
- ૩૧૪૪.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૩૭.
- ૩૧૪૫.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૩૮.
- ૩૧૪૬.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૩૯. પ્રમાણમી૦ ૨૧૧૧૧૦.
- ૩૧૪૭.—ન્યાયપ્ર૦ પૃ૦ ૧ પં ૧૫. પ્રમાણનય૦ ૩૧૪૧. પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૧૭.
- ૩૧૪૮.—ન્યાયપ્ર૦ પૃ૦ ૧ પં ૧૬. ન્યાયા૦ કા૦ ૧૮. પ્રમાણનય૦ ૩૧૪૨, ૪૩.  
પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૨૨.
- ૩૧૪૯.—ન્યાયપ્ર૦ પૃ૦ ૨ પં ૨. ન્યાયા૦ કા૦ ૧૯. પ્રમાણનય૦ ૩૧૪૪, ૪૫.  
પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૨૩.
- ૪૧૫૦.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૪૬, ૪૭. પ્રમાણમી૦ ૨૧૧૧૧૪.
- ૩૧૫૧.—પ્રમાણનય૦ ૩૧૪૮, ૪૯. પ્રમાણમી૦ ૨૧૧૧૧૫.
- ૩૧૫૨, ૫૩.—ન્યાયવિનિ૦ ૨૧૧, ૨. ન્યાયા૦ કા૦ ૧૦. ન્યાયસા૦ પૃ૦ ૫ પં ૧૦.  
પ્રમાણનય૦ ૩૧૭. પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૮.
- ૩૧૫૪.—ન્યાયવિનિ૦ ૨૧૩. પ્રમાણનય૦ ૩૧૮. પ્રમાણમી૦ ૧૧૨૧૯.
- ૩૧૫૫, ૫૬.—ન્યાયવિનિ૦ ૩૧૧, ૨. ન્યાયા૦ કા૦ ૧૦, ૧૩. પ્રમાણનય૦ ૩૧૨૧.  
પ્રમાણમી૦ ૨૧૧૧૧, ૨.

- ३१५७.—प्रमाणनय० ३१५१.  
 ३१५८.—प्रमाणनय० ३१५२.  
 ३१५९.—प्रमाणनय० ३१६४, ६५.  
 ३१६०.—प्रमाणनय० ३१६६.  
 ३१६१.—प्रमाणनय० ३१६७.  
 ३१६२.—प्रमाणनय० ३१६८.  
 ३१६३.—प्रमाणनय० ३१६९, ७०.  
 ३१६४.—प्रमाणनय० ३१७२.  
 ३१६५.—प्रमाणनय० ३१७३.  
 ३१६७.—प्रमाणप० पृ० ७२.  
 ३१६८.—लघी० का० १४. प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१७६.  
 ३१६९.—प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१७७.  
 ३१७०.—प्रमाणनय० ३१७८.  
 ३१७१.—प्रमाणनय० ३१८२.  
 ३१७२, ७३.—न्यायवि० पृ० ४९, ५०. प्रमाणप० पृ० ७३.  
 ३१७५.—प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१८६.  
 ३१७६.—प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१८७.  
 ३१७८.—प्रमाणनय० ३१९०, ९१.  
 ३१७९.—प्रमाणनय० ३१९२.  
 ३१८०.—न्यायवि० पृ० ४९. प्रमाणप० पृ० ७४. प्रमाणनय० ३१९३.  
 ३१८१.—न्यायवि० पृ० ४८. प्रमाणनय० ३१९४.  
 ३१८३.—न्यायवि० पृ० ५३. प्रमाणप० पृ० ७४. प्रमाणनय० ३१९६.  
 ३१८४.—प्रमाणप० पृ० ७४. प्रमाणनय० ३१९७.  
 ३१८७.—प्रमाणनय० ३१९०१.  
 ३१८८.—प्रमाणनय० ३१९०२.  
 ३१८९.—प्रमाणनय० ३१९०३.  
 ३१९४, ९५.—न्यायवि० पृ० ६२-६३. न्याया० का० १७. प्रमाणनय० ३१२७-३०. प्रमाणनी० २११३-६.  
 ३१९८.—न्याया० का० १४. प्रमाणनी० २११७.  
 ३१९९.—प्रमाणनय० ४११.  
 ३१९००.—प्रमाणनय० ४१११.  
 ३१९०१.—प्रमाणनय० ४१३.  
 ४११.—न्याया० खो० २९. लघी० का० ७. प्रमाणप० पृ० ७९. प्रमाणनय० ५११. प्रमाणनी० १११३०.  
 ४१२.—प्रमाणनय० ५१२. प्रमाणनी० १११३३.

- ४१३.—प्रमाणनय० ५१३.  
 ४१४.—प्रमाणनय० ५१४.  
 ४१५.—प्रमाणनय० ५१५.  
 ४१८.—प्रमाणनय० ५१८.  
 ४१९.—लघी० खलु० का० ६७.  
 ५११.—आप्तमी० का० १०२. न्याया० का० २६. न्यायविनि० का० ४७६.  
 प्रमाणप० पृ० ७९. प्रमाणनय० ६१३-५. प्रमाणमी० ११११३६, ४०.  
 ५१३.—प्रमाणनय० ६१३. प्रमाणमी० ११११४१.  
 ६११.—प्रमाणनय० ६१२३.  
 ६१२.—प्रमाणनय० ६१२४.  
 ६१३, ४.—प्रमाणनय० ६१२५, २६.  
 ६१६.—प्रमाणनय० ६१२७, २९.  
 ६१८.—प्रमाणनय० ६१३१.  
 ६१९.—प्रमाणनय० ६१३३, ३४.  
 ६११०.—प्रमाणनय० ६१३५.  
 ६१११.—प्रमाणनय० ६१३७.  
 ६११२.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १३. प्रमाणनय० ६१३८.  
 ६११३.—प्रमाणनय० ६१४६.  
 ६११४.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० ४.  
 ६११५.—न्यायप्र० पृ० २ न्यायवि० पृ० ८४, ८५. प्रमाणनय० ६१४०. प्रमा-  
 णमी० ११२१४.  
 ६११६.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १७. न्यायवि० पृ० ८४. प्रमाणनय० ६१४१.  
 ६११७.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १८. न्यायवि० पृ० ८४. प्रमाणनय० ६१४२.  
 ६११८.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १९. प्रमाणनय० ६१४३.  
 ६११९.—न्यायप्र० पृ० २ पं० २०. प्रमाणनय० ६१४४.  
 ६१२०.—न्यायप्र० पृ० २ पं० २१. प्रमाणनय० ६१४५.  
 ६१२१.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० ८. न्याया० का० २२. न्यायविनि० का० ३६६.  
 प्रमाणनय० ६१४७. प्रमाणमी० २११११६.  
 ६१२२.—न्याया० का० २३. प्रमाणनय० ६१४८. प्रमाणमी० २११११७.  
 ६१२३.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० १२. न्यायवि० पृ० ८९. न्यायविनि० का० ३६५.  
 प्रमाणनय० ६१५०.  
 ६१२५.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० १४. न्यायवि० पृ० ९१.  
 ६१२९.—न्यायप्र० पृ० ५ पं० ६. न्याया० का० २३. प्रमाणनय० ६१५२.  
 प्रमाणमी० २१११२०.  
 ६१३०.—न्यायवि० पृ० १०५. न्याया० का० २३. प्रमाणनय० ६१५४.  
 प्रमाणमी० २१११२१.

- ६।३१.—प्रमाणनय० ६।५६.  
 ६।३३.—प्रमाणनय० ६।५७.  
 ६।३५.—न्यायविनि० का० ३७०.  
 ६।४०.—न्यायप्र० पृ० ५ पं० २०. न्यायवि० पृ० ११९. न्याया० का० २४.  
 न्यायविनि० का० ३८०. प्रमाणनय० ६।५८. प्रमाणसी० २।१।२२.  
 ६।४१.—न्यायप्र० पृ० ६ पं० १. न्यायवि० पृ० १२२. प्रमाणनय० ६।६०—  
 ६२. प्रमाणसी० २।१।२३.  
 ६।४२.—न्यायप्र० पृ० ६. पं० १२. न्यायवि० पृ० १२४. प्रमाणनय० ६।६८.  
 प्रमाणसी० २।१।२६.  
 ६।४४.—न्यायप्र० पृ० ६ पं० १४. न्यायवि० पृ० १२५. न्याया० का० २५.  
 प्रमाणनय० ६।६९. प्रमाणसी० २।१।२४.  
 ६।४५.—न्यायप्र० पृ० ७ पं० ७. न्यायवि० पृ० १३०. प्रमाणनय० ६।७९.  
 प्रमाणसी० २।१।२६.  
 ६।५१.—प्रमाणनय० ६।८३.  
 ६।५२.—प्रमाणनय० ६।८४.  
 ६।५५.—प्रमाणनय० ६।८५.  
 ६।६१.—प्रमाणनय० ६।८६.  
 ६।६६.—प्रमाणनय० ६।८७.



## प्रमेयकमलमार्तण्डस्य विषयानुक्रमः ।

विषयाः	पृ०
मङ्गलाचरणम् ... ..	१
परीक्षामुखस्य आदिश्लोकः ... ..	२
सम्बन्धाभिधेयादिविचारः ... ..	२
प्रमाणतदाभासयोर्लक्षणस्याभिधेयता ... ..	३
ग्रन्थतदभिधेययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकलक्षणः सम्बन्धः ... ..	३
साक्षात्प्रयोजनं लक्षणव्युत्पत्तिः हानोपादानादिकं तु परम्परया ... ..	३
प्रमाणशब्दस्य कर्तृकरणभावसाधनता ... ..	३
द्रव्यपर्याययोः भेदाभेदविवक्षायां प्रमाणशब्दस्य त्रिषु कर्तृकरण- भावसाधनेषु व्युत्पत्तिः ... ..	४
भेदाभेदात्मकत्वे विरोधपरिहारः ... ..	४
कार्यस्य हेयोपादेयभेदात् द्वैविध्यम् ... ..	४
उपेक्षणीयस्य हेयेऽन्तर्भावः ... ..	४
असत्प्रादुर्भावाऽभिलषितप्राप्तिभावज्ञप्तिभेदेन सिद्धेऽप्येव विध्यम् ... ..	५
ज्ञापकप्रकरणादत्र भावज्ञप्तिरूपैव सिद्धिः विवक्षिता ... ..	५
जातिप्रकृत्वादिभेदेन उपकारकार्यसिद्धिरपि गृह्यते ... ..	५
तदाभासपदस्य व्युत्पत्तिः ... ..	५
सिद्धान्तपदयोः सार्थक्यम् ... ..	६
‘लघ्वीयसः’ इत्यत्र काल-शरीरपरिणाम-मतिक्रान्तिविधत्वाच्चवेदुः मतिक्रान्तस्यैव लाघवस्य ग्रहणम् ... ..	६
नमस्कारञ्जिविधः मनोवृत्त्यायकारणभेदात् ... ..	७
आदिश्लोकस्य नमस्कारपरत्वं ... ..	७
प्रमाणसामान्यलक्षणसूत्रम् ... ..	७
जरबैयायिकमदृजयन्तामिममतकारकसाकल्यस्य नि- रासः ... ..	७-१३
अन्यभिचारादिविशेषणविशिष्टमपि कारकसाकल्यं अज्ञानरूपत्वेन प्रमितौ साधकतमत्त्वमावाह्य प्रमाणम् ... ..	७
अदीपादीनामुपचारत एव परिच्छिप्तौ साधकतमव्यपदेशः ... ..	८
प्रमितिं प्रति बोधेन व्यवचानात्र कारकसाकल्यस्य प्रमाणता ... ..	८
किं सकलान्येव कारकाणि साकल्यस्वरूपं तद्वर्गो वा तत्कार्यं वा पदार्थान्तरं वा ? ... ..	९
प्रथमविकल्पे साकल्यस्य कर्तृकर्मरूपत्वे करणत्वानुपपत्तिः ... ..	९
चर्मश्च संयोगरूपः अन्यो वा ? ... ..	९

निषयाः

धर्मः कारकेभ्यो भिन्नोऽभिन्नो वा ? ... ..	५०
तत्कार्यपक्षे नित्यानां जनकत्वे सर्वदा तदुत्पत्तिप्रसक्तिः ... ..	९
सहकारिसव्यपेक्षया कार्ये देशादिप्रतिनियमे किं विशेषाधायित्वेन	१०
सहकारित्वमेकार्यकारित्वेन वा ? ... ..	११
विशेषाधायित्वपक्षे विशेषः भिन्नोऽभिन्नो वा ? ... ..	११
साहित्येऽपि भावानां स्वरूपेणैव कार्यकारिता न तु पररूपेण ... ..	११
किं सकलानि कारकाणि साकल्योत्पादने प्रवर्तन्तेऽसकलानि वा ?	१२
वैशेषिकाद्यभिमतसन्निकर्षस्य विचारः... ..	१४-१८
सन्निकर्षो न प्रमाणं प्रमित्युत्पत्तौ साधकतमत्वाभावात् ... ..	१४
योग्यता च शक्तिः, प्रतिपद्गुः प्रतिबन्धापायो वा ? ... ..	१५
वाक्तिरपि अतीन्द्रिया सहकारिसन्निकर्षरूपा वा ? ... ..	१५
सहकारिकारणं च द्रव्यं गुणः कर्म वा ? ... ..	१५
द्रव्यमपि व्यापिद्रव्यमव्यापि द्रव्यं वा ? ... ..	१५
अव्यापि द्रव्यमपि मनो नयनमालोको वा ? ... ..	१५
गुणोऽपि प्रमेयगतः प्रमातृगतः उभयगतो वा सहकारी स्यात् ?	१५
कर्माप्यर्थान्तरगतमिन्द्रियगतं वा सहकारि स्यात् ? ... ..	१५
भावेन्द्रियलक्षणा योग्यतापि प्रमाणम् ... ..	१६
प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरस्य प्रमाणस्य प्रतिविधानम् ... ..	१६
सन्निकर्षस्य प्रामाण्ये च सर्वज्ञाभावः ... ..	१७
इन्द्रियस्य योगजधर्मानुग्रहोऽपि किं स्वविषये प्रवर्तमानस्य अति-	
शयाधानरूपं सहकारित्वमार्तण्डं वा ? ... ..	१७
अणुमनसोऽपि नाशेषार्थैः साक्षात्परम्परया वा सम्बन्धः ... ..	१८
सांख्य-योगाभिमतैन्द्रियवृत्तिवादः ... ..	१९
इन्द्रियेभ्यो वृत्तिर्व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्ता वा ? ... ..	१९
व्यतिरिक्ते तेषां धर्मः अर्थान्तरं वा ? ... ..	१९
प्रभाकराभिमतज्ञातृव्यापारविचारः ... ..	२०-२५
ज्ञातृव्यापारस्य अज्ञानरूपस्य उपचारत एव प्रामाण्यं युक्तम् ... ..	२०
ज्ञातृव्यापारस्वरूपग्राहकं प्रत्यक्षमनुमानमन्यद्वा ? ... ..	२०
प्रत्यक्षमपि स्वसंवेदनं बाह्येन्द्रियजं मनःप्रभवं वा ? ... ..	२०
अनुमानप्रयोजकोऽविनाभावसम्बन्धः किमन्वयनिश्चयद्वारेण प्रती-	
यते व्यतिरेकनिश्चयद्वारेण वा ? ... ..	२१
अन्वयनिश्चयोऽपि प्रत्यक्षेण अनुमानेन वा ? ... ..	२१
अनुपलम्भादिनिश्चये किं दृग्मानुपलम्भोऽभिप्रेतः खंद्ग्यानुपलम्भो	
वा ? ... ..	२१

विषयाः

पृष्ठ

इद्वयानुपलम्भोऽपि स्वभावकारणव्यापकानुपलम्भविरुद्धोपलम्भमेवेन चतुर्धा भिद्यते ... ..	२१
विरुद्धोपलम्भो द्विधा विरोधस्य द्वैविध्यात् ... ..	२२
ज्ञातृव्यापारः कारकैर्जन्योऽजन्यो वा ? ... ..	२३
अजन्यत्वे अभावरूपो भावरूपो वा ? ... ..	२३
भावरूपत्वे नित्यः अनित्यो वा ? ... ..	२३
अनित्यत्वे कालान्तरस्थायी क्षणिको वा ? ... ..	२३
जन्यत्वे क्रियात्मकोऽक्रियात्मको वा ? ... ..	२३
अक्रियात्मकत्वे बोधरूपोऽबोधरूपो वा ? ... ..	२३
असौ ज्ञातृव्यापारः धर्मिस्वभावः धर्मस्वभावो वा ? ... ..	२४
ज्ञातृव्यापारजनने प्रवर्तमानानि कारकाणि किमपरव्यापारसापेक्षाणि न वा ? ... ..	२४
ज्ञातृव्यापारोऽपि प्रकृतकार्ये व्यापारान्तरसापेक्षो निरपेक्षो वा ? ...	२४
अर्थप्राकृत्यं ज्ञातृव्यापारकल्पकमर्याद् भिन्नमभिन्नं वा ? ...	२४
अर्थप्राकृत्यमन्यथानुपपन्नत्वेन निश्चितं न वा ? ... ..	२५
ज्ञानस्वभावज्ञातृव्यापारसुररीकृर्वाणस्य भाट्टस्य निरासः ... ..	२५
प्रमाणस्य ज्ञानात्मकत्वसमर्थनम् ... ..	२५
अर्थक्रियाप्रसाधकार्यप्रदर्शकत्वेन आपकत्वम् ... ..	२५
प्रवृत्तिमूला तृपादेयार्थप्राप्तिर्न प्रमाणाधीना ... ..	२६
अप्रवर्तकत्वेऽपि ज्ञानस्य चन्द्रार्कादिज्ञानवत् प्रामाण्यम् ... ..	२६
सुगतज्ञानं व्याप्तिज्ञानं सुखसंवेदनं वा न स्वविषयेऽर्थिनं प्रवर्तयन्ति अनृतेर्विषयः भावी वर्तमानो वा ? ... ..	२६
बौद्धाभिमतनिर्विकल्पकप्रत्यक्षवाद्ः ... ..	२७-३८
सविकल्पकं ज्ञानं प्रमाणं समारोपविरुद्धत्वात्, प्रमाणत्वाद्वा ...	२७
निर्विकल्पकं नीलाद्यंशे नीलमिदमिति विकल्पस्य क्षणक्षयादौ च नीलं क्षणिकं सत्त्वादित्यनुमानसापेक्षणाच्च प्रमाणम् ... ..	२७
अक्षव्यापारानन्तरं विशदविकल्पस्यैवानुभवः न तु निर्विकल्पस्य युगपद्वृत्तेर्विकल्पानिकल्पयोरेकस्याव्यवसायाधिर्विकल्पकवैशेष्यस्य । विकल्पे प्रतिभासाभ्युपगमे दीर्घाक्षकुलीमक्षणादौ रूपादिज्ञान- पक्षस्य अमेदाध्यवसायः स्यात् ... ..	२८
लघुद्वृत्तेरमेदाध्यवसाये खररटितादौ अमेदाध्यवसायप्रसङ्गः ...	२८
सविकल्पानिकल्पयोः सादृश्याद् मेदेनानुपलम्भोऽभिभवान्ना ? ...	२८
सादृश्यं विषयभेदकृतं ज्ञानरूपताकृतं वा ? ... ..	२८
अभिभवो विकल्पेनाविकल्पस्य बलीयस्त्वात् ... ..	२९



विषयाः	५०
कुतो विकल्पस्य वलीयस्त्वं बहुविषयात् निश्चयात्मकत्वाद्वा ? ...	२९
निश्चयात्मकत्वं स्वरूपेऽर्थरूपे वा ? ... ..	२९
एकत्वाध्यवसायः किमेकविषयत्वम् अन्यतरस्यान्यतरेण विषयी- करणं परत्रेतरस्याध्यारोपो वा ? ... ..	३०
दृश्ये विकल्पस्यारोपश्च किं गृहीतयोरगृहीतयोर्वा तयोः स्यात् ?	३०
निर्विकल्पे विकल्पस्यारोपो विकल्पे निर्विकल्पस्य वा ? ... ..	३०
विकल्पेन निर्विकल्पस्याभिवः सहभावमात्रात् अभिन्नविषयत्वा- दभिन्नसामग्रीजन्यत्वाद्वा स्यात् ? ... ..	३१
अनयोरेकत्वं निर्विकल्पकमध्यवस्यति विकल्पो वा ज्ञानान्तरं वा ?	३१
संहतसकलविकल्पावस्थायां रूपादिदर्शनस्य निर्विकल्पस्य न संभवः किन्तु स्थिरस्थूलार्थप्राप्तिः विकल्परूपस्यैव ... ..	३२
अनिश्चयात्मनो निर्विकल्पस्य न प्राप्ताप्यम् ... ..	३२
निश्चयहेतुत्वादिपि न निर्विकल्पस्य प्राप्ताप्यम् ... ..	३२
निर्विकल्पस्य विकल्पोत्पादकत्वमपि दुर्घटम् ... ..	३३
विकल्पवासनापेक्षस्यापि निर्विकल्पस्य अर्थवत्त्व विकल्पोत्पादकत्वम् निर्विकल्पस्य अनुभवमात्रेण विकल्पजनकत्वे नीलादाविव क्षण- क्षयादावपि विकल्पजनकत्वप्रसङ्गः ... ..	३३
क्षणक्षयादौ अभ्यासप्रकरणद्वुद्विपाठवार्थित्वामावाच्च निर्विकल्पकं विकल्पवासनाप्रयोचकम् ... ..	३३
अभ्यासो हि भूयोदर्शनं बहुसो विकल्पोत्पत्तिर्वा ? ... ..	३३
पाठवं तु विकल्पोत्पादकत्वं स्फुटतरानुभवो वा अविद्यावासना- विनाशादात्मत्वमो वा ? ... ..	३४
अर्थित्वमभिलषितत्वं जिज्ञासितत्वं वा ? ... ..	३४
सविकल्पकप्रत्यक्षवादिनां अवग्रहादिसङ्गावेऽपि अभ्यासात्मकधार- णाभावात् न स्रोच्छ्वासादिसंख्यायाः सकलवर्णपदादेर्वा स्पृतिः	३५
तदन्यव्यावृत्त्या निर्विकल्पे अभ्यासानभ्यासकल्पनं न युक्तिसङ्गतम् विकल्पस्य शब्दार्थविकल्पवासनाप्रभवत्वे ततोऽप्यक्षस्य रूपादि- विषयत्वनियमो न स्यात् ... ..	३५
विकल्पः प्रमाणं संवादकत्वात्, अर्थपरिच्छितौ साधकतमत्वात् अनिश्चितार्थनिर्वाचकत्वात् प्रतिपन्नपेक्षणीयत्वान्नानुमानवत्	३६
स्पष्टाकारविकल्पत्वाद्विकल्पस्याप्राप्त्यै दूरपादपादिदर्शनस्याप्राप्ता- प्यप्रसङ्गः ... ..	३७
गृहीतप्राप्तित्वादप्राप्त्यै अनुमानस्याप्यप्राप्त्यम् ... ..	३७
असति प्रवर्तनादप्राप्त्यै प्रत्यक्षादीनामपि तत्त्वप्रसङ्गः ... ..	३७

विषयाः	५०
हिताहितप्राप्तिपरिहारसामर्थ्यं तु विकल्पस्यैव ... ..	३७
कदाचिद्विस्वादास्तु प्रत्यक्षादावपि समानः ... ..	३७
समारोपनिषेधकत्वं तु विकल्पेऽस्त्येव ... ..	३७
व्यवहारयोग्यश्च विकल्प एव ... ..	३७
स्वलक्षणागोचरत्वाद्विकल्पस्याप्रामाण्ये अनुमानस्याप्यप्रामाण्यं स्यात्	३७
शब्दसंसर्गयोग्यप्रतिभासलभनुमानेऽपि तुल्यम् ... ..	३७
आहार्यं विना शब्दमात्रप्रमदत्वं तु विकल्पेऽसिद्धमेव ... ..	३८
विकल्पाभिधानयोः कार्यकारणभावे किञ्चित्पदयतः पूर्वानुभूत- तत्सदृशस्युत्थादि न स्यात् ... ..	३८
पदस्य वर्णानां वा नामान्तरस्युत्तावसयामध्यवसायः सत्यां वा ?	३८
अर्तुद्वयमिमतःशब्दाद्वैतवादः ... ..	३९-५७
शब्दानुविद्धत्वेनैव सकलज्ञानानां अविकल्पकता ... ..	३९
सकलं वाच्यवाचकतत्त्वं शब्दब्रह्मण एव विवर्तः ... ..	३९
शब्दानुविद्धत्वं ज्ञाने ऐन्द्रियेण प्रत्यक्षेण प्रतीयेत स्वसंवेदनेन वा ?	३९
किमिदं शब्दानुविद्धत्वमर्थस्य अभिज्ञदेशे प्रतिभासः तादात्म्यं वा ?	४०
विभिन्नेन्द्रियज्ञानप्राप्तात्ताच्च शब्दार्थयोस्तादात्म्यम् ... ..	४०
रूपमिदमिति ज्ञानेन बाधपताप्रतिपक्षाः पदार्थाः प्रतिपद्यन्ते भिन्न- बाधपताविशेषणविशिष्टा वा ? ... ..	४०
अर्थस्याभिधानानुपपत्ता किमर्थज्ञाने तत्प्रतिभासः, अर्थदेशे तद्वेदनं वा, तत्काले तत्प्रतिभासो वा ? ... ..	४१
लोचनाध्यक्षं श्रोत्रप्राज्ञा वैखरीम् अन्तर्जल्परूपा मध्यमा वा धारं न सस्युत्पत्ति ... ..	४१
पश्यन्ती अन्तर्ज्योतीरूपा च वागेष न भवति अर्थात्मदर्शनलक्षणत्वात्	४१
चतुर्विधवानो लक्षणम् ... ..	४२
वाच्यनुमानाच्छब्दब्रह्मसिद्धिः ... ..	४३
जगतः शब्दमयत्वस्य प्रत्यक्षवाधितत्वात् ... ..	४३
शब्दपरिणामरूपत्वान्नगतः शब्दमयत्वं शब्दादुत्पत्तेर्वा ?	४३
शब्दब्रह्म नीलादिरूपं परिणमत् शब्दरूपतां परित्यजति न वा ?	४३
शब्दात्मा परिणामं गच्छन् प्रतिपदार्थमेदं प्रतिपद्येत न वा ? ...	४४
कार्यसमूहः ब्रह्मणोऽर्थान्तरमनर्थान्तरं वा उत्पद्येत ? ... ..	४४
योगिनोऽपि न ब्रह्म पश्यन्ति ... ..	४५
अविद्याऽपि ब्रह्मव्यतिरिक्ता नास्ति ... ..	४५
अनुमानं कार्यलिप्तं स्वभावादिलिप्तं वा ब्रह्मसाधकं स्यात् ? ...	४५
शब्दाकारानुस्यूतत्वं जगतोऽसिद्धम् ... ..	४६

विषयाः

१५०

अर्थानां शब्दात्मकत्वे सङ्केताग्राहिणोऽपि शब्दाद् अर्थबोधः स्यात्

४६

अभिप्रायणादिशब्दभ्रवणात् श्रोत्रस्य दाह्यसिधातादिप्रसङ्गः ...

४६

सागमस्य शब्दग्रहणो मेदे द्वेतापत्तिः अमेदे प्रतिपाद्यप्रतिपादक-

भावाभावः ... ..

४६

अपूर्वार्थविशेषणेन धारावाहिकविपर्यययोः निरासः

४७

अथवा व्यवसायात्मकविशेषणेन विपर्ययस्य निरासः

४७

संशयस्वरूपविचारः ... ..

४७-४८

( तत्त्वोपपन्नवादिनः पूर्वपक्षः ) संशयज्ञाने धर्मोऽधर्मो वा

प्रतिभासते ? ... ..

४७

धर्मो तात्त्विकः अतात्त्विको वा ? ... ..

४७

धर्मः स्थाणुस्त्रलक्षणः पुरुषस्त्रलक्षणः उभयं वा ? ... ..

४७

सन्दिग्धोऽर्थः विद्यते न वा ? ... ..

४७

( उत्तरपक्षः ) संशयः चलितप्रतिपत्त्यात्मकत्वेन स्वात्मसंवेद्यः ...

४७

धर्मविषयो धर्मविषयो वेत्यादिप्रश्ना अपि संशयस्वरूपा एव ...

४८

उत्पादककारणभावाद् संशयस्य निरासः, असाधारणस्वरूपाभावाद्

विषयाभावाद्वा ? ... ..

४८

अख्यातिवादः ... ..

४८-४९

( चार्वाकरीनां पूर्वपक्षः ) जलादिविपर्यये अलं जलभावः मरीचयो

वा न प्रतिभासन्ते अतः निर्निवयमेव जलादिविपर्ययज्ञानम्

४८

तोयाकारेण मरीचिग्रहणमपि न संभाव्यते ... ..

४९

( उत्तरपक्षः ) निरालम्बनत्वे जलादिविपर्ययस्य विशेषतोऽप्यपदेशा-

भावप्रसङ्गः ... ..

४९

आन्तिष्ठपुत्र्यवस्थयोरविशेषप्रसङ्गश्च ... ..

४९

चौद्धाद्यमिमताऽसत्ख्यातिवादः ... ..

४९

असतः खपुष्पादिवत् प्रतिभासाभावः ... ..

४९

आन्तिवैचित्र्याभावप्रसङ्गश्च ... ..

४९

प्रसिद्ध्यर्थख्यातिवादः ... ..

४९-५०

( साध्यस्य पूर्वपक्षः ) प्रतिभासमानस्य असत्त्वं नोपपद्यते ...

४९

यद्यप्युत्तरकालमर्थो नास्ति तथापि यदा प्रतिभाति तदाऽस्त्येव

४९

( उत्तरपक्षः ) यथावस्थितार्थग्रहणे आन्ताऽआन्तव्यवहारभावः

५०

प्रतिभासकालेऽर्थस्य सत्त्वे च तत्कालेऽर्थस्यानुपलब्ध्यावपि तन्निवृत्त्य-

भूतिव्यवहारादेः पश्चादुपलम्भः स्यात् ... ..

५०

प्रसिद्ध्यर्थख्यातौ बाध्यबाधकभावश्च न स्यात् ... ..

५०

आत्मख्यातिवादः ... ..

५०-५१

( योगाचारस्य पूर्वपक्षः ) अनादिविचित्रवासनावशाज्ज्ञानसैवाय-

माकारः बहिः स्थिरत्वेन भासते - ... ..

५०

विषयाः

५०

( उत्तरपक्षः ) सर्वज्ञानानां स्वाकारमानादित्वे आन्ताभ्रान्तविवेको

बाध्यबाधकभावश्च न स्यात् ... .. ५०

रजताकारस्य आत्मस्थितत्वेन बहिःस्थित्येण प्रतीतिर्न स्यात् ... ५०

प्रतिपक्षा च तदुपादानार्थं न प्रवर्तेत ... .. ५१

अविद्यावशात् बहिःस्थ-स्थिरत्वेन माने विपरीतख्यातिरेव ... ५१

अनिर्वचनीयार्थख्यातिवाद्ः ... .. ५१-५२

( वेदान्तिनः पूर्वपक्षः ) न ज्ञानस्य विषय उपदेक्ष्यगम्यः अनुमान-

साध्यो वा येन विपरीतार्थकल्पना ... .. ५१

प्रतिभासमानश्च जलवर्धः सदसदुभयात्मको न भवति अतोऽ-

निर्वचनीयः ... .. ५१

( उत्तरपक्षः ) जलादिभ्रान्तौ नियतदेशकालस्वभावो जलवर्ध एव

सद्रूपेण प्रतिभासते ... .. ५२

विचार्यमाणस्यासत्त्वे विपरीतख्यातिः ... .. ५२

पुरुषविपरीते स्याणौ पुरुषोऽयमिति ख्यातिः विपरीतख्यातिः ५२

स्मृतिप्रमोषवादः ... .. ५३-५८

( आभाकरणार्थं पूर्वपक्षः ) इदं रजतमिति नैकं ज्ञानं कारणाभावात्

न हि दोषैः चक्षुरादीनां शक्तेः प्रतिबन्धः प्रवृत्तौ वा क्रियते तथा

सति कार्यानुत्पादकत्वमेव स्यान्न तु विपरीतकार्योत्पादकत्वम् ५३

अगृहीतरजतस्य नैदं ज्ञानम्, गृहीतस्य च तद्रजतमिति स्यात् ५३

सतो ज्ञानद्वयमेतत्-इदमिति हि पुरोव्यवस्थितार्थप्रतिभासनं रजत-

मिति च स्मरणं प्रमुष्टतदंशत्वात् स्मृतिप्रमोषोऽभिधीयते ... ५४

प्रवृत्तिश्च मेदाग्रहणसन्निवाद्रजतज्ञानात् संजायते ... .. ५४

( उत्तरपक्षः ) दोषसमवधाने चक्षुरादिभिः विपरीतं ज्ञानमुत्पाद्यते

नैवमसत्ख्यातिः; सादृश्यहेतुकत्वात् ... .. ५५

नापि ज्ञानख्यातिः संस्कारहेतुकत्वात् ... .. ५५

नापि मेदाग्रहणात् प्रवृत्तिः किन्तु षटोऽयमित्याद्यभेदज्ञानात् ... ५५

गुणदोषयोः एकज्ञानजनकत्वमेव ... .. ५५

स्वप्रकाशावादिप्रमाकरमते इदं रजतम् इति ज्ञानयोः मेदाग्रहणम-

संभाव्यम् ... .. ५६

विवेकख्यातेः प्रागभावरूपापि अख्यातिः अभावानभ्युपगन्तृणां

आभाकरणार्थं न संभवति ... .. ५६

कथार्यं स्मृतिप्रमोषः किं स्मृतेरभावः अन्यत्राभासः विपरीताकार-

वेदित्वम् अतीतकालस्य वर्तमानतया ग्रहणम् अनुभवेन सह

क्षीरोदकवदविवेकेनोत्पादो वा ? ... .. ५६

विषयाः	५०
द्विचन्द्रादिविपर्ययस्य स्मृतिरूपत्वे इन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधा- यित्वं न स्यात् ... ..	५८
स्मृतिप्रमोषपक्षे वाचकप्रत्ययो न स्यात् ... ..	५८
स्मृतिप्रमोषाभ्युपगमे स्वतःप्रामाण्यव्याघातः ... ..	५८
प्रमाणसङ्गावस्थ परिच्छित्तिविशेषसङ्गाव एवाभ्युपगम्यते ...	५९
अनिश्चितस्य अपूर्वार्थत्वम् ... ..	५९
दृष्टोऽपि समाप्तोपादपूर्वार्थः ... ..	५९
मीमांसकमिममतस्य तत्रापूर्वार्थविज्ञानमित्यादिप्रमाण- लक्षणस्य विचारः... ..	६०-६३
वस्तुन्यधिगतेऽनधिगते वाऽव्यभिचारिप्रमां जनयतो ज्ञानस्य प्रामा- ण्यमनिवार्यमेव ... ..	६०
एकान्ततोऽनधिगताध्याधिगन्तुत्वे प्रमाणस्य प्रामाण्यमपि ज्ञातुं न शक्यते ... ..	६०
प्रामाण्यं हि तदर्थोत्तरज्ञानवृत्तिसंवादादवसीयते ... ..	६०
सामान्यविशेषयोस्तादात्म्येऽनधिगताध्याधिगन्तुलभसंभाव्यमेव ...	६०
प्रतिपत्तिविशेषसङ्गावादेकविषयाणामपि आगमानुमानाध्यक्षाणां प्रमाणता ... ..	६१
अनधिगतार्थाग्राहित्वे प्रत्यभिज्ञानस्य प्रमाणत्वं न स्यात् ... ..	६१
न्याप्तिज्ञानगृहीतार्थाग्राहिणोऽनुमानस्य च प्रामाण्यं न स्यात् ...	६२
कथमिदपूर्वार्थत्वे तु स्मृतितर्कावीनामपि पृथक् प्रामाण्यं स्यात्	६२
अपूर्वार्थग्राहिणः प्रामाण्ये द्विचन्द्रवेदनस्य प्रामाण्यं स्यात् ...	६२
वाचाविरहस्तत्कालभावी उत्तरकालभावी वा प्रामाण्यहेतुः स्यात् !	६२
उत्तरकालभावी च ज्ञातः अज्ञातो वा ? ... ..	६२
ज्ञातश्चेत् पूर्वज्ञानेन उत्तरज्ञानेन वा ? ... ..	६३
वाचाविरहस्य शायमानत्वेऽपि कथं सत्यत्वम् ? ... ..	६३
कचित् कदाचित्कस्यचिद्वाचाविरहो विज्ञानप्रमाणताहेतुः सर्वत्र सर्वदा सर्वस्य वा ? ... ..	६३
अदुष्टकारणारब्धत्वमपि ज्ञातमज्ञातं वा तद्धेतुः ? ... ..	६३
अदुष्टकारणारब्धः शान्तान्तरात् संवादप्रत्ययाद्वा ? ... ..	६३
जैनमते च अदुष्टकारणारब्धत्वादि अभ्यासदशायां स्वतः प्रति- भासते अनभ्यासदशायाश्च परत इति ... ..	६४
ब्रह्माद्वैतवाचः ... ..	६४-७७
(वेदान्तिनां पूर्वपक्षः) अविकल्पकप्रत्यक्षेण हि सर्वत्र एकत्वमेव अन्यानपेक्षतया प्रतिभासते ... ..	६४

विषयाः

५०

मेदो नार्थस्वरूपम् अन्यापेक्षतया अविद्यासंकेतस्मरणजनितविकल्प-

प्रतीत्या भासमानत्वात्... ..

६४

अतिभासमानत्वात् सर्वेषां प्रतिभासान्तःप्रविष्टलसिद्धेरपि ब्रह्मसिद्धिः

६४

सर्वं वै खल्विदमिदमाद्यागमादपि ब्रह्मसिद्धिः ... ..

६४

प्रत्यक्षं विधातुं न निषेद्धुं अतः प्रत्यक्षं सद्ब्रह्मसाधकमेव ...

६५

अंशनाम् ऊर्णनाम् इव ब्रह्म सर्वजन्मिनां हेतुः ... ..

६६

मेददर्शिनो निन्दा च श्रूयते सृष्टोः स सृष्टुमाप्नोति य इह नानेव

पश्यति इति ... ..

६५

अर्थानां मेदो देशमेदात् कालमेदाद् आकारमेदाद्वा स्यात् ? ...

६५

ब्रह्मणो विद्यास्तमावत्वेऽपि श्लाघाधीनां न वैयर्थ्यम् अविद्याव्या-

पारनिवर्तनफलत्वात्तेषाम् ... ..

६६

अनादित्वेऽपि प्रागभाववदविद्याया उच्छेदो घटते ... ..

६६

मिथ्यामिथ्यादिविकल्पस्य अवस्तुभूताऽविद्यायामप्रवृत्तिरिव ...

६६

यथैव रजो रजोऽन्तराणि शमयति स्वयं च शाम्यति विषं वा

विषान्तरं प्रशमयत् शाम्यति तथैव अव्ययमननादिमेदात्मि-

काऽविद्या अविद्यां शमयन्ती स्वयं शाम्यति ... ..

६६

समारोपितमेदादद्वैते बन्धमोक्षसुखदुःखादिव्यवस्था सुघटा ...

६७

(उत्तरपक्षः) मेदस्य प्रमाणवाचितत्वाद्मेदः साध्यते अमेदे

साधकप्रमाणसद्भावाद्वा ? ... ..

६७

मेदमन्तरेण प्रमाणेतरव्यवस्थाप्यसंभाव्या ... ..

६७

निर्विकल्पकप्रत्यक्षेण एकव्यक्तिगतमेकत्वम् अनेकव्यक्तिगतं व्यक्ति-

मात्रगतं वा प्रतीयेत ? ... ..

६७

एकव्यक्तिगतं तु साधारणमसाधारणं वा ? ... ..

६७

अनेकव्यक्तिगतं सत्तासामान्यं व्यक्त्यधिकरणतया प्रतिभास्यनधि-

करणतया वा ? ... ..

६८

तथा एकव्यक्तिग्रहणद्वारेण तत्प्रतीयते सकलव्यक्तिग्रहणद्वारेण वा ?

६८

एकत्वं व्यक्तिभ्यो मिश्रमभिर्जं वा ? ... ..

६८

एकत्वं नानात्वमन्तरेण न सिध्यति ... ..

६८

मेदव्यवहारो हि अन्यापेक्षो न तु मेदस्य स्वरूपं तस्य प्रत्यक्षादेव

प्रतीतेः ... ..

६८

कल्पना च किं ज्ञानस्य स्मरणानन्तरमाविलं शब्दाकारानुविद्धत्वं

वा आख्याद्युल्लेखो वा असदर्थविषयत्वं वा अन्यापेक्षतयाऽर्थ-

स्वरूपावधारणं वा उपचारमात्रं वा ? ... ..

६९

किं शब्दजनितो मेदप्रतिभासः मेदप्रतिभासजनितो वा शब्दः ?

६९

विषयाः	५०
प्रथमपक्षे शब्दादेव भेदप्रतिभासः ततोऽसौ भवत्येव वा ? ...	६९
शब्दादनेकलप्रतिभासे 'एकं ब्रह्मणो रूपम्' इति आगमस्यापि भेदप्रतिभासजनकत्वं स्यात् ... ..	६९
अनुमानाद् ब्रह्माद्वैतसाधने किं स्वतः प्रतिभासमानत्वं हेतुः परतो वा ?	७०
आगमब्रह्मसाधने प्रतिपाद्यप्रतिपादकरूपेण द्वैतं स्यात् ... ..	७०
ब्रह्मणः सकललोकसर्गस्थितिप्रलयहेतुत्वमसंभाव्यं कार्यकारणभाव- तया द्वैतप्रसङ्गात् ... ..	७०
व्यसनितयाऽस्य जगद्वैचित्र्यविधाने अपेक्षापूर्वकारित्वम् ...	७१
तद्व्यतिरेकेण परस्यासत्त्वाच्च कृपया परोपकारार्थमपि तद्विधानम्	७१
अनुकम्पावशाच्च सृष्टिविधाने सदा सुखितमेव जगत् कुर्यात् प्रलयश्च न करणीयः ... ..	७१
स्वतन्त्रस्य प्राप्यदृष्ट्यपेक्षणमनुपपन्नम् ... ..	७१
अदृष्टवशाच्च सृष्टिसंभावनार्था किं ब्रह्मणा ... ..	७१
कर्णनामश्च न स्वभावतया जालादिविधाने प्रवर्तते किन्तु प्राणि- मक्षणलक्ष्म्यव्यात् ... ..	७२
प्रलक्षस्य विधातुर्लं किं सत्तामात्रावबोधः असाधारणवस्तुस्वरूप- परिच्छेदो वा ? ... ..	७२
आकारभेदस्यैव सर्वत्र अर्थभेदकत्वम् ... ..	७२
अभेदोऽप्यर्थानां देशाभेदात् कालभेदादाकाराभेदाद्वा ? ...	७३
यद्यविद्या अवस्तुसती कथं प्रयत्ननिवर्तनीया ... ..	७३
तत्त्वतः सद्भावेऽपि अविद्यायाः निवृत्तिः संभवत्येव घटादिवत्	७३
घटादीनामविद्यानिर्मितत्वेन असत्त्वे अन्योन्याश्रयः ... ..	७३
अभेदस्य विद्यानिर्मितत्वेऽपि परस्पराश्रयः ... ..	७३
अविद्यायाः तत्त्वज्ञानप्रागभावरूपत्वे भेदज्ञानलक्षणकार्योत्पाद- कत्वाभावः ... ..	७३
भेदज्ञानस्वभावात्मिकायामविद्यायां प्रागभावस्य भावात्मकत्वापत्तिः	७४
न ज्ञानस्य भेदाभेदग्रहणकृता विधेतरव्यवस्था अपि तु संवादविसं- वादाधीना ... ..	७४
अविद्यायाः अवस्तुत्वादिचारागोचरत्वं विचारागोचरत्वाद्वाऽवस्तुत्वम्	७४
मिथ्यामिथ्यादिविचारः प्रमाणमप्रमाणं वा ? ... ..	७४
बाध्यबाधकमावामावे कथं अवयवमननादिलक्षणाऽविद्या अविद्यां प्रक्षमयेत् ... ..	७४
बाध्यबाधकमावश्च सतोरेव न त्वसतोः सदसतोर्वा ... ..	७५
न च भेदस्योच्छेदो भवति वस्तुधर्मत्वादस्य ... ..	७५

विषयाः

पृ०

स्वप्नावस्थायामेदस्य बाध्यमानत्वादसत्त्वेऽपि जाग्रदृशायामबाध्य-

मानत्वात्सत्त्वमस्तु ... .. ७५

बाधकेन ज्ञानमपह्रियते विषयो वा फलं वा, बाधकमपि ज्ञानमर्थो

वा ? ज्ञानमपि समानविषयं मित्रविषयं वा ? अर्थोऽपि प्रतिमा-

तोऽप्रतिमातो वा ? क्वचित्कदाचिद्बाधकादसत्त्वं सर्वत्र सर्वदा

वा इत्यादि दूषणमसत् ; यतो हि रजतप्रत्ययस्य उत्तरकाल-

भाविना शुक्तिप्रत्ययेन एकविषयतया बाध्यत्वोपलम्भात् ... ७५-७६

विपरीतार्थरूपकं ज्ञानं बाधकम् ... .. ७६

मिथ्याज्ञानस्येदमेव बाध्यत्वं यदस्मिन् मिथ्यात्वापादनम्, क्वचि-

त्प्रवृत्तिप्रतिषेधोऽपि फलम् ... .. ७६

बाध्यबाधकमाभावे कथं विद्या अविद्यां जायेत ? ... .. ७७

निरर्थो आत्मनि समारोपिता मुखदुःखादिव्यवस्थाप्यसम्भाव्या ... ७७

यौगाचाराभिमतविज्ञानाद्वैतवादः ... .. ७७-९४

किमविभागज्ञानस्वरूपावेदकप्रमाणसङ्गावतो विज्ञप्तिमात्रं तत्त्वम-

भ्युपगम्यते बहिरर्थसङ्गावबाधकप्रमाणानवष्टम्भेन वा ? ... ७७

प्रत्यक्षश्च न अर्थोभावनिश्चयमन्तरेण विज्ञप्तिमात्रमेवेत्यधिगन्तुं

समर्थम् ... .. ७७

न च प्रत्यक्षेणाऽर्पोभावः प्रतीयते ... .. ७७

नाप्यनुमानेन अर्थोभावो वेद्यते ... .. ७८

अर्थोभावग्राहकं चानुमानं स्वभावलिङ्गं कार्यहेतुसमुत्पन्नमुपलब्धि-

प्रसूतं वा स्यात् ? ... .. ७८

अद्वयानुपलब्धिपर्याभावसाधिका द्वयानुपलब्धिर्वा ... .. ७८

अर्थसंविदोः सहोपलम्भनियमात् अमेदसाधनमप्यसत् ; पक्षस्य

प्रत्यक्षबाधितत्वात् ... .. ७९

आहार्यमन्तरेण द्विचन्द्रदर्शनस्यासंभवात् द्विचन्द्रदृष्टान्तोऽपि

साध्यविकलः ... .. ७९

सहोपलम्भनियमश्चासिद्धः अर्थसंविदोः विवेकेन प्रतीतेः ... ८०

अनेकान्तिकश्च सहोपलम्भः रूपालोकयोः मित्रयोरपि सहोप-

लम्भात् ... .. ८०

सर्वज्ञज्ञानस्य तज्ज्ञेयस्य चेतारजनचित्तस्य सहोपलम्भेऽपि मेदाद्व्य-

मिचारः ... .. ८०

सहोपलम्भस्य युगपदुपलम्भभार्यकत्वे विरुद्धत्वम् ... .. ८०

क्रमेणोपलम्भाभावश्च असिद्धः ... .. ८०

क्रमेणोपलम्भाभावाद् अमेदः साध्यते मेदामावो वा ? ... .. ८१



विषयाः	५०
एकोपलम्भरूपसहोपलम्भे किम् एकत्वेनोपलम्भः एकोपलम्भः	
एकैनेव वोपलम्भः एकलोलीमावेन चोपलम्भः, एकस्यैवोप-	
लम्भो वा ? ... ..	८१
एकस्यैवोपलम्भे किं ज्ञानस्योपलम्भः अर्थस्य वा ? ... ..	८२
नीलादिकमहं वेधि इति नीलादिभ्यो भिन्नेनाहम्प्रत्ययेन तत्प्रति-	
भासाभ्युपगमात् अतिद्वः स्वतोऽवभासनस्रज्जणो हेतुः ...	८३
अहम्प्रत्ययो गृहीतोऽगृहीतो वा निर्व्यापारः स्वव्यापारो वा निर-	
कारः साकारो वा भिन्नकाल समकालो वा नीलादेर्ग्राहकः ?	
गृहीतश्चेत् स्वतः परतो वा, व्यापारवत्त्वे व्यतिरिक्तो व्यापारः	
अव्यतिरिक्तो वा, अर्थमहं वेधि इत्यादि कर्तृकरणादिप्रतीतिः	
द्विचन्द्रादिवद्भ्रान्ता इति पूर्वपक्षीयविकल्पाः ... ..	८४-८६
अहम्प्रत्ययो गृहीत एव ग्राहकः तद्गृह्य स्वत एव ... ..	८६
स्वपरप्रकाशस्वभावात् एव च ज्ञानस्य व्यापारः ... ..	८६
नीलादेर्जनरूपत्वे सप्रतिषादिरूपतात्प्यूलरूपता च न स्यात् ...	८६
अन्तर्बहिः प्रतिभासमेवेन च ज्ञानार्थयोः नेदः ... ..	८६
निराकारयेव ज्ञानस्यैव ग्राहकम् योग्यताप्रतिनिधमाश्च नाशे शायं प्रह-	
प्रसक्तः ... ..	८६
भिन्नकालस्य सनकालस्य वा योग्यसैवार्थस्य ग्रहणम् ... ..	८७
अनुमानेऽप्यर्थं विकल्पकालः समानः—किं लिंगं भिन्नकालं सदनुमा-	
नस्य जनकं समकालं वैलादि ... ..	८७
एकज्ञानमध्यवीनरूपादीनां सनसमयत्वेऽपि यथा स्वरूपप्रतिनिधमा-	
ह्नुपादानंतरव्यवस्था तथा ग्राह्यग्राहकव्यवस्थापि स्यात् ...	८८
स्वार्थग्रहणैकस्वभावात्तद्विज्ञानस्य न 'ज्ञानं येन स्वभावेन स्वरूपं	
विषयीकरोति तेनैव अर्थं स्वभावान्तरेण वा' इत्यादि दोषाः	८९
रूपादीनां यथा सजातीयेतरकर्तृत्वं स्वभावप्रतिनिधमास्तथा ज्ञानं	
स्वपरग्राहकम् ... ..	८९
स्वरूपस्य स्वतोऽवगतावपि भिन्नकालसमकालादिविकल्पः समानः	९०
परतः प्रतिभासमानस्रज्वादिनोऽसिद्धम् ... ..	९०
यदवभासते तज्ज्ञानमिति साध्यसाधनयोः व्याप्तिश्चासिद्धा ...	९१
जडस्य प्रतिभासायोगश्च प्रतिपक्षस्य अप्रतिपक्षस्य वा जडस्याभि-	
धीयते ... ..	९१
नैयायिकस्य सुखादौ ज्ञानरूपत्वाऽसिद्धेः साध्यविकले दृष्टान्तः ...	९२
सुखादेरज्ञानत्वे पीडाजुप्रहाचमावे किं सुखाद्येव पीडाजुप्रहौ ततो	
भिन्नौ वा ... ..	९२

विषयाः	५०
जैनमते मुखादेर्ज्ञानरूपत्वेऽपि नील्यदौ स्वप्रकाशत्वमसिद्धमेव ...	१३
कर्तृकर्मकरणाद्विपरीतेः अबाधितत्वाच्चित्रान्नादिप्रत्ययवद् भ्रान्त- ता युक्ता ... ..	१३
अद्वैतप्रसाधकप्रमाणसद्भावे च द्वैतापत्तिः, प्रमाणमन्तरेण च न द्वैतप्रसिद्धिः ... ..	१४
अद्वैतमित्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधः, पर्युदासो वा ? ... ..	१४
द्वैतादद्वैतस्य व्यतिरेकोऽव्यतिरेको वा ? ... ..	१४
प्रज्ञाकरगुप्ताभिमतचित्राद्वैतवादस्य निरासः... ..	१५-१६
अशक्यविवेचनत्वं साधनं किं बुद्धेरभिज्ञत्वं सहोत्पन्नानां नील्य- धीना बुध्यन्तरपरिहारेण विवक्षितबुध्यैवानुभवः मेदेन विवेच- नाभाषमात्रं वा ? ... ..	१५
अद्विन्तदैशसम्बन्धित्वेन ज्ञानार्थयोः विवेचनं शक्यमेव ...	१६
चित्रज्ञानस्य युगपदनेकाकारव्यापित्ववद् क्रमेणाप्यनेकाकारव्यापित- मात्मनः किञ्चेष्यते ? ... ..	१६
माध्यमिकाभिमतशून्यवादस्य निरासः ... ..	१६-१७ ✓
एकस्य चित्रज्ञानस्य अनेकाकारव्यापित्वाभावे नीलज्ञानमप्येकं न स्यात् तत्रापि प्रतिपरमाणुज्ञानभेदकल्पनात् ... ..	१७
ग्रामारामादीनां प्रतिभासमानत्वात् कथं सकलशून्यताभ्युपगमः श्रेयान् ... ..	१७
अखिलशून्यतायाः प्रमाणतः सिद्धिः प्रमाणमन्तरेण वा ? ...	१७
ज्ञानस्य स्वव्यवसायात्मकत्वसमर्थनम् ... ..	१७
सांख्याभिमतप्रकृतिपरिणामात्मक-अचेतनज्ञानवाद- स्य निरासनम् ... ..	१८-१०३
प्रधानविवर्तत्वादाचेतनं ज्ञानं न स्वव्यवसायात्मकमिति; तच्च; आत्मविवर्तत्वाज्ज्ञानस्य ... ..	१८
ज्ञानविवर्तयानात्मा द्रष्टृत्वात् ... ..	१८
चेतनोऽहमित्यनुभवश्चेतन्यस्वभावतावत् ज्ञाताहमित्यनुभवज्ञान- स्वभावताप्यस्यु ... ..	१९
ज्ञानसंसर्गात् पुरुषस्य ज्ञत्वे चैतन्यादिसंसर्गादेव चेतनः छुद्दः उदासीनश्च पुरुषः स्यात् न तु स्वतः ... ..	१९
आत्मनो ज्ञानस्वभावत्वेऽनित्यत्वापत्तिः प्रधानेऽपि समाना ...	१९
बुद्धेः स्वसंवेदनप्रत्यक्षाभावे प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं न स्यात्	१००
बुद्धिः स्वव्यवसायात्मिका कारणान्तरनिरपेक्षतयाऽर्थव्यवस्थाप- कत्वात् ... ..	१००

विषयाः	५०
अर्थव्यवस्थितौ बुद्धेः पुरुषानुभवापेक्षस्तमयुक्तम्, बुद्धिचैतन्ययोः मेदानुपलब्धेः ... .. १००	१००
एकमेवेदं हर्षविषादाद्यनेकाकारं चैतन्यम्, तस्यैव बुद्ध्यवसाया- दयः पर्यायाः ... .. १००	१००
तप्तायोगोलके यथा अयोगोलकाभ्योः संसर्गादमेदः तथा बुद्धिचै- तन्ययोः मेदानवधारणमयुक्तम्; अयोगोलकाभ्योरपि मेदा- भावात् ... .. १०१	१०१
बुद्धेरचेतनत्वे विषयव्यवस्थापकत्वं न स्यात् ... .. १०२	१०२
आदर्शादिष्वचेतनस्य आकारवत्त्वेऽपि नार्थव्यवस्थापकत्वम् ... १०२	१०२
अन्तःकरणल-पुरुषोपभोगप्रत्यासन्नहेतुस्वरूपबुद्धिलक्षणयोः मनो- ऽक्षादिनाऽनैकान्तिकता ... .. १०२	१०२
अन्तःकरणमन्तरेण अर्थप्रत्यक्षाताऽभावे कथमन्तःकरणस्य प्रत्यक्षाता ? ... .. १०२	१०२
विषयाकारधारिता च अमूर्त्या बुद्धेरनुपपत्त्या ... .. १०३	१०३
यौद्धामिमतसाकारज्ञानवादस्य निरासः ... .. १०३-११०	१०३-११०
प्रत्यक्षेण विषयाकाररहितं ज्ञानमनुभूयते ... .. १०३	१०३
विषयाकारधारित्वे ज्ञानस्यार्थे ब्रूयन्निकटादिव्यवहाराभावः ... १०३	१०३
ज्ञानं यथा नीलतामनुकरोति तथा जडतामपि तदा जडं स्यात् ... १०४	१०४
जडताननुकरणे कथं तस्या ग्रहणम् ? ... .. १०४	१०४
ज्ञानान्तरेण केवला जडता प्रतीयते तद्वशीलताऽपि वा ? ... १०५	१०५
ज्ञानं प्रतिनियतसामर्थ्यवशात् प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकम् ... १०५	१०५
नीलाकारवज्जडाकारस्य अदृष्टेन्द्रियाद्याकारस्य वाऽनुकरणप्रसङ्गः ... १०५	१०५
पुत्रस्य पित्रोरन्यतराकारानुकरणवज्ज्ञानस्य नीलाकारस्यैवानुकरणे निराकारत्वेऽपि प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं किञ्च स्यात् ? ... १०५	१०५
सकलं वस्तु निखिलज्ञानस्य कारणं साकारार्पकं च किञ्च स्यात् ? १०६	१०६
अमाणलाज्ज्ञानस्य नार्थाकारानुकरणम् ... .. १०६	१०६
यतो घटयति विवक्षितं ज्ञानमर्थरूपता, अर्थसम्बद्धं वा ज्ञानं निश्चाययति ? ... .. १०७	१०७
विशिष्टविषयोत्पाद एव च ज्ञानस्यार्थेन सम्बन्धः ... .. १०७	१०७
साकारं ज्ञानं किमिति सन्निहितं नीलाद्याकारमेवानुकरोति न विप्र- कृतार्थाकारम् ? ... .. १०८	१०८
ज्ञाने साकारता साकारेण ज्ञानेन प्रतीयते निराकारेण वा ? ... १०८	१०८
साकारसवेदनस्य अखिलसमानार्थसाधारणत्वेनानिबतार्थवर्षटन- प्रसङ्गः ... .. १०८	१०८

विषयाः	पृ०
तदुत्पत्तेरिन्द्रियादिना व्यभिचारः ... ..	१०८
तद्व्यस्य समानार्थसमनन्तरप्रत्ययेन व्यभिचारः ... ..	१०८
पुत्रस्य पित्रानुकरणवत् अर्थेन्द्रियोः अर्थाकारस्यैवानुकरणे	
खोपादानमात्रानुकरणप्रसङ्गः ... ..	१०९
उपादानभूतस्य पूर्वज्ञानस्याप्यनुकरणे तस्यापि विषयतापत्तिः ...	१०९
तत्त्वन्मादित्रयस्य कामलिनः शुक्ले शंखे पीताकारजानेन व्यभिचारात्	१०९
ज्ञानगताक्षीलाद्याकारात् क्षणिकलाद्याकारो भिन्नोऽभिन्नो वा ? ...	१०९
यस्मिन्मंशे संस्कारपाटवाग्निश्चयोत्पत्तिस्तत्रैव प्रामाण्येऽभ्युपगम्य-	
माने स निश्चयः साकारो निराकारो वा स्यात् ? ... ..	११०
चार्वाकाभिमतभूतचैतन्यवादस्य निरासः ... ..	११०-१२०
भूतपरिणामत्वे हि ज्ञानस्य चाहेन्द्रियप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गः ... ..	११०
सूक्ष्मो भूतविशेषः चैतन्यजातीयो विजातीयो वा चैतन्योपादानं	
स्यात् ? ... ..	११०
असाधारणलक्षणत्वाच्चैतन्यं पृथिव्यादिव्यस्तत्त्वान्तरम् ... ..	१११
सुख्यदृष्टिसिद्धादिरूपतया प्रतीयमानत्वात् प्रत्यक्षेणैव आत्मनः सिद्धिः	१११
नचाहम्प्रत्ययः शरीरालम्बनो बहिःकरणनिरपेक्षाऽन्तःकरण-	
व्यापारेणोत्पत्तेः ... ..	११२
अहमिति प्रत्ययस्यैव न जीवस्त्वस्मान्नता ... ..	११३
लक्षणमेवेन न एकस्यैवात्मनः कर्तृत्वं कर्मत्वं चाविरुद्धम् ...	११३
ओत्रादिकरणं कर्तृप्रयोज्यं करणत्वादित्यनुमानेनापि आत्मसिद्धिः	११३
रूपाद्युपलब्धिः करणकार्या क्रियात्वात् ... ..	११३
शब्दादिकानं कविदाभितं गुणत्वाद्रूपादिवत् इत्यनुमानादपि आत्म-	
सिद्धिः ... ..	११३
ज्ञानं न शरीरगुणं सति शरीरे निवर्तमानत्वात् ... ..	११४
शरीरं न चैतन्यगुणाश्रयो भूतविकारत्वात् ... ..	११४
न हिन्द्रियं चैतन्यवत् करणत्वाद्भूतविकारत्वाद्वा वास्यादिवत् ...	११४
स्मरणादिवैतन्यमिन्द्रियगुणो न भवति तद्विनाशेऽभ्युत्पद्यमानत्वात्	११४
न चैतन्यगुणवन्मनः करणत्वात् ... ..	११५
नापि विषयगुणः तदसाक्षिभ्यो तद्विनाशे च अनुत्पत्त्यादिदर्शनात्	११५
तेभ्यश्चैतन्यमित्यत्र 'अभिव्यज्यते' इति क्रियाध्याहारे सतोऽभि-	
व्यक्तिचैतन्यस्य असतो वा सदसद्रूपस्य वा ? ... ..	११६
सर्वथाऽसतोऽभिव्यक्तौ व्यञ्जककारकयोः भेदाभावः स्यात् ...	११६
पिष्टोदकादिष्वपि शक्तिरूपेण सादकत्वस्य अवस्थानम् ... ..	११७
चैतन्यमुत्पद्यते इत्यत्र भूतानां चैतन्यं प्रति उपादानकारणत्वं सह-	
:- कारिकारणत्वं वा ? ... ..	११७

विषयाः	५०
भूतोपादानत्वे धारणेरणादिभूतस्वभावानां चैतन्येऽनुवृत्तिः स्यात्	११७
प्राणिनामाद्यं चैतन्यं चैतन्यकारणकं निद्विवर्तत्वात् मध्यविद्विवर्त- वत् इत्यनुमानाच्चैतनतत्त्वसिद्धिः ... ..	११७
अन्यच्चैतन्यपरिणामश्चैतन्यकार्यः विद्विवर्तत्वात् ... ..	११८
भूतानां सहकारिकारणत्वे उपादानमन्यद्वाच्यमनुपादानकार्यानुत्पत्तेः	११८
गोमायादेर्न वृक्षिकचैतन्यमुत्पद्यते अपि तु वृक्षिकशरीरम् ...	११८
प्रथमपथिकामेः अनन्युपादानत्वे जलदेरप्यजलाद्युपादानत्वापत्तेः तत्त्वचतुष्टयव्याघातः ... ..	११८
अनाद्येकानुभविचव्यतिरेकेण जन्मादौ बालस्य स्तन्यपानादौ स्मर- णामिलाषादयो न स्युः ... ..	११९
'अहं जानामि' इत्यत्र कर्तृत्वेन आत्मनः प्रतिभासो भवत्येव ...	११९
अनाद्यनन्त आत्मा ब्रह्मत्वात् ... ..	१२०
ब्रह्मसौ गुणपर्ययवत्त्वात् ... ..	१२०
शरीररहितस्य आत्मनः प्रतिभासः स्यादित्यत्र किं शरीरस्वभाववि- कलस्य शरीरदेशपरिहारेण अन्यदेशावस्थितस्य वा ? ...	१२०
शरीरप्रदेशादन्यत्रानुपलम्भादन्यत्र तदभावः शरीर एव वा ? ...	१२०
शरीरादात्मनोऽन्यत्वाभावः किं तत्स्वभावत्वात् तद्गुणत्वात् तत्कार्य- त्वाद्वा स्यात् ? ... ..	१२०
मीमांसकाभिमतपरोक्षज्ञानवादस्य निरासः ... ..	१२१-१२८
कर्मलस्य प्रत्यक्षतां प्रत्यक्षत्वे आत्मनोऽप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गः ... ..	१२१
आत्मनः प्रत्यक्षत्वे परोक्षज्ञानकल्पना किमर्थिका ? ... ..	१२१
भावेन्द्रियमनसोः लब्धिरूपयोः न परोक्षता ... ..	१२२
उपयोगरूपस्य तु प्रत्यक्षतैव ... ..	१२२
करणज्ञानस्य करणत्वेनानुभूयमानत्वात् फलज्ञान-आत्मवत् प्रत्यक्ष- ताऽस्तु ... ..	१२२
आत्मफलज्ञानाभ्यां करणज्ञानस्य कथञ्चिद्भेदे प्रत्यक्षतैव स्यात् ...	१२३
आत्मज्ञानयोः सर्वथा कर्मत्वाप्रसिद्धिः कथञ्चिद्वा ? ... ..	१२३
प्रत्यक्षता अर्थवर्मः ज्ञानधर्मो वा ? ... ..	१२४
अस्वसंवेदनज्ञानवादिनः न प्रत्यक्षाज्ज्ञानसद्भावसिद्धिः अतद्विष- यत्वात् ... ..	१२५
अनुमानाज्ज्ञानसद्भावसिद्धौ अर्थज्ञप्तिः किं स्यात् इन्द्रियार्थो वा तत्सहकारिप्रगुणं मनो वा ? ... ..	१२५
अर्थज्ञप्तिः किं ज्ञानस्वभावा अर्थस्वभावा वा ? ... ..	१२५
इन्द्रियार्थो च न लिङ्गम् ज्ञानाविनाभावाभावात् ... ..	१२६

विषयाः

पृ०

मनोऽपि न लिङ्गं तत्सद्भावासिद्धेः ... ..	१२६
सुगुपज्ञानानुत्पत्तौ न मनःसद्भावासिद्धिः ... ..	१२६
ज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वैकान्ते तेन लिङ्गस्याविनाभावो न गृहीतुं शक्यः ...	१२७
फलत्वेन प्रतिभासनात् प्रसितेः प्रत्यक्षतानत् आत्मनोऽपि कर्तृत्वेन प्रतिभासनात् प्रत्यक्षताऽस्तु ... ..	१२८
ज्ञानानुच्चारणेऽपि स्वस्य प्रतिभासः अर्थवत् ... ..	१२८
आत्मप्रत्यक्षत्वसिद्धिः ... ..	१२८-१३२
सुखादेः संवेदनादर्थान्तरस्याऽप्रतिभासनात्, आह्लादनाकारपरिणत-ज्ञानविशेषस्यैव सुखत्वात् तस्य च प्रत्यक्षत्वात् ... ..	१२९
सुखस्य परोक्षत्वे अन्यप्रत्यक्षज्ञानप्राप्त्यै वा अनुग्रहोपधातका-रित्वासंभवः ... ..	१२९
न पुत्रसुखाद्युपलम्भमात्रादात्मनोऽनुग्रहः अपि तु सौमनस्यादि-जनिताभिमानिकपरिणतेः ... ..	१२९
न खलु सुखादि अविविक्तस्वरूपं पूर्वमुत्पन्नं पश्चात् तस्य ग्रहणम् अपि तु स्वप्रकाशरूपस्यैव सुखादेरुदयः ... ..	१२९
विभिन्नप्रमाणप्राप्ताणां सुखादीनामनुग्रहादिकारित्वविरोधः ...	१३०
आत्मनः सुखादेरत्यन्तमेवे आत्मीयेतरविभागाभावः ... ..	१३०
आत्मीयत्वं हि सुखादीनां तद्गुणत्वात्, तत्कार्यत्वात् तत्र समवा-यात्, तदाधेयत्वात्, तददृष्टनिष्पाद्यत्वाद्वा ... ..	१३०
तदाधेयत्वं च किं तत्र समवायः तादात्म्यं तत्रोत्कलितत्वमात्रं वा ?	१३१
अदृष्टादेरपि मेदैकान्ते न आत्मीयत्वनियमः ... ..	१३२
नैयायिकाभिमतज्ञानान्तरवेद्यज्ञानवादस्य निरासः ... १३२-१४९	
अमेयत्वात् ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वे सुखसंवेदनेन हेतोर्व्यभिचारो महेश्वरज्ञानेन च ... ..	१३२
ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वे अनवस्था ... ..	१३३
नच ज्ञानद्वयमीश्वरे; समानकाल्यावद्व्यभावसिद्धिर्नातीत्यनुग्रहस्य एकत्राभावात् ... ..	१३३
द्वितीयज्ञानं च प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा ? ... ..	१३३
प्रत्यक्षं चेत् स्वतो ज्ञानान्तराह्ला ? ... ..	१३३
अनयोर्ज्ञानयोर्महेश्वरभेदे कथं तदीयत्वसिद्धिः ? ... ..	१३३
ज्ञानस्य ईश्वरे समवेतत्वं नेश्वरेण प्रतीयते, स्वसंवेदितप्रसङ्गात् नापि ज्ञानेन 'महेश्वरेऽहं समवेतम्' इति प्रतीतिः ... ..	१३४
स्वज्ञानस्य अप्रत्यक्षत्वे च कथं महेश्वरस्य सर्वज्ञत्वम् ? ... ..	१३४
अप्रत्यक्षेण ज्ञानेन अशेषज्ञतायामीश्वरानीश्वरविभागाभावः ...	१३४
ज्ञानसामान्यस्य स्वपरप्रकाशफलं चर्मो न तु विविष्टस्य ज्ञानस्य ...	१३५

विषयाः	५०
धर्मिणो ज्ञानस्यासिद्धेः आश्रयासिद्धः प्रमेयत्वाविति हेतुः	१३५
धर्मिज्ञानस्य सिद्धिः किं प्रत्यक्षादनुमानतो वा ?	१३५
न मानसप्रत्यक्षादपि धर्मिज्ञानसिद्धिः	१३५
घटादिज्ञानज्ञानमिन्द्रियायैसन्निकर्षजं प्रत्यक्षत्वे सति ज्ञानत्वादि- त्यनुमानादपि न मनःसिद्धिः	१३६
स्वात्मनि क्रियाविरोधाच्च स्वसंवेदनं ज्ञानस्येत्यत्र हि स्वात्मा किं क्रियायाः स्वरूपं क्रियावदात्मा वा ?	१३६
स्वात्मनि उत्पत्तिलक्षणा वा क्रिया विरुध्यते परिस्यन्दात्मिका आलयरूपा ज्ञातिरूपा वा ?	१३७
ज्ञानक्रियायाः कर्मतयाऽपि न स्वात्मनि विरोधः	१३७
ज्ञानान्तरापेक्षया तत्र कर्मत्वविरोधः स्वरूपापेक्षया वा ?	१३७
कर्मत्ववच्च ज्ञानक्रियातोऽर्थान्तरस्यैव करणत्वदर्शनात् करणत्वस्यापि विरोधोऽस्तु	१३८
युगपज्ज्ञानोत्पत्तिप्रतीतिः न तदनुत्पत्त्या मनःसिद्धिः	१४०
‘नष्टुरादिकं क्रमवत्कारणापेक्षं कारणान्तरसाकल्ये सत्यनुत्पाद्योत्पा- दकत्वात्’ इत्यनुमानादपि न मनःसिद्धिः	१४०
अनुत्पाद्योत्पादकत्वं क्रमेण युगपद्वा ?	१४०
मनसोऽपि प्रतिनियतात्मीयत्वं तत्कार्यत्वात् तदुपक्रियमाणत्वात् तत्संयोगात् तददृष्टप्रेरितत्वात् तदात्मप्रेरितत्वाद्वा ?	१४१
ईश्वरस्य स्वसंविदितज्ञानानभ्युपगमे ‘सदसद्वर्गः एकज्ञानालम्बन- मनेकत्वात्’ इत्यस्य व्यभिचारिता	१४२
आद्ये ज्ञाने सति द्वितीयज्ञानमुत्पद्यतेऽसति वा ?	१४२
तज्ज्ञानान्तरमसदादीनां प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा ?	१४२
‘प्रयोजनाभावाच्चतुर्यादिज्ञानकल्पनाऽभावाज्ज्ञानवस्था’ इत्ययुक्तम् ; ज्ञानस्य जिज्ञासाप्रभवत्वानभ्युपगमात्	१४५
अर्थजिज्ञासायामहं समुत्पन्नमिति तज्ज्ञानादेव प्रतीतिः ज्ञानान्तराद्वा ?	१४५
‘अर्थज्ञानमर्थमात्मानं च प्रतिपद्य अज्ञातमेव मया ज्ञानमर्थपरिच्छे- दकम्’ इति ज्ञानान्तरं प्रतीयादप्रतिपद्य वा ?	१४५
नापि चाक्षिण्यात् ईश्वरात् विषयान्तरसम्भाराददृष्टाद्वा अनवस्था- वारणम्	१४६
स्वपरप्रकाशश्च स्वपरोद्योतनरूपोऽभ्युपगम्यते	१४७
स्वपरप्रकाशयोः कथञ्चिद्वेदामेदात्मकत्वाऽभ्युपगमाच्च स्वभावत- द्वत्पक्षभाविनो दोषाः	१४८
प्रामाण्यवाद् :	१४९-१७६
स्वतः प्रामाण्यं किमुत्पत्तौ ज्ञप्तौ स्वकार्ये वा ?	१५०

वेद्यः

१५०

स्वत उत्पद्यते इति किं कारणमन्तरेण उत्पद्यते स्वसामग्रीतो

विज्ञानसामग्रीतो वा ? ... .. १५०

( मीमांसकस्य पूर्वपक्षः ) गुणविशेषणविशिष्टेभ्यः चक्षुरादिभ्यो न

प्रामाण्यमुत्पद्यते प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा गुणानामप्रतीतेः ... १५१

गुणानुमानमपि स्वभावलिङ्गात् कार्यात् अनुपलब्धेर्वा भवेत् ? ... १५१

यथार्थोपलब्धिस्तु स्वरूपमात्रानुमापिका न गुणानुमापिका ... १५२

नैर्मल्यं च स्वरूपमेव न गुणः ... .. १५२

अर्थतयात्प्रकाशानलक्षणप्रामाण्यस्य चक्षुरादिभ्योऽनुत्पत्तौ ततः

प्राक् विज्ञानस्य स्वरूपं वक्तव्यम् ... .. १५२

अर्थतयात्परिच्छेदरूपा शक्तिः प्रामाण्यम्, शक्तयश्च स्वत एवो-

त्पद्यन्ते ... .. १५३

ज्ञप्तिरपि प्रामाण्ये कारणगुणानपेक्षते संवादप्रत्ययं वा ? ... .. १५४

संवादज्ञानमपि समानजातीयं मिश्रजातीयं वा ? ... .. १५४

समानजातीयमपि एकसन्तानप्रभवं मिश्रसन्तानप्रभवं वा ? ... १५४

एकसन्तानप्रभवमपि अभिन्नविषयं मिश्रविषयं वा ? ... .. १५४

मिश्रजातीयं च किमर्थक्रियाज्ञानमुतान्यत् ? ... .. १५४

अर्थक्रियाज्ञानस्य च अन्यार्थक्रियाज्ञानात् प्रामाण्यनिश्चयः प्रथम-

प्रमाणाद्वा ? ... .. १५५

समानकालमर्थक्रियाज्ञानं प्रामाण्यव्यवस्थापकं मिश्रकालं वा ? ... १५५

यथेककालं पूर्वज्ञानविषयं तदविषयं वा ? ... .. १५५

अप्रामाण्ये बाधकारणदोषज्ञानयोरवश्यंभावित्वात् परतोऽप्रामाण्य-

निश्चयः ... .. १५६

बोदनाद्बुद्धिस्तु अपौरुषेयत्वात् स्वतः प्रामाण्यम् ... .. १५६

स्वकार्ये च संवादप्रत्ययमपेक्षेत कारणगुणान् वा ? ... .. १५६

कारणगुणाश्च गृहीताः अगृहीता वा सहकारिणः स्युः ? ... .. १५६

( उत्तरपक्षः ) शक्तिरूपे इन्द्रिये गुणानामभावः साध्यते व्यक्तिरूपे

वा ? ... .. १५९

जातमात्रस्य नैर्मल्यप्रतीतेः तस्य गुणरूपत्वमावे तिमिरादिदोषस्य

दोषरूपत्वमपि न स्यात् ... .. १५९

घटादीनां च रूपादिगुणस्वभावता न स्यात् ... .. १६०

नैर्मल्योदेर्मलभाक्प्रकृत्येव न गुणरूपताशक्तिः ... .. १६०

दोषाभावस्यैव गुणत्वात् ... .. १६१

शक्तिरूपप्रामाण्यस्य स्वतो भावे अप्रामाण्यशक्तेरपि स्वतो भावोऽस्तु

संवेदनस्वरूपस्य आत्मलामे कारणापेक्षितायां नान्या काचित् प्रवृ-

त्तिर्या स्वयं स्यात् ... .. १६४



विषयाः

१६०

प्रमाणस्य किं कार्यं यत् स्वयं प्रवृत्तिः किं यथायथपरिच्छेदः प्रमाण- मिदमित्यवधार्यो वा ? ... ..	१६५
अनुमानोत्पादकहेतोस्तु साध्याविनाभाविलभेत् गुणः ... ..	१६५
आगमस्यापि गुणवत्पुरुषप्रणीतत्वेनैव प्रामाण्यम् ... ..	१६५
अपौरुषेयत्वं नीलोत्पलादिषु दहनादीनां वितथप्रतीतिजनकलोपलं- भाद् व्यभिचारि ... ..	१६५
ज्ञप्तिश्च निर्निमित्ता सनिमित्ता वा ? ... ..	१६६
सनिमित्तत्वे स्वनिमित्ता अन्यनिमित्ता वा ? ... ..	१६६
अन्यनिमित्तत्वे तर्कि प्रत्यक्षमनुमानं वा ? ... ..	१६६
अनुमाने च अर्थप्राकट्यं लिङ्गं किं यथार्थत्वविशेषणविशिष्टं निर्विशेषणं वा ? ... ..	१६७
संवादश्च संवादरूपत्वादेव न संवादान्तरमपेक्षते ... ..	१६८
अर्थक्रियाज्ञानमपि न अर्थक्रियान्तरात् प्रामाण्यमभिप्राप्नोति यतः अनवस्था अपि तु स्वत एव ... ..	१६८
अर्थक्रियाहेतुर्ज्ञानमिति प्रमाणलक्षणं कथं फलभूतायामर्थक्रियाया- भावाद्भवेत् ? ... ..	१७०
भिक्षुदेशवर्तिमणिप्रभायां मणिज्ञानस्य अप्रामाण्यमेव ... ..	१७१
कतिपयार्थक्रियादर्शनाच्च ज्ञानं प्रमाणम् ... ..	१७१
अविनाभाव एव संवाद्यसंवादकभावनिमित्तं न समानजातीयत्वे- तरादि ... ..	१७१
बाधकाभावात्प्रामाण्ये किं बाधकाभावो बाधकाग्रहणे तदभाव- निश्चये वा ? ... ..	१७२
बाधकाभावनिश्चयोऽपि सम्यग्ज्ञानप्रवृत्तेः प्राक् उत्तरकारणं वा ? ... ..	१७२
बाधकाभावनिश्चयेऽनुपलब्धिः किं प्राप्तात् उत्तरकारणं वा ? ... ..	१७२
अनुपलब्धिः स्वसम्बन्धिनी आत्मसम्बन्धिनी वा स्यात् ? ... ..	१७३
त्रिवचनज्ञानमात्रोत्पत्तेः स्वतस्त्वस्वीकारे कथं न पञ्चमज्ञाने षष्ठापेक्षा ?	१७३
चोदनाप्रमवज्ञानेन गुणवद्भूतकलाभावात्कथं निःशङ्का प्रवृत्तिः ?	१७५
इति प्रथमः परिच्छेदः ।	
प्रत्यक्षैकप्रमाणत्वाद् ... ..	१७७-८०
( चार्वाकस्य पूर्वपक्षः ) प्रत्यक्षमेकमेव प्रमाणम् अगौणत्वात् ... ..	१७७
अनुमानाचार्यनिश्चयः ... ..	१७७
सामान्ये सिद्धसाध्यता विशेषेऽनुगमाभावः ... ..	१७७
व्याप्तिग्रहण-पक्षधर्मतावगमस्य असंभवाच्चानुमानप्रवृत्तिः ... ..	१७७
( उत्तरपक्षः ) अनिसंवादकत्वादनुमानं प्रमाणम् ... ..	१७८
अनुमानस्य कुतो गौणत्वं गौणार्थविषयत्वात् प्रत्यक्षपूर्वकत्वाद्वा ? ... ..	१७८
व्याप्तिग्रहणं तु तर्कप्रमाणेन ... ..	१७८

विषयाः	५०
तर्कमन्तरेण प्रत्यक्षप्रामाण्यस्य अगौणत्वादित्तिगेनापि व्याप्तिग्रहण-	
महाकथमेव ... ..	१७८
अनुमानमात्रस्याप्रामाण्यम् अतीन्द्रियार्थानुमानस्य वा ? ... ..	१७९
अनुमानं विना न प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यनिश्चयः, नापि परलोकाद्यभावः	
सावयितुं शक्यः ... ..	१८०
बौद्धाभिमतस्य प्रमेयद्वैविध्यात् प्रमाणद्वैविध्यस्य नि-	
रासः ... ..	१८०-८२
एक एव सामान्यविशेषात्माऽर्थः प्रमेय इति द्वैविध्यमसिद्धमेव ...	१८०
अनुमानस्य सामान्यमात्रविषयत्वे विशेषेष्वप्रवृत्तिरेव ... ..	१८०
व्यापकं गम्यम्, व्यापकं च कारणं कार्यस्य स्वभावो भावस्य अतः	
स्वलक्षणमेव गम्यम् ... ..	१८१
प्रमेयद्वित्वं प्रमाणद्वित्वस्य ज्ञातमज्ञातं वा ज्ञापकम् ? ... ..	१८१
ज्ञातं चेत् किं प्रत्यक्षादनुमानाद्वा ? ... ..	१८१
द्वार्या प्रमेयद्वित्वस्य ज्ञाने प्रमेयद्वित्वस्य प्रमाणद्वित्वज्ञापकत्व	
स्यात् ... ..	१८१
अन्यदपि ज्ञानम् एकमनेकं वा स्यात् ? ... ..	१८२
प्रत्यक्षसिद्ध प्रमेयद्वित्वं तु न बुज्यते प्रमेयस्य सामान्यविशेषा-	
त्मकत्वात् ... ..	१८२
नैयायिकादिभिः आगमस्य पृथक् प्रामाण्यसमर्थनम्	१८२-८५
यद्यपि शब्दः परोक्षार्थं सम्बद्धमपि गमयति तथापि प्रत्यक्षादिवत्	
भिन्नसामग्रीजन्यतया पृथगेव प्रमाणम् ... ..	१८३
शब्दं ज्ञानं न प्रत्यक्षं सविकल्पास्पष्टत्वभावत्वात् ... ..	१८३
नाप्यनुमानं त्रिरूपलिगाप्रभवत्वादननुमेयार्थविषयत्वाच्च ... ..	१८३
न शब्दस्य पक्षधर्मत्वं धर्मिणोऽयोगात् ... ..	१८३
नाप्यर्थो धर्मी ... ..	१८३
शब्दोऽर्थवान् शब्दलादित्यत्र प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धो हेतुः ...	१८३
न अर्थस्य शब्देनान्वयः ... ..	१८४
न हि यत्र देशे काले वा शब्दः तत्र अवश्यमर्थो विद्यते ...	१८४
मीमांसकादिभिरुपमानस्य पृथक् प्रामाण्यसमर्थनम्	१८५-८६
दृश्यमानाद् यदन्यत्र सादृश्योपाधितो ज्ञानं तदुपमानम् ... ..	१८५
तस्य विषयः सादृश्यविशिष्टो गौः गोविशिष्टं वा सादृश्यम् ... ..	१८५
अनधिगताथार्थाधिगन्तुतया तस्य प्रामाण्यम् ... ..	१८५
नेदं प्रत्यक्षम् ... ..	१८६
नाप्यनुमानं हेतुभावात् ... ..	१८६

विषयाः	५०
गोगतं गवयगतं वा सादृश्यमत्र हेतुः स्यात् ... ..	१८६
मीमांसकैः अर्थापत्तेः पृथक् प्रामाण्यसमर्थनम् ...	१८७-१८८
अत्यक्षादिप्रमाणप्रसिद्धार्थेन यदविनामृताऽदृष्टार्थकल्पना साऽर्थापत्तिः	१८७
अत्यक्षपूर्विका-दाहाद्हनशक्तिसम्बन्धः ... ..	१८७
अनुमानपूर्विका-सूर्ये गमनाद्गमनशक्तिसम्बन्धः ... ..	१८७
श्रुतार्थापत्तिः पीनो दिवा न मुञ्क्ते इति अवणाद् रात्रिभोजन- प्रतिपत्तिः ... ..	१८८
अर्थापत्त्यर्थापत्तिः शब्दे अर्थापत्तिप्रबोधितवाचकसामर्थ्याभिल्ल- ज्ञानम् ... ..	१८८
उपमानार्थापत्तिः-गवयोपमितायाः गोः तज्ज्ञानप्राप्त्याशक्तिः	१८८
अभावार्थापत्तिः-अभावप्रमितचैत्राभावविशिष्टगृह्यचैत्रवह्निर्भाव- सिद्धिः ... ..	१८८
मीमांसकैः अभावप्रमाणसमर्थनम् ... ..	१८९-१९२
अभावप्रमाणं निषेधान्तरादिसामग्रीतः उत्पन्नं क्वचित् घटादीना- मभारं विभावयति ... ..	१८९
अध्यक्षेण नाभावज्ञानम् ... ..	१८९
नानुमानेन हेतोरभावात् ... ..	१८९
यद्यभावो न स्यात्तदा कारणादिविभागतः प्रतीतस्य लोकव्यवहा- रस्याभावः स्यात् ... ..	१९०
प्रागभावादिमेदान्यथानुपपत्ते वस्तुलभभावस्य ... ..	१९०
अनुवृत्तिव्यावृत्तिवृद्धिप्राशङ्गाच्च वस्तुभावः ... ..	१९०
प्रागभावादिमेदेन चतुर्विधोऽभावः ... ..	१९०
वस्तुसङ्हरसिद्ध्यर्थमभावस्य प्रमाणता ... ..	१९०
सदसदात्मके वस्तुनि असदंश्चग्रहणाय अभावस्य प्रामाण्यम् ...	१९१
वस्तुन्यभिज्ञेऽपि सदसतोः धर्मयोः भेदः ... ..	१९१
नचाभावस्य भावरूपेण प्रमाणेन परिच्छेदः ... ..	१९२
जैनमतापेक्षया आगमादीनां परोक्षेऽन्तर्भावः ... ..	१९२
आगमादयः परोक्षम् अविवक्षात्वात् ... ..	१९२
उपमानस्य प्रत्यभिज्ञानेऽन्तर्भावः ... ..	१९३
अर्थापत्तेरनुमानेऽन्तर्भावसमर्थनम् ... ..	१९३-१९५
अर्थापत्त्युत्थापकोऽर्थोऽन्यथानुपपन्नत्वेनानवगतः अवगतो वा ? ...	१९३
अस्य अन्यथानुपपन्नत्वावगमः अर्थापत्तेरेव प्रमाणान्तराद्वा ? ...	१९३
प्रमाणान्तरादविनाभावावगमे तर्कि भूयोदर्शनम् विपक्षेऽनु- पलम्भो वा ? ... ..	१९४

विषयाः

पृ०

दृष्टान्ते प्रवृत्तं भूयोदर्शनं दृष्टान्त एव अविनाभावं विश्वाययति साध्यधर्मिणि वा ? ... ..	१९४
'लिङ्गस्य दृष्टान्तेऽविनाभावग्रहणम्, अर्थापत्तौ तु पक्ष एव' इत्यपि नानयोः भेदं साधयति ... ..	१९४
लिङ्गस्य न सपक्षानुगमाद्भूतता अपि तु अन्तर्व्याप्तिवत्त्वेन ...	१९४
सपक्षानुगमानुगमरूपेण अनुमानाऽर्थापत्त्योर्भेदे पक्षधर्मत्वसहि- तायाः अर्थापत्तेः तद्वहिताऽर्थापत्तिः पृथक् प्रमाणं स्यात् ...	१९५
विपक्षेऽनुपलम्भस्य सर्वात्म्यसम्बन्धिनोऽसिद्धानैकान्तिकत्वात् ...	१९५
शक्तिस्वरूपविचारः ... ..	१९५-२०२
( नैयायिकस्य पूर्वपक्षः ) विज्ञा हि शक्तिः पृथिवीत्वादिकम् ...	१९६
अन्या तु चरमसहकारिका ... ..	१९६
शक्तिर्निष्ठा अनिष्ठा वा ? ... ..	१९६
अनिष्ठा चेत्, किं शक्तिमतः शक्त्याज्जायते अशक्त्याद्वा ? ...	१९६
शक्तिः शक्तिमतो मित्रा अमित्रा वा ? ... ..	१९६
शक्तिः किमेका अनेका वा ? ... ..	१९७
( उत्तरपक्षः ) ग्राहकप्रमाणाभावाच्छेदकभावः अतीन्द्रियत्वाद्वा ? प्रतिनियतसामर्थ्याः प्रतिनियतकार्यकारित्वमतीन्द्रियशक्तिसङ्गा- धमन्तरेणानुपपन्नम् ... ..	१९७
शक्त्यभावे कथं प्रतिबन्धकमप्यादिसन्निधानेऽप्यग्निः स्वकार्यं न कुर्यात् ? ... ..	१९७
प्रतिबन्धकेन हि अग्नेः स्वरूपं प्रतिहन्यते सहकारिणो वा ? ...	१९७
प्रतिबन्धकेन स्वभावनिवृत्तौ उत्तममकसन्निधाने कार्यानुत्पत्ति- प्रसङ्गात् ... ..	१९८
प्रतिबन्धकोत्तममकमणिमन्त्रयोरभावेऽग्निः स्वकार्यं करोति न वा ?	१९८
आग्ने कस्याभावः सहकारी; तयोरन्यतरस्य उभयस्य वा ? ...	१९८
अन्यतरस्य चेत्, किं प्रतिबन्धकस्य उत्तममकस्य वा ? ...	१९८
कस्याभावः कार्यात्पत्तौ सहकारी-किमितरेतरभावः प्रागभावः प्रवृत्तौ वा अभावमात्रं वा ... ..	१९८
यदि शक्तिर्नास्ति तदा मन्त्रादिना कंचित्प्रति प्रतिबद्धोऽप्यग्निः स एवान्यस्य स्फोटोदिकं कार्यं कथं करोति ? ... ..	१९९
स्वरूपसहकारिव्यतिरेकेण शक्तेः प्रतीत्यभावे अदृष्टादेरपि अभावः स्यात् ... ..	१९९
पृथिवीत्वस्य शक्तिस्वरूपे सृष्टिबादपि पटोत्पत्तिः स्यात् ... ..	१९९
ब्रह्मशक्तिस्तु निष्ठा पर्यायशक्तिस्त्वनिष्ठा ... ..	२००
अक्षादेव शक्तिप्रादुर्भावः स्वीक्रियते ... ..	२००

विषयाः	पृ०
शक्तिः शक्तिमता कथञ्चिद्विज्ञाऽभिज्ञा च ... ..	२०१
अर्थानां च अनेकैव शक्तिः कार्यभेदान्यथानुपपत्तेः ... ..	२०१
अभावार्थापत्तिनिराकरणम् ... ..	२०२
गृहे यत्तस्य जीवनं तदेव गृहे चैत्राभावस्य विशेषणमुत अन्यत्र पञ्चावयवसंभवादसावर्थापत्तिरनुमानरूपैव ... ..	२०२
अभावस्य प्रत्यक्षादावन्तर्भावः ... ..	२०३
निषेध्याधारो वस्तुन्तर प्रतियोगिसंस्पृष्टं प्रतीयते असंस्पृष्टं वा ? ...	२०३-२०६
प्रतियोगिनोऽपि वस्तुन्तरसंस्पृष्टस्य स्मरणमसंस्पृष्टस्य वा ? ...	२०३
अभावो भावांशवत् प्रत्यक्षः ... ..	२०४
कविद प्रत्यभिज्ञानरूपोऽप्यभावः ... ..	२०४
अनुपलब्धिर्लिङ्गतः प्रबोधने अनुमानस्वरूपोऽभावः ... ..	२०५
प्रतियोगिनिवृत्तिः प्रतियोगिस्वरूपसम्बद्धा असम्बद्धा वा ? ...	२०५
प्रमाणपञ्चकाभावो नीरूपत्वात्कथमभावपरिच्छेदकः स्यात् ? ...	२०५
न च यत्र प्रमाणपञ्चकाभावस्तत्रावश्यम् अभावज्ञानं भवति ...	२०६
प्रमाणपञ्चकाभावश्च ज्ञातोऽज्ञातो वा तज्ज्ञानहेतुः ? ... ..	२०६
अन्यवस्तुनो भूतलस्य ज्ञानं तु प्रत्यक्षमेव ... ..	२०६
आत्मा च किं सर्वथा ज्ञाननिर्मुक्तः कथञ्चिद्वा ? ... ..	२०६
भावरूपेणापि प्रत्यक्षेणाभावो वेद्यते ... ..	२०७
अभावादपि च भावस्य प्रतीतिः भावादपि चाभावस्येति ...	२०७
इतरेतराभावविचारः ... ..	२०६-२११
यदि चेतरेतरभाववशाद् घटः पटादिभ्यो व्यावर्तेत तर्हि इतरे- तरभावोऽपि भावादभावान्तराच्च स्वतो व्यावर्तेत अन्यतो वा ?	२०८
अन्यतश्चेत् किमितरेतरभावान्तरात् असाधारणधर्माद्वा ? ...	२०८
इतरेतरभावोऽपि असाधारणधर्मेणाव्यावृत्तस्य भेदको व्यावृत्तस्य वा ?	२०८
इतरेतरभावेन घटे पटः प्रतिविध्यते पटसामान्यं वा समग्रं वा ?	२०९
किं पटविधिघटे घटे पटः प्रतिविध्यते पटविविक्ते वा ? ... ..	२०९
इतरेतरभावादन्या पटविविक्तता स एव वा विविक्ततास्रन्दाभिधेयः ?	२०९
“घटे पटो नास्ति” इति पटरूपताप्रतिषेधः सा किं प्राप्ता प्रतिवि- ध्यते अप्राप्ता वा ? ... ..	२०९
“अन्यत्र प्राप्तं पटरूपमन्यत्र प्रतिविध्यते” इत्यत्र किं समवायप्रति- षेधः संयोगप्रतिषेधो वा ? ... ..	२०९
इतरेतरभावप्रतिपत्तिपूर्विका घटप्रतिपत्तिः, घटग्रहणपूर्वकत्वं चेत- रेतरभावग्रहणस्य ? ... ..	२०९
घटश्च गृह्यमाणः पटादिभ्यो व्यावृत्तो गृह्यतेऽव्यावृत्तो वा ? ...	२१०

विषयाः	४०
व्यावृत्तस्य ग्रहणे किं कतिपयपटादिव्यक्तिभ्योऽसौ व्यावर्तते सकल- पटादिव्यक्तिभ्यो वा ? ... ..	२१०
पटश्च घटान्तरादिकं घटरूपतया व्यावर्ततेऽन्यथा वा ? ... ..	२१०
यद्यपटरूपतया; तत्किमपटरूपता पटादिवद् घटेऽप्यस्ति न वा ?	२१०
घटानग्नमविभूतलगतानामाधारणधर्मोपलक्षितं हि भूतलं घटाभावः	२११
प्रागभावविचारः ... ..	२११-२१४
सत्प्रत्ययविलक्षणत्वस्य द्वेतोः 'प्रागभावादां नास्ति प्रथ्वंमादिः' इति प्रत्ययेनान्नकान्तिरुक्तात् ... ..	२११
न प्रागभावः प्रथ्वंसादां इत्यादिरभावविशेषणस्याप्यभावस्य प्रसिद्धेः	२१२
प्रागभावः सादिः सान्तः परिरूप्यते सादिरनन्तः अनादिः सान्तो वा अनाद्यनन्तो वा ? ... ..	२१२
अनन्ताश्च प्रागभावाः किं स्वतन्त्राः भावतन्त्रा वा ? ... ..	२१२
भाषतन्त्राश्चेद् किमुपज्ञभावतन्त्राः उत्पत्त्यमानभावतन्त्रा वा ? ...	२१२
विशेषणमेवात् प्रागभावस्य भेदे एक एवाभावः स्वीकार्यः तस्यैव विशेषणमेदायातुर्विध्यं स्यात् ... ..	२१३
सर्तृत्वेऽपि यथा विशेषणयनाद्विमिश्रप्रत्ययास्तथा अभावस्यैक- त्वेऽपि प्रागभावादि प्रत्ययमेदाः भविष्यन्ति ... ..	२१३
प्रागभावोऽपि भावान्तररूप एव, प्रागनन्तरपरिणामविशिष्टं नृद्व- यमेव पटप्रागभावः ... ..	२१४
नृद्व्यवस्थेः हि सद्योत्पत्तिवशां सद्योत्पत्तिरगोनिपाणादीनामुपादान- सार्क्यं स्यात् ... ..	२१४
प्रथ्वंसाभावविचारः ... ..	२१४-१६
यदमाने निरगतः कार्यविपत्तिः स प्रथ्वंसो यथा नृद्व्यानन्तरो- त्तरपरिणामः ... ..	२१५
प्रथ्वंसस्य नृद्व्यवस्थेः नृद्व्यवस्थेः नृद्व्यवस्थेः नृद्व्यवस्थेः नृद्व्यवस्थेः	२१५
प्रथ्वंसो हि पटादिव्यापारेण पटादेर्भिन्नः विधीयते अभिन्नो वा ?	२१५
विनाशगम्यन्तात्प्रतिप्रत्यये विनाशतद्वतोः किं तादात्म्यं तदुत्पत्तिः विशेषणविशेष्यभावो वा गम्यन्तः स्यात् ? ... ..	२१५
प्रथ्वंसस्य उत्पत्त्यर्थान्तरकरो नृद्व्यादी न पूर्वस्य पुनरुद्गीर्णनम्; कारणान्य कारणोपनर्दनम् इत्यादिमायात् ... ..	२१५
विभिन्नसमग्रीप्रभवतदाऽपि न कृपादेभ्योऽभावस्य अर्थान्तरत्वं किन्तु एतेभ्यः नृद्व्यादिव्यापारेण पटविनाश-कृपादोत्पादयो- रपत्तेः ... ..	२१६
प्रत्यक्षस्य स्वरूपम् ... ..	२१६

विषयाः	पृ०
अकस्माद्भूतदर्शनाद्बहिरत्रेति ज्ञानं व्याप्तिज्ञानं वा न प्रत्यक्षम्-	
स्पष्टत्वात् ... ..	२१६
अकस्माद्भूतदर्शनजनितबहिर्ज्ञाने सामान्यं प्रतिभासेत विशेषो वा ?	२१६
अस्पष्टत्वं किं ज्ञानधर्मः अर्थधर्मो वा ? ... ..	२१७
संवेदनस्यैव हि अस्पष्टताधर्मः स्पष्टतावत् ... ..	२१७
न चास्पष्टसंवेदनं निर्विषयं संवादकत्वात् ... ..	२१८
ततः उत्पन्नाया अतदाकारबुद्धेः अस्पष्टत्वे द्विचन्द्रबुद्धावपि अस्प-	
ष्टव्यवहारः स्यात् ... ..	२१८
स्पष्टज्ञानावरणवीर्यान्तरायस्योपशमादेव क्वचिज्ज्ञाने स्पष्टता ...	२१८
न हि अक्षात् स्पष्टता ... ..	२१८
वैशद्यस्य लक्षणम् ... ..	२१९
ईहावीनामपरापरेन्द्रियव्यापारादेवोत्पद्यमानत्वाच्च तत्र प्रतीत्यन्तर-	
व्यवधानम् ... ..	२१९
परोक्षज्ञानानां स्वसंवेदनस्य प्रत्यक्षत्वात् ... ..	२२०
बहिरर्थग्रहणापेक्षया हि विज्ञानानां प्रत्यक्षोत्तरव्यपदेशः न स्वरूप-	
ग्रहणापेक्षया ... ..	२२०
नैयायिकाद्यभिमतचक्षुःसन्निकर्षवाद् निरासः ...	२२०-२२१
बाह्येन्द्रियत्वेन प्राप्यकारित्वे किमिदं बाह्येन्द्रियत्वं किं बहिरर्थाभि-	
मुख्यं बहिर्देशावस्थायित्वं वा ? ... ..	२२१
न च बाह्यविशेषणेन मनो व्यवच्छेद्यं तस्यापि संयुक्तसमवाय-	
सन्निकर्षवलेनैव सुखादौ ज्ञानजनकत्वात् ... ..	२२१
चक्षुश्च धर्मित्वेनोपात्तं गोलकस्वभावं रश्मिरूपं वा ? ... ..	२२१
न च रश्मिरूपचक्षुषः इन्द्रियेण सन्निकर्षोऽस्ति-येन तस्य प्रत्यक्षता	२२१
अनुमानाद्भ्रमसाधने किमत एव अनुमानान्तराद्वा तत्सिद्धिः ?	२२२
यदि च रश्मयः चक्षुःशब्दवाच्याः तदा गोलकस्योन्मीलनमञ्ज-	
नादिना संस्कारश्च वृथैव ... ..	२२३
गोलकादिलभ्यस्य च कामलादेः प्रकाशकत्वं स्यात् तत्र व्यक्तिरू-	
पस्य शक्तिरूपस्य च चक्षुषः सम्बन्धसङ्गावात् ... ..	२२३
शक्तिरूपं च चक्षुः व्यक्तिरूपचक्षुषो मित्रदेशमभिन्नदेशं वा ? ...	२२३
अभिन्नदेशं चेत्, तत्तत्र सम्बद्धमसम्बद्धं वा ? ... ..	२२३
गोलकान्नि-सरन्ति चेद्रश्मयस्तदा तेषां रूपस्पर्शवर्ता प्रत्यक्षेणैवो-	
पलब्धिः स्यात् ... ..	२२३
अनुद्भूतरूपस्पर्शस्य तेजोद्रव्यस्याप्रतीतेः ... ..	२२३
तैजसत्वादेतोः किं चक्षुषो रश्मयः साध्यन्ते, अन्यतः सिद्धानां	
तेषां प्राह्यार्थसम्बन्धो वा ? ... ..	२२४

विषयाः

५०

मार्जारदिचक्षुषो भासुररूपदर्शनात् तैजसत्वे गवादिलोचनयोः

ऋणलस्य नारीनयनयोः घावत्यस्य चोपलम्भात् पार्थिवलमा-

प्यत्वं च स्यात् ... .. २२४

रूपावीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वादिति हेतोरपि न चक्षुषस्तैज-

सलसिद्धिः माणिक्यादिना व्यभिचारात् ... .. २२५

न तैजसं चक्षुः तप्तः प्रकाशकत्वात् ... .. २२५

रूपावीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वादिति हेतुः जलाञ्जनचन्द्रमाणि-

क्यादिभिरनैकान्तिकः ... .. २२५

इदं रूपप्रकाशकं भासुररूपमभासुररूपं वा ? ... .. २२६

संयुक्तसमवायवशाच्चक्षुर्यथा रूपप्रकाशकं तथा रसादिप्रकाशक-

मपि स्यात् ... .. २२७

कथं च चक्षुषा स्फटिकाद्यन्तरितार्थस्य ग्रहणम् ? ... .. २२७

यदि रश्मयः स्फटिकं भिन्दन्ति तदा तैः समलज्जलान्तरितार्थस्यो-

पलब्धिः स्यात् ... .. २२८

नीरेण नाशितस्नात समलज्जलान्तरितस्योपलब्धिश्चेत् कथं स्वच्छ-

जलान्तरितस्योपलब्धिः ... .. २२८

चक्षुरप्राप्तार्थप्रकाशकम् अस्यासञ्चार्यप्रकाशकत्वात् ... .. २२८

न च साध्यावशिष्टलम्; असञ्ज्ञसाधनत्वादस्य ... .. २२८

न च स्पर्शनेन आभ्यन्तरशरीरावयवस्पर्शाऽप्रकाशकेन व्यभि-

चारः; स्वकारणव्यतिरिक्तार्थप्रकाशकत्वस्य विवक्षितत्वात् ... .. २२८

चक्षुर्गत्वा नार्थेन सुम्बद्भाते इन्द्रियत्वात् स्पर्शनादीन्द्रियवदित्यनु-

मानादप्राप्यकारिलसिद्धिः ... .. २२९

सांख्यवहारिकप्रत्यक्षस्य लक्षणम् ... .. २२९

ब्रह्मेन्द्रियं पुद्गलात्मकम् ... .. २२९

भावेन्द्रियं लब्ध्युपयोगात्मकम् ... .. २२९

लब्ध्युपयोगयोः लक्षणम् ... .. २२९

यौगामिमतस्य इन्द्रियाणां प्रतिनियतभूतकार्यत्वस्य-

निरासः ... .. २३०

गन्धस्यैवामिव्यञ्जकत्वात् पार्थिवं घ्राणमिति सूर्यरश्मिमिरुदकसेकेन

च व्यभिचारिः ... .. २३०

रसस्यैवामिव्यञ्जकत्वादसमप्राप्यमिति च लवणेनानैकान्तिकम् ... .. २३०

रूपस्यैवामिव्यञ्जकत्वात् तैजसं चक्षुरिति माणिक्यादिना व्यभिचारि

स्पर्शस्यैवामिव्यञ्जकत्वाद्वायवं स्पर्शनमिति कर्पूरादिनाऽनैकान्तिकम्

अर्थालौकौ न कारणं परिच्छेद्यत्वात् ... .. २३१



विषयाः	५०
बौद्धनैयायिकाद्यभिमतया अर्थकारणताया निरासः	२३२-३७
अर्थकार्यतया ज्ञानं प्रत्यक्षतः प्रतीयते प्रमाणान्तराद्वा ? ...	२३२
प्रत्यक्षत्वेत्; तत एव प्रत्यक्षान्तराद्वा ? ...	२३२
प्रमाणान्तरं च किं ज्ञानविषयम्, अर्थविषयम्, उभयविषयं वा स्यात् ? ...	२३२
ज्ञानुमानादर्थकार्यतावसायः अन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात् केशो- ण्डकादिज्ञानवत् ...	२३३
केशोण्डकज्ञाने हि केशोण्डकस्य व्यापारः नयनपद्मादेर्वा तत्के- शानां वा कामलादेर्वा ? ...	२३३
संशयज्ञानेन च व्यभिचारः, नहि तदर्थं सति भवति ...	२३४
संशयविपर्यययोः सामान्यं वा हेतुः विशेषो वा द्वयं वा ? ...	२३४
कारणेनैव परिच्छेद्यमित्यभ्युपगमे योगिनः अतीतज्ञानमेव स्यात् वर्तमानानागतज्ञानम् ...	२३५
भावस्रोत्पद्यमानता किमुत्पद्यमानार्थसमसमयभाविना ज्ञानेन प्रती- येत पूर्वभाविना उत्तरकालभाविना वा ? ...	२३६
निलेश्वरज्ञानपक्षे च सिद्धमकारणस्याप्यर्थस्य परिच्छेद्यत्वम् ...	२३६
नन्वर्थभावे ज्ञानसद्भावे अतीतानागतादावपि ज्ञानं स्यादित्यत्र किं तत्रोत्पद्येत तद्वाहकं वा भवेदिति ? ...	२३७
बौद्धनैयायिकाभिमतया आलोककारणताया निरासः	२३७-२३९
अजनादिसंस्कृतचक्षुषां नक्षत्रराणां च आलोकभावेऽपि ज्ञानोत्पत्तेः	२३७
अन्धकारेऽपि अन्धकारस्य ज्ञानमस्त्येव ...	२३८
न ज्ञानानुत्पत्तिमात्रमन्धकारः ...	२३८
आलोकज्ञानस्य च अत एवालोकद्वैतत्वम् आलोकान्तरादन्यतो वा कुतश्चित् ? ...	२३८
प्रतीपादयश्च आवरणपनयनद्वारेण अर्थे प्राप्यताम् इन्द्रियमनसोर्वा ग्राहकतामुत्पादयन्ति ...	२३८
योग्यतालक्षणम् ...	२४०
योग्यताबलादेव प्रतिनियतार्थव्यवस्था ...	२४०
कारणस्य परिच्छेद्यत्वनियमे इन्द्रियादिना व्यभिचारः	२४०
मुख्यप्रत्यक्षलक्षणम् ...	२४१
आवरणविचारः ...	२४१-४४
आवरणं हि शरीरं रागादयः देशकालादिकं वा ? ...	२४१
न शरीरादिकमावरणं किन्तु पौष्टिकं कर्म ...	२४२
कर्मणां सद्भावसिद्धिः ...	२४२

विषयाः

५०

नास्मिन्नेव आवरणम्; मदिरादिना मूर्तेनापि अमूर्तस्य ज्ञानादेर-

वरणदर्शनात् ... .. २४३

कर्मणामात्मगुणत्वे हि आत्मपारतन्त्र्यनिमित्तत्वं न स्यात् ... २४३

आत्मा परतन्त्रः हीनस्थानपरिग्रहवत्त्वात् ... .. २४३

कर्म पौद्गलिकमात्मनः पारतन्त्र्यनिमित्तत्वात् ... .. २४३

नापि प्रधानविषयैः कर्म; आत्मपारतन्त्र्यनिमित्तत्वाभावे कर्म-  
लाभोपात्त ... .. २४४

संवरनिर्जरायोः सिद्धिः ... .. २४४-४६

सम्यग्दर्शनादिभ्यः संवरो निर्जरा न भवतः ... .. २४५

विपाकान्तत्वात् निर्जरा कर्मणाम् ... .. २४५

तारतम्यप्रकर्षदर्शनात् क्वचित् सम्यग्दर्शनादेः परमः प्रकर्षः

संभवति ... .. २४५

आवरणहानिः क्वचित्प्रकृत्यते आवरणहानित्वात् ... .. २४६

नागमद्वारेण अशेषार्थोचरं ज्ञानं विवक्षितम् ... .. २४६

भावनाप्रकर्षपर्यन्तजलाशोनिज्ञानस्य आवरणक्षयहेतुकत्वमिति चेत्;  
न; भावनाप्रतिबन्धकत्वात् भावनावत् ज्ञानप्रतिबन्धकत्वापावे  
सर्वज्ञता भवत्येव ... .. २४७

सर्वज्ञत्वत्वाद्: ... .. २४७-२५६

(गीर्मासकस्य पूर्वपक्षः) नास्ति सर्वज्ञः सदुपलम्भकप्रमाणपक्ष-  
कगोचरचारित्वाभावात् ... .. २४७

न प्रत्यक्षेण अतीन्द्रियसर्वज्ञसद्भावः प्रतीयते ... .. २४७

नाप्यनुमानेन; अदिनाभावग्रहणासंभवात् ... .. २४७

सर्वज्ञसत्तासाधने भावाभावोभयधर्माणां हेतुनामसिद्धिविरुद्धानैका-  
न्तिकत्वम् ... .. २४८

अविशेषेण सर्वज्ञः साध्यते विशेषेण वा ? ... .. २४८

'कस्यचित्प्रत्यक्षाः' इत्यत्र हि एकज्ञानप्रत्यक्षत्वं सद्भावर्यानामभि-  
प्रेतमनेकज्ञानप्रत्यक्षत्वं वा ? ... .. २४८

प्रमेयत्वञ्च किमशेषहेतुव्यापिप्रमाणविषयत्वरूपम्, असंदादिप्रमाण-  
विषयत्वरूपं वा, सम्यग्व्यक्तिसाधारणसामान्यस्वभावं वा ? ... २४९

आगमो हि निःशब्दः अनित्यो वा सर्वज्ञप्रतिपादकः ? ... .. २४९

नाप्युपमानात् सर्वज्ञतासिद्धिः ... .. २४९

नाप्यर्थपत्तिः सर्वज्ञसिद्धिः ... .. २५०

देशान्तरे कालान्तरे वा नान्यदस्यप्रमाणसंभावना, येन देशकाला-

न्तरे सर्वज्ञतासिद्धिः स्यात् ... .. २५१

इन्द्रियादीनां स्वार्थातिलङ्घनेन नातिशयो भवितुमर्हति ... .. २५१

विश्रुत्याः

प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां च सर्वज्ञत्वं बाध्यते ...	२५२
सर्वज्ञस्य ज्ञानं चक्षुरादिजितं भ्रमादिग्राहकम्, अभ्यासजनितं वा,	
अन्वदप्रभवं ज्ञा, अनुमानाविभूतं वा ? ...	२५३
अखिलार्थग्रहणं सर्वज्ञत्वम्, प्रधानभूतकतिपयार्थग्रहणं वा ? ...	२५४
आद्यप्रक्षेपे कमेण तद्ग्रहणं युगपद्वा ? ...	२५४
एकक्षण एवाशेषार्थग्रहणात् द्वितीयक्षणे अकिञ्चिन्ज्ञः स्यात् ...	२५४
परस्पररागादिसाक्षात्करणाच्च रागादिमत्त्वम् ...	२५४
कथञ्चादीतानागतग्रहणं तत्स्वरूपाभावात् ...	२५४
तद्वाद्याखिलार्थग्रहणे तत्कालेपि सर्वज्ञः कथं ज्ञातुं शक्य इति ?	२५४
( उत्तरपक्षः ) सर्वज्ञसाधकमनुमानम् ...	२५५
न चात्र सर्वज्ञो धर्मो किन्तु कश्चिदात्मा ...	२५५
सत्तासाधने दोषत्रयं धूमादभ्यनुमानेऽपि समानम् ...	२५५
सामान्यत एव सर्वज्ञः साध्यते, विशेषतः पुनर्दृष्ट्याविरुद्धबाधत्वा-	
दर्शनेव सेत्स्यति ...	२५६
प्रत्यक्षसामान्येन च सूक्ष्माधार्यानां कस्यचित्प्रत्यक्षत्वं साध्यते ...	२५६
योगिप्रत्यक्षमिन्द्रियाद्यनपेक्षं सूक्ष्माधार्यविषयत्वात् ...	२५६
एवं साध्यविकल्पे सर्वानुमानोच्छेदः—साध्यधर्मिधर्मोऽभिः साध्य-	
त्वेनाभिप्रेतः दृष्टान्तधर्मिधर्मो वा उभयधर्मो वा ? ...	२५६
तथा धूमोऽपि साध्यधर्मिधर्मो हेतुः दृष्टान्तधर्मिधर्मो वा उभय-	
गतसामान्यरूपो वा ? ...	२५७
न च प्रत्यक्षत्वसत्सम्प्रयोगजलविद्यमानोपलम्भनलवर्माद्यनिमित्त-	
त्वानां व्याप्यव्यापकभावः सिद्धो येन प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां	
सर्वज्ञत्वं बाध्यते ...	२५७
धर्मोदेरतीन्द्रियत्वाच्चक्षुरादिनाऽनुपलम्भः अविद्यमानत्वाद्वा अवि-	
शेषणत्वाद्वा ? ...	२५८
सामान्यतः उत्पादादियुक्तं सविति ज्ञानसम्भवात् अभ्यासो युक्त	
एव ...	२५९
आगमादिज्ञानेनाभ्यासप्रतिबन्धकापायादिसामग्रीसहायेन सर्वज्ञत्व-	
माविर्भाव्यते ...	२५९
उक्तलावरणक्षये सहस्रकिरणवद् युगपदशेषार्थप्रकाशकत्वभावत्वं	
सर्वज्ञज्ञानस्य ...	२६०
परस्परविरुद्धशीतोष्णाधार्यानामभावादप्रतिभासः ज्ञानस्यासाम-	
र्थ्याद्वा ? ...	२६०
द्वितीयक्षणे हि नार्थानां न च ज्ञानस्याभावो येन अज्ञता स्यात् ...	२६०
रागिलकारणं हि रागरूपतया परिणमनं न तु रागस्य ज्ञानमात्रम्	२६०

विषयाः	५०
अतीतादेः स्वरूपात्संभवः किमतीतादिबलसम्बन्धिबलेन तज्ज्ञानका-	
लसम्बन्धिबलेन वा ? ... ..	२६१
ज्ञानस्य किमिदं विश्रान्तत्वं नाम-किं किञ्चित्परिच्छेद्यापरस्यापरि-	
च्छेदः, विषयदेशकालामनासामर्थ्यादवान्तरेऽवस्थानं वा,	
कचिद्विषये उत्पद्य विनाशो वा ? ... ..	२६१
असर्वज्ञोऽपि सर्वज्ञं ज्ञातुं समर्थः, कथमन्यथाऽवेदज्ञः जैमिनि	
वेदार्थज्ञत्वेन जानीयात् ? ... ..	२६३
शुनिश्चितासम्भवद्व्याधकप्रमाणत्वाच्च सर्वज्ञस्य संसिद्धिः ... ..	२६२
सर्वज्ञाभावः प्रत्यक्षेणाभिगम्यः प्रमाणावन्तरेण वा ? ... ..	२६२
नापि निवर्तमानं प्रत्यक्षं सर्वज्ञाभावसाधकम् ... ..	२६२
बकूलं हि हेतुः संवादिबकूलरूपं विपरीतं वा बकूलमात्रं वा ?	२६३
वचनस्य असर्वज्ञत्वबर्मानुविधानाभावात् ... ..	२६४
आगमोऽपि तत्प्रणीतः अन्यप्रणीतो वाऽपौरुषेयो वा सर्वज्ञस्य	
बाधकः ? ... ..	२६४
नाप्युपमानात् सर्वज्ञाभावः साधयितुं शक्यः ... ..	२६५
नाऽप्यभावप्रमाणं सर्वज्ञाभावसाधकं तत्सामग्रीस्वरूपयोरसंभवात्	२६५
ईश्वरवादः ... ..	२६६-२८४
(योगस्य पूर्वपक्षः) ईश्वरोऽनाविमुक्तः आनादिक्रियादिपरम्परायाः	
कर्तृत्वात् ... ..	२६६
क्रियादिकं बुद्धिमद्भूतकं कार्यत्वात् ... ..	२६६
क्रियादिगतकार्यत्वात् प्रासादादिगतकार्यत्वस्य वैलक्षण्यं व्युत्पन्नप्रति-	
पत्तुर् प्रति सच्यते अव्युत्पन्नात् वा ? ... ..	२६६
न च अकृष्टप्रभवस्यावरादिषु कर्त्रमात्रो निश्चितः किन्त्वग्रहणम्	२६६
क्रियादिमात्रान्वयव्यतिरेकोपलम्भात् तन्मात्रस्यैव कारणत्वे अदृष्ट-	
स्यापि कारणत्वं न स्यात् ... ..	२६७
न च स्यावरादिषु बुद्धिमतोऽभावादग्रहणं भावेऽप्यनुपलब्धिवल-	
क्षणप्राप्तत्वादिति सन्दिग्धो व्यतिरेकः; सर्वानुमानोच्छेदप्रसङ्गात्	२६७
न च घरीरामावे कर्तृत्वाभावः ... ..	२६७
ज्ञानेच्छाप्रयत्नत्रयस्य कारकप्रयोक्तृत्वम् ... ..	२६८
सर्वज्ञता च अशेषकार्यकरणात् ... ..	२६८
वेदस्य कार्यवत् स्वरूपेऽपि प्रामाण्यमेव ... ..	२६८
भगवान् करुणया सृष्टिं कुरुते ... ..	२६९
अदृष्टसहकारिणश्च कर्तृत्वाच्च बुद्धिनामेव प्राणिनो विधानम् ...	२६९
अदृष्टश्च चेतनाधिष्ठितमेव प्रवर्तयेऽचेतनत्वात् ... ..	२६९

विषयाः	४०
महामूलादिव्यक्तं चेतनाधिष्ठितं रूपादिभस्वात् अनित्यत्वादिति वार्ति- ककारोक्तं प्रमाणे ... ..	२६९
अनिच्छकर्णोक्तं च प्रमाणं रूपादिभस्वादिति ... ..	२६९
सर्गादौ पुरुषव्यवहारः परोपदेशपूर्वक इत्यादि प्रशस्त्रमत्युक्तं प्रमाणम् ... ..	२७०
स्थित्वा प्रवृत्तेः इति उद्योतकरोक्तं प्रमाणम् ... ..	२७०
( उत्तरपक्षः ) किमिदं सावयवत्वं येन कार्यत्वं साध्यते; किम् सहाययवैर्वर्तमानत्वम्, तैर्जन्यमानत्वं वा, सावयवमिति बुद्धि- विषयत्वं वा ? ... ..	२७०
प्रागसतः स्वरूपसमवायात् सत्तासमवायाद्वा कार्यत्वसिद्धौ कृतः प्राक् ? ... ..	२७१
कारणसमवायाच्चेत्, तत्समवायसमये प्रागिवास्त्य स्वरूपसत्त्वस्या- भावो न वा ? ... ..	२७१
सत्ता सती असती वा ? ... ..	२७२
क्षित्वादेः कथञ्चित्कार्यत्वं सर्वथा वा ? ... ..	२७२
बुद्धिभस्वकारणमित्यत्र हि बुद्धिः बुद्धिमतो भिन्ना अभिन्ना वा ? ...	२७३
बुद्धिश्च ईश्वरे व्याप्त्या वर्तते अव्याप्त्या वा ? ... ..	२७३
ईश्वरबुद्धिः क्षणिका अक्षणिका वा ? ... ..	२७४
कार्यत्वं च अक्रियादर्शिनोऽपि कृतबुद्ध्युत्पादकत्वलक्षणं क्षित्वादौ नास्ति इत्यसिद्धो हेतुः ... ..	२७४
न चैतत्कार्यसमं नाम जात्युत्तरम् ... ..	२७५
स्थावरदौ कर्त्रभावातिशये गगनादौ रूपाद्यभावातिशयः स्यात् शरीराभावे ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारत्वस्याप्यसंभवात् ... ..	२७५
अचेतनं चेतनाधिष्ठितमित्यस्य निरासः ... ..	२७५
न च कारकशक्तिपरिज्ञानाविनाभावि तत्प्रयोजकत्वम् तस्यानेकघोष- लम्भात् ... ..	२८०
कार्यमात्राद्धि कारणमात्रानुमाने विशेषविरुद्धताऽसम्भवः न पुनर्बु- द्धिभस्वकारणानुमाने ... ..	२८०
कारणत्वात् सर्गविधाने सुखोत्पादकस्यैव शरीरादिसर्गस्य उत्पादकत्वम् घर्माधर्मयोरपि ईश्वरायत्तत्वात् ... ..	२८१
अपवर्गविधानार्थं च सृष्टिविधाने कथमपूर्वसंशयकर्तृत्वम् ... ..	२८१
न ह्यर्थं नियमो यच्चिच्छिन्नकार्यमेकेनैव कर्तव्यं नाप्येकनियतैर्बहु- भिरिति अनेकधा कार्यकर्तृत्वोपलम्भात् ... ..	२८२
समर्थस्वभावस्येश्वरस्य सहकार्यपेक्षाम्ययुक्ता ... ..	२८३
सहकारिणोऽपि तदायत्तोत्पत्तयः अतदायत्तोत्पत्तयो वा ? ...	२८३

विषयाः	पृ०
वार्तिककारोक्तप्रमाणस्य रूपादिभत्वादेः निरासः ... ..	२८३
‘सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारः’ इत्यत्र उत्तरकालं प्रबुद्धानामिति विशेष- वणमसिद्धम् ... ..	२८३
स्थित्वाप्रवृत्तेरिति तु ईश्वरेणैव व्यभिचारि ... ..	२८४
क्षित्यादिकं नैकस्वभावभावपूर्वकं विभिन्नदेशकालाकारत्वाद् इस- नेन ईश्वरनिरासः ... ..	२८५
प्रकृतिकर्तृत्वत्वाद् ... ..	२८५-२८७
( सांख्यस्य पूर्वपक्षः ) निखिलजगत्कर्तृत्वाद् प्रकृतेरेव अशेषज्ञता	२८५
प्रकृतेर्महान् ततोऽहंकारः इत्यादि सृष्टिप्रक्रिया ... ..	२८५
प्रकृत्यात्मका एवेते महदादिभेदाः ... ..	२८६
त्रिगुणमित्यादि प्रधानस्य लक्षणम् ... ..	२८६
व्यक्ताऽव्यक्तयोः लक्षणम् ... ..	२८६
प्रधानात्मनि च महदादीनाम् असदकरणादुपादानग्रहणादिहेतुपक्ष- कात् सङ्गावः ... ..	२८७
भेदानां परिमाणत्वं समन्वयात् शक्तिः प्रवृत्तेरित्यादिहेतुपक्षकात् कारणभूतस्य प्रधानस्य सिद्धिः ... ..	२८८
( उत्तरपक्षः ) प्रकृत्यात्मकत्वे महदादीनां ततः कार्यतया प्रवृत्ति- विरोधः ... ..	२८९
न च निस्सस्य कारणभावोऽस्ति ... ..	२९०
परिणामश्च भवन् पूर्वरूपस्यागाद्या भवेदस्यागाद्या ? ... ..	२९०
सर्वथा पूर्वरूपस्यागः कथञ्चिद्वा ? ... ..	२९०
प्रवर्तमानो निवर्तमानश्च यमो यमिणोऽर्थान्तरभूतोऽनर्थान्तर- भूतो वा ? ... ..	२९१
यच्च सत्कार्यवादसमर्थनाय हेतुपक्षकं तदसत्कार्यवादेऽपि समानम् सर्वथा सत्कार्यं कथञ्चिद्वा ? ... ..	२९१
शक्तिरूपेण सत् चेत् ; तच्छक्तिरूपं द्रव्यादेर्मिश्रसमिच्च वा ? ...	२९२
अभिव्यक्तौ कारणानां व्यापारे अभिव्यक्तिः पूर्वं सती असती वा ?	२९२
एतेषां हेतूनां संशयविनाशान्नं निश्चयोत्पादनं च सत्कार्यवादे दुर्बलम् निश्चयस्य अभिव्यक्तिः किं स्वभावातिशयोत्पत्तिः, तद्विषयज्ञानम्, तदुपलम्भावरणविगमो वा ? ... ..	२९३
अतिशयश्च सन् असन्वा क्रियेत ? ... ..	२९३
बन्धमोक्षाभावश्च सत्कार्यवादिनाम् ... ..	२९४
नहि यदसत् तत्क्रियते एवेति व्याप्तिः, किन्तु यत्क्रियते तत्प्रा- गुत्पत्तेः कथञ्चिदसदेव ... ..	२९४
भेदानां परिमाणस्य अनेककारणपूर्वकत्वेऽप्यविरोधः ... ..	२९५

विषयाः	पृ०
सुखादिसमन्वयश्च शब्दादिष्वसिद्ध एव ... ..	२९५
प्रसादतापादिकार्योपलम्भात् प्रधानान्वितत्वम् अनैकान्तिकमेव चेतनत्वादिवर्गैः पुरुषाणां नित्यत्वादिवर्गैश्च प्रधानपुरुषाणां समन्व-	२९५
येऽपि नैककारणपूर्वकत्वम् ... ..	२९६
प्रेक्षावत्कारणभेदेभ्यो हेतुभ्यः साध्यते कारणमात्रं वा ? ...	२९६
प्रधानात्मनि महदादीनामविभागश्चायुक्तः; प्रत्यक्षकालस्याभावात् महदादीनां लयश्च पूर्वस्वभावप्रच्युतौ भवेदप्रच्युतौ वा ? ...	२९७
सैश्वर्यसांख्यवादिमतनिरासः ... ..	२९७-२९८
(पूर्वपक्षः) प्रधानं हि ईश्वरापेक्षां कर्तुं ... ..	२९७
प्रधानगतं सत्त्वरजस्तमोगुणानाश्रित्य ईश्वरः स्थित्युत्पत्तिप्रलयहेतुः	२९८
(उत्तरपक्षः) प्रकृतीश्वरयोः सर्गाद्यन्यतमकार्यकाले तदपरकार्यद्वय- सामर्थ्यमस्ति न वा ? ... ..	२९८
प्रधानवृत्तिसत्त्वादीनामुद्भूतवृत्तिलं नित्यमनिलं वा ? ... ..	२९९
अनिलं चेत् किं प्रकृतीश्वरादेव, अन्यतो, वा हेतोः, स्वतन्त्रो वा प्रादुर्भावः स्यात् ? ... ..	२९९
भाव आत्मानं जनयति निष्पन्नोऽनिष्पन्नो वा ? ... ..	२९९
सितपटामितस्य केवलिकवलाहारस्य निरासः . ...	२९९-३०७
कवलाहारकारिणः केवलिनः अनन्तचतुष्टयस्वभावाभावः ...	२९९
अस्मदादिमुखादेः कादाचित्कतया भोजनादिभ्यः समुत्पादः न तु मगवत्मुखस्य अनन्तस्य ... ..	२९९
केवली न मुक्ते रागद्वेषाभावाऽनन्तवीर्यसद्भावाभ्यामुपपत्तेः	३००
भोजनं कुर्वतां साधूनां परमार्थतो वीतरागत्वाभावः ... ..	३००
कवलाहारित्वे च सरागलप्रसङ्गः ... ..	३००
कवलाहारभावेऽपि नो कर्मकर्मादानलक्षणाहारसद्भावात् देहस्थि- तिरविरुद्धा ... ..	३००
कवलाहारं विनापि त्रिदशाण्डजादीनामाहारिल्लं भवति ... ..	३००
केवलिनः औदारिकशरीरस्थितिर्हि परमौदारिकरूपा अतः आहा- रभावेऽपि तत्स्थितिः ... ..	३०१
केशादिवृद्ध्यभाववत् भुक्त्यभावोऽपि केवल्यवस्थायामभ्युपगन्तव्यः	३०१
तपोमाहात्म्याच्चतुरास्यत्वादिवत् अमुक्तिपूर्वकत्वेऽपि देहस्थितौ को विरोधः ... ..	३०२
आयुःकर्मैव हि प्रधानं देहस्थितिनिमित्तम् ... ..	३०२
वेदनीयकर्मसद्भावाच्च तत्फलमात्रं सिध्येज पुनर्भुक्तिः ... ..	३०२
अज्ञातवेदनीयं च मोहकर्माभावात् सामर्थ्यविकलं न स्वकार्यकारि	३०३

विषयाः

पृ०

सोहनीयामावेऽपि यदि अन्यकर्मोदयः कार्यकारी तदा परचातोद-	
यात् परान् तावदेत परैस्त्वाथेत वा ... ..	३०३
यदि मोहनीयनिरपेक्षः कर्मोदयः कार्यकारी तदा अप्रमत्तादिषु	
वेदोदयात् मैथुनादिकं स्यात् ... ..	३०३
नामादीनां शुभप्रकृतीनां केवळिनि अप्रतिबद्धत्वात् स्वकार्यकारिता	३०३
शुमुक्षा च न मोहनीयानपेक्षस्य वेदनीयस्यैव कार्यम् ... ..	३०४
भोजनाकांक्षा च प्रतिपक्षभावनातो निवर्तते क्याथाकाङ्क्षावत् ...	३०४
शुमुक्षार्या केवली किं समवधारणास्थित एव भुक्ते, चर्यामार्गेण वा	
गत्वा ? ... ..	३०५
'देवा आहारं सम्पादयन्ति' इति च निष्प्रमाणकम् ... ..	३०५
चर्यामार्गेण चेत्; किं गृहं गृहं गच्छति एकस्मिन्नेव वा गृहे	
भिक्षालाभं ज्ञात्वा प्रवर्तते ? ... ..	३०५
भोजनं च किमेकाकी करोति शिष्यैर्वा परिवृतः ? ... ..	३०६
केवली भुक्त्वा प्रतिक्रमणादिकं करोति वा न वा ? ... ..	३०६
किमर्थं वासो भुक्ते-शरीरोपचयार्थं ज्ञानध्यानसंयमसिद्ध्यर्थं क्षुद्रेद-	
नाप्रतीकारार्थं प्राणत्राणार्थं वा ? ... ..	३०६
'एकादश जिने' इति आगमस्य च एकेन अधिका न दश इत्यर्थ-	
कत्वेन परीषद्भिर्निषेधपरत्वेन ... ..	३०६
'भोजनं कुर्यान् भगवान् नावलोकयते' इत्यत्रादर्शनेऽभुक्तेसेवित्तादे-	
कान्तमाभिलष्य भुक्ते इति कारणम्, बह्वलान्धकारस्थितभोजनं	
वा, विद्याविशेषेण स्वस्य तिरोधानं वा ? ... ..	३०७
कथञ्चाहदयाय दातुमिः भोजनं वीर्यते ... ..	३०७
भोक्षस्वरूपविचारः ... ..	३०७-३२८
( नैयायिकस्य पूर्वपक्षः ) बुद्ध्यादिविशेषगुणोद्भेदरूपो भोक्षः	
बुद्ध्यादिसन्तानस्य असन्तमुच्छिद्यमानत्वात् ... ..	३०७
आरब्धशरीरेन्द्रियविषयकार्ययोः धर्माधर्मयोः फलोपभोगात्	
प्रसूयः ... ..	३०८
नाभुक्तं क्षीयते कर्म ... ..	३०८
'यथेवांशि' इत्यागमोऽपि फलोपभोगद्वारैव कर्मक्षयं समर्थयति ...	३०९
अन्ये तु मिथ्याज्ञानजज्ञितसंस्काराख्यसहकारिणोऽभावाद्विद्यमाना-	
न्यपि कर्माणि न जन्मान्तरे फलदानसमर्थानि इति मन्यन्ते;	
तेषां कर्मणा नित्यत्वापत्तिः ... ..	३०९
नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं च प्रत्यवायपरिहारार्थम् ... ..	३०९
वेदान्त्यभिमतता आनन्दरूपता तु भोक्षस्याभुक्त्वा; यतो हि सुखं	
भोक्षे नित्यमज्ञितं वा ? ... ..	३१०



विषयाः	४०
नित्यत्वेत्; तत्संवेदनं नित्यमनित्यं वा ? ... ..	३१०
सांसारिकमुखेन सह नित्यमुखस्यावस्थानात् मुखद्वयोपलम्भः स्यात्	३११
अनित्यं हि मुखं न योगजधर्मानुग्रहीतान्तःकरणसंयोगात्; मुक्तौ	
योगजधर्माभावात् ... ..	३११
यदि मुक्त्यवस्थार्यां मुखं नित्यं तदा देहादिकमपि नित्यं कल्पनीयम्	३१२
मुखस्वभावत्वं च किं मुखलजातिसम्बन्धित्वं सुखाधिकरणत्वं वा ?	३१२
अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वमनन्यपरतयोपादीयमानत्वं च साधनम-	
सिद्धम्; दुःखितायामात्मन्यप्रियबुद्धेरपि भावात् ... ..	३१२
आनन्दं ब्रह्मणो रूपमित्यत्र आनन्दशब्दो हि दुःखामावे प्रयुक्त-	
त्वाग्नौः ... ..	३१३
आत्मस्वरूपात्तन्त्रित्वं मुखमव्यतिरिक्तं व्यतिरिक्तं वा ? ... ..	३१३
बौद्धाभिमतो विशुद्धज्ञानोत्पत्तिरूपोऽपि मोक्षो न युक्तः ... ..	३१३
रागादिमतो ज्ञानात् तद्वहितस्य उत्पत्त्ययोगात् ... ..	३१३
बोधाद्बोधरूपत्वे हि पूर्वकालमावित्तं समानजातीयस्वमेकसन्तानत्वं	
वा न हेतुः व्यभिचारात् ... ..	३१३
सुषुप्तावस्थार्यां ज्ञानाभ्युपगमे जाग्रदवस्थातो न कश्चिद्विशेषः ...	३१४
अभ्यासावगादिबिनाशो न युक्तः; सौगतमते विनाशस्य निर्हेतु-	
कत्वात् अभ्यासानुपपत्तेश्च ... ..	३१४
जैनाभिमतोऽनेकान्तभावनातोऽपि न मोक्षः ... ..	३१५
अनेकान्तज्ञानं सिध्यैव विरोधादिदोषात् ... ..	३१५
स्वदेशादिषु सत्त्वं परदेशादिषु असत्त्वमितरेतराभावादिष्वय एव	३१५
मुक्तावपि अनेकान्तः स्यात्तथा च स एव मुक्तः खंसारि चेति	
प्राप्तम् ... ..	३१५
आत्मैकलज्ञानात् परमात्मलयरूपो मोक्षोऽपि न युक्तः ... ..	३१५
आत्मैकलज्ञानस्य सिध्यारूपत्वात् ... ..	३१५
शब्दाद्वैतज्ञानमपि सिध्यारूपत्वाच्च निःश्रेयससाधनम् ... ..	३१६
सांख्याभिमतप्रकृतिपुरुषविवेकोपलम्भात्स्वरूपे चैतन्यमात्रेऽव-	
स्थानं मोक्षः इत्यपि असङ्गतमेव ... ..	३१६
प्रधानं हि पुरुषस्थं निमित्तमपेक्ष्य पुरुषार्थसाधनाय प्रवर्तते अन-	
पेक्ष्य वा ? ... ..	३१६
यद्यपेक्ष्य प्रवर्तते तदा किमपेक्ष्यं विवेकानुपलम्भोऽदृष्टं वा ? ...	३१६
चिद्रूपेऽवस्थानमिति न युक्तम्; चिद्रूपताया अनित्यत्वात् ...	३१६
चिद्रूपता आत्मनोऽभिज्ञा मिज्ञा वा ? ... ..	३१७
(उत्तरपक्षः) बुद्ध्यादीनामात्मनः सर्वथा मिज्ञानाम् आत्मगुणत्व-	
मेव असिद्धम् ... ..	३१७

विषयाः

३७

सन्तानत्वं हेतुः सामान्यरूपो विशेषरूपो वा ? ... ..

३१७

विशेषरूपमपि उपादानोपादेयभूतबुद्ध्यादिलक्षणक्षणविशेषरूपम्,

पूर्वापरसमानजातीयक्षणप्रवाहमात्ररूपं वा ? ... ..

३१७

शब्दप्रवीपादीनामत्यन्तोच्छेदाभावात् साध्यविकलो दृष्टान्तः ...

३१८

बुद्ध्यादिसन्तानो नात्यन्तोच्छेदवान् तथानुपलम्ब्यमानत्वादिति सत्प्र-

तिपक्षश्च ... ..

३१८

तत्त्वज्ञानस्य विपर्ययादिव्यवच्छेदकमेण धर्माधर्मादिनाशहेतुत्वेऽपि

न बुद्ध्यादिबिनाशहेतुता ... ..

३१८

इन्द्रियजानां तु बुद्ध्यादीना नाशोऽस्याभिरम्यभ्युपगम्यत एव ...

३१८

उपभोगात्कर्मणां प्रक्षये तदुपभोगकाले समुत्पन्नाऽभिलाषादपूर्वक-

मैप्रादुर्भावोऽवश्यम्भावी ... ..

३१९

आनन्दरूपता तु मोक्षे स्वीक्रियते एव किन्तु सा परिणामिनी

नैकान्तनिष्ठा ... ..

३२०

तत्संवेदनस्योत्पत्तिकारणञ्च ज्ञानावरणादिप्रतिबन्धकक्षय एव ...

३२०

विद्युदज्ञानोत्पत्तिरूपोऽपि मोक्षोऽस्मीष्ट एव, परन्तु चित्तसन्तानः

सान्त्वयोऽभ्युपगन्तव्यः ... ..

३२०

सन्तानैक्याद्वदस्यैव मोक्षे यदि सन्तानार्थः परमार्थः सन् तदा

आत्मैव नामान्तरेण उक्तः ... ..

३२१

सान्त्वयचित्तसन्तानसभावे च प्रत्यभिज्ञानादिप्रादुर्भावो न स्यात् ...

३२१

सुषुप्तावस्थायां ज्ञानसद्भावेऽपि न जाग्रदवस्थातोऽविशेषः, तदानीं

ज्ञानस्य मिद्वेनाभिमूतत्वात् ... ..

३२२

मिद्वेनाभिभवश्च स्वरूपसामर्थ्यप्रतिबन्धलक्षणोऽभ्युपगम्यते । ...

३२३

स्वापलक्षणार्थनिरूपणमप्यस्ति 'एतावत्कालं निरन्तरं सुप्तः एताव-

त्कालञ्च घान्तरम्' इत्यादिरूपम् ... ..

३२३

गाढोऽहं तदा सुप्त इति स्मरणमेव च तादात्मिकाजुमवे प्रमाणम्

सुषुप्तावस्थायां विज्ञानाभावं स एवात्मा प्रतिपद्यते पार्श्वस्यो वा ?

३२३

ज्ञानान्तरात्तदभावगतौ; किं तत्कालमाविनः जाग्रद्व्यवस्थाकाल-

भाविनो वा ? ... ..

३२३

'चैतन्यप्रभवप्राणादिः जाग्रदवस्थायां प्राणादिप्रभवप्राणादिश्च सुषु-

प्तावस्थायाम्' इत्यपि न युक्तम्; सुषुप्तेतरावस्थयोः प्राणादेर्विशे-

षाभावाद् ... ..

३२४

सुषुप्तादौ चाद्यः प्राणादिः कुतो जायताम् ? ... ..

३२५

स्वापसुखसंवेदनं चात्र सुप्रतीतमेव ... ..

३२५

विषयाः

पृ०

अनेकान्तज्ञानमेव वस्तुतोऽबाधितं प्रतीयमाने विरोधाद्यनवकाशात्	३२६
इतरैतराभावात् स्वपरदेशादिषु सत्त्वासत्त्वे नाभ्युपगन्तुं युक्ते	:
इतरैतराभावस्य प्रतीक्षेपात् ... ..	३२६
स हि घटाद्भिन्नोऽभिन्नो वा ? ... ..	३२६
द्विविधोऽनेकान्तः क्रमानेकान्तः अक्रमोऽनेकान्तश्च ... ..	३२६
अनेकान्तेऽपि अनेकान्तः, प्रमाणपरिच्छिन्नानेकान्तस्य नयपरि-	
च्छेदैकान्ताऽविनाभावित्वात् ... ..	३२७
चैतन्यविशेषे अनन्तज्ञानादावस्थानस्यैव वस्तुतः मोक्षत्वम् ...	३२७
सत्पत्तिमत्त्वाज्ज्ञानस्य अचैतन्यत्वे अनुभवेन व्यभिचारः ... ..	३२७
ज्ञानाश्रिणां चेतनसंसर्गाश्रिततत्त्वे क्षरीराश्रिणामपि चैतन्यप्रसङ्गः ...	३२७
ततो नाऽचैतना ज्ञानादयः स्वसंवेद्यत्वात् ... ..	३२८
सुखात्मको मोक्षः, चेतनात्मकत्वे सखाखिलदुःखविवेकात्मकत्वात्	३२८
अनन्तं तत् आत्मस्वभावत्वे सति अपेतप्रतिबन्धकत्वात् ... ..	३२८
श्वेतपटमिमतायाः स्त्रीमुक्तेः निरासः ... ..	३२८-३३४
मोक्षहेतुः ज्ञानादिपरमप्रकर्षः स्त्रीषु नास्ति परमकर्षत्वात् ...	३२८
अयं नियमः—यद्वेदस्य मोक्षहेतुपरमप्रकर्षः तद्वेदस्य सप्तमपृथिवी-	
गमनकारणपापप्रकर्षोप्यस्ति ... ..	३२८
परमप्रकर्षत्वाद्वा हेतोः स्त्रीणां मोक्षहेतुपरमप्रकर्षाभावः ... ..	३२९
स्त्रीणां मायाबाहुल्यमस्ति न तु तत्परमप्रकर्षः ... ..	३२९
स्त्रीणां संयमो न मोक्षहेतुः नियमेनर्दिविशेषाहेतुत्वात् ... ..	३३०
सचेतसंयमत्वाच्च न स्त्रीणां संयमः मोक्षहेतुः ... ..	३३०
स्त्रियो न मोक्षहेतुसंयमवयवः साधूनामवन्धत्वात् ... ..	३३०
बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहवत्त्वान्न न स्त्रियो मोक्षहेतुसंयमवयवः ...	३३०
श्रीहेतेऽपि वक्ष्ये जन्तूपषातस्त्रयस्य एव ... ..	३३१
बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहस्यागमः संयमः कथं याचनसीवनाद्युपाधि-	
मति वक्ष्ये श्रीहेते स्यात् ... ..	३३१
अन्युरक्षागण्डादिप्रतीकारार्थं पिच्छौषधादिग्रहणं न परिग्रहो मने-	
दम्भावासूचकत्वात् ... ..	३३२
बुद्धिपूर्वकं हि पतितं वक्ष्यं हस्तेनादाय परिदधानोऽपि कथं मूर्च्छा-	
रहितः स्यात् ? ... ..	३३३
पुर्वेदं वेदन्ता इत्यागमः भाववेदापेक्षयैव ग्राह्यः ... ..	३३३
स्त्रीलान्यथानुपपत्तेश्च न तासां मोक्षप्राप्तिः ... ..	३३३
नास्ति स्त्रीणां मोक्षः पुरुषादन्यत्वात् ... ..	३३३
नास्ति स्त्रीणां मोक्षः सत्कृष्टध्यानफलत्वात् सप्तमनरकगमनवत् ...	३३४

इति द्वितीयः परिच्छेदः ।

अथ तृतीयः परिच्छेदः ( उत्तरार्धम् )

विषयाः	पृ०
परोक्षस्य लक्षणम् ... ..	३३५
परोक्षस्य भेदाः ... ..	३३५
स्मृतिलक्षणम् ... ..	३३५
स्मृतिप्रामाण्यवादः ... ..	३३६-३३८
स्मृतिः प्रमाणं संवादकत्वात् ... ..	३३६
( बौद्धादीनां पूर्वपक्षः ) किं ज्ञानमात्रं स्मृतिः अनुभूतार्थविषयं वा विज्ञानम् ? ... ..	३३६
‘अनुभूते जायमानम्’ इति केन प्रतीयते अनुभवेन स्मृत्या वा ? ... ..	३३६
नचानुभूतता प्रत्यक्षगम्या यतस्त्वां अनुभवानुसारिस्मृतिर्भावीयात् ( उत्तरपक्षः ) न ज्ञानमात्रं स्मृतिः किन्तु तदित्याकारं प्रागनुभूत- वस्तुविषयं विज्ञानम् ... ..	३३६
‘अनुभूते स्मृतिः’ इति अनुभवस्मरणपर्यायव्यापिना आत्मना प्रतीयते ... ..	३३६
परिच्छित्तिविशेषसङ्गावाच्च गृहीतग्राहितया स्मृतिरप्रमाणम् ... ..	३३६
विशदं भावनाज्ञानं तु न प्रमाणम् ... ..	३३७
अनुभूतविषयत्वात्स्मरणस्याप्रामाण्ये अनुमानाधिगते बहौ प्रवर्त- मानं प्रत्यक्षमप्यप्रमाणं स्यात् ... ..	३३७
असत्प्रतीतेऽर्थे प्रवर्तनं तु प्रत्यक्षेऽप्यविशिष्टम् ... ..	३३७
सम्बन्धाभावात्तस्याः विरोधादकर्त्तव्यत्वं कल्पितसम्बन्धविषयत्वाद्वा सतोऽप्यस्य अनया विषयीकर्तुमशक्यत्वाद्वा ? ... ..	३३७
लिंगालिङ्गिसम्बन्धः किं सत्तामात्रेण अनुमानप्रवृत्तिहेतुः तद्दर्शनात् तत्स्मरणाद्वा ? ... ..	३३८
व्याप्तिस्मरणस्य प्रामाण्यमनुमानप्रामाण्यवादिना तु स्वीकर्तव्यमेव समारोपव्यवच्छेदकत्वाच्च प्रमाणं स्मृतिः ... ..	३३८
प्रत्यभिज्ञानस्य लक्षणम् ... ..	३३८
न प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षम् ; इन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात् स्मृतिनिरपेक्षता च प्रत्यक्षस्य सुप्रतीता ... ..	३३९
प्रत्यभिज्ञा हि पूर्वोत्तरविवर्तवर्त्यैकत्वविषया ... ..	३३९
अयं स इति प्रत्यक्षस्मरणव्यतिरेकेणाप्यस्ति पूर्वोत्तरविवर्तवर्त्यैक- द्वयविषयं प्रत्यभिज्ञानम् ... ..	३४०
प्रत्यभिज्ञानानभ्युपगमे यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकमित्यनुमानं व्यर्थम् ... ..	३४१

विषयाः	पृ०
प्रत्यभिज्ञाऽभावे 'यद्दृष्टमनुमितं वा तदेव प्राप्तम्' इत्येकलाध्यव- सायामावे प्रत्यक्षानुमानयोः प्रामाण्यं न स्यात् ... ..	३४१
प्रत्यभिज्ञाभावे नैरात्म्यभावनाभ्यासश्च निष्फलः... ..	३४१
नीलाद्यनेकाकाराक्रान्तं चित्रज्ञानमभ्युपगच्छद्भिः 'स एवायम्' इति आकारद्वयाक्रान्तं प्रत्यभिज्ञानमभ्युपगन्तव्यम् ...	३४१
स एवायमिति आकारद्वयं कथञ्चित्परस्परानुप्रवेशेन आत्माधिकर- णतया आत्मन्येव प्रतिभासते ... ..	३४२
छन्दपुनर्जातनखकेशादिवत् न निर्विषया प्रत्यभिज्ञा ... ..	३४२
प्रत्यभिज्ञानविलोपे अनुमानस्याप्रवृत्तिरेव ... ..	३४३
प्रत्यभिज्ञानस्याप्रामाण्यं हि गृहीतग्राहिज्ञात् स्मरणानन्तरमावि- त्तात्, शब्दाकारधारिताद्वा बाध्यमानत्वाद्वा ? ... ..	३४३
'गोसदृशो गवयः' इति सादृश्यप्रत्यभिज्ञानं प्रमाणम् ... ..	३४४
न सादृश्यप्रत्यभिज्ञानमनुमानरूपम्; अनवस्थाप्रसङ्गात् ... ..	३४५
सदृशाकारे च कृतः सदृशव्यवहारः ? ... ..	३४५
सादृश्यप्रतीतेः सङ्कलनात्मकत्वात् प्रत्यभिज्ञानसमेव नोपमानत्वम् सादृश्यज्ञानस्य उपमानत्वे वैलक्षण्यज्ञानं किञ्चामकं प्रमाणम् ? ...	३४५ ३४६
संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानरूपमुपमानं नैयायिककल्पितमपि न युक्तम्, इदमस्माद्दूरं दृक्षोऽयमिति ज्ञानयोरपि पृथक् प्रमाणता स्यात् ...	३४७ ३४८
तर्कस्य लक्षणम् ... ..	३४८
उपलम्भानुपलम्भशब्देन सकृत्पुनः पुनर्वा दृढतरं निश्चयानिश्चयौ ग्राह्यौ न तु प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षौ ... ..	३४८
तर्कस्याप्रामाण्यं किं गृहीतग्राहिज्ञात्, विसंवादित्वाद्वा, प्रमाणविषय- परिशोधकत्वाद्वा ? ... ..	३४९
न बौद्धाभिमतप्रत्यक्षपृष्ठभाविनो विकल्पाद् व्याप्तिप्रतिपत्तिः ... ..	३४९
नानुमानेनापि व्याप्तिप्रवृत्तम् ... ..	३५१
योगिप्रत्यक्षस्यापि अविचारकतया न व्याप्तिग्राहकता ... ..	३५१
योगिज्ञानं किं विकल्पमात्राभ्यासात् अनुमानाभ्यासाद्वा जायते ? ... ..	३५१
योगी परार्थानुमानेन गृहीतव्याप्तिकमगृहीतव्याप्तिकं वा परं प्रति- पादयेत् ? ... ..	३५१
नापि मानसप्रत्यक्षाद्व्याप्तिप्रतिपत्तिः ... ..	३५१
साध्यं च किमसामान्यम्, अभिविशेषः, अभिसामान्यविशेषो वा ? ... ..	३५१
उद्घापोहविकल्पज्ञानस्य प्रत्यक्षफलत्वेऽपि अनुमानलक्षणफलहेतु- त्वात्प्रामाण्यम् ... ..	३५२
समारोपव्यवच्छेदकत्वात् प्रमाणं तर्कः ... ..	३५२

विषयाः	४०
प्रमाणं तर्कः प्रमाणविषयपरिशोधकत्वात् ... ..	३५२
प्रमाणं तर्कः प्रमाणानामनुप्राहकत्वात् ... ..	३५३
सर्कस्योत्पत्तौ न सम्बन्धग्रहणापेक्षा येन अनवस्था ... ..	३५३
अनुमानस्य लक्षणम् ... ..	३५४
हेतुलक्षणम् ... ..	३५४
चौद्धाभिमतत्रैरूप्यस्य निरासः ... ..	३५४-५६
त्रैरूप्यमात्रं हेतोरलक्षणं विशिष्टं वा त्रैरूप्यम् ... ..	३५४
उद्घेयति शकटं कृत्तिकोदयादित्यत्र त्रैरूप्याभावेऽपि गमकलम् ...	३५५
न श्रावणस्तस्य हेतोरसाधारणनैकान्तिकता ... ..	३५५
सपक्षविपक्षयोर्हि हेतुरसत्त्वेन निश्चितोऽसाधारणः संशयितो वा ?	३५५
नैयायिकाभिमतपाञ्चरूप्यस्य खण्डनम् ... ..	३५७-३६२
साध्याविनाभाविलब्धतिरैकेण नापरमबाधितविषयस्तमसत्प्रतिपक्षत्वं	
वा समस्ति ... ..	३५७
बाधाविनाभावयोर्विरोधात् ... ..	३५७
अध्यसागमयोः कृतो हेतुविषयवाचकत्वम् ? ... ..	३५८
एकशास्त्राप्रभवत्वाज्जुमानं कृतो आन्तम्-अध्यसावाध्यत्वात् त्रैरूप्य-	
वैकल्याद्वा ? ... ..	३५८
बाधाधितविषयत्वं निश्चितमनिश्चितं वा हेतोरलक्षणम् ? ... ..	३५८
बाधामावनिश्चयनिबन्धनं हि अनुपलम्भः संवादो वा ? ... ..	३५८
सत्प्रतिपक्षे हि प्रतिपक्षस्तुल्यबलोऽतुल्यबलो वा स्यात् ? ... ..	३५९
अतुल्यबलत्वं हि पक्षधर्मैलादिभाषाभावकृतमनुमानबाधावर्जितं वा ?	३५९
अनुपलम्भ्यमाननित्यधर्मैकत्वं सन्दे तत्त्वतोऽप्रसिद्धं न वा ? ...	३५९
साध्यधर्मोन्निवृत्ते धर्मिणि तत्प्रसिद्धं तद्गहिते वा ? ... ..	३५९
नित्यधर्मानुपलब्धिः प्रसज्यप्रतिषेधरूपा पर्युदासरूपा वा ? ... ..	३६१
एकस्य हेतोः यदि पक्षधर्मैलाधनेकरूपतेष्यते तदा अनेकान्तसिद्धिः	३६१
परैः सामान्यरूपो हेतुरुपादीयते विशेषरूपो वा उभयमनुमयं वा ?	३६१
सामान्यरूपश्चेत् ; तर्कि व्यक्तिभ्यो भिन्नमभिधं वा ? ... ..	३६१
अभिन्नश्चेत् ; कथञ्चित् सर्वथा वा ? ... ..	३६२
परैः किं साध्यते सामान्यं विशेषो वा उभयमनुमयं वा ? ... ..	३६२
नैयायिकाभिमतपूर्ववदादि-अनुमानत्रैविध्यस्य निरासः ३६२-६८	
पूर्ववच्छेषवत् केवलान्वयि ... ..	३६२
पूर्ववत्सामान्यतोऽदृष्टं केवलव्यतिरेकि ... ..	३६२
पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोऽदृष्टमन्वयव्यतिरेकि ... ..	३६२

विषयाः

पृ०

अविनाभावस्य अन्वयेन व्याप्त्यभावात् नान्वयो गमकलाङ्गम् ...	३६३
‘सदसद्वर्गः’ इत्यनुमानेऽनेकत्वादिति हेतुः किं व्यतिरेकभावात् केवलान्वयी विपक्षभावाद्वा ? ... ..	३६३
विपक्षभावात्स्येव विपक्षता ... ..	३६४
त्रिधा व्याप्तिः बहिर्व्याप्तिः, साकल्यव्याप्तिरन्तर्व्याप्तिश्चेति ...	३६४
सकलव्याप्तिश्चेदन्वयः, सा कुतः प्रतीयते प्रत्यक्षादनुमानाद्वा ?	३६५
साध्यत्वत्वात्ततः करणम्, सतो ज्ञापनं वा ? ... ..	३६६
सात्मकं जीवच्छरीरं प्राणादिमत्त्वादित्यत्र हेतुः कुतः केवलव्यति- रेकी ? ... ..	३६६
व्यतिरेकश्च क्वचित् कदाचित् सर्वत्र सर्वदा वा ? ... ..	३६७
पूर्ववत् कारणात्कार्यानुमानं शेषवत् कार्यात् कारणानुमानम् सामा- न्यतो दृष्टम्-अकार्यकारणादकार्यकारणानुमानं सामान्यतोऽवि- नाभावादिति व्याख्यानमपि न युक्तम् ... ..	३६७
पूर्ववत् पूर्व व्याप्तिं गृहीत्वा नदनुमानम्, शेषवत्परिशेषानुमानं सामान्यतो दृष्टं विशिष्टव्यक्तौ सम्बन्धाग्रहणात् सामान्येन दृष्ट- मिति च व्याख्यानम् असङ्गतम् ... ..	३६८
न चायं पूर्ववदादिभेदः युक्तः; परिशेषाद्यनुमानस्यापि पूर्ववत्त्वात्	३६८
अविनाभावस्य लक्षणम् ... ..	३६९
सदभावस्य स्वरूपम् ... ..	३६९
क्रमभावस्य स्वरूपम् ... ..	३६९
साध्यस्य लक्षणम् ... ..	३६९
असिद्धेष्टावाधितानां साध्यविशेषणानां सार्थक्यम्	३६९-७०
असिद्धविशेषणं प्रतिवाद्यपेक्षया दृष्टञ्च वादिनः ...	३७०
क्वचिद् धर्मः साध्यः क्वचिच्च तद्विशिष्टो धर्मो ...	३७१
धर्मिणो लक्षणम् ... ..	३७१
विकल्पसिद्धे सत्तेतरयोः साध्यता ... ..	३७१
व्याप्तिकाले धर्मः साध्यम् ... ..	३७२
प्रतिज्ञाप्रयोगस्य सार्थकता ... ..	४७३
प्रतिज्ञाया अवचनं किं साध्यसिद्धिप्रतिबन्धकत्वात् प्रयोजना- भावाद्वा ? ... ..	३७३
प्रतिज्ञाहेतु एव अनुमानाङ्गम् ... ..	३७४
उदाहरणस्य अनुमानावयवत्वनिरासः ... ..	३७४-७६
तद्धि किं साध्यप्रतिपत्त्यर्थमुपासीयते साध्याविनाभावनिश्चयार्थं वा व्याप्तिस्वरणार्थं वा ... ..	३७४

विषयाः

पृ०

चालव्युत्पत्त्यर्थम् उदाहरणादयोपि शाल्मे अभ्युपग- म्यन्ते न चादे ... ..	३७६
दृष्टान्तोपनयनिगमनानां लक्षणानि ... ..	३७७
परार्थानुमानस्य लक्षणम् ... ..	३७८
वचनस्यापि तद्धेतुत्वादनुमानस्य ... ..	३७८
उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदाद् द्विधा हेतुः ... ..	३७९
अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा ... ..	३७९
कारणहेतुसमर्थनम् ... ..	३७९
पूर्वोत्तरचरहेत्वोः समर्थनम् ... ..	३८०
प्रज्ञाकरामितस्य भाव्यतीतयोः कारणत्वस्य निरासः	३८०-८२
कृतिकोदयस्य भाविरोहिण्युदयकार्यत्वे कथमभूद्वरण्युदयः इत्यनु- मानम् ... ..	३८०
अतीतानागतयोरेकत्र कार्ये व्यापारे च आस्वाद्यमानरसस्य अतीतो रसो भावि च रूपं हेतुः स्यात् ... ..	३८०
भाविनो मरणादेः स्वकारे पूर्व सत्त्वम् अरिष्टादेर्वा ? ... ..	३८१
मरणारिष्टयोः कार्यकारणभावाऽभावेऽपि अविनाभावात्सम्यग्गमक- भावः संभाव्यत एव ... ..	३८२
सहचरहेतुसमर्थनम् ... ..	३८३-८४
अविरुद्धव्याप्योपलब्ध्यादीनामुदाहरणानि ... ..	३७९
विरुद्धोपलब्धिः प्रतिषेधे षोढा ... ..	३८५
अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा ... ..	३८६
अनुपलब्धिश्चात्र दृश्यानुपलब्धिः विवक्षिता ... ..	३८६
एकज्ञानसंसर्गिपदार्थान्तरोपलम्भे योग्यतया संभावितो घटः निषिध्यते ... ..	३८७
विरुद्धानुपलब्धिर्विधौ त्रेधा ... ..	३८८
कार्यकार्यस्य अविरुद्धकार्योपलब्धावन्तर्भावः ... ..	३८९
कारणविरुद्धकार्यस्य विरुद्धकार्योपलब्धावन्तर्भावः ... ..	३८९
आगमस्य लक्षणम् ... ..	३९१
मीमांसकसम्मतस्य वेदापौरुषेयत्वस्य निरासः ...	३९१-४०३
अपौरुषेयत्वं हि पदस्य वाक्यस्य वर्णानां वा स्यात् ? ... ..	३९१
वेदपदवाक्यानि पौरुषेयाणि पदवाक्यत्वात् भारतादिपदवाक्यवत् ... ..	३९१
अपौरुषेयत्वसाधकं च प्रमाणं किं प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, अर्थाप- त्त्यादि वा ? ... ..	३९१



विषयाः

पृ०

अनादितत्त्वस्वरूपपौरुषेयत्वं कथं प्रत्यक्षम् ? ... ..	३९१
अनुमानश्च कर्त्रस्तरणहेतुप्रभवम्, वेदाध्ययनशब्दवाच्यत्वलिङ्ग- जनितं वा कालत्वसाधनसमुत्पत्तिं वा ? ... ..	३९२
कर्तृस्तरणश्च किं कर्तृस्तरणाभावः अस्मर्यमाणकर्तृकत्वं वा ? ...	३९२
नित्यं हि वस्तु अकर्तृकं भवति न स्मर्यमाणकर्तृकं नाप्यस्मर्यमाण- कर्तृकम् ... ..	३९२
सत्प्रदायाविच्छेदे सति अस्मर्यमाणकर्तृकत्वमपि अनैकान्तिकम्	३९२
स्मृतिपुराणादिवत् ऋषिनामाङ्किताः काण्वमाध्यन्दिनादिशास्त्रामेदाः कथनस्मर्यमाणकर्तृकाः ? ... ..	३९२
एतास्तत्त्वतत्तात्तवाभिरङ्किताः तद्दृष्टत्वात् तत्प्रकाशितत्वाद्वा ? ...	३९३
कर्तृस्तरणं हि अभ्यक्षेणानुसवामानात् छिन्नमूलं प्रमाणान्तरेण वा ?	३९३
'वेदार्थानुष्ठानसमये कर्तुः स्तरणयोग्यत्वे सत्यप्यस्मर्यमाणकर्तृक- त्वात्' इत्यपि अनैकान्तिकम् ... ..	३९४
न च पौरुषेयत्वेन सह कर्तुः स्तरणयोग्यत्वस्य विरोधो येन तद्वस्तु- विशेषणं स्यात् ... ..	३९४
न चायं नियमो यदनुष्ठानसमये कर्ता अवश्यमेव स्मर्यमान इति अस्मर्यमाणकर्तृकत्वं बाधिनः प्रतिवादिनः सर्वस्य वा ? ... ..	३९५
अतः स्मृतक्येण अपौरुषेयत्वं साध्यते पौरुषेयत्वसाधनमनुमानं वा बाध्यते ? ... ..	३९५
अपौरुषेयत्वस्य स्मृतक्येण साधनं प्रसङ्गो वा ? ... ..	३९५
बाधापक्षे किमनेन पौरुषेयत्वसाधकानुमानस्य स्वरूपं बाध्यते विषयो वा ? ... ..	३९६
वेदाध्ययनवाच्यत्वं किं निर्विशेषणं कर्त्रस्तरणविशेषणविशिष्टं वा अपौरुषेयत्वं सावयेत् ? ... ..	३९६
अपौरुषेयत्वं किमन्यतः प्रमाणात् प्रतिपन्नत एव वा ? ...	३९७
कर्त्रस्तरणं विशेषणं किममावाह्यं प्रमाणम् अर्थापत्तिरनुमानं वा ?	३९८
कालशब्दामिषेयत्वादेतोरपि न अपौरुषेयत्वसिद्धिः ... ..	३९९
नापि आगमतोऽपौरुषेयत्वम् ... ..	३९९
उपमानादपि नापौरुषेयत्वसिद्धिः '... '... '... '... ..	३९९
अपौरुषेयत्वं विनानुपपद्यमानोऽर्थः किमप्राप्त्याभावलक्षणः, अतीन्द्रियार्थप्रतिपादनस्वभावो वा, परार्थशब्दोच्चारणरूपो वा ?	३९९
अपौरुषेयत्वं प्रसज्यप्रतिषेधरूपं पटुदासत्वमात्रं वा ? ... ..	४००
पटुदासपक्षे सर्वं किं निर्विशेषणम् अनादिविशेषणविशिष्टं वाऽपौ- रुषेयशब्दामिषेयं स्यात् ? ... '... '... '... ..	४००

विषयाः	४०
वेदः व्याख्यातः अव्याख्यातो वा स्वार्थप्रतीतिं कुर्यात् ? ...	४००
व्याख्यानमपि स्वतः, पुरुषाद्वा ? ... ..	४००
व्याख्याता चातीन्द्रियार्थद्वयं तद्विपरीतो वा ? ... ..	४०१
मन्वादीनां प्रज्ञातिशयश्च स्वतः, वेदार्थाभ्यासात्, अदृष्टात्, ; ब्रह्मणो वा स्यात् ? : ... ..	४०१
अश्रुतकाव्यादिवत् वेदार्थस्य संवादित्वे व्याख्येयसिद्धार्थनियमो न स्यात् अनेकार्थत्वाच्छब्दानाम् ... ..	४०२
निरन्तरचित्तरचनाविशिष्टत्वात् पौरुषेयो वेदः ... ..	४०२
शब्दनिस्त्यक्त्वाद् : ... ..	४०४-२७
( नीनांसकस्य पूर्वपक्षः ) शब्दस्य नित्यत्वं स्वार्थप्रतिपादकत्वान्य- थाशुपपत्तेः ... ..	४०४
सम्बन्धावगमश्च प्रमाणत्रयसम्पाद्यः ... ..	४०४
सादृश्यादर्थप्रतीतिः ... ..	४०५
सादृश्यादर्थप्रतीतिं आन्तः शब्दः प्रत्ययः स्यात् ... ..	४०५
गलादीनां वाचकत्वं वादिव्यक्तीनां वा ? ... ..	४०५
व्यक्तीनां वाचकत्वे किं वादिव्यक्तिविशेषो वाचको व्यक्तिमात्रं वा ?	४०५
व्यक्तिमात्रं सामान्यान्तःपाति व्यक्त्यन्तर्भूतं वा ? ... ..	४०५
न विभिन्नदेशादितयोपलभ्यमानत्वाद् गकारादीनां नानात्वम् ; ( अनेकप्रतिपत्तिः भिन्नदेशादितयोपलभ्यमानादित्येनानेकान्तात्	४०६
विभिन्नदेशादितयोपलम्भश्च व्यक्तकष्यन्यधीनः ... ..	४०६
नाप्येकेन भिन्नदेशोपलम्भात् घटादिवक्षानात्वम् ; आदित्येनैवाने- कान्तात् ... ..	४०७
कुमारिलोक्ता प्रतिविम्बनिराकरणपरा चर्चा : ... ..	४०८
प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षेण न एक एव शब्दः प्रतीयते ... ..	४०९
( उत्तरपक्षः ) घृमादिवदनित्यस्यापि शब्दस्यावगतसम्बन्धस्य सादृश्यतोऽर्थप्रतिपादकत्वसंभवात् ..... ..	४०९
सादृश्यस्य स्वरूपं व्यक्तिभ्यो भिन्नमभिन्नञ्च प्रतीयते ... ..	४११
लक्षितलक्षणया- विशेषप्रतिपत्तिश्च अयुक्ता ... ..	४११
सामान्याद्विशेषः प्रतिनियतेन रूपेण लक्ष्येत साधारणेन वा ? ...	४११
जातिव्यक्तयोश्च सम्बन्धस्यैव प्रतीयते-पूर्वं वा ? ... ..	४१२
जातिव्यक्तिनिष्ठेति प्रत्यक्षेण प्रतीयते अनुमानेन वा ? ... ..	४१२
वर्णेष्वपि अनुगतप्रत्ययस्य भावात् वर्णत्वमस्ति ... ..	४१३
अनेको गोशब्दः एकैकदा विभिन्नदेशादितयोपलभ्यमानत्वात् ; घटादिवत् ... ..	४१३

विषयाः	५०
न उदात्तादयो व्यञ्जकधर्मा अपि तु शब्दधर्मा एव ... ..	४१४
सुखितीव्रलक्ष किं—महत्त्वरहितस्वार्थस्य, महत्त्वेनोपलम्भः, यथाव- स्थितस्यात्यन्तस्पष्टतया वा ग्रहणम् ? ... ..	४१४
तात्वादीनां व्यञ्जकत्वे तदर्थोपेतस्य शब्दस्य नियमेनोपलब्धिर्न स्यात् ... ..	४१५
ध्वनयः श्रोत्रग्राह्या न वा ? ... ..	४१५
किं कारणानुविधायिलमल्पलमहत्त्वयोः स्वभावसिद्धत्वादसिद्धम्, स्वभावतत्सद्द्रष्टितत्वात् कारणकृते ते न स्तः ? ... ..	४१६
ध्वनयश्च प्रत्यक्षेण अनुमानेन अर्थापत्त्या वा प्रतिपन्नाः ? ...	४१८
विशिष्टसंस्कृत्यन्यानुपपत्तेः ध्वनयः सन्ति इत्यपि न युक्तम् ...	४१८
शब्दसंस्कारपक्षे कोऽयं शब्दसंस्कारः—शब्दस्योपलब्धिः, तस्या- त्मभूतः कश्चिदतिशयः, अनतिशयव्यावृत्तिः, स्वरूपपरिपोषः, व्यक्तिसमवायः, तद्ग्रहणापेक्षग्रहणता, व्यञ्जकसङ्घिधानमात्रम्, आवरणविगमो वा ? ... ..	४१९
व्यञ्जकैः किं क्रियते येन ते तैरित्येनापेक्षते—योग्यता; किमात्मना, शब्दस्य, इन्द्रियस्य वा ? ... ..	४२०
न हि दिगाद्यपेक्षया ग्रहणमिष्यते अपि तु श्रवणान्तर्गतत्वेन ...	४२१
आवरणविगमः संस्कारस्तु तदा स्यात् यदि आवरणं कुतश्चित्प्र- सिध्येत् ... ..	४२१
न्योमव्यापिनः बहुवच्येदावारकाः; ते किं सान्तरा निरन्तरा वा ?	४२१
कश्चिदावरणविगमे सर्वत्र आवरणविगमात् सर्वशब्दश्रुतिः स्यात्	४२३
अभिन्नदेशेऽमिलेन्द्रियग्राह्ये चावार्थे, आवरणमेदस्याभिव्यञ्जकमे- दस्य चाप्रतीतेः ... ..	४२३
अलसेकादयो न भूमिगन्धस्य व्यञ्जका अपि तूत्पादका एव ...	४२३
इन्द्रियसंस्कारपक्षे सकृत्संस्कृतं श्रोत्रं युगपद्विखिलवर्णान् शृणुयात्;	४२४
समयसंस्कारपक्षे उभयदोषः ... ..	४२५
जले च उपलभ्यमानानामादित्यप्रतिबिम्बानामनेकत्वात् ...	४२५
जलादित्यादिलक्षणसामग्रीवत्त्वात् मुखादिप्रतिबिम्बं समुत्पद्यते ...	४२५
शब्दस्य गमनागमनपक्षमाविनो दोषाः व्यञ्जकवाग्व्यागमनेऽपि समानाः - ... ..	४२७
सहजयोग्यतावशात् शब्दस्य अर्थप्रतिपादकत्वम् ... ..	४२८
हस्तसंज्ञादिवच्छब्दार्थसम्बन्धस्य अनित्यत्वेऽपि अर्थप्रतिपत्ति- हेतुता ... ..	४२८
शब्दार्थसम्बन्धस्य नित्यत्वेऽपि तदभिव्यक्तौ, अनवस्थादोषस्तुल्यः .	४२९

विषयाः

पृ०

संकेतश्च अतीन्द्रियज्ञानविकल्पपुरुषाभितः, स चान्यथापि संकेतं	
कुर्यात् ... ..	४३७
वेदः नित्यसम्बन्धवशादेकार्थनियतः अनेकार्थनियतो वा ? ...	४३७
एकार्थनियतश्च किमेकदेशेन सर्वात्मना वा ... ..	४३७
एकदेशेन चेत्, सकिमेकदेशः अभिमतैकार्थनियतः अनभिमतै-	
कार्थनियतो वा ? ... ..	४३७
अभिमतार्थैकनियतश्चेत् किं पुरुषात्समावाद्या ? ... ..	४३७
सम्बन्धश्च ऐन्द्रियः अतीन्द्रियः अनुमानगम्यो वा ? ... ..	४३७
अनुमानगम्यत्वे लिङ्गम्-ज्ञानम्, अर्थः, शब्दो वा स्यात् ? ...	४३७
चौद्धाभिममतस्य अपोहस्य निरासः ... ..	४३९-४५९
अर्थवन्तः शब्दाः नार्थाभावे दृश्यन्ते अतो न अन्यापोहमात्राभि-	
वायकाः ... ..	४३९
यमतः परीक्षितः शब्दोऽर्थवत्त्वेतरतां न ज्यमिचरति ... ..	४३९
अन्यापोहमिवायित्वे प्रतीतिविरोधः गवादिशब्देभ्यो हि विवि-	
रूपेण प्रत्ययः समुत्पद्यते ... ..	४३९
एकेन गोशब्देन च विधिनियेचद्वयं न स्यात् ... ..	४३९
प्रथमश्च गोशब्दप्रवणान्दगौरिति प्रतीयेत ... ..	४३२
अपोहलक्षणं सामान्यं पर्युदासरूपं प्रसज्यरूपं वा वाच्यं स्यात् ?	४३२
अश्वादिनिवृत्तिलक्षणश्च को भावोऽभिप्रेतः ? ... ..	४३३
अपोहवादिनां मते विभिन्नसामान्यवाचिनां शब्दानां शावलेयादि-	
विशेषशब्दानां पर्यायवाचिर्लं स्यात् ... ..	४३३
अपोहमेवादपि न शब्दभेदः प्रमेयाभिधेयादिशब्दानामप्रवृत्ति-	
प्रसङ्गात् ... ..	४३४
कथञ्च सहस्रपरिणामाभावे शावलेयादीनामेव अपोपोहप्रत्ययं न	
स्तु कर्कोचश्चव्यकीनामिति ... ..	४३४
न चापोहे संकेतः संभवति ... ..	४३५
अपोहप्रतिपत्तौ च इतरैतराश्रयः ... ..	४३५
अपोहपक्षे च नीलोत्पलादौ विशेषणविशेष्यभावो न स्यात् ? ...	४३६
अपोहश्च न कस्यचिद्विशेषणं साकारानुरक्तबुद्धयुत्पादकत्वात् ...	४३७
वस्तुभूतं सामान्यं शब्दविषयः ... ..	४३८
अपोहो वस्तु अपोहत्वात् ... ..	४३९
अपोहानां परस्परतो वैलक्षण्यमवैलक्षण्यं वा स्यात् ? ... ..	४३९
विभिन्नसामान्यवाचिनां शब्दानां परस्परतोऽपोहभेदः वासनाभेद-	
निमित्तः वाच्यापोहभेदनिमित्तो वा ? ... ..	४३९

विषयाः	५८
अतः अपोहयोः न गम्यगमकभावः अवस्तुत्वात् ... ..	४४०
अपोहः वाच्योऽवाच्यो वा ? ... ..	४४०
वाच्योऽपि विधिरूपेण अन्यव्यावृत्त्या वा ? ... ..	४४०
ज्ञान्यापोहः अनन्यापोह इत्यत्र विधिरूपमेव वाच्यमुपलभ्यते ...	४४१
विजातीयव्यावृत्तार्थाशुभवक्रमेण जायमानविकल्पप्रतिबिम्बेऽन्यापो-	
हसंब्राकरणेऽपि स विकल्पः पारमार्थिकार्थग्राही अभ्युपगन्तव्यः	४४१
शब्दादर्थे प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिप्रतीतेः स एव शब्दार्थो न तु	
विकल्पप्रतिबिम्बमात्रम् ... ..	४४२
शब्दानां प्रतिनियतार्थे प्रवर्तकत्वात् वस्तुभूतार्थविषयता ...	४४२
शब्दस्य अर्थवाचकत्वम् ... .. ४४२-४५१	
(बौद्धस्य पूर्वपक्षः) अकृतसमया च्चनयोऽर्याभिधायकाः कृत-	
समया वा ? ... ..	४४२
द्वितीयपक्षे संकेतः-स्वलक्षणे, जातौ, तद्योगे, जातिमल्लये, शुद्ध्या-	
कारे वा ? ... ..	४४२
समयः उत्पन्नेषु क्रियते अनुत्पन्नेषु वा ? ... ..	४४३
(उत्तरपक्षः) सामान्यविशेषात्मन्यर्थे सङ्केतोऽभ्युपगम्यते न	
जात्यादिमात्रे ... ..	४४४
समानपरिणामापेक्षया व्यक्तिषु संकेतः संभवति ... ..	४४५
सदृशपरिणामाभावे अन्यव्यावृत्तेरेव नियमयितुमशक्यत्वात् ...	४४५
शब्देन चार्थस्य अस्पष्टाकारतया प्रतिभासः, अतः स्पष्टप्रति-	
पत्त्यर्थं चक्षुरादीनामुपयोगः ... ..	४४६
अतीतानागततादावपि स्वकाले सत्त्वचस्यै संवादात् शब्दस्य	
प्रामाण्यम् ... ..	४४६
सामग्रीभेदादेव निशेदेतरप्रतिभासमेदो न तु विषयभेदात् ...	४४७
अन्यदेवेन्द्रियग्राह्यमिति शब्देन कश्चिदर्थोऽभिधीयते न वा ? ...	४४७
साक्षादिन्द्रियागोचरत्वे यदि पारम्पर्येण तद्विषयता तदा तज्जा	
प्रतीतिः किमिन्द्रियजप्रतीतिस्तुत्या, तद्विलक्षणा वा ? ...	४४८
दाहशब्देन च किमग्निः उष्णस्पर्शः रूपविशेषः स्फोटः तदुत्सं	
वाऽभिप्रेतम् ? ... ..	४४८
यदि, चामावोऽभिधीयते भावो, नाभिधीयते तदा कथम् अपूर्वे	
स्वर्गादौ धर्मादौ वा युगतवाक्यात् प्रतिपत्तिः ... ..	४४८
शब्दस्य अर्थावाचकत्वे, सङ्केतरव्यवस्थाऽभावः ... ..	४४९
परायाशुमानवाक्यस्य अर्थान्गोचरत्वे कथं ततोऽभिमतार्थसिद्धिः ? ...	४४९
सकलवचसां विवक्षाभावात् विषयत्वे सर्वं शब्दविज्ञानं प्रमाणं स्यात्	४४९

विषयाः

५०

अर्थव्यभिचारवत् विवक्षाव्यभिचारस्यापि दर्शनात् कथं शब्दाः

विवक्षामपि प्रतिपादयेयुः ... ..

४४९

बहिरर्थे प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्त्यादिप्रतीतेः न विवक्षायाम्बन्धविरुद्धार्थस्य

वा वाचकः शब्दः ... ..

४४९

किं शब्दोच्चारणेच्छामात्रं विवक्षा, अनेन शब्देनामुमर्थं प्रतिपाद-

यामि इत्यभिप्रायो वा विवक्षा ? ... ..

४५०

किं समयानपेक्षं वाक्यं विवक्षा गमयति समयसापेक्षं वा ? ...

४५०

स्वलक्षणस्य अनिर्देश्यत्वं हि तच्छब्देनाप्रतिपाद्य उच्येत प्रतिपाद्य वा ?

४५०

विकल्पप्रतिभास्यन्यापोहगता वाच्यता वस्तुनि प्रतिबिध्यते वस्तुगता

वा वाच्यता ? ... ..

४५१

स्फोटवादः ... ..

४५१-५७

(वैयाकरणानां पूर्वपक्षः) वर्णो हि समस्ता व्यस्ता वा तद्वान्वाक्यः ?

४५१

न अन्यवर्णस्य पूर्ववर्णानुपहृतस्य अर्थप्रतिपादकत्वम् ... ..

४५२

अन्यवर्णानुग्रहो हि अन्यवर्णं प्रति जनकत्वम् अर्थज्ञानोत्पत्तौ

सहकारित्वं वा ? ... ..

४५३

सवेदनप्रभवसंस्काराश्च स्फोटवादविज्ञानविषयस्मृतिहेतवो नार्था-

न्तरस्मृतिविधातारः ... ..

४५२

न च पूर्ववर्णानपेक्षस्यैव अन्यवर्णस्य वाचकता ... ..

४५२

श्रोत्रविज्ञाने चासौ स्फोटः निरवयवोऽक्रमश्च प्रतिभासते ...

४५२

नित्यत्वासौ स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः ... ..

४५३

(उत्तरपक्षः) पूर्ववर्णस्यैवसविशिष्टादन्यवर्णोदयप्रतीतिः ... ..

४५३

पूर्ववर्णविज्ञानाभावविशिष्टः तन्मनितसंस्कारसव्यपेक्षो वाऽन्यवर्णो

वाचकः ... ..

४५३

पूर्ववर्णविज्ञानप्रभवसंस्काराणाम् अन्यवर्णं प्रति सहकारित्वस्य

प्रणाली ... ..

४५३

संयोज्यसमवयवाश्च अविनष्टा एव पूर्ववर्णसविदः तत्संस्काराश्च

अन्यवर्णसंस्कारं कुर्वन्ति ... ..

४५३

पूर्वस्मृतिसव्यपेक्षो वाऽन्यो वर्णो वाचकः ... ..

४५४

वर्णो हि किं समस्ताः स्फोटं व्यञ्जयन्ति व्यस्ता वा ? ... ..

४५४

पूर्ववर्णैः स्फोटस्य संस्कारः किं वेगरूपः, वासनारूपः, स्थितस्था-

पकाद्यो वा विधीयते ? ... ..

४५४

संस्कारश्च स्फोटस्वरूपः तदर्थो वा ? ... ..

४५५

पूर्ववर्णैः स्फोटसंस्कारः एकदेशेन क्रियते सर्वात्मना वा ? ...

४५६

स्फोटसंस्कारश्च स्फोटविषयसवेदनोत्पादनम् आवरणपनयनं वा ?

४५५

विषयाः

पृ०

विदात्मव्यतिरेकेण अन्यस्य स्फोटस्याप्रतीतिः, पदवाक्यावरण-	:
क्षयोपशमविशिष्टश्चिदात्मैव पदवाक्यस्फोटः	४५६
वायुभ्योऽपि न स्फोटोऽभिव्यक्तिः ... ..	४५६
एवञ्च शब्दस्फोटवद् गन्धादिस्फोटोऽप्यभ्युपगन्तव्यः ... ..	४५७
हस्तपादकरणमात्रिकाङ्गहारादिस्फोटोऽपि स्वीकार्यः ... ..	४५७
शब्दस्फोटवत् पद-वाक्यलक्षणविचारः	४५८-६०
परस्परापेक्षवर्णानां निरपेक्षः समुदायः पदम् ... ..	४५८
निराकाङ्क्षं हि प्रतिपत्तुधर्मः वाक्येष्वध्यारोप्यते ... ..	४५८
परस्परापेक्षपदानां निरपेक्षः समुदायो वाक्यम् ... ..	४५८
प्रकरणादिगन्त्यपदान्तरसापेक्षस्यापि वाक्यत्वम् ... ..	४५८
'आख्यातशब्दः संघातः' इत्यादि द्वाविधमपि वाक्यञ्च षट्ते	४५९
आख्यातशब्दः पदान्तरनिरपेक्षः सापेक्षो वा वाक्यम् ? ...	४५९
सापेक्षत्वे क्वचिन्निरपेक्षो न वा ? ... ..	४५९
संघातोऽपि देशकृतः कालकृतो वा ? ... ..	४५९
कालकृतपक्षेऽसौ वर्णभ्यः अभिन्नः भिन्नो वा ? ... ..	४५९
अनेके सर्वथा कथयिष्या ? ... ..	४५९
शुद्धिरपि भाववाक्यं इव्यवाक्यं वा स्यात् ? ... ..	४६०
अनुसंहृतेः अनुभवरूपतया भाववाक्यत्वमिष्टमेव ... ..	४६०
प्राभाकराभिमत-अन्विताभिधानवादस्य निरासः ...	४६१-६३
यदि देवदत्तपदेनैव इतरार्थान्वितदेवदत्तस्य प्रतीतिः तदा द्विती-	
यादिपदोच्चारणं व्यर्थम् ... ..	४६१
यावन्ति वा पदानि तावतां वाक्यत्वम् ... ..	४६१
गम्यमानस्यापि अभिधीयमानवत् पदार्थत्वात् ... ..	४६२
पदप्रयोगः पदार्थप्रतिपत्त्यर्थः वाक्यार्थप्रतिपत्त्यर्थो वा विधीयते ?	४६२
विशेष्यपदं विशेषणसामान्येनान्वितं विशेष्यमभिधत्ते, विशेषण-	
विशेषेण तदुभयेन वाऽन्वितम् ? ... ..	४६३
भगद्वाभिमत-अभिहितान्वयवादस्य निरासः ... ..	४६४
पदैरभिहिता अर्थाः शब्दान्तरादन्वीयन्ते बुद्ध्या वा ? ... ..	४६४

इति तृतीयः परिच्छेदः ।

सामान्यविशेषात्माऽर्थः प्रमाणस्य विषयः ... .. ४६६

अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात् उत्पादव्ययप्रौढ्यलक्षणपरिणामेना-  
र्थक्रियोपपत्तेश्च ... .. ४६६

विषयाः	पृ०
तिर्यगूर्ध्वतामेदात् द्विविधं सामान्यम् ... ..	४६६
सदृशपरिणामस्य तिर्यक्सामान्यता ... ..	४६७
बौद्धाभिमतसामान्यस्य निरासः ... ..	४६७
एकेन्द्रियाध्यवसेयत्वात्तिव्यक्त्योरभेदे वातातपादावप्यभेदप्रसङ्गः	४६७
दूरादूर्ध्वतासामान्यमेव च प्रतिभासते न स्थाणुपुरुषविशेषौ *	४६८
अदूरेऽपि सामान्यस्य विशदप्रतिभासो भवति ... ..	४६८
अनुगतप्रत्ययस्य प्रतिनियतस्य बहिःसाधारणनिमित्तव्यतिरेकेणा- नुपपत्तेः ... ..	४६८
अतत्कार्यकारणव्यावृत्तिरपि सदृशपरिणामाभावे न क्वचिदेव निय- मयितुं शक्यते ... ..	४६९
अनुगतप्रत्ययस्य सामान्यमन्तरणैव भावे व्यावृत्तप्रत्ययोऽपि विशे- षव्यतिरेकेणैव स्यात् ... ..	४६९
नाप्येककार्यतासादृश्येन व्यक्तीनामेकत्वाध्यवसायः ... ..	४६९
नाप्यनुभवानामेकपरामर्शप्रत्ययहेतुलमुत्पन्नैकत्वं तद्वस्तुत्वाच्च व्यक्ती- नामेकतेत्युपचरितोपचारः घटते ... ..	४६९
सामान्यं हि अनित्यासर्वगतस्वरूपं न तु सर्वगत- नित्यैकस्वभावम् ... ..	४७०
नित्यसर्वगतत्वे अर्थकियाऽयोगात् ... ..	४७०
स्वविषयज्ञानजनने केवलसामान्यस्य व्यापारः व्यक्तिसहितस्य वा ?	४७०
व्यक्तिसहितस्य चेत् ; प्रतिपक्षाखिलव्यक्तिसहितस्य अप्रतिपक्षाखिल- व्यक्तिसहितस्य वा ? ... ..	४७०
प्रथमपक्षे तस्य तामिरुपकारः कियते न वा ? ... ..	४७१
सामान्येन सहैकज्ञानजनने व्यक्तीनां किमालम्बनभावेन व्यापारोऽ- धिपतित्वेन वा ? ... ..	४७१
सामान्यं सर्वसर्वगतं स्वव्यक्तिसर्वगतं वा ? ... ..	४७१
व्यक्त्यन्तरालेऽनुपलम्भः किमव्यक्तत्वात् व्यवहितत्वात् दूरस्थितत्वात् अदृश्यत्वात् स्वाश्रयेन्द्रियसम्बन्धविरहात् आश्रयसमवेतरूपा- भावाद्वा ? ... ..	४७२
स्वव्यक्तिसर्वगतत्वे अनेकलप्रसङ्गः ... ..	४७२
एकत्र वर्तमानस्यान्यत्र वृत्तिः तद्देशे गमनात् पिण्डेन सहोत्पादात् तद्देशे सद्भावादंशवत्तया वा स्यात् ? ... ..	४७३
पूर्वपिण्डपरिखागेन तत्तत्र गच्छेत् अपरिखागेन वा ? ... ..	४७३
सामान्यविशेषयोस्तादात्म्यवादिनो मादृशस्य निरासः	४७३
व्यक्तिवत्सामान्यस्यापि असाधारणत्वमुत्पादादियोगित्वञ्च स्यात् ...	४७३



विषयाः

पृ०

अनुगतप्रत्ययस्य सदृशपरिणामहेतुकतया व्यवस्थितत्वात् ...	४७४
सामान्यस्य नित्यैकरूपस्य सर्वात्मना बहुषु परिसमाप्तत्वे सर्वव्यक्ती- नामेकत्वं सामान्यस्य वाऽनेकत्वं स्यात् ... ..	४७५
सद्योतकरोक्तस्य विशेषकत्वादिति हेतोः निरासः ... ..	४७६
किं यत्रानुगतज्ञानं तत्र सामान्यं यत्र वा सामान्यं तत्रानुगत- ज्ञानमिति ? ... ..	४७६
न चाभावे सत्ताद्वयं महासामान्यम् ... ..	४७७
पाचकादिषु सामान्याभावेऽपि अनुगतज्ञानोपलम्भात् ....	४७७
पाचके निमित्तान्तरस्य किं कर्म कर्मसामान्यं शक्तिर्व्यक्तिर्वा स्यात् ?	४७७
कर्मापि नित्यमनित्यं वा ? ... ..	४७७
कर्मसामान्यं हि कर्माश्रितं कर्माश्रयाश्रितं वा ? ... ..	४७८
शक्तिश्च पाचकादन्या अनन्या वा ? ... ..	४७८
पाचकत्वस्य द्रव्योत्पत्तिकाले व्यक्तमव्यक्तं वा ? ... ..	४७८
पाचकत्वस्य पाकक्रियातः प्राक् द्रव्यसमवायधर्मः अस्ति न वा ?	४७९
अभिव्यक्तिश्च द्रव्येण क्रियया उभाभ्यां वा ? ... ..	४७९
किं गोप्त्रेव गोत्वं गोषु गोलमेव गोषु गोत्वं वर्तते एव ? ...	४७९
निमित्तं हि प्रतिव्यक्ति सदृशपरिणामलक्षणं सामान्यम् ... ..	४७९
द्विविधो हि वस्तुधर्मः परापेक्षः, परानपेक्षश्च ... ..	४८०
सादृश्येऽपि सामान्ये शबलं दृष्ट्वा धवले स एवामं गौरिति प्रत्ययः एकत्वोपचारात् घटते ... ..	४८१
विभिन्नसामान्यवादिनः तेन समानोऽयमिति प्रत्ययो न स्यात् ...	४८१
समानपरिणामे नान्यः समानपरिणामः येनाऽनवस्था ... ..	४८१
नित्यैकब्राह्मणत्वजातिनिरासः ... ..	४८२-८७
( नैयायिकादीनां पूर्वपक्षः ) ब्राह्मणोऽयं ब्राह्मणोऽयमिति प्रत्यक्षत एवास्य प्रतिपत्तिः ... ..	४८२
पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानपूर्वकोपदेशसहाया व्यक्तिव्यास्य व्यञ्जिका ...	४८२
पदत्वात् हेतोः व्यक्तिव्यतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयसम्बद्धं ब्राह्मण- पदम् ... ..	४८२
वर्णविशेषयज्ञोपवीतादिव्यतिरिक्तनिमित्तनिवन्धनं ब्राह्मण इति ज्ञानं तच्च निमित्तबुद्धिविलक्षणत्वात् ... ..	४८२
“ब्राह्मणेन यष्टव्यम्” इत्याद्यागमाच्चासौ प्रतीयते ... ..	४८२
( उत्तरपक्षः ) प्रत्यक्षादि निर्विकल्पकात्, सविकल्पाद्वा तत्प्रतीतिः ?	४८२
पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानस्य प्रमाणमप्रमाणं वा ? ... ..	४८३
ब्राह्मणशब्दस्योपाधिकस्य किं पित्रोरविद्युत्तत्वं निमित्तं ब्रह्मप्रभवत्वं वा ? ... ..	४८३

विषयाः

५०

क्रियाविलोपात् कदाचादेश्वा जातिविलोपान्युपगमे तदविलोपादिनिव-

न्वधनैव ब्राह्मण्यजातिः स्वीकरणीया ... .. ४८३

ब्रह्मव्यासविद्यामित्राचीना ब्राह्मणपित्रजन्यत्वात् कथं ब्राह्मण्यं स्यात् ? ४८४

ब्रह्मसुखाब्जातो ब्राह्मणः इत्यपि न युक्तम् ... .. ४८४

ब्रह्मणो ब्राह्मण्यमस्ति वा न वा ? ... .. ४८४

अस्ति चेत् किं सर्वत्र मुखप्रदेश एव वा ? ... .. ४८४

ब्राह्मण एव तन्मुखव्याख्यायते तन्मुखदेवासौ जायेत ? ... .. ४८४

ब्राह्मण्यजातिनिश्चये हि आक्षरविशेषो निमित्तमध्ययनादिकं वा ? ४८५

पदत्वादिति हेतुश्च कालालयापदिष्टः ... .. ४८५

अप्रसिद्धविशेषणश्च पक्षः व्यक्तिव्यतिरिक्तनिमित्तस्य असिद्धेः ... ४८५

पदत्वादिति हेतुः आकाशादिपदेनानैकान्तिकः ... .. ४८५

नगरादौ च व्यक्तिव्यतिरिक्तैकनिमित्ताभावेऽपि अनुगतज्ञानोप-

लब्धेः ... .. ४८५

ततः क्रियाविशेषयज्ञोपवीतादिचिह्नोपलक्षिते व्यक्तिविशेषे एव

तपोवानादिव्यवहारः, तन्निमित्तैव च वर्णाश्रमव्यवस्था ... ४८६

जातेः पवित्रताहेतुत्वे वेद्यापाठकादिप्रविष्टानां ब्राह्मणीनां निन्दा

न स्यात् ... .. ४८६

क्रियाग्रंथात् जातिविलोपे क्रियात् एव ब्राह्मण्यम् सिद्धम् ... ४८६

ब्राह्मणत्वं जीवस्य शरीरस्य उभयस्य वा संस्कारस्य वा वेदाध्यय-

नस्य वा ? ... .. ४८७

संस्कारात् प्राग्ब्राह्मणबालस्य ब्राह्मणत्वमस्ति न वा ? ... .. ४८७

ऊर्ध्वतासामान्यस्य स्वरूपम् ... .. ४८८

क्षणमङ्गवाक् : ... .. ४८८-५०३

प्रत्यक्षेणैव अर्थानामन्वयिरूपस्य प्रतीतिः ... .. ४८८

शुद्धेः क्षणिकत्वेऽपि प्रतिपन्नुरक्षणकलात् कालत्रयानुयायिरूपायाः

स्थितेः प्रतिपत्तिः ... .. ४८८

न च प्रत्यग्रहणे अतीताद्यवस्थानां ततोऽभिज्ञत्वाद्ग्रहणप्रसंगः ;

अमेदस्य ग्रहणं प्रत्यनङ्गत्वात् ... .. ४८९

आत्मनो निवृत्ताभावे मध्यक्षणस्य पूर्वोत्तरक्षणयोरभावरूपस्य

क्षणिकत्वस्य प्रतीतिरपि न स्यात् ... .. ४९०

स्यास्तुता हि पूर्वोत्तरयोः मध्ये मध्यस्य वा पूर्वोत्तरयोः सद्भावः,

अतः सा तत्तत्क्षणप्राहिज्ञानेनैव प्रतीयते ... .. ४९०

न हि त्रिकालेन निवृत्ता क्रियते अपि तु वस्तुत्वमावैव सा ... ४९०

अतीतादिसमयस्य च स्वत एव अतीतादिरूपता तत्सम्बन्धाच्च

अर्थानामतीतादिस्वरूपत्वम् ... .. ४९१

विषयाः

अनुवृत्ताकारे प्रतिपक्षे अप्रतिपक्षे वा विशेषप्रतिपासः तद्वाधकः ?	४९१
न हि प्रत्यक्षेण क्षणक्षयावभासः ... ..	४९२
नापि सदृशापरापरोत्पत्तिविप्रलम्भादेकत्वमानम् ... ..	४९२
क्षणक्षयावगमे स्वभावहेतोर्व्यापारः कार्यहेतोर्वा ? ... ..	४९२
विनाशं प्रत्यन्यानपेक्षत्वादिति हेतुव्यासिद्धः; मुद्गराद्यपेक्षत्वात् घट- नाशस्य ... ..	४९३
अन्यानपेक्षत्वमात्रं हेतुः तत्त्वभावस्य सति अन्यानपेक्षत्वं वा ? ...	४९३
अहेतुकोपि विनाशः मुद्गरादिव्यापारानन्तरमुपलभ्यमानः तदैवा- भ्युपगन्तव्यो नोदयानन्तरम् ... ..	४९३
उदयानन्तरप्रवृत्तिलं भावानामन्येन स्वसंस्पासंभवादभिधीयते प्रमाणान्तराद्वा ? ... ..	४९३
भावहेतोरेव तत्प्रच्युतिहेतुस्य किमसौ भावजननात्प्राक् तत्प्रच्युतिं जनयति उत्तरकालं वा समकालं वा ? ... ..	४९४
न च मुद्गरादीनां कपालोत्पादे व्यापारः किन्तु विनाश एव ...	४९४
घटादेः मुद्गरादिकमपेक्ष्य असमर्थ-तर-तमक्षणोत्पादने मुद्गरादिना घटस्य कश्चित् सामर्थ्यविधातो विधीयते न वा ? ... ..	४९५
विनाशकहेतुव्यापारानन्तरं सन्नुमित्रवृत्ते सुखदुःखानुभवनादति- रिक्तो विनाशः सहेतुक एव स्वीकार्यः ... ..	४९५
अभावस्थानान्तरत्वनभ्युपगमे किं घट एव प्रवृत्तः, कपालानि, पदार्थान्तरं वा ? ... ..	४९२
कपालकाले 'सः न' इति शब्दयोः मिथार्थत्वमभिचार्यत्वं वा ? ...	४९५
अन्यानपेक्षतया च स्थितिरपि स्वभावत एव किञ्च स्यात् ? ...	४९६
अहेतुकविनाशाभ्युपगमे उत्पादस्याप्यहेतुकत्वं किञ्च स्यात् ? ...	४९६
कार्यकारणयो उत्पादविनाशौ न सहेतुकाहेतुकौ कारणानन्तरं सह- भावाद्रूपादिवत् ... ..	४९७
'सत्त्वात्' हेतोरपि न क्षणिकत्वसिद्धिः ... ..	४९७
नापि विद्युदादेः निरन्वया सन्तानोच्छिन्तिः ... ..	४९७
विपक्षे नित्ये सत्त्वस्य नाशकं प्रत्यक्षमनुमानं वा ? ... ..	४९८
क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधादपि न नित्यात् सत्त्वव्यावृत्तिः सत्त्वनित्यत्वयोर्हि सहानवस्थानलक्षणो विरोधः स्यात् परस्परपरि- हारस्थितिरूपो वा ? ... ..	४९८
एकान्तनित्यवदनित्यस्य क्रमाक्रम्यामर्थक्रियाविरोधात् सत्त्वा- भावः स्यात् ... ..	४९९
क्षणिकं वस्तु विनष्टं सत्कार्यमुत्पादयति अविनष्टमुभयरूपमनुभय- रूपं वा ? ... ..	४९९

विषयाः

५०

निरन्वयविनाशो उपादान-सहकारिव्यवस्थाप्रायः ... ४९९

उपादानस्य हि स्वरूपं किं स्वसन्ततिनिवृत्तौ कार्यजनकत्वम्

अनेकस्मादुत्पद्यमाने कार्ये स्वगतविशेषाधायकत्वं समनन्तर-

प्रत्ययत्वं नियमवदन्वयव्यतिरेकानुविधानं वा ? ... ५००

प्रथमपक्षे कथञ्चित्सन्ताननिवृत्तिः सर्वथा वा ? ... ५००

द्वितीये स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वं सकलविशेषाधायकत्वं वा ? ५००

कार्ये कारणस्य सर्वात्मना समलभेकदेशेन वा ? ... ५०१

अनन्तरत्वञ्च देशकृतं कालकृतं वा ? ... ५०१

निरन्वयविनाशोऽन्वयव्यतिरेकानुविधानमपि न घटते ... ५०२

अर्थक्रियालक्षणं सत्त्वमित्यत्र लक्षणशब्दः कारणार्थः स्वरूपार्थः

ज्ञापकार्यो वा स्यात् ? ... ५०३

सत्त्वात् हि क्षणस्थायितारूपं क्षणिकत्वं साध्येत क्षणादूर्ध्वमभावो

वा ? ... ५०४

कृतकत्वावपि न क्षणिकत्वसिद्धिः ... ५०४

सम्बन्धसङ्गाववादः ... ५०४-५२०

( बौद्धानां पूर्वपक्षः ) सम्बन्धोऽर्थानां पारतन्त्र्यलक्षणः रूपशेष-

स्वभावो वा स्यात् ... ५०४

आद्ये किमसौ निष्पन्नयोरनिष्पन्नयोर्वा ? ... ५०४

नैरन्तर्यस्य अन्तरालभावरूपतया सम्बन्धत्वविरोधात् ... ५०५

रूपशेषः सर्वात्मना एकदेशेन वा स्यात् ? ... ५०५

एकदेशेन चेत्, ते देशादस्य आत्मभूताः परभूता वा ? ... ५०५

परापेक्षैव सम्बन्धः, यन्नापेक्षते भावः स्वयं सन् असन्वा ? ... ५०५

सम्बन्धः सम्बन्धिभ्यां मिश्रोऽमिश्रो वा ? ... ५०५

एकेन सम्बन्धेन सह तयोः सम्बन्धिभ्योः कः सम्बन्धः ? ... ५०५

कार्यकारणभावोऽपि कार्यकारणयोरसहभावतत्त्वमिश्रो न संभवति

नापि कार्ये कारणे वा क्रमेणसौ कार्यकारणभावः वर्तते... ५०६

नापि एकार्थमिसम्बन्धात् कार्यकारणता ... ५०७

अन्वयव्यतिरेकादेव कार्यकारणता; ताभ्यां तत्प्रसाधनं तु संकेत-

करणाय ... ५०८

कार्यकारणभूतोऽर्थो मित्रः अभिन्नो वा ? ... ५०८

संयोगादीनामपि परस्परप्रेषकार्यकारकभावामावाञ्च संयोगादि-

सम्बन्धाः घटन्ते ... ५०९

कार्यकारणभावस्य प्रतिपक्षस्य अप्रतिपक्षस्य वा सत्त्वं सिद्ध्येत्?... ५११

आद्ये प्रत्यक्षेण प्रत्यक्षानुपलम्भमाभ्याम् अनुमानेन वा तत्प्रतिपत्तिः ? ५११

विषयाः	पृ०
प्रत्यक्षेण चेत् ; अस्मिन्नूपग्राहिणा, धूमस्वरूपग्राहिणा, उभय- स्वरूपग्राहिणा वा ? ... ..	५११
नापि स्मरणपेक्षमिन्द्रियं कार्यकारणभावग्राहकम् ... ..	५११
अन्वयव्यतिरेकभ्यां कार्यकारणभावनिश्चये वक्तुं तस्य असर्वज्ञत्वेन व्याप्तिः स्यात् ... ..	५१२
कार्यकारणभावः अखिलधूमाभिनिष्ठतया ज्ञातुं न शक्यते ...	५१३
कारणत्वं हि कार्योत्पादनशक्तिविशिष्टत्वं न च शक्तिः प्रत्यक्षावसेया ( उत्तरपक्षः ) सम्बन्धस्य तन्तुपटादौ प्रत्यक्षत एव प्रतीतेः ...	५१४
रज्ज्वंशदण्डादीनामाकर्षणान्यथानुपपत्तेश्चास्ति सम्बन्धः ...	५१४
विशिष्टरूपतापरित्यागेन सच्छिष्टरूपतया परिणतिः हि सम्बन्धः ...	५१४
स च सम्बन्धः क्वचिदन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशतः, क्वचिन् प्रदेश- संछिष्टतामात्रेण ... ..	५१५
परमाणूनामश्वत्थे अंशशब्दः स्वभानार्थः अवयवार्थो वा स्यात् ?	५१५
कथमिच्छिपक्षयोश्च सम्बन्धोऽभ्युपगम्यते ... ..	५१५
पारतन्त्र्याभावे सम्बन्धस्याभावे पारतन्त्र्येण व्याप्तः सम्बन्धः क्वचित् प्रसिद्धो न वा ? ... ..	५१५
अज्ञानविनिवेचनस्वरूपः कथमिदेकलापतिरूपो वा रूपक्षेपोऽभ्यु- पगम्यते ... ..	५१६
कारणं हि किञ्चित्सहभावि किञ्चित्तु क्रमभावि ... ..	५१६
कार्यकारणभावनिश्चयस्य क्षयोपक्षमविशेषरूप-तद्भावभावित्वाभ्या- सात्मकबाह्यान्तर-कारणप्रभवत्वात् ... ..	५१७
अकार्यकारणभावेऽपि च सर्वे विकल्पा समानाः ... ..	५१९
विज्ञेयो द्विधा ... ..	५२०
पर्यायस्य स्वरूपम् ... ..	५२०
अन्वयव्यात्मनः सिद्धिः ... ..	५२०-२४
मित्रसवेदनवदनेकपर्यायव्यापिन आत्मनः स्वयमनुभवात् ...	५२०
सुखादीनामत्यन्तमेवे प्रागहं सुख्यासं सम्प्रति दुःखी वर्तते इत्यनु- सन्धानप्रत्ययो न स्यात् ... ..	५२१
न हि अनुसन्धानवासनातः प्रत्यभिज्ञानम् ... ..	५२१
नापि सुखादीनामेकसन्ततिपतितत्वेन प्रत्यभिज्ञानहेतुता ...	५२१
आत्मनोऽनभ्युपगमे कृतनाशाऽकृताभ्यागमप्रसङ्गः ... ..	५२१
अहमेव ज्ञातवानहमेव वेदि इत्येकप्रमातृविषयकप्रत्यभिज्ञानादात्म- सिद्धिः ... ..	५२१
“अहमेव ज्ञातवान्” इति प्रत्यभिज्ञाने प्रमाता विषयो भवन् आत्मा वा भवेज्ज्ञानं वा ? ... ..	५२१

विषयाः	५७
ज्ञानमेव स ज्ञानक्षणः अतीतो वर्तमानः उभौ सन्तानो वा ...	५२२
आत्मा हि स्वयमेव सुखादिरूपतया परिणमते न तु पृथक् सिद्धेः	
सुखादिभिस्तस्य सम्बन्धः ... ..	५२३
नीलाद्यनेकाकारव्यापिचित्रज्ञानवत् स्वपरग्रहणशक्तिह्यात्मकैकविज्ञा- नवद्वा स्वयमारम्भः सुखादिपरिणामः...	५२३
व्यतिरेकस्य लक्षणम् ... ..	५२४
षट्पदार्थवादः ... ..	५२४
( वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः ) अर्थस्य सामान्यविशेषात्मकत्वमयुक्तम् ; प्रतिभासमेवेन सामान्यविशेषयोरत्यन्तमेदात् ... ..	५२४
भिन्नप्रमाणप्राप्त्याश्च सामान्यविशेषावत्यन्तभिन्नौ ... ..	५२५
विरुद्धधर्माध्यासाच्च अवयव-अवयविनावपि अत्यन्तभिन्नौ ... ..	५२५
विभिन्नकर्तृकत्वाच्च अवयवावयविनोरत्यन्तमेदः ... ..	५२५
पूर्वोत्तरकालभावित्वात् विभिन्नशक्तित्वाच्च तयोर्भेदः ... ..	५२५
तन्तुपटयोस्तादात्म्ये पटस्तन्तव इति वचनमेदः, पटस्य भावः पटत्वमिति पट्टी तदित्येतत्पक्षिश्च न स्यात् ... ..	५२५
तादात्म्यमित्यत्र च विग्रहस्य अनुपपत्तिः ... ..	५२५
तन्तुपटादीनां भेदाभेदात्मकत्वे च संशयविरोधवैयर्थिकरण्योभय- दोषसङ्करव्यतिकरानवस्थाऽप्रतिपक्षभावाख्याः दोषाः प्रसज्यन्ते	५२६
अतः परस्परभिन्नाः द्रव्यगुणादयः षट् पदार्थाः ... ..	५२६
नव द्रव्याणि ... ..	५२६
चतुर्विंशतिगुणाः ... ..	५२७
पञ्च कर्माणि ... ..	५२७
सामान्यं द्विविधं ... ..	५२७
( उत्तरपक्षः ) वास्तवानेकधर्मात्मकोऽर्थः विभिन्नार्थक्रियाकारित्वात् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां विभिन्नप्रमाणप्राप्त्येऽपि नात्मनो भेदः ... ..	५२८
अवयवावयवव्याधीनां विभिन्नप्रमाणप्राप्त्याल्लासिद्धम् ... ..	५२९
दृष्टान्तश्च साध्यसाधनविकलो घटादीनामपि सद्रूपेणमेदात् ... ..	५२९
विरुद्धधर्माध्यासोऽपि स्वसाध्येतरापेक्षया यमकल्लगमकलधर्मोपेतन धूमादिना व्यभिचारी ... ..	५३०
अप्राप्तपटावस्थेभ्यः तन्तुभ्यः पटस्य भेदः साध्येत पटावस्थाभा- विभ्यो वा ? ... ..	५३०
'तन्तवः, पटः' इति संज्ञाभेदोऽवस्थाभेदनिबन्धनः ... ..	५३०
'वर्णां पदार्थानामस्तित्वम्' इत्यत्र भेदाभावेऽपि पट्टी भवत्येव ... ..	५३१
अस्तित्वादेः षट्पदार्थैः सह संयोगः समवायो वा ? ... ..	५३१

विषयाः	५७
'अस्तित्वम्' इत्यत्राऽपरास्तित्वाभावात्कथं षष्ठी भावप्रत्ययो वा ?	५३१
'स्वस्य भावः स्वत्वम्' इत्यत्रामेदेऽपि तद्वितोत्पत्तिः भवत्येव ...	५३२
तस्य वस्तुनः आत्मानौ द्रव्यपर्यायौ सत्त्वासत्त्वादिधर्मौ वा तदा- त्मानौ तयोर्भावस्तादात्म्यम् ... ..	५३२
ते तन्तव आत्मा यस्येति विग्रहे पटस्य किमनेकावयवात्मकत्वं स्यात् प्रवितन्तु पटलप्रसक्तौ वा स्यात् ? ... ..	५३२
मेदामेदप्रतीतौ हि न संशयः ... ..	५३२
कथञ्चिदपितयोः सत्त्वासत्त्वयोः विरोधोऽपि नास्ति ... ..	५३२
न च स्वरूपेण भाव एव पररूपेणाभावः; तदपेक्षणीयनिमित्तमेदात् एकलद्विखादिसंख्यावत् ... ..	५३३
विरोधश्चात्र सद्धानवस्थालक्षणः परस्परपरिहारास्थितिलक्षणः वध्य- धातकभावो वा ? ... ..	५३३
विरोधो हि धर्मयोः धर्मधर्मिणोर्वा स्यात् ? ... ..	५३३
विरोधः सर्वथा कथञ्चिद्वा ? ... ..	५३४
भावेभ्यो भिन्नोऽभिन्नो वा विरोधः ? ... ..	५३४
विरोधस्य द्रव्यादौ सम्बन्धे सति विशेषणत्वम् असम्बन्धे वा ?	५३५
सम्बन्धश्चेत्; संयोगेन समवायेन विशेषणभावेन वा ? ... ..	५३५
नापि वैयधिकरण्यदोषः ... ..	५३५
नाप्युभयदोषः सङ्करव्यतिकरौ अनवस्थाऽभावौ वा ... ..	५३६
नित्यैकरूपे स्यात्मानि कर्तृत्वमोक्षलजीवनहिंसकत्वादिव्यपदेशा- भावः तेषामनेकान्ते एव संभवात् ... ..	५३६
सर्वस्य कृण्वलेतरावस्थापेक्षया व्यावृत्त्यनुगमात्मकत्ववत् आत्म- नोऽपि उभयस्वभावता ... ..	५३७
परमाणुरूपनित्यद्रव्यविचारः ... ..	५३७-४०
एकान्तनित्ये परमाणौ क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात् ...	५३७
अणूनां नित्यत्वेन संयोगादीनामपेक्षाऽनुपपत्तेः ... ..	५३८
संयोग एवातिशयश्चेत्, स किं नित्यः अनित्यो वा ? ... ..	५३८
अनित्यश्चेत्तदुत्पत्तौ कोऽतिशयः संयोगः क्रिया वा ? ... ..	५३८
संयोगो हि परमाण्वाद्याभितः तदन्याभितः अनाभितो वा ?	५३८
प्रथमपक्षे तदुत्पत्तौ आश्रयः उत्पद्यते न वा ? ... ..	५३८
संयोगः सर्वात्मना एकदेशेन वा ? ... ..	५३९
परमाणूनां स्कन्धावयविविनाशकारणकत्वेन अकारणवत्त्वासिद्धेः	५३९
यौगाभिमत-अवयवविद्रव्यस्य निरासः ... ..	५४०-५४७
तन्जायवयवेभ्यो भिन्नस्यावयविनः अनुपलम्भादसत्त्वम् ...	५४०

विषयाः

५०

अवयवावयविनोः शास्त्रीयदेशापेक्षया समानदेशत्वं लौकिकदेशा- पेक्षया वा ? ... ..	५४०
कतिपयावयवप्रतिभासे अवयविनः प्रतिभागो निरित्यावयवप्रति- भासे वा ? ... ..	५४०
नापि भूयोऽवयवग्रहणेऽवयविनः प्रतिभासः ... ..	५४०
सर्वान्भागभाव्यवयवग्राहिणा प्रत्यक्षेण परभागस्य तेन वाऽर्वाग्मा- गस्याग्रहणात् न पूर्वापरभागव्यापी अवयवी गृहीतुं शक्यते ... ..	५४०
नापि स्मरणेन प्रत्यभिज्ञानेन वा पूर्वापरवयवभागव्याप्यवयवी गृह्यते ... ..	५४०-४१
न च निरंशावयविनोऽनेकत्रावयवेषु वृत्तिः ... ..	५४२
अवयविनोऽवयवेषु वृत्तिः सर्वात्मना एकदेशेन वा ? ... ..	५४२
एकदेशेन चेत् किमेकावयवगोचीकृतेन स्वभावेनैव अन्यत्र वृत्तिः स्वभावान्तरेण वा ? ... ..	५४२
यद्यवयवी निरंशस्तदा एकदेशाचारणे रागे च सर्वत्राचारणं रागश्च स्यात् ... ..	५४३
संयोगस्याव्याप्यवृत्तित्वं किं सर्वद्रव्याव्यापकत्वम् एकदेशवृत्तित्वं वा ?	५४३
अवयविनिरासे च प्रसङ्गसाधनमेव अभ्युपगम्यते ... ..	५४४
कथमिदवयवरूपस्यावयविनः सिद्धिः ... ..	५४५
एकस्य रूपादिमतोऽवयविनोऽसिद्धिः किं विरुद्धधर्माध्यासेनेकत्र एकत्वानेकत्वयोः तादात्म्यविरोधात् तद्वद्गुणोपायासंगवाद्वा ?	५४६
इदं स्वप्नादिव्यपदेश्यं रूपम् किमेकं प्रत्येकम्, अनेकानन्तपर- माणुमन्त्रयमाणं वा ? ... ..	५४६
जातिमेदेन पृथिव्यादीनान्मोन्यं मेदस्त्वयुक्तः जलादीनां परस्पर- मुपादानोपादेयभावदर्शनात् ... ..	५४७
आकाशद्रव्यविचारः ... ..	५४८
( वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः ) शब्दलिंगादाकाशसिद्धिः ... ..	५४८
शब्दाः क्वचिदाश्रिताः गुणत्वात् ... ..	५४८
शब्दो गुणः प्रतिपिध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वे सति सत्तासम्बन्धित्वात्	५४८
शब्दो द्रव्यं न भवत्येकद्रव्यत्वात् ... ..	५४८
कर्मापि न भवत्यसौ संयोगविभागान्तरणत्वाद्वापादिवदिति ... ..	५४८
यद्यैषामाश्रयः तत्पारिदोष्यादाकाशम् ... ..	५४९
शब्दलिंगाविशेषाद्विशेषलिंगाभावाच्चैरुम् ... ..	५४९
विभुच सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वात् ... ..	५४९
( उत्तरपक्षः ) शब्दानां सामान्येनाश्रितत्वं साध्यते नित्यैकामूर्त- विभुद्रव्याश्रितत्वं वा ? ... ..	५५०



विषयाः	४०
द्रव्यं शब्दः स्पर्शाल्पत्वमहत्त्वपरिमाणसंख्यासंयोगगुणाश्रयत्वात्	५५०
स्वसम्बन्धार्थमिषातद्देतुत्वात् स्पर्शवान् शब्दः ... ..	५५०
अल्पत्वमहत्त्वप्रतीतिविषयत्वात् अल्पत्वमहत्त्वपरिमाणाश्रयः शब्दः	५५०
न मन्दतीव्रतानिवन्धनोऽयम् अल्पत्वमहत्त्वप्रत्ययः ... ..	५५२
एकः शब्द इत्यादिप्रतीत्या संख्याश्रयः शब्दः ... ..	५५२
उपचारेऽपि कारणगता विषयगता वा संख्या शब्दे उपचर्येत ...	५५२
वाष्पादिनाऽभिहन्यमानत्वात् संयोगाश्रयः शब्दः ... ..	५५२
क्रियावत्त्वाच्च द्रव्यं शब्दः ... ..	५५३
निष्क्रियत्वे शब्दस्य श्रोत्रेण ग्रहणं न स्यात् ... ..	५५३
सम्बन्धकल्पने श्रोत्रं वा शब्दोत्पत्तिदेशं गच्छेत् शब्दो वा श्रोत्र- प्रदेशमागच्छेत् ? ... ..	५५३
वीचीतरङ्गन्यायेन हि अपरापरशब्दोत्पत्तिर्न शुक्ला प्रत्यमिक्षाना- च्छन्दस्यैकलनिश्चयात् ... ..	५५३
अस्मदादिप्रत्यक्षत्वे सति विभुद्रव्यविशेषगुणलक्षितोर्न शब्दक्षणि- कलसिद्धिः ... ..	५५५
वीचीतरङ्गन्यायेन प्रथमतो वक्तव्यापारादेकः शब्दः प्रादुर्भवति अनेको वा ? ... ..	५५६
आद्यःशब्दोऽनेकोऽस्तु, तथाप्यसौ स्वदेशे शब्दान्तराण्यारभते देशान्तरे वा ? ... ..	५५८
देशान्तरेऽपि; तद्देशे गत्वा स्वदेशस्थ एव वा ? ... ..	५५९
आकाशगुणत्वे शब्दस्य अस्मदादिप्रत्यक्षता न स्यात् ... ..	५५९
सत्तासम्बन्धिलक्ष्य स्वरूपभूतया सत्तया, अर्थान्तरभूतया वा ? ...	५५९
अनेकद्रव्यः शब्दः अस्मादादिप्रत्यक्षत्वे सत्यपि स्पर्शवत्त्वात् ...	५६०
नाऽकारणगुणपूर्वकः शब्दः अस्मदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वे सति गुण- त्वात् पटरूपादिवत् ... ..	५६१
अयावद्द्रव्यभाविलक्ष्य शब्दस्य विरुद्धम् ... ..	५६१
आकाशस्य समवायिकारणत्वे शब्दे नित्यत्वं विभुत्वञ्च स्यात् ...	५६२
कथं वा शब्दस्य विनाशः ? नाश्रयविनाशाच्चापि विरोधिगुण- प्रादुर्भावात् ... ..	५६२
पौद्गलिकत्वेऽपि शब्दस्य अनुद्भूतरूपादिमत्त्वाच्च चक्षुरादिभि- रुपलम्भः ... ..	५६२
पौद्गलिकः शब्दः अस्मदादिप्रत्यक्षत्वेऽचेतनत्वे च सति क्रियाव- त्त्वात् वाणादिवत् ... ..	५६३
आकाशस्य तु गुणपक्षिखिलद्रव्यावगाहकार्यान्यानुपपत्त्या सिद्धिः	५६३

विषयाः	पृ०
कालद्रव्यवादः ... ..	५६४-६८
( वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः ) परापरादिप्रत्ययलिङ्गात् कालद्रव्यस्य सिद्धिः	५६४
परापरव्यतिकरादपि कालानुमानम् ... ..	५६४
न च परापरादिप्रत्ययस्य आदिप्रत्ययादयो निमित्तम् ... ..	५६४
( उत्तरपक्षः ) काल एकद्रव्यमनेकद्रव्यं वा ? ... ..	५६४
न च व्यवहारकालो मुख्यकालद्रव्यमन्तरेण घटते ... ..	५६४
प्रत्याकाशदेशं विभिन्नो व्यवहारकालः कुरुक्षेत्रलङ्कादिषु दिवसादि- मेदान्यथानुपपत्तेः ... ..	५६५
निरवयवैकद्रव्यत्वे कालस्य अतीतादिव्यवहारः किमतीताद्यर्थक्रिया- सम्बन्धात् स्वतो वा ? ... ..	५६५
कालैकत्वे च यौगपद्यादिव्यवहारमात्रः ... ..	५६५
नाप्युपाधिमेवात् कालमेवः ... ..	५६६
न हि परापरादिप्रत्ययाः निर्निमित्ताः ... ..	५६७
नाप्यादिप्रत्ययादिक्रिया परापरादिप्रत्ययनिमित्तम् ... ..	५६७
नापि कर्तृकर्मणी एव यौगपद्यादिप्रत्ययनिमित्तम् ... ..	५६७
लोकव्यवहाराच्च कालद्रव्यस्य सिद्धिः ... ..	५६८
दिव्यद्रव्यवादः ... ..	५६८-७०
( वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः ) अत इदं पूर्वोक्तादिप्रत्ययेभ्यः दिग्द्रव्य- सिद्धिः ... ..	५६८
दिग्द्रव्यस्यैकत्वेऽपि सवितुर्मेरुप्रदक्षिणमावर्तमानस्य लोकपालगृही- तदिक्प्रदेशैः संयोगाद् प्राच्यादिव्यवहारो घटते ... ..	५६८
( उत्तरपक्षः ) उक्तप्रत्ययानामाकाशहेतुकत्वेन आकाशादिचोऽर्था- न्तरत्वासिद्धेः ... ..	५६९
सवितुर्मेरुं प्रदक्षिणमावर्तमानस्येत्यादिन्यायेन आकाशे एव प्राच्या- दिव्यवहारः कर्तव्यः ... ..	५६९
दिग्द्रव्यवत् देशद्रव्यमपि पृथक् कल्पनीयं स्यात् ... ..	५६९
आत्मद्रव्यविचारः ... ..	५७०-५८६
प्रत्यक्षेण हि आत्मा स्वदेहे एवानुभूयते ... ..	५७०
नात्मा परममहापरिमाणः द्रव्यान्तरासाधारणसामान्यवत्त्वे सति अनेकत्वात् ... ..	५७०
नात्मा व्यापकः दिक्कालाकाशान्यत्वे सति द्रव्यत्वात् घटवत् ... ..	५७०
नात्मा व्यापकः क्रियावत्त्वात् ... ..	५७०
आत्मा अणुपरममहापरिमाणानधिकरणः चेतनत्वात् ... ..	५७१
अणुपरिमाणानधिकरणलमित्यत्र किं नञर्थः पर्युदासः प्रसज्यो वा ?	५७१

विषयाः

पृ०

प्रसज्यपक्षे असौ तुच्छभावः साध्यस्य स्वभावः कार्यं वा ? ...	५७१
नित्यद्रव्यधात्मा कथञ्चित् सर्वथा वा ? ... ..	५७२
देवदत्ताहनाह्नादिकार्यस्य कारणत्वेनाभिमतता देवदत्तात्मगुणाः	
ज्ञानदर्शनादयो धर्माधर्मौ वा ? ... ..	५७२
धर्माधर्मयोरात्मगुणत्वमेव नास्ति ... ..	५७२
न धर्माधर्मौ आत्मगुणौ अचेतनत्वात् ... ..	५७२
प्राप्तादिविवेति दृष्टान्ते न आत्मनः को गुणः जर्मादिः प्रयत्नो वा ?	५७३
एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वादेतोर्नादृष्टस्य स्वाध्यसंयुक्ते	
आभ्रयान्तरे क्रियाजनकत्वसिद्धिः ... ..	५७३
अदृष्टस्य एकद्रव्यत्वं हि एकस्मिन् द्रव्ये संयुक्तत्वात् समवायेन	
वर्तनात् अन्यतो वा स्यात् ? ... ..	५७४
द्वीपान्तरवर्तिमण्यादिद्रव्यक्रियाहेत्वदृष्टं किं देवदत्तशरीरसंयुक्तात्म-	
प्रदेशे वर्तमानं सत् क्रियाकारणम् उत द्वीपान्तरवर्तिद्रव्य-	
संयुक्तात्मप्रदेशे, किं वा सर्वत्र ? ... ..	५७४
तथाऽदृष्टं स्वयमुपसर्पत् अन्येषां मण्यादीनां क्रियाहेतुः, उत द्वीपा-	
न्तरवर्तिद्रव्यसंयुक्तात्मप्रदेशस्थमेव ? ... ..	५७५
अथमे स्वयमेवादृष्टं तं प्रत्युपसर्पति अदृष्टान्तराद्वा ? ... ..	५७५
यथा प्रयत्नस्य वैचित्र्यं तथाऽदृष्टस्याप्यस्तु ... ..	५७५
सर्वत्र चादृष्टस्य वृत्तौ सर्वद्रव्यक्रियाहेतुत्वं स्यात् ... ..	५७६
‘पञ्चादयः अजनादिसचर्मणा समाकृष्टाः’ इत्यपि वक्तुं शक्यत्वात्	५७७
‘देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः’ इत्यत्र किं शरीरं देवदत्तशब्दवाच्यम्	
आत्मा तत्संयोगो वा आत्मसंयोगविशिष्टं शरीरं शरीरसंयोग-	
विशिष्ट आत्मा वा शरीरसंयुक्त आत्मप्रदेशो वा ? ... ..	५७७
आत्मप्रदेशाच्च काल्पनिकाः पारमार्थिका वा ? ... ..	५७८
पारमार्थिकाब्धेदमिच्छाः मित्रा वा ? ... ..	५७८
स्वशरीर एव सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वं निवक्षितम् उत स्वशरीरवत्	
परशरीरे अन्यत्र न ... ..	५७९
मनुष्यजन्मवत् जन्मान्तरेऽप्युपलभ्यमानगुणत्वं किं क्रमेण युगपद्वा ?	५७९
‘सर्कियत्वे आत्मनः मूर्तिमत्त्वं स्यात्’ इत्यत्र कीदृक् मूर्तत्वं विव-	
क्षितं किं रूपादिमत्त्वम् असर्वगतद्रव्यपरिमाणात्मकत्वं वा ?	५७९
आत्मनः अनित्यत्वं न सर्वथा कथञ्चिद्वा आपाद्यते ? ... ..	५७९
आत्मनो निष्क्रियत्वे संसाराभावः ? ... ..	५८०
संसारो हि शरीरस्य मनसः आत्मनो वा स्यात् ? ... ..	५८०

विषयाः

५०

अचेतनं च मनः कथमिष्टे स्वर्गादौ प्रवर्तत—किं स्वभावतः ईश्वरात्

तदात्मनः अदृष्टाद्वा ? ... ..

५८०

आत्मना प्रेरणे अज्ञातं मनस्त्वेन प्रेर्येत ज्ञातं वा ? ... ..

५८०

आकाशस्य च को गुणः सर्वत्रोपलभ्यते शब्दो महत्त्वं वा ? ... ..

५८१

अमूर्तत्वं च मूर्तत्वाभावः, तत्र किं रूपादिमत्त्वं मूर्तत्वम् असर्व-

गतद्रव्यपरिमाणात्मकं वा ? ... ..

५८२

अमूर्तत्वादित्यत्र किं नवर्थः पर्युदासः प्रसज्यो वा ? ... ..

५८२

प्रसज्यपक्षे तद्ब्रह्मणोपाश्रयः प्रत्यक्षमनुमानं वा न युज्यते ... ..

५८२

मनोऽन्यत्वे सति अस्पर्शवद्द्रव्यत्वादिति हेतुः सन्निधेयानैकान्तिकः

५८४

सर्वगतत्वे सर्वपरमाणुभिः संयोगात् सर्वद्रव्यक्रियाहेतुत्वे न जाने

क्रियत्परिमाणं शरीरं स्यात् ... ..

५८४

संयोगानामदृष्टापेक्षत्वे केयमदृष्टापेक्षा किमेकार्थसमवायः उपकारः

सहायकमेजवनं वा ? ... ..

५८४

सावयवत्वेन भिन्नावयवारन्ध्रत्वस्य व्याप्त्यभावात् ... ..

५८५

आत्मनो भिन्नावयवारन्ध्रत्वम् आदौ मध्यावस्थायां वा साध्येत ?

५८५

सावयवशरीरव्यापिलेपि आत्मनः शरीरच्छेदे कथमिच्छेदो भवत्येव

५८६

गुणपदार्थत्वाद्वाः ... ..

५८७-६००

( वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः ) रूपरसगन्धादयश्चतुर्विंशतिर्गुणाः ... ..

५८७

संख्या एकद्रव्या अनेकद्रव्या च ... ..

५८७

महदणुवीर्षह्रस्वमेवेन चतुर्धा परिमाणम् ... ..

५८७

संयोगादीनां लक्षणानि ... ..

५८७

वैगो भावना स्थितस्थापकत्वेति त्रिविधः संस्कारः ... ..

५८८

( उत्तरपक्षः ) नहि रूपं पृथिव्यादित्रयवृत्त्येव बायोरपि रूपवत्त्वात्

५८९

जलनल्योरपि गन्धरसादिमत्ता ... ..

५८९

संख्यापि न संख्येयार्थमिहोपलभ्यते ... ..

५८९

एको गुणः बहुवो गुणाः इत्यत्र यथा संख्यामावेपि एकत्वादिवृद्धिः

स्वरूपमात्रनिबन्धनैव घटते तथैव घटादिष्वपि भविष्यति ... ..

५८९

नाप्युपचारात् गुणेषु संख्याप्रतीतिः, यतः आश्रयगता विषयगता

वा संख्योपचर्येत ? ... ..

५८९

मेदवदस्याः संख्यायाः असमवायिकारणत्वासंभवात् ... ..

५९०

अपेक्षाबुद्धिर्वा घटपटादौ प्रतिनियतसंख्या प्रतीयते ... ..

५९१

संख्याव्यवहारस्य स्वरूपमात्रनिबन्धनत्वे षट्पञ्चविंशतिभिः सार्ध-

शतमित्यादिव्यवहारोऽपि सुषटः स्यात् ... ..

५९१

परिमाणस्यापि षट्पञ्चविंशतिरेकेण प्रतीत्यभावात् ... ..

५९२

विषयाः

४०

असत्यपि महत्त्वादौ प्रासादमालादिषु महती प्रासादमालेयादि-

प्रत्ययप्रतीतेः ... ..

५९२

न हि माला द्रव्यस्वभावा आतिस्वभावा वा युज्यते ... ..

५९२

आपेक्षिकत्वात् परिमाणस्य न गुणरूपता ... ..

५९३

अतो न हस्तादि परिमाणं संस्थानविशेषाद्विचरम् ... ..

५९३

पृथक्त्वमपि न भिन्नतयोत्पन्नपदार्थस्वरूपादपरम् ... ..

५९३

रूपादिगुणेष्वपि च पृथगिति प्रत्ययः प्रतीयते ... ..

५९३

पृथग्भूतेभ्योऽर्थेभ्यः पृथग्भूतता भिन्ना अभिन्ना वा क्रियेत ? ... ..

५९३

संयोगोऽपि निरन्तरोत्पन्नपदार्थद्रव्यव्यतिरेकेण नापरः ... ..

५९४

संयुक्तौ प्रासादौ इत्यत्र संयोगगुणभावोऽपि संयुक्तबुद्धिः भवत्येव ... ..

५९४

विभागस्य च संयोगाभावरूपत्वाच्च गुणरूपता ... ..

५९५

संयोगनिवृत्तिश्च क्रियात् एव स्यात् ... ..

५९५

विभागजविभागो विभागस्वरूपाभापरः, स च क्रियात् एव ... ..

५९५

परत्वापरत्वेऽपि नार्थान्तरम् ... ..

५९६

रूपादिषु तदभावेऽपि परापरप्रत्ययोत्पत्तेः ... ..

५९६

अतः निरकृष्टसन्निकृष्टावेव परत्वापरत्वे नापरे ... ..

५९६

एवं च मध्यममपि गुणोऽभ्युपगन्तव्यः ... ..

५९७

सुखदुःखादीनामनुद्विक्वरूपत्वे नात्मगुणता ... ..

५९७

शुक्त्वादयस्तु पुद्गलद्रव्यस्य गुणाः ... ..

५९७

नहि शुक्लमतीन्द्रियम् ... ..

५९७

द्रवत्वं हि अप्सु एव पृथिव्यनलमोस्तु तत्संयुक्तसमवायवशा-

त्प्रतीतिः ... ..

५९७

ज्ञेहोऽम्भस्येवेत्युक्तम् ; घृतादावपि पार्थिवे ज्ञेहप्रतीतेः ... ..

५९८

ज्ञेहस्य गुणत्वे क्वाठिन्यामार्दवादेरपि गुणरूपता स्यात् ... ..

५९८

न हि क्वाठिन्यादयः संयोगविशेषा अपि तु स्पर्शविशेषाः ... ..

५९८

वेगस्य आत्मन्यपि संभवात् ; तस्य सक्रियत्वात् ... ..

५९८

न च क्रियातोऽर्थान्तरं वेगः ... ..

५९९

न च संस्कारोऽर्थात् विभिन्नः ... ..

५९९

भावना तु धारणारूपत्वेन स्त्रीक्रियत एव ... ..

५९९

स्थितस्थापकश्च किं स्वयमस्थिरस्वभावं भावं स्थापयति स्थिर-

स्वभावं वा ... ..

५९९

धर्माधर्मादयस्तु नात्मगुणाः ... ..

६००

कर्मपदार्थवादः ... ..

६००-१

( वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः ) उत्कृष्टेष्वादीनि पञ्च कर्माणि ... ..

६००

विषयाः	४०
उत्क्षेपणादीनि चत्वारि नियतदिग्देशसंयोगविभागकारणानि ...	६००
गमनं तु अनियतदिग्देशसंयोगविभागकारणम् ... ..	६००
( उत्तरपक्षः ) देशाद्देशान्तरप्राप्तिहेतुः अर्थस्य परिणाम एव कर्म	६००
अमणरेचनस्यन्दनादीनामपि पृथक् कर्मलक्षणप्रसङ्गः ... ..	६००
न चैकरूपस्यार्थस्य क्रियासमावेशः ... ..	६००
नापि क्षणिकस्य क्रिया घटते ... ..	६००
नापि अर्थादर्थान्तरं कर्म ... ..	६०१
विशेषपदार्थविचारः ... ..	६०१-६०४
( वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः ) नित्यद्रव्यवृत्तयः अस्या विशेषाः ...	६०१
जगद्विनाशारम्भकोटिभूतेषु परमाणुषु मुक्तात्मसु मुक्तमनःसु	
चान्तेषु भवा अस्याः ... ..	६०२
व्यावृत्तिबुद्धिविषयत्वं विशेषाणां सद्भावसाधकं प्रमाणम् ...	६०२
( उत्तरपक्षः ) अपवादीनां स्वस्वभावव्यवस्थित स्वरूपं परस्पर-	
सङ्कीर्णस्वरूपं स्यात् सङ्कीर्णं वा ... ..	६०२
यदि विशेषपदार्थमन्तरेण न व्यावृत्तबुद्धिः तदा विशेषपदार्थेषु	
परस्परं कथं व्यावृत्तप्रत्ययः ? ... ..	६०३
विशेषेषु उपचारेण प्रत्ययोपगमे कोऽयमुपचारः ? असतो विषय-	
त्वेनाक्षेपश्चेत्, स किं संशयत्वेनाक्षिप्यते विपर्ययत्वेन वा ?	६०३
अनुमानबाधितो हि विशेषसद्भावः ... ..	६०४
समवायपदार्थविचारः ... ..	६०४-६०२
( वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः ) अयुतसिद्धानामाधारार्थधारभूतानामित्यादि	
समवायस्य लक्षणम् ... ..	६०४
समवायलक्षणस्य पदसार्थक्यम् ... ..	६०४
प्रत्यक्षत एव समवायः प्रतीयते ... ..	६०५
'अबाध्यमानेहप्रत्ययत्वात्' इत्यनुमानेनापि समवायः प्रतीयते ...	६०५
अहि इह तन्तुषु पट इत्यादीहेतुं प्रत्ययः तन्तुपटहेतुकः, नापि	
वासनाहेतुकः ... ..	६०६
इदमिहेति ज्ञानं हि समवायविशिष्टतन्तुपटालम्बनम् ... ..	६०६
इहेतिप्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकः समवायः ... ..	६०७
समवायस्यैकत्वेऽपि आधारशक्तिवशात् द्रव्यमेव द्रव्यलस्याभि- न्नकम् न गुणादयः ... ..	६०७
समवायीनि द्रव्याणीति प्रत्ययः विशेषणपूर्वकः विशेष्यप्रत्ययत्वादि- त्यनुमानात् समवायसिद्धिः ... ..	६०७

विषयाः

पृ०

नानिष्पन्नयोः निष्पन्नयोर्वा समवायः; स्वकारणसत्तासम्बन्धस्यैव	
निष्पत्तिरूपत्वात् ... ..	६०८
( उत्तरपक्षः ) अयुतसिद्धत्वं हि शास्त्रीयम् लौकिकं वा ? ...	६०९
पृथगाश्रयवृत्तित्वं युतसिद्धिलक्षणम् आकाशादावव्याप्तम् ...	६०९
नित्यानां पृथग्गतिमत्त्वमपि आकाशादिषु न संघटते ... ..	६०९
एकद्रव्याभितरूपादीनां पृथगाश्रयद्विरेतरभावात् अयुतसिद्धत्वं स्यात्	६०९
युतसिद्धिलक्षणे द्विरेतराश्रयश्च ... ..	६०९
समवायस्यासाधारणं स्वरूपं किम् अयुतसिद्धसम्बन्धत्वं सम्बन्ध-	
मात्रं वा ? ... ..	६१०
सम्बन्धरूपतया चासौ सम्बन्धबुद्धौ प्रतिभासेत, इहेति प्रत्यये वा,	
समवाय इत्यनुभवे वा ? ... ..	६१०
सम्बन्धश्च किं सम्बन्धलजातियुक्तः स्यात् अनेकोपादानजनितो	
वा अनेकाधितो वा सम्बन्धबुद्धधृत्पादको वा सम्बन्धबुद्धि-	
विषयो वा ? ... ..	६१०
सर्वसमवाध्यनुगतैकस्वभावः समवायः सम्बन्धबुद्धौ प्रतिभासेत	
तद्व्यावृत्तस्वभावो वा ... ..	६११
अबाध्यमानेहप्रत्ययत्वं च हेतुराश्रयासिद्धः ... ..	६११
'पटे तन्तवः वृक्षे शाखाः' इत्यादि प्रतीयते ननु तन्तुषु पटः	
इत्यादि ... ..	६११
'इह प्रागभावेऽनादित्वम्' इत्यादीहेदम्प्रत्ययस्य सम्बन्धपूर्व-	
कलाभावात् ... ..	६१२
अनुमानात् सम्बन्धमात्रं साध्यते तद्विशेषो वा ? ... ..	६१२
सम्बन्धविशेषव्येतुः संयोगः समवायो वा ? ... ..	६१२
परिशेषात्समवायसिद्धौ परिशेषः किं प्रमाणमप्रमाणं वा ? ...	६१३
प्रमाणं चेत् किं प्रत्यक्षमनुमानं वा ? ... ..	६१३
इहेदमिति प्रत्ययो हि तादात्म्यहेतुकः ... ..	६१३
संयोगस्वरूपखण्डनम् ... ..	६१३
विशिष्टपरिणामापेक्षया वीजादीनाम् अङ्कुरोत्पादकत्वमतो न संयो-	
गस्यैवापेक्षा ... ..	६१४
यदि च संयोगमात्रापेक्षा एव वीजादयः अङ्कुरादिकमुत्पादयन्ति	
तदा प्रथमोपनिषात एव उत्पादयन्तु ... ..	६१४
न ब्रह्माभ्यामर्थान्तरभूतः संयोगो विशेषणतया प्रतिभासते ...	६१५
चैत्रकुण्डलयोः विशिष्टावस्थाप्राप्तिः हि सर्वदा न भवति अतः	
कुण्डलीति बुद्धिरपि न सर्वदिक्की ... ..	६१५

षयाः

पृ०

विशेषविरुद्धानुमानं च किमनुमानाभासोच्छेदकत्वाच्च वक्तव्यम्	
सम्यगनुमानोच्छेदकत्वाद्वा ? ... ..	६१५
अनेकः समवायः विभिन्नदेशकालाकारार्थेषु सम्बन्धबुद्धिहेतुत्वात्	६१६
नाना समवायः अयुतसिद्धावयविद्व्याश्रितत्वात् सख्यावत् ...	६१६
अनाश्रितत्वेऽपि समवायस्य अनेकत्वमेव ... ..	६१६
हात्मनि ज्ञानमिह घटे रूपादय इति विशेषप्रत्ययस्य सद्भावाद-	
नेकः समवायः ... ..	६१७
सत्तावदिति दृष्टान्तोऽपि साध्यसाधनविकल. ... ..	६१७
समवाय इति प्रत्ययेनानैकान्तिकोऽयं हेतुः ? स हि विशेष्यप्रत्ययो	
न च विशेषणमपेक्षते ... ..	६१८
किं येन सत्ता विशेष्यज्ञानमुत्पद्यते तद्विशेषणम्, किं वा यस्यानु-	
रागः प्रतिभासते तदिति ? ... ..	६१८
स्वकारणसत्तासम्बन्धस्य आत्मत्वभरूपत्वे किं सत्ता सत्तासमवायः	
असतां वा ? ... ..	६१९
सत्तासमवायात् पदार्थानां सत्त्वे तयोः कुतः सत्त्वम् ? ... ..	६१९
समवायस्य स्वरूपासिद्धौ स्वतःसम्बन्धत्वमपि न तत्र सिद्धम् ...	६२०
परतत्वेत् किं संयोगात्, समवायान्तरात्, विशेषणभावाददृष्टाद्वा ?	६२०
विशेषणभावोऽपि समवायसमवायिभ्योऽत्यन्तं भिन्नः कुतस्तत्रैव	
नियाम्येत ? ... ..	६२१
विशेषणभावः पदपदार्थेभ्यो भिन्नः अभिन्नो वा ? ... ..	६२१
भिन्नत्वेत् किं भावरूपः अभावरूपो वा ? ... ..	६२१
अदृष्टश्च न सम्बन्धरूपः द्विष्टत्वाभावात् ... ..	६२१
न चादृष्टोऽपि असम्बद्धः सम्बन्धिप्रतिनियमहेतुः ... ..	६२१
अयं समवायः समवायिनोः परिकल्प्यते असमवायिनोर्वा ? ...	६२२
समवायिनोश्चेत्, तयोः समवायित्वं समवायात् स्वतो वा ? ...	६२२
अभिन्नं तेनानयोः समवायित्वं विधीयते भिन्नं वा ? ... ..	६२२
निष्क्रियेषु हि आवेयत्वम् अल्पपरिमाणत्वात् तत्कार्यत्वात् तथा-	
प्रतिभासाद्वा ? ... ..	६२२
नैयायिकाभिमतषोडशपदार्थानां निरासः ... ..	६२३-२४
विपर्ययानव्यवसाययोरपि षोडशपदार्थातिरिक्तत्वव्यवस्थितेः न	
पदार्थानां षोडशसंख्यानियमः ... ..	६२३
धर्मोधर्मद्रव्ययोश्च पृथक्सिद्धेः न षोडशलप्रतिनियमः ... ..	६२३
सकलजीवपुद्गलगतस्थितयः साधारणवाह्यनिमित्तापेक्षाः शुणपद्मा-	
विगतिस्थितिलादिति हेतोः धर्माधर्मद्रव्ययोः सिद्धिः ... ..	६२३



विषयाः

पृ०

न गतिस्थितिपरिणामिन एवार्थाः परस्परं तद्वैतवः, अन्योन्याश्रय-

प्रसंगात् ... .. ६२३

नापि पृथिवी नमो वा गतिस्थितिहेतुः ... .. ६२४

नाप्यदृष्टनिमित्तता गतिस्थित्योः ... .. ६२४

फलस्वरूपविचारः ... .. ६२४-२७

अज्ञाननिवृत्त्यादयः प्रमाणस्य फलम् ... .. ६२४

अज्ञाननिवृत्तिः प्रमाणादभिज्ञं फलम् ... .. ६२४

अज्ञाननिवृत्ति-ज्ञानयोः सामर्थ्यसिद्धत्वमपि भेदे सत्येवोपलब्धम् ६२५

अभेदेऽपि कार्यकारणभावस्याविरोधात् ... .. ६२५

ज्ञानोपादानोपेक्षाश्च भिन्नं फलम् अज्ञाननिवृत्तिलक्षणफलेन व्यव-  
धानात् ... .. ६२५आत्मनः प्रमाणफलरूपेण परिणामेऽपि लक्षणभेदात् प्रमाणफल-  
भावाऽविरोधः ... .. ६२६

साधनभेदाच्च प्रमाणफलयोर्भेदः ... .. ६२६

सर्वथाऽभेदे हि प्रमाणफलव्यवस्थाया अभावः स्यात् ... .. ६२७

नापि व्यावृत्तिभेदादेकत्रापि प्रमाणफलभावकल्पना युक्ता ... ६२७

इति चतुर्थः परिच्छेदः ।

तदभासस्य स्वरूपम् ... .. ६२९

अखण्डविदितादयः प्रमाणाभासाः ... .. ६२९

प्रत्यक्षाभासस्य स्वरूपम् ... .. ६२९

परोक्षाभासस्य स्वरूपम् ... .. ६३०

स्मरण-प्रत्यभिज्ञानाभासयोः लक्षणम् ... .. ६३०

अनिष्टादयः पक्षाभासाः ... .. ६६०

सिद्धः पक्षाभासः ... .. ६३१

प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनविकल्पात् पंचधा  
बाधितः पक्षाभासः ... .. ६३१असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्करभेदेन चतुर्धा  
हेत्वाभासः ... .. ६३२

द्विविधोऽसिद्धहेत्वाभासः ... .. ६३२

विशेष्यासिद्धादयोऽष्ट असिद्धहेत्वाभासाः अत्रैवान्तर्भवन्ति ... ६३३

व्यधिकरणस्यापि कृतिकोदयादेः सदेतुलदर्शनाच्च व्यधिकरणासिद्धो  
हेत्वाभासः ... .. ६३३

भागासिद्धोऽपि अविनाभावसङ्गावाद् गमक एव ... .. ६३४

विषयाः	पृ०
सन्दिग्धविशेषासिद्धादयः अत्रैवान्तर्भूताः ... ..	६३५
एतेऽसिद्धहेत्वाभासाः केचिदन्यतरासिद्धाः केचिच्च उभयासिद्धाः	६३५
अन्यतरासिद्धहेत्वाभासस्य समर्थनम् ... ..	६३५
विरुद्धहेत्वाभासस्य लक्षणम् ... ..	६३५
सति सपक्षे चत्वारो विरुद्धाः असति सपक्षे च चत्वार इति अष्टौ विरुद्धभेदाः अत्रैवान्तर्भवन्ति ... ..	६३६
अनैकान्तिकहेत्वाभासस्य लक्षणम् ... ..	६३७
पक्षसपक्षान्यवृत्तित्वं व्यभिचारः ... ..	६३७
निश्चितवृत्ति-सन्दिग्धवृत्तिभेदेन द्विधा अनैकान्तिकः ... ..	६३७
पक्षत्रयव्यापकादयोऽष्टौ अनैकान्तिकभेदाः अत्रैवान्तर्भावनीयाः	६३८
अकिञ्चित्करहेत्वाभासस्य लक्षणम् ... ..	६३९
अकिञ्चित्करो लक्षणकाल एव दोषो न तु प्रयोगकाले ... ..	६३९
दृष्टान्ताभासनिरूपणम् ... ..	६४०-४१
अन्वयदृष्टान्ताभासविवेचनम् ... ..	६४०
व्यतिरेकदृष्टान्ताभासनिरूपणम् ... ..	६४०
बालप्रयोगाभासनिरूपणम् ... ..	६४१
आगमाभासविचारः ... ..	६४२
संख्याभासनिरूपणम् ... ..	६४२-४३
विषयाभासविवेचनम् ... ..	६४३-४४
फलाभासनिरूपणम् ... ..	६४४-४५
जयपराजयव्यवस्था ... ..	६४५-७४
बादो विजिगीषुविषयत्वेन चतुराजः ... ..	६४५
बादो नाविजिगीषुविषयः निग्रहस्थानवत्त्वाजल्पवितण्डावत् ... ..	६४६
बादस्तत्त्वाप्यवसायसंरक्षणार्थः प्रमाणतर्कसाधनोपलम्भत्वे सिद्धा- न्ताविरुद्धत्वे पक्षावयवोपपन्नत्वे च सति पक्ष-प्रतिपक्षपरिग्रह- वत्त्वात् ... ..	६४७
पक्षप्रतिपक्षौ न वस्तुधर्मौ एकाधिकरणौ विरुद्धावेककाल्यवनवसितौ	६४७
बादश्चतुराजः क्षामिप्रेतव्यवस्थापनफलत्वात् बादलाद्वा लोकप्रसिद्ध- वादवत् ... ..	६४८
समापतिप्राप्तिकवादिप्रतिवादिभेदेन चत्वार्यङ्गानि ... ..	६४९
छलादीनामसदुत्तरत्वाच्च तैः जय-पराजयव्यवस्था ... ..	६४९
छललक्षणम् ... ..	६४९
नहि वाक्छलमात्रेण जयः ... ..	६४९
नापि सामान्यच्छलाद् जयः ... ..	६५०
नाप्युपचारच्छलाद् जयः ... ..	६५१

विषयाः

पृ०

नापि जातिप्रयोगाज्जयः ... ..	६५१
( नैयायिकस्य पूर्वपक्षः ) जातेः सामान्यलक्षणम् ... ..	६५१
भाष्यकारमतेन साधर्म्यसमायाः स्वरूपम् ... ..	६५२
वार्तिककारमतेन साधर्म्यसमायाः लक्षणम् ... ..	६५२
वैधर्म्यसमायाः लक्षणम् ... ..	६५२
उत्कर्षापकर्षसमयोः लक्षणम् ... ..	६५३
वर्ण्यावर्ण्यसमयोः लक्षणम् ... ..	६५३
विकल्पसमायाः लक्षणम् ... ..	६५३
साध्यसमायाः लक्षणम् ... ..	६५४
प्राप्त्यप्राप्तिसमयोः लक्षणम् ... ..	६५४
प्रसङ्गसमायाः लक्षणम् ... ..	६५४
प्रतिद्वन्द्वान्तसमायाः लक्षणम् ... ..	६५४
अनुत्पत्तिसमायाः लक्षणम् ... ..	६५५
संशयसमायाः लक्षणम् ... ..	६५६
प्रकरणसमायाः लक्षणम् ... ..	६५६
अद्भुतसमायाः लक्षणम् ... ..	६५६
अर्थापत्तिसमायाः लक्षणम् ... ..	६५७
अविशेषसमायाः लक्षणम् ... ..	६५७
उपपत्तिसमायाः लक्षणम् ... ..	६५७
उपलब्धिसमायाः लक्षणम् ... ..	६५७
अनुपलब्धिसमायाः लक्षणम् ... ..	६५८
अनित्यसमायाः लक्षणम् ... ..	६५८
नित्यसमायाः लक्षणम् ... ..	६५९
कार्यसमायाः लक्षणम् ... ..	६५९
( उत्तरपक्षः ) असाधौ साधने प्रयुक्ते जातीनां प्रयोगः साधनदोष- स्थानभिन्नतया वा, तद्दोषप्रदर्शनार्थं प्रसङ्गव्याजेन वा ? ... ..	६५९
जातिवाची च साधनाभासमेतदिति प्रतिपद्यते वा न वा ? ... ..	६५९
कथम्भूतेन उत्तराप्रतिपत्त्युद्भावनेनासौ विजयते—किं खोपन्यस्त- जालपरिज्ञानोद्भावनरूपेण, परोद्भावितजालान्तरनिराकरणलक्ष- णेन, उत्तराप्रतिपत्तिमानोद्भावनाकारेण वा ? ... ..	६६१
नापि निग्रहस्थानैः जयपराजयव्यवस्था ... ..	६६३
निग्रहस्थानस्य लक्षणम् ... ..	६६३
प्रतिज्ञादानेर्लक्षणम् ... ..	६६३
वार्तिककारमतेन प्रतिज्ञादानेर्लक्षणम् ... ..	६६४
प्रतिज्ञान्तरस्य लक्षणम् ... ..	६६४

विषयाः	पृ०
प्रतिज्ञाविरोधस्य लक्षणम् ...	६६५
प्रतिज्ञासम्यासस्य लक्षणम् ...	६६५
हेत्वन्तरस्य लक्षणम् ...	६६५
अर्थान्तरस्य लक्षणम् ...	६६५
निरर्थकस्य लक्षणम् ...	६६६
अविज्ञातार्थस्य लक्षणम् ...	६६६
अपार्थक्यस्य लक्षणम् ...	६६७
अप्राप्तकालस्य लक्षणम् ...	६६७
संस्कृतप्राकृतशब्दविचारः ...	६६७
पुनरुक्तस्य लक्षणम् ...	६६८
अननुसाधनस्य लक्षणम् ...	६६९
अज्ञानस्य लक्षणम् ...	६६९
अप्रतिभायाः लक्षणम् ...	६६९
पर्यनुयोज्योपेक्षणस्य स्वरूपम् ...	६६९
निरनुयोज्यानुयोगस्य लक्षणम् ...	६६९
विक्षेपस्य लक्षणम् ...	६७०
मतानुज्ञाया लक्षणम् ...	६७०
न्यूनस्य लक्षणम् ...	६७०
अधिकस्य लक्षणम् ...	६७०
अपसिद्धान्तस्य लक्षणम् ...	६७१
हेत्वाभासस्वरूपम् ...	६७१
असाधनाङ्गवचनादेः दौष्टोक्तनिग्रहस्थानस्य निरा- करणम् ...	६७१-७४
स्वपक्षं साधयन् वादिप्रतिवादिनोरन्यतरा असाधनाङ्गवचनाद्- दोषोद्भावनाद्वा परं निरुक्ताति असाधयन् वा ? ...	६७१
प्रतिज्ञावचनस्य असाधनाङ्गलनिराकरणम् ...	६७२
'साधन्यवचनेऽपि वैधर्म्यवचनमसाधनाङ्गत्वात् निग्रहस्थानम्' इति स्वपक्षं साधयतो वादिनः स्यात् असाधयतो वा ? ...	६७२
अतः स्वपक्षसिद्धिसिद्धिनिवन्धनाविव जय-पराजयौ ...	६७३
न स्वपक्षज्ञानाज्ञाननिवन्धनौ जय-पराजयौ वक्तुं शक्यौ ...	६७३
ज्ञानाज्ञानमात्रनिवन्धनायां जयपराजयव्यवस्थाया पक्षप्रतिपक्षपरि- ग्रहवैयर्थ्यं स्यात् ...	६७४
अदोषोद्भावनस्य निराकरणम् ...	६७४

इति पञ्चमः परिच्छेदः ।

विषयाः

पृ

नयनयाभासयोः लक्षणम् ... ..	६७
नैगमस्य लक्षणम् ... ..	६८
नैगमाभासस्य लक्षणम् ... ..	६७
संग्रहस्य लक्षणम् ... ..	६७
संग्रहाभासस्य स्वरूपम् ... ..	६७
व्यवहारस्य लक्षणम् ... ..	६७
व्यवहाराभासस्य लक्षणम् ... ..	६७
क्रतुसूत्रनयस्य लक्षणम् ... ..	६७
क्रतुसूत्राभासस्य स्वरूपम् ... ..	६७
शब्दनयस्य लक्षणम् ... ..	६७
शब्दनयाभासस्य स्वरूपम् ... ..	६७
समभिरूढनयस्य लक्षणम् ... ..	६८
समभिरूढनयाभासस्य लक्षणम् ... ..	६८
एवम्भूतनयस्य स्वरूपम् ... ..	६८
एवम्भूताभासस्य लक्षणम् ... ..	६८
चलारोऽर्थनयाः त्रयः शब्दनयाः ... ..	६८
नयेषु पूर्वः पूर्वो बहुविषयः कारणभूतश्च परः परोऽल्पविषयः	
कार्यभूतश्च ... ..	६८
यत्रोत्तरोत्तरो नयः तत्र पूर्वः पूर्वो भवत्येव ... ..	६८
नयसप्तभङ्गीप्रवृत्तिप्रकारः ... ..	६८
प्रमाण नयसप्तभङ्गयोः सकलादेशनिकलादेशकृतो विशेषः ... ..	६८
सप्तैव भङ्गाः संभवन्ति प्रभावीनां सप्तविधत्वात् ... ..	६८
न च वक्तव्यत्वात् घर्मान्तरता ... ..	६८
पञ्चवाक्यविचारः ... ..	६८-६९
पत्रस्य लक्षणम् ... ..	६८
स्वान्तभासितादि नैनोक्तम् अवयवद्वयात्मकं पत्रम् ... ..	६९
चित्राद्यदन्तराणीयमित्यादि पञ्चावयवात्मकं नैनपत्रम् ... ..	६८
सैन्यलङ्काय इत्यादि यौगोक्तपत्रस्य विवरणम् ... ..	६८-६९
यदा पत्रे विवादः स्यात्-तदैवं प्रष्टव्यः यो भवन्मनसि वर्तते स	
पत्रस्यार्थः, उत यो वाक्यात्प्रतीयते, अथवा यो भवन्मनसि	
वर्तते वाक्याच्च प्रतीयते ? ... ..	६८
तृतीयपक्षे केनेदमवगम्यताम् वादिना प्रतिवादिना प्राश्निकैर्वा ?	६९
इदं पत्रं तद्वातु-स्वपक्षसाधनवचनम् परपक्षदूषणवचनमुभय-	
वचनमनुभयवचनं वा ? ... ..	६९
ग्रन्थकृतोऽन्तिमं वक्तव्यम् ... ..	६९
ग्रन्थकृतप्रशस्तिः ... ..	६९

इति षष्ठः परिच्छेदः ।



मेमाणिक्यनन्दाचार्यविरचित-परीक्षामुखसूत्रस्य व्याख्यारूपः

श्रीप्रभाचन्द्राचार्यविरचितः

## प्रमेयकमलमार्त्तण्डः ।

श्रीस्याद्वादविधायै नमः ।

सिद्धेर्धामं महारिमोहहृननं कीर्त्तः परं मन्दिरम्,  
मिथ्यात्वप्रतिपक्षमक्षयसुखं संशीतिविध्वंसनम् ।  
सर्वप्राणिहितं प्रमेन्दुमयैवं सिद्धं प्रमालक्षणम्,  
सन्तश्चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्द्धमानं जिनम् ॥ १ ॥ ५  
शास्त्रं करोमि वरमल्पतरावबोधी  
माणिक्यनन्दिपदपङ्कजसत्प्रसादीत् ।  
अर्थं न किं स्फुटयति प्रकृतं लघीर्या-  
ल्लोकस्य मानुकरविस्फुरिताद्गवाक्षः ॥ २ ॥  
ये नूनं प्रथयन्ति नोऽसमर्था मोहादवज्ञां जनाः,  
ते तिष्ठन्तु न तान्प्रति प्रयतिर्तैः प्रारभ्यते प्रक्रमः ।  
सन्तः सन्ति गुणानुरागमनसो ये धीधनास्तान्प्रति,  
५, प्रायैः शार्ङ्गैरुतो यदैवे हृदये बृत्तं तदाख्यायते ॥ ३ ॥

१०

१ मय्यसिद्धिं प्रति कारणं भवति भगवानत आश्रयत्वेनाभिधीयते । २ वाण्याः ।  
आश्रयम् । ४ शास्त्रादौ देवशास्त्रपुराणौ नमस्करीया अत एव देवनमस्कृतौ  
वर्द्धमानं विशेष्यं कृत्वा हेतुहेतुमद्भावतयाऽन्यथानुसारेणान्यानि विशेषणानि योजयेत्,  
५ शास्त्रनमस्कृतौ प्रमालक्षणं विशेष्यं कृत्वा, गुरुरनमस्कृतौ जिनं विशेष्यं कृत्वा,  
न्यानि विशेषणानि योजयेत् । ५ इष्टदेवतामभिष्टुत शार्ङ्गं करोमीति प्रतिशब्दं कुर्वन्ति  
त्यः । ६ अपि । ७ माहात्म्यात् । ८ दृष्टिगोचर । ९ पश्यतः ( इति शेषः ) ।  
१० यद्यप्ययं प्रक्रमो मय्यभिः कियते, तथापि भवत्कृते प्रक्रमे केचन जना भवन्ना विद-  
ज्ञाः सन्तीत्याह । ११ वक्तव्यगुणाः पुरुषाः । १२ औणादिकोऽयमिहारात्तत्त्वतस्तत्त्व-  
ज्ञादित्यर्थः । १३ यद्यप्ययं प्रक्रमः प्रारभ्यते-तथापि स्वरूपविरचितत्वात्सत्तामश्रा-  
मीयत्वं न स्यादित्याह प्राय इति बाहुल्येनेत्यर्थः । १४ माणिक्यनन्दिमद्वारकस्य ।  
। परीक्षामुखालङ्कारे । १५ प्रवृत्तं ।

त्यंजति न विद्वानः कार्यमुद्दिश्य धीमान्

खलजनपरिवृत्तेः स्पर्धते किन्तु तेन ।

किमु न वितनुतेऽर्कः पञ्चबोधं प्रबुद्ध-

स्तदपहृतिविधायी शीतरश्मिर्यदीह ॥ ४ ॥

५ अजडमदोषं दृष्ट्वा मित्रं सुश्रीकमुद्यतमतुष्येत् ।

विपरीतवर्धुसङ्कतिमुद्भिरिति हि कुचर्ल्यं किं न ॥ ५ ॥

श्रीमदकलङ्कार्योऽव्युत्पन्नप्रक्षैरवगन्तुं न शक्यत इति तदव्यु-  
त्पादनाय करतलामलंकवत् तदर्थमुद्धृत्य प्रतिपादयितुकामस्तै-  
त्परिज्ञानानुग्रहेच्छाप्रेरितस्तदर्थप्रतिपादनमवर्णं प्रकरणमिदमा-  
१० चार्यः प्राह । तत्र प्रकरणस्य सम्बन्धाभिधेयरहितत्वाशङ्कापनोदायं  
तदभिधेयस्य चाऽप्रयोजनवत्त्वपरिहारानभिमतप्रयोजनवत्त्वव्यु-  
दासाशक्यानुष्ठानत्वनिराकरणदक्षमधुण्णसकलशास्त्रार्थसङ्ग्रह-  
समर्थं 'प्रमाण' इत्यादिलोकमाह—

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासादिपर्ययः ।

१५ इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्यं लघीयसः ॥ १ ॥

सम्बन्धाभिधेयशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनवन्ति हि शास्त्राणि प्रेक्षा  
वद्भिराद्रियन्ते नेतराणि-सम्बन्धाभिधेयरहितस्योन्मत्तादिवाक्य  
वत् ; तद्वतोऽप्यप्रयोजनवतः कौकदन्तपरीक्षावत् ; अनभिमत  
प्रयोजनवतो वा मातृविवाहोपदेशवत् ; अशक्यानुष्ठानस्य च  
२० सर्वैश्वरहरतक्षकचूडारत्नालङ्कारोपदेशवत् तैरनादरणीयत्वात् ।  
तदुक्तम्—

१ यद्यपि सतः प्रक्रमः प्रारभ्यते-तथापि बुद्धा दुष्टत्वं न मुञ्चेयुस्तत्तस्याय प्रक्रमो  
नारम्भस्य इत्युक्ते लगतीत्याह । २ उद्देशं प्राप्य । ३ न्यापारात् । ४ मित्रं स्व  
पक्षे प्रभावन्द्वय । ५ बुद्धिमगच्छत् । ६ चन्द्र- । ७ स्वयति । ८ कुसुमं, ९  
मूमण्डलं ( मिथ्यादृष्टिसमूहस्य ) । १० मणिवत् । ११ संगृह्य । १२ तयोरकलङ्का-  
व्युत्पन्नयोः यौ परिज्ञानानुग्रहो तयोर्वा इच्छा तवाप्रेरितः । १३ दक्षस्य । १४ "शास्त्रं  
कदेशसम्बन्धं शास्त्रकार्यान्तरसितम् । आहुः प्रकरणं नाम शास्त्रमेदं विपक्षितम् ।"  
शास्त्रकदेशेलादिनिषेधणात् साकल्येन प्रतिपादकमाप्यादेः प्रकरणत्वं परास्त्वम् । शास्त्र-  
कार्यान्तरं तु वैशेष्य लघुत्वं च । तन्मोपोद्घातप्रतिपादनमेदाद्विविधम् । तत्र प्रति  
बुद्धौ संगृह्य ( आलोच्य ) प्रागेव तदर्थमर्थान्तरवर्णनमुपोद्घातः । प्रतिपाद्यमर्थं वक्तुं  
परिणाय पश्चात्तत्सिद्धये तदेतुवर्णनं प्रतिपादनम् । सकलप्रतिपादकशास्त्रकार्याद ( प्रा-  
शास्त्रकार्याद ) अन्यत्कार्यं कार्यान्तरम् । १५ शास्त्रावतारे सति । १६ प्रत्युत्तरार्थं  
अनुरोधेनोत्तरोत्तरस्य विधानं सम्बन्धः । १७ पूर्वोक्तलक्षणः सम्बन्धः । १८ यस्या-  
१८ "क्राकस्य कति वा दन्ता मेवस्याण्डं कियत्पलम् । गर्दभे कति रोमाणीलेवं ।  
विचारणा" । १९ आतामिवेवमेवैववधारणं समर्थमानः प्राह ।

“सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोता श्रोतुं प्रवर्तते ।

शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥ १ ॥

[ गीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १७ ]

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् ।

थावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यताम् ॥ २ ॥

[ गीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १८ ]

अन्निर्दिष्टफलं सर्वं न प्रेक्षापूर्वकारिभिः ।

शास्त्रमाद्रियते तेन वाच्यमग्रे प्रयोजनम् ॥ ३ ॥

[

]

शास्त्रस्य तु फले ज्ञाते तत्प्राप्त्याशावशीलताः ।

प्रेक्षावन्तः प्रवर्तन्ते तेन वाच्यं प्रयोजनम् ॥ ४ ॥

[

]

यौवत् प्रयोजनेनास्यसम्बन्धो नाभिधीयते ।

असम्बद्धप्रलापित्वाद्भवेत्तावदसंज्ञतिः ॥ ५ ॥

[ गीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० २० ]

तस्माद् व्याख्यार्हमिच्छद्भिः सहेतुः सप्रयोजनः ।

शास्त्रावतारसम्यग्बोधोवाच्यो नान्योऽस्ति निष्फलः ॥ ६ ॥” इति ।

[ गीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० २५ ]

तत्रास्य प्रकरणस्य प्रमाणतदाभासयोर्लक्षणमभिधेयम् । अनेन

च सहास्य प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः । शक्यानु-२०

ष्ठानेष्टप्रयोजनं तु साक्षात्तल्लक्षणव्युत्पत्तिरेव-“इति वक्ष्ये तयो-

र्लक्ष्म” इत्यनेनाऽभिधीयते । ‘प्रमाणादर्थसंसिद्धिः’ इत्यादिकं तु

परस्परयेति समुदायार्थः । अथेदानीं व्युत्पत्तिद्वारेणाऽवयवार्थोऽ-

भिधीयते । अत्र प्रमाणशब्दः कर्तृकरणमात्रसाधनः-प्रत्ययपर्यायै-

योर्भेदाऽभेदात्मकत्वात् स्वातन्त्र्यसाधकतमत्त्वादिविवक्षापेक्षया २५

१ वदादियते । २ अवयवशब्देनाभिधेयं प्रयोजनं च । ३ शास्त्रम् (इति श्लो०) ।

४ प्रयुज्यते प्रतिपाद्यते इति प्रयोजनमभिधेयं प्रयुक्तिः, प्रयोजनं फलं साम्या सह

वर्तते । ५ तावत्फलमेवेति समर्पयते । ६ आदौ । ७ फलम् । ८ निरूपितेऽपि फले

प्रवर्तनं न अभिधीयते शास्त्रायामाह । ९ कारणेन । १० सिद्धसम्बन्धमेव पदं समर्प-

यमानोऽप्रेतनकोके भूते । ११ अभिधेयम् । १२ परस्परसम्बन्धरहितं शास्त्रम् ।

१३ सम्बन्धादित्रयम् । १४ सामिधेयः । १५ सफलः । १६ सामिधेयः सप्रयो-

जनश्च सम्बन्धो वाच्यः । १७ सम्बन्धादित्रयरहितः । १८ सम्बन्धादित्रये वक्तव्ये

आदरणीयत्वे सति शास्त्रप्रारम्भकाले । १९ प्रमाणोत्तरलक्षणस्य व्युत्पत्तिमन्तरेणापवर्गादेः

प्राप्तिर्न श्यादत एव साक्षात्तम् । २० श्लोकः । २१ श्लोके । २२ आत्मद्रव्यम् ।

२३ ज्ञानपर्यायः । २४ साक्षाद् व्यापारे । २५ भावः ।



तद्भावाऽविरोधात् । तत्र क्षयोपशमविशेषवशात्-‘स्वपरप्रमेयस्वरूपं प्रमिमीति यथावज्ज्ञानाति’ इति प्रमाणमात्मा, स्वपरग्रहणपरिणतस्यापरतन्त्रस्याऽऽत्मन एव हि कर्तृसाधनप्रमाणशब्देनाभिधानं स्वातन्त्र्येण विवक्षितत्वात्-स्वपरप्रकाशात्मकस्य प्रदीपादेः प्रकाशमिधानवत् । साधकतमत्वादिविवक्षायां तु-प्रमीयते येन तत्प्रमरणं प्रमितिमात्रं वा-प्रतिबन्धापाये प्रादुर्भूतविज्ञानपर्यायस्य प्राधान्येनाश्रयणात् प्रदीपादेः प्रमाभारात्मकप्रकाशवत् ।

मेदाभेदयोः परस्परपरिहारेणावस्थानादन्यंतरस्यैव वास्तवत्वा-  
दुभयात्मकत्वमयुक्तम् ; इत्यसमीक्षिताभिधानम् ; बाधकप्रमाणा-  
१० भावात् । अनुपलम्भो हि बाधकं प्रमाणम्, न चात्र सोऽस्ति-सकल-  
भावेर्षुभयात्मकत्वग्राहकत्वेनैवाखिलाऽऽस्वलक्षण्यप्रतीतिः । विरो-  
धो बाधकः ; इत्यप्यसमीचीनम् ; उपलम्भसम्भवात् । विरोधो ह्यनु-  
पलम्भसाध्यो । यथा-तुरङ्गमोत्तमाङ्गे शृङ्गस्य, अन्यथा स्वरूपेणापि  
तद्वतो विरोधः स्यात् । न चान्यथोरेकत्र वस्तुन्यनुपलम्भोस्ति-  
१५ अमेदमात्रस्य भेदमात्रस्य वेत्तैरनिरपेक्षस्य वस्तुन्यप्रतीतिः । कैल्प-  
यताप्यभेदमात्रं भेदमात्रं वा प्रतीतिरवश्यंऽभ्युपगमनीया-तन्नि-  
बन्धनत्वाद्द्वस्तुव्यवस्थायाः । सा चेदुभयात्मन्यप्यस्ति किं तत्र  
स्वसिद्धान्तविषमग्रहनिबन्धनग्रहेष्वे-अप्रामाणिकत्वप्रसङ्गादित्य-  
लमतिप्रसङ्गेन, अनेकान्तसिद्धिप्रक्रमे विस्तरेणोपेक्षमात् ।

२० वैध्यमाणलक्षणलक्षितप्रमाणभेदमनभिप्रेत्यनन्तरसकलप्रमाण-  
विशेषसाधारणप्रमाणलक्षणपुरःसरः ‘प्रमाणाद्’ इत्येकवचननि-  
र्देशः कृतः । कौ हेतौ । अर्थ्यतेऽभिलष्यते प्रयोजनार्थिभिरित्यर्थो हेय  
उपादेयश्च । उपेक्षणीयस्यापि परित्यजनीयत्वादेर्यत्त्वम् ; उपादान-  
क्रियां प्रत्यर्कर्मभावान्नोपादेयत्वम्, हानक्रियां प्रति विपर्ययात्तत्त्व-  
२५ म् । तथा च लोको वदति ‘अहमेनेनोपेक्षणीयत्वेन परित्यक्तः’ इति ।

१ कथनं । २ कर्तृसाधनोऽयम् । ३ भावः । ४ सम्बन्धिनः । ५ करणे भावे  
त्वात्र घञ् । ६ परः, शङ्कते । ७ भेदसाभेदस्य वा । ८ पदार्थेषु । ९ उपलम्भो  
यत्र भेदस्तत्रभेद इति । १० अभावः । ११ अभावोऽर्थवर्धोऽयम् । १२ ज्ञानप्रमोऽ-  
त्यम् । १३ विरोधः । १४ पदार्थस्य । १५ यावाभावयोः । १६ भेदस्याभेदस्य  
वा । १७ प्रतिवादिज्ञा । १८ अन्यवेति शेषः । १९ आत्मात् । २० विशदं  
प्रलक्षमविशदं परोक्षमिति । २१ अविवक्षितत्वात् । २२ स्वापूर्वेलादि । २३ पञ्चमी ।  
२४ अवयवस्य । २५ हेयत्वेऽन्तर्भावनादित्यर्थः । २६ ज्ञानविषयभूतं वस्तु कर्मा-  
धिक्रियते मध्यस्थभावेन स्तितत्वात्कर्मयानं न प्राप्त इत्यर्थः । २७ कौभावादं ।  
२८ हेयत्वम् । २९ पुरुषेण । ३० । ३१ । ३२ । ३३ । ३४ । ३५ । ३६ । ३७ । ३८ । ३९ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ । ८७ । ८८ । ८९ । ९० । ९१ । ९२ । ९३ । ९४ । ९५ । ९६ । ९७ । ९८ । ९९ । १०० ।

सिद्धिरसर्वः प्रादुर्भावोऽमिलषितैर्प्राप्तिर्भावश्चक्षुःस्थोच्यते । तत्रै-  
 पकप्रकरणेन असतः प्रादुर्भावलक्षणा सिद्धिर्नैव गृह्यते । समीचीना  
 सिद्धिः संसिद्धिरर्थस्य संसिद्धिः 'अर्थसंसिद्धिः' इति । अनेन कार-  
 णान्तैराहितविपर्यासादिज्ञाननिबन्धनाऽर्थसिद्धिर्निरस्ता । जाति-  
 प्रकृत्यादिभेदेनोपकारकार्यसिद्धिस्तु संगृहीता; तथाहि-केवल-  
 निम्बलवणरसादावस्मदादीनां द्वेषबुद्धिविषये निम्बकीटोष्ठादीनां  
 जात्याऽमिलाषबुद्धिरुपजायते अस्मदाद्यमिलाषविषये चन्दनादौ  
 तु तेषां द्वेषः, तथा पित्तप्रकृतेरुष्णस्पर्शे द्वेषो-वातप्रकृतेरमिलाषः-  
 शीतस्पर्शे तु वातप्रकृतेर्द्वेषो न पित्तप्रकृतेरिति । न चैतज्ज्ञानम-  
 सत्यमेव-हितोऽहितप्राप्तिपरिहारसमर्थत्वात् प्रसिद्धसत्यज्ञानवत् । १०  
 हिताऽहितव्यवस्था चोपकारकत्वापकारकत्वाभ्यां प्रसिद्धेति ।  
 तदिव स्वपरप्रमेयस्वरूपप्रतिभासिप्रमाणमिवाभासत इति तदा-  
 भासमे-सकलमतसम्मताऽवबुध्यक्षणाकायेकान्ततत्त्वज्ञानं सञ्चि-  
 क्कर्षाऽविकल्पकं-ज्ञानाऽप्रत्यक्षज्ञानज्ञानान्तरप्रत्यक्षज्ञानाऽनासप्र-  
 णीताऽऽर्गमाऽविनाभावविकललिङ्गनिबन्धनाऽमिनिबोधीर्दीर्घं सं- १५  
 शयविपर्यासानव्यवसायज्ञानं च, तस्माद् विपर्ययोऽमिलषि-  
 तार्थस्य स्वर्गापवर्गादेरनवद्यतत्साधनस्य वैहिकसुखदुःखादिसाध-  
 नस्य वा सम्प्राप्तिश्चलिलक्षणसमीचीनसिद्ध्यभावः । प्रमाणस्य प्रथ-  
 मतोऽभिधानं प्रधानत्वात् । न चैतदसिद्धम्; सम्यग्ज्ञानस्य निश्चे-  
 यसंप्राप्तेः सकलपुरुषार्थोपयोगित्वात्, निखिलप्रयासस्य प्रेक्षा- २०  
 वतां तदर्थत्वात्, प्रमाणेतरविवेकस्यापि तन्त्रसाध्यत्वाच्च । तदा-  
 भासस्य तूक्तप्रकाराऽसम्भवादप्राधान्यम् । 'इति' हेत्वर्थे । पुरु-  
 षार्थसिद्ध्यसिद्धिनिबन्धनत्वादिति हेतोः 'तयोः' प्रमाणतदाभा-  
 सयो'लक्ष्म' असाधारणस्वरूपं व्यक्तिकेभेदेनै तज्ज्ञातिनिमित्तं लक्षणं

१ यथा-कुलाकादसिद्धिः । २ पदार्थः । ३ विषयेषु मन्वे । ४ प्रमाणदर्थ-  
 संसिद्धिरिति । ५ गृही । ६ आपकपक्षस्य प्रकरणात् प्रस्तावाद । ७ चक्षुरादिकारेणा-  
 दन्यत्कारणं काचकामलादिभिष्यात्वादि वा कारणान्तरम् । ८ अवसाक्षेत्रकाळादि वा ।  
 ९ अन्यरससयोगरहित । १० उष्ठादिनाला कृत्वा । ११ निम्बकीटकस्य निम्बः  
 कटुकोऽपि हितत्वात् स एव रोचते । १२ नैयतिकमादिज्ञानम् । १३ सकलमतानि  
 सम्मतानि यस्य स सकलमतसम्मतो निनयवादी तस्मादबुद्धिर्ज्ञानं तदाभासमित्यर्थः ।  
 १४ निर्विकल्पक । १५ अपौरुषेय । १६ अनुमान । १७ लिङ्गामिमुखनिमतस्य  
 लिङ्गिनो बोधनं वा । १८ उपमानार्थोपपत्त्यभावप्रमाणानि । १९ घटते । २० मर्या-  
 दाया (का यश्चामी) । २१ भेदस्य । २२ द्वेष्टाद्वेष्टप्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।  
 २३ अधिकारे समाप्तौ च इतिशब्दः प्रकीर्तितः । २४ तदासम्भ्यः । २५ व्यक्तिकेभे-  
 नाऽसाधारणत्वं स्वव्यक्त्यभेदेन साधारणत्वमिति साहाय्यसिद्धिः ।

‘विक्षये’ व्युत्पादनाहत्वात्तल्लक्षणस्य यथावत्तत्त्वरूपं प्रस्पष्टं कथयिष्ये । अनेन ग्रन्थकारस्य तद्व्युत्पादने स्वातन्त्र्यव्यापारोऽवसीयते-निखिललक्ष्यलक्षणभावावबोधोऽन्योपकारनियतचेतोवृत्ति-त्वात्तस्य ।

- “ ननु चेदं वक्ष्यमाणं प्रमाणेतरलक्षणं पूर्वशास्त्राप्रसिद्धम्, तद्विपरीतं वा? यदि पूर्वशास्त्राऽप्रसिद्धम्-तर्हि तद्व्युत्पादनप्रयासो नारम्भणीयः-स्वरुचिविरचितत्वेन सतामनादरणीयत्वात्, तत्प्रसिद्धं तु नितरामेतन्न व्युत्पादनीयं-पिष्टपेषणप्रसङ्गादित्याह-‘सिद्धमल्पम्’ । प्रथमविशेषणेन व्युत्पादनवत्तल्लक्षणप्रणयने स्वातन्त्र्यं परिहृतम् ।
- १० तदेव अकलङ्कमिदं पूर्वशास्त्रपरम्पराप्रमाणप्रसिद्धं लघुपाथेन प्रतिपाद्य प्रज्ञापरिपाकार्यं व्युत्पाद्यते-न स्वरुचिविरचितं-नापि-प्रमाणानुपपन्नं-परोपकारनियतचेतसो ग्रन्थकृतो विनेयविसंवादने प्रयोजनाभावात् । तथाभूतं हि वदन् विसंवादकः स्यात् । ‘अल्पम्’ इति विशेषणेन यदन्यत्र अकलङ्कदेवैर्विस्तरेणोक्तं प्रमाणेतरलक्षणं-
- १५ तदेवात्र संक्षेपेण विनेयव्युत्पादनार्थमभिधीयत इति पुनरुक्तत्वे निरासः । विस्तरेणान्यत्राभिहितस्यात्र संक्षेपाभिधाने विस्तररुचि विनेयविदुषां नितरामनादरणीयत्वम् । को हि नाम विशेषव्युत्पत्त्यर्थं प्रेक्षावांस्तत्साधनाऽन्यैसद्भावे सत्यन्यत्राऽतैसाधने कृता-दरो भवेदित्याह-‘लघीयसः’ । अतिशयेन लघवो हि लघीयांसः ।
- २० संक्षेपवचय इत्यर्थः । कालशरीरपरिमाणकृतं तु लाघवं नेह गृह्यते-तस्य व्युत्पाद्यत्वव्यभिचारात्, क्वचित्थाविधे व्युत्पादकस्याऽप्युपलम्भात् । तस्मादभिप्रायकृतमिह लाघवं गृह्यते । येषां संक्षेपेण व्युत्पत्त्यभिप्रायो विनेयानां तान् प्रतीदमभिधीयते-प्रतिपादैकस्य

१ मूलं द्विकर्तकः । २ व्युत्पत्तिकर्णार्हत्वात् । ३ ना कृता (तृतीयान्तं तेन कृत्वेत्यर्थः) । ४ यत् । ५ पुनरुक्तत्वप्रसङ्गात् । ६ ईप् यथा-(व्युत्पादने यथा) । ७ कथने । ८ प्रमाणतदभासलक्षणम् अकलङ्केन ओक्तमाकलङ्क्यम् । कलङ्केन दोषेण रहितं वा । ९ पूर्वशास्त्रपरम्परा च प्रमाणं चेति पूर्वशास्त्रपरम्पराप्रमाणे तान्त्वमिलनः । १० परम्पराप्रमाणप्रसिद्धमिति वा पाठः । ११ सक्षिप्तशब्दरूपेण । १२ अतारणे । १३ अतारकः । १४ प्रमाणसंग्रहादौ । १५ परीक्षाशुद्धे । १६ प्रमाणसंग्रहादौ । १७ प्रमाणसंग्रहादिसद्भावे । १८ परीक्षाशुद्धे । १९ विशेषव्युत्पत्त्यसाधने । २० न कोपि । २१ तर्हि कान् प्रतीलाघवश्रुत्यामाह । २२ निमतो व्युत्पाद्यः कालकृतजन्य-वादित्युक्ते गर्भाऽष्टमवर्षादिजातज्ञानसम्पन्नेन व्यभिचारत् । नीतः प्रतिपाद्यः कंयङ्क-कायवादित्युक्ते अतीतशालेण कुम्भादिनाऽनेकान्तात् । तयोर्व्युत्पादकत्वादिति भावः । २३ इति । २४ श्रुतेः ।

प्रतिपाद्यशयवशवर्तित्वात् । 'अकथितम्' [पाणिनि सू० १।४।५१]  
इत्यनेन कर्मसंज्ञायां सत्याकर्मणीत् ।

ननु चेष्टदेवतानमस्कारकरणमन्तरेणैवोक्तप्रकाराऽऽदिश्लोका-  
भिधानमाचार्यस्याऽयुक्तम् । अविज्ञेन शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं हि  
फलमुद्दिश्येष्टदेवतानमस्कारं कुर्वाणाः शास्त्रकृतः शास्त्रादौ प्रती- ५  
यन्ते; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; बाह्यनमस्काराऽकरणेपि काय-  
मनोनमस्कारकरणात् । त्रिविधो हि नमस्कारो-मनोवाक्याकारण-  
भेदात् । इदयते चातिलघूप्रायेण विनेयव्युत्पादनमनसां धर्म-  
शीर्त्यादीनामप्येवंविधा प्रवृत्तिः चाह्यनमस्कारकरणमन्तरेणैव "स्त- १  
स्यग्नानपूर्विका सर्वपुरुषार्थसिद्धिः" [न्यायवि० १।१] इत्यादि- १०  
वाक्योपन्यासात् । यद्वा बाह्यनमस्कारोऽप्यनेनैवादिश्लोकेन कृतो  
ग्रन्थकृता; तथाहि-मा अन्तरङ्गबहिरङ्गानन्तज्ञानप्रातिह्यार्था-  
दिभ्यः, अप्यते शब्धते येनार्थोऽसावाणः शब्धः, मा चाणश्च माणौ,  
प्रकृष्टौ महेश्वराद्यसम्भविनौ माणौ यस्याऽसौ प्रमाणौ भगवान्  
सर्वज्ञो दृष्टेष्टाऽविद्वद्वाक् च, तस्मादुक्तप्रकारार्थसंसिद्धिर्भवति । १५  
तदभासात्तु महेश्वरादेर्विपर्ययस्तत्संसिद्धिभावः । इति वक्ष्ये तयो-  
र्लक्ष्म 'सामग्रीविशेषविश्लेषिताऽखिलावरणमतीन्द्रियम्' इत्याद्य-  
साधारणस्वरूपं प्रमाणस्य । किंविशिष्टम्? सिद्धं वक्ष्यमाण-  
प्रमाणप्रसिद्धम्, तद्विपरीतं तु तदभासस्य; तच्चाऽल्पं संक्षिप्तं  
यथा भवति तथा, लघीयसः प्रति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्मेति । शास्त्रा- २०  
रम्भे चाऽपरिमितगुणोदधेर्मगधतो गुणलवव्यावर्णनमेव वाक्स्तु-  
तिरित्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ छ ॥

प्रमाणविशेषलक्षणोपलक्षणाकाङ्क्षायास्तत्सामान्यलक्षणोपलक्ष-  
णपूर्वकत्वात् प्रमाणस्वरूपविप्रतिपत्तिनिराकरणद्वारेणाऽवाधन-  
त्सामान्यलक्षणोपलक्षणायेदमभिधीयते— २५

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ॥ १ ॥

प्रमाणत्वान्यथानुपपत्तेरित्ययमत्र हेतुर्दृष्टव्यः । विशेषणं हि व्यव-  
च्छेदफलं भवति । तत्र प्रमाणस्य ज्ञानमिति विशेषणेन 'अर्थेभि-  
चारीदिविशेषणविशिष्टार्थोपलब्धिजनकं कारकसाकल्यं साधक-

१ शिष्यः । २ स्वप्नः । ३ इष्टं द्वितीया । ४ परः । ५ उपायेन शब्धनेत्यर्थः ।  
६ नौदाचार्याणाम् । ७ अथवा । ८ 'कश्चित्पुरुष' इत्यादि । ९ नवसा नमस्कार-  
करणं तु तस्य संज्ञानम् । १० पूर्वपक्षेण । ११ परिज्ञान । १२ साध्ये । १३ लक्षणं  
न्यायसिद्धं तदभासात्परिहारफलमित्यर्थः । १४ अविपर्ययः न्यभिचारो नाम  
अतिन्यासिः । १५ अन्यायतिन्यासप्रसङ्गादिरहितविशेषणसम्बन्धसंज्ञादित्यभिचारः ।  
१६ प्रतीतिः । १७ जरत्रैवायिका आत्माकाशादीनां साकल्यं प्रमाणमित्याहुः ।

- तमत्वात् प्रमाणम्' इति प्रत्याख्यातम्; तस्याऽज्ञानरूपस्य प्रमेयैवत् स्वपरपरिच्छिन्नौ साधकतमत्वामात्रतः प्रमाणत्वायो गात्तत्परिच्छिन्नौ साधकतमत्वस्याऽज्ञानविरोधिना ज्ञानेन व्याप्तत्वात् । छिदौ परश्वादिना साधकतमेन व्यभिचार इत्ययुक्तम्; ५ तत्परिच्छिन्नाविति विशेषणात्, न खलु सर्वत्र साधकतमत्वं ज्ञानेन व्याप्तं परश्वादेरपि ज्ञानरूपताप्रसङ्गात् । अज्ञानरूपस्यापि प्रदीपादेः स्वपरपरिच्छिन्नौ साधकतमत्वोपलम्भात्तेन तस्याऽव्याप्तिरित्यप्ययुक्तम्; तस्योपचारात्तत्र साधकतमत्वव्यवहारात् । साकल्यस्याप्युपचारेण साधकतमत्वोपगमे न किञ्चिदनिष्टम्- १० मुख्यरूपतया हि स्वपरपरिच्छिन्नौ साधकतमस्य ज्ञानस्योत्पादकत्वात् तस्यापि साधकतमत्वम्; तस्माच्च प्रमाणकारणे कार्योपचारात्-अन्नं वै प्राणा इत्यादिवत् । प्रदीपेन मया दृष्टं चक्षुषाऽर्कगतं धूमेन प्रतिपन्नमिति लोकव्यवहारोऽप्युपचरतः; यथा ममाऽयं पुत्रश्चक्षुरिति तेषां प्रमितिं प्रति बोधेन व्यवधानात्, १५ तस्य त्वपरेणैव व्यवधानात्तन्मुख्यम् । न च व्यपदेशमात्रात्पारमार्थिकवस्तुव्यवस्था 'नैव लोदकं पादरोगः' इत्यादिवत् । ततो यद्वोधाऽबोधरूपस्य प्रमाणत्वमिधानकम्—

'लिखितं साक्षिणो भुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम्' [ . ] इति तत्प्रत्याख्यातम्; ज्ञानस्यैवाऽनुपचरितप्रमाणव्यपदेशादेत्वात् । २० तथाहि-यद्यत्राऽपरेण व्यवहितं न तत्तत्र मुख्यरूपतया साधक-

१ ज्ञानन्त प्रति निरस्तम् । २ षट्पदम् । ३ व्याप्यस्य । ४ परः । ५ अज्ञानरूपेण । ६ कारणत्वेनाभिप्रेते वस्तुनि । ७ अन्यथा । ८ परः । ९ यद्यदज्ञानविरोधिज्ञानेन व्याप्तं तत्तत्स्वपरपरिच्छिन्नौ साधकतममतोऽज्ञानरूपस्य स्वपरपरिच्छिन्नौ साधकतमस्य तेन ज्ञानेनाव्याप्तिः । १० न पर्यायतः । ११ प्रदीपस्य स्वपरप्रकाशकत्वेन साधकतमत्वं न तु स्वपरपरिच्छिन्नात्त्वत्वेनेति भावः । १२ परः । १३ जैनानाम् । १४ ज्ञानजनकत्वेन । १५ अज्ञानरूपत्वादित्यस्य हेतोरनैकान्तिकत्वे । १६ प्रदीपादेः प्रामाण्यम् । १७ वस्तुरूपं बहिः । १८ ज्ञानधर्मसाधकतमस्य । १९ अधिसूत्रम् । २० साधकतमज्ञानहेतुत्वेन । २१ साधकतमत्वेन । २२ साधकतमज्ञानस्य हेतुत्वेन । २३ प्रमितिप्रिया प्रति । २४ परिच्छिन्ना प्रति प्रदीपादेः साधकतमत्वं न मुख्यम् । २५ प्रदीपादेसाधकतमत्वमिति व्यपदेशमात्रात् । २६ प्रदीपादेः प्रामाण्यम् । २७ 'आहुर्ल हरितं ओक्तं । नदुर्ल नदसंयुतम्' (क) एणसंयुतमुदकं नदुर्लकं व्यते । २८ पादरोगकारणात्तया व्यपदिश्यमाने नदुर्लोककं यथा पादरोगत्वेन न पारमार्थिकं तथा प्रकृतमपि । २९ ज्ञानस्यैव साधकतमत्वं ततः । ३० नैयायिकस्य वैशेषिकस्य च । ३१ आसनादिभिर्यथादि, तत्प्रमाणम् । ३२ पुरुषाः प्रमाणम् । ३३ अनुभवः प्रमाणम् ।

समव्यपदेशार्हम्, यथा हि च्छिदिक्रियायां कुठारेण व्यवहितोऽ-  
यस्कारः, स्वपरपरिच्छिन्नौ विज्ञानेन व्यवहितं च परपरिकल्पितं  
साकल्यादिकमिति । तस्मात् कारकसाकल्यादिकं साधकतम-  
व्यपदेशार्हं न भवति ।

किंचः स्वरूपेण प्रसिद्धस्य प्रमाणत्वादिव्यवस्था स्यान्नान्यथा-५  
अतिप्रसङ्गात् न च साकल्यं स्वरूपेण प्रसिद्धम् । तत्स्वरूपं हि  
सक्रलान्येव कारकाणि, तद्धर्मो वा स्यात्, तत्कार्यं वा, पदार्थान्तरं  
वा गत्यन्तराभावात् ? न तावत्सकलान्येव तानि साकल्यस्व-  
रूपम् ; कर्तृकर्मभावे तेषां करणत्वानुपपत्तेः । तद्भावे वा—अन्येषां  
कर्तृकर्मरूपता, तेषामेव वा ? न तावदन्येषाम्, सकलकारकव्यति- १०  
रेकेणान्येषामभावात्, भावे वा न कारकसाकल्यम् । नापि तेषा-  
मेव कर्तृकर्मरूपता; कर्णत्वाम्युपगमात् । न चैतेषां कर्तृकर्म-  
रूपाणामपि करणत्वं परस्परविरोधात् । कर्तृता हि ज्ञानचिकीर्षा-  
प्रयत्नाधारता सातन्त्र्यं वा, निर्वर्त्यत्वादिधर्मयोगित्वं कर्मत्वम्,  
करणत्वं तु प्रधानक्रियाऽनोधारत्वमित्येतेषां कथमेकैव सम्भवः ? १५  
तत्र सकलकारकाणि साकल्यम् ।

नापि तद्धर्मः—स हि संयोगः, अन्यो वा ? संयोगश्चेन्न, अस्त्या-  
ऽनन्तरं-विस्तरतो निषेधात् । अन्यश्चेत् ; नास्य साकल्यरूपता  
अतिप्रसङ्गात्-व्यस्तार्थानामपि तत्सम्भवात् । किं चाऽसौ कारक-  
स्योऽव्यतिरिक्तः, व्यतिरिक्तो वा ? यद्यव्यतिरिक्तः, तदा धर्ममात्रं २०  
कारकमात्रं वा स्यात् । व्यतिरिक्तश्चेत्सम्बन्धाऽसिद्धिः । सम्बन्धे-  
ऽपि वा सकलकारकेषु युगपत्तस्य सम्बन्धेऽनेकदोषदुष्टसौम्य-

१ प्रदीपादि लिखितादि ॥ तयाहीत्यत्र कारकसाकल्यादिकं धर्मि, मुख्यरूपतया  
साधकतमव्यपदेशार्हं न भवतीति धर्मैः, स्वपरपरिच्छिन्नौ विज्ञानेन व्यवहितत्वात्  
प्रदीपादिवत् । २ वातस्य । ३ साधकतमत्वं । ४ स्वरविषाणादेः । ५ अत्र यथार्थत्वं  
स्वार्थे भावे कैरेणि व्यण् । ६ प्रमाणरूपसाकल्यस्य करणस्वरूपत्वं यतः । ७ कारका-  
णाम् । ८ सीमासकानां कर्त्रादीना लक्षणमिदम् । ९ “व्याप्यं विषयभूतं च निर्वर्त्य  
विक्रियात्मकम् । कर्तृकम् क्रियाया व्याप्तमीप्सितानीप्सितेतरत्वं” । १० लेदनम् ।  
उल्लेपणापल्लेपणस्य आधारत्वं न तु च्छिदेरित्यर्थः । ११ कर्मकर्त्रेव छिदि प्रमिते-  
लक्षणप्रधानक्रियाधारत्वं न तु करणत्वं । १२ निरुद्धधर्माणाम् । १३ साकल्ये ।  
१४ प्रमेयत्वप्रमातृत्वसत्त्वादि । १५ सन्निकर्षः । १६ साधारमिदमग्रे । १७ अन्य-  
धर्म । १८ कारकाणां द्विध्यादीनाम् । १९ धर्मो वा कारकरूपधर्मो वा स्यात् कार-  
केभ्योऽन्यधर्मस्याव्यतिरिक्तत्वात् । २० एकत्वभावेनानेकत्वभावेन च वृत्तौ सामान्या-  
नं वत्सादयः स्युः । २१ सामान्यादौ वे दोषास्तोऽत्रापि स्युरित्यर्थः । एकत्वभावेन  
स्वभावभेदेन च वृत्तौ सामान्यत्वानवत्सादयः ।

न्यादिरूपतापैतिः । क्रमेण सम्बन्धे सकलकारकधर्मता सा न स्यात्-यदैव हि तस्यैकेन हि सम्बन्धो न तदैवाऽन्येनेति ।

नापि तत्कार्यं साकल्यम्—नित्यानां तज्जननस्वभावे सदैवा तदुत्पत्तिप्रसक्तिः, एकप्रमाणोत्पत्तिसमये सकलतदुत्पाद्यप्रमाणोत्पत्तिश्च स्यात् । तथाहि—यदा यज्जनकमस्ति तत्तदोत्पत्तिमत्प्रसिद्धम्, यथा तत्कालाभिमितं प्रमाणम्, अस्ति च पूर्वोत्तरकालभाविनां सर्वप्रमाणानां तदा नित्याभिमितं जनकमात्मादिकं कारणमिति । आत्मादिकारणे सत्यपि तेषामनुत्पत्तौ ततः कदाचनाप्युत्पत्तिर्न स्यादिति सकलं जगत् प्रमाणविकलमापद्यते । आत्मादौ तत्कारणसमर्थे सत्यपि स्वयमेव तेषां यथाकालं भावे तत्कार्यताविरोधः तस्मिन् सत्यप्यभावात् स्वयमेवान्यदा भावात् । न च स्वकालेपि तत्सङ्गात् भावात्तत्कार्यता; गैरनादिकार्यताप्रसक्तेः । न च तस्यापि तत्पत्तिः कारणत्वस्येष्टेरदोष्यमिति वक्तव्यम्; आत्माऽनात्मविभागाभावप्रसङ्गात् । यत्र प्रप्तिः समवेता सोऽत्रात्मा नान्यं इत्यप्यनालोचितवचनम्; समवार्थोऽसिद्धौ समवेतत्वाऽसिद्धेः । यदा यत्र यथा यद्भवति तदा तत्र तथाऽऽत्मादेस्तत्कारणसमर्थत्वाच्चैकदा सकलप्रमाणोत्पत्तिप्रसक्तिरित्यप्यसम्भाव्यम्; तत्स्वभावभूतसामर्थ्यमेवमेतन्तरेण कार्यस्य कालोद्भिदोद्भेदायोगात्, अन्यथा तदस्य पृथिव्यादिकार्यनानात्वस्याऽदृष्ट-  
२० पार्थिवादिपरिमाणवैदिकारणत्वात्तुर्विध्यं किमर्थं समर्थ्यते ? नित्यस्वभावमेकमेव हि किञ्चित्समर्थनीयम् । यथा च कारणजातिमेवमेतन्तरेण कार्यमेवोपोपपद्यते तथा तच्छक्तिमेवमेतन्तरेणापि । न च

१ अवयवी । २ रूपमिव रूपं यस्य तद्वत्स्य सामान्ये चे दोषस्तेऽत्रापि स्युः । ३ कारकेण । ४ नेत्रोद्वाटनयोग्यदेशगमनादि । ५ आत्माकाशकालदिग्मनसाम् । ६ कार्यलक्षणसाकल्यप्रमाणस्य । ७ सकलपदार्थपरिच्छेदकार्यलक्षणसाकल्यप्रमाणाननुत्पत्तिः स्यात् । ८ कारणाऽवीनानि कार्याणि यतः । ९ उपनयः । १० विवक्षितकालाऽभिमितकार्योत्पत्तिसमये । ११ कार्यनिकलम् । १२ युगपद प्रमाणकार्यस्य । १३ अन्यथा । १४ परः । १५ गगनादिः । १६ चतुर्दशपरिच्छेदेऽयं निराकृत्यते । १७ परः । १८ आत्मादि । १९ नानाकार्याणि विभिन्नशक्तिहेतुकानि विभिन्नकार्यत्वात् पृथ्यादिभेदकार्यवत् । २० सर्वेषां कार्याणां युगपदुत्पत्तिवत् । २१ देशस्वभावः । २२ तत्सामर्थ्यमेव विनापि कार्यस्य कालादिभेदो भविष्यतीति चेत् । २३ प्रलक्ष्य । २४ आप्येतज्जवावयीव । २५ इत्युक्तादि । २६ महादि । २७ कारणम् । २८ पार्थिवादिजाति । २९ अत्राभिप्रायस्तु योग्यतावच्छिन्नस्वरूपसहकारिसम्बन्धानेव शक्तिरिति गौतमीयन्यायैकदेशे द्रव्याच्छक्तिरत्यवते चेति जैना वदन्तीति मत्वा दूषणं वदत्यपरः तद्वृणमरिजिहीर्षया न चेत्ताह ।

यथैक्याशक्त्यैकमनेकाः शक्तीर्विभर्ति तत्राप्यनेकैशकिपरिकल्प-  
नेऽनुवस्थाप्रसङ्गात्, तथैव तदनेकं कार्यं करिष्यतीति वाच्यम्;  
यतो न भिन्नाः शक्तीः कयाचिच्छक्त्या कश्चिद्धारयतीति जैनो  
मन्यते-स्वकारणकलापात्तदात्मैकस्यैवाऽस्योत्पादात् ।

सहकारिसव्यपेक्षाणां जैनकत्वाद्देशकालखभावमेवः कार्यं न<sup>५</sup>  
विरुध्यतइत्यपि वार्तम्, नित्यस्यानुपकार्यतया सहकार्यऽपेक्षाया  
अयोगात् । सहकारिणो हि भावाः किं विशेषार्थायित्वेन, एकार्थकारि-  
त्वेन त्राभिधीयन्ते ? प्रथमपक्षे किमसौ विशेषस्तैर्थो भिन्नः,  
अभिन्नो वा तैर्विधीयते ? भेदे सम्बन्धासिद्धेस्तदवस्थमेवाकारक-  
त्वमेतेषां पूर्ववस्थायामिव पञ्चादप्यनुषज्यते । तदेसिद्धिश्च समः<sup>१०</sup>  
वायादिसम्बन्धस्याग्रे निराकरिष्यमाणत्वात् सुप्रसिद्धा । विभि-  
न्नातिशयात् कार्योत्पत्तौ चात्र कारकव्यपदेशोऽपि कल्पनाश्लिष-  
कल्पित एव-अतिशयस्यैव कारकत्वात् । द्वितीयपक्षे तु कथंमेतेषां  
नित्यता उत्पादविनाशात्मकातिशयादभिन्नत्वात्तत्स्वरूपवत् ?  
एकार्थकारित्वेन त्वेषां सहकारित्वं नैस्माभिः प्रतिक्षिप्यते, किंत्व-<sup>१५</sup>  
परिणामित्वे तेषां प्रोक्त पञ्चात् पुंथग्भावावस्थायामपि कार्यकारि-  
त्वप्रसङ्गतः 'सहैव कुर्वन्ति' इति नियमो न घटते । न खलु सौहि-  
त्येऽपि भावाः परैरूपेण कार्यकारिणः । स्वयमकारैकाणामन्यसञ्चि-  
धानेऽपि तत्कारित्वासम्भवात्, सम्भवे वा पर एव परमार्थतः  
कार्यकारको भवेत् सात्मनि तु कारकव्यपदेशो विकल्पकल्पितो<sup>२०</sup>  
भवेत् ॥ तैर्था सान्यस्यानुपकारिणो भावमनपेक्ष्यैव कार्यं तद्विक-  
लेभ्य एव सहकारिभ्यः समुत्पद्येत । तेभ्योऽपि वा न भवेत्,  
स्वैर्यं तेषामप्यकारकत्वात् परैरूपेणैव कारकत्वात् । अतः सर्वेषां

१ आत्मादिकारण । २ अनेकशक्तिवारणे । ३ कारणस्य । ४ हे जैन तव  
हेतोः । ५ आत्मादि । ६ परेण । ७ आत्मा । ८ आत्मादि । ९ प्रपञ्चपाप ।  
१० नानाशक्त्यात्मकस्य । ११ आत्मादेः । १२ परः । १३ आत्मादीना । १४ कार-  
णाना । १५ कार्यस्य । १६ अतिशय उपकर । १७ कारकविशेषः क्रियते तैः ।  
१८ कारकाणां विशेषाभ्यारोपकत्वेन । १९ एककार्यकणत्वेनोभयोरपि । २० कार-  
केभ्यः । २१ सहकारिरहितावस्थायामिव । २२ अनकत्वेन ? [ सर्वव्याप्तिद्वय ] ।  
२३ आत्मादेः । २४ आत्मादीना । २५ अतिशयस्वरूपवत् । २६ सहकारिणा ।  
२७ जैनैः । २८ सहकारिभ्यः । २९ भिन्नभावावस्थाया । ३० सहकारिभिः ।  
३१ सहकारिणा । ३२ आत्मादयः । ३३ सहकारिरूपेण । ३४ आत्मादीना ।  
३५ सहकारि । ३६ आत्मादौ । ३७ एवं सति । ३८ आत्मनः । ३९ अनकत्वेन ।  
४० सङ्गात् । मुख्यकारकस्य स्वरूपं । ४१ आत्मादिक । ४२ सहकारिकारकेभ्यः ।  
४३ स्वरूपेण । ४४ आत्मादिरूपेण ।



स्वयमकारकत्वे पररूपेणाप्यकारकत्वात् तद्भातोच्छेदतो न कुतश्चित् किञ्चिदुत्पद्येत । ततः स्वरूपेणैव भावाः कार्यस्य कर्ता इति न कदाचित्तत्क्रियोपरितिः स्यात् ।

ननु कार्याणां सामग्रीप्रभवस्वभावत्वात् तस्याश्चापरापरप्रत्यय-  
५ योगरूपत्वात्प्रत्येकं नित्यानां तत्किंयास्वभावत्वेऽप्यनुत्पत्तिस्तेषा-  
मिति, तदप्यसाम्प्रतम् ; यतोऽयमेकोऽपि भावः क्रमभाविकार्यो-  
त्पादने समर्थोऽतः कथमेषां भिन्नकालापरापरप्रत्यययोगोलक्षणाऽ-  
नेकसामग्रीप्रभवस्वभावता स्यात् ? एकेर्नापि हि तेन तज्जनन-  
सामर्थ्यं विभागेन तान्युत्पादयितव्यानि, कथमन्यथा केवलस्य  
१० तज्जननस्वभावता सिद्ध्येत् ? तस्याः कार्यप्रादुर्भावानुमीयमानस्वरू-  
पत्वात् प्रयोगः—यो यन्न जनयति नासौ तज्जननस्वभावः यथा  
गोधूमो यवाङ्कुरमजनयन्न तज्जननस्वभावः, न जनयति चायं  
केवलः कदाचिदप्युत्तरोत्तरकालभावीनि प्रत्ययान्तरापेक्षाणि  
कार्याणीति । ननु प्रत्ययान्तरमपेक्ष्य कार्यजननस्वभावत्वान्नासौ  
१५ केवलस्तज्जनयति, न च सहकारिसहितासहितावस्थयोरस्य स्वभा-  
वमेव ; प्रत्ययान्तरापेक्षस्वकार्यजननस्वभावतायाः सर्वदा भावात्,  
तदप्यपेशलम् ; यतः प्रत्ययान्तरसन्निधानेऽपि स्वरूपेणैवास्य  
कार्यकारिता, तच्च प्रौढ्यस्तीति प्रागेवोक्तः कार्योत्पत्तिः स्यात् ।  
प्रत्ययान्तरेभ्यश्चास्त्यैतिशयसम्भवे तदपेक्षा स्यादुपकारिकेणै-  
२० वास्याः सम्भवात्, अन्यथाऽतिप्रसङ्गात् । तैस्तन्निधानस्यासन्नि-  
धानतुल्यत्वाच्च केवल एवासौ कार्यं कुर्यात्, अकुर्वञ्च केवलः  
सहितावस्थार्यां च कुर्वन् कथमेकस्वभावो भवेद्विरुद्धधर्माध्या-  
सतः स्वभावमेदानुषङ्गात् ?

किञ्च सकलानि कारकाणि साकल्योत्पादने प्रवर्तन्ते, असक-  
२५ लानि वा ? न तावत्सकलानि साकल्यासिद्धौ तैस्सकलत्वासिद्धेः ।

१ आत्मादिरूपेणापि । २ कारक । ३ कार्य । ४ स्वाधीनतया । ५ कार्य ।  
६ करण । ७ विश्रामः । ८ परः । ९ कारण । १० कदाचिद् रूपमिन्नकालक-  
माविकारणयोगरूपत्वात् । ११ केवलं । १२ करण । १३, १४, नित्यः । १४ कारण ।  
भा । १५ विलस्य । १६ केवलेन । १७ परिणामित्वं । १८ न तथा । \*प्रत्येक-  
मात्मादिवंशी (केवलः) तदजनकत्वादिति हेतुः तज्जननस्वभावो न भवतीति साम्प्र-  
१९ हेतुः । २० धर्मः । २१ अवयवोपनयः । २२ तस्मादात्मादिः प्रत्येकमुत्तरोत्तर-  
नियमलम् । २३ परः । २४ कारणान्तर । २५ सहकारिरुद्धधर्माध्या-  
सतः । २६ नित्यः । २७ सहकारिसन्निधानात् । २८ आत्मादिकारकात् । २९ कारकस्य । ३० उपकार-  
काणामेवापेक्षा भवति नाऽन्येषामित्यर्थः । ३१ अनुपकारकेणैव सम्भवे । ३२ पदोत्पत्तौ  
कुविन्दस्य भूतिपण्डे अपेक्षा भवेत् । ३३ अनुपकारकप्रत्ययान्तर । ३४ प्रमाण ।  
३५ यतोऽद्यापि विचार्यमाणं (ततः) । ३६ विभागापि प्राप्नोति ।

अन्योऽन्याश्रयश्च-सिद्धे हि साकल्ये तेषां सकलरूपतासिद्धिः, तत्सिद्धौ च साकल्यसिद्धिरिति । नाप्यसकलान्यतिप्रसक्तेः । किञ्च यथा प्रत्यासत्त्या तथाविधान्येतानि साकल्यमुत्पादयन्ति तथैव प्रमामप्युत्पादयिष्यन्तीति व्यर्था साकल्यकल्पना । कारण-मन्तरेण प्रमोत्पत्त्यभावे साकल्येऽप्यन्यत् कारणं कल्पनीयमित्यन-<sup>५</sup> वस्था । न चाभ्यक्षसिद्धत्वात्साकल्यस्यादोषोऽयम्, आत्मान्तः-करणसंयोगोदेरतीन्द्रियस्याभ्यक्षाऽविषयत्वात् । केवलं विशि-ष्टार्थोपलब्धिलक्षणकार्यस्याऽध्यक्षसिद्धस्य कारणमन्तरेणानुपपत्ते-स्तत्परिकल्पना, तच्च मनोलक्षणकरणसद्भावे साकल्यमेवेत्यव-धारयितुं न शक्यम् । तत्र सकलकारककार्यं साकल्यम् । १०

नापि पैदार्थान्तरं सर्वस्य पदार्थान्तरस्य साकल्यरूपताप्रस-  
ङ्गात् । तथा च तत्सद्भावे सर्वत्र सर्वदा सर्वस्यार्थोपलब्धिरिति  
सर्वः सर्वदर्शी स्यात् । ततः कारकसाकल्यस्य स्वरूपेणाऽसिद्धेः  
सिद्धौ वा ज्ञानेन व्यवधानाच्च प्रामाण्यम् ॥ छ ॥

१ स्वभावेन । प्रसादपिः स्वभावः । २ कारकाणि । ३ परः । ४ साकल्यस्य ।  
५ पुनः । ६ ज्ञान । ७ अर्थापत्तिप्रमाणम् । ८ भेदयती (मन्यते) । ९ अर्थापत्ति-  
प्रमाणप्रसिद्धं क्लृप्तं । १० भाषमनो । ११ प्रमितिरूपः पदार्थः । १२ नुः ।  
१३ सर्वपदार्थान्तरसाकल्यरूपप्रमाणत्वात् ।

१ कारकसाकल्यस्य स्वरूपं तावत् सामग्रीप्रमाणवादी जयन्तभट्टः इत्थं निरूपयति  
'अव्यभिचारीणीनसन्दिग्धमर्थोपलब्धिं विदधती बोधोबोधस्वभावा सामग्री प्रमाणम् ।  
बोधाऽनोबोधस्वभावा हि तस्य स्वरूपम् अव्यभिचारादिविशेषणार्थोपलब्धिसाधनत्वं  
लक्षणम्' (न्यायमं० पृ० ११)

सामग्री च 'कारकसाकल्यस्यैव व्यपदेशान्तरम्, अतएवायं कारकसाकल्यवादः  
'सामग्रीप्रमाणवादः' इति शब्देनापि व्यपदिश्यते । तस्य च साधिका मुख्या युक्तिः  
इत्थम्—'यत् एव साधकतमं कारणम् कारणसाधनञ्च प्रमाणशब्दः, तत् एव सामग्र्याः  
प्रमाणत्वं युक्तम्, तद्यतिरेकेण कारकान्तरे कचिदसि तमयवसत्यर्थानुपपत्तेः । अनेक-  
कारकसन्निधाने कार्यं घटमानम् अन्यतरव्यपगमे च विषटमानं कसौ अतिशय  
अपच्छेदः ? नचातिशयः कार्यजनमनि कस्यचिदवधार्यते सर्वेषां तत्र व्याप्तिप्रमाणत्वात्'  
(न्याय मं० पृ० १३)

सामग्रीप्रमाणवादस्य दिवा उल्लेखो न्यायमंजरीं दृश्यते । एकस्तावत् पूर्वोक्त एव  
द्वितीयस्तु प्रकारः 'कर्तृकर्मविलक्षणासंशयविषयविरहिताऽनोबोधाविधायिनी बोधाऽनोबो-  
धस्वभावा सामग्री प्रमाणम्' इत्यादिरूपः 'अपरे पुनराचक्षते' इति कृत्वा तत्रैव  
(पृ० १४) निर्दिष्टो दृश्यते ।

भा भूत् कारकसाकल्यस्यासिद्धस्वरूपत्वात् प्रामाण्यं सन्निकर्षादेस्तु सिद्धस्वरूपत्वात्प्रमित्युत्पत्तौ साधकतमत्वाच्च तत्स्यात् । सुप्रसिद्धो हि चक्षुषो घटेन संयोगो रूपादिना (संयुक्तसमवायः रूपत्वादिना) संयुक्तसमवेतसमवायो ज्ञानजनकः । साधकतमत्वं च प्रमाणत्वेन व्याप्तं न पुनर्ज्ञानत्वमज्ञानत्वं वा संशयादिवत्प्रमेयार्थवच्च, इत्यसमीक्षिताभिधानम् ; तस्य प्रमित्युत्पत्तौ साधकतमत्वाभावात् । यद्भावे हि प्रमितेर्भाववत्ता यदभावे चाभाववत्ता तैस्तत्र साधकतमम् ।

“भावार्भावयोस्तद्वत्ता साधकतमत्वम्” [ १० इत्यभिधानात् । ]

न चैतत्सन्निकर्षादौ सम्भवति । तद्भावेऽपि क्वचित्प्रमित्युत्पत्तेः, न हि चक्षुषो घटवदाकाशे संयोगो विद्यमानोऽपि प्रमित्युत्पादकः, संयुक्तसमवायो वा रूपादिवच्छब्दरसादौ, संयुक्तसमवेतसमवायो वा रूपत्ववच्छब्देत्वादौ । तदभावेऽपि च विशेषणज्ञानाद्विशेष्यप्रमितेः सद्भावोपगमात् । योग्यताभ्युपगमे सैवास्तु किमनेनान्तर्गड्ढनी ?

१ परः । २ लिङ्गशब्दः । ३ द्रव्यत्वकर्तृसामान्य । ४ गुणत्वकर्तृत्व । ५ प्रमितौ । ६ सतोः । ७ यस्य तस्य तत्र । ८ आदिपदेन शब्दलिङ्ग । ९ नभसि । १० गगनमिति प्रमितेः । ११ कर्तृ । १२ रसत्वस्पर्शत्वादि । १३ सन्निकर्ष । १४ दण्ड । १५ दण्डोऽस्यास्तीति तसिन् दण्डिनि । १६ सन्निकर्षस्य शक्तिः । १७ यद्यपि घटाकाशयोरविशिष्टश्चक्षुषः सन्निकर्षोऽस्ति तथापि योग्यतावशात् घट एव प्रमितिं जनयेच्चाकाशे इति सन्निकर्षावयवभ्युपगमे । १८ सन्निकर्षेण । १९ अन्विता (अग्नेन) ।

अस्य च सामग्र्यपरिणामकस्य कारकसाकल्यस्य विविधरीत्या खड्गं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—न्यायकु० चं० लि० परि० १ । सन्मति० टी० पृ० ४७१ । स्वा० रसाकर पृ० ३५ ।

प्रस्तुतग्रन्थगतखड्गे (पृ० ११ पं० ८) आयातस्य ‘सहकारिणो हि भावाः किं विशेषाधायित्वेन धर्माकारित्वेन वाऽभिधीयन्ते’ इत्याद्यस्य तुलना अर्चदकृत-हेतु-निन्दुटीकायाः—‘नैयायिकास्तु मन्यन्ते भावानां सहकारिसंज्ञिधानाऽसंज्ञिधानापेक्षया कारकसमावश्यकत्वात्...’ (पृ० १५०) इत्याद्येन विधेया ।

१ यद्यपि सन्निकर्षस्य सामान्यतो निर्देशः कणाद-न्यायसूत्र तद्भाष्ययोरपि समस्ति, तथापि तस्य प्रक्रियावर्द्ध निवरणं योडा तद्वैदिकरूपेण च न्यायवा० पृ० ११ तथा पृ० ३७३ । न्यायवा० ता० टी० पृ० ११६ तथा पृ० ५२० । न्यायमं० पृ० ४७७ । प्रज्ञा० कन्द० पृ० २३ तथा १९५ । इत्यादिषु द्रष्टव्यम् ।

२ ‘कः खलुसाधकतमार्थः ? साधकतमं प्रमाणमिति केनच वाक्यमभिधीयते नार्थः’ इति ? भाषाऽभावयोस्तद्वत्ता’ न्यायवा० पृ० ३ ।

योग्यता च शक्तिः, प्रतिपत्तुः प्रतिबन्धापायो वा ? शक्तिश्चेत् ;  
 केमतीन्द्रिया, सहकारिसान्निध्यलक्षणा वा ? न तावदतीन्द्रियाः  
 अनभ्युपगमात् । नापि सहकारिसान्निध्यलक्षणा; कारकसौकर्य-  
 पक्षोकाशेषदोषानुषङ्गात् । सहकारिकारणं चात्र द्रव्यम्, गुणः,  
 कर्म वा स्यात् ? द्रव्यं चेत्, किं व्यापि द्रव्यम्, अव्यापि द्रव्यं वा ? ५  
 न तावद् व्यापिद्रव्यम्, तत्सान्निध्यस्याकाशादीन्द्रियसन्निकर्ष-  
 ऽप्यविशेषात् । कथमन्यथा दिक्कालाकाशात्मनां व्यापिद्रव्यता ?  
 अथाऽव्यापि द्रव्यम्, तर्कि मनः, नयनम्, आलोको वा ? त्रितय-  
 ग्राप्यस्य सान्निध्यं घटादीन्द्रियसन्निकर्षवदाकाशादीन्द्रियसन्नि-  
 कर्षेऽप्यस्त्येव । गुणोऽपि तत्सहकारी प्रमेयगतः, प्रमातृगतो वा १०  
 स्यात्, उभयगतो वा । प्रमेयगतश्चेत्, कथं नाकाशस्य प्रत्यक्षता  
 द्रव्यत्वतोऽस्यापि गुणसद्भावाविशेषात् ? अमूर्तत्वाच्चास्य प्रत्यक्ष-  
 तेऽत्यप्ययुक्तम्; सामान्यैवेरप्यप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् । प्रमातृगतो-  
 ऽप्येदृष्टोऽन्यो वा गुणो गगनेन्द्रियसन्निकर्षसमयेऽस्त्येव । न  
 खलु तेनार्थे विरोधो येनानुत्पत्तिः प्रध्वंसो वा तत्सद्भावेऽर्थे १५  
 स्यात् । उभयगतपक्षेऽप्युभयपक्षोपक्षिसदोषानुषङ्गः । कर्माऽप्यर्थो-  
 नैरगतम्, इन्द्रियगतं वा तत्सहकारि स्यात् ? न तावदर्थान्तर-  
 गतम्, विज्ञानोत्पत्तौ तत्स्थानकत्वात् । इन्द्रियगतं तु तत्तत्रास्त्येव,  
 आकाशेन्द्रियसन्निकर्षे नयनोन्मीलनैदिकर्मणः सद्भावात् । प्रति-  
 बन्धोपायरूपयोग्यतोपगमे तु सर्वे सुस्थम्, यस्य यत्र यथाविधौ २०  
 हि प्रतिबन्धापायस्तस्य तत्र तथाविधार्थपरिच्छिन्तिरुत्पद्यते ।  
 प्रतिबन्धापायश्च प्रतिपत्तुः सर्वशक्तिसिद्धिप्रस्तावे प्रसाधयिष्यते ।

न च योग्यताया पदार्थपरिच्छिन्तौ साधकतमत्त्वतः प्रमाण-  
 त्वानुषङ्गात् 'ज्ञानं प्रमाणम्' इत्यस्य विरोधः, अर्थोः स्वार्थग्रहण-  
 शक्तिलक्षणभावेन्द्रियस्वभावायाः 'यदसन्निकर्षाने कारकान्तरसन्नि- २५

१ सन्निकर्षस्य । २ ऐन्द्रिया चेद् घटबहुश्चेत् न च दृश्यते इवमतोऽतीन्द्रिया ।  
 ३ परे । ४ धर्मकार्यपक्षयोः धर्मरूपे पक्षे । ५ सन्निकर्षे । ६ क्रिया । ७ रूपरूपत्व ।  
 ८ ज्ञेयपदार्थः । ९ परः । १० गन्वादेः । ११ पुण्यपापरूपः । १२ इच्छादिः । १३ नमो-  
 नयनसन्निकर्षेण । १४ सहकारिगुणस्य । १५ सन्निकर्ष । १६ गुणस्य । १७ प्रमेय ।  
 १८ सन्निकर्ष । १९ अन्यथा स्मिरार्थानामप्रतीतिप्रसङ्गात् । २० निमीलन । २१ आव-  
 रणापाय । २२ घटादौ प्रमोत्पद्यते नाकाशादाविति । २३ नुः । २४ अर्थे । २५ ज्ञानं ।  
 २६ नरस्य । २७ लक्षणस्य । २८ न च विरोधो कुतः । सामग्रीत्वत इति पर्यन्तमस्य  
 हेतुर्दृष्टव्यः । २९ आवेन्द्रिय । ३० अनुमानश्च । यदभावसन्निकर्षादिसद्भावौ धर्मिणौ ।  
 स्वार्थसर्वेदनजनकौ न भवत इति साध्यो धर्मः । तदनुपपन्नमानत्वात् । ३१ सन्निकर्ष ।

१ नु०—यदसन्निकर्षाने कारकान्तरसन्निकर्षाने श्लादि प्रमाण ० पृ० ५१ ।

धानेऽपि यन्नोत्पद्यते तत्तत्करणकम्, यथा कुठारासन्निधाने कुठार-  
र(काष्ठ)च्छेदनमनुत्पद्यमानं कुठारकरणकम्, नोत्पद्यते च भावे-  
न्द्रियासन्निधाने स्वार्थसंवेदनं सन्निकर्षादिसङ्गावेऽपीति तद्भावे-  
न्द्रियकरणकम् इत्यनुमानतः प्रसिद्धस्वभावायाः स्वार्थावभासिज्ञा-  
५ नलक्षणप्रमौणसामग्रीत्वतः तदुत्पत्तावेव साधकतमत्वोपपत्तेः ।  
तैतोऽन्यनिरपेक्षतया स्वार्थपरिच्छिन्नौ साधकतमत्वाज्ज्ञानमेव  
प्रमाणम् । तद्वेतुत्वात्सन्निकर्षादेरपि प्रामाण्यम्, इत्यप्यसमीची-  
नम्; छिदिक्रियायां करणभूतकुठारस्य हेतुत्वादयस्कारादेरपि  
प्रामाण्यप्रसङ्गात् । उपचारमात्रेणाऽस्य प्रामाण्ये च आत्मादेरपि  
१० तत्प्रसङ्गस्तद्वेतुत्वाविशेषात् ।

ननु चात्मनः प्रमातृत्वाद् घटादेश्च प्रमेयत्वान्न प्रमाणत्वं  
प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरस्य प्रमाणत्वाम्युपगमात् इत्यप्यसङ्ग-  
तम्; न्यायप्राप्तस्याभ्युपगममङ्गीर्ण प्रतिषेधायोगात्, अन्यथा  
'अचेतनादर्थान्तरं प्रमाणम्' इत्यभ्युपगमात्सन्निकर्षादेरपि तद्व-  
१५ स्यात् । किञ्च प्रमेयत्वेन सूत्रं प्रमाणत्वस्य विरोधेऽप्रमाणमप्रमेय-  
मेव स्यात्, तथा चासत्त्वप्रसङ्गः संविज्ञिष्ठत्वाद्भाविर्व्यवस्थितः,  
इत्ययुक्तमेतत्-

“प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं प्रमितिरिति चतसृज्वेवंविधास्तु तैस्त्वं

१ तस्मात् । २ ता । ३ योग्यता । ४ ज्ञाने साधकतमत्वसामर्थ्यं । ५ भावेन्द्रियात् ।  
६ सन्निकर्षं । कारकान्तर । ७ परः । ८ तत्प्रसङ्गादिति पाठान्तरम् । ९ प्रमातुः ।  
१० मुख्यज्ञान । ११ परः । १२ कर्तृत्वात् । १३ यिज्ञत्वं । १४ परेषाम् । १५ युक्त्या  
प्राप्तस्य प्रमाणत्वस्य । १६ युक्त्या रहिताभ्युपगमेन । १७ चेतनं । १८ परैः जैनैः ।  
१९ अचेतनत्वात् । २० प्रामाण्यं । २१ वस्तुनि । २२ प्रमितिविषयाः प्रमेया इति  
वचनाज्ज्ञानविषयत्वाद्भावस्य व्यवस्थितेः प्रमितिविषयप्रमेयत्वे सत्त्वेन सत्त्वव्यवस्थिति-  
स्तत्तु प्रमाणो नास्तेवाप्रमेयरूपत्वादिति भावः । २३ अप्रमेयत्व स्यादसत्त्वं च न  
स्यादिति ( हेतोः ) सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह । २४ परिच्छिप्ति ज्ञान । २५ प्रमाणं  
सन्न भवति अप्रमेयत्वात्खरविषाणवत् । २६ सत्ता । २७ पदार्थं । २८ ततश्च ।  
२९ परमार्थः ।

१ 'ननु प्रमातृप्रमेययोरपि उपलब्धिहेतुत्वात् प्रमाणत्वं प्रसज्येत विशेषो वा वक्तव्यः  
इति ? अयं विशेषः—प्रमातृप्रमेययोश्चरितार्थत्वात्—प्रमाणे प्रमाता प्रमेयं च चरितार्-  
थम्' अचरितार्थं च प्रमाणम् अतस्तदेव उपलब्धिसाधनमिति' न्याय बा० पृ० ५ ।

२ 'यत्सेप्ताणिहासाप्रशुक्तस्य प्रवृत्तिः स प्रमाता, येनार्थं प्रमिणोति तत्प्रमाणम्,  
योऽर्थः प्रमीयते तत्प्रमेयम्, यत् अर्थविज्ञानं सा प्रमितिः, चतसृषु चैवंविधास्तु तत्त्वं  
परिसमाप्यते' न्यायभा० पृ० २ ।

परिसमाप्यत इति" [ ] । कथं वा सर्वज्ञज्ञानेनाप्यस्या-  
प्रमेयत्वे तस्य सर्वज्ञत्वम् ? किञ्च प्रमाणवत् प्रमातुरपि प्रमेय-  
त्वधर्माधारत्वं न स्यात्तस्य तद्विरोधोविशेषात् । तथा चाश्वविषा-  
णस्येवास्यासत्त्वानुषङ्गः । तद्धर्माधारत्वे वा प्रमात्रा ततोऽर्थान्तर-  
भूतेन प्रवित्त्यं प्रमाणवत् । तस्यापि प्रमेयत्वे ततोऽप्यर्थान्तरभू-  
तेनैत्येकत्रात्मनिप्रमेयेऽनन्तप्रमातृमालाप्रसक्तिः । यदि धर्ममे-  
दादेकत्रात्मनि प्रमातृत्वं प्रमेयत्वं चाविरुद्धं तर्हि प्रमाणत्वमप्य-  
विरुद्धमनुमन्यताम् । ततो निराकृतमेतत्-“प्रमातृप्रमेयाभ्याम-  
र्थान्तरं प्रमाणम्” इति ।

चक्षुषश्चाप्राप्यकारित्वेनाग्रे समर्थनात्कथं घटेन संयोगस्तदभा-  
वात्कथं रूपादिना संयुक्तसमर्थोपादिः ? इत्यव्ययैः सन्निकर्ष-  
प्रमाणवादिनाम् । सर्वज्ञाभावोऽन्ध्याणां परमाण्वादिभिः साक्षा-  
त्सम्बन्धाभावात् ; तथाहि-<sup>प्रमाण</sup> <sup>साक्षात्</sup> साक्षात्परमाण्वादिभिः स-  
म्बध्यते इन्द्रियत्वावसदादीन्द्रियवत् । <sup>नैति</sup>

योगजधर्मानुग्रहो तस्य तैः साक्षात्सम्बन्धश्चेत् ; कोऽयमिन्द्रि-  
यस्य योगजधर्मानुग्रहो नाम-स्वविषये प्रवर्तमानस्यातिशयाधौ-  
नम्, सहकारित्वमात्रं वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः ; परमाण्वादौ स्वय-  
मिन्द्रियस्य अवर्तनाभावाद्, भावे तदनुग्रहवैयर्थ्यम् । तैत एवास्य  
तैत्र प्रवृत्तौ परस्परश्रयः-सिद्धे हि योगजधर्मानुग्रहे तत्र तस्य  
प्रवृत्तिः, तस्यां च योगजधर्मानुग्रह इति । द्वितीयपक्षोप्यस-<sup>२०</sup>

१ परिपूर्णा याति अत्रैवान्तं प्राप्नोतीत्यर्थः । २ इति युक्तं तच्चतुर्थसंख्यापूरकस्य  
प्रमाणस्याभावादयुक्तमेव प्रामाण्यस्य । ३ सति । ४ प्रमेयत्वेन प्रमातृत्वस्य ।  
५ प्रमातृः । ६ प्रमात्रान्तरस्यापि । ७ सभाव । ८ प्रमित्ताभावः प्रमाता । ९ प्रमाविषयः  
प्रमेयः । १० प्रमितिक्रियां प्रति करणत्वम् । ११ आत्मनः । १२ प्रमाणहेतुत्वात् ।  
१३ प्रमात्रान्तर्गतत्वात्प्रमाणस्य । १४ आदिपदेन रूपत्वादिर्ग्राह्यः । १५ (संयुक्त-  
समवेतसमवायादिः) । १६ लक्ष्यैकदेशवृत्तिरव्याप्तिरिति वचनात्तस्य स्पर्शादिचतुर्वि-  
न्द्रेषु प्राप्यकारित्वं चक्षुष्यप्राप्यकारित्वमित्यव्याप्तिः । १७ समाधिः । १८ ईश-  
रस्य । १९ परः । २० अदृष्ट । २१ उपकारात् । २२ करणं । २३ धर्माद् ।  
२४ परमाण्वादौ ।

I ‘अस्मादिच्छिन्ना तु योगिना युक्तानां योगजधर्मानुग्रहीतेन मन्त्रा स्वात्मान्त-  
रान्तरादिषु कालपरमाणुवायुमनस्य तत्समवेतयुगकर्मसाधन्यविशेषेषु समवाये चाऽवितर्क-  
स्वरूपदर्शनमुत्पद्यते । विद्युत्तानां पुनः चतुष्टयसन्निकर्षाद् योगजधर्मानुग्रह-  
सामर्थ्यात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टेषु प्रत्यक्षमुत्पद्यते’ ग्रन्थ० भा० पृ० १८७ । यत्-  
तत्सकस्य व्योमवती कन्दली च दीक्षाऽनुसन्नेवा ।

म्भाव्यः; स्वविषयातिक्रमेणास्य योगजधर्मसहकारित्वेनाप्यनुग्रहा-  
 १ योगात्, अन्यथैकैस्यैवेन्द्रियस्याशेषरसादिविषयेषु प्रवृत्तौ तदनु-  
 ग्रहप्रसङ्गः स्यात् । अथैकमेवान्तःकरणं ( योगजधर्मानु)गृहीतं युग-  
 पत्सुक्ष्माद्यशेषार्थविषयज्ञानजनकमिष्यते तन्न; अणुमनसोऽशे-  
 ५ पार्थैः संहृतसम्बन्धामावृतस्तज्ज्ञानजनकत्वासम्भवात्, अन्यथा  
 दीर्घशङ्कुलीभक्षणादौ सकृच्चक्षुरादिभिस्तत्सम्बन्धप्रसक्ते रूपादि-  
 ज्ञानपञ्चकस्य सकृदुत्पत्तिप्रसङ्गात्-

“युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्” [न्यायसू० १।१।१६] इति  
 विरुध्येत । क्रमशोऽन्यत्र तद्दर्शनादत्रापि क्रमकल्पनायां योगिनेः  
 १० सर्वार्थेषु सम्बन्धस्य क्रमकल्पनास्तु तैश्चदर्शनाविशेषात् । तदनु-  
 ग्रहसामर्थ्याद् ईष्टातिर्क्रमेणैव च आत्मैव समाधिविशेषोत्पत्त्यधर्म-  
 माह्लात्प्रादन्तःकरणनिरपेक्षोऽशेषार्थग्राहकोऽस्तु किमदृष्टपरि-  
 कल्पनया ? तच्चाणुमनसोऽशेषार्थैः साक्षात्सकृत्सम्बन्धो घटते ।

अथ परम्परया, तथा हि—मनो महेश्वरेण सम्बद्धं तेन च  
 १५ घटादयोऽर्थास्तेषु रूपादय इति, अत्रार्थैशेषार्थज्ञानासम्भवः ।  
 सम्बन्धसम्बन्धोऽपि हि तैस्याशेषार्थैर्वर्तमानैरेव नानुत्पन्नैर्विनष्टैः ।  
 तैर्काले तैरपि सह सोऽस्तीति चेन्न; तदा वर्तमानार्थसम्बन्ध-  
 सम्बन्धस्यासम्भवात् । ततोऽयमन्य एवेति चेत्, तर्हि तज्जनितज्ञा-  
 नमपि अनुत्पन्नविनष्टार्थकालीनसम्बन्धसम्बन्धजनितज्ञानादन्य-

२० दिति एकज्ञानेनाशेषार्थत्वासम्भवः । बहुभिरेव ज्ञानैस्तदिति  
 चेत्, तेषां किं क्रमेण भावः, अक्रमेण वा ? क्रमभावे, नानन्तेनापि  
 कालेनानन्तता संसैरस्य प्रतीयेत—य एव हि सम्बन्धसम्बन्ध-  
 वशाज्ज्ञानजनकोऽर्थः स एव तज्जनितज्ञानेन गृह्यते नान्य  
 इति । अक्रमभावस्तु नोपपद्यते विनष्टानुत्पन्नार्थज्ञानानां वर्तमा-  
 २५ नार्थज्ञानकालेऽसम्भवात् । न हि कारणभावे कार्ये नामातिप्र-  
 सङ्गात् । न च बौद्धानामिव यौगानां विनष्टानुत्पन्नस्य कारणत्वं  
 सिद्धान्तविरोधात् । नित्यत्वादीश्वरज्ञानस्योक्तैर्दोषानवकाश

१ इन्द्रियस्य । २ विषयान्तरेऽपि सहकारित्वरूपाऽनुग्रहश्चेत् । ३ योगजन्यस्य ।  
 ४ परः । ५ परः । ६ युगपत् । ७ परमते । ८ तदर्थैः सकृत्सम्बन्धश्चेन्मनसः ।  
 ९ मनसः । १० परमन्वः ॥ ११ परः । १२ घटादौ । १३ मनःसम्बन्धः ।  
 १४ सर्वज्ञस्य । १५ मनसः । १६ क्रमेण मनःसम्बन्धः । १७ परः । १८ क्रमेण  
 मनःसम्बन्धस्य । १९ युगपदशेषार्थग्रहणमितीष्टौ । २० परः । २१ अशेषार्थैरणुमनसो  
 हि सम्बन्धः । २२ सर्वगतत्वात् (महेश्वरस्य) । २३ सम्बन्धसम्बन्धे । २४ मनसः ।  
 २५ वेधामसत्त्वात् । २६ परः । २७ अनुत्पन्नविनष्टार्थकाले । २८ अनुत्पन्नविन-  
 ष्टार्थसम्बन्धसम्बन्धात् परः । २९ नृणां । ३० ईश्वरेण । ३१ युगपत् । ३२ परः ।  
 ३३ असर्वज्ञत्वज्ञानासम्भवः ।

त्यप्यवाच्यम्; तन्नित्यत्वस्येश्वरनिराकरणप्रघट्टके निराकरिष्य-  
माणत्वात् । तच्च सन्निकर्षोप्यनुपचरितप्रमाणव्यपदेशभाक् ॥ छ ॥

एतेनेन्द्रियैर्वृत्तिः प्रमाणमित्यभिदधानः साङ्ख्यः प्रत्याख्यातः ।  
ज्ञानस्वभावमुख्यप्रमाणकरणत्वात् तत्राप्युपचारतः प्रमाणव्यव-  
हाराभ्युपगमात् । न चेन्द्रियेभ्यो वृत्तिर्व्यतिरिक्ता, अव्यतिरिक्ता<sup>५</sup>  
वा घटते । तेभ्यो हि यैद्यव्यतिरिक्तसौ; तदा श्रोत्रादिमात्रमेवासौ,  
तच्च सुप्ताद्यवस्थायामप्यस्तीति तदाप्यर्थपरिच्छित्तिप्रसक्तेः सुप्ता-  
दिव्यवहारोच्छेदः । अथ व्यतिरिक्तां, तदाप्यसौ किं तेषां धर्मः,  
अर्थान्तरं वा ? प्रथमपक्षे वृत्तेः श्रोत्रादिभिः सह सम्बन्धो वैकव्यः-  
स हि तादात्म्यम्, सैमवायादिर्वा स्यात् ? यदि तादात्म्यम्; १०  
तदा श्रोत्रादिमात्रमेवासाविति पूर्वोक्त एव दोषोऽनुषज्यते । अथ  
सैमवायः; तदास्य व्यपिनः सम्भवे व्यापिश्रोत्रादिसङ्गावे च ।

“प्रतिनियतदेशावृत्तिरभिधेय्येत्” [ ] इति पूर्ववत् ।  
अथ संयोगः, तदा द्वैव्यान्तरत्वप्रसक्तेर्न तद्वर्गो वृत्तिर्भवेत् ।  
अर्थान्तरमसौ; तदा नासौ वृत्तिरर्थान्तरत्वात् पदार्थान्तरवत् । १५  
अर्थान्तरत्वेऽपि प्रतिनियतविशेषसङ्गावासेषामसौ वृत्तिः; नन्वसौ  
विशेषो यदि तेषां विषयप्राप्तिरूपः; तदेन्द्रियैर्वादिसन्निकर्ष एव  
नामान्तरेणोक्तः स्यात् । स चानन्तरमेव प्रतिव्यूढः । अथाऽर्थो-  
कारपरिणतिः; न; अस्या बुद्धावेवाभ्युपगमात् । न च श्रोत्रा-

१ प्रज्ञावे । २ सन्निकर्षप्रमाणनिराकरणेन । ३ नेत्रादीनामुदाहरणादिः । ४ अभिज्ञा ।  
५ सूक्ष्मगतप्रमत्तादि । ६ हेतोः । ७ चाग्रदृष्ट्याया यथा । ८ प्रवृद्ध । ९ भिन्ना ।  
१० स्वरूप । ११ परैः । १२ आदिपदेन संयोगः । १३ वृत्तेः श्रोत्रादिभिः ।  
१४ नित्य एको व्यापी समवायः । १५ इन्द्रियाणां व्यक्तीक्रियते । १६ भवन्मत्तं  
नश्यति । १७ द्वयोर्द्रव्ययोः संयोगः । इति हेतोः संयोगित्वात् । १८ इन्द्रियवृत्तेः ।  
१९ परः । २० अर्थः । २१ परः । २२ वृत्तिः । २३ परिणतेः । २४ अर्थोकार-  
परिणतिः किम् । २५ साङ्ख्यैः । २६ किंच ।

१ प्रस्तुतदिशा सन्निकर्षस्य खड्गनतत्त्वार्थको० पृ० १६५ । प्रमाणप० पृ०  
५२ । न्यायकु० चं० लि० परि० १ । स्वा० रत्नाकर पृ० ५४ । इत्यादिषु  
द्रष्टव्यं बुद्धीर्नयंच ।

२ ‘इन्द्रियप्रणालिकया बाह्यवस्तुपरागात् सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणः  
प्रधानावृत्तिः प्रत्यक्षम्’ । योगद० व्यासभा० पृ० ९७ । ३

‘अत्रेवं प्रक्रिया इन्द्रियप्रणालिकया अर्थसन्निकर्षेण लिंगज्ञानेन वा आद्ये बुद्धेः  
आर्णोकारावृत्तिः जायते’ । सांख्यप्र० भा० पृ० ४७ ।

विषयैश्चित्तसंयोगाद् बुद्धीन्द्रियप्रणालिकात् ।

प्रत्यक्षं सांप्रतं ज्ञानं विशेषसावधारकम् ॥ २३ ॥ योगकारिका ।



दिस्वभावा तद्धर्मरूपा अर्थान्तरस्वभावा वा तत्परिणतिर्घटते;  
प्रतिपादितदोषानुपज्ञात् । न च परपक्षे परिणामः परिणामिनो  
भिन्नोऽभिन्नो वा घटते इत्यग्रे विचारयिष्यते ॥ छ ॥

एतैन प्रमाकरोपि 'अर्थतथात्वप्रकाशको ज्ञातृव्यापारोऽज्ञानरू-  
५ पोऽपि प्रमाणम्' इति प्रतिपादयन् प्रतिव्यूढः प्रतिपत्तव्यः, सर्व-  
ज्ञानस्योपचारादेव प्रसिद्धेः । न च ज्ञातृव्यापारस्वरूपस्य  
किञ्चित्प्रमाणं ग्राहकम्-तद्धि प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, अन्यद्वा ?  
यदि प्रत्यक्षम्; तर्हि खंसंवेदनम्, बाह्येन्द्रियजम्, मनःप्रभवं  
वा ? न तावत्खंसंवेदनम्; तस्याङ्गीने विरोधादर्नभ्युपगमाच्च ।  
१० नापि बाह्येन्द्रियजम्; इन्द्रियाणां स्वसम्बन्धेऽर्थे ज्ञानजनकत्वोप-  
गमात् । न च ज्ञातृव्यापारेण सह तेषां सम्बन्धः; प्रतिनियतरूपा-  
दिविपर्येत्वात् । नापि मनोजन्यम्; तैथ्याप्रतीत्यभावादनभ्युपग-  
मादतिप्रसङ्गाच्च । नाप्यनुमानम्;

“ज्ञातसम्बन्धस्यैकदेशदर्शनादसंभ्रिकृष्टेऽर्थे बुद्धिः” [ शाबर-  
१५ भा० १।१।५ ] इत्येवंलक्षणत्वात्तस्य । सम्बन्धश्च कार्यकारण-  
भार्वादिनिराकरणेन निर्यमलक्षणोऽभ्युपगम्यते । तदुक्तम्-

१ साङ्ख्य । २ इन्द्रियस्य । ३ इन्द्रियवृत्तिः प्रमाणमित्येतन्निराकरणेन । ४ चैतना-  
समवायाभेदेन आत्मा न स्वरूपतोऽतस्तस्यापारोऽपि (अज्ञानरूपः) । ५ (निराकृतः) ।  
६ मते । ७ स्यात् । ८ अर्थापत्तिरूपम् । ९ अनुमृतिः प्रत्यक्षमिदमात्मि ।  
१० ज्ञातृव्यापारे अभ्युत्तिः । ११ प्रामाण्यैः । १२ ज्ञातृव्यापारस्याऽत्यन्तं परोक्षत्वाच्च ।  
१३ अत्यन्तपरोक्षतया ज्ञातृव्यापारग्राहकत्वप्रकारेण मनोजन्यप्रत्यक्षस्य । १४ परैः ।  
१५ अर्थादेरप्यतीन्द्रियस्य मनःप्रत्यक्षत्वं स्यात् परमाण्वादेरपि ग्राहकत्वं मनसः स्यात् ।  
१६ नुः । १७ इन्द्रियैः । १८ तादात्म्यादि । १९ अविनाभाव । २० परेण ।

१ इन्द्रियवृत्ति-प्रमाणत्वादस्य खंडने विविधरीत्या निम्नप्रवेष्टु अवलोकनीयम्  
न्यायभा० ता० टी० पृ० २३३ । न्यायमं० पृ० २६ । तत्सर्वार्थो० पृ० १८७ ।  
न्यायकु० चं० लि० परि० १ । सा० रत्नाकर पृ० ७२ ।

२ 'तेन जन्मैव विषये बुद्धेर्न्यापार इत्यते ।

तदेव च प्रमाकूपं तद्वती करणं च वीः ॥ ६१ ॥

न्यापारो न यदा तेन तदा नोत्पद्यते फलम् ॥ ६१ ॥ सीमा० को० पृ० १५२ ।

'अथवा ज्ञानत्रि-<sup>इष्टम्</sup> चः कर्तृभूतस्य ज्ञातृमनः कर्मभूतस्य च अर्थस्य परस्पर  
सम्बन्धो न्यातृन्याप्यर-<sup>इष्टम्</sup> लक्षणः स मानसप्रत्यक्षावगतो विज्ञानं कल्पयति' शास्त्रदी०  
पृ० २०२ ।

३ 'ज्ञातसम्बन्धस्यैकदेशदर्शनात् एकदेशान्तरेऽसंभ्रिकृष्टे बुद्धिः' शाबर भा० पृ० ८ ।

कार्यकारणभावादिसम्बन्धानां द्वयी गतिः ।  
 नियमानियमाभ्यां स्यादनियमादनङ्केता ॥ १ ॥  
 सर्वेऽप्यनियमा ह्येते नानुसोत्पत्तिकारणम् ।  
 नियमात्केवलादेव न किञ्चिन्नानुमीयते ॥ २ ॥  
 एवं परोक्तसम्बन्धप्रत्याख्याने कृते सति ।  
 नियमो नाम सम्बन्धः स्वैमतेनोच्यतेऽधुना ॥ ३ ॥ [ ]  
 [त्यादि ।

सं च सम्बन्धः किमन्वयनिश्चयद्वारेण प्रतीयते, व्यतिरेक-  
 निश्चयद्वारेण वा ? प्रथमपक्षे किं प्रत्यक्षेण, अनुमानेन वा तन्नि-  
 श्चयः ? न तावत्प्रत्यक्षेण, उर्मयरूपग्रहणे ह्यन्वयनिश्चयः, न च १०  
 शातृव्यापारस्वरूपं प्रत्यक्षेण निश्चीयते इत्युक्तम् । तदभावे च- न  
 तत्प्रतिबद्धत्वेनार्थप्रकाशनलक्षणहेतुरूपमिति । नाप्यनुमानेन,  
 अस्य निश्चितान्वयहेतुप्रभवत्वाम्युपगमात् । न च तस्यान्वयनि-  
 श्चयः प्रत्यक्षसमधिगम्यः पूर्वोक्तदोषानुषङ्गात् । नाप्यनुमान-  
 गम्यः, तदन्तरप्रथमानुमानाभ्यां तन्निश्चयेऽनैवस्येतेरतराभ्या- १५  
 नुषङ्गात् । नापि व्यतिरेकनिश्चयद्वारेण, व्यतिरेको हि साध्याभावे  
 हेतोरभावः । न च प्रकृतसाध्याभावः प्रत्यक्षाधिगम्यः, तस्य  
 शातृव्यापारविषयत्वेन तद्भाववत्तदभावेऽपि प्रवृत्तिविरोधात् ।  
 समर्थितं चास्य तद्विषयत्वं प्रागिति । नाप्यनुमानाधिगम्यः,  
 अर्तं एव ।

२०

अथानुपलम्भनिश्चयः अत्रापि किं दृश्यानुपलम्भोऽभिप्रेतः,  
 अदृश्यानुपलम्भो वा ? यद्यदृश्यानुपलम्भः, नासौ गमकोऽतिप्रस-  
 ङ्गात् । दृश्यानुपलम्भोऽपि चतुर्धा भिद्यते स्वभाव-कारण-व्याप-  
 कानुपलम्भविरोद्धोपलम्भमेवात् । तत्र न तावदाद्यो युक्तः, स्वैमा-

१ एव सति च किम् । २ गोपालवटिकादौ व्यभिचारात् । ३ अनुमानं प्रति ।  
 ४ सौगतासुक्तं । ५ प्रमाकरमतेन । ६ साध्यसाधनयोरविनाभावलक्षणः । ७ शातृ-  
 व्यापारे सति अर्थप्रकाशलक्षणो हेतुर्न षट्ते । ८ साध्यसाधनरूपः । ९ पूर्वम् ।  
 १० शातृव्यापारस्य । ११ सम्बन्धः । १२ अर्थप्रकाशो शातृव्यापारे हेतुस्तत्तसिन्  
 सत्त्वोपपन्नमानत्वादित्यनुमानेन । १३ हेतोः । १४ द्वितीयानुमानः । १५ अर्थ-  
 प्रकाशान्यथानुपपत्तिशातृव्यापारयो(र)न्वयः तस्मिन्नुमानं । तत्स्वयमेव जानाति  
 अनुमानान्तरेण वा । प्रथमस्येतेरतराभ्याम् । द्वितीयेऽनवस्था । १६ शातृव्यापारलक्षणः ।  
 १७ यद्यि यद्भावग्राहकं तदेव तद्भावग्राहकमिति । १८ तद्भाववत्तदभावेऽपि प्रवृत्ति-  
 विरोधात् । १९ व्यतिरेकः शातृव्यापार आत्मनि नास्ति अनुपलम्भमानत्वात् खर-  
 श्वश्वदित्यनुपलम्भस्वरूपम् । २० पदार्थानां । २१ पिशाचपरमाण्वादेरिति गमकर्तृ  
 स्यात् । २२ शुद्धभूतलोपलम्भ एव स्वभावानुपलम्भः ।

वानुपलम्भस्यैवंविधे विषये व्यापाराभावात्, एकज्ञानसंसर्गिणोप-  
 रान्तरोपलम्भरूपत्वात्तस्य । न च ज्ञातव्यापारेण सह कैस्यचिदे-  
 कज्ञानसंसर्गित्वं सम्भवतीति । नापि द्वितीयः; सिद्धे हि कार्य-  
 कारणभावे कारणानुपलम्भः कार्योभावनिश्चायकः । न च ज्ञात-  
 ५ व्यापारस्य केनचित् सह कार्यत्वं निश्चितम्; तस्यादृश्यत्वात् ।  
 प्रत्यक्षानुपलम्भनिवन्धनश्च कार्यकारणभावः । तत एव केनचित्सह  
 व्याप्यव्यापकभावस्यासिद्धेर्न व्यापकानुपलम्भोऽपि तन्निश्चायकः ।  
 विरुद्धोपलम्भोपि द्विधा मिद्यते विरोधस्य द्विविधत्वात् । तथा  
 हि-को(एको) विरोधोऽविकलकारणस्य भवतोऽन्यभावेऽभावा-  
 १० त्सहानवस्थालक्षणः शीतोष्णयोरिव, विशिष्टात्प्रत्यक्षाभिधीयते ।  
 न च प्रकृतं साध्यमविकलकारणं कैस्यचिद्भावे निवर्त्तमानमुपल-  
 भ्यते; तस्यादृश्यत्वात् । द्वितीयस्तु परस्परपरिहारस्थितिलक्षणः ।  
 सोऽनुपलम्भस्यभावभावनिष्ठत्वात्प्रकृतविषये न सम्भवति ।

किञ्चानुपलम्भोऽभावप्रमाणं प्रमाणपञ्चकविनिवृत्तिरूपम् । तच्च  
 १५ ज्ञातमेवाभावसाधकम्; कृतयत्नस्यैव प्रमाणपञ्चकविनिवृत्तेरभा-  
 वसाधकत्वोपगमात् । तदुक्तम्-

गत्वा गत्वा तु तान्देशान् यद्यर्थो नोपलभ्यते ।

तैदान्यकारणमौवादसन्नित्यवगम्यते ॥

[मीमांसालो० वा० अर्था० श्लो० ३८]

२० तज्ज्ञानं चान्यस्यादभावप्रमाणात्, प्रमेयाभावाद्वा ? तत्राद्य-  
 पक्षेऽनवस्थाप्रसङ्गः-तस्याप्यन्यस्यादभावप्रमाणात्परिज्ञानात् । प्रमे-  
 याभावात्तज्ज्ञाने च-इतरेतराश्रयत्वम् ।

१ अत्यन्तपरोक्षे । २ वटेन सह प्रतिषेध्याधारभूतभूतलम् । ३ यदि भूतलाधार-  
 तयापि विधेयं तदा प्रत्यक्षेणैव लभ्येत । ४ आत्मनः । ५ ज्ञातुव्यापारलक्षणं ।  
 ६ कारणेन । ७ अन्यतः व्यतिरेकः (प्रत्यक्षेणान्वयव्यतिरेकविन्यसनः) । ८ ज्ञातु-  
 व्यापारस्यादृश्यत्वादेव । ९ आत्मादिव्यापारस्य । १० ज्ञातुव्यापाराभावः । ११ ता ।  
 १२ शीतकालादेः । १३ जायमानस्य । १४ वहिः । १५ ज्ञातुव्यापाररूपं । १६ विरो-  
 धिनः । १७ ज्ञातुव्यापारस्य । १८ विरोधः । १९ ज्ञेयः । २० अर्वाणुपलम्भकाले ।  
 २१ इन्द्रियमावस्थाशोकाभावस्य च कारणस्य । २२ अद्यप्रमाणपञ्चकाभावस्य प्रथम-  
 प्रमाणपञ्चकविषयप्रमाणपञ्चकाभावात् परित्ज्ञानं तस्यापि प्रमाणात्.....  
 ....द्वितीयस्याद्वितीयप्रमाणपञ्चकविषयप्रमाणपञ्चकाभावात् परित्ज्ञानं तस्याप्येव-  
 मित्यादि प्रकारेण । २३ सिद्धे हि प्रमेयाभावे अभावप्रमाणपरित्ज्ञानं सिध्यति तत्सिद्धौ  
 च प्रमेयाभावसिद्धिरिति ।

किञ्चासौ ज्ञातृव्यापारः कारकैर्जन्यः, अजन्यो वा ? यद्यजन्यः, तदासावभावरूपः, भौवरूपो वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः; तस्याभावरूपत्वेऽर्थप्रकाशनलक्षणफलजनकत्वविरोधात् । विरोधे वा फलार्थिनः कारकान्वेषणं व्यर्थम्, तत एवाभिमतफलसिद्धेर्विश्वमद्विष्टं च स्यात् । अथ भावरूपोऽसौ; तत्रापि किं नित्यः, अनित्यो वा ? न तावन्नित्यः; अन्धादीनामप्यर्थदर्शनप्रसङ्गात् सुप्तादिव्यवहाराः भावः सर्वसर्वज्ञताप्रसङ्गः कारकान्वेषणवैयर्थ्यं च स्यात् । अथानित्यः; तदयुक्तम्; अजन्यस्वभावभावरूपस्यानित्यत्वेन केनचिद्व्यपन्नभ्युपगमात् । भवतु वाऽनित्यः; तथाप्यसौ कालान्तरस्थायी, क्षणिको वा ? न तावत्कालान्तरस्थायी; १०

“क्षणिका हि सा न कालान्तरमवतिष्ठते” [शाबरभा०] इति वचसो विरोधप्रसङ्गात् । कारकान्वेषणं चापार्थक्यम्-तत्कालं यावत्तत्फलस्यापि निष्पत्तेः । क्षणिकत्वे; विश्वं निखिलार्थप्रतिभासरहितं स्यात् क्षणानन्तरं तस्यासत्त्वेनार्थप्रतिभासाभावात् । द्वितीयादिक्षणेणु स्वत एवात्मनो व्यापारान्तरोत्पत्तेर्नायं दोषः; १५ इत्यप्यसङ्गतम्; कारकानाद्यर्त्तस्य देशकालस्वरूपप्रतिनियमायोगात् । किञ्च; अनवरतव्यापाराभ्युपगमे तज्जन्यार्थप्रतिभासस्यापि तथा र्भावात् तद्व्यत्यः सुप्ताद्यभावदोषानुषङ्गः । तत्राऽजन्योऽसौ ।

नापि जन्यः; यतोऽसौ क्रियात्मकः, अक्रियात्मको वा ? प्रथमपक्षे किं क्रिया परिस्पन्दात्मिका, तद्विपरीता वा ? तत्राद्यः पक्षो- २० युक्तः; निश्चलस्यात्मनः परिस्पन्दात्मकक्रियाया अयोगात् । नापि द्वितीयः; तथाविधक्रियायाः परिस्पन्दाभावरूपतया फलजनकवायोगात्, अभावस्य फलजनकत्वविरोधात् । न चैतसौ परिस्पन्दाभावा तद्विपरीता वा-कारकफलान्तरालवैर्त्तिनी प्रमाणतः प्रतीयते । तत्र क्रियात्मको व्यापारः । नापि तद्विपरीतः; अक्रियात्मको २५ हि व्यापारो बोधरूपः, अबोधरूपो वा ? बोधरूपत्वे; प्रमाद्वत्प्रमा-

१ खरविषाणादौ । २ आकाशादौ । ३ किञ्च । ४ अभावरूपव्यापारादेव । ५ अगत । ६ सहकारिकारणैर्नित्यस्यानुपकार्यत्वात् । ७ प्रागभावाद् व्यभिचारमाशङ्क्य भावशब्दः प्रयुक्तः । ८ यदावस्य । ९ वादिना नरेण । १० ज्ञातृव्यापाररूपा क्रिया । ११ ज्ञातृव्यापार । १२ परः । १३ पुरुषस्य । १४ ज्ञातृव्यापारस्य । १५ परैः । १६ सर्वदाभावात् । १७ किञ्च । १८ प्रमाता । १९ अव्यप्रकाश । २० ज्ञातृव्यापारलक्षणा ।

१ ‘क्षणिका हि सा न पुन्यन्तरकालमवतिष्ठते’ शाबरभा० पृ० ७ । , , , ,

णान्तरगम्यता न स्यात् । अवोघरूपता तु व्यापारस्यायुक्ताः  
चिद्रूपस्य ज्ञातुरचिद्रूपव्यापारायोगात् । 'जानाति' इति च क्रिया  
ज्ञातृव्यापारो भवताभिधीयते, स च बोधात्मक एव युक्तः ।

किञ्चासौ धर्मिस्वभावः, धर्मस्वभावो वा ? प्रथमपक्षे-ज्ञातृवन्न  
५ प्रमाणान्तरगम्यता । द्वितीयेपि पक्षे-धर्मिणो ज्ञातृव्यतिरिक्तो  
व्यापारः, अव्यतिरिक्तो वा, उभयम्, अनुभयं वा ? व्यतिरिक्तत्वे-  
सम्बन्धाभावः । अव्यतिरेके-ज्ञातैर्वै तत्स्वरूपवत् । उभयपक्षे तु-  
विरोधः । अनुभयपक्षोऽप्ययुक्तः, अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणां सहृत्  
प्रतिषेधायोगात् एकनिषेधेनापरविधानात् ।

- १० किञ्च, व्यापारस्य कारकजन्यत्वोपगमे तज्जनने प्रवर्तमानानि  
कारकाणि किमपरव्यापारसापेक्षाणि, न वा ? तत्राद्यपक्षे अन-  
वस्था, व्यापारान्तरस्याप्यपरव्यापारान्तरसापेक्षैस्तैर्जननात् । व्या-  
पारनिरपेक्षाणां तज्जनकत्वे-फलजनकत्वमेवास्तु किमदृष्टव्यापार-  
कल्पनाप्रयासेन ? अस्तु वा व्यापारः, तथाप्यसौ प्रकृतकार्ये  
१५ व्यापारान्तरसापेक्षः, निरपेक्षो वा ? न तावत्सापेक्षः, अपरापर-  
व्यापारान्तरसापेक्षायामेवोपेक्षीणशक्तिकत्वेन प्रकृतकार्यजनकत्वा-  
भावप्रसङ्गात् । व्यापारान्तरनिरपेक्षस्य तज्जनकत्वे कारकाणामपि  
तथा तदस्तु विशेषाभावात् । अथैवं पर्यनुयोगः सर्वमौवस्वभाव-  
व्यावर्तकः, तथाहि-बहेर्दाहकस्वभावत्वे गगनस्यापि तत्स्यात् इत-  
२० रथा वहेरपि न स्यात्, तदसमीक्षिताभिधानम्, प्रत्यक्षसिद्धत्वे-  
नात्र पर्यनुयोगस्यानवकाशात्, व्यापारस्य तु प्रत्यक्षसिद्धत्वाभा-  
वाच्च तथैवभावभावलम्बनं युक्तम् ।

अर्थप्राकट्यं व्यापारमन्तरेणानुपपद्यमानं तं कल्पयतीत्यर्थाप-  
पत्तिस्तत्सिद्धिरित्यपि फलप्राप्तम्, अर्थप्राकट्यं हि ततो भिन्नम्,  
२५ अभिन्नं वा ? यद्यभिन्नम्, तदाऽर्थ एवेति यावदर्थं तत्सङ्गा-  
वात्सुसार्यभावः । मेदे-सम्बन्धासिद्धिरनुपकारात् । उपकारेऽन-  
वस्था । किञ्च, एतदर्थंथानुपपद्यमानत्वेनानिश्चितं तं कल्पयति,

- १ ज्ञातृव्यापारोक्तिः अर्थप्राकट्यान्यथानुपपत्तिरर्थापत्तिरूपः । २ अक्रियात्मक-  
त्वात् । ३ अभिन्नत्वात् । ४ धर्मस्वरूपत्वात् । ५ वस्तुवर्माणा । ६ परे । ७ कार-  
काणा । ८ अर्थप्रकाशः । ९ अर्थप्रकाशकृत्वे । १० नष्टः । ११ निरपेक्षत्वप्रकारेण ।  
१२ प्रसङ्गः । १३ पदार्थः । १४ व्यापारान्तरनिरपेक्षत्वप्रकारेण कार्यजनकत्वकृत्वेण ।  
१५ अन्यथा इत्युत्तरीय विकल्पं शोधयति । १६ अर्थप्राकट्यस्य सर्वदा भावात् ।  
१७ उपकारस्यानुपकारकरणे सम्बन्धो न स्यादित्युपकारकत्वेन । १८ ज्ञातृव्यापार-  
मन्तरेण । १९ अर्थप्राकट्यम् । २० व्यापारः ।

निश्चितं वा ? न तावदनिश्चितम् ; अतिप्रसङ्गात्-तथाभूतं हि  
 उच्यथा तं कल्पयति तथा येन विनाप्युपपद्यते तदपि किं न कल्प-  
 यत्यविशेषात् ? निश्चितं चेत् : क तस्यान्यथानुपपन्नत्वनिश्चयः-  
 दृष्टान्ते, साध्यधर्मिणि वा ? दृष्टान्ते चेत् ; लिङ्गस्यापि तत्र साध्य-  
 नियतत्वनिश्चयोऽस्तीत्यनुमानमेवार्थापत्तिरिति प्रमाणसंख्याव्या-  
 घातः । साध्यधर्मिण्यपि कुतः प्रमाणान्तस्य तन्निश्चयः ? विपक्षे-  
 ऽनुपपलम्भाच्चेत् ; न ; तस्य सर्वात्मसम्बन्धिनोऽसिद्धानैकान्ति-  
 कत्वादित्युक्तम् । ततः प्रमाणतोऽचेतनस्वभावज्ञातृव्यापारस्या-  
 प्रतीतिः कथमर्थतथात्वप्रकाशकोऽसौ यतः प्रमाणं स्यात् ॥ छ ॥

ज्ञानस्वभावस्य ज्ञातृव्यापारस्यार्थतथात्वप्रकाशकतया प्रमाण-<sup>१०</sup>  
 तान्म्युपगमात् भट्टस्यानन्तरोक्ताशेषदोषानुपङ्गः, इत्यप्यसमीक्षि-  
 ताभिधानम् ; सर्वथा परोक्षज्ञानस्वभावस्यास्यासत्त्वेन प्रतिपाद-  
 यिष्यमाणत्वात् । सकलज्ञानानां स्वपरव्यवसायात्मकत्वेन व्यव-  
 स्थितेः इत्यलं प्रपञ्चेन । 'तन्नामानं प्रमाणमन्यत्रोपचारात्' इत्य-  
 भिप्रायवान् प्रमाणस्य ज्ञानविशेषणत्वं समर्थयमानः प्राह— <sup>१५</sup>

हितोऽद्वितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ॥ २॥

हितं सुखं तत्साधनं च, तद्विपरीतमद्वितम्, तयोः प्राप्तिपरि-  
 हारौ । प्राप्तिः स्वरूपादेयभूतार्थक्रियाप्रसाधकौर्धप्रदर्शकत्वम् ।  
 अर्थक्रियार्थी हि पुरुषस्तन्निष्पादनसमर्थं प्राप्तुकामस्तत्प्रदर्शकमेव  
 प्रमाणमन्वेपत इत्यस्य प्रदर्शकत्वमेव प्रोपकत्वम् । न हि तेन प्रद-<sup>२०</sup>  
 र्शितेऽयं प्राप्त्यभावः । न च क्षणिकस्य ज्ञानस्यार्थप्राप्तिकालं यावद-  
 वर्त्तमानाभावात्कथं प्रापकतेति वैच्यम् ? प्रदर्शकत्वव्यतिरेकेण  
 तस्यास्तत्रासम्भवात् । न चान्यस्य ज्ञानान्तरस्यार्थप्राप्तौ संश्लि-  
 ष्टत्वात्तदेव प्रापकमित्याशङ्कनीयम् ; यतो यद्यप्यनेकसाज्ज्ञा-  
 नक्षणार्त्तवृत्तावर्थप्राप्तिस्तथापि पर्यालोच्यमानमर्थप्रदर्शकत्वमेव <sup>२५</sup>

१ कथं तथाहि । २ ज्ञानमाद्यभावेन । ३ ज्ञातृव्यापारेण सह । ४ अर्थप्राक-  
 त्यस्य । ५ अविनाभाव । ६ ज्ञातृव्यापाराभावे ज्ञानमादौ प्राकृत्यस्य । ७ परः ।  
 ८ ज्ञातृव्यापारस्य निराकरणेन । ९ ज्ञानपानादि । १० जलादि । ११ जलादिकं ।  
 १२ प्राप्तिनिवन्धनत्वं । १३ बीजो वदति । १४ स्थिति । १५ परेण । १६ अर्थ-  
 ज्ञाने । १७ समीपत्वात् । १८ पुरुषस्य ।

१ शिवरामिनमतज्ञातृव्यापरूपप्रमाणस्य समीक्षा निम्नग्रन्थेषु सचयलोक्य तुलनीया  
 न्यायनं पृ० १६ । न्यायकु० चं० लि० परि० १ । सन्मति० टी० पृ० २० ।

२ तु०—'प्रवर्तकत्वमपि प्रवृत्तिविषयप्रदर्शकत्वमेव' न्यायवि० टी० पृ० ५ ।  
 प्र० क० ना० ३

ज्ञानस्य प्रापकत्वम्-नान्यत् । तच्च प्रथमत एव ज्ञानक्षणे सम्पन्न-  
मिति नोत्तरोत्तरज्ञानानां तदुपयोगि(त्वम्), तद्विशेषांशप्रदर्शक-  
त्वेन तु तत् तेषामुपपन्नमेव । प्रवृत्तिमूला तूपादेयार्थप्राप्तिर्न  
प्रमाणाधीना-तस्याः पुरुषैच्छाधीनप्रवृत्तिप्रभवत्वात् । न च प्रवृ-  
५ त्त्यभावे प्रमाणस्यार्थप्रदर्शकत्वलक्षणव्यापाराभावो वाच्यः, प्रती-  
तिविरोधात् । न खलु चन्द्रार्कादिविषयं प्रत्यक्षमप्रवर्तकत्वाच्च तत्प्र-  
दर्शकमिति लोके प्रतीतिः । कथं चैवंवीदिनः सुगतज्ञानं प्रमाणं  
स्यात् ? न हि हेयोपादेयतत्त्वज्ञानं केचित् तस्य प्रवर्तकं कृतार्थ-  
त्वात्, अन्यथा कृतार्थता न स्यादितरजनवत् । सुखादिस्वसंवेदनं  
१० वीं, न हि केचित्तत्पुरुषं प्रवर्तयति फलात्मकत्वात्, अन्यथा प्रवृ-  
त्त्यनवस्था । व्याप्तिज्ञानं वै न खलु स्वैविषयेऽर्थिनं तत्प्रवर्तयति  
अनुमानवैफल्यप्रसङ्गात् । तैतः प्रवृत्त्यभावेऽपि प्रवृत्तिविषयोपद-  
र्शकत्वेन ज्ञानस्य प्रामाण्यमभ्युपगन्तव्यम् ।

नैतु प्रवृत्तेर्विषयो भावी, वर्तमानो वैर्थः ? भावी चेत्, नासौ  
१५ प्रत्यक्षेण प्रवर्तयितुं शक्यस्तत्र तस्याप्रवृत्तेः । वर्तमानश्चेत्, न, अर्थि-  
नोऽत्राऽप्रवृत्तेः, न हि कश्चिदनुभूयमान एव प्रवर्ततेऽनैवस्थापतेः,  
इत्येतामप्रतम्, अर्थक्रियासमर्थोऽस्य अर्थक्रियायाश्च प्रवृत्तिविषय-  
त्वात् । तैत्रार्थक्रियासमर्थोऽप्यक्षेण प्रदर्शयितुं शक्यः । न ह्यर्थ-  
क्रियावत्सोप्यनैगितः । न चास्याध्यक्षत्वे प्रवृत्त्यभावप्रसङ्गः, अर्थ-  
२० क्रियार्थत्वाच्चस्याः । कौर्यादौ कथम् 'एतत्तत्र समर्थम्' इत्येवगमो  
यतः प्रवृत्तिः स्यादिति चेत्, आस्तां तावदेतत्-कार्यकारणभाव-

१ जातं । २ प्रदर्शकत्वम् । ३ फलवत् । ४ अर्थः । ५ नेदः । ६ प्रदर्शकत्वं ।  
७ जलादि । ८ कारणका । ९ प्रवर्तकत्वाभावे । १० जुः । ११ मा । १२ यत्र  
प्रवर्तकं तत्र प्रमाणमित्येववादिनः । १३ विषये । १४ कृतार्थकमपि प्रवर्तयति चेत् ।  
१५ सुगतो न सर्वज्ञो ज्ञानेन प्रवर्तमानत्वाद्गोपवत् । विपक्षे गोपस्य सर्वज्ञत्वं तत्र  
एव सुगतवत् । १६ कृतार्थकमपि प्रवर्तयतीति चेत् । १७ कथं प्रमाणम् (अपि तु  
न स्यात् अस्ति च प्रमाणं प्रदर्शकत्वात्) । १८ अर्थः । १९ प्रवृत्तेः फलहेतुत्वाच्चत्रापि  
फलेन भाव्यम् । २० अनुपरमा । २१ कथं प्रमाणम् । २२ अखिलसाध्यसाधन-  
लक्षणे । २३ पुरुषः । २४ यतः प्रदर्शकत्वमेव प्रापकत्वं ज्ञानस्य । २५ सङ्गावे ।  
२६ अर्थः । २७ प्रकाशकत्वेन । २८ परेण । २९ परः । ३० ह्ययोर्भवे ।  
३१ विषये । ३२ अन्यथा । ३३ अर्थग्राह्यार्थं हि प्रवृत्तिः सा प्रत्यक्षा जायतेति ।  
३४ प्रवृत्तेः फलहेतुत्वाच्चत्रापि फलेन भाव्यम् । ३५ तयोर्दोर्भवे । ३६ जलादिः ।  
३७ अप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गादर्थस्य । ३८ अर्थग्राह्यार्थं हि प्रवृत्तिः सा प्रत्यक्षा जायते इति ।  
३९ परः । ज्ञानादि । ४० जलं । ४१ अर्थक्रियायां । ४२ निश्चयः ।

विचारप्रस्तावे विस्तरेणाभिधानात् । प्रतीयते च 'इदमभिमतार्थ-  
क्रियाकारि न त्विदम्' इत्यर्थमात्रप्रतिपत्तौ प्रवृत्तिः पशूनामपि ।  
तस्मादर्थक्रियासमर्थार्थप्रदर्शकत्वमेव प्रमाणस्य हितप्रापणम् ।  
अहितपरिहारोपि 'अनभिप्रेतप्रयोजनप्रसार्थनमेतत्' इत्युपदर्शन-  
मेव । तैयोः समर्थमव्यवधानेनार्थतथाभावप्रकाशकं हि यस्मा-५  
त्प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् । न चाज्ञानस्यैवविधं तत्प्राप्तिपरि-  
हारयोः सामर्थ्यं ज्ञानकल्पनावैयर्थ्यप्रसङ्गात् ।

ननु साधूक्तं प्रमाणस्याज्ञानरूपतापनोदार्थं ज्ञानविशेषणमस्मा-  
कमपीष्टत्वात्, तद्वि समर्थयमानैः साहाय्यमदुष्टितम् । नैतु  
किञ्चिन्निर्विकल्पकं किञ्चित्सर्विकल्पकमिति मैन्यमानं प्रति अशेष-१०  
स्यापि प्रमाणस्याविशेषेण विकल्पात्मकत्वविधानार्थं व्यवसाया-  
त्मकत्वविशेषणसमर्थनं परं तन्निश्चयात्मकमित्याद्याह । यत्प्राक्प्र-  
वन्धेन समर्थितं ज्ञानरूपं प्रमाणम्—

तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ॥ ३ ॥

संशयविपर्ययासाध्यवसायात्मको हि समारोपः, तद्विरुद्धत्वं १५  
वस्तुतथाभावग्राहकत्वं निश्चयात्मकत्वेनानुमाने व्याप्तं सुप्रसिद्धम्  
अन्यत्रापि ज्ञाने तद् दृश्यमानं निश्चयात्मकत्वं निश्चाययति,  
समारोपविरोधिग्रहणस्य निश्चयस्वरूपत्वात् । प्रमाणत्वाद्वा तत्त-  
दात्मकमनुमानवदेव । परं निरपेक्षतया वस्तुतथाभावप्रकाशकं हि  
प्रमाणम्, न चाविकल्पकम् तथा-नीलादौ विकल्पस्य अणक्ष-२०  
येऽनुमनैरप्यपेक्षणात् । ततोऽप्रमाणं तत् वस्तुव्यवस्थायामपे-  
क्षितपरव्यापारत्वात् सन्निकर्षादिवत् । नैवेदमनुभूयते-अक्ष-  
व्यापारानन्तरं स्वार्थव्यवसायात्मनो नीलादिविकल्पस्यैव वैशद्ये-  
नानुभवात् ।

१ किंच । २ वस्तु । ३ प्राणादिकम् । ४ अधिकण्टकादि । ५ हिता-  
हितप्राप्तिपरिहारयोः । ६ अन्यवपानेनाधीनत्वात्प्रदर्शकत्वलक्षणम् । ७ हितादि ।  
८ अन्यथा । ९ बोद्धव्यम् । १० जनैः । ११ कृण्वन् । १२ हान । १३ वीर्यं ।  
१४ प्रधानं । १५ सापूर्वेत्यादि । १६ व्यापकेन । १७ प्रत्यक्षे । १८ शान्त्य ।  
१९ सम्यग्ज्ञानत्वादनिर्वादिताप्रियवहेतुत्वात् । २० ज्ञानविशेषणविशिष्टं प्रमाणम् ।  
२१ प्रमाणत्वं च स्यान्निश्चयात्मकत्वं च न स्यादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह ।  
परं सविकल्पकं ज्ञानम् । २२ दर्शनं सीगतामिमन् । २३ नीलमीदं पीतमीदम् ।  
२४ सर्वं क्षणिकं सत्त्वात् इत्यस्य । २५ ज्ञानापेक्ष । २६ मिथः । २७ निर्विकल्प-  
कम् । २८ प्रत्यक्षसिद्धं न भवतीत्यर्थः । २९ नयनोन्मीलनानन्तरम् ।



नच विकल्पाविकल्पयोर्युगपद्वृत्तेर्लघुवृत्तेर्वा एकत्वाध्यवसा-  
याद्विकल्पे वैशद्यप्रतीतिः; तद्व्यतिरेकेणापरस्याप्रतीतिः । भेदेन  
प्रतीतौ ह्यन्यत्रान्यस्यारोपो युक्तो मित्रे चैत्रवत् । न चाऽस्पष्टाभो  
विकल्पो निर्विकल्पकं च स्पष्टाभं प्रत्यक्षतः प्रतीतम् । तथाप्यनु-  
भूयमानस्वरूपं वैशद्यं परित्यज्याननुभूयमानस्वरूपं त्रै(पमवैशद्यं)  
परिकल्पयन् कथं परीक्षको नाम ? अनवस्थाप्रसङ्गात्-ततोप्यपर-  
स्वरूपं तदिति परिकल्पनप्रसङ्गात् । युगपद्वृत्तेऽभेदाध्यवसाये  
दीर्घशङ्कुलीमक्षणादौ रूपादिज्ञानपञ्चकस्यापि सहोत्पत्तेरभे-  
दाध्यवसायः किञ्च स्यात् ? भिन्नविषयत्वात्तेषां तदभावे-अत  
१० एव स प्रकृतयोरपि न स्यात् क्षणसन्तीनविषयत्वेनानयोरप्यस्या-  
विशेषात् । लघुवृत्तेऽभेदाध्यवसाये-खररदितमित्यादावप्य-  
भेदाध्यवसायप्रसङ्गः । कथं चैवं कौपिलानां बुद्धिचैतन्ययोर्भे-  
दोऽनुपलभ्यमानोपि न स्यात् ?

अथानयोः सादृश्याद्भेदेनानुपलम्भः, अमिमवाद्वाभिधीयते ?  
१५ ननु किंकृतमनयोः सादृश्यम्-विषयभेदेकृतम्, ज्ञानरूपताकृतं

१ क्रमसत्त्वेऽपि । २ अविकल्पविकल्पयोः स्पष्टाऽस्पष्टत्वेन भेदेन प्रत्यक्षतः प्रतीत-  
भावे । ३ विकल्पे । ४ अवैशद्यम् । ५ सौगतः । ६ अवैशद्यवर्मात् । ७ प्रीतम् ।  
८ सविकल्पकम् । ९ परः । १० अविकल्पकविकल्पयोः । ११ सामान्यम् ।  
१२ अविकल्पविकल्पयोः । १३ भिन्नविषयत्वम् । १४ किञ्च । १५ विकल्पाविकल्प-  
योरनुपलभ्यमानभेदसम्भवप्रकारेण । १६ सादृश्यमानम् । १७ अमतीयमानः ।  
१८ अनुपलभ्यमानत्वात् सिध्येत् । १९ अस्त्युपगममात्रस्य तत्रापि सङ्गमात् ।  
२० परः । २१ विकल्पेतरयोः । २२ पृथक्त्वाध्यवसायस्य । २३ परामबाध ।  
२४ परेण । २५ ना (सुतीया) ।

I 'मनसोर्गुगपद्वृत्तेः सविकल्पाऽकल्पयोः ।

निमृष्टः सम्प्रवृत्तेर्वा ( लघुवृत्तेर्वा ) तयोरैक्यं व्यवस्यति' ॥

प्रमाणभा० ३ । १३३

२ 'विकल्पज्ञानं हि संकेतकालदृष्टत्वेन वस्तुगुणद्वयशब्दसत्तर्कयोर्व्यं गृहीयात्  
संकेतकालदृष्टत्वं च संकेतकालोत्पन्नज्ञानविषयत्वम् । यथाच पूर्वोक्तं निनष्टं च  
संप्रत्यक्षत्वं तद्वत् पूर्वनिनष्टज्ञानविषयत्वमपि संप्रति नास्ति वस्तुनः । तदसद्रूपं वत्  
गुणद्वयसंनिहितार्थग्राहित्वादस्फुटामम् अस्फुटामत्वादेव च सविकल्पकम् ।  
स्फुटामत्वात् निर्विकल्पकम्--'

न्यायनि० टी० पृ० २१

३ वृत्तानां—'अत्र विकल्पाविकल्पयोः सादृश्यादभिनिवादा--'

स्वा० रत्नाकर पृ० १

चा? न तावद्विषयाभेदकृतम्; सन्तानेतरविषयत्वेनानयोर्विषयाभे-  
दाऽसिद्धेः। ज्ञानरूपतासादृश्येन त्वेमेदाध्यवसाये—नीलैपीतादि-  
ज्ञानानामपि भेदेनोपलम्भो न स्यात्। अथाभिभवात्; केन कस्या-  
भिभवः? विकल्पेनाविकल्पस्य भानुना तारानिकरस्येवेति चेत्;  
विकल्पस्याप्यविकल्पेनाभिभवः कुतो न भवति? वलीयस्त्वा-  
दस्येति चेत्; कुतोस्य वलीयस्त्वम्-बहुविषयात्, निश्चयात्म-  
कत्वाद्वा? प्रथमपक्षोऽयुक्तः, निर्विकल्पविषय एव तत्प्रवृत्त्य-  
भ्युपगमात्, अन्यथा अगृहीतार्थग्राहित्वेन प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गः।  
द्वितीयपक्षेपि स्वरूपे निश्चयात्मकत्वं तस्य, अर्थरूपे वा? न  
तावत्स्वरूपे—

१०

“सर्वचिञ्चैतानामात्मसंवेदनं ग्रन्थक्षम्” [न्यायवि० पृ० १९]  
इत्यस्य विरोधात्। नाप्यर्थे-विकल्पस्यैकस्य निश्चयानिश्चयस्वभा-  
वद्वयप्रसङ्गात्। तच्च परस्परं तैद्वैतश्चैकान्ततोभिन्नं चेत्; सम-  
वायाद्यनभ्युपगमात् सम्बन्धासिद्धेः ‘बलवान्विकल्पो निश्चयात्म-  
कत्वात्’ इत्यस्यासिद्धेः। अमेदैकान्तेपि-तैद्वयं तैद्वानेव वा भवेत्। १५  
कथंचिन्तादात्म्ये-निश्चयानिश्चयस्वरूपसाधारणमात्मौनं प्रतिपद्यते  
चेद्विकल्पः-स्वरूपेपि सविकल्पकः स्यात्, अन्यथा निश्चयस्वरूप-  
तादात्म्यविरोधः। न च स्वरूपमनिश्चिन्वन्विकल्पोऽर्थनिश्चयायकः,  
अन्यथाऽगृहीतस्वरूपमपि ज्ञानमर्थग्राहकं भवेत् तथाच—

“अप्रत्यक्षोपलम्भस्य” [ ] इत्यादिविरोधः, तत्स्वरूप-२०

१ क्षण। २ पुनः। ३ क्षण। ४ तिरस्कारः। ५ परैः। ६ निर्विकल्पकमोक्ष।  
७ सविकल्पक्षण। ८ निर्विकल्पकक्षण। ९ नीलमिति स्वसंवेदनेन। १० स्वसंवेद-  
नम्। ११ नीलाभाकारतया सविकल्पाः क्षणाः। १२ सर्वज्ञानानां स्वरूपे निर्वि-  
कल्पकत्वान्भ्युपगमस्य ग्रन्थस्य। १३ स्वरूपेऽनिश्चयात्मकत्वमर्थे निश्चयात्मकत्वम्।  
१४ ततः स्वरूपनिश्चयाभावात्। १५ विकल्पात्। १६ स्वरूपम्। १७ परेण।  
१८ त्रयाणां भेदात्। १९ सीयताभ्युपगतस्य हेतोः। २० स्वरूपम्। २१ विकल्पः।  
२२ सति। २३ स्वरूपम्। २४ तथा आपसिद्धान्तप्रसङ्गः। २५ आ। २६ विक-  
ल्पस्य। २७ किञ्च। २८ अज्ञात। २९ नाकारं नाम आपकम्। ३० अत्यन्त-  
परोक्षज्ञानस्य। ३१ नार्थसिद्धिः प्रसिद्धयति।

१ गुणना—‘अथ विकल्पस्य वलीयस्त्वाद’...सम्प्रति० टी० पृ० ५००

स्वा० रत्नाकर पृ० ५०

२ ‘अप्रसिद्धोपलम्भस्य नार्थसिद्धिः प्रसिद्धयति।

तत्र ग्राह्यस्य संविष्टिग्राहकानुभवावृत्ते’ ॥ २०७४ ॥ तत्सप्त०

स्योनुभूतस्याप्यनिश्चितस्य क्षणिकत्वादिवन्नान्यनिश्चायकत्वम् ।  
विकल्पान्तरेण तन्निश्चयेऽनवस्था ।

कैश्चानयोरेकत्वाध्यवसायः-किमेकविषयत्वम्, अन्यतरेणान्यतरस्य विषयीकरणं वा, परत्रेतरस्याध्यारोपो वा ? न तावदेक-  
५ विषयत्वम्; सामान्यविशेषविषयत्वेनानयोर्भिन्नविषयत्वात् । ईदृश-  
विर्कल्प(लप्य)योरेकत्वाध्यवसायादभिन्नविषयत्वम्; इत्यप्ययु-  
क्तम् । एकत्वाध्यवसायो हि इदं विकल्पस्याध्यारोपः । स च  
गृहीतयोः, अगृहीतयोर्वा तयोर्भवेत् ? न तावद्गृहीतयोः; भिन्नस्व-  
रूपतया प्रतिभासमानयोर्घटपटयोरिवैकत्वाध्यवसायायोगात् ।  
१० न चान्योर्ग्रहणं दर्शनेन; अस्य विकल्पागोचरत्वात् । नापि  
विकल्पेन; अस्यापि इदं ग्राह्यगोचरत्वात् । नापि ज्ञानान्तरेण; अस्यापि  
'निर्विकल्पकत्वे विकल्पैवात्मकत्वे चोक्तदोषानतिक्रमात् । नाप्य-  
गृहीतयोः स सम्भवति अतिप्रसङ्गात् । सादृश्यनिबन्धनआरोपो  
ईदृशः, वैस्त्ववस्तुनोश्च नीलखरविषाणयोरिव सादृश्याभावाद्वा-  
१५ ध्यारोपो युक्तः । तत्रैकविषयत्वम् ।

अन्यतरस्यान्यतरेण विषयीकरणमपि-समानकालभौविनोरपा-  
रतक्यादनुपपन्नम् । अविषयीकृतस्यान्यस्यान्यत्राध्यारोपोप्यसं-  
म्भवी । किञ्च, विर्कल्पे निर्विकल्पकस्याध्यारोपः, निर्विकल्पके  
विकल्पस्य वा ? प्रथमपक्षे-विकल्पव्यवहारोच्छेदः निखिलज्ञानानां  
२० निर्विकल्पकत्वप्रसङ्गात् । द्वितीयपक्षेपि-निर्विकल्पकवार्तोच्छेदः-  
सकलज्ञानानां सविकल्पकत्वानुषङ्गात् ।

किञ्च, विकल्पे निर्विकल्पकधर्मारोपाद्वैशद्यव्यवहारवत् निर्वि-  
कल्पके विकल्पधर्मारोपाद्वैशद्यव्यवहारः किञ्च स्यात् ? निर्वि-  
कल्पकधर्मेणाभिभूतत्वाद्विकल्पैर्मस्य इत्यन्यैत्रापि समानम् । भवतु

१ उपलम्भः स्वरूपं जानाति यथा ? न जानाति चेत्कर्तुं सर्वं जानातीतिभिप्रायः ।  
२ नीलनीलमिति । ३ नीलोयमिति । ४ नैयायिके प्रति बौद्धेनोक्तम् । ५ विकल्प-  
स्वरूपं यथा क्षणिकत्वादिनिश्चायकं न भवति अनिश्चितत्वात्तथाऽर्थस्यापि न निश्चायकं तत्  
एव । ६ अर्थः । ७ निर्विकल्पकसविकल्पकयोः । ८ भा । ९ परमाणु । १० निर्वि-  
कल्पकसविकल्पकयोः । ११ परः, स्वरूपः । १२ नीलदि । १३ दृश्यविकल्पयोः ।  
१४ सति । १५ खरविषाणयोरप्येकत्वाध्यवसायप्रसङ्गः परमाण्वादावपि स्यात् ।  
१६ लोके । १७ दृश्यविकल्पयोः । १८ विकल्पाविकल्पयोः । १९ अविकल्पस्य ।  
२० विकल्पे । २१ ईदं निर्विकल्पकमिति । २२ वैशद्यः । २३ विकल्पधर्मेत्यादौशब्दस्य  
निर्विकल्पके आरोपेन न ( इति चेत् ) । २४ विकल्पधर्मेण निर्विकल्पधर्मेत्याभिभूत-  
त्वात् विकल्पे निर्विकल्पकधर्मारोपाद्वैशद्यव्यवहारो भाव्यः ।

चा तेनैवाभिभवः; तथाप्यसौ सहमावमात्रात्, अभिन्नविषयत्वात्, अभिन्नसामग्रीजन्यत्वाद्वा स्यात् ? प्रथमपक्षे गोदर्शनसमयेऽभ्व-  
विकल्पस्य स्पष्टप्रतिभासो भवेत्सहभावाविशेषात् । अथानयोर्भि-  
न्नविषयत्वात् न अस्पष्टप्रतिभासमभिभूयाध्वविकल्पे स्पष्टतया  
प्रतिभासः; तर्हि शब्दस्वलक्षणमध्यक्षेणानुभवता तत्र क्षणक्षयानु-  
मानं स्पष्टमनुभूयतामभिन्नविषयत्वाग्नीलादिविकल्पवत् । भिन्न-  
सामग्रीजन्यत्वादनुमानविकल्पस्यैवाध्यक्षेण तद्धर्माभिभवभावे-  
सकलविकल्पानां विशदावभासिखसंवेदनप्रत्यक्षेणामिन्नसामग्री-  
जन्येनाभिभवप्रसङ्गः । अथ तत्राभिन्नसामग्रीजन्यत्वं नैर्ष्यते-तेषां  
विकल्पवासनाजन्यत्वात्, सवेदनमात्रप्रभवत्वाच्च स्वसंवेदनस्य १०  
इत्यसत्; नीलादिविकल्पस्याप्यध्यक्षेणामिभवाभावप्रसङ्गात्तत्रापि  
तद्विशेषात् ।

किंच, अनयोरेकत्वं निर्विकल्पकमध्यवस्यति, विकल्पो वा,  
ज्ञानान्तरं वा ? न तावन्निर्विकल्पकम्; अध्यवसायविकलत्वात्तस्य,  
अन्यथा भ्रान्तताप्रसङ्गः । नापि विकल्पः; तेनाविकल्पस्याविष- १५  
यीकरणात्, अन्यथा स्वलक्षणगोचरताप्राप्तेः “विकल्पोऽवस्तुनि-  
र्भासः” [ ] इत्यस्य विरोधः । न चाविषयीकृतस्यान्यत्रो-  
रोपः । न ह्यप्रतिपन्नरजैतः शुक्तिकायां रजतमारोपयति । ज्ञाना-  
न्तरं तु निर्विकल्पकम्, सविकल्पकं वा ? उभयत्राप्युभयदोषानु-  
पकृतस्तदुभयविषयत्वायोगः । तदन्यतरविषयेणानयोरेकत्वा- २०

१ निर्विकल्पकप्रमेणामित्वात् । २ दर्शनं । ३ अवैज्ञाप । ४ तिरस्कृत्य लोप्य  
वा । ५ वैशेषिकेन । ६ ओत्रेन्द्रियदर्शनेन । ७ परेण । ८ सर्वं क्षणिकमिति । ९ परेण ।  
१० नीलादिप्रतिभासो यथानुभूयते । ११ प्रत्यक्षं ओत्रचक्षुरादिजनितमनुमानं च  
लिङ्गजनितम् । १२ दर्शनेन । १३ अनुमान स्पष्टं नानुभूयते । १४ प्रधानादि-  
विकल्पानां । १५ सर्वेचित्तचित्तानामभिन्नसामग्रीप्रभवत्वात् । १६ विशदतयाप्रति-  
भासो भवेत्सकलविकल्पानाम् । १७ परः । १८ सर्वविकल्पेषु स्वसंवेदनेषु च ।  
१९ सीगतैरसाभिः । २० संस्कार । २१ प्रत्यक्षस्य । २२ नीलादिविकल्पे ।  
२३ विकल्पेतरयोः । २४ नीलादिविकल्पवत् । २५ अवस्तुनि निर्भासः प्रतिभासो  
यस्य विकल्पस्य सः । २६ ग्रन्थस्य । २७ निर्विकल्पकस्य । २८ विकल्पे ।  
२९ षट्त्वे । ३० ना । ३१ समिकल्पकनिर्विकल्पकयोः । ३२ हानेन ।

१ तुलना—‘तदेकत्वं हि दर्शनमध्यवस्यति’... प्रमाणप० पृ० २३ । न्यायपञ्चु०  
प्र० परि० । सम्प्रति० टी० पृ० ५०० । सा० रत्नाकर पृ० ५२ ।

२ तु०—‘विकल्पोऽवस्तुनिर्भासाद् निःसंवादादुपपन्नः ।’

प्रश्न० कन्दली पृ० ११०

ध्यवसाये-अतिप्रसङ्गः-अक्षज्ञानेन त्रिविप्रकृष्टेतयोरप्येकत्वा-  
ध्यवसायप्रसङ्गात् । तच्च तयोरेकत्वाध्यवसायाद्विकल्पे वैश-  
द्यप्रतीतिः, अविकल्पकस्यानेनैकत्वाध्यवसायस्य चोक्तन्यायेना-  
प्रसिद्धत्वात् ।

५ यच्चोच्यते-संहृतसकलविकल्पावस्थायां रूपादिवर्शनं निर्वि-  
कल्पकं प्रत्यक्षतोऽनुभूयते । तदुक्तम्—

“संहृत्य सर्वतश्चिन्तांस्तिमितेनान्तरात्मना ।

स्थितोपि चक्षुषा रूपमीक्षते साऽक्षजा मतिः” ॥ १ ॥

[ प्रमाणवा० ३।१२४ ]

१० “प्रत्यक्षं कल्पनापोढं प्रत्यक्षेणैव सिद्ध्यति ।

प्रत्यात्मवेद्यः सर्वेषां विकल्पो नामसंश्रयः” ॥ २ ॥

[ प्रमाणवा० ३।१२३ ] इति ।

न चात्रार्थस्थायां नामसंश्रयतयाऽननुभूयमानानामपि विक-  
ल्पानां सम्भवः-अतिप्रसङ्गादित्यप्युक्तिमात्रम्, अश्वं विकल्पयतो  
१५ गोदर्शनलक्षणायां संहृतसकलविकल्पावस्थायां स्थिरस्थूलादि-  
स्वभावार्यसाक्षात्कारिणो विपरीतारोपविकल्पस्याध्यक्षस्यानिश्चया-  
त्मकत्वायोगात् । तत्त्वे वा अश्वविकल्पाद्युत्थितचित्तस्य गवि  
स्मृतिर्न स्यात् क्षणिकत्वादिवत् । नामसंश्रयात्मनो विकल्पस्यात्र  
निषेधे तु न किञ्चिदनिर्णयम् । न चाशेषविकल्पानां नामसंश्रयतैव  
२० स्वरूपम्, समारोपविरोधिर्ब्रह्मणलक्षणत्वात्तेषामित्येवैवास्ततो  
वक्ष्यामः । न चानिश्चयात्मनः प्रामाण्यम्, गच्छन्तृणस्पर्शसंवेद-  
नस्यापि तत्प्रसङ्गात् । निश्चयहेतुत्वात्तस्यैव प्रामाण्यमित्युक्तम्,  
संशयादिविकल्पजनकस्यापि प्रामाण्यप्रसङ्गात् । स्वैलक्षणानध्य-

१ देशकालस्वभावव्यवहितान्यवहितयोः षटादिपरमाण्वधोः । २ विकल्पस्य ।  
३ परेण । ४ नष्ट । ५ नीलादि । ६ जातिद्रव्यगुणक्रियानिबन्धनाः । ७ सामत्सेन ।  
८ विकल्परूपम् । ९ क्षिरीभूतेन । १० गच्छन् वा । ११ रहितं । १२ मनसा ।  
१३ प्रतिस्वरूपवेधः । १४ स्वसंवेदनेन वेधः । १५ शब्दः संश्रयः कारणं यस्य  
विकल्पस्य सः । १६ नष्टविकल्पाया । १७ सुप्तप्रमत्तादावपि स्यात् । १८ पुरुषस्य ।  
१९ साधारणं सामान्यरूपं । २० क्षणिकादि । २१ तत्र ( वधी ) । २२ निर्विकल्प-  
कस्य । २३ व्यावृत्त । २४ नरस्य । २५ जैनानां । २६ ज्ञान । २७ शब्दाद्वैत-  
वादे । २८ विस्तरतः । २९ दर्शनस्य । ३० दर्शनस्य । ३१ अनुक्षणिक ।

१ ‘अविकल्पमपि ज्ञानं विकल्पोत्पत्तिशक्तिमत् ।

निःशेषव्यवहाराच्च तद्वारेण भवत्यतः” ॥ ११०६ ॥ तत्त्वस०

वसायित्वात्तद्विकल्पस्यादोषोऽयम्, इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि नीलादिविकल्पोपि स्वलक्षणाध्यवसायी; तदनालम्बनस्य तदध्यवसायित्वविरोधात् । 'मनोराज्यादिविकल्पः कथं तदध्यवसायी' ? इत्यप्यस्यैव दूषणं यस्यासौ राज्याद्यग्राहकस्वभावो नास्माकम्, सत्यराज्यादिविषयस्य तद्ग्राहकस्वभावत्वाभ्युपगमात् । ५

न चास्य विकल्पोत्पादकत्वं घटते स्वयमविकल्पकत्वात् स्वलक्षणवत्, विकल्पोत्पादनसामर्थ्याविकल्पकत्वयोः परस्परं विरोधात् । विकल्पवासनापेक्षस्याविकल्पकस्यापि प्रत्यक्षस्य विकल्पोत्पादनसामर्थ्यानि(वि)रोधे-अर्थस्यैव तत्राविधस्य सोस्तु किमन्तर्गडुना निर्विकल्पकेन ? अथाग्रानोर्थः कथं तज्जनकोऽतिप्रस- १०  
ङ्गात् ? दर्शनं कथमनिश्चर्यात्मकमित्यपि समानम् ? तस्यानुभूतिमात्रेण जनकत्वे-क्षणक्षयादौ विकल्पोत्पत्तिप्रसङ्गः । यत्रार्थे दर्शनं विकल्पवासनायाः प्रबोधकं तत्रैवं तज्जनकमित्यप्यसाम्प्रतम् ; तस्यानुभवमात्रेण तत्प्रबोधकत्वे नीलादाविव क्षणक्षयादौ-वपि तत्प्रबोधकत्वप्रसङ्गात् । १५

तत्राभ्योसप्रकरणे बुद्धिपाटवार्थित्वाभावाच्च तत्तस्याः प्रबोधकमिति चेत्, अथ कोयमभ्यासो नाम-भूयोदर्शनम्, बहुशो विकल्पोन्पत्तिर्या ? न तावद्भूयो दर्शनम् : तस्य नीलादाविव

१ संशयादि । २ नीलादिविकल्पे । ३ स्वलक्षण । ४ विकल्पः स्वलक्षणाध्यवसायी न भवति तदनालम्बनत्वात् मनोराज्यादिना ( मनोराज्याध्यवसायिनैस्तथैः ) अनेकान्तोऽस्य । ५ मनोराज्यादिसत्त्वात्स्वनोपि राज्याध्यवसायी । ६ बौद्धम् । ७ मनोराज्यादिविकल्पस्य । ८ किंच । ९ निर्विकल्पकदर्शनस्य । १० न्यत्तुने यथा । ११ अविकल्पात् यः स्यादिकल्पोत्पादनसामर्थ्यं च स्यादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्यात् । १२ अभिलाषसंसर्गयोग्यताप्राप्तित्वमविकल्पकत्वं तस्मिन्सति कथं निर्विकल्पोत्पादनसामर्थ्यं स्यादविकल्पकस्य । १३ परः । १४ विकल्पवासनापेक्षम् । १५ (परः) अगूतीतः । १६ विकल्पः । १७ सर्वस्य सर्वत्र विकल्प जनयेत् । १८ विहरणकः । १९ उभयप्राप्तिः । २० विकल्पः । २१ यथा नीलमिदमिति विकल्परथा क्षणिकमिदमिति विकल्पः स्यात् । २२ न क्षणक्षयादौ । २३ विकल्पः । २४ स्वसंवेदनेन । २५ स्वर्गप्रापणशक्तिः । २६ दर्शनस्य । २७ अनुभूतिमात्रादिरोधात् । २८ पदपदार्थक्षणिकमेव पदपतीति वचनात् । २९ इदं क्षणिकमिदं क्षणिकमिति । ३० प्रत्यावः । ३१ दर्शनम् ।

I मुदना—'अथ मत्तम्-अस्यासप्रकरणबुद्धिपाटवार्थित्वेभ्यो...'

प्रमाण प० पृ० ५४ ।

सं० रत्नाकर पृ० ५४ ।

क्षणक्षयादौवप्यविशेषात् । अथ बहुशो विकल्पोत्पत्तिरभ्यासः;  
तस्य क्षणक्षयादिदर्शने कुतोऽभावः ? तस्य विकल्पवासनाप्रबो-  
धकत्वाभावाच्चेत् ; अन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि क्षणक्षयादौ दर्शनस्य  
विकल्पवासनाप्रबोधकत्वाभावे तल्लक्षणाभ्यासाभावसिद्धिः, त-  
५ त्सिद्धौ चास्य सिद्धिरिति । क्षणिकाक्षणिकविचारणायाम् क्षणिक-  
प्रकरणमप्यस्त्येव । पाटवं तु नीलादौ दर्शनस्य विकल्पोत्पाद-  
कत्वम्, स्फुटतरानुभवो वा स्यात्, अविद्यावासनाविनाशादात्म-  
लामो वा ? प्रथमपक्षे—अन्योन्याश्रयात् । द्वितीयपक्षे तु—क्षणक्ष-  
यादावपि तैत्प्रसङ्गः स्फुटतरानुभवस्यात्राप्यविशेषात् । तृतीयप-  
१० क्षोप्ययुक्तः; तुच्छस्वभावाभावानभ्युपगमात् । अन्योत्पादकका-  
रणस्वभावस्योपगमे क्षणक्षयादौ तैत्प्रसङ्गः, अन्यथा दर्शनमेव  
स्याद्विद्वेदधर्माभ्यासात् । योगिन एव च तथाभूतं तैत्सम्भावित,  
ततोऽस्यापि विकल्पोत्पत्तिप्रसङ्गात् “विधूतकल्पनाजाल”  
[ ] इत्यादिविरोधैः । अर्थित्वं चाभिलषितत्वम्, जिज्ञा-  
१५ सितैत्वं वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः; कचिद्वनमिलैषितेपि वस्तुनि तस्याः  
प्रबोधदर्शनात् । चैकप्रसङ्गश्च—अभिलषितत्वस्य वस्तुनिश्चय-  
पूर्वकत्वात् । द्वितीयपक्षेतु—क्षणक्षयादौ तैत्वासनाप्रबोधप्रसङ्गो  
नीलादाविवात्रापि जिज्ञासितत्वाविशेषात् ।

न चैवं सविकला(ल्प)कप्रत्यक्षवादिनामपि प्रतिबोध्यपन्यस्तस-  
२० कलवर्णपदादीनां सौच्छ्रासौदिसंख्यायाश्चाविशेषेण स्मृतिः प्रस-

१ पञ्चदशैव क्षणिकमेव पश्यतीति वचनात् । २ इदं क्षणिकमिदं क्षणिकमिति ।  
३ पञ्चदशैव क्षणिकमेव पश्यतीति वचनात् । ४ क्षणिकादौ दर्शनस्य विकल्पवासनाप्र-  
बोधकत्वाभावे सिद्धे विकल्पोत्पादकत्वलक्षणपाटवाभावसिद्धिस्तत्सिद्धौ चास्य सिद्धिरिति ।  
५ विकल्पवासनाप्रबोधकत्वम् । ६ सिद्धे हि विकल्पोत्पादकत्वे (पाटवे) नीलादौ  
विकल्पवासनाप्रबोधकत्वसिद्धिस्तत्तदुत्पादकत्वसिद्धिरिति । ७ सौगतैः । ८ दुष्टैः ।  
९ विकल्पवासनाप्रबोधकत्वोत्पत्तिः । १० अविद्यावासनातोऽन्यदिन्द्रियं वा शाना-  
न्तरं वा आत्मा वा । ११ वसः । अविद्यावासनाविनाशस्य । १२ विकल्पोत्पादकत्वम् ।  
१३ निर्विकल्पकः । १४ नीलादौ पाटवं क्षणक्षयादावपाटवमिति । १५ एकक्षणस्यैव  
पाटवभावाभावात् । १६ किञ्च । १७ पाटवं । १८ निश्चीयेत । १९ योगिनः  
प्रत्यक्षादपि । २० विधूतकल्पनाजालं प्रत्यक्षं योगिना मतम् । २१ ग्रन्थविरोधः ।  
२२ कातुमिष्टत्वं । २३ अहिकण्टकादौ । २४ अमिषापादिकल्पवासनाप्रबोधस्तस्याच्च  
विकल्पस्तस्याच्चामिलषितत्वम् । २५ विकल्पः । २६ विकल्पः । २७ निर्विकल्पकप्रत्यक्ष-  
वादिप्रकारेणानिश्चयात्मकस्य विकल्पाजनकत्वे । २८ जैनानाम् । २९ सौगत ।  
३० वाक्यम् । ३१ जैनः । ३२ निश्चासः । ३३ बोधस्य निश्चयात्मकत्वात् ।

ज्यते; सर्वथैकैस्वभावस्यान्तर्बहिर्वा वस्तुनोऽनभ्युपगमात् । तन्मते हि अवग्रहेहावायज्ञानादनभ्यासात्मकाद् अन्यदेवाभ्यासात्मकं धारणाज्ञानं प्रत्यक्षम् । तदभावे परोपन्यस्तसकलवर्णादिषु अवग्रहादित्रयसद्भावेपि स्मृत्युत्पत्तिः, तत्सद्भावे तु स्यादेव-सर्वत्र यथासंस्कारं स्मृत्युत्पत्त्यभ्युपगमात् । न च परेषामप्येयं युक्तः-५ दर्शनभेदाभावात्, एकस्यैव कैचिदभ्यासादीनामितरेषां वानभ्युपगमात् । न च तदन्यैर्व्यावृत्त्या तत्रै तद्गोः; स्वयमतत्स्वभावस्य तदन्यव्यावृत्तिसम्भवे पावकस्याऽशीतत्वादिव्यावृत्तिप्रसङ्गात् । तैस्त्वैवावैस्य तु तैदन्यैर्व्यावृत्तिकल्पने-फलाभावात्-प्रतिनियत-तत्स्वभावस्यैवान्यव्यावृत्तिरूपत्वात् । १०

स्यान्मतम् अभ्यासादिसापेक्षं निरपेक्षं वा दर्शनं विकल्पस्य नोत्पादकम् शब्दार्थविकल्पवासनाप्रभवत्वात्तस्य । तद्भासना-विकल्पस्यापि पूर्वतद्भासनाप्रभवत्वादित्यनादित्वाद्विकल्पसन्तानस्य प्रत्यक्षसन्तानादन्यत्वात्, विजातीयोद्भिर्जातीयस्योदयानि-धेनोर्कंदोषानुषङ्गः; इत्यन्यसङ्गतम्; तस्य विकल्पाजनकत्वे “यत्रैव १५ ज्ञेयदेनां तत्रैवास्त्यप्रमाणता” [ ] इत्यस्य विरोधानुष-ङ्गात् । कैथं वा वासनाविशेषप्रभवत्त(वात् त)तोऽप्यर्थस्य रूपादि-विषयत्वनियमः मनोराज्यादिविकल्पादपि तत्प्रसङ्गात् ? प्रत्यक्ष-

उत्पत्तिः प्रसङ्गात्

१ निरक्षयः । २ ज्ञेयानां । ३ ज्ञेयं । ४ संस्कारानतिक्रमेण । ५ ज्ञेयैः । ६ सौगतानाम् । ७ दर्शनं नीलादी विकल्पोत्पादक क्षणक्षयादौ न भवेदिति न्यायः । ८ प्रत्यक्षः । ९ अवग्रहादिभेदात्मलक्षभेदो न दर्शनसैकरूपत्वात् । १० नीलादौ । ११ क्षणक्षयादौ अनभ्यासादीनाम् । १२ परेण । १३ अनभ्यासादेः । १४ अभ्यासादिरनभ्यासादिः । १५ दर्शने । १६ यच्चाक्रममनभ्यासस्याभ्यासस्य च । १७ अभ्यासान्नभ्यासादि । १८ स्वरूपेण । १९ अभ्यासावस्थभावस्य । २० अभ्यासादि । २१ अनभ्यासादि । २२ अभ्यासादि । २३ स्वरूपस्य । २४ दर्शनस्य । २५ अभ्यासादि । २६ अनभ्यासादि । २७ दर्शनस्वरूप । २८ प्रकरणादि । २९ अभ्यासादिसमानस्य दर्शनस्य । ३० अनभ्यासादि । ३१ विकल्पस्य । ३२ शब्दार्थो नाम सामान्यं । ३३ वासनारूप । ३४ भिन्नत्वात् । ३५ दर्शनात् । ३६ विकल्पस्य । ३७ अनङ्गीकारात् । ३८ न चास्य विकल्पोत्पादकत्वं घटते स्वयम-विकल्पकत्वात्स्वलक्षणवदित्वादि । ३९ दर्शनस्य । ४० ज्ञेयं । ४१ सविकल्पात्मिका बुद्धिः । ४२ दर्शनस्य । ४३ किंच । ४४ नयनाभ्यक्षस्य । ४५ अन्यथा ।

१ तु०—“शब्दार्थविकल्पवासनाप्रभवत्वात्तन्मनोविकल्पस्य...ततस्तर्हि कथमक्षुब्धेः रूपादिविषयत्वनियमः...”

अष्टश० अष्टसह० पृ० ११९

सा० रत्नाकर पृ० ५६



सहकारिणो वासनाविशेषादुत्पन्नाद्रूपादिविकल्पात्तस्य तन्नियमे  
स्वलक्षणविषयत्वनियमोप्यत एवोच्यताम्, अन्यथा रूपादिवि-  
षयत्वनियमोप्यतो मा भूदविशेषात् । तथाच-स्वलक्षणगोच-  
रोऽसौ प्रत्यक्षस्य तन्नियमहेतुत्वाद्रूपादिवत् । रूपाद्युल्लेखित्वा-  
५ द्विकल्पस्य तद्वलात्तन्नियमस्यैवाभ्युपगमे-प्रत्यक्षस्याभिर्लपसंस-  
र्गापि तद्वदनुमीयेत-विकल्पस्याभिर्लपनाभिर्लप्यमानजात्याद्युल्ले-  
खिततयोत्पत्त्यन्यथानुपपत्तेः । तथाविधदर्शनस्याप्रमाणसिद्धत्वाच्च  
आत्मैवाहम्प्रत्ययप्रसिद्धः प्रतिबैधकापायेऽभ्यासाद्यपेक्षो विक-  
ल्पोत्पादकोऽस्तु किमहेतुपरिकल्पनया ? ततो विकल्पः प्रमा-  
१० णम् संवादकत्वात्, अर्थपरिच्छिन्नौ साधकतमत्वात्, अनिश्चि-  
तार्थनिश्चायकत्वात्, प्रतिपैत्र्यपेक्षणीयत्वाच्च अनुमानवत्, ननु  
निर्विकल्पकं तद्विपरीतत्वात्सन्निकर्षादिवत् ।

तस्याप्रामाण्यं पुनः स्पष्टाकारविकलत्वात्, हेतुहीतप्राहि-  
त्वात्, असति प्रवर्तनीत्, हिताहितप्राप्तिपरिहारासमर्थत्वात्,  
१५ कदाचिद्विसंवादात्, समारोपानिषेधकत्वात्, व्यवहारानुपयो-  
गीत्, स्वलक्षणगोचरत्वात्, शब्दसंसर्गयोग्यप्रतिभासत्वात्,  
शब्दप्रभवत्वात्, (प्राज्ञार्थं विना तन्मात्रप्रभवत्वाद्वा) गत्यन्तरा-

१ क्षणिकादि । २ दर्शनस्य । ३ परेण भवता । ४ विकल्पात् । ५ दर्शनस्य ।  
६ विकल्पात्प्रत्यक्षस्वलक्षणविषयत्वनियमे च । ७ स्वलक्षणविषय । ८ यद्धि यद्विषयक  
तदेवापरस्य तद्विषयत्वनियमहेतुर्नया रूपादिविषयको विकल्पो रूपविषयत्वनियमहेतुः  
प्रत्यक्षस्य । ९ अन्वयस्य रूपादिविषये नियमहेतुत्वाच्च रूपादिविषयो विकल्पः तथा-  
व्यस्य स्वलक्षणनियमहेतुत्वात्स्वलक्षणविषयोपि विकल्पः स्यात् । १० सप्तमी । ११ परा-  
मर्शित्वात् । १२ प्रत्यक्षस्य (निश्चयस्य) । १३ रूपादिविषयत्व । १४ शब्दसम्बन्धोपि ।  
१५ प्रत्यक्षं रूपादनियतविषयं विकल्पस्य रूपाद्युल्लेखित्वेनोत्पत्त्यन्यथानुपपत्तेरित्यनुमानेन  
रूपादिविषयत्वनियमोऽनुमीयते यद्वत् । १६ शब्दः । १७ वाच्यः । १८ सामान्य-  
विषयः । १९ शब्दत्वेन तु दर्शनस्य तद्विपरीतत्वात् । २० किञ्च । २१ निर्विकल्पकः ।  
२२ स्वसत्वेनदेवः । २३ आवरणः । २४ निर्विकल्पकदर्शनः । २५ मनोराज्यादि  
विकल्पवत् । २६ प्रमात् । २७ रहितत्वात् । २८ मनोराज्यादिविकल्पवत् ।  
२९ चारावाहिकज्ञानवत् । ३० केन्द्रोष्णकज्ञानवत् । ३१ द्विचन्द्रादिज्ञानवत् ।  
३२ स्थाणी विसंवादे पुरुषविकल्पवत् । ३३ संशयज्ञानवत् । ३४ गच्छतृणस्पर्श-  
ज्ञानवत् । ३५ आन्तज्ञानवत् । ३६ अर्थः । ३७ अक्षुल्यादिवाक्यजनितविकल्पवत् ।  
३८ अक्षुल्यादिजनितवाक्यवत् ।

१ तु०—“अपि च सविकल्पकस्याऽप्रामाण्यम्....”

स्था० रत्नाकर ५० ५७

२—अग्रिमसूचनानुरोवेन अयमपि ‘मूलविकल्प एव’ इत्यनुसन्धीयते

भावात् ? न तावत्स्पष्टाकारविकलत्वात्तस्याऽप्रामाण्यम् ; काचा-  
भ्रंकादिव्यवहितार्थदूरपादपोदिप्रत्यक्षस्याप्यप्रामाण्यप्रसङ्गात् । न  
चैतद्युक्तम्, अत्रातवस्तुप्रकाशनसंवादलक्षणस्य प्रमाणलक्षणस्य  
सङ्गात्वात् । प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गो वा; अस्पष्टत्वाल्लङ्घनत्वाभ्यां  
प्रमाणद्वयानन्तर्भूतत्वात् । नापि गृहीतग्राहित्वात् ; अनुमान-<sup>५</sup>  
स्याप्यप्रामाण्यानुपङ्गात्, व्याप्तिर्नानयोगिसंवेदनगृहीतार्थग्राहि-  
त्वात् । कथं वा क्षणक्षयानुमानस्य प्रामाण्यम्-शब्दरूपाव-  
भास्यर्ध्यक्षावगतक्षणक्षयविषयत्वात् ? नच अध्येक्षेण धर्मिस्व-  
रूपग्राहिणा शब्दग्रहणेपि न क्षणक्षयग्रहणम् ; विवेकधर्माध्या-  
संतस्तद्भेदैर्प्रसङ्गेः । नाप्यसतिप्रवर्तनात् ; अतीतानागतयोर्विकल्प-<sup>१०</sup>  
काले असत्त्वेपि स्वकाले सत्त्वात् । तथाप्यस्याप्रामाण्ये-प्रत्यक्ष-  
स्याप्यप्रामाण्यानुपङ्गः तद्विपर्ययापि तत्कालेऽसत्त्वाविशेषात् ।  
हिताऽहितप्रातिपरिहारासमर्थत्वादित्यसम्भाव्यम् ; विकल्पादेवे-  
ष्टार्थप्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिदर्शनात् अनिष्टार्थाच्च निवृत्तिप्रतीतेः ।  
कदाचिदर्थप्रापकत्वाभावस्तु-प्रत्यक्षेपि समानोऽनर्थित्वादप्रवृत्त-<sup>१५</sup>  
त्यर्थप्रत्यक्षत्वम् । कदाचिद्विसंवादादित्यप्यसाम्प्रतम् ; प्रत्यक्षेण्य-  
प्रामाण्यप्रसङ्गात्, तिमिराद्युपहतचक्षुषोऽर्थाभावेपि प्रत्यक्षप्रवृ-  
त्तिदर्शनात् । भ्रान्ताद्भ्रान्तस्य भेदोऽन्यत्रापि समानः । समारो-  
पानियेधकत्वादित्यप्यसङ्गतम् ; विकल्पविषये समारोपासम्भ-  
वात् । नापि व्यवहारायोग्यत्वात् ; सकलव्यवहाराणां विकल्प-<sup>२०</sup>  
मूलत्वात् । खलक्षणाऽगोचरत्वादित्यप्यसमीक्षिताभिधानम् ;  
अनुमानेपि तत्रैवसङ्केः तद्वैतस्यापि सामान्यगोचरत्वात् । न च  
तद्ग्राह्यस्य सामान्यरूपत्वेप्यव्यवसेयस्यै खलक्षणरूपत्वाद् ईदृश-  
विकल्प्यावर्थावेकीकृत्य ततः प्रवृत्तेरनुमानस्य प्रामाण्यम् ; प्रकृत-  
विकल्पेऽप्यस्यै समानत्वात् । शब्दसंसर्गयोग्यप्रतिभासत्वादित्य-<sup>२५</sup>

१ स्फटिकचलादि । २ पर्वतादि । ३ पारमार्थिकं लक्षणमिदम् । ४ व्याव-  
हारिकम् । ५ व्याप्तिज्ञानं च तस्योक्तिमवेदनं च । ६ सर्वत्र । ७ आगनाध्यक्षगृही-  
तार्थग्राहित्वात् । ८ आगनाध्यक्ष । ९ निर्विकल्पकेन । १० सर्वं वस्तु क्षणिकं  
सत्त्वात् । ११ तस्यैवग्रहणमग्रहणमिति । १२ शब्दधर्मिणः । १३ क्षणिकत्वधर्मस्य ।  
१४ धर्मिरूपस्य वस्तुनः क्षणिकं (कल्पं) न अवतीत्यर्थः । १५ रागद्वेषाद्वैतवृत्तिः ।  
१६ अर्थयोः । १७ आगमज्ञाने । १८ समकाले प्राप्तिग्राहकत्वाभावात्सन्धेतर-  
नोविषाणवत् । १९ प्रत्यक्ष । २० सर्पादिः । २१ पुरुषस्य । २२ इदं जलमिति ।  
२३ ईप् (सप्तमी, सप्तम्यर्थे मनुदित्यर्थः) । २४ रोग । २५ पुरुषस्य । २६ भ्रान्त-  
विकल्पे । २७ अप्रामाण्यम् । २८ तस्य पूर्वानुभूतत्वप्रदर्शनात् । २९ सामान्यारो-  
पोऽधिकारणं खलक्षणमध्यवसेयम् । ३० खलक्षणम् । ३१ स्थूलम् । ३२ पुरुषस्य ।  
३३ नीलम् । ३४ न्यायस्य ।

प्यसमीचीनम्; अनुमानेपि समानत्वात् । शब्दप्रभवत्वादित्य-  
प्यसाम्प्रतम्; शब्दाध्यक्षस्यैवामाण्यप्रसङ्गात् । आह्वयार्थं विना  
तन्मात्रप्रभेदत्वं चासिद्धम्; नीलादिविकल्पानां सर्वैवार्थं सत्येव  
भावात् । कैस्यचित्तु तन्मन्तरेणापि भावोऽध्यक्षेपि समानः  
५ द्विचन्द्रादिप्रत्यक्षस्यार्थाभावेपि भावात् । भ्रान्तादभ्रान्तस्याह-  
त्वमत्रापि समानम् ।

किञ्च, विकल्पाभिधानयोः कार्यकारणत्वनियमकल्पनायाम्  
किञ्चित्पक्षयतः पूर्वानुभूततत्सदृशं स्मृतिर्न स्यात् तन्नामविशेषा-  
स्मरणौ, तदस्मरणे तदभिधानाप्रतिपत्तिः, तदप्रतिपत्तौ तेन  
१० तदयोजनम्, तदयोजनात्तदनेध्यवसाय इत्यविकल्पाभिधानं  
जगदापेक्षेत ।

किञ्च, पदस्य वर्णानां च नामान्तरस्मृतावस्थायामध्यवसायः,  
सत्यां वा ? तत्रापक्षे नाम्नो नामान्तरेण विनापि स्मृतौ केव-  
लार्थाध्यवसायः किञ्च स्यात् ? 'स्वभिधानविशेषापेक्षा एवार्था'  
३५ निश्चयेर्निश्चीयन्ते' इत्येकान्तत्यागात् । द्वितीयपक्षे तु-अनवस्था-  
वर्णपदाध्यवसायेप्यपरनामान्तरस्यावश्यं स्मरणौ ॥ छ ॥

१ शब्दजनितप्रत्यक्षस्य । २ घटः काले तत्राले इत्यादि । ३ शब्दः । ४ विक-  
ल्पस्य । ५ विकल्पस्य । ६ वन्ध्यास्तुताद्यर्थः । ७ नीलः । ८ तु- । ९ तेन दृश्येन  
नीलेन सदृशं पूर्वानुभूतं च तत्र तत्सदृशं च तत्र स्मृतिः । १० स्मृतिविकल्पः ।  
११ पूर्वानुभूततत्सदृशार्थस्मरणोत्पत्त्यै नामविशेषस्य पूर्वानुभूततत्सदृशार्थस्मरणोत्पाद-  
कस्याभावात्तस्य तत्कार्यतया पूर्वानुभूततत्सदृशार्थनामविशेषस्यलनन्तरभावित्वात् ।  
१२ नामविशेषः । १३ नाम । १४ शब्देन । १५ नीलशब्देनेवं वाच्यमिति  
योजनाभावः । १६ दृश्यस्य नीलस्य । १७ दृश्यमाने नीले विकल्पानुत्पत्तिः ।  
१८ विकल्पाभिधानशून्यं । १९ गौरित्यस्य । २० गकारजौकारविसर्गनीयानां ।  
२१ अभिधान । २२ नामनिरपेक्षः । २३ विकल्पैः ।

१ तु०—“तस्मादयं किञ्चित्पक्षयन् तत्सदृशं पूर्वं दृष्टं न स्मृतामहति तन्नामविशे-  
षात्, तदस्मरणे तदभिधानाप्रतिपत्तिः, तदप्रतिपत्तौ तेन तत्र योजयति,  
तदयोजयन्नाध्यवसायतीति न कचिद्विरुद्धः शब्दो वेत्यविकल्पाभिधानं जगत्स्यात्” ।

अष्टश० अष्टसह० पृ० ११९ । सा० रक्षा० पृ० ७७ ।

२ तु०—“नाम्नो नामान्तरेण विनापि स्मृतौ केवलार्थव्यवसायः किञ्च स्यात्  
तन्नामान्तरपदविकल्पनायामनवस्था” । (अष्टश०) “तदुक्तं न्यायमित्रकवे (११६)  
जमिनापतदशानामभिलाषविवेकतः । अग्रमाणप्रयेयत्वमवश्यमनुपपन्नते” ॥ अष्टसह०  
पृ० १९० ।

३ बौद्धाभिमतनिर्विकल्पकप्रत्यक्षस्य खण्डनमनवैवानुपूर्व्या—अष्टश० अष्टसह०  
पृ० ११८, प्रमाणप० पृ० ५३, न्यायकु० च० प्र० परि०, सम्मति० दी० पृ० ४९९ ।  
सा० रक्षा० पृ० ७६ । इत्यादिषु द्रष्टव्यम् ।



“स्थानेषु विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा ।

वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिवन्धना ॥ १ ॥

प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मर्ध्यमा वाक् प्रवर्तते ।

अविभागाऽऽनु(गा तु)पश्यन्ती सर्वतः संहृतक्रमा ॥ २ ॥

स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वार्गनपायिनी ।

तथा व्याप्तं जगत्सर्वं ततः शब्दात्मकं जगत् ॥ ३ ॥”

[ ] इत्यादि ।

— १ कण्ठादिषु । २ प्रसूते सति । ३ पुरुषेण । ४ हृदिसो वायुः प्राणः ।  
५ परित्यज्य । ६ वर्णादिरहिता । ७ नष्टवर्णादिक्रमो यतः । ८ शाश्वती ।

अंशमसङ्कीर्णं लोकव्यवहारादीतये । तस्या ध्वं वाचो व्याकरणेन सामुत्पत्तानुसन्धेन  
शब्दपूर्वेण योगेनाऽधिगमः इत्येकेषामागमः—”मन्त्रप० टी० १।१४४

“वक्तव्यं—वैखरी शब्दनिष्पत्तिः मध्यमा वृत्तिगोचरा ।

योतितायां च पश्यन्ती सूक्ष्मा वार्गनपायिनी ॥”

कुमारसं० टी० १।१७ ।

१ “अस्यार्थः—स्थानेषु तात्त्वादित्थानेषु, वायौ प्राणसंज्ञे, विवृते अविभा

निरुद्धे सति, कृतवर्णपरिग्रहेति हेतुद्वारेण विशेषणम् ततः क १।१४४ टी०  
वैखरी संज्ञा वक्तुनिर्विशिष्टायां खरावसायां स्पष्टरूपायां मया वैखरीति निरुक्तेः ।  
वाक्प्रयोक्तृणां सन्निधौ । यदा तेषां स्थानेषु तस्याश्च प्राणवृत्तिरेव निवन्धनं  
निबद्धा सा तन्मयत्वादिति” सा० रत्नाकर पृ० ८९ ।

२ “या पुनरन्तःसङ्कल्प्यमाना क्रमवती ओन्नप्राशवर्णरूपाऽभिभ्यक्तिरहिता वाक्  
सा मध्यमेत्युच्यते ।

तदुक्तम्—केवलं बुद्ध्युपादानात् क्रमरूपानुपातिनी ।

प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते ॥

सूक्ष्मा प्राणवृत्तिं हेतुत्वेन वैखरीवदनपेक्ष्य केवलं बुद्धिरेव उपादानं हेतुर्यस्याऽऽपि  
प्राणसत्त्वात् क्रमरूपमनुपपत्तिः । अस्याश्च मनोभूमाववस्थानात् वैखरीपदयन्तो  
मवात् मध्यमा वागिति ।” सा० रत्नाकर पृ० ८९ ।

३ “या तु आशमेदक्रमादिरहिता स्वप्रकाशा संविद्रूपा वाक् सा  
च्यते” । “यस्या वाच्यवाचकयोर्विभागेनावभासो जातिः सर्वत्रैव सत्तादीयवि-  
त्तीयापेक्षया संहृतो वाच्याना वाचकानां च क्रमो देशकालकृतो यत्र, क्रमविवर्तशक्तिस्तु  
विद्यते” सा० रत्नाकर पृ० ९० ।

४ “स्वरूपज्योतिः स्वप्रकाशा वैद्यते वेदक्रमेदातिक्रमात् । सूक्ष्मा दुर्लभा  
अनपायिनी कालमेवाऽऽस्वर्शादिति ।” सा० रत्नाकर पृ० ९० ।

५ वक्तुर्विषयायां स्वरूपं तत्त्वार्थलोकवाचित्वेऽपि (पृ० २४१) वर्णितमस्ति ।  
अयः श्लोकः वान्यपदीयटीकायां (पृ० ५६) ‘पुनश्चाह’ इति कृत्वा उद्धृताः वर्तन्ते ।

तदनुमानोत्तेपां तदनुविद्धत्वप्रतीतिरित्यपि मनोरथमात्रम्;  
 तद्विनाभाविलिङ्गाभावात् । तत्सम्भवे वाऽध्यक्षादिवाधितपक्ष-  
 निर्देशानन्तरं प्रयुक्तत्वेन कालात्ययापदिष्टत्वाच्च ॥ अथ जगतः  
 शब्दमयत्वात्तदुदरवर्तिनां प्रत्ययानां तन्मयत्वात्तदनुविद्धत्वं  
 सिद्धमेवेत्यभिधीयते; तदप्यनुपपन्नमेव; तत्तन्मयत्वस्याध्यक्षादि-  
 वाधितत्वात्, पदवाक्यादितोऽन्यस्य गिरितरुपुरलतादेस्तदाका-  
 रपराङ्मुखेणैव सविकल्पकाध्यक्षेणात्यन्तं विशदतयोपलम्भात् ।  
 'ये-यदाकारपराङ्मुखास्ते परमार्थतोऽतन्मयाः यथा जलाकार-  
 विकलाः स्यासकोशकुशूलादयस्तत्त्वतो न तन्मयाः, परमार्थत-  
 दाकारपराङ्मुखाश्च पदवाक्यादितो व्यतिरिक्त्य गिरितरुपुरल-  
 तादयः पदार्थाः' इत्यनुमानतोऽस्य तद्वैधुर्हसिद्धेः ।

किंच, शब्दपरिणामरूपत्वाजगतः शब्दमयत्वं साध्यते,  
 शब्दादुत्पत्तेर्वा ? न तावदाद्यः पक्षः, परिणामस्यैवात्राशङ्क्यत्वात् ।  
 शब्दात्मकं हि ब्रह्म नीलादिरूपतां प्रतिपद्यमानं कदाचिन्निरूपितं  
 शब्दरूपं परित्यज्य प्रतिपद्येत, अपरित्यज्य वा ? तत्राशङ्क्य-  
 अस्याऽनादिनिधनत्वविरोधः पौरस्त्यस्वभावविनाशस्तु । ननु  
 पक्षे तु नीलादिसंवेदनकाले यधिरस्यापि शब्दसंवेदनतिषे-  
 नीलादिवसंवेदनतिरेकीत् । यत्तत्रलु यदव्यतिरिक्तं तत्तत्संवेदा-  
 यमाने संवेद्यते यथा नीलादिसंवेदनावस्थायां तस्यैव नीला  
 वेरात्मा, नीलाद्यव्यतिरिक्तश्च शब्द इति । शब्दस्यासंवेदने वा २०  
 नीलादेरप्यसंवेदनप्रसङ्गः तादात्म्याविशेषात्, अन्यथा निरुद्ध-  
 धर्माधर्मसांत्तस्य ततो मेदप्रसङ्गः । न ह्येकैस्यैकदा एकप्रतिपन्न-  
 पेक्षया ग्रहणमग्रहणं च युक्तम् । विरुद्धधर्माध्यासेष्वत्र मेदा-

१ तेषां प्रत्ययानां । २ शब्दः । ३ सर्वे प्रत्ययाः शब्दानुविद्धा इत्यत्र साध्ये  
 साधनाभावः । ४ श्लोकः । ५ मित्रस्य । ६ शब्दानुविद्धत्वादिलिङ्गः । ७ शब्दब्रह्मणि ।  
 ८ स्वीकृत्यैव । ९ वस्तु । १० तादात्म्यसङ्गमाद । ११ का (पञ्चमी पञ्चमीतमास  
 इत्यर्थः) । १२ शब्दस्य । १३ नीलादेरेव संवेदनं न शब्दमेति चेत् । १४ वेदा-  
 धर्मधर्मसांत्तस्य ततो मेदप्रसङ्गः । १५ ब्रह्मणः । १६ नीलात् । १७ अभिन्नस्य शब्दलिङ्गस्य ।  
 १८ अन्यथा । १९ नीलनीलशब्दयोः ।

१ "अत्र कदाचिच्छब्दपरिणामरूपत्वाद्वा जगतः शब्दमयत्वं साध्यत्वेनेष्टम्,  
 कदाचिच्छब्दादुत्पत्तेर्वा शब्दात्मकं ब्रह्म नीलादिरूपतां प्रतिपद्यमानं कदाचिन्निरूपितं  
 शब्दरूपं परित्यज्य प्रतिपद्येत, अपरित्यज्य वा ?" तत्त्वसं० पं० पृ० ३८ ।  
 व्याख्य० च० प्र० परि० । सम्मति० टी० पृ० ३८० । सा० रत्नाकर पृ० १०० ।

संभवे हिमवद्विन्ध्यादिभेदानामप्यभेदानुषङ्गः । किंच, शब्दात्मा परिणामं गच्छन्प्रतिपदार्थभेदं प्रतिपद्येत, न तत्राद्यविकल्पे-शब्दब्रह्मणोऽनेकत्वप्रसङ्गः ( विभिन्नानेकार्थसंभवात्मकत्वात्तत्स्वरूपवत् ) द्वितीयविकल्पे तु-सर्वेषां नीलादीनां देशकालस्वभावव्यापारावस्थोदिभेदाभावः प्रतिभासमेदाभावश्चा-नुपपद्येत-एकस्वभावाच्छब्दब्रह्मणोऽभिन्नत्वात्तत्स्वरूपवत् । तत्र शब्दपरिणामरूपत्वाज्जगतः शब्दमयत्वम् ।

नापि शब्दादुत्पत्तेः, तस्य नित्यत्वेनाविकारित्वात्, क्रमेण कार्योत्पत्तिविरोधात् सकलकार्याणां युगपदेवोत्पत्तिः स्यात् । १० कारणवैकल्यादिकार्याणि विलम्बन्ते नान्यथा । तत्रेदविकल्पः परं तैरपेक्ष्य येन युगपन्न भवेयुः ? किंच, अपरापरकार्यग्रामोऽर्थान्तरम्, अनर्थान्तरं चोत्पद्येत ? तत्रार्थान्तरस्योत्पत्तौ-कथं 'शब्दब्रह्मविवर्तमर्थरूपेण' इति घटते । न ह्यर्थान्तरस्योत्पादे अन्यथा तत्स्वभावमनाद्ययतः तीव्रव्युत्पत्तिविवर्तौ युक्तः । तदनर्थो- १४ तत्स्वभावोत्पत्तौ-तस्यानादिनिघनत्वविरोधः । ( ८९ )

निघ्नोति । तस्मात्ततोऽनादिनिघनेऽभिन्नसंभवेऽपि शब्दब्रह्मणि तस्मिन्निघ्नोत्पत्तौ जनः प्रादुर्भावविनाशवत् कार्यभेदेन निघ्नोति । तदुक्तम्-

“यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपैतुतो जनः ।

२० संकीर्णमिव मीत्रामिच्छिन्नाभिरमिमन्यते ॥

[ बृहदा० भा० वा० ३१ ]

१ ब्रह्मा । २ उत्पादविनाशः । ३ नीलत्वपीतत्वादि । ४ विभिन्नानेकार्थस्वरूपवत् । ५ पदार्थैः सदैकत्वे । ६ ज्ञान । ७ प्रमेयमेदाद् ज्ञानमेव इति वचनात् । ८ पदार्थेभ्यः । ९ शब्दब्रह्मस्वरूपवत् । १० शब्दब्रह्मणः । ११ कार्यैः । १२ घटपटादि । १३ शब्दब्रह्मणः । १४ भिन्नमभिन्नं वा । १५ पूर्वयुक्तं विवर्ततेऽर्थभावेनेति । १६ अपरापरकार्यग्रामस्य । १७ शब्दब्रह्मणः । १८ अनर्थान्तर । १९ अर्थान्तररूपेण । २० ब्रह्मा । २१ सत्या । २२ शब्दब्रह्मणः । २३ उत्पादविनाशात्मकादर्यादभिन्नत्वात् । २४ अभेदरूपे भेदरूपप्रतिभासः । २५ ब्रह्म स्वार्थे । २६ घटपटादि । २७ नानारूपं । २८ उपहतः । २९ संछिन्नम् । ३० रेखाभिः । ३१ नानारूपाभिः ।

१ “स हि शब्दात्मा परिणामं गच्छन् प्रतिपदार्थं भेदं वा प्रतिपद्येत न वा” तत्त्वसं० पृ० ७० । न्यायकु० प्र० परि० । सम्प्रति० टी० पृ० ३८ । रत्नाकर पृ० १०१ ।

तथेदममलं ब्रह्मनिर्विकारमविद्यया ।

कलुषत्वमिवापन्नं मेदेरूपं प्रपश्यति ॥

[बृहदा० मा० वा० ३।५।४४] इति ।

तदप्यसाम्प्रतम्; अत्रार्थे प्रमाणाभावात् । न कलु यथोपवर्णित-  
स्वरूपं शब्दब्रह्म प्रत्यक्षतः प्रतीयते, सर्वदा प्रतिनियेतार्थस्वरूप-  
ग्राहकत्वेनैवास्म्य प्रतीतेः । यच्च-अभ्युदयनिश्रेयसफलधर्मानुगृही-  
तान्तःकरणा योगिन एव तत्पश्यन्तीत्युक्तम्; तदप्युक्तिमात्रम्;  
न हि तद्व्यतिरेकेणान्ये योगिनो वस्तुभूताः सन्ति येन 'ते  
पश्यन्ति' इत्युच्येत । यदि च तज्ज्ञाने तस्य व्यापारः स्यात्तदा-  
विचित्रस्तस्य रूपं पश्यन्ति' इति स्यात् । यौवतोक्तप्रकारेण कार्ये १०  
व्यापार एवास्म्य न संगच्छते । अविद्यायाश्च तद्व्यतिरेकेणासंभवा-  
त्कथं मेदप्रतिभासहेतुत्वम् ? आकाशे च वितैथप्रतिभासहेतुभूत-  
वास्तवमेवास्ति तिमिरम् इति न ह्येष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः  
(नाम्यम्) ।

नाप्यनुमानतस्तत्रैतिपत्तिः; अनुमानं हि कार्यलिङ्गं वा भवेत्, १५

भावोदिलिङ्गं वा ? अनुपलब्धेर्विधिसाधकत्वेनानभ्युपगमात् ।

अ न तावत्कार्यलिङ्गम्; नित्यैकस्वभावात्ततः कार्योत्पत्तिप्रतिषे-  
धकत्वात् । ननु यौगपद्याभ्यां तस्यैवकार्यारोधात् । नापि स्वभा-

विचित्रप्रतिभासहेतुः । १ मेदप्रकमे इवशब्दः । २ इव । ३ इव । ४ इव । ५ पुरो-  
वि । ६ स्वर्ग । ७ मोक्ष । ८ वसतः । ९ परेण भवता । १० ब्रह्मणः ।  
११ परमार्थभूताः । १२ योगिज्ञाने । १३ ब्रह्मणः । १४ अहमिति जनकत्व-  
लक्षणव्यापारः । १५ सामान्येन । १६ ब्रह्मणः । १७ वदते । १८ किंच ।  
१९ ब्रह्म । २० मिथ्या । २१ तिमिराविषयोः । २२ ब्रह्म । २३ कारणलिङ्गं ।  
२४ (अनुपलब्धिरूपो हि हेतुर्न, विधिसाधकः) । २५ शब्दब्रह्मणः । २६ वदति ।  
२७ ब्रह्मणः । २८ कार्ये । २९ स्वरूपम् ।

१ "विशुद्धज्ञानसन्ताना योगिनोऽपि ततो न तत् ।

विदन्ति ब्रह्मणो रूपं ज्ञाने व्यापृत्य सङ्गते ॥ १५१ ॥

विचित्रप्रतिभासहेतुत्वस्य व्यापारः सात्त्वदा योगिनः तस्य रूपं पश्यन्तीति स्यात्  
"तत्त्वसं० पं० पृ० ७४ ।

२ "नचापि भवता तद्व्यतिरेकिण्यविद्याऽस्ति" तत्त्वसं० पं० पृ० ७४ । सा०  
रत्ना० पृ० ९९ । शास्त्रवा० सखु० टी० पृ० १३७ ड० ।

३ "आकाशे च वितथप्रतिभासहेतुभूतं वास्तवमेव तिमिरं प्रतिबिम्बम्, अविद्यायाश्च  
प्रतिभासत्वेन विचित्रप्रतिभासहेतुत्वानुपपत्तितो बृहन्तदार्ष्टान्तिकयोः साम्याऽसंभवात्,"  
तत्त्वसं० पं० पृ० १९ । सा० रत्ना० पृ० ९९ ।



बलिङ्गम्; शब्दब्रह्माख्यधर्मिण पवासिद्धेः । न ह्यसिद्धे धर्मिणि  
तत्त्वभावभूतो धर्मः स्वातन्त्र्येण सिद्ध्येत् ।

यञ्चोच्यते-‘ये यदाकारानुस्यूतास्ते तन्मया यथा घटशरावो-  
दञ्चनादयो मृद्विकारा मृदाकारानुगता मृन्मयत्वेन प्रसिद्धाः,  
५ शब्दाकारानुस्यूताश्च सर्वे भावा इति’; तदप्युक्तिमात्रम्; शब्दा-  
कारान्वितत्वस्यासिद्धेः । प्रत्यक्षेण हि नीलादिकं प्रतिपद्यमानोऽ-  
नौविष्टाभिलाषमेव प्रतिर्पत्ता प्रतिपद्यते । कल्पितत्वाच्चोस्याऽ-  
सिद्धिः । शब्दान्वितरूपाधारार्थासत्त्वेपि हि ते तदन्वितत्वेन त्वर्या  
कल्प्यन्ते । तैर्भाभूताच्च हेतोः कथं पारमार्थिकं शब्द-  
१० सिद्ध्येत् ? साध्यसाधनविकलश्च दृष्टान्तो घटादीनामपि सर्व-  
कमयत्वस्यैकान्वितत्वस्य चासिद्धेः । न खलु भावानां पारमार्थिक-  
करूपानुगमोस्ति, सर्वार्थानां समानाऽसमानपरिणामात्मकत्वात्  
किञ्च, शब्दात्मकत्वेऽर्थानाम् शब्दप्रतीतौ सङ्केतोप्राहिणोप्यर्थे  
सन्देहो न स्यात्तच्चस्यापि प्रतीतत्वात्, अन्यथा तादात्म्य-  
१५ विरोधः । अग्निपापाणादिशब्दभ्रवणाच्च श्रोत्रेण दाह्यभिघातादि-  
प्रसङ्गः । तन्नानुमानतोपि तत्प्रतीतिः ।

नाप्यागमात्, “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” [ मैत्र्यु० ] इत्याद्यागमस्य  
ब्रह्मणोऽर्थान्तरभावेद्वैतप्रसङ्गात्, अनर्थान्तरभावे तु तद्वैत-  
स्याप्यसिद्धिप्रसङ्गः । तैदेवं शब्दब्रह्मणोऽसिद्धेर्न शब्दानु-  
२० सविकल्पकलक्षणं किन्तु समारोपविरोधिर्ब्रह्ममिति प्र-  
पञ्च्यम् ।

१ भवता परेण । २ शब्दमयाः । ३ हेतोः । ४ पदार्थ । ५ शब्देन रहितम्  
६ शाता । ७ शब्दान्वितत्वस्य । ८ अर्थाः । ९ शब्द । १० परेण । ११ कविपत  
शब्दान्वितरूपात् । १२ विसृष्टः । १३ पुरुषस्य । १४ अयं घटः पदो वेलादि  
१५ शब्दवशीलदेरपि । १६ सन्देहमेव । १७ अग्न्याशीभिन्नशब्दस्य श्रोत्र  
सः स्थित्वात् । १८ न च तथास्ति । १९ ब्रह्म । २० आगमो भिन्नो ब्रह्मणः  
२१ सात्कारणात् उक्तप्रकारेण । २२ ज्ञानम् ।

१ “शब्दार्थयोश्च तादात्म्ये क्षुरादिमोदकादिशब्दोच्चारणे आस्यपाटनदहनपूर्व-  
प्रसक्तिः । सम्मति० टी० पृ० ३८६ । शास्त्रवा० टी० पृ० २३७पृ० ।

२ “ ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम् ” मैत्र्यु० ४।६ ।

३ शब्दब्रह्मवादस्य विविधरीत्या खण्डनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्-मीमांसाशो०  
प्रलक्ष्मण० को० १७६ । न्यायमं० पृ० ५३१ । तत्त्वसं० पृ० ६७ । तत्त्वार्थको०  
पृ० २४० । न्यायकु० प्र० परि० । सम्मति० टी० पृ० ३८०, ४९४ । स-  
रत्ना० पृ० ८८ ।

ननु व्यवसायात्मकविज्ञानस्य प्रामाण्ये निखिलं तदात्मकं ज्ञानं प्रमाणं स्यात्, तथा च विपर्ययज्ञानस्य धारावाहिविज्ञानस्य च प्रमाणताप्रसङ्गात् प्रतीतिसिद्धप्रमाणेतरव्यवस्थाविलोपः स्यात्, न्याशङ्क्याऽतिप्रसङ्गापनोदार्थम् अपूर्वार्थविशेषणमाह । अतोऽनयोरनर्थविषयत्वाविशेषग्राहित्वाभ्यां व्यवच्छेदः सिद्धः । यद्वा ने- ५ नाऽपूर्वार्थविशेषणेन धारावाहिविज्ञानमेव निरस्यते । विपर्ययज्ञानस्य तु व्यवसायात्मकत्वविशेषणेनैव निरस्तत्वात् संशयादि-व्यभावसमारोपविरोधिग्रहणत्वान्तस्य ।

ननु संशयादिज्ञानस्यासिद्धस्वरूपत्वात्कस्य व्यवसायात्मकत्वविशेषणत्वेन निरासः ? संशयज्ञाने हि धर्मी, धर्मो वा प्रति- १० भाति ? धर्मी चेत्, स तात्त्विकः, अतात्त्विको वा ? तात्त्विकश्चेत्, कथं तद्बुद्धेः संशयरूपता तात्त्विकार्थगृहीतिरूपत्वात्कर-तलादिनिर्णयवत् ? अथातात्त्विकः, तथाप्यतात्त्विकार्थविषयत्वात् केशोण्डुकादिज्ञानवद् भ्रान्तिरेव संशयः । अथ धर्मः-स स्थाणुत्वलक्षणः, पुरुषत्वलक्षणः, उभयं वा ? यदि स्थाणुत्वल- १५ क्षणः, तत्र तात्त्विकाऽतात्त्विकयोः पूर्ववद्दोषः । अथ पुरुषत्व-लक्षणः, तत्राप्ययमेव दोषः । अथोभयम्, तथाप्युभयस्य तात्त्विकत्वाऽतात्त्विकत्वयोः स एव दोषः । अथैकस्य तात्त्विकत्वमन्य-स्यातात्त्विकत्वम्, तथापि तद्विषयं ज्ञानं तदेव भ्रान्तमभ्रान्तं चेति प्राप्तम् । अथ सन्दिग्धोर्थस्तत्र प्रतिभासते, सोपि विद्यते २० न तैर्यादिविकल्पे तदेव दूषणम् । तन्न संशयो घटते । नापि विपर्ययस्तस्यापि स्मृतिप्रमोपाद्यभ्युपगमेनाव्यवस्थितेः ।

इत्यप्यसमीचीनम्, यतः संशयः सर्वप्राणिनां चलितप्रति-पत्त्यात्मकत्वेन स्वात्मसंवेद्यः । स धर्मिविषयो वास्तु धर्मविषयो

१ पर० । २ षटोऽयं षटोऽयमिति । ( निश्चयानन्तरं तेनैवाकारेण पुनः पुनर्यत्नवर्तते तज्ज्ञानम् ) । ३ निश्चयात्मकत्वाविशेषात् । ४ परिहाराः । ५ जैनेः । ६ प्रमाणं मूले [ १ तत्त्वोपपन्नवादी ] । ७ पुरुषः । ८ पुरुषत्वं । ९ यन्मते धर्मो नान्यदस्ति । न भवतीति साध्यो धर्मः तात्त्विकार्थगृहीतिरूपः ।

१० जैनेः धर्मैकवैद्येन बहुग्रीहिग्रहणं सकारुण्येन नान्यवानुपूर्व्यां विचारः न्यायकु० च० प्र० परि० तथा सा० रत्ना० पृ० १२४ इत्यादिषु द्रष्टव्यः ।

२ “असतः प्रत्युपाख्याविरहितस्य खपुण्यादिवत् प्रतिभासाऽसंभवात्... भ्रान्ति-नेत्रिव्याभावप्रसंगश्च । न्यायकु० च० प्र० परि० । सा० रत्नाकर पृ० १२५ ।

३ असत्ख्यातेः प्रतिविषयं न्यायशा० ता० मी० पृ० ८६, न्यायमं० पृ० १७७, न्यायकु० प्र० परि०, सा० रत्ना० पृ० १२५ । इत्यादिषु द्रष्टव्यम् ।

प्र० क० भा० ५

स्येव, अन्यथा विद्युदादेरपि सत्त्वसिद्धिर्न स्यात् । तस्मात्प्रसिद्धा-  
र्थव्याप्तिरेव युक्ता ।

इत्यप्यसाम्प्रतम् ; यथावस्थितार्थगृहीतिव्याविशेषे हि भ्रान्ताऽ-  
भ्रान्तव्यवहारभावः स्यात् । अपि चोत्तरकालमुदकादेरभावेऽपि  
५ तच्छिदस्य भूक्षिग्धतादेरुपलम्भः स्यात् । न खलु विद्युदादिवदुद-  
कादेरप्याशुभावी निरन्वयो विनाशः कचिदुपलभ्यते । सर्वतदेव  
द्रष्टृणामविसंवादेनोपलम्भश्च विद्युदादिवदेव स्यात् । बाध्यबाधक-  
भावश्च न प्राप्नोति ; सर्वज्ञानानामवितथार्थविषयत्वाविशेषात् ।

यदप्युच्यते-ज्ञानस्यैवायमाकारोऽनाद्यऽविद्योपह्वयसामर्थ्याद्-  
१० हिरिव प्रतिभासते । अनादिविचित्रवासनाश्च क्रमविपर्ययवत्यः  
पुंसां सन्ति तेनैकैकार्कणि ज्ञानानि स्वाकारमौत्रसंवेद्यानि  
क्रमेण भवन्तीत्यात्मव्याप्तिरेवेति ; तदप्युक्तिमात्रम् ; यतः  
स्वात्ममात्रसंविचिनिष्ठत्वे अर्थाकारत्वे च ज्ञानस्यात्मव्याप्तिः  
सिद्ध्येत् । न च तत्सिद्धम् ; उत्तरत्रोभयस्यापि प्रतिषेधात् । सर्व-  
१५ ज्ञानानां स्वाकारप्राप्तित्वे च भ्रान्ताऽभ्रान्तविवेको बाध्यबाधक-  
भावश्च न प्राप्नोति, तत्र व्यभिचारभावाविशेषात् । स्वात्मस्थित-  
त्वेन रजताद्याकारस्य संवेदनेन च सुखाद्याकारवद्बहिर्भूतया

१ मरीचिकायां जलकणोऽर्थः सलभूतः प्रतिभासमानत्वात् वटवत् । २ सर्व-  
ज्ञानानामङ्गीक्रियमाणे । ३ सति । ४ तत्र प्रवृत्तस्य पुरुषस्य । ५ उत्तरकाले ।  
६ विद्युदिते सति । ७ सलभूताय । ८ ज्ञानाद्वैतवादिना योगाचार्येण । ९ शुक्ति-  
कावौ रजसाद्याकारः । १० अवयवविपिशक्तिः । विपिश्रान्तिः । ११ ज्ञानात् ।  
१२ चक्षुर्धर्मः । १३ कारणेन । १४ अनाद्यविद्यासामर्थ्येन । १५ वदंति ।  
१६ प्राक्षमाहर्कः । १७ संवित्तिरूपाणि । १८ ज्ञान । १९ नसः । (बहुव्रीहि-  
संज्ञात् इत्यर्थः) । २० मरीचिकायां जलाकारः क्षीनोत्प्ला प्रतिभासमानत्वात्  
ज्ञानस्वरूपवत् । २१ ज्ञानप्रतीतिः । २२ ज्ञानस्य । २३ सिद्धे । २४ द्वयं ।  
२५ नीलकेशोण्डुकादिसर्वविकल्पानां । २६ आत्मस्वरूपमात्रे । २७ लस्य ज्ञान-  
स्यात्मा स्वरूपं तत्र स्थितत्वेन । २८ बहिःस्थितया ।

१ अनयैव शिला प्रसिद्धावस्थातेविचारः न्यायकु० चं० प्र० परि० । सा०  
रत्ना० पृ० १२६ । इत्यादिषु द्रष्टव्यम् ।

२ आत्मव्याप्तेनिरूपणं न्यायमज्जर्वामित्यं वृत्त्यते (पृ० १७८)

“विज्ञानमेव स्वप्नेतद्ब्रह्मालम्बान्मात्मना ।

बहिर्निरूप्यमाणस्य प्राक्षसाजुपपत्तिः ॥

बुद्धिः प्रकाशमात्रा च तेन सेनात्मना बहिः ।

सद्वद्वर्त्ययुक्त्यापि लोकयानामिदं दृश्यम् ॥”

तीतिर्न स्यात् । प्रतिपत्ता च तदुपादानार्थं न प्रवर्त्तत, अबहिष्ठाऽ-  
स्थैरत्वेन प्रवृत्त्यविषयत्वात् । अथाविद्योपप्लवशाद्विष्णु-स्थिर-  
त्वेनाध्यवसायः, कथमेवं विपरीतख्यातिरेव नैष्टा, ज्ञानादभिन्न-  
यास्थिरस्य चार्थाकारस्यान्यथाध्यवसायाभ्युपगमादिति ?

यञ्चोच्यते—न ज्ञानस्य विषयं उपदेशगम्योऽनुमानसाध्यो वा ५  
नेन विपरीतोऽर्थः कल्प्येत । किं तर्हि ? यो यस्मिन् ज्ञाने प्रति-  
भाति स तस्य विषय इत्युच्यते । जलादिज्ञाने च जलाद्यर्थ एव  
प्रतिभाति न तद्विपरीतः, जलादिज्ञानव्यपदेशाभावप्रसङ्गात् । स  
च जलाद्यर्थः सन्न भवति, तद्विद्भेदभ्रान्तत्वप्रसङ्गात् । नाप्यसन्,  
अपुण्यादिव्यतिभासप्रवृत्त्योरविषयत्वानुपपन्नात् । नापि सद- १०  
सद्वपः, उभयदोषानुपपन्नात्, सदसतोरैकात्म्यविरोधाच्च । तस्मा-  
दयं बुद्धिसन्दर्शितोऽर्थः सत्त्वेनासत्त्वेनान्येन वा धर्मान्तरैर्न  
निर्वर्त्तुं न शक्यत इत्यनिर्वचनीयार्थख्यातिः सिद्धा, इत्यपि मनो-

१ प्रमाता । २ किञ्च । ३ रजतादि । ४ ज्ञानस्य क्षणिकत्वात् । ५ परः ।  
६ रजताद्यैः । ७ अनिर्वचनीयार्थख्यातिवादिना शङ्करीवेण । ८ विपरीतार्थख्याति  
दुर्बलेन अनिर्वचनीयार्थख्यातिं समर्थयते । ९ रजतादि । १० विपरीत इति ।  
११ रजतमिदमिति ज्ञाने किंरूपोऽर्थः प्रतिभासते इति प्रश्ने पर उपदेशं करोति । कथं  
श्रुतिश्चात्रकलमिति रजतमिदमिति ज्ञानं पुरोवर्तिवस्तुविषय तत्रैव प्रवर्तकत्वात्सम्प्रति-  
पन्नज्ञानवदित्यनुमानं रजतमिदमिति तस्मिन् ज्ञाने प्रतिभासमानार्थस्योपदेशगम्यत्वेऽनु-  
मानसाध्यत्वे वा विपरीतार्थख्यातिः स्वात्प्रतिभासमानार्थव्यतिरेकेणाधीनतरस्य सङ्गावात्  
श्रुतिश्चकलस्य । १२ मरीचिकाचक्रे जललक्षणः । १३ प्रतिभासमानाद्विपरीतोऽर्थः  
श्रुतिश्चकललक्षणः । १४ अन्यथा । १५ अन्यथा । १६ उत्तरकाळे बाधकानुपपत्ति-  
प्रसङ्गात् । १७ उभयेन । १८ निरूपयितु । १९ विवादापक्षो जललक्षणोऽर्थः  
सत्त्वाऽसत्त्वाथनिर्वचनीयः प्रतिभासमानत्वे सति बाध्यमानत्वान्यथानुपपत्तेः ।

१ आत्मख्यातेर्विविधरीत्या पर्यालोचनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—न्यायवा० ता० टी०  
पृ० ८५, आमती पृ० १४, न्यायमं० पृ० १७८, न्यायबकुलु० प्र० परि०, स्वा०  
रत्ना० पृ० १२८ ।

२ “तर्हि मरीचिषु तोयनिर्मासप्रत्ययः तत्त्वगोचरः, तथा च समीचीन इति न  
आन्तो नापि बाध्यत । अद्या न बाध्यत यदि मरीचीनतोयात्मतत्त्वा न तोयात्मना(१)-  
गृहीयात् । तोयात्मना तु गृह्णन् कथमआन्तः कथं बाध्याध्यः ? इन्त तोयाभावात्मनां  
मरीचीना तोयभावात्मत्वं तावन्न सत् ; तेषां तोयाभावादभेदेन तोयभावात्मताऽनु-  
पपत्तेः । नाप्यसत् ; वस्तुवन्तरमेव हि वस्तुवन्तरस्यासत्त्वमासीयते ‘मावान्तरमर्भावो-  
ऽन्यो न कश्चिदनिरूपणात्’ इति वदद्भिः । .....तस्माच्च सत्, नापि सदसत् ;  
परस्परविरोधात् ; इत्यनिर्वाच्यमेवारोपणीवं ‘मरीचिषु तोयमात्रेयम् । तदनेन क्रमेण

रथमात्रम्; अद्वैतसिद्धौ ह्येतत्सिद्ध्येत्, तच्चाद्वैतं निराकरि-  
ष्यामः । यच्चोक्तम्—न ज्ञानस्य विषय उपदेशगम्य इत्यादि;  
तद्भवतामेव प्राप्तम्, तथा हि—जलादिभ्रान्तौ नियतदेशकाल-  
स्वभावः सदात्मकत्वेनैव जलाद्यर्थः प्रतिभाति तद्ग्रहणेऽसौ तत्रैव  
५ प्रवृत्तिदर्शनात् तत्कथमसौ निर्वचनीयः स्यात् ? न ह्येवंभूते  
प्रतिभासप्रवृत्तौ अनिर्वचनीयेऽयं सम्भवतः । अथ विचार्यमाण  
एवासौ सदसत्त्वादिभिरनिर्वचनीयः सम्पद्यते न तु भ्रान्तिकाले  
तथा प्रतिभातीति; नन्वेवमन्यथाप्रतिभासाद्विपरीतव्यातिरेव  
स्यात् ।

१० ननु विपरीतव्यातिरपि प्रतिभासविरोधोऽत्र युकेति<sup>६</sup> । क एव-  
माह—‘विपरीतोऽयमर्थः’ इति व्यातिः ? किं तर्हि ? पुरुषविपरीते  
स्थाणौ ‘पुरुषोऽयम्’ इति व्यातिर्विपरीतव्यातिः । ननु पुरुषाव-  
भासिनि ज्ञाने स्थाणोरप्रतिभासमानस्य विषयत्वमयुक्तं सर्वत्रो-  
प्यव्यवस्थाप्रसङ्गात्; तदयुक्तम्; यतः स्थाणुरेवात्र ज्ञाने तद्रूपस्या-  
१५ नवपारणादर्थमादिवशाच्च पुरुषाद्याकारेणाव्यवसीयते । आद्यो-  
त्तरकालं हि प्रतिसन्वत्ते स्थाणुरयं मे ‘पुरुषः’ इत्येवं प्रतिभात

१ नेदेन निरूपयितुमशक्यत्वमद्वैतामृतं पुरुषाद्वैताभावे तदसम्भवादित्यर्थः ।  
२ भवदुक्तम् । ३ परेण । ४ अनुमानसाध्यः । ५ अर्थोऽनिर्वचनीय इति उपदेश-  
गम्येनेत्यादि । ६ रजतसपादि । ७ इति नियतदेशादिसमावसाधनं सदात्मकप्रति-  
भासमानस्योपदेशादनिर्वचनीयत्वं कथं स्यात् । रजतादिभ्रान्तौ प्रतिभासमानोऽर्थः  
अनिर्वचनीयः सत्त्वादिना नाप्यमानत्वे सति प्रतिभासमानत्वान्वाप्यनुपपत्तेरित्यर्थ-  
स्योपदेशागम्यत्वमनुमानवाध्यत्वं च भवतामेवायातम् । ८ सदात्मकविषयतद्ग्रहणेण  
निबन्धने । ९ रजतलक्षणम् । १० यदि । ११ उत्तरकाले । १२ अनिर्वचनीय  
एव तत्काले सत्त्वेन ग्राहीति । १३ अनिर्वचनीयार्थस्य अनिर्वचनीयरूपतया प्रति-  
भासनात् । १४ परः । १५ विपरीतोऽयमर्थ इति प्रतिभासायावात् । १६ चेत् ।  
१७ परः । १८ अन्यथा । १९ वटपटादिप्रतिभासिनि ज्ञाने । २० अप्रतिभासमानस्य  
पुरुषस्य विपरीतत्वं स्यात् । २१ चेत् । २२ काचादिदोषः । २३ प्रत्यभिज्ञानं ।

अध्यस्तं तोयं परमार्थतोयमिव अत एव पूर्वदृष्टमिव, तत्तत्तत्तु न तोयं न च पूर्वदृष्टम्,  
किन्त्वन्ततमनिर्वाच्यम्” । मामती ५० १३ ।

“प्रत्येकं सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं न यत् ।

गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्देवान्तवादिनः ॥” चित्सुखी ५० ७९ ।

1 ५० ५१ यं ५ ।

२ अनिर्वचनीयार्थव्याप्तेर्विचारः अङ्गान्तरेण न्यायवा० ता० टी० ५० ८५,  
न्यायकुसु० प्र० परि०, स्या० रत्ना० ५० १३३ इत्यादिषु प्रष्टव्यः ।

इति, केथमेवं विपर्ययनिरासः तस्या एव तद्रूपत्वादिति ? स्मृति-  
प्रमोषाभ्युपगमेन तु विपर्ययप्रत्याख्यानमयुक्तम्; तस्यासिद्ध-  
रूपत्वात् ।

ननु शुक्तिकायाम् 'इदं रजतम्' इति प्रतिभासो विपर्ययः, न  
चासौ विचार्यमाणो घटते । नहि 'इदं रजतम्' इत्येकमेवेदं ज्ञानं<sup>५</sup>  
कारणाभावात्; तथाहि न दोषैश्चक्षुरादीनां शक्तेः प्रतिबन्धः  
क्रियते, कार्यालुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न हि दुष्टा यथा विपर्यीतं कार्य-  
माविर्भावयन्ति । अत एव प्रेम्ब्वसोऽपि । किञ्च, "सम्बद्धं वर्तमानं  
च गृह्यते चक्षुरादिना" । [ नी० खो० प्रलक्ष० खो० ८४ ] रजतस्य  
चासम्बद्धत्वादवर्तमानत्वाच्च चक्षुषा कथं वर्तमानरजताकारा-<sup>१०</sup>  
वभासः स्यात् ? ज्ञाने च कैस्यायमाकारः प्रथिते ? न तावद्रजतस्य;  
अवर्तमानत्वात् । नापि ज्ञानस्यैव; स्वैसिद्धान्तविरोधात् । किञ्च,  
अगृहीतैररजतस्येदं विज्ञानं नोपजायते, अतिप्रसङ्गात् । गृही-  
तरजतस्य च 'तद्रजतमिदम्' इति स्यात्, इन्द्रियसंस्कारसादृश्य-

१ विपरीतस्यालभ्युपगमप्रकारेण । २ विपरीतस्यातेः । ३ विवेकाख्यातिमभि-  
प्रेक्ष्य विपर्ययनिरासः क्रियते इति प्रमाकरणोक्तं तं प्रत्याह । ४ परः । ५ एकत्वेन  
ज्ञानोत्पत्तौ । ६ काचकामलादिदोषैः । ७ इदं रजतमिदं जडं । ८ यथाङ्कुरा-  
दन्यत् शाक्यङ्कुरादि । ९ न हि वीजप्रभवंतोऽङ्कुर जनयति । १० कारणाभावः ।  
११ वस्तु । १२ शुक्तिकार्या । १३ विषयभावः । १४ वस्तुभा जनिते रजतज्ञाने ।  
१५ वस्तुनः । १६ प्रकाशते । १७ जैनस्य । १८ स्वरूपाभावः । १९ अज्ञात ।  
२० नुः । २१ इदं रजतमिति । २२ अन्यथा । २३ भूभवनद्वितीयाधितस्यानीदं  
रजतमिति विज्ञानं भवत्यु । २४ नुः । २५ इन्द्रियेणैवमज्ञोद्धेहि ज्ञान सत्कारेण  
तद्रजमिदंज्ञोद्धेहिसरणं सादृश्यदोषलक्षणान्या कारणान्या तद्रजतमिदमिति सामानाधि-  
करण्यं भवति । नापि सादृश्यादेव केवलात् सामानाधिकरण्यं पूर्वं गृहीतरजतस्य नुः  
श्रव्यमाने सत्तरजते तद्रजतमिदमिति सामानाधिकरण्यप्रसङ्गात् सादृश्याविशेषात् ।  
नापि दोषाल्लेखत्वात्सामानाधिकरण्यं स्वप्नेषि तत्प्रसङ्गात् दोषलक्षणस्य कारणस्य  
स्वप्नेषि विद्यमानत्वात् । तस्माद्भवं कारणं सादृश्यदोषौ ।

१ "शुक्तं च दुष्टतायाः कार्याऽक्षमत्वं न पुनः कार्यान्तरसामर्थ्यम्" ।

बृहती पृ० ५३ ।

"दोषा हि कारणानां सामर्थ्यं निम्नन्ति न पुनः कार्यान्तरजननसामर्थ्यमादधति, न  
खलु अष्टकुटनवीर्यं न्यग्रोधपानाये कल्पते, किन्तु न करोति कुटनपानम् ।'  
न्यायबा० ता० टी० पृ० ८८ । सामती पृ० १४ । न्यायम० पृ० १७६ ।

२ "रजतप्रतिपक्षि नैवमन्वस जायते ।

तेनेयमिन्द्रियापीना संयुक्ते चेन्द्रियं विद्यन् ॥ १२ ॥"

प्रकरणपं० पृ० ३३ ।

दोषैर्जन्यमानत्वात् । किञ्च, शुक्तिकायां रजतसंसर्गो न तावद-  
सन् प्रतिभासते, खे खपुष्पसंसर्गवत् असत्ख्यातित्वप्रसङ्गात् ।  
नापि सन्; रजतस्य तत्रासत्त्वात् । ततो ज्ञानद्वयमेतत् 'इदम्'  
इति हि पुरोव्यवस्थितार्थप्रतिभासनम्, 'रजतम्' इति च पूर्वोक्त-  
गत रजतस्मरणं सौहृद्यादेः कुतश्चिन्निमित्तात् । तच्च स्मरणमपि  
स्वरूपेण नावभासत इति स्मृतिप्रमोषोऽभिधीर्यते । यत्र हि  
'स्मरामि' इति प्रत्ययस्तत्र स्मृतेरप्रमोषः, न पुनर्यत्र स्मृतित्वेऽपि  
'स्मरामि' इति रूपाप्रवेदनम् । प्रवृत्तिश्च भेदाऽग्रहणादेवोपपन्ना ।  
ननु कोऽयं तदग्रहो नाम ? न तावदेकत्वग्रहः; तस्यैव विपर्यय-  
रूपत्वात् । नापि तैर्ग्रहणैर्प्रागभावः; तैस्याऽप्रवृत्तिहेतुत्वात्,  
प्रवृत्तिनिवृत्त्योः प्रमाणफलत्वादिति चेत्, न; भेदाऽग्रहणस-  
त्त्विवस्य रजतज्ञानस्य प्रवृत्तिहेतुत्वोपपत्तेरिति ।

१ अन्यथा. (असत्: प्रतिभाते) । २ शुक्तिकायां । ३ दोषात् । ४ मनोदोषः ।  
५ रजतज्ञानं । ६ प्रागाभावेण । ७ ज्ञाने । ८ प्रतीतिः । ९ प्रत्यक्षस्मरणयोर्दि-  
शयोरेकत्वेन ग्रहणं विपर्ययः । १० सत्तासत्त्वज्ञानयोरेत्यादि । ११ विपरीत-  
ख्यातित्वप्रसङ्गादित्यर्थः । १२ भेदः । १३ ज्ञानस्य । १४ नावकोपपत्तेः पूर्व ।  
१५ सहायस्य ।

१ "विज्ञानद्वयं चैतत् इदमिति प्रत्यक्षं रजतमिति स्मरणम् ।" बृहती ५० ५१ ।  
"रजतमिदमिति नैक ज्ञानम्, किन्तु द्वे यत्वे विज्ञाने । तत्र रजतमिति स्मरणं तस्मा-  
न्ननुभवरूपत्वाच्च प्रामाण्यप्रसङ्गः । इदमित्यपि विज्ञानमनुभवरूपं प्रमाणमित्यर्थः यत् ।"  
प्रकरणपं० ५० ४१ ।

२ "शुक्तिकायां रजतज्ञानं स्मरामीति प्रमोषात् स्मृतिज्ञानमुक्तं शुक्तं रजतादिषु—"  
बृहती ५० ५१ ।  
"स्मरामीति ज्ञानशून्यानि स्मृतिज्ञानान्येतानि" बृहती ५० ५५ ।  
हु०—“सा च रजतस्मृतिर्न तदा स्तेन रूपेण प्रकाशयते स्मरामीतिप्रत्ययान्नाभात्”  
व्यायर्म० ५० १७८ ।

३ "ग्रहणस्मरणे चेने विवेकानवभासिनी ॥ १३ ॥  
सम्यग्रजतनोषासु भिन्ने यद्यपि तत्त्वतः ।  
तथापि भिन्ने बाधतः भेदाग्रहसमत्वतः ॥ १४ ॥  
सम्यग्रजतनोषश्च समक्षकार्त्तवोचरः ।  
ततो भिन्ने अनुष्ठा तु स्मरणग्रहणे इमे ॥ १५ ॥  
समानेनैव रूपेण केवलं मन्यते ज्ञतः ।  
व्यवहारोऽपि तत्पुन्यः ज्ञत यत्र प्रवर्तते ॥ १६ ॥  
समत्वेन च संक्षिप्तो भेदस्याग्रहणेन च ।" प्रकरणपं० ५० १४ ।

अत्र प्रतिविधीयते—न दोषैः शैकेः प्रतिबन्धः प्रध्वंसो वा विधीयते, किन्तु दोषसमवधाने चक्षुरादिभिरिदं विज्ञानं विधीयते । दोषाणां चेदमेव सामर्थ्यं यत्तत्सन्निधानेऽविद्यमानेप्यर्थे ज्ञानमुत्पादयन्ति चक्षुरादीनि । न चैवमसत्ख्यातिः स्यात्; सादृश्यस्यापि तद्वेतुत्वात् । असत्ख्यातिस्तु न तद्वेतुका, ५ खपुष्पज्ञानवत् । रजताकारश्च प्रतिभासमानो न ह्यनस्य; संस्कारस्यापि तद्वेतुत्वात् । दोषाद्वि संस्कारसहायादनुभूतस्यैव रजतस्यायमाकारः पुरोवर्तिन्यर्थे प्रतिभासते । न चैवं 'तद्रजतम्' इति स्यात्; दोषवशात्पुरोर्व्यवस्थितार्थे रजताकारस्य प्रतिभासनात् । कथमन्यथा भवतोऽपि तद्रजतमिति प्रतिभासो न स्यात्? ततो १० यथा तैव स्मृतिप्रमोषस्तथा दोषेभ्यः सामानाधिकरण्येन पुरोवर्तिन्यवर्तमानरजताकारवभासः किन्न स्यात्? अनेन 'तत्संसर्गः सैनसन्वा प्रतिभासते' इत्यपि निरस्तम् । न च विवेकौऽख्यातिसहायाद्रजतज्ञानात् प्रवृत्तिर्वदते; 'घटोयम्' इत्याद्यमेदज्ञानात्प्रवृत्तिप्रतीतेः । विवेकाख्यातिश्च मेदे सिद्धे सिध्येत् । न १५ चैत्र ह्यनमेदः कुतश्चित् सिद्धः, तथापि तत्कल्पने 'घटोयम्' इत्यादावपि ज्ञानमेदः कल्प्यतामविशेषात् । अथान्न सतो घटस्य ग्रहणाच्चासौ कल्प्यते; तर्हि अन्यत्राप्यसतो ग्रहणात्तत्कल्पना माभूत् । यथैव हि गुणान्वितैश्चक्षुरादिभिः सति वस्तुन्येकं ज्ञानं जन्यते, तथा दोषान्वितैः सादृश्यवशादसत्येकं ज्ञानं जन्यते । २०

१ परोक्षे प्रत्युत्तर दीयते जनैः । २ कान्कामकादिभिः । ३ नेत्रादीना । ४ रजतं । ५ रजते । ६ पूर्वदृष्टरजतेन शुक्तिमायाः सादृश्यं । ७ अन्यथाख्यातिः । ८ विषयज्ञानस्य सादृश्यं हेतुः । ९ सादृश्यहेतुका । १० सादृश्यहेतुः । ११ एवं तर्हि आत्मख्यातिः स्यात् । १२ न ज्ञानस्य आकारः आत्मख्यातिप्रसङ्गात् । १३ रजतज्ञान । १४ शुक्तिमादौ । १५ रजतमिदमिति ज्ञानस्य सादृश्यनिबन्धनत्वेन । १६ पूर्व रजतानुभवाऽविवेकात् । १७ परस्य । १८ जगत्तत् । १९ तद्रजतमित्येतत्सिद्धिर्द रजतमिति ज्ञानं यथा ते प्रमोषवशाज्जायते । २० इदं रजतमिति इदंरजतयोरेकाधिकरणत्वेन । २१ शुक्तिमादौ । २२ सर्वथासृष्टिर्वक्तुं न शक्यते सद्रूपस्यानुभूयमानत्वात्सर्वथाऽसृष्टिर्वक्तुं न शक्यते अनुसूत्ररजतस्य पुरोदेशे असम्भवात् कथञ्चिदनुभव इति इति भावः । २३ मेदाऽग्रहणं । २४ इदं रजतमित्यत्र । २५ इदं प्रत्यक्षं रजतमिति स्मरणम् । २६ प्रमाणम् । २७ ज्ञानमेदसिजगत्तत् । २८ परः । २९ घटोयमित्यत्र । ३० इदं रजतमित्यत्र । ३१ नैर्मल्यादि ।

१ सू०—“यतो न तैस्साक्षाः प्रतिबन्धः प्रध्वंसो वा विधीयते, किन्तु सत्सन्निधाने रजतमिदमिति ज्ञानमेवोत्पादयते”  
न्यायकुसु० प्र० पटि० ।



गुणदोषाणां च सद्भावं ज्ञानजनकत्वं च स्वतःप्रामाण्यप्रतिषेध-  
प्रस्तावे प्रतिपादयिष्यामः । न च प्रमाकरमते विवेकौख्यातिः  
सम्भवति, तत्र हि 'इदम्' इति प्रत्यक्षं 'रजतम्' इति च स्मरण-  
मिति संवित्तिद्वयं प्रसिद्धम्, तच्चाऽऽत्मैप्रार्कट्येनैवोत्पद्यते ।  
५ आत्मप्राकट्यं चान्योन्यमेदग्रहणेनैव संवेद्यते घटपटादिसंवि-  
त्तिवत् । किञ्च, विवेकख्यातेः प्रागभावो विवेकौख्यातिः । न  
चाभावः प्रमाकरमतेऽस्ति ।

कश्चायं स्मृतेः प्रमोषः—किं स्मृतेरभावः, अन्यावभासो वा  
स्यात्, विपरीताकारवेदित्वं वा, अतीतकालस्य वर्तमानतया  
६ ग्रहणं वा, अनुभवेन सह क्षीरोदकवदविवेकैर्नोत्पादो वा प्रकारा-  
न्तरासम्भवात् ? तत्र न तावदाद्यः पक्षः, स्मृतेरभावे हि कथं  
पूर्वदृष्टरजतप्रतीतिः स्यात् ? मूर्च्छाद्यवस्थायां च स्मृतिप्रमोषव्य-  
पदेशः स्यात् तदभावाविशिषात् । अथात्र 'इदम्' इति भासाभा-  
वाभासौ, ननु 'इदम्' इत्यत्रापि किं प्रतिभातीति वेकैक्यम् ?  
७ पुरोव्यवस्थितं शुक्तिकाशकलमिति चेत्, ननु संधर्मविशिष्टत्वेन  
तत्तत्र प्रतिभाति, रजतसन्निहितत्वेन वा ? प्रथमपक्षे कुतोः  
स्मृतिप्रमोषः ? शुक्तिकाशकले हि स्वगतधर्मविशिष्टे प्रतिभासं-  
माने कुतो रजतस्मरणसम्भवो यतोऽस्य प्रमोषः स्यात् ? न खलु

१ किं च । २ ता (पृष्ठी) । ३ भेदाप्रतिभास इत्यर्थः । ४ ज्ञानद्वयं । ५ स्वरूप ।  
६ आविर्भाव । ७ भेदस्याप्रतिभासः । ८ अभावः । ९ सूर्यमाणाद्भजतादन्यस्य  
शुक्तिकाशकलस्यावभासः । १० सूर्यमाणाद्भजतावत्पट्टाकारात्पट्टाकारः । ११ अतीतः  
कालो यस्य रजतस्य तदिदमतीतकालं तस्यातीतकालस्य रजतस्य । १२ प्रत्यक्षेण  
सह स्मृतेः । १३ स्मृतेरभेदेन । १४ अन्यथा । १५ स्मृतेः ? (मूर्च्छाद्यवस्था-  
याश्च) । १६ जैनभाष्ये प्रामाण्यः । १७ ग्रहणम् । १८ प्रामाकराभिप्रायः ।  
१९ नो प्रामाकर । २० अक्षचतुरस्तादि । २१ सम्बद्धत्वेन । २२ न कुतोपि  
स्मृतिप्रमोषो भवेत् । २३ व्यस्रादि । २४ न कुतोपि ।

१ तु०—“कोऽयं विप्रमोषो नाम—किमनुभवाकारस्वीकरणम्, स्मरणकारप्रध्वंसो  
वा, पूर्वार्थगृहीतित्वं वा, इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं वा, इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं वा ?”

तत्त्वोपप्लव लि० पृ० २५ ।

“कोऽयं स्मृतेः, प्रमोषोनाम—विनाशः, प्रत्यक्षेण सहेकत्वाध्यवसायाः, प्रत्यक्षरूप-  
सापत्तिः, तदित्यंशस्याऽनुभवः, तिरोभावमार्जं वा ?”

न्यायकुमु० प्र० परि० ।

स्या० रत्ना० पृ० १२० ।

“किं स्मृतेरभावः, उत अन्यावभासः, आहोस्तिदन्याकारवेदित्वम् इति विकल्पाः”

सम्प्रति० टी० पृ० २८ ।

घटे गृहीते पटस्तरणसम्भवः । अथ शुक्तिकारजतयोः सादृश्या-  
च्छुक्तिकाप्रतिभासे रजतस्तरणम् ; न ; अस्याऽकिञ्चित्करत्वात् ।  
यदा ह्यसाधारणैर्धर्माध्यासितं शुक्तिकासवरूपं प्रतिभाति तदा  
कथं संहशवस्तुस्तरणम् ? अन्यथा सर्वत्र स्यात् । सामान्यमात्र-  
ग्रहणे हि तैत् कदाचित्स्यादपि नाऽसाधारणस्वरूपप्रतिभासे । ५  
द्विचन्द्रादिषु च जातिवैमिरिकप्रतिभासविषये सदृशवस्तुप्रति-  
भासाभावात् कथं स्मृतेरुत्पत्तिर्यतः प्रमोषः स्यात् ? नापि तैत्स-  
न्निहितत्वेन प्रतिभासः ; रजतस्य तैत्रासत्वेन तत्सन्निधानाद्यो-  
गात् । इन्द्रियसम्बद्धानां च तद्दर्शनेवर्तिनां परमाण्वादीनामपि  
प्रतिभासः स्यात् तदेविशेषात् । नाप्यन्यावर्भासोऽसौ ; स हि किं १०  
तैत्कालभावी, उत्तरकालभावी वा स्यात् ? तैत्कालभावी चेत् ; तर्हि  
बटादिज्ञानं तैत्कालभावि तस्यैः प्रमोषः स्यात् । नाप्युत्तरकाल-  
भाव्यन्यावभासोऽस्यैः प्रमोषः ; अतिप्रसङ्गात् । यदि हि उत्तरकाल-  
भाव्यन्यावभासः समुत्पन्नस्तर्हि पूर्वज्ञानस्य स्मृतिप्रमोषत्वेनासौ  
नाभ्युपगमनीयः ; अन्यथा सकलपूर्वज्ञानानां स्मृतिप्रमोषत्वेना- १५  
भ्युपगमनीयः स्यात् । किञ्च, अन्यावर्भासस्य सङ्गावे परिस्फुट-  
वर्णः स एव प्रतिभातीति कथं रजते स्मृतिप्रमोषः ? निखिला-  
न्यावभासानां स्मृतिप्रमोषेतापत्तेः । अथ विपरीताकारवेदित्वं  
तस्यैः प्रमोषः ; तर्हि विपरीतस्यातिरेकः । कश्चासौ विपरीत  
आकारः ? परिस्फुटार्थावभासित्वं चेत् ; कथं तस्यै स्मृतिसम्ब- २०  
न्धित्वं प्रत्यक्षाकारत्वात् ? तत्सम्बन्धित्वे वा प्रत्यक्षरूपतैव तस्यैः  
स्यान्न स्मृतिरूपता । नाप्यतीतकालस्यै वर्तमानतया ग्रहेण तस्यैः  
प्रमोषः ; अन्यैस्मृतिवत्तस्यैः स्पष्टवेदनाभावाज्जुषङ्गात्, न चैवम् ।

१ सादृश्यस्य । २ अकिञ्चित्करत्वेन भाषयन्ति । ३ व्यस्रादि । ४ शुक्ति-  
काशकलस्य । ५ रजतादिसदृशवस्तु । ६ सन्निहितशुक्तिकाशकलप्रतीती वापकोत्तर-  
कारं शुक्तिकाशकलप्रतीती च बटादौ वा । ७ सदृशवस्तुस्तरणम् । ८ विशेषः ।  
९ स्मृतेः सादृश्यनिबन्धनत्वे इत्यत्र किं च । १० जन्मना । ११ रजत । १२ शुक्ति-  
काशम् । १३ किञ्च । १४ शुक्तिनादेववर्तिनाम् । १५ रजतेन सन्निहितस्य ।  
१६ परमाण्वा । १७ स्मृतिप्रमोषः । १८ रजतस्तरण । १९ रजतस्तरण ।  
२० रजतस्तरण । २१ स्मृतेरभावः । २२ स्मृतेः । २३ रजत । २४ परेण  
भवेत् । २५ शुक्तिकाशकल । २६ विशदस्वरूपः । २७ शुक्तिरूपम् । २८ स्वभावः ।  
२९ अन्यथा । ३० अभावरूपतापत्तेः । ३१ स्मृतिविपरीत । ३२ पदार्थानां ।  
३३ स्मृतेः । ३४ परिस्फुटार्थावभासित्वाकारस्य । ३५ स्मृतेः । ३६ रजतस्य ।  
३७ स्तरणम् । ३८ स्मृतेः । ३९ वेदत्वादित्युक्तिवत् । ४० शुक्तिकाया रजतस्मृतेः ।

अतीतकालस्य स्पाष्ट्येनाधिकस्य संवेदनं स इति चेत् न; तत्र परमार्थतः स्पाष्ट्यसद्भावे अतीन्द्रियार्थवेदिनो निषेधो न स्यात्, तत्स्मृतिवत् अन्यस्यापीन्द्रियमन्तरेण वैशद्यसम्भवात् । अर्थात्र पारम्पर्येणेन्द्रियादेव वैशद्यम्; न; तदविशेषात्सर्वस्यास्तत्प्रस-  
 ५ ज्ञात् । अथानुभवेन सह क्षीरोदकवदविवेकेनोत्पादोऽस्याः प्रमोषः; ननु कोयमविवेको नाम-भिन्नयोः सतीरमेदेन ग्रहणम्, संश्लेषो वा, आनन्तर्येण उत्पादो वा ? प्रथमपक्षे विपरीतव्याप्तिरेव । संश्लेषस्तु ज्ञानयोर्न सम्भवत्येव, अस्य मूर्च्छव्यञ्जेव प्रतीतेः । आनन्तर्येणोत्पादस्य स्मृतिप्रमोषरूपत्वे अनुमेयशब्दार्थेषु देवद-  
 १० तादिज्ञानानां स्मरणानन्तरभाविनां स्मृतिप्रमोषताप्रसङ्गः स्यात् ।

यदि च द्विचन्द्रादिवेदनं स्मरणम्, तर्हीन्द्रियान्वयव्यतिरेका-  
 नुविधायि न स्यात्, अन्यत्र स्मरणे तददृष्टेः । तदनुविधायि चेदम्,  
 अन्यथा न किञ्चित्तदनुविधायि स्यात् । तद्विकारविकारित्वं चात-  
 एव दुर्लभं स्यात् । किञ्च, स्मृतिप्रमोषपक्षे बाधकप्रत्ययो न  
 ५ स्यात्, स हि पुरोवर्त्तन्यर्थे तत्प्रतिभासस्यासद्विषयतामादर्शयन्  
 'नेदं रजतम्' इत्युल्लेखेन प्रवर्त्तते, न तु 'रजतप्रतिभासः स्मृतिः'  
 इत्युल्लेखेन । स्मृतिप्रमोषार्थ्युपगमे च स्वतःप्रामाण्यव्याघातः,  
 सम्यग्रजतप्रतिभासेऽपि ह्याशङ्कोत्पद्यते 'किमेव स्मृतावपि  
 स्मृतिप्रमोषः, किं वा सत्यप्रतिभासे' इति, बाधकामावापेक्षणात्-  
 १० यत्र हि स्मृतिप्रमोषस्तत्रोत्तरकालमवश्यं बाधकप्रत्ययो यत्र तु  
 तदभावस्तत्र स्मृतेः प्रमोषासम्भवः । बाधकामावापेक्षायां चान-  
 वस्था । तस्मात् 'इदं रजतम्' इत्यत्र ज्ञानद्वयकल्पनाऽसम्भवा-

१ रजतस्मृती । २ सर्वज्ञस्य । ३ रजत । ४ संवेदनस्य । ५ स्मृतिविषयं रज-  
 तमतीन्द्रियम् । ६ रजतस्मरणे । ७ इति चेत् । ८ प्रत्यक्षस्मरणयोः । ९ सम्बन्धः ।  
 १० अनुमेयार्थोऽप्यादिः । ११ असंश्लिष्टार्थग्राहकज्ञानस्य स्मृतिप्रमितिस्मिती  
 दूषणम् । १२ किञ्च । १३ घटादौ । १४ तदप्रतीतेः । १५ घटादिज्ञानं प्रत्यक्षं ।  
 १६ इन्द्रिय । १७ काचादि । १८ ता (पट्टी) । १९ द्विचन्द्रादि । २० ज्ञानस्य ।  
 २१ तस्य काचकामजादिना द्विचन्द्रादिग्राहित्वेन परिणामित्वम् । २२ इन्द्रियान्वय-  
 व्यतिरेकानुविधायित्वाभावादेव द्विचन्द्रज्ञानस्य स्मरणत्वादेव वा । २३ शक्तिकाशकलेः ।  
 २४ रजत । २५ उत्तरकाले । २६ परेण । २७ ज्ञाने । २८ रजतस्य । २९ एतदेव  
 भावयति । ३० ज्ञाने । ३१ किञ्च । अन्यानवस्था ।

स्मृतिप्रमोषाभावाः । ततः सूक्तम्-विपर्ययज्ञानस्य व्यवसायात्मक-  
त्वविशेषणेनैव निरास इति ।

तेनोपूर्वार्थविशेषणेन धारावाहिविज्ञानं निरस्यते । नन्वेवमपि  
प्रमाणसम्बन्धवादिताव्याघातः प्रमाणप्रतिपक्षेऽर्थे प्रमाणान्तरा-  
प्रतिपत्तिः, इत्यचोद्यम् । अर्थपरिच्छित्तविशेषसङ्गावे तत्प्रवृत्तेर-  
प्यभ्युपगमात् । प्रथमप्रमाणप्रतिपक्षे हि वस्तुन्याकारविशेषं  
प्रतिपद्यमानं प्रमाणान्तरम् अपूर्वार्थमेव वृक्षो न्यग्रोध इत्यादिवत् ।  
एतदेवाह-

अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ॥ ४ ॥

स्वरूपेणाकारविशेषरूपतया चानेवगतोऽखिलोप्यपूर्वार्थः । १०

इष्टोपि समारोपात्तादृक् ॥ ५ ॥

न केवलमप्रतिपक्ष एवापूर्वार्थः, अपि तु ईदृशोऽपि प्रतिपक्षोपि  
समारोपात् संशयादिसङ्गावात् तादृगपूर्वार्थोऽधीतानभ्यस्त-  
शास्त्रवत् । एवंविधार्थस्य यन्निश्चयात्मकं विज्ञानं तत्सकलं प्रमाणम् ।

तन्न अनैर्धिगतार्थधिगान्तृत्वमेवं प्रमाणस्य लक्षणम् । तद्वि १५

१ यतो विपर्ययज्ञानादिकं समर्थितम् । २ कारणेन । ३ आह. सङ्गते । ४ ब्रह्मना  
प्रमाणानामेकसिद्धये प्रवृत्तिः प्रमाणसम्बन्धः । ५ जैनानां विरोधः । ६ प्रत्यक्षादि ।  
७ स्वच्छादिलक्षण । ८ अपूर्वः अर्थो यस्य । ९ स्वच्छादिमत्त्वेन । १० अज्ञातः ।  
११ इष्टोपि समारोपात्तादृगिति सूत्रम् । १२ अपूर्वस्य । १३ पूर्वामरीतादृग्वादि ।  
१४ सर्वथा ।

१ विवेकाख्याति-अख्यालपरपर्यायस्यास्य स्मृतिप्रमोषस्य विविधरीत्या मीमांसा-  
न्यायवा० ता० टी० पृ० ८८, मामती पृ० १४, प्रश्न० कन्दली पृ० १८०,  
न्यायम० पृ० १७६, विवरणप्रमेय ज० पृ० २८, न्यायकीलाव० पृ० ४१, तत्त्वो-  
पप्लव लि० पृ० २५, न्यायकुसु० प्र० परि०, सन्मति० टी० पृ० २८, १७९ ।  
स्या० रत्ना० पृ० १०४ इत्यादिषु समनलोकनीया ।

२ “प्रमातुः प्रमातव्येऽर्थे प्रमाणाणां सङ्करोऽभिसम्बन्धः ।”

न्यायभा० १।१।३ पृ० १९ ।

३ “उपयोगविशेषस्याभावे प्रमायसम्बन्धस्याऽनभ्युपगमात् । सति हि प्रतिपक्ष-  
प्रयोगविशेषे देशादिविशेषसमवधानाद् आगमात्प्रतिपक्षमपि हिरण्यरेतस स पुनरनुमा-  
नाप्रतिपत्तिस्तर्तु तत्प्रतिपक्षरूपमादिविशेषसाक्षात्कारणात्प्रतिपक्षविशेषवदनात् । पुनस्तमेव  
प्रत्यक्षतो दुसृत्सवे तत्कारणसम्बन्धात्तद्विशेषप्रतिमासत्तिहे ।” अष्टसद० पृ० ४ ।

४ “औत्पत्तिकगिरा दोषः कारणस्य निवार्यते ।

अवाधोऽन्यतिरेकेण स्वतस्तेन प्रमाणता ॥ १० ॥

सर्वस्यानुपलब्धेऽर्थे प्रामाण्यं स्मृतिरन्यथा ।” मीमांसाको० पृ० ११० ।

वस्तुन्यधिगतेऽनधिगते वाऽव्यभिचारदिविशिष्टां प्रमां जनयन्नो-  
पाह्यम्भविषयः । न चाधिगतेऽर्थे किं कुर्वत्तत्प्रमाणतां प्राप्नोतीति  
वक्तव्यम् ? विशिष्टप्रमां जनयतस्तस्य प्रमाणताप्रतिपादनात् । यत्र  
तु सा नास्ति तत्र प्रमाणम् । न च विशिष्टप्रमोत्पादकत्वेऽप्यधिगत-  
५ विषयेऽस्याऽकिञ्चित्करत्वम् ; अतिप्रसङ्गात् । न चैकान्ततोऽनधि-  
गतार्थाधिगन्तृत्वे प्रामाण्यं प्रमाणस्यावस्यतुं शक्यम् ; तद्व्यर्थ-  
तथाभावित्वलक्षणं संवादादवसीयते, स च तदर्थोत्तरार्था-  
नवृत्तिः । न चानधिगतार्थाधिगन्तुरेव प्रामाण्ये संवादप्रत्ययस्य  
तद् घटते । न च तेन प्रमाणभूतेन प्रथमस्य प्रामाण्यं व्यवस्थापयितुं  
१० शक्यम् ; अतिप्रसङ्गात् । न च सामान्यविशेषयोस्तादात्म्याभ्युपगमे  
तस्यैकान्ततोऽनधिगतार्थाधिगन्तृत्वं सम्भवति । इदानीन्तानास्ति-  
त्व(इदानीन्तैर्नास्ति)त्वस्य पूर्वोक्तित्वादमेदात् तस्य च पूर्वमप्य-  
धिगतत्वात् । कथंश्चिदनधिगतार्थाधिगन्तृत्वे त्वस्यैकान्तप्रवेशः ।  
निश्चिते विषये किञ्चिन्नयान्तरेण अपेक्षावत्त्वप्रसङ्गात् ; इत्यप्यवा-

१ अर्थपरिच्छिन्ति । २ दोष । ३ निश्चिते । ४ कार्य । ५ परेण । ६ प्रमाणा-  
न्तरस्य । ७ ज्ञाने । ८ विशिष्टप्रमाणनकता । ९ ज्ञान । १० विशिष्टप्रमोत्पादकत्वे  
वचकिञ्चित्करत्वं तदा सर्वथाऽदृष्टेऽर्थे प्रमाणनकस्य ज्ञानस्याकिञ्चित्करत्वं स्यादितिष्टप्रमो-  
त्पादकत्वस्याविशेषात् । ११ किञ्च । १२ सर्वथा । १३ निश्चेतुं । १४ संवादः ।  
१५ पूर्वज्ञानार्थः । १६ ईप् (सप्तमी) । १७ तदर्थव्याप्तौ चत्तराजानवृत्तिश्च ।  
१८ ज्ञानस्य । १९ संवादात् । २० द्वितीयज्ञानेन । २१ गृहीतावैमाहित्वात् ।  
२२ ज्ञानस्य । २३ न ज्ञातमस्तीति वक्तुं शक्यं तस्याज्ञातत्वविरोधाच्चैवाधिकः ।  
२४ संशयादिना प्रथमज्ञानस्य प्रामाण्यप्रसङ्गात् । २५ किञ्च । २६ वृक्षवटादि ।  
२७ प्रमाणस्य । २८ घट । २९ अधिगतार्थाधिगन्तृत्वात् । ३० वृक्ष । ३१ विशेषा-  
पेक्षया । ३२ जैन । ३३ अयोजनं । ३४ अन्यथा ।

“यतश्च विशेषणत्रयमुपादानेन सूत्रकारेण कारणदोषवाधकरहितमगृहीतग्राहि ज्ञानं  
प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणं सूचितम् ।”

आकाशदीपिका पृ० १५२ ।

५ पु०—“अतः प्रमाणं वस्तुन्यधिगतेऽनधिगते वाऽव्यभिचारदिविशिष्टा प्रमा जन-  
यन्नोपाह्यम्भविषयः । नचाधिगते वस्तुनि.....” सन्मति० टी० पृ० ४६६ ।

१ “नचैकान्ततोऽनधिगतार्थाधिगन्तृत्वे प्रामाण्यं तस्यावस्यतुं शक्यम्...”

सन्मति० टी० पृ० ४६६ ।

२ “इदानीन्तनास्तित्वस्य पूर्वोक्तित्वात्मेदात् तस्य च पूर्वमप्यधिगतत्वसंभवात्”

सन्मति० टी० पृ० ४६६ ।

च्यम्; भूयो निश्चये सुखादिसाधकत्वविशेषप्रतीतिः । प्रथमतो हि वस्तुमात्रं निश्चीयते, पुनः 'सुखसाधनं दुःखसाधनं वा' इति निश्चित्योपादीयते त्यज्यते वा, अन्यथा विपर्ययेणाप्युपादानत्यागप्रसङ्गः स्यात् । केषाञ्चित्सकृद्दर्शनेषु तन्निश्चयो भवति अभ्यासादिति एक-  
विषयाणामप्यागमानुमानाध्यक्षाणां प्रामाण्यमुपपन्नम् प्रतिपत्ति-  
विशेषसङ्गावात्; सामान्याकारेण हि वचनात्प्रतीयते वह्निः, अनु-  
मानाद्देशादिविशेषविशिष्टः, अध्यक्षात्त्वाकारनियत इति । ततोऽ-  
युक्तमुक्तम्-

“तत्रापूर्वार्थविज्ञानं निश्चितं बाधवर्जितम् ।

अदुष्टकारणारब्धं प्रमाणं लोकसम्मतम् ॥” [ ] इति । १०  
प्रत्यभिज्ञानस्यानुभूतार्थग्राहिणोऽप्रामाण्यप्रसङ्गात्, तर्था च कथ-  
मन्तैः शब्दात्मैर्दिनेत्यत्वसिद्धिः ? न चानुभूतार्थग्राहित्वमस्यो-  
सिद्धम्; स्मृतिप्रत्यक्षप्रतिपत्तेऽर्थं तत्प्रवृत्तेः । न ह्यप्रत्यक्षेऽस्वर्य-  
माणे चार्थे प्रत्यभिज्ञानं नाम; अतिप्रसङ्गात् । पूर्वोत्तरावस्थाव्याप्ये-  
कत्वे तस्य प्रवृत्तेरयमदोषः, इति चेत्; किं ताभ्यामेकत्वस्य भेदः, १५  
अभेदो वा? भेदे तत्र तस्याप्रवृत्तिः । न हि पूर्वोत्तरावस्थाभ्यां भिन्ने  
सर्वथैकत्वे तत्परिच्छेदिज्ञानाभ्यां जन्यमानं प्रत्यभिज्ञानं प्रवर्त्तते  
अर्थान्तरैकत्ववत्, मन्तान्तरप्रवेशश्च । ताभ्यामेकत्वस्य सर्वथाऽ-

१ परेण । २ ज्ञानात् । ३, निश्चयान्तरानङ्गीकारे । ४ सुखसाधनत्वदुःखसाधन-  
त्वनिश्चय उत्तरज्ञानाच्च भवति चेत् । ५ व्यत्यसेन । ६ पुरुषार्था । ७ एकदा ।  
८ ब्रूमादेः । ९ माट्टेन । १० परप्रमाणलक्षणनिराकरणे च सति । ११ सर्वथा ।  
१२ गृहीतग्राहित्वेन प्रत्यभिज्ञानस्याप्रामाण्ये च । १३ प्रत्यभिज्ञानात् । १४ वसः ।  
१५ प्रत्यभिज्ञानस्य । १६ उत्तरप्रत्यक्ष । १७ तस्य । १८ नेवादी प्रत्यभिज्ञानत्व-  
प्रसङ्गः । १९ पूर्वोत्तराकारग्राहिसरणप्रत्यक्षान्यां । २० ईप् । २१ सर्वथाभेदे ।  
२२ नैयायिक ।

1 “यतो भूयो भूय उपलभ्यमाने दृढतरा प्रतिपत्तिर्भवतीति सुखसाधनं तथैव  
निश्चित्योपादत्ते-”

सन्धति० टी० पृ० ४६७ ।

2 “यदि चानुपलब्धार्थग्राहि नानुपेयते ।

तदर्थं प्रत्यभिज्ञायाः स्पष्ट एव जलाजलिः ॥”

न्यायमं० पृ० २२ ।

3 “नहि पूर्वोत्तरावस्थाभ्यां भिन्ने च सर्वथैकत्वे तत्परिच्छेदिज्ञानाभ्यां जन्यमानं  
प्रत्यभिज्ञानं प्रवर्त्तते सरणवत् सन्तानान्तरैकत्ववद्वा” । तत्त्वार्थको० पृ० १७४ ।

4 “विवर्त्तान्यामभेदक्षेदेकत्वस्य कथञ्चन ।

तद्ग्राहिण्याः कथञ्च स्यात्पूर्वार्थत्वं स्मृतेरिव ॥ ७६ ॥”

तत्त्वार्थको० पृ० १७४ ।

मेदे अनुभूतग्राहित्वं प्रत्यभिज्ञानस्य स्यात् । ताभ्यां तस्य कथञ्चिद्-  
मेदे सिद्धं तस्य ( कथञ्चिद् ) अनुभूतार्थग्राहित्वम् । न चैवंवादिनैः  
प्रत्यभिज्ञानप्रतिपक्षे शब्दादिनित्यत्वे प्रवर्त्तमानस्य “दर्शनस्य  
परार्थत्वात्” [जैमिनि सू० १।१८] इत्यादेः प्रमाणता घटते । सर्वेषां  
५ चानुमानानां व्याप्तिज्ञानप्रतिपक्षे विषये प्रवृत्तेरप्रमाणता स्यात् ।  
प्रत्यभिज्ञानाभित्यशब्दादिसिद्धावपि कुतश्चित्समारोपस्य प्रसूतेस्त-  
द्व्यवच्छेदार्थत्वादस्य प्रामाण्ये च एकान्ततयागः । स्मृत्युद्वादेऽपि अभि-  
मतप्रमाणसंख्याव्याघातकृत्प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गः स्यात् ; प्रत्यभि-  
ज्ञानवत्कथंचिदपूर्वार्थत्वसिद्धेः । किञ्च, अपूर्वार्थप्रत्ययस्य प्रामाण्ये  
१० द्विचन्द्रादिप्रत्ययोऽपि प्रमाणं स्यात् । निश्चितैतत् तु परोक्षज्ञान-  
वादिनो न सम्भवतीत्यग्रे वक्ष्यामः ।

ननु द्विचन्द्रादिप्रत्ययस्य सवाधर्कत्वाच्च प्रमाणता, यत्र हि  
वाधाविरहस्तत्प्रमाणम् ; इत्यप्यसङ्गतम् ; वाधाविरहो हि तत्काल-  
भावी, उत्तरकालभावी वा विज्ञानप्रमाणताहेतुः ? न तावत्तत्का-  
१५ लभावी ; कचिन्मिथ्याज्ञानेऽपि तस्य भावात् । अथोत्तरकालभावी ;  
स किं ज्ञातः, अज्ञातो वा ? न तावदज्ञातः ; अस्य सत्त्वेनाप्य-

१ एकत्वस्य । २ प्रत्यभिज्ञानस्य । ३ सर्वथाऽपूर्वार्थविज्ञानं प्रमाणमित्येवंवादिनः ।  
४ उच्चारणस्य । ५ शिष्यः । ६ अर्थोपस्थादेः । शब्दो नित्य उच्चारणान्ध्याऽनुप-  
पत्तेरिति । ७ किञ्च । ८ स एवार्थः । ९ आत्मा । १० सर्वं क्षणिकं तत्सादिति  
क्षणिकत्वप्रतिपादकानुमानात् । ११ उत्पत्तेः । १२ व्याप्तिज्ञानेन निखिलसाम्य-  
साधनानां ज्ञानान्येन ग्रहणेऽनुमानेन नियतदेशकालाकारतया साम्यप्रतिपत्तेरनुमान-  
प्रामाण्ये च । १३ सर्वथाऽपूर्वार्थविज्ञानमेव प्रमाणमित्येकान्ततयागः । १४ इदमल्प-  
मित्यादेः । १५ वदिति विज्ञाने । १६ स्मृतादीनान् । १७ सादृश्यं । १८ उत्तर-  
काले । १९ ज्ञाने । २० तत्त्वज्ञानकालः । २१ विचार्यमाणप्रामाण्यविज्ञानकालः ।  
२२ रजतादिज्ञाने । २३ न हि शुक्तिकाषामिदं रजतमिति ज्ञानं यदा जायते तदैव  
वाप्यते प्रवृत्त्यादेरभावप्रसङ्गात् ।

१ “यदि पुनः प्रत्यभिज्ञानाभित्यशब्दादिसिद्धावपि कुतश्चित्समारोपस्य.....”

तत्त्वार्थस्ये० पृ० १७४ ।

२ प्रमाणलक्षणस्य अनभिगतायत्वविशेषणस्य पर्यालोचनम् अक्षरशः तत्त्वार्थ-  
स्ये० पृ० १७३, सन्मति० टी० पृ० ४६६, अक्षरान्तरेण च तत्त्वोप० लि० पृ०  
३०, न्यायन० पृ० २१, सा० रत्ना० पृ० ३८ इत्यादिषु द्रष्टव्यम् ।

३ “किञ्च, अर्थसंवेदनानन्तरमेव वाचानुत्पत्तिः तत्प्रामाण्यं व्यवस्थापयेत्,  
सर्वदा वा ?” अष्टसह० पृ० ३९ ।

४ “यतो वाधाविरहः तत्कालभावी, उत्तरकालभावी वा” सन्मति० टी० पृ० १२ ।

सिद्धेः । ज्ञातश्चेत्-किं पूर्वज्ञानेन, उत्तरज्ञानेन वा ? न तावत्पूर्व-  
ज्ञानेनोत्तरकालभावी बाधाविरहो ज्ञातुं शक्यः; तर्हि स्वसमान-  
कालं नीलादिकं प्रतिपद्यमानं कथम् "उत्तरकालमप्यत्र बाधकं  
नोदेयति" इति प्रतीयात् ? पूर्वमनुत्पन्नबाधकानामप्युत्तरकालं  
बाध्यमानत्वदर्शनात् । नाप्युत्तरज्ञानेनासौ ज्ञायते; तदा प्रमाण-  
त्वाभिमतज्ञानस्य नाशात् । नष्टस्य च बाधाविरहचिन्ता गतसर्पस्य  
घृष्टिकुङ्कनन्यायमनुकरोति । कैथं च बाधाविरहस्य ज्ञायमानत्वेपि  
सत्यत्वम्; ज्ञायमानस्यापि केशोण्डुकादेरसत्यत्वदर्शनात् ? तज्ज्ञा-  
नस्य सत्यत्वाच्चेत्; तस्यापि कुतः सत्यता ? प्रमेयसत्यत्वाच्चेत्;  
अन्योन्याश्रयः । अपरबाधाभावज्ञानाच्चेत्; अनवस्था । अथ संवादा-  
दुत्तरकालभावी बाधाविरहः सत्यत्वेन ज्ञायते; तर्हि संवादस्याप्य-  
परसंवादात्सत्यत्वसिद्धिस्तस्याप्यपरसंवादालित्यनवस्था । किञ्च,  
कचित्कदाचित्कस्यचिद् बाधाविरहो विज्ञानप्रमाणता हेतुः, सर्वत्र  
सर्वदा सर्वस्य वा ? प्रथमपक्षे कस्यचिन्मिथ्याज्ञानस्यापि प्रमाणता-  
प्रसङ्गः, कचित्कदाचित्कस्यचिद्बाधाविरहसद्भावात् । सर्वत्र सर्वदा १५  
सर्वस्य बाधाविरहस्तु तासर्वविदां विषयः ।

अदुष्टकारणारब्धत्वमप्यज्ञातम्, ज्ञातं वा तदेतुः ? प्रथमपक्षो-  
ऽयुक्तः; अज्ञातस्य सत्त्वसन्देहात् । नापि ज्ञातम्; कर्णकुशलादे-  
रतीन्द्रियस्य ज्ञातेरसम्भवात् । अस्तु वा तज्ज्ञातिः; तथाप्यसौ  
अदुष्टकारणारब्धः ज्ञानान्तरात्, संवादप्रत्ययाद्वा ? आद्यविकल्पे २०  
अनवस्था । द्वितीयविकल्पेपि संवादप्रत्ययस्यापि ह्यदुष्टकारणार-  
ब्धत्वं तथाविधादन्यतो ज्ञातव्यं तस्याप्यन्यत इति । न चानेकान्त-

१ न ज्ञातमस्तीतिनक्तं शक्यं तस्याऽज्ञातत्वविरोधात् । २ शुक्तिकादौ ।  
३ प्रमाणं । ४ कालः । ५ ज्ञानानां । ६ पूर्वसर्वं जलमिति ज्ञानस्य । ७ किञ्च ।  
८ पूर्वकाले । ९ उत्तरकाले । १० पूर्वज्ञानापेक्षया । ११ विषये । १२ पूर्व ।  
१३ पूर्वविज्ञानप्रमाणताहेतुः । १४ इन्द्रियदृष्टादि । १५ परिज्ञानस्य । १६ अदुष्ट-  
कारणारब्धत्वम् । १७ अनवस्था । १८ ज्ञानात् ।

१ "बाधाविरहः किं सर्वपुरुषापेक्षया, आदोलिप्तिपञ्चपेक्षया ?" तत्त्वोपप्लव-  
सिंह लि० पृ० ३ । अष्टसह० पृ० ३९ । प्रमाणप० पृ० ६२ । सम्मति० टी०  
पृ० १८ ।

२ "यद्यदुष्टकारकसन्दोहोत्पाद्यत्वेन; तदा सैव कारकाणामदुष्टता कुतोऽवसीयते ?  
न तावत्प्रत्यक्षादः नयनकुशलादेः संवेदनकारणस्य अतीन्द्रियस्याऽदुष्टतायाः प्रत्यक्षी-  
कर्तुमशक्तेः । नानुमानात्; तदविनाभाविलिङ्गमावात्---" अष्टसह० पृ० ३८ ।  
(तत्त्वोपप्लव०-) सम्मति० टी० पृ० १३ ।



वादिनामप्युपालम्भः समानोऽयम् ; यथावदर्थनिश्चायकप्रत्ययस्याभ्यासदशायां बाधवैधुर्यस्यादुष्टकारणारब्धत्वस्य च स्वयं संवेदनात् ; अनभ्यासदशायां तु परतोऽभ्यस्तविषेयात् । न चैवमनवस्थाः कंचित्कस्यचिदभ्यासोपपत्तेरित्यलं विस्तरेण परतः प्रामाण्यविचारे विचारणात् । लोकेसम्मतत्वं च यथावद्वस्तुस्वरूपनिश्चयान्नापरम् ।

ननु चोक्तलक्षणाऽपूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणमित्युक्तमुक्तम् ; अर्थव्यवसायात्मकज्ञानस्य मिथ्यारूपतया प्रमाणत्वायोगात्, परमात्मस्वरूपग्राहकस्यैव ज्ञानस्य सत्यत्वप्रसिद्धेः । १० अक्षसन्निपातानन्तरोत्थाऽविकल्पकप्रत्यक्षेण हि सर्वत्रैकत्वमेवाऽन्यानपेक्षतया द्वैगिति प्रतीयते इति तदेव वस्तुत्वस्वरूपम् । भेदः पुनरविधौसंकेतस्मरणजनितविकल्पप्रतीत्याऽन्याऽपेक्षतया प्रतीयते इत्यसौ नार्थस्वरूपम् । तथा, 'यत्प्रतिभासते' तत्प्रतिभासान्तःप्रविष्टमेव यथा प्रतिभासस्वरूपम्, प्रतिभासते चाशेषं १५ चेतनाचेतनरूपं वस्तु' इत्यनुमानादप्यात्माऽद्वैतप्रसिद्धिः । न चात्राऽसिद्धो हेतुः ; साक्षादसंक्षाब्धशेषवस्तुनोऽप्रतिभासमानत्वे सकलशब्दविकल्पगोचरातिक्रान्तया वक्तुमशक्तेः । तथागमोऽप्यस्य प्रतिपादकोऽस्ति ।

“सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ।

२० (१५) आरामं तस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन ॥” [ ] इति ।  
तथा “पुरुष एवैतत्सर्वं यद्भूतं यच्च माव्यं स एव हि सकललोकाः  
सर्गस्थितिप्रलयहेतुः ।” [ ऋक्सं० मण्ड० १० सू० ९० ऋ० २ ]  
उक्तञ्च—

१ दोषः । २ ज्ञानस्य । ३ राहित्यस्य । ४ स्वरूपेण । ५ स्वयं संवेदनाच्चाप-  
मुपालम्भः । ६ अर्थे । ७ ज्ञानस्य । ८ अनवस्थापरिहारस्य विस्तरेण । ९ ज्ञानस्य ।  
१० भास्करियः ग्राह । ११ अर्थे । १२ भेदः । १३ दृष्टिति । १४ अभेदे  
भेदप्रतिभासो ह्यविद्या । १५ घटः पटादिव इति । १६ पदस्य । १७ ब्रह्म ।  
१८ ब्रह्मग्राहकप्रत्यक्षप्रकारेणानुमानमपि दर्शयति । १९ प्रतिभासमानत्वादिति ।  
२० अस्पष्टतया । २१ प्रत्यक्षानुमानप्रकारेण । २२ परमात्मनः । २३ विवर्त ।  
विकारः । २४ ब्रह्मणः । २५ प्रत्यक्षानुमानागमप्रकारेण । २६ उत्पत्तिः ।

१ “सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्तं उपासीताथ...” छान्दोग्योप० ३।१।४।  
“ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम्” मैत्र्युप० ४।६ “मनसैवानुब्रह्मं नेह नानास्ति  
किञ्चन ।” बृहदा० ४।४।१९ “मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।” कठोप०  
४।११ “आरामस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन ।” बृहदा० ४।१।१४ ।

“ऊर्णनाभिं हवांशंतां चन्द्रकान्तं इवाम्मसाम् ।

प्ररोहणासिब्र ह्यक्षः स हैतुः सर्वजन्मिनाम् ॥” [ ] मेद-  
दर्शिनो निन्दा च श्रूयते—“मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य ईद नानेव  
पश्यति ।” [ बृहदा० उ० ४।४।१९ ] इति । न चामेदप्रतिपादका-  
मीयस्याऽध्यक्षवाचा, तस्याप्यमेदग्राहकत्वेनैव प्रवृत्तेः । तदुक्तम्-५

“आहुर्विधौ प्रत्यक्षं न निषेद्ध विपश्चितः ।

नैकत्वे आगमस्तेर्न प्रत्यक्षेण प्रवाध्यते ॥” [ ]

किञ्च, अर्थानां मेदो देशमेदात्, कालमेदात्, आकारमेदाद्वा  
स्यात् ? न तावद्देशमेदात्, सतोऽभिन्नस्याऽन्यमेदेऽपि मेदानु-  
पपत्तेः । न ह्यन्यमेदोऽन्यत्र संक्रामति । कथं च देशस्य मेदः ? १०  
अन्यदेशमेदाच्चेदवनवस्था । खेतश्चेत्, तर्हि भौवमेदोऽपि स्वत-  
यवास्तु किं देशमेदाच्चेदकल्पनया ? तत्र देशमेदाद्वस्तुमेदः ।  
नापि कालमेदात्, तच्चेदस्यैवाध्यक्षतोऽप्रसिद्धेः । तद्धि सन्निहितं  
वस्तुमात्रमेवाधिगच्छति नातीतादिकालमेदं तद्वतार्थमेदं वा  
आकारमेदोऽप्यर्थानां मेदको व्यतिरिक्तप्रमाणात्प्रतिभाति, स्वतो १५  
वा ? न तावद् व्यतिरिक्तप्रमाणात्, तस्य नीलं सुखं दैव्यतिरिक्तै-  
स्वरूपस्याप्रतिभासमानत्वाद् । अथाहंप्रत्यये बोधात्मा तैर्ग्राहको-

१ बोलिकः ( कीटविशेषः ) । २ लालारूपतन्तुलात् । ३ बटः । ४ तथा ।  
५ यमात् । ६ पुरुषः । ७ ब्रह्मणि । ८ मेदमिव । ९ ब्रह्माणं । १० किञ्च ।  
११ आगमस्य । १२ विषयक सन्मात्रग्राहकमित्यर्थः । १३ निषेधक मेदग्राहक-  
मित्यर्थः । १४ कारणेन । १५ स्वरूपेण । १६ सतोऽभिन्नस्य आत्करस्य यथा  
देशमेदाच्चेदो न घटते तथा पदार्थानामिति भावः । १७ अन्यस्य देशस्य मेदोऽभिन्ने यत्ने  
न संक्रामति । १८ अनवस्थापरिहारार्थं । १९ अर्थे । २० देशमेदादिति पदं नास्ति च  
क्वचिद्वन्त्ये । २१ नहिर्वस्तु । २२ अन्तर्वस्तु । २३ मित्र । २४ आकारलक्षणमेदः ।

१ “यथोर्णनाभिः स्रजते शुकते च यथा पुष्पिण्यामीवपयः संभवन्ति । यथा सतः  
पुरुषाश्चेतसोमिति तथाऽक्षराय संभवतीह विश्वम् ॥” शुण्डकोप० १।१।७ “स  
यथोर्णनाभिः तन्तुनुचरेत्, यथामैः क्षुद्रा भिस्कुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेव असादात्मनः सर्वे  
लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि यूतानि व्युच्चरन्ति...” बृहदा० २।१।२० “यस्तूर्ण-  
नाभ इव तन्तुभिः प्रधानैः सभावतः । देव एकः स्वयमावृणोति स नो दधातु  
ब्रह्माऽप्ययम् ॥” मेताम्ब० ६।१० “ऊर्णनाभिर्वया तन्तुन्...” ब्राह्म० ३ ।  
“ऊर्णनामीव तन्तुना...” कशुर० ९ । “ऊर्णनामो मर्कटकः” तत्त्वसं० पं० ।

२ “यतो मेदः प्रत्यक्षप्रतीतिविवक्षित्वेनाभ्युपगम्यमानः किं देशमेदादभ्युपगम्यते,  
आदोल्लिख कालमेदात्, उत आकारमेदात् ?” सन्मति० टी० पृ० २७३ । स्या०  
रत्ना० पृ० १९२ ।

ऽवसीयते; न; तत्रापि शुद्धबोधस्याप्रतिभासनात् । स खलु  
'अहं सुखी दुःखी स्थूलः कृशो वा' इत्यादिरूपतया सुखादि शरीरं  
चावलम्बमानोऽनुभूयते न पुनस्तद्व्यतिरिक्तं बोधस्वरूपम् ।  
स्वतश्चाकाराणां भेदसंवेदने स्वप्रकाशनिर्यतत्वप्रसङ्गः, तथा  
५ चान्योऽन्यासंवेदनात्कृतः स्वतोऽप्याकारभेदसंवेदितः ।

अथैकरूपब्रह्मणो विद्यास्वभावत्वे तदर्थानां शास्त्राणां प्रवृत्तीनां  
च वैयर्थ्यं निवर्त्यप्राप्तव्यस्वभावामावात् । अविद्यास्वभावत्वे चास-  
त्यत्वप्रसङ्गः; तथाच "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" [तैच० २।१]  
इत्यस्य विरोधः; तदप्यसङ्गतम्; विद्यास्वभावत्वेऽप्यस्य शास्त्रा-  
१० दीनां वैयर्थ्यासंभवात् अविद्याव्यापारनिवर्तनफलत्वात्तेषाम् ।  
यत एव चाविद्या ब्रह्मणोऽर्थान्तरभूता तत्त्वतो नास्त्यत एवासौ  
निवर्त्यते, तत्त्वतस्तस्याः सङ्गावे हि न कश्चिन्निवर्तयितुं शक्नुयाद्  
ब्रह्मवत् । सर्वैरेव चातात्त्विकानाद्यविद्योच्छेदार्थो मुमुक्षूणां प्रय-  
त्नोऽभ्युपगतः । न चानादित्वेनाविद्योच्छेदासम्भवः; प्रागर्भावे-  
१५ नाऽनैकान्तात् । तत्त्वज्ञानप्रागभावरूपैव चाविद्या तत्त्वज्ञानलक्ष-  
११ णविद्योत्पत्तौ व्यावर्तत एव घटोत्पत्तौ तत्प्रागभाववत् । भिन्ना-  
ऽभिर्भादिविकल्पस्य च वस्तुविषयत्वात् अवस्तुभूताऽविद्यायाम-  
प्रवृत्तिरेव सैवेयमविद्या माया मिथ्याप्रतिभास इति ।

न चात्मश्रवणमननध्यानादीनां भेदरूपतयाऽविद्यास्वभावत्वा-  
२० त्कथं विद्याप्राप्तिहेतुत्वमित्यभिधातव्यम् ? यथैव हि रजःसंपर्कक-  
लुषोदके द्रव्यविशेषचूर्णे रजःप्रक्षिप्तं रजोऽन्तराणि प्रशमयत्स्वय-  
मपि प्रशम्यमानं स्वच्छां स्वरूपावस्थामुपनयति, यथा वा विषं  
विषान्तरं शमयति स्वयं च शाम्यति, एवमात्मश्रवणादिभिर्मेदाभि-  
निवेशोच्छेदात्, स्वगतेऽपि भेदे समुच्छिन्ने स्वरूपे संसारी समव-

१ प्रमाण । २ पदार्थाः स्वप्रकाशनियताः । ३ आ (तृतीया) । ४ अनुष्ठानानां ।  
५ अविद्या । ६ विद्या । ७ अन्यस्य । ८ भिन्ना । ९ परमार्थतः । १० नादिभिः ।  
११ लोकार्थिनां । १२ यथा गगनस्य । १३ जनादिना । १४ समय । १५ किञ्च ।  
१६ स्वरूप । १७ अध्यन । १८ दुराग्रह । १९ सति । २० एकत्वे ।

१ "न च कर्माऽविद्यात्मकं कथमविद्यामुच्छिनत्ति, कर्मणो वा तदुच्छेदकत्वं कुत  
उच्छेद इति वाच्यम्; सजातीयस्वपरविरोधिनां भावानां बहुलमुपलब्धेः । यथा  
पथः पथोऽन्तरं जरयति स्वयं च जीर्यति, यथा विषं विषान्तरं शमयति स्वयं च  
शाम्यति, यथा वा कतकरजो रजोन्तराविले पाथसि प्रक्षिप्तं रजोन्तराणि भिन्दन् स्वयमपि  
भिद्यमानमनाविलं पाथः करोति एवं कसौ अविद्यात्मकमपि अविद्यान्तराण्यपगमयन्  
स्वयमप्यपगच्छतीति ।" ब्रह्मसू० श्रौ० भा० आमती पृ० ३९ ।

तिष्ठते । अवच्छेदक्यविद्याव्यावृत्तौ हि परमात्मैकस्वरूपतावस्थितेः घटाद्यवच्छेकमेदव्यावृत्तौ व्योम्नः शुद्धाकाशतावत् ।

न चाद्वैते सुखदुःखबन्धमोक्षादिमेदव्यवस्थानुपपन्नाः, समा-  
रोपितादपि मेदात्तद्वेदव्यवस्थोपपत्तेः, यथा द्वैतिनां 'शिरसि मे  
वेदना पादे मे वेदना' इत्यात्मनः समारोपितमेदनिमित्ता-  
दुःखादिमेदव्यवस्था । पादादीनामेव तद्वेदनाधिकरणत्वात्तेषां च  
मेदात्तद्व्यवस्था युक्त्यप्ययुक्तम्, यतस्तेषामङ्गत्वेन भोक्तृत्वा-  
योगात् । भोक्तृत्वे वा चार्वाकमतानुषङ्गः । तदेवमेकत्वस्य प्रत्य-  
क्षानुमानागमप्रमितरूपत्वात्सिद्धं ब्रह्माऽद्वैतं तत्त्वमिति ॥ छ ॥

अत्र प्रतिविधीयते । किं मेदस्य प्रमाणवाचितत्वादमेदः १०  
साध्यते, अमेदे साधकप्रमाणसङ्गावाद्वा ? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः,  
प्रत्यक्षादेर्मेदानुर्कूलतया तद्वाधकत्वायोगात् । न खलु मेदमन्त-  
रेण प्रमाणेतरव्यवस्थापि सम्भाव्यते । द्वितीयपक्षोऽप्ययुक्तः,  
मेदमन्तरेण साध्यसाधकभावस्यैवासम्भवात् । न चामेदसाधकं  
किञ्चित्प्रमाणमस्ति । १५

यथोक्तम्—“अविकल्पकाध्यक्षेणैकत्वमेवावसीयते” तत्र किमे-  
कव्यक्तिगतम्, अनेकव्यक्तिगतम्, व्यक्तिमात्रगतं वा तत्त्वेन  
प्रतीयते ? एकव्यक्तिगतं चेत्, तर्हि साधारणम्, असाधारणं  
वा ? न तावत्साधारणम्, ‘एकव्यक्तिगतं साधारणं च’ इति  
विप्रतिषेधात् । असाधारणं चेत्, कथं नातो मेदसिद्धिः असा- २०  
धारणस्वरूपलक्षणत्वाद्भेदस्य । अथानेकव्यक्तिगतं सर्वसामान्य-

१ घटे पटस्य निषेधकः मेदोत्पादक इत्यर्थः । २ घटाकाशपटाकाश । ३ देव-  
दत्तादेर्भावात् । कल्पितात् । ४ नैवायिकादीनां । ५ अन्यथा । ६ परेण भेदेन ।  
७ अनुमानागमौ । ८ ग्राहक । ९ प्रवर्तमानत्वात् इति शेषः । १० तदाभास ।  
११ सामान्य । १२ विरोधात् । १३ निषेध । १४ इदं सदिदं सत् ।

१ “एकस्यापि जीवात्मन उपाधिमेदात् सुखदुःखानुभवा इत्युच्यते पादे मे वेदना,  
शिरसि मे सुखं वेदनेति—” न्यायमं० पृ० ५२८ । सा० रत्ना० पृ० १९३ ।

२ “तथाहि मेदस्य प्रमाणवाचितत्वात् किमयममेदानुपगमो भवतामुतसिद्धमेदस्यैव  
प्रमाणसिद्धत्वादिति” न्यायमं० पृ० ५२८ ।

“किं मेदस्य प्रमाणवाचितत्वादेकत्वमुच्यते, आहोसिद् मेदे प्रमाणसङ्गावात् ?”  
सम्पत्ति० टी० पृ० २८५ ।

३ “एकव्यक्तिगतं किं नाऽनेकव्यक्तिसमाश्रितम् ।

व्यक्तिमात्रगतं यदा तदेकत्वं प्रतीयते ॥” सा० रत्ना० पृ० १९९ ।

- रूपमेकत्वं प्रत्यक्षब्राह्ममित्युच्यते; तर्हि व्यक्त्यधिकरणतया प्रतिभाति, अनधिकरणतया वा? प्रथमपक्षे मेदप्रसङ्गः 'व्यक्तिरधिकरणं तदधिक्यं च सत्तासामान्यम्' इति, अयमेव हि मेदः । द्वितीयपक्षे-व्यक्तिग्रहणमन्तरेणाप्यन्तराले तत्प्रतिभासप्रसङ्गः ।
- ५ तैथा किमेकव्यक्तिग्रहणद्वारेण तत्प्रतीयते, सकलव्यक्तिग्रहणद्वारेण वा? प्रथमपक्षे विरोधः, एकाकारता ह्यनेकव्यक्तिगतमेकं रूपम्, तच्चैकस्मिन् व्यक्तिसरूपे प्रतिभातेऽप्यनेकव्यक्त्यनुयायितया कथं प्रतिभासेत? अथ सकलव्यक्तिप्रतिपत्तिद्वारेण तत्प्रतीयते; तदा तस्याऽप्रतिपत्तिरेवाखिलव्यक्तीनां ग्रहणासम्भवात् । मेदसिद्धिः-
- १० प्रसङ्गश्च-अखिलव्यक्तीनां विशेषणतया एकत्वस्य च विशेष्यत्वेन, एकत्वस्य वा विशेषणतया तासां च विशेष्यत्वेन प्रतिभासनात् । तैथा तद्व्यक्तिभ्यस्तद्विभज्यम्, अभिन्नं वा? यद्यभिन्नम्; तर्हि व्यक्तिरूपतानुपपन्नोऽस्य । न च व्यक्तिर्व्यक्त्यन्तरमन्वेतीति कथं सकलव्यक्त्यनुयायित्वमेकत्वस्य । अथार्थान्तरम्, कथं नानात्वा-
- १५ ऽप्रसङ्गः? यथा चानुर्गतप्रत्ययजनकत्वेनैकत्वं व्यक्तिषु कैल्यते तथा व्यावृत्तप्रत्ययजनकत्वेनानेकत्वंमैव्यविशेषात् । तन्नैकत्वं नानात्वमन्तरेणावकाशं लभते । प्रयोगः विवादाध्यासितमेकत्वं परमार्थसन्नानात्वाविनाभावि एकान्तैकत्वरूपतयाऽनुपलभ्यमानत्वात्, घटादिमेदाविनाभूतमृद्व्यैकत्ववत् । एतेनैव व्यक्तिमात्र-
- २० गतमप्येकत्वं प्रत्युक्तम्, एकानेकव्यक्तिव्यतिरेकेण व्यक्तिमात्रस्यानुपपत्तेः ।

यच्चोक्तम्-"मेदस्यान्यापेक्षतया कल्पनाविषयत्वम्" तदप्युक्तिमात्रम् । एकत्वस्यैवान्यापेक्षतयैकैकल्पनाविषयत्वसम्भवात् । तैव्यनेकव्यक्त्याश्रितम्, मेदस्तु प्रतिनियतव्यक्तिसरूपोऽध्यक्षाव-

२५ सेयः । अयैकत्वं प्रत्यक्षेणैव प्रतिपन्नम्, अन्यापेक्षया तु कल्पना-

१ परेण भवता । २ वसः । ३ वसः । ४ तस्या व्यक्तावाधीयते आरोप्यते इति तदावेयं । ५ प्रतिपत्तृव्यक्त्योर्मैव्ये । ६ किञ्च । ७ किञ्च । ८ व्यक्तिसरूपवत् । ९ मित्रं । १० इदं सदिदं सदिदि । ११ समर्थते । १२ घटाद् घटो व्यावृत्त इति । १३ कल्पताम् । १४ सर्वथा । १५ विकल्पद्वयनिराकरणपरेण अन्वेन । १६ निराकृतम् । १७ परेण । १८ पदस्य । १९ मेद । २० प्रतीयमानत्वात् । २१ विकल्प । २२ एकत्वं । २३ घटः सन् पटः सन्निलादिज्ञानेन ।

१ "यदपि गदितं मेदः पुनः परापेक्षतया प्रतीयते इत्यादि, तदपि नोपपन्नम्; एकत्वमपि हि परापेक्षतया प्रतीयते, ततश्चैतत्प्रत्यक्षोऽपि कल्पनाप्रत्ययरूपत्वेनाप्रमाणत्वात् कथमिवैकत्वं साधयेत् ।"

स्वा० रत्ना० पृ० २०० ।

ज्ञानेनानुयायिरूपतया व्यवहियते, तर्हि मेदोऽप्यव्यक्षेण प्रति-  
पन्नोऽन्यापेक्षया विकल्पज्ञानेन व्योवृत्तिरूपतया व्यवहियते  
इत्यप्यस्तु ।

का चेयं कल्पना नाम-ज्ञानस्य स्मरणान्तरभावित्वम्, शब्दा-  
कारानुविद्धत्वं वा स्यात्, जाल्याद्युल्लेखो वा, असदर्थविषयत्वं<sup>५</sup>  
वा, अन्यापेक्षतयाऽर्थस्वरूपावधारणं वा, उपचारमात्रं वा प्रका-  
रान्तराऽसम्भवात् ? न तावदाद्यविकल्पः, अमेदज्ञानस्यापि स्मर-  
णान्तरसुर्गलम्बेन कल्पनात्वप्रसङ्गात् । शब्दाकारानुविद्धत्वं च  
ज्ञाने प्रागेव प्रतिविहितम् । ननु सकलो मेदप्रतिभासोऽमिलाप-  
पूर्वकस्तदभावे मेदप्रतिभासस्याप्यभावः स्यात्, तन्न, विकल्पाभि-<sup>१०</sup>  
लापयोः कार्यकारणभावस्य कृतोत्तरत्वात् । अस्तु वासौ, तथापि  
किं शब्दजनितो मेदप्रतिभासः, तज्जनितो वा शब्दः ? प्रथमपक्षे किं  
शब्दादेव मेदप्रतिभासः, ततोऽसौ भवत्येवेति वा ? शब्दादेव  
मेदप्रतिभासाभ्युपगमे-प्रथमाक्षसन्निपातानन्तरं चित्रपट्यादिज्ञा-  
नस्य मेदविषयस्यानुत्पत्तिप्रसङ्गः, निर्विकल्पकानुभवानन्तरं<sup>१५</sup>  
संकेतस्मरणविवर्धनप्रयत्नतात्वादिपरिस्पन्दक्रमेणोपजायमानश-  
ब्दस्याविकल्पकप्रथमप्रत्ययावस्थायामभावात् । शब्दादनैकत्व-  
प्रतिभासो भवत्येवेत्यप्ययुक्तमुक्तम् ; 'एकं ब्रह्मणो रूपम्' इत्यादि-  
शब्दस्य मेदप्रत्ययजनकत्वे सति आगमात्तस्यैकत्वप्रतिपत्तेरभावा-  
नुपङ्गात् । मेदप्रतिभासाच्छब्दे(ब्दोऽ)स्तीत्यभ्युपगते च-अन्यो-<sup>२०</sup>  
न्याश्रयत्वम्—शब्दाद्देदप्रतिभासः, मेदप्रतिभासाच्छब्द इति ।  
'घटोर्यं पटोर्यम्' इत्यादिमेदप्रतिभासस्य जाल्याद्युल्लेखित्वात्कल्प-  
नात्वे-अमेदज्ञानस्यापि कल्पनात्वानुपङ्गः, तस्यापि सैत्तदिसामा-  
न्योल्लेखित्वात् । असदर्थविषयत्वं च मेदप्रतिभासस्यासिद्धम् ;  
अर्थकिर्याकारिणो वस्तुभूतार्थस्य तत्र प्रतिभासनात् । विसर्वादित्वं<sup>२५</sup>

१ अनुवृत्तरूपतया । २ घटश्च । ३ पट । ४ विसृष्टश्च । ५ सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादि-  
रूपस्य सोहमित्यादेर्वा । ६ प्रतीला । ७ समिकल्पकसिद्धौ शब्दाद्वैते च । ८ परः ।  
९ इति चेत् । १० समिकल्पकसिद्धौ । ११ पूर्ववधारणम् । १२ उत्तरावधारणम् ।  
१३ परेण । १४ चित्राणां पटानां समाहारः चित्रपटी । १५ मेदो विषयो यस्य ।  
१६ नीलादि । १७ बहुभिन्ना । १८ उत्साह । १९ मेद । २० प्रतिभास ।  
२१ इदं सदिदं सत् । २२ आत्मत्वं । २३ परमाश्रितत्वात् । २४ ज्ञानपानादि ।

I "किंचान्यापेक्षया भवनमेव मेदप्रत्ययस्य कल्पनात्वं स्यात्, किंवा स्मरणसम-  
न्तरभावित्वम्, यद्वा शब्दानुविद्धत्वम्, यत् जाल्याद्युल्लेखित्वम्, अन्यापेक्षविषयत्वम्,  
उपचाररूपत्वं वा ?"

सा० रसा० पृ० २०१ ।

बाध्यमानत्वं च कल्पनालक्षणमेतेन प्रत्युक्तम्; तस्यासदर्थवि-  
षयत्वादर्थान्तरत्वाऽसम्भवात् । अन्योपेक्षतयर्थस्वरूपावधारणं  
चानन्तरमेव प्रत्याख्यातम्; यतो व्यवहार एवान्योपेक्षतया प्रवर्तते  
न स्वरूपावधारणम् । नापि भेदप्रतिभासस्योपचाररूपं कल्पना-  
५ त्वम्; मुख्यसम्भवे तस्याप्यदर्शान्माणावके सिद्धान्तोपचारवत् ।  
न चाभेदवादिनो मुख्यं भेदाभ्युपगमोऽस्यैव सिद्धान्तप्रसङ्गात् ।

यच्चानुमानादप्यात्माद्वैतसिद्धिरित्युक्तम्; तत्र स्वतःप्रतिभास-  
मानत्वं हेतुः, परतो वा । स्वतश्चेत्; असिद्धिः । परतश्चेत्; विरुद्धो-  
ऽद्वैते साध्ये द्वैतप्रसाधनात् । 'घटः प्रतिभासते' इत्यादिप्रति-  
१० भासैसामानाधिकरणं तु विषये विषयिर्धर्मस्योपचारात्, न पुनः  
प्रतिभासात्मकत्वात् । प्रतिभासनं हि विषयिणो ज्ञानस्य धर्मः स  
विषये घटादावध्यारोप्यते । तदध्यारोपनिमित्तं च प्रतिभासन-  
क्रियाधिकरणत्वंम् । तथा च 'अर्थमहं वेद्मि' इत्यन्तःप्रकाशमा-  
नान्तपर्यायाऽचेतनब्रह्मब्रह्मिःप्रकाशमानान्तपर्यायाऽचेतनब्र-  
१५ ह्मव्यमपि प्रतिपत्तव्यम् । 'सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म' इत्याद्यागमोपि नाद्वैत-  
प्रसाधकः; अभेदे प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावस्यैवासम्भवात् । न  
चागमप्रामाण्यवादिना अर्थवादस्य प्रामाण्यमभिप्रेतमतिप्रसङ्गात् ।  
आत्मैव हि सकललोकसर्गस्थितिप्रलयहेतुरित्यन्यसम्भाव्यम्;  
अद्वैतैकान्ते कार्यकारणभावविरोधात्, तस्य द्वैताविनाभावित्वात् ।  
२० निराकृतं च नित्यस्य कार्यकारित्वं शब्दाद्वैतविचारप्रक्रमे ।

किमर्थं चासौ जगद्वैचित्र्यं विदधाति ? न तावद्यसनितयैः

१ असदर्थविषयत्वनिराकरणेन । २ अपादाने का (पञ्चमी) । ३ एकत्वप्रतिभास ।  
४ घट । ५ घट । ६ कथं । ७ किन्तु सापेक्षतया यव प्रतिभासते । ८ वा ।  
९ भेदस्य । १० अग्निः । ११ अन्यथा । १२ परेण । १३ पदार्थानां । १४ पर-  
वायसिद्धो हेतुः । नहि पदार्थाः स्वतः यव प्रतिभासन्ते । १५ अन्यस्यात् । १६ ईप् ।  
१७ स्वरूपस्य । १८ विषयस्य । परेण । १९ परेण । २० प्रवृत्तिरूपस्य ।  
२१ अलावूनि निमज्जन्ती(?) त्यादेरपि प्रमाणताप्रसङ्गः । सारमित्येतस्य अशंसावचनस्य  
अलानुपु सङ्गानात् (?) आवाणः पुनन्ते अन्यो भगिनाविन्दत् । २२ किञ्च । २३ ब्रह्मा ।  
२४ फलं विना प्रवृत्तिर्व्यसनम् ।

१ "तत्र स्वतः प्रतिभासमानत्वं हेतुः, परतो वा ?" स्या० रत्ना० पृ० १९४ ।  
प्रमेयरत्नामा० २।१२ ।

२ "जगच्चाऽसृजतस्तस्य किञ्चानेष्टं न सिध्यति ॥ ५४ ॥

प्रयोजनमनुविश्य न सन्दोऽपि प्रवर्तते ।

यवमेव प्रवृत्तिश्चेन्नित्येनास्य किं भवेत् ॥ ५५ ॥" भी० को० पृ०  
३५३ । सन्मति० टी० पृ० ७१५ । स्या० रत्ना० पृ० १९८ । प्रमेयरत्ना० २।१२ ।

अपेक्षाकारित्वप्रसङ्गात्, प्रेक्षाकारिप्रवृत्तेः प्रयोजनवत्तया व्याप्तत्वात् । कृपया परोपकारार्थं तत् करोतीति चेत्, न; तद्व्यतिरेकेण परस्याऽऽसत्त्वात् । सत्त्वे वानारकादिदुःखितप्राणिविधानं न स्यात्, एकान्तसुखितमेवाखिलं जगज्जनयेत् । किञ्च, सृष्टेः प्रागनुकम्प्यप्राण्यभावात् किमालम्ब्य तस्यानुकम्पा प्रवर्तते येनानुकम्पावशादयं स्रष्टा कल्पेत ? अनुकम्पावशाच्चासौ प्रवृत्तौ देवमनुष्याणां सदाभ्युदययोगिनां प्रलयविधानविरोधः, दुःखितप्राणिनामेव प्रलयविधानानुषङ्गात् । प्राण्यर्हदपेक्षोऽसौ सुखदुःखसमन्वितं जगत् जनयतीत्यप्यसङ्गतम्, स्वातन्त्र्यव्याघातानुषङ्गात् । समर्थस्वभावस्यासमर्थस्वभावस्य वा नित्यैकरूपस्य वस्तुनोऽन्या- १० पेक्षाऽयोगाच्च । अदृष्टवशाच्च जगद्वैचित्र्यसम्भवे-किमनेनान्तर्ग-  
जुना पीडाकारिणा ? अदृष्टापेक्षा चास्यानुपपन्ना, किं त्ववधीर-  
णमेवोपपन्नम्, अन्यथा कृपालुत्वव्याघातप्रसङ्गः । न हि कृपा-  
लैवः परदुःखं तद्वत् वाऽन्विच्छन्ति, परदुःखतत्कारणवियोगवा-  
च्छयैव प्रवृत्तेः ।

१५

१ मूर्खत्व । २ ब्रह्म । ३ जगतः । ४ कृत्तिसृष्टेः किं कर्म । ५ ब्रह्मणः । ६ किञ्च । ७ ब्रह्मणः । ८ पुण्यपाप । ९ ब्रह्मा । १० ब्रह्मणः । ११ अवशाः । १२ नराः ।

१ “अभावाच्चानुकम्प्याना नानुकम्पा प्रवर्तते ।  
सृजेच्च शुभमेवैकमनुकम्पाप्रयोजितः ॥ ५२ ॥ मी० खो० पृ० ६५२ ।  
“अथानुकम्पया कुर्यादेकान्तसुखितं जगत् ॥ १५३ ॥  
आधिदारिद्र्यचोकादिविविधायास्तपीडितम् ।  
जनैः तु सुखतस्तस्य चानुकम्पा प्रतीयते ॥ १५७ ॥  
सृष्टेः प्रागनुकम्प्यानामसत्त्वे नोपपद्यते ।  
अनुकम्पायि ययोगाद्भाताऽयं परिकल्प्यते ॥ १५८ ॥  
न चायं प्रकृत्यं कृपास्तदभ्युदययोगिनाम् ।” तत्त्वसं० पृ० ७६ ।  
सन्मति० टी० पृ० ७१६ । सा० रत्ना० पृ० १९८ । प्रमेयरत्न० २।१९ ।

२ “अथाऽश्रुमादिना सृष्टिः स्थितिर्वा नोपपद्यते ।  
आत्मापीनान्शुपाने हि मवेत्किञ्चाम दुष्करम् ॥ ५३ ॥  
तथाचापेक्षमाणस्य स्वातन्त्र्यं प्रतिहन्यते ।” मी० खो० पृ० ६५३ ।  
“तददृष्टव्यपेक्षायां स्वातन्त्र्यमवहीयते ॥ १५९ ॥  
पीडाहेतुमदृष्टं च किमर्थं स व्यपेक्षते ।  
उपेक्षैव पुनस्तत्र दयायोगोऽस्य युज्यते ॥ १६० ॥ तत्त्वसं० पृ० ७७ ।  
सन्मति० टी० पृ० ७१६ । सा० रत्ना० पृ० १९९ । प्रमेयरत्न० २।१२ ।



ननु यथोर्णनामो जालादिविधाने स्वभावतः प्रवर्तते, तथात्मा जगद्विधाने इत्यप्यसत्; ऊर्णनामो हि न स्वभावतः प्रवर्तते । किं तर्हि ? प्राणिभक्षणलाम्पट्यात्प्रतिनियतहेतुसम्भूततया कादाचित्कात् । 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इति ५ निन्दावादोप्यनुपपन्नः; सकलप्राणिनां भेदब्राह्मकत्वेनैवाखिलप्रमाणानां प्रवृत्तिप्रतीतेः ।

यच्चोक्तम्—'आहुर्विधातुप्रत्यक्षम्' इत्यादि; तत्र किमिदं प्रत्यक्षस्य विधातृत्वं नाम-सत्तामात्रावबोधः, असाधारणवस्तुस्वरूपपरिच्छेदो वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः, नित्यनिर्देशव्यापिनो विशेष-  
१० निरपेक्षस्य सत्तामात्रस्य स्वमेव्यप्रतीतेः स्वरविषाणवत् । द्वितीयपक्षे तु-कथं नाद्वैतप्रतिपादकागमस्याध्यक्षवाचाः । भावभेदब्राह्मकत्वेनैवास्य प्रवृत्तेः, अन्यथाऽसाधारणवस्तुस्वरूपपरिच्छेदकत्वविरोधः ।

यच्च भेदो देशभेदादित्याद्युक्तम्; तदप्यसङ्गतम्; सर्वत्रा-  
१५ कारभेदस्यैवार्थभेदकत्वोपपत्तेः । यत्रापि देशकालभेदस्तत्रापि तद्रूपतयाऽऽकारभेद एवोपलक्ष्यते । स चाकारभेदः स्वसामग्रीतो जातोऽहमहमिकया प्रतीयमानेनात्मना प्रतीयते । प्रसाधयिष्यते

१ ब्रह्मादेतवादी । २ क्षुधा । ३ परेण । ४ विसृष्ट । ५ पदार्थ । ६ प्रवृत्त्यभावे । ७ परेण । ८ बहिरन्तर्वा । ९ तालादिमत्त्वादि । १० गवादि । ११ वस्तुनि । १२ वस्तुनि ।

1 "प्राणिना मक्षणाद्यापि तस्य जाला प्रवर्तते ।" मी० श्लो० पृ० ६५२ ।

"प्रकृत्यैवाहुहेतुत्वमूर्णनामेऽपि नेष्यते ।

प्राणिमक्षणात्म्यत्वाज्जालाजालं करोति यत् ॥ १६८ ॥" तत्त्वसं० पृ० ७९, न्यायकुमुदर्व० प्रल० परि०, सन्मति० टी० पृ० ७१७ । सा० रत्ना० पृ० १९९ । प्रमेयरत्नमा० २।१२ ।

2 "यद्युक्तम्—आहुर्विधातुप्रत्यक्षमिति, तदप्यसाहुः विधातु इति कोऽर्थः ? इदमपि वस्तुस्वरूपं गृह्णाति नान्यरूपं निषेधति प्रत्यक्षमिति चेन्नैवम्, अन्वकरुपनिषेधमन्तरेण तत्प्रत्यक्षपरिच्छेदस्याप्यसम्पत्तेः । पीतादिव्यवच्छिन्नं हि नीलं नीलमिति गृहीतं भवति नेतरया ।" न्यायमं० पृ० ५२९ ।

"यतो विधातृत्वं किं प्रत्यक्षस्य आवस्तरूपआदित्वम्, आहोसिदन्यत् ? सन्मति० टी० पृ० २८५ ।

"तत्र किमिदं प्रत्यक्षस्य विधातृत्वं नाम सत्तामात्रावबोधः, असाधारणस्वरूपपरिच्छेदो वा ?" सा० रत्ना० पृ० २०१ ।

3 "यदपि—देशकालाकारभेदभेदो न प्रत्यक्षादिभिः प्रतीयते इत्याहुक्तम्; भेदप्रतिपत्तावप्यस्य समानत्वात् ।" सन्मति० टी० पृ० २८६ । सा० रत्ना० पृ० २०३ ।

आत्मा सुखशरीरादिव्यतिरिक्तो जीवसिद्धिप्रघटके । कथं चाभे-  
सिद्धिस्तत्प्रतिपत्तावप्यस्य समानत्वात् ; तथाहि—अभेदोऽर्थानां  
शामेदात्, कालाभेदात्, आकाराभेदाद्वा स्यात् ? यदि देशाभे-  
दात् ; तदा देशस्यापि कुतोऽभेदः ? अन्यदेशाभेदाच्चेद्वनवस्था ।  
तत्राभेदार्थानामपि स्वत एवाभेदोऽस्तु किं देशाभेदादभेदकल्प-  
नया ? इत्यादिसर्वमत्रापि योजनीयम् । तस्मात्सामान्यस्य विशेष-  
स्य वा स्वभावतोऽभेदो भेदो वाभ्युपगन्तव्यः ।

यच्चेदमुक्तम्—‘यत एवाविद्या ब्रह्मणोऽर्थान्तरभूता तत्त्वतो  
नास्त्यत एवासौ निवर्त्यते’ इत्यादि; तदप्यसारम् ; यतो यद्यव-  
स्तुसत्यविद्या कथमेवा प्रयत्ननिवर्तनीया स्यात् ? न ह्यवस्तुसन्तः १०  
ग्रहशृङ्गादयो यत्ननिवर्तनीयत्वमनुभवन्तो दृष्टाः । न चास्यास्त-  
त्त्वतः सद्भावे निवृत्त्यसम्भवः ; घटादीनां सतामेव निवृत्ति-  
प्रतीतेः । न चाविद्यानिर्मितत्वेन घटग्रामारामादीनामपि तत्त्वतो-  
ऽसत्त्वम् ; अन्योऽन्याश्रयानुषङ्गात्—अविद्यानिर्मितत्वे हि घटा-  
दीनां तत्त्वतोऽसत्त्वम्, तस्माच्चाविद्यानिर्मितत्वमिति । अभेदस्य १५  
विद्यानिर्मितत्वेन परमार्थसत्त्वेऽपि अन्योन्याश्रयो द्रष्टव्यः । न  
चानाद्यविद्योच्छेदे प्रागभावो दृष्टान्तः ; वस्तुव्यतिरिक्तस्याना-  
द्येस्तुच्छस्वभावस्यास्याऽसिद्धेः ।

यदपि—‘तत्त्वज्ञानप्रागभावरूपैवाविद्या’ इत्याद्यभिहितम् ; तद-  
प्यभिधीनमात्रम् ; प्रागभावरूपत्वे तस्या भेदज्ञानलक्षणकार्योत्पाद- २०  
कत्वाभावनुषङ्गात्, प्रागभावस्य कार्योत्पत्तौ सामर्थ्यासम्भवात् ।

१ विचारस्य । २ अभेदपक्षे । ३ स्वरूपेण । ४ परेण । ५ आत्मअवगमननादि ।  
६ भेदस्याविद्याहेतुत्वे अभेदस्य विद्याहेतुत्वमायातं तत्रापि दूषणम् । ७ वचन ।  
८ अभावरूपत्वात्स्वरविषाणवत् । ९ प्रागभावः स्वात्कार्योत्पादकत्वं च स्यादिति  
सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह ।

१ “अनादिना प्रवचनेन प्रवृत्तावरणक्षमा । यतोच्छेद्यान्वविधेयमसती कथ्यते  
कथम् ? अस्तित्वे क एनामुच्छिन्नादिति चेत् कातरसन्नासोऽवश्यं सतामेव हि वृक्षादी-  
नामुच्छेदो दृश्यते नासर्ता शशविषाणादीनाम् । तदिदमुच्छेदत्वादविद्या निला माभूत्  
सती तु भवत्येव ।” न्यायमं० पृ० ५२९ । सन्मति० टी० पृ० २९५ । सा०  
रत्ना० पृ० २०३ ।

२ “न च तत्त्वाग्रहणमात्रमविद्या, सशयविपर्ययावप्यविधेयं, तौ च भावस्वभाव-  
त्वात्कथमसन्तौ भवेताम् ? ग्रहणप्रागभावोऽपि नाऽसत्त्विति शक्यते वक्तुम् ; अभावस्या-  
व्यस्तित्वसमर्थनादिति सर्वथा नासत्त्वविद्या ।

असत्त्वे च निषिद्धेऽसास्तत्त्वमेव बलाद्भवेत् ।

सदस्यव्यतिरिक्तो हि राक्षिरत्नन्तदुर्लभः ॥”

न्यायमं० पृ० ५३० ।

प्र० क० मा० ७

न हि घटप्रागभावः कार्यमुत्पादयन्द्ध्यः । केवलं घटवत् प्रागः  
भावविनाशमन्तरेण तत्त्वज्ञानलक्षणं कार्यमेवं नोत्पद्येत । अथ न  
भेदज्ञानं तस्याः कार्यम्, किं तर्हि ? भेदज्ञानस्वभावैवासौ, तन्न;  
एवं सति प्रागभावस्य भौवान्तरस्वभावतानुषङ्गात् । न च ज्ञानस्य  
५ भेदाभेदग्रहणकृता विद्येतरव्यवस्था, संवादविसंवादकृतत्वात्तस्य  
सत्येतरत्वव्यवस्थायाः । संवादश्च भेदाभेदज्ञानयोर्वस्तुभूतार्थ-  
ग्राहकत्वानुसृत्य इत्युक्तम् ।

यदप्युक्तम्—‘भिन्नाभिन्नादिविचारस्य च वस्तुविषयत्वात्’  
इत्यादि; तत्राविद्यायाः किमवस्तुत्वाद्विचारागोचरत्वम्, विचा-  
१० रागोचरत्वाद्वाऽवस्तुत्वं स्यात् ? न तावद्यद्यदवस्तु तत्तद्विचार-  
यितुमशक्यम्; इतरेतराभावादेवस्तुत्वेऽपि ‘इदमित्थम्’ इत्या-  
दिशाब्दप्रतिभासलक्षणविचारविषयत्वात् । नापि विचारागोचर-  
त्वेनावस्तुत्वम्; इक्षुक्षीरादिमाधुर्यतारतम्यस्य तज्जनितसुखादि-  
तारतम्यस्य वा ‘इदमित्थम्’ इति परस्मै निर्देष्टुमशक्यत्वेऽपि  
१५ वस्तुरूपत्वप्रसिद्धेः । किञ्च, अयं भिन्नाभिन्नादिविचारः प्रमाणम्,  
अप्रमाणं वा ? यदि प्रमाणम्; तेनाविषयीकृतायाः कथमविद्यायाः  
सत्त्वंम् ? तद्वसत्त्वे च कथं मुमुक्षोस्तदुच्छिन्नये प्रयासः फल-  
वान् ? अथ अप्रमाणम्; कथं तर्हि तस्य वस्तुविषयत्वम् ? यतो  
‘भिन्नाभिन्नादिविचारस्य वस्तुविषयत्वात्’ इत्यभिधानं शोभेत ।

२० यच्चोक्तम्—‘यथा रजोरजोन्तराणि’ इत्यादि; तदप्यसमीचीनम्;  
यतो बाध्यबाधकभावाभावे कथं अवर्णमननादिलक्षणाऽविद्याऽ-

१ अविद्याविनाशमन्तरेण । केवलं यथा घटप्रागभावो घटप्रागभावविनाशरूपकार्य-  
मन्तरा घटपटादिरूपं कार्यं नोत्पादयितुमर्हं तथा विद्याप्रागभावरूपैवाविद्या विद्या-  
प्रागभावविनाशमेव कार्यं कर्तुं समर्था न च विचारूपं भेदरूपं वा कार्यमुत्पादयितुं  
समर्थैत्यर्थः । २ अविद्याया भेदज्ञानस्वभावत्वे । ३ भेदज्ञान । ४ विकल्पस्य ।  
५ खरश्चक्रवत् । ६ इतरसिन्नितरस्वभावः इतरेतराभावः । ७ वदभावे नियमेन कार्य-  
स्रोतपत्तिः स प्रागभाव इतीदृशम् । ८ प्रतिपाद्याय । ९ यदि ।

१ “यत्पुनरविषयं विधोषाय इत्यत्र कृद्यन्तपरम्परोद्घाटनं कृतं तदपि केशाय  
नार्थसिद्धये । सर्वत्र उपायस्य स्वरूपेण सत्त्वादसत्तः खपुष्पादेरुपायत्वाभावात् । रेखा-  
गकारादीनां तु वर्णरूपतया सत्त्वं यद्यपि नास्ति तथापि स्वरूपतो विद्यन्त एव ।”  
न्यायम० पृ० ५३० । सम्प्रति० टी० पृ० २९५ ।

“यच्चोक्तं यथैव हि रजःसम्पर्ककल्लवेऽम्भसि इत्यादिः तदपि फल्यः; यतो बाध्य-  
बाधकभावाभावे कथं अवर्णमननादिलक्षणाविद्याऽविद्यान्तरं प्रशमयेत् ?” सा० रत्ना०  
पृ० ३०४ ।

विद्यां प्रशमयेत् ? बाध्यबाधकभावश्च सतीरेव अहिनकुलवत्, न त्वसतोः शशाश्वविपाणवत् । दैवरक्तौ हि किंशुकाः केन रज्यन्ते नाम । विद्यमानमेव हि रजो रजोन्तरस्य स्वकार्यं कुर्वतः सामर्थ्यापनयनद्वारेण बाधकं प्रसिद्धम्, विषद्रव्यं वा उपयुक्तविषद्रव्यसामर्थ्यापनयने चरितार्थत्वादक्षमलादिसदृशतया न कार्यो-  
न्तरकरणे तत्प्रभवतीति । न च मेदस्योच्छेदो घटते; वस्तुस्वभाव-  
तयाऽमेदवत्तस्योच्छेत्तुमशक्तेः ।

ननु स्वप्नावस्थायां मेदामीवेऽपि मेदप्रतिभासो दृष्टस्ततो न पारमार्थिको मेदस्तत्प्रतिभासो वा; इत्यमेदेऽपि समानम् । न खलु तदा विशेषसैवाभावो न पुनस्तद्व्यापकसामान्यस्य; अन्यथा कूर्म-  
रोमादीनामसत्त्वेऽपि तद्व्यापकस्य सामान्यस्य सत्त्वप्रसङ्गः । कथं न स्वप्नावस्थायां मेदस्यासत्त्वम् ? बाध्यमानत्वाच्चेत्, तर्हि जाग्रदवस्थायां तस्याबाध्यमानत्वात् सत्त्वमस्तु । एकत्रास्य बाध्यमानत्वोपलम्भात्सर्वत्रासत्त्वे च स्थाण्वादौ पुरुषप्रत्ययस्य बाध्यमानत्वेनासत्यतोपलम्भात् आत्मन्यप्यसत्यत्वप्रसङ्गः । ततो  
जाग्रदवस्थायां स्वप्नावस्थायां वा यत्र बाधकोदयस्तदसत्यम्, यत्र तु तदभावस्तत्सत्यमभ्युपगन्तव्यम् ।

ननु बाधकेन ज्ञानमपह्नियते, विषयो वा, फलं वा ? न तावद् ज्ञानस्यापह्नारो युक्तः; तस्य प्रतिभातत्वात् । नापि विषयस्य; अत एव । विषयापह्नारश्च राक्षो भ्रमो न ज्ञानानाम् । फलस्यापि हानि-  
पांनावगादनादेः प्रतिभातत्वाच्चापह्नारः । वार्धक्यमपि ज्ञानम्, अर्थो वा ? ज्ञानं चेत् तर्हि समानविषयम्, भिन्नविषयं वा ? तत्र

१ स्वरूपभ्रमणमननादिलक्षणाऽविषयोः । २ असत्योर्विषयोर्बाध्यबाधकभावः सादित्युक्ते भावः । ३ यथा दैवरक्तः किंशुकाः केनापि न रज्यन्ते तथा असत्योर्विषयोर्बाध्यबाधकभावः केनापि कर्तुं न शक्यत इत्यभिप्रायः । ४ न केनापि । ५ काल्पन्यलक्षणं स्वकार्यं । ६ काल्पन्यजननसामर्थ्यः (र्थः) । ७ निराकरणं । ८ भरण-मूर्च्छादि । ९ किञ्च । १० अपेक्षत्वं प्रत्यक्षेणैव प्रतिपन्नम् । ११ घटपटादीनाम् । १२ मेदज्ञानं । १३ मेदस्य । १४ विशेषाभावे सामान्यसत्त्वं अदि । १५ रोमत्वस्य । १६ मरीचिकाचके जलमिति ज्ञाने । १७ महाहृदादौ । १८ प्रमाणेन । १९ इदं जलमिति ज्ञानस्य । २० जलादिलक्षणं । २१ उत्तरम् । २२ उत्तरम् ।

१ “किं पुनरत्र व्यभिचारि किमर्थः, आहो ज्ञानमिति ?” न्यायवा० पृ० ३७ । “अथ बाध्यमानत्वेन मिथ्यात्वमिति चेत्; किं बाध्यते अर्थः, ज्ञानस्य, उभयं वा ?... अथ ज्ञानं बाध्यते; तस्यापि बाधा का ? स्वरूपव्यापृतिरूपा, स्वरूपापह्नवरूपा, विषयापह्नारलक्षणा वा ?” तत्सोप० पृ० १९-२१ । सा० रत्ना० पृ० १३९ ।

समानविषयस्य संवादकत्वमेव न बाधकत्वम् । न खलु प्राक्तनं  
घटज्ञानमुत्तरेण तद्विषयज्ञानेन बाध्यते ॥ मित्रविषयस्य बाधकत्वे  
चातिप्रसङ्गः । अर्थोऽपि प्रतिमातः, अप्रतिमातो वा बाधकः  
स्यात् । तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः, प्रतिमातो ह्यर्थः स्वज्ञानस्य सत्य-  
५ तामेवावस्थापयति, यथा पटः पटज्ञानस्य । द्वितीयविकल्पेऽपि  
'अप्रतिमातो बाधकश्च' इत्यन्योन्यविरोधः । न हि स्वरविषाणम-  
प्रतिमातं कस्यचिद्बाधकम् । किञ्च, कचित्कदाचित्कस्यचिद्बाध्य-  
बाधकभावाभावाभ्यां सत्येतरत्वव्यवस्थां, सर्वत्र सर्वदा सर्वस्य  
वा ? प्रथमपक्षे-सत्येतरत्वव्यवस्थासङ्करः, मरीचिकाचर्कादौ  
१० जलादिसंवेदनस्यापि कचित्कदाचित्कस्यचिद्बाधकस्यानुत्पत्तेः,  
सत्यसंवेदने तूत्पत्तेः प्रतीयमानत्वात् । द्वितीयपक्षे तु-सकल-  
देशकालपुरुषाणां बाधकानुत्पत्त्युत्पत्त्योः कथमसर्वविदा वेदनं,  
तत्प्रतिपत्तुः सर्ववेदित्वप्रसङ्गात् ॥

इत्यप्यनल्पतर्मोविलसितमैः रजतप्रत्ययैः शुक्तिकाप्रत्ययेनो-  
१५ उत्तरकालभाविनैकविषयतया बाध्यत्वोपलम्भात् । ज्ञानमेष हि  
विपरीतार्थख्यापकं बाधकमभिधीयते, प्रतिपादितासदर्थख्यापनं  
तु बाध्यम् । ननु वैतर्क्यसर्वस्य घृष्टं प्रति यथ्यभिहननमिवाभा-  
सते, यतो रजतज्ञानं चेदुत्पत्तिमात्रेण चरितार्थं किं तस्याऽती-  
तस्य मिथ्यात्वापादनलक्षणयापि बाधया ? तदसत्, एतदेव हि  
२० मिथ्याज्ञानस्यातीतस्यापि बाध्यत्वम्-यदस्मिन् मिथ्यात्वापेक्ष-  
नम्, क्वचित्पुनः प्रवृत्तिप्रतिषेधोऽपि फलम् । अन्यथा रजतज्ञानस्य  
बाध्यत्वासम्भवे शुक्तिकादौ प्रवृत्तिरविरता प्राप्नोति । कथं

१ एक । २ अप्रतिमातत्वाधकत्वयोः । ३ विषये । ४ असत्त्व । ५ ज्ञानस्य ।  
६ ज्ञानस्य । ७ एकत्रानेकेषां शुगलप्राप्तिः सङ्करः । ८ आदिपदेन शुक्तिका ।  
९ रजतादि । १० अज्ञान । ११ प्रमाचन्द्रदेवः पर प्रति भूते । १२ इदं रजतमिति  
ज्ञानस्य । १३ शुक्तिनैकविषयः । १४ रजतादि । १५ उत्तरम् । १६ शुक्ति-  
शकले प्रतिभातरनताद्विपरीतोऽर्थः शुक्तिशकलम् । १७ शुक्तिनैकविषयख्यापकम् ।  
१८ उत्तरज्ञानेन । १९ बोधित । २० बोधितमसदर्थख्यापन ( प्रतिपादन ) मस-  
दर्थग्रहणं यस्य पूर्वज्ञानस्य । २१ नाप्यनाधकभावलक्षणम् । २२ रजतप्रत्ययस्य  
शुक्तिविषयप्रत्ययः उत्तरकालभावी नाधकः इति प्रतिपादनम् । २३ मिथ्याज्ञानं ।  
२४ प्रयोजनम् । २५ प्रथमज्ञाने । २६ उत्तरज्ञानेन । २७ विषये । २८ मिथ्या-  
त्वापादनाभावे ।

१ "बाधाविरहः किं सर्वपुरुषापेक्षया आहोस्तिप्रतिपन्नपेक्षया ?"

तत्त्वोप० पृ० ३ ।

चैवं चादिनोऽविद्याविद्ययोर्वाच्यवाचकभावः स्यात् तत्राप्युक्तवि-  
कल्पजालस्य समानत्वात् ?

(७) यच्च समारोपितादपि भेदादित्याद्युक्तम् ; तदप्युक्तम् ; आत्मनः  
सांशत्वे सत्येव भेदव्यवस्थोपपत्तेर्निर्देशस्यान्तर्बहिर्वा वस्तुनः सर्व-  
थाप्यप्रसिद्धेरित्यात्माद्वैताभिनिवेशं परित्यज्यान्तर्बहिश्चानैकप्रकारं ५  
वस्तु चास्तत्वं प्रमाणप्रसिद्धमुरुरीकैर्त्तव्यम् ।

ननु चाविभागबुद्धिस्वरूपव्यतिरेकेणार्थस्याप्रतीतितोऽसत्त्वा-  
द्विश्रुतिमात्रमेव तत्त्वमभ्युपगन्तव्यं तद्ग्राहकं च ज्ञानं प्रमाणमिति ;  
तच्च, यतोऽविर्भागस्वरूपावेदकप्रमाणसद्भावतो विश्रुतिमात्रं तत्त्व-  
मभ्युपगम्यते, बहिरर्थसद्भावबाधकप्रमाणावष्टम्भेन वा ? यद्याद्यः १०  
पक्षस्तत्रापि तथाभूतविश्रुतिमात्रं ग्राहकं ( मात्रग्राहकं ) प्रत्यक्षम्,  
अनुमानं वा ? प्रमाणान्तरस्य सौगतैरनभ्युपगमात् । तत्र न ताव-  
त्प्रत्यक्षं बहिरर्थसंस्पर्शरहितं विश्रुतिमात्रमेवेत्यधिगन्तुं समर्थम् ;  
अर्थाभावनिश्चयमन्तरेण विश्रुतिमात्रमेवेत्यवधारणानुपपत्तेः ।

“अयमेवेति यो ह्येष भवे भवति निर्णयः ।

१५

नैष वस्त्वन्तैराभावसंवित्यर्तुगमादते ॥”

[ मी० श्लो० अभावपरि० श्लो० २० ]

इत्यभिधानात् । न चार्थाभावः प्रत्यक्षाधिगम्यः ; बाह्यार्थप्रकाश-  
कत्वेनैवास्योत्पत्तेः । न च प्रत्यक्षे प्रतिभासमानस्याप्यर्थस्याभावो

१ बाधकेन ज्ञानमपह्रियते विषयो वेलेवं वादिनः । २ उक्तविकल्पैरतीतलोत्तर-  
कालीनं न बाधकमिति । ३ अविद्यया किं ज्ञानमपह्रियते विषयः फलं वा । ४ सहाशैः  
वर्तते इति साक्षाः । ५ सुखादिस्वप्नादि च । ६ पारमार्थिकम् । ७ भवता  
परेण । ८ विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार आह । ९ ग्राह्यग्राहकसवित्तिरूपो विभागः ।  
१० जैनादिभिः । ११ इदं ज्ञानमयं विषय इति विभागः । १२ आपकः । १३ परेण ।  
१४ बलेन । १५ अकृते विश्रुतिमात्रे । १६ षड्वे । १७ बहिरर्थः । १८ सद्भावना-  
दिना । १९ अस्तीति साध्यः ।

१ ब्रह्माद्वैतवादस्य विविधरीत्या पर्यालोचनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—मी० श्लोकवा०  
पृ० ६६२—, तत्त्वसं० पुरुषप० पृ० ७५—, न्यायसं० पृ० ५२६—, आत्ममीमांसा  
अष्टश० अष्टसह० पृ० १५६—दि० परि०, न्यायकु० चं० प्रथमपरि०, सन्मति०  
टी० पृ० २७७—२८५—, स्वा० रत्ना० पृ० १९०— ।

२ “ननु किमविभागबुद्धिस्वरूपावेदकप्रमाणसद्भावतो विश्रुतिमात्रमभ्युपगम्यते,  
आहोस्तिदर्थसद्भावबाधकप्रमाणसद्भावसङ्गतेरिति वक्तव्यम् ? तत्र यद्याद्यः पक्षः स न  
शुक्तः ; यतस्तथाभूतविश्रुतिमात्रोपग्राहकं प्रत्यक्षं वा तद्वदेदनुमानं वा... ।” सन्मति०  
टी० पृ० ३५९ ।

विश्वसिमात्रस्याप्यभावानुषङ्गात् । न च तैमिरिकप्रतिभासे प्रति-  
भासमानेन्दुद्वयवर्षिर्मेलमनोऽक्षप्रभवप्रतिभासविषयस्याप्यसत्त्व-  
मित्यभिधार्तव्यम् । यतस्तैमिरिकप्रतिभासविषयस्यार्थस्य बाध्य-  
मानप्रत्ययविषयत्वादसत्त्वं युक्तम्, न पुनः सत्यप्रतिभासविषय-  
स्याऽबाध्यमानप्रत्ययविषयत्वेन सत्त्वसम्भवात् । बाध्यबाधक-  
भावश्चानन्तरमेव ब्रह्माद्वैतप्रघट्टके प्रपञ्चितः । तन्नार्थाभावोऽध्य-  
क्षेणाधिगम्यः ।

नाप्यनुमानेन, अध्यक्षविरोधेऽनुमानस्याप्रामाण्यात् । “प्रत्यक्ष-  
निराकृतो न पक्षः” [ ] इत्यभिधानात् । न च बाह्यार्था-  
वेदकाध्यक्षस्य भ्रान्तत्वात् तेनानुमानवाधेत्यभिधातव्यम्, अन्यो-  
ऽन्याभयात्-सिद्धे ह्यार्थाभावे तद्गोह्यक्षं भ्रान्तं सिद्ध्येत्, तत्सिद्धौ  
चार्थाभावानुमानस्य तेनाऽर्थाधेति । किञ्च, तदनुमानं कार्यलिङ्ग-  
प्रभवम्, स्वभावहेतुसमुत्थं वा, अनुपलब्धिप्रसूतं वा ? न ताव-  
त्प्रथमद्वितीयविकल्पो, कार्यस्वभावहेत्वोर्विधिसाधकत्वाभ्युप-  
गमात् । “अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ” [ न्यायवि० पृ० ३९ ] इत्यभिधा-  
नात् । तृतीयविकल्पोऽप्ययुक्तः, अनुपलब्धेरसिद्धत्वाद्वाह्यार्थस्याध्य-  
क्षादिनोपलम्भात् । किञ्च, अद्वयानुपलब्धिस्तदभावसाधिका  
स्यात्, दृश्यानुपलब्धिर्वा ? प्रथमपक्षेऽतिप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे तु  
सर्वत्र सर्वदा सर्वार्थाभावाऽप्रसिद्धिः, प्रतिनियतदेशादेवैवा-  
स्यास्तदभावसाधकत्वसम्भवात् ।

एतेन बहिरर्थसङ्गावबाधकप्रमाणावष्टम्भेन विश्वसिमात्रं तत्त्व-  
मभ्युपगम्यत इत्येतन्निरस्तम्, तत्सङ्गावबाधकप्रमाणस्योक्त-  
प्रकारेणासम्भवात् ।

१ मत्प्रतिभासवे तदस्तीति अनेकान्तिको न । (१) २ प्रतिभासमानत्वाविशेषात् ।  
३ ज्ञान । ४ बाह्यार्थस्य । ५ परेण । ६ नैमो द्वौ चन्द्रौ । ७ ज्ञानाद्वैतवादिनां  
बाध्यबाधकभावो नास्तीत्युक्ते ग्राह्य । ८ पूर्व । ९ वा (तृतीया, तृतीयासमास इत्यर्थः) ।  
१० परेण । ११ अनुमानात् । १२ अर्थे । १३ सिद्धा । १४ अस्तित्व । १५ त्रिषु  
हेतुषु मध्ये । १६ पिशाचादेरप्यभावसाधिका । १७ कालप्रकार । १८ बहिरर्था-  
भावसाधकप्रमाणनिराकरणपरेण ग्रन्थेन ।

१ “नाप्यनुमान बाह्याभावमावेदयति, प्रत्यक्षाभावे तस्यायोगात् । न च प्रत्यक्ष-  
विरोधे अनुमानप्रामाण्यं संभवति ‘प्रत्यक्षनिराकृतो न पक्षः’ इति वचनात् ।”

सम्पत्ति० टी० पृ० ३५१ ।

२ “सकृदेवैव स्वयमिष्टोऽनिराकृतः पक्ष इति । (पृ० ७९) अनिराकृत इति ।  
यत्तद्विषययोगेऽपि यः साधनितुमिष्टोऽप्यर्थः प्रत्यक्षानुमानप्रतीतिसम्पन्ननैरिन्द्रियैरेव न  
स पक्ष इति प्रदर्शयामास ।” न्यायवि० पृ० ७९, ८३ ।

ननु नार्थाभावद्वारेण विज्ञप्तिमात्रं साध्यते, अपितु अर्थसं-  
विदोः सहोपलम्भनियमादमेवो द्विचन्द्रदर्शनवदिति विधिद्वारेणैव  
साध्यते; तदप्यसंसारम्; अमेदपक्षस्य प्रत्यक्षेण बाधनाच्छब्दे श्राव-  
(ब्देऽश्राव)णत्ववत् । इष्टान्तोपि साध्यविकलः; विज्ञानव्यतिरिक्त-  
चाह्यार्थमन्तरेण द्विचन्द्रदर्शनस्याप्यसम्भवात् । कारणदोषैवशात् ५  
खलु बहिःस्थितमेकमपीदं द्विरूपतया प्रतिपद्यमानं ज्ञानमुत्प-  
द्यते, कारणदोषज्ञानाद्वाधकप्रत्ययाच्चास्य आन्तता । अर्थक्रिया-  
कारिस्तस्माद्युपलब्धौ तु तदभावात्सत्यता । सहोपलम्भनियम-

१ इन्द्रः । २ आत्मख्यातिवादी । ३ ईप् । ४ इन्द्रिय । ५ काचकामलादि ।  
६ उत्तरकाले नेमौ द्वौ चन्द्रौ । ७ घटपटादि ।

1 “यत्संवेदनमित्यादिना नीलभाकारतद्वियोरमेदसाधनाय निराकारज्ञानवादिनं  
अति प्रमाणवति—

यत्संवेदनमेव साधस्य संवेदनं ध्रुवम् ।

तस्मादप्यतिरिक्तं तत्ततो वा न विमिश्रते ॥ २०३० ॥

यथा नीलपियः स्वात्मा द्वितीयो वा वयोद्धुपः ।

नीलवीवेदनं चेदं नीलकारस्य वेदनात् ॥ २०३१ ॥

महदुक्तं भवति—(यत्) यस्मादप्युक्तं संवेदनमेव तत्तस्मादभिन्नं यथा नीलवीः  
स्वस्वभावात्, यथा वा तैमिरिकज्ञानप्रतिभासी द्वितीय उद्धुपः चन्द्रमाः, नीलवीवेदन-  
श्रवमिति पक्षधर्मोपसंहारः । यन्मत्र नीलकारप्रद्विषयो, तयोरभिन्नत्वं साध्यवर्तते,  
यथोक्तः सहोपलम्भनियमो हेतुः । ईदृश एव आचार्येण सहोपलम्भनियमादित्यादी  
अयोगे हेत्वर्थोऽभिप्रेतः ।” तत्त्वसं० पं० पृ० ५३७ ।

२ “असदेतत्; अमेदस्य प्रत्यक्षेण बाधनात्,....शब्देऽभावणत्ववत् पक्षस्य  
प्रत्यक्षेण निराकृतेः ।” सम्प्रति० टी० पृ० ३५२ ।

३ “युनः स पमाह—यदि सहस्रम्द फकार्यस्त्वदा हेतुरसिद्धः; तथाहि—नटचन्द्र-  
मल्लप्रेक्षासु नष्टेकेनैवोपलम्भो नीलवेः, ...यदा च सत्त्वं प्राणचूर्वा सर्वं चित्रक्षणाः  
सर्ववेदनावसीयन्ते तदा कथमेकेनैवोपलम्भः सिद्धः स्यात् ? नचान्योपलम्भप्रतिषेधसंभवः  
स्वभावविप्रकृष्टस्य विधिप्रतिषेधाऽयोगात् । अथ सहस्रम्द पक्षकालविवक्षया तदा बुद्ध-  
विज्ञेयचित्तेन चित्तनैतैश्च सर्वयाऽनैकान्तिकता हेतोः । यथा किल बुद्धस्य भगवतो  
यद्विज्ञेयं सन्तानान्तरचित्रं तस्य बुद्धज्ञानस्य च सहोपलम्भनियमेऽप्यस्त्येव च ज्ञाना-  
स्वम्, तथा चित्तचैतानां सत्यपि सहोपलम्भे नैकत्वमित्यतोऽनैकान्तिकतो हेतुः ।”  
तत्त्वसं० पं० पृ० ५३७ । विधिवि० न्यायकणि० पृ० २६४ । सम्प्रति० टी० पृ०  
३५३ । सा० रत्ना० पृ० १५५ ।

“यदप्यवर्णि सहोपलम्भनियमादमेवो नीलतद्विषयोः तदपि बालभाषितमिव नः  
प्रतिभासि; अमेवेदं सहायानुपपत्तेः । अपैकोपलम्भनियमादिति हेत्वर्थो विवक्षितः; तद-  
यमसिद्धो हेतुः नीलाविभासग्रहणसमये तद्भाह्वानुपलम्भात् ।” न्यायर्म० पृ० ५४४ ।



आसिद्धः। नीलाद्यर्थोपलम्भमन्तरेणाप्युपरतेन्द्रियव्यापारेण सुखा-  
दिसंवेदनोपलम्भात्। अनैकान्तिकश्चायम्; रूपालोकयोर्मिथ्ययो-  
रपि सहोपलम्भनियमसम्भवार्त्तः। तथा सर्वज्ञज्ञानस्य तज्ज्ञेयस्य  
चेतरजनचित्तस्य सहोपलम्भनियमेऽपि मेदाभ्युपगमादनेकान्तः।

१ ननु सर्वज्ञः सन्तानान्तरं वा नेष्यते तत्कथमयं दोषः? इत्यसत्;  
सकललोकसाक्षिकस्य सन्तानान्तरस्यानभ्युपगममात्रेणाऽभावाऽ-  
सिद्धेः। सुगतश्च सर्वज्ञो यदि परमार्थतो नेष्यते तर्हि किमर्थं  
“प्रमाणभूताय” [प्रमाणसमु० श्लो० १] इत्यादिनासौ समर्थितः,  
स्तुतश्चाद्वैतादिप्रकरणानामादौ दिग्भागादिभिः सद्भिः। न खलु  
१० तेषामसति सत्त्वकल्पने बुद्धिः प्रवर्तते। विचार्य पुनस्त्यागाददोषं  
इत्यप्यसारम्। त्यागाकृत्वे हि तस्य वरं पूर्वमेव नाङ्गीकरणमी-  
श्वरादिवत्। अद्वैतमेव तथा स्तूयते इत्यपि वार्त्तम्; तत्र स्तोत-  
व्यस्तौतस्तुतितत्फलानामत्यन्तासम्भवात्।

किञ्च, सहोपलम्भः किं युगपदुपलम्भः, क्रमेणोपलम्भोभावो  
१५ वा स्यात्, एकोपलम्भो वा? प्रथमपक्षे विरुद्धो हेतुः; “सह  
शिष्येणागतः” इत्यादौ यौगपद्यार्थस्य सहशब्दस्य मेवे सत्येवो-  
पलम्भात्। न श्लोकसिद्धं यौगपद्यमुपपद्यते। द्वितीयपक्षेप्यसिद्धो  
हेतुः, क्रमेणोपलम्भाभावमात्रस्य चादिप्रतिवादिनोरसिद्धत्वात्।

१ प्रतीतिः। २ निवृत्तेन्द्रियः। ३ पुरुषेण। ४ न चैकत्वम्। ५ परेण।  
६ ज्ञानान्तरं वा। ७ सौगतैः। ८ जगद्विज्ञेयिणे प्रणम्य शाले झगताय तामिने(तामिने)।  
९ असति सत्त्वकल्पने बुद्धिप्रवृत्त्यभावलक्षणो दोषः। १० कस्य। ११ दिग्भागादि।  
१२ साधनं विचार्यते। १३ प्रसन्नः। १४ विपरीतनिमित्ताविनाभावो विरुद्धः।  
१५ उपपन्नाये। १६ असत्प्रचानिश्चयोऽसिद्धः। १७ योगाचारजनैनाभ्यां पुच्छ-  
स्वभावप्रागभावप्रवृत्तभावोपलम्भोऽभावयोरनभ्युपगमात्। १८ पुच्छरूपाभावस्य।

“अथ साहाय्यं यौगपद्यं वा विवक्षितं सहोपलम्भ्यमानत्वं तथापि तयोर्भेदेनैव व्यासत्वात्  
विरुद्धत्वम्। तथा सर्वज्ञः स्वचित्तेन सहोपलम्भते परचित्तं न च तस्य तस्मादभेद  
इति व्यभिचारः सर्वेषां सर्वकृताप्रसङ्गात्।” व्योमव० पृ० ५२७।

१ “अथ सहोपलम्भनियम उक्तः सोऽपि विकल्पं न सहते। यदि ज्ञानार्थयोः  
साहित्येन उपलम्भः ततो विरुद्धो हेतुर्नाभिर्दं साधयितुमर्हति साहित्यस्य तद्विरुद्धभेद-  
न्यासत्वात् अभेदे तदनुपपत्तेः। अयैकोपलम्भनियमः; न, एकत्वस्याभावकः सह-  
शब्दः। अपि किमेकत्वेनोपलम्भः, आहो एक उपलम्भो ज्ञानार्थयोः? न तावदेकत्वे-  
नोपलम्भ इत्याह—यद्विरुद्धमेव विषयस्य।” ब्रह्मसू० शां० भा० भाष्यटी २।२।८  
सम्पत्ति० टी० पृ० २५६। “सहोपलम्भोऽपि किं युगपदुपलम्भः, क्रमेणोपलम्भाभावः,  
एकोपलम्भो वाऽभिप्रेतो यस्य नियमो हेतुः स्यात्?” स्वा० रत्ना० पृ० २५५।

किञ्च, अस्मादेभेदः—एकत्वं साध्येत, मेदामावो वा ? तत्राद्यवि-  
कल्पोऽसङ्गतः, मावाऽमावयोस्तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणसम्बन्धा-  
भावतो गर्भ्यगमकभावायोगात् । प्रसिद्धे हि धूमपावकयोः कार्य-  
कारणभावे—शिशपात्ववृक्षत्वयोश्च तादात्म्ये प्रतिबन्धे गम्यगम-  
कभावो दृष्टः । द्वितीयविकल्पेपि—अभावस्वभावत्वात्साध्यसाध-  
नयोः सर्व्वेन्द्राऽभावः, तादात्म्यतदुत्पत्त्योरर्थस्वभावप्रतिनिय-  
मात् । अनिष्टसिद्धिश्च, सिद्धेपि भेदप्रतिषेधे विज्ञप्तिमात्रस्येष्टस्याती-  
ऽप्रसिद्धेः, भेदप्रतिषेधमात्रेऽस्य चरितार्थत्वात् । ततस्तत्सिद्धौ वा  
ग्राह्यग्राहकभावादिप्रसङ्गो बहिरर्थसिद्धेरपि प्रसार्धकोऽनुषज्यते ।

अथैकोपलम्भः सद्योपलम्भः । ननु किमेकत्वेनैवोपलम्भ एको-  
पलम्भः स्यात्, एकैनैव त्रयोपलम्भः, एकलोलीभावेन चोपलम्भः,  
एकस्यैवोपलम्भो वा ? प्रथमपक्षे—साध्यसमो हेतुर्यथाऽनित्यः  
शब्दोऽनित्यत्वादिति । बहिरन्तर्मुखाकारतया च नीलतद्वियोर्मे-  
वस्य सुप्रतीतत्वात् कथं तयोरेकत्वेनोपलम्भः सिद्ध्येत् ? एकै-  
नै-

१ हेतोः । २ साध्यविचारः । ३ अर्थसमिदोः । ४ प्रसङ्गः । ५ साध्य ।  
६ जभावो हेतुः । ७ एकत्वं । ८ साध्यसाधन । ९ सम्बन्धे । १० शशविषा-  
णावविषाणयोरिव । ११ पुच्छाभाससिद्धिः । १२ असादेतोः । १३ अभावे ।  
१४ क्रमेणोपलम्भाभावमात्राद् इत्यस्तात्साधनात् । १५ किञ्च । १६ व्याप्यव्यापक ।  
१७ यथा आर्ष आहकमिति हेतुं तथा बाकोऽर्थः विज्ञानमिति हेतुसिद्धिरपि स्यादित्यर्थः ।  
१८ अर्थसमिदोस्तादात्म्यात् । १९ नीलतद्वतोः सर्वथा तादात्म्यात् । २० ज्ञानेन ।  
२१ कथञ्चित्तादात्म्यं । २२ किञ्च । २३ स्वरूपासिद्धो हेतुः । २४ ज्ञानेन ।

१ “किञ्च, क्रमेणोपलम्भाभावमात्रादेभेद एकत्वं साध्येत, मेदामावो वा ?”

सा० रत्ना० पृ० १५८ ।

२ “अथैकोपलम्भः सद्योपलम्भः, ननु किमेकत्वेनैवोपलम्भः एकोपलम्भः, एकैनैव  
वा, एकस्यैव वा, एकलोलीभावेनैव वा ?”

सा० रत्ना० पृ० १५८ ।

३ “तत्रैकोपलम्भनियमोऽन्यसिद्धः साध्यसाधनयोरविशेषात् ।” अष्टश०, अष्ट-  
सह० पृ० २४३ । “नचैकस्यैवोपलम्भनियमो हेतुः, अशब्दार्थत्वात्, साध्यवि-  
शिष्टत्वाच्च । तथाऽनेकरूपाधवयवस्य हि तत्प्रसार्धस्योपलम्भे स्वरूपासिद्धोऽपीति ।”  
व्योमवती पृ० ५९७ । सा० रत्ना० पृ० १५८ ।

४ “नापि नीलतदुपलम्भयोरैकैवोपलम्भः, तथाहि—नीलोपलम्भेऽपि तदुपल-  
म्भानामन्यसन्तानगतानामुपलम्भात् ।” तत्त्वसं० पं० पृ० ५६७ । “अथैकैवोपल-  
म्भमानत्वं साधनम् ; न ; अन्यवेदनाऽभावप्राप्तिकेः । अर्थस्तु तत्समानक्षणेनैव-  
प्युपलम्भ्यते इत्येकैवोपलम्भमानत्वमसिद्धम् ।”  
व्योमव० पृ० ५२७ ।

वोपलम्भोप्यन्यवेदेनाऽभावे सिद्धे सिद्ध्येत् । न चासौ सिद्धः  
नीलाद्यर्थस्य तत्समानक्षणेनैवेदनैरुपलम्भप्रतीतेरित्येकेनैवोपल-  
म्भोऽसिद्धः । एतेनैकलोलीभावेनोपलम्भः सहोपलम्भश्चिज्ञाना-  
कारवदशक्यविवेचनत्वं साधनमसिद्धं प्रतिपत्तव्यम् ; नीलतद्धि-  
५ योरशक्यविवेचनत्वासिद्धेः अन्तर्बहिर्देशतया विवेकेनानयोः  
प्रतीतिः ।

अथैकस्यैवोपलम्भः, किं ज्ञानस्य, अर्थस्य वा ? ज्ञानस्यैव चेत्,  
असिद्धो हेतुः । न खलु परं प्रति ज्ञानस्यैवोपलब्धिः सिद्धा,  
अर्थस्याप्युपलब्धिः । न चार्थस्याभावादन्युपलब्धिः, इतरेतराश्रया-  
१० नुषङ्गात्-सिद्धे ह्यर्थाभावे ज्ञानस्यैवोपलम्भः सिद्ध्येत्, तदुपलम्भ-  
सिद्धौ चार्थाभावसिद्धिरिति । अथार्थस्यैकस्योपलम्भः, नन्वेवं  
कथमर्थाभावसिद्धिः ? ज्ञानस्यैवाभावसिद्धिप्रसङ्गात् । उपलम्भ-  
निवन्धनत्वाद्वस्तुव्यवस्थायाः । स्वरूपकारणमेवाधानैर्योमेदः,  
ग्राहकस्वरूपं हि विज्ञानं नीलादिकं तु ग्राह्यस्वरूपम् । अमेदे च  
१५ तयोर्ग्राहकता ग्राह्यता चाऽविशेषेण स्यात् । कारणमेदस्तु

१ अर्थस्य । २ उपलम्भः । ३ सन्तानान्तरवेदेनैः । ४ पुरश्च । ५ एकत्वेनो-  
पलम्भनिराकरणपरेण अन्येन । ६ चिज्ञानाद्यथा तदाकाराणां वेदादीनामशक्य-  
विवेचनत्वं यथा न तथात्र । ७ अयमर्थ इदं ज्ञानमिति विवेकाभावः । ८ परेण ।  
९ नीलनीलज्ञानयोः । १० पृथक्त्वेन । ११ अर्थसंविदोरमेदः एकस्यैवोपलम्भात् ।  
१२ जैनं प्रति । १३ अर्थज्ञानयोर्वदप्ययोरिव ।

१ “एतेनैकलोलीभावेनैवोपलम्भः सहोपलम्भनियमः चिज्ञानाकारवदशक्यविवे-  
चनत्वं साधनमसिद्धं प्रतिपत्तव्यम्, अन्तर्बहिर्देशतया विवेकेन ज्ञानार्थयोः प्रतीतिः ।”

स्वा० रसा० पृ० १५९ ।

२ “अपि च सहोपलम्भः किं ज्ञानयोः, उत अर्थयोः, ज्ञानार्थयोर्वा ?” तत्त्वोप०  
पृ० १२५ । “किञ्च, एकस्यैवोपलम्भो ज्ञानस्य, अर्थस्य वा ?”

सम्प्रति० टी० पृ० ३५३ ।

३ “अथ बाह्यार्थाभावादेकोपलम्भनियमः तच्च, इतरेतराश्रयत्प्रसङ्गात् । तथा  
चैकोपलम्भनियमाद् बाह्यार्थाभावसिद्धिः तत्सिद्धेः एकोपलम्भनियमसिद्धिरित्येकायावदि-  
तराभावः ।”  
ज्योमन्ती पृ० ५२७ ।

४ “तथा ज्ञानं ग्राहकस्वरूपं नीलादि ग्राह्यस्वरूपमित्यनयोः शुक्लीतयोरिव सम्भाव-  
मेवात् मेदः । अमेदे हि बोधोऽपि नीलस्य ग्राह्यं स्यात् नीलञ्च बोधस्य ग्राहकमिति  
स्यात्, न चैतदस्ति । कारणमेदाच्च नीलाद्बोधोऽर्थान्तरम् ; तथा हि-बोधाद् बोध-  
रूपता, इन्द्रियादिपथप्रतिनियमः, विषयादाकारग्रहणमिति मेदादेवा मेद एव ।”

ज्योमन्ती० पृ० ५२७ ।

सुप्रसिद्धः, ज्ञानस्य चक्षुरादिकारणप्रभवत्वात्तद्विपरीतत्वाच्च  
नीलाद्यर्थस्येति ।

यच्चोच्यते—‘यदभा(यदवभा)सते तज्ज्ञानं यथा सुखादि, अव-  
भासते च नीलादिकम्’ इति; तत्र किं स्वतोऽवभासमानत्वं हेतुः,  
परतो वा, अभा(अवभा)समानत्वमात्रं वा? तत्राद्यपक्षे हेतु-  
रसिद्धः । न खलु ‘परनिरपेक्षा नीलादयोऽवभासन्ते’ इति परस्य  
प्रसिद्धम् । ‘नीलादिकमहं वेक्षि’ इत्यहमहमिकया प्रतीयमानेन  
प्रत्ययेन नीलादिभ्यो भिन्नेन तत्प्रतिभासाभ्युपगमात् । यदि च  
परनिरपेक्षावभासा नीलादयः परस्य प्रसिद्धाः स्युस्तर्हि किमतो  
हेतोस्तं प्रति साध्यम्? ज्ञानतेति चेत्; सा यदि प्रकाशता-तर्हि १०  
हेतुसिद्धौ सिद्धैव न साध्या । असिद्धौ वा तस्याः-कथं नासिद्धो  
हेतुः? को हि नाम स्वप्रतिभासं तन्नेच्छन् ज्ञानतां नेच्छेत् ।

ननु चाहस्पत्ययो गृहीतः, अगृहीतो वा, निर्व्यापारः, सव्या-  
पारो वा, निराकारः, साकारो वा, ( भिन्नकालः, समकालो वा )  
नीलादेर्ग्राहकः स्यात्? गृहीतश्चेत्-किं स्वतः, परतो वा? स्वतः-१५

१ प्रकाश । २ प्राकृतनीलकारणप्रभवत्वात् । ३ परेण भवता । ४ तस्माद् ज्ञान-  
मिति निगमनम् । ५ प्रतिवाधसिद्धः । ६ ज्ञान । ७ जैनस्य । ८ परनिरपेक्षोऽव-  
भासो येषां ते । ९ जैनस्य । १० इष्टमवाधितमसिद्धं साध्यम् । ११ ज्ञानत्वम् ।  
१२ नीलादीनाम् । १३ नीलादीनाम् ।

१ “प्रकाशमानस्वादात्म्यात्स्वरूपस्य प्रकाशकः ।

यथा प्रकाशोऽभिमतस्तथा धीरात्मवेदिनी ॥” प्रमाण वा० ६।१२७ ।

“सकलसर्वेषामनस्य नियमेन विद्या सह ।

विषयस्य ततोऽन्यत्वं केनाकारेण सिध्यति ॥” प्रमाणवा० अर्क० ५०९१ ।

२ “यच्च समेदनादितं पुरुषादितवन्न तत् ।

सिध्येत् स्वतोऽन्यतो वाऽपि प्रमाणात् स्नेहदानितः ॥”

आप्तपरी० कारि० ५६ । न्यायकु० चं० प्रथमपरी० । सा० रत्ना० ५० १६१ ।

३ “तथा हि-परः प्रकाशयन् सम्बद्धोऽसम्बद्धो वा, गृहीतोऽगृहीतो वा, निर्व्या-  
पारः सव्यापारो वा, निराकारः साकारो वा, भिन्नकालः समकालो वा पदार्थस्य  
प्रकाशकः स्यात्?” सा० रत्ना० ५० १६१ । “प्रत्यक्षमर्थं प्रत्यक्षात् वा प्रकाशयति,  
भिन्नकालं वा ?” सन्मति० टी० ५० ३५४ ।

“अनिर्मासं सन्निर्मासमन्यनिर्मासमेव च ।

विज्ञानाति न च ज्ञानं बाह्यमर्थं कथञ्चन ॥ १९९९ ॥”

तत्त्वसं० ५० ५५२ ।

श्रेत्; स्वरूपमात्रप्रकाशनिमग्नत्वाद्बहिरर्थप्रकाशकत्वाभाव एव स्यात् । परतश्चेदनवस्था; तस्यापि ज्ञानान्तरेण ग्रहणात् । न च पूर्वज्ञानाग्रहणेऽप्यर्थस्यैव ज्ञानान्तरेण ग्रहणमित्यभिधातव्यम्; तस्यासन्नत्वेन जनकत्वेन च ग्राह्यलक्षणप्राप्तत्वात् । तदाह—

५ “तां ग्राह्यलक्षणप्राप्तमासन्नां जनिकां धियम् ।

अगृहीत्वोत्तरं ज्ञानं गृहीयार्दपरं कथम् ॥” [ प्रमाणवा० ३।५१३ ]

अगृहीतश्चेद्ग्राहकोऽतिप्रसङ्गः । न च निर्व्यापारो बोधोऽर्थग्राहकः; अर्थस्यापि बोधं प्रति ग्राहकत्वानुषङ्गात् । व्यापारवत्त्वे चातोऽव्यतिरिक्तो व्यापारः, व्यतिरिक्तो वा ? आद्यविकल्पे-बोध-

१० स्वरूपमात्रमेव नापरो व्यापारः कश्चित् । न चानयोरभेदो युक्तः;

धर्मधर्मितया भेदप्रतीतेः । द्वितीयविकल्पे तु सम्बन्धासिद्धिः; तैस्तस्मैऽप्यपकाराभावात् । उपकारे वानवस्था तन्निर्वर्तने व्यापारस्यापरव्यापारपरिकल्पनात् । निराकारत्वे वा बोधस्य; अतः प्रतिकर्मव्यवस्था न स्यात् । साकारत्वे वा बाह्यार्थपरिकल्पना-

१५ नर्थक्यं नीलाद्याकारेण बोधेनैव पर्याप्तत्वात् । तदुक्तम्—

“धियो(यो)लादिरूपत्वे बाह्योऽर्थः किञ्चिन्नान्नः ।

धियोऽ(यो)नीलादिरूपत्वे बाह्योऽर्थः किञ्चिन्नान्नः ॥ १ ॥”

[ प्रमाणवा० ३।४३१ ]

तथा न भिन्नकालोऽसौ तैर्ग्राहकः; बोधेन स्वकालेऽविद्यमानार्थस्य  
२० ग्रहणे निखिलस्य प्राणिमात्रस्याशेषज्ञत्वप्रसङ्गात् । नापि सम-

१ अहम्प्रत्ययस्य । २ द्वितीयेन । ३ ज्ञेयैः । ४ पूर्वज्ञानस्य । ५ उत्तरज्ञानस्य । ६ प्राप्ता । ७ कर्तुं । ८ नीलादिकम् । ९ नाशार्तं ज्ञापकं नाम । १० देवदत्तज्ञानं जिनदत्तेनाशार्तं सत् जिनदत्तस्यार्थग्राहकं भवेत् । ११ अन्यथा । १२ निर्व्यापारत्वा विशेषात् । १३ बोधात् । १४ बोधव्यापारयोः । १५ स्वरूप । १६ बोध । १७ बोधस्यायं व्यापार इति । १८ व्यापारात् । १९ बोधस्य । २० षट्ज्ञानस्य षटः षट्ज्ञानस्य षटो विषयः, इति प्रतिनियतविषयः । २१ ज्ञानस्य । २२ निराकारत्वे । २३ ग्राहकव्यवस्थापकत्वाभावात् । २४ किम्प्रयोजनः । किं निबन्धनं निमित्तं व्यवस्थापकं यस्य बाह्यार्थस्य सः । २५ नीलादि । २६ अन्यथा ।

१ “न च पूर्वज्ञानाग्रहणेऽपि अर्थस्यैव ग्रहणमिति वाच्यम्, तेषामासन्नत्वे सति ग्राह्यलक्षणप्राप्तत्वात् । तदाह—तां ग्राह्यलक्षण...बोमवसी पृ० ५२४ ।

२

“धियोऽसितादिरूपत्वे सा तस्मानुभवः कथम् ।

धियः सितादिरूपत्वे बाह्योऽर्थः किं प्रमाणकः ॥ २०५१ ॥”

तत्सर्वं० पृ० ५७४ ।

कालः, समसमयभाविनोर्ज्ञानद्वयेयोः प्रतिबन्धाभावतो ग्राह्य-  
ग्राहकभावासम्भवात् । अन्यथाऽर्थोऽपि ज्ञानस्य ग्राहकः । अथार्थे  
ग्राह्यताप्रतीतिः स च ग्राह्यः न ज्ञानम् ; न, तद्व्यतिरेकेणास्याः  
प्रतीत्यभावात् । स्वरूपस्य च ग्राह्यत्वे-ज्ञानेऽपि तदस्तीति तत्रापि  
ग्राह्यता भवेत् । अथ जडत्वान्नार्थो ज्ञानग्राहकः ; ननु कुतोऽस्य  
जडत्वसिद्धिः ? तद्ग्राहकत्वाच्चेदन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि जडत्वे  
तद्ग्राहकत्वसिद्धिः, ततश्च जडत्वसिद्धिरिति । अथ गृहीतिकर-  
णार्थस्य ज्ञानं ग्राहकम्, ननु साऽर्थार्थान्तरम्, अनर्थान्तरं वा  
तेन क्रियते ? अर्थान्तरत्वे अर्थस्य न किञ्चित्कृतमिति कथं तेनास्य  
ग्रहणम् ? तस्येयमिति सम्बन्धासिद्धिश्च । तर्थाप्यस्य गृहीत्यन्त- १०  
रकैरणेऽनवस्था । अनर्थान्तरत्वे तु तत्करणेऽर्थ एव तेन क्रियते  
इत्यस्य ज्ञानता ज्ञानकार्यत्वादुत्तरज्ञानवत् । जडार्थोपादानोत्प-  
त्तेर्न दोषश्चेत्, ननु पूर्वोऽर्थोऽप्रतिषेधः कथमुपादानमिति प्रस-  
ङ्गोत् ? प्रतिषेधश्चेत्, किं समानकार्णालाङ्घ्रिकालाद्रेत्यादिदोषानु-  
बन्धः । किञ्च, गृहीतिरगृहीता कथमस्तीति निश्चीयते ? अन्यज्ञानेन १५  
चास्या ग्रहणे स एव दोषोऽनवस्थो च, ततोऽर्थो ज्ञानं गृहीतिरिति  
वितर्क्य स्वतन्त्रमाभातीति न परतः कस्यचिद्व्यवसासनमिति  
नासिद्धो हेतुः ।

ननु च 'अर्थमहं वेचि चक्षुषा' इति कर्मकर्तृक्रियाकरणप्रतीति-

१ अर्थं प्रत्ययोनीकादेर्ग्राहकः । २ तदुत्पत्तिरूपसम्बन्धः । ३ सम्बन्धो-  
विषयवत् । ४ इति न (इत्यर्थः) । ५ अर्थस्य । ६ यो जैनः । ७ परिच्छिन्ति ।  
८ वटादेः । ९ वटस्य करणे पटस्य किमायातं नया तथा । १० प्रथमया ।  
११ सम्बन्धसिद्ध्यर्थम् । १२ अभिप्राये । १३ वृत्तिपञ्चादि । १४ अर्थस्य ।  
१५ अज्ञातः । १६ अप्रतिषेधत्वविशेषात् । १७ खरविषाणादेरप्युपादानत्वप्रसङ्गात् ।  
१८ बोधात् । १९ अज्ञाता । २० मिश्रकालेन समकालेन वेत्तादि । २१ अन्यज्ञानेन  
गृहीतो गृहीत्यन्तरमात्रगृहीतेर्येन सम्बन्धसिद्ध्यर्थं क्रियते । एवं चेदन्वज्ञानेन क्रियमाणा  
गृहीतिः सा अर्थाङ्घ्रिका अभिप्रायेति सम्यक्पक्षे उक्तदोषानुपपन्नः । पुनरपि भेदपक्षे

१ "अथार्थे ग्राह्यताप्रतीतिः स एव ग्राह्यो न ज्ञानमित्युच्यते; तन्न; तद्व्यतिरेके-  
णास्याः प्रतीत्यभावात् ।" सा० रत्ना० पृ० १६२ ।

२ "ननु तद्वि नीलमहं वेचि चक्षुषेति प्रतिभासः कथम् ? तथा हि—नीलमिति  
कर्म, अहमिति कर्ता, वेचतीति क्रिया, चक्षुषेति करणमेतेषां परस्परव्यावृत्तवपुषा प्रति-  
भासनादभेदप्रतिपादनमुन्मत्तभाषितम् ; नैतदेवम् ; तैमिरिकस्य दिग्भ्रमदर्शनवदस्याप्यु-  
पपत्तेः । यथा हि—तैमिरिकस्य अर्थाभावेऽपि तदाकारं विज्ञानमुदेति, एवं कर्मादिष्व-  
विद्यमानेष्वपि अनादिवासनावशात्तदाकारं विज्ञानमिति ।" व्योमवती पृ० ५२५ ।

प्र० क० मा० ८

ज्ञानमात्राभ्युपगमे कथम् ? इत्यप्यपेशलम् ; तैमिरिकस्य द्विचन्द्र-  
दर्शनवदस्या अप्युपपत्तेः । यथा हि तस्यार्थाभावेऽपि तदाकारं  
ज्ञानमुदेत्येवं कर्मादिष्वविद्यमानेष्वपि अनाद्यविद्यावासनावशात्त-  
दाकारं ज्ञानमिति ।

५ अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्—‘अहंप्रत्ययो गृहीतोऽगृहीतो  
वा’ इत्यादि; तत्र गृहीत एवार्थग्राहकोऽसौ, तद्गृह्यं स्वत एव ।  
न च स्वतोऽस्य ग्रहणे स्वरूपमात्रप्रकाशनिभत्वाद्बहिरर्थप्रका-  
शकत्वाभावः; विज्ञानस्य प्रदीपवत्स्वपरप्रकाशस्वभावत्वात् ।

यच्चोक्तम्—‘निर्व्यापारः सव्यापारो वेत्यादि; तदप्युक्तिमात्रम्;

१० स्वपरप्रकाशस्वभावताव्यतिरेकेण ज्ञानस्य स्वपरप्रकाशनेऽपरव्या-  
पाराभावात्प्रदीपवत् । न खलु प्रदीपस्य स्वपरप्रकाशस्वभावताव्य-  
तिरेकेणान्यस्तत्प्रकाशनव्यापारोऽस्ति । न च ज्ञानरूपत्वे नीलादेः  
समर्पतिर्धादिरूपता घटते । न च तद्रूपतयाऽध्यवसीयमानस्य  
नीलादेः ‘ज्ञानम्’ इति नामकरणे काचिर्धः क्षतिः । नामकरण-

१५ मात्रेण समर्पितवत्वाद्वाक्यरूपत्वादेरर्थधर्मस्याव्यावृत्तेः । न च तद्रूपता  
ज्ञानस्यैव स्वभावः; तद्विषयत्वेनानन्यवेद्यतया चास्यान्तःप्रतिभास-  
नात्, समर्पितार्थान्यैवेद्यस्वभावतया चार्थस्य बहिःप्रतिभासनात् ।  
न च प्रतिभासमन्तरेणार्थव्यवस्थायामन्यत्रिवन्धनं पश्यीमः ।

यदप्यभिहितम्—निराकारः साकारो वेत्यादि; तदप्यभिधान-  
२० मात्रम्; साकारवादप्रतिक्षेपेण निराकारादेव प्रत्यर्थीत्वं प्रतिकर्म-  
व्यवस्थोपपत्तेः प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् ।

यच्चान्यदुक्तम्—न मित्रकालोऽसौ तद्ग्राहक इत्यादि, तदप्य-  
सारम्; क्षणिकत्वानभ्युपगमात् । यो हि क्षणिकत्वं मन्यते

गृहीतेरयेन सन्ध्वसिध्वर्ममन्ध्वज्ञानेनापर गृहीतन्तरं क्रियते । अपरगृहीतिरपि अर्था-  
दिज्ञा अमिज्ञा वेत्यादिप्रकारेणानवस्था ।

१ परेण । २ इदमपि ज्ञानं समकालं मित्रकालं वेत्यादि । अन्यज्ञानमपि गृहीतम-  
गृहीतमित्यादिप्रकारेण । ३ ग्रहणम् । ४ परेण । ५ ज्ञान । ६ अर्थ । ७ अर्थस्य ।  
८ काठिन्य । ९ छेदनाग्रहणादि । १० आत्माकं चैवानां । ११ बहिरर्थः । १२ ज्ञान ।  
१३ वयं चैनाः । १४ परेण । १५ अहम्प्रत्ययः । १६ ज्ञानात् । १७ विषय ।  
१८ ज्ञेयः । १९ अहम्प्रत्ययः । २० अर्थः । २१ ज्ञानार्थयोः । २२ चैवानाम् ।

१ “निराकारपक्षेऽपि अवदमिमत्ताकारवादप्रतिक्षेपेण निराकारादेव प्रत्यवायथा  
प्रतिकर्मव्यवस्था तथा प्रतिपादयिष्यते ।” सा० रत्ना० पृ० १६२ ।

२ “यद्येदं ग्राह्यग्राहकयोरेककालानुभवाभावेन दृश्यम्; तदप्यपास्तम्; क्षणिक-  
त्वानभ्युपगमात् । यो हि क्षणिकत्वं मन्यते तस्यैव दोषो ज्ञानकालेऽर्थस्यासङ्गावः  
अर्थकाले ज्ञानस्येति तयोर्ग्राह्यग्राहकभावानुपपत्तिरिति ।” न्योमवती पृ० ५२९ ।

तस्यायं दोषः 'बोधकालेऽर्थस्याभावादर्थकाले च बोधस्यासत्त्वे तयोर्ग्राह्यग्राह्यकभावानुपपत्तिः' इति ।

यच्चाविद्यमानार्थस्य ग्रहणे प्राणिमात्रस्याशेषज्ञत्वप्रसक्तिरित्युक्तम्; तदप्युक्तम्; मित्रकालस्य समकालस्य वा योग्यस्यैवार्थस्य ग्रहणात् । इदं यत्ते हि पूर्वोत्तरचरादिलिङ्गप्रभवप्रत्ययाद्विज्ञकाल-५ स्यापि प्रतिनिर्यतस्यैव शकटोदयाद्यर्थस्य ग्रहणम् ।

कथञ्चैवंवादिनोऽनुमानोच्छेदो न स्यात्, तथा हि—त्रिरूपा-  
लिङ्गाङ्गिनि ज्ञानमनुमानं प्रसिद्धम् । लिङ्गं चावभासमानत्वमन्येद्वा  
यदि मित्रकालं तस्य जनकम्; तर्ह्येकस्यानुमानस्याशेषमतीतम-  
नागतं तज्जनकमित्येत एवाशेषानुमेयप्रतीतेरनुमानमेदकल्पनान-१०  
र्थक्यम् । अथ मित्रकालत्वाविशेषेपि किञ्चिदेव लिङ्गं कस्यचि-  
ज्जनकमित्यदोषोपेयम्; नन्वेवं तदविशेषेपि किञ्चिदेव ज्ञानं कस्य-  
चिदेवार्थस्य ग्राहकं किं नेर्यते ? अथातीतानुत्पन्नेऽर्थे प्रवृत्तं ज्ञानं  
निर्विपर्ययं स्यात्, तर्हि नैष्टानुत्पन्नालिङ्गादुपजायमानमनुमानं निर्हे-  
तुकं किं न स्यात् ? यथा च स्वकाले विद्यमानं स्वरूपेण जनकम् १५  
तथा ग्राह्यमपि । तत्र मित्रकालं लिङ्गमनुमानस्य जनकम् । नापि  
समकालं तस्य जनकत्वविरोधीत्, अविरोधे चानुमानमप्यस्य

१ ज्ञानकाले । २ सर्वज्ञत्व । ३ परेण भवता । ४ ग्रहीतुं शक्यत्व । ५ यत्तदेव  
दर्शयति । ६ लोकै । ७ अनुमानात् । ८ कियत् एव । ९ मित्रकालः समकालो  
वा अहम्भ्रमः इत्यादि । १० योगान्तरस्य । ११ साध्ये अन्यादौ । १२ सहो-  
पकम्भादि । १३ लिङ्गं । १४ यत्तत्सादनुमानादेव । १५ सकलसाध्यपदार्थानां  
परिज्ञानात् । १६ लिङ्गानामतीतानागतत्वादीनाम् । १७ अनुमानस्य । १८ लिङ्ग-  
प्रकारेण । १९ परेण । २० अतीतकारणवादिपक्षे क्षणिकत्वेन नष्टादित्युच्यते  
आविकारणवादिपक्षे लिङ्गवशात्समानत्वमनुत्यक्तं लिङ्गं चानुमानस्य कारणं । तदभावे  
अनुमानलक्षणकार्यानुदयात् । २१ सौगतेनोच्यते चेत् । २२ अतीतकारणवादिपक्षे  
क्षणिकत्वेन । २३ आविकारणवादिपक्षे लिङ्गवशात्समानत्वमनुमानस्य कारणं तदभावे  
कार्यानुदयात् । २४ अतीते भविष्यति काले । २५ लिङ्गम् । २६ अनुमानस्य ।  
२७ वस्तु । २८ ज्ञानस्य भवति । २९ सन्धेतरणोपिषाणवत् ।

१ "मित्रकालस्यापि योग्यस्यैवार्थस्य ज्ञानेन ग्रहणात् । इदं यत्ते हि—पूर्वचरादि-  
लिङ्गप्रभवप्रत्ययाद्विज्ञकालस्यापि प्रतिनिर्यतस्यैव शकटोदयाद्यर्थस्य ग्रहणम् ।"

स्या० रत्ना० पृ० १६३ ।

२ "किञ्चैवंवादिनो कथं मित्रकालं किञ्चिदपि लिङ्गं साध्यस्यानुमापकं स्यात् ?  
अनुमापकत्वे वा किञ्चिदेकमेव असादिलिङ्गप्रतीतस्य पावकादेरिव समस्तसाध्यवतीताना-  
गानुमेयस्य प्रतिपत्तिहेतुः स्यात् मित्रकालत्वाविशेषात् ।" स्या० रत्ना० पृ० १६३ ।



जनकं भवेत्, तथा चान्योन्याश्रयान्नैकस्यापि सिद्धिः । अथानु-  
मानमेव जन्यम्, तत्रैव जन्यताप्रतीतिः; न; अनुमानव्यतिरेकेणार्थे  
ग्राह्यतावज्जन्यतायाः प्रतीत्यभावात् । न च स्वरूपमेव जन्यता;  
लिङ्गेऽपि तत्सङ्गावेन जन्यताप्रसङ्गे । तथा चान्योन्यजन्यताल-  
५ क्षणो दोषः स एवानुषज्यते । अर्थानयोः स्वरूपाविशेषेऽप्यनुमान  
एव जन्यता लिङ्गापेक्षया, नतु लिङ्गे तदपेक्षया सेत्युच्यते; तर्हि  
ज्ञानार्थयोस्तदविशेषेपि अर्थस्यैव ज्ञानापेक्षया ग्राह्यता न तु ज्ञान-  
स्यार्थापेक्षया सेत्युच्यताम् । न चोत्पत्तिकरणाद्विज्ञमनुमानस्यो-  
त्पादकम्, तस्यास्ततोऽर्थान्तरानर्थान्तरपक्षयोरसम्भवात् । सा ३१  
१० हि यद्यनुमानादर्थान्तरम्; तदानुमानस्य न किञ्चित्कृतमित्यस्या-  
भावः । अनुमानस्योत्पत्तिरिति सम्बन्धासिद्धिश्चानुपकारात् ।  
उपकारे वाऽनवस्था । अथानर्थान्तरंभूता क्रियते; तदानुमानमेव  
तेन कृतं स्यात् । तथा चानुमानं लिङ्गं लिङ्गजन्यत्वादुत्तरलिङ्गक्ष-  
णवत् । न च प्राक्तनानुमानोपादानजन्यत्वान्नानुमानं लिङ्गम् ।  
१५ यत्तत्तदप्यनुमानमन्यतो लिङ्गाच्चेत्तर्हि तदैव्यनुमानं लिङ्गं तज्जन्य-  
त्वादुत्तरलिङ्गक्षणवदिति तदवस्थं चोद्यम् । उत्तरमपि तदेवेति  
चेत्, अनवस्था स्यात् । अथ तथैवाप्रतीतेर्लिङ्गजन्यत्वाविशेषे किञ्चि-  
लिङ्गमपरमनुमानम्; तर्हि ज्ञानजन्यत्वाविशेषेपि किञ्चिज्ज्ञानमप-  
रोऽर्थ इति किञ्च स्यात् ? तथा च 'अर्थो ज्ञानं ज्ञानकार्यत्वादुत्तर-  
२० ज्ञानवत्' इत्युक्तम् । न च गृहीतिविधीनादर्थस्य ग्राह्यतेर्न्यते;  
स्वरूपप्रतिनियमात्तदभ्युपगमात् । यथैव ह्येकसामग्र्यधीनानां  
रूपोदीनां चक्षुरादीनां समसमयेऽपि स्वरूपप्रतिनियमादुपौदाने-  
तैरेत्वव्यवस्था, तथार्थज्ञानयोर्ग्राह्यतैरेत्वव्यवस्था च भविष्यति ।

नैनु र्यया प्रत्यासत्तया ज्ञानमात्मानं विषयीकरोति तथैव चेदर्थं

१ लिङ्गेन । २ वा (पठि षष्ठ्यन्तान्मत्तुलित्वः) (१) । ३ अनुमानस्य । ४ लिङ्गा-  
नुमानयोः । ५ परेण भवता । ६ परेण । ७ लिङ्गेन । ८ उत्पत्त्यन्तरान्वेषणात् ।  
९ अभिज्ञा । १० लिङ्गेन । ११ ननु प्राक्तनमनुमानं लिङ्गादुत्पद्यते । १२ प्राक्तनम् ।  
१३ लिङ्गतया अनुमानतया । १४ अनुमानस्य । १५ उत्तरक्षणं । १६ किञ्च ।  
१७ परिच्छिन्नि । १८ कारणात् । १९ जनैः । २० अर्थग्राह्यतास्वरूपस्य प्रति-  
नियतत्वात् । २१ पूर्वक्षण । २२ उत्तर । २३ उत्तररूपरसयोः उत्तरचक्षुर्ज्ञानयोः ।  
२४ सदकारिकारण । २५ ग्राहक । २६ यदवगासते तज्ज्ञानमिलनानुमानस्य विपक्षे  
नाधकं प्रमाणम् । २७ शक्या ।

१ “ननु यया प्रत्यासत्तया ज्ञानमात्मानं विषयीकरोति तथैव चेदर्थं तर्हि तयोदै-  
क्यम्...अथान्यया ग्राहिं स्वभावद्वयापत्तिर्ज्ञानस्य भवेत्, तदपि स्वभावद्वयं यद्यपरेण

तयोरैक्यम् । न ह्येकस्वभाववेद्यमनेकं युक्तमन्यथैकमेव न किञ्चित्स्यात् । अथान्यथा; स्वभावद्वयापत्तिर्ज्ञानस्य भवेत् । तदपि स्वभावद्वयं यद्यपरेण स्वभावद्वयेनाधिगच्छति तदाऽनवस्था तद्वेदनेष्यपरस्वभावद्वयापेक्षणात् । ततः स्वरूपमात्रग्राह्येव ज्ञानं नार्थग्राहिः इत्यप्यसमीचीनम् ; स्वार्थग्रहणैकस्वभावत्वाद्विज्ञानस्य । स्वभाव-<sup>५</sup> तद्वत्पक्षोपक्षितदोषपरिहारश्च स्वसंवेदनसिद्धौ भविष्यतीत्यलमिति प्रसङ्गेन ।

कथञ्चैववादिनो रूपीदेः सजातीयैतरकर्तृत्वम् तत्राप्यस्य समानत्वात् ? तथा हि—रूपादिकं लिङ्गं वा यथा प्रत्यासत्त्या सजातीयक्षेपं जनयति तथैव चेद्रसादिकमनुमानं वा; तर्हि तैयो-<sup>१०</sup> रैक्यमित्यन्यैतरदेव स्यात् । अथान्यथा; तर्हि रूपीदेरेकस्य स्वभावद्वयमायातं तत्र चानवस्था परापरस्वभावद्वयकल्पनात् । न खलु येन स्वभावेन रूपादिकैमेकां शक्तिं विभर्ति तेनैवापरां तैयोरैक्यप्रसङ्गात् । अथ रूपादिकैमेकस्वभावमपि भिन्नस्वभावं कार्यद्वयं कुर्यात्तत्करणैकस्वभावत्वात् ; तर्हि ज्ञानमप्येकस्वभावं स्वार्थयोः<sup>१५</sup> सङ्करव्यतिकरव्यतिरेकेण ग्राहकमस्तु तद्ग्रहणैकस्वभावत्वात् । ननु व्यवहारेण कार्यकौरणभावो न परमार्थतत्तेनैवमदोषः ; तर्हि तेनैवाहमहमिकया प्रतीयमानेन ज्ञानेन नीलैर्देर्भ्रैर्हणसिद्धेः कथमसिद्धः स्वैतोऽवभासमानत्वलक्षणो हेतुर्न स्यात् ?

१ इन्द्रः । २ स्वार्थग्रहण । ३ ज्ञान । ४ धन्यमननयसा च । ५ ज्ञानान्तरप्रत्यक्षपक्षविक्षेपणान्ते । ६ ज्ञान । ७ ज्ञानाद्वैतपक्षे दोषपरिहारविक्षेपेण । ८ स्वभावनवस्था भुवाणस्य । ९ रसादिलिङ्गं च (१) । १० स्वभावीयं जनयन्विजातीयं जनयेत् (१) । ११ उत्तररूपमुत्तरलिङ्गं च । १२ जनवत्त्वादितोषस्य । १३ न्यायस्य । १४ पूर्ण । १५ द्रुमादि । १६ पूर्ण । १७ स्वभावेन । १८ शक्त्या । १९ उत्तर । २० रूपलिङ्गं च । २१ विजातीयम् । २२ विजातीयं । २३ रूपरसबोद्धिज्ञानमानयोर्वा । २४ रूपं वा रसो वा लिङ्गं वा अनुमानं वा स्यात् । २५ लिङ्गस्य । २६ कर्तृ । २७ अन्यथा । २८ लिङ्गं च । २९ रूपादेः । ३० ज्ञानस्य । ३१ रूपादेः । ३२ उपलक्षणात् । ३३ साध्यसाधनभावादि । ३४ कारणेन । ३५ पदार्थस्य । ३६ कृति । ३७ ज्ञानात् ( ज्ञानेन ) प्रकाशमानत्वात् ।

स्वभावद्वयेनाधिगच्छति तदानवस्था...; तदरमणीयश्च; स्वार्थग्रहणोभयस्वभावत्वाद्विज्ञानस्य ।”

सा० रसा० पृ० १६५ ।

1 “कथञ्चैववादिनो रूपादेर्लिङ्गस्य वा सजातीयैतरकर्तृत्वं तत्राप्यस्य पर्वण्ययोगस्य समानत्वात् । तथाहि—रूपादिकं लिङ्गं वा यथा प्रत्यासत्त्या सजातीयक्षेपं जनयति तथैव चेद्रसादिकमनुमानं वा तर्हि तयोरैक्यमित्यन्यैतरदेव स्यात् । अथान्यथा तर्हि रूपादेरेकस्य स्वभावद्वयमायातं तत्र चानवस्था ।”

सा० रसा० पृ० १६५ ।

न चैवंवादिनः स्वरूपस्य स्वतोऽवंगतिर्घटते; समकालस्यास्य प्रतिपत्तावर्थवत् प्रैर्लङ्घात् । न च स्वरूपस्य ज्ञानतादात्म्यार्थाय दोषः; तादात्म्येऽपि समानेतरकालविकल्पानतिवृत्तेः । ननु ज्ञानमेव स्वरूपम्, तर्कथं तत्र भेदभावी विकल्पोऽवतरतीति चेत् ? कुत ५ ऐतत् ? तथा प्रतितीक्ष्णत्वं इयं यद्यप्रमाणं कथमतस्तत्सिद्धिरिति प्रैर्लङ्घात् ? प्रमाणं चेत् ; तर्हि स्वपरग्रहणस्वरूपताप्यस्य तथैवास्त्वलं तत्रापि तद्विकल्पकल्पनया प्रैत्यक्षविरोधात् । तत्र स्वतोऽवमा- समानत्वं हेतुरसिद्धेत्वात् ।

नापि परैतो बौधसिद्धत्वात् । न खलु सौगतः कस्यचित्परतोऽ- १० वभासमानत्वमिच्छति । “नान्योऽनुभूतोऽस्ति तस्या नानु- भवोपरः” [प्रमाणवा० ३।३२७] ईदृशमिधानात् । कैथं च सौध्यसा-

१ समकालो भिन्नकालो वायौ न ग्राह्य इत्येवं वादिनो योगाचारस्य । २ ज्ञानस्य । ३ ज्ञानात् । ४ परिच्छिपिः । ५ देशान्तरसमपि स्वरूपं गृहीयात्समकालत्वे- षडुत्पत्तिर्लक्षणसम्बन्धाभावात् । ६ देशान्तरसमपि स्वरूपं गृहीयात्समकालत्वात् । ७ दूषणम् । ८ अवयवव्यसङ्गलक्षणः । ९ भिन्न । १० अनतिक्रमणम् । ११ अपि न कुतोऽपि । १२ ज्ञानस्वरूपे । १३ प्रमाणात् । १४ ज्ञानमेव स्वरूपं । १५ ज्ञानस्य स्वरूपतया । १६ ज्ञानमेव स्वरूपसिद्धिः । १७ संशयादेरपि तत्सिद्धिः । १८ ज्ञानस्य । १९ अवयवग्रहणे । २० समानेतरकाल इत्यादि । २१ अन्यथा । २२ जैनस्य । २३ ज्ञानात् । २४ योगाचार । २५ अवयवः । २६ ग्राह्यः । २७ ग्राहकः । २८ ग्राह्यग्राहकवैभूत्यात्स्वरूपं सैव प्रकाशते । ( इति उत्तरार्द्धं कोकस्य ) । २९ सौगतीः परतः प्रतिमात्तानन्त्युपगमे । ३० किञ्च ।

1 “नान्योऽनुभूतोऽस्ति तस्या नानुभवोऽपरः ।

तस्यापि तुल्यबोद्धत्वात् स्वरूपं सैव प्रकाशते ॥ प्रमाणवा० ३।३२७ । “ब्रूया योऽनुभूयते स नास्ति परः, यथा अन्योऽनुभूतो नास्ति तथा निवेदितम् । तस्यास्तर्हि परोऽनुभवो बुद्धेरस्तु; न; तत्रापि ग्राह्यग्राहकलक्षणभावः । पर इति सवेदनस्वरूपेऽवसिर्त्तं कार्यं परस्मानुभवः साक्षात्करणादिकं प्रत्याख्यातम् । तत्सवेदनानु- भवेऽपि च तयोरेकत्वमेव स्यात्, तथा च स्वरूपं सैव प्रकाशते न ततः पर इति स्थितम् ।”

प्रमाणवार्त्तिकालंकार ।

2 “नच प्रकाशनलक्षणस्य हेतोः ज्ञानत्वेन व्याप्तिसिद्धिर्यतः स्वरूपमात्रपर्ववसिर्त्तं ज्ञानं सर्वव्यवसायनं ज्ञान ( नञ् ) व्याप्तमिति नाभिगन्तुं समर्थम् । नच सकलसम्ब- न्धप्रतिपत्तौ सम्बन्धप्रतिपत्तिः । चर्कं च—

द्विष्टसम्बन्धसंविधिनैकरूपप्रवेदनात् ।

इयत्स्वरूपग्रहणे सति सम्बन्धवेदनम् ॥”

सन्ध्या० टी० पृ० ४८३ ।

‘घनयोर्व्याप्तिः सिद्धा ? यतो ‘यद्वभासते तज्ज्ञानम्’ इत्यादि सूक्तं स्यात् । न खलु स्वरूपमार्त्रपर्यवसितं ज्ञानं ‘निखिलमवभासमानत्वं ज्ञानत्वव्याप्तम्’ इत्यधिगन्तुं समर्थम् [ न चाखिलसम्बन्धप्रतिपत्तौ सम्बन्धप्रतिपत्तिः । “द्विष्टसम्बन्धसंविधिः” ]

इत्याद्यभिधानात् ] न च विवक्षितं ज्ञानं ज्ञानत्वमवभासमानत्वं चार्त्तमन्येव प्रतिपद्य तयोर्व्याप्तिमधिगच्छतीत्यभिधीतव्यम् ; तत्रैवानुमानप्रवृत्तिप्रसङ्गात् । तत्र च तत्प्रवृत्तेर्वैयर्थ्यं साध्यस्याध्यक्षेण सिद्धत्वात् । अथ सकलं ज्ञानमात्मन्यनयोर्व्याप्तिं प्रत्येतीत्युच्यते ; ननु सकलज्ञानाद्यैवे कथमेवं वादिना प्रत्येतुं शक्यम् ? न चासिद्धव्याप्तिकलिकप्रभवादनुमानात्तथागतस्य स्वमतसिद्धिः ; परंस्यापि तथैवाभूतार्त्तकार्याद्यनुमानादीश्वराद्यभिमतसाध्यसिद्धिप्रसङ्गात् । न चानयोः कुतश्चित् प्रमाणाद्व्याप्तिः प्रसिद्धा ; ज्ञानैव जडस्यैपि परतो ग्रहणसिद्ध्या हेतोरनैकान्तिकत्वानुषङ्गात् ।

यदप्युक्तम्—जडस्य प्रतिभासायोगादिति, तत्राप्यप्रतिपन्नस्यास्य प्रतिभासायोगः, प्रतिपन्नस्य वा ? न तावदप्रतिपन्नस्यासौ १५

१ निश्चितम् । २ शब्दम् । ३ सम्बन्धिनोरवभासमानत्वज्ञानत्वयोः । ४ नैकरूपप्रवेदनात् । इयोः स्वरूपग्रहणे सति सम्बन्धवेदनात् । ५ प्रत्यक्षमनुमानं वा । ६ स्वसिद्धेव । ७ अवभासमानत्वज्ञानत्वयोः । ८ परेण । ९ अन्यथा । १० ज्ञानस्य । ११ जानाति । १२ परेण । १३ अपरिज्ञाने ( सति ) । १४ सकलं ज्ञानमिन्द्रियादिना । १५ नीलादीना स्वरूपतासिद्धिः । १६ नीलादेरपि । १७ असिद्धव्याप्तिकलिक । १८ कार्यादेहेतोर्वत्प्रादनुमानात् । १९ ता हेतोः सम्बन्धि । २० मित्र । २१ अन्यथा । २२ साध्यसाधनज्ञानयोर्व्याप्तिकानेन ग्रहणम् । २३ नीलादेरप्यस्य । २४ ज्ञानात् । २५ प्रतिभासमानत्वादिस्य । २६ परेण । २७ परेण त्वया अज्ञातस्य ।

१ “तदुक्तमन्यैः—द्वयसम्बन्धसंविधिर्नैकरूपप्रवेदनात् ।...”

तत्सार्थको० पृ० ४९१ ।

२ “नच ज्ञानत्वप्रकाशनयोः साध्यसाधनयोः कुतश्चित्प्रमाणाद् व्याप्तिसिद्धिः पारमार्थिकी ; ज्ञानवज्जडस्यापि परतो ग्रहणसिद्धेरनैकान्तिकत्वप्रसङ्गे ।”

संसर्गि० टी० पृ० ४८४ ।

३ “जडस्य प्रतिभासायोगोऽप्यप्रतिपन्नस्य प्रतिपत्तुमशक्यः, शक्यत्वे वा सन्तात्वा-न्तरस्यापि स्वप्रकाशायोगः प्रतिपत्तव्यः इति तत्साध्यमानः प्रसङ्गः । तथा च परप्रतिपादनार्थं प्रकृतहेतुपन्यासो व्यर्थः । अथ प्रतिपन्नस्य जडस्य प्रकाशायोगः ; तथापि विरोधः—जडः प्रतीयते प्रकाशायोगश्च इति ।”

संसर्गि० टी० पृ० ४८४

“यदप्युच्यते—जडस्य प्रतिभासायोगादिति, तत्राप्यप्रतिपन्नस्य प्रतिभासायोगः प्रतिपन्नस्य वा ।”

स्या० रत्ना० पृ० १६५ ।

प्रत्येतुं शक्यः, अन्यथा सन्तानान्तरस्याप्रतिपन्नस्य स्वप्रतिभासा-  
योगस्यापि प्रसिद्धेस्तस्याप्यभावः । तथा च तत्प्रतिपादनार्थं  
प्रकृतहेतूपन्यासो व्यर्थः । अथ सन्तानान्तरं स्वस्य स्वप्रतिभासयोगं  
स्वयमेव प्रतिपद्यते, जडस्यापि प्रतिभासयोगं तदेव प्रत्येतीति  
५ किञ्चेज्यते ? प्रतीतेरुभयत्रापि समानत्वात् । अथाऽप्रतिपक्षेपि जडे  
विचारोत्तदयोगः, ननु तेनाप्यस्याविषयीकरणे स एव दोषो  
विचारस्तत्र न प्रवर्त्तते । 'तैत एव चात्र तदयोगप्रतिपत्तिः' इति  
विषयीकरणे वा विचारवत्प्रत्यक्षादिनोप्यस्य विषयीकरणात्प्रति-  
भासायोगोऽसिद्धः । न च प्रतिपन्नस्य जडस्य प्रतिभासायोग-  
१० प्रतिपत्तिरित्यभिधीतव्यम् ; 'जडप्रतीतिः, प्रतिभासायोगश्चास्य'  
इत्यन्योन्यविरोधात् ।

साध्यविकलञ्चायं दृष्टान्तः, नैयायिकादीनां सुखादौ ज्ञानरूप-  
त्वासिद्धेः । अस्मादेव हेतोस्तत्रापि ज्ञानरूपतासिद्धौ दृष्टान्तान्तरं  
सृज्यम् । तत्राप्येतच्चोद्ये तदन्तरान्वेषणमित्यनवस्था । नीलादेर्द-  
१५ दृष्टान्तत्वे चान्योऽन्याश्रयः—सुखादौ ज्ञानरूपतासिद्धौ नीलादेस्तन्नि-  
दर्शनात्तद्रूपतासिद्धिः, तस्यां च तन्निदर्शनात्सुखादेस्तद्रूपतासिद्धि-  
रिति । न च सुखादौ दृष्टान्तमन्तरेणापि तत्सिद्धिः, नीलादावपि  
तथैव तदापत्तेस्तत्र दृष्टान्तवचनमनर्थकमिति निग्रहाय जायेत ।

५ अर्थं सुखादेरज्ञानत्वे तैतः पीडानुग्रहौभावो भवेत् । ननु  
२० सुखाद्येव पीडानुग्रहौ, ततो मित्रौ वा ? प्रथमपक्षे—ज्ञानत्वेन  
व्याप्तौ तौ प्रतिपन्नौ, यतस्तदभावे न स्याताम् । व्यापकभावे हि

१ शिष्यादिकम् । २ सौगतौ । ३ स्वरूपेण । ४ बोधनार्थं । ५ प्रतिभास-  
मानत्वात् । ६ सा । ७ सवन्ध । ८ जानाति । ९ परेण । १० सौगतस्य  
तत्र । ११ सन्तानान्तरप्रतिभासयोगे जडप्रतिभासयोगे च । १२ प्रतिभासायोगः ।  
१३ विचारत् । १४ जडस्य निचारेण । १५ अनुमान । १६ जडस्य ।  
१७ द्वितीयविकल्पस्य । १८ असम्भव । १९ परेण । २० ज्ञान । २१ सुखादिः ।  
२२ प्रतिभासमानत्वादित्यस्मात् । २३ सुखादिष्वपि ज्ञानं भवतीति साध्यं प्रतिभास-  
मानत्वात् । दृष्टान्तेन गान्धं ज्ञान । २४ तदवभासये तत्त्वज्ञानमित्यत्रानुमाने ।  
२५ दुःख । २६ सुखानुःखात् । २७ उपकार । २८ अन्यदृष्टान्ते । २९ परेण ।

१ “नच नैयायिकादीन् प्रति सुखादर्शनात्ता सिद्धेति साध्यविकल्पा दृष्टान्तस्य...”।

संमति० टी० पृ० ४८४ ।

स्या० रत्ना० पृ० १६७ ।

२ “अथ सुखादेरज्ञानत्वे ततोऽनुग्रहाभावो भवेत्, ननु किं सुखमेवाऽनुग्रहः,  
ततः ततो मित्रम् ?...”

संमति० टी० पृ० ४८५ ।

नियमेन व्याप्याभावो भवति । अन्यथा प्राणादेः सात्मकत्वेन कैश्चिद्यास्यसिद्धावप्यात्माऽभावे स न भवेत् ततः केवलव्यतिरेकि-  
हेत्वर्गमकत्वप्रदर्शनमयुक्तम् । तच्चाद्यर्पक्षः । नापि द्वितीयो यतो  
यदि नाम सुखदुःखयोर्ज्ञानत्वाभावेः, अर्थान्तरभूतानुग्रहाद्यभावे  
किमायातम् ? न खलु यद्वदत्तस्य गौरत्वाभावे देवदत्ताभावो  
दृष्टः । ननु सुखादौ जैनस्य प्रकाशमानत्वं ज्ञानरूपतया व्याप्तं  
प्रसिद्धमेवेत्यप्यसारम् ; यतः स्वतः प्रकाशमानत्वं ज्ञानरूपतया  
व्याप्तं यत्तस्यात्र प्रसिद्धं तन्नीलीद्ययै(र्थे) नास्तीत्यसिद्धो हेतुः । यत्तु  
परतः प्रकाशमानत्वं तत्र प्रसिद्धं तत्र ज्ञानरूपतया व्याप्तम् ।  
प्रकाशमानत्वमात्रं च नीलादावुपलभ्यमानं जडत्वेनाविरुद्धत्वं १०  
नैर्कोन्ततो ज्ञानरूपतां प्रसाधयेत् ।

यदप्युक्तम्—तैमिरिकस्य द्विचन्द्रादिवत्कर्त्रादिकमविद्यमानमपि  
प्रतिभातीति, तदपि स्वमनोरथमात्रम् ; अत्र बाधकप्रमाणाभा-  
वात् । द्विचन्द्रादौ हि विपरीतार्थख्यापकस्य बाधकप्रमाणस्य

१ ज्ञानत्वेन पीठानुग्रहोर्भास्वसिद्धावपि ज्ञानाभावे पीठानुग्रहयोरभावो यदि ।  
२ उच्छ्वासदेः । ३ अन्वयवृष्टान्ते । ४ घटादौ । ५ सौगतस्य । ६ भेदात् ।  
७ तदि । ८ पीठ । ९ दूषणम् । १० दृष्टान्ते । ११ दार्शनिके । १२ सुतीपो  
विकल्पः । १३ शायमानं । १४ सर्वथा । १५ परेण । १६ पुरुषस्य । १७ सौगत ।  
१८ घटमहमात्मना नेषीति कर्त्तादौ । १९ नेदं कर्त्तादिकमिति । २० एकचन्द्र ।

१ “सम्प्रति द्वयोरेव सन्देहे अनैकान्तिकत्वं बहुमाह अनयोरेव अन्वय-व्यति-  
रेकरूपयोः सन्देहात् संशयहेतुः । उदाहरणम्—

“सात्मकं जीवच्छरीर प्राणादिमत्त्वादि ।” .... (पृ० १०५)

कलादनैकान्तिकः ।

“साध्येतरयोरतो निश्चयाभावात्”

साध्यस्य इतरस्य च निरुद्धस्य सन्दिग्धान्वयव्यतिरेकाभिप्रायाभावात् । सपक्षविपक्ष-  
योर्हि सपक्षस्य (सदसत्त्वं) सन्देहेन साध्यस्य च निरुद्धस्य सिद्धिः । नच सात्मक-  
जात्मकान्यां च परः प्रकारः सभवति । ततः प्राणादिमत्त्वात् परिमि जीवच्छरीरे संशयः  
आत्मभावाभावयोरितिनैकान्तिकः प्राणादिरिति ।”

न्यायविन्दु पृ० ११० ।

२ “यच्चेदम् ‘नीलमहं वेति’ इति ज्ञानं तैमिरिकस्य द्विचन्द्रदर्शनवद्भ्रान्तमिति;  
असदेतत् ; अवाप्यमानत्वात् । तथाहि—तैमिरिकस्य तिमिरविनाशादूर्ध्वमेकत्वज्ञाने  
सति द्विचन्द्रदर्शनं आत्ममिति प्रतिगति अनुत्पन्नतिमिरसान्वस्य, नैवं नीलमित्यादिज्ञाने  
विपरीतार्थआहकप्रमाणानुपपत्तेर्मिथ्यात्वमिति ।”

प्रश्न० व्योमवती पृ० ५३० ।

सद्भावाद्युक्तमसत्यतिमासनम्, न पुनः कर्त्रादौ; तत्र तद्विपरी-  
ताद्वैतप्रसाधकप्रमाणस्य कस्यचिदसम्भवेनाऽवाधकत्वात् । प्रति-  
पादितश्च वाध्यवाधकभावो ब्रह्माद्वैतविचारे तदलमतिप्रसङ्गेन ।  
अद्वैतप्रसाधकप्रमाणसद्भावे च द्वैतापत्तिर्नो नाद्वैतं भवेत् । प्रमाणा-  
भावे चाद्वैताप्रसिद्धिः प्रमेयप्रसिद्धेः प्रमाणसिद्धिनिवन्धनत्वात् ।  
किञ्चाद्वैतमित्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधः, पर्युदासो वा ? प्रसज्यपक्षे  
नाद्वैतसिद्धिः । प्रतिषेधमात्रपर्यवसितत्वाच्चस्य । प्रधानोपसंजन-  
भावेनाङ्गोक्तिर्भावकल्पनायामपि द्वैतप्रसङ्गः । पर्युदासपक्षेपि द्वैत-  
प्रसक्तिरेव प्रमाणप्रतिपन्नस्य द्वैतलक्षणवस्तुनः प्रतिषेधेनाऽद्वैत-  
प्रसिद्धेरभ्युपगमात् । द्वैतादद्वैतस्य व्यतिरेके च द्वैतानुपपन्न-  
एव । अव्यतिरेकेपि द्वैतप्रसक्तिरेव भिन्नोदभिन्नस्याभेदे(र्दे)विरो-  
धात् ॥ ७ ॥

१ पक्षत्वं । २ कर्त्रादेः । ३ कैनेन मया । ४ वाध्यवाधकभावसन्धनेन ।  
५ किञ्च । ६ प्रमाणमेकमद्वैतमेकं चेति द्वैतापत्तिः । ७ प्रसक्तस्य प्रतिषेधः प्रसज्यः ।  
८ सद्ब्रह्मार्थो पर्युदासः । ९ द्वैतविषयस्य प्रधानभावेन अद्वैतविषयप्रधानत्वेन ।  
१० गौण । ११ कृत्वा । १२ विशेषण । १३ विशेष्य । १४ इदं विशेष्यनिर्दिष्टं च  
विशेषणमित्यनेन प्रकारेण द्वैतप्रसङ्गः । १५ भिन्नत्वे । १६ किञ्च । १७ द्वैतात् ।  
१८ अद्वैतस्य । अव्यतिरेकस्य । १९ पक्षत्वे ।

१ हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद् द्वैतं स्वाहेतुताव्ययोः ।

हेतुना चेद्विना सिद्धिर्द्वैतं बाह्यागतो न किञ् ॥”

आप्तमीमांसा का० २६ । अष्टसह० पृ० १६० ।

“अद्वैतप्रतिपादकस्य प्रमाणस्य सद्भावे द्वैतापत्तिर्नो नाद्वैतम् । प्रमाणाभावे अद्वैता-  
सिद्धिः ।”

संमति० टी० पृ० ४९८ ।

२ “अद्वैतं न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना ।

संश्लिप्तः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते कश्चिद् ॥”

आप्तमीमांसा का० २७ । अष्टसह० पृ० १६१ ।

“किञ्च, अद्वैतमित्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधः, पर्युदासो वा ?...द्वैतादद्वैतस्य व्यतिरेके  
च द्वैतप्रसक्तिरेव, परस्परन्यायवृत्तलरूपाभ्यावृत्तात्मकत्वे तस्य हिरूपताप्रसक्तेः । अव्यतिरेके  
पुनर्द्वैतप्रसक्तिः ।”

संमति० टी० पृ० ४९८ ।

३ अस्य च निशानाद्वैतवादस्य विविधरीत्या खण्डनं निम्नशब्देषु द्रष्टव्यम्—  
ज्ञानरभा० बृहती, पञ्चिका, शास्त्रदीपिका १।१।५। मीमांसाश्लो० निरालम्बनवाद ।  
योगसू०, न्यासभा०, तत्त्ववै० ४।१४। ब्रह्मसू० श्लो० आ० मानवी २।२।२५।  
विधिवि० पृ० २५४ । न्यायमं० पृ० ५२६ । आप्तमी०, अष्टश०, अष्टसह०  
पृ० २४२ । न्यायकुमु० पृ० ११९ । यत्तत्त्व० पृ० ४५ । तत्त्वार्थश्लो० पृ० ३६ ।  
संमतिटी० पृ० ३४९ । स्या० रत्ना० पृ० १४९ । स्या० मं० का० २६ ।

एतेन “चित्रप्रतिभासाप्येकैव बुद्धिर्बाह्यचित्रविलक्षणत्वात्, शक्यविवेचनं हि बाह्यं चित्रमशक्यविवेचनास्तु बुद्धेर्नीलादय आकाराः” इत्यादिना चित्राद्वैतमप्युपवर्णयन्नप्राकृतः, अशक्य-विवेचनत्वस्यासिद्धेः । तद्धि बुद्धेरभिन्नत्वं वा, सहोत्पन्नानां नीलादीनां बुद्ध्यन्तरपरिहारेण विवक्षितबुद्धौवानुभवो वा, मेदेन ५ विवेचनाभावमीत्रं वा प्रकारान्तरासम्भवात् ? तत्राद्यपक्षे साध्य-समो हेतुः, तथाहि-यदुक्तं भवति-‘बुद्धेरभिन्ना नीलादयस्ततोऽ-भिन्नत्वात्’ तदेवोक्तं भवति ‘अशक्यविवेचनत्वात्’ इति । द्विती-यपक्षेऽप्यनैकान्तिको हेतुः, सचराचरस्य जगतः सुगतज्ञानेन सहोत्पन्नस्य बुद्ध्यन्तरपरिहारेण तज्ज्ञानस्यैवं ग्राह्यस्य तेन सहै- १० कत्वाभावात् । एकत्वे वा संसारी सुर्गतः संसारिणो वा सर्वं सुगता भवेयुः, संसारेर्तरूपता चैकस्य ब्रह्मवादं समर्थयते । अथ सुगतसत्ताकालेऽन्यस्योत्पत्तिरेव नेत्येते तत्कथमयं दोषः ? नन्वेवं “प्रमाणभूताय” [ प्रमाणसमु० १।१ ] इत्यादिना केनोक्तौ स्तूयते ? कथं चापराधीनाऽसौ येनोच्यते—

१५

“तिष्ठन्त्येव पराधीना येषां च महती कृपा” [ प्रमाणवा० २।१९९ ] इत्यादि । न खलु वन्द्यासुताधीनः कश्चिन्नवितुमर्हति ।

१ ज्ञानाद्वैतनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । २ नानाप्रकार । ३ पूर्ववादे ज्ञानगतानां नीलाद्याकाराणां भ्रान्तत्वम् । अत्र (चित्राद्वैतवादे) ज्ञानगताकाराणां सत्यत्वम् । ४ विसृष्टः । ५ असिद्धो देवुरित्युक्ते सलाह । ६ षटपदकान्मादि । ७ इव बुद्धिरली नीलादय आकारा इति विभागः कर्तुं न शक्यते । ८ योगाचारः । ९ नीलादीनाम् । १० बुद्ध्या सह प्रादुर्गतानाम् । ११ स्वरूपम् । १२ साध्येन समं हेतुं दर्शयति । १३ साध्यमेवोक्तं भवति । १४ साध्यमेवोक्तं भवति । १५ नान्यज्ञानस्य । १६ अय-दभिन्नत्वात् । १७ सुगताभिन्नत्वात्सुगतस्वरूपवत् । १८ असंसार । १९ सुगतस्य । २० परेण मया । २१ पुरुषेण । २२ भवता । २३ सुगताः । २४ (निर्वाणोपि- (नेऽपि) परमाप्तेः (परे आप्ते) कृपादीकृतचेतस इत्यस्योपरमर्द्धं ज्ञेयम्) । २५ ना ।

१ “किमिदमशक्यविवेचनत्वं नाय-ज्ञानाभिन्नत्वम्, सहोत्पन्नानां नीलादीनां ज्ञानान्तरपरिहारेण तज्ज्ञानेनैवानुसवः, मेदेन विवेचनाभावमीत्रं वा ?”

न्यायकुसु० पृ० १२७ ।

२

“अकल्पकत्वासङ्ख्येयभावनापरिवर्द्धिताः ।

तिष्ठन्त्येव पराधीना येषां तु महती कृपा ॥”

अभिसमबार्त्तकारालोक पृ० १३४ ।

“तदुक्तम्-निर्वाणेऽपि परे आप्ते कृपादीकृतचेतसाम् ।

तिष्ठन्त्येव पराधीना येषां तु महती कृपा ॥” न्यायकुसु० पृ० ५ ।



मार्गोपदेशोपि व्यर्थो विनेयाऽऽसत्त्वात् । नापि ततः कश्चित्सौगतीं गतिं गन्तुमर्हति । सुगतसत्ताकालेऽन्यस्यानुत्पत्तेस्तत्कालश्चात्यन्तिक इति । बुद्ध्यन्तरपरिहारेण विवक्षितबुद्ध्यैवानुभवश्चासिद्धः, नीलादीनां बुद्ध्यन्तरेणाप्यनुभवात् । ज्ञानरूपत्वात्तत्सिद्धौ चान्यो-  
 ५ न्याश्रयः—सिद्धे हि ज्ञानरूपत्वे नीलादीनां बुद्ध्यन्तरपरिहारेण विवक्षितबुद्ध्यैवानुभवः सिद्धेत्, तत्सिद्धौ च ज्ञानरूपत्वमिति । भेदेन विवेचनाभावमात्रमप्यसिद्धम्, बहिरन्तर्देशसम्बन्धित्वेन नीलतज्ज्ञानयोर्विवेचनप्रसिद्धेः । एकस्यांशमेण नीलाद्यनेकाकारव्यापित्ववत् क्रमेणाप्यनेकसुखाद्याकारव्यापित्वसिद्धेः सिद्धः  
 १० कथञ्चिदक्षणीको नीलाद्यनेकार्थव्यवस्थापकः प्रमातेत्यद्वैताय इत्थो जलाञ्जलिः ॥ छ ॥

ननु चाक्रमेणाप्येकस्यानेकाकारव्यापित्वं नेष्यते ।

“किं स्यात्सौ चित्रतैकस्यां न स्यात्तस्यां मतावपि ।

यदीदं स्वयमर्थभ्यो रोचते तत्र के वयम् ॥”

१५

[ प्रमाणवा० ३२१० ]

१ अन्योत्पत्तिरहिता (१) । २ ससारिणामेवोत्पत्तिरहितः (१) । ३ किञ्च । ४ एकस्य बोधस्य । ५ चित्राद्वैतवादिनः । ६ युगपत् । ७ आहकः । ८ पुरुषः । ९ जैन प्रति भाष्यमिहो ब्रूते । १० भावस्य । ११ परेण मया भाष्यमिह । १२ मम दूषणं किं स्यात् । १३ चित्रत्वेनाभिप्रेताया मती एकस्या सा चित्रता न स्यात्तदा किं स्यान्मम दूषणम् । १४ प्रसिद्धा । १५ चित्रत्वेनाभिप्रेताया । १६ बुद्धौ । १७ चित्रत्वम् । १८ ज्ञानेभ्यः ।

१ “अशक्यविवेचनत्वं साधनमसिद्धमुक्तम्—नीलतद्देवनयोः अशक्यविवेचनत्वासिद्धेः, अन्तर्बहिर्देशतया विवेकेन प्रतीतेः ।” अष्टसह० पृ० २५४ ।

२ “अत्र देवेन्द्रन्याख्या—यदि नमैकस्यां मती न सा चित्रता भावतः स्यात् । किं स्यात् को दोषः स्यात् । तथा च भावतश्चित्रया मत्या भावा अपि चित्रा सिद्ध्यन्ति” तद्वदेव च सत्ता भविष्यन्तीति प्रष्टुमिष्टायः । आख्यकार आह—न स्यात्तस्यां मतावपि इति । व्याहृतनेतृत्वं—एका चित्रा च इति । एकत्वे हि सत्यनानारूपापि वस्तुतो नानाकारतया प्रत्यक्षभासते न पुनर्भावतस्ते तस्य आकाशः सन्तीति बलादेष्टव्यम् । एकत्वहानिप्रसंगात् । नहि नानात्वैकत्वयोः स्थितेरन्यः कश्चिदाश्रयोऽन्यत्र भाविकान्यामाकारभेदाभेदाभ्याम् । तत्र यदि बुद्धिर्भावतो नानाकारैका चेष्ट्यते तदा सकलं विश्वमप्येकं द्रव्यं स्यात्, तथाच सहोत्पत्त्यादिदोषः । तस्यानैकाऽनेकाकारा । किन्तु यदीदं स्वयमर्थानां रोचते अतद्रूपाणामपि सता यदेतत्तद्रूपेण प्रस्थानं तदेतदस्तु यत्र स्थितं तत्त्वमिति । तत्र के वयं निषेद्धारः ? एवमस्तु इत्यनुमन्यत इति ।”

सा० रत्ना० पृ० १८० ।

इत्यभिधानात् । तत्कथं तद्दृष्टान्तावष्टम्भेन क्रमेणाप्येकस्या-  
नेकाकारव्यापित्वं साध्येते? तदप्यसमीचीनम्; एवमतिसूक्ष्मे-  
र्क्षिकया - विचारयतो माध्यमिकस्य सकलशून्यतानुषङ्गात् ।  
तथा हि-नीले प्रवृत्तं ज्ञानं पीतादौ न प्रवर्तते इति पीतादेः  
सन्तानान्तरवदभावः । पीतादौ च प्रवृत्तं तन्नीले न प्रवर्तते ५  
इत्यस्याप्यभावस्तद्वत् । नीलकुचलयसूक्ष्मांशे च प्रवृत्तिमज्ज्ञानं  
नेतरांशनिरीक्षणे क्षममिति तदज्ञानामप्यभावः । संविदितांशस्य  
चावैशिष्ट्यस्य स्वयमनंशस्याप्रतिभासनात्सर्वाभावः । नीलकुचल-  
यादिसंवेदनस्य स्वयमनुभववत्सत्त्वे च अन्यैरनुभवात्सन्तानान्तरा-  
णामपि तदस्तु । अथान्यैरनुभूयमानसंवेदनस्य संज्ञावासिद्धेस्तेषां-१०  
मभावः, तर्हि तन्निषेधासिद्धेस्तेषां सङ्भावः किन्न स्यात्? अथ  
तत्संवेदनस्य सङ्ज्ञावासिद्धिरेवामोषसिद्धिः, नन्वेवं तन्निषेधा-  
सिद्धिरेव तत्सङ्ज्ञावसिद्धिरस्तु । भौवाभावाभ्यां परसंवेदनसन्वेदे  
चैकान्ततः सन्तानान्तरप्रतिषेधासिद्धेः । कथं च प्रामारामादि-  
प्रतिभासे प्रतीतिभूधरशिखरारूढे सकलशून्यताभ्युपगमः प्रेक्षा-१५  
वतां युक्तः प्रतीतिबाधनात्? दृष्टहानेरदृष्टकल्पनायाश्चानुषङ्गात् ।

किञ्च, अखिलशून्यतायाः प्रमाणतः प्रसिद्धिः, प्रमाणमन्तरेण

१ दोषस्य । २ यत्ता केनेन । ३ चित्रकज्ञानस्य नानात्वसमर्थनप्रकारेण ।  
४ शानेन । ५ उद्धृतस्य । ६ नीलकुचलयस्य । ७ चित्र । ८ स्वेनेन । ९ नीलकुचल-  
यस्य । १० सन्तानान्तरैः । ११ स्वयम् । १२ नो माध्यमिक । १३ सन्तानान्तरैः ।  
१४ क्षयम् । १५ नीलकुचलयसंवेदनकादिनां प्रति । १६ साधकप्रमाणाभावात् ।  
१७ बाधकप्रमाणाभावात् । १८ नो माध्यमिक । १९ अन्यैरनुभूयमानसंवेदनस्य ।  
२० माध्यमिको भूते—अन्यसंवेदनसङ्ज्ञाने साधकं प्रमाणं नोपन्यस्तं भवद्विः ।  
असाभिश्च बाधकं प्रमाणं नोपन्यस्तमिति परसंवेदनसन्देहः (इत्युक्ते जैनः ग्राह) ।  
२१ प्रामादि । २२ सकलशून्यत्वस्य ।

१ “नन्वेवं नीलवेदनस्यापि प्रतिपरमाणुवेदात् नीलाणुसंवेदनैः परस्पर मित्रैर्भे-  
दितव्यं तत्र एकलीलपरमाणुसंवेदनस्याप्येवं वेद्यवेदकसविदाकारभेदात् त्रितयेन भवि-  
तव्यम् । वेद्याकापदिसंवेदनत्रयस्यापि प्रत्येकपरस्परवेद्यादिसंवेदनत्रयेण इति परा-  
परवेदनत्रयव्यपनादानवस्थानाच्च कचिदेकवेदनसिद्धिः सन्निवृत्तिविधिनाम् ।”

अष्टसह० पृ० ७७ । न्यायकुसु० पृ० १३४ ।

२ “प्रमाणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् । न्यायसू० ४।२।३०। “एवं च सति सर्वं  
नास्तीति नोपपद्यते । कस्मात्? प्रमाणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम्, यदि सर्वं नास्तीति  
प्रमाणानुपपद्यते; ‘सर्वं नास्ति’ इत्येतद्व्यावृत्त्ये । अथ प्रमाणं नोपपद्यते; सर्वं नास्तीत्यस्य  
कथं सिद्धिः? अथ प्रमाणमन्तरेण सिद्धिः; सर्वमस्ति इत्यस्य कथं सिद्धिः?”  
प्र० क० भा० ९

वा? प्रथमपक्षे कथं सकलशून्यता वास्तवस्य तत्सद्भावावेदक-  
प्रमाणस्य सद्भावात्? द्वितीयपक्षे तु कथं तस्याः सिद्धिः प्रमेय-  
सिद्धेः प्रमाणसिद्धिनिवन्धनत्वात्? तदेवं सुनिश्चितासम्भवद्वाच-  
कप्रमाणत्वात् प्रतीतिसिद्धमर्थव्यवसायात्मकत्वं ज्ञानस्याभ्युप-  
५ गन्तव्यम्, अन्यथाऽप्रामाणिकत्वप्रसङ्गः स्यात् ॥ छ ॥

अथेदानीं प्राक् प्रतिज्ञातं स्वव्यवसायात्मकत्वं ज्ञानविशेषणं  
व्याचिन्व्यासुः खोन्मुखतयेत्याद्याह—

**खोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ॥ ६ ॥**

स्वस्य विज्ञानस्वरूपस्योन्मुखतोऽल्लेखिता तथा इतीत्यभावे मा ।  
१० प्रतिभासनं संवेदनमनुभवनं स्वस्य प्रमाणत्वेनाभिप्रेतविज्ञानस्वरू-  
पस्य सम्बन्धी व्यवसायः ।

स्वव्यवसायसमर्थनार्थमर्थव्यवसायं स्वैपरप्रसिद्धम् 'अर्थस्य'  
इत्यादिना दृष्टान्तीकरोति ।

**अर्थस्येव तदुन्मुखतया ॥ ७ ॥**

१५ इवशब्दो यथार्थे । यथाऽर्थस्य घटादेस्तदुन्मुखतया खोल्लेखि-  
तया प्रतिभासनं व्यवसायः तथा ज्ञानस्यापीति ।

खोन्मतम्—न ज्ञानं स्वव्यवसायात्मकमचेतनत्वात् घटादिवत् ।  
तदचेतनं प्रधानविवर्तत्वात्तद्वत् । यस्तु चेतनं तन्न प्रधानविवर्तः,  
यथात्मा; इत्यप्यसङ्गतम् । तस्यात्मविवर्तत्वेन प्रधानविवर्तत्वा-  
२० सिद्धेः, तथाहि—ज्ञानविवर्तवानात्मा दंपूर्त्वात् । यस्तु न तथा स

१ पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञानस्यार्थव्यवसायात्मकत्वे समर्थिते सति । २ व्याख्यातु-  
मिच्छुः । ३ आह्वयता । ४ तृतीया । ५ वादिप्रतिवादिप्रसिद्धम् । ६ अर्थः । ७ तत्र  
सादृश्यस्य । ८ ज्ञानम् । ९ ज्ञानस्य । १० पर्यायत्वेन । ११ ज्ञानानुमानम् ।  
१२ चेतवितृत्वात् ।

न्यायभा० ४।२।३०। प्रश्न० व्योमवती पृ० ५३२ । अष्टसह० पृ० ११५ ।  
सन्मति० टी० ४५५ । स्या० य० का० १७ । रत्नाकरावण० पृ० ३२ ।

1 “प्रकृतेर्महान् ततोऽहङ्कारः—” साख्यका० २२ ।

“तस्याः प्रकृतेर्महान् उत्पद्यते प्रथमः कश्चित् । महान् बुद्धिः सतिः प्रथा  
सवित्तिः क्वातिः चित्तिः स्मृतिरासृती हरिः हरः हिरण्यगर्भ इति पर्यायाः ।”

आठरवृत्ति, गौडपादभा० २२ । साख्यसं० पृ० ६ ।

2 “तथापरिणामवानात्मा दृष्ट (दृ) त्वात् । यस्तु ज्ञानपरिणामवान् भवति नासौ  
द्रष्टा यथा लोष्टादिः, द्रष्टा चात्मा तस्यावधानपरिणामवानिति ।” सा० रत्ना० पृ० २३४ ।

न द्रष्टा यथा घटादिः, द्रष्टा चात्मा तस्माच्चैतद्विवर्त्तवानिति । प्रधानस्य ज्ञानवत्त्वे तु तस्यैव द्रष्टृत्वानुपपन्नादात्मकल्पनानर्थक्यम् । 'चेतनोऽहम्' इत्यनुभवचैतन्यस्वभावतावच्चैतन्यो 'ज्ञाताऽहम्' इत्यनुमवाद् ज्ञानस्वभावताप्यस्तु विशेषाभावात् । ज्ञानसंसर्गात् 'ज्ञाताऽहम्' इत्यात्मनि प्रतिभासो न पुनर्ज्ञानस्वभावत्वादित्यप्य-<sup>५</sup>  
समीक्षिताभिधानम् ; चैतन्यादिस्वभावस्याप्यभावप्रसङ्गात् । चैतन्यसंसर्गाद्धि चेतनो भोक्तृत्वसंसर्गाद्भोक्तृत्वादासीन्यसंसर्गादुदासीनः शुद्धिसंसर्गाच्छुद्धो न तु स्वभावतः । प्रत्यक्षादिप्रमाणबाधोभयत्र । न खलु ज्ञानस्वभावताविकैलोऽयं कदाचनाप्यनुभूयते, तद्विकलस्यानुभवविरोधात् । १०

आत्मनो ज्ञानस्वभावंत्वेऽनित्यत्वापत्तिः प्रधानेऽपि समाना । तत्परिणामस्य व्यक्त्यनित्यत्वोपगमात् अदोषे तु, आत्मपरिणामस्यापि ज्ञानविशेषादेरनित्यत्वे को दोषः ? तस्यात्मनः कथञ्चिद्व्यतिरेके भर्तृत्वप्रसङ्गः प्रधानेऽपि समानः । व्यक्त्यव्यक्त्योरव्यतिरेकेऽपि व्यक्तमेवानित्यं परिणामत्वाच्च पुनरव्यक्तं परिणामित्वा-<sup>१५</sup>  
दित्यभ्युपगमे, अत एव ज्ञानात्मनोरव्यतिरेकेऽपि ज्ञानमेवानित्यमस्तु विशेषाभावात् । आत्मनोऽपरिणामित्वे तु प्रधानेऽपि तदस्तु ।

१ ज्ञान । २ आशङ्क्याय । ३ चैतन्यस्वभावतया अनुभवः, ज्ञानस्वभावताया अनुभव इत्यविशेषः । ४ कथं तथा हि । ५ नैवेत्य । ६ आत्मनश्चैतन्यादित्यभावाभावे ज्ञानस्वभावाभावे च । ७ आत्मा । ८ आत्मा आत्मना । ९ ज्ञानमनित्यमिति वचनात् ज्ञानस्वरूपवत् । १० महदादेः । ११ ज्ञानादेः । १२ प्रधानस्यानित्यत्वापत्तिकक्षणोद्बोधः । १३ का । १४ भवेदे । १५ आत्मनः । १६ विनश्वरत्व । १७ महदादेः । १८ प्रधानस्य ।

१ "ननु ज्ञानसंसर्गात्ज्ञाताऽहमित्यात्मनि प्रतिभासो न पुनर्ज्ञानस्वभावत्वादिति चेत् ; तदपि न्यायबाधश्च ; चैतन्यादिस्वभावस्याप्येवमभावप्रसङ्गः । चैतन्यसंसर्गाद्धि चेतनो भोक्तृत्वसंसर्गाद् भोक्ता औदासीन्यसंसर्गादुदासीनः शुद्धिसंसर्गाद् शुद्धो न तु स्वभावादित्यपि वक्तुं शक्यत एव ।"

सा० रत्ना० पृ० २३५ ।

२ "हेतुमदतिलमभ्यापि सक्रियमनेकमाभितं क्षिप्रम् ।

सावयवं परतत्र व्यक्तं विपरीतमलक्षम् ॥" सांख्यका० २० ।

"प्रधानस्य चाऽनित्याद् व्यक्तादनर्णान्तरभूतस्य नित्यता प्रतीयन् पुरुषस्यापि ज्ञानादज्ञानसादनर्णान्तरभूतस्य नित्यत्वमुपैतु सर्वथा विज्ञेयभावात् ।" आत्माप० पृ० ४१ ।

"नचात्मनः अनित्यज्ञानपरिणामात्मके अनित्यत्वापत्तिः ; प्रधानेऽपि तत्प्रसङ्गात् । व्यक्ताऽव्यक्तयोरेवेदेऽपि व्यक्तमेवाऽनित्यं परिणामत्वात् नत्वव्यक्तं परिणामित्वादित्यन्यापि समानम् ।"

न्यायकुसु० पृ० १९१ । सा० रत्ना० पृ० २३५ ।

व्यंकापेक्षया परिणामि प्रधानं न शक्त्यपेक्षया सर्वदा स्थावृ-  
त्वादित्यभिधाने तु आत्मापि तथास्तु सर्वथा विशेषाभावात्,  
अपरिणामिनोऽर्थक्रियाकारित्वासम्भवेनाग्रेसत्त्वप्रतिपादनाच्च ।  
स्वसंवेदनप्रत्यक्षाविषयत्वे चास्याः प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं  
न स्यात् । तद्व्यवस्थापकत्वं हि तदनुभवनम्, तत्कथं बुद्धेर-  
प्रत्यक्षत्वे घटेत ? आत्मान्तरबुद्धितोपि तत्प्रसङ्गात्, न चैवम् ।  
ततो बुद्धिः स्वव्यवसायात्मिका कारणान्तरनिरपेक्षतयाऽर्थ-  
व्यवस्थापकत्वात्, यत्पुनः स्वव्यवसायात्मकं न भवति न तस्यै-  
थाऽर्थव्यवस्थापकं यथाऽऽदर्शादीति । अर्थव्यवस्थितौ तस्याः  
१० पुरुषभोगोपेक्षत्वात् “बुद्ध्याध्यवर्त्तितमर्थं पुरुषश्चेतयते” [ ]  
इत्यभिधानात् । ततोऽसिद्धो हेतुरित्यपि श्रद्धामात्रम्, मेदेनानयो-  
रनुपलम्भात् । एकमेवं ह्यनुभवसिद्धं संविद्रूपं हर्षविषादाद्यनेका-  
कारं विषयव्यवस्थापकमनुभूयते, तस्यैवैते, चैतन्यं बुद्धिरध्यव-  
सायो ज्ञानम् इति पर्यायाः । न च शब्दमेदमात्राद्वास्तवोऽर्थमे-  
१५ दोऽतिप्रसङ्गात् ।

संसर्गविशेषवशाद्विप्रलब्धो बुद्धिचैतन्ययोः सन्तमपि मेदं

१ महदादि, द्वितीयपक्षे सुखादि । २ सङ्गमलमात्रा द्वितीयपक्षे सामान्यत्वा-  
शक्तिः । ३ परेण । ४ व्यक्त्यपेक्षया परिणाम्यस्तु । ५ व्यक्त्यपेक्षया परिणाम्यस्तु ।  
६ किञ्च । ७ बुद्धेः । ८ अन्यथा । ९ पुरुषान्तर । १० स्वस्य । ११ व्यक्तिलक्ष-  
णाया बुद्धेः बुद्धिलक्षणात्कारणादपर कारणान्तरमिन्द्रियम् । १२ कारणनिरपेक्षतया ।  
१३ अनुभवः स एव कारणम् । १४ बुद्धिप्रतिबिम्बितम् । १५ अनुभवति ।  
१६ कारणान्तरसापेक्षतया । १७ बुद्धेः । १८ ओ सादृश्य । १९ बुद्धिपुरुषयोः ।  
२० बुद्धानुभवयोः । २१ अन्यथा । २२ इन्द्रः सक इत्यादौ स सात् । २३ सम्बन्ध ।  
२४ वञ्चितो नरः । २५ चैतन्य पुरुषस्य रूपम् । २६ विषयानम् ।

1 “एकमेवेदं संविद्रूपं हर्षविषादाद्यनेकाकारविवर्त्तं वदन्नामः ।”

न्यायसं० पृ० ७४ । न्यायकुसु० पृ० १९३ ।

“बुद्धिरपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् । न्यायसं० १।१।१५ । प्रश्न० भा० पृ० १७१ ।

“बुद्धिरध्यवसायो हि सवित्तवेदनं तथा ।

सविचिन्त्येतना चेति सर्वं चैतन्यवाचकम् ॥” तत्त्वसं० का० ३०३ ।

सम्प्रति० टी० पृ० ३०० । सा० रत्ना० पृ० २३८ ।

2 “तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चैतनावदिव लिङ्गम् ।

शुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्त्तव्यं भवत्युदासीनः ॥ २० ॥

यसाच्चेतनसमागः पुरुषः तस्मात् तत्संयोगादचेतनं महदादि लिङ्गम् अध्यवसा-  
याभिमानसङ्कल्पालोचनादिषु वृत्तिषु चेतनावत् प्रवर्त्तते । की इष्टान्तः ? तद्यथा—

नावधारयत्ययोगोलकादिवाग्नेः । न चात्रापि मेदो नास्तीत्यभिधा-  
तव्यम् : उभयैत्र रूपस्पर्शयोर्मेदप्रतीतिः । अयोगोलकस्य हि  
वृत्तसन्निवेशः कठिनस्पर्शश्चान्योऽग्नि(त्रि)भासुरूपोष्णस्पर्शाभ्यां  
प्रमाणतः प्रतीयते । ततो यथार्जोऽन्योऽन्यानुप्रवेशलक्षणसंसर्गा-  
द्विभागप्रतिपत्त्यभावस्तथा प्रकृतेपीत्यप्यसाम्प्रतम् ; बह्वययोगोल-<sup>५</sup>  
कयोरप्यमेदात् । अयोगोलकद्रव्यं हि पूर्वाकारपरित्यागेनाग्निस-  
न्निधानाद्विशिष्टरूपस्पर्शपर्यायाधारमेकमेवोत्पन्नमनुभूयते आमा-  
कारपरित्यागेन पाकाकाराधारघटद्रव्यवत् । कथं तर्हि तस्योत्तर-  
कालं तत्पर्यायाधारताया विनाशप्रतीतिः ? इत्यप्यचोद्यम् ।  
उत्पत्त्यनन्तरमेव तद्विनाशाप्रतीतिः । किञ्चिद्व्यौपाधिकं वस्तुरूप-<sup>१०</sup>  
मुपाध्यपर्यायानन्तरमेवापैति, यथा जपापुष्पसन्निधानोपनीतस्फ-  
टिकरकिमा । किञ्चित्तु कैलौन्तरे, मनोशाङ्गनादिविषयोपनीता-  
त्मसुखादिवत् । सकलमेधानां स्वतोऽन्यतश्च निवर्त्तनप्रतीतिः ।  
तत्राद्ययोगोलकयोर्मेदः । 3088

तैद्विद्वैत्येकस्मिन् स्वरप्रकाशात्मपर्यायेऽनुभूयमाने नान्य-<sup>१५</sup>  
सद्भावाऽभ्युपगन्तव्यः, अन्यथा न कैचिदेकत्वव्यवस्था स्यात् ।  
सकलव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गश्च; अनिर्णयपरिहारेणैव वस्तुन्येक-  
स्मिन्ननुभूयमानेत्यन्यसद्भावाशङ्कया कैचित्प्रवृत्त्याद्यभावात् ।  
ततोऽवाधितैकत्वप्रतिभासादपरपरिहारेणावभासमाने वस्तुन्ये-

१ निश्चिनोति । २ अयोगोलकादयोः । ३ जैनेन अवता । ४ अयोगोलकादयोः ।  
५ वर्तुलाकारः । ६ प्रलम्बात् । ७ अयोगोलकादयोः । ८ मेद । ९ बुद्धिचैतन्ये  
(तन्मयोः) । १० कृष्णत्वादिलक्षण । ११ अयोगोलकस्य । १२ कारण । १३ विनाश ।  
१४ अपगच्छति । १५ उपाध्यपाये सति । १६ अपैति । १७ लक्ष्मन्दनादि । १८  
पदार्थ । १९ परिणमन । २० चूतफलादिवत् । २१ अयोगोलकवत् । २२ बुद्धिचैतन्ये  
(तन्मयोः) । २३ स्वयम् । २४ चैतन्य । २५ परेण । २६ विषये । २७ कथम् । २८  
अद्विकण्टकादि । २९ वनितादौ । ३० अद्विकण्टकादि । ३१ विषये । ३२ निवृत्ति ।

अनुष्णाशीतो घटः शीताग्निरग्निः ससृष्टः शीतो यवति, अधिना सयुक्त उष्णो यवति,  
यवं भवदादिलिङ्गमचेतनमपि श्रुत्वा चेतनावद् भवति ।”

भाठरवृत्ति, गौडपादभा० ।

1 “बह्वययोगोलकयोरपि अन्योन्यं मेदामावात् । अयोगोलकद्रव्यं हि पूर्वाकार-  
परित्यागेन अग्निसन्निधानाद् विशिष्टरूपस्पर्शपर्यायाधारमेकमेवोत्पन्नमनुभूयते आमा-  
कारपरित्यागेन पाकाकाराधारघटद्रव्यवत् ।”

न्यायकुसु० पृ० १९३ । सा० रत्ना० पृ० २३७ ।

कत्वव्यवस्थामिच्छतां अनुभवसिद्धकर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यनेकधर्माधारचिद्विवर्त्तस्याप्येकत्वमभ्युपगन्तव्यं तदविशेषात् । न चात्रैकत्वप्रतिभासे किञ्चिद्वाधकम्, यतो द्विचन्द्रादिप्रतिभासवन्मिथ्यात्वं स्यात् । स्वसंवेदनप्रसिद्धस्वरूपप्रकाशरूपचिद्विवर्त्तव्यतिरेकेणान्य-  
५ चैतन्यस्य कदाचनान्यप्रतीतिः । न चोपदेशमात्रात्प्रेक्षावतां निर्वाध-  
वोधाधिरूढोऽर्थोऽन्यथा प्रतिभासमानोऽन्यथापि कल्पयितुं युक्तो-  
ऽतिप्रसङ्गात् । चैतन्यस्य च स्वरूपप्रकाशात्मकत्वे किं बुद्धिसाध्यं  
येनैतौ कल्पन्ते ?

बुद्धेर्ज्ञाचेतनत्वे विषयव्यवस्थापकत्वं न स्यात् । आकारवत्त्वा-  
१० चत्वमित्यप्ययुक्तम् ; अचेतनस्याकारत्वे (रवत्त्वे) प्यर्थव्यवस्थापक-  
त्वासम्भवात्, अन्यथाऽऽदर्शादेरपि तत्प्रसङ्गाद्बुद्धिरुपतानुपपन्नः ।  
अन्तःकरणत्व-पुरुषोपभोगप्रत्यासन्नहेतुत्वलक्षणविशेषोपि मनोऽ-  
क्षादिनानैकान्तिकत्वाच्च बुद्धेर्लक्षणम् । यदि च अर्थमेकान्तः-  
‘अन्तःकरणमन्तरेणार्थमात्मा न प्रत्येति’ इति, कथं तर्हि अन्तः-  
१५ करणप्रत्यक्षता ? अन्यान्तःकरणविभवादेवेति चेत्, अनवस्था ।  
अन्यान्तःकरणविस्वमन्तरेणान्तःकरणप्रत्यक्षतायां च अर्थप्रत्यक्ष-  
तापि तथैवास्त्वलं तत्परिकल्पनया । अन्तःकरणप्रत्यक्षताभावे  
च कथं तद्वर्तमानविस्वग्रहणम् ? न ह्यादर्शाग्रहणे तद्वर्तमानप्रतिवि-  
स्वग्रहणं दृष्टम् ।

२० विषयाकारधारित्वं च बुद्धेरनुपपन्नम्, मूर्त्तस्यामूर्त्तं प्रति-

१ परेण । २ आत्मनः । ३ बोधस्य । ४ प्रमाण । ५ आगमात् । ६ बुद्धिलक्षणः ।  
७ प्रकृतेन । ८ स्वसंवेदनप्रत्यक्ष । ९ बुद्धिलक्षणः । १० प्रकृतेन प्रतिभासमानः ।  
११ बुद्धिचैतन्यमिति द्वयरूपतया । १२ अन्यथा । १३ केन कारणेन । १४ किञ्च ।  
१५ अर्थाकारवत्त्वात् । १६ जलादेः । १७ मध्ये (?) । १८ अनुभव । १९ कारणं  
बुद्धिरूपम् । २० व्यवसरूपम् । २१ अदृष्ट । २२ अतिव्याप्तेः । २३ अन्तःकरणत्व  
बुद्धेर्लक्षणमित्युक्ते मनसा व्यभिचारः । कथं मनो अन्तःकरणं भवति न च तस्य बुद्धिरूपता  
पुरुषोपभोगप्रत्यासन्नहेतुत्वं बुद्धेर्लक्षणमित्युक्ते चाक्षादिना व्यभिचारस्तथाहि-पुरुषो-  
पभोगप्रत्यासन्नहेतुरिन्द्रियं भवति न च तस्य बुद्धिरूपता । २४ किञ्च । २५ बुद्धिः ।  
२६ बुद्धिः । २७ आकारः । २८ बुद्धिः । २९ बुद्धिः । ३० अन्तःकरणगताय ।

१ “न चास्मा वास्तवचैतन्याभावे विषयव्यवस्थापनमकिञ्चिदुक्ता ।”

न्यायकुसु० पृ० १९३ । स्वा० रत्ना० पृ० २३८ ।

२ “न विषयाकारधारि ज्ञानममूर्त्तत्वात्, यदमूर्त्तं तद् विषयाकारधारि न भवति  
यथा आकाशश्च, अमूर्त्तञ्च ज्ञानमिति । तद्वद्विषये वा अमूर्त्तत्वमस्य विरुध्यते ।”

न्यायकुसु० पृ० १९३ । स्वा० रत्ना० पृ० २३८ ।

विम्बासम्भवात् । तथा हि—न विषयाकारधारिणी बुद्धिरमूर्त-  
त्वादाकाशवत्, यत्तु विषयाकारधारि तन्मूर्त्तं यथा दर्पणादि ।  
न चासिद्धो हेतुः, तस्याः सकलवादिभिरमूर्त्तत्वाभ्युपगमात् ।  
अन्यथा बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गो दर्पणादिवदेव । अतिसूक्ष्म-  
त्वाच्चदप्रत्यक्षत्वे तद्वतार्थप्रतिविम्बप्रत्यक्षतापि न स्यात् । मूर्त्तस्य ५  
चैन्द्रियादिर्द्वारेणैव संवेदनसम्भवात् । तदभावेऽसंविदितत्व-  
प्रसङ्गश्च । सर्वथा परोक्षत्वाभ्युपगमे चास्या मीमांसकमत-  
नुपङ्गः ॥ छ ॥

एतेन बाह्योप्याकारवत्त्वेन ज्ञाने प्रामाण्यं प्रतिपादयन्प्रत्या-  
ख्यातः । प्रत्यक्षविरोधार्थं, प्रत्यक्षेण विषयीकाररहितमेव ज्ञानं १०  
प्रतिपुरुषमहमहमिकया र्थेदादिग्राहकमनुभूयते न पुनर्दर्पणादि-  
वत्प्रतिविम्बाकान्तम् । विषयाकारधारित्वे र्थं ज्ञानस्यार्थं दूर-  
निकटादिव्यवहाराभावप्रसङ्गः । न खलु स्वरूपे स्वतोऽभिज्ञेऽनु-  
भूयमाने सौत्ति, न चैवम्, 'दूरे पर्वतो निकटे मदीयो बाहुः'  
इति व्यवहारस्याऽस्त्वेच्छद्रूपस्य प्रतीतेः । तैस्तद्व्यवधानुपपत्तेर्नि- १५  
राकारं तत् । न चाकाराचार्यकस्य दूरादितया तथा व्यवहारो

१ हेतोः । २ पदार्थस्य । ३ किञ्च । ४ कालोकादि । ५ किञ्च । ६ बुद्धे-  
र्विषयाकारधारित्वनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । ७ योगाचारः । ८ सौशान्तिकः (३) ।  
९ पदार्थस्य । १० किञ्च । ११ सौशान्तिकः (३) । १२ स्वसंवेदनेन । १३ अर्थः ।  
१४ पदार्थः । १५ सर्वं ज्ञानेन । १६ किञ्च । १७ दूरनिकटादिव्यवहारः ।  
१८ अस्त्वेवमिति चेत् । १९ अन्यभिचरत् । २० प्रतिपादनात् । २१ साकारत्वे  
दूरनिकटादिव्यवहारो न षट्ते यतः । २२ समर्पकस्य पदार्थस्य ।

१ "लसंविद्धिः फलज्ञास ताद्रूप्यादर्पनिश्चयः ।  
विषयाकार एवास प्रमाणं तेन नीयते ॥" प्रमाणसमु० १।१० ।

"अर्थस्यारूप्यमस्य प्रमाणम् ।" न्यायिनि० १।१९ ।

२ "दूरासन्नादिमेवेन व्यक्ताव्यक्तं न युज्यते ।  
तत्त्वादाजोक्तेदाद्येष्ट सतिधानामिधानयोः ॥  
तुल्या दृष्टिदृष्टिर्वा सङ्गोऽस्मात् कश्चन ।  
आलोक्येन न मन्वेन दृश्यतेऽतो मिदा यदि ॥"

प्रमाणवा० ३।४०८-९ ।

"लतोऽभिज्ञस्य चाकारस्य ज्ञानप्राप्तत्वे अर्थे दूरादीनादिव्यवहारो न स्यात् ।"

न्यायकुसु० ५० १६९ ।



युक्तः, दर्पणादौ तथानुपलम्भात् । दीर्घस्वार्पणवत् प्रबोधचेतसो जनकस्य जाग्रदशाचेतसो दूरत्वेनातीतत्वेन चात्रापि दूरातीता-  
दिव्यवहारानुषङ्गः स्यात् ।

किञ्च, अर्थानुपजायमानं ज्ञानं यथा तस्य नीलतामनुकरोति  
५ तथा यदि जडतामपि; तर्हि जडमेव तत् स्यादुत्तरार्थक्षणवत् ।  
अथ जडतां नानुकरोति; कथं तस्या ग्रहणम्? तदग्रहणे नीला-  
कारस्याप्यग्रहणम् अन्यथा तयोर्मदोऽनेकान्तो वा । नीलाकार-  
ग्रहणेपि च, अगृहीता जडता कथं तस्येत्युच्येत? अन्यथा गृहीतस्य  
स्तम्भस्यागृहीतं त्रैलोक्य(कथं)रूपं भवेत् । तथा त्रैलोक्यपलम्भो  
१० नैकत्वसाधनम् । अथ नीलाकारवज्जडतापि प्रतीयते किन्त्वतदा-  
कारेण ज्ञानेन, न; तर्हि नीलताप्यतदाकारेणैवानेन प्रतीयताम् ।  
तथाहि—यद्येनं स्वात्मनोऽर्थान्तरभूतं प्रतीयते तत्तेनातदाकारेण  
यथा स्तम्भादेर्जाड्यम्, प्रतीयते च स्वात्मनोऽर्थान्तरभूतं नीला-  
दिकमिति । किञ्च, नीलाकारमेव ज्ञानं जडतां प्रतिपद्यते, ज्ञानान्तरे  
१५ वा? आद्यविकल्पे नीलाकारतां स्वात्मभूततया, जडतां त्वैन्यर्थौ  
तज्जानातीत्यर्जैरतीयन्यायानुसरणं ज्ञानस्य । अथ ज्ञानान्तरेण सा

१ पुरुषस्य । २ किञ्च । ३ ज्ञानस्य । ४ पुरुषस्य । ५ परिच्छिन्तिः । ६ जडता-  
ग्रहणेपि नीलस्य ग्रहणं चेत् । ७ नीलजडयोः । ८ शुद्धमाणाऽशुद्धमाणावर्मा-  
वैकल्यादौ चेति च । ९ किञ्च । १० अगृहीतापि नीलस्य वर्मैवेत् । ११ यतः ।  
१२ ज्ञानम् । १३ किन्त्वनेकत्वसाधनम् । १४ विशेषे । १५ अनङ्गाकारेण ।  
१६ निराकारेण । १७ अनङ्गाकारेण । १८ नीलादिकं वर्मा अतदाकारेण ज्ञानेन  
प्रतीयते इति साध्यो वर्मः । तेन स्वात्मनोऽर्थान्तरभूततया प्रतीयमानत्वात् । १९ ज्ञान-  
रूपात् । २० कर्तुं । २१ नीलाकारतया । २२ अनङ्गाकारतया । २३ अस्वात्म-  
(अस्वात्म)भूततया चेत् ।

। १ “न चाकाराधायकस्य दूरातीतत्वात्तथा व्यवहारः इत्यभिधातव्यम्; जाग्र-  
चेतसो दूरातीतत्वेन प्रबोधचेतसि तथा व्यवहारप्रसङ्गात् ।” न्यायकुमु० पृ० १६९ ।

२ “अथ नीलता तदाकारतया प्रतिपद्यते जडता त्वतदाकारतया तदिदमर्थ-  
जरसीयन्यायानुसरणम् ।” न्यायकुमु० पृ० १६८ ।

“अर्थं जरसाः कामयन्ते अर्थं नेति ।”

पात० महामाष्य ४।१।७८ ।

“अर्थं मुखमार्त्तं वृक्षायाः कामयते नाङ्गानि सोऽबमर्षचरसीयन्यायः ।”

ब्रह्मसू० भा० भा० रत्नप्रभा १।२।८ ।

३ “अनेन सर्वात्मना सत्र स्वाकारावने ज्ञानस्य जडतामसत्वेऽप्युत्तरार्थक्षणवत् ।”

शास्त्रभा० टी० पृ० १५९ पू० ।

प्रतीयते; तदप्यतदाकारं यथा जडतां प्रतिपद्यते तथाद्यं(द्यं)नील-  
तामिति व्यर्थं तदाकारकल्पनम् ।

किञ्च, ज्ञानान्तरेण जडतैव केवला प्रतीयते, तद्वन्नीलतापि  
ज्ञा ? न तावदुत्तरपक्षः; अर्द्धजरतीयन्यायानुसरणप्रसङ्गात् ।  
प्रथमपक्षे तु नीलताया जडतेयमिति कुतः प्रतीतिः ? नाद्यज्ञानात्; ५  
तेन नीलाकारमात्रस्यैव प्रतीतिः । नापि द्वितीयात्तस्य जडतामात्र-  
वेषयत्वात् । अथोभयविषयं ज्ञानान्तरं परिकल्प्यते, तच्चेदुभयत्र  
साकारम्; स्वयं जडता । निराकारं चेत्, परमंतप्रसङ्गः ।  
कचित्साकारतायामुक्तदोषोऽनैवस्था ।

ननु निराकारत्वे ज्ञानस्याखिलं निखिलार्थवेदकं तस्यात् १०  
केचित्प्रत्यासत्तिविप्रकर्षाभावादित्यप्यपेशलम्; प्रतिनियतसाम-  
र्थ्येन तत्तथैवभूतमपि प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकमित्यग्रे वक्ष्यते ।  
'नीलाकारवज्जडाकारस्याद्वैदेन्द्रियार्थोकारस्य चोत्पत्तिप्रसङ्गः  
कारणत्वाविशेषात्प्रत्यासत्तिविप्रकर्षाभावाच्च' इति बोधे भवतोपि  
योग्यतैव शरणम् । १५

यच्चोच्यते-‘यथैवाहारकालादेः समानेऽपत्यं जननीपित्रोस्तदे-  
कमाकारं धत्ते नान्यस्य कस्यचित्, तथा चक्षुरादेः कारणत्वा-  
विशेषेपि नीलस्यैवाकारमनुकरोति ज्ञानं नान्यस्य’ इति, तस्मिन्-  
कारज्ञानेपि समानम् । तत्कारणत्वाविशेषेपि हि यथा प्रत्या-  
सत्यां ज्ञानं नीलमेवानुकरोति तथैव सर्वज्ञानाकारत्वाविशेषेपि २०

१ आद्यज्ञानम् । २ नीलतारहिता । ३ जडतया शुक्ता नीलता । ४ प्रथम-  
ज्ञानात् । ५ न जडतायाः । ६ ज्ञानान्तरात् । ७ न नीलतायाः । ८ जडता  
नीलता (च) विषयो यस्य । ९ सूतीयम् । १० परेण । ११ नीलताया जडताया  
च । १२ स्यात् । १३ जस्य । १४ ज्ञानस्य । १५ जैन । १६ नीलतायाम् ।  
१७ उत्पत्तिप्रसङ्गाद्वैदिकान्तरेण जडता प्रतीयते इति चेद्वदन्त्यानवस्था । १८ अर्थे ।  
१९ तादृश्यतदुत्पत्तिवृत्तिसम्बन्ध । २० तदभावे । २१ ज्ञानम् । २२ निराकारम् ।  
२३ पापादि । २४ मनः । २५ किञ्च । २६ ज्ञानस्य । २७ नीलाकारेण प्रत्या-  
सत्ति । २८ इन्द्रियादिना विप्रकर्षस्य । २९ जैनैः । ३० बौद्धस्य । ३१ सौत्रान्ति-  
केन । ३२ पित्रादेः । ३३ कारणे । ३४ अपत्यम् । ३५ यदुक्तं त्वया समाधानम् ।  
३६ ज्ञानस्य । ३७ स्वभावेन । ३८ कर्तुं । ३९ अर्थ । ४० पदार्थे ।

1

“यथैवाहारकालादेः समानेऽपत्यं जनन्मिति ।

पित्रोस्तदेकमाकारं धत्ते नान्यस्य कस्यचित् ॥”

अभाषणा० ३।३६५ ।

किञ्चिदेव प्रतिपद्यते न सर्वमिति विभागः किं नेध्यते? अन्यो-  
न्याध्यवोर्बैश्चोभयैत्र समानः । किञ्च, प्रतिनियतघटादिवत्सकलं  
वस्तु निखिलज्ञानस्य कारणं स्वाकारार्पकं वा किञ्च स्यात्? वस्तु-  
सामर्थ्यात् किञ्चिदेव कस्यचित् कारणं न सर्वं सर्वस्येति चेत्,  
५ तर्हि तत एव किञ्चित्कस्यचिद्वाह्यं ग्राहकं वा न सर्वं सर्वस्येत्यलं  
प्रतीत्यपलापेन ।

प्रमाणत्वाच्चास्य तदभावः । अर्थाकारानुकारित्वे हि तस्य प्रमेय-  
रूपतापत्तेः प्रमाणरूपताव्याघातः, न चैवम्, प्रमाणप्रमेययोर्वहि-  
रन्तर्मुखाकारतया भेदेन प्रतिभासनात् । न चाध्यक्षेण ज्ञान-  
१० मेवाऽर्थकारमनुभूयते न पुनर्वाह्योऽर्थ इत्यभिधार्तव्यम्, ज्ञानरू-  
पतया बोधस्यैवाध्यक्षे प्रतिभासनाभ्यर्थस्य । न ह्यनहङ्कारास्पद-  
त्वेनार्थस्य प्रतिभासेऽहङ्कारास्पदबोधरूपवत् ज्ञानरूपता युक्ता,  
अहङ्कारास्पदत्वेनार्थस्यापि प्रतिभासोपगमे तु 'अहं घटः' इति  
प्रतीतिप्रसङ्गः । न चान्यथाभूता प्रतीतिरन्यथाभूतमर्थं व्यवस्था-  
१५ पर्येति, नीलप्रतीतेः पीतादिव्यवस्थाप्रसङ्गात् ।

बोधस्यार्थाकारतां मुक्त्वार्थेन घटमितुमशक्तेः 'नीलस्यायं  
बोधः' इति, निराकारबोधस्य केनचित्प्रत्येयसत्तिविप्रैर्कषासिद्धेः  
सर्वार्थवर्धनप्रसङ्गात्सर्वैकवेदनापत्तेः प्रतिकर्मव्यवस्था ततो न  
स्यादित्यर्थाकारो बोधोऽभ्युपगन्तव्यः । तदुक्तम्—

१ वस्तु । २ परेण ३ नियतार्थप्रतिपत्तौ नियतस्वावसिद्धिस्तत्सिद्धौ च नियतार्थ-  
प्रतिपत्तिसिद्धिरिति, नियतनीलकारानुकरणे च सिद्धे नियतानुकरणयोग्यतासिद्धिर्ज्ञानस्य  
तत्सिद्धौ च नियतनीलकारानुकरणसिद्धिरिति । ४ नियतार्थग्रहणानुकरणयोः ।  
५ कस्यचित्पदार्थस्य । ६ किञ्च । ७ अर्थाकारानुकारित्वाभावः । ८ अस्तुमयं का  
नो ज्ञानिरिति चेत् । ९ इन्द्रिय । १० परेण । ११ अर्थस्य बोधरूपतया । १२ परेण ।  
१३ अन्यथा । १४ पदार्थेन । १५ ताद्रूप्यवस्तुपक्षिगणसम्बन्ध । १६ तदभाव ।  
१७ ईप् (सप्तमी) । १८ निराकारबोधस्य सम्बन्धात् । १९ सम्बन्ध । २० सर्वा-  
र्थानाम् । २१ घटज्ञानस्य पटो विषयो घटज्ञानस्य घट इत्यादि । २२ ज्ञेयेन अवता ।

१ "प्रमाणरूपताविरोधानुपपन्नश्च ।"

न्यायकुसु० पृ० १६८ ।

२ "तदाकार हि संवेदनमर्थं व्यवस्थापयति नीलमिति पीतज्ञेति ।"

प्रमाणवा० अलं पृ० ९ ।

"किमर्थं तर्हि सारूप्यमिष्यते प्रमाणम्? क्रियाकर्मव्यवस्थावास्तव्योके स्याद्विवक्ष-  
नम् ।" "सारूप्यतोऽन्यथा न भवति नीलस्य कर्मणः संविधिः पीतस्य वेति क्रियाकर्म-  
प्रतिनियमार्थमिष्यते ।"

प्रमाणवा० अलं पृ० ११९ ।

“अर्थेन घटयत्येनां न हि मुक्ता(क्त्वा)र्थरूपताम् ।  
तस्मात्प्रमेयोधिगतेः प्रमाणं मेयरूपता ॥” [प्रमाणवा० ३।३०५]  
इत्यनल्पतमोविलसितम्; यतो घटयति सम्बन्धयतीति विव-  
क्षितं ज्ञानम्, अर्थसम्बन्धमर्थरूपता निश्चाययतीति वा ? प्रथमप-  
क्षोऽयुक्तः; न ह्यर्थसम्बन्धो ज्ञानस्यार्थरूपतया क्रियते, किन्तु ५  
स्वकारणैस्तज्ज्ञानमर्थसम्बन्धमेवोत्पाद्यते । न खलु ज्ञानमुत्पद्य  
पश्चादर्थेन सम्बन्ध्यात् । न चैर्थरूपता ज्ञानस्यार्थे सम्बन्धकारणं  
तार्दात्म्याभावानुषङ्गात् । द्वितीयपक्षोप्यसम्भाव्यः; सम्बन्धा-  
सिद्धेः । न खलु ज्ञानगतार्थरूपता अर्थसम्बन्धेन ज्ञानेन सहचरिता  
कचिदुपलब्ध्या येनार्थसम्बन्धं ज्ञानं सा निश्चाययेत् । विशिष्टविष-१०  
योत्पौद एव च ज्ञानस्यार्थेन सम्बन्धः, न तु संश्लेषात्मकोऽस्य  
ज्ञानेऽसम्भवात् । स चेन्द्रियैरेव विधीयते इत्यर्थरूपतासाधन-  
प्रयत्नो व्यर्थैव । न चैवं सर्वत्रैव प्रसज्यते; यतो निराकारत्वेऽप्यव-  
बोधस्य इन्द्रियवृत्त्या पुरोवर्तिन्येवार्थे नियमितत्वाच्च सर्वार्थघटन-  
प्रसङ्गः । ‘कस्मात्तस्त्र तन्मियम्यते’ ? इत्यत्र वस्तुस्वभावैरुत्तरं १५  
वाच्यम् । न हि कारणानि कार्योत्पत्तिप्रतिनियमे पर्यनुयोगमर्हन्ति  
तत्र तस्य वैफल्यत् । साकारत्वेऽपि चायं पर्यनुयोगः समानः—

१ अन्यत्सन्निकर्षादिक कर्तुं । २ निर्विकल्पका बुद्धिम् । ३ यस्मात् । ४ प्रमाण  
न घटयतीति सम्बन्धः । ५ बुद्धेः । ६ फलज्ञानस्य । ७ सम्बन्धित्वेन । ८ नैया-  
यिकादिकल्पितम् । ९ ज्ञानस्यार्थरूपता । १० अर्थरूपता । ११ सा (१) । १२ कर्त्री ।  
१३ मा । १४ इन्द्रियादिभिः । १५ अर्थसम्बन्धज्ञानार्थरूपतयोः । १६ किञ्च ।  
१७ अन्यथा । १८ अर्थरूपताज्ञानयोः । १९ मा । २० पूर्वसिन्धिकल्पे इत्यादि  
द्रष्टव्यम् । २१ वसः । २२ ईप् । २३ किञ्च । २४ ज्ञाने । २५ ज्ञाने ।  
२६ अर्थरूपताभावे । २७ असन्निहितेऽप्यर्थे । २८ ज्ञानोत्पादलक्षणः सम्बन्धः ।  
२९ व्यापारेण । ३० कारणत् । ३१ ज्ञानम् । ३२ पूर्वपक्षे । ३३ असाभि-  
क्षेपः । ३४ आक्षेपम् । ३५ किञ्च ।

1 “अर्थेन घटयत्येना न हि मुक्तावैरूपताम् ।

अन्यत्सन्निकर्षादिक कर्तुं । २ निर्विकल्पका बुद्धिम् । ३ यस्मात् । ४ प्रमाण

न घटयतीति सम्बन्धः । ५ बुद्धेः । ६ फलज्ञानस्य । ७ सम्बन्धित्वेन । ८ नैया-

2 “किञ्च, घटयतीति सम्बन्धयति इत्यभिप्रेतम्, अर्थसम्बन्धं निश्चाययति  
इति वा ?” न्यायकुसु० पृ० १७१ ।

3 “साकारत्वेऽपि चार्थं पर्यनुयोगः समानः । तथाहि—साकारमपि ज्ञानं किमिति  
नीलादिकमेव पुरोवर्ति तत्सन्निहितमेव च व्यवस्थापयति ? तेनैव तथा तस्य जनना-  
दिति चेत् समानमेतन्निराकारेऽपि ।”

सम्प्रति० टी० पृ० ४६० ।

न्यायकुसु० पृ० १७१ ।

साकारमपि हि ज्ञानं किमिति सन्निहितं नीलादिकमेव पुरोवर्त्ति व्यवस्थापयति न पुनः सर्वम् ? 'तेनैव च तथा जननात्' इत्युत्तरं निराकारत्वेऽपि समानम् । किञ्च, इन्द्रियादिजन्यं विज्ञानं 'किमि-  
तीन्द्रियाद्याकारं नानुकुर्यात्' इति प्रश्ने भवताम्यत्र वस्तुस्वभाव  
५ एवोत्तरं वाच्यम् । साकारता च ज्ञाने साकारज्ञानेन प्रतीयते,  
निराकारेण वा ? साकारेण चेत्, तत्रापि तत्प्रतिपत्तावाकारान्त-  
रपरिकल्पनमित्यनवस्था । निराकारेण चेद्वाह्यार्थस्य तथाभूतज्ञानेन  
प्रतिपत्तौ को विद्वेषः ?

किञ्च, अस्य वादिनोऽर्थेन संविचेर्घटनाऽन्यथानुपपत्तेः सन्नि-  
१० कर्षः प्रमाणम्, अधिगतिः फलं स्यात्, तस्यास्तमन्तरेण प्रतिनि-  
यतार्थसम्बन्धित्वासम्भवात् । साकारसंवेदनस्य अखिलसमाना-  
र्थसाधारणत्वेन अनियतार्थघटनप्रसङ्गात् निखिलसमानार्थानामे-  
कवेदनापत्तिः, केनचित्प्रत्यासत्तिविप्रकर्षासिद्धेः ।

सदुत्पत्तेरिन्द्रियादिना व्यभिचारत्रियामकत्वायोगः । तदुत्पत्ते-  
१५ स्ताद्रूप्याच्चार्यस्य बोधो नियामको नेन्द्रियादेर्विपर्ययादित्यप्यसा-  
म्प्रतम् ; तद्रूपयलक्षणस्यापि समानार्थसमनन्तरप्रत्ययेनानैकान्तिक-

१ न्यवस्थापकत्वप्रकारेण । २ ज्ञानस्य । ३ भवदीयम् । ४ जैनः कुते । ५ परेण ।  
६ पूर्वपक्षे । ७ अर्थरूपता । ८ किञ्च । ९ निराकारेण । १० सांभान्तिकस्य ।  
११ ज्ञानस्य । १२ अर्थप्रसक्तिः । १३ किञ्च । तद्रूप्यनिषेधं कुर्वन्ति । १४ अर्था-  
कारमर्थादुत्पन्नमर्थाव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणमिमानि । विशेषणानि प्रत्येकं दूषयन्ति ।  
१५ ईप् । १६ अर्थः । १७ तद्रूप्याभावात् । १८ प्रा(कृ)कृतज्ञानस्य च एव नीलाद्यर्थो  
विषयः स एवोत्तरज्ञानस्येति एकसन्तानवर्तित्वेन 'समानोऽर्थः एको' नीलः ।  
१९ ईप् । २० प्रथमक्षणे नीलमिदमिति ज्ञानमुत्पन्नं तच्च द्वितीयस्य जननं तत्र  
ताद्रूप्यमस्ति सदुत्पत्तिज्ञानत्वेन समानमन्ववहितत्वेनानन्तरमिति । २१ सप्रसङ्गः ।  
२२ प्राक्तनज्ञानेन । २३ तदुत्पत्तेस्ताद्रूप्याच्च यद्यर्थस्य 'बोधो नियामकः तदा  
प्राक्तनज्ञानेनानैकान्तात् कथम् ? द्वितीयबोधस्य प्राक्तनबोधात्तदुत्पत्तिताद्रूप्यसङ्गावेति  
द्वितीयबोधेन पूर्वान्तरबोधस्य नियामकत्वायोगात् । ज्ञानं ज्ञानस्य न निवामकं ज्ञानस्य  
स्वप्रकाशकत्वात् ।

१ "साकारता विज्ञानस्य किं साकारेण प्रतीयते, आहोस्विनिराकारेण ?"

सम्प्रति० टी० पृ० ४६० ।

२ "तत्साकृत्यतदुत्पत्ती यदि-सवेचलक्षणम् ।  
तथा च स्वात्समानार्थविज्ञानं-समनन्तरम् ॥"

प्रमाणबा० ३।१२३ ।

त्वात् । कथं चार्थवद्विद्विंश्याकारं नानुकुर्यादसौ तदुत्पत्तेरविशेष-  
पात् ? तदविशेषेण्यस्य कारणान्तरपरिहारेणार्थाकारानुकारित्वं  
पुत्रस्येव पित्राकारानुकरणमित्यप्यसङ्गतम् ; स्वोपादानमात्रानु-  
करणप्रसङ्गात् । विषयस्यालम्बनप्रत्ययतया स्वोपादानस्य च सम-  
नन्तरप्रत्ययतया प्रत्यासत्तिविशेषसङ्गात् उभयाकारानुकरणे-  
ऽर्थवदुपादानस्यापि विषयतापेक्षिरविशेषात् । तज्ज्ञानरूपाविशेषे-  
ष्यैवसायनियमात् प्रतिनियतार्थनिर्यामकत्वेऽर्थवदुपादानेऽप्य-  
ध्यवसायप्रसङ्गः, अन्यथोभयत्राप्यसौ मा भूद्विशेषोभावात् । न च  
तज्ज्ञानाद्विषयसङ्गवैष्यर्थप्रतिनियमः; कामलोद्बुधद्वयचक्षुषः शुक्ले  
शङ्के पीताकारज्ञानादुत्पन्नस्य तद्रूपस्य तदाकाराध्यवसायिनो  
विज्ञानस्य समनन्तरप्रत्यये प्रामाण्यप्रसङ्गात् । न चैवैवादिनो  
विज्ञानस्य स्वरूपे प्रमाणता घटते तत्र सारूप्याभावात् ।

किञ्च, ज्ञानगतालीलाद्याकारात् क्षणिकत्वाद्यौकारः किं भिन्नः,  
अभिन्नो वा ? भिन्नश्चेत् ; नीलाद्याकारस्याक्षणिकत्वप्रसङ्गस्तद्व्या-  
वृत्तिलक्षणत्वात्तस्य । भैयभिन्नः; तर्हि ततोऽर्थस्य नीलत्वादि-१५

१ किञ्च । ताद्रूप्यनिषेधं कुर्वन्ति । २ ज्ञानस्य । ३ अर्थलक्षणत्वात्कारणादपरमि-  
न्द्रियलक्षणम् । ४ बोधस्य । ५ कारण । ६ अन्यवद्वितीकरण । ७ तदुत्पत्तिलक्षण-  
सम्बन्ध । ८ अर्थपूर्वज्ञाने । ९ तज्ज्ञानतद्रूपविशेषोभावात् । १० अर्थोपादाना-  
भ्यामुत्पत्तेरविशेषात् । ११ अर्थोपादानान्या । १२ निश्चय । १३ बोधस्य ।  
१४ अर्थोपादानयोः । १५ तज्ज्ञानरूप । १६ किञ्च इदानीं सह वृष्यति ।  
१७ अर्थोत्पत्त्यादि । १८ बोधस्य । १९ बोध । २० पुरुषस्य । २१ किञ्च ।  
साकारत्वेन ज्ञानस्य प्रामाण्यवादिनः । २२ निरक्षत्वादि । २३ अत्रानुमाने षट्यदिव-  
वृत्तान्तः । २४ नीलकारान् ज्ञानात् ।

१ “न केवलं विषयवत्त्वाद् वृष्टेरुत्पत्तिरिति तु चक्षुरादिशक्ये । विषयाकारानु-  
करणादर्शनस्य तत्र विषयः प्रतिमासते, न पुनः करणम् तदाकारानुकरणमिति  
चेत्तर्हि; तदर्थवत्त्वरूपमनुकर्तुमर्हति, न चार्थं निवेष्टोभावात् । दर्शनस्य कारणान्तर-  
सङ्गावेऽपि विषयाकारानुकारित्वमेव स्तत्त्वेन पित्राकारानुकरणमित्यपि चार्थम्; स्वोपा-  
दानमात्रानुकरणप्रसङ्गात् । विषयस्यालम्बनप्रत्ययतया स्वोपादानस्य च समनन्तरप्रत्य-  
यतया प्रत्यासत्तिविशेषाद् दर्शनस्य उभयाकारानुकरणेष्वनुसायमाने रूपादिवदुपादान-  
स्यापि विषयतापेक्षिः, अतिशयाभावात् । वर्णादीनां तद्वदविषयत्वप्रसङ्गात् ।”

अष्टसू०, अष्टसू० पृ० ११८ ।

२ “दर्शनस्य तज्ज्ञानरूपाविशेषेऽपि तदध्यवसायनियमात् बहिरर्थविषयत्वमित्य-  
सार्थम्; वर्णादीनि उपादानेऽपि अध्यवसायप्रसङ्गात् ।”

अष्टसू०, अष्टसू० पृ० ११८ ।

वत् क्षणिकत्वादेरपि प्रसिद्धेस्तदर्थमनुमानमनर्थकम् । तदसिद्धौ वा नीलत्वादेरप्यर्तः सिद्धिर्न स्यादविशेषात् । ननु चानेकस्व-  
भावार्थाकारत्वेपि ज्ञानस्य यस्मिन्नेवांशे संस्कारपाटवाभिर्ध्वयो-  
त्पादकत्वं तत्रैव प्रामाण्यं नान्यत्रेति । नैवन्तौ निश्चयः साकारः,  
५ निराकारो वा ? साकारत्वे तत्रापि नीलाद्यौकारस्य क्षणिकत्वा-  
द्याकाराद्भेदामेदपक्षयोः पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गः । तत्रापि निश्चर्यान्त-  
रकल्पनेऽनवस्था । अथ निराकारः, तर्हि निश्चर्यात्मना सर्वार्थेष्व-  
विशिष्टस्य ज्ञानस्य 'अयमस्यार्थस्य निश्चयः' इति प्रतिकर्मनियमः  
कुतः सिद्धेत् ? निराकारस्यापि कुतश्चिन्मिच्छात् प्रतिकर्म-  
१० सिद्धावर्त्यैवाप्यत एव तत्सिद्धेः किमाकौरकल्पनयेति ?

नैवन्तु निराकारत्वं विज्ञानस्य; न तु स्वसंविदितत्वं भूतपरि-  
णामत्वाद्दर्पणादिवदित्युक्तम्; हेतोरसिद्धेः । भूतपरिणामत्वे  
हि विज्ञानस्य बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गो दर्पणादिवत् । सूक्ष्म-  
भूतविशेषणपरिणामत्वाच्च तत्प्रसङ्गः; इत्यप्यसङ्गतम्; स हि चैत-  
१५ न्येन सजातीयः, विजातीयो वा तदुत्पादन(तदुत्पादान)हेतुः  
स्यात् ? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता, सूक्ष्मो हि भूतविशेषोऽचेतन-  
द्रव्यव्यावृत्तस्वभावो रूपादिरहितः सर्वदा बाह्येन्द्रियाविषयः

१ अर्थस्य । २ क्षणिकत्वादि । ३ सर्व क्षणिकं सत्त्वात् । ४ नीलाकारज्ञानात् ।  
५ अमिन्नत्वस्य । ६ वस्य ज्ञानस्य । ७ नीले । ८ विकल्प । ९ क्षणिकाशे । १० भो  
बौद्ध । ११ ज्ञानेनोत्पाद्यः । १२ साकारनिश्चयविषयेयं । १३ निश्चयगतस्य ।  
१४ अक्षणिकत्वादि । १५ अमिन्नपक्षे । निश्चयगतनीलाद्याकारे । १६ नीलगतक्षणि-  
कत्वनिश्चयप्रतिपादनम् । १७ अन्यानवस्था । १८ निश्चयः । १९ स्वस्वरूपेण ।  
२० साधारणस्य । २१ नीलस्य । २२ योग्यतातः । २३ निराकारज्ञानपक्षेपि ।  
२४ किं प्रयोजनं न किमपि । २५ जैनं प्रति चार्वाको ज्ञेयः । २६ हेतोरसिद्धत्वमेव  
दर्शयन्ति । २७ ज्ञानस्य । २८ सूक्ष्मभूतविशेषः । २९ ज्ञानेन । ३० अस्माकं  
जैनानाम् । ३१ प्राणी । ३२ रसगन्धवर्णेशब्दैश्च ।

1

“सूक्ष्मो भूतविशेषश्चेदुत्पादानं नितो मतम् ।

स यवात्मास्तु निज्जातिसमन्वितवर्ण्यदि ॥ ११० ॥

तद्विजातिः कथञ्चाम् चिदुत्पादानकारणम् ।

भवतस्तेजसोऽम्बोवत् तयैवाद्भुतकल्पना ॥ १११ ॥

सत्त्वादिना समानत्वाच्चिदुत्पादानकल्पने ।

क्षयादीनामपि तत्केन निवार्येत परस्परम् ॥ ११२ ॥

सूक्ष्मभूतविशेषः चैतन्येन विजातीयः सजातीयो वा ?”

तत्त्वार्थको० पृ० २९ । न्यायकुसु० पृ० ३३८ ।

स्वसंवेदनप्रत्यक्षाधिगम्यः परलोकादिसम्बन्धित्वेनानुमेर्यश्च आत्मापरनामा विज्ञानोपादानहेतुरिति परैरभ्युपगमात् ।

तस्यातो विजातीयत्वे नोपादानभावः । सर्वथा विजातीयस्योपादानत्वे बह्वर्जलाद्युपादानभावप्रसङ्गात् तत्त्वचतुष्टयव्याघातः । सत्त्वादिना सजातीयत्वात्तस्योपादानभावेऽपि अयमेव दोषः । ५ प्रमाणप्रसिद्धत्वाच्चैव तन्मात्रादानत्वमेव विज्ञानस्योपपन्नम् । तथा हि-यद्यतोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टं तत्त्वैतत्तत्त्वैव तन्मात्रम् । यथा तेजसो धायादिकम्, पृथिव्याद्यसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टं च चैतन्यमिति । न चायमसिद्धो हेतुः । चैतन्यस्य जना(ज्ञान)दर्शनोपयोगलक्षणत्वात्, भूपयःपावकपवनानां धार- १० णेरणव्रवोष्णतास्वभावानां तल्लक्षणाभावात् । न हि भूतानि ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणानि असदाद्यनेकप्रतिपक्षप्रत्यक्षत्वात् । यत्पुनस्तल्लक्षणं तन्मात्रादाद्यनेकप्रतिपक्षप्रत्यक्षम् यथा चैतन्यम्, तथा च भूतानि, तस्मात्तथैवेति ।

ननु ज्ञानाद्युपयोगविशेषव्यतिरेकेणापरस्य तद्वैतः प्रमाणतो- १५ ऽप्रतीतेः असिद्धमेवासाधारणलक्षणविशेषविशिष्टत्वम् ; तथाहि-न तावत्प्रत्यक्षेणैतसौ प्रतीयते ; रूपादिवत्तत्त्वभावानवधारणात् । नाप्यनुमानेन ; अस्य ग्रामाण्याप्रसिद्धेः । न च तन्मात्राभावेदकं किञ्चिदनुमीनमस्ति ; इत्यसङ्गतम् । प्रत्यक्षेणैवात्मनः प्रतीतेः 'सुख्यहं

१ आदिपदेन पुण्यपाप । २ विद्विषयत्वादित्यतः । ३ कैः । ४ चैतन्यस्य । ५ अन्यथा । ६ प्रमेयत्ववस्तुत्वादि । ७ किञ्च । ८ स रूपादान यस्य तत् । ९ चैतन्यं धर्मी पृथिव्यादिर्न्याऽर्थान्तरं भवतीति साध्यो धर्मः । ततोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टत्वात् । १० पृथिव्यादिभ्यः । ११ विसृष्टः । १२ पृथिव्यादिभ्यः । १३ भिन्नः । १४ का । १५ ज्ञानदर्शरूप एव उपयोगः । १६ अनेकसर्वत्रप्रत्यक्षेणास्यचैतन्येन व्यभिचारः । १७ अनेकप्रतिपक्षप्रत्यक्षत्वादित्युक्ते । १८ प्रत्यक्षत्वादित्युक्ते प्रत्यक्षेण । १९ अस्यचैतन्येन व्यभिचारः । २० दर्शनः । २१ आत्मनः । २२ साधनम् । २३ इन्द्रियप्रत्यक्षेण । २४ किञ्च । २५ हेतुः ।

१ "न हि भूतानि स्वसंवेदनलक्षणानि असदाद्यनेकप्रतिपक्षप्रत्यक्षत्वात् ।"

अद्वैतसू० पृ० ६४ ।

२ "आत्मसङ्गादे प्रमाणाभावात् ; तथाहि न प्रत्यक्षेणोपलभ्यते रूपादिवत्तत्त्वभावानवधारणात् । नाप्यनुमानमस्मात्प्रतिपक्षम् ।" प्रश्न० व्यो० पृ० ३९१ ।

३ "अहमिति प्रत्यक्षेण तस्य प्रतिभासनात्, तथाच सुख्यहं- दुःख्यहमित्येव प्रतीतिरिति प्रत्यक्षो दृष्टः ।" प्रश्न० व्यो० पृ० ३९१ ।



दुःख्यहमिच्छावानहम्' इत्याद्यनुपचरिताहम्प्रत्ययस्यात्मग्राहिणः  
प्रतिप्राणि संवेदनात् । न चायं मिथ्याऽवाध्यमानत्वात् । नापि  
शरीरालम्बनः, बहिःकरणनिरपेक्षान्तःकरणव्यापारेणोत्पत्तेः । न  
हि शरीरं तथोभूतप्रत्ययवेद्यं बहिःकरणविषयत्वात्, तस्यानुप-  
५ चरिताहम्प्रत्ययविषयत्वाभावाच्च । न हि<sup>१</sup> 'स्थूलोऽहं कृशोहम्'  
इत्याद्यभिज्ञाधिकरणतया प्रत्ययोऽनुपचरितः, अत्यन्तोपकारके  
भृत्ये 'अहमेवायम्' इति प्रत्ययस्याप्यनुपचरितत्वप्रसङ्गात् । प्रति-  
भासमेदो वाचकः अन्यत्रापि समानः । न हि बहलतमः पटलपटाव-  
गुण्ठितविग्रहस्य 'अहम्' इति प्रत्ययप्रतिभासे स्थूलत्वादिघर्मोपेतो  
१० विग्रहोपि प्रतिभासते । उपचारैश्च<sup>२</sup> निर्मितं विना न प्रवर्तते  
इत्यात्मोपकारकत्वं निर्मितं कल्प्यते भृत्यवदेव । 'मदीयो भृत्यः'  
इतिप्रत्ययमेदवत् 'मदीयं शरीरम्' इति प्रत्ययमेदस्तु मुख्यः ।  
यच्चोक्तम्-रूपादिवत्स्वभावानवधारणात्, तदयुक्तम्, 'अहम्'

१ बहिःकरणनिरपेक्षान्तःकरणव्यापारादुत्पद्यमानप्रत्ययवेद्यम् । २ अभावोऽसिद्ध  
इत्युक्ते सत्याह । ३ इच्छावानहम् । ४ ईप् । ५ अनुकरणे । ६ देहः ।  
७ अन्यथा । ८ उपचारेण । ९ स्थूलोहमित्यादिप्रत्यये । १० आहूत । ११ पुरुषस्य ।  
१२ स्थूलतादौ । १३ स्थूलत्वादेः । १४ प्रयोजनम् । १५ शरीरस्य । १६ ज्ञाने ।  
१७ शरीरस्य । १८ ज्ञान । १९ परेण । २० आत्म । २१ आत्मा ।

"स्वसंवेद्यः स भवति नासावन्धेन शक्यते इदृक्, नासावन्धेन शक्यते इदृक्  
कथमसौ निर्दिश्येत... असौ पुरुषः स्वयमात्मानमुपलभते । न चान्यसे शक्तोत्पदस्य-  
यितुन् ।"

शाबरभा० १।१।५ ।

"अहम्प्रत्ययविशेषः स्वमात्मोपपद्यते ।" मीमांसाको० आत्मवादको० १०७ ।

"स्वसंवेदनतः सिद्धः सदात्मा वाचवर्जितात् ।

तस्य इमादिविचर्त्तात्मन्यात्मन्यनुपपत्तिः ॥ १६ ॥"

तत्तार्थको० पृ० २६ । शास्त्रवा० ससु० को० ७९ । न्यायकुसु० पृ० ३४३ ।

१ "न शरीरालम्बनमन्तःकरणव्यापारेण उत्पत्तेः । तथाहि न शरीरमन्तःकरण-  
परिच्छेद्यं बहिर्विषयत्वात् ।"

प्रश्न० न्यो० पृ० ३९१ ।

२ "नन्वेवं कृशोऽहं स्थूलोऽहमिति प्रत्ययस्तर्हि कथम् ? मुख्ये वाचकोपपत्तेरुप-  
चारेण । तथाहि-मदीयो भृत्य इति ज्ञानबन्धदीयं शरीरमिति मेदप्रत्ययदर्शनात्  
भृत्यवदेव शरीरेऽप्यहमिति ज्ञानस्य औपचारिकत्वमेव युक्तम् । उपचारस्तु निर्मितं  
विना न प्रवर्तते इत्यात्मोपकारकत्वं निर्मितं कल्प्यते ।" प्रश्न० न्यो० पृ० ३९१ ।  
न्यायकुसु० पृ० ३४९ । सन्मति० टी० पृ० ८६ ।

३ "अहमिति स्वभावस्य प्रतिभासनात् । नचार्थान्तरस्य अर्थान्तरस्वभावेनाप्रत्य-  
क्षत्वं दोषः, सर्वपदार्थानामप्रत्यक्षनाप्रसङ्गात् ।"

प्रश्न० न्यो० पृ० ३९१ ।

इति तत्त्वभावस्य प्रतिमासनात् । न चार्थान्तरस्यार्थान्तरत्वभा-  
वेनाप्रत्यक्षत्वं दोषः, सर्वैर्पदार्थानामप्रत्यक्षताप्रसङ्गात् । अर्थात्मनः  
कर्तृत्वादेकस्मिन् काले कर्मत्वासम्भवेनाप्रत्यक्षत्वम्; तन्न; लक्षण-  
भेदेन तदुपपत्तेः, स्वातन्त्र्यं हि कर्तृत्वलक्षणं तदैव च ज्ञानक्रियया  
व्याप्यत्वोपलब्धेः कर्मत्वं चाविरुद्धम्, लक्षणाधीनत्वाद्भस्तु-५  
व्यवस्थायाः ।

तथाजुमानेनात्मा प्रतीयते । ओत्रादिकरणानि कर्तृप्रयोज्यानि  
करणत्वाद्वास्यादिवत् । न चोत्र ओत्रादिकरणानामसिद्धत्वम् ।  
'रूपैरसगन्धस्पर्शशब्दोपलब्धिः करणकार्या क्रियात्वाच्छिदि-  
क्रियावत्' इत्यनुमानात्तत्सिद्धेः । तथा 'शब्दादिज्ञानं क्वचिदा-१०  
श्रितं गुणत्वाद्भूर्पादिवत्' इत्यनुमानतोऽप्यसौ प्रतीयते । प्रामाण्यं  
चानुमानस्याग्रे समर्थयिष्यते । शरीरेन्द्रियमनोविवैयगुणत्वा-  
द्विज्ञानस्य न तद्व्यतिरिक्ताभयाश्रितत्वम्, येनैतमसिद्धिः स्यादि-  
त्यपि मनोरथमात्रम्; विज्ञानस्य तद्गुणत्वासिद्धेः । तथाहि-न

१ आत्म । २ चैतन्यस्य । ३ रूपादिलक्षणादर्थादर्थान्तरभासा तस्य । ४ आत्म-  
लक्षणादर्थादर्थान्तर घटादिसत्स्य समाचो रूपादित्येन । ५ अन्यथा । ६ घटादीना ।  
७ रूपरसादिरूपेण वर्गेण प्रत्यक्षत्वात्तन्मवात् । (१) ८ कर्तृकाले । ९ स्वतन्त्रः कर्तृति  
वचनात् । १० क्रियाग्यातं कर्मेति वचनात् । ११ असाधारणस्वरूपम् । १२ प्रत्यक्ष-  
प्रकारेण । १३ जयैपरिच्छिद्यौ । १४ छिद्यौ । १५ अनुमाने । १६ प्रत्यक्षानुमान-  
प्रकारेण । १७ आत्मनि । १८ घटाद्यर्थे यथा । १९ आत्मा । २० असाधितैर्नैः ।  
२१ घटादि जगादि च । २२ केन ।

१ "अर्थात्मनः कर्तृत्वादेकस्मिन् काले कर्मत्वासम्भवेनाप्रत्यक्षत्वम्; तन्न; लक्षण-  
भेदेन तदुपपत्तेः । तथाहि-ज्ञानचिकीर्षाधारत्वस्य कर्तृलक्षणस्योपपत्तेः कर्तृत्वम्,  
तदैव च क्रियया व्याप्यत्वोपलब्धेः कर्मत्वञ्चेति न दोषः । लक्षणपतत्रत्वाद्भस्तुन्यम-  
स्यायाः ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९२ ।

२ "करणैः शब्दाद्युपलब्ध्यनुमितैः ओत्रादिभिः समधिगमः क्रियते वासादीनां  
करणानां कर्तृप्रयोज्यत्वदर्शनात् । शब्दादिषु प्रसिद्धा च प्रसाधकोऽनुनीयते ।"

प्रश्न० भा० पृ० ३९१ ।

"ओत्रादीनि करणानि कर्तृप्रयोज्यानि करणत्वात् वासादिवत् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९३ । न्यायकुसु० पृ० ३४९ ।

३ "शब्दोपलब्धिः करणकार्या क्रियात्वात् छिदिक्रियावत् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९३ । स्या० मं० का० १७ ।

४ "शब्दादिज्ञानं क्वचिदामित्य गुणत्वात् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९३ । न्यायकुसु० पृ० ३४९ ।

शरीरं चैतन्यगुणाश्रयो भूतविकारत्वाद् घटादिवत् । चैतन्यं चो  
शरीरविशेषगुणो न भवति सति शरीरे निर्वर्त्तमानत्वात् । ये तु  
शरीरविशेषगुणा न ते तस्मिन्सति निवर्त्तन्ते यथा रूपादयः,  
सत्यपि तैस्मिन्निवर्त्तते च चैतन्यम्, तस्मान्न तद्विशेषगुणः ।

५ तथा, चेन्द्रियाणि चैतन्यगुणवन्ति करणत्वाद्भूतविकारत्वाद्वा  
वास्यादिवत् । तद्गुणत्वे च चैतन्यस्येन्द्रियविनाशे प्रतीतिर्न स्याद्-  
णिविनाशे गुणस्याप्रतीतेः । न चैवम्, तस्मान्न तद्गुणः । तथा च  
प्रयोगः—सरणौदि चैतन्यमिन्द्रियगुणो न भवति तद्विनाशेऽप्युत्प-  
द्यमानत्वात्, यो यद्विनाशेऽप्युत्पद्यते स न तद्गुणो यथा पटविना-  
शेऽपि घटरूपादि, भवति चेन्द्रियविनाशेऽपि सरणादिकम्,  
तस्मान्न तद्गुणः । यदि चेन्द्रियगुणश्चैतन्यं स्यात्तर्हि करणं विना  
क्रियायाः प्रतीत्यभावात् करणान्तरैर्भवितव्यम् । तेषां च प्रत्येकं

१ शरीरस्य । २ चैतन्यस्य । ३ शरीरे । ४ किञ्च । ५ घटस्य । ६ किञ्च ।  
७ गुणो । ८ गुणः । ९ जानातीति । १० चैतन्यलक्षणायाः ।

। १ “न शरीरेन्द्रियमनसामग्रात्वात् । न शरीरस्य चैतन्यं घटादिवत् भूतकार्य-  
त्वात् ह्यते चासम्भवात् ।” प्रश्न० भा० पृ० ३९ ।

“शरीरं चैतन्यस्य भूतत्वात् कार्यत्वाच्च । ... चैतन्यं शरीरविशेषगुणो न भवति  
सति शरीरे निवर्त्तमानत्वात् ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९४ । न्यायकुमु० पृ० ३४३ ।

। “न शरीरगुणक्षेतना, कस्मात् ? यावच्छरीरमावित्वात्, रूपादीनाम् ।” शरीर-  
व्यापित्वात् “शरीरगुणवैयर्थ्यात् ।” न्यायसू० १।१।४५, ५६, ५७ ।

“न शरीरस्य ज्ञानादियोगः परिणामित्वात्, रूपादिमत्त्वात्, अनेकतमूहसम्भवा-  
त्वात्, सन्निवेशविशिष्टत्वात् ।” न्यायसू० पृ० ४३९ ।

“देहधर्मवैलक्षण्यात्...” । प्रश्नसू० भा० १।१।५४ ।

। २ “चेन्द्रियाणां करणत्वात् उपहतेषु विषयासाक्षिभ्यो वाऽनुसृतिदर्शनात् ।” प्रश्न० भा० पृ० ३९ ।

“चेन्द्रियार्थगोः तद्विनाशेऽपि ज्ञानानुसृतिनात् ।” न्यायसू० १।१।१८ ।

“चेन्द्रियाणां चैतन्यं, करणत्वात् वास्यादिवत्, भूतत्वात्, कार्यत्वादित्यपि  
वृष्टम्युक्तम् । ... तद्गुणत्वादेऽपि स्पृतिदर्शनात् ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९४ । न्यायकुमु० पृ० ३४३ ।

। ३ “सरणमिन्द्रियगुणो न भवति यथा पटविनाशेऽपि पटरूपादिरिति । तथा च  
सरणमिन्द्रियविनाशेऽपि भवति तस्याच्च तद्गुण इति ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ ।

। ४ “यदि चेन्द्रियाणां चैतन्यं स्यात् करणं विना क्रियावाक्यानुपपन्नवेदिति  
करणान्तरैर्भवितव्यम् । तानि करणानि, चेन्द्रियाणि, विवादास्पदानि, चात्मान इत्ये-

कस्मिन् शरीरे प्रकृतमूलमभ्युपगतं स्यात् ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ ।

चैतन्यगुणत्वे एकस्मिन्नेव शरीरे पुरुषबहुत्वप्रसङ्गः स्यात् । तथाच देवदत्तोपलब्धेऽर्थे यद्वदत्तस्येवेन्द्रियान्तरोपलब्धे तस्मिन् न स्यादेन्द्रियान्तरेण प्रतिसन्धानम् । इदं यत्तु चैतत्ततो नेन्द्रियगुणश्चैतन्यम् । अथैकमेवेन्द्रियमशेषकरणाधिष्ठायकमिष्यतेऽतीयमदोषः; तर्हि संज्ञामेदमात्रमेव स्यादात्मनस्तथा नामान्तरकरणात् । ५

नापि चैतन्यगुणवन्मनः करणत्वाद्वास्यादिवत् । कर्तृत्वोपगमे तस्य चेतनस्य सैतो रूपाद्युपलब्धौ करणान्तरोपेक्षित्वे च प्रकारान्तरेणात्मैवोक्तः स्यात् ।

नापि विषयगुणः; तदसात्रिध्ये तद्विनाशे चानुस्मृत्यादिदर्शनात् । न च गुणिनोऽसात्रिध्ये विनाशे वा गुणानां प्रतीतिर्युक्ता, १० गुणत्वविरोधानुपपन्नात् । ततः परिशेषाच्छरीरेऽदिव्यतिरिक्ताश्रयैश्चित्तं चैतन्यमित्यतो भवत्येवात्मसिद्धिः ।

ततो निराकृतमेतत्—‘शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञेभ्यः पृथिव्यादिभूतेभ्यश्चैतन्याभिर्व्यक्तिः, पिष्टोदकगुडघातक्यादिभ्यो मदशक्तिवत्’ । ततोऽसार्थारणलक्षणविशेषविशिष्टत्वेऽप्यतत्त्वा(तस्तत्त्वा)न्तरेत्स्व- १५

१ चैतन्यं गुणो येषां तानि तत्त्वे । २ चक्षुरा इष्टेऽर्थे ज्ञेयेण प्रतिसन्धानं न स्यात् । ३ प्रत्यभिज्ञानम् । ४ मनः । ५ प्रेरकम् । ६ परेण । ७ विषयानुसन्ध । ८ मनः । ९ चक्षुरादि । १० चैतन्यं । ११ सुखादि । १२ अन्यथा । १३ गुणिनोऽस्मी गुणा इति । १४ इन्द्रियमनोविषय । १५ आत्म । १६ गुणत्वादिसाधनम् । १७ जायते । १८ तेन्यश्चैतन्यस्याभिव्यक्तिर्यतः । १९ ज्ञानदर्शनेनोपयोगरूपः । २० चैतन्यस्य ।

१ “यदि चैकमिन्द्रियमशेषकरणाधिष्ठायकं चैतनमिष्येत; सन्नामेदमात्रमेव स्यात् ।”

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ ।

२ “नापि मनसः कारणान्तरानपेक्षिते युगपदालोचनत्सृतिप्रसङ्गात्, स्वयं करणसात्राच्च ।”

प्रश्न० सा० पृ० ६९ ।

“नापि मनोगुणः करणत्वात् बाह्यादिवत् ।”

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ । न्यायकुसु० पृ० ३४७ ।

“युगपदालोचनानुपलब्धेऽथ न मनसः ।”

न्यायसू० ३।२।१९ ।

३ “अत एव विषयस्यापि न चैतन्यम् ।”

प्रश्न० कन्दली पृ० ७२ ।

“विषयासात्रिध्ये तद्विनाशे चानुस्मृतिर्दृष्टा । न तत् गुणतदिनाशे भवतीति ।”

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ । न्यायकुसु० पृ० ३४७ ।

४ “इत्याह—मदशक्तिरिन्द्रियम् । यथैव हि मद्याज्ञाना किष्वादीनां देशकालावस्थाविशेषे मदशक्तिलक्षणावस्थानिर्देशः प्रादुर्भवति एवं पृथिव्यादीनां तद्विशेषे प्रतिनियतवदादिग्राहकं ज्ञानमिति ।”

न्यायकुसु० पृ० ३४३ ।

मेव । “पृथिव्य(व्या)पस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि, तत्समुदये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञाः तेभ्यश्चैतन्यम्” [ ] इत्यत्र ‘अभिव्यक्तिमुपयाति’ इति क्रियाभ्याहोरादतः सन्दिग्धविषयत्वा-  
वृत्तिको हेतुरिति; शब्दसामान्याभिव्यक्तिनिषेधेर्नास्य चैतन्या-  
५ भिव्यक्तिवादस्य विरोधार्थः ।

किंच, सतोऽभिव्यक्तिश्चैतन्यस्य, असतो वा स्यात्, सदसद्व-  
पस्य वा? प्रथमकल्पनायाम् तत्स्थानाद्यनन्तत्वसिद्धिः, सर्वदा  
सतोऽभिव्यक्तेस्तामन्तरेणानुपपत्तेः । पृथिव्यादिसामान्यवत् ।  
तथा च “परलोकिनोऽभावात्परलोकाभावः” [ ]  
१० इत्यपरीक्षिताभिधानम् । प्रागसतश्चैतन्यस्याभिव्यक्तौ प्रतीति-  
विरोधः, सर्वथाप्यसतः कस्यचिदभिव्यक्त्यर्थप्रतीतेः । न चैवंवादिनो  
व्यञ्जककारकयोर्मैर्देः, ‘प्राक्सतैः स्वरूपसंस्कारकं हि व्यञ्जकम्,  
असतः स्वरूपनिर्वर्तकं कारकम्’ इत्येवं तयोर्मैदप्रसिद्धिः । कथ-  
ञ्चित्सतोऽसतश्चाभिव्यक्तौ परमतप्रवेशः—कथञ्चिद्भव्यतः सतश्चै-  
१५ तन्यस्य पर्यायतोऽसतश्च कार्याकारपरिणतैः पृथिव्यादिपुद्गलैः

१ सूत्रे । २ चैतन्यस्याभिव्यक्तिः । ३ सतः । ४ असाधारणकृष्णविशेष-  
विक्षिप्तत्वादिति । ५ आकाशाद्यद्विष्णुशब्दोत्पत्तिं बीजामितां निराकुर्वत्तत्त्वार्थकस्य  
भूतेभ्यस्तद्विष्णुशब्दोत्पत्तिकमनन्युक्तं स्वप्नविरोधादित्यभिप्रायः । ६ अत्र ।  
७ यथा वटानां प्रदीपाद्यभिव्यञ्जकस्यापारात्पूर्वं सङ्गावग्राहकं प्रभाषयति तथा  
तात्त्वादिभ्यापारात्पूर्वं शब्दादिसङ्गावग्राहकप्रमाणमावात्कथमभिव्यञ्जकस्यापाराशब्द-  
बीजानामभिव्यक्तिरिति चार्थाकेण शब्दापभिव्यक्तिपक्षे बीजासक्तं प्रत्युद्गमनानेन  
दूषणेन चैतन्याभिव्यक्तिपक्षस्यापि निराकृतत्वात् । कथम्? अभिव्यक्त्याचैतन्यात्पूर्वमन-  
भिव्यक्तित्वचैतन्यसङ्गावग्राहकप्रमाणमावादिति । ८ किञ्च । ९ पृथिवीत्वादिति ।  
१० अनापनन्तात्मसिद्धौ । ११ सत्ताम् । १२ खरविषाणादिनव । १३ किञ्च ।  
१४ ना भूय । १५ व्यञ्जकस्य । १६ जैन । १७ नरनारकादि ।

१ इदं वाक्यं तत्त्वोपपन्नं पृ० १, आगती. ३।३।५४, तत्त्वसं पं० पृ० ५१०,  
सत्त्वार्थे श्लो० ५० २८, न्यायकुसु० पृ० ३४१ इत्यादिषु सङ्गतं वर्तते ।

२ “तथादि—पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि तत्त्वानि । तेभ्यश्चैतन्यमिति । अत्र  
केचिद्भूतिकारा व्याचक्षते—‘अपपद्यते तेभ्यश्चैतन्यम्’ इति । अन्ये ‘अभिव्यज्यते’  
इत्याहुः ।” तत्त्वसं पं० पृ० ५२० ।

३ “चैतन्यशक्तिं सतीमेव, प्रागसतीमेव, सदसतीं ना अभिव्यज्येद्युः ।”

सुख्यनुशा० टी० पृ० ७५ । न्यायकुसु० पृ० ३४५ ।

४ इदं वाक्यं तत्त्वोपपन्नं पृ० ५८, तत्त्वसं पं० पृ० ५१३, न्यायकुसु०  
पृ० ३४३, सम्मति० टी० पृ० ७१ इत्यादिषु सङ्गतं वर्तते ।

परैरप्यभिव्यक्तेरभीष्टत्वात् पृथिव्यादिभूतचतुष्टयैवत् । नन्वेवं  
पिष्टोदकादिभ्यो मदशक्त्यभिव्यक्तिरपि न स्यात् तत्राण्युक्त-  
विकल्पानां समानत्वादित्यप्यसाम्प्रतम्; तत्रापि द्रव्यरूपतया  
प्राक्सत्त्वाभ्युपगमात्, सकलभावानां तद्गुपेणानाद्यनन्तत्वात् ।

शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञेभ्यश्चैतन्यस्योत्पत्त्यभ्युपगमात् 'तेभ्यश्चैतन्य-  
त्वम्' इत्यत्र 'उत्पद्यते' इति क्रियाध्याहाराच्चाभिव्यक्तिपक्षभावी  
दोषोऽवकाशं लभते इत्यर्थः । सोपि चैतन्यं प्रत्युपादानकारण-  
त्वम्, सहकारिकारणत्वं वा भूतानाम् इति पृष्टं स्पष्टमा-  
चष्टाम् ? न तावदुपादानकारणत्वं तेषाम्; चैतन्ये भूतान्वयप्रस-  
ङ्गात्, सुवर्णोपादाने किरीटादौ सुवर्णान्वयवत्, पृथिव्याद्युपादाने १०  
काये पृथिव्याद्यन्वयवद्वा । न चात्रैवम्; न हि भूतसमुद्भूतः पूर्वम-  
चेतनाकारं परित्यज्य चेतनाकारमाददा(धा)नो धारणेरणद्रवो-  
ष्णतालक्षणेन रूपादिमत्स्वभावेन वा भूतस्वभावेनान्वितः प्रमा-  
णप्रतिपक्षः, चैतन्यस्य धारणादिस्वभावरहितस्यान्तःसंबेदनेनानु-  
भवात् । न च प्रदीर्घोपादानेन कज्जलादिना प्रदीपाद्यनन्वितेन १५  
व्यभिचारः; रूपादिमत्स्वमात्रेणात्राप्यन्वयदर्शनात् । पुद्गलविका-  
राणां रूपादिमत्स्वमात्राव्यभिचारात् । भूतचैतन्ययोरप्येवं सत्त्वा-  
दिक्रियाकारित्वादियमैरन्वयसङ्गात्वात् उपादानोपादेयभावः  
स्यादित्यप्यसमीचीनम्; जलानलादीनामप्यन्योर्न्यमुपादानोपादे-  
यभावप्रसङ्गात्, तद्धर्मैस्तत्राप्यन्वयसङ्गादाविशेषात् । २०

किञ्च, 'प्राणिनामाद्यं चैतन्यं चैतन्योपादानकारणकं चिद्विचर्त्त' २१

१ जैनेः । २ यथा पृथिव्यादिभूतचतुष्टयस्य पुद्गलरूपेण सतः षडादिपर्यायरूपेणा-  
सत्तत्त्वादिधारणादाविर्भावस्य प्रकृतस्यापि । ३ चैतन्याभिव्यक्तिनिषेधप्रकारेण ।  
४ मदशक्तौ । ५ दृष्टे । ६ अविद्वर्णश्रवणविशेषः । ७ जैनेः । ८ अन्वया ।  
९ चैतन्यं भूतान्वयि तदुपादानत्वात् । यद्युपादानं तत्तदन्वयि यथा सुदृपोपादानको  
घटः । १० पीतत्वमासुरत्व । ११ धारणादि । १२ उपसंहारः । १३ प्रलम्ब ।  
१४ प्रदीपादि उपादानं वत्स । १५ कज्जले प्रदीपरूपादिमत्स्वमात्रान्वयप्रकारेण ।  
१६ जलानलादयः परस्परमुपादानोपादेयभाववन्तः सत्त्वादियमैरन्वितत्वात्तद्वत्चैत-  
न्यवत् । १७ चैतन्यं यमि भूतोऽन्वयि भवतीति साध्यो धर्मः । तदुपादानत्वाद्  
यथा सुदुपादानको घटो सुदन्वयी । १८ तज्जन्यापेक्षया । १९ पूर्वबन्धचैतन्य ।  
२० वसः । २१ पूर्वचित् । २२ प्रमेय । (पर्याय)

१ "भूतानि किमुपादानकारणं चैतन्यस्य सहकारिकारणं वा ?"

उत्तरं ० पं० पृ० ५२६ । युक्त्यानु० मी० पृ० ७८ । न्यायकुसु० पृ० ३४४ ।

२ "प्राणिनामाद्यं चैतन्यं चैतन्योपादानकारणकं चिद्विचर्त्तत्वात् अथ्यचैतन्यविचर्त्त-  
वत् । तथा अन्यचैतन्यपरिणामः चैतन्यकार्यः तत एव तद्वत् ।" अष्टसह० पृ० ६३ ।

त्वान्मेष्यचिद्विवर्तवत् । तथान्यचैतन्यपरिणामश्चैतन्यकार्यस्तत्  
एव तद्वत्' इत्यनुमानात्तस्य चैतन्यान्तरोपादानपूर्वकत्वसिद्धेर्न  
भूतानां चैतन्यं प्रत्युपादानकारणत्वकल्पना घटते । सहकारिका-  
णत्वैकल्पनायां तु उपादानमन्यद्वाच्यम्, अनुपादानस्य कस्यचि-  
५ त्कार्यस्यानुपलब्धेः । शब्दविद्युदादेरनुपादानस्याप्युपलब्धेरदोषो-  
मित्यप्यपरीक्षिताभिधानम् ; 'शब्दादिः सोपादानकारणकः कार्य-  
त्वात् पटादिवत्' इत्यनुमानात्तत्सादृश्योपादानस्यापि सोपादान-  
त्वसिद्धेः ।

गोमयादेरचेतनाच्चेतनस्य वृश्चिकादेरुत्पत्तिप्रतीतिः तेर्नने-  
१० कान्तः इत्युक्तम् । तस्य पक्षान्तर्भूतत्वात् । वृश्चिकादिशरीरं  
ह्यचेतनं गोमयादेः प्रादुर्भवति न पुनर्वृश्चिकादिचैतन्यवि-  
वर्त्तस्तस्य पूर्वचैतन्यविवर्त्तादेवोत्पत्तिप्रतिज्ञानात् । अथ यथायैः  
पथिकाभिः अरणिनिर्मन्योत्थोऽनग्निपूर्वकः अर्घ्यस्त्वग्निपूर्वकः  
तथाद्यं चैतन्यं कायाकारपरिणतभूतेभ्यो भविष्यत्यन्यसु चैतन्य-  
१५ पूर्वकं विरोधाभावादिष्यपि मनोरथमाश्रम् ; प्रथमपथिकाभेरेनद्र्यु-  
पादानत्वे जलादीनामप्यजलाद्युपादानत्वापत्तेः पृथिव्यादिभूतचतु-  
ष्टयस्य तत्त्वान्तरभावविरोधः । येषां हि परस्परमुपादानोपादेय-  
भावस्तेषां न तत्त्वान्तरत्वम् यथा क्षितिर्विवर्त्तानाम्, परस्पर-  
मुपादानोपादेयभावश्च पृथिव्यादीनामित्येकमेव पुद्गलतत्त्वं क्षित्यै-

१ जन्मप्रभृतिमरणपर्वन्त । २ वसः ( कर्मधारयसमासः ) । ३ पर्वायः ।  
४ वसः । ५ भूतानाम् । ६ कारणम् । ७ परेण । ८ वृश्चिकचैतन्येन । ९ वृश्चिक-  
चैतन्यस्य । १० वसः । ११ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वम् । १२ चुडीसः । १३ मध्य-  
चैतन्यम् । १४ कार्यत्वाद्विहेतोः । १५ काष्ठ । १६ पृथिव्यादयो धर्मिणस्तत्त्वान्तरत्वं  
न प्राप्नुवन्तीति साध्यं परस्परमुपादानोपादेयभाववत्त्वात् ।-१७ सल्लिखदहनपवन ।

1

“नापि ते अरक्य विद्येः भवन्ति सहकारिणः ।

सोपादानविहीनायास्तस्यास्तेभ्योऽप्रसूतितः ॥ २०७ ॥

नोपादानाहिना शब्दविद्युदादिः प्रवर्त्तते ।

कार्यत्वात् कुम्भवत्... ॥ २०८ ॥ तत्कार्यको० पृ० २८ ।

न्यायकुरु० पृ० ३४४ ।

२ “गोमयादेरचेतनाच्चेतनस्य वृश्चिकादेरुत्पत्तिदर्शनात्तेन न्यमिचारी हेतुरिति  
चेन्नः तस्यापि पक्षीकरणात् । वृश्चिकादिशरीरसाच्चेतनस्यैव तेन सम्पृच्छं न पुनः  
वृश्चिकादिचैतन्यविवर्त्तस्य, तस्य पूर्वचैतन्यविवर्त्तादेव उत्पत्तिप्रतिज्ञानात् ।”

अष्टसह० पृ० ६३ । तत्कार्यको० पृ० २९ ।

३ “प्रथमपथिकाभेरेनद्र्युपादानत्वे जलादीनामप्यजलाद्युपादानलोपपत्तेः पृथि-  
व्यादिभूतचतुष्टयस्य तत्त्वान्तरभावविरोधः ।”

अष्टसह० पृ० ६३ ।

दिविर्वर्चमवतिष्ठेत्, सहकारिभावोपेगमे तु तेषां चैतन्येपि सोऽस्तु । यथैव हि प्रथमाविर्भूतपावर्कादेस्तिरोहितपावर्कान्तरादिपूर्वकत्वं तथा गर्भचैतन्यस्याविर्भूतस्वभावस्य तिरोहितचैतन्य-पूर्वकत्वमिति ।

न चानाद्येकानुभवितृव्यतिरेकेणैष्टानिष्टविषये प्रत्यभिज्ञानाभि-  
लाषादयो जन्मादौ युज्यन्ते; तेषामभ्यासपूर्वकत्वात् । न च  
मात्रुर्देरस्थितस्य वह्निर्विषयादर्शनेऽभ्यासो युक्तः; अतिप्रसङ्गात् ।  
न चैवलगावस्थायामभ्यासपूर्वकत्वेन प्रतिपन्नानामप्यनुसन्धो-  
नादीनां जन्मादावतत्पूर्वकत्वं युक्तम्; अन्यथा धूमोऽग्निपूर्वको-  
द्द्योप्यनग्निपूर्वकः स्यात् । मातापित्रभ्यासपूर्वकत्वात्तेषामदोषो-  
यमित्यप्यसम्भाव्यम्, सन्तानान्तराभ्यासादर्थेऽत्र प्रत्यभिज्ञानेऽ-  
तिप्रसङ्गात् । तदुपलब्धे 'सर्वं मैयैवोपलब्धमेतत्' इत्यनुसन्धानं  
चैविलापत्त्यानां स्यात् । परस्परं वा तेषां प्रत्यभिज्ञानप्रसङ्गः  
स्यात्, एकस्मिन्तानोद्भूतदर्शनस्पर्शनप्रत्ययवत् ।

'ज्ञानेनाहं घटादिकं जानामि' इत्यहमप्रत्ययप्रसिद्धत्वाच्चैतान्नो १५  
नैपलापो युक्तः । अत्र हि यथा कर्मतया विषयस्यावभासस्तथा  
कर्तृतयात्मनोपि । न चैत्र देहेन्द्रियादीनां कर्तृता; घटादिवत्तेषा-  
मपि कर्मतयाऽवभासनात्, तदप्रतिभासनेप्यहमप्रत्ययस्यानु-  
भवात् । न हि बहुलतमः पटलपटावगुण्ठितविग्रहस्योपरतेन्द्रिय-

१ वसः । २ परेण । ३ अग्निं प्रसरणिरूपपृष्ण्यादीनाम् । ४ दधि । ५ शक्ति-  
रूपसित । ६ उपादान । ७ शक्तिरूपसित । ८ उपादान । ९ किञ्च । १० आत्म ।  
११ सस्कार । १२ गलकल । १३ त्रिविप्रकृष्टेष्वर्थेऽन्यासो भवत्वदर्शनाविधेयात् ।  
१४ मध्यमावस्थार्या । १५ प्रत्यभिज्ञानादीनाम् । १६ अनन्यास । १७ अपलस्य ।  
१८ मातापितृलक्षण । १९ अपलै । २० वस्तुनि । २१ अपलेन । २२ किञ्च ।  
२३ यन्मापलेन दृष्टेऽर्थे द्वितीयापलस्य प्रत्यभिज्ञानप्रसङ्गः स्यात् । २४ आत्मलक्षण ।  
२५ किञ्च । २६ निवृत्तः । २७ ज्ञानेनाह घटादिकं जानामीति प्रत्यये । २८ ज्ञानेनाहं  
घटादिकं जानामीति प्रत्यये । २९ देहेन्द्रियादिकं जानामि । ३० नरस्य ।

१ "पूर्वानुसृतसुखानुवन्धाज्जातस्य हर्षमयशोकसम्प्रतिपत्तेः ।"

न्यायसू० ३।१।१९ । न्यायसू० ५० ४७० ।

"जातिभराणां संवादादपि सस्कारसंस्थितेः ।

अन्यथा कल्पयन्लोकमतिक्रामति केवलम् ॥

नाऽस्तुतेऽभिलाषोऽस्ति न विना सापि दर्शनात् ।

सखि जन्मान्तराश्रयं जातमानेऽपि लक्ष्यते ॥"

न्यायविनि० १।७९, ८० । न्यायकुसु० ५० ३४७ ।



व्यापारस्य गौरव्यौल्यादिधर्मोपेतं शरीरं प्रतिभासते । अहम्प्रत्ययः स्वसंविदितः पुनस्तस्यानुभूयमानो देहेन्द्रियविपर्ययादिव्यतिरिक्तौर्थालम्बनः सिद्ध्यतीति प्रमाणप्रसिद्धोऽनादिनिधनो द्रव्यान्तरमात्मा । प्रयोगः—अनाद्यनन्त आत्मा द्रव्यत्वात्पृथिव्यादिवत् ।

५ न तावदाश्रयासिद्धोऽयं हेतुः, आत्मनोऽहम्प्रत्ययप्रसिद्धत्वात् । नापि स्वरूपसिद्धः, द्रव्यलक्षणोपलक्षितत्वात् । तथाहि—द्रव्यमात्मा गुणपर्ययवत्त्वात्पृथिव्यादिवत् । न चायमप्यसिद्धो हेतुः, ज्ञानदर्शनादिगुणानां सुखदुःखहर्षविषादादिपर्यायाणां च तत्र सद्भावात् । न च घटादिनानेकान्तस्तस्य मृदादिपर्ययत्वात् ।

१० ननु शरीररहितस्यात्मनः प्रतिभासे ततोऽन्योऽनादिनिधनोऽसाविति स्यात् जलरहितस्यानलस्येव, न चैवम्, आसंसारं तत्सहितस्यैवास्यावभासनात् । तत्र 'शरीररहितस्य' इति कोऽर्थः ? किं तत्त्वभावविकलस्य, आहोस्वित्देशपरिहारेण देशान्तरावस्थितस्येति ? तत्राद्यपक्षेऽस्त्येव तद्रहितस्यास्य प्रतिभासः—

१५ रूपादिभेदचेतनस्वभावशरीरविलक्षणतया अमूर्त्तचैतन्यस्वभावतया चात्मनोऽप्यक्षगोचरत्वेनोक्तत्वात् । द्वितीयपक्षे तु—शरीरदेशादन्यत्रोपलब्धमात्रं तदभावः, शरीरप्रदेश एव वा ? प्रथमविकल्पे—सिद्धसाधनम् ; तत्र तदभावाभ्युपगमोत् । न खलु नैयायिकवज्जैनेनापि स्वदेहादन्यत्रात्मेप्यते । द्वितीयविकल्पे तु—  
२० न केवलमात्मनोऽभावोऽपि तु घटादेरपि । न हि सोपि स्वदेशादन्यत्रोपलभ्यते ।

किञ्च, स्वशरीरादात्मनोऽन्यत्वाभावः तत्त्वर्भावत्वात्, तद्गुणत्वात् वा स्यात्, तत्कार्यत्वाद्वा प्रकारान्तरासम्भवात् । पक्षत्रयेपि प्रागेव दत्तमुत्तरम् । ततश्चैतन्यस्वभावस्यात्मनः प्रमाणतः प्रसिद्धे-

। १ पश्चात् । २ मनः । ३ आत्मा । ४ अनादिनिधनस्य । ५ आत्मनि । ६ द्रव्यत्वादिति हेतोः । ७ सति । ८ परिहारमाह । ९ उक्तं ग्रन्थे । १० प्रतिभासाभावः । ११ प्रतिभासाभावः । १२ देशे । १३ जीवस्य । १४ वा । १५ जैनैः । १६ तत्त्वभावस्य यथतोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टं तत्तत्त्वस्तान्तरमिलादिना निरस्तत्वात् । १७ जैनैः ।

1

“द्रव्यतोऽनादिपर्यन्तः सत्त्वात् क्षित्वादितत्त्ववत् ।

स स्याच्च व्यभिचारोऽत्र हेतोर्नाशिन्यसंभवात् ॥ १४० ॥”

तत्त्वार्थे को० पृ० ३२ ।

2 “शरीररहितस्येति कोऽर्थः—किं तत्त्वभावविकलस्य आहो त्देशपरिहारेण देशान्तरावस्थितस्येति ।”

, ८ . स्या० रत्ना० पृ० १०८० ।

स्तत्स्वभावमेव ज्ञानं युक्तम् । तथा च स्वव्यवसायात्मकं तत् चेत-  
नात्मपरिणामत्वात्, यस्तु न स्वव्यवसायात्मकं न तत्तथा यथा  
घटादि, तथा च ज्ञानं तस्मात्स्वव्यवसायात्मकमित्यभ्युपगन्तव्यम् ।

नैतु विज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वेऽर्थवत्कर्मतापत्तेः करणात्मनो ज्ञाना-  
न्तरस्य परिकल्पना स्यात् । तस्यापि प्रत्यक्षत्वे पूर्ववत्कर्मतापत्तेः ५  
करणात्मकं ज्ञानान्तरं परिकल्पनीयमित्यनवस्था स्यात् । तस्या-  
प्रत्यक्षत्वेऽपि करणत्वे प्रथमे कोऽपरितोषो येनास्य तथा करणत्वं  
नेष्यते । न चैकैस्यैव ज्ञानस्य परस्परविरुद्धकर्मकरणाकाराभ्युप-  
गमो युक्तोऽनर्थः तथाऽदर्शनादित्याशङ्क्य प्रमेयवैयर्थ्यात्प्रमाण-  
प्रमितीनां प्रतीतिसिद्धं प्रत्यक्षत्वं प्रदर्शयन्नाह— १०

घटमहमात्मना वेद्मीति ॥ ८ ॥

कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः ॥ ९ ॥

न हि कर्मत्वं प्रत्यक्षतां प्रत्यक्षमोक्षमोक्षोऽप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् तद्व-  
त्तस्यापि कर्मत्वेनाप्रतीतेः । तदप्रतीतावपि कर्तृत्वेनास्य प्रतीतेः  
प्रत्यक्षत्वे ज्ञानस्यापि करणत्वेन प्रतीतेः प्रत्यक्षतास्तु विशेषः १५  
भावात् । अथ करणत्वेन प्रतीयमानं ज्ञानं करणमेव न प्रत्यक्षम् ;  
तदेवञ्चापि संमानम् । किञ्च, आत्मनः प्रत्यक्षत्वे परोक्षज्ञान-  
कल्पनया किं सौम्यम् ? तस्यैव स्वरूपवद्वाङ्मयार्थप्रादुर्भावप्रसिद्धेः ?  
कर्तुः करणमन्तरेण क्रियायां व्यापारासम्भवात्करणभूतपरोक्ष-

१ वस्तुः । २ चार्वाकेण भवता । ३ मीमांसकः । ४ विज्ञानं कर्म-प्रत्यक्षत्वात्,  
वदवत् । ५ करणस्वरूपत्वं । ६ पूर्वज्ञानस्य यथा । ७ प्रथमज्ञानस्य । ८ अप्रत्यक्षत्वे ।  
९ ज्ञेयः । १० वत्कर्म तदेव करणम् । ११ घटे । १२ जर्जस्य वषा । १३ करण-  
भूतेन । १४ अन्यथा । १५ आत्मा न प्रत्यक्षः कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वात्करणज्ञानवत् ।  
१६ यत् कर्म न भवति तत्प्रत्यक्षमपि न भवतीत्युक्ते । १७ करणज्ञानवत् ।  
१८ उभयत्र कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वस्य । १९ समाधानपरिहारम् । २० कर्तृत्वेनात्मा  
प्रतीयमानः कर्तव्यं स्यात् प्रत्यक्ष इति समानम् । २१ प्रयोजनम् । २२ प्रमितिलक्षणाया ।

१ “कर्मत्वेनाप्रतियोगसमानत्वात् करणज्ञानमप्रत्यक्षमिति चेन्न; करणत्वेन प्रतियोग-  
मानस्य प्रत्यक्षत्वोपपत्तेः । कथञ्चित् प्रतिभासते, कर्म च न भवति इति व्याघातस्य प्रति-  
पादितत्वात् ।” तत्त्वार्थको० पृ० ४६ । न्यायकुसु० पृ० १७६ । प्रमाणप० पृ० ६१ ।

२ “अथ करणत्वेनानुभूयमानं ज्ञानं करणमेव स्यात् प्रत्यक्षं तर्हि कर्तृप्रमाणफल-  
रूपतया अनुभूयमानयोः आत्मप्रमाणफलयोः कर्तृप्रमाणफलरूपतैव स्यात् न प्रत्यक्ष-  
त्वमित्यव्यस्तु ।”

सा० रत्ना० पृ० २१३ ।

ज्ञानकल्पना नानार्थिकेत्यप्यसाधीयः; मनसश्चक्षुरादेश्वान्तर्वह्निः-  
करणस्य सद्भावात् ततोऽस्य विशेषामोवाच । अनयोरचेतनत्वा-  
त्प्रधानं चेतनं करणमित्यप्यसमीचीनम्; भावेन्द्रियमनसोश्चेत-  
नत्वात् । तत्परोक्षत्वसाधनं च सिद्धसाधनम्; स्वार्थग्रहण-  
५ शक्तिलक्षणार्थं लब्धमनसश्च भावकरणस्य लब्धस्थाप्रत्यक्षत्वात् ।  
उपयोगलक्षणं तु भावकरणं नाप्रत्यक्षम्; स्वार्थग्रहणव्यापारल-  
क्षणस्यास्य स्वसंवेदनप्रत्यक्षप्रसिद्धत्वात् 'घटादिद्वारेण घटादि-  
ग्रहणे उपयुक्तोऽप्यहं घटं न पश्यामि पदार्थान्तरं तु पश्यामि'  
इत्युपयोगस्वरूपसंवेदनस्याखिलजनानां सुप्रसिद्धत्वात् । क्रियायाः  
१० करणाविनाभावित्वे चात्मनः स्वसंविद्यौ किङ्करणं स्यात् ? सौत्तमै-  
वेति चेत्, अर्थेऽपि स एवास्तु किमदृष्टान्त्येककल्पनया ? ततश्चक्षु-  
रादिभ्यो विशेषमिच्छतां ज्ञानस्य कर्मत्वेनाप्रतीतावप्यध्यक्षत्व-  
मभ्युपगन्तव्यम् । फलज्ञानात्मनोः फलत्वेन कर्तृत्वेन चानुभूय-  
मानयोः प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमे करणज्ञाने करणत्वेनानुभूयमानेऽपि  
१५ सोस्तु विशेषोभावात् । न चोभ्यां सर्वथा करणज्ञानस्य भेदो

१ परोक्षज्ञानस्य । २ परोक्षत्वेन । ३ उभयत्र । ४ मुख्यम् । ५ कर्मत्वेना-  
प्रतीयमानत्वाद्भेदोः । ६ बाष्पेन्द्रियाभिज्ञायाः । ७ अर्थग्रहणशक्तिः । ८ असदादि ।  
९ अर्थग्रहणव्यापारः । १० तदेव दर्शयति । ११ व्याप्तिप्रमाणः । १२ किञ्च ।  
१३ स्वस्वरूपम् । १४ करणम् । १५ भेदम् । १६ परेण । १७ करणरूपस्य । १८ अर्थ-  
परिच्छिन्ति । १९ तादि ( तासंज्ञा वृष्ट्याः । द्वि पदेन द्विवचनं ग्राह्यम् ) । २० परेण ।  
२१ करणज्ञानं प्रत्यक्षमेव स्वस्वरूपेण प्रतिभासमानत्वात्फलज्ञानात्मकम् । २२ स्वरूपेण  
प्रतिभासाविशेषात् । २३ किञ्च । २४ का ( पञ्चमी विभक्तिः ) । २५ अन्यथा ।

१ "इन्द्रियमनसोरेव करणत्वात्, तयोरचेतनत्वादुपकरणमात्रत्वात् प्रधानं  
चेतनं करणमिति चेन्न; भावेन्द्रियमनसोः परेषां चेतनस्योऽवस्थितत्वात् ।" तत्स्वाधी-  
शो० पृ० ४६ । "मनसश्चक्षुरादेश्वान्तर्वह्निःकरणस्य सद्भावात्, तान्मा ज्ञानस्य  
परोक्षत्वेन विशेषाभावाच्च । अथ मनश्चक्षुरादिकायादेरचेतनत्वात् ज्ञानार्थं करणं  
चेतनत्वेन तान्मा विशिष्यत इत्युच्यते; तदप्यनुपपन्नम्; भावरूपयोरिन्द्रियमन-  
सोरपि चेतनत्वात्\*\*\*" स्या० रत्ना० पृ० २१४ ।

२ "अर्थग्रहणशक्तिः लब्धिः, उपयोगः पुनरर्थग्रहणव्यापारः ।"

लघ्वी० खवि०, न्यायकुलु० पृ० ११५ ।

३ "चक्षुरादिद्वारेणोपयुक्तोऽहं घटं पश्यामीत्युपयोगस्वरूपसंवेदनस्य सर्वेषामपि  
प्रसिद्धत्वात् ।" स्या० रत्ना० पृ० २१४ ।

४ "तदेव तस्य फलमिति चेत्; प्रमाणादभिन्नं भिन्नं वा ?" कपञ्जिदभिन्नमिति  
चेन्न सर्वथा करणज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वं विरोधात् ।" तत्स्वाधीशो० पृ० ४६ ।

"किञ्च, आत्मप्रमाणफलान्या सकाशात् करणज्ञानस्य सर्वथा भेदः, कपञ्जिदा ?  
स्या० रत्ना० पृ० २१४ ।

मतान्तरानुषङ्गात् । कथञ्चिद्धेदे तु नास्याऽप्रत्यक्षतैकान्तः श्रेयान् प्रत्यक्षस्वभावाभ्यां कर्तृफलज्ञानाभ्यामभिन्नैस्तैकान्ततोऽप्रत्यक्षत्व-विरोधात् ।

किञ्च, आत्मज्ञानयोः सर्वथा कर्मत्वाप्रसिद्धिः, कथञ्चिद्धा ? न तावत्सर्वथा; पुरुषान्तरापेक्षया प्रमाणान्तरपेक्षया च कर्मत्वाप्रसिद्धिप्रसङ्गात् । कथञ्चिच्चेत्, येनात्मनो कर्मत्वं सिद्धं तेन प्रत्यक्षत्वमपि, अस्मिन्नादिप्रमात्रपेक्षया घटादीनामप्यंशैत एव कर्मत्वाध्यक्षयोः प्रसिद्धेः । विरुद्धा च प्रतीयमानयोः कर्मत्वाप्रसिद्धिः, प्रतीयमानत्वं हि ब्राह्मत्वं तदेव कर्मत्वम् । स्वतः प्रतीयमानत्वापेक्षया कर्मत्वाप्रसिद्धौ परतः कथं तत्सिद्ध्येत् ? विरोधाभावाच्चे- १० त्सर्वतस्तत्सिद्धौ को विरोधः ? कर्तृकरणत्वयोः कर्मत्वेन सहानवस्थानम्; परतस्तत्सिद्धौ संमानम् । 'घटब्राह्मिणोऽनविशिष्टमात्मानं स्वतोऽहमनुभवामि' इत्यनुभवसिद्धं स्वतः प्रतीयमानत्वापेक्षयापि कर्मत्वम् । तत्कार्यवज्ज्ञानस्य प्रतीतिसिद्धप्रत्यक्षताऽपल्लोपो-

१ नैयायिक । २ करणरूपेण ननु ज्ञानरूपेण । ३ का । ४ करणज्ञान सर्वथा न परोक्षं प्रत्यक्षस्वभावाभ्यां कर्तृफलज्ञानाभ्यामभिन्नत्वात्तत्पर्यम् । ५ करणम् । ६ करण । ७ अन्यथा । ८ अस्य करणज्ञानमस्ति उपदेष्टुकृताभेदनिश्चयान्वयानुपपत्तेः । ९ करण । १० मय करणज्ञानमस्ति अर्थप्राप्त्यान्वयानुपपत्तेः । ११ स्वभावेन । १२ साकल्येन किमिति न स्वात्मप्रत्यक्षत्वमित्युक्ते सत्याह । १३ त्वयुक्त्वादौ । १४ किञ्च । १५ कर्मत्वेन करणत्वेन च । १६ आत्मज्ञानयोः । १७ स्वयं स्वं जानातीति अपेक्षया । १८ परापेक्षया स्वयं कर्मत्वं च कथम् । १९ (स्वयं) । २० कर्तृकरणयोः परतः कर्मत्वेन प्रतीतिरस्ति कथं समानं सहानवस्थानं स्यादित्युक्ते सत्याह । २१ विशेषण । २२ स्वयं । २३ अन्यथा ।

१ "सर्वथा प्रतीयमानत्वमसिद्धं कथञ्चिद्धा ? न तावत्सर्वथा; परेणापि प्रतीयमान-त्वाभावाप्रसङ्गात् । कथञ्चिद्धेदे तु नासिद्धं साधनम्, तत्रैवोपन्यासात् । स्वतःप्रतीय-मानत्वमसिद्धमिति चेत्; परतः कथं तत्सिद्धम् ? विरोधाभावादिति चेत्; स्वतस्तत्सिद्धौ को विरोधः ? कर्तृत्वकर्मत्वयोः सहानवस्थानमिति चेत्; परतस्तत्सिद्धौ समानम् ।"

तत्कार्येणो० पृ० ४५ ।

"सुप्रसिद्धो हि घटब्राह्मिणोऽनविशिष्टमात्मानं स्वतोऽहमनुभवामीत्यनुभवः"

न्यायकुसु० पृ० १७७ ।

२ "सकलजगत्प्रतीतो हि सान्ध्याब्राह्मिणोऽतोऽ(स्वतोऽ)हमनुभवामि इत्यनुभवः, तस्माच्च प्रसिद्धं ज्ञानं सारूपापेक्षया कर्मत्वं कथं नामापहोहेतुं शक्यते ?"

सा० रत्ना० पृ० २१५

ऽर्थप्रत्यक्षत्वस्याप्यपलापप्रसङ्गात् । प्रतीतिसिद्धस्वभावस्यैकैवाप-  
लापेऽन्यत्राप्यनाश्वसाच्च कच्चित्प्रतिनियतस्वभावव्यवस्था स्यात् ।

- किञ्च, इयं प्रत्यक्षता अर्थधर्मः, ज्ञानधर्मो वा ? न तावदर्थधर्मः,  
नीलतादिवत्तद्देशे ज्ञानकालादन्यदाप्यनेकप्रमातृसाधारणविषय-  
५ तथा च प्रसिद्धिप्रसङ्गात् । न चैवम्, आत्मन्येवास्या ज्ञानकाले  
एव स्वासाधारणविषयतया च प्रसिद्धेः । तथा च न प्रत्यक्षता  
अर्थधर्मः तद्देशे ज्ञानकालादन्यदाप्यनेकप्रमातृसाधारणविषयतया  
चाऽप्रसिद्धत्वात् । यस्तु तद्धर्मः स तद्देशे ज्ञानकालादन्यदाप्य-  
नेकप्रमातृसाधारणविषयतया च प्रसिद्धो दृष्टः, यथा रूपादिः,  
१० तद्देशे ज्ञानकालादन्यदाप्यनेकप्रमातृसाधारणविषयतया चाप्र-  
सिद्धा चेयम् तस्मान्न तद्धर्मः । यस्यात्मनो ज्ञानेनार्थः प्रकटीक्रियते  
तद्विज्ञानकाले तस्यैव सोऽर्थः प्रत्यक्षो भवतीत्यपि अद्वयमात्रम्,  
अर्थप्रकाशकविज्ञानस्य प्राकट्याभावे तेनार्थप्रकटीकरणासम्भवा-  
त्तदीपवत्, अन्यथा सन्तानान्तरवर्तिनोपि ज्ञानादर्थप्राकट्य-  
१५ प्रसङ्गः । चक्षुरादिवत्तस्य प्राकट्याभावेऽप्यर्थे प्राकट्यं घटेतेत्यप्यस-  
मीचीनम्, चक्षुरादेरर्थप्रकाशकत्वासम्भवात् । तत्प्रकाशकज्ञान-  
हेतुत्वात् खलूपचारेणार्थप्रकाशकत्वम् । कारणस्य ज्ञातस्यापि  
कार्ये व्यापाराविरोधो ज्ञापकस्यैवाज्ञातस्य ज्ञापकत्वविरोधात्  
“नाज्ञातं ज्ञापकं नाम” [ ] इत्यखिलैः परीक्षादक्षैरभ्युप-  
२० गमात् । प्रमातुरात्मनो ज्ञापकस्य स्वयं प्रकाशमानस्योपगमादर्थे  
प्राकट्यसम्भवे करणज्ञानकल्पनावैफल्यमित्युक्तम् । नापि ज्ञान-  
धर्मः, अस्य सर्वथा परोक्षतयोपगमात् । यत्खलु सर्वथा परोक्षं तन्न  
प्रत्यक्षताधर्मोधारो यथाऽदृष्टादि, सर्वथा परोक्षं च परैरभ्युपगमं  
ज्ञानमिति ।

१ करणज्ञानं प्रत्यक्षमर्थप्रत्यक्षत्वान्यथानुपपत्तेः । २ प्रत्यक्षत्वरूपस्य । ३ करण-  
ज्ञाने । ४ स्थूलत्वात्पर्ये । ५ अविश्वासात् । ६ वस्तुनि । ७ घटपटादि । ८ अन्यथा ।  
९ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वमेनेन वाक्येनार्थधर्मत्वादित्येतस्य हेतोः । १० करणज्ञानेन ।  
११ करण । १२ ज्ञानं नार्थं प्रकटयति स्वयमप्रत्यक्षत्वात्परमाणवादिवत् । १३ करण-  
ज्ञानं प्रत्यक्षमर्थप्रकाशकत्वात्तदीपवत् । १४ अ(प्र)त्यक्षादपि ज्ञानादर्थप्राकट्ये ।  
१५ पुनरुपान्तर । १६ स्वस्य । १७ उभयत्रापि परोक्षत्वाविशेषात् । १८ कारकस्य ।  
१९ किञ्च । २० करणज्ञानं न प्राकट्यमर्थोपिकरणं सर्वथा परोक्षतयोपगमात् ।  
२१ करणम् ।

१ “अथ प्रकाशतामात्रं तदपि ज्ञानधर्मः, अवैकर्मः उभयधर्मः, स्वतन्त्रं वा स्यात् ?”

न्यायकुसु० पृ० १७९ ।

कुतश्चैवंवादिनो ज्ञानैसङ्गावसिद्धिः-प्रत्यक्षात्, अनुमानादेर्वा? न तावत्प्रत्यक्षात्तस्यातद्विषयतयोपगमौत् । यद्यद्विषयं न भवति न तत्तद्व्यवस्थापकम्, यथास्माद्वक्प्रत्यक्षं परमाण्वाद्यविषयं न तद्व्यवस्थापकम् । ज्ञानाविषयं च प्रत्यक्षं परैरभ्युपगतमिति ।

नाप्यनुमानात्, तदविनाभाविलिङ्गाभावात् । तद्धि अर्थज्ञतिः; ५ इन्द्रियार्थौ वा, तत्सद्देकारिर्गुणं मनो वा? अर्थज्ञतियेत्सा किं ज्ञानस्वभावा, अर्थस्वभावा वा? यदि ज्ञानस्वभावा; तदाऽसिद्धत्वात्तस्याः कथमनुमापकत्वम्? न खलु ज्ञानस्वभावाविशेषेपि 'ज्ञतिः प्रत्यक्षा न करणज्ञानम्' इत्यत्र व्यवस्थानिवन्धनं पश्यामोऽन्यत्र मेहामोहात् । शब्दमात्रभेदाच्च सिद्धासिद्धत्वेभेदः १० स्वेच्छापरिकल्पितोऽर्थस्याभिन्नत्वात् । ज्ञानत्वेन हि प्रत्यक्षताविरोधे ज्ञप्तावपीयं न स्याद्विशेषात् । अर्थार्थस्वभावा ज्ञतिः तदार्थप्राकट्यं सा, न चैतदर्थग्राहकविज्ञानं स्यात्तन्माधिकरणत्वेनापि प्रकट्याभावे घटते, पुरुषान्तरज्ञानादप्यर्थप्राकट्यप्रसङ्गात् । आत्माधिकरणत्वपरिज्ञानाभावे च ज्ञानस्य ज्ञानेन ज्ञातोप्यर्थः नात्मानु- १५ भवितुं कत्वेन ज्ञातो भवेत् 'मेया ज्ञातोऽयमर्थः' इति । अर्थगतप्राकट्यस्य सर्वसाधारणत्वोच्चात्मान्तरबुद्धेरप्यनुमानं स्यात् । यद्बुद्ध्या यस्यार्थः प्रकटीभवति तद्बुद्धिमेवासौ ततोऽनुमि-

१ सर्वथा परोक्षकरणज्ञानमिलेवंवादिनः । २ करण । ३ नीतं प्रत्यक्षं करणज्ञानान्वयवस्थापकं तदविषयत्वादिति । ४ भीमासकेः । ५ वसः । ६ यकाग्रम् । ७ करणज्ञान । ८ अज्ञातासिद्धत्वम् । ९ पक्षे । १० महदज्ञानं वर्णयित्वा । ११ अर्थज्ञतिः करणज्ञानमिति । १२ प्रत्यक्षाप्रलक्ष्यभेदः । १३ ज्ञानलक्षणम् । १४ करणम् । १५ ज्ञानत्वेन प्रत्यक्षतायाः । १६ करणज्ञानस्य । १७ जीव अहमधिकरणमस्य ज्ञानस्येति परिज्ञानाभावे । १८ अलन्तपरोक्षत्वात् । १९ स्त । २० किञ्च । २१ ज्ञानम् । २२ जीवेन । २३ किञ्च । २४ सर्वथा करणज्ञानमस्ति अर्थप्राकट्यान्वयानुपपत्तेः । २५ ता । २६ अर्थप्राकट्यात् । २७ जानाति ।

१ "किञ्च, बुद्धेः स्वसंवेदनप्रलक्षणागोचरत्वे कुतस्तत्तत्तन् सिद्ध्यै ?

प्रमाणान्तराद्येत् किं प्रत्यक्षरूपात्, अनुमानरूपाया ?"

न्यायकुसु० पृ० १७७ । सा० रत्ना० पृ० २१६ ।

२ "तद्धि इन्द्रियम्, अर्थः, तदतिशयः, तत्सम्बन्धः, तच्च प्रवृत्तिर्वा भवेत् ?"

न्यायकुसु० पृ० १७८ । सा० रत्ना० पृ० २१६ ।

३ "यदि पुनरर्थवर्तनादर्थपरिच्छिन्नेः प्रत्यक्षत्वेत्यते, तदा साऽर्थप्राकट्यमुच्यते, न चैतदर्थग्राहणविज्ञानस्य प्राकट्याभावे घटामटति अतिप्रसङ्गात् । न अप्रकटे अर्थज्ञाने नान्तान्तरवर्तिनिकारस्य चिदर्थस्य प्राकट्यं घटते ।" प्रमाणप० पृ० ६१ ।

मीते नात्मान्तरबुद्धिमित्यप्यसारम्; बुद्ध्यात्मनोरप्रत्यक्षतैकान्ते 'बुद्ध्या यस्यार्थः प्रकटीभवति' इत्यस्यैवान्धपरम्परया व्यवस्थापयितुमशक्तेः । प्रत्यक्षत्वे चात्मनः सिद्धं विज्ञानस्य स्वार्थव्यवसायात्मकत्वम् । आत्मैव हि स्वार्थग्रहणपरिणतो जानातीति ज्ञान-  
५ मिति कर्तृसाधनज्ञानशब्देनाभिधीयते ।

इन्द्रियार्थो लिङ्गमित्यप्यनालोचिताभिधानम्; तयोर्विज्ञान-सद्भावविनाभावासिद्धेः । योग्यदेशे स्थितस्य प्रतिपत्तिरिन्द्रियार्थ-सद्भावित्वेनैव गतमनसो विज्ञानाभावात् । तत्सिद्धौ चेन्द्रिय-स्यातीन्द्रियत्वेनार्थस्यापि ज्ञानाऽप्रत्यक्षत्वेनासिद्धेः कथं तथापि  
१० हेतुत्वं तयोः ? सिद्धौ वा न साध्यज्ञानकाले ज्ञानान्तरात्तत्सिद्धि-युगपद् ज्ञानानुत्पत्त्यभ्युपगमात् । उत्तरकालीनज्ञानात्तत्सिद्धौ-तदा साध्यज्ञानस्याभावात्कस्यानुमानम् ? उभयविषयस्यैकज्ञान-स्यानभ्युपगमादनेवस्थाप्रसङ्गाच्चानयोरसिद्धिः ।

इन्द्रियार्थसहकारिप्रगुणं मनो लिङ्गमित्यप्यपरीक्षिताभिधा-  
१५ नम् । तत्सद्भावासिद्धेः । युगपद् ज्ञानानुत्पत्तेस्तत्सिद्धिः, तथा हि-आत्मनो मनसा तस्येन्द्रियैः सम्बन्धे ज्ञानमुत्पद्यते । यद्वा चास्य चक्षुषा सम्बन्धो न तदा शेषेन्द्रियैरतिसूक्ष्मत्वात्, इत्यप्य-सङ्गतम्; दीर्घशङ्कुलीभक्षणादौ युगपद्रूपादिज्ञानपञ्चकोत्पत्तिप्र-तीतिः अश्वविकल्पकाले गोनिश्चयाच्च तदसिद्धेः । न चात्र क्रमैका-  
२० न्तकल्पना-प्रत्यक्षविरोधात् । किञ्चैवंचार्दिना ( किं ) युगपत्प्रतीतिं येनावयवावयव्यादिव्यवहारः स्यात् ? घटपटादिकमिति चेत् न; अत्रापि तथा कल्पनाप्रसङ्गात् । किञ्चातिसूक्ष्मस्यापि मनसो नयना-

१ करणज्ञान । २ ता । ३ ज्ञान । ४ द्वितीयविकल्पस्य । ५ करणज्ञानस्य । ६ भा (तृतीया) । ७ कस्मिंश्चिद्विषये । ८ करणज्ञानस्य सर्वथा परोक्षत्वात् । ९ इन्द्रियार्थयोः । १० असिद्धत्वेऽपि । ११ करणज्ञानं प्रति । १२ करणज्ञाने । १३ इन्द्रियार्थे । १४ इन्द्रियार्थोल्लङ्घात्करणज्ञानसिद्धिरिन्द्रियार्थयोरपि सिद्धिः कस्याप्यप्रकरणज्ञानात्तस्यापि अपरेन्द्रियार्थादित्यनवस्था । १५ एकग्रम् । १६ मनसः । १७ च शब्दः आधिक्ये । १८ दीर्घशङ्कुलीभक्षणादौ युगपद् ज्ञानं नोत्पद्यते इत्येवं-वादिना । १९ अत्राक्षेपार्थं किमिति पूर्वेण सम्बन्धः । २० क्रमेकान्त ।

१ "अश्वविकल्पकाले गोदर्शनानुभवात् युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिश्चासिद्धा कथं मनोऽनु-मापिका ? नचाश्वविकल्पगोदर्शनयोर्युगपदनुभवोऽपि क्रमोत्पत्तिकल्पना प्रत्यक्षविरो-धात् ।"

सम्पत्ति० टी० पृ० ४७७ ।

२ "किंच, चक्षुराण्यन्यमेन्द्रियसम्बन्धात् रूपादिज्ञानोत्पत्तिकाले मनसः सम्बन्धात् मानसज्ञानं किञ्च भवेत् ? तयाविचाट्टाभावादित्युत्तरम् अट्टनिमित्तयुगपज्ज्ञानानुत्पत्तिप्रसक्तो मनसोऽनिमित्तता... ।" सम्पत्ति० टी० पृ० ४७७ ।

दीनामन्यतमेन सन्निकर्षसमये रूपादिज्ञानवन्मानसं सुखादिज्ञानं  
किञ्च स्यात् सम्बन्धसम्बन्धसद्भावात् ? तथाविधादृष्ट्याभावा-  
च्चेत् ; अदृष्टता तर्हि युगपद् ज्ञानानुत्पत्तिस्तदेवांनुमापयेन्न मनः ।

किञ्च, 'युगपद् ज्ञानानुत्पत्तेर्मनःसिद्धिस्तुतश्चास्याः प्रसिद्धिः'  
इत्यन्योन्याश्रयः । चक्रकप्रसङ्गश्च—'विज्ञानसिद्धिपूर्विका हि युगपद् ५  
ज्ञानानुत्पत्तिसिद्धिः, तत्सिद्धिर्मनःपूर्विका' इति । तस्मात्तत्सह-  
कारि प्रयुणं मनो लिङ्गमित्यप्यसिद्धम् ।

अस्तु वा किञ्चिद्विद्म, तथापि-ज्ञानस्याप्रत्यक्षतैकान्ते तत्स-  
म्बन्धासिद्धिः । न चासिद्धेः सम्बन्ध(न्धं) लिङ्गं कैस्यचिद्वैकमकमति-  
प्रसङ्गात् । ततः परोक्षतैकान्ताग्रहग्रहाभिनिवेशपरित्यागेन 'ज्ञानं १०  
स्वैव्यवसायात्मकमर्थज्ञप्तिनिमित्तत्वात् आत्मवत्' इत्यभ्युपगन्त-  
व्यम् । नैत्रालोकादिज्ञानेकान्त इत्यप्ययुक्तम् ; तस्योपचार-  
तोऽर्थज्ञप्तिनिमित्तत्वसमर्थनात्, परमार्थतः प्रमातृप्रमाणयोरेव  
तन्निमित्तत्वोपपत्तेरित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

एतेन 'आत्माऽप्रत्यक्षः कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वात्करणज्ञानवत्' १५

१ मनसा सम्बन्धे आत्मनि सुखादे समवायसम्बन्धः सम्बन्धसम्बन्धः । २ युग-  
पज्ज्ञानोत्पादकस्य । ३ करणज्ञानं कर्म । ४ करणज्ञान । ५ इति । ६ विज्ञानसिद्धिः ।  
७ इन्द्रियार्थः । ८ जविनाभाव । ९ ना । १० लिङ्गस्य । ११ अज्ञात ।  
१२ साध्यस्य । १३ अन्यथा । १४ दुराग्रहः । १५ करणज्ञानं । १६ साध्यस्य  
स्यात् स्वज्ञप्तिनिमित्तत्वाद्भावात् । १७ कुठारेण न्यभिचारः । १८ नीमासकमादृक्त-  
णज्ञानदूषणकथनेन । १९ करणज्ञानस्य परोक्षत्वमिराकरणपरेण प्रत्येन ।

१ "तथाहि—सिद्धे तद्विज्ञाने मनःसिद्धिः, तत्सिद्धौ च युगपज्ज्ञानोत्पत्तिविज्ञ-  
नसिद्धिरितीतरेतराश्रयत्वाच्च मनःसिद्धिः ।" सन्मति० टी० पृ० ४७८ ।

२ "अस्तु वा किञ्चिद्विद्म, तथापि अगृहीतप्रतिवन्तं तद् न परोक्षां बुद्धिम-  
नुमापयितुं समर्थम्...प्रतिबन्धश्च किङ्कलिगिनोः जविनाभूतत्वेन प्रमाणप्रतिपन्नयो-  
रेव भवति । न च ज्ञानं तेन चाविनाभूतं किञ्चिद्विज्ञं प्रमाणेन प्रतिपन्नं यतः सम्ब-  
न्धग्रहणपुरस्सरमनुमानं प्रवर्तते ।" न्यायकुसु० पृ० १८१ ।

३ "ज्ञानं स्वपरिच्छेदकमर्थज्ञानत्वात् ।" शुच्यनुशा० टी० पृ० ९

"सम्बन्धसायात्मकं ज्ञानमर्थपरिच्छिन्ननिमित्तत्वादात्मवत्"

प्रमाणप० पृ० ११ ।

४ "किञ्च अप्रकाशस्वभावानि ज्ञेयानि माता च प्रकाशमपेक्षन्ताम्, प्रकाशस्तु  
प्रकाशात्मकत्वान्नान्यमपेक्षते । आप्तो हि ज्ञेयानि माता च प्रकाशन्ते, ज्ञेयस्य च न



इत्याचक्ष्माणः प्रमाकैरोपि प्रत्याख्यातः । प्रमिते<sup>१</sup> कर्मत्वेनाप्रतीय-  
मानत्वेपि प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमात् । तस्याः क्रियात्वेन प्रतिभासना-  
त्प्रत्यक्षत्वे करणज्ञान-आत्मनोः करणत्वेन कर्तृत्वेन च प्रतिभास-  
नात्प्रत्यक्षत्वमस्तु । न चाभ्यां तस्याः सर्वथा भेदोऽभेदो वा-  
५ मर्तान्तरानुपपन्नात् । कथञ्चिदभेदे-सिद्धं तयोः कथञ्चित्प्रत्यक्ष-  
त्वम् ; प्रत्यक्षादभिज्ञेयोः सर्वथा परोक्षत्वविरोधात् । ननु शाब्दी  
प्रतिपत्तिरेषां 'घटमहमात्मना वेद्मि' इति नानुभवप्रभावा  
तस्यास्तैदविनाभावाभावात्, अन्यथा 'अहल्यग्रे हस्तियूथशत-  
मास्ते' इत्यादिप्रतिपत्तेरप्यनुभवत्वप्रसङ्गस्तत्कथमर्थः प्रमात्रादीनां  
१० प्रत्यक्षताप्रसिद्धिरित्याह—

**शब्दानुच्चारणेपि स्वस्यानुभवनमर्थवत् ॥ १० ॥**

यथैव हि घटस्वरूपप्रतिभासो घटशब्दोच्चारणमन्तरेणापि  
प्रतिभासते । तथा प्रतिभासमानत्वाच्च न शाब्दस्तथा प्रमात्रा-  
दीनां स्वरूपस्य प्रतिभासोपि तच्छब्दोच्चारणं विनापि प्रतिभा-  
१५ सते । तस्माच्च न शाब्दः । तच्छब्दोच्चारणं पुनः प्रतिभातप्रमा-

१ भुवम् । २ एह । ३ अर्धपरिच्छिन्नेः । ४ प्रामाकरेण । ५ सति ।  
६ कर्मत्वेनाप्रतीयमानयोरपि । ७ किञ्च । ८ नैयायिकः । ९ बौद्धः । १० अन्यथा ।  
योगसौगतयोः परिग्रहः । ११ कर्मत्वेन परोक्षत्वं कर्तृत्वेन करणत्वेन प्रत्यक्षत्वं  
कर्तृज्ञानयोः । १२ प्रमितिरूपात् । १३ करणज्ञानात्मनोः । १४ सा । १५ जह-  
मात्मना । १६ स्वसवेदनप्रत्यक्ष । १७ अनुभवेन सह । १८ प्रतीतित्वात्स-  
प्रतिपन्नप्रतीतिवत् । १९ कारणत्वात् । २० शाब्दाः प्रतिपत्तेः श(स)काशात् ।  
२१ ता । २२ अर्थं घटः । २३ अनुमानसङ्गावाच्च । २४ सुखादिवत् ।

द्वयमपि प्रकाशते । न च तदानीं तत्रास्त्येव; प्रबोधे सति प्रत्यक्षिज्ञानात्, तत्र प्रकाश-  
त्मकत्वे सुषुप्तिदशायामपि द्वयं प्रकाशेत, तस्मादप्रकाशात्मकमेतत् द्वयमंगीक्रियते ।  
मेयानां भानुश्च स्वतःप्रकाशो नोपपन्न इति युक्तं तयोः परापेक्षा, मितौ च कान्ति-  
दनुपपत्तिर्नास्ति इति स्वयम्प्रकाशैव मितिः ।” प्रक० पं० पृ० ५७ ।

१ तेषां फलज्ञानहेतोर्व्यभिचारः, कर्मत्वेनाप्रतीयमानस्य फलज्ञानस्य प्रामाकरैः  
प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमात् । तस्य क्रियात्वेन प्रतिभासनात् प्रत्यक्षत्वे प्रमातुरप्यात्मनः  
कर्तृत्वेन प्रतिभासनात् प्रत्यक्षत्वमस्तु ।” प्रमाणप० पृ० ६१ ।

२ “तच्च फलज्ञानमात्मनोऽर्थान्तरभूतमनर्थान्तरभूतमुभयं वा ? न तावत् सर्व-  
थाऽर्थान्तरभूतमनर्थान्तरभूतं वा; मतान्तरप्रवेशानुपपन्नात् । नाभ्युपगम्य; पक्षद्वयनिग-  
हितदूषणानुपपत्तेः । कथञ्चिदर्थान्तरत्वे तु फलज्ञानादात्मनः कथञ्चित्प्रत्यक्षत्वं मन्विनाप्यर्थ,  
प्रत्यक्षादभिज्ञस्य कथञ्चिदप्रत्यक्षतैकान्तविरोधात् ।” प्रमाणप० पृ० ६१ ।

त्रादिस्वरूपप्रदर्शनपरं नाऽनालम्बनमर्थवत्, अन्यथा 'सुख्यदम्' इत्यादिप्रतिभासस्याप्यनालम्बनत्वप्रसङ्गः ।

नैनु यथा सुखादिप्रतिभासः सुखादिसंवेदनस्याप्रत्यक्षत्वेऽप्युपपन्नस्तथार्थसंवेदनस्याप्रत्यक्षत्वेऽप्यर्थप्रतिभासो भविष्यति इत्यप्यविचारितरमणीयम्; सुखादेः संवेदनादर्थान्तरस्वभावस्याप्रतिभासनादाह्लादनाकारपरिणतज्ञानविशेषस्यैव सुखत्वात्, तस्य चाध्यक्षत्वात् तस्यानध्यक्षत्वेऽत्यन्ताप्रत्यक्षक्षानेग्राह्यत्वे च-अनुग्रहोपेयातकारित्वासम्भवः, अन्यथा परकीयसुखादीनामर्थात्मनोऽत्यन्ताप्रत्यक्षज्ञानग्राह्याणां तत्कारित्वप्रसङ्गः । ननु पुत्रादिसुखाद्यप्रत्यक्षत्वेऽपि तत्सङ्भावोपलम्भमात्रादीर्त्तमनोऽनुग्रहाद्युपलभ्यते १० तत्कथमयमेकान्तः ? इत्यप्यशिक्षितलक्षितम्; नहि तत्सुखाद्युपलम्भमात्रात् सौमनस्योदिजनिताभिमानिकसुखेपरिणतिमन्तरेणोर्त्तमनोऽनुग्रहादिसम्भवः, शैत्रसुखाद्युपलम्भादुत्प्रेषितादिर्नापरित्यक्तपुत्रसुखाद्युपलम्भाच्च तत्प्रसङ्गात् । विभ्रंहादिकमतिसन्निहितमपि आभिमानिकसुखमन्तरेणोनुग्रहादिकं न विदधाति-१५ किमङ्गं पुनरतिव्यवहिताः पुत्रसुखादयः ।

अस्तु नाम सुखादेः प्रत्यक्षता, सा तु प्रमाणान्तरेण न स्वतः 'स्वात्मनि क्रियाविरोधात्' इत्यन्यैः, तस्यापि प्रत्यक्षविरोधः । न खलु घटादिवत् सुखाद्यविदितस्वरूपं पूर्वमुत्पन्नं पुनरिन्द्रियेण सम्बध्यते ततो हानं " ग्रहणं चेति लोके प्रतीतिः । प्रथममेवेष्टौ-२०

१ निर्विकल्पः । २ ईप् (सप्तमी) । ३ शब्दद्वारस्य । ४ शब्दोच्चारणपूर्वकत्वात् । ५ माह । ६ करणज्ञान प्रत्यक्षमर्थप्रकाशनिमित्तत्वात्पदीपनदात्म्यवद्वा । ७ अर्थवृत्ति-निमित्तत्वादित्यस्य साधनसान्त्विकान्तिकत्वम् । ८ करणज्ञानस्य । ९ परिच्छित्तिः । १० दुःखादि । ११ करणज्ञानस्य । १२ करणज्ञानस्य । १३ भिन्न । १४ करणम् । १५ दुःखात्स्यस्य । १६ स्वस्य । १७ अनैकान्तिकत्वम् । १८ प्रमाणमात्रात् । १९ स्वस्य । २० मितुः । २१ कर्म । २२ वैनस्य । २३ आत्मनः आत्मनि । २४ स्वस्य । २५ तातस्य । २६ अन्यथा । २७ अनैकान्तिकत्वपरिहारः कृतः । २८ सुचेष्टित । २९ शरीर । ३० उदासीनपुरुषस्य । ३१ प्र(कु)त्र । ३२ विरोधे । ३३ नैयायिको वैशेषिको वा । ३४ अज्ञात । ३५ पश्चात् । ३६ इन्द्रियसम्बन्धात् । ३७ करणरूपमुत्पद्यते । ३८ हानेन । ३९ परिच्छित्तिरूपम् । ४० सवचन्दनादि ।

१ "न हि सुखाद्यविदितस्वरूपं पूर्वं घटादिवदुत्पन्नं पुनरिन्द्रियसम्बन्धोपजातज्ञानान्तराद् वेद्यते इति लोकप्रतीतिः, अपि तु प्रथममेव स्वप्रकाशरूपं तदुदयमासादय-दुपलभ्यते ।"

सम्प्रति० टी० पृ० ४७६ ।

निर्घृविषयानुभवानन्तरं स्वप्रकाशात्मनोऽस्योदयप्रतीतिः । स्वात्मनि क्रियाविरोधं चानन्तरमेव विचारयिष्यामः । यदि चार्थान्तरभूत-  
प्रमाणप्रत्यक्षाः सुखादयस्तर्हि तदपि प्रमाणं प्रमाणान्तरप्रत्यक्ष-  
मित्यनवस्था । विभिन्नप्रमाणग्राह्याणां चार्तुग्रहादिकारित्ववि-  
५ रोधः । न हि स्त्रीसङ्गमादिभ्यः प्रतीयमानाः सुखादयोऽन्यस्या-  
त्मनैस्तत्कारिणो दृष्टाः । ननु परकीयसुखादीनामनुमानगम्यत्वा-  
च्चात्मनोऽनुग्रहादिकारित्वम् आत्मीयानां प्रत्यक्षाधिगम्यत्वात्त-  
त्कारित्वमित्यप्यसारम् । योगिनोपि तत्कारित्वप्रसङ्गात् प्रत्यक्षा-  
धिगम्यत्वाविशेषात् । आत्मीयसुखादीनामेव तत्कारित्वं नान्येषा-  
१० मित्यपि फल्युप्रायम्, अत्यन्तभेदेऽर्थान्तरभूतप्रमाणग्राह्यत्वे  
चात्मीयेर्तमेदस्यैवासम्भवात् ।

आत्मीयत्वं हि तेषां तद्गुणत्वात्, तत्कार्यत्वाद्वा स्यात्, तत्र  
समवायाद्वा, तद्वाधेयत्वाद्वा, तद्दृष्टेनिष्पाद्यत्वाद्वा । न तावत्तद्गुण-  
त्वात्, तेषामात्मनो अतिरेकैकान्ते 'तस्यैव तं' गुणा नाकाशादेर-  
१५ न्यात्मनो वा' इति व्यवस्थापयितुमशक्तेः ।

तैत्कार्यत्वाच्चेत्कुतस्तत्कार्यत्वम् ? तस्मिन् सति भावात्,  
आकाशादौ तत्प्रसङ्गः । तस्य निमित्तकारणत्वेन व्यापाराददोष-  
श्चेत्, आत्मनोपि तथा तदस्तु । समवायिकारणमन्तरेण कार्या-  
नुत्पत्तेरात्मनस्तत्कल्प्यते, गगनादेस्तु निमित्तकारणत्वमित्य-  
२० प्ययुक्तम् । विपर्ययेणापि तत्कल्पनाप्रसङ्गात् । प्रत्यासत्तेरात्मैव  
समवायिकारणं चेन्न, देशकालप्रत्यासत्तेरित्यव्यापित्वेनात्मव-  
दन्यत्रापि समानत्वात् । योग्यतापि कार्ये सामर्थ्यम्, तच्चैका-

१ अद्यादि । २ सुखादेः । ३ परिच्छिन्नचित्कृणा । ४ अग्रे । ५ किञ्च ।  
६ सुखादेर्मिन्नप्रमाणात् । ७ सुखादीना । ८ किञ्च । ९ उपपात । १० सत्य ।  
११ परकीयसुखादिवदृष्टान्तः । १२ देवदत्तस्य पुरुषस्य । १३ यक्षदत्तस्य सत्य ।  
१४ जीवन्मुक्तस्य । १५ आत्मनः सकाशात्सुखादीनाम् । १६ परकीय । १७ देव-  
दत्तात्म । १८ देवदत्तात्म । १९ देवदत्तात्मनि । २० देवदत्तात्म । २१ देव-  
दत्तात्म । २२ भा । २३ भेदेकान्ते । २४ देवदत्तात्मनः । २५ सुखादयः ।  
२६ यक्षदत्तात्मनः । २७ देवदत्तात्म । २८ देवदत्ते सति । २९ सुखादयः  
आकाशकार्यत्वादाकाशादीनाः स्युराकाशादौ सति भावात् । ३० उपादानकारणं ।  
३१ आत्मा निमित्तकारणं गगनादि समवायिकारणं । ३२ सुखादौ । ३३ शक्तिः  
कार्योत्पादिका । ३४ किञ्च ।

१ "न चात्मनो ह्यानाद्य अर्थान्तरभूता यत्र सुखादयोऽनुग्रहादिविवाचिनो भवेयुः,  
इतरथा योगिनोऽपि वे तथा स्युः ।" सम्मति० टी० पृ० ४७६ ।

शादेरप्यस्तीति । अथात्मन्यात्मनस्तज्जननसामर्थ्यं नान्यस्येत्य-  
प्ययुक्तम्; अत्यन्तभेदे तथा तज्जननविरोधात् । तत्सामर्थ्यस्या-  
प्यात्मनोऽत्यन्तभेदे 'तस्यैवेदं नान्यस्य' इति किङ्कृतोयं विभागः ?  
समवायादेश्च निषे( त्स्य )मानत्वान्नियामकत्वायोगः । तन्मान्वय-  
मात्रेण सुखादीनामात्मकार्यत्वम् । तदभावेऽभावात्तच्चेन्न; नित्य-  
व्यापित्वाम्भ्यां तस्याभावासम्भवात् । तत्र समवायादित्यप्यसत्;  
तस्यात्रैवं निराकरिष्यमाणत्वात्, सर्वत्राविशेषाच्च; तेन तेषां  
तत्रैव समवायासम्भवात् ।

तदाधेयत्वाच्चेतिमिदं तदाधेयत्वं नाम तत्रैव समवायः, तादात्म्यं १०  
वा, तत्रोत्कलितत्वमात्रं वा ? न तावत्समवायः, दत्तोत्तरत्वात् ।  
नापि तादात्म्यम्; मतान्तरैर्नुषङ्गात् । तेषामात्मनोऽत्यन्तभेदे  
सकलात्मनां गगनौदीनां च व्यापित्वे 'तत्रैवोत्कलितत्वम्' इत्यपि  
श्रद्धामात्रगम्यम् । अथाऽद्वैष्टाभिर्नियमः 'यद्यात्मीयाऽदृष्टनिष्पाद्यं  
सुखं तदात्मीयमन्येषु परकीयम्' इत्यप्यसारम्; अदृष्टस्याप्या- १५  
त्मीयत्वासिद्धेः । समवायादेस्तन्नियामकत्वेऽप्युक्तदोषानुषङ्गः । यत्र  
यददृष्टं सुखं दुःखं चोत्पादयति तत्तस्यत्येपि मनोरथमात्रम्, पर-  
स्परश्रयानुषङ्गात्-अद्वैष्टनियमे सुखादेर्नियमः, तन्नियमाच्चादृष्ट-  
स्येति । 'यस्य अद्वयोर्पेगृहीतानि द्रव्यगुणकर्माणि यददृष्टं जनयन्ति  
तत्तस्य' इत्यपि श्रद्धामात्रम्, तस्या अप्यात्मनोऽत्यन्तभेदे प्रतिनि-  
यमासिद्धेः । 'यस्यादृष्टेनासौ जन्यते सा तस्य' इत्यर्प्यन्योन्याश्र-  
याद्युक्तम् । 'द्रव्यादौ यस्य दर्शनस्वरणौदीनि श्रद्धामाविर्भा-

१ सुखादि । २ उत्पाद । ३ आत्मनः सकाशात्सुखादिकं सर्वथा भिन्न ।  
४ सुखादि । ५ देवदत्तात् । ६ केन कृतः । ७ देवदत्तात्मनि सामर्थ्यस्य ।  
८ अत्रे । ९ तस्मिन् सति भावात् । १० देवदत्तात् । ११ सुखादीनां ।  
१२ व्यतिरेकः । १३ सुखादि । १४ देवदत्तसुखादीनान् । १५ देवदत्तात्मनः ।  
१६ आत्मनः । १७ देवदत्तात्मनि । १८ अन्ये । १९ खादावपे । २० समवायस्य ।  
२१ कारणेन । २२ सुखादीनां । २३ देवदत्तात्मन्वेव । २४ (सम्बन्ध) ।  
२५ देवदत्तात् । २६ खादौ । २७ वसः । २८ देवदत्तात् । २९ देवदत्तात्मनि ।  
३० सुखादीनां । ३१ देवदत्तात्मना सह । ३२ देवदत्तात्मनि । ३३ आविर्भूतत्वं ।  
३४ जनैः । ३५ अन्यथा । ३६ जैनमतः । ३७ दिक्कादि । ३८ देव-  
दत्तात्मनि । ३९ पुण्यादि । ४० सुखादय आत्मीया आत्मीयादृष्टनिष्पाद्यत्वात् ।  
४१ पुनः । ४२ आत्मनि । ४३ आत्मनः । ४४ असेदमदृष्टमिति । ४५ आत्मनः ।  
४६ विधातेन । ४७ स्वीकृत्वा । ४८ अद्वा असेति । ४९ अद्वाया नियमे  
अदृष्टनियमस्त्वसिद्धान्नियमः । ५० आत्मनः । ५१ प्रत्यक्ष । ५२ प्रत्यभिज्ञान ।

वयन्ति तस्य सा' इत्यप्युक्तिमात्रम्, दर्शनादीनामपि प्रतिनिय-  
मासिद्धेः । समवायात्तेषां श्रद्धायाश्च प्रतिनियमः इत्यप्यसमीक्षि-  
ताभिधानम्, तस्य षट्पदार्थपरीक्षार्था निराकरिष्यमाणत्वात् ।

दैतेनैतदपि प्रत्याख्यातम् 'ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं प्रमेयत्वात्पटा-  
५ दिद्यत्,' सुखसंवेदनेन हेतोर्व्यभिचारान्महेश्वरज्ञानेन च, तस्य  
ज्ञानान्तरावेद्यत्वेपि प्रमेयत्वात् । तस्यापि ज्ञानान्तरप्रत्यक्षत्वेऽन-

१ दर्शनादीनाम् । २ सुखदुःखादेः स्वसंवेदितत्वसमर्थनपरेण ग्रन्थेन । ३ यौग-  
मतमपि (तदेव यौगमयं दर्शयति ज्ञानमित्यादिना) । ४ सुखसंवेदनं ज्ञानं भवति  
न तु ज्ञानान्तरवेद्यं । ५ सा ।

१ "नासाधना प्रमाणसिद्धिर्नापि प्रत्यक्षादिभ्यतिरिक्तप्रमाणाभ्युपगमो... नापि च  
तथैव व्यवस्था तस्या ध्वग्रहणमुपेयते येनात्मनि दृष्टिबिरोधो भवेत्, अपि तु  
प्रत्यक्षादिजातीयेन प्रत्यक्षादिजातीयस्य ग्रहणमातिशयमहे । न चानवस्था, अस्ति  
किञ्चित् प्रमाणं यः स्वज्ञानेन अन्यवीहेतुः यथा ब्रूमादि, किञ्चित्पुनरुक्तमेव बुद्धिसा-  
धनं यथा चक्षुरादि, तत्र पूर्वं स्वज्ञाने चक्षुराद्यपेक्षम्, चक्षुरादि तु ज्ञानानपेक्षमेव  
ज्ञानसाधनमिति कानवस्था । पुनस्तथा च तदपि अन्यवज्ञानं सा कदाचिदेव कचिदिति  
नानवस्था ।"

न्यायवा० ता० टी० पृ० ३७० ।

"निवादाध्यासिताः प्रत्ययान्तरेणैव वेद्याः प्रत्ययत्वात्, ये ये प्रत्ययास्ते सर्वे प्रत्य-  
यान्तरवेद्याः यथा न प्रत्ययान्तरेणैव वेद्याः (१) अविद्यमानस्यावभासेऽतिप्रसंगात्  
ज्ञायमानस्यैवावभासोऽभ्युपेयः । तथा च विज्ञानस्य स्वसंवेदने तदेव तस्य कर्म क्रिया  
चेति विरुद्धमापद्येत । यद्युक्तम्—

अजुत्यग्रं यथात्मानं नात्माना स्प्रष्टमर्हति ।

स्वाद्येन ज्ञानमप्येवं नात्मानं ज्ञातुमर्हति ॥ इति ।

यत् प्रत्ययत्वं वस्तुभूतमविरोधेन व्याप्तम्, तद्विरुद्धविरोधदर्शनात् स्वसंवेदनाधि-  
भूतमान प्रत्ययान्तरवेद्यत्वेन व्याप्यते इति प्रतिबन्धसिद्धिः । एवं प्रमेयत्व-गुणत्वस-  
त्त्वादयोऽपि प्रत्ययान्तरवेद्यत्वहेतवः प्रयोक्तव्याः । तथा च न स्वसंवेदनं विज्ञानमिति  
सिद्धम् ।"

विधिवि० न्यायकणि० पृ० २६७ ।

"तस्मात् ज्ञानान्तरसंवेद्यं संवेदनं वेद्यत्वात् षटादिद्यत् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ५२९ ।

"अनवस्थाप्रसङ्गस्तु अवश्यवेद्यत्वानभ्युपगमेन निरसनीयः... निवादाध्यासितवेदनं  
वेदनान्तरयोचरः वेदनत्वात् पुरुषान्तरवेदनवत्..." प्रश्न० किरणवली पृ० २८३ ।

२ "महेश्वरार्थज्ञानेन हेतोर्व्यभिचारः, तस्य ज्ञानान्तरावेद्यत्वेऽपि प्रमेयत्वात् ।"

प्रमाणप० पृ० ६० । सुक्त्यनुशा० टी० पृ० १० । न्यायकुसु० पृ० १८३ ।

शा० रत्ना० पृ० २९२ ।

"सुखादिसंवेदनेन व्यभिचारी च" सन्मति० टी० पृ० ४७६ ।

वस्था-तस्यापि ज्ञानान्तरेण प्रत्यक्षत्वात् । ननु नानवस्था नित्य-  
ज्ञानद्वयस्येश्वरे सदा सम्भवात्, तत्रैकैर्नैयाजातस्य द्वितीयेन  
पुनस्तज्ज्ञानस्य प्रतीतेर्नापरज्ञानकल्पनया किञ्चित्प्रयोजनं तावतै-  
वैर्यसिद्धेरित्यप्यसमीचीनम्; समानकाल्यावद्भव्यभाविसजाती-  
यगुणद्वयस्यान्यत्रानुपलब्धेरेवापि तत्कल्पनाऽसम्भवात् । ५

सम्भवे वा तद्वितीयज्ञानं प्रत्यक्षम्, अप्रत्यक्षं वा? अप्रत्यक्षं  
चेत्; कथं तेनाद्यज्ञानप्रत्यक्षतासम्भवः? अप्रत्यक्षादप्यतस्तत्स-  
म्भवे प्रथमज्ञानस्याऽप्रत्यक्षत्वेऽप्यर्थप्रत्यक्षतास्तु । प्रत्यक्षं चेत्,  
स्वतः, ज्ञानान्तराद्वा? स्वतश्चेदाद्यस्यापि स्वतः प्रत्यक्षत्वमस्तु ।  
ज्ञानान्तराच्चेत्सैवानवस्था । आद्यज्ञानाच्चेदन्योन्याग्रथः-सिद्धे ह्याद्य-१०  
ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वे ततो द्वितीयस्य प्रत्यक्षतासिद्धिः, तत्सिद्धौ  
आद्यस्येति ।

किञ्च, अनयोर्ज्ञानयोर्महेश्वराद्भेदे कथं तदीयत्वसिद्धिः सम-  
वायादेरेषे दत्तोत्तरत्वात्? तदाद्येयत्वात्तत्वेऽप्युक्तम् । तदाद्येयत्वं  
न तत्रैव सम्भवेतैवम्, तच्च केन प्रतीयते? न तावदीश्वरेण, १५

१ द्वयोर्ज्ञानयोर्मध्ये । २ आद्येन । ३ समूहस्य । ४ प्रयोजनस्य । ५ कथमन-  
वस्था । ६ गुणद्वयानुपलब्धेरित्युक्ते मातृलिंगे रूपरसाम्ना व्यभिचारस्तत्र तदुपलब्धेरतः  
सजातीयेत्युक्तं तथापि क्रमेणात्मनि सुखा[सुखा]ख्यगुणद्वयस्योपलब्धेरतः समानकालेत्युक्तं  
तथापि नानापुरवैशकार्यमाणशब्दानां समानकालसजातीयगुणत्वेन आकाशे उपलब्धेरतो  
यावद्भव्यभाषीत्युक्तं न चाकाशस्थितिपर्यन्तं शब्दानामनवस्थानं तेषामनित्यत्वेनोपगमात्  
त्रिगुणस्यायित्वाच्च । ७ यावद्भव्यं तावद्भाषीति । ८ आत्मषट्पादौ । ९ ईश्वरो वीत-  
गुणद्वयाधारो न भवति द्रव्यत्वात्पटवत् । १० तन्मतप्रक्रियापेक्षया । ११ ईश्वरस्य ।  
१२ प्रथममेव । १३ ईप् । १४ तदाद्येयत्वं समवायः तादात्म्य तत्रोत्कलितत्वमित्यादौ  
दूषणम् । १५ किञ्च । १६ ईश्वरे । १७ ईश्वरे समवेतं (समवायेन सम्बद्धं) ज्ञानद्वयं ।

१ “समानकाल्यावद्भव्यभाविसजातीयगुणद्वयस्यान्यत्रानुपलब्धेरेकमन्वकेऽपि तत्क-  
ल्पनाया असम्भवः । तथाच प्रयोगः-ईश्वरः समानकाल्यावद्भव्यभाविसजातीय-  
गुणद्वयस्याधारो न भवति द्रव्यत्वात्...पटवत् ।” सा० रसा० पृ० २२८ ।

२ “तदप्यर्थज्ञानमीश्वरस्य प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा? यदि प्रत्यक्षम्; तदा स्वतो  
ज्ञानान्तराद्वा? स्वतश्चेत्; प्रथममप्यर्थज्ञानं स्वतः प्रत्यक्षमस्तु किं विज्ञानान्तरेण? यदि  
स्तु ज्ञानान्तरात्प्रत्यक्षं तदमीश्वरे, तदा तदपि ज्ञानान्तरं किमीश्वरस्य प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं  
चेति स पत्र पर्यनुयोगोऽनवस्थानं च दुःश्रव्यं परिहर्तुम् ।” प्रमाणप० पृ० ६०

३ “किंचानयोर्ज्ञानयोः विनाकाशोः सर्वथा भेदे कथं तदीयत्वसिद्धिः?”

सा० रसा० पृ० २२८ ।

तेनात्मनो ज्ञानद्वयस्य चाग्रहणे 'अत्रेदं समवेतम्' इति प्रतीत्य-  
योगात् । तस्य तत्र समवेतत्वमेव तद्ग्रहणमित्यपि नोत्तरम् ;  
अन्योन्याश्रयात्-सिद्धे हि 'इदमत्र' इति ग्रहणे तत्र समवेतत्व-  
सिद्धिः, तस्याश्च तद्ग्रहणसिद्धिः । यथात्मनो ज्ञानमात्मन्यपि स्थितं  
५ न जानाति सौम्यजातं जानातीति कैश्चेतनः अद्वधीतः ? नापि ज्ञानेन  
'स्याणावहं समवेतम्' इति प्रतीयते; तेनाप्यार्धारस्यात्मनश्चा-  
ग्रहणात् । न च तदग्रहणे 'अमेदं रूपमत्र स्थितम्' इति सम्भवः ।

अस्तु वा समवेतत्वप्रतीतिः, तथापि सर्वज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वा-  
त्सर्वज्ञत्वे विरोधः । तदप्रत्यक्षत्वे च ज्ञानाशेषाद्यप्यप्यक्षता-  
१० विरोधः । कथमन्यथात्मान्तरज्ञानेनाप्यर्थसाक्षात्करणं न स्यात् ?  
तथा चेश्वरानीश्वरविभागाभावः-स्वयमप्रत्यक्षेणापीश्वरज्ञानेना-  
शेषविषयेणांशेषस्य प्राणिनोऽशेषार्थसाक्षात्करणप्रसङ्गात् । तत-  
स्तद्विभागमिच्छता महेश्वरज्ञानं स्वतः प्रत्यक्षमभ्युपगन्तव्यमित्य-  
नेनानेकान्तैः सिद्धः ।

३५ अथात्मदादिज्ञानापेक्षया ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वं प्रमेयत्वहे-  
तुना साध्यतेऽतो नेश्वरज्ञानेनानेकान्तोऽस्यासदादिज्ञानाद्विशि-

१ ज्ञानविक्रो गृह्णाति ज्ञानसहितो वा । ज्ञानविकलक्षेत्रं ज्ञानद्वयकल्पनानवयव-  
मात्मैवज्ञानस्य ग्राहकोऽस्तु । ज्ञानसहितक्षेत्रं । तदपि ज्ञानमात्मनि समवेतमिति कुतो  
जानाति आत्मैव ज्ञानं वेलादिविचारः । २ अत्रेदं । ३ किञ्च । ४ ज्ञानवान् ।  
५ ज्ञानद्वयेन प्रतीयते । ६ ईशे । ७ ज्ञानाद्भेदे सत्यास्यानुसङ्ग इत्यर्थः । ८ ईश्वरस्य ।  
९ ज्ञानरूपस्य । १० स्वसिन् । ११ ज्ञानस्य स्वसन्निधितत्वात् । १२ समक्रिया-  
मात्रेण । १३ आत्मान्तरज्ञानेनाप्यर्थसाक्षात्करणं भवत्विति चेत् । १४ ईश्वरज्ञानस्य ।  
१५ महेश्वरस्य । १६ किञ्च । १७ स्वस्य संसारज्ञानेनापीति अर्थात् (वा)रः ।  
१८ ईश्वर । १९ वसः । २० परेण । २१ योगेन । २२ हेतोरीश्वरज्ञाने  
न्यविचारः । २३ परेण मया ।

१ "यदि पुनरप्रत्यक्षमेवेश्वरार्थज्ञानज्ञानं तदैश्वरस्य सर्वज्ञत्वविरोधः स्वज्ञानसा-  
मप्रत्यक्षत्वात् । तदप्रत्यक्षत्वे च प्रथमार्थज्ञानमपि न तेन प्रत्यक्षम्, स्वयमप्रत्यक्षेण  
ज्ञानान्तरेण तत्सामर्थज्ञानस्य साक्षात्करणविरोधात् । कथमन्यथा आत्मान्तरज्ञानेनापि  
कस्यचिद् साक्षात्करणं न स्यात् । तथा चानीश्वरस्यापि सकलस्य प्राणिनः स्वयमप्रत्यक्षे-  
णापि ईश्वरज्ञानेन सर्वविषयेण सर्वार्थसाक्षात्करणं समञ्जसं ततः सर्वस्य सर्वार्थवेदि-  
त्वसिद्धेः ईश्वरानीश्वरविभागाभावो न्ययते ।" प्रमाणप० ३० ६० ।

२ "स्यान्मतिरेषा ते शुभ्रमाकमसदादिज्ञानापेक्षया सर्वज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वं  
प्रमेयत्वहेतुना साध्यते ततो नेश्वरज्ञानेन व्यभिचारः, तस्यासदादिज्ञानाद्विशिष्टत्वात् ।

दृत्वात्, न खलु विशिष्टे दृष्टं धर्ममविशिष्टेऽपि योजयन् प्रेक्षावत्तां  
 ईभते निखिलार्थवेदित्वस्याप्यखिलज्ञानानां तद्वत्प्रसङ्गात् । इत्य-  
 प्यसमीचीनम्; स्वभावावेकलम्बनात् । स्वपरप्रकाशात्मकत्वं हि  
 ज्ञानसामान्यस्वभावो न पुनर्विशिष्टविज्ञानस्यैव धर्मः । तत्र तस्योप-  
 लम्भमात्रात्तद्धर्मत्वे भानौ स्वपरप्रकाशात्मकत्वोपलम्भमात् प्रदीपे ५  
 तत्प्रतिषेधप्रसङ्गः । तत्स्वभावत्वे तद्वत्तेषां निखिलार्थवेदित्वानु-  
 षङ्गश्चेत्; तर्हि प्रदीपस्य स्वपरप्रकाशात्मकत्वे मानुषत्रिखिला-  
 र्थोद्योतकत्वानुषङ्गः किञ्च स्यात् ? योग्यतावशात्तदात्मकत्वावि-  
 शेषेऽपि प्रदीपादेरनिर्यतायोद्योतकत्वं ज्ञानेऽपि समानम् । ततो ज्ञानं  
 स्वपरप्रकाशात्मकं ज्ञानत्वान्महेश्वरज्ञानवत्, अव्यवधानेनैतथैव १०  
 कौशकत्वाद्धा, अर्थग्रहणात्मकत्वाद्वा तद्वदेव, यत्पुनः स्वपरप्र-  
 काशात्मकं न भवति न तद् ज्ञानम् अव्यवधानेनार्थप्रकाशकम्  
 अर्थग्रहणात्मकं वा, यथा चक्षुरादि ।

आश्चर्यासिद्धिश्च 'प्रमेयत्वात्' इत्ययं हेतुः, धर्मिणो ज्ञानस्या-  
 सिद्धेः । तत्सिद्धिः खलु प्रत्यक्षतः, अनुमानतो वा प्रमाणान्तरस्या- १५  
 ज्ञानधिकारात् ? तत्र न तावत्प्रत्यक्षतः; तस्येन्द्रियार्थसन्निकर्ष-  
 जत्वाभ्युपगमात्, तज्ज्ञानेन चक्षुरादीन्द्रियस्य सन्निकर्षाभावात् ।  
 अन्येन्द्रियं तेन चास्य सन्निकर्षो बौध्यः । मनोन्तःकरणम्, तेन  
 चास्य संयुक्तसमवायः सम्बन्धः, तत्प्रभवं चाप्यक्षं धर्मस्वरूप-  
 ग्राहकम्-मनो हि संयुक्तमात्मना तत्रैव समवायस्तज्ज्ञानस्येति; २०  
 तदयुक्तम्, मनसोऽसिद्धेः । अथ 'घटादिज्ञानज्ञानम् इन्द्रियार्थ-

१ स्वपरप्रकाशात्मकत्वं स्वसंविदितत्वं । २ असदादिज्ञाने । ३ अन्यथा ।  
 ४ निखिलं ज्ञानमखिलार्थवेदि ज्ञानत्वादीश्वरज्ञानवत् । ५ ता । ६ महेश्वरज्ञाने शून्यौ  
 च । ७ स्वप्रक्रियामात्रात् । ८ रनौ । ९ ईश्वरज्ञानवत् । १० असदादिज्ञानानां ।  
 ११ शक्तिः । १२ कतिपयः । १३ चक्षुरादिना व्यभिचारः । १४ भिन्नविशेषणं ।  
 १५ परिच्छिन्ति । १६ अभिन्नविशेषणं । १७ वसः । १८ किञ्च । १९ घटादि-  
 ज्ञानस्य । २० परेण । २१ चक्षुरादिपञ्चन्यः । २२ परेण । २३ इन्द्रियं ।  
 २४ मनः । २५ घटादिज्ञानं ।

न हि विशिष्टे दृष्टं धर्ममविशिष्टेऽपि घटयन् प्रेक्षावत्तां कथ्यते इति; सापि न परीक्षा-  
 सहा, ज्ञानान्तरसापि प्रज्ञानेन नैकत्वे अनवसानुपगमात् ।" प्रमाणपृ० पृ० ६० ।

न्यायकुमु० पृ० १८३ । स्या० रत्ना० पृ० ३२२ ।

१ "अत्र प्रयोगे हेतुरावधारणः स्वरूपासिद्धश्च धर्मिणो ज्ञानस्याप्रतिपत्तौ तदा-  
 श्रितवेत्यवधर्मप्रतिपत्तेः ।" तत्प्रसिद्धिः अव्यवधानतोऽनुमानतो वा प्रमाणान्तरस्या-  
 ज्ञानधिकारात् ।" सन्मति० टी० पृ० ४७५ ।



सन्निकर्षजं प्रत्यक्षत्वे सति ज्ञानत्वात् चक्षुरादिप्रभवरूपादिज्ञानवत् इत्यनुमानात्तत्सिद्धिरित्यभिधीयते, तदप्यभिधानमात्रम्; हेतोर्प्रसिद्धविशेषणत्वात् । न हि घटादिज्ञानज्ञानस्याध्यक्षत्वं सिद्धम्, इतरेतराश्रयानुषङ्गात्-मनःसिद्धौ हि तस्याध्यक्षत्वं ५ सिद्धिः, तत्सिद्धौ च सविशेषणहेतुसिद्धेर्मनःसिद्धिरिति । विशेष्या-सिद्धत्वं च; न खलु घटज्ञानाद्भिन्नमन्यज्ज्ञानं तद्भाहकमनुभूयते । सुखादिसंवेदनेन व्यभिचारश्च; तद्धि प्रत्यक्षत्वे सति ज्ञानं न तज्जन्यमिति । अस्यापि पक्षीकरणाच्च दोष इत्ययुक्तम्; व्यभिचारविषयस्य पक्षीकरणे न कश्चिद्धेतुर्व्यभिचारी स्यात् । 'अनित्यः १० शब्दः प्रमेयत्वाद् घटवत्' इत्यादेरप्यात्मादिना न व्यभिचारस्तस्य पक्षीकृतत्वात् । प्रत्यक्षादिवाचोर्भयत्र समाना । न हि 'घटादि-वत्सुखाद्यविदितस्वरूपं पूर्वमुत्पन्नं पुनरिन्द्रियेण सम्यध्यते ततो ज्ञानं ग्रहणं च' इति लोके प्रतीतिः, प्रथममेवेष्टानिष्टविषयानु-भवानन्तरं स्वप्रकाशात्मनोऽस्मिन्नेव प्रतीतिः ।

१५ स्वात्मनि क्रियाविरोधान्मिथ्येयं प्रतीतिः, न हि सुतीक्ष्णोपि खड्ग आत्मानं छिनत्ति, सुशिक्षितोपि वा नटबहुः स्वं स्कन्धमा-रोहतीत्यप्यसमीचीनम्; स्वात्मन्येव क्रियायाः प्रतीतिः । स्वात्मा हि क्रियायाः स्वरूपम्, क्रियावदात्मा वा ? यदि स्वरूपम्, कथं तस्यास्तत्र विरोधः स्वरूपस्याविरोधकर्त्तव्यः ? अन्यथा सर्वभार्वानां

१ अनुमानज्ञानेन व्यभिचारस्तत्परिहारार्थं प्रत्यक्षत्वे सति ग्रहणम् । २ अन्यथा । ३ हेतोः । ४ घटज्ञान । ५ इन्द्रियार्थसन्निकर्षजं न भवति । ६ प्रमेयेन । ७ आत्मनोऽनित्यत्वे सुखादिसंवेदनसेन्द्रियार्थसन्निकर्षजत्वे च । ८ पश्चात् । ९ मानसं करणरूपम् । १० सुखादिसंवेदनस्य । ११ प्रकाशलक्षणायाः । १२ ता । १३ आत्मावैवाचकत्वशब्दपक्षे । १४ आत्मीयार्थवाचकत्वशब्दपक्षे । १५ विरोध-कत्वे । १६ घटादि ।

१ "न; अस्य हेतोर्प्रसिद्धविशेषणत्वात्, नहि घटादिज्ञानज्ञानस्य अध्यक्षत्वं सिद्धम् इतरेतराश्रयत्वात् ।" सम्मति० टी० पृ० ४७६

२ "सुखसंवेदनेन व्यभिचारी च; तथाहि-तत्संवेदनमध्यक्षत्वे सति ज्ञानं न च तज्जन्यमिति व्यभिचारः । अथास्यापि पक्षीकरणाददोषः, तथाहि-सुखादिसंवेदनमिन्द्रियार्थसन्निकर्षजम् अध्यक्षज्ञानत्वात् चक्षुरादिप्रभवरूपादिवेदनवत्, सुखादिर्वा भिन्न-ज्ञानवैधः वेद्यत्वात् घटवत् ।" सम्मति० टी० पृ० ४७६

३ "स्वात्मनि वृत्तिविरोधात्, नहि तदेव अगुल्यमं तेनैव अगुल्यमेव स्पृश्यते, सेवासिचारा त्वेवासिचारा विद्यते ।" स्फुटार्थ-अभिप० पृ० ७८

४ "स्वात्मा हि क्रियायाः स्वरूपं क्रियावदात्मा वा ?" आक्षेप० पृ० ४७ । न्याय-कुसु० पृ० १८८ । स्वा० रत्ना० पृ० २२९ ।

स्वरूपे विरोधान्निस्वरूपत्वानुषङ्गः । विरोधस्य द्विष्टत्वाच्च न क्रियायाः स्वात्मनि विरोधः । क्रियावदात्मै तस्याः स्वात्मा इत्यप्यसङ्गतम्, क्रियावत्येव तस्याः प्रतीतेस्तत्र तद्विरोधासिद्धेः<sup>१</sup> अन्यथा सर्वक्रियाणां निराश्रयत्वं सकलद्रव्याणां चाऽक्रियत्वं स्यात् । न चैवम्; कर्मस्थायास्तस्याः कर्मणि कर्तृस्थायाश्च कर्तरि<sup>५</sup> प्रतीयमानत्वात् । किञ्च, तैत्रोत्पत्तिलक्षणा क्रिया विरुध्यते, परित्यन्दात्मिका, धात्वर्थरूपा, शस्त्रिरूपा वा ? यद्युत्पत्तिलक्षणा, सा विरुध्यताम् । नखलु 'ज्ञानमात्मानमुत्पादयति' इत्यभ्यनुजानीमः स्वसामग्रीविशेषवशात्तदुत्पत्त्यभ्युपगमात् । नापि परित्यन्दात्मिकासौ तत्र विरुध्यते, तस्याः द्रव्यवृत्तित्वेन ज्ञाने सत्त्वस्यैवास-<sup>१०</sup> म्भवात् । अथ धात्वर्थरूपा; सा न विरुद्धा 'भवति तिष्ठति' इत्यादिक्रियाणां क्रियावत्येव सर्वदोषलब्धेः । शस्त्रिरूपक्रियायांस्तु विरोधो दुरोत्सारित एव; स्वरूपेण कैस्यचिद्विरोधासिद्धेः, अन्यथा प्रदीपस्यापि स्वप्रकाशनविरोधस्तद्धि स्वकारणकलापात्स्वपरप्रकाशात्मकमेवोपजायते प्रदीपवत् ।<sup>१५</sup>

ज्ञानक्रियायाः कर्मतया स्वात्मनि विरोधस्ततोऽन्यत्रैव कर्मत्वदर्शनादित्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; प्रदीपस्यापि स्वप्रकाशनविरोधानुषङ्गात् । यदि चैकत्र दृष्टो धर्मः सर्वत्राभ्युपगम्यते, तर्हि घटे प्रमाखरौण्यादिधर्मानुपलब्धेः प्रदीपेऽप्यस्याभावप्रसङ्गः, रथ्यापुरुषे वाऽसर्वज्ञत्वदर्शनान्महेश्वरेऽप्यसर्वज्ञत्वानुषङ्गः । अत्र<sup>२०</sup> वस्तुवैचित्र्यसम्भवे ज्ञानेन किमपराधं येनोत्रासौ नेर्ष्यते ?

किञ्च ज्ञानान्तरापेक्षया तत्र कर्मत्वविरोधः, स्वरूपापेक्षया वा ?

१ अभाव । २ अर्थ । ३ स्वरूप । ४ जोदन पचति देवदत्तः । ५ न विरोधः । ६ ग्रामं गच्छति देवदत्तः । ७ ज्ञाने । ८ भवता परेण । ९ परेण । १० वयं जेनाः । ११ स्वात्मनि । १२ देवदत्तादी । १३ जानाति । १४ स्वात्मनि । १५ अवश्य । १६ जसदादिज्ञान । १७ कुतः । १८ घटादौ । १९ किञ्च । २० सन्धिदिक्रिया प्रति कर्मत्वविरोधलक्षणः । २१ खडादौ । २२ ज्ञाने । २३ आलौक्यसर्वज्ञत्वलक्षण । २४ केन । २५ स्वपरप्रकाशरूपो वैचित्र्यसम्भवः । २६ परेण । २७ ज्ञानक्रियायां ।

१ "का पुनः स्वात्मनि क्रिया विरुद्धा परित्यन्दरूपा धात्वर्थरूपा वा ? तत्कार्थको० पृ० ४२ । सा० रत्ना० पृ० २२८ । "का पुनः स्वात्मनि क्रिया विरुध्यते शस्त्रिरुत्पत्तिर्वा ?" भाष्य० पृ० ४७ । साक्षादर्थ० पृ० ९३ । "उत्पत्तिरूपा, परित्यन्दात्मिका, धात्वर्थस्वभावा, शस्त्रिलक्षणा वा ?" न्यायकुसु० पृ० १८७ ।

२ "किञ्च, ज्ञानान्तरापेक्षया तत्र कर्मत्वविरोधः स्वरूपापेक्षया वा ?" न्यायकुसु० पृ० १८८ ।

प्रथमपक्षे—महेश्वरस्यासर्वज्ञत्वप्रसङ्गस्तज्ज्ञानेन तस्याऽवेद्यत्वात् ।  
आत्मसमवेतान्तरज्ञानवेद्यत्वाभावे च ।

“स्वसमवेतान्तरज्ञानवेद्यमर्थज्ञानम्” [ ] इति ग्रन्थ-  
विरोधो मीमांसिकैर्मतप्रवेशश्च स्यात् । ज्ञानान्तरापेक्षया तस्य  
५ कर्मत्वाविरोधे च—स्वरूपापेक्षयाप्यविरोधोऽस्तु सहस्रकिरणव-  
त्स्वपरोद्योतनस्वभावात्त्वात्तस्य । कर्मत्ववच्च ज्ञानक्रियातोऽर्थान्तर-  
स्यैव करणत्वदर्शनात्तस्यापि तत्र विरोधोऽस्तु विशेषाभावात् ।  
तथा च “ज्ञानेनाहमर्थं जानामि” इत्यत्र ज्ञानस्य करणतया प्रती-  
तिर्न स्यात् ।

१० विशेषणज्ञानस्य करणत्वाद्विशेष्यज्ञानस्य तत्फलत्वेन क्रिया-  
त्वाच्चयोर्भेद एवेत्यपि भ्रष्टामात्रम् । “विशेषणज्ञानेन विशेष्यमहं  
जानामि” इति प्रतीत्यभावात् । “विशेषणज्ञानेन हि ‘विशेष्यं  
विशेष्यज्ञानेन च विशेष्यं जानामि’ इत्यखिलजनोंऽनुमन्यते ।

किञ्च, अनयोर्विषयो भिन्नः, अभिन्नो वा । प्रथमपक्षे—विशेषणवि-  
१५ शेष्यज्ञानद्वयपरिकल्पना व्यर्थः । अर्थभेदाभावाद्भारावाहिविज्ञानवत् ।  
द्वितीयपक्षे चैनयोः प्रमाणफलव्यवस्थाविरोधोऽर्थान्तरविषय-  
त्वाद् घटपटज्ञानवत् । न खलु घटज्ञानस्य पटज्ञानं फलम् । न  
चैन्यत्र व्यापृते विशेषणज्ञाने ततोऽर्थान्तरे विशेष्ये परिच्छिन्ति-  
र्युक्ता । न हि खदिरादाबुत्पतननिय(प)तनव्यापारवति परशौ  
२० ततोऽन्यत्र धवादौ छिदिक्रियोत्पद्यते इत्येतत्प्रातीतिकम् । लिङ्ग-

१ असदादिज्ञानस्य । २ प्रथमज्ञान । ३ द्वितीयज्ञानेन । ४ किञ्च । ५ योगस्य ।  
६ करणज्ञानं न प्रत्यक्षं कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वात् । ७ ज्ञानान्तरेणाप्यप्रत्यक्षत्वात् ।  
८ स्वरूपापेक्षया कर्मत्वविरोधं नूनम् । ज्ञानान्तरापेक्षया किं कर्मत्वविरोधोऽस्ति ।  
९ परेणाङ्गीकृते । १० किञ्च । ११ कुठाराघेः । १२ ज्ञानाद्विज्ञस्य करणत्वस्या-  
विशेषात्कर्मत्ववत् । १३ ज्ञानकरणत्वविरोधे सति । १४ करणज्ञानेन । १५ पक्षे ।  
१६ लोके । १७ करणज्ञानक्रियाज्ञानयोः । १८ नीलादिज्ञानेन दण्डादिज्ञानेन  
वा । १९ जानामि । २० उत्पत्त्यादिकं दण्डीत्यादिकं । २१ ता । २२ विशेषण-  
ज्ञानविशेष्यज्ञानयोः । २३ विशेषणज्ञानविशेष्यज्ञानयोः । २४ भिन्नविषयत्वात् ।  
२५ किञ्च । २६ नीलादौ विशेषणे । २७ सति । २८ उत्पत्त्यादौ । २९ ज्ञानं ।  
३० कथं । ३१ सति । ३२ भूमादिज्ञानस्य ।

“प्रमाणफलदे बुद्धोर्विशेषणविशेष्योः ।

यदा तदापि पूर्वोक्ताऽभिन्नावैतनिराक्रिया ॥” मीमांसाश्लो० १० १५६ ।

“१ “विशेषणज्ञानं करणं विशेष्यज्ञानं तत्फलत्वात् ज्ञानक्रियेति चेद ; सादेवं यदि  
विशेषणज्ञानेन विशेष्यं जानामीति प्रतीतिरुत्पद्यते ।” सा० रत्ना० पृ० २२८ ।

ज्ञानस्यानुमानज्ञाने व्यापारदर्शनादत्राप्यविरोधे इत्यप्यसम्भाव्यं तद्वत्क्रमभावेनात्र ज्ञानद्वयानुपलब्धेः, एकमेव हि तैयोर्ग्राहकं ज्ञानमनुभूयते । न चात्र विषयभेदाज्ज्ञानभेदकल्पना; समानेन्द्रियग्राह्ये योग्यदेशावस्थितेर्धे घटपटादिवदेकस्यापि ज्ञानस्य व्यापाराविरोधात् । न च घटादावपि ज्ञानभेदः समानगुणानां युगपद्भावाच्चानभ्युपगमात् । क्रमभावे च प्रतीतिविरोधः सर्वज्ञामावश्च । युगपद्भावाभ्युपगमे चानयोः सव्येतरगोविषाणवत्कार्यकारणभावभावः । विशेषणविशेष्यज्ञानयोः क्रमभावेऽप्याशुवृत्त्या यौगपद्याभिमानो यथोत्पलपत्रशतच्छेद इत्यप्यसङ्गतम्; निखिलभावानां क्षणिकत्वप्रसङ्गात्सर्वत्रैकैकत्वाभ्यवसायस्याशुवृत्तिप्रवृत्तत्वात् । प्रत्यक्षप्रतिपक्षस्यैव दृष्टान्तमात्रेण निषेधविरोधाच्च, अन्यथा शुक्ले शङ्खे पीतविभ्रमदर्शनात्सुवर्णेऽपि तद्विभ्रमः स्यात् । मूर्तस्य सूक्ष्मस्यौत्तरार्धस्थितमुत्पलपत्रशतं युगपत्प्राप्तुमशक्तेः क्रमच्छेदेऽप्याशुवृत्त्या यौगपद्याभिमानो युक्तः, पुंसस्तु स्वावरणक्षयोपशमापेक्षस्य युगपत्स्वपरप्रकाशनस्वभावस्य समप्रेन्द्रियस्याप्राप्तार्थप्राहिणः स्वयममूर्तस्य युगपत्स्वविषयग्रहणे विरोधाभावात् किञ्च युगपज्ज्ञानोत्पत्तिः ?

न च मनोऽपि सूक्ष्मप्रबन्मूर्तमिन्द्रियाणि तत्पलपत्रवत्परस्परपरिहारस्थितानि युगपत्प्राप्तुं न समर्थमिति वैच्यम्; तथाभूतस्यास्याऽसिद्धेः । युगपज्ज्ञानोत्पत्तिविभ्रमात्तत्त्वदौ परस्पराश्रयः— २०

१ अग्न्यादिज्ञाने । २ विशेष्यपरिच्छितौ । ३ विशेषणज्ञानव्यापारस्य । ४ लिङ्गलिङ्गिज्ञानस्य । ५ नीलोत्पल्योविशेषणविशेष्ययोः । ६ एक । ७ अग्न्यादि । ८ ज्ञानानां । ९ नैयायिकानामनभ्युपगमात् । १० परैः । ११ कृत्वा । १२ कल्पना । १३ कर्म । १४ घटपटादिपदार्थे । १५ एकोपमितव्यवसायः । १६ विशेषणविशेष्यज्ञानयौगपक्षस्य । १७ किञ्च । १८ अविरोधे । १९ विशेषणविशेष्यरूपः । २० कर्तुं । २१ कर्मरूपाणि । २२ परेण ।

१ “न चात्र विषयभेदाज्ज्ञानभेदकल्पनोपपत्तिमती; समानेन्द्रियग्राह्ये योग्यदेशावस्थितेर्धे घटपटादिवदेकस्यापि ज्ञानस्य व्यापाराविरोधात् ।” स्या० रत्ना० पृ० २३० ।

२ “मूर्तस्य सूक्ष्मस्यौत्तरार्धव्यवस्थितमुत्पलपत्रशतं युगपद् व्याप्तुमशक्तेः क्रमभेदेऽप्याशुवृत्तेः यौगपद्याभिमान इति युक्तम्, आत्मनस्तु क्षयोपशमसम्बन्धेक्षस्य युगपत् स्वरपरप्रकाशनस्वभावस्य स्वयममूर्तस्याप्राप्तार्थप्राहिणे युगपत् स्वविषयग्रहणे न कश्चिद्विरोध इति किञ्च युगपज्ज्ञानोत्पत्तिः ।” सन्मति० दी० पृ० ४७८ ।

३ “नच मनोऽपि सूक्ष्मप्रबन्मूर्तमिन्द्रियाणि तत्पलपत्रवत् परस्परपरिहारस्थितस्वरूपाणि न युगपत्प्राप्तुं समर्थमिति न युगपज्ज्ञानोत्पत्तिः; तथाभूतस्य तत्सैवाऽसिद्धेः ।”

सन्मति० दी० पृ० ४७८ ।

तद्विभ्रमसिद्धौ हि मनःसिद्धिः, ततस्तद्विभ्रमसिद्धिरिति । 'चक्षु-  
रादिकं क्रमवत्कारणोपेक्षं कारणान्तरसाकल्ये सत्यप्यनुत्पाद्योत्पा-  
दकत्वाद्वासीकैर्चर्यादिषत्' इत्यनुमानात्तत्सिद्धिरित्यपि मनोरथ-  
मात्रम् ; भवदभ्युपगतेन मनसैवानेकान्तात् । न हि तत्साकल्ये तत्  
५ तथाभूतमपि क्रमवत्कारणान्तरापेक्षमनवस्थाप्रसङ्गात् । किञ्च,  
अनुत्पाद्योत्पादकत्वं युगपत्, क्रमेण वा ? युगपच्चेद्विक्रैदो हेतुः,  
तथोत्पादकत्वस्याक्रमिकारणाधीनत्वात् प्रसिद्धसहमाव्यनेककौ-  
थकीरिसौमग्रीर्वत् । क्रमेण चेदसिद्धः, कर्कटीमक्षणादौ युगपद्व्या-  
दिज्ञानोत्पादकत्वप्रतीतिः । आशुवृत्त्या विभ्रमकल्पनायां दूकम् ।  
१० तन्न मनसः सिद्धिः ।

सिद्धौ वा न संयोगः, निरर्थयोरेकदेशेन संयोगे सांशत्वेम् ।  
सर्वोत्पन्नैकत्वम् उभयव्याघातकारि स्यात् । 'यत्र' संयुक्तं नैवस्तत्र

१ मनः । २ यद्यनुत्पादकं तत्तत्क्रमवत्कारणापेक्षम् । ३ आलोकरूपादि ।  
४ ज्ञान । ५ ता । ६ उत्पादकत्वादित्युच्यमाने नानाङ्गोत्पादकैर्नानाबीजैरेकान्तस्त-  
त्त्वबन्धेदार्थमनुत्पाद्योत्पादकत्वादित्युक्तं तथापि बीजैरेवानेकान्तस्तत्त्वबन्धेदार्थं कारणान्त-  
साकल्ये सवीत्युक्तम् । एकसाक्षधुरादिकक्षणात्कारणादपरमालोकरूपकक्षयं कारणान्तरं  
कारणान्तरसाकल्ये सत्यनुत्पाद्योत्पादकं न भवति किन्तुत्पादकमेव वीनम् । ७ हस्तः  
क्रमवत्कारणमनः । ८ मनः । ९ परः । १० साधनस्य । ११ मनः । १२ अन्यथा ।  
१३ क्रमसाध्ये अक्रममेव साधयेत् । १४ नित्यः शब्दः कृतकत्वात् । १५ अङ्ग-  
रादि । १६ बीजानि । १७ क्षित्युदकादिकक्षणा । १८ यथा बीजलक्षणा सामग्री  
क्षित्युदकादिकक्षणाऽक्रमकारणाधीना । १९ चक्षुरादीनां । २० तद्विभ्रमसिद्धौ हि  
मनःसिद्धिस्ततस्तद्विभ्रमसिद्धिरिति दूषणं । २१ स्वप्रक्रियामात्रेण । २२ आत्मना ।  
२३ आत्ममनसोः । २४ घटते । २५ संयोगे । २६ मनोभ्युपगम्य तत्र किञ्च ।  
२७ आत्मनि । २८ समवायिति ।

१ आत्मेन्द्रियायाः करणान्तरापेक्षाः सद्भावेऽपि अनुत्पाद्योत्पादकत्वात् । वे हि  
सद्भावेऽपि कार्यमनुत्पाद्यं यथादुत्पादयन्ति ते सापेक्षाः यथा तन्त्वादयः अन्त्यसंयो-  
गापेक्षा इति ।" प्रश्न० न्यो० पृ० ४२४ । प्रश्न० कन्द० पृ० ९० ।

२ "किञ्च, अनुत्पाद्योत्पादकत्वमस्य क्रमेण, युगपद्वा विवक्षितम् ।"

न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

३ "सिद्धौ वा न संयोगः, निरर्थयोरालम्बनसारेकदेशेन संयोगे सांशत्वम् ।"

न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

४ "नच निरर्थयोरालम्बनसोः संयोगः संगती, एकदेशेन तत्संयोगे सांशत्वप्रसक्तो,  
सर्वोत्पन्ना संयोगे उभयोरेकत्वप्राप्तिः ।" सन्धति० टी० पृ० ४७६ ।

५ "यदिच यत्र मनः संयुक्तं तत्र समवेतं ज्ञानं समुत्पादयति तदा सर्वोत्पन्ना

उमवेत्ते ज्ञानमुत्पादयति' इत्यभ्युपगमे चाखिलात्मसमवेत-  
सुखादौ ज्ञानं जनयेत् तेषां नित्यव्यापित्वेन मनसा संयोगोऽ-  
विशेषात् । तथा च प्रतिप्राणि भिन्नं मनोर्न्तरं व्यर्थम् । यस्य  
र्यन्मनस्तत्तत्समवायिनि ज्ञानहेतुरित्यप्यसारम्, प्रतिनियतात्म-  
सम्बन्धित्वस्यैवात्रासिद्धेः । तद्धि तत्कार्यत्वात्, तदुपक्रियमाण-  
त्वात्, तत्संयोगात्, तददृष्टप्रेरितत्वात्, तदात्मप्रेरितत्वाद्वा  
स्यात् ? न तावत्तत्कार्यत्वेन तैस्सम्बन्धिताः, नित्ये तदयोगात् ।  
नाप्युपक्रियमाणत्वेन, अनौघेयाप्रहेयोतिर्ज्ञेयि तस्याप्यसम्भवात् ।  
नापि संयोगात्, सर्वत्रास्याविशेषात् । नापि 'यददृष्टप्रेरितं  
प्रवर्तते निर्वर्तते वा तत्तस्य' इति वैक्यम्; अचेतनस्यादृष्टा १०  
स्यानिष्टदेशादिपरिहारेणेष्टदेशादौ तत्प्रेरणासम्भवात्, अन्यथे-  
श्वरकल्पनावैफल्यम् । न चेश्वरस्यैवादृष्टप्रेरणे व्यापारात्साफ-  
ल्यम्, मनस एवासौ प्रेरकः कैलप्यताम् किं परम्परेया ? तस्य

१ सुखादौ । परेण । २ मनः कर्तुं । ४ लिखिलात्मनाम् । ५ एकसैव मनसः  
सम्बन्धे सति । ६ मानसान्तर । ७ व्यर्थं भवतीत्युक्ते परः प्राह । ८ आत्मनः ।  
९ कर्तुं । १० सुखादौ । ११ भवति । १२ जीव । १३ अस्वात्मन इदं मन इति ।  
१४ मनसि । १५ मनो यमि प्रतिनियतात्मसम्बन्धि भवतीति साध्यम् । १६ प्रति-  
नियतात्म । १७ मनसः । १८ मनसः । १९ मनसः । २० ता । २१ आ ।  
२२ मनसः । २३ मनसः । २४ मनसः । २५ मनसः । २६ नित्यपरमाणुपरिमार्ण  
मन इति वचनात् । २७ आत्मना । २८ आरोपयितुमशक्य । २९ स्फोटयितुम-  
शक्य । ३० अतिशये मनसि । ३१ आत्मसु । ३२ ता । ३३ अनिष्टात् ।  
३४ परेण । ३५ काळ । ३६ मनः । ३७ विषये । ३८ परेण । ३९ मद्देशेरेणा-  
दृष्टं प्रेयते अदृष्टेन मन इति परम्परा तथा । ४० अदृष्टस्य ।

व्यापितया समानदेशत्वेन मनसस्तैः सद्रुक्तत्वात् सर्वात्मसमवेतसुखादिषु तदेवैकं  
ज्ञानमुत्पादयतीति प्रतिप्राणि भिन्नमनःपरिकल्पनमनर्थकमासज्येत ।"

सम्प्रति० टी० पृ० ४७६ । न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

१ "न हि तत्कार्यत्वेन तत्सम्बन्धिता, तस्य नित्यत्वाभ्युपगमात्, तत्र चानावे-  
याप्रहेयातिशये तत्कार्यताऽयोगात् ।" सम्प्रति० टी० पृ० ४७६ ।

२ "नापि संयोगात्, तस्यापि तनैकदेशेन सर्वात्मना वाऽयोगात् ।"

सम्प्रति० टी० पृ० ४७६ । न्यायकुसु० पृ० २७२ ।

३ "नच यददृष्टप्रेरितं तत्प्रवर्तते तत्सम्बन्धीति वक्तव्यम्; अदृष्टस्य अचेतनत्वेन  
प्रतिनियमविषय (ये) तत्प्रेरकत्वायोगात्, प्रेरकत्वे वा ईश्वरपरिकल्पनावैयर्थ्यप्रसक्तैः"

सम्प्रति० टी० पृ० ४७६ । न्यायकुसु० पृ० २७२ ।

सर्वसाधारणत्वाच्चातो न तन्नियमः । चादृष्टस्यापि प्रतिनियमः सिद्धः; तस्यात्मनोऽत्यन्तमेदात् समवायस्यापि सर्वत्राविशेषात् । 'येनात्मना यन्मनः प्रेर्यते तत्तस्य' इत्युक्तम्, अनुपलब्धस्य प्रेरणासम्भवात् ।

- ५ किञ्च, ईश्वरस्यापि स्वसंविदितज्ञानानभ्युपगमे 'सदसद्वर्गः कैस्यचिदेकज्ञानालम्बनोऽनेकत्वात्पञ्चाङ्गुलवत्' इत्यत्र पक्षीकृतैकदेशेन व्यभिचारः-तज्ज्ञानान्त्यैसदसद्वर्गयोरनेकत्वाविशेषेऽप्येकज्ञानालम्बनत्वाभावादेकशाखाप्रभवत्वाभ्यानुमानवत् । 'स्वसंविदितत्वाभ्युपगमे कस्य अनेनैव' प्रमेयत्वहेतोर्व्यभिचार इत्युक्तम् ।  
१० 'असदादिज्ञानापेक्षया ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वं साध्यते' इत्यत्राभ्युक्तम् ।

किञ्चाद्ये ज्ञाने सति, असति वा द्वितीयज्ञानमुत्पद्यते ? सति चेत्-युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिविरोधः । असति चेत्, कस्य तज्ज्ञानम् ? असतो ब्रह्मे द्विचन्द्रादिज्ञानवदस्य आन्तत्त्वप्रसङ्गः ।

- १५ किञ्च, असदादीनां तैज्ज्ञानान्तरं प्रत्यक्षम्, अप्रत्यक्षं वा । यदि प्रत्यक्षम्-स्वतः, ज्ञानान्तराद्वा ? स्वतश्चेत्, प्रथममप्यर्थज्ञानं स्वतः प्रत्यक्षमस्तु । ज्ञानान्तरात्प्रत्यक्षत्वे तदपि ज्ञानान्तरं ज्ञानान्तरात्प्रत्यक्षमित्यनवस्था । अप्रत्यक्षं चेत् कथं तेनाद्यज्ञानब्रह्मणम् ? स्वय-

१ किञ्च । २ असेदमदृष्टमिति । ३ आत्मस्य गगनादौ । ४ परैः । ५ द्रव्य-गुणकर्मसामान्यविशेषसमवायरूपः सद्वर्गः । ६ प्राक्प्रवृत्तसेतरेतरालम्बनाभावरूपोऽसद्वर्गः । ७ पारिवेश्यादीश्वरस्य । ८ गुणरूपेण विशिष्टत्वेन । ९ सद्वर्गेण । १० ईश्वर । ११ इन्द्रः । १२ ईश्वरज्ञानान्मपवावयोरनेकज्ञानालम्बनत्वे स्वसंविदितत्वप्रसङ्गः । १३ पक्षानि यवानि फलानि । १४ घर्ष । १५ हेतुः । १६ व्यभिचारपरिहारार्थं । १७ परैः । १८ ईश्वरस्य । १९ गुणरूपेण महेश्वरज्ञानेन । २० समावालात्मनादिति । २१ समावालात्मनादित्यादि । २२ असदादेः । २३ ज्ञानान्तरस्य । २४ भवन्मते । २५ ज्ञानस्य । २६ अर्थज्ञानं आन्तमसद्ब्रह्मणम् । २७ द्वितीयम् ।

१ "नच येनात्मना यन्मनः प्रेर्यते तत्तत्सम्बन्धि इति प्रतिनियमः अदृष्टवदात्मनोऽपि अचेतनत्वेन तत्प्रत्यक्षप्रकल्पात् । चेतनत्वेऽपि नानुपलब्धस्य प्रेरणम् ।"

सन्मति० टी० पृ० ४७७, न्यायकुसु० पृ० २७२ । -

२ "किञ्च, स्वसंविदितज्ञानानभ्युपगमे 'सदसद्वर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनः अनेकत्वात्पञ्चाङ्गुलवत्' इत्यत्र पक्षीकृतैकदेशेन व्यभिचारः, तज्ज्ञानान्त्यैसदसद्वर्गयोरनेकत्वाविशेषेऽपि एकज्ञानालम्बनत्वाभावात् एकशाखाप्रभवत्वानुमानवत् ।"

सन्मति० टी० पृ० ४७७ । -

मप्रत्यक्षेण ज्ञानान्तरेणात्मान्तरेज्ञानेनेवास्य ग्रहणविरोधात् । ननु  
ज्ञानस्य स्वविषये गृहीतिजनकत्वं ग्राहकत्वम्, तच्च ज्ञानान्तरेणा-  
गृहीतस्यापीन्द्रियादिवद्युक्तमित्यपि मनोरथमात्रम्; अर्थज्ञान-  
स्यापि ज्ञानान्तरेणागृहीतस्यैवार्थग्राहकत्वानुपपत्तात् । तथा च ज्ञान-  
ज्ञानपरिकल्पनावैयर्थ्यं मीसांसकैमतानुपपन्नम् । ५

लिङ्गादेवसादृश्येनां चैगृहीतानां स्वविषये विज्ञानजनकत्वप्र-  
सङ्गात्तद्विषयविज्ञानोन्वेपणानर्थक्यम् । “उभयथोपलम्भाददोषः”  
इत्यभ्युपगमेपि किञ्चिल्लिङ्गादिकमज्ञातमेव चक्षुरादिकं तु ज्ञात-  
मेव स्वविषये प्रमितिमुत्पादयेत्तत एव । अथ चक्षुरादिकमेवा-  
ज्ञातं स्वविषये प्रमितिनिमित्तम्, न लिङ्गादिकं तत्तु ज्ञातमेव १०  
नान्यथाऽतो नोभयत्रोभयथाप्रसङ्गः प्रतीतिविरोधात्, नन्वेवं यथा  
अर्थज्ञानं ज्ञातमर्थं ज्ञप्तिनिमित्तम्, तथा ज्ञानज्ञानमपि ज्ञानेऽस्तु,  
तैत्र्याभ्युपगम्यथापरिकल्पने प्रतीतिविरोधाविशेषात् । यथैव हि-  
“विवादापेक्षं चक्षुरौद्यज्ञातमेवार्थं ज्ञप्तिनिमित्तं तत्त्वादस्य चक्षुरादि-  
वत् । लिङ्गादिकं तु ज्ञातमेव कचिज्ज्ञप्तिनिमित्तं तत्त्वादुभयवादिः १५

१ द्वितीयेन । २ सन्तानान्तर । ३ ज्ञानस्य । ४ द्वितीयं । ५ अर्थज्ञाने ।  
६ प्रतिष्ठापितं । ७ कल्पते । ८ तृतीयज्ञानेन । ९ द्वितीयज्ञानस्य । १० अष्टाद्वि ।  
११ ईदृ । १२ मीमांसकमते अगृहीतस्यैव (परोक्षस्य) ज्ञानस्यार्थग्राहकत्वात् ।  
१३ गामन्यावेत्यादि । १४ संज्ञासंज्ञितसम्बन्धप्रतिपक्षेः कारणं सादृश्यं । १५ किञ्च ।  
१६ अनुमेये । १७ गामन्यावेत्यादिवाक्यार्थे । १८ लिङ्गादिभ्यासौ विषयश्च ।  
१९ इन्द्रियस्याज्ञातस्य लिङ्गादर्शावस्य । २० न त्वज्ञातं ज्ञापकं नाम । २१ गृही-  
तस्यागृहीतस्य च गृहीतिजनकत्वेन । २२ अर्थज्ञानतद्ग्राहकज्ञानवच्च । २३ परेण ।  
२४ परकीयं । २५ असदादिकं लिङ्गन्तु ज्ञातमेव । २६ परकीय । २७ परस्य ।  
२८ चक्षुरादौ लिङ्गादौ च । २९ यथाक्रमं ज्ञातत्वाज्ञातत्वप्रकारेण । ३० इति चेत् ।  
३१ उभयथोभयत्र निकल्पे प्रतीतिविरोधप्रकारेण । ३२ ज्ञातं । ३३ ज्ञप्तिनिमित्तं ।  
३४ ज्ञाने । ३५ परं ज्ञातमपरं ज्ञातं स्वविषये प्रमितिजनकम् । ३६ परस्य ।  
३७ परकीयम् । ३८ अप्रत्यक्षत्वाविशेषाभावात् । ३९ परस्य । ४० स्वविषये ।

१ “स्थानमतम्-चक्षुरादिकमेवाज्ञातं स्वविषयज्ञप्तिनिमित्तं इदं न तु लिङ्गादिकम्,  
तदपि ज्ञातमेव नान्यथा ततो नोभयत्रोभयथाप्रसङ्गः प्रतीतिविरोधादिति; तदि यथा  
अर्थज्ञानं व्यवसितमर्थज्ञप्तिनिमित्तं तथा ज्ञानज्ञानमपि ज्ञानेऽस्तु, तत्रापि उभयथा परि-  
कल्पनाया प्रतीतिविरोधस्याविशेषात् । कया पुनः प्रतीत्या अत्र निरोध इति चेत् ;  
चक्षुरादिषु कथेति समः पर्यनुयोगः । विवादापेक्षं चक्षुरादिकमज्ञातमेव अर्थज्ञप्तिनिमित्तं  
चक्षुरादित्वात्” तथा विवादाध्यासितं लिङ्गादिकं ज्ञातमेव कचिद्विज्ञप्तिनिमित्तम्  
लिङ्गादित्वात्, यदित्थं तदित्थं यथोभयवादिप्रसिद्धं भूमादि, तथा च विवादाध्यासितं



प्रसिद्धधूमादिवत्' इत्यनुमानप्रतीत्यात्रोभयथा कल्पने विरोधः । तथा 'ज्ञानज्ञानं ज्ञातमेव स्वविषये ह्यसिनिमित्तं ज्ञानत्वादर्थज्ञान-  
वत्' इत्यत्रापि सर्वथा विशेषाभावात् । यदि चाप्रत्यक्षेणाप्ये-  
नेनार्थज्ञानप्रत्यक्षताः, तर्हीश्वरज्ञानैर्नात्मनोऽप्रत्यक्षेणाशेषविषयेण  
५ प्राणिमात्रस्याशेषार्थसाक्षात्करणं भवेत्, तथा चेश्वरेतरविभा-  
गाभावः । स्वैर्ज्ञानगृहीतमात्मनोऽर्थ्यक्षमित्यप्यसङ्गतम्; स्वै-  
विदितत्वाभावे स्वज्ञानत्वासिद्धेः । 'स्वैस्मिन्समवेतं स्वज्ञानम्'  
इत्यपि वार्त्तम्; समवायनिषेधात्तद्विशेषाच्च । 'स्वैर्कार्यम्' इत्य-  
प्यसम्यक्; समवायनिषेधे तदाधेयैतयोत्पादस्याप्यसिद्धेः । जन-  
३० कत्वमौत्रेण तैस्त्रे दिक्कालादौ तैत्प्रसङ्गः । नित्येज्ञानं चेश्वरस्यापि न  
स्यौ तैः स्वतो ज्ञानं प्रत्यक्षम् अन्यथोक्तदोषौनुषङ्गः ।

ननु ज्ञानान्तरप्रत्यक्षत्वेपि नानवस्था, अर्थज्ञानस्य द्वितीयेना-  
स्यापि तृतीयेन ग्रहणादर्थसिद्धेरैपरज्ञानकल्पनया प्रयोजनाभा-

१ ज्ञान । २ प्रतीतिविरोधः । ३ किञ्च । ४ द्वितीयज्ञानेन । ५ स्यात् ।  
६ असदादेः । ७ असदादि । ८ जयज्ञानं । ९ असदादेः । १० कल्पते ।  
११ असदादिना । १२ द्वितीयज्ञानस्य । १३ आत्मनि । १४ सर्वेष्वात्म्यम् ।  
१५ आत्मनः । १६ स्वज्ञानम् । १७ आत्मनि । १८ सति । १९ विवक्षितात्मनि ।  
२० स्वज्ञानस्य । २१ जन्मनः । २२ निमित्तकारणम् । २३ स्वकीयत्वे । २४ ज्ञानस्य  
स्वकीयत्वम् । २५ तज्जनकत्वाविशेषात् । २६ किञ्च । २७ ज्ञातत्वात् । २८ कार्य-  
स्यानित्यत्वात् । २९ ज्ञानत्वात् । ३० जनवत्सा । ३१ चतुर्थः ।

किंवापि, तस्मात्तत्वेत्यनुमानप्रतीत्या तत्रोभयथाकल्पने विरोध इति चेत्; तर्हि विवा-  
दापन्नं ज्ञानं ज्ञातमेव स्वविषये ह्यसिनिमित्तं ज्ञानत्वात्, यदेवं तदेवं यथा अर्थज्ञानम्,  
तथा च विवादाध्यासितं ज्ञानज्ञानम्, तस्मात्तत्वेत्यनुमानप्रतीत्यैव तत्रोभयथा कल्पनार्था  
विरोधोऽस्तु सर्वथा विशेषाभावात्, तथा चानवस्थानं दुर्निवारमेव नैयायिकमन्या-  
नाम् ।”

श्रुत्यनु० टी० पृ० ८ ।

१ “स्वयमसिद्धेन ज्ञानेन गृहीतस्याप्यगृहीतरूपत्वात्, अन्यथा सर्वज्ञज्ञानगृहीतस्य  
रम्यापुरुषज्ञानगृहीतत्वं भवेदिति तस्यापि सर्वज्ञताप्रसक्तिः ।” सम्प्रति० टी० पृ० ४७८ ।

२ “न च स्वज्ञानगृहीतं तद्वृत्तिमिति नार्थं दोषः; स्वसमिदितज्ञानाभावे स्वज्ञान-  
मित्यसौवासिद्धेः ।” सम्प्रति० टी० पृ० ४७८ ।

३ “स्वस्मिन् समवेतं स्वज्ञानमविधीयत इति नार्थं दोषः इति चेत्; न; तस्याभा-  
वात्, भावेप्यविशिष्टत्वात् ।” सम्प्रति० टी० पृ० ४७८ ।

४ “... तेन षटादिज्ञानस्य धर्मिणः द्वितीयेन, तस्यापि तृतीयेन ग्रहणादर्थसिद्धेरै-  
परज्ञानकल्पनमिति नानवस्था इति बहुक्लम्; तदप्यसङ्गतम्; तृतीयादेर्ज्ञानस्याग्रहे  
प्रथमस्याप्यसिद्धेरुक्तन्यायात्” सम्प्रति० टी० पृ० ४७९ । श्रुत्यनु० टी० पृ० ९ ।

वात् । अर्थजिज्ञासायां ह्यर्थे ज्ञानम्, ज्ञानजिज्ञासायां तु ज्ञाने,  
प्रतीतेरेवविधैतत्वात्; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; तृतीयज्ञानस्याग्र-  
हणे तेन प्रोक्तनज्ञानग्रहणविरोधात्, इतरथा सर्वत्र द्वितीयादि-  
ज्ञानकल्पनानर्थक्यं तत्र चोक्तो दोषः ।

किञ्च, 'अर्थजिज्ञासायां सत्यामिदमुत्पन्नम्' इति तज्ज्ञानादेव  
प्रतीतिः, ज्ञानान्तराद्या? प्रथमपक्षे जैनमतसिद्धिस्तथाप्रति-  
पक्षमानं हि ज्ञानं स्वपरपरिच्छेदकं स्यात् । द्वितीयपक्षेपि 'अर्थ-  
ज्ञानमज्ञातमेव मयार्थस्य परिच्छेदकम्' इति ज्ञानान्तरं प्रतिपद्यते  
चेत्; तदेव स्वार्थपरिच्छेदकं सिद्धं तैयार्थमपि स्यात् । न प्रतिपद्यते  
चेत्कथं तथाप्रतिपत्तिः? १०:

किञ्च, अर्थज्ञानमर्थमात्मनं च प्रतिपद्य 'अज्ञातमेव मया  
ज्ञानमर्थं जानाति' इति ज्ञानान्तरं प्रतीयात्, अप्रतिपद्य वा ।  
प्रथमपक्षे त्रिविषयं ज्ञानान्तरं प्रसज्येत । द्वितीयपक्षे तु अतिप्र-  
सङ्गः 'मयाऽज्ञातमेवादृष्टं सुखादीनि करोति' इत्यपि तज्ज्ञानी-  
याद्विशेषात् । १५

१. १ जातं । २ घान जातं । ३ जिज्ञासापूर्वकत्वात् । ४ चतुर्थेन । ५ द्वितीय ।  
६ अर्थज्ञाने । ७ आत्मनि । ८ प्रथमज्ञानेनात्मन् । ९ अक्षेपस्य प्राणिमात्रसाधेयत्व-  
कक्षणः । १० अर्थज्ञान । ११ मिलादि । १२ प्रथम । १३ कर्तुं । १४ जानाति ।  
१५ ज्ञानान्तरम् । १६ अर्थज्ञानं । १७ ज्ञानत्वाद्वितीयज्ञानम् । १८ कर्तुं ।  
१९ ज्ञानस्वरूपं । २० त्रितयमपि द्वितीयज्ञानस्य कर्तव्यम् । २१ ज्ञात्वा ।  
२२ कर्तुं । २३ कर्तुं । २४ नसः । २५ अपसिद्धान्तप्रसङ्गः । २६ कर्तुं ।  
२७ त्रितयाविषयीकरणस्य ।

१ "सत्यमर्थज्ञान मनेदमित्यप्रतिपत्तौ तथाप्रतीतेरस्यत्वात्, प्रतिपत्तौ तु सत एव  
सप्रतिपत्तिः, ज्ञानान्तराद्या? सतक्षेपः; स्वार्थपरिच्छेदकत्वसिद्धिर्येदनस्य वस्तुव्यवसायः,  
'क्षविद्ये जिज्ञासायां सत्यामिदमुत्पन्नमिति स्वयं प्रतिपद्यमानं हि ज्ञानं स्वार्थपरिच्छेदक-  
मन्यनुभावते नान्यजेति जैनमतसिद्धिः । यदि पुनर्ज्ञानान्तराद्याप्रतिपत्तिस्तदापि तद-  
र्थज्ञानम् अज्ञातमेवमयाऽर्थस्य परिच्छेदकमिति स्वयं ज्ञानान्तरं प्रतिपद्यते चेत्तदेव  
स्वार्थपरिच्छेदकं सिद्धम् । न प्रतिपद्यते चेत्कथं तथा प्रतिपत्तिः ।" उच्यते ० टी०  
५० ९ । न्यायकुसु ० ५० १८६ ।

२ "किंचेद निचार्यते-ज्ञानान्तरम् अर्थज्ञानमर्थमात्मनश्च प्रतिपद्य अज्ञातमेव  
मया ज्ञातमर्थं जानातीति प्रतिपद्य, अप्रतिपद्य वा? प्रथमे पक्षे अर्थस्य सञ्ज्ञानस्य  
स्वात्मनः स्वपरिच्छेदकत्वविषयं ज्ञानान्तरं प्रसज्येत । द्वितीयपक्षे पुनरतिप्रसङ्गः,  
सुखादिकमज्ञातमेवादृष्टं मया करोतीत्यपि जानीयादविशेषात् ।" उच्यते ० टी० ५० ९ ।

न्यायकुसु ० ५० १८६ ।

नापि शैकिक्षयात्, ईश्वरात्, विषयान्तरसञ्चारात्, अदृष्टा-  
द्वाऽनवस्थाभावः । न हि शैकिक्षयाच्चतुर्थ्यादिज्ञानस्यानुत्पत्तेरनव-  
स्थानाभावः । तदनुत्पत्तौ प्राक्तनज्ञानासिद्धिदोषस्य तदवस्थ-  
त्वात् । तैक्षये च कुतो रूपादिज्ञानं साधनादिज्ञानं वा र्थतो  
५ व्यवहारः प्रवर्त्तते ? न च चतुर्थ्यादिज्ञानजननशक्तेरेव क्षयो  
नेतेरस्याः, युगपदनेकशक्त्यभावात् । भावे वा तथैव ज्ञानोत्पत्ति-  
प्रसङ्गः । नित्यस्यापरोपेक्षायसम्भाव्या । क्रमेण शक्तिसङ्गावे  
कुतोऽसौ ? न तावदात्मनोऽशैकात्, तदसंभवात् । शक्त्यन्तर-  
कल्पने चानवस्था ।

१० ईश्वरस्तां निवारयतीत्यपि बालविलसितम्, कृतकृत्यस्य तन्नि-  
वारणे प्रयोजनाभावात् । परोपकारः प्रयोजनमित्यसत्, धर्मि-  
ग्रहणाभावस्य तदवस्थत्वप्रसङ्गात्, अप्रतीतेर्निषिद्धत्वान्नैव ।

न च विषयान्तरसञ्चारात्तन्निवृत्तिः, विषयान्तरसञ्चारो हि  
धर्मिज्ञानविषयादन्यत्र साधनादिविषये ज्ञानोत्पत्तिः । न च तज्ज्ञा-

१ किञ्च । २ प्रतिपद्युः । ३ पञ्चपद्यादि । ४ प्रथमद्वितीयतृतीय । ५ पूर्व-  
निरूपित । ६ शक्ति । ७ दृष्टान्तादि । ८ कुतः । ९ रूपादिज्ञाननित्यायाः शक्तेः ।  
१० अपसिद्धान्तः । ११ आत्मनः । १२ ज्ञानोत्पत्तौ । १३ शक्ति । १४ शक्ति-  
भवेत् । १५ असमर्थात् । १६ ता । १७ शक्तादात्मन्येव । १८ आत्मगताः  
शक्तयः शक्तिमत् पञ्चात्मनः उत्पद्यन्ते इत्यनेन प्रकारेण । १९ आषड्ज्ञानज्ञानाभावस्य ।  
२० पूर्वनिरूपित । २१ यदादिज्ञानज्ञानमिलादौ । २२ धर्मिज्ञानज्ञानस्य । २३ तृतीय-  
ज्ञानात् । २४ ता । २५ वसः । २६ आषड्ज्ञानस्य । २७ तृतीयज्ञानात् ।  
२८ तृतीयज्ञानस्य । २९ द्वितीय ।

१ “न च शक्तिप्रक्षयाच्चतुर्थ्यादिरनुत्पत्तेरनवस्थानिवृत्तिः, धर्मिग्रहणस्यैवसमावा-  
यत्तेः । किञ्च, यदि शक्तिप्रक्षयादनवस्थानिवृत्तिः, बाह्यविषयमपि ज्ञानं न भवेत्  
शक्तिप्रक्षयादेव ।” सम्मति० टी० पृ० ४७९ ।

२ “नच चतुर्थ्यादिज्ञानजननशक्तेरेव प्रक्षयः न बाह्यविषयज्ञानशक्तेः, युगपदनेक-  
शक्त्यभावात्, भावे वा युगपदनेकज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्गः ।” सम्मति० टी० पृ० ४७९ ।

३ “पदेन ईश्वरादनवस्थानिवृत्तिरिति प्रतिविहितम्, तस्माद्दृष्टकल्पनत्वात्, प्रति-  
षिद्धत्वाच्च ।” सम्मति० टी० पृ० ४७९ ।

४ “न च विषयान्तरसञ्चारादनवस्थानिवृत्तिः, यतो धर्मिज्ञानविषयात् साधनादि-  
विषयान्तरम्, तत्र ज्ञानस्योत्पत्तेः विषयान्तरसञ्चारः । न चापरापरज्ञानादिज्ञानस-  
न्तत्युत्पत्तौ अवश्यम्याविबाह्यसाधनादिविषयसन्निधानम्, येन तत्र ज्ञानस्य सञ्चारो  
भवेत् । सन्निधानेऽपि अन्तरङ्गबहिरङ्गयोरन्तरङ्गस्यैव मलीयस्त्वात् नान्तरङ्गविषयपरिहारेण  
बाह्यविषये ज्ञानोत्पत्तिर्भवेदिति कुतोऽनवस्थानिवृत्तिः ?” सम्मति० टी० पृ० ४७९ ।

नसन्निधानेऽवश्यं साधनादिना सन्निहितेन भवितव्यमसिद्धादेर-  
भावापत्तेः । सन्निहितेपि वा जिघृक्षिते धर्मिण्यर्गृहीते कथं  
विषयान्तरे ग्रहणाकांक्षा ? कथं वा तज्ज्ञानमेकार्थसमवेतत्वेन  
सन्निहितं विहाय तद्विपरीते दृष्टान्तादौ ज्ञानं ज्ञायेत् ?

अदृष्टात्तन्निवृत्तौ स्वसंविदितज्ञानोत्पत्तिरेवातोऽस्तु किं मिथ्या-  
भिनिवेशेन ? तत्र प्रत्यक्षाद्धर्मिसिद्धिः ।

नौप्यनुमानात् । तत्सद्भावावेदकस्यै तस्यैवासिद्धेः । सिद्धौ वा  
तत्रैवाप्युपपत्तिरसिद्धादिदोषोपनिर्णतः स्यात् । पुनरत्राप्यनुमाना-  
न्तरात्तत्सिद्धावनवस्था । इत्युक्तदोषपरिजिहीर्षया प्रदीपवत्स्व-  
परप्रकाशनशक्तिद्वयात्मकं ज्ञानमभ्युपगन्तव्यम् । तदपह्नवे १०  
वैस्तुव्यवस्थाभावप्रसङ्गात् ।

ननु संपरप्रकाशो नाम यदि बोधरूपत्वं तदा साध्यविकलो  
दृष्टान्तः प्रदीपे बोधरूपत्वस्यासम्भवात् । अथ भासुररूपसम्ब-  
न्धित्वं तस्य ज्ञानेऽत्यन्तासम्भवात्कथं साध्यता ? अन्यैथौ प्रत्यक्ष-  
बाधस्तदप्यसमीचीनम् । तत्प्रकाशो हि स्वपररूपोद्योतैरूपोऽ- १५  
भ्युपगम्यते । स च कैचिद्बोधरूपतया क्वचित्तु भासुररूपतया वा  
न विरोधमध्यास्ते ।

१ तृतीयज्ञानसैकान्त्यसमवेतत्वेन । २ दृष्टान्तादि । ३ अन्यथा । ४ आभय ।  
५ दृष्टान्तः । ६ साधनादौ । ७ अवज्ञाने । ८ तृतीयेन द्वितीयस्याग्रहणे द्वितीयेन  
प्रथमस्याग्रहणे । ९ प्रतिपद्युः । १० किञ्च । ११ धर्मिज्ञानतृतीयज्ञानं । १२ एक-  
त्वात् । १३ तृतीयं चतुर्थं । १४ ज्ञानान्तरेणैव वैद्यं ज्ञानमिति । १५ द्वितीयविकल्पः ।  
१६ आहकत्व । १७ धर्मिज्ञान । १८ वा । १९ हेतोरसिद्धिः । २० द्वितीयेऽ-  
नुमाने । २१ ईश्वरज्ञानेन सुखसवेदनेन चानेकान्तः कर्त्तव्यसिद्धिः । २२ परेण ।  
२३ अविज्ञान । २४ ज्ञानं स्वपरप्रकाशकमर्थप्रकाशकत्वाप्रदीपवत् । २५ प्रदीपे  
बोधरूपत्वे ज्ञाने भासुररूपसम्बन्धित्वे सति । २६ ज्ञाने भासुररूपसम्बन्धित्वं विद्यते  
चेत् । २७ प्रकटन । २८ जैनैः । २९ ज्ञाने ।

१ “नचादृष्टवशादनवस्थानिवृत्तिः; स्वसंविदितज्ञानाभ्युपगमेनापि अनवस्थानिवृत्तेः  
संनवात्, अन्यथा कार्येऽनुपपन्नमाने अदृष्टपरिकल्पनाया उपपत्तेः । स्वसंवेदनेऽपि  
अदृष्टस्य शक्तिप्रसङ्गामावात् ।”

सन्मति० टी० पृ० ४७९ ।

२ “यदि प्रकाशकत्वं बोधरूपत्वं निवर्तितं तदा साधनविकलमुदाहरणम्, प्रदीपे  
बोधरूपत्वस्यासम्भवात् । अथ प्रकाशकत्वं भासुररूपसम्बन्धित्वं तद् विज्ञाने नास्ति ।”

प्रसङ्ग० व्यो० पृ० ५२९ । -

३ “यतः कर्मप्रकाशकत्वमर्थोद्योतकत्वमुच्यते, तच्च कचिद्बोधरूपतया कचिद्भा-  
सुररूपतया वा न विरोधमध्यास्ते ।” न्यायकुमु० पृ० १८९ । सा० रत्ना० पृ० २३१ ।

ननु येनैवात्मना ज्ञानमात्मानं प्रकाशयति येन चार्थं तौ चेत्त-  
तोऽभिज्ञौ; तर्हि तौवेव न ज्ञानं तस्य तत्रानुप्रवेशात्तत्स्वरूपवत्,  
ज्ञानमेव वा तयोस्तत्रानुप्रवेशात्, तथा च कथं तस्य स्वपर-  
प्रकाशनशक्तिद्वयात्मकत्वम्? मित्रौ चेत्स्वसंविदितौ, स्वाश्रय-  
५ ज्ञानविदितौ वा । प्रथमपक्षे स्वसंविदितज्ञानत्रयप्रसङ्गस्तत्रापि  
प्रत्येकं स्वपरप्रकाशस्वभावद्वयात्मकत्वे स एव पर्यनुयोगोऽन्-  
वस्था च । द्वितीयपक्षेऽपि स्वपरप्रकाशहेतुभूतयोस्तयोर्यदि ज्ञानं  
तथाविधेन स्वभावद्वयेन प्रकाशकं तर्ह्यनवस्था । तदप्रकाशकत्वे  
प्रमाणत्वायोगेस्तयोर्वा तैस्वभावत्वविरोध इति' एकांन्तर्वादिना-  
१० मुपलम्भो नास्तीकम्; ज्ञानैतरेत्वात्स्वभावतद्वतोभेदामेदं प्रत्य-  
नेकांन्तात् । ज्ञानात्मना हि स्वभावतद्वतोभेदः, स्वपरप्रकाश-  
स्वभावत्वात्मना च भेदः इति ज्ञानमेवामेदोऽतो भिन्नस्य ज्ञानात्मनोऽ-  
प्रतीतेः । स्वपरप्रकाशस्वभावे च भेदस्तर्ह्यतिरिक्तयोस्तत्प्रती-  
यमानत्वादित्युक्तदोषानवकाशः । कल्पितयोस्तु भेदामेदैकान्त-  
१५ योस्तद्दूषणप्रवृत्तौ सर्वत्र प्रवृत्तिप्रसङ्गात् न कस्यचिद्विद्वत्स्व-  
व्यवस्था स्यात् । स्वपरप्रकाशस्वभावौ च प्रमाणस्य तत्प्रका-  
शनसामर्थ्यमेव, तद्दूषतया चैस्य परोक्षता, तत्प्रकाशनलक्षण-

१ स्वभावेन । २ भवतः । ३ तौ । ४ शानात् । ५ द्वौ स्वभावौ ज्ञान-च ।  
६ प्रत्येकं स्वपरप्रकाशनस्वभावौ मित्रावभिज्ञौ वा । अभिज्ञपक्षे प्राशुक्रमेव दूषणं  
भिन्नपक्षे स्वसंविदितौ स्वाश्रयज्ञानविदितौ वैत्यादि । ७ भावयोः । ८ भिन्नेन ।  
९ स्वभावद्वयप्रकाशनात् । १० ज्ञानस्य । ११ ज्ञानस्य । १२ ज्ञान । १३ भा ।  
१४ परेषां भवताम् । १५ जैनानाम् । १६ प्रकारान्तरत्वात् । १७ कथञ्चिद-  
भेदामेदरूपत्वात् । १८ असत्प्रत्यक्षस्य । १९ अनियमात् । २० स्वरूपेण ।  
२१ ईयेकः । २२ वा द्विः । २३ ज्ञानस्य । २४ ता । २५ ता । २६ इति ।  
२७ ज्ञानरूपस्वभावरूपामेदार्था । २८ स्वभावतद्वतोः । २९ स्वपरप्रकाशनस्वभाव-  
भेदामेदपक्षयोः । ३० भवत्पक्षे भया योगेन । ३१ मुखात्मनोभेदो ब्रह्माद्वैतवादिना  
कल्पितसत्ताभेदे त्वया दूषणमुन्नाम्यते भेदप्रतिभासो न स्यादेकाल्पि सौगत्येन भेदः  
कल्पितसत्ता भेदे त्वया दूषणमुन्नाम्यते अनुसन्धानं न स्यादिति । तथापि भेदाभेद-  
पक्षदूषणं स्यात् । कथं त्वया द्रव्यगुणयोर्भेदोऽभ्युपगतः आत्मान्यभेदस्त्वपक्षेति परेणो-  
न्नाम्यमानं दूषणं प्रसज्येत । ३२ वस्तुनि । ३३ फारकौ न आपकौ आत्मस्य ।  
३४ ज्ञानस्य ।

१ "यच्चान्यदुक्तं येनैवात्मना ज्ञानमात्मानं प्रकाशयति तेनैवार्थम् इत्यादि;  
तदसमीक्षितमभिधानम्; स्वभावतद्वतोः भेदाभेदं प्रत्यनेकान्तात् ।"

न्यायकुसुम ५० १८९ । सा ० रत्ना ० ५० २३२ । ( तत्त्वार्थको ५० १२५ )

कार्यानुमेयत्वात्तयोः । सकलभावानां सामर्थ्यस्य कार्यानुमेयतया निखिलवादिभिरभ्युपगमात् । अर्वाङ्गदशां चान्तर्वहिवार्थो नैकान्ततः प्रत्यक्ष इत्यत्राखिलवादिनामविप्रतिपत्तिरेवेत्युक्तदोषानवकाशतया प्रमाणस्य प्रत्यक्षताप्रसिद्धेरलं विवादेन । अर्मुमेवार्थसमर्थयमानः कोवेत्यादिना प्रकरणार्थमुपसंहरति । ५

को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छंस्तदेव  
तथा नेच्छेत् ॥ ११ ॥

प्रदीपवत् ॥ १२ ॥

को वा लो(लौ)किकः परीक्षको वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छंस्तदेव प्रमाणमेव तथा प्रत्यक्षप्रकारेण नेच्छेत् ! १० अपि तु प्रतीतिं प्रमाणयन्निच्छेदेव । अत्रैवार्थे परीक्षकेतरजनप्रसिद्धत्वात् प्रदीपं दृष्टान्तीकरोति ? ययैव हि प्रदीपस्य स्वप्रकाशतां प्रत्यक्षतां वा विना तत्प्रतिभासिनोर्यस्य प्रकाशकता प्रत्यक्षता वा नोपपद्यते । तथो प्रमाणस्यापि प्रत्यक्षतामन्तरेण तत्प्रतिभासिनोर्यस्य प्रत्यक्षता न स्यादित्युक्तं प्राक् प्रवन्धेनेत्युपरम्यते । १५ तदेवं सकलप्रमाणव्यक्तिव्यापि साकल्येनाप्रमाणव्यक्तिभ्यो व्यावृत्तं प्रमाणप्रसिद्धं स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणलक्षणम् ।

नैकलक्षणप्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतो वा स्यादित्याशङ्क्य प्रतिविधेते ।

तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ॥ १३ ॥

२०

तस्य स्वापूर्वार्थेत्यादिलक्षणलक्षितप्रमाणस्य प्रामाण्यमुत्पत्तौ परत एव । क्षतो स्वकार्ये च स्वतः परतश्च अभ्यासानभ्यासापेक्षया ।

१ स्वपरप्रकाशरूपयोः । २ किञ्चिज्ज्ञानात् । ३ व्यक्त्यपेक्षया प्रत्यक्षः शक्यपेक्षया प्ररोक्षः । ४ ज्ञान स्वप्रकाशकमर्थप्रकाशकत्वात् । ५ स्वपरप्रकाशकसमर्थप्रकाशकत्वात् । ६ भीमांसकेन ज्ञानप्ररोक्षत्वारूपो वैरागेन स्वात्मनिक्रियाडभावरूपश्च । ७ स्वसंविदित् । ८ ज्ञान । ९ अव्यक्तविवर्गं । १० प्रदीपवत् । ११ प्रदीपप्रकारेण । १२ दूषणम् । १३ असाभिर्देवैः । १४ प्रत्यक्षप्ररोक्ष । १५ अन्यात्यादिपरिहारः । १६ सन्निकर्षादि । १७ अतिव्याप्तिपरिहारः । १८ असम्भवपरिहारः । १९ स्वापूर्वेत्यादि । २० अविज्ञादित्वं । २१ जैनः । २२ अर्थव्यभिचारित्वम् । २३ प्रवृत्त्यर्थपरिच्छित्तिलक्षणे ।

१ "तत्राभ्यासात्प्रमाणत्वं निश्चितं स्वत एव नः ।

अनभ्यासे तु परतः इत्याहुः केचिदजसा ॥

ये तु सकलप्रमाणानां स्वतः प्रामाण्यं मन्यन्ते तेऽत्र प्रष्टव्याः—  
 किमुत्पत्तौ, ज्ञप्तौ, स्वकार्ये वा स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यं  
 प्रार्थ्यते प्रकारान्तरासम्भवात् ? यद्युत्पत्तौ, तत्रापि 'स्वतः  
 प्रामाण्यमुत्पद्यते' इति कोर्थः ? किं कारणमन्तरेणोत्पद्यते, स्वसा-  
 ५ मग्रीतो वा, विज्ञानमात्रसामग्रीतो वा गत्यन्तराभावात् । प्रथम-  
 पक्षे-देशकालनियमेन प्रतिनियतप्रमाणाधारतया प्रामाण्य-  
 प्रवृत्तिविरोधः स्वतो जायमानस्यैवंरूपत्वात्, अन्यथा तदयोगात् ।  
 द्वितीयपक्षे तु सिद्धसाध्यता, स्वसामग्रीतः सकलभावानामुत्पत्त्य-  
 न्युपगमात् । तृतीयपक्षोप्यविचारितरमणीयः, विशिष्टकार्यस्या-  
 १० विशिष्टकारणप्रभवत्वायोगात् । तथा हि-प्रामाण्यं विशिष्टकारण-  
 प्रभवं विशिष्टकार्यत्वाद्प्रामाण्यवत् । यथैव ह्यप्रामाण्यलक्षणं  
 विशिष्टं कार्यं काचकामलादिदोषलक्षणविशिष्टेभ्यश्चक्षुरादिभ्यो  
 जायते तथा प्रामाण्यमपि गुणविशेषणविशिष्टेभ्यो विशेषणमैवात् ।

१ भाङ्गः । २ समर्थेत । ३ आत्मवाचक आत्मीयवाचकश्च । ४ आत्मवाचक-  
 पक्षे । ५ आत्मीयवाचकपक्षे । ६ आत्मीयपक्षे । ७ वदादि । ८ तद्विरोधे ।  
 ९ कारणमन्तरेण प्रवृत्तेरयोगात् । १० प्रामाण्यस्य । ११ ज्ञानेन व्यभिचारः ।  
 १२ प्रामाण्यं न विज्ञानसामग्रीजन्यं विज्ञानान्यत्वे सति कार्यत्वात् । प्रामाण्यविज्ञाने  
 निजसामग्रीजन्ये निजकार्यत्वाद् षट्पदादिबद् । १३ निशिष्टकार्यत्वस्य ।

तच्च स्याद्वादिनामेव स्वार्थनिश्चयनात् स्थितम् ।

ननु स्वनिश्चयोन्मुक्तनिःशेषज्ञानवादिनाम् ॥” तत्प्रार्थको० ५० १७७ ।

“इति स्थितमेतत्—प्रमाणादिदृष्टसिद्धिः अन्यथाऽस्तिप्रसङ्गतः । प्रामाण्यं तु स्वतः  
 सिद्धमभ्यासात्परतोऽन्यथा ॥” प्रमाणप० ५० ११ ।

“आभ्यासिकं यथा ज्ञानं प्रमाणं गम्यते स्वतः ।

मिम्याज्ञानं तथा किञ्चिदप्रमाणं स्वतः स्थितम् ॥”

सत्त्वसं० कृति० ११०० ।

“नहि नौढेः यथा चतुर्णामेकतमोऽपि पक्षोऽधीष्टः, अनियमपक्षसेष्टत्वात् ।  
 तथाहि—उभयमन्येतत् किञ्चित् स्वतः किञ्चित् परत इति—”

सत्त्वसं० पं० ५० ८११ ।

१ “तर्हि स्वतो ज्ञायते, स्वतो वा जायते, स्वतो वा न्यायिष्ये ?”

प्रश्न० कन्दली ५० २१८ ।

२ “तत्रापि स्वतः कारणमन्तरेण-आत्मनैव प्रामाण्यमुत्पद्यते इत्यर्थः स्यात्,  
 आत्मनो वा सकलत्वात्, आत्मीयत्वाः सामग्रीतो वा ?” न्यायकुसु० ५० ११९ ।

३ “प्रमा ज्ञानहेत्वतिरिक्तेत्यधीना कार्यत्वे सति तद्विशेषत्वात् अभिमानवत् ।”

प्रश्न० किरणा० ५० २१८ ।

ज्ञसावप्यनभ्यासदशायां न प्रामाण्यं स्वतोऽवतिष्ठते; सन्देह-  
विपर्ययाक्रान्तत्वाच्चदेव । अभ्यासदशायां तुमैयमपि स्वतः ।  
नापि प्रवृत्तिलक्षणे स्वकार्ये तत्स्वतोऽवतिष्ठते, स्वग्रहेणसापेक्ष-  
त्वादप्रामाण्यवदेव । तद्धि ज्ञातं सन्निवृत्तिलक्षणस्वकार्यकारि  
नीन्यथा । ५

ननु गुणविशेषणविशिष्टेभ्यः इत्यु(त्ययु)कम्; तेषां प्रमाणतोऽ-  
नुपलम्भेनासत्त्वात् । न खलु प्रत्यक्षं तान्प्रत्येतुं समर्थम्; अती-  
न्द्रियेन्द्रियाप्रतिपत्तौ तद्वृणानां प्रतीतिविरोधात् । नोप्यनुमानम्;  
तस्य प्रतिर्वन्धबलेनोत्पत्त्यभ्युपगमात् । प्रतिवन्धश्चेन्द्रियगुणैः  
सह लिङ्गस्य प्रत्यक्षेण गृह्येत, अनुमानेन वा । न तावत्प्रत्यक्षेण, १०  
गुणाग्रहणे तत्सम्बन्धग्रहणविरोधात् । नोप्यनुमानेन, अस्यापि  
गृहीतसम्बन्धलिङ्गप्रभवत्वात् । तत्राप्यनुमानौन्तरेण सम्बन्ध-  
ग्रहणेऽनवस्था । प्रथमानुमानेनान्योन्याश्रयः । अतिप्रतिपन्नसम्ब-  
न्धप्रभवं चानुमानं न प्रमाणमतिप्रसङ्गात् ।

किञ्च, स्वभावहेतोः, कार्यात्, अनुपलब्धेर्वा तत्प्रभवेत्? न १५  
तावत्स्वर्भावात्, तस्य प्रत्यक्षगृहीतेर्य व्यवहारमात्रप्रवर्तनफल-  
त्वाद्बुद्धादौ शिक्षापात्वादिवत् । न चात्यक्षाऽक्षाश्रितगुणलिङ्गस-  
म्बन्धः प्रत्यक्षतः प्रतिप्रन्नः । कार्यहेतोश्च सिद्धे कार्यकारणभावे का-  
रणप्रतिपत्तिहेतुत्वम्, तत्सिद्धिश्चाभ्यैक्षानुपलम्भप्रमाणसम्पाद्या ।  
न चेन्द्रियगुणाश्रितसम्बन्धग्रहकत्वेनाभ्यैक्षप्रवृत्तिः, येन तत्का- २०

१ सत्यमसत्यमिति । २ प्रामाण्यमप्रामाण्यम् । ३ अभ्यासदशायां विषयं प्रति  
गमनम् । ४ सत्यत्व । ५ स्वतः ज्ञानेन । ६ प्रामाण्यस्य । ७ अभ्येन्द्रियमिच्छातिवृत्तिः ।  
८ असत्यमिदमिति । ९ विषयं प्रत्यगमनम् । १० अज्ञातम् । ११ अभ्यासदशायां  
स्वतः । १२ मीमांसकः । १३ चक्षुरादिभ्यः । १४ अपरिज्ञाने । १५ प्रामाण्यं  
विज्ञानकारणातिरेककारणप्रभवं विज्ञानान्यत्वे सति कार्यत्वादप्रामाण्यवत् । १६ अवि-  
नाभाव । १७ प्रामाण्यस्य । १८ लिङ्गस्य । १९ प्रामाण्यं गुणनियतं तदन्वयव्यति-  
रेकानुविधानित्वात् । २० द्वितीयानुमाने । २१ तदन्वयव्यतिरेकानुविधानित्वं  
गुणसङ्क्रावाविनाभावि तसि (गुणे) न्सत्वेवोत्पद्यमानत्वात् । २२ अगृहीत । २३ अनु-  
मानाभासम् । २४ तत्पुत्रत्वादेरुत्पन्नस्य प्रामाण्यप्रसङ्गात् । २५ बुद्धोऽयं शिक्षापा-  
त्वात् । २६ हेतोः । २७ बुद्धोऽयं शिक्षापात्वात् । २८ ता । २९ प्रामाण्यं  
(कार्यं) साध्येन (गुणेन) सम्बन्धि अनुमानकार्यत्वाद्भवत् । ३० हेतुः कार्यम् ।  
३१ सम्बन्धः कारणम् । ३२ अन्वयव्यतिरेकाभ्याम् । ३३ असत्यसङ्क्राव ।  
३४ कार्यकारणभावः । ३५ ता ।

1 "नहि चक्षुरादिषु गुणा नाम केचिदुपलम्बन्ते ।"



र्यत्वेन कस्यचिद्विज्ञस्याप्यध्यक्षतः प्रतिपत्तिः स्यात् । अनुपलब्धे-  
स्त्वेवंविधे विषये प्रवृत्तिरेव न सम्भवत्यभावमात्रसाधकत्वेनास्याः  
व्यापारोपगमात् ।

न चार्थोपलब्धमस्ति । यथार्थोपलब्धिरस्तीत्यप्यसङ्गतम् । यतो  
५ यथार्थत्वायर्थार्थत्वे विहाय यदि कार्यस्योपलब्ध्याख्यस्य स्वरूपं  
निश्चितं भवेत्तदा यथार्थत्वलक्षणः कार्यविशेषः पूर्वसात्का-  
रणकलापादनिष्पद्यमानो गुणोऽख्यं स्वोत्पत्तौ कारणान्तरं परिकल्प-  
येत् । यदा तु यथार्थोपलब्धिः स्वयो(स्वो)त्पादककारणकलापा-  
नुमापिका तदा कथं तद्वैतिरिक्तगुणसद्भावः ? अयथार्थत्वं तूपल-  
१० ष्चेर्विशेषः पूर्वसात्कारणसमूहादनुत्पद्यमानः स्वोत्पत्तौ सामर्थ्य-  
न्तरं परिकल्पयतीति परतोऽप्रामाण्यं तस्योत्पत्तौ दोषापेक्षत्वात् ।

न चेन्द्रिये नैर्मल्यादिरेव गुणः, नैर्मल्यं हि तत्स्वरूपम्, न तु  
स्वरूपाधिको गुणः तर्था व्यपदेशस्तु दोषाभावनिवन्धनः ।  
तथाहि-कामलादिदोषासत्त्वान्निर्मलमिन्द्रियं तत्सत्त्वे सदोषम् ।  
१५ मनसोपि निद्राद्यभावः स्वरूपं तत्सद्भावस्तु दोषः । विषयस्यापि  
निश्चैलत्वादिस्वरूपं च लत्वादस्तु दोषः । प्रमातुरपि क्षुधाद्यभावः  
स्वरूपं तत्सद्भावस्तु दोषः ।

न चैतद्वैकल्यम्-‘विज्ञानजनकानां स्वरूपमयथार्थोपलब्ध्या  
समधिगतम् यथार्थत्वं तु पूर्वसात्कारणकलापादनुत्पद्यमानं  
२० गुणाख्यं सामर्थ्यन्तरं परिकल्पयति’ इति, यैतोऽत्र लोकः प्रमा-  
णम् । न चात्र मिथ्याज्ञानात्कारणस्वरूपमात्रमेवानुमिनोति किन्तु  
सैम्यगङ्गानात् ।

किञ्च, अर्थतथाभावप्रकाशनरूपं प्रामाण्यम्, तस्य चक्षुः

१ प्रामाण्यस्य । २ सम्बन्धः । ३ ता । ४ किञ्च । ५ नयनगुणे साध्ये ।  
६ नयने गुणाः सन्ति यथार्थोपलब्धेः । ७ विषेयकृते । ८ कार्यमात्रस्य ।  
९ उपलब्धसामान्यस्य । १० सत्त्वं । ११ कर्त्ता । १२ शुद्धं चक्षुः । १३ अन्यत् ।  
१४ इन्द्रिय । १५ इन्द्रिय । १६ इन्द्रिय । १७ का । १८ निर्मलं चक्षुरिति ।  
१९ इन्द्रियस्वरूपम् । २० पदादिपदार्थस्य । २१ आसन्नत्वादि । २२ बहुमात्रम् ।  
२३ जैतैः । २४ चक्षुरादीनां । २५ छिन्नेन । २६ अयथार्थोपलब्धिजनकादि-  
न्द्रियात् । २७ विज्ञानसामर्थ्यनुमाने । २८ चक्षुरादि । २९ प्रामाण्यं विज्ञानकारण  
( चक्षुरादि ) प्रसवं विज्ञानस्वभावत्वात् विज्ञानस्वरूपत्वात् । ३० प्रमाणस्य कार्यार्थत-  
थाभावप्रकाशनरूपं प्रामाण्यम् ।

१ “नैर्मल्यं गुण इति चेत्; नन्वेवं दोषाख्यो गुणः ।”

गी० श्लो० न्यायसूत्रा० पृ० ५९ ।

रादिसामग्रीतो विज्ञानोत्पत्तावप्यनुत्पत्त्युपगमे विज्ञानस्य स्वरूपं  
वैक्तव्यम् । न च तद्रूपव्यतिरेकेण तस्य स्वरूपं पदयामो  
येन तदुत्पत्तावप्यनुत्पन्नमुत्तरकालं तत्रैवोत्पत्तिमदभ्युपगम्यते  
प्रामाण्यं भिन्नाविव चित्रम् । विज्ञानोत्पत्तावप्यनुत्पत्तौ व्यति-  
रिक्तसामग्रीतश्चोत्पत्त्यभ्युपगमे विद्वद्धर्माध्यासात्कारणमेदाच्च ५  
तयोर्भेदः स्यात् ।

किञ्च, अर्थतथात्वपरिच्छेदरूपा शक्तिः प्रामाण्यम्, शक्त-  
यश्च भावानां सत(स्वत) एवोत्पद्यन्ते नोत्पादककारणाधीर्नाः ।  
तदुक्तम्—

“स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गर्भ्यताम् । १०

न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुर्मन्येन पार्यते ॥”

[ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४७ ]

न चैतत्सत्कार्यदर्शनसमाश्रयणादभिधीयते; किन्तु यः कार्य-  
गतो धर्मः कारणे समस्ति स कार्यवैतत एवोदयमासादयति  
यथा मृत्पिण्डे विद्यमाना रूपादयो घटेपि मृत्पिण्डादुपजायमाने १५  
मृत्पिण्डरूपादिद्वारेणोपजायन्ते । ये तु कार्यधर्माः कारणेष्व-  
विद्यमाना न ते ततः कार्यवत् जायन्ते किन्तु स्वत एव, यथा  
तैश्चैवोदकाहरणशक्तिः । एवं विज्ञानेऽप्यर्थतथात्वपरिच्छेदशक्ति-  
श्चक्षुरादिष्वविद्यमाना तेभ्यो नोदयमासादयति किन्तु स्वत  
एवाविर्भवति । उक्तं च—

“आत्मलामे हि भौवानां कारणापेक्षिता भवेत् । २०

लब्धात्मनां स्वकार्येषु प्रवृत्तिः स्वयमेव तु ॥”

[ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४८ ]

यथा—मृत्पिण्डदण्डचक्रादि घटो जन्मन्यपेक्षते ।

उदकाहरणे त्वस्य तदपेक्षा न विद्यते” ॥ [ ] २५

१ प्रामाण्यस्य । २ जैनेः । ३ बवं मीमांसकाः । ४ विज्ञानस्य । ५ विज्ञाने ।  
६ भित्तिसद्भावे चित्रं नोपपद्ये विनष्टे तु भवतीति । ७ प्रामाण्यस्य । ८ प्रामाण्यस्य ।  
९ विज्ञानस्य कारणमिन्द्रियं प्रामाण्यस्य गुण इति । १० उत्पत्त्यनुत्पत्तिरक्षण ।  
११ इन्द्रियगुणौ । १२ प्रमाणप्रामाण्ययोः । १३ प्रमाणप्रामाण्ये भिन्ने । १४ इति  
परस्मानिष्टापत्तिः परेणामेदाभ्युपगमात् । १५ प्रमाणस्य भावशक्तिः । १६ विज्ञान-  
कारणातिरिक्तकारणाधीनो गुणः । १७ भवति । १८ निश्चीयताम् । १९ कारणे ।  
२० स्वरूपेण । २१ विज्ञानकारणातिरिक्तकारणाधीनेन गुणेन । २२ अपराधस्यम् ।  
२३ सादृश्यमतः । २४ कारणवमदेव । २५ घटलक्षणकार्यस्य । २६ कार्याणां ।

१ “सर्वे हि भावाः स्वात्मलामात्रैव कारणमपेक्षन्ते । घटो हि मृत्पिण्डादिकं स्वज-  
न्मन्येव अपेक्षते, नोदकाहरणेऽपि । तथा ज्ञानमपि स्रोतस्यो गुणवदितरद्वा कारणम-

चक्षुरादिविज्ञानकारणादुपजायमानत्वात्तस्य परतोऽभिधाने तु सिद्धसाध्यता । अनुमानादिवुद्धिस्तु गृहीताविनामौवादिलिङ्गादे-  
रुपजायमाना प्रमाणभूतैवोपजायन्तेऽतोऽत्रापि तेषां न व्यापारः ।  
तन्नोत्पत्तौ तदन्यापेक्षम् ।

- ५ नापि ज्ञप्तौ, तद्वि तत्र किं कारणगुणानपेक्षते, संवादप्रत्ययं वा ?  
प्रथमपक्षोऽयुक्तः, गुणानां प्रत्यक्षादिप्रमाणाविषयत्वेन प्रागेवा-  
सस्त्वप्रतिपादनात् । संवादज्ञानापेक्षाप्ययुक्ता, तत्त्वस्तु संमा-  
नजातीयम्, भिन्नजातीयं वा ? प्रथमपक्षे किमेकसन्तानप्रभवम्,  
भिन्नसन्तानप्रभवं वा ? न तावद्विन्नसन्तानप्रभवम्, देवदेवत्त-  
१० टज्ञाने यज्ञदत्तघटज्ञानस्यापि संवादकत्वप्रसङ्गात् । एकसन्ता-  
नप्रभवमप्यभिन्नविषयम्, भिन्नविषयं वा ? प्रथमविकल्पे सर्वो-  
द्यसंवादकभाषाभावोऽविशेषात् । अभिन्नविषयत्वे हि यद्योत्तरं  
पूर्वस्य संवादकं तथेदमप्यस्य किन्न स्यात् ? कथं वीर्यं प्रमाण-  
त्वनिश्चयः ? तदुत्तरकालभाविनोऽन्येसात् तैथाविधादेवेति  
१५ चेत्, तर्हि तस्याप्यन्यसात्तथाविधादेवेत्यनवस्था । प्रथमप्र-  
माणोक्तस्य प्रामाण्यनिश्चयेऽन्योन्याश्रयः । भिन्नविषयमित्यपि  
वार्त्तम्, शुक्तिशकले रजतज्ञानं प्रति उत्तरकालभाविशुक्तिका-  
शकलज्ञानस्य प्रामाण्यव्यवस्थापकत्वप्रसङ्गात् ।

- नैापि भिन्नजातीयम्, तद्वि किमर्थक्रियाज्ञानम्, उतान्यत् ? न  
२० तावदन्यत्, घटज्ञानात्पटज्ञाने प्रामाण्यनिश्चयप्रसङ्गात् । नाप्यर्थ-  
क्रियाज्ञानम्, प्रामाण्यनिश्चयाभावे प्रवृत्त्याभावेनार्थक्रियाज्ञाना-

१ प्रामाण्यस्य । २ आगम । ३ सङ्केतादि । ४ शब्द । ५ गुणानां ।  
६ प्रामाण्यं । ७ गुण । ८ प्रामाण्यं । ९ प्रामाण्यस्य । १० अर्थज्ञानेन समाना  
सदृशा जातिवि(वि)षयो यस्य तत्समानजातीयम् । ११ पुरुष । १२ अन्यथा ।  
१३ भिन्नसन्तानप्रभवत्वाविशेषात् । १४ एकस्य जलज्ञानं जलज्ञानमिति । १५ अभि-  
न्नविषयस्य । १६ संवादकं । १७ किञ्च । १८ उत्तरज्ञानस्य । १९ द्वितीयज्ञानात् ।  
२० ज्ञानात् । २१ अभिन्नविषयात् । २२ प्रथमप्रमाणादुत्तरस्य निश्चयः उत्तर-  
ज्ञानात्प्रथमनिश्चय इति । २३ ज्ञानात् । २४ पूर्वज्ञातं । २५ सदृशविषयत्वेन  
समानजातीयत्वे सति भिन्नविषयत्वस्याविशेषात् । २६ संवादज्ञानं । २७ द्वितीय-  
विकल्पं प्रत्याह परः । २८ ज्ञानावगाहनादि । २९ ता । ३० मरीचिकाचक्रे  
चलज्ञानात्प्रश्नान्मरीचिकज्ञानम् । ३१ अन्यथा । ३२ आद्यज्ञानस्य ।

पेक्षतां नाम स्वकार्ये तु विषयनिश्चये अनपेक्षनेन ।<sup>१३</sup>

मी० खे० न्यायरत्ना० पृ० ६० ।

कारिकेयं तत्सर्वग्रहे (पृ० ७५७) पूर्वपक्षरूपेण वर्तते ।

घटनात् । चक्रकप्रसङ्गश्च । कथं चार्थक्रियाज्ञानस्य तन्निश्चयः ?  
अन्यार्थक्रियाज्ञानाच्चेदनवस्था । प्रथमप्रमाणाच्चेदन्योन्याश्चयः ।  
अर्थक्रियाज्ञानस्य स्वतःप्रामाण्यनिश्चयोपैगमे चोद्यस्य तथाभावे  
किङ्कृतः प्रद्वेषः ? तदुक्तम्—

“यथैव प्रथमज्ञानं तत्संवादमपेक्षते ।

संवादेनापि संवादः परो मृग्यस्तथैव हि ॥ १ ॥ [ ]

कस्यचित्तु यदीष्येत स्वत एव प्रमाणता ।

प्रथमस्य तथाभावे प्रद्वेषः केन हेतुना ॥ २ ॥

[ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७६ ]

संवादस्याथ पूर्वैण संवादित्वात्प्रमाणता ।

अन्योन्याश्चयभावेन प्रामाण्यं न प्रकल्पते ॥ ३ ॥ [ ] इति ।

अर्थक्रियाज्ञानस्यार्थाभावेऽदृष्टत्वाच्च स्वप्रामाण्यनिश्चयेऽन्यापेक्षा  
सौधनज्ञानस्यै त्वार्थार्थविषि इष्टत्वात्तत्र तदपेक्षा युक्ता; इत्यप्य-  
सङ्गतम्; तस्याप्यर्थमन्तरेण समदशायां दर्शनात् । फलावाप्तिरूप-  
त्वाच्चस्य तत्र नान्यापेक्षा सौधननिर्मासिज्ञानस्य तु फलावाप्ति-१५  
रूपत्वाभावाच्चदपेक्षा; इत्यप्यनुत्तरम्; फलावाप्तिरूपत्वस्याप्रयोज-  
कत्वात् । यथैव हि सौधननिर्मासिनो ज्ञानस्यान्यैव व्यभिचारदर्श-  
नात्सत्यासत्यविचारणायां प्रेक्षावतां प्रवृत्तिस्तथा तस्यापि विद्वे-  
षार्थभावात् ।

किञ्च, समानकालमर्थक्रियाज्ञानं पूर्वज्ञानप्रामाण्यव्यवस्थाप-२०  
कम्, मित्रकालं वा ? यद्येकैकालम्; पूर्वज्ञानविषयम्, तदविषयं

१ अर्थक्रियाज्ञानोत्पत्तौ पूर्वज्ञानस्य प्रामाण्यं पूर्वज्ञानप्रामाण्ये च प्रवृत्तिः प्रवृत्तौ  
कार्यक्रियाज्ञानोत्पत्तिरिति । २ किञ्च । ३ प्रामाण्यं । ४ जैनैः । ५ ज्ञानस्य ।  
६ स्वविषये । ७ स्वविषये । ८ द्वितीयज्ञानस्य । ९ ज्ञानस्य । १० आद्यज्ञानेन ।  
११ न घटते । १२ जैनैः । १३ अग्रतीतिः । १४ जलज्ञानस्य । १५ जललक्षणं ।  
१६ गरीशिकाचक्रे । १७ साधनज्ञानप्रामाण्ये । १८ ज्ञानपानादिलक्षणं ।  
१९ स्वप्रामाण्यनिश्चये । २० प्रथमप्रतीयज्ञानं । २१ ज्ञानादिक्रियायाः साधनं जलादि-  
तस्मिन् । २२ युक्ता । २३ अन्यानपेक्षत्वं प्रति । २४ अर्थक्रियायाः । २५ जलं ।  
२६ गरीशिकायां । २७ आग्रदशायां सुखावसायां च सत्यासत्यत्वस्य । २८ समद-  
शायां व्यभिचारदर्शनस्य । २९ संवादकं । ३० वसः । ३१ वसः । ३२ वसः ।

१ “कारिकेयं तत्संसर्गहे (पृ० ७५७) पूर्वपक्षरूपतया धृताऽस्ति ।

वा ? । न तावत्तदविषयम् ; चक्षुरादिज्ञाने ज्ञानान्तरस्याप्रति-  
भासनात्, प्रतिनियतरूपोपादिविषयत्वाच्चैस्य । तदविषयत्वे च  
कथं तज्ज्ञानप्रामाण्यनिश्चायकत्वं तदग्रहे तैद्धर्माणां ग्रहणविरो-  
धात् । भिन्नकालमित्यप्ययुक्तम् ; पूर्वज्ञानस्य क्षणिकत्वेन नाशे  
५ तदग्राहकत्वेनोत्तरज्ञानस्य, तत्प्रामाण्यनिश्चायकत्वायोगात् ।  
सर्वप्राणभृतां प्रामाण्ये सन्देहविपर्ययाक्रान्तत्वासिद्धेश्च । समु-  
त्पन्ने खलु विज्ञाने 'अयमित्थमेवार्थः' इति निश्चयो न सन्देहो  
विपर्ययो वा । तदुक्तम्—

“प्रमाणं ग्रहणात्पूर्वं स्वरूपेणैव संस्थितम् ।

१० निरपेक्षं स्वकार्ये च गृह्यते प्रत्ययान्तरैः, ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ८३ ] इति

प्रमाणाप्रमाणयोरुत्पत्तौ तुल्यरूपत्वाच्च संवादविस्वादावन्त-  
रेण तयोः प्रामाण्याप्रामाण्यनिश्चय इति च मनोरथमात्रम् । अग्र-  
माणे बाधककारणदोषज्ञानयोरवश्यंभावितादप्रामाण्यनिश्चयः,  
१५ प्रमाणे तु तयोरभावात्प्रामाण्यावस्यार्थः ।

१ स्पष्टनरसनप्राणभोज । २ द्वितीये ज्ञाने । ३ आशयः अकृद्ज्ञानस्य । ४ रस-  
गन्धस्पर्शशब्द । ५ वृत्तः । ६ बाधोन्निवृत्तनिष्ठज्ञानस्य । ७ प्रामाण्यसत्त्वा-  
धीनाय । ८ यदा ज्ञानमुत्पद्यते तदा सञ्चयादिरहितमेवोत्पद्यतेऽतः कथमपरापेक्षा ।  
९ किञ्च । १० भवति । ११ प्रामाण्यं । १२ प्रामाण्यकक्षणात् भवेत्साप्रान्त-  
र्भावाद्धर्मिप्रधानोऽयं निर्देशः । १३ परिच्छिद्यः । १४ अर्थपरिच्छित्तिप्रवृत्ति-  
कक्षणे । १५ पुरुषैः । १६ संवादरूपैः । १७ सन्निकर्षरूपैः । १८ परतः ।  
१९ निश्चयः । २० भवति ।

१ “अर्थान्यथात्वहेतुत्वदोषज्ञानादपोषते ॥ ५३ ॥”

“दोषनिमित्तं हि ज्ञानस्यायथार्थत्वम्, दोषान्वयव्यतिरेकानुविधानात् । अतो  
दुष्टकारणन्येन ज्ञानेन आत्मनः प्रामाण्यं विषयसार्थत्वात्तथाभूतस्यापि तथात्वमवय-  
तमपि अर्थान्यथात्वज्ञानेन दोषज्ञानेन वाऽपोषते ।” मी० श्लो० न्यायरत्ना० पृ० ६९ ।

“यमेव स्वतः सर्वज्ञानानां प्रामाण्यम् ; अप्रामाण्यं तु परत एवेत्याभित्य प्रत्यव-  
स्थेयम् ; तथाहि—विज्ञानं जायमानं यथाभूतमर्थमवभासयति तथाभूत 'यथार्थ' इति  
निश्चायचलेषु न तु निश्चये ज्ञानान्तरमपेक्षणीयम्, तेन स्वत एव प्रामाण्यम् ।  
अप्रामाण्यं तु अर्थत्वात्तथाभावनिश्चयनिरपेक्षं सत्तावगमवित्तुमशक्यमिति परतोऽप्रामा-  
ण्यम् । अपि च प्रामाण्याप्रमाणसाधारणत्वे निश्चयस्य निश्चयानुसारेण पश्चादाशङ्कोप-  
जायते; सा परत एवेति परत एवाप्रामाण्यम् । न चापि सर्वज्ञाशङ्का, किन्तु यादृशे  
व्यभिचारदर्शने तादृश एव शङ्केति । नच सर्वान्वसे ज्ञाने व्यभिचारदर्शनमिति सर्वज्ञा-  
शङ्का; सर्वज्ञैवाशङ्काया परतोऽपि प्रामाण्यं न स्यात्, तस्यापि शङ्कास्पदत्वादिति ।”

मीमांसाशास्त्रपरि० पृ० ८८

यापि-तत्तुल्यरूपेऽन्यत्र तयोर्दर्शनात्तदौशङ्काः सापि त्रिचतुर-  
ज्ञानापेक्षामात्राश्रित्यते । न च तदपेक्षायां स्वतः प्रामाण्यव्याघा-  
तोऽनवस्था वा; संवादकज्ञानस्याप्रामाण्यव्यवच्छेदे एव व्यापारा-  
दन्यज्ञानानपेक्षणाच्च । तदुक्तम्—

“द्वैतं त्रिचतुरज्ञानैर्जन्मनो नाधिका मतिः ।

प्रार्थ्यते तावतैवेयं स्वतः प्रामाण्यमस्तीति ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६१ ]

यौऽप्यनुत्पद्यमानः संशयोऽबलादुत्पाद्यते सोऽप्यर्थक्रियार्थिनां  
सर्वत्र प्रवृत्त्यादिव्यवहारोच्छेदकारित्वाच्च युक्तः । उक्तञ्च—

“आशङ्केतं हि यो मोहोदजातमपि बाधकम् ।

स सर्वव्यवहारेषु संशयार्त्ता क्षयं ब्रजेत् ॥ १ ॥” [ ]

१ अग्रमाणे । २ अग्रामाण्य । ३ अग्रमाणे । ४ परिहारे । ५ पञ्चमस्य  
ज्ञानस्य । ६ स्वग्रन्थोक्तप्रकारेण कथमाद्यज्ञानस्य द्वितीयादिसंवादज्ञानापेक्षितप्रकारेण ।  
७-उत्पत्तेः । ८ का । ९ ज्ञानम् । १० बाण्डते पुरुषेण । ११ प्राप्नोति ।  
१२ यथाऽऽद्याद्यज्ञानं द्वितीयं द्वितीयं च तृतीयं तृतीयं च चतुर्थमपेक्षते । तथा  
चतुर्थेनापि पञ्चममपेक्षणीयमित्यादिप्रकारेणानवस्था किमिति न स्यादित्युक्ते सत्याह ।  
१३ विषये । १४ अज्ञानात् । १५ प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपेषु । १६ यतः ।

१ “ननु यथा जायस्य द्वितीयेन दोषोऽवगतः तस्यापि तृतीयेन तथा तृतीयस्यापि  
दोषाशङ्का भवत्येव, तथा सर्वत्रैवेति न कचिदाश्वासः स्यादत आह—“दोषज्ञाने त्वनु-  
त्पत्ते न शङ्कया निष्प्रमाणता” इति । दिक्कालवत्सेन्द्रियविषयदोषा हि मिथ्यात्वहेतवो  
लोकप्रसिद्धा यत्र नैव संभवन्ति यथा जागर्याचामालोके सत्सेन्द्रियमनस्कस्य सन्निहित-  
वदज्ञाने । तत्र नैव दोषाशङ्का, तदभावाच्चाप्रामाण्याशङ्कापि नैव भवति । यथाविशेषेण हि  
अप्रामाण्यसंभवः तथाविशेषेणैव तदाशङ्का भवति, समाधितदोषेषु च तत्संशय इति  
कथमन्यत्र शङ्क्यते ? नहि ज्ञानत्वमात्रेण संशयो वृत्तः; संशयस्य साधारणवर्मादि-  
निश्चयाधीनत्वात् । तदवश्यं कानिचिज्ज्ञानानि असन्दिग्धप्रामाण्यान्येवोत्पद्यन्ते ।  
तस्मात् सर्वत्राशङ्का । यत्रापि दूरत्वादोषसंवादप्रामाण्याशङ्का, तत्रापि प्रत्यासत्तिग-  
मनादिनाऽन्यतरपदार्थनिर्णयाच्चातिदूरगमनमिति । एवं च तृतीयज्ञाने दोषो यदि न  
संभावितः ततस्तदवधिरेव निर्णयः । अत्र तु संभावितः ततस्तत्प्रकरणप्रयत्नेन चतु-  
र्थज्ञानावसानो निर्णय इति नाधिकज्ञानापेक्षा । तावतैव तृतीयेन चतुर्थेन वा द्वितीयस्य  
तृतीयस्य बाधे सति यत्नैवाद्यस्य द्वितीयस्य वा प्रामाण्यं समर्थ्यते तस्य स्वामाविकं  
प्रामाण्यमनमोदितं भवति । इतरच्चापवादप्रमाणमिति ज्ञानवस्था ।”

मी० श्लो० न्यायरत्ना० पृ० ६४ ।

२ “उत्प्रेक्षेत हि यो मोहादजातमपि बाधकम् ।

स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं ब्रजेत् ॥ २८७२ ॥ तत्सं० (पूर्वपक्षे)  
प्र० क० मा० १४

चोदनाजनिता तु बुद्धिरपौरुषेयत्वेन दोषरहिताच्चोदनावाक्या-  
दुपजायमाना लिङ्गातोत्पत्त्यक्षबुद्धिवत्स्वतः प्रमाणम् । तदुक्तम्—

“चोदनाजनिता बुद्धिः प्रमाणं दोषैवर्जितैः ।

कारणैर्जन्यमानत्वाल्लिङ्गातोत्पत्त्यक्षबुद्धिवत् ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० सू० २ श्लो० १८४ ]

तत्र ह्यसौ परापेक्षा ।

नापि स्वकार्यैः तत्रापि हि किं तैर्त्सवादप्रत्ययमपेक्षते, कारण-  
गुणान् वा ? प्रथमपक्ष चक्रकप्रसङ्गः—प्रमाणस्य हि स्वकार्ये  
प्रवृत्तौ सत्यामर्थक्रियाार्थिनां प्रवृत्तिः, तस्यां चार्थक्रियाज्ञानोत्पत्ति-  
१० लक्षणः संवादः; तत्सद्भावे च संवादमपेक्ष्य प्रमाणं स्वकार्येऽर्थप-  
रिच्छेदलक्षणे प्रवर्त्तते । भाविनं संवादप्रत्ययमपेक्ष्य तत्तत्र  
प्रवर्त्तते; इत्यप्यनुपपन्नम्; तस्यासत्त्वेन स्वकार्ये प्रवर्त्तमानं विज्ञानं  
प्रति सहकारित्वायोगात् ।

द्वितीयपक्षेऽपि गृहीताः स्वकारणगुणाः तस्य स्वकार्ये प्रवर्त्त-  
१५ मानस्य सहकारित्वं प्रतिपद्यन्ते, अगृहीता वा ? न तावदुत्तरः  
पक्षः; अतिप्रसङ्गात् । प्रथमपक्षेऽनवस्था—स्वकारणगुणज्ञानापेक्षं  
हि प्रमाणं स्वकार्ये प्रवर्त्तते तदपि स्वकारणगुणज्ञानापेक्षं प्रमाण-  
कारणगुणग्रहणलक्षणे स्वकार्ये प्रवर्त्तते तदपि च स्वकारणगुण-  
ज्ञानापेक्षमिति । तस्य स्वकारणगुणज्ञानानपेक्षस्यैव प्रमाणकारण-  
२० गुणपरिच्छेदलक्षणे स्वकार्ये प्रवृत्तौ प्रथमस्यापि कारणगुणज्ञाना-  
नपेक्षस्यार्थपरिच्छेदलक्षणे स्वकार्ये प्रवृत्तिरस्तु विशेषामावृत् ।  
तदुक्तम्—

“जातेपि यदि विज्ञाने तावन्नार्थोऽवधार्यते ।

यौवत्कारणैश्चुद्धैर्त्वं न प्रमाणान्तराद्भवेत् ॥ १ ॥

१ वेद । २ इति गुणव्यापारभावः । ३ प्रत्येकं सम्भवते । ४ स्वतः ।  
५ अनाप्तोक्तत्वलक्षण । ६ वेदवाक्यैः । ७ संवादाजुमान । ८ प्रामाण्यस्य । ९ परापेक्ष  
प्रामाण्यं न । १० प्रामाण्यं कर्तुं । ११ प्रामाण्यलक्षणस्य परमज्ञानान्तर्भावोक्ति-  
प्रधानोक्तं निर्देशः । १२ अव्ययपरिच्छित्तिरूपे । १३ नृणां । १४ अविवक्षितत्वेन ।  
१५ अर्थपरिच्छित्तिलक्षणे । १६ प्रमाणस्य । १७ सन्तानान्तरलोचनगुणा अपि सह-  
कारिणो भवन्तु अगृहीतत्वाविशेषात् । १८ इन्द्रियनैर्मल्येति । १९ भवच्छुद्धिर्निर्मलमिति  
शब्दः परीक्ष्य इति । २० प्रमाणकारणगुणज्ञान । २१ शब्दः । २२ आतोक्तत्व-  
लक्षण । २३ प्रमाणकारणगुणज्ञानस्य । २४ अनपेक्षत्वस्य । २५ प्रथमज्ञानस्य ।  
२६ चक्षुः । २७ नैर्मल्यं । २८ शब्दज्ञानात् । २९ ज्ञातम् ।

तत्र ज्ञानान्तरोत्पादः प्रतीक्ष्यः कारणान्तरात् ।  
 यावद्धि न परिच्छिन्ना शुद्धिस्तावदसत्समा ॥ २ ॥  
 तस्यापि कारणे शुद्धे तज्ज्ञानस्य प्रमाणता ।  
 तस्याप्येवमितीत्यं च न कंचिद्व्यवतिष्ठते ॥ ३ ॥”

[ मी० खो० सू० २ खो० ४९-५१ ] इति । ५

अत्र प्रतियोगीयते । यत्तावदुक्तम्—‘प्रत्यक्षं न तौन्प्रत्येतुं सम-  
 र्थम्’ इति; तत्रेन्द्रिये शक्तिरूपे, व्यक्तिरूपे वा तेषामनुपलम्भे-  
 नाभावः साध्यते? प्रथमपक्षे-गुणवदोषाणामप्यर्भावः । नह्या-  
 धीराप्रत्यक्षत्वे र्धीयप्रत्यक्षता नोमातिप्रसङ्गात् । अथ व्यक्ति-  
 रूपे; तत्रापि किमात्मप्रत्यक्षेण गुणानामनुपलम्भः, परप्रत्यक्षेण  
 धौ? प्रथमविकल्पे दोषाणामप्यसिद्धिः । न ह्यात्मीयं प्रत्यक्षं  
 स्वचक्षुरादिगुणदोषविवेचने प्रवर्तते इत्येतत्प्रातीतिकम् ।  
 स्पर्शनादिप्रत्यक्षेण तु चक्षुरादिसङ्गावभात्रमेव प्रतीयते इत्य-  
 तोपि गुणदोषसङ्गावासिद्धिः । अथ परप्रत्यक्षेण तौ नोपलभ्यन्ते;  
 तदसिद्धम् । यथैव हि काचकामलादयो दोषाः परचक्षुषि प्रत्य-  
 क्षतः परेण प्रतीयन्ते तथा नैर्मल्यादयो गुणा अपि ।

जातमात्रस्यापि नैर्मल्याद्युपेतेन्द्रियप्रतीतेः तेषां गुणरूपत्वाभावे  
 जातैर्मिरिकस्यानुपलम्भादिन्द्रियस्वरूपव्यतिरिक्तैर्मिरादि-  
 दोषाणामप्यर्भावः । कथं वै रूपादीनां घटादिगुणस्वभावता

१ तदा । २ शब्दलक्षणस्य । ३ अन्येदयः । ४ शब्दलक्षणात् । ५ प्रथम-  
 ज्ञानकारण(निवृत्त)स्य । ६ द्वितीयस्य तृतीयज्ञानस्यापि । ७ दोषरहिते । ८ द्वितीयस्य  
 तृतीयस्यापि । ९ ज्ञाने । १० जैनः । ११ जैनैः । १२ स्वकारणाभितान्गुणान् ।  
 १३ अन्ये । १४ गोलके । १५ गुणानां । १६ शक्तिरूपे इन्द्रिये । १७ शक्ति-  
 रूपेन्द्रियस्य । १८ गुणदोष । १९ अन्यथा आत्मान्तरप्रत्यक्षत्वाभावेपि तज्ज्ञान-  
 प्रत्यक्षताप्रसङ्गात् । २० गुणानां । २१ गुणाः । २२ प्राणिनः । २३ किन्तु  
 नयनस्वरूपतैव । २४ प्राणिनः । २५ कामलादिकं नयनस्वरूपानतिरेकि जातमात्रस्य  
 नयनविशिष्टत्वेनोपलभ्यमानत्वाद्वृणवत् । २६ न नैर्मल्यादयो गुणा इति । २७ किञ्च  
 स्यात् । २८ घटादिरूपादयो धर्मिणो गुणा न भवन्तीति साध्यम् ।

१ “तत्र किमिन्द्रिये परोक्षशक्तिरूपे गुणानां प्रत्यक्षेणानुपलम्भादभावः साध्यते,  
 आहोस्तिद्व प्रत्यक्षे चक्षुर्गोलक्ष्मदौ बाह्यरूपे?” सा० रत्ना० पृ० २४४ ।

२ “जातमात्रस्यापि नैर्मल्यादिनेन्द्रियप्रतीतेनैर्मल्यादीनां गुणरूपत्वाभाव इत्युच्यते;  
 तर्हि जातैर्मिरिकस्य जातमात्रस्यापि तिमिरादिपरिकरितेन्द्रियप्रतीतेरिन्द्रियस्वरूपातिरिक्त-  
 तिमिरादिदोषाणामप्यभावः कथञ्च स्यात्? कथञ्चैवं रूपादीनामपि कुम्भादिगुणस्वभावता  
 उपचरारभ्य कुम्भे तेषां प्रतीयमानत्वमिच्छेयात् ।” सा० रत्ना० पृ० २४५ ।



उत्पत्तिप्रवृत्तितः प्रतीयमानत्वाविशेषात् ? 'यच्चक्षुरादिव्यतिरिक्त-  
भावाभावाजुविधायि तत्तत्कारणकम्, यथाऽप्रामाण्यम्, तथा  
च प्रामाण्यम् । यच्च तद्व्यतिरिक्तं कारणं ते गुणाः' इत्यनुमानतोपि  
तेषां सिद्धिः ।

५ यच्चैन्द्रियगुणैः सह लिङ्गस्य प्रतिवेन्धः प्रत्यक्षेण गृह्येत,  
अनुमानेन वेत्याद्युक्तम्; तदप्ययुक्तम्; ऊहाख्यप्रमाणान्तरैस्त-  
त्प्रतिबन्धप्रतीतेः । कथं चाप्रामाण्यप्रतिपादकदोषप्रतीतिः ?  
तत्राप्यस्य समानत्वात् । नैर्मल्यादेर्मलाभावरूपत्वात्कथं गुण-  
रूपतेत्यप्यसाम्यतम्; दोषाभावस्य प्रतियोगिपदैर्वाच्यभाव-  
१० त्वात् । निःस्वभावत्वे कार्यत्वधर्माधारत्वविरोधात् स्वरविषाण-  
वत् । तथाविधस्योपप्रतीतेरनभ्युपगमाच्च, अन्यथा—

“भौवान्तरविनिर्मुक्तो भौवोऽत्रानुपलम्भवत् ।

अभावः समस्त (सम्मतस्त)स्य हेतोः किञ्च समुद्भवः ॥” [ ]

१ प्रामाण्यं यमि चक्षुरादिव्यतिरिक्तपदार्थकारणकं भवति चक्षुरादिव्यतिरिक्तपदार्थ-  
भावाभावाजुविधायित्वात् । २ कारणस्य । ३ यथार्योपलक्ष्यलक्षणविशिष्टकार्यत्वादि-  
ज्ञस्य । ४ अविनाभावः । ५ गुणसंज्ञाने प्रामाण्यस्य संज्ञावस्तदभावे प्रामाण्यस्याभाव-  
इति । ६ परेण । ७ इन्द्रियगुणलिङ्गस्य । ८ दोषपक्षेपि दोषैस्तद् लिङ्गस्य सम्बन्धः  
प्रत्यक्षेण गृह्यतेऽनुमानेन वेत्यादिदोषस्य । ९ आवान्तरसंभावत्वादभावस्य । १० वक्ष्य-  
(गुण) निरूपणाधीनं निरूपणं यस्य (दोषस्य) तत्तत्प्रतियोगि । ११ गुण । १२ अभा-  
वस्य । १३ अजानादिना किञ्चिन्मात्रलक्षणकार्यत्व(नैर्मल्यादि) । १४ निस्त्वभाव-  
भावस्य । १५ त्वया परेण । १६ अभ्युपगमे । १७ गुणादोषलक्षणं कपालक्षणादन्यो  
वदो वा । १८ गुणः कपालं वा । १९ भीमासकमते । २० पक्षसाङ्गतलोपलम्भ-  
लक्षणाज्ञावादपरो वदोपलम्भलक्षणो भावो आवान्तरं तेन विनिर्मुक्तो भावो सूतलोप-  
लम्भलक्षणः स एव वदस्यानुपलम्भो यथा । २१ लिङ्गस्य ।

१ “तथाहि—अतीन्द्रियलोचनायाभिज्ञा दोषाः किं प्रत्यक्षेण प्रतीयन्ते, उत अनु-  
मानेन ? न तावत् प्रत्यक्षेण; इन्द्रियादीनामतीन्द्रियत्वेन तद्वत्तदोषाणामप्यतीन्द्रियत्वेन  
तेषु प्रत्यक्षस्याप्रवृत्तेः । नाप्यनुमानेन; अनुमानस्य गृहीतप्रतिबन्धलिङ्गप्रभवत्वान्भ्यु-  
पगमात् । लिङ्गप्रतिबन्धप्रादिकस्य च प्रत्यक्षस्यानुमानस्य चात्र विषयेऽसम्भवात् ।  
अप्रमाणान्तरस्य चात्रानन्तर्भूतस्यासत्त्वेन प्रतिपादमिष्यमाणत्वात् इत्यादि सर्वमप्रामाण्यो-  
त्पत्तिकारणभूतेषु कोचनयाभिज्ञेषु दोषेष्वपि समानमिति ।” सम्प्रति० टी० पृ० ९ ।

२ “पदार्थान्तरेण विनिर्मुक्तः लक्षः भिन्न इति नावत्, इत्यभ्युक्तो भाव एवाभावः  
न पुनर्भावादतिरिच्यते इत्यर्थः । तत्र वृष्टान्तोऽनुपलम्भः, यथा वदानुपलम्भो  
वदातिरिक्तस्य पदादेरुपलम्भे पर्यवस्यति, तथा दोषाऽऽभावोऽभावान्तरे पर्यवस्यती  
वाच्य इत्याशय इति” शु० वि० । सम्प्रति० टी० वि० पृ० १० ।



त्सैर्गिकत्वम् दुष्टकारणप्रभवासत्यप्रत्ययेष्वभावात्? अप्रामाण्यस्य  
चौत्सैर्गिकत्वमस्तु दोषाणां गुणापगमे व्यापारात्। भवतु वा भवता-  
द्विन्नोऽर्भावः, तथाप्यस्य प्रामाण्योत्पत्तौ व्याप्रियमाणत्वात्कथं  
तत्त्वतः? न चाभावस्याऽर्जनकत्वम्, कुड्याद्यभावस्य परमाणा-  
५ वस्थितघटादिप्रत्ययोत्पत्तौ जनकत्वप्रतीतिः, प्रमाणपञ्चकाभावस्य  
चाभावंप्रमाणोत्पत्तौ।

योपि-यथार्थत्वायथार्थत्वे विहायोपलम्भसामान्यस्यानुपल-  
म्भः-सोपि विशेषनिष्ठत्वात्तत्सामान्यस्य श्रुतः। न हि निर्विशेषं  
गोत्वादिसामान्यमुपलभ्यते गुणदोषरहितमिन्द्रियसामान्यं वा,

१ नैसर्गिकत्वं। २ जौत्सैर्गिकत्वम्। ३ किञ्च। ४ कुतः। ५ निराकरणे  
नाशे। ६ गुणरूपात्। ७ गुणेश्चो भिन्नो दोषाणामभाव इत्यर्थः। ८ प्रामाण्यं प्रति।  
९ प्रमितिः। १० न हि सर्वथा यथार्थत्वायथार्थविशेषाद्विप्रमुपलम्भसामान्यम्।

१ “तस्माद्गुणेश्चो दोषाणामभावोदभावतः।

अप्रामाण्यद्वयात्सर्वं तेनोत्सर्गोऽनपोदितः ॥ १०५७ ॥

सर्वत्रैवं प्रमाणत्वं निश्चितं चेदिदाम्यसौ।

पूर्वोदितो दोषाणः प्रसक्ता न्यानवस्थितिः। १०५८ ॥

तस्मादेव च ते न्यायात्प्रामाण्यमपि स्वतः।

प्रसक्तं घनयते वक्तुं यस्मात्प्रामाण्यदः स्फुटम् ॥ १०६१ ॥

तस्मादोपेभ्यो गुणानामभावस्तदभावतः।

प्रमाणरूपनास्तिर्त्वं तेनोत्सर्गोऽनपोदितः ॥ १०६७ ॥”

तत्त्वस० पृ० ८००। न्यायकुमु० पृ० १९८। सन्नति० टी० पृ० ९।

२ “(पूर्वपक्षः) यदि हि यथार्थत्वायथार्थत्वरूपद्वयरहितमेव किञ्चिदुपलब्धत्वरूपं  
कार्यं भवेत् तदा कार्यत्रैविध्यमध्यवसीयेत यदुत यथार्थोपलब्धेर्गुणवन्ति कारणानि  
अयथार्थोपलब्धेर्दोषकक्षुपितानि उभयरूपरहितायाः पुनरुपलब्धेः स्वरूपावस्थितान्ये-  
वेति, नत्वेवमस्ति, हेत्वा हीयमुपलब्धिपरनुभूयते यथार्था नायथार्था च। तत्र अयथा-  
र्थोपलब्धिस्तत्त्वात् दृष्टकारणजन्यैव सवेद्यते। यथाहि-दुष्टकारणकलापाहुःक्षितिस्तकुल-  
कादेः कुटिलकलादिकार्यमवलोक्यते तथा तिमिरादिदोषदुष्टाद्ययनादिकारणकदम्बकाद-  
कुमुदवान्धवद्विषयप्रत्ययादिकञ्च अयथार्थोपलब्धिपरि, अत एव उत्पत्तौ दोषापेक्षत्वा-  
त्प्रामाण्यं परतः प्रवेति कल्प्यते। तद्वित्यनयथार्थोपलब्धौ दुष्टकारणजन्यत्वेन प्रसिद्धाया-  
मिदानीं तृतीयकार्याभावात् यथार्थोपलब्धिः स्वरूपावस्थितेभ्य एव कारणेभ्योऽवकल्प्यते  
इति न गुणकल्पनायै सा प्रभवति... (पृ० २४३) (उत्तरपक्षः-) यत्पुनरुक्तम्-  
हेत्वा हीयमुपलब्धिपरनुभूयते यथार्था च अयथार्था चेति; तत्र न विप्रतिपद्यामहे।  
न हि यथार्थत्वायथार्थत्वे विहाय निर्विशेषमुपलब्धिसामान्यमुपपद्यते विशेषनिष्ठत्वात्  
सामान्यस्य, न चतुः शान्दलेयवाहुलेयादिविशेषविकलं गोत्वादिसामान्यं प्रतीयते येनेदमुप-  
लब्धिसामान्यं यथार्थत्वायथार्थत्वविशेषरहितं प्रतीयेत...” स्या० रसा० पृ० १४६।

येनोपलम्भसामान्येऽप्ययं पर्यनुयोगः स्यात् । लोकं च प्रमाण-  
यतोर्मयं परतः प्रतिपत्तव्यम् । सुप्रसिद्धो हि लोकेऽप्रामाण्ये  
दोषावष्टब्धचक्षुषो व्यापारः, प्रामाण्ये नैर्मल्यादियुक्तस्य, 'यत्पूर्वं  
दोषावष्टब्धमिन्द्रियं मिथ्याप्रतिपत्तिहेतुस्तदेवेदानीं नैर्मल्यादि-  
युक्तं सम्यक्प्रतिपत्तिहेतुः, इति प्रतीतेः । ५

यच्चोच्यते-कच्चिन्निर्मलमपीन्द्रियं मिथ्याप्रतीतिहेतुरन्यत्रार-  
कादिस्वभावं सत्यप्रतीतिहेतुः, तत्रापि प्रतिपत्तुर्दोषः स्वच्छनील्या-  
दिमले निर्मलोभिप्रायात् । अनेकप्रकारो हि दोषः प्रकृत्यादिमेदात्,  
तदभावोपि भावान्तरस्वभावस्तथाविधस्तत एव । न चोत्पन्नं  
सद्विज्ञानं प्रामाण्ये नैर्मल्यादिकमपेक्षते येनानयोर्मदः स्यात् । १०  
गुणवच्चक्षुरादिभ्यो जायमानं हि तदुपात्तप्रामाण्यमेवोपजायते ।

अर्थतथाभावपरिच्छेदसामर्थ्यलक्षणप्रामाण्यस्य स्वतो भावा-  
भ्युपगमे च अर्थान्यथात्वपरिच्छेदसामर्थ्यलक्षणाप्रामाण्यस्याप्य-  
विद्यमानस्य केनचित्कर्तुमशक्तेः स्वतो भावोऽस्तु ।

कथं चैवं वैदिनो बौनरूपतात्मन्यविद्यमानेन्द्रियैर्जन्यते? तस्या- १५

१ विशेषरहितगोत्यादिसामान्योपलम्भप्रकारेण । गुणदोषरहितेन्द्रियसामान्योपलम्भ-  
प्रकारेण च । २ अपि शब्दोक्त एवकारार्थः । ३ यतो यथावत्स्वाभावत्वे विहायेत्यादिः ।  
४ उपलम्भसामान्यसाधुपलम्भलक्षणः । ५ अपि तु विशेषेण्यव पर्यनुयोगो शतम्यः ।  
६ प्रामाण्यामप्रामाण्यं । ७ चक्षुषः । ८ नरे । ९ पुत्रान्तरे । १० पुत्रवत् ।  
११ निर्मल इति । १२ वातपिपादि । १३ नैर्मल्यादिगुण । १४ अनेकप्रकारः ।  
१५ गुणवत् । १६ कालभेदः । १७ ज्ञानं कर्तुं । १८ न हि स्वतोऽसती शक्तिरित्यस्य  
वोपमाह । १९ परेण । २० सामर्थ्यकारणे । २१ कारणेन । २२ वत्कारणेऽविद्य-  
मानं तत्त्वत एव जायते इत्येवंवादिनः । २३ यदावाकारविशेषितज्ञानरूपता ।

१ "यतो यदि लोकव्यवहारसमाश्रयणेन प्रामाण्याप्रामाण्ये व्यवसाय्येते तदा  
अप्रामाण्यवत् प्रामाण्यमपि परतो व्यवसायनीयम्..." सन्मति० टी० पृ० ९ ।

२ "किञ्चाप्रामाण्यमप्येवं स्वत एव प्रसज्यते ।

नहि स्वतोऽसत्तत्त्वस्य कुतश्चिदपि संभवः ॥ २८४३ ॥

...तथाह्यप्रामाण्यमपि विपरीतार्थपरिच्छेदोत्पादिका शक्तिः, शक्तेश्च विज्ञानाभि-  
तायाः कालत्रयेऽप्यकरणात् प्रामाण्यवदप्रामाण्यात्मिका शक्तिः स्वत एव प्रसज्येत ।"

तत्त्वसं० पं० पृ० ७५५ ।

"यवमभिधानेऽयथावसितार्थपरिच्छेदशक्तेरप्यप्रामाण्यरूपाया असत्याः केनचि-  
त्कर्तुमशक्तेस्तदपि स्वतः स्यात् ।"

सन्मति० टी० पृ० ९ ।

३ "किंच, यथात्मन्यविद्यमानं रूपं कारणवर्धीयते कार्ये तदा कथमिन्द्रियादयो  
ज्ञाने (ज्ञान) रूपतामात्मन्यसतीमादधति विज्ञाने? यथाऽविद्यमानानि सा तैरपीयते  
अर्थपरिच्छेदशक्तिं किञ्चादधीत्?" तत्त्वसं० पं० पृ० ७५३ । सन्मति० टी० पृ० ९ ।

स्तत्राविद्यमानत्वेऽप्युत्पत्त्युपगमेऽर्थग्रहणशक्त्या कोपराधः कृतो  
येनास्यास्ततः समुत्पादो नेष्यते ? न चेमाः शक्तयः स्वाधा-  
रेभ्यः समासादितव्यतिरेकाः येन स्वाधाराभिमतविज्ञानवत्  
कारणेभ्यो नोदयमासादयेयुः । पाश्चात्यसंवादप्रत्ययेन प्रामाण्य-  
स्याजन्यत्वात्स्वतो भावेऽप्रामाण्यस्यापि सोऽस्तु । न खलूत्पन्ने  
विज्ञाने तदप्युत्तरकालमाविविस्वादप्रत्ययाद्भवति ।

यथोक्तम्—‘लब्धात्मनां स्वकार्येषु प्रवृत्तिः स्वयमेव तु’ तद-  
प्युक्तिमात्रम् ; यथावस्थितार्थव्यवसायरूपं हि संवेदनं प्रमाणम्,  
तस्यात्मलाने कारणापेक्षायां कोऽन्यो र्हेकोऽपि प्रवृत्तिर्या स्वयमेव  
१० स्यात् ? घटस्य तु जलोद्वहनव्यापारात्पूर्वं रूपान्तरेणापि खहे-  
तोत्पत्तेर्युक्ता मृदादिकारणनिरपेक्षस्य तत्र प्रवृत्तिः प्रतीतिनि-  
बन्धनत्वाद्भूतव्यवस्थायाः । विज्ञानस्य तत्पत्त्यनन्तरमेव विना-  
शोपगमात्कृतो लब्धात्मनो वृत्तिः स्वयमेव स्यात् ? तदुक्तम्—

“न हि तत्क्षणमप्यास्ते जीयते वाऽप्रमात्मिकम् ।

१५ येनैवार्थग्रहणे पञ्चैवाग्रियेतेन्द्रियादिवैत् ॥ १ ॥  
तेनैव जन्मैव दुःखेर्विषये व्यापार उच्यते ।

१ परेण । २ कर्तृभूतया । ३ सापि ज्ञानेऽविद्यमाना इन्द्रियैर्जन्यतात् । ४ परेण ।  
५ ज्ञानेभ्यः । ६ प्राप्तमेवाः । ७ आक्षेपे । ८ यथा शक्त्या आचारीभूतविज्ञानं  
कारणेभ्यो न तथेमा इत्यर्थः । ९ परेणाज्ञीकृते । १० परेण । ११ प्रामाण्यं कथ्यते ।  
१२ आक्षेपोक्तिः । १३ प्रामाण्य । १४ अर्थपरिच्छित्तिरूपे प्रवृत्तिरूपे च ।  
१५ न कापि । १६ रिक्ततारूपेण । १७ जलाहरणलक्षणे स्वकार्ये । १८ परमते ।  
१९ न हि । २० अप्रमिति । २१ आक्षेपे । २२ ज्ञानस्य लक्षणादन्तरे अव-  
स्थानप्रकारेण अप्रमात्मकमवनप्रकारेण । २३ उत्पत्त्यनन्तरम् । २४ आत्मनः ।  
२५ क्षणमपि नास्ते अप्रमात्मकं ना न जायते तेन प्रकारेण । २६ व्यावृत्तिः ।

१ “अप्रामाण्यमपि चैव स्वतः स्यात्, नहि तदपि उत्पन्ने ज्ञाने विस्वादप्रल-  
यादुत्तरकालमाविनः ततोऽप्यवते इति कस्यनिदम्बुपगमः ।”

सन्मति० दी० पृ० १० ।

२ “तत्रैव सार्यावबोधशक्तिरूपप्रामाण्याल्लाने चैव कारणापेक्षा कान्या स्वकार्ये  
प्रवृत्तिर्या स्वयमेव स्यात्—घटस्य जलोद्वहनव्यापारात्पूर्वं रूपान्तरेण खहेतोत्पत्ते-  
र्युक्ते मृदादिकारणनिरपेक्षस्य स्वकार्ये प्रवृत्तिरिति निःसङ्गमुदाहरणम् ।”

सन्मति० दी० पृ० १० ।

३ “यत्तु ज्ञानं त्वयापीदं ज्ञानानन्तरमस्मिन् ।

लब्धात्मनोऽज्ञतः पश्चाद्व्यापारस्तस्य कीदृशः ॥ २९२२ ॥

तत्त्वसं० पृ० ७७० ।

तदेवै च प्रैमारूपं तद्वती करणं च घीः ॥ २ ॥”

[ मी० खो० सू० २ खो० ५५-५६ ] इति ।

किञ्च, प्रमाणस्य किं कार्यं यत्रास्य प्रवृत्तिः स्वयमेवोच्यते-  
यथार्थपरिच्छेदः, प्रमाणमिदमित्यवसायो वा? तत्राद्यविकल्पे  
‘आत्मानमेव करोति’ इत्यायातम्, तच्चायुक्तम्; स्वात्मनि<sup>५</sup>  
क्रियाविरोधात् । नापि प्रमाणमिदमित्यवसायः; आन्तिकारण-  
सङ्गावेन केचित्तदभावात्, कचिद्विपर्ययदर्शनाच्च ।

अनुमानोत्पादकहेतोस्तु साध्याविनाभावविवेकमेव गुणो यथा  
तद्वैकल्यं दोषः । साध्याविनाभावस्य हेतुस्वरूपत्वाद्गुणरूपत्वाभावे  
तद्वैकल्यस्यापि हेतोः स्वरूपविकलत्वाद्दोषता मा भूत् । १०

अनामस्य तु गुणैवत्पुरुषप्रणीतत्वेन प्रामाण्यं सुप्रसिद्धम्,  
अपौरुषेयैत्वस्यासिद्धेः, नीलोत्पलादिषु दहनादीनां नित्यप्रतीति-  
जनकत्वोपलम्भेनानैकान्तात्, परस्परविरुद्धभावनानियोगोर्गोचर्यैर्दुः

१ एवं चेदिद्वानस्य करणरूपता कियारूपता न साहित्युक्ते आह । २ जन्मेव ।  
३ परिच्छिन्नेति । ४ कथयति । ५ तयोर्वैच्ये । ६ स्वस्वरूपम् । ७ तत्र प्रवृत्तना-  
मस्य । ८ उत्पत्तिकक्षणाया । ९ तदोपनयन । १० सलबलकादे प्रमाणसमाप्ते ।  
११ आन्तिकाने प्रमाणमित्यवसायदर्शनात् । १२ शब्दस्य । १३ पुनः ।  
१४ “पूर्वाचार्यो हि बाल्ये वेदे अद्वस्तु भावनाम् । प्रामाण्यो नियोग इ शङ्करो  
विभिन्नमसीत्” । १५ आगमो यमीं प्रामाण्यं भवतीति साध्यम् । १६ स्वर्ग ।  
१७ बदपौरुषेयं तत्प्रमाणमित्युक्तऽनेकान्तात् । १८ विधि । १९ बोधे ।

१ “नच ज्ञानस्य किञ्चित्कार्यमस्ति यत्र व्याप्तिवैत । स्वार्थपरिच्छेदात्मकमस्तीति चेन्न;  
ज्ञानपर्यायत्वादस्य आत्मानमेव करोतीति सुव्याहृतमेतत् । प्रमाणमेतत् इति निश्चय-  
जननं स्वकार्यमिति चेन्न; कचिदनिश्चयादिपर्ययदर्शनाच्च ।” तत्त्वसं० ५०  
पृ० ७७० । सम्मति० टी० पृ० ११ ।

२ “अविनाभावनिश्चयस्यैव गुणत्वात् तदनिश्चयस्य निपरीतनिश्चयस्य च दोष-  
त्वात् ।”  
सम्मति० टी० पृ० ११ ।

३ “पुनरप्यपौरुषेयस्यानैकान्तिकतां प्रतिपादयन्नाह—

न नराकृतमित्येव यथार्थज्ञानकारि तु ।

इष्टा हि दाववह्न्यादेर्मिव्याजानेऽपि हेतुता ॥ २४०३ ॥

नहि पुरुषदोषोपधानादेनार्थेण ज्ञानविग्रमः, तद्विद्वानामपि दाववह्न्यादीनां  
नीलोत्पलादिषु नित्यज्ञानजननात् । दावो वनगतो वह्निः, स पुनर्यः स्वमेव वेण्वा-  
दीनां सङ्घर्षसमुद्भूतः स इह व्यभिचारविषयत्वेन द्रष्टव्यः । यस्त्वरणिनिर्मथनादि-  
पुरुषैर्निर्वृत्तं तत्रापौरुषेयत्वासंगमात् उक्तो न हेतोर्व्यभिचार इति भावः । आदिश-  
ब्देन मरीच्यादिपरिग्रहः । तामेव मिव्याज्ञानहेतुता दर्शयन्नाह—

प्रामाण्यप्रसङ्गाच्च । निखिलवचनानां लोके गुणवत्पुरुषप्रणीतत्वेन  
प्रामाण्यप्रसिद्धेः, अत्रान्यथापि तत्परिकल्पने प्रतीतिविरोधाच्च ।

अपि च अपौरुषेयत्वेऽप्यागमस्य न स्वतोऽर्थे प्रतीतिजनकत्वं  
सर्वदा तत्प्रसङ्गात् । नापि पुरुषप्रयत्नाभिव्यक्तस्य, तेषां रागा-  
५ दिदोषदुष्टत्वेनोपगमात् तत्कृतोभिव्यकेर्यथार्थतानुपपत्तेः । तथाच  
अप्रामाण्यप्रसङ्गमयादपौरुषेयत्वाम्युपगमो गजज्ञानमनुकरोति ।  
तदुक्तम्—

“असंस्कार्यतया पुंभिः सर्वथा स्याच्चिरर्थता ।

संस्कारोपगमे व्यक्तं गजज्ञानमिदं भवेत् ॥ १ ॥”

१०

[ प्रमाणवा० १।२३२ ]

तच्च प्रामाण्यस्योत्पत्तौ परानपेक्षा ।

नैपि ज्ञातौ । साहि निर्निमित्ता, सन्नि(सनि)मित्ता वा ? न ताव-  
द्निर्निमित्तौ, प्रतिनियतदेशकालसमावाभावप्रसङ्गात् । सनिमि-  
त्तत्वे किं स्वनिमित्ता, अन्यनिमित्ता वा ? न तावत्स्वनिमित्ता,  
१५ स्वसंविदितत्वान्म्युपगमात् । अन्यनिमित्तत्वे तर्हि प्रत्यक्षम्,  
उतानुमानम् ? न तावत्प्रत्यक्षम्, तस्य तत्र व्यापारमावात् ।  
तद्धीन्द्रियसंयुक्ते विषये तद्व्यापारादुदयमासादयत्प्रत्यक्षव्यपदेशं  
लभते । न च प्रामाण्येनेन्द्रियाणां सम्प्रयोगो येन तद्व्यापारज-  
नितप्रत्यक्षेण तत्प्रतीयेत । नापि मनोव्यापारजप्रत्यक्षेण, एवं-  
२० विधौनुभवाभावात् ।

१ वेदे । २ अपौरुषेयत्वेन । ३ अन्यथा । ४ ज्ञातस्य । ५ अपौरुषेयत्वस्य ।  
६ अपौरुषेयस्य वेदस्य । ७ वेदस्य पुरुषकृताभिव्यक्तितोऽर्थे प्रतीतिजनकत्वे च । ८ तत्र  
परस्य । ९ वेदस्य । १० निश्चिता । ११ पुंभिः । १२ गुण । १३ गीमासकमत-  
प्रक्षेपं करोति । १४ अन्यथा । १५ प्रामाण्यमात्मानं स्वैव जानाति । १६ अत्यन्त-  
परोक्षत्वाद्विज्ञानस्य । १७ गीमासकैः । १८ प्रामाण्यकृतौ । १९ जायमानम् ।  
२० सन्निकर्षः । २१ अपि तु न । २२ तत्प्रतीयेत । २३ प्रामाण्यकृतिरूप ।  
२४ प्रामाण्यकृतेः ।

रक्तं नीलसरोजं हि बह्मचालोके स हीन्यते ।

बह्मादिः कृतकत्वाच्चैव हेतुरपपद्यते ॥ २४०४ ॥

तत्त्वसं० पं० पृ० ६५६ ।

1 “यतो निश्चयस्तत्र भवन् किं निर्निमित्तः सत सनिमित्तः इति कल्पनादयम् ।  
तत्र न तावद्निर्निमित्तः, प्रतिनियतदेशकालसमावाभावप्रसङ्गात् । सनिमित्तत्वेऽपि किं  
स्वनिमित्तं सत स्वव्यतिरिक्तनिमित्तः ?”  
सम्प्रति० टी० पृ० १३ ।

नाप्यनुमानतः, लिङ्गाभावात् । अर्थार्थप्राकैक्यं लिङ्गम्; तर्कितं यथार्थत्वविशेषणविशिष्टम्, निर्विशेषणं वा? प्रथमपक्षे तस्य यथार्थत्वविशेषणग्रहणं प्रथमप्रमाणात्, अन्यथा? आद्यपक्षे परस्परश्रयः दोषः । द्वितीयेऽनवस्था । निर्विशेषणान्तर्प्रतिपत्तौ चातिप्रसङ्गः । प्रत्यक्षानुमानाभ्यां तत्र प्रामाण्यनिश्चये स्वतः प्रामा-  
ण्यन्याघातश्च ।

यच्च संवादोदात्तपूर्वस्य प्रामाण्ये चक्रकदूषणम्; तदप्यसङ्गतम्; न खलु संवादोदात्तपूर्वस्य प्रामाण्यं निश्चित्य प्रवर्तते, किन्तु बहिरूपदर्शने सत्येकदा शीतपीडितोऽन्यार्थं तद्देशमुपसर्पन् कृपालुना वा केनचित्तद्देशं वहेरानयने तत्स्पर्शविशेषमनुभूय तद्रूपस्पर्शयोः सम्बन्ध-  
मवगम्यमानभ्यासदृशायां 'ममायं रूपप्रतिभासोऽभिर्मैतार्थ-  
क्रियासाधनः एवंविधप्रतिभासत्वात्पूर्वोत्पन्नैवंविधप्रतिभासवत्' इत्यनुमानोत्साधनैर्निर्मासिज्ञानस्य प्रामाण्यं निश्चित्य प्रवर्तते ।  
कृषीवलादयोपि जनन्यस्तबीजादिविषये प्रथमतः तावच्छरावा-

१ प्राकट्यं प्रामाण्याभिनामनि भवति तच्च यत्र ज्ञानेति तत्र प्रामाण्यमिति ।  
२ प्रमाणप्रामाण्यमस्ति यथार्थप्राकट्यात् । ३ प्राकट्यमात्रम् । ४ लिङ्गम् । ५ प्रथम-  
जलज्ञानात् । ६ प्रमाणात् । ७ प्रमाणभूतप्रथमज्ञानात्साधनस्य यथार्थत्वविशेषणग्रहणं  
गृहीतविशेषणविशिष्टात्साधनोपधमज्ञानस्य प्रामाण्यनिश्चय इति । ८ लिङ्गात् ।  
९ प्रामाण्यवृत्तौ । १० मिथ्याज्ञानेऽपि प्रामाण्यं सादित्वम् । ११ पूर्वज्ञानप्राप्तिं द्वितीयं  
प्रत्यक्षम् । १२ पूर्वज्ञानस्य । १३ किञ्च । १४ अवैक्रियारूपात् । १५ परोक्षम् ।  
१६ जलादिज्ञानस्य । १७ नरः । १८ नरः । १९ पुष्पाय । २० गच्छन् ।  
२१ लक्षणरूपम् । २२ जनिनामायम् । २३ मासर । २४ शीतापहरणलक्षण ।  
२५ पिङ्गाक्षमाहुरूपम् । २६ शीतापनोदस्य साधनमिति । २७ जलम् ।

१ "तर्कितं फलं निर्विशेषणं वा स्वकारणस्य ज्ञातृव्यापारस्य प्रामाण्यमनुभाषयेद्,  
यथार्थत्वविशिष्टं वा?" न्यायम० पृ० १६८ । न्यायकुसु० पृ० २०१ । सन्मति०  
टी० पृ० १४ । स्या० रत्ना० पृ० २५६ ।

२ "यच्च संवादज्ञानात् साधनज्ञानप्रामाण्यनिश्चये चक्रकदूषणमवधारयि; तद-  
सङ्गतम्; यदि हि प्रथमेव संवादज्ञानात् साधनज्ञानस्य प्रामाण्यं निश्चित्य प्रवर्तते  
तदा सात्त्विकदूषणम्, यदा तु बहिरूपदर्शने सत्येकदा शीतपीडितोऽन्यार्थं तद्देशमुपसर्प-  
न् तत्स्पर्शमनुभवति कृपालुना वा केनचित्तद्देशं वहेरानयने, तदाऽसौ बहिरूपदर्शन-  
ज्ञानयोः सम्बन्धमवगच्छति एवं स्वकृपो भावः पूर्वभूतप्रयोजननिवर्तकः इति... ।"

सन्मति० टी० पृ० १६ । स्या० रत्ना० पृ० २५५ ।

३ "कृषीवलादयोपि हि जनन्यस्ते बीजादिगोचरे प्रथमम् विहितमङ्गुरनीराव-  
सिक्तसुकुमारसृष्टिं शरावादौ कतिपयशक्त्यादिबीजकणगणावपवादिना बीजाबीजे



दावल्पतरवीजवपनादिना बीजाबीजनिर्धारणाय प्रवर्तन्ते, पञ्चा-  
दृष्टसाधर्म्यात्परिशिष्टस्य बीजाबीजतया निश्चितस्योपयोगाय परि-  
हाराय च अभ्यस्तबीजादिविषये तु निःसंशयं प्रवर्तन्ते ।

यच्चाभ्यधाति-संवादप्रत्ययात्पूर्वस्य प्रामाण्यैवागमेऽनवस्था  
५ तस्याप्यपरसंवादापेक्षाऽविशेषात्; तदप्यभिधानमात्रम्; तस्य  
संवादरूपत्वेनापरसंवादापेक्षाभावात् । प्रथमस्यापि संवादापेक्षा  
मा भूदित्यप्यसमीचीनम्; तस्यासंवादरूपत्वात्, अतः संवादक-  
द्वारेणैवास्य प्रामाण्यं निश्चीर्यते ।

अर्थक्रियाज्ञानं तु साक्षादविसंवाद्यर्थक्रियालब्धेन त्वान्न तैषा  
१० प्रामाण्यनिश्चयमार्गः । तेन 'कस्यचित्तु यदीष्येत' इत्यादि प्रलाप-  
मात्रम् । न चार्थक्रियाज्ञानस्योप्यवस्तुवृत्तिशङ्कायामन्यप्रमाणा-  
पेक्षयानवस्थावतारः, । अस्यार्थाभावेऽदृष्टत्वेन निरारैकत्वात् ।  
यथैव हि-किं 'गुणव्यतिरिक्तेन गुणिनाऽर्थक्रिया सम्पादिता

१ परेण । २ ज्ञानस्य । ३ ज्ञेयैः । ४ संवादप्रत्ययो धर्मी अपरसंवादापेक्षो  
भवतीति साध्यं प्रत्ययत्वात् । ५ प्रत्ययत्वेन । ६ जलादिज्ञानस्य । ७ पूर्वज्ञानविषये  
उत्तरज्ञानस्य वृत्तिः संवादः । ८ असंवादरूपत्वं यतः । ९ प्रेक्षावद्भिः । १० संवादः ।  
११ ज्ञानपानावगादनादि । १२ पुनः । १३ यतः (कर्मधारयसमासः) । १४ वसः ।  
१५ अविसंवादापेक्षाप्रकारेण । १६ भवति । १७ कारणेन । १८ स्वतः यत्र  
प्रमाणता । प्रथमस्य तथामात्रे प्रदेयः केन हेतुना । १९ अपिज्ञानात्साधनज्ञानस्य  
प्रदणम् । २० विद्यमानेन ज्ञानादिके अविद्यमानज्ञानादिकृच्छणाऽवस्तुवृत्तिशङ्कायात् ।  
२१ निःसंशयत्वात् । २२ रूपस्यार्थादि । २३ योगः ।

निर्वायं पञ्चादृष्टसाधर्म्येणानुमानात् परिशिष्टस्य बीजाबीजतया निश्चितस्योपादानाय  
ज्ञानाय च वतन्ते । तदनन्तरं पुनरभ्यस्तं बीजादिगोचरे परिदृष्टसाधर्म्यादिलिङ्गनिरपेक्षा  
यव निःशङ्कं कीनाद्याः केदारेषु बीजवपनाय प्रवर्तन्ते ।" स्या० रत्ना० पृ० १५५ ।

१ "उच्यते वस्तुसंवादः प्रामाण्यमभिधीयते ।

तस्य चार्थक्रियाम्यासज्ञानादन्यच्च कृच्छणम् ॥ २९५९ ॥

अर्थक्रियावमार्सं च ज्ञानं संवेद्यते स्फुटम् ।

निश्चीर्यते च तन्मात्रमाभ्यामर्शनचेतसा ॥ २९६० ॥

अतस्तस्य स्वतः सम्यक् प्रामाण्यस्य निनिश्चयात् ।

नोत्तरार्थक्रियाप्राप्तिप्रलयः समपेक्ष्यते ॥ २९६१ ॥

ज्ञानप्रमाणमात्रे च तस्मिन् कार्यावभासिनि ।

प्रत्यये प्रथमेऽप्यसाक्षेतोः प्रामाण्यनिश्चयः ॥ २९६२ ॥

तत्त्वसं० पृ० ७७८ । सम्मति० ते० पृ० १४ ।

२ "यथा अर्थक्रिया किमवयवव्यतिरिक्तेन अवयविनाऽर्थेन निष्पादिता, उताभ्य-  
तिरिक्तेन, आदौस्विदुभयरूपेण, अथानुभयरूपेण, किंवा त्रिगुणात्मकेन, परमाणुसमू-

ताऽव्यतिरिक्तनोभयरूपेणानुभयरूपेण, त्रिगुणात्मनो वार्थेन, रमाणुसमूहलक्षणेन वा इत्याद्यर्थक्रियार्थिनां चिन्ताऽनुपयोगिनी निष्पन्नत्वाद्वाञ्छितफलस्य, तथेयमपि 'किं वस्तुभूतायामवस्तुभूतायां वार्थक्रियायां तत्संवेदनम्' इति । वृद्धिच्छेदादिकं हि फलमभिलषितम्, तच्चोन्निष्पन्नं वृद्धि(वृद्धि)योगिज्ञानानुभवे किं प्रचिन्तार्हाध्यम् ?

न च स्वप्रार्थक्रियाज्ञानस्यार्थमावेपि दृष्टत्वाज्जाग्रदर्थक्रियाज्ञानेपि तथा शङ्काः तस्यैतद्विपर्ययतत्वात् । स्वप्रार्थक्रियाज्ञानं हि सवाधम् । तद्गुणैर्वोत्तरकालमन्यथाप्रतीतेः न जाग्रदर्थशोभांवीति ।

१ साङ्ख्यधाराको । २ व्यतिरिक्तव्यतिरिक्त । ३ जैनमीमांसकौ । ४ बौद्धविशेषः । ५ सत्त्वरजस्तमोऽलक्षणा गुणाः । ६ साङ्ख्य । ७ प्रधायेन । ८ बौद्धः । ९ अथपरी । १० शौचः । ११ दृष्टात् । १२ ज्ञानपानावगाहनादेः । १३ अर्थक्रियाज्ञानचिन्ता । १४ अङ्गमज्जपहार । १५ पुरुषस्य । १६ पुरुषेण । १७ का । १८ अर्थक्रियाज्ञानम् । १९ न सवाधम् ।

हात्मकेन वा, अथ ज्ञानरूपेण, आहोसिद् सञ्चितरूपेण इत्यादिचिन्ता अर्थक्रियामात्रार्थिना निष्प्रयोजना निष्पन्नत्वाद्वाञ्छितफलस्य, तथेयमपि किं वस्तुसत्त्वमर्थक्रियायां तत्संवेदनज्ञानमुपजायते आहोसिदवस्तुसत्त्वम् इति । वृद्धाहविच्छेदादिकं हि फलमभिलषितम्, तच्चोन्निष्पन्नम्, तद्विद्योगिज्ञानस्य स्वसहितसोदये इति तच्चिन्ताया निष्फलत्वम् ।”

सन्मति० टी० पृ० १४ ।

१ “तथाहि लोके सकिं (इकिं) च्छेदादिकं फलमभिलषितम् तच्चाह्वावपरिधापादिरूपज्ञानमिमीवादेन निर्वृत्तमितेतापतैवाहितसन्तोषा निवर्तन्ते जना इति स्वतश्च सिद्धिरप्यते ।”

तत्त्वसं० पं० पृ० ७७८ ।

२ “अनु चार्थक्रियामपि ज्ञानं संप्रेष्यति निषेधे ।

न च तस्य प्रमाणत्वं तदेतोः प्रयत्नस्य च ॥ २९८० ॥

नैवं आन्ता हि सावसा सर्वा वाद्यानिवन्मना ।

न वास्तवस्तुसंवादेस्तावसासु निषेधे ॥ २९८१ ॥

यवमर्थक्रियाज्ञानात् प्रमाणत्ववितिक्षये ।

ज्ञानवसा पराकाङ्क्षानिर्वृत्तेरिति स्थितम् ॥ २९८६ ॥

किञ्च, प्रमाणमविसंवादिज्ञानमित्यनेन अर्थक्रियाधियमलक्षणफलप्रापकहेतोर्ज्ञानत्वदलक्षणमुच्यते, तत्तत्र फलज्ञाने लक्षणानवतारात् कथं तस्यापि प्रामाण्यमवसीयते इत्यस्य चोपस्थापकाशः कथं भवेत् ? तथाहि—अङ्कुरस्य हेतुर्वीजम् इति लक्षणे सति अङ्कुरस्यापि कथं बीजत्वमिति किं विदुषां प्रश्नो जायते ? यथा च बीजस्य तद्भाषोऽङ्कुरदर्शनं नादवगम्यते तथा प्रमाणस्यापि तद्भाषोऽर्थक्रियालक्षणफलदर्शनम् ।”

तत्त्वसं० पं० पृ० ७८४ । न्यायकुमु० पृ० २०२ । सन्मति० टी० पृ० १५ ।

प्र० क० या० १५

यदि चात्रार्थक्रियाज्ञानमर्थमन्तरेण स्यात् किमन्यज्ज्ञानमर्थान्वयमि-  
चारि यद्वलेनार्थव्यवस्था ?

अपि च, 'अर्थक्रियाहेतुर्ज्ञानं प्रमाणम्' इति प्रमाणलक्षणं तर्क्यं  
फलेष्व्याशङ्क्यते ? यथा 'अङ्कुरहेतुर्वीजम्' इति बीजलक्षणस्या-  
५ ङ्कुरेऽभावात् नैवं प्रश्नः 'कथमङ्कुरे बीजरूपता निश्चीयते' इति,  
एवमत्रापि ।

यच्चेदमुक्तम् "ओत्रधीश्चाप्रमाणं स्यादितरामिरसङ्गतिः (तिः) ।"

[ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७७ ]

इति, तदप्ययुक्तम्, बीणादिरूपविशेषोपलम्भतस्तच्छब्दविशेषे  
१० शङ्काव्यावृत्तिप्रतीतिः कथमितरामिरसङ्गतिः ? ओत्रबुद्धेरर्थक्रि-  
यानुभवरूपत्वेन स्वतः प्रामाण्यसिद्धेश्च गन्धादिवुद्धिवत् । संश-  
याद्यभावौचान्येन संकल्पपेक्षा । यत्रैव हि संशयादिर्स्तत्रैव साऽपे-  
क्षते नान्यत्र अतिप्रसङ्गात् ।

अथोच्यते अर्थक्रियाऽविसंवादात्पूर्वस्य प्रामाण्यनिश्चये मणि-  
१५ प्रमायां मणिवुद्धेरपि प्रामाण्यनिश्चयः स्यात्, तदप्यपर्यालोचिता-  
मिधानम्, एवंभूतार्थक्रियाज्ञानान्मणिवुद्धेरप्रामाण्यस्यैव निश्च-

१ किञ्च । २ जाग्रदज्ञानान्वयक्रियायात् । ३ सितिः । ४ किन्तु नैव शङ्का-  
नीयम् । ५ परेण । ६ अर्थक्रियाज्ञाने प्रमाणलक्षणशङ्का कथं स्यात् । अर्थ-  
क्रियाज्ञानरूपे फले अर्थक्रियाहेतुतया प्रमाणता निश्चीयते कथमिति प्रश्नः स्यात् ।  
७ स्वग्रन्थे । ८ चक्षुरादिजनितबीजिः । ९ रूपादिकानैः । १० अर्थस्य शब्दस्य  
क्रिया, उत्पन्नमानत्वं तस्मानुभवरूपत्वेन । ११ किञ्च । १२ स्वशरीरस्य । १३ अपरेण  
सजातीयेनार्थक्रियाज्ञानेन । १४ सवाद् । १५ ज्ञाने । १६ स्यात् । १७ अन्यथा ।  
१८ प्रतीयमानेषु स्वकीये सुखे अन्यापेक्षा स्यात् । १९ ज्ञानस्य । २० गृहीक्रिय-  
माणे । २१ ता । २२ भिन्नदेशार्थसम्बन्धः ।

१ "....तस्माच्छ्रोत्रधीः प्रमाणं भवेत्तत्र तदन्याभिश्चक्षुरादिमतिभिर्यथोक्तसम्बन्धस-  
म्भावात्, तथाहि—दूराद् बीणादिशब्दश्रवणात् तदर्थिनो वेष्वादिशब्दसाधन्याहुपजात-  
संशयस्य पुंसः प्रवृत्तौ बीणारूपदर्शनाच्चः आगुपजातः संशयः किमर्थं बीणाच्चनिः उत  
वेष्वादीनादिशब्द इति स व्यावर्तते । यत्र च देशे श्रुदङ्गादिप्रतिशब्दश्रवणात् प्रवृत्तस्य  
तदर्थभिगतिर्न भवति तत्र विसंवादादप्रमाण्यं प्रलेति ।" तत्त्वसं० पं० पृ० ८०३ ।

२ "यच्च शङ्के पीतज्ञानं मणिप्रमायां मणिज्ञानं तदप्यप्रमाणमेव, तत्र यथार्थप्रति-  
भासावसाययोरभावात् । प्रतिभासवशाद्धि प्रलक्षस्य ग्रहणाग्रहणे नत्वर्थविसंवादाभा-  
वात् । नचात्र यथा स्वभावदेशकालवस्थितवस्तुप्रतिभासोऽस्ति नरा (वा ?)  
देशकालः स एव भवति । देशकालयोरपि वस्तुस्वभावमेदकत्वात् ।" तत्त्वसं० पं०  
पृ० ७८२ । न्यायकुसु० पृ० २०२ ।

याच्तेर्न संवादाभावात् । कुञ्चिकाविवरण्यायां हि मणिप्रभायां मणिज्ञानम् अपर(अपवर)कान्तदेशसम्बन्धे तु मणावर्थक्रियाज्ञानमिति मित्रदेशार्थग्राहकत्वेन मित्रविषययोः पूर्वोत्तरज्ञानयोः कथमविसंवादास्तिमिराद्याहितैर्विज्ञमज्ञानैवत् ?

यश्चान्यद्वैकम्—कचित्कूटेपि जयतुङ्गे ज्ञानं प्रमाणं स्यात्कति-  
पयार्थक्रियादर्शनात्, तत्र कूटे कूटज्ञानं प्रमाणमेवाऽकूटज्ञानं तु न प्रमाणं तत्संवादाभावात् । सम्पूर्णचेतनालामो हि तस्यार्थक्रिया न कतिपयचेतनालीम इति ।

यच्चैकविषयं मित्रविषयं वा संबादकमित्युक्तम्, तत्रैकाधार-  
वर्तिरूपादीनां तादात्म्यप्रतिर्विषेनान्योन्यं व्यभिचाराभावात् । १०  
जोषदशारसादिज्ञानं रूपाद्यविनाभावि रसादिविषयत्वात् । मित्र-  
विषयत्वेनैवांशद्वितविषयमावर्षस्य रूपज्ञानस्य प्रामाण्यनिश्चयात्म-  
कम् । इह्यते हि विभिन्नदेशाकारस्यापि वीणादे रूपविशेषदर्शने  
शब्दविशेषे शङ्काव्यावृत्तिः किं पुनर्नामै ? अविनाभावो हि संवाद्य-  
संवादकभावनिमित्तं नैव्यत् ।

१५

१ पूर्वज्ञानस्य । २ अमूल । ३ जनित । ४ विज्ञमज्ञानस्य यथा मित्रदेश-  
सन्मन्यार्थक्रियाज्ञानरूपसंवादाच्च प्रामाण्यस्य । ५ शुक्तिमादौ रत्नादिज्ञान विज्ञमः ।  
६ परेण । ७ द्रष्टे । ८ दूषणमुच्यते । ९ अकूटजयतुङ्गस्य । १० अर्थे । ११ पूर्व-  
ज्ञानस्य । १२ परेण । १३ मातु(लि)कादि । १४ सन्मन्वेन । १५ द्वितीयम् ।  
१६ कपरसज्ञानयोः । १७ जाग्रदशाभावि । १८ आद्यस्य जाग्रदशाभाविनः ।  
१९ आद्यस्य । २० रूपादौ । २१ विभिन्नविषययोः कपरसज्ञानयोः शङ्काव्यावृत्तिः  
कृत इत्युक्ते आह । २२ एकविषयत्वं मित्रविषयत्वं वा ।

१ “एकसन्तानवर्तिनो विषयद्वयस्याविनाभावादप्याकम्बनमपि ज्ञानमन्यविषयस्य  
ज्ञानस्य प्रामाण्यं साधयिष्यति, नहि तौ रूपस्पर्शी विनियोगेन वर्तते एकसामर्थ्य-  
धीनत्वात् ।”

उत्तरसं. पं० पृ० ८०२ ।

२ “कचित्छब्द समानजातीयं संवादकज्ञानं भवति, यथा देवदत्तस्य ग्रथं पठज्ञाने  
प्रवृत्ते यद्वदत्तस्यापि तस्मिन्नेव घटे पठज्ञानम् ।...कचित्तु मित्रजातीयमपि, संवादकज्ञानं  
भवति । यथा ग्रथमस्य अवर्तकलञ्जानस्य उत्तरकाळमावित्ज्ञानपानावगाहनाद्यर्थक्रिया-  
ज्ञानम् ।...भवति हि एकसन्तानप्रभवम् अन्यकारकलुपितालोकप्रभवम् कुम्भज्ञानस्य  
उत्तरकाळमावितिस्तिमिरालोकप्रभवं तस्मिन्नेव कुम्भे कुम्भज्ञानम् । मित्रविषयं तु  
एकसन्तानप्रभवं संवादकं यथा रसाङ्गमिश्रनादेकतरदर्शनस्य अन्यतरदर्शनम् ।...न  
खलु निखिलं मित्रविषयं सवेदनं संवादकमिति श्रूयः । किं हि ? यत्र पूर्वोत्तरज्ञान-  
गोचरयोः अविनाभावस्तत्रैव मित्रविषयत्वेऽपि ज्ञानयोः संवाद्यसंवादकभाव इति ।...  
अविनाभावो हि संवाद्यसंवादकभावनिमित्तं नान्वत् ।” स्या० रत्ना० पृ० २५३ ।

संवादज्ञानं किं पूर्वज्ञानविषयं तदविषयं वा; इत्याद्यप्यसमीक्षितमिधानम्; न खलु संवादज्ञानं तद्भाहित्वेनास्य प्रामाण्यं व्यवस्थापयति । किं तर्हि ? तत्कार्यविशेषत्वेनाभ्यादिकमिव धूमादिकम् ।

सर्वप्राणभृतां प्रामाण्ये सन्देहविपर्ययासिद्धेऽप्यस्य; इत्यप्ययुक्तम्; ५ प्रेक्षापूर्वकारिणो हि प्रमाणाप्रमाणचिन्तायामधिक्रियन्ते नेतरे । ते च कासाञ्चिदज्ञा(ञ्चिज्ज्ञा)नव्यक्तीनां विसंवाददर्शनाज्जाताशङ्काः केयं ज्ञानमात्रात् 'अयमित्थमेवार्थः' इति निश्चिन्वन्ति प्रामाण्यं वास्य ? अन्यथैषां प्रेक्षावत्तैव हीयेत ।

प्रमाणे बाधककारणदोषज्ञानाभावात्प्रामाण्यावसायः; इत्यप्य-  
१० मिधानमात्रम्; तदभावाच्च हि बाधकाग्रहणे, तदभावनिश्चये वा स्यात् ? प्रथमपक्षे भ्रान्तज्ञाने तद्भावेऽपि तदग्रहणं कश्चित्कालं दृष्टम्, एवमत्रापि स्यात् । 'भ्रान्तज्ञाने कश्चित्कालमग्रहेऽपि कालान्तरे बाधकग्रहणं, सम्यग्ज्ञाने तु कालान्तरेऽपि तदग्रहणम्' इत्ययं विभोगः सर्वविदां नास्मादशाम् । बाधकाभावनिश्चयेऽपि १५ सम्यग्ज्ञाने प्रवृत्तेः प्राक्, उत्तरकालं वा ? आद्यविकल्पे भ्रान्तज्ञानेऽपि प्रमाणत्वप्रसङ्गः । द्वितीयविकल्पे तन्निश्चयस्याकिञ्चित्करत्वं तमन्तरेणैव प्रवृत्तेरुत्पन्नत्वात् । न च बाधकाभावनिश्चये किञ्चिन्निमित्तमस्ति । अनुपलब्धिर्ह्यस्तीति चेत्किं प्राक्कालं, उत्तरकालं वा ? न तावत्प्राक्कालं; तस्याः प्रवृत्त्युत्तरकाल-  
२० भाविबाधकाभावनिश्चयनिमित्तत्वासम्भवात् । न ह्यन्यकालानु-

१ पूर्वज्ञानं विषयो यस्य । २ अयं किं याज्ञानं । ३ कर्तुं । ४ अभ्यादिकं कर्मप्रामा-  
पन्नं यथा व्यवस्थापयति धूमादिकं कर्तुं, कुतस्तत्कार्यत्वाच्च तु तद्भाहित्वादित्यर्थः ।  
५ कर्तुं । ६ बाधक । ७ अप्रेक्षाकारिणो नराः । ८ नरीचिकादौ । ९ किन्तु नैव ।  
१० बाधकाभावः । ११ उभयोः । १२ सत्यजलज्ञाने । १३ उभयोः (कोट्योः) ।  
१४ देशकालपेक्षया । १५ ज्ञानपानादिलक्षणायाः । १६ किञ्च । १७ कारणम् ।  
१८ विनादापक्षे प्रमाणे बाधकं नास्ति अनुपलब्धेरेति । १९ नेदं बलमिति ।

१ "नहि संवादज्ञानं तद्भाहित्वेन तस्य प्रामाण्यं व्यवस्थापयति, किन्तु तत्कार्य-  
विशेषत्वेन यथा धूमोऽग्निश्च इति पराम्युपगमः ।" सन्मति० टी० पृ० १६ ।

२ "तदभावाच्च हि बाधकाग्रहणे, तदभावनिश्चये वा ?" तत्त्वोप० लि० पृ० १ ।  
सन्मति० टी० पृ० १७ ।

३ "बाधकानुपलब्धिः किं प्रवृत्तेः प्राग्भाविनी बाधकाभावनिश्चयस्य प्रवृत्त्युत्तर-  
कालभाविनी निमित्तम्, अथ प्रवृत्त्युत्तरकालभाविनी इति विकल्पद्वयम् ?"  
सन्मति० टी० पृ० १७ ।

पलब्धिरन्यकालमर्भावनिश्चयं च विदधात्यसिप्रसङ्गात् । नाप्यु-  
त्तरकालां, प्राक् प्रवृत्तेः 'उत्तरकालं बाधकोपलब्धिर्न भविष्यति'  
इत्यसर्वविदा निश्चेतुमशक्यत्वेनासिद्धत्वात् । प्रवृत्त्युत्तरकाल-  
भाविनिश्चयमात्रनिमित्तत्वे न किञ्चित्फलम् तस्यां किञ्चित्करत्वात् ।

किञ्च, कसौ सर्वसम्बन्धिनी, आत्मसम्बन्धिनी वा ? प्रथम-  
पक्षे असिद्धा; न खलु 'सर्वे प्रमातारो बाधकं नोपलभन्ते'  
इत्यर्वागर्दशिना निश्चेतुं शक्यम् । नाप्यात्मसम्बन्धिनी; तस्याः  
परचेतोवृत्तिविशेषैरनैकान्तिकत्वात् । तन्नानुपलब्धिर्निमित्तम् ।

नापि सर्वोदोर्नैवस्थोप्रसङ्गात् । कारणदोषाभावेऽप्ययमेव न्यायः ।

एवं 'त्रिचेतुरज्ञान' इत्याद्यपि स्वगृह्यमान्यम्; 'कस्यचिद्विज्ञानस्य १०  
प्रामाण्यं पुनरप्रामाण्यं पुनः प्रमाणता' इत्यवस्थानयदर्शनाद्वाधके  
तद्वाधकादौ वावस्थात्रयमाशङ्कमानस्य परीक्षकस्य कथं नापरा-  
पेक्षा येनानवस्था न स्यात् ?

'आशङ्केत हि यो मोह्यात्' इत्याद्यपि विभीषिकामात्रम्, यतो  
नामिशापमात्रात्प्रेक्षावतां प्रमाणमन्तरेण बाधकोशङ्का व्यावर्त्तते । १५  
न चास्या व्यावर्त्तकं प्रमाणं भवन्मतेऽस्तीत्युक्तम् । कारणोदोर्नैवज्ञा-  
नेषु पूर्वेण जाताशङ्कस्य तत्कारणदोषान्तरापेक्षायां कथमनवस्था  
न स्यात् ? तस्य तत्कारणदोषग्राहकज्ञानाभावमात्रतः प्रमाण-  
त्वज्ञानवस्था, यदाह—

“यदा स्वतः प्रमाणत्वं तदार्थैश्चैव संयते ।

२०

१ पूर्वेण जाताशङ्कस्य । २ बाधकस्य । ३ सम्प्रत्यक्ष षटानुपलब्धिः कालान्तरेष्वन-  
वताभारं कुर्यादित्यसिप्रसङ्गात् । ४ जलादिशाने । ५ बाधकाद्यान । ६ अनुपल-  
म्बस्य । ७ प्रवृत्त्यर्थो हि निश्चयोऽवलोक्यते प्रवृत्तेश्च वातत्वानिश्चयस्याकिञ्चित्करत्वम् ।  
८ अनुपलब्धिः । ९ किञ्चिन्वेन । १० अनुपलम्बेः । ११ लक्ष्मणमन्त्रेयः ।  
१२ बाधकाभावनिश्चयं निमित्तम् । १३ अन्यथा । १४ पूर्वेण जाताशङ्कस्य संवादे  
संवादान्तरापेक्षणात् । १५ इदं जलं पुनरिदं जलं पुनरिदं जलम् । १६ विवक्षि-  
तस्य । १७ बाधकात् । १८ पञ्चमज्ञानलक्षणसंवादप्रमाणम् । १९ चतुर्थज्ञानस्य ।  
२० प्रत्यक्षादिना प्रामाण्यग्रहणामात्रे प्रमाण्ये बाधकाशङ्काव्यावर्त्तनस्य कर्तुमशक्य-  
त्वात् । २१ द्वितीयविकल्पः । २२ विज्ञानकारणनेत्रादिकम् । २३ काचकामकादि ।  
२४ शानेन । २५ इन्द्रियाणामतीन्द्रियत्वान्नानः । २६ संवादकज्ञानम् । २७ कुतः ।

१ “किञ्च, बाधकानुपलब्धिः सर्वसम्बन्धिनी किं तन्नियमहेतुः उत आत्मसम्ब-  
न्धिनी इति पुनरपि पक्षद्वयम् ।”

सम्प्रति० टी० पृ० १७ ।

निवर्तते हि मिथ्यात्वं दोषाज्ञानादयत्नतः” ॥

[ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५२ ]

प्रागेव विहितोत्तरम् । न च दोषाज्ञानात्तदर्थः, सत्स्वपि तेषु तदज्ञानसम्भवात् । सम्यग्ज्ञानोत्पादनशक्तिवैपरीत्येन मिथ्याप्रत्य-  
योत्पादनयोग्यं हि रूपं तिमिरादिनिमित्तमिन्द्रियदोषः, स चाती-  
न्द्रियत्वात्सन्नपि नोपलक्ष्यते । न च दोषाः ज्ञानेन व्याप्ता येन तन्निवृत्त्या निवर्तन् । ततोऽयुक्तमिदम्—

“तैस्मात्स्वतः प्रमाणत्वं सर्वत्रौत्सर्गिकं स्थितम् ।

वैधकरणदुष्टत्वज्ञानाभ्यां तदपोद्यते ॥

१०

परौघीनेपि वै तैस्मिन्नानवस्था प्रसज्यते ।

प्रमाणौघीनमेतद्वि स्वतस्तच्च प्रतिष्ठितम् ॥

प्रमाणं हि प्रमाणेन यथा नान्येन साध्यते ।

न सिध्यत्यप्रमाणत्वमप्रमाणात्तथैव हि ॥

वैधकप्रत्ययस्तावदर्थान्यत्वाऽवधारणम् ।

१५

सोऽनपेक्षः प्रमाणत्वात्पूर्वज्ञानमपेक्षते ॥

यत्रापि त्वपवादस्य स्यादपेक्षा कंचित्पुनः ।

ज्ञाताशङ्कस्य पूर्वेण सार्वभ्येन निवर्तते ॥

१ शङ्कया यदापादितमप्रामाण्यम् । २ स्वच्छनीत्यादि । ३ संवादमन्तरेण ।  
४ कारणदोषाभावेऽप्ययमेव न्याय इति । ५ किञ्च । ६ दोषाभावः । ७ किञ्च ।  
८ अनवस्था समर्थिता यतः । ९ अग्रे वक्ष्यमाणलक्षणम् । १० भीमात्तदप्रत्ये ।  
प्रमथज्ञानप्रामाण्ये संवादज्ञानापेक्षाया अनवस्थाचक्रकेतरेतराभ्या यतः । ११ यत्  
चेत्सर्वस्य ज्ञानस्य आन्तादेः प्रमाणता स्यादित्युक्ते सलाह । १२ यथाऽप्रामाण्यं  
बाधककारणदोषज्ञानापेक्षं तथा बाधकादिनाऽपरमपेक्षणीयमपरेणाप्यपरमपेक्षणीयमित्यन-  
वस्था कुतो न स्यादित्युक्तं आह । १३ आन्तादेरप्रामाण्ये । १४ अप्रामाण्यं ।  
१५ प्रमाणौघीनं स्यादपि अप्रामाण्यं तदाऽनवस्था न स्यादेव किं तर्हि अप्रामाण्यस्य  
प्रमाणमन्तरेणैव सिद्धिः स्यात्तत्तत्प्रामाण्यं स्वतः स्यादित्युक्ते आह । १६ प्रमाण-  
मन्तरेण । १७ बाधप्रलयः पुनः क इत्युक्ते आह । १८ ज्ञानं । १९ परानपेक्षः ।  
२० स्वतः । २१ भरीविकार्या अलक्षणम् । २२ बाधते । २३ विषये । २४ यदा  
बाधकप्रलयोऽपरमपेक्षेत तदा किम् । २५ बाधकज्ञानस्य । २६ अपवादमन्तरस्य ।  
२७ अर्थे । २८ नरस्य । २९ पूर्वेण ज्ञानेन । ३० अपरेण बाधकप्रलयेन पूर्व-  
ज्ञातीयेन संवादकेन ।

१ “न च दोषा ज्ञानेन ये व्याप्ता येन तन्निवृत्त्या निवर्तन्” सन्मति० टी० पृ० १८ ।

२ तस्यात्स्वतः इत्यादयो नवश्लोकाः तत्त्वसंग्रहे किञ्चिद् पाठभेदेन पूर्वपक्षरूपेण  
उपलभ्यन्ते (पृ० ७५८-६०) । सन्मति० टी० पृ० १८-१९ ।

बाधकान्तरमुत्पन्नं यद्यस्यान्विच्छतोऽपरम् ।  
 ततो मध्यमबाधेन पूर्वस्यैव प्रमाणता ॥  
 अथान्यैवप्रयत्नेन सम्यगन्वेषणे कृते ।  
 मूलाभावाच्च विहीनं भवेद्बाधकबाधनम् ॥  
 ततो निरपवादत्वात्तेनैवाद्यं बलीयसा ।  
 बाध्यते तेन तस्यैव प्रमाणत्वमपोद्यते ॥  
 एवं परीक्षकज्ञानं तृतीयं नातिवर्त्तते ।  
 तैस्त्रिभ्यामप्यनाश्रयाणां तेषामनुपपत्तेः ॥”

कथं वै चोदनाप्रभवचेतैसो निःशङ्कं प्रामाण्यं गुणवतो वक्रर-  
 भावेनाऽपवादकदोषाभावासिद्धेः ? ननु वक्रगुणैरेवापवादकदो- १०  
 षाभावाच्चेत्येते तदभावेऽप्यनाश्रयाणां तेषामनुपपत्तेः । तदुक्तम्—

“शब्दे दोषोद्भवस्तावद्वक्रधीन इति स्थितम् ।

तदभावः केचित्तावद्गुणवद्वक्रकृत्वतः ॥

तद्गुणैरेपेक्ष्यतां शब्दे सङ्गान्धसम्भवात् ।

यद्वा वक्ररभावेन न स्युर्दोषा निरैश्रयाः ॥”

[ मी० सू० सू० २ सू० ६२-६३ ]

इत्यपि प्रलापमात्रमपौरुषेयत्वस्यासिद्धेः । ततश्चेदमयुक्तम्—

“तैर्भाष्यैर्वनिर्मुक्तिर्वक्रमावाङ्मिथीयसी ।

वेदे तेनैप्रमाणत्वं नाशङ्कामपि गच्छति ॥ १ ॥”

[ मी० सू० सू० २ सू० ६८ ]

स्थितं चैतच्चोदनाजनिता बुद्धिर्न प्रमाणमनिराकृतदोषकारण-  
 प्रभवत्वात् द्विचन्द्रादिबुद्धिर्वैत् । न चैतदसिद्धम्, गुणवतो वक्रर-  
 भावे तैश्च दोषाभावासिद्धेः । नाप्यनैकान्तिकं विरुद्धं वा; दुष्ट-

१ बाधकप्रत्ययस्य सभासीयस्यैवाद्गुणापरवाचकोत्पन्नभावेन विवासीयं बाधकान्तर-  
 मुत्पद्यते यदा तदा निम् । २ ता । ३ तृतीयज्ञानस्य बाधकं चतुर्थज्ञानं । ४ इच्छा-  
 मन्तरेण । ५ उत्पद्यते । ६ प्रामाण्यं । ७ तृतीयस्य । ८ तृतीयस्यानवर्त्ति ज्ञानम् ।  
 ९ बाधकस्य द्वितीयज्ञानस्य । १० बाधकज्ञानं न भवेद्यतः । ११ द्वितीयज्ञानेन ।  
 १२ ज्ञानं । १३ कारणेन । १४ निराश्रयते । १५ द्वितीयज्ञानेन । १६ एवं  
 चेदनवस्था कुतो न सादित्युक्ते सत्याह । १७ तृतीयं ज्ञानं नातिवर्त्तते यतः ।  
 १८ नरेण । १९ स्वतः प्रामाण्ये दूषणान्तरम् । २० किञ्च । २१ ज्ञानस्य ।  
 २२ परेण मया । २३ दोषाण्य । २४ वाक्ये । २५ निराकृतानां दोषाण्यम् ।  
 २६ शब्दे । २७ पुरुष । २८ वेदे । २९ अग्रामाण्यं । ३० जनाया सत्ताया ।  
 ३१ स्यात् । ३२ कारणेन । ३३ ज्ञान । ३४ वेदे ।



कारणप्रभवत्वाप्रामाण्ययोरविनाभावस्य मिथ्याज्ञाने सुप्रसिद्धि-  
(इ)त्वादिति ॥

सिद्धं सर्वजनप्रबोधजननं सैद्योऽकलङ्काश्रयम्,  
विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतो नित्यं मनोनन्दनम् ।  
निर्दोषं परमागमार्थविषयं प्रोक्तं प्रेमालक्षणम् ।  
युक्त्या चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्द्धमानं जिनम् ॥१॥

परिच्छेदावसाने आक्षिपमाह । चिन्तयन्तु । कम् ? श्रीवर्द्धमानं  
तीर्थकरपरमदेवम् । भूयः कथम्भूतम् ? जिनम् । के ? सुधियः ।  
क ? चेतसि । कया ? युक्त्या ज्ञानप्रधानतया । भूयोपि कथम्भू-  
१० तम् ? सिद्धं जीवन्मुक्तम् । भूयोपि कीदृशम् ? सर्वजनप्रबोधजन-  
नम् सर्वे च ते जनाश्च तेषां प्रबोधस्तं जनयतीति सर्वजनप्रबोध-  
जननस्तम् । कथम् ? सद्यः श्रुति । भूयोपि कीदृशम् ? अकलङ्का-  
श्रयम्-कलङ्कानां द्रव्यकर्मणामभावः अकलङ्कस्तस्याश्रयस्तम् ।  
भूयोपि कथम्भूतम् ? मनोनन्दनम् । कथम् ? नित्यं सर्वदा ।  
१५ कुतः ? विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतः-विद्या केवलज्ञानमानन्दः सुखं  
समन्ततो भद्राणि कल्याणानि समन्तभद्राणि विद्या ज्ञानन्दश्च  
समन्तभद्राणि च तान्येव गुणास्तेभ्यः ततः । भूयोपि कीदृशम् ?  
निर्दोषं रागादिभावकर्मरहितम् । भूयोपि कथम्भूतम् ? परमाग-  
मार्थविषयम्-परमागमार्थो विषयो यस्य स तथोक्तस्तम् । भूयोपि  
२० कीदृशम् ? प्रोक्तं प्रकृष्टमुक्तं वचनं यस्यासौ प्रोक्तस्तम् । भूयोपि  
कथम्भूतम् ? प्रमालक्षणम् ॥ श्रीः ॥

इति श्रीप्रमानन्दविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षासु-

खालङ्कारे प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ॥ श्रीः ॥

१ न सन्यग्ज्ञाने । २ कुतः कुलम् । ३ श्रुति । ४ उत्पन्नान्तरम् । ५ जलि-  
न्यदे सिद्धप्रमाणलक्षणवर्द्धमानस्त्वमित्यन्वित्वेनावैश्वर्यं बोद्धव्यम् । ६ द्रव्यभावकर्म-  
णामभावस्तस्याश्रयम् । ७ प्रमाणलक्षणस्य सन्यग्ज्ञानरूपत्वादे । ८ सर्वदा ।  
९ रागादिभावकर्मरहितम् । १० वसः (वहुव्रीहिसमाससंज्ञेयमुपनिषदा जैनेन्द्रव्याकरणे) ।  
११ प्रमाणलक्षणस्य सन्यग्ज्ञानरूपत्वादे । १२ नाज्ञानप्रधानतया ।

। श्रीः ।

## २ अथ प्रत्यक्षोद्देशः

अथ प्रमाणसामान्यलक्षणं व्युत्पाद्येदानीं तद्विशेषलक्षणं व्युत्पादयितुमुपक्रमते । प्रमाणलक्षणविशेषव्युत्पादनस्य च प्रतिनियतप्रमाणव्यक्तिनिष्ठत्वात्तदभिप्रायवांस्तद्व्यक्तिसंख्याप्रतिपादनपूर्वकं तल्लक्षणविशेषमाह—

तद्वेधेति ॥ १ ॥

५

तत्स्वापूर्वत्यादिलक्षणलक्षितं प्रमाणं द्वेधा द्विप्रकारम्, सकलप्रमाणमेवैवमेवानामत्रान्तर्भावविभाजनत् । 'परंपरिकल्पितैकद्वित्र्यादिप्रमाणसंख्यानियमे तदघटनात्' इत्याचार्यः स्वयमेवात्र प्रतिपादयिष्यति । ये हि प्रत्यक्षमेकमेव प्रमाणमित्याचक्षते न तेषामनुमानादिप्रमाणान्तरस्यात्रान्तर्भावः सम्भवति तद्विलक्षण-१० त्वाद्विभिन्नसामग्रीप्रमथत्वाच्च ।

ननु चास्याऽप्रामाण्यान्नान्तर्भावविभाजनया किञ्चित्प्रयोजनम् । प्रत्यक्षमेकमेव हि प्रमाणम्, अगौणत्वात्प्रमाणस्य । अर्थनिश्चायकं च ज्ञानं प्रमाणम्, न चानुमानादर्थनिश्चयो घटते-सामान्ये सिद्धसाधनादिशेषेऽनुगमाभावात् । तदुक्तम्—

१५

विशेषेऽनुगमाभावः सामान्ये सिद्धसाधनम् [ ] इति ।

किञ्च, व्याप्तिग्रहणे पक्षधर्मतावगमे च सत्यनुमानं प्रवर्तते । न च व्याप्तिग्रहणमध्यक्षतः, अस्य सन्निहितमात्रार्थग्राहित्वेनाखिलपदार्थाक्षेपेण व्याप्तिग्रहणेऽसामर्थ्यात् । नाप्यनुमानैतः, अस्य व्याप्ति-

१ जनन्तरम् । २ कथयित्वा । ३ निशेदीकर्तुं । ४ प्रारभते । ५ परिच्छेदानन्तरः । ६ मैद । ७ कार्यं त्रिविधं भूतं पञ्चविधमित्यादिलक्षणम् । ८ व्यक्तिमेवेति लक्षणैकत्वमन्तर्भावः । ९ निश्चयत्वात् । १० कुत घटत् । ११ तदघटनं कथमाचार्यः प्रतिपादयिष्यतीत्युक्ते जाह । १२ चावकाः । १३ वैजयन्तेश्वर । १४ इन्द्रियलिंगे । १५ अनुमानादेः । १६ किञ्च । १७ साध्ये । १८ न हि अभिप्राये कस्यचिद्विप्रतिपत्तिरस्ति सामान्यात् प्रवर्तमानः कथं नियतमधिसुखमेवावश्यं प्रवर्तते । १९ यो यो भूषणान् स स तागैर्नाभिमानित्वान्वाभावः । २० नानुमानं प्रमाणं स्यान्निश्चयाभाववत्त्वतः । २१ हेतोः । २२ कल्पते । २३ अन्वाधारधृमाधारमहानसादि । २४ स्वीकरणेन । २५ प्रत्यक्षस्य । २६ सर्वत्र भूयोऽभिना व्याप्तः तदन्वयव्यतिरेकानुविधानात् । २७ व्याप्तिग्रहणम् ।

अहणपुरस्सरत्वात् । तत्राप्यनुमानतो व्याप्तिग्रहणेऽनवस्थेतेतरा-  
श्रयदोषप्रसङ्गः । न चान्यत्प्रमाणं तद्भाहकमस्ति । तत्कुतोनुमानस्य  
प्रामाण्यम् ? इत्यसमीक्षिताभिधानम् ; अनुमानादेरप्यध्यक्षवत्प्र-  
तिनियतस्वविषयव्यवस्थायामविसंवादकत्वेन प्रामाण्यप्रसिद्धेः ।  
५ प्रत्यक्षेऽपि हि प्रामाण्यमविसंवादकत्वादेव प्रसिद्धम्, तच्चान्यत्रापि  
समानम् अनुमानादिनाप्यध्यवसितेऽर्थे विसंवादाभावात् ।

यच्च-अगौणत्वात्प्रमाणस्येत्युक्तम्, तत्रानुमानस्य कुतो [ गौण-  
त्वम्, ] गौणार्थविषयत्वात्, प्रत्यक्षपूर्वकत्वाद्वा ? न तावदाद्यो  
विकल्पः ; अनुमानस्याप्यध्यक्षवद्भास्तवसामान्यविशेषात्मकार्थवि-  
१० षयत्वाभ्युपगमात् । न खलु कल्पितसामान्यार्थविषयमनुमानं  
सौगतवज्जनैरिष्टम्, तद्विषयत्वस्यानुमाने निराकरिष्यमाणत्वात् ।  
प्रत्यक्षपूर्वकत्वाच्चा अनुमानस्य गौणत्वे प्रत्यक्षस्यापि कस्यचिदनुमा-  
नपूर्वकत्वाद्गौणत्वप्रसङ्गः, अनुमानात्साध्यार्थं निश्चित्य प्रवर्त्त-  
मानस्याध्यक्षप्रवृत्तिप्रतीतिः । ऊहाव्यप्रमाणपूर्वकत्वाच्चास्याध्यक्ष-  
१५ पूर्वकत्वमसिद्धम् ।

यच्चोक्तम् 'न च व्याप्तिग्रहणमध्यक्षतः' इत्यादि, तदप्युक्तिमा-  
त्रम्, व्याप्तेः प्रत्यक्षानुपलम्भवलोद्भूतोहाव्यप्रमाणात्प्रसिद्धेः । न  
च व्यक्तीनामनैस्त्यं देशादिव्यभिचारो वा तत्प्रसिद्धेर्बाधकः,  
सामान्यद्वारेण-प्रतिर्वैबाधधारणात्तस्य चानुगताऽबाधितप्रत्यय-  
२० विषयत्वादस्तित्वम् । प्रसाधयिष्यते च "सामान्यविशेषात्मा  
तदेवार्थः" [ परीक्षामुख ४-१ ] इत्यत्र वस्तुभूतसामान्यसद्भावः ।

न 'चोहप्रमाणमन्तरेण 'प्रत्यक्षमेव प्रमाणमगौणत्वात्' इत्यौघ-  
मिधानं शक्यम् । तथैहि—अगौणत्वमविसंवादित्वं वा लिङ्गं नाम-

१ आधानुमानेऽपरानुमानेन व्याप्तिप्रतिपत्तौ अनवस्था । आधानुमानेन द्वितीयानु-  
माने व्याप्तिप्रतिपत्तौ इतरेतराश्रयः । २ पक्षप्रसङ्गावगमे च सत्यनुमानं प्रवर्तत इत्युक्तं  
तत्र पक्षप्रतिपत्तिश्च प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा । न तावत्प्रत्यक्षतः पक्षप्रतिपत्तिरनुमाना-  
नर्थक्यप्रसङ्गात् । चाप्यनुमानतः पक्षप्रतिपत्तिरनुमानेति पक्षप्रतिपत्तिः प्रत्यक्षतोऽनु-  
मानतो वा । न तावत्प्रत्यक्षतः सक्तदोषानुपपत्त्यात् । नाप्यनुमानतोऽनवस्थाप्रसङ्गात् ।  
क्रममनुमानेऽप्यनुमानात्पक्षप्रतिपत्तिरिति । ३ व्याप्तिग्रहणान्वये सति । ४ अन्ये ।  
५ उपचरित । ६ परमार्थरूप । ७ अन्यापेक्षरूप । ८ व्याप्तिज्ञानं प्रत्यक्षम् ।  
९ जुः । १० वा । ११ किञ्च । १२ साधनम् । १३ अक्षिप्तमव्यक्तयोऽनन्ता अतः  
सम्बन्धोवधारयितुं न शक्यः, यो भूयवान् सोऽक्षिमाप् पर्वत इति देशादिव्यभिचारो  
वा तज्ज्येतेर्बाधकः । १४ काल । १५ कृतेः । १६ भूतत्वेनास्तित्वेन । १७ साध्य-  
साधनयोरविनाभाव । १८ गौणीत्याद्यनुत्पत्त । १९ प्रमाणावः । २० किञ्च ।  
२१ सर्वमनुमानमप्रमाणं गौणत्वादित्यादि च । २२ उक्तमेव समर्थयन्ते आचार्याः ।

सिद्धप्रतिबन्धं सत् प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यमनुमोपयेदतिप्रसङ्गात् ।  
 प्रतिबन्धप्रसिद्धिश्चान्वयवेनाभ्युपगन्तव्यौ, अन्यथा यस्यामेव  
 प्रत्यक्षव्यक्तौ प्रामाण्येर्नागौणत्वादेरसौ सिद्धस्तस्यामेवागौणत्वादे-  
 स्तैस्तिष्ठेत्, न व्यक्त्यन्तरे तत्र तस्यासिद्धत्वात् । न चासौ साक-  
 ल्येनाध्यक्षात्तिष्ठेत्तस्य सन्निहितमात्रविषयकत्वात् । अथैकत्र ५  
 व्यक्तौ प्रत्यक्षेणार्थोः सम्बन्धं प्रतिपद्यन्त्राप्येवविधं प्रत्यक्षं  
 प्रमाणमित्यगौणत्वादिप्रामाण्ययोः सर्वोपसंहारेण प्रतिबन्धप्र-  
 सिद्धिरित्यभिधीयते, नै अविषये सर्वोपसंहारेण प्रतिपत्तेरयो-  
 गौत् । सर्वोपसंहारेण प्रतिपत्तिर्न नामान्तरेणोह एवोक्तः स्यात् ।  
 अग्निधूमादीनां चैवैवमविनाभावप्रतिपत्तिः किञ्च स्यात् ? येन १०  
 'अनुमानमप्रमाणमविनाभावस्याखिलपदार्थाक्षेपेर्णे प्रतिपत्तुमश-  
 क्यत्वात्' इत्युक्तं शोभेत ।

किञ्चानुमानमात्रस्याप्रामाण्यं प्रतिपादयितुमभिप्रेतम्, अती-  
 न्द्रियार्थानुमानस्य वा ? प्रथमपक्षे प्रतीतिसिद्धसकलव्यवहारो-  
 क्तेः । प्रतीयन्ते हि कुतश्चिदविनाभाविनोऽर्थोदयान्तरे प्रति- १५  
 नियतं प्रतियन्तो लौकिकाः, न तु सर्वस्मात्सर्वम् । द्वितीयपक्षे  
 तु कथमतीन्द्रियप्रत्यक्षेतरप्रमाणानामगौणत्वादिनां प्रामाण्येतर-  
 व्यवस्था ? कथं च परचेतसोऽतीन्द्रियस्य व्यापारव्याहारादिका-  
 र्यविशेषात् प्रतिपत्तिः ?, सैर्गोप्यैर्वैतादेस्तथाविधैस्त्य प्रतिषेधो-

१ साध्येनाज्ञाविनाभावम् । २ ज्ञापनेत् । ३ भूषणवर्द्धितोत्थितस्यापि भूष-  
 णिज्ञात्वाप्यप्रतिपत्तिः सादृश्यात्सम्बन्धत्वाविशेषात् । ४ साकल्येन । ५ परेण ।  
 ६ साकल्येन प्रतिबन्धसिद्धेरनभ्युपगमे । ७ अधिप्रत्यक्षविशेषे महानसाभिधाने ।  
 ८ सह । ९ अविसर्वादित्वात् । १० अविनाभावः । ११ प्रत्यक्षप्रामाण्यम् । १२ प्रकृत-  
 व्यक्तेरन्यव्यक्तौ । १३ षट्प्रत्यक्षविशेषे । १४ अविनाभावस्य । १५ अग्निप्रत्यक्ष-  
 विशेषे । १६ अगौणत्वादिप्रामाण्ययोः साध्यसाधनयोः । १७ अविनाभावम् ।  
 १८ वदादिसकलप्रत्यक्षे व्यञ्जवन्तरे । १९ अगौणमविसर्वादिकम् । २० यान्प्रत्यक्षं  
 सावत्सर्वमगौणमविसर्वादकमिति । २१ अविनाभावशक्तिः । २२ परेण । २३ इति चेन्न ।  
 २४ स्वीकारेण । २५ अविनाभावस्य । २६ किञ्च । २७ प्रत्यक्षप्रमाणप्रकारेण ।  
 २८ स्वीकारेण । २९ मवता । ३० तवेष्टम् । ३१ नाशः । ३२ ज्ञापने ।  
 ३३ दृग्प्रत्यक्षणात् । ३४ अग्निप्रत्यक्षम् । ३५ जानन्तः । ३६ प्रत्यक्षाणि चैतराणि  
 चानुमानादीनि प्रत्यक्षेतराणि अतीन्द्रियाणि च तानि प्रत्यक्षेतराणि चातीन्द्रियप्रत्यक्षे-  
 तराणि । तानि च तानि प्रमाणानि च । सन्तानान्तरवर्तिरत्वेन प्रत्यक्षानुमानयोरती-  
 न्द्रियत्वम् । ३७ अविसर्वादित्वमविसर्वादित्वेन । ३८ किञ्च । ३९ शिष्यादिज्ञानस्य ।  
 ४० कर्म वा । ४१ अदृष्ट । ४२ सर्वज्ञ । ४३ अतीन्द्रियस्य ।

ऽनुपलब्धेः स्यात् ? सोऽयं चार्वाकः “प्रमाणस्यागौणत्वादनुमाना-  
दर्थनिश्चयो दुर्लभः” [ ] इत्यान्वेषाणः कथमत एवाचक्षतेः  
प्रामाण्यादिकं प्रसाधयेत् ? प्रसाधयन्वा कथमतीन्द्रियेतरार्थविष-  
यमनुमानं न प्रमाणयेत् ? उक्तं च—

५ “प्रमाणेतरसामान्यैर्स्थितेरन्यधियो गतेः ।

प्रमाणान्तरसद्भावः प्रतिषेधाच्च कस्यचित् ॥” [ ] इति ।  
तन्नानुमानस्याप्रामाण्यम् ।

अस्तु नाम प्रत्यक्षानुमानमेदात्प्रमाणद्वैविध्यमित्यारेकापनोदा-  
र्थम्—

१० प्रत्यक्षेतरमेदात् ॥ २ ॥

इत्याह । न खलु प्रत्यक्षानुमानयोर्व्याख्येयगमादिप्रमाणमेदा-  
नामन्तर्भावः सम्भवति यतः सौगतोपकल्पितः प्रमाणसंख्या-  
नियमो व्यवतिष्ठेत् ।

प्रमेयद्वैविध्यात् प्रमाणस्य द्वैविध्यमेवेत्यन्यसम्भाव्यम्, तद्वै-  
१५ विध्यासिद्धेः, ‘एक एव हि सामान्यविशेषात्माः प्रमेयः प्रमाणस्य’  
इत्येते वक्ष्यते । किञ्चानुमानस्य सामान्यमात्रगोचरत्वे ततो  
विशेषेष्वप्रवृत्तिप्रसङ्गः । न खल्वन्यविषयं ज्ञानमन्यत्र प्रवर्तकम्  
अतिप्रसङ्गात् । अथ लिङ्गानुमितात्सामान्याद्विशेषप्रतिपत्तेर्लज्जा  
प्रवृत्तिः, नन्वेवं लिङ्गादेव तैः प्रतिपत्तिरस्तु किं परम्परया ?  
२० ननु विशेषेषु लिङ्गस्य प्रतिबन्धप्रतिपत्तेरभावात्कथमतस्तेषां प्रति-  
पत्तिः ? तदेतत्सामान्येऽपि समानम् । अथाप्रतिपन्नप्रतिबन्धमपि  
सामान्यं तेषां गमकम्, लिङ्गमन्येवंविधं तद्वक्तव्यं किञ्च स्यात् ?

१ प्रत्यक्षं प्रमाणमगौणत्वात्, अनुमानमप्रमाणं गौणत्वादित्याचक्षणाः । २ आदि-  
पदेनानुमानस्याप्रामाण्यम् । ३ इन्द्रियाण्यवतिक्रान्ताः स्वर्गादयः । ते च हतरे च  
प्रत्यक्षग्राह्या अग्राह्याः । अतीन्द्रियेते ते च ते अर्थाश्च ते विषया यस्मानुमानस्य तत् ।  
४ अप्रमाण । ५ त्व । ६ का । ७ परिधानात् । ८ परोक्ष । ९ स्वर्गादिः । १० आह  
सौगतः । ११ परोक्ष । १२ अपि तु न कुत्रोपि स्थितिं कुर्वीत् । १३ चतुर्थांशावे ।  
१४ (ततोऽनुमानादित्यर्थः) अक्षिपरमाणुलक्षणस्तल्लक्षणेण । १५ घटविषयं ज्ञानं घटे  
प्रवर्तकं स्यात् । १६ घूम । १७ अक्षिमत्त्वात् । १८ विशेषेषु पुरुषत्वस्य । १९ यथा  
लिङ्गात्सामान्यस्य प्रतिपत्तिरेवं तेषां विशेषाणाम् । २० प्रयोजनम् । २१ लिङ्गा-  
त्सामान्यप्रतिपत्तिः सामान्याद्विशेषप्रतिपत्तिरिति । २२ विशेषेषु सामान्यस्य प्रतिबन्ध-  
प्रतिपत्तेरभावात्कथं तत्स्वेषां प्रतिपत्तिरिति । २३ अप्रतिपन्नप्रतिबन्धत्वाविशेषात् ।

ज्ञामान्यस्यापि सामान्येनैव विशेषेषु प्रतिबन्धप्रतिपत्तावनवस्था-  
ज्ञामान्यादि सामान्यप्रतिपत्तौ विशेषेष्वप्रवृत्तौ पुनस्ततोऽप्यप-  
सामान्यप्रतिपत्तौ स एव दोषः । अतः सामान्यतदनुमानाना-  
नवस्थानादप्रवृत्तिविशेषेषु स्यात् ।

किञ्च व्यापकमेव गम्यम् अव्यभिचारस्य तत्रैव भावात् । १५  
व्यापकं च कारणं कार्यस्य, स्वभावो भावस्य । तच्च स्वलक्षण-  
मेव, अतस्तदेव गम्यं स्यात् न सामान्यमव्यापकत्वात् । अथ  
तदपि व्यापकम्, स्वलक्षणवद्वस्तुत्वम्, अन्यथा तस्मिन्निधिगतेपि  
प्रयोजनभावात्तत्रानुमानमप्रमाणमेव स्यात् ।

किञ्च, तत्प्रमेयद्वित्वं प्रमाणद्वित्वस्य ज्ञातम्, अज्ञातं वा ज्ञापकं १०  
भवेत् ? यद्यज्ञातमेव तत्तस्य ज्ञापकम्, तर्हि तस्य सर्वत्राविशे-  
षात्सर्वेषामविशेषेण तत्प्रतिपत्तिप्रसङ्गतो विवादो न स्यात् । ज्ञातं  
चेत्कुतस्तज्ज्ञातिः ? प्रत्यक्षात्, अनुमानाद्वा ? न तावत्प्रत्यक्षात् ;  
तेन सामान्याग्रहणात् । ग्रहणे वा तस्य सविकल्पकत्वप्रसङ्गो विषय-  
सङ्करश्च प्रमाणद्वित्वविरोधी भवेतोऽनुपप्येत । नाप्यनुमानतः, १५  
अत एव । स्वलक्षणपरानुसृत्या हि भवेतानुमानमभ्युपगतम्—

“भूतज्ञेदपरावृत्तवस्तुर्भावात्प्रवेदनात् ।

सामान्यविषयं प्रोक्तं लिङ्गं मेदाप्रतिष्ठिते ॥” [ ]  
इत्यभिधानात् । ज्ञेय्यां तु प्रमेयद्वित्वस्य ज्ञेयि(ऽ)स्य प्रमाणद्वित्व-  
ज्ञापकत्वायोगः, अन्यथा देवदत्तयज्ञदत्ताभ्यां प्रतिपत्ताद्धर्मद्वि- २०  
त्वात् तदन्यतरस्यादिद्वित्वप्रतिपत्तिः स्यात् । द्वैविध्यमिति हि  
द्विष्टो धर्मः । स च द्वयोर्ज्ञाने ज्ञायते नान्यथा । न ह्यज्ञातसह-

१ विशेषेष्वप्रवृत्तिरूपः । २ अविनाभावस्य । ३ व्यापके । ४ बहिः । ५ द्रुमस्य ।  
६ वृक्षत्वम् । ७ शिक्षापात्रत्वम् । ८ साध्यम् । ९ लिङ्गम् । १० सामान्यस्य ।  
११ अवस्तुत्वे । १२ विशेषेषु प्रवृत्तिरक्षणम् । १३ सामान्यविशेष्येदेन । १४ अज्ञा-  
तप्रमेयद्वित्वस्य । १५ देवे । १६ नृणां । १७ ज्ञान्या वा । १८ अनुमानसा-  
भाव इत्यर्थः । १९ सौगतस्य । २० अत एवेत्यस्य हेतोरसिद्धत्वं परिहरति ।  
२१ स्वलक्षणगोचरत्वेन । २२ सौगतेन । २३ अनधिक्यम् । २४ अक्षिमात्र ।  
२५ अन्यापोह । २६ अन्यापोह । २७ स्वलक्षणस्य । २८ अव्यवस्थितेः । कुतोऽ-  
व्यवस्थितिः ? मेदानामानन्त्येन ग्रहणासम्भवात् । २९ प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् । असौ  
चतुर्थो विकल्पः । ३० परिश्राने सति अस्य प्रमेयद्वित्वस्य । ३१ प्रमेयद्वित्वस्य प्रमा-  
णद्वित्वज्ञापकत्वं चेत् । ३२ भिन्नदेवे । ३३ देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य वा । ३४ प्रमेय-  
द्वित्वस्य प्रमाणद्वित्वज्ञापकत्वायोगं दर्शयति । ३५ स्वलक्षणसामान्ययोः प्रमेययोः ।  
३६ सति । ३७ पुरुषेण ।

विन्ध्यस्य तद्गतद्वित्वप्रतिपत्तिरस्ति । परस्पराभ्यानुषङ्गश्च-सिद्धे हि प्रमाणद्वित्वेऽतः प्रमेयद्वित्वसिद्धिः, तस्याश्च प्रमाणद्वित्वसिद्धिरिति । अथान्यतः प्रमाणद्वित्वस्य सिद्धिः, व्यर्थस्तर्हि प्रमेयद्वित्वोपन्यासः । तदप्यन्यदेकं वा स्यात्, अनेकं वा ? एकं चेद्विषयसङ्करः ।  
 ५ प्रत्यक्षं हि स्वलक्षणाकारमनुमानं तु सामान्याकारम्, तद्वयस्यैकज्ञानवेद्यत्वे सुप्रसिद्धो विषयसङ्करः । अथानेकज्ञानवेद्यम्, तदप्यपरेणानेकज्ञानेन वेद्यं तदप्यपरेणेत्यनवस्था ।

ननु स्वलक्षणाकारंता प्रत्यक्षेणात्मभूतैव वेद्यते सामान्याकारंता त्वनुमानेन, तयोश्च स्वसंवेदनप्रत्यक्षसिद्धत्वात् प्रत्यक्षसिद्धमेव  
 १० प्रमाणद्वित्वं प्रमेयद्वित्वं च, केवलम् र्यस्तथा प्रतिपद्यमानोपि न व्यवहरति स प्रसिद्धेन प्रमेयद्वैविध्येन प्रमाणद्वैविध्यव्यवहारे प्रवर्त्यते, तदप्यसारम्, ज्ञानादर्थान्तरस्यानर्थान्तरस्य वा केवलस्य सामान्यस्य विशेषस्य वा क्वचिज्ज्ञाने प्रतिभासाभावात्, उभयैः त्वम एवान्तर्बहिर्वा वस्तुनोऽभ्यक्षादिप्रत्यये प्रतिभासमानत्वात् ।  
 १५ प्रयोगः-असति बाधके यद्यथा प्रतिभासते तत्तथैवाभ्युपगन्तव्यम् यथा नीलं नीलतया, प्रतिभासते चाभ्यक्षादि प्रमाणं सामान्यविशेषात्मार्थविषयतयेति ।

ननु मा भूत्प्रमेयमेदः, तथाप्यागमादीनां नानुमानादर्थान्तरत्वंम् । शब्दादिकं हि परोक्षार्थं सम्बद्धम्, असम्बद्धं वा गैम-  
 २० येत् ? न तावदसम्बद्धम्, गवादेरप्यभ्यादिप्रतिभासप्रसङ्गात् । सम्बद्धं चेत्, तल्लिङ्गमेव, तज्जनितं च ज्ञानमनुमानमेव । इत्यप्यसाम्प्रतम्, प्रत्यक्षस्याप्येवमनुमानत्वप्रसङ्गात्-तदपि हि स्वविषये

१ नरस्य । २ सद्यविन्ध्यपर्वतगत । ३ इतरेतराभवपरिहारार्थं परः प्राह । ४ ज्ञानात् । ५ किञ्च । ६ तयोः । ७ ज्ञानम् । ८ युगपद्भयोः प्रतिपत्तिविषयसङ्करः । ९ विषयसङ्करः कथमित्युक्ते सत्याह । १० तर्हीति शेषः । ११ अनवस्थां परिहरति परः । १२ प्रत्यक्षस्य । १३ स्वरूपगतैव । १४ अनुमानस्य । १५ वेद्यते । १६ सामान्यं विशेषं वा । १७ इति । १८ नरः (स्त्रियः) । १९ स्वसंवेदनप्रत्यक्षेण प्रमेयद्वित्वं प्रमाणद्वित्वं च । २० प्रमाणं द्विविधं प्रमेयद्वैविष्यादित्वमनुमानं प्रदर्शय । २१ आचार्येण । २२ अर्थगतस्य । २३ ज्ञानगतस्य । २४ सामान्यविशेषात्मनः । २५ प्रत्यक्षादि प्रमाणं यमि सामान्यविशेषार्थविषयत्वेनाभ्युपगन्तव्यं शक्यतीति साध्यो यमः । असति बाधके तथा प्रतिभासमानत्वाविति हेतुः । २६ सम्बद्धार्थविषयत्वात् । २७ आदिशब्देन सादृस्यापेक्षानुत्पापकार्यादि । २८ कर्तुं । २९ परोक्षार्थे । ३० परोक्षार्थम् । ३१ गवादिशब्दात् । ३२ असम्बद्धत्वाविशेषात् । ३३ आगमादीनामनुमानत्वप्रकारेण ।

सम्बद्धं सत्तस्य गमकम् नान्यथा, सर्वस्य प्रमातुः सर्वार्थप्रत्यक्ष-  
त्वप्रसङ्गात् । अथ विषयसम्बद्धत्वाविशेषेपि प्रत्यक्षानुमानयोः  
सामग्रीभेदात्प्रमाणान्तरत्वम्; शाब्दादीनामप्येवं प्रमाणान्तरत्वं  
किञ्च स्यात् ? तथाहि—शाब्दं तावच्छब्दसामग्रीतः प्रभवति—

“शाब्दादुदेति यज्ज्ञानमप्रत्यक्षेपि वस्तुनि ।

शाब्दं तदिति मन्यन्ते प्रमाणान्तरत्वादिनः ॥” [ ] ५

इत्यभिधानात् । न चास्य प्रत्यक्षता, सविकल्पकास्पष्टसमाव-  
त्वात् । नाप्यनुमानता; त्रिरूपलङ्घनाप्रभवत्वादानुमानगोचरार्था-  
विषयत्वाच्च । तदुक्तम्—

“तस्मादननुमानत्वं शाब्दे प्रत्यक्षवद्भवेत् ।

त्रैरूप्यरहितत्वेन तादृग्विषयवर्जनात् ॥ १ ॥” १०

[ मी० खो० शब्दपरि० खो० १८ ]

यादृशो हि धूमादिलिङ्गज्ञस्यानुमानस्य विषयो धर्मविशिष्टो  
धर्मो तौदृशा विषयेण रहितं शाब्दं सुप्रसिद्धं त्रैरूप्यरहितं च ।  
तथा हि—न शब्दस्य पक्षधर्मत्वम्; धर्मिणोऽयोगात् । न चार्थस्य १५  
धर्मित्वम्; तेन तस्य सम्बन्धोसिद्धेः । न चाप्रतीतेर्ये तद्धर्मतयी  
शब्दस्य प्रतीतिः सम्भविनी । प्रतीते चार्थे न तद्धर्मतया प्रति-  
पत्तिः शब्दस्योपयोगिनी, तामन्तरेणाप्यर्थस्य प्रागेव प्रतीतेः ।  
अथ शाब्दे धर्मो, अर्थवानिति साध्यो धर्मः, शब्द एव च  
हेतुः, न; प्रतिज्ञार्थकदेशत्वप्राप्तेः । अथ शब्दत्वं हेतुरिति न प्रति- २०  
ज्ञार्थकदेशत्वम्; न; शब्दत्वस्यागमैकत्वात्, गोशब्दत्वं च  
निपेत्यमानत्वेनासिद्धत्वात् । उक्तं च—

“सामान्यविषयत्वं हि पदस्य स्थापयिष्यते ।

१ अन्यथा चेत् । २ शब्दादीनि प्रमाणान्तराणि—सामग्रीभेदात् प्रत्यक्षादिवत् ।  
३ सामग्रीभेदप्रकारेण । ४ भेदस्तीति ज्ञानम् । आगमज्ञानमित्यर्थः (हेतुन्तरमिदम्) ।  
५ ज्ञानादयः । ६ पक्षधर्मत्वादि । ७ शब्दादुत्पन्नत्वात् । ८ ईप् । ९ अनुमेय ।  
१० च । ११ अभिमत्त । १२ पूर्वतः । १३ आ । १४ गोलक्षणस्य ।  
१५ अविवानाव । १६ अर्थधर्मत्वेन । १७ फलवती । १८ इति चेन्न । १९ पक्ष-  
वचनं प्रतिष्ठा तस्या अर्थः पक्षस्तस्यैकदेशो धर्मो धर्मश्च । २० गोशब्दो जगति  
निष्ठो व्यापकत्वेनैक पदेति गोशब्दत्वसामान्यायावः हेतोः । २१ इति चेन्नैकत्वः ।  
२२ गोशब्दवदशब्देपि शब्दत्वस्य आपादगमकत्वम् । २३ तसिद्धिपेयोपि गोशब्द-  
स्थातीतादेरेकत्वात्, नैकत्वस्य सामान्यमिति व्यापकत्वेनैकत्वाच्च गोशब्दत्वसामान्या-  
भावः । २४ अर्थस्य । २५ अर्थस्य साध्यस्य आपकत्वम् । २६ गोत्व । २७ गवा-  
देरागमस्य । २८ सप्रत्ययापेक्षयाग्रे ।



धर्मो धर्मविशिष्टश्च लिङ्गीत्येतच्च साधितम् ॥

नै तावदनुमानं हि यावत्तद्विषयं न तैत् १”

[ मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ५५-५६ ]

“अथ शब्दोऽर्थवत्त्वेन पक्षः कस्माच्च कल्प्यते ॥

५ प्रतिहार्यैकदेशो हि हेतुस्तत्र प्रसज्यते ॥”

[ मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६२-६३ ]

“शब्दत्वं गमकं नात्र गोशब्दत्वं निषेत्स्यते ॥

व्यक्तिरेव विशेष्यातो हेतुश्चैका प्रसज्यते ॥”

[ मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६४ ]

- १० न चार्थान्वयोर्योऽस्ति व्यापारेण हि सङ्गावेन सत्तयेति यावत् ।  
विद्यमानस्य ह्यन्वेतृत्वं, नाविद्यमानस्य । ‘यत्र हि धूमस्तत्रावश्यं  
वह्निरस्ति’ इत्यस्तित्वेन प्रसिद्धोऽन्वेतो भवति धूमस्य । न त्वेवं  
शब्दस्यार्थेनान्वयोऽस्ति, न हि तत्र शब्दाकान्ते देशोऽर्थस्य  
सङ्गावः । न खलु यत्र पिण्डसर्जरादिशब्दः श्रूयते तत्र पिण्ड-  
१५ सर्जराद्यर्थोऽप्यस्ति । नापि शब्दकालोऽर्थोऽवश्यं सम्भवति; राव-  
णशङ्खचक्रवर्त्यादिशब्दा हि वर्तमानास्तदर्थस्तु भूतो भविष्यश्च,  
इति कुतोऽर्थः शब्दस्यान्वेतृत्वम् ? नित्यविभुत्वाभ्याम् तत्त्वे  
चातिप्रसङ्गः । तदुक्तम्—

“अन्वयो न च शब्दस्य प्रमेयेण निरूप्यते ।

२० व्यापारेण हि सर्वेषामन्वेतृत्वं प्रतीयते ॥ १ ॥

यत्र धूमोऽस्ति तत्राग्निरस्तित्वेनान्वयः स्फुटः ।

न त्वेवं यत्र शब्दोऽस्ति तत्रार्थोऽस्तीति निश्चयः ॥ २ ॥

१ अनुमानविषयः । २ स्वग्रन्थापेक्षया । ३ समसस्य (शब्दानुमानयोः) सम-  
(सामान्यविशेष)विषयत्वं यद्यपि तथापि शब्दस्यानुमानरूपता मविष्यतीत्युक्ते सत्याह ।  
४ धर्मविशिष्टधर्मविषयम् । ५ शब्दम् । ६ नैकेन न समर्थ्यते । ७ गोशब्दस्य  
नित्यविभुत्वाविशेषाभावात् । ८ स्वग्रन्थापेक्षया । ९ शब्दस्तत्त्वज्ञानम् । १० धर्मिणी ।  
११ शब्दत्वं न गमकं गोशब्दत्वत्प्रतिषेधो वा यतः । १२ तद्वत् प्रतिहार्यैकदेशासिद्धो  
हेतुरित्यभिप्रायः । १३ अर्थेन सहामिनायावः । १४ शब्दस्य । १५ शब्दस्य ।  
१६ व्यापारेणेति पदस्य सङ्गावेनेति सत्तयेति वा पर्यायशब्दौ । १७ व्यापकत्वम-  
न्वयश्च । १८ व्यापकः । १९ धूमाग्निप्रकारेण । २० इति देशान्वयाभावः ।  
२१ कालान्वयाभावः । २२ अन्वयो व्यापकत्वं वा । २३ गोशब्दादर्थप्रतीतिः  
स्यात् । २४ शब्दस्य सर्वेष्वर्थेष्वनुगमो यतः । २५ सम्बन्धः । २६ विद्वद्भिः ।  
२७ कुतस्तथाहि । २८ सङ्गावेन सत्तया वा । २९ अर्थानाम् । ३० धूमाग्निप्रकारेण ।

न तावद्यत्र देशेऽसौ न तत्काले च गम्यते ।  
भवेन्नित्यविभुत्वाच्चेत्सर्वार्थेष्वपि तैत्समम् ॥ ३ ॥  
तेन सर्वत्र दृष्टत्वाद्ध्यतिरेकस्य चार्गतेः ।  
सर्वशब्दैरशेषार्थप्रतिपत्तिः प्रसज्यते ॥ ४ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८५-८८ ] ५

अन्वयाभावे च व्यतिरेकस्याप्यभावः—

“अन्वयेन विना तस्माद्ध्यतिरेकः कथं भवेत् ।” [ ]

इत्यभिधानात् । ततः शाब्दं प्रमाणान्तरमेव ।

उपमानं च । अस्य हि लक्षणम्—

“दृश्यमानाद्यदर्शयन् विज्ञानमुपजायते ।

सादृश्योपाधिस्तज्ज्ञैरुपमानमिति स्मृतम् ॥ १ ॥” [ ] १०

येन हि प्रतिपन्ना गौरुपलब्धो न गवयो, न चातिदेशो वाक्यं  
‘गौरिव गवयः’ इति श्रुतं तस्यारण्ये पर्यटतो गवयदर्शने प्रथमे  
उपजाते परोक्षे गवि सादृश्यज्ञानं यदुत्पद्यते ‘अनेन सदृशो गौः’  
इति, तस्य विषयः सादृश्यविशिष्टः परोक्षो गौस्तद्विशिष्टं वा १५  
सादृश्यम्, तच्च वस्तुभूतमेव । यदैह—

“सादृश्यस्य च वस्तुत्वं न शक्यमपवाचितुम् ।

भूयोवयवसामान्ययोगो जात्यन्तरस्य तत् ॥”

[ मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० १८ ] इति ।

अस्य चानधिगतार्थाधिगन्तृतया प्रामाण्यम् । गवयविषयेण २०  
हि प्रत्यक्षेण गवयो विषयीकृतो, न त्वसन्नितिपि सादृश्य-  
विशिष्टो गौस्तद्विशिष्टं वा सादृश्यम् । यच्च पूर्वं ‘गौः’ इति  
प्रत्यक्षमभूत्तस्यापि गवयोत्यन्तमप्रत्यक्ष एव । इति कथं गवि  
तद्विषयं तैसादृश्यज्ञानम् ? उक्तं च—

१ तत्र प्रदेशेऽर्थास्तीति निश्चयो नास्तीत्यर्थः । २ अर्थः । ३ अनेनैतत्त्वम् ।  
४ कारणेन । ५ अर्थेषु । ६ शब्दस्य । ७ अप्रतिपत्तेः । ८ अन्वयाविनाभावित्वं  
व्यतिरेकस्य यतः । ९ शब्दावयवोरन्वयव्यतिरेकौ न स्तो यतः । १० अनुमानात् ।  
११ आदौ प्रतीतिः । १२ गवयात् । १३ गवि । १४ उपाधिविशेषणम् । १५ कारिका  
भावयति । १६ आमादौ । १७ अन्यत्र प्रसिद्धस्यान्यत्रारोपणमतिदेशः । १८ गोप्र-  
वययोः । १९ उदुपमानम् । २० गवयस्य । २१ सर्वमाणो । २२ सर्वमाणयो-  
र्विशिष्टम् । २३ वसन्तारणात् । २४ निराकर्तुम् । २५ भूयसा बहुनामवयवानां  
समानता सामान्यं तेन योगः । २६ एकस्या गवयजातेरन्या गोनातिर्भावान्तरम् ।  
एकस्या गोजातेरन्या गवयजातिर्भावान्तरम्, तस्य । २७ उपमानस्य । २८ गवयस्य ।  
२९ गोमल्लापेक्षम् । ३० ता । ३१ प्रत्यक्षात् ।

“तस्माद्यत्स्यते तत्स्यात्सादृश्येन विशेषितम् ।

प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितम् ॥ १ ॥

प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि सादृश्ये गवि च स्मृते ।

विशिष्टस्यान्यतोऽसिद्धेरुपमानप्रमाणता ॥ २ ॥

५ प्रत्यक्षेऽपि यथा देशे स्मर्यमाणे च पावके ।

विशिष्टविषयत्वेन नानुमानाप्रमाणता ॥ ३ ॥”

[ मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ३७-३९ ] इति ।

न चेद् प्रत्यक्षम् ; परोक्षविषयत्वात्सविकल्परूपकत्वाच्च । नाप्यनु-  
मानम् । हेत्वभावात् । तथा हि-गोगतम्, गवयगतं वा सादृश्य-  
१० मंत्र हेतुः स्यात् ? तत्र न गोगतम् ; तस्य पक्षधर्मत्वेनाग्रहणात् ।  
यदा हि सादृश्यमात्रं धर्मि, ‘स्मर्यमाणेन गवा विशिष्टम्’ इति  
साध्यम्, यदा च सादृश्यो गौः, तदा न तद्वर्तमानतया ग्रहणमस्ति । अतः  
एव न गवयगतम् । गोगतसादृश्यस्य ‘गौर्वा’ हेतुत्वे प्रतिज्ञार्थक-  
देशत्वप्रसङ्गश्च । न च सादृश्यमत्रैव प्रामाण्येनैव प्रतिबद्धं प्रतिप-  
१५ क्षम् । न चान्वयप्रतिपत्तिमन्तरेण हेतोः साध्यप्रतिपादकत्वमुपल-  
ब्धम् । ततो गौर्वात्तदर्थेनैव गवयं पश्यतः सादृश्येन विशिष्टे गवि  
पक्षधर्मत्वग्रहणं सैम्बन्धानुसरणं चान्तरेण प्रतिपत्तिरुत्पद्य-  
माना नानुमानेऽन्तर्भवतीति प्रमाणान्तरमुपमानम् । उक्तं च—

१ गवयात् । २ गोलक्षणं वस्तु । ३ स्मर्यमाणगवाम्वितम् । ४ उपमानं गृहीत-  
व्यादिवाद्यप्रमाणं सादित्युक्ते आह । ५ गवयगते । ६ सादृश्यविशिष्टस्य । ७ सादृश्य-  
विशिष्टो गौस्तद्विशिष्टं वा सादृश्यमिति विशिष्टविषयः । ८ सादृश्यविशिष्टस्य गोल-  
द्विशिष्टस्य वा सादृश्यस्य । ९ सरणप्रत्यक्षान्वात् । १० असिद्धये दृष्टान्तमाह ।  
११ पर्वतादौ । १२ देशादित्यतत्वेन । १३ उपमानम् । १४ उपमानस्यानुमानत्वे  
साध्ये । १५ कः पक्षधर्मत्वेनाग्रहणं वा कथं सादृश्येत्येतदाह । १६ सामान्यम् ।  
१७ गोगतसदृशत्वादिति हेतुः । १८ गवयसदृशो गौरिति वा पक्षः । १९ गवयगत-  
सदृशत्वादिति हेतुः । २० गोगतसादृश्यस्य । २१ पक्षः । २२ हेतूपन्यासात्पूर्वं  
सादृश्यस्याप्रसिद्धत्वात् । २३ पक्षधर्मत्वेनाग्रहणादेव । २४ हेतुः । २५ सादृश्यम् ।  
२६ यद्यपि पक्षधर्मत्वेनाग्रहणं गोगतसादृश्यस्य तथापि हेतुत्वेनोपन्यासः क्रियते  
इत्युक्ते आह । २७ गौर्गवयेन सदृशः गोगतसादृश्यत्वात् । गौर्गवयेन सदृशः गौर्वतः ।  
२८ उक्तजुक्त्या पक्षधर्मत्वं नास्ति चेन्मा भूदन्वयो भविष्यतीत्युक्ते आह । २९ हेतुः ।  
३० उपमानस्यानुमानत्वे साध्ये । ३१ हेतूपन्यासात्पूर्वम् । ३२ सादृश्यविशिष्टो  
गौस्तद्विशिष्टं वा सादृश्यमिति विशिष्टविषयेण । ३३ अनिनाश्रुतम् । ३४ तथा  
प्रतीतिरभावात् । ३५ संपक्षे सत्त्व । ३६ सादृश्यस्य पक्षधर्मत्वेनाग्रहणमन्वयप्रतिपत्त्य-  
भावो वा यतः । ३७ नसः । ३८ सति । ३९ अन्वयः ।

“न चैतस्यानुमानत्वं पक्षधर्माद्यसम्भवात् ।

प्रोक्षप्रमेयस्य सादृश्यं धर्मित्वेन न गृह्यते ॥ १ ॥

गवये गृह्यमाणं च न गवार्थानुमापकम् ।

प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वाद्भोगतस्य न लिङ्गता ॥ २ ॥

गवयश्चाप्यसम्बन्धाच्च गोर्लिङ्गत्वमृच्छति ।

सादृश्यं न च सर्वेण पूर्वं दृष्टं तदन्वयि ॥ ३ ॥

यैकस्मिन्नपि दृष्टेयं द्वितीयं पश्यतो वने ।

सादृश्येन सहैवास्मिन्तदैवोत्पद्यते मतिः ॥ ४ ॥”

[ मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४३-४६ ] इति ।

तैत्थार्थापत्तिरपि प्रमाणान्तरम् । तल्लक्षणं हि—“अर्थापत्तिरपि १०  
द्वैष्टः श्रुतो वार्थान्यथा नोपपद्यते इत्यद्वैष्टार्थकल्पना” । [ शाबरमा०  
१।१।५ ] कुमारिलोप्येतदेव भाष्यकारवचो व्याचष्टे ।

“प्रमाणषड्विज्ञातो यैत्रार्थोऽनन्यथा भैवर्त्त ।

अैदृष्टं कल्पयेदैर्न्य सार्थापत्तिरुदाहृता ॥”

[ मी० श्लो० अर्था० परि० श्लो० १ ] १५

प्रत्यक्षादिभिः बह्विः प्रमाणैः प्रसिद्धो योर्थः स येन विना नोप-  
पद्यते तैत्थार्थस्य कल्पनमर्थापत्तिः । तैत्र प्रत्यक्षपूर्विकार्थापत्तिर्य-  
थाग्नेः प्रत्यक्षेण प्रतिपन्नाद्वाहहनशक्तियोगोऽर्थोपेत्या प्रकल्प्यते ।  
न हि शक्तिः प्रत्यक्षेण परिच्छेद्या; अतीन्द्रियत्वात् । नैप्यनुमानेन;  
अस्य प्रत्यक्षावगतप्रतिबन्धलिङ्गप्रभवत्वेनाभ्युपगमात्, अर्थाप- २०  
त्तिगोचरस्य चार्थस्यै कदाचिदप्यभ्यक्षागोचरत्वात् । अनुमानपूर्-  
विका त्वर्थापत्तिर्यथा सूर्ये गमनात्तच्छक्तियोगिता । अत्र हि

१ आदिशब्देन सपक्षे सत्त्वम् । २ अनुमानकात्पूर्वम् । ३ हेतुः । ४ पक्ष-  
धर्मित्वेन सादृश्यम् । ५ तर्हि गवयो हेतुर्भविष्यतीत्युक्ते जाह । ६ गवार्थेन ।  
७ पक्षधर्मत्वं नास्ति चेन्मा भूदन्वयो भविष्यतीत्युक्ते जाह । ८ पुंसा । ९ हेतूपन्यासा-  
त्पूर्वम् । १० प्रमेयेण । ११ उक्तार्थोपसहारमाह । १२ गोलक्षणे । १३ गवयम् ।  
१४ पक्षधर्मत्वग्रहणं विना साध्यसाधनसम्बन्धस्मरणं च विना कोवो गवयदशज-  
काल एव । १५ शाब्दोपमाने यथा प्रमाणान्तरे भवतः । १६ सामर्थ्याभावात् ।  
१७ उच्यते । १८ पुनः । १९ प्रत्यक्षादिप्रमाणमात्रगम्यः । २० आगमे ।  
२१ अदृष्टार्थं विना । २२ उपरि वृष्टिलक्षणम् । २३ आपादनम् । २४ पुद्गलः ।  
२५ नदीपूरादिः । २६ अदृष्टार्थे सत्त्वेन भवमित्यर्थः । २७ उपरि वृष्टिलक्षणम् ।  
२८ पूरादन्यम् । २९ कारिका आवयति । ३० वृष्टेः । ३१ अर्थापत्तिमु मध्ये ।  
३२ स्फोटत्वात् । ३३ अग्निदैहनशक्तियुक्तः दाहान्यथानुपपत्तेरिति । ३४ आत्मादि-  
वत् । ३५ मा । ३६ शक्तिलक्षणस्य ।

देशादेशान्तरप्राप्त्या सूर्ये गमनमनुमीयते ततस्तच्छक्तिसम्बन्ध इति । श्रुतार्थापत्तिर्यथा—‘पीनो देवदत्तो दिवा न मुक्ते’ इति वाक्य-  
श्रवणाद्वात्रिभोजनप्रतिपत्तिः । उपमानार्थापत्तिर्यथा—गवयोपमि-  
ताया गोस्तज्ज्ञानप्राप्त्यशक्तिः । अर्थापत्तिपूर्विकाऽर्थापत्तिर्यथा—  
५ शब्देऽर्थापत्तिप्रबोधितावाचकसामर्थ्यादभिधानसिद्ध्यर्थं तन्नित्य-  
त्वज्ञानम् । शब्दाच्चर्यः प्रतीयते, ततो वाचकसामर्थ्यं, ततोऽपि  
तन्नित्यत्वमिति । अभावपूर्विकाऽर्थापत्तिर्यथा—प्रमाणाभावप्र-  
मितचैत्राभाविशेषितोद्देहाच्चैत्रवहिर्भावसिद्धिः, ‘जीवश्चैत्रोऽन्य-  
जास्ति गृहे अभावात्’ इति । तदुक्तम्—

१० “तत्र प्रत्यक्षतो ज्ञाताहाहाहहनशकता ।

वह्नेरनुमितात्सूर्ये यानात्तच्छक्तियोगिता ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३ ]

“पीनो दिवा न मुक्ते चेत्येवमादिवचःश्रुतौ ।

रात्रिभोजनविज्ञानं श्रुतार्थापत्तिरुच्यते ॥ २ ॥”

१५

[ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ५१ ]

“गवयोपमिताया गोस्तज्ज्ञानप्राप्त्यशकता ।

अभिधानप्रसिद्ध्यर्थमर्थापत्त्यावबोधितात् ॥ १ ॥

शब्दे वाचकसामर्थ्यात्तन्नित्यत्वप्रमेयता ।

अभिधानार्थ्यथाऽसिद्धेरिति वाचकशकता ॥ २ ॥

२०

अर्थापत्त्यावगम्यैव तदन्यत्ववर्गेतेः पुनः ।

अर्थापत्त्यन्तरेणैव शब्दनित्यत्वनिश्चयः ॥ ३ ॥

१ आदित्यो गमनशक्तियुक्तो गतिमत्त्वान्यथानुपपत्तेः । यतिमानादित्यो देशा-  
देशान्तरप्राप्तेः, वाणादिवत् । २ सूर्यो गमनशक्तियुक्तो गतिमत्त्वान्यथानुपपत्तेः ।  
३ आगम । ४ देवदत्तो रात्रौ मुक्ते पीनत्वे सति दिवाभोजनाभावश्रवणान्यथानुप-  
पत्तेः । ५ गौरुपमानज्ञानप्राप्त्यशक्तियुक्ता उपमेयत्वान्यथानुपपत्तेः । ६ उच्चारण ।  
७ शब्दो नित्यो वाचकसामर्थ्यान्यथा ( नित्यत्वं विना )ऽनुपपत्तेः । अस्मात्पत्तिपूर्वकत्वं  
निरूप्यते । शब्दो वाचकशक्तियुक्तः ततोऽपि प्रतीत्यन्यथा ( वाचकशक्तिं विना )-  
ऽनुपपत्तेः । ८ शब्दः । ९ अस्यावप्रमाण । १० ता । ११ या । १२ विशेषण ।  
१३ अर्थापत्तिषु मध्ये । १४ सत्त्वम् । १५ उपमान । -१६ वसः । १७ अभि-  
धानसिद्ध्यर्थं तन्नित्यत्वप्रमेयता स्यात् । १८ नित्यत्वं विना । १९ वाचकशक्तता ।  
अर्थापत्त्यवगम्या न मन्विष्यति अतस्त्वार्थापत्तिपूर्विकार्थापत्तिः कर्त्तव्यादित्युक्ते जाह ।  
२० अतीन्द्रियत्वात् । २१ शकतायाः सकाशादन्यत्वं भिन्नत्वं नित्यत्वम् । २२ परि-  
ज्ञात्वात् । २३ यथैवार्थापत्त्या वाचकशक्ततावगम्यते तथैव शब्दनित्यत्वं प्रतीयते इति  
कृतार्थापत्तिपूर्विकार्थापत्तेर्वैयर्थ्यमित्युक्ते जाह ।

दर्शनस्य परार्थत्वादित्यस्मिन्नभिधास्यते ।

प्रमाणाभावनिर्णीतचैत्रामावविशेषितात् ॥ ४ ॥

गेहाच्चैत्रबहिर्भावसिद्धिर्या त्विह दर्शिता ।

तामभावोत्थितामन्यामर्यापत्तिमुदाहरेत् ॥ ५ ॥”

[ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ४-९ ] इत्यादि ।

तथाऽभावप्रमाणमपि प्रमाणान्तरम् । तद्धि निषेध्याधारवस्तु-  
ग्रहणादिसामग्रीतस्मिन्प्रकारमुत्पन्नं सत् कचित्प्रदेशादौ घटादीना-  
मभावं विभावयति । उक्तं च—

“गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनम् ।

मानसं नास्तिताक्षानं जायतेऽक्षौनपेक्षया ॥

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० २७ ]

“प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते ।

सात्मेनोऽपरिणामो वा विज्ञानं वान्येवस्तुनि ॥”

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ११ ]

“प्रमाणपञ्चकं यत्र वैस्तुरूपे न जायते ।

वैस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणाता ॥”

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० १ ] इति ।

न चाध्यक्षेणाभावोऽवसीयते; तस्याभावविषयत्वविरोधात्,  
भावांशेनैवेन्द्रियाणां सम्बन्धात् । तदुक्तम्—

“न तौचदिन्द्रियेणैषा नास्तीत्युत्पाद्यते मतिः ।

भावांशेनैव सम्बन्धो योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि ॥”

[ मी० श्लो० अभाव० १८ ] इति ।

नाप्यनुमानेनैसौ साध्यते; हेतोरभावात् । न च विपर्ययभूतस्या-

१ अभिधानान्ययासिद्धिरिति वक्तुं तत्समर्धनीयमित्युक्ते आह । २ उच्चारणस्य ।  
३ शिष्यार्थत्वात् । ४ स्वग्रन्थापेक्षयात्रे वक्ष्यमाणग्रन्थे । ५ अर्थापत्तिविरूपण-  
प्रसावे । ६ प्रमाणपञ्चकाद्रिज्ञानम् । ७ भाष्यकारः । ८ घटादि । ९ शुद्धभूतत् ।  
१० निषेध्यस्वरणमुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य घटादेरनुपलब्धस्य । ११ अभावप्रमाणस्य-  
ग्रीतः । १२ त्रिप्रकारमित्येतत्तर्दं प्रत्यक्षेलादिनाऽऽह । १३ भूतत्वे । १४ आदि-  
पदेन काले । १५ नास्तेन्द्रियानपेक्षया । १६ स्वरूपस्य । १७ प्रमाणपञ्चकरूप-  
त्वेनाभावप्रमाणस्य । १८ प्रसज्यप्रतिषेधोत्र । १९ जीवस्य प्रमाणपञ्चकरूपतया ।  
२० स्वरूपस्य । २१ पूर्वदासोत्र । २२ युति । घटांशलक्षणे । २३ धदाशक्ति-  
त्वावबोधार्थम् । २४ अनुमानापेक्षया । २५ कारणादेः प्रागभावादिना विभागः  
कृतः । अभाव इति वा । २६ पदार्थस्य ।

भावस्याभावाद्भावप्रमाणवैयर्थ्यम्; कारणोदिविभागतो व्य-  
हारस्य लोकप्रतीतस्याभावप्रसङ्गात् । उक्तं च—

“न च स्याद्व्यवहारोऽयं कारणादिविभागतः ।

प्रागभावादिभेदेन नाभावो यदि भिद्यते ॥ १ ॥”

५

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ७ ]

प्रागभावादिभेदान्ध्यानुपपत्तेश्चास्यार्थापत्त्या वस्तुरूपतावर-  
यते । उक्तं च—

“न चावस्तुन र्हेते स्युर्भेदास्तेनास्य वस्तुता ।

कार्यादीनामभावः को भावो यः कारणादिनः(ना) ॥ १ ॥”

१०

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ८ ]

अनुमानावसेया चास्य वस्तुता । यदाह—

“यैद्वानुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिप्राप्तौ यतस्त्वर्थम् ।

तस्माद्भावादिवस्तु प्रमेयत्वाच्च गृह्यताम् ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९ ]

१५ चतुःप्रकारश्चाभावो व्यवस्थितः—प्राक्प्रध्वंसेतरतराऽत्यन्ता  
भावभेदात् । उक्तं च—

“वस्तुऽसङ्करसिद्धिश्च तत्प्रामाण्यं समाधिता ।

क्षीरे दध्यादि यन्नास्ति प्रागभावः स उच्यते ॥ १ ॥

नास्तित्वा पयसो दग्निं प्रध्वंसाभावलक्षणम् ।

२०

गवि योऽध्वाद्यभावस्तु सोऽन्योन्याभाव उच्यते ॥ २ ॥

शिरसोऽवयवा निम्ना बुद्धिकाठिन्यवर्जिताः ।

शशशृङ्गादिरूपेण सोऽत्यन्ताभाव उच्यते ॥ ३ ॥”

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० २-४ ]

यदि चैतेषां व्यवस्थापकमभावाख्यं प्रमाणं न स्यात्तदा प्रति

२५ नियतवस्तुव्यवस्थाविलोपः स्यात् । तदुक्तम्—

“क्षीरे दधि भवेदेवं दग्निं क्षीरं घटे पटः ।

शशो शृङ्गं पृथिव्यादौ चैतन्यं मूर्तितात्मनि ॥

१ अन्यथा । २ क्षीर । ३ कार्यं दधि । ४ प्रागभावादिकृतः कारणादि-  
विभागः । ५ लोकप्रतीतः । ६ [अ]भावप्रमाणमन्तरेण । ७ प्रागभावादयः । ८ कार-  
णेन । ९ स्वरूपादीनां च । १० अवयवाऽर्थापत्त्यपेक्षया । ११ अभावो वस्तु-  
भवति । अनुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिप्राप्त्याभावादिप्रमेयत्वाच्च तदयं । १२ शशस्य  
१३ कालत्रये ।

अप्सु गन्धो रसश्चाग्नौ वायौ रूपेण तौ सह ।

व्योम्नि संस्पर्शता ते च न चेदस्य प्रमाणता ॥”

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ५-६ ] इति ।

न च निरंशत्वाद्वस्तुनस्तत्त्वरूपग्राहिणाध्यक्षेणास्य सर्वात्मना ग्रहणादगृहीतस्य चापरस्यादंशस्य तत्राभावात् कथं तद्व्यवस्थाप-  
नाय प्रवर्त्तमानमभावाख्यं प्रमाणं प्रामाण्यमश्नुते ? इत्यभिधात-  
व्यम् ; यतः सदसदात्मके वस्तुनि प्रत्यक्षादिना तत्र सदंशग्रहणे-  
प्यगृहीतस्यासदंशस्य व्यवस्थापनाय प्रमाणाभावस्य प्रवर्त्तमानस्य  
न प्रामाण्यव्याहतिः । उक्तं च—

“स्वरूपपररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके ।

१०

वस्तुनि ज्ञायते किञ्चिद्रूपं कैश्चित्कदाचन ॥ १ ॥

यस्य यंत्र यदोद्भूतिर्जिघृक्षा ओपजायते ।

वेद्यते नु भवस्तस्य तेन च व्यपदिश्यते ॥ २ ॥

तस्योपकारकत्वेन वर्त्ततेऽशस्तैर्देतैरः ।

उभयोरपि संवित्स्या उभयानुगमोस्ति तु ॥ ३ ॥”

१५

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० १२-१४ ]

प्रत्यक्षाद्यवतारस्य भावांशो गृह्यते यदा ।

व्यापारस्तदनुत्पत्तेरभावांशे जिघृक्षिते ॥ ४ ॥”

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० १७ ]

न च धर्मिणोऽभिज्ञत्वाद्भावांशवदभावांशस्याप्यध्यक्षेणैव ग्रहः । २०  
सदसदंशयोर्धर्म(र्म्य)भेदेऽप्यन्योन्यं भेदाभायनरदिमरूपादिवद-  
भावस्यानुद्भूतत्वात् । न चाभावस्य भावरूपेण प्रमाणेन परिच्छित्ति-

१ गन्धादयः । २ सद्रूपस्य वस्तुनः । ३ समर्चनाय । ४ व्याप्नोति ।  
५ सौगतेन । ६ सर्वदा । ७ प्रमाणेः । ८ किञ्चिद्रूपमित्येतत्पदं वस्तुत्वादिना  
निवृणोति । सदंशस्यासदंशस्य वा । ९ उभयात्मके वस्तुनि । १० सदंशग्रहणकाले ।  
११ अभिन्यक्तिः । १२ प्रवृत्तानाम् । १३ नरैः । १४ परिच्छित्तिः । १५ सदंश-  
स्यासदंशस्य वा । १६ अभिन्यक्तेन सदंशेन असदंशेन वा । १७ पुंनिर्वस्तु । १८ व  
यवांशो गृह्यते स यवांशोक्तिः न तद्वितीय इत्युक्ते आह । १९ गृह्यमाणसदंशस्य ।  
२० सदंशग्रहणकाले । २१ असदंशः । २२ सदसदंशयोः । २३ सवेद-  
नात् । २४ उभयात्मके वस्तुनि । २५ कैश्चित्कदाचन इत्यादिना  
आह । २६ तदा भवेत् । २७ स्यात् । २८ अभावस्य । २९ ग्राहीतुमिष्टे वस्तुनि ।  
३० तदनुत्पत्तेरित्येतदपराङ्मयं विवक्षयति । ३१ वस्तुनः । ३२ यत्कृत्वा ।  
३३ भेदेऽप्युभयधर्मयोः प्रत्यक्षेण ग्रहणं कृतो न सादित्युक्ते आह । अन्योन्यमिति ।  
३४ सदंशस्योद्भूतत्वात् ॥



युक्ता । प्रयोगः—यो यथाविधो विषयः स तथाविधेनैव प्रमाणेन परिच्छिद्यते, यथा रूपादिभावो भावरूपेण चक्षुरादिना, विवादोऽस्पदीभूतश्चाभावस्तत्सादेभावः (दभावेन) परिच्छेद्यत इति । उक्तं च—

५ “न तु (ननु) भौवादिभिर्ज्ञेत्वात्सम्ययोगोस्ति तेन च ।

न ह्यत्यन्तमभेदोस्ति रूपादिवदिहापि नः ॥ १ ॥

धर्मयोगेदं दृष्टो हि धर्म्यमेदेषि नः स्थितेः ।

उद्भवामिभवात्मैत्वाद्भूतं चावतिष्ठते ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० १९-२० ]

१० “मेयो यद्दभावो हि मानमप्येवमिर्ष्यताम् ।

भौवात्मके यथा मेये नाभावस्य प्रमाणता ॥

तथैवाभावमेयेपि न भावस्य प्रमाणता ।”

[ मी० श्लो० अभाव० ४५-४६ ] इति ।

ततः शाब्दादीनां प्रमाणान्तरत्वप्रसिद्धेः कथं प्रत्यक्षानुमानमेवा-  
१५ त्प्रमाणद्वैविध्यं परेषां व्यतिष्ठेत् ?

नन्वेवं प्रत्यक्षेतरमेदात्कथं भवतोपि प्रमाणद्वैविध्यव्यवस्था—  
तेषां प्रमाणान्तरत्वप्रसिद्धेरविशेषादिति चेत् ? तेषां ‘परोक्षेऽन्त-  
र्भावात्’ इति ब्रूमः । तथाहि—यदेकलक्षणलक्षितं तद्व्यक्तिमेदेष्यै-  
कमेव यथा वैशद्यैकलक्षणलक्षितं चक्षुरादिप्रत्यक्षम्, अवैशद्यै-  
२० कलक्षणलक्षितं च शाब्दादीति । चक्षुरादिसामग्रीमेदेषि हि  
सज्जानानां वैशद्यैकलक्षणलक्षितत्वेनैवाभेदः प्रसिद्धः प्रत्यक्षरूप-  
तानतिक्रमात्, तद्वत् शाब्दादिसामग्रीमेदेष्यवैशद्यैकलक्षितत्वेनै-  
वाभेदः शाब्दादीनाम् परोक्षरूपत्वाविशेषात् । ननु परोक्षस्य  
स्मृत्यादिभेदेन परिगणितत्वात् उपमानादीनां प्रमाणान्तरत्वमेवे-

✓ १ अभावो अभावप्रमाणपरिच्छेद्यः—तथाविधविषयात् । २ भावेन परिच्छेद्योऽभावेन  
चेति । ३ तथाविधविषयत्वात् । ४ पदार्थात् । ५ अभावस्य । ६ इन्द्रियाणाम् ।  
७ असदस्येन । ८ रहसि । ९ यथा रूपादेरत्यन्तमभेदोस्ति, पवं भावाभावधर्मयोरत्य-  
न्तमभेदो नास्ति । १० धर्मस्यात्यन्तमभेदो नास्तीति कुतः ? । ११ स्वकीयप्रमाणा-  
भ्यामुभयधर्मयोरपि ग्रहणं कस्यैव सादित्युक्ते जाह । १२ सदसदस्योः ।  
१३ प्रत्यक्षादिप्रमाणैः । १४ अग्रहणं च । १५ अभावरूपस्य । १६ सौगतेन ।  
१७ दृष्टान्तमाह । १८ बौद्धानाम् । १९ सौगसमप्रसिद्धप्रमाणद्वैविध्याभ्यवस्थिति-  
अकारेण । २० केनस्य । २१ पवं जैनाः । २२ शब्दादि धर्मि व्यक्तिमेदेष्यैकं  
भवत्येकलक्षणलक्षितत्वात् । २३ स्पर्शनादि ।

त्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; तेषामत्रैवान्तर्भावात् । उपमानस्य हि प्रत्यभिज्ञानेन्तर्भावो वक्ष्यते ।

अर्थापत्तेस्त्वनुमानेऽन्तर्भावः; तथा हि—अर्थापत्त्युत्थापकोऽर्थोन्यथानुपपद्यमानत्वेनानवगतः, अवगतो वाऽद्वैष्टार्थपरिकल्पना-  
निमित्तं स्यात्? न तावदनवगतः; अतिप्रसङ्गात् । येन हि विनो-  
पपद्यमानत्वेनावगतस्तमपि परिकल्पयेत्, येन विना नोपपद्यते  
तमपि वा न कल्पयेत्, अन्यथानुपपद्यमानत्वेनानवगतस्यार्थाप-  
त्त्युत्थापकार्यस्यान्यथानुपपद्यमानत्वे सत्यप्यद्वैष्टार्थपरिकल्पकत्वा-  
सम्भवात् । सम्भवे वा लिङ्गस्याप्यनिश्चिताविनाभावस्य परोक्षा-  
र्थानुमापकत्वं स्यात् । ततश्चेद् नार्थापत्त्युत्थापकार्थाद् मिथेत । १०  
नाप्यवगतः; अर्थापत्त्यनुमानयोर्मैदाभावप्रसङ्गादेव, अविनाभावि-  
त्वेन प्रतिपन्नादेकसात्सम्बन्धिर्नो द्वितीयप्रतीतेरुभयत्राविशेषात् ।

किञ्च, अस्यैवान्यर्थानुपपद्यमानत्वावगमोऽर्थापत्तेरेव, प्रमाणान्त-  
राह्वा? प्रथमपक्षेऽन्योन्याश्रयः; तथाहि—अन्यथानुपपद्यमानत्वेन  
प्रतिपन्नादर्थोदर्थोपत्तिर्प्रवृत्तिः, तत्प्रवृत्तेऽस्यान्यथानुपपद्यमान-  
त्वप्रतिपत्तिरिति । ततो निराकृतमेतत्—

“अविनाभाविता चात्र तदैव परिगृह्यते ।

न प्रौढवगतेत्येवं सैत्यज्येषा न कारणेम् ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३० ]

“तेनैव सम्यन्धवेलायां सम्यन्ध्यन्येतरो ध्रुवम् ।

२०

अर्थापत्यैव गन्तव्यः पश्चादस्त्वनुमानता ॥”

[ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३३ ] इति ।

- १ अवःपूरादिः । २ उपरि वृष्टिं विना । ३ उपरि वृष्ट्यादिरुक्षण । ४ कारणम् ।  
५ रासमागमनादिना । ६ वृमादेः । ७ नालिकेरुदीपावातं नर प्रति । ८ लिङ्गम् ।  
९ अन्यथा । १० वृमादिहेतोरवःपूरादिकल्पकारा । ११ अस्यादिसाध्यस्योपरिवृष्ट्या-  
दिकल्पस्य वा । १२ अवःपूरादेः । १३ उपरि वृष्ट्यादिकं विना । १४ अवः-  
पूरात् । १५ अर्थापत्त्युत्थापकार्यावगमः । १६ अर्थस्य । १७ अन्योन्याश्रयो यतः ।  
१८ वक्ष्यमाणम् । १९ अर्थापत्त्यनुमानयोरनेदः—विश्रित्वाविनाभावलिङ्गप्रसवत्वा-  
विशेषादित्युक्ते आह परः । २० अर्थापत्तिकल्पितेऽवःपूरादौ । २१ अर्थापत्त्युत्पत्तेः-  
पूर्वमविनाभाविता नावसिवा । २२ सती । २३ अर्थापत्तिं प्रति । २४ अतोऽनु-  
मानादर्थोपत्तेर्मैदः । २५ सम्बन्धे गृहीतैर्थापत्तेरनुमानरूपता अविष्यतीत्युक्ते आह ।  
२६ येन कारणेनाविनाभाविताऽर्थापत्तिरसमये ध्रुव गृह्यते तेन कारणेन सम्बन्धे ।  
२७ ग्रहणम् । २८ अनुमानम् । २९ सम्बन्धिनोर्दृष्टिपूर्वयोर्मध्ये अन्यतरो वृष्टिः ।  
३० पूर्वमर्थापत्तिरेत्यर्थः । ३१ उत्तरकालं चेत् तदा ।

अथ प्रमाणान्तरात्तदवगमः; तर्किं भूयोदर्शनम्, विपक्षेऽनु-  
पलम्भो वा? आद्यविकल्पे क्वास्य भूयोदर्शनम्-साध्यधर्मिणि;  
दृष्टान्तधर्मिणि वा? न तावदाद्यः पक्षः; शक्तेरतीन्द्रियतया साध्य-  
धर्मिण्यस्य तदविनाभावित्वेन भूयोदर्शनासम्भवात् । द्वितीयपक्षो-  
५ प्यत एवायुक्तः । किञ्च, दृष्टान्तधर्मिणि प्रवृत्तं भूयोदर्शनं साध्य-  
धर्मिण्यप्यस्यान्यथोपपन्नत्वं निश्चाययति, दृष्टान्तधर्मिण्येव वा?  
तत्रोत्तरः पक्षोऽयुक्तः; न खलु दृष्टान्तधर्मिणि निश्चितान्यथानुप-  
पद्यमानत्वोर्थोऽन्यत्र साध्यधर्मिणि तथात्वेनानिश्चितः खल्वसाध्यं  
प्रसाधयति अतिप्रसङ्गोऽतः । प्रथमपक्षे तु लिङ्गार्थापत्त्युत्थापकार्थ-  
१० योर्मेदामावः स्यात् ।

ननु लिङ्गस्य दृष्टान्तधर्मिणि प्रवृत्तप्रमाणवशात्सर्वोपसंहारेण  
स्वसाध्यनियतैव निश्चयः, अर्थापत्त्युत्थापकार्थस्य तु साध्यधर्मि-  
ण्येव प्रवृत्तप्रमाणोत्सर्वोपसंहारेणादृष्टार्थान्यथानुपपद्यमानत्वनि-  
श्चय इत्यनयोर्मेदः; नैतद्युक्तम्; न हि लिङ्गं सैपक्षानुगैममात्रेण  
१५ गमकम् वैजस्य लोहलेख्यत्वे पार्थिवत्ववत्, इयामत्वे तत्पुत्रत्व-  
वद्वा । किं तर्हि? 'अन्तर्व्याप्तिवलेन' इति प्रतिर्पादयिष्यते, तत्र च  
किं सपक्षानुगमेनेति चे? तदभावे गमकत्वमेवास्य कथमिति  
चेत्? यथार्थापत्त्युत्थापकार्थस्य । तथैव चार्थापत्तिरेवाखिलमनु-  
मानमिति षड्प्रमाणसंख्याव्याघातः । भवतु वा सैपक्षानुगमान-  
२० नुगममेदः, तथापि नैतावता तैयोर्मेदः, अन्यथा पक्षधर्मत्वसहि-

१ अर्थापत्त्युत्थापकार्थविनाभाववगमः । २ यत्र इष्टिनोक्तिं च विपक्षस्तस्मिन् ।  
३ अर्थापत्त्युत्थापकार्थस्य कल्याणिनाभूतकल्पकस्य । ४ साध्यधर्मो दहनशक्तिकक्षणो-  
प्यग्निरस्तीति साध्यधर्मो तस्मिन् । ५ दृष्टान्त एव धर्मो । ६ ज्ञो । ७ दाहस्य  
साधनस्य । ८ शक्त्या । ९ दृष्टान्ते धर्मिणि शक्त्याविनाभूतस्फोटकक्षणकल्पकाऽ-  
दर्शनादेव । १० दाहस्य । ११ शक्तिं विना । १२ शक्तिं विना । १३ दाहः ।  
१४ दाहस्य शक्तिम् । १५ मैत्रपुत्रत्वादेरपि स्वसाध्यं प्रति गमकत्वप्रसङ्गात् ।  
१६ महानसादौ । १७ प्रत्यक्ष । १८ यो यो धूमवान् सोऽग्निमानिति । १९ अवि-  
नाभाव । २० पक्षे । २१ अर्थापत्तिरूपात् । २२ यो वः स्फोटः स सर्वोपि  
शक्तियुक्ताधिकार्यः । २३ स्फोटस्य । २४ पाषाणकाष्ठादि । २५ अन्यथा । २६ वज्रं  
लोहलेख्यं पार्थिवत्वात्पाषाणवज्रलोहलेख्यं न तत्पार्थिवं न, यथाकाशश्च । २७ अन्त-  
र्व्याप्तिवलेनेति कोर्थः पक्षे एव साध्यसाधनयोर्व्याप्तिरन्तर्व्याप्तिः । २८ पतङ्गवमेवानुमा-  
नाद् नोदाहरणमित्यादिविचारावसरे । २९ अन्तर्व्याप्तिवलेनैव गमकत्वे च । ३० प्रति-  
पादयिष्यते । ३१ यथार्थापत्त्युत्थापकस्यान्तर्व्याप्तिवलेन गमकत्वं तथा लिङ्गस्यापि ।  
३२ दाहस्य । ३३ दृष्टान्ताभावे हेतोर्गैमकत्वं च । ३४ दृष्टान्ते । ३५ अर्थापत्तेः ।  
३६ अर्थापत्त्यनुमानयोः । ३७ यतावता नैदमेदः ।

तोया अर्थापत्तेस्तद्ग्रहितार्थापत्तिः प्रमाणान्तरं स्यादिति प्रमाण-  
संख्याव्याघातः । अस्ति चार्थापत्तिः पक्षधर्मत्वरहिता—

“नदीपुरोऽप्यधोदेशे दृष्टः सञ्चपरि स्थिताम् ।

निर्यम्यो गमयत्येव वृत्तां वृष्टिं नियामिकाम् ॥ १ ॥

पित्रोर्भ्रात्राक्षणात्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमौ ।

सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥ २ ॥

एवं यत्पक्षधर्मत्वं ज्येष्ठं हेत्वङ्कमिष्यते ।

तत्पूर्वोक्तार्थधर्मस्य दर्शनाद्व्यभिचार्यते ॥ ३ ॥” [ ]

इत्यभिधानात् ।

नियमवतोऽर्थान्तरप्रतिपत्तेरविशेषार्थोरभेदे स्वसाध्याविना- १०  
भाविनोर्थोदर्थान्तरप्रतिपत्तेरप्यविशेषात्कथमनुमानादर्थोपत्ते-  
र्भेदः स्यात् ? अथ विपक्षेऽनुपलम्भात्तस्यान्यथानुपपद्यमानत्वाव-  
गमः ; न । पार्थिवत्वादेरप्येवं स्वसाध्याविनाभावितावगमप्रसङ्गात्  
विपक्षेऽनुपलम्भस्याविशेषात्, सर्वात्मसम्बन्धिनोऽनुपलम्भस्या-  
सिद्धान्तैकान्तिकत्वाच्च । नन्वेवं सकलानुमानोक्तेः, अस्तु नाम १५  
तस्यायम् यो भूयोदर्शनाद्विपक्षेऽनुपलम्भाद्व्यार्तिं प्रसाधयति  
नास्माकम्, प्रमाणान्तरसिद्ध्यभ्युपगमात् । भवतोपि तत्तत्त-  
दभ्युपगमे प्रमाणसंख्याव्याघातः ।

नैनु बह्विस्वरूपस्याप्यक्षत एव प्रसिद्धेस्तेदतिरिकातीन्द्रियश-  
क्तिसङ्गावे प्रमाणाभावात्कथं तत्रार्थापत्तेः प्रामाण्यम् ? निजा हि २०

१ हेतोर्व्याप्यवृत्तिरं पक्षधर्मत्वम् । २ उपरि वृष्टो देवो नदीपूरदर्शनान्यथानुप-  
पत्तेरित्येवमपक्षधर्मत्वं मित्रदेशत्वात् । अत्र देवे वृष्टिस्तत्र नदीपूरो न । यत्र  
नदीपूरस्तत्र वृष्टिर्न । अत्र पक्षः उपरिदेशः । ३ पुनः । ४ व्याप्यः । ५ व्यापिकाम् ।  
६ पुत्रो ब्राह्मणः—पित्रोर्ब्राह्मण्यन्यथानुपपत्तेः । ७ अनुया अर्थापत्तिः । अप्रत्यक्षा चो-  
क्तिरित्याद्यभिधानात् । ८ उक्तप्रकारेण । ९ अन्यस्य पक्षाद्व्यतिरिक्तस्य धर्मो नदीपूरः  
पितृनाक्षर्यम् च । पूर्वोक्तो नदीपूरः स चासाधन्यधर्मस्य तस्य । १० यो यो हेतुः  
स स पक्षधर्मत्वसहित इत्यस्य व्याभिचारः । पक्षधर्मैरहितोपि हेतुर्निघटे यतः ।  
११ स्फोट्यतूपाच्च । १२ पक्षधर्मसहितासहितार्थापत्त्योः । १३ लिङ्गात्तूपाच्च ।  
१४ अग्निवृष्टयोः । १५ अनुमानेऽर्थापत्तौ च । १६ आकाशे लोहलेखितस्याभावात् ।  
१७ बाहस्य । १८ इति चेन्न । १९ साधनस्य । २० लोहलेख्ये आकाशकक्षणे  
विपक्षे पार्थिवत्वस्यानुपलम्भप्रकारेण । २१ वज्रस्य लोहलेखित्वम् । २२ गगने ।  
२३ विपक्षेऽनुपलम्भः सर्वसम्बन्धीत्यादिप्रकारेण । २४ परः । २५ दृष्टान्ते ।  
२६ जैनाचार्य । २७ कहात् । २८ गीमासकस्य । २९ नैयामिकः । ३० बहि-  
त्वस्य । ३१ सरूपातिरिक्त ।

शक्तिः पृथिव्यादीनां पृथिवीत्वादिकमेवं तदभिसम्बन्धादेव तेषां कार्यकारित्वात् । अस्या तु चरमसहकारिरूपा, तत्सद्भावे कार्य-  
करणादभावे चाकरणात् । तथाहि-सन्तोपि तन्तवो न कार्यमार-  
भन्ते अस्त्यतन्तुसंयोगं विनेति सैव शक्तिस्तेषाम् । ननु कथमर्थो-  
५ न्तरमर्थान्तरस्य शक्तिः ? अर्थान्तरत्वेऽपि समानमेतत्-‘स एव  
तस्यैव न शक्तिः’ इति । अथ यदि पूर्वेषां सहकार्येव शक्तिस्तर्हि  
तस्याप्यशक्तस्याकारणत्वादन्या शक्तिर्वान्येत्यनवस्था; तदयुक्तम्;  
चरमस्य हि सहकारिणः पूर्वसहकारिण एव शक्तिः इतरतरा-  
भिसम्बन्धेन कार्यकरणात् । स एव सैमप्राणां भावः सामग्रीति  
१० भावप्रत्ययेनोच्यते, तेन सैता सैमप्रव्यपदेशात् ।

किञ्च, असौ शक्तिर्नित्या, अनित्या वा स्यात् ? नित्या चेत्स-  
र्वदा कार्यात्पत्तिप्रसङ्गः । तथा च सहकारिकारणापेक्षा व्यर्थार्थो-  
नाम् तद्धाभात्प्रागेव कार्यस्योत्पन्नत्वात् । अथानित्यासौ, कृतो  
जायते ? शक्तिमतश्चेत्, किं शक्तात्, अशक्ताद्वा ? शक्ताश्चेच्छक्त्य-  
१५ न्तरपरिकल्पनातोऽनवस्था स्यात् । अशक्ताच्चदुत्पत्तौ कार्यमेव  
तथाविधासत्तः किञ्चोत्पद्येत ? अलमतीन्द्रियशक्तिकल्पनया ।

तथा, शक्तिः शक्तिमतो मित्रा, अमित्रा वा स्यात् ? अमित्रा  
चेत्, शक्तिमात्रं शक्तिमन्मात्रं वा स्यात् ? मित्रा चेत्, ‘तस्यैवैवम्’  
इति व्यपदेशाभावः अनुपकारात् । उपकारे वा तथा तस्योपकारः,  
२० तेन वाऽस्याः ? प्रथमपक्षे शक्तिमतः शक्त्योपकारोऽर्थान्तरभूतः,  
अनर्थान्तरभूतो वा विधीयते ? अर्थान्तरभूतश्चेदनवस्था, तस्यापि

१ पृथिवीत्वादिसरूप । २ शक्तिः । ३ अन्तः । ४ जैनादिः । ५ नीजस्य ।  
६ नैयायिकः । ७ वह्निः । ८ बहेः । ९ अपरसहकारिशक्त्यभावादशक्तः ।  
१० अतीन्द्रियया शक्त्या शक्तिमतः उपकारः कियते इत्यसिन्धुपक्षे शक्त्या कियमाण  
उपकारः शक्तिमतो मित्रश्चेत्तदानवस्था । क्वयम् ? उपकारोपि शक्तिमतो मित्रो यदि  
तदा शक्तिमतोऽयमुपकार इति सम्मन्यो न स्यात् भिन्नत्वात् । उपकारेणापि स्वसम्बन्ध-  
सिद्ध्यर्थमुपकारान्तरं कियते चेत्तदा शक्तेनाऽशक्तेन बोधकारेणोपकारान्तरं कियते । न  
ब्रानवशक्तेन-अशक्त्योपकारकरणे असम्भवात् । शक्तेन चेदुपकारेण स्वसम्बन्धसिद्ध्यर्थ-  
मुपकारान्तरं विधीयते तर्हि यथा शक्त्या सर्वं शक्तः उपकारः सापि मित्राऽमित्रा वा ?  
मित्रा चेत्तदोपकारस्यैवं शक्तिरिति न-तस्माद्विभ्रतात् । शक्त्यापि स्वसम्बन्धसिद्ध्यर्थ-  
मुपकारान्तरं कियते इत्यादिप्रकारेणानवस्था । ११ कारणानाम् । १२ निवमानेन ।  
१३ तन्तुनाम् । १४ इत्यनवस्था परिहृता । १५ यथा शक्त्या शक्तिमात् शक्तः सापि  
नित्याऽनित्या वा ? न तावन्मित्रा-सर्वदा कार्यात्पत्तिप्रसङ्गात् । अथानित्या, सापि कृतो  
जायेत ? शक्तिमतश्चेच्छक्तादशक्तादित्यादिप्रकारेण । १६ स्फोटोदि । १७ शक्तिः ।  
१८ शक्तिमतः सकाशात् । १९ पूर्ववत् । २० न केवलं शक्तेः ।

व्यपदेशार्थमुपकारान्तरपरिकल्पनया शक्त्यन्तरपरिकल्पनात् । अनर्थान्तरभूतोपकारकरणे तु स एव कृतः स्यात् । तथा च न शक्तिमानसौ तत्कार्यत्वाप्रसिद्धतत्कार्यत्वात् । शक्तिमतापि-शक्त्यन्तरान्वितेन, तद्ग्रहितेन वा शकेरुपकारः क्रियते? आद्यपक्षे शक्त्यन्तराणां ततो मेदः, अमेदो वा? उभयत्रानन्तरोकोभयदोषानुपपन्नोऽनवस्था च । तद्ग्रहितेनानेन शकेरुपकारे तु प्राच्यशक्ति-<sup>५</sup> कल्पनाप्यपार्थिका तद्व्यतिरेकेणैव कार्यस्याप्युत्पत्तेरुपकारवत् । शक्तिशक्तिमतोर्मेदामेदपरिकल्पनायां विरोधादिदोषानुपपन्नः ।

तथा, असौ किमेका, अनेका वा? तत्रैकत्वे शकेर्युगपदनेककार्योत्पत्तिर्न स्यात् । अनेकत्वेपि अनेकशक्तिमात्मन्यर्थोनेकशक्तिमिर्विभृयादित्यनवस्थाप्रसङ्ग इति । १०

अत्र प्रतिविधीयते । किं ग्राहकप्रमाणाभावाच्छेकरभावः, अतीन्द्रियत्वाद्वा? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः, कार्योत्पत्त्यन्यथानुपपत्तिजनि-  
तानुभूतस्यैव तद्ग्राहकत्वात् । ननु सामग्र्यधीनोत्पत्तिकत्वात्कार्य-  
णां कथं तदव्यथानुपपत्तिर्यतोऽनुमानात्तत्सिद्धिः स्यात्; इत्यप्य-  
समीचीनम्, यतो नास्माभिः सामग्र्याः कार्यकारित्वं प्रतिविध्यते, <sup>१५</sup>  
किन्तु प्रतिनियतायास्तस्याः प्रतिनियतकार्यकारित्वम् अती-  
न्द्रियशक्तिसङ्भावमन्तरेणासम्भाव्यमित्यसावप्यभ्युपगन्तव्या ।  
कथमन्यथा प्रतिबन्धकमणिमन्नादिसन्निधानेप्यग्निः स्फोटादि-  
कार्यं न कुर्यात् सामग्र्यास्तत्रापि सङ्गावात्? तेन ह्यग्नेः स्वरूपं  
प्रतिहन्यते, सहकारिणो वा? न तावदाद्यः पक्षः क्षेमङ्करः, <sup>२०</sup>  
अग्निरूपस्य तदवस्थतयाध्यक्षेणैवाध्यवसायात् । नापि द्वितीयः,  
सहकारिस्वरूपस्याप्यङ्गुल्यग्निसंयोगलक्षणस्याविकलतयोपलक्षणा-  
त् । अतः शकेरेवानेन प्रतिबन्धोभ्युपगन्तव्यः ।

१ शक्तिमतोऽयमुपकार इति सम्बन्धव्यपदेशार्थम् । २ उपकारस्य । ३ शक्ति-  
मान् । ४ वह्निः । ५ उपकारवत् । ६ द्वितीयपक्षे । ७ तिष्ठा । ८ स्फोटादेः ।  
९ शक्तिग्रहितेन शक्तिमताऽग्निना उपकारसोत्पत्तिर्यथा । १० अन्धकारनाश, अर्थ-  
प्रकाश, वसिष्ठादाह, सैलशोषादि । ११ अर्थोऽनेककारिकशक्त्या विभक्तिं चेत्तदनेक-  
शक्तीनामेकत्वप्रसङ्गः-एकशक्त्या व्याप्यमानत्वात्तदन्ततमशक्तिवत् । १२ अतीन्द्रि-  
यायाः । १३ वह्निरुष्णोर्ध्वं दहनशक्तियुक्तत्वः स्फोटादिकार्योत्पत्त्यन्यथानुप-  
पत्तेरिति । १४ समवाय्यसमवायिमिलितकारणावा परस्परसम्बन्धलक्षणा सामग्री ।  
१५ जैनेः । १६ अतीन्द्रियशक्त्यभावेपि सामग्र्याः कार्यकारित्वे । १७ सामग्र्याः  
प्रतिबन्धकसन्निधाने सङ्गावो नास्तीत्युक्ते आह । १८ प्रतिबन्धकेन । १९ प्रतिबन्ध-  
कमणिमन्नादिना । २० परेण भवता ।

ननु चानेन नाग्नेः सहकारिणो वा स्वरूपं प्रतिहन्यते, किन्तु स्वभाव एव निवर्त्यते, अतः स्फोटादिकार्यस्यानुत्पत्तिः प्रतिबन्धकमणिमन्त्राद्यभावस्यापि तदुत्पत्तौ सहकारित्वात् तदभावे तदनुत्पत्तेः; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; उत्तम्भकमणिसन्निधाने ५ कार्यस्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न खलु तदा प्रतिबन्धकमण्याद्यभावोस्ति प्रत्यक्षविरोधात् । ननु यथाग्निः प्रतिबन्धकमण्याद्यभावसहकारी स्फोटादिकार्यं करोति, एवं प्रतिबन्धकमण्यादिः उत्तम्भकमण्याद्यभावसहकारी तत्प्रतिबन्धं करोति, अतो न तत्सन्निधाने कार्यस्यानुत्पत्तिरिति । अस्तु नामैतत्; तथापि-प्रतिबन्ध-  
१० कोत्तम्भकमणिमन्त्रयोरभावेऽग्निः स्वकार्यं करोति, न वा ? न तावदुत्तरः पक्षः; प्रत्यक्षविरोधात् । प्रथमपक्षे तु कस्याभावः अग्नेः सहकारी-तयोरन्यतरस्य, उभयस्य वा ? न तावदुभयस्य, अन्यतराभावे कार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । अन्यतरस्य चेत्किं प्रतिबन्धकस्य, उत्तम्भकस्य वा ? प्रतिबन्धकस्य चेत्, स एवोत्तम्भकमण्यादिस-  
१५ न्निधाने कार्यानुत्पादप्रसङ्गः तदा तस्याभावाप्रसिद्धेः । उत्तम्भकस्य चेत्, अत्राप्ययमेव दोषः । न चाभावस्य कार्यकारित्वं घटते भावरूपतानुपपत्त्या, अर्थक्रियाकारित्वलक्षणत्वात्परमार्थसतो लक्षणान्तराभावात् ।

कश्चास्याभावः कार्योत्पत्तौ सहकारी स्यात्-किसितरेतराभावः, २० प्रागभावो वा स्यात्, प्रध्वंसो वा, अभावमात्रं वा ? न तावदितरेतराभावः; प्रतिबन्धकमणिमन्त्रादिसन्निधानेऽप्यस्य सम्भवात् । नापि प्रागभावः; तत्प्रध्वंसोत्तरकालं कार्योत्पत्त्यभावप्रसङ्गात् । नापि प्रध्वंसः प्रतिबन्धकमण्यादिप्रागभावावस्थायां कार्यस्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न च भावादर्थान्तरस्याभावस्य सङ्गावोस्ति, तस्यानन्तर-  
२५ मेव निराकरिष्यमाणत्वात् । अतो निराकृतमेतत्-‘यस्यान्वयव्यतिरेकौ कार्येणानुक्रियेते सोऽभावस्तत्र सहकारी सहकारिणामनिर्यमात्’ इति ।

१ प्रतिबन्धकेन । २ स्वस्य प्रतिबन्धकस्य भावः । ३ अभावरूपकारणभावे । ४ कार्योत्थापक । ५ प्रतिबन्धकमण्याद्यभावस्य सहकारिणोऽभावात् । ६ उत्तम्भकमणिसन्निधानकाले । ७ प्रतिबन्धकभावे उत्तम्भकसङ्गावे चोभयसङ्गावे च । ८ उत्तम्भकस्याभावः सहकारी चेदित्यर्थः । ९ उत्तम्भकसङ्गावे कार्यानुत्पादप्रसङ्गलक्षणः । १० अभावः कार्यकारी चेत्तर्हीति शेषः । ११ तदोत्तम्भकस्याभावाविशेषाभावादुत्तम्भकसङ्गावे कार्यं न स्याच्च । १२ सत्तासम्बन्धः प्रमाणसम्बन्धो वेत्तादि । १३ प्रतिबन्धकस्य । १४ प्रतिबन्धक उत्तम्भको नेति । १५ तुच्छभावस्य । १६ सहकारिणो भावा अभावा एव वा अवन्तीति नियमो नास्ति ।

कथं चैवंवादिनो मन्त्रादिना कञ्चित्प्रति प्रतिबद्धोप्यग्निः स एवान्यस्य स्फोटादिकार्यं कुर्यात् ? प्रतिबन्धकामावस्य सहकारिणः कैस्यचिदप्यभावात् । न चासौत्पक्षेप्येतन्नोर्थं समानम्, वस्तुनोऽनेकशक्त्यात्मकत्वात्कस्याश्चित्कैर्नचित्कञ्चित् [प्रति] प्रतिबन्धेप्यन्यस्याः प्रतिबन्धामावात् । नाप्यभावमात्रं सहकारिः, वस्तुनोर्थान्तरस्याभावस्याभावे तद्वत्सामान्यस्याप्यसम्भवात् । न चाभावस्य सामान्यं सम्भवति, द्रव्यगुणकर्मान्यतरूपतानुपपन्नात् । ततः प्रतिबन्धकमण्यादिप्रतिवृत्तशक्तिर्वह्निः स्फोटादिकार्यस्यानुत्पादकस्तद्विपरीतस्तत्पादक इत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

ततो निराकृतमेतत् 'कार्यं स्रोतपत्तौ प्रतिबन्धकामावोपकृतो- १० भयवाद्यविवादास्पदकारकव्यतिरिक्तानपेक्षम्, तन्मात्रादुत्पत्तावनुपपद्यमानवाधकत्वात्, यंसु यतो व्यतिरिक्तमपेक्षते न तर्हि-न्मात्रजत्वेऽनुपपद्यमानवाधकम् यथा तन्तुमात्रापेक्षया पटः, न च तथेदम्, तस्माद्यथोक्तसाध्यम्' इति, हेतोरसिद्धेः, तन्मात्रादुत्पत्तौ कार्यस्य प्रागुक्तन्यायेनानेकवाधकोपपत्तेः । १५

स्वरूपसहकारिव्यतिरेकेण शक्तेः प्रतीत्यभावादसत्त्वे वा स्व-ग्वनितादिदृष्टकारणकलापव्यतिरेकेणादृष्टस्याप्यप्रतीतितोऽसत्त्वं स्यात्, तर्था चासाधारणनिमित्तकारणाय दत्तो जलाञ्जलिः । कथं चैवंवादिनो जगतो महेश्वरनिमित्तत्वं सिध्येत् ? विचित्र-क्षित्यादिदृष्टकारणकलापादेवाङ्कुरादिविचित्रकार्योत्पत्तिप्रतीतेः । २० अनुमानात्तस्य तन्निमित्तत्वसाधने शकेरप्यत एव सिद्धिरस्तु । तथाहि-यत्कार्यम् तदसाधारण्यैर्माध्यासितादेव कारणेणाविर्भवति सहकारीतैरकारणमात्राद्वा न भवति यथा सुखाङ्कुरादि, कार्यं चेदं निखिलमाविर्भाववद्वस्त्विति । एतेनैवातीन्द्रियत्वात्तदभावोऽपास्तः । २५

यदप्युक्तम्-'पृथिव्यादीनां पृथिवीत्वादिकैर्मेव निजा शक्तिः' इत्यादि; तदप्यपेशलम्; मृत्पिण्डादिभ्योपि पटोत्पत्तिप्रसङ्गात्

१ कार्योत्पत्तिं प्रत्यभावः सहकारीत्वं वादिनः । २ प्रागभावादिरूपस्य । ३ जैनः । ४ मन्त्रादिना । ५ नर प्रति । ६ अभावः सहकारी विचार्यमाणो न पटो-यतः । ७ स्फोटादिकार्यं यमि । ८ वह्नि । ९ अतीन्द्रियशक्तेः । १० कारक-मात्रात् । ११ पटादिकार्यम् । १२ तन्तुन्यः । १३ वेगादिकम् । १४ तन्तुमात्र । १५ पुण्यस्य । १६ पुण्यस्याऽसत्त्वे सति । १७ निक्षेपः । १८ परेण भवता । १९ स्वरूपसहकारिव्यतिरेकेण शक्तेः प्रतीत्यभावः । २० शक्तिः । २१ पुण्यमहेश्वरादेः । २२ स्वयंशक्तिर्वा साध्यम् । २३ उपादान । २४ परपञ्च-प्रतिक्षेपे साध्यमिदम् । २५ ब्रह्मेऽदृष्टमसाधारणकारणम् । २६ अङ्कुरेऽसाधारणमी-श्वरः । २७ द्वितीयविकल्पोयम् । २८ शक्त्यभावः । २९ सामान्यम् ।



सहकारीतरैशकेस्तथाप्यविशेषात् । अथ न पृथिवीत्वादिमात्रोप-  
लक्षितानामर्थानां पटाद्युत्पत्तौ व्यापारो येनातिप्रसङ्गः स्यात्,  
तन्तुत्वाद्यसाधारणनिजशक्त्युपलक्षितानामेव तत्र तेषां व्यापा-  
रात् ; इत्यप्यसाम्प्रतम् ; तन्तुत्वाद्युपलक्षितानां दग्धकुथिताद्य-  
५ र्थानामपि तज्जनकत्वप्रसङ्गार्थं । अवस्थाविशेषसमन्वितानां  
तन्तूनां कार्यारम्भकत्वादयमदोषः ; इत्यपि-मनोरथमात्रम् ; शक्ति-  
विशेषमन्तरेणावस्थाविशेषस्यैवासम्भवात्, अन्यथा दग्धादिस्व-  
भावानामपि तेषां स स्यात् ।

यच्चोच्यते-शक्तिर्नित्याऽनित्या वेत्यादि; तत्र किमयं द्रव्यशक्तौ,  
१० पर्यायशक्तौ वा प्रश्नः स्यात्, मावानां द्रव्यपर्यायशक्त्यात्मकत्वात् ?  
तत्र द्रव्यशक्तिर्नित्यैव अनादिनिधनस्वभावत्वाद्भ्रूयैव । पर्याय-  
शक्तिस्त्वनित्यैव सादिपर्यवसानत्वात्पर्यायाणाम् । न च शक्ते-  
र्नित्यत्वे सहकारिकारणानपेक्षयैवार्थस्य कार्यकारित्वालुपसङ्गः ;  
द्रव्यशक्तेः केवलार्थोः कार्यकारित्वानभ्युपगमात् । पर्यायशक्ति-  
१५ समन्विता हि द्रव्यशक्तिः कार्यकारिणी, विशिष्टपर्यायपरिणतस्यैव  
द्रव्यस्य कार्यकारित्वप्रतीतेः । तैरपरिणतिश्चास्य सहकारिकारणा-  
पेक्षया इति पर्यायशक्तेस्तदैव मावान्न सर्वदा कार्यात्पत्तिप्रसङ्गः  
सहकारिकारणापेक्षायैवार्थ्यं वा । कथमन्यथा अदृष्टेश्वरादेः केव-  
लस्यैव सुखादिकार्योत्पादनसार्थ्यं सर्वदा कार्यात्पादकत्वं सह-  
२० कारिकारणापेक्षायैवार्थ्यं वा न स्यात् ?

यदप्यभिहितम् शक्तादशक्ताद्वा तस्याः प्रादुर्भाव इत्यादि;  
तत्र शक्तादेवास्याः प्रादुर्भावः । न चानवस्था दोषाय; बीजाङ्कुरा-  
दिवदनादित्वासत्प्रवाहस्य । वर्तमाना हि शक्तिः प्राक्तनशक्ति-  
शुक्तेनार्थेनाविर्भाव्यते, सापि प्राक्तनशक्तियुक्तेनेति पूर्वपूर्वाव-  
२५ स्थायुकार्यानामुत्तरोत्तरावस्थाप्रादुर्भाववत् । कथं चैवंवैदि-  
नोऽदृष्टस्याप्याविर्भावो भटते ? तज्ज्ञात्मना अदृष्टान्तरयुक्तेना-

१ चक्रवीररादि । २ पृथिवीत्वादि । ३ अत्वादि । ४ पटादौ । ५ तन्त्वाद्यर्थ-  
नाम् । ६ तन्तुत्वाद्यविशेषात् । ७ शक्तिविशेषं विभावस्थानिविशेषो नविष्यति चेत् ।  
८ शक्तिरहितः । ९ तथा च सति पटादिजनकत्वप्रसङ्गः स्यात् । १० द्रव्यशक्तिः  
पर्यायशक्तिरित्युक्ते सत्ताह । ११ द्रवति द्रोष्यति अद्रुद्रुनदिति द्रव्यम् ।  
१२ परापरविनर्तव्यापि द्रव्यमूर्द्धता नृदिन सासादिषु । १३ पर्यायशक्तिरहितायाः ।  
१४ जैनैः । १५ कथमिति चेदाह । १६ स्रग्वन्नितादि । १७ सहकारिकारणा-  
नन्तरम् । १८ परेणाङ्गीकृते सति । १९ शक्तेः । २० शक्तिमतः । २१ शक्ति ।  
२२ अयेन । २३ शक्तादशक्तादित्येवंवादिनः ।-

विभाव्यते, तद्गहितेन वा? प्रथमपक्षेऽनवस्था । द्वितीयपक्षे तु मुक्तात्मवत्तस्यै तज्जनकत्वासम्भवं ।

किञ्च, कथं वा महेश्वरस्याखिलकार्यकारित्वम्? सहकारिरहितस्य तत्कारित्वे सकलकार्याणामेकदैवोत्पत्तिप्रसङ्गात् । तत्सहितस्य तत्कारित्वे तु तेषां सहकारिणोऽन्यसहकारिसहितेनै कर्तव्या ५ इत्यनवस्था । पूर्वपूर्वादृष्टसहकारिसमन्वितयोरात्मे श्वरयोः उत्तरोत्तरादृष्टाखिलकार्यकारित्वे निखिलभावानां पूर्वपूर्वशक्तिसमन्वितानामुत्तरोत्तरशक्त्युत्पादकत्वमस्तु, अलं मिथ्याभिनिवेशेन ।

यथान्यदुक्तम्-शक्तिः शक्तिमतो भिन्नाऽभिन्ना वेत्यादि; तदप्ययुक्तम्, तस्यास्तद्वतः कथञ्चिद्भेदाभ्युपगमात् । शक्तिमतो हि १० शक्तिभिन्ना तत्प्रत्यक्षत्वेऽप्यस्याः प्रत्यक्षत्वाभावात्, कार्यान्यथानुपपत्त्या तु प्रतीयमानासौ । तद्वतो विवेकेन प्रत्येतुमशक्यत्वादभिज्ञेति । न चात्र विरोधाद्यवतारः, तैदात्मकवस्तुनो ज्यैष्ठ्यन्तरत्वात् मेचकज्ञानवत्सामान्यविशेषवच्च ।

यत्पुनरुक्तमेकानेका वेत्यादि, तत्रार्थानामनेकैव शक्तिः १५ तथाहि-अनेकशक्तियुक्तानि कारणानि विचित्रकार्यत्वाभ्यर्थवत् । विचित्रकार्याणि वा कारणशक्तिभेदनिमित्तकानि तत्त्वादिभिन्नार्थकार्यवत् । न हि कारणशक्तिभेदमन्तरेण कार्यनानात्वं युक्तं रूपादिज्ञानवत्, यथैव हि कर्कटिकादौ रूपादिज्ञानानि रूपादिस्वभावभेदनिबन्धनानि तथा क्षणस्थितैरेकसादपि प्रदीपादेर्भावाद् वर्तिकादादितैलशोपादिविचित्रकार्याणि तैलशक्तिभेदनिमित्तकानि व्यवतिष्ठन्ते, अन्यथा रूपादेर्नानात्वं न स्यात् । चैश्वरादि-सामग्रीभेदादेव हि तज्ज्ञानप्रतिभासभेदः स्यात्, कर्कटिकादि-श्रव्यं तु रूपादिस्वभावरहितमेकमनंशमेव स्यात् । चैश्वरादिबुद्धौ

१ अदृष्टान्तरपरिकल्पनया आत्मन इति पक्षे । २ संसार्यात्मनः । ३ अदृष्टरहितत्वात् । ४ अदृष्टविशेष । ५ महेश्वरेण । ६ अनवस्थाभावादेनेन । ७ जैनेः । ८ अग्निं विना घूमयत् । ९ पदार्थात् । १० भेदेन । ११ शक्तेः कथञ्चिद्भेदाभेदपक्षे । १२ भेदाभेद । १३ भेदाभेदाद्वा ज्ञानान्तरत्वात् । १४ दहनो दाहशक्तियुक्तो दाहान्यथानुपपत्तेः[?] । १५ सन्न्यक्तियनुस्यूतत्वात्सामान्यरूपता गोत्वस्य । अथत्वादिभ्यो व्यावर्तमानत्वादिशेषरूपता यथा तथा सर्वत्र प्रतिपत्तयम् । सामान्यमेव विशेषणस्यैव तद्वत् । १६ विचित्राणि कार्याणि येषां तानि विचित्रकार्याणि तेषां भावस्वरूपं तस्मादेतोः । १७ विचित्रकार्यत्वात् । १८ सन्दिग्धादेकान्विकल्पे सत्यात् । १९ तैलशोपादिशक्तिभेद विनापि-तैलशोपादिकार्याणि स्थिति चेत् । २० तैलशोपादि । २१ तैलशोपादिशक्तिं विनापि शक्तिभेदनिमित्तकानि यदि तैलशोपादि-कार्याणि स्युः । २२ किन्तु । २३ रूपादिसमानसमर्थनार्थं परः प्राह ।

प्रतिभासमानत्वाद्वूपादेः कथं कर्कटिकादिद्रव्यस्य तद्रहितत्वमिति चेत् ? तर्हि तैलशोषादिविचित्रकार्यानुमानबुद्धौ शक्तिनानात्वस्याप्यर्थानां प्रतीतेः कथं तद्रहितत्वं स्यात् ? प्रत्यक्षबुद्धौ प्रतिभासमाना रूपादय एव परमार्थसन्तो न त्वनुमानबुद्धौ प्रतिभासमानाः ५ शक्यैः; इत्यपस्तु(प्यस्तु)न्दरम्; अदृष्टेश्वरादेरपरमार्थसत्त्वप्रसङ्गात् । प्रदीपादिद्रव्यस्यैकस्य वर्तिकादिसहकारिसामग्रीमेदात्तद्वाहादिकार्यनानात्वं न पुनस्तच्छक्तिसंभावमेदात्; इत्यप्यविचारितरमणीयम्; रूपादेरप्यभावप्रसङ्गात् । शक्यं हि वक्तुं कर्कटिकादिद्रव्ये चक्षुरादिसामग्रीमेदाद्वूपादिप्रत्ययप्रतिभासमेदो, न पुन १० रूपाद्यनेकसंभावमेदादिति । तन्न प्रमाणप्रतिपन्नत्वाद्वूपादिवच्छक्तीनामपलापो युक्त इति ।

यत्पुनरर्थापत्यर्थापत्तेरुदाहरणं वाचकसामर्थ्यात्तन्मित्यत्वज्ञानमुक्तम्; तदप्ययुक्तम्; वाचकसामर्थ्यस्य तत्प्रत्यनन्यथाभर्वनासिद्धेः । निराकरिष्यते चाग्रे नित्यत्वं शब्दस्येत्यलमितिप्रसङ्गेन ।

१५ थाप्यभावार्थापत्तिः-जीवञ्चैत्रोऽन्यत्रास्ति गृहेऽभावादिति । तत्रापि किं गृहे यत्तस्य जीवनं तदेव गृहे चैत्राभावस्य विशेषणम्, उक्तार्थैत्र ? प्रथमपक्षे तत्राभावस्य विशेष्यस्यासिद्धिः, यदा हि चैत्रो गृहे जीवति कथं तदा तत्र तदभावो येनसौ तेन विशेष्येत ? यदा च तत्र तदभावो, न तदा तत्र तज्जीवनमिति । द्वितीयपक्षे २० तु विशेषणस्यासिद्धिः, न खलु चैत्रस्यार्थैत्र यज्जीवनं तदार्थापत्युदयकाले तथाविधप्रदेशविशेषणत्वेन कुतश्चित्प्रतीयते अर्थापत्तेर्वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । येनैव हि प्रमाणेन तज्जीवनं प्रतीयते तेनैव तत्सद्भावोपि । न ह्यप्रतिपक्षे देवदत्ते तद्धर्मो जीवनं प्रत्येतुं शक्यम् अतिप्रसङ्गात् । न चाप्रतीतस्य विशेषणत्वमर्थ एव । अर्थापत्यैव

१ प्रदीपो नानाशक्तियुक्तः तैलशोषादिनानाकार्यान्पथानुपपत्तेरिति । २ दूषणमीलनं वचः । ३ ज्ञाने । ४ निराकृत्यप्रतिपादनाय । ५ शब्द । ६ शब्दनित्यत्वं प्रति । ७ अन्यथा नित्यत्वं विना न भवनं तस्य । ८ अविनाशायस्यासिद्धेः । ९ जीवतः । १० बहिर्जीवनम् । ११ विशेष्यस्यासिद्धिमुद्भावयन्ति । १२ चैत्राभावः । १३ गृहजीवनेन । १४ चैत्रस्य बहिर्जीवनं चैत्राभावविशेषणमित्यसिद्धिपक्षे । १५ जीवनस्य । १६ असिद्धिमेव प्रदर्शयन्ति । १७ नहिः । १८ अन्यप्रदेश । १९ प्रमाणात् । २० विद्वद्भिः । २१ अन्यथा । २२ अर्थापत्तेर्वैयर्थ्यप्रसङ्गेनैव सूचयन्ति । २३ अतोर्थापला चैत्रसद्भावापत्तिकल्पनं व्यर्थम् । २४ जीवनमेव प्रतीयते न तत्सद्भाव इति परेणोक्ते जैनः प्राह । २५ मेरुप्रतीलगावेपि तद्रूपादिप्रतिपत्तिप्रसङ्गात् । २६ जीवनस्य । २७ दण्डाऽज्ञाने दण्डिज्ञानप्रसङ्गात् ।

तत्सिद्धावितरेतराश्रयः-सिद्धे हि तथा तस्यान्यत्र जीवने तद्विशेष-  
वितात्तत्प्रदेशाभावादर्थपत्त्युदयः, ततश्च तत्सिद्धिरिति ।

अथ न निश्चितं सजीवनं तद्गद्गाभावविशेषणं येनायं दोषः,  
किन्तु 'यदि गृहेऽसौ जीवति तदान्यत्रास्ति' इत्यभिधीयते;  
तर्हि संशयरूपत्वाच्चस्याः कथं प्रामाण्यम् ? या तु प्रमाणं सानु-५  
मानमेव । पञ्चावयवत्वमप्यत्र सम्भवत्येव । तथाहि-जीवतो  
देवदत्तस्य गृहेऽभावो बहिस्तत्सद्भावपूर्वकः जीवतो गृहेऽभा-  
वत्वात् प्राङ्गणे स्थितस्य गृहे जीवदभाववत् । यद्वा, देवदत्तो  
बहिरस्ति गृहासंसृष्टजीवनाधारत्वात्सौत्ववत् । कथं पुनर्देवद-  
त्तस्यानुपलभ्यमानस्य जीवनं सिद्धं येन तद्वेतुविशेषणमित्यसौ : १०  
असंज्ञसाधनोपन्यासात् ।

यच्च निषेध्याधारवस्तुग्रहणादिसामग्रीत इत्याद्युक्तम् ; तत्र  
निषेध्याधारो वस्त्वन्तरं प्रयोगिसंसृष्टं प्रतीयते, असंसृष्टं वा ?  
तत्राद्यपक्षोऽयुक्तः ; प्रतियोगिसंसृष्टवस्त्वन्तरस्याप्यक्षेण प्रतीतौ  
तत्र तदभावप्रादुर्भावनाभावप्रमाणप्रवृत्तिविरोधात् । प्रवृत्तौ वा १५  
न प्रामाण्यम् ; प्रतियोगिनः सत्त्वेपि तत्प्रवृत्तेः । द्वितीयपक्षे तु  
अभावप्रमाणवैयर्थ्यम्, प्रत्यक्षेणैव प्रतियोगिनोऽभावप्रतिपत्तेः ।  
अथ प्रतियोग्यसंसृष्टतावगमो वस्त्वन्तरस्याभावप्रमाणसम्पाद्यः ;  
तर्हि तदप्यभावप्रमाणं प्रतियोग्यसंसृष्टवस्त्वन्तरग्रहणे सति प्रैव-  
र्त्तत, तदसंसृष्टतावगमश्च पुनरप्यभावप्रमाणसम्पाद्य इत्यन-२०  
वस्था । प्रथमाभावप्रमाणात्तदसंसृष्टतावगमे चान्योन्याश्रयः ।

१ बहिर्जीवन । २ बहिर्जीवन । ३ गृह । ४ इतरेतराश्रयः । ५ यदि जीवति  
तदा बहिरस्ति यदि न जीवति तदा नास्तीत्यर्थः । ६ जीवनस्य संशयितत्वात् ।  
७ अन्यत्र जीवनानिश्चयात् । ८ पञ्चावयवपञ्चविंशत्याऽप्रमाणं तथा सर्वावयवप्रमाणं स्यादित्या-  
वेकायामाह । ९ पञ्चावयववत्त्वाभावे कथमर्थापत्तेरनुमानत्वमिति परेणोक्ते सत्याह ।  
१० प्रतिषाहेतुग्राहणोपनयनिगमनान्यवयवाः । ११ सृतेव व्यभिचारपरिहारार्थ-  
मेतत् । १२ प्रमादस्वरूपवत् । १३ अभावरूपहेतोः । १४ साध्यसाधनयोर्वाप्य-  
व्यापकभावसिद्धौ व्याप्यास्त्युपगमो व्यापकास्त्युपगमनान्तरीयको यत्र (अर्थे) प्रदस्यते  
तत्प्रसङ्गसाधनम् । १५ घट । १६ भूतलम् । १७ आदिपदेन प्रतिषेधसंरक्षणमुप-  
लब्धिलक्षणप्राप्तस्य घटादेरनुपलम्भश्च । १८ भूतलम् । १९ घटेन । २० रहितम् ।  
२१ घटाभाव । २२ अभावप्रमाणस्य । २३ अभावावगमः । २४ भूतलम् ।  
२५ आद्यम् । २६ उत्पद्येत । २७ प्रथमाभावप्रमाणात्प्रतियोग्यसंसृष्टतावगमः तदव-  
गमश्च प्रथमाभावप्रमाणोदये इति ।

प्रतियोगिनोपि स्मरणं वस्त्वन्तरसंसृष्टस्य, असंसृष्टस्य वा १  
यदि संसृष्टस्य; तदाऽभावप्रमाणाप्रेवृत्तिः । अथासंसृष्टस्य; ननु  
प्रत्यक्षेण वस्त्वन्तरासंसृष्टस्य प्रतियोगिनो ग्रहणे तथाभूतस्यास्य  
स्मरणं स्यान्नान्यथा । तथाम्युपगमे च तदेवासावप्रमाणवैयर्थ्यं  
५ 'वस्त्वसङ्करसिद्धिश्च तत्प्रामाण्यं समाश्रिता' इत्यादिग्रन्थविरो-  
धश्च । वैस्तुमात्रस्याध्यक्षेण ग्रहणाम्युपगमे प्रतियोगीतरव्यव-  
हारोभावः ।

यदि चानुभूतेपि भवे प्रतियोगिस्मरणमन्तरेणामैवप्रतिप-  
त्तिर्न स्यात्; तर्हि प्रतियोग्यप्यनुभूत एव स्मर्त्तव्यो नान्यथा अति-  
१० प्रसङ्गात् । तदनुभवश्चान्यौसंसृष्टतयाऽभ्युपगन्तव्यः, तस्याप्य-  
न्यौसंसृष्टताप्रतिपत्तिस्ततोऽन्यत्र प्रतियोगिस्मरणात् तत्राप्ययमेव  
न्याय इत्यनवस्थैः । अथ प्रतियोगिनो भूतलस्य स्मरणोद् घटस्यान्यौ-  
संसृष्टता प्रतीयते, तत्स्मरणाच्च भूतलस्य तदेतरेतराभेदः; तथा-  
हि—न यावद्धटासंसृष्टभूभागप्रतियोगिस्मरणाद् घटस्य भूतलासं-  
१५ सृष्टताप्रतिपत्तिर्न तावत्तस्मरणोद्भूतलस्य घटासंसृष्टताप्रतिपत्तिः,  
यावच्च भूतलस्य घटासंसृष्टता न प्रतीयते न तावत्तस्मरणेन घट-  
स्येति । ततोऽन्यप्रतियोगिस्मरणमन्तरेणैवाभौवांशो भावांशवत्प्र-  
त्यक्षोऽभ्युपगन्तव्यः । भूतलासंसृष्टघटदर्शनादितसंसर्गोरस्य च  
पुनर्घटासंसृष्टभूभागदर्शनानन्तरं तथाविधघटस्मरणे सति 'अस्यै-  
२० शोभावः' इति प्रतिपत्तिः प्रत्यभिर्ज्ञानमेव । यदा तु स्वदुरौगमाहि-

१ स्थूला च प्रतियोगिनमित्येतद्विचारयति । २ भूतल । ३ भूतलसम्बद्धप्रतियोगि-  
सङ्गावग्राहकत्वेनेव प्रत्यक्षस्य प्रवृत्तेः । ४ पूर्वोक्तमेव । ५ आघातम् । ६ प्रत्यक्षेणैवा-  
भावस्य प्रतीतत्वात् । ७ जनवत्सादिदूषणपरिहारं करोति । ८ भूतलमात्रम् । ९ जन-  
वत्सादिदोषभयात्परेण । १० घट । ११ भूतल । १२ भूतलस्य । १३ प्रत्यक्षप्रतिपत्तेः ।  
१४ भूतलरुद्धेण । १५ घटस्य । १६ परेण । १७ अन्येन पटेन । १८ परेण ।  
१९ घटस्य । २० पटेन । २१ घटात् । २२ पटे । २३ ग्रन्थानवस्था स्यात् ।  
२४ अनवस्थापरिहारार्थं परः आह । २५ भूभागेन । २६ अन्यासंसृष्टता प्रतीयते ।  
२७ घटासंसृष्टभूभागप्रतियोगिस्मरणात् घटस्य भूतलासंसृष्टताप्रतिपत्तिस्तस्यां सत्यां  
भूभागासंसृष्टघटप्रतियोगिस्मरणाद्भूतलस्य घटसंसृष्टताप्रतिपत्तिस्तस्यां सत्यां घटासंसृष्ट-  
भूभागस्मरणाद् घटस्य भूतलासंसृष्टताप्रतिपत्तिरित्यान्वयमुखेनेतरेतराभयः । २८ भूभा-  
गासंसृष्टघटप्रतियोगि । २९ इष्टश्रुतानुभूतेषु स्मरणं चोपजायते । ३० घटासंसृष्ट-  
भूभाग । ३१ असंसृष्टताप्रतीतिः । ३२ इतरेतराभयो यतः । ३३ सर्वमाणघटस्य ।  
३४ प्रतियोगिस्मरणं विना नावमानं ज्ञानं प्रत्यक्षं प्रतियोगिस्मरणानन्तरमुपजायमानम-  
भावप्रमाणं भविष्यतीत्युक्ते आह । ३५ नरस्य । ३६ सर्वमाणघटस्य । ३७ भूभागे-  
३८ दर्शनस्मरणकारणकत्वाविशेषात् । ३९ आविर्भावतिरोभावात्सर्वं सर्वं विद्यते इति ।

तत्संस्कारः साङ्ख्यस्तथोऽप्रतिपद्यमानः तत्प्रसिद्धसत्त्वरजस्त-  
मोलक्षणविषयनिर्दर्शनोपदर्शनेन अनुपलब्धिविशेषतः प्रतिबोध्यते  
तदाप्यनुमानमेवेति कौभावाप्रमाणस्यावकार्शः ? ततोऽयुक्तमु-  
क्तम्—‘न चाध्यक्षेणाभावोऽवसीयते तस्याभावविषयत्वविरोधात्,  
नाप्यनुमानेन हेतोरभावात्’ इति । ५

किञ्च, अभावप्रमाणेनाभावग्रहणे तस्यैव प्रतिपत्तिः स्यान्न  
प्रतियोगिनिवृत्तेः । अभावप्रतिपत्तेस्तन्निवृत्तिप्रतिपत्तिश्चेत्, सां  
किं प्रतियोगिस्वरूपसम्बद्धा, असम्बद्धा वा ? न तावत्सम्बद्धा;  
भावाभावयोस्तादात्म्यादिसम्बन्धार्सम्भवस्य वक्ष्यमाणत्वात् ।  
अथासम्बद्धा, तर्हि तत्प्रतिपत्तावपि कथं प्रतियोगिनिवृत्ति- १०  
सिद्धिः अतिप्रसङ्गात् ? तन्निवृत्तेरप्यपरतन्निवृत्तिप्रतिपत्त्यभ्यु-  
पगमे चानवस्था ।

यच्च ‘प्रमाणपञ्चकाभावः, तर्दन्यज्ञानम्, आत्मा वा ज्ञाननिर्मु-  
क्तोऽभावप्रमाणम्’ इति त्रिप्रकारतास्येत्युक्तम्; तदप्ययुक्तम्;  
यतः प्रमाणपञ्चकाभावो निरुपलब्धत्वात्कथं प्रमेयाभावं परिच्छि- १५  
न्यात् परिच्छित्तेर्ज्ञानधर्मत्वात् ? अथ प्रमाणपञ्चकाभावः प्रमेया-  
भावविषयं ज्ञानं जनयद्युपैचारदभावप्रमाणमुच्यते; नै, अभाव-  
स्यावस्तुतया तज्ज्ञानजनकत्वायोगात् । वस्तुवैव हि कार्यमुत्पाद-  
यति नावस्तु, तस्य सैकलसामर्थ्यविकलत्वात्त्वरविषाणवत् ।  
सामर्थ्यं वा तस्य भावरूपताप्रसक्तिः, तल्लक्षणात्वात्परमार्थसतो २०  
लक्षणान्तराभावात्, सत्तासम्बन्धादेस्तल्लक्षणस्य निवेत्यमान-

१ अभावं प्रत्यक्षतः । २ वृष्टान्तः । ३ अभावश्च । ४ इह भूतले षडो नास्ति  
वृक्षयत्नैः सत्यनुपलब्धेः । यत्र यत्न इत्यतः सत्यनुपलब्धिस्तत्र तस्याभावो यथा तमसि  
सत्यस्य । ५ विषये । ६ प्रत्यक्षप्रत्यक्षज्ञानानुमानैरभावः प्रतीयते यतः । - ७ सति ।  
८ वटाभावस्य । ९ प्रतिपत्तिः स्यात् । १० निवृत्तिः । ११ अनन्तरमेव प्रध्वंसा-  
भावनिराकरणे । १२ निवृत्त्याऽसम्बद्धस्य प्रतियोगिनो षट्स्य यथाऽभावः स्यात्तथा  
षट्स्यपि निवृत्त्याऽसम्बद्धस्याभावप्रसङ्गः—समयत्रासम्बद्धत्वाविशेषात् । १३ सा चासौ  
निवृत्तिश्च तन्निवृत्तिस्तस्याः सकाशात् । १४ परेण । १५ प्रतिपत्तिर्वदेन सम्बद्धाऽ-  
सम्बद्धेयादिप्रकारेण । १६ निषेध्याद्वटादन्यस्य भूतस्य परिज्ञानम् । १७ परेण ।  
१८ निःस्वभावत्वात् । १९ गणनाम्भोजवत् । २० निरुपाख्यः स्यात्प्रमेयाभावपरि-  
च्छेदकश्च स्यादित्युक्ते सत्याह । २१ निमित्तेऽयमुपचारः प्रमाणभूतज्ञानजनकत्वेन  
प्रमाणं प्रमाणपञ्चकाभावो न साक्षात्प्रमाणमिति । २२ तत्र । २३ शब्दशृङ्गवत् ।  
२४ सद्रूपत्वात्, दृष्टिपण्डवत् । २५ देशकालज्ञभावतया । २६ आदिशब्देन प्रमाण-  
विषयत्वम् । २७ समवायनिराकरणप्रवृत्तेः ।

त्वात् । न च यत्र प्रमाणपञ्चकामावस्तत्रावश्यं प्रमेयाभावज्ञान-  
मुत्पद्यते; परचेतोवृत्तिविशेषैरनैकान्तिकत्वात् ।

किञ्च, प्रमाणपञ्चकामावो ज्ञातः, अज्ञातो वा तज्ज्ञानहेतुः  
स्यात् ? ज्ञातश्चेत्कुतो ज्ञप्तिः ? तद्विषयप्रमाणपञ्चकामावश्चेत्,  
५ अनवस्था । प्रमेयाभावाच्चेदन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि प्रमेयाभावे  
प्रमाणपञ्चकामावसिद्धिः, तत्सिद्धेश्च प्रमेयाभावसिद्धिरिति ।  
अज्ञातस्य च ज्ञापकत्वायोगः “नाज्ञातं ज्ञापकं नाम” [ १ ]  
इति प्रेक्षावद्भिरभ्युपगमात्, अन्यथातिप्रसङ्गः । अक्षीदेस्तु  
कारकत्वादज्ञातस्यापि ज्ञानहेतुत्वाविरोधः । न चास्यापि कार-  
१० कत्वात्तद्वेतुत्वाविरोधः, निखिलसामर्थ्यशून्यत्वेनास्य कारक-  
त्वासम्भवादित्युक्तत्वात् । ततोऽयुक्तमुक्तम्—

“प्रत्यक्षाद्यवतारश्च भावांशो गृह्यते यदा ।

व्यापारस्तदनुत्पत्तेरभावांशो जिघृक्षिते ॥”

[ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९७ ] इति ।

१५ द्वितीयपक्षे तु यत्तदन्यज्ञानं तत्प्रत्यक्षमेष, पर्युर्दासवृत्त्या हि  
निषेध्याद् घटादेरन्यस्य भूतलादेर्ज्ञानमभावप्रमाणाख्यां प्रतिपद्य-  
मानं तद्विन्या(न्य)भावलक्षणाभावपरिच्छेदकमिष्टमेव । तृतीयपक्षे  
तु किमसौ सर्वथा ज्ञाननिर्मुक्तः, कथञ्चिद्वा ? तत्राद्यविकल्पे  
‘माता मे बन्ध्या’ इत्यादिवत्स्ववचनविरोधः । सर्वथा हि यद्यात्मा  
२० ज्ञाननिर्मुक्तः कथमभावपरिच्छेदकः ? परिच्छेदस्य ज्ञानधर्मत्वात् ।  
परिच्छेदकत्वे वा कथमसौ सर्वथा ज्ञाननिर्मुक्तः स्यात् ? अथ  
कथञ्चित् ; तथाहि—‘अभावविषयं ज्ञानमस्यास्ति निषेध्यविषयं तु  
नास्ति’ इति; तर्हि तज्ज्ञानमेवाभावप्रमाणं स्याच्चात्मा । तच्च भौवा-

१ अन्यथा । २ प्रमाणपञ्चकामावेऽपि प्रमेयाभावज्ञानं न परचेतोवृत्तिविशेषैर्व्यति-  
शतीन्द्रियत्वात् । ३ पुरुषेण । ४ प्रमेयाभावः । ५ वसः । ६ प्रमाणपञ्चकामावलक्षणा-  
भावप्रमाणादित्यर्थः । ७ ग्रन्थानवस्था । ८ अभावस्य । ९ अन्वेनाज्ञातस्य भूतला-  
द्विज्ञापकत्वप्रसङ्गात् । १० अज्ञादेरज्ञातस्य कथं ज्ञापकत्वमित्युक्ते भावः । ११ आदि-  
पदेन अदृष्टम् । १२ ज्ञानं प्रति कारणत्वं कारकत्वम् । १३ प्रमेयाभावज्ञानं । १४  
प्रमाणपञ्चकामावोऽभावज्ञानहेतुर्न भवति यत्र । १५ तदा भवति । १६ निषेध्यघटात् ।  
१७ भूतलस्य । १८ घटाभावः भूतलसद्भाव इति । १९ ( तस्माद् घटादन्यभूतलम् )  
तच्चासौ भावस्य (अर्थः) स तदन्यभावो लक्षणं यस्याभावस्य ) । २० उभयोरपि सम्म-  
तोयं ( भावान्तरस्वभावलक्षणः ) विकल्पः । २१ आत्मा । २२ प्रमेयाभावस्य ।  
२३ अभावः । २४ घटादन्यभूतलं तदेव स्वभावो यस्याभावस्य ।

न्तरस्त्रभावाभावग्राहकतयेन्द्रियैर्जनितत्वात्प्रत्यक्षमेव । ततो निराकृतमेतत्-“न तावदिन्द्रियेणैषा” इत्यादि, “वस्त्वसङ्करसिद्धिश्च तत्प्रामाण्यं समाश्रिता” इत्यादि च; तस्याः प्रत्यक्षादिप्रमाणत एव प्रसिद्धेः । कथं ततोऽभावपरिच्छित्तिरिति चेत्; कथं भावस्य? प्रतिभासाच्चेदितरत्र समानम् । न खलु प्रत्यक्षे-  
णान्येसंसृष्टः प्रथमतोऽर्थोऽनुभूयते, पश्चादभावप्रमाणादन्यासं-  
सृष्ट इति क्रमप्रतीतिरस्ति, प्रथममेवान्यासंसृष्टस्यार्थस्याध्यक्षे  
प्रतिभासनात् । न चान्यासंसृष्टार्थवेदनादन्यत्तदभाववेदनं नाम ।  
एतेनैतदपि प्रत्युक्तम् “स्वरूपपररूपाभ्याम्” इत्यादि; सर्वैः  
सर्वदोभयैरूपस्यैवान्तर्वहिर्वाऽर्थस्य प्रतिसंवेदनात्, अन्यथा तद-१०  
भावप्रसङ्गात् ।

यदप्युक्तम्-“यस्य यत्र यदोद्भूतिः” इत्यादि; तदप्युक्तम्;  
न ह्यनुभूतमनुभूतं नाम । नापि जिघृक्षाप्रभवं सर्वज्ञानम्, इन्द्रि-  
यमनोमात्रभावे भावात्तदभावे चाभावात्तस्य ।

यच्चान्यदुक्तम्-“मेयो यद्वदभावो हि” इत्यादि; तत्र ‘भावक-१५  
येण प्रत्यक्षेण नाभावो वेद्यते’ इति प्रतिज्ञा अन्यासंसृष्टभूतलगा-  
हिणा प्रत्यक्षेण निराक्रियते अनुष्णाग्निप्रतिज्ञावत् । ‘भावात्मके  
यथा मेये’ इत्याद्यप्युक्तम्; अभावादपि भावप्रतीतिः, यथा  
गगनतले पत्रादीनामधःपाताभावाद्वायोरिति । भावाच्चाइयादेः  
शीताभावस्य प्रतीतिः सकलजनप्रसिद्धा । ‘यो यथाविद्यः स २०  
तथाविधेनैव गृह्यते’ इत्यभ्युपगमे चाभावस्य मुद्गरादिहेतुत्वा-

१ अभावस्य प्रत्यक्षतो ग्राहणे सिद्धं यतः । २ नास्तीत्युत्पाद्यते सति । ३ आवाचेनैव  
सम्बन्धो योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि । ४ अभावग्राहकतायाः । ५ प्रत्यक्षादिप्रमाणापत्त-  
भते परिच्छित्तिः । ६ घटेन । ७ भूतलक्षणः । ८ अन्यसंसृष्टज्ञानानन्तरम् ।  
९ घटेन । १० एकदोभयरूपार्थविषयतयाऽनुभूयमानं ज्ञानं कथमितराद्येऽनुभूतमिति  
भावः । १० भूतलक्षणस्य । ११ भूतलक्षणः । १२ निजं सदसदात्मके । वस्तुनि  
ज्ञायते किञ्चिद्रूपं कैश्चित्कदाचनेत्यन्तरम् । १३ प्रमाणैः । १४ सदसदात्मकस्य ।  
१५ ज्ञानस्य । १६ घटादिः । १७ उभयरूपावैवेदनं न चेत् । १८ उभयरूपत्वा-  
दर्थस्य । १९ सर्वशस्त्रासर्वशस्य वा । २० वस्तुनि । २१ जिघृक्षा चोपजायते ।  
वेद्यतेनुमनस्तस्य तेन च व्यपदिश्यते इत्यन्तरम् । २२ प्रत्यक्षप्रतिपक्षम् । २३ अभाव-  
रूपम् । २४ मानस (अभावरूप) व्यवमिश्रितम् । भावात्मके यथा मेये नाऽभावस्य  
प्रमाणात् । तथैवाभावमेवेति न भावस्य प्रमाणात्तेति च । २५ अभावोऽभावपरिच्छेदः  
तथाविषयत्वादिति वा प्रतिज्ञा । २६ गगनतले वायुरस्ति पत्रादीनामधःपाताभावा-  
न्यथान्यथानुपपत्तेः । २७ प्रतीतिः । २८ भावरूपः ।



भावः स्यात् । शक्यं हि वक्तुम्-यो यथाविधः स तथाविधेनैव क्रियते यथा भावो भावेन, अभावश्चाभावः, तस्मादभावैर्नैव क्रियते । प्रत्यक्षवाच्यं चान्यत्रापि समाना ।

यदप्यभिहितम्-‘प्रागभावादिभेदाच्चतुर्विधश्चाभावः’ इत्यादि;  
५ तदप्यभिधानमात्रम्; यतः स्वकारणकलापात्स्वभावव्यवस्थि-  
तयो भावाः समुत्पन्ना नात्मानं परेण मिश्रयन्ति तस्यांपरत्वप्रस-  
सङ्गात् । न चान्यतोऽप्या (तो व्या)वृत्तस्वरूपाणां तेषां भिन्नोऽ-  
भाऽवांशः सम्भवति । भावे वा तस्यापि पररूपत्वाद्भावेन  
ततोपि व्यावर्तितव्यमित्यपरापराभावपरिकल्पनयानवस्था । अतो  
१० न कुर्वन्निद्भावेन व्यावर्तितव्यमित्येकैर्भावं विश्वं भवेत्, पर-  
भावाभावाच्च व्यावर्तमानस्यार्थस्य पररूपताप्रसङ्गः ।

✓ यदि चेतरेतरभाववशाद् घटः पटादिभ्यो व्यावर्तित, तर्हि त-  
रेतरभावोपि भावादभावान्तराच्च प्रागभावादेः किं स्वतो व्याव-  
र्तित, अन्यतो वा ? स्वतश्चेत्; तथैव घटोप्यन्येभ्यः किञ्च व्याव-  
१५ र्तित ? अन्यतश्चेत्; किमसंधारणधर्मात्, इतरेतरभावान्तराद्वा ?  
असाधारणधर्माभ्युपगमे स एव पटादिष्वपि युक्तः । इतरेतरा-  
भावान्तराद्येत्; बहुत्वमितरेतरभावस्यानवस्थाकौरि स्यात् ।

किञ्च, इतरेतरभावोप्यसाधारणधर्मेणाव्यावृत्तस्य, व्यावृत्तस्य  
वा भेदकः ? यद्यव्यावृत्तस्य; किं नैकैक्येभेदकः ? अथ व्यावृ-  
२० त्तस्य; तर्हि घटादिष्वपि स एवास्तु भेदकः किमितरेतरभाव-  
कल्पनया ?

१ श्रुतिपण्डादिना । २ घटप्रश्वंसामाव । ३ घटाभावं प्रति शुभ्रादीना  
व्यापारोपकम्भात् । ४ अभावप्रमाणेनाभावो शृण्वते इत्यत्रापि । कथम् ? प्रत्यक्षेणै-  
वाभावप्रतीतिरिति । ५ चक्रचीवरकुलादि । ६ घटादयः । ७ पटादिभावेन ।  
८ अन्यथा । ९ तस्य परस्य पटादेः । १० घटत्वप्रसङ्गात् । ११ पटादिभ्यः ।  
१२ घटादिभावानाम् । १३ यतोऽभावात् तेषां (घटादीनां) व्यावृत्तिः (पटादिभ्यः)  
शुक्ला । १४ सम्भवति चेत् कस्य ? घटस्य । पटादयः पटरूपा घटादिभ्यः  
सक्ताश्च तथा अभावाद्येति । १५ अभावाद्यस्य । १६ घटादिभ्यः । १७ घटादि-  
पदार्थेन । १८ भावादभावाद्वा । १९ अनवस्थादोषमयात् । २० इति हेतोः ।  
२१ घटादिस्वभावात् । २२ व्यावर्तकस्येतरेतरभावस्याभावात् । २३ ततश्च किं  
भवेत् । २४ घटस्य । २५ मिश्रत्वात् । २६ पटादिभ्यः । २७ पृथुबुद्धोदरादेः ।  
२८ व्यावर्तकः । २९ इतरेतरभावान्तरं किं स्वतो व्यावर्तते अन्यतो वेलादिप्रकारेण ।  
३० पटादेः सक्ताद्यादव्यावृत्तस्य घटादेः । ३१ घटस्य ।

किञ्च, अनेन घटे पटः प्रतिषिध्यते, पटत्वसामान्यं वा, उभयं वा ? प्रथमपक्षे किं पटविशिष्टे घटे पटः प्रतिषिध्यते, पटविविक्ते वा ? न तावदाद्यः पक्षो युक्तः, प्रत्यक्षविरोधात् । नापि द्वितीयः, तथाहि-किमितरेतराभावादन्या घटस्य पटविविक्तता, स एव वा विविक्ताशब्दाभिधेयः ? मेदै, तयैव घटे पटाभावव्यवहारसिद्धेः ५ किमितरेतराभावेन ? अथ स एव तच्छब्दाभिधेयः, तर्हि यस्माद्भावात्पटविविक्ते घटे पटाभावव्यवहारः सौन्योऽभावः, विविक्ताशब्दाभिधेयश्चान्यं इत्येकस्मिन्वस्तुनीतरेतराभावद्वयमायातम् ।

किञ्च, 'घटे पटो नास्ति' इति पटकूपताप्रतिषेधः, सा किं प्राप्ता प्रतिषिध्यते, अप्राप्ता वा ? प्राप्तायाः प्रतिषेधे पटेऽपि पटकूपताप्रतिषेधः स्यात् प्राप्तेरविशेषात् । अप्राप्तायास्तु प्रतिषेधानुपपत्तिः, प्राप्तिपूर्वकत्वात्तस्य । न ह्यनुपलब्धोर्दकस्य 'अनुदकः कमण्डलुः' इति प्रतिषेधो घटते । अथान्यत्र प्राप्तमेव पटकूपमन्यत्र प्रतिषिध्यते, तत्रापि समवायप्रतिषेधः, संयोगप्रतिषेधो वा ? न तावत्समवायप्रतिषेधः, रूपादेरेकत्र समवायेन सम्बन्ध-१५ स्यान्मन्त्र वस्तुवन्तरेऽन्योन्याभावतोऽभावव्यवहारानुपलम्भात् । संयोगप्रतिषेधोऽप्यनुपपन्नः, घटपटयोः कदाचित्संयोगस्यापि सम्भवात् । अथ पटेन संयोगरहिते घटे पटप्रतिषेधो न तत्संयोगवति । नन्वेवं पटसंयोगरहितत्वमेवाभावोस्तु, न त्वन्यस्माद्भावात्पटसंयोगरहिते घटे पटाभाव इति युक्तम् । तत्र घटे २० पटप्रतिषेधो युक्तः ।

नापि पटत्वप्रतिषेधः, तस्याप्येकत्र सम्बन्धस्यान्यत्र सम्बन्धाभावादेव प्रतिषेधानुपपत्तेः । नोप्युभयप्रतिषेधः, प्रागुक्ताशेषदोषानुपपन्नात् ।

किञ्च, इतरेतराभावप्रतिपत्तिपूर्विका घटप्रतिपत्तिः, घटग्रहण-२५ पूर्वकत्वं इतरेतराभावग्रहणस्य ? आद्यपक्षेऽन्योन्याश्रयत्वम्, तथाहि-'इतरेतराभावो घटसंबन्धित्वेनोपलभ्यमानो घटस्य विशेषणं न पदार्थान्तरसम्बन्धित्वेन, अन्यथा सर्वं सर्वस्य विशेषणं

१ उभयं, पटः पटत्वं चेत्यर्थः । तृतीयपक्षोऽयम् । २ असाधारणस्वरूपता । ३ इतरेतराभावविविक्ततयोः । ४ इतरेतराभावः । ५ पटस्वरूपस्य । ६ एवं परस्परनिष्ठापादनं भवति । ७ उभयत्र । ८ पुरुषस्य । ९ आत्मानवितानीभूतरूपादेः । १० पटादौ । ११ घटादौ । १२ इतरेतराभावात् । १३ द्वितीयपक्षः । १४ घटे । १५ तृतीयपक्षः । १६ पटपटत्वयोः । १७ घटसेतरेतराभावोऽयमिति ।

स्यात् । घटसम्बन्धित्वप्रतिपत्तिश्च घटग्रहणे सत्युपपद्यते । सोऽपि व्यावृत्त एव पटादिभ्यः प्रतिपत्तव्यः । ततो यावत्पूर्वं घटसम्बन्धित्वेन व्यावृत्तेरुपलम्भो न स्यान्न तावद्यावृत्तिविशिष्टतया घटः प्रत्येतुं शक्यः, यावच्च पटादिव्यावृत्तत्वेन न प्रतिपन्नो घटो न तावत्सम्बन्धित्वेन व्यावृत्तिं विशेषयति इति ।

अथ घटग्रहणपूर्वकत्वमितरेतराभावग्रहणस्य, अत्राप्यभावो विशेष्यो घटो विशेषणम् । तद्ग्रहणं च पूर्वमन्वेषणीयम् “नागृहीत-विशेषणा विशेष्ये बुद्धिः” [ ] इत्यभिधानात् । तत्रापि घटो गृह्यमाणः पटादिभ्यो व्यावृत्तो गृह्यते, अव्यावृत्तो वा ? तत्र न १० तावत्पटादिभ्योऽव्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपता घटते, अन्यथा पटादेरपि तथैव पटादिरूपताप्रसङ्गादभावकल्पनावैयर्थ्यम् । अथ तेभ्यो व्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपताप्रतिपत्तिः प्रार्थ्यते; तत्रापि किं कतिपयपटादिव्यक्तिभ्योऽसौ व्यावर्त्तते, सकल-पटादिव्यक्तिभ्यो वा ? प्रथमपक्षे कुतश्चिदेवासौ व्यावर्त्तते, न १५ सकलपटादिव्यक्तिभ्यः । द्वितीयपक्षेऽपि न निखिलपटादिभ्योऽस्य व्यावृत्तिर्घटते, तासामानस्येन ग्रहणासम्भवात् । इतरेतराभ्रयत्वं च, तथाहि—‘यावत्पटादिभ्यो व्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपता न स्यान्न तावद् घटात्पटादयो व्यावर्त्तन्ते, यावच्च घटादिव्यावृत्तानां पटादीनां पटादिरूपता न स्यान्न तावत्पटादिभ्यो घटो व्याव- २० र्त्तते इति ।

अस्तु वा यथाकथञ्चित्पटादिभ्यो घटस्य व्यावृत्तिः, घटान्तरात् कथमसौ व्यावर्त्तते इति सम्प्रर्चार्यम्—किं घटरूपतया, अन्यथा वा ? यदि घटरूपतया; तर्हि सकलघटव्यक्तिभ्यो व्यावर्त्तमानो घटो घटरूपतामादाय व्यावर्त्तते इत्यायातम् अघटत्वम- २५ न्यासां घटव्यक्तीनाम् । अथाघटरूपतर्या; तत्किमघटरूपता पटादिवद् घटेऽप्यस्ति ? तथा चेत्; तर्हि यो व्यावर्त्तते घटान्तरा-दघटत्वेन घटस्तस्याघटत्वं स्यात् । तच्च विप्रतिषिद्धम्—यद्यघटो घटः, कथं घटः ? तस्मात्प्रार्थादर्थान्तरमभावः ।

१ इतरेतराभावस्य । २ इतरेतराभावप्रतिपत्तेर्वदप्रतिपत्तिपूर्वकत्वं यतः । ३ इतरे-तराभावस्य । ४ घटसम्बन्धित्वमितरेतराभावस्य । ५ द्वितीयपक्षः । ६ प्रवर्त्तते । ७ घटस्य पूर्वं ग्रहणेऽपि । ८ पक्षद्वये । ९ जैनमते क्षणतासाधारणधर्मेण घटः पटादिभ्यो व्यावृत्तो भवति, न तु इतरेतराभावादिति । १० पटादिभ्योऽव्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपता-यति । ११ समर्थते परेण । १२ ग्रहणे वा सर्वज्ञत्वादिसङ्कः । १३ इतरेतरा-भावः । १४ विचार्यम् । १५ अघटरूपतया । १६ तर्हि । १७ विरुद्धम् ।

ननु चाभावस्यार्थान्तरत्वानभ्युपगमे कथं तन्निमित्तको व्यवहारः ? तथाहि—किं घटावष्टब्धं भूतलं घटाभावो व्यपदिश्यते, सद्रहितं वा ? प्रथमपक्षे प्रत्यक्षविरोधः । द्वितीयपक्षे तु नाममात्रं भिद्यते—घटैरहितत्वम्, घटाभावविशिष्टत्वमिति, तदप्यसम्प्रतम् ; यतः किं घटाकारं भूतलं येन 'घटो न भवति' इत्युच्यमाने ५ प्रत्यक्षविरोधः स्यात्, यद्भूतलं तद्वटाकाररहितत्वाद्धटो न भवत्येव । ननु यद्यपि भूतलादर्थान्तरं घटाभावः, तर्हि घटसम्बद्धेऽपि भूतले 'घटो नास्ति' इति प्रत्ययः स्यात्, न चैवम्, ततो यथा भूतलादर्थान्तरं घटस्तथा तदभावोपीति, तदप्यसारम् । घटासम्भविभूतलगतासाधारणधर्मोपलक्षितं हि भूतलं घटाभावो १० व्यपदिश्यते । घटावष्टब्धं तु घटभूतलगतसंयोगलक्षणसाधारणधर्मविशिष्टत्वेन तथोत्पन्नमिति न 'अघटं भूतलम्' इति व्यपदेशं लभते । तत्रेतरतराभावो विचारक्षमः ।

नापि प्रागभावः, तस्याप्यर्थार्थान्तरस्य प्रमाणतोऽप्रतिपत्तेः । ननु 'सोत्पत्तेः प्राग्भासीद् घटः' इति प्रत्ययोऽसद्विषयः, सत्प्रत्य- १५ यविलक्षणत्वात्, यस्तु सद्विषयः स न सत्प्रत्ययविलक्षणो यथा 'सद्रूपम्' इत्यादिप्रत्ययः, सत्प्रत्ययविलक्षणत्वायं तस्मादसद्विषयः, इत्यनुमानार्थतोऽर्थान्तरस्य प्रागभावस्य प्रतीतिरित्यपि सिध्यति, 'प्रागभावादौ नास्ति प्रध्वंसादिः' इति प्रत्ययेनानेकान्तात् । तस्याप्यसद्विषयत्वेऽभावानैवस्था । अथ 'भावे भूमा- २० गादौ नास्ति घटादिः' इति प्रत्ययो मुख्याभावविषयः, 'प्रागभावादौ नास्ति प्रध्वंसादिः' इति प्रत्ययस्तूपचरिताभावविषयः, ततो ज्ञानवस्थेति, तदप्युक्तम्, परमार्थतः प्रागभावादीनां साङ्कर्यप्रसङ्गात् । न खलूपचरितेनाभावेनान्योन्यमभावानां व्यतिरेकः सिध्येत्, सर्वत्र मुख्याभावकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात् । २५

-- १ नास्तीति विकल्पो नास्तीत्यभिधानं च । २ अर्थादर्थान्तरमभावं समर्थयन्ति परे । ३ जैनैर्मन्त्रिः । ४ नार्थभेदः । ५ भूतलम् । ६ जैनमते । ७ परमते । ८ घटभूतलयोः किं तादात्म्यं प्रतिपिच्यते जाभाराधेवभावो वा ? तत्रापि पक्षं विवेचयति । ९ भूतलगतं विविक्तत्वं मित्रं घटगतं विविक्तत्वं मित्रम् । १० समयगतत्वात् । ११ घटावष्टब्धत्वेन । १२ घटस्य प्रागभावो सुत्तिष्ठलक्षणोऽस्मात् । १३ प्रागभावः । १४ अर्थात् । १५ अयं सत्प्रत्ययविलक्षणश्च भवति, न त्वसद्विषयः । १६ अभावे अभावोऽस्ति यतः । १७ प्रागभावादौ नास्ति प्रध्वंसादिरिति व्यवहारः प्रयोजनसमाधानात्मकद्वयो निमित्तमित्युपचारप्रवृत्तिः—निमित्तप्रयोजनवशादुपचारप्रवृत्तेः । १८ भेदः । १९ अन्यथा ।

‘यदप्युक्तम्—‘न भावस्वभावः प्रागभावादिः सर्वदा भावविशेष-  
णत्वात्’ इति; तदप्युक्तिमात्रम्; हेतोः पक्षाव्यापकत्वात्, ‘न  
प्रागभावः प्रध्वंसादौ’ इत्यादेरभावविशेषणस्याप्यभावस्य प्रसिद्धेः।  
गुणादिनानेकान्ताच्च; अस्य सर्वदा भावविशेषणत्वेऽपि भावस्व-  
भावात्। ‘रूपं पश्यामि’ इत्यादिव्यवहारे गुणस्य स्वतन्त्रस्यापि  
प्रतीतेः सर्वदा भावविशेषणत्वाभावे ‘अभावस्तत्त्वम्’ इत्यभा-  
वस्यापि स्वतन्त्रस्य प्रतीतेः शश्वद्भावविशेषणत्वं न स्यात्।  
सार्मैर्ध्यात्तद्विशेष्यस्य द्रव्यादेः सम्प्रत्ययात्सदास्य भावविशेषणत्वे  
गुणादेरपि सर्वदा भावविशेषणत्वमस्तु, तद्विशेष्यस्य द्रव्यस्य  
१० सार्मैर्ध्यातो गम्यमानत्वात्।

किञ्च, प्रागभावः सादिः सान्तः परिकल्प्यते, सादिरनन्तः,  
अनादिरनन्तः अनादिः सान्तो वा? प्रथमपक्षे प्रागभावात्पूर्वं घट-  
स्योपलब्धिप्रसङ्गः, तद्विरोधिनः प्रागभावस्याभावात्। द्वितीयेऽपि  
तदुत्पत्तेः पूर्वमुपलब्धिप्रसङ्गस्तत एव। उत्पत्ते तु प्रागभावे  
१५ सर्वदानुपलब्धिः स्यात्तस्यानन्तत्वात्। तृतीये तु सदानुप-  
लब्धिः। चतुर्थे पुनः घटोत्पत्तौ प्रागभावस्याभावे घटोपलब्धि-  
वद्विशेषकार्योपलब्धिः स्यात्, सकलकार्याणामुत्पत्त्यमानानां प्राग-  
भावस्यैकत्वात्।

ननु यावन्ति कार्याणि तावन्तस्तत्प्रागभावाः, तत्रैकस्य प्राग-  
२० भावस्य विनाशेऽपि शेषोत्पत्त्यमानकार्यप्रागभावानामविनाशाच्च  
घटोत्पत्तौ सकलकार्योपलब्धिरिति; तर्ह्यनन्ताः प्रागभावास्ते  
किं स्वतन्त्राः, भावतन्त्रा वा? स्वतन्त्राश्चेत्कथं न भावस्व-  
भावाः कालादिवत्? भावतन्त्राश्चेत्किमुत्पन्नभावतन्त्राः, उत्पत्त्य-  
मानभावतन्त्रा वा? न तावदादिविकल्पः, समुत्पन्नभावकाले  
२५ तत्प्रागभावविनाशात्। द्वितीयविकल्पोऽपि न श्रेयान्; प्रागभाव-  
काले स्वयमसतामुत्पत्त्यमानभावानां तदौघयत्वाद्योगात्, अन्यथा

१ दण्डेन रूपेण च व्यभिचारः स्यात्तत्परिहारार्थं सर्वदेति विशेषणं दण्डस्य  
कदाचिद्विशेष्यरूपतयापि यावात्। कथम्? दण्डं पश्यामीति। २ यतोऽभावोऽप्यभावस्य  
विशेषणं भवेत् अनोऽभावस्यापि। ३ प्रागभावो विशेषणमात्रः। ४ अतोऽभावोऽभावस्य  
विशेषणमपि भवेद्भावोऽभावस्यापि। ५ घटस्य। ६ विशेष्यत्वेन। ७ अभावस्तत्त्वम्।  
कस्य? घटस्येति। ८ यथा अभावः कृत्वेत्युच्यमाने पटस्येति, तथा गुणाः कस्य?।  
द्रव्यस्येति। ९ विनाशोपेतः। १० घटस्य। ११ घटस्य। १२ तद्विरोधिनः  
प्रागभावस्य सर्वदा भावादेव। १३ यदादिकार्यस्य। १४ घटोत्पत्तौ घटोपलब्धि-  
वद्विशेषकार्योपलब्धिं परिहरति परः। १५ तेषां प्रागभावानाम्।

प्रध्वंसाभावस्यापि प्रध्वस्तपदार्थाश्रयत्वप्रसङ्गः । न चानुत्पन्नः प्रध्वस्तो ध्वार्थः कस्यचिदाश्रयो नाम अतिप्रसङ्गात् ।

अथैक एव प्रागभावो विशेषणभेदाद्विभक्त उपचर्यते 'घटस्य प्रागभावः पटादेर्वा' इति, तथोत्पन्नार्थविशेषणतया तस्य विनाशोऽप्युत्पत्त्यमानार्थविशेषणत्वेनाविनाशान्नित्यत्वमपीति । नन्वेवं प्रागभावादिचतुष्टयकल्पनानर्थक्यम् सर्वत्रैकस्यैवाभावस्य विशेषणभेदास्यार्थं मेदव्यवहारोपपत्तेः । कार्यस्य हि पूर्वेण कालेन विशिष्टोर्थः प्रागभावः, परेण विशिष्टः प्रध्वंसाभावः, नानार्थविशिष्टः स एवेतरेतराभावः, कालत्रयेऽप्यत्यन्तानास्वभावभावविशेषणोऽत्यन्ताभावः स्यात्, प्रत्ययभेदस्यापि तथोपपत्तेः, सत्तै-१० कत्वेऽपि द्रव्यादिविशेषणभेदात्प्रत्ययभेदवत् । यथैव हि सत्प्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकत्वं सत्तायाः तथैवासत्प्रत्ययाविशेषलिङ्गाभावाच्चाभावस्यापि । अथ 'प्राज्ञासीत्' इत्यादिप्रत्ययविशेषाच्चतुर्विधोऽभावः, तर्हि प्राज्ञासीत्पञ्चाङ्गविभ्यति सम्प्रत्यस्तीति कालभेदेन, पाटलिपुत्रेस्ति चित्रकूटेस्तीति देशभेदेन, द्रव्यं १५ गुणः कर्म चास्तीति द्रव्यादिभेदेन च प्रत्ययभेदसङ्गात्वात्प्राक्सत्तादयः सत्ताभेदाः किन्नेत्यन्ते ? प्रत्ययविशेषाच्चद्विशेषणान्येव भिद्यन्ते तस्यै तन्निमित्तकत्वाच्च तु सत्तै, ततः सैकैवेत्यभ्युपगमे अभावभेदोऽपि नाभूत्सर्वथा विशेषणमावात् ।

अथामिधीयते—अभावस्य सर्वथैकत्वे विवक्षितकार्योत्पत्तौ २० प्रागभावस्याभावे सर्वत्राभावस्याभावानुपपन्नात्सर्वं कार्यमनैघनन्तं सर्वात्मैकं च स्यात्, तदप्यभिधानमात्रम्, सत्तैकत्वेऽपि समानत्वात् । विवक्षितकार्यप्रध्वंसे हि सत्ताया अभावे सर्वत्राभावप्रसङ्गः तस्या एकत्वात्, तथा च सकलशून्यता । अथ तत्प्रध्वंसेऽपि नास्याः

१ प्रागभावस्य प्रध्वंसाभावस्य वा । २ अनुत्पन्नः प्रध्वस्तो वा सत्त्वः । प्रासादस्याभयो भवेत् । ३ घटादेर्वै । ४ प्रागभावस्य । ५ घटादि । ६ प्रागभावादिप्रकारेण, ७ पटलक्षणस्रोतसेः सप्ताशात् । ८ जर्वः । ९ घटपटलक्षणादि । १० अभावलक्षणोर्थः । ११ अत्यन्तं सर्वथा नाना (भिन्नाः) स्वभावा येषां तेऽल्लनानास्वभावा गगनाम्बोजखरविषाण्यदयस्त्ये च ते भावाश्च ते विशेषण यस्याभावस्य । १२ प्रत्ययो ज्ञानम् । १३ विशेषणभेदादेव । प्रागभावस्यैकत्वकल्पनाप्रकारेण । १४ द्रव्यं सङ्गुणः सत्कर्म सत् । १५ परमते । १६ जैनमते एकत्वम् । १७ घटः । १८ कारण । १९ आदिपदेन पञ्चात्सत्ता सम्प्रसिद्धा च ग्राह्या । २० परेण भवता । २१ घटादयः । २२ प्रत्ययविशेषणस्य । २३ (सत्तायाः विशेषणनिमित्तकत्वाभावादित्यर्थः) । २४ प्रागभावाभावादनादि प्रध्वंसाभावाभावादनन्तम् । २५ इतरेतराभावाभावाद ।

- प्रध्वंसो नित्यत्वात्, अन्यथार्थान्तरेषु सत्प्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात्; तदन्यत्रापि समानम्, समुत्पन्नैककार्यविशेषणतया ह्यभावस्याभावः वेपि न सर्वथाऽभावः भावान्तरेष्वभावप्रतीत्यभावप्रसङ्गात् । यथा चाभावस्य नित्यैकरूपत्वे कार्यस्योत्पत्तिर्न स्यात् तस्य तत्प्र-
- ५ तिवन्धकत्वात्, तथा सत्ताया नित्यत्वे कार्यप्रध्वंसो न स्यात् तस्यास्तत्प्रतिबन्धकत्वात् । प्रसिद्धं हि प्रध्वंसात्प्राक्प्रध्वंसप्रतिबन्धकत्वं सत्तायाः, अन्यथा सर्वदा प्रध्वंसप्रसङ्गात् कार्यस्य स्थितिरेव न स्यात् । यदि पुनर्वलवत्प्रध्वंसकारणोपनिपाते कार्यस्य सत्ता न ध्वंसं प्रतिवध्नाति, ततः पूर्वं तु बलवद्विनाशकारणोप-
- १० निपाताभावात् प्रतिवध्नात्येवातो न प्रागपि प्रध्वंसप्रसङ्गः इत्येतदन्यत्रापि न काकैर्मक्षितम्, अभावोपि हि बलवदुत्पादकारणोपनिपाते कार्यस्योत्पादं सन्नपि न प्रतिरुणद्धि, कार्योत्पादात्पूर्वं उत्पादककारणाभावात् प्रतिरुणद्ध्येव, अतो न प्रागपि कार्योत्पत्तिप्रसङ्गो येन कार्यस्यानादित्वं स्यात् ।
- १५ तत्र प्रागभावोपि तुच्छस्वभावो घटते किन्तु भावान्तरस्वभावः । यदभावे हि नियमतः कार्योत्पत्तिः स प्रागभावः, प्रागन्तरपरिणामविशिष्टं सृष्टव्यम् । तुच्छस्वभावत्वे चास्य सव्येतर्गोविषाणादीनां सहोत्पत्तिनियमवतामुपादानसङ्करप्रसङ्गः प्रागभावाविशेषात् । यत्र यदा यस्य प्रागभावाभावस्तत्र तदा
- २० तस्योत्पत्तिरित्यप्ययुक्तम्; तस्यैवानियमात् । स्वोपादानैरेनियमात्तन्नियमेव्यन्योन्याभयः ।

प्रध्वंसाभावोपि भौवस्वभाव एव, यदभावे हि नियता कार्यस्यै

१ अभावे । २ प्रागभावस्य । ३ प्रध्वंसात्पूर्वं सत्तायाः प्रध्वंसप्रतिबन्धकत्वं न स्यादिति । ४ सर्वदा प्रध्वंसप्रसङ्गात्कार्यस्य स्थितिरेव न स्यादेतत्परिहरति -परः । ५ कार्यकालादुत्तरेण कालेन । ६ मुद्रादि । ७ विनाशकारणसन्निधानात्पूर्वम् । ८ अभावे । ९ सृष्टिपण्डादि । १० प्रागभावः कः भावान्तरं च किमित्युक्ते आह । ११ यस्य सृष्टिपण्डस्य । १२ स्वस्य विनाशेन घटरूपेण परिणमते सृष्टिपण्डः । १३ सृष्टिपण्डलक्षणः । १४ घटोत्पत्तेः । १५ साक्षादि । १६ असोपादानमेतदस्यैतदिति विवेचयितुमशक्यत्वात् । १७ तुच्छभावस्य प्रागभावस्यैकत्वात् । १८ उपादानकारणे । १९ कार्यस्य । २० सव्यगोविषाणस्यायं प्रागभावः असव्यस्यायं प्रागभाव इति प्रागभावस्यैव नियमाभावात् । २१ सव्यविषाणकार्यं । २२ स्वानुपादानं । २३ प्रागभावनियमे । २४ सव्यविषाणस्योपादाननियमे सिद्धे सव्यस्य प्रागभावनियमः सिध्येत् । प्रागभावनियमसिद्धौ च सव्यस्योपादाननियमसिद्धिरिति । २५ उत्तरक्षणवर्तिकपाललक्षणः । २६ यस्य कपालस्य । २७ घटस्य ।

विपत्तिः स प्रध्वंसः, सुदृव्यान्तरोत्तरपरिणामः । तस्य हि तुच्छत्वभावत्वे मुद्गरादिव्यापारवैयर्थ्यं स्यात् । स हि तद्व्यापारेण घटादेर्मिन्नः, अमिन्नो वा विधीयते ? प्रथमपक्षे घटादेस्तदवस्थत्वप्रसङ्गात् 'विनष्टः' इति प्रत्ययो न स्यात् । विनाशसम्बन्धाद् 'विनष्टः' इति प्रत्ययोत्पत्तौ विनाशतद्वतोः कश्चित्सम्बन्धो वक्तव्यः—स हि तादात्म्यलक्षणः, तदुत्पत्तिस्वरूपो वा स्यात्, तद्विशेषणविशेष्यभावलक्षणो वा ? तत्र न तावत्तादात्म्यलक्षणोऽसौ घटते; तयोर्मेदाम्युपगमात् । नापि तदुत्पत्तिलक्षणः, घटादेस्तदकारणत्वात्, तस्य मुद्गरादिनिमित्तकत्वात् । तदुभयनिमित्तत्वाददोषः, इत्यप्यसुन्दरम्; मुद्गरादिवद्विनाशो-१० उत्तरकालमपि घटादेरुपलम्भप्रसङ्गात् । तस्य स्वविनाशं प्रत्युपादानकारणत्वाच्च तत्काले उपलम्भः, इत्यप्यसमीचीनम्; अभावस्य भावान्तरस्वभावताप्रसङ्गात् तं प्रत्येवास्योपादानकारणत्वप्रसिद्धेः । तयोर्विशेषणविशेष्यभावः सम्बन्धः, इत्यप्यस्तु; परस्परप्रसम्बद्धयोस्तदसम्भवात् । सम्बन्धान्तरेण-१५ सम्बद्धयोरेव हि विशेषणविशेष्यभावो दृष्टो दण्डपुरुषादिवत् । न च विनाशतद्वतोः सम्बन्धान्तरेण सम्बद्धत्वमस्तीत्युक्तम् । तन्न तद्व्यापारेण मिन्नो विनाशो विधीयते । अमिन्नविनाशविधाने तु 'घटादिरेव तेन विधीयते' इत्यायातम्; तच्चायुक्तम्; तस्य प्रागेवोत्पन्नत्वात् । २०

ननु प्रध्वंसस्योत्तरपरिणामरूपत्वे कपालोत्तरक्षणेपु घटप्रध्वंसस्याभावात्तस्य पुनरुज्जीवनप्रसङ्गः, तदप्यनुपपन्नम्; कारणस्य कार्योपमर्दनात्मकत्वाभावात् । कार्यमेव हि कारणोपमर्दनात्मकत्वधर्माधारतया प्रसिद्धम् ।

यच्च कपालेभ्योऽभावस्यार्थान्तरत्वं विभिन्नकारणप्रभवतयो-२५ च्यते; तथाहि—'उपादानघटविनाशो बलवत्पुरुषप्रेरितमुद्गराद्यभिघातादवयवक्रियोत्पत्तेरवयवविभागतः संयोगविनाशादेवोत्प-

१ सुदृव्यं कुशलं तस्मान्तरपरिणामो घटः । तस्योत्तरपरिणामस्तु कपाललक्षणः । २ कर्मा । ३ प्रध्वंसाभावविशिष्टो घट इति । ४ परेण । ५ घटादुत्पत्तिः प्रध्वंसस्येति । ६ तं विनाशं प्रति । ७ यथा घटस्य कपालादि भावान्तरम् । ८ कपाललक्षणं भावान्तरस्वभावम् । ९ तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणेन । १० मुद्गरादिव्यापारेण कर्मा । ११ घटात् । १२ द्वितीयपक्षे । १३ मुद्गरादिव्यापारात् । १४ कपाल । १५ घटस्य । १६ कपाल । १७ हेतोर्विभिन्नकारणत्वं समर्पयति परः । १८ बलवत्लक्षणायाः ।



द्यते, उपादेयकपालोत्पादस्तुं स्वारम्भकार्थवर्कर्मसंयोगविशेषादे-  
वाविर्भवति' इति; तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; अस्य विनाशो-  
त्पादकारणप्रक्रियोद्घोषणस्याप्रातीतिकत्वात् । केवलमन्यप्रता-  
रितेन भवेता परः प्रतार्यते । तस्मादन्वपरम्परापरित्यागेन बल-  
५ वत्पुरुषप्रेरितमुद्रादिव्यापाराद् घटाकारविकलकपालाकारसूद्र-  
व्योत्पत्तिरभ्युपगन्तव्या अलं प्रतीत्यपलापेन ।

'क्षीरे दध्यादि यच्चास्ति' इत्याद्यप्यभावस्य भावस्वभावत्वे-  
सत्येष घटते, दध्यादिविवर्कस्य क्षीरादेरेव प्रागभावादितया-  
ध्यक्षादिप्रमाणतोध्यवसायात् । ततोऽभावस्योत्पत्तिसामग्र्याः  
१० विषयस्य चोक्तप्रकारेणासम्भवात् पृथक्प्रमाणता । इति स्थित-  
मेतत्प्रत्यक्षेतरमेदादेव द्वैधैव च प्रमाणमिति ।

तत्राद्यप्रकारं विशदमित्यादिना व्याचष्टे—

**विशदं प्रत्यक्षम् ॥ ३ ॥**

विशदं स्पष्टं यद्विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् । तथा च प्रयोगः—विश-  
५ दज्ञानात्मकं प्रत्यक्षं प्रत्यक्षत्वात्, यत्तु न विशदज्ञानात्मकं  
तत्र प्रत्यक्षम् यथाऽनुमानादि, प्रत्यक्षं च विवादाध्यासितम्;  
तस्माद्विशदज्ञानात्मकमिति ।

अनेनाऽर्कसाद्रूपदर्शनात् 'बहिरत्र' इति ज्ञानम्, 'यावान्  
कश्चिद् भावः कृतको वा स सर्वः क्षणिकः, यावान् कश्चिद्रूप-  
१० वान्प्रदेशः सोऽग्निमान्' इत्यादि व्याप्तिज्ञानं चास्पष्टमपि प्रत्यक्ष-  
माचक्षोणः प्रत्याख्यातः; अनुमानस्यापि प्रत्यक्षताप्रसङ्गात् प्रत्यक्ष-  
मेवैकं प्रमाणं स्यात् ।

किञ्च, अर्कसाद्रूपदर्शनाद्बहिरत्रेत्याद्विज्ञाने सामान्यं वा प्रति-  
भासेत, विशेषो वा? यदि सामान्यम्, न तत्तर्हि प्रत्यक्षम्,  
१५ तस्य तद्विषयत्वानभ्युपगमोत् । अभ्युपगमे वा 'प्रमाणद्वैविध्यं  
प्रमेयद्वैविध्यात्' इत्यस्य व्याघातः, सैविकल्पकत्वप्रसङ्गश्च ।  
विशेषविषयत्वे ततः प्रवर्त्तमानस्यैव सन्देहो न स्यात् 'ताणो

१ परमाणु । २ ततः संयोगविशेषः । ३ ताद्विः । ४ योगेन । ५ प्रथमसामान्य-  
रूपा । ६ मित्रस्य । ७ अभावप्रमाणस्य । ८ दृष्टान्तस्मरणमन्तर्येण । ९ बौद्धः ।  
१० उभयत्रास्पष्टत्वाविशेषात् । ११ प्रत्यक्षं सामान्यविषयं यदि । स्वभावाकारपरी-  
णतम् । १२ सौगतेन । १३ प्रत्यक्षं विशेषं गृह्णाति अनुमानं सामान्यं गृह्णाति इति  
बौद्धमतं न घटेत्—प्रत्यक्षेणैव सामान्यग्रहणादिति । १४ अन्यस्य । १५ प्रत्यक्षस्य ।  
१६ सामान्यविषयत्वात् । १७ नुः ।

वात्राग्निः पाणो वा' इति सन्निहितवत् । न खलु सन्निहितं पावकं पश्यतस्तत्र सन्देहोस्ति । सन्देहे वा शब्दाल्लिङ्गाद्वा प्रति(ती)र्यतोऽप्यसौ स्यात् । तथा चेदमसङ्गतम्—“शब्दाल्लिङ्गाद्वा विशेषप्रतिपत्तौ न तत्र सन्देहः” [ ] इति । तत्रेदं प्रत्यक्षम् । किं तर्हि ? लिङ्गदर्शनप्रभवत्वादनुमानम् । ‘दृष्टान्तमन्तरेणाप्यनुमानं भवति’ ५ इत्येतच्चाग्रे वक्ष्यते ।

व्याप्तिज्ञानं चास्पष्टत्वेनाप्रत्यक्षं व्यवहारिणां सुप्रसिद्धम् । व्यवहारानुकूल्येन च प्रमाणचिन्ता प्रतन्यते “प्रामाण्यं व्यवहारेण” [प्रमाणवा० ३।५] इत्यादिवचनात् । न च तेषां सर्वे क्षणिका भावाः कृतका वाऽऽश्यादयो धूमादयो वा स्पष्टज्ञानविषया इत्य-१० भ्युपगमोऽस्ति, अनुमानानर्थक्यप्रसङ्गात् । सर्वे हि व्याप्यं व्यापकं च स्पष्टतया युगपन्निश्चिन्वतो न किञ्चिदनुमानसाध्यम्, अन्यथा योगिनोप्यनुमानप्रसङ्गः । निश्चितं समारोपस्याप्यसम्भवो विरोधात् । कालान्तरमाविसमारोपनिषेधकत्वेनानुमानस्य प्रामाण्ये कचिदुपलब्धदेवदत्तस्य पुनः कालान्तरेऽनुपलम्भसमा-१५ रौपे सति र्येदनन्तरं तैत्सरणादिकं तदपि प्रमाणं भवेत् । तत्र व्याप्तिज्ञानमप्यस्पष्टत्वात् प्रत्यक्षं युक्तम् ।

ननु चास्पष्टत्वं ज्ञानधर्मः, अर्थधर्मो वा ? यदि ज्ञानधर्मः, कथमर्थस्यास्पष्टत्वम् ? अन्यस्यास्पष्टत्वादन्यस्यास्पष्टत्वेऽतिप्रसङ्गात् । अर्थधर्मत्वे कथमतो व्याप्तिज्ञानस्याप्रत्यक्षताप्रसिद्धिः ? २० व्यधिकरणाद्धेतोः साध्यसिद्धौ ‘काकस्य काण्ड्याद्वलः प्रासादः’ इत्यादेरपि गमकत्वप्रसङ्गः, इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम् । स्पष्टत्वेपि समानत्वात् । तदपि हि यदि ज्ञानधर्मस्तर्हि—कथमर्थे स्पष्टता अतिप्रसङ्गात् ? विषये विषयिधर्मस्योपचाराददोषेऽत एव सौन्यत्रांषि मा भूत् । संवेदनस्यैव ह्यस्पष्टता धर्मः स्पष्ट-२५

१ जानतः । २ सन्देहे सति । ३ जैनं प्रति बहुक्तम् । ४ परीक्षा । ५ पुंसः । ६ समारोपव्यवच्छेदाभैरनुमानमिति चेन्नैत्याह । ७ जयें । ८ निश्चयश्चेत्समारोपः कथमिति । ९ सर्वं क्षणिकं सत्त्वात्कृतकत्वादेति । १० नाहमद्राक्षमिति । ११ यतः । १२ यस्योपलम्भस्य । १३ तस्य पूर्वोपलब्धस्य देवदत्तस्य । १४ आदिप्रदेन प्रत्यभिज्ञानम् । १५ साधनं विचारयति । १६ दूरपादभास्वष्ट्वे पुरोवर्त्तिपदावस्थास्पष्टत्वं स्यात् । १७ मित्राधिकरणात् । १८ अस्पष्टत्वं हेतुरर्थे, अप्रत्यक्षत्वं साध्यं ज्ञाने इति । १९ सन्निहिते पादपादौ स्पष्टत्वमनुयेवैषि स्यात् । २० अतिप्रसङ्गलक्ष्णो दोषः । २१ ज्ञानास्पष्टत्वस्यार्थधर्मत्वे, २२ ज्ञानसैवास्पष्टलक्ष्णो धर्मोऽप्येव उपचर्यतेऽतश्चातिप्रसङ्गाभावात्कथं व्यधिकरणासिद्धौ हेतुः ।

तावत् । तस्याः विषयधर्मत्वे सर्वदा तथा प्रतिभासप्रसङ्गा-  
त्कुतः प्रतिभासपरावृत्तिः? न चास्पष्टसंवेदनं निर्विषयमेव,  
संवादकैत्वात्स्पष्टसंवेदनवत् । क्वचिद्विसंवादात्सर्वत्रास्य विसं-  
वादे स्पष्टसंवेदनेपि तत्प्रसङ्गः । ततो नैतत्साधु—

५ “बुद्धिरेवैतद्वाकारा तैत उत्पद्यते यदा ।

तदाऽस्पष्टप्रतीभासव्यवहारो जगन्मतः ॥”

[ प्रमाणवार्त्तिकालं० प्रथमपरि० ]

द्विचन्द्रादिप्रतिभासेपि तद्व्यवहारानुपपन्नाश्च । स्पष्टप्रतिभासेन  
वाध्यमानत्वादस्य निर्विषयत्वमन्यत्रापि समानम् । यथैव हि  
३० दूरादस्पष्टप्रतिभासविषयत्वमर्थस्यारोत्स्पष्टप्रतिभासेन वाध्यते  
तथा सन्निहिताथस्य स्पष्टप्रतिभासविषयत्वं दूरादस्पष्टप्रति-  
भासेन, अविशेषात् ।

ननु विषयधर्मस्य विषयेषूपचारात्तत्र स्पष्टास्पष्टत्वव्यवहारे  
विषयिणोपि ज्ञानस्य तद्धर्मतासिद्धिः कुतः? ज्ञानस्पष्टत्वास्प-  
३५ ष्टत्वाभ्याम्, स्वतो वा? प्रथमपक्षेऽनवस्था । द्वितीयपक्षे त्वविशे-  
षेणाखिलज्ञानानां तद्धर्मताप्रसङ्गः; इत्यप्यसमीचीनम्; तत्रान्ये-  
थैव तद्धर्मताप्रसिद्धेः । स्पष्टज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमवि-  
शेषाद्वि क्वचिद्विज्ञाने स्पष्टता प्रसिद्धा, अस्पष्टज्ञानावरणादिह-  
योपशमविशेषात्स्वस्पष्टतेति । प्रसिद्धश्च प्रतिर्वन्धकापायो ज्ञाने  
२० स्पष्टताहेतु रजोनीहाराद्यावृत्ता(ता)र्थप्रकाशस्येव तद्वियोगः ।

अक्षात्स्पष्टता इत्यन्ये, तेषां दविष्टपादपादिज्ञानस्य दिवोल्का-  
दिवेदनस्य च तत्प्रसङ्गः । तदुत्पादकाक्षस्यातिदूरदेशदिनकर-  
करनिकरोपहतत्वाददोषोयमिति; अत्रौप्यक्षस्योपघातः, शक्तेर्वा?

१ अस्पष्टतया । २ गूरीतार्थव्यभिचारित्वात् । ३ अस्पष्टसंवेदनं साधुमनं सिद्धं  
यतः । ४ ज्ञानम् । ५ पञ्चकारोत्र मित्रप्रक्रमे । तेनातदाकारेत्त्वानन्तरं द्रष्टव्यः ।  
बुद्धिर्विषयादुत्पद्यते चेत् तदा अतदाकारा कथमिति चेदुच्यते । एकत्वेन व्यवसिता-  
श्चन्द्रलक्षणादर्थानुत्पद्यमाना बुद्धिर्यदा हित्वमवभासयति प्रकृतं नावभासयति तदा  
अतदाकारा सती अस्पष्टव्यपदेशमहति । ६ अविषयाकारा । ७ विषयात् । ८ यत्तस्य  
तु स्पष्टत्वमभ्युपगतं नञ्चिन् । ९ अतदाकारत्वं यतो बुद्धेः । १० स्पष्टसंवेदनेपि ।  
११ समीपे । १२ बाधाऽवापत्तस्योभयत्रापि । १३ स्वयोः स्पष्टास्पष्टज्ञानयोर्मीदृके  
च ते ज्ञाने च तयोः स्पष्टत्वास्पष्टत्वाभ्याम् । १४ प्रत्यक्षानुमानानाम् । १५ वस्तु-  
विपर्ययेणैव । स्वज्ञानस्य स्पष्टत्वास्पष्टत्वेनेव । १६ वीर्यं शक्तिः । ज्ञानस्य वीर्यस्य  
चावरणमवरोधकं कर्म । १७ अंशतः क्षयोपशमो भवति न सर्वतः । १८ प्रति-  
बन्धकोत्रावरणम् । १९ संवेदनस्य विशदत्वम् । २० गीर्मासकाः । २१ अतिदूरः ।  
२२ परिहारे ।

प्रथमपक्षोऽयुक्तः, तत्स्वरूपस्याविकलस्यानुमवात् । द्वितीयपक्षे तु योग्यतासिद्धिः, भावेन्द्रियाख्यक्षयोपशमलक्षणयोग्यताव्यतिरेकेणाक्षशक्तेरव्यवस्थिते । तल्लक्षणाच्चाक्षात्स्पष्टत्वाभ्युपगमेऽसं-  
न्मतप्रसिद्धिः ।

आलोकोप्येतेन तच्चेतुः प्रत्याख्यातः । ततः स्थितमेतद्विश-  
दज्ञानस्वभावं प्रत्यक्षमिति ।

ननु किमिदं ज्ञानस्य वैशद्यं नामेत्याह अव्यवधानेनेत्यादि ।

प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा

प्रतिभासनं वैशद्यम् ॥ ४ ॥

तुल्यजातीयापेक्षया च व्यवधानमव्यवधानं वा प्रतिपत्तव्यं न १०  
पुनर्देशकालाद्यपेक्षया । यथा 'उपर्युपरि स्वर्गपटलानि' इत्या-  
न्योन्यं तेषां देशादिव्यवधानेपि तुल्यजातीयानामपेक्षाकृता प्रत्या-  
सत्तिः सामीप्यमित्युक्तम्, एवमत्राप्यव्यवधानेन प्रमाणान्तरनि-  
रपेक्षतया प्रतिभासनं वस्तुनोऽनुभवो वैशद्यं विज्ञानस्येति ।

नन्वेवमीहादिज्ञानस्यावग्रहाद्यपेक्षत्वादव्यवधानेन प्रतिभासन-  
लक्षणवैशद्याभावात्प्रत्यक्षता न स्यात्, तद्वसारम्; अपरापरेन्द्रि-  
यव्यापारादेवावग्रहादीनामुत्पत्तेस्तत्र तदपेक्षत्वासिद्धेः । एकमेव  
चैवं विज्ञानमवग्रहाद्यतिशयवदपरापरचक्षुरादिव्यापारादुत्पन्नं  
सत्त्वतन्त्रतया स्वविषये प्रवर्तते इति प्रमाणान्तराव्यवधानमत्रापि  
प्रसिद्धमेव । अनुमानादिप्रतीतिस्तु लिङ्गादिप्रतीत्यैवं जनिता सती २०  
स्वविषये प्रवर्तते इत्यव्यवधानेन प्रतिभासनाभावोक्तं प्रत्यक्षेति ।  
ततो निरवग्रहमेवंविधं वैशद्यं प्रत्यक्षलक्षणम्, साकल्येनाखिला-  
ख्यक्षव्यक्तिषु सम्भवेनाव्याप्त्यसम्भवदोषाभावात् । अतिव्या-  
प्तिस्तु दूरोत्सारितैव अव्यक्षत्वाभिमते किंचिदप्येतल्लक्षणस्या-  
सम्भवात् ।

२५.

१ (कथ्युपयोगौ भावेन्द्रियमिति सङ्गकारवचनम् । कश्चिद् इन्द्रियज्ञान-  
प्राप्तात्मप्रदेशानां तदावरणमक्षयोपशमरूपा ।) २ ज्ञानस्य । ३ जैनमतसिद्धिः ।  
४ अक्षस्य स्पष्टताहेतुनिराकरणपरेण अन्वेच । ५ समर्थितम् । ६ उदाहरणे ।  
७ ज्ञाने । ८ अनुमानं प्रमाणान्तरेण लिङ्गज्ञानेन जायते इति तद्व्युत्पत्तयैतत्पदम् ।  
९ प्रतिज्ञानम् । १० अवग्रहादिरूपस्य । ११ ईहादिप्रतिज्ञाने । १२ न प्रत्यक्ष-  
प्रतीत्या । १३ लिङ्गादिप्रतीत्या व्यवधानात् । १४ अव्यवधानेन प्रतिभासनलक्षणम् ।  
१५ अनुमानादौ ।

समन्धकारादौ ध्यामलितवृक्षादिवेदनमप्यध्यक्षप्रमाणस्वरूप-  
मेव, संस्थानमात्रे वैशद्यविसंवादित्वसम्भवात् । विशेषांशाध्य-  
वसायस्त्वनुमानरूपः, लिङ्गप्रतीत्या व्यवहितत्वान्नाध्यक्षरूपतां  
प्रतिपद्यते । अतिदूरदेशे हि पूर्वं संस्थानमात्रं प्रतिपद्य 'अयमेवंवि-  
५ धसंस्थानविशिष्टोऽर्थो वृक्षो हस्ती पलालकूटादिर्वा एवंविधसंस्था-  
नविशिष्टत्वान्यथानुपपत्तेः' इत्युत्तरकालं विशेषं विवेचयति ।  
तरतमभावेन तत्प्रदेशसन्निधाने तु संस्थानविशेषविशिष्टमेवार्थं  
वैशद्यतरतमभावेनाध्यक्षत एव प्रतिपद्यते, विशदज्ञानावरणस्य  
तरतमभावेनैवापगमात् ।

१० ननु च परोक्षेऽपि स्मृतिप्रत्यभिज्ञादिस्वरूपसंवेदनेऽस्याध्यक्ष-  
लक्षणस्य सम्भवादतिव्याप्तिरेव, इत्यप्यपरीक्षिताभिधानम् । तस्य  
परोक्षत्वासम्भवात्, क्षायोपशमिकसंवेदनानां स्वरूपसंवेदनस्या-  
निन्द्रियप्रधानतयोत्पत्तेरनिन्द्रियाध्यक्षव्यपदेशसिद्धेः सुखादि-  
स्वरूपसंवेदनवत् । वैहिरर्थग्रहणापेक्षया हि विज्ञानानां प्रत्यक्षेतर-  
१५ व्यपदेशः, तत्र प्रमाणान्तरे व्यवधानाव्यवधानसङ्गावेन वैशद्येतर-  
सम्भवात्, न तु स्वरूपग्रहणापेक्षया, तत्र तदर्थभावात् ।

ततो निर्दोषत्वाद्वैशद्यं प्रत्यक्षलक्षणं परीक्षादक्षैरभ्युपगन्तव्यं न  
‘इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नम्’ [न्यायसू० १।४] इत्यादिकं तस्याध्याप-  
कत्वाद्दीन्द्रियप्रत्यक्षे सर्वज्ञविज्ञानेऽस्यासत्त्वात् । न च ‘तज्जास्ति’  
२० इत्यभिधार्तव्यम् ; प्रमाणतोऽनन्तरमेवास्य प्रसाधयिष्यमाणत्वात् ।  
तथा सुखादिसंवेदनेऽप्यस्यासत्त्वम् । न हीन्द्रियसुखादिसन्निकर्षो-  
त्तज्ज्ञानमुत्पद्यते ; सुखादेरेव स्वग्रहणात्मकत्वेनोदयादित्युक्तम् ।  
चाक्षुषसंवेदने चास्यासत्त्वम् ; चक्षुषोऽर्थेन सन्निकर्षाभावात् ।

अथोच्यते—स्पर्शनेन्द्रियादिवच्चक्षुषोऽपि प्राप्यैकारित्वं प्रमाणा-  
२५ त्प्रसाध्यते । तथा हि—प्राप्तार्थप्रकाशकं चक्षुः वैहिन्द्रियैतत्वात्स्पर्श-

१ अस्पष्ट । २ आकारमात्रे । ३ इन्द्रः । ४ उक्तमेव समर्थयन्ति । ५ कर्तृणः ।

६ अव्यवधानेन प्रतिभासनत्वलक्षणस्य । ७ स्मृत्यादीनाम् । ८ अनिन्द्रियं । ( ईष-  
दिन्द्रियं ) मनः । ९ मानसप्रत्यक्षत्वादित्यर्थः । १० एवं चेत्स्मृत्यादीनां परोक्ष-  
व्यपदेशो न स्यादित्युक्ते आह । ११ वहिरर्थग्रहणे । १२ अनुमानलक्षणप्रमाणा-  
धिष्ठप्रत्यक्षं प्रमाणान्तरम् । १३ स्वसंवेदन । १४ प्रमाणान्तरव्यवधानाभावात् ।  
१५ अन्याह्यादिदोषत्रयासम्भवो वतः । १६ परोक्षं प्रत्यक्षलक्षणम् । १७ परेषु  
भवता । १८ इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमित्यादिकस्य । १९ मनः । २० जनैः  
अयमपरिच्छेदे । २१ प्रत्यक्षलक्षणम् । २२ प्राप्यकारि प्राप्य अर्थं वानातीत्यर्थः ।  
२३ नैयायिकेन । २४ इन्द्रियत्वादित्युक्ते मनसा व्यभिचारस्तत्परिहारार्थं नाह-  
ग्रहणम् । २५ वहिरर्थग्रहणाभिमुखत्वात् ।

हेन्द्रियादिवत् । ननु किमिदं बाह्येन्द्रियत्वं नाम-वहिरर्थमि-  
मुख्यम्, वहिर्देशावस्थायित्वं वा? प्रथमपक्षे मनसानेकान्तः;  
तस्याप्राप्यकारित्वेपि वहिरर्थग्रहणाभिमुख्येन बाह्येन्द्रियत्वसिद्धेः ।  
द्वितीयपक्षे त्वसिद्धो हेतुः; रश्मिरूपस्य चक्षुषो वहिर्देशावस्थायि-  
त्वस्य भवतानभ्युपगमात् । गोलकान्तर्गततेजोद्रव्याश्रया हि ५  
रश्मयस्त्वन्मते प्रसिद्धाः । गोलकरूपस्य तु चक्षुषो वहिर्देशा-  
वस्थायिनो हेतुत्वे पक्षस्य प्रत्यक्षवाधनात्कालात्ययापदिष्टत्वम् ।

न च बाह्यविशेषणेन मनो व्यवच्छेद्यम्, न हि तत् सुखादौ  
संयुक्तसंभवायादिसम्बन्धं व्याप्तौ च सम्बन्धसम्बन्धमन्तरेण  
ज्ञानं जनयति रूपादौ नेत्रादिर्वत् । अथासौ सम्बन्ध एव न १०  
भवति, तर्हि नेत्रादीनां रूपादिमिरप्यसौ न स्यात्, तस्यापि  
सम्बन्धसम्बन्धत्वात् । तथा चेन्द्रियत्वाविशेषेपि मनोऽप्राप्तार्थ-  
प्रकाशकं तथा बाह्येन्द्रियत्वाविशेषेपि चक्षुः किं नेष्यते? अथात्र  
हेतुभावात्तन्नेष्यते; अन्यत्रापि 'इन्द्रियत्वात्' इति हेतुः केन  
वार्येत? ततो मनसि र्वैसाधने प्रमाणवाधनमन्यत्रापि संमानम् । १५

चक्षुश्चात्र धर्मित्वेनोपात्तं गोलकस्वभावम्, रश्मिरूपं वा?  
तत्राद्यविकल्पे प्रत्यक्षबाधा; अर्थदेशपरिहारेण शरीरप्रदेशे एवा-  
स्योपलम्भात्, अन्यथा तद्ब्रहितत्वेन नयनपद्मप्रदेशस्योपलम्भः  
स्यात् । अथ रश्मिरूपं चक्षुः, तर्हि धर्मिणोऽसिद्धिः । न खलु  
रश्मयः प्रत्यक्षतः प्रतीयन्ते, अर्थवत्तत्र तत्स्वरूपाप्रतिभासनात्, २०  
अन्यथा विप्रतिपत्त्यभावः स्यात् । न खलु नीले नीलतया नुभूयमाने  
कश्चिद्विप्रतिपद्यते ।

किञ्च, इन्द्रियार्थसन्निकर्षजं प्रत्यक्षं भवन्मते । न चार्थदेशे

१ नैयायिकेन । २ चक्षुःप्राप्तार्थप्रकाशक वहिर्देशावस्थायित्वादित्यस्य । ३ प्रत्य-  
क्षादिप्रमाणवाधिते पक्षे प्रवर्तमानो हेतुः कालात्ययापदिष्टः । ४ कर्तुं । ५ मनसा  
संयुक्ते आत्मनि सुखादेस्समवाय इति । ६ मन आत्मनात्मा बाह्येवपदार्थैः साध्य-  
साधनरूपैस्त्वन्नेष्यते इति । ७ इति सिद्धं प्रत्यक्षादिप्रमाणवाधनम् । ८ नेत्रादिना संयुक्ते  
वदादौ रूपादेस्त्वन्मत्सम्बन्धो यथा । ९ रूपादिषु नेत्रादीनां सम्बन्धसम्बन्धस्य ।  
१० भवन्मताङ्गीकारेण । ११ मनसि । १२ मनः प्राप्तार्थप्रकाशकमिन्द्रियावात्स्व-  
गादिवदिति । १३ प्राप्तार्थप्रकाशकत्वस्य । १४ आगमप्रमाणवाधा । १५ चक्षुषि ।  
१६ प्रत्यक्षप्रमाणवाधनम् । १७ अनुमाने । १८ चक्षुः प्राप्तार्थप्रकाशकं बाह्येन्द्रि-  
यत्वात् । १९ गोलकः । २० अर्थस्य यथा प्रतिभासनम् । २१ रश्मिस्वरूपं प्रति-  
भासते चेत् । २२ रश्मिरूपं चक्षुर्गोलकरूपं वेति । २३ रश्मिरूपं चक्षुरित्यसिन्धु-  
दूषणान्तरमाह । २४ नैयायिकः ।

विद्यमानैस्तैरपरेन्द्रियस्य सन्निकर्षोस्ति यतस्तत्र प्रत्यक्षमुत्पद्येत,  
अनवस्थाप्रसङ्गात् ।

अथानुमानात्तेषां सिद्धिः, किमेत एव, अनुमानान्तराद्वा ? प्रथ-  
मपक्षेऽन्योन्याश्रयः—अनुमानोत्थाने ह्येतत्तत्सिद्धिः, अस्याश्चा-  
नुमानोत्थानमिति । अथानुमानान्तरात्तत्सिद्धिस्तदानवस्था, तत्रा-  
प्यनुमानान्तरात्तत्सिद्धिप्रसङ्गात् ।

यदि च गोलकान्तर्भूतात्तेजोद्भव्याहर्हिर्भूता रश्मयश्चक्षुःशब्द-  
वाच्यः पदार्थप्रकाशकाः, तर्हि गोलकस्योन्मीलनमञ्जनादिना  
संस्कारश्च व्यर्थः स्यात् । अथ गोलकाद्याश्रयपिधाने तेषां विषयं  
१० प्रति गमनासम्भवात्तदर्थं तदुन्मीलनम्, घृतादिना च पादयोः  
संस्कारे तत्संस्कारो भवति स्वीश्रयगोलकसंस्कारे तु नितरां  
स्यात् इत्यस्यापि न वैयर्थ्यम्; तदापि गोलकादिलभ्यस्य काम-  
लादेः प्रकाशकत्वं तेषां स्यात् । न खलु प्रदीपकलिकाभयात्तद्र-  
श्मयस्तत्कलिकावलम्बं शलाकादिकं न प्रकाशयन्तीति युक्तम् ।

१५ न चात्र चक्षुषः सम्बन्धो नास्तीत्यभिघातव्यम्, यतो व्यक्ति-  
रूपं चक्षुस्तत्रासम्बद्धम्, शक्तिसमायं वा, रश्मिरूपं वा ? प्रथ-  
मपक्षे प्रत्यक्षविरोधः, व्यक्तिरूपचक्षुषः काचकामलादौ सम्ब-  
न्धप्रतीतेः । द्वितीयपक्षेपि तच्छक्तिकरूपं चक्षुर्व्यक्तिरूपचक्षुषो  
भिन्नदेशम्, अभिन्नदेशं वा ? न तावद्भिन्नदेशम्, तच्छक्तिकरू-  
२० पताव्याघातानुषङ्गाभिर्यथारत्वप्रसङ्गाच्च । न ह्यन्यशक्तिरन्या-  
धारा युक्ता । तद्देशद्वारेणैवार्थोपलब्धिप्रसङ्गश्च । ततोऽभिन्नदेशं  
वेत्तुं, तत्तत्र सम्बद्धम्, असम्बद्धं वा ? सम्बद्धं चेत्, बहिरर्थव-  
त्स्वीश्रयं तत्सम्बद्धं चाञ्जनादिकमपि प्रकाशयेत् । असम्बद्धं  
चेत्कथमाश्रये नाम अतिप्रसङ्गात् ।

२५ अथ रश्मिरूपं चक्षुः, तस्यापि काचकामलादिना सम्बन्धो-  
स्त्येव । न खलु स्फटिकादिकूपिकामध्यगतप्रदीपौदिरश्मयस्ततो

१ अपरलोकानां लोचनस्य । २ अन्यथा—उत्पद्यते चेत्तर्हि । ३ प्रज्ञानवत्ता ।  
४ प्रथमानुमानात् । ५ अनुमानात् । ६ रश्मिरूपं चक्षुस्तैजसत्वात्प्रदीपवदित्यत्र ।  
७ प्रज्ञानवत्ता । ८ अवलम्बक्रियाविशेष । ९ वसः । १० गोलकान्तर्भूततेजोद्भवस्य ।  
११ सख्य रश्मिरूपचक्षुषः । १२ रश्मिरूपचक्षुषः संस्कारः । १३ गोलकसा-  
जनादिना संस्कारस्य । १४ गोलकरूपम् । १५ शक्तेः । १६ व्यक्तिरूपचक्षुषः ।  
१७ शक्तिसमायम् । १८ व्यक्तिरूपे चक्षुषि । १९ शक्तिरूपेन्द्रियसामर्थ्यं गोलकम् ।  
२० समयत्र सम्बन्धाविशेषात् । २१ शक्तिरूपम् । २२ सख्यस्य विन्यासेवता  
स्यादसम्बन्धत्वाविशेषात् । २३ घृतीयपक्षे । २४ काचादि । २५ अदिपदेन रसादि ।  
२६ स्फटिकादिकूपिकायाः सकाशात् ।

निर्गच्छन्तस्तत्संयोगिनां न सम्यग्ज्ञास्तत्प्रकाशकां वा न भवन्तीति प्रतीतम् । तथैवाञ्जनादेः प्रत्यक्षत एव प्रसिद्धेः परोपदेशस्य दर्पणादेश्च तदर्थस्योपादानमनर्थकमेव स्यात् ।

किञ्च, यदि गोलकादिः स्रुत्यर्थेनाभिसम्बद्ध्यर्थे तैः प्रकाशयन्ति; तर्ह्यर्थे प्रति गच्छतां तैजसानां रूपस्पर्शविशेषवतां तेषामु-  
पलम्भः स्यात्, न चैवम्, अतो दृश्यानामनुपलम्भात्तेषामभावः । अथादृश्यास्तेऽनुद्भूतरूपस्पर्शवत्त्वात्; न; अनुद्भूतरूपस्पर्शस्य तेजोद्रव्यस्याप्रतीतेः । जलहेम्नोर्भासुररूपोष्णस्पर्शयोरनुद्भूतिप्रतीतिरस्तीत्यसम्यक्; उभयानुद्भूतेस्तत्रोप्यप्रतिपत्तेः । दृष्टानुसारेण चादृष्टार्थकल्पना, अन्यैथातिप्रसङ्गात् । तथाहि—रात्रौ १० दिनकरकराः सन्तोपि नोपलभ्यन्तेऽनुद्भूतरूपस्पर्शत्वाच्चक्षुरक्षिप्यत् । प्रयोगश्च—मार्जारादीनां चक्षुषा रूपदर्शनं बाह्यालोकपूर्वकम् तत्त्वादिवाऽसदादीनां तद्दर्शनवत् । ननु मार्जारादीनां चाक्षुषं तेजोस्ति, तत एव तत्सिद्धेः किं बाह्यालोककल्पनयेत्यन्यत्रापि समीनम् । ननु यथैव यदृश्यते तथा तत्कल्प्यते, दिवासदादीनां १५ चाक्षुषं सौर्यं च तेजो विज्ञानकारणं दृश्यते तत्तथैव कल्प्यते, रात्रौ तु चाक्षुषमेव, अतस्तदेव तत्कारणं कल्प्यते । ननु किं मनुष्येषु नायनरश्मीनां दर्शनमस्ति ? अथानुमेयास्ते; तर्हि रात्रौ सौर्यरश्मयोप्यनुमेयाः सन्तु । न च रात्रौ तत्सद्भावे न कञ्चराणामिव मनुष्याणामपि रूपदर्शनमस्ति; विचित्रशक्तित्वाद्भावै-  
नाम् । कथमनर्थयोत्कादयो दिवा न पश्यन्ति ? यथैवाञ्जनालोकैः

१ पतिः । २ श्रीगण्डेन । ३ सम्बन्धे सति । ४ अञ्जनादिपरिज्ञानार्थम् । ५ रश्मयः । ६ भासुर । ७ वप्य । ८ रश्मीनाम् । ९ इति चैत्रेलर्धः । १० अप्रतीतिं परिहरति परः । ११ एकस्मिन्पुण्ड्रकलक्षणे हेमलक्षणे वा तैजसद्रव्ये । १२ यदैकस्मिन्तेजोद्रव्ये उभयानुद्भूतिर्न दृष्टा तथापि चक्षुरक्षिप्यमानुद्भूतिः कल्प्यते तत्तुल्ये आद । १३ अदृष्टानुसारेणादृष्टार्थकल्पना यदि स्यात् । १४ रात्रौ । १५ नदनेत्रे । १६ मनुष्याणां चाक्षुषं तेजोस्ति तत एव तत्सिद्धेः किं बाह्यालोककल्पनया । १७ कारणत्वेन । १८ तेषां । १९ कारणत्वेन । २० मार्जारादीनाम् । २१ रूपदर्शनकारणम् । २२ प्रतीतिः । २३ येनैवं परिहारः परोपिच्यते । न सन्तीत्यर्थः । २४ परः । २५ सौर्यरश्मिसद्भावात् । २६ कथं विचित्रशक्तित्वम् ? रात्रौ विद्यमानाः सौर्यरश्मयो न कञ्चराणां रूपज्ञानहेतवो न मनुष्याणामिति । २७ सौर्यरश्मीनाम् । २८ भावानां विचित्रशक्तित्वं न साधयति । २९ परन्ते । ३० दिवसे । ३१ भूकानाम् ।



प्रतिबन्धकः, तथान्यत्र तैमः । ततो यथानुपलम्भात् सन्ति राज्ञौ  
मास्करकरास्तथान्येदा नायनकरा इति ।

एतैर्न 'दूरस्थितकुण्ड्यादिप्रतिफलितानां प्रदीपरश्मीनामन्तराले  
सतामप्यनुपलम्भसम्भवात् तैरनुपलम्भो व्यभिचारी; इत्यपि  
५ निरस्तम्; आदित्यरश्मीनामपि रात्रावभावासिद्धिप्रसङ्गात् ।

अथोच्यते—चक्षुः स्वरश्मिसम्बद्धार्यप्रकाशकम् तैजसत्वा-  
त्प्रदीपवत् । ननु किमेन चक्षुषो रश्मयः साध्यन्ते, अन्यतः  
सिद्धानां तेषां ग्राह्यार्थसम्बन्धो वा ? प्रथमपक्षे पक्षस्य प्रत्यक्ष-  
बाधा, नरनारीनयनानां प्रमासुररश्मिरहितानां प्रत्यक्षतः प्रतीतेः ।  
१० हेतोश्च कालात्ययापदिष्टत्वम् । अथादृश्यत्वात्तेषां न प्रत्यक्षबाधा  
पक्षस्य । नन्वेवं पृथिव्यादेरपि तत्सत्त्वप्रसङ्गः; तथा हि—पृथिव्या-  
व्यो रश्मिवन्तः सत्त्वादिभ्यः प्रदीपवत् । यथैव हि तैजसत्वं  
रश्मिवत्तया व्याप्तं प्रदीपे प्रतिपन्नं तथा सत्त्वादिकमपि । अथ  
तेषां तत्साधने प्रत्यक्षविरोधः; सोऽन्यत्रापि समान इत्युक्तम् ।

१५ ननु मार्जारादिचक्षुषोः प्रत्यक्षतः प्रतीयन्ते रश्मयः तत्कर्तृ  
तद्विरोधः ? यदि नाम तत्र प्रतीयन्तेऽन्यत्र किमायातम् ? अन्यथा  
हेन्नि पीतत्वप्रतीतौ पटादौ सुवर्णत्वसिद्धिप्रसङ्गः । प्रत्यक्षबाध-  
नमुर्भयत्रापि ।

किञ्च, मार्जारादिचक्षुषोर्मासुररूपदर्शनावन्यत्रापि चक्षुषि  
२० तैजसत्वं प्रसाधने गवादिलोचनयोः कृष्णत्वस्य नरनारीनिरीक्षण-  
योर्धावत्यस्य च प्रतीतेरविशेषेण पार्थिवत्वमाप्यत्वं वा साध्य-  
ताम् । कथं च प्रमासुरप्रमारहितनयनानां तैजसत्वं सिद्धं यतः  
सिद्धो हेतुः ? किमर्तं एवानुमानात्, तदन्तराह्वा ? आद्यविक-  
ल्पेऽन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि तेषां रश्मिवत्त्वे तैजसत्वसिद्धिः, ततश्च  
२५ तत्सिद्धिरिति ।

१ जैनमते । २ राज्ञौ । ३ जराणां प्रतिबन्धकम् । ४ दिवा । ५ अपि न  
सन्ति । ६ राज्ञौ दिनकरकराणामभावसाधनपरेण अन्येन । ७ प्रतिविम्बितानाम् ।  
८ प्रदीपकुण्ड्यापोः । ९ जैनैः १-१० अन्यथा । ११ न सन्त्यनुपलम्भ्यमानत्वादिति ।  
१२ अनुमानेन । १३ प्रमाणम् । १४ मार्जारादिनयनेषु । १५ नरनारीनयनेषु ।  
१६ अन्यत्र प्रतीतस्यान्यत्र विधिर्यदि । १७ हेन्नि पीतत्वापटे सुवर्णत्वसाधने  
प्रत्यक्षबाधनं यथा तथा तैजसत्वाच्चक्षुषि रश्मिवत्त्वसाधने, च प्रत्यक्षबाधनम् ।  
१८ नरनयनं रश्मिवत् तैजसत्वाच्चक्षुषोर्मासुररूपदर्शनादिति । १९ जन्मेनेत्राणाम् ।  
२० तैजसत्वादिलसात् ।

अथ 'चक्षुस्तैजसं रूपादीनां मध्ये रूपस्यैवं प्रकाशकत्वात् प्रदीपवत्' इत्यनुमानान्तरात्तत्सिद्धिः; न; अत्रापि गोलकस्य मासुररूपोष्णस्पर्शरहितस्य तैजसत्वसाधने पक्षस्य प्रत्यक्षवाधा, 'न तैजसं चक्षुः तमःप्रकाशकत्वात्, यत्पुनस्तैजसं' तत्र तमःप्रकाशकं यथालोकः' इत्यनुमानवाधा च । प्रसाधयिष्यते च ५ 'तसोवत्' इत्यत्र तमसः सत्त्वम् । प्रदीपवत्तैजसत्वे चास्यालोकपेक्षा न स्यादुष्णस्पर्शादितयोपलम्भश्च स्यात्, न चैवम्, तदपेक्षतया मनुष्यपारावतवलीवर्दादीनां धवललोहितकालरूपतया नुष्णस्पर्शस्वभावतया चास्योपलम्भात् । तत्र गोलकं चक्षुः ।

नाप्यन्यत्; तद्भाहकप्रमाणाभावेनाश्रयासिद्धत्वप्रसङ्गाद्धेतोः । १० 'रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात्' इति हेतुश्च जलांशुनचन्द्रमाणिर्क्यादिभिरनैकान्तिकः । तेषामपि पक्षीकरणे पक्षस्य प्रत्यक्षवाधा, सर्वो हेतुरव्यभिचारी च स्यात् । न च जलाद्यन्तर्गतं तेजोद्वयमेव रूपप्रकाशकमित्यभिधातव्यम्; सर्वत्र दृष्टहेतुवैफल्यपत्तेः । तथा च दृष्टान्तासिद्धिः, प्रदीपादावप्यन्यस्यैव तैजप्रकाश १५ कस्य कल्पनाप्रसङ्गात् । प्रत्यक्षवाधनमुभयत्र । निराकरिष्यते च "नार्थालोकौ कारणम्" [परी० २।६] इत्यत्रालोकस्य रूपप्रकाशकत्वम् ।

किञ्च, रूपप्रकाशकत्वं तत्र ज्ञानजनकत्वम् । तच्च कारणविषयवादिनो घटादिरूपस्याप्यस्तीत्यनेन हेतोर्व्यभिचारः । 'करणत्वे २०

१ रूपस्वेत्युन्मयाने आत्ममनोभ्या व्यभिचारस्तत्परिहारार्थं रूपस्यैवेत्युक्तम् । रूपस्यैव प्रकाशकत्वादित्युच्यमाने असिद्धत्वम् । कुतः ? द्रव्यद्रव्यत्वयोरपि चक्षुषां प्रकाशनात् । तत्परिहारार्थं रूपादीनां मध्ये इत्युक्तम् । अनेन द्रव्यद्रव्यत्वयोः परिहारः—रूपादीनां गुणानामेव निर्धारितत्वात् । २ इति यदुक्तं तत्रेत्यर्थः । ३ नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तयोवदितस्य सूत्रस्य व्याख्यावसरे । ४ चक्षुषः । ५ आदिपदेन स्फोटादि । ६ कृष्ण । ७ धर्मि । ८ रक्षिरूपम् । ९ रक्षिरूपचक्षुषः । १० रूपस्याप्येते प्रकाशकाः । ११ आदिपदेन कानादिभिरपि । १२ यद्रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकं तत्तैजसमित्युक्ते जलाजनादिसिद्धेर्गुणव्यभिचारी स्यादित्यर्थः । १३ कार्ये । १४-कारण । १५ पिशाचादेः । १६ रूप । १७ जलादेरेव रूपप्रकाशकत्वोपलम्भान्दयस्य । रूपप्रकाशकत्वकल्पनेपि । १८ साधनविकलो दृष्टान्त इति निरूपितमनेन । १९ यत्कारणं ज्ञानं जनयति तदेव ज्ञानस्य विषयो भवतीति । २० ज्ञानस्य । २१ नैयामिकस्य । २२ घटादिरूपं रूपज्ञानजनकं न तु तैजसम् । २३ प्रकाशकत्वादित्यस्य । तैजसत्वसाध्यस्याभावो(वि)पि साधनमस्ति यतः । २४ चक्षुस्तैजस कारणत्वे सति रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वादित्युक्तेपीत्यर्थः ।

सति' इति विशेषणेऽप्यालोकार्थसन्निकर्षेण चक्षुरूपयोः संयुक्त-  
समवायसम्बन्धेन चानेकान्तः । 'द्रव्यत्वे कर्णत्वे च सति तत्प्र-  
काशकत्वात्' इति विशेषणेऽपि चन्द्रादिनानेकान्तः ।

- किञ्च, द्रव्यं रूपप्रकाशकं भासुररूपम्, अभासुररूपं वा ?  
५ प्रथमपक्षे उष्णोदकसंस्पृष्टमपि तत् तत्प्रकाशकं स्यात् । अनुद्भूत-  
रूपत्वान्नेति चेत्, नायनरश्मीनामप्यत एव तन्माभूत् । तथा  
दृष्टत्वादित्यप्यनुत्तरम्, संशयात्, न हि तत्र निश्चयोस्ति ते  
तत्प्रकाशका न गोलकमिति । अनुद्भूतरूपस्य तेजोद्रव्यस्य दृष्टा-  
न्तेऽपि रूपप्रकाशकत्वाप्रतीतिः । तथाच, न चक्षु रूपप्रकाशकम्-  
१० अनुद्भूतरूपत्वाज्जलसंयुक्तानलवत् । द्वितीयपक्षेऽपि उष्णोदकतेजो-  
रूपं तत्प्रकाशकं स्यात् । न हि तत्तत्र नष्टम्, 'अनुद्भूतम्' इत्यं-  
भ्युपगमात् । उद्भूतं तत्तत्प्रकाशकमित्यभ्युपगमे रूपप्रकाशकत्वं  
न्वयव्यतिरेकानुविधायी तस्यैव कार्यो न द्रव्यस्य । न खलु देव-  
दत्तं प्रति पद्मादीनामागमनं तद्गुणान्वयव्यतिरेकानुविधायि देव-  
१५ दत्तस्य कार्यम् । ततो 'द्रव्यत्वे सति' इति विशेषणासिद्धिः ।

किञ्च, सम्बन्धोद्देशिवाऽतैजसस्यापि द्रव्यरूपकरणस्य कस्यचि-  
द्रूपज्ञानजनकत्वं किञ्च स्यात्, विपक्षव्यावृत्तेः सौन्दर्यत्वादतैज-  
सत्वे रूपज्ञानजनकत्वंस्याविरोधात् ? तदेवं तैजसत्वासिद्धेर्नातै-  
जश्चक्षुरेऽभिवत्त्वसिद्धिः ।

- २० अथान्यतः सिद्धानां रश्मीनां ग्राह्यार्थसम्बन्धोनेन साध्यते,  
नै, अन्यतः कुतश्चित्तेषामसिद्धेः, प्रत्यक्षादेस्तत्साधकत्वेन प्राक्प्र-

१ सन्निकर्षाः संयुक्तसमवायादयः कर्णं भवन्ति न तु तैवतम् । २ चक्षुषा  
संयुक्ते षटे रूपस्य समवायसम्बन्ध इत्यतः सन्निकर्षोऽपि संयुक्तसमवाय एवात्र ।  
३ तेजोद्रव्ये सन्निकर्षादयो गुणास्तद्व्यवच्छेदार्थं द्रव्यत्वे सतीति विशेषणम् । ४ चक्षु-  
सौजन्यं द्रव्यत्वे कर्णत्वे च सति रूपादीना मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात् । ५ रूप ।  
६ चन्द्रे तैजसत्वाभावात् । ७ तेजोद्रव्यम् । ८ भासुररूपम् । ९ रूपप्रकाशकत्वेन ।  
१० अनुद्भूतरूपस्यापि तेजोद्रव्यस्य रूपप्रकाशकत्वेन । ११ तेजोद्रव्ये । १२ रूप ।  
१३ भासुर । १४ उष्णोदकगततेजोरूपम् । १५ रूप । १६ परेण । १७ रूप ।  
१८ उद्भूततेजोरूपम् । १९ गोलकगतोद्भूततेजोरूपम् । २० तेजोद्रव्यम् ।  
२१ मन्त्रतन्त्रादि । २२ किन्तु देवदत्तगुणस्यैव कार्यम् । २३ सन्निकर्षादि ।  
२४ आदिपदेन संयोगस्य चन्द्रादेश्च । २५ गोलकरूपम् । २६ विपक्षादेतैजसा-  
ज्जलादेः । २७ रूपज्ञानजनकत्वहेतोः । २८ यत्तैजसं न भवति तत्र रूपप्रकाशक-  
मिति । २९ जलादीनाम् । ३० तैजसत्वादिति हेतोः । ३१ द्वितीयपक्षः ।  
३२ इति चेन्न । ३३ प्रमाणात् ।

तिषिद्धत्वात् । तथा चेदमयुक्तम्—“चक्षुरकपुष्पवदादौ सूक्ष्मा-  
णामप्यन्ते महत्त्वं तद्गन्धीनां महापर्वतादिप्रकाशकत्वान्यथानुप-  
पत्तेः ।” [ ] इति; स्वरूपतोऽसिद्धानां तेषां महत्त्वादिधर्मस्य  
अद्वामात्रगम्यत्वात् । ततो रश्मिरूपचक्षुषोऽप्रसिद्धेर्गोलकस्य च  
प्राप्यकारित्वे प्रत्यक्षवाधितत्वात्कस्य प्राप्तार्थप्रकाशकत्वं साध्येत ? ५  
यदि च स्पर्शनादौ प्राप्यकारित्वोपलम्भाच्चक्षुषि तत्साध्येत; तर्हि  
हस्तादीनां प्राप्तानामेवान्याकर्षकत्वोपलम्भादयस्कास्तादीनां तथा  
लोहाकर्षकत्वं किञ्च साध्येत ? प्रमाणवाधान्यत्रापि ।

अथार्थेन चक्षुषोऽसम्बन्धे कथं तत्र ज्ञानोदयः ? क एवमाह—  
‘तत्र ज्ञानोदयः’ इति ? आत्मनि ज्ञानोदयान्युपगमात् । न चाप्रा- १०  
प्यकारित्वे चक्षुषः सकृत्सर्वार्थप्रकाशकत्वप्रसङ्गः; प्रतिनियत-  
शक्तित्वाद्भावीनाम् । ‘य एव यत्र योग्यः स एव तत्करोति’  
इत्यनन्तरमेव वक्ष्यते । कार्यकारणयोरत्यन्तमेवेऽर्थान्तरत्वावि-  
शेषात् ‘सर्वमेकंसात्कुतो न जायेत’ इति, ‘रश्मयो वा लोकान्तं  
कृतो न गच्छन्ति’ इति चोद्ये मैवतोपि योग्यतैव शरणम् । १५

किञ्च, चक्षु रूपं प्रकाशयति संयुक्तसमवायसम्बन्धात्, स  
चास्य गन्धादावपि समान इति तमपि प्रकाशयेत् । तथा चेन्नि-  
यान्तरवैयर्थ्यम् । योग्यताऽभावात्तदप्रकाशने सर्वत्र सैवास्तु,  
किमन्तर्गद्गुना सम्बन्धेर्न ? यदि चायमेकान्तश्चक्षुषा सम्बद्धस्यैव  
ग्रहणमिति; कथं तर्हि स्फटिकाद्यन्तरितार्थग्रहणम् ? तद्गन्धीनां २०  
तं प्रति गच्छतां स्फटिकाद्यवयविना प्रतिबन्धात् । तैस्तस्य  
नाशितत्वाददोषे तद्व्यवहितार्थोपलम्भसमये स्फटिकादेरुपलम्भो  
र्न स्यात् । तस्योपरि स्थितद्रव्यस्य च पातप्रसक्तिः आधारभूत-  
स्यावयविनो नाशात् । न हि परमाणवो दृश्याः कस्यचिदाधारा  
वा; अवयविकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात् । अवय्वन्तरस्योत्पत्तेरदोषे २५  
तदा तद्व्यवहितार्थानुपलम्भप्रसङ्गः । न चैवम्, युगपत्तयोर्निर-  
न्तरमुपलम्भात् । अथाशु न्यूनान्तरोत्पत्तेर्निरन्तरस्फटिकादिवि-

१ अत्रात्राकर्षकाणां । २ प्राप्तत्वप्रकरणे । ३ प्रत्यक्षवाधा । ४ चक्षुष्यपि ।  
५ जैनैः । ६ चक्षुरादीनाम् । ७ कृत एतदित्याह । ८ कार्ये । ९ कार्यकारणभाव-  
नियमे न योग्यता कारणं किन्त्वन्यदेव कारणमित्युक्ते आह । १० कार्यम् । ११ कार-  
णात् । १२ भिन्नत्वाविशेषात् । १३ जैनैः । १४ नैयायिकस्य । १५ कार्यनियमे ।  
१६ सन्निकर्षेण । १७ नियमः । १८ तस्य चक्षुषः । १९ नष्टत्वात् । २० कल-  
शादेः । २१ अन्यथा । २२ प्रसङ्गं नास्तिऽपरस्योत्पत्तेः । २३ स्फटिकस्फटिका-  
न्तरितार्थयोः । २४ स्फुटान्तरस्य ।

अमः, तदभावस्याप्याशु प्रवृत्तेरभावविअमः किञ्च स्यात्? भाव-  
पक्षस्य बलीयस्त्वमित्ययुक्तम्; भावाभावयोः परस्परं स्वकार्य-  
करणं प्रत्यविशेषात् ।

कथं च समलजलान्तरितार्थस्योपलम्भो न स्यात्? ये हि तद्व-  
५ श्मयः कठिनमतितीक्ष्णलोहाऽमेघं स्फटिकादिकं भिन्दन्ति तेषां  
जलेऽतिद्रवस्वभावे काऽक्ष्मा? अथ नीरेण नाशितत्वात् तं  
तद्भिन्दन्ति; तर्हि स्वच्छजलव्यवस्थितस्याप्यनुपलम्भप्रसङ्गः ।  
योग्यताङ्गीकरणे सर्वं सुस्थम् । ततः प्रोक्तदोषपरिहारमिच्छता  
प्रतीतिसिद्धमप्राप्यकारित्वं चक्षुषोऽभ्युपगन्तव्यम् ।

- १० तथाहि-चक्षुरप्राप्तार्थप्रकाशकमत्यासन्नार्थाप्रकाशकत्वात्, य-  
त्पुनः प्राप्तार्थप्रकाशकं तदत्यासन्नार्थप्रकाशकं इह यथा  
श्रोत्रादि, अत्यासन्नार्थाप्रकाशकं च चक्षुस्तस्मादप्राप्तार्थप्रकाश-  
कम् इति । न चायमसिद्धो हेतुः, काचकामलार्थत्यासन्नार्थो-  
प्रकाशकत्वस्य चक्षुषि प्रागेव प्रसाधितत्वात् । ननु साध्याविशि-  
१५ ष्टोयं हेतुः, 'पैर्युदासप्रतिषेधे हि यदेवस्याप्राप्यकारित्वं तदेवात्या-  
सन्नार्थाप्रकाशकत्वम्' इति । प्रसज्यप्रतिषेधस्तु जैनैर्नाभ्युपगम्यते  
अपसिद्धान्तप्रसङ्गात्, इत्यप्यनुपपन्नम् । प्रसङ्गसाधनत्वादेतस्य ।  
श्रोत्रादौ हि प्राप्यकारित्वात्यासन्नार्थप्रकाशकत्वयोर्व्याप्यव्यापक-  
भावसिद्धौ ज्ञात्वा परस्य व्यापकभावेष्ट्याऽत्यासन्नार्थाप्रकाशकत्व-  
२० लक्षणयाऽनिष्टस्य प्राप्यकारित्वलक्षणव्याप्याभावस्यापादानमात्रः  
मेवानेन विधीयते, इत्युक्तदोषाप्रसङ्गः । नाप्यनैकान्तिको विरुद्धो  
वा; विप्रक्षेप्यैकदेशे तत्रैव वाऽस्योऽप्रवृत्तेः ।

न च 'स्पर्शनं' प्राप्यकारिणाप्यत्यासन्नस्याभ्यन्तरे शरीरव्य-  
वस्पर्शस्याप्रकाशनादनेकान्तः, अस्य तैत्कारणत्वेन तदविषय-  
२५ त्वात् । स्वकारणव्यतिरिक्तो हि 'स्पर्शादिः' स्पर्शनादीन्द्रियाणां

१ बलीयस्त्वादित्यत्र- १. १२ बलीयस्त्वस्य । २ समलजले । शक्तिर्नास्ति । स्वच्छ-  
जलेति तर्हि योग्यतैव कारणम् । ४ अप्राप्तार्थप्रकाशकत्वेति न सक्तत्वाद्भावेन चक्षुः ।  
यत्र योग्यता त प्रकाशयति यत्र योग्यता नास्ति तं न प्रकाशयतीति । ५ नैयायिकेन-  
६ कामलादि । ७ शब्दादिकं प्रकाशयेत् । ८ आदिपदेनाजनादि । ९ साम्प्रस-  
ङ्गस्य । १० हेतुस्मरणो विचारः । ११ अत्यासन्नार्थं न प्रकाशयतीति ।  
१२ सर्वथा पुच्छाभावः । १३ अन्यथा । १४ (जैनो वक्ति) परेष्ट्याऽनिष्टापादनं  
प्रसङ्गसाधनम् । १५ अनुमानस्य । १६ नैयायिकस्य । १७ चक्षुषीलव्याहियते ।  
१८ चक्षुषा । १९ अनुमानेन । २० प्राप्यकारित्वस्य । २१ हेतोः । २२ तस्य  
उपादानकारणत्वेन, न तु निमित्तकारणत्वेन ।

विषयः, तत्रैवाभिमुख्यसम्भवेनामीषां प्रकाशनयोग्यतोपपत्तेः । कथमन्यथैकशरीरप्रदेशान्तरगतस्पर्शनैः तत्प्रदेशान्तरगतः स्पर्शः प्रकाश्येत ? न च कामलादयोऽङ्गनादयो वा चक्षुषः कारणं येन तेषामप्यनेन न्यायेन प्रकाशनं न स्यात्, स्वसामग्रीतस्तत्सन्निधानात्प्रागेवास्त्योत्पन्नत्वात् । नापि कालात्ययापदिष्टोयम्; प्रत्यक्षस्य पक्षावाधकत्वेन प्रागेव समर्थनात्, आगमस्य च तद्वाधकस्यासम्भवात् । नापि सत्प्रतिपक्षः, विपरीतार्थोपस्थापकानुमानानां प्रागेव प्रतिष्वस्तत्वादिति । तथा, 'चक्षुर्गत्वा नाऽर्थेनाभिसम्बध्यते इन्द्रियत्वात्स्पर्शनादीन्द्रियवत्' इत्यनुमानाच्चास्याप्राप्यकारित्वसिद्धिः । अर्थस्य च तद्देशागमने प्रत्यक्षविरोध इति । १०

तच्चोक्तप्रकारं प्रत्यक्षं मुख्यसांव्यवहारिकप्रत्यक्षप्रकारेण द्विप्रकारम् । तत्र सांव्यवहारिकप्रत्यक्षप्रकारस्योत्पत्तिकारणस्वरूपे प्रकाशयति—

इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः

सांव्यवहारिकम् ॥ ५ ॥

१५

विशदं प्रत्यक्षमित्यनुवर्तते । तत्र समीचीनोऽवाचितः प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणो व्यवहारः सांव्यवहारः, स प्रयोजनमर्थेति सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षम् । नन्वेवंभूतमनुमानमप्यत्र सम्भवतीति तदपि सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षं प्राप्नोतीत्याशङ्कापनोदार्थम्—'इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः' इत्याह । देशतो विशदं यत्तत्प्रयोजनं कर्तुं २० तत्सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षमित्युच्यते नान्यदित्यनेन तत्स्वरूपम्, इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमित्यनेन पुनस्तदुत्पत्तिकारणं प्रकाशयति ।

तत्रैन्द्रियं द्रव्यभावेन्द्रियभेदाद्भेदा । तत्र द्रव्येन्द्रियं गोलकादिपरिणामविशेषपरिणतरूपरसगन्धस्पर्शवत्पुद्गलात्मकम्, पृथि- २५ व्यादीनामत्यन्तभिन्नजातीयत्वेन द्रव्यान्तरत्वासिद्धितस्तस्य प्रत्येकं तदारब्धत्वासिद्धेः । द्रव्यान्तरत्वासिद्धिश्च तेषां विषयपरिच्छेदे प्रसाध्यिष्यते । भावेन्द्रियं तु लब्ध्युपयोगात्मकम् । तत्राऽऽवरणक्षयोपशमप्राप्तिरूपार्थग्रहणशक्तिर्लब्धिः, तद्भावे सतोप्यर्थ-

१ स्वकारणव्यतिरिक्ते स्पर्शदानाभिमुख्य नास्ति यदि । २ पुरांनुमानप्रकारेण । ३ स्नेहानिष्ठयोरर्थयोः । ४ लोके । ५ अनुमानादि । ६ आचार्यः । ७ इन्द्रियानिन्द्रिययोर्मध्ये । ८ सर्वाङ्गतत्वात्, जिह्वा, नासा, गोलकपद्मपुट, कर्णशङ्कुलीति पञ्चसख्यात्मकम् । ९ सर्वथा । १० चतुर्थे ।

प्र० क० भा० २०

स्याप्रकाशनात्, अन्यथातिप्रसङ्गः । उपयोगस्तु रूपादिविषय-  
ग्रहणव्यापारः, विषयान्तरासक्ते चेत्तसि सन्निहितस्यापि विषय-  
स्याग्रहणात्तत्सिद्धिः । एवं मनोपि द्वेधा द्रष्टव्यम् ।

ततः “पृथिव्यतेजोवायुम्यो घ्राणरसनचक्षुःस्पर्शनेन्द्रिय-  
भावेः” [ १ ] इति प्रत्याख्यातम्; पृथिव्यादीनामन्योन्यमेका-  
न्तेन द्रव्यान्तरत्वासिद्धेः, अन्यथा जलादिमुक्ताफलादिपरिणामा-  
भावप्रसक्तिरात्मादिवत् । न चैवम्, प्रत्यक्षादिविरोधात् ।

अथ मतम्-पार्थिवं घ्राणं रूपादिषु सन्निहितेषु गन्धस्यैवामिव-  
ञ्जकत्वाच्चाङ्गकर्णिकाविमर्दककरतलवत्; तदप्यसङ्गतम्; हेतोः  
१० सूर्यरश्मिभिरुदकसेकेन चानेकान्तात् । इदमते हि तैलाभ्यक्तस्या-  
दित्यमरीचिकाभिर्गन्धामिव्यक्तिर्भूमेस्तुदकसेकेनेति । ‘आप्यं रसनं  
रूपादिषु सन्निहितेषु रसस्यैवामिव्यञ्जकत्वाल्लावत्’ इत्यत्रापि  
हेतोर्लवणेन व्यभिचारः, तस्यानाप्यत्वेपि रसामिव्यञ्जकत्वप्र-  
सिद्धेः । ‘चक्षुस्तैजसं रूपादिषु सन्निहितेषु रूपस्यैवामिव्यञ्जक-  
१५ त्वात्प्रदीपवत्’ इत्यत्रापि हेतोर्भाणिक्याद्युद्योतितेनानेकान्तः ।  
‘वायव्यं स्पर्शनं रूपादिषु सन्निहितेषु स्पर्शस्यैवामिव्यञ्जकत्वात्सो-  
यंशीतस्पर्शव्यञ्जकत्वाद्यैवविवत्’ इत्यत्रापि कर्पूरादिनां सलिल-  
शीतस्पर्शव्यञ्जकेनानेकान्तैः ।

पृथिव्यतेजःस्पर्शाभिव्यञ्जकत्वाच्चासौ पृथिव्यादिकार्यत्वानु-  
२० षङ्गो वायुस्पर्शाभिव्यञ्जकत्वाद्वायुकार्यत्ववत् । चक्षुषश्च तेजोरू-  
पाभिव्यञ्जकत्वात्तेजःकार्यत्ववत् पृथिव्यप्समवायिरूपव्यञ्जकत्वा-  
त्पृथिव्यप्कार्यत्वप्रसङ्गः । रसनस्य चाप्यरसामिव्यञ्जकत्वाद्-  
प्कार्यत्ववत् पृथिवीरसामिव्यञ्जकत्वात्पृथिवीकार्यत्वप्रसङ्गः ।

‘नामसं श्रोत्रं रूपादिषु सन्निहितेषु शब्दस्यैवामिव्यञ्जकत्वात्’  
२५ इति चाऽसाम्प्रतम्, शब्दे नमोगुणत्वस्याग्रे प्रतिषेधात् । तत-  
श्चेदमप्ययुक्तम्-“शब्दः स्वसमानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण

१ तदभावेऽप्यर्थप्रकाशनं चेत् । २ पिशाचपरमाण्वादेरपि ग्रहणप्रसङ्गः । ३ विषयं  
प्रलम्बिमुखता । ४ नैयायिकमतम् । ५ सर्वथा । ६ आदिपदेन चन्द्रकान्तादिषु ।  
७ पार्थिवत्वाभावात् । ८ नु । ९ तैजसत्वाभावात् । १० तोयगत । ११ यसः ।  
१२ पात्रिणेन । १३ सलिलगत । १४ वायव्याभावात् । १५ स्पर्शनेन्द्रियस्य ।  
१६ शब्दो विशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते इत्युच्यमाने सिद्धसाध्यता भविष्यति । न हि  
चैनेनापि रूपरक्षणगुणवता श्रोत्रेण शब्दो न गृह्यते इत्युच्यमान्यते । तद्वचनच्छेदार्थं  
स्वसमानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते इत्युक्तम् । - तथापि सम्भवत्तत्वेन समान-  
जातीयरूपरक्षणविशेषगुणवतेन्द्रियेण शब्दो गृह्यत इत्युच्यमानादिसिद्धसाध्यता ।

गृह्यते सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्, बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वे सत्यनात्मविशेषगुणत्वाद्वा रूपादिवत्” [ - - ] इति । ततो नेन्द्रियाणां प्रतिनियतभूतकार्यत्वं व्यवतिष्ठते प्रमाणाभावात् । प्रतिनियतेन्द्रिययोग्यपुद्गलारब्धत्वं तु द्रव्येन्द्रियाणां प्रतिनियतभावेन्द्रियोपकरणभूतत्वान्यथानुपपत्तेर्यदृते इति ५ प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् ।

ननु चेन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तदित्यसाम्प्रतम्, आत्मार्यालोकार्देरपि तत्कारणतयात्राभिधानार्हत्वात्, तन्न, आत्मनः समनन्तरप्रत्ययस्य वा प्रत्ययान्तरेव्यविशेषात् अत्रानभिधानम् असाधारणकारणस्यैव निरूपयितुमभिप्रेतत्वात् । सन्निकर्षस्य चाऽ-१० व्यापकत्वादसाधकतमत्वाच्चानभिधानम् । अर्थालोकयोस्तदसाधारणकारणत्वादत्राभिधानं तर्हि कर्त्तव्यम्, इत्यप्यसत्, तयोर्ज्ञानकारणत्वस्यैवासिद्धेः । तदाह—

नार्थाऽऽलोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वान्नमोवत् ॥ ६ ॥

प्रसिद्धं हि तमसो विज्ञानप्रतिबन्धकत्वेनातत्कारणस्यापि परि-१५  
च्छेद्यत्वम् । ननु ज्ञानानुत्पत्तिव्यतिरेकेणान्यस्य तमसोऽभावा-

तद्वपुसास्य स्वेन द्वान्द्वलक्षणेन समानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते इत्युक्तम् । साध्यविशेषणसाफल्यानन्तर हेतुविशेषणसाफल्यमुच्यते । इन्द्रियग्राह्यत्वादित्युच्यमाने वदेनानेकान्तः । वदो हि इन्द्रियग्राह्यो भवति न च स्वसमानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते—वदस्य द्रव्यत्वेन तत्समानजातीयस्य गुणसाभावात् । तेनानेकान्तव्युदासार्थमेकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्युक्तम् । न हि वदस्यैकेन्द्रियग्राह्यत्वं स्पर्शनादीन्द्रियेणापि ग्रहणात् । एकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्युच्यमाने आत्मनानेकान्तः । आत्मा हि मनो-लक्षणेकेन्द्रियग्राह्यो भवति, न च समानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते—आत्मनो द्रव्यत्वेन तत्समानजातीयस्य गुणस्य मनस्यभावात् । तत्परिहारार्थं बाह्यैकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्युक्तम् । तथा च रूपत्वादिनानेकान्तः । रूपत्वादिकं बाह्यैकेन्द्रियग्राह्यं भवति, न च स्वसमानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते—रूपत्वस्य सामान्यभावेन तत्समानजातीयगुणस्यैवासम्भवात् । तत्परिहारार्थं सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्युक्तम् । न च रूपत्वसामान्यं सामान्यवद्भवति—निस्सामान्यानि सामान्यानीति वचनात् ।

१ न चैकपुद्गलमन्वत्वेनैकाग्रमूर्त्तं योग्यपुद्गलारब्धत्वात् । २ सहाय । ३ साम्य-  
बहारिकम् । ४ आदिपदेन सन्निकर्षादिः । ५ अलक्ष । ६ सृष्टेः । ७ कारणरूपस्य ।  
८ पूर्वम् । ९ उपादानत्वेनात्मनासदृश । १० यरोक्षज्ञाने । १२ सृष्टेः । १३ विशेषः ।  
१४ चक्षुषः प्राप्यकारित्वनिराकरणात् । १५ साम्यवहारिकस्य । १५ सृष्टेः ।  
१६ जैनेः । १७ ज्ञानस्य । १८ हेतव्यम् ।



त्कस्य दृष्टान्ताः ? इत्यप्यसङ्गतम् ; तस्यार्थान्तरभूतस्यालोकसेवान्नै-  
वानन्तरं समर्थयिष्यमाणत्वात् । ननु परिच्छेद्यत्वं च स्यात्त-  
योस्तत्कारणत्वं च अविरोधात् ; इत्यप्यपेशलम् ; तत्कारणत्वे  
तयोश्चक्षुरादिवत्परिच्छेद्यत्वविरोधात् ।

- ५ किञ्च, अर्थकार्यतया ज्ञानं प्रत्यक्षतः प्रतीयते, प्रमाणान्तराद्वा ?  
प्रत्यक्षतश्चेत्किं तैत एव, प्रत्यक्षान्तराद्वा ? न तावच्चत एव, अने-  
नार्थमात्रस्यैवानुभवात् । तैद्धेतुत्वविशिष्टार्थानुभवे वा विवादी  
न स्यात्प्रीलत्वादिवत् । न खलु प्रमाणप्रतिपक्षे वस्तुरूपेऽसौ दृष्टो  
विरोधात् । न हि कुम्भकारादेर्घटादिहेतुत्वेनानुभवे सोस्ति । तन्न  
१० तदेवात्मनोऽर्थकार्यतां प्रतिपद्यते । नापि प्रत्यक्षान्तरम् ; तेनाप्य-  
र्थमात्रस्यैवानुभवात्, अन्यथोक्तदोषानुषङ्गः, ज्ञानान्तरस्यानैना-  
ग्रहणाच्च । एकैकसमवेतानन्तरं ज्ञानग्राह्यमर्थज्ञानमित्यभ्युपगमेपि  
अनेनार्थाग्रहणम् । न चोभयविषयं ज्ञानमस्ति यतस्तत्प्रतिपत्तिः ।

- अथ प्रमाणान्तरात्सर्वार्थकार्यता प्रतीयते ; तत्किं कौनविषयम्,  
१५ अर्थविषयम्, उभयविषयं वा स्यात् ? तत्राद्यविकल्पद्वये तयोः  
कार्यकारणभावाप्रतीतिः एकैकविषयज्ञानग्राह्यत्वात्, कुम्भकार-  
घटयोरन्यतरविषयज्ञानग्राह्यत्वे तद्भावाप्रतीतिवत् । नाप्युभय-  
विषयज्ञानात्प्रतीतिः ; तद्विषयज्ञानस्यास्मादृशं भवतीति नभ्युपग-  
मात् । न खलु 'ज्ञाने प्रवृत्तं ज्ञानमर्थेपि प्रवर्तते' इति वा प्रवृत्तं  
२० ज्ञाने' इत्यभ्युपगमो भवतः । अभ्युपगमे वा प्रमाणान्तरत्वप्रस-  
क्तिरिति व्याप्तिज्ञानविचारे विचारयिष्यते ।

- अथानुमानात्तत्कार्यतावसार्यः ; तथाहि-अर्थालोककार्यं विज्ञानं  
तदन्वयव्यतिरेकानुविधानात्, यद्यस्यान्वयव्यतिरेकावर्तुविधत्ते  
तत्तस्य कार्यम् यथाग्नेर्धूमः, अन्वयव्यतिरेकावनुविधत्ते चार्था-  
२५ लोकयोर्ज्ञानम् इति । न चात्रासिद्धौ हेतुस्तत्सद्भावे सत्येवास्य  
भावादभावे चाभावात् । इत्याशङ्क्याह—

- १ ग्रन्थे । २ तत्र ज्ञाने । ३ वटं विषयीकरोति यत्प्रत्यक्षम् । ४ ज्ञान ।  
५ आद्यप्रत्यक्षम् । ६ स्वस्य । ७ जानाति । ८ विचारलक्षणम् । ९ अर्थज्ञानयोरनु-  
भवक्षेत्रप्रत्यक्षान्तरेण । १० प्रथमप्रत्यक्षज्ञानस्य । ११ द्वितीयज्ञानापेक्षया । १२ द्वितीय-  
ज्ञानेन । १३ आत्मलक्षण । १४ द्वितीय । १५ परेण । १६ अर्थकार्यतया ज्ञानस्य ।  
१७ अपि तु न कुतोपि । १८ ज्ञानस्य । १९ वसः । २० अर्थज्ञानयोः ।  
२१ प्रमाणान्तरात् । २२ ज्ञानसार्थकार्यतायाः । २३ किञ्चिज्ज्ञानात् । २४ नैयायि-  
केन । २५ उभयविषयज्ञानस्य । २६ उभयविषयज्ञानस्य पञ्चमस्य । २७ निश्चयः ;  
२८ अनुकरोति ।

## तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुक- ज्ञानवन्नक्तञ्चरज्ञानवच्च ॥ ७ ॥

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च, न केवलं परिच्छेद्यत्वा-  
च्चयोस्तदकारणताऽपि तु ज्ञानस्य तदन्वयव्यतिरेकानुविधाना-  
भावाच्च । नियमेन हि यद्यस्यान्वयव्यतिरेकावनुकरोति तत्तस्य ५  
कार्यम् यथाग्नेर्धूमः । न खानयोरन्वयव्यतिरेकौ ज्ञानेनानु-  
क्रियेते ।

अत्रोभयप्रसिद्धद्वयान्तमाह-केशोण्डुकैज्ञानवन्नक्तञ्चरज्ञानवच्च ।  
कामलाद्युपहतचक्षुषो हि न केशोण्डुकज्ञानेयः कारणत्वेन  
व्याप्रियते । तत्र हि केशोण्डुकस्य व्यापारः, नयनपद्मादेर्वा, तत्कै- १०  
शानां वा, कामलादेर्वा गत्यन्तराभावात् ? न तावदाद्यविकल्पः,  
न खलु तज्ज्ञानं केशोण्डुकलक्षणैर्यै सत्येव भवति भ्रमाभार्वप्र-  
सङ्गात् । नयनपद्मादेस्तत्कारणत्वे तस्यैव प्रतिभासप्रसङ्गात्,  
गगनतलावलम्बितया पुरःस्थतया केशोण्डुकाकारतया च प्रति-  
भासो न स्यात् । न ह्यन्यदन्यत्रान्यथा प्रत्येतुं शक्यम् । अथ नय- १५  
नकेशा एव तत्र तथाऽसन्तोपि प्रतिभासन्ते; तर्हि तद्वद्विहितस्य  
कामलिनीपि तत्प्रतिभासाभावः स्यात् ।

किञ्च, असौ तद्देशे एव प्रतिभासो भवेन्न पुनर्देशान्तरे । न  
खलु स्थाणुनिबन्धना पुरुषभ्रान्तिस्तद्देशादप्यत्र दृष्टा । कथं च  
तद्देशतो तद्दाकारता चाऽसती तज्ज्ञानं जनयेद्यतो ग्राह्या स्यात् । २०  
अथ भ्रान्तिवशात्तत्केशाएव तत्र तर्था तज्ज्ञानं जनयन्ति; अस्मा-  
कमपि तर्हि 'चक्षुर्मनसी रूपज्ञानमुत्पादयेते' इति समानम् ।  
यथैव ह्यन्यविषयजनितं ज्ञानमन्यविषयस्यै ग्राहकं तथान्यैकारण-  
जनितमपि स्यात् ।

- अथ कामलादय एव तज्ज्ञानस्य हेतवः, तेभ्यश्चोत्पन्नं तदसदेव २५  
केशादिकं प्रतिपद्यते; तर्हि निर्मललोचनमनोमात्रकारणादुत्पद्य-

१ अर्थाढोक । २ अर्थाढोकयोर्ज्ञानं प्रत्यकारणत्वे साध्ये । ३ अर्थाभावे (कोपेकू-  
हकशब्द एव अयते) । ४ आलोकभावे । ५ भवति चेत्तर्हि । ६ केशोण्डुकज्ञानस्य ।  
७ नरस्य । ८ केशोण्डुक । ९ नयनदेशे । १० नयनकेशानात् । ११ गगनतले ।  
१२ गगनतले । १३ नयनकेशेषु । १४ केशोण्डुक । १५ केशोण्डुक । १६ नयन ।  
१७ गगनतले । १८ केशोण्डुकतया । १९ केशोण्डुक । २० नयनकेशेभ्यस्तत्काशा-  
दन्यत्केशोण्डुकस्य ग्राहकं चेत् । २१ केशोण्डुकादन्ये नयनकेशाः । २२ नयनकेशे-  
भ्यस्तत्काशादन्यत्केशोण्डुकं तस्य । २३ अर्थादन्ये इन्द्रियमनसी । २४ केशोण्डुक ।

मानं ज्ञानं सदेव वस्तु विषयीकरोतीति किन्नेष्यते? तत्कथमर्थ-  
कार्यता ज्ञानस्य अनेन व्यभिचारात् संशयज्ञानेन च?

- न हि तदर्थं सत्येव भवति; अभ्रान्तत्वानुषङ्गात्, तद्विष-  
यभूतस्य स्थाणुपुरुषलक्षणार्थद्वयस्यैकत्र सद्भावासम्भवाच्च ।  
५ सद्भावे वारेको न स्यात् । अथोच्यते—“सौमान्यप्रत्यक्षाद्विशेषा-  
प्रत्यक्षादुभयविशेषस्मृतेश्च संशयः” [वैशे० सू० २।२।१७]  
विपर्ययः पुनस्तद्विपरीतविशेषस्मृतेः इत्यर्थोदेवानयोर्भावः; तद-  
प्युक्तिमात्रम्; तयोः खलु सामान्यं वा हेतुः स्यात्, विशेषो  
वा, इयं वा? न तावत्सामान्यम्; तत्र संशयाद्यभावात्  
१० ‘सामान्यप्रत्यक्षात्’ इत्यभिधानात्, प्रत्यक्षे च संशयादि-  
विरोधात् । विशेषविषयं च संशयादिज्ञानम् । न चास्य सामान्यं  
जनकं युज्यते । न ह्यन्यविषयं ज्ञानमन्येन जन्यते, रूप-  
ज्ञानस्य रसादुत्पत्तिप्रसङ्गात् । यथा च सामान्यादुपजायमानं  
तदसतो विशेषस्य वेदकं तथेन्द्रियमनोभ्यां जायमानं सतः  
१५ सामान्यादेरपीति व्यर्थार्थस्य तद्धेतुत्वकल्पना । सौमान्यार्थजत्वे  
चास्यै अर्थानैर्यजत्वप्रतिज्ञाविरोधः, कामलिनश्च केशोण्डुकादि-  
ज्ञानानुत्पत्तिः, न खलु तत्र केशोण्डुकादिसमानधर्मा धर्मा विद्यते  
यद्दर्शनात्तत्स्यात् । तत्रास्य सामान्यं हेतुः ।

- नापि विशेषस्तत्र तदभावात् । न खलु पुरोदेशे स्थाणुपुरुष-  
२० लक्षणो विशेषोस्ति तैज्ज्ञानस्याभ्रान्तत्वप्रसङ्गात् । स्थाणुरस्तीति  
चेत्, कथं ततः किं पुरुषः पुरुष एवेति पुरुषांशावसायः?  
अन्यथान्यत्रापि ज्ञानेर्थाकारणत्वकल्पना व्यर्था । तत्र विशे-  
षोपि तद्धेतुः । नाप्युभयम्; उभयपक्षोक्तदोषानुषङ्गात् । ततः  
संशयादिज्ञानस्यार्थाभावेऽप्युपलम्भात्कथं तदभावे ज्ञानाभावसि-  
२५ ध्विर्यतोर्थकार्यतास्य स्यात्?

- १ भवता नैयायिकेन । २ केशोण्डुकज्ञानेन । ३ अन्यथा । ४ संशयज्ञानस्य ।  
५ संशयः । ६ परेण । ७ ऊर्द्धतासामान्यस्य ग्राहकं प्रत्यक्षमुपलम्भस्तत्सात् ।  
८ स्थाणुत्वं पुरुषत्वलक्षणो विशेषस्तत्सात्प्रत्यक्षमनुपलम्भस्तत्सात् । ९ विद्यमानविशे-  
षात् । १० तस्माद्विद्यमानविशेषात्सामान्यादिलक्षणात् । ११ ज्ञानम् । १२ सामान्य-  
प्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्षादिति सामग्रीतः संशयोत्पत्तौ दूषणान्तरमाह । १३ संशयस्य ।  
१४ स्थाणुपुरुषलक्षणयोरप्यन्योन्यतर एकस्तु विषयानोयौऽपरोऽविषयानोऽनर्थः ।  
१५ स्थाणुस्थानीयः । १६ आकाशे । १७ शुक्तिकास्थानीयः । १८ संशयादेः ।  
१९ पुरोदेशे । २० अन्यथा । २१ स्थाणवविद्यमानस्य पुरुषांशस्य व्यवसायो यदि ।  
२२ इन्द्रियमनोभ्यामुत्पत्तेः सत्यज्ञानेति । २३ संशयादिहेतुः ।

ननु भ्रान्तं तत्तेनापलभ्यते, न चान्यस्य व्यभिचारेन्यस्य व्यभिचारोऽतिप्रसङ्गात्; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; स्वपरग्रहणलक्षणं हि ज्ञानम्, तत्र च यथा सत्यामिमतज्ञानं स्वपरग्राहकं तथा केशोण्डुकादिज्ञानमपि। एतावौस्तु विशेषः—किञ्चित्सत्परं गृह्णाति संवादसद्भावात्किञ्चिदसद्विसंवादात्, न चैतावता ज्ञात्यन्तर-<sup>५</sup>त्वेनानैयोरन्यत्वं ताभ्यां व्यभिचाराभावो वा। अन्यथा 'प्रयत्नान्तरीयकः शब्दः कृतकत्वाद् घटादिवत्' इत्यादेरप्यप्रयत्नान्तरीयकैर्विद्युद्वनकुसुमादिभिर्न व्यभिचारः, तात्वादिदण्डादिजनितच्छब्दघटादेस्तद्विपरीतस्य विद्युदारेन्यत्वात्। न चान्यस्य व्यभिचारेऽन्यस्यापि व्यभिचारोऽतिप्रसङ्गात्। तथाप्यत्र व्यभि-<sup>१०</sup>चारे प्रकृतेः सोऽस्तु विशेषोभावात्।

किञ्च, 'कारणमेव परिच्छेद्यम्' इत्यभ्युपगमे योगिज्ञानात्प्राक्कालभाविन एवार्थस्यानेन परिच्छित्तिः स्यात् तस्यैव तत्कारणत्वात्; न पुनस्तत्कालभाविनोऽर्थाविनो वा, तस्यातत्कारणत्वात्। लब्धात्मलभं हि किञ्चित्कस्यचित्कारणं नान्यथातिप्रस-<sup>१५</sup>ङ्गात्। तथाप्यनेन तत्परिच्छेदेऽन्यज्ञानेनाप्यतत्कारणस्याप्यर्थस्य परिच्छेदः स्यात्। तथा चेदमयुक्तम्—“अर्थसद्व्यवहारितयार्थवत्प्रमाणम्” [ ] इति। तदपरिच्छेदे चास्यासर्वज्ञतानुषङ्गः। ज्ञानान्तरेण परिच्छेदे तस्यापि ज्ञानान्तरस्य समसमयभाविनोर्थस्यापरिच्छेदकत्वात्कथं सर्वज्ञतेति चिन्त्यम्। <sup>२०</sup>

क्षणिकत्वे चार्थस्य ज्ञानकालेऽसत्त्वात्कथं तेन ग्रहणम्? तदाकारता चास्य प्रोक्तप्रत्युक्ता। सत्यां वा तस्या एव ग्रहणात्परमार्थतोर्थस्याग्रहणात्तदेवाऽसर्वज्ञत्वम्। न खलु चैत्रसद्व्यवहारो मूत्रे दृष्टे परमार्थतश्चैत्रो दृष्टो भवत्यन्यत्रोपचारात्। साध्वी चोपचारेण सर्वज्ञत्वकल्पना सुगतस्य सर्वस्यै तथाप्राप्तेः,<sup>२५</sup> एकस्य कस्यचित्सतो वेदने तत्सदृशस्य सत्त्वेन सर्वस्य वेद-

१ कारणेन। २ गोपालघटिकाधूमस्य धावकव्यभिचारे धूपरादिधूमस्यपि तद्व्यभिचारः स्यात्। ३ भ्रान्ताभ्रान्तज्ञानयोः। ४ सञ्चयविपर्ययाभ्याम्। ५ ज्ञानस्यार्थभावे भावो व्यभिचारस्तस्याभावो न च। ६ एतावतान्यत्वं व्यभिचाराभावो वा स्यादपि तर्हि। ७ अपेक्षितपरव्यापारो हि भावः कृतक उच्यते। ८ तात्वावयवजनितस्य, मेवादिकारणकस्य। ९ मित्रजातीयत्वात्। १० प्रयत्नान्तरीयकर्तृत्वं विना भावे। ११ अन्यत्वेऽपि। १२ कृतकत्वादिलस्य हेतोः। १३ ज्ञाने। १४ अन्यत्वस्य। १५ ईश्वरज्ञानाद्वा। १६ अविष्यतोर्वस्य। १७ खरविषाणमपि कस्यचित्कारणं स्यादित्यतिप्रसङ्गः। १८ वर्तमानस्य भाविनो वार्तस्य ज्ञानाकारणत्वेऽपि। १९ योगिनः। २० भाविनोर्वस्य। २१ प्रथमपरिच्छेदे। २२ प्राणिभावस्य। २३ समिधितस्य।

नसम्भवात् । सत्त्वेन सर्वस्य सर्वेण वेदनमन्यैस्तु धर्मैरवेदन-  
मिति चेत्, तर्हि [“ए] कस्यार्थस्वभावस्य” [प्रमाणवा० १४४]  
इत्यादिग्रन्थविरोधः । सत्त्वेनापि तदग्रहणे न सादृश्यं ग्रहण-  
कारणमिति कथं सुगतस्योपचारेणापि बहिः प्रमेयग्रहणम्?

५ कथं चैवंवादिनो भावस्योत्पद्यमानता प्रतीयते-सा ह्युत्पद्यमाना-  
र्थसमसमयभाविना ज्ञानेन प्रतीयते, पूर्वकालभाविना, उत्तरका-  
लभाविना वा? न तावत्समसमयभाविना; तस्याऽतत्कार्यत्वात् ।  
नापि पूर्वकालभाविना; तत्काले तस्याः सत्त्वाभावात् । न चासती  
प्रत्येतुं शक्या; अकारणत्वात् । तदा खलूत्पत्त्यमानतार्थस्य न  
१० तत्पद्यमानता । नाप्युत्तरकालभाविना; तदा विनष्टत्वात्तस्याः ।  
न हि तदोत्पद्यमानतार्थस्य किं तत्पन्नता ।

नित्येश्वरज्ञानपक्षे सिद्धमकारणस्याप्यर्थस्यानेन परिच्छेद्यत्वम् ।  
तद्वदन्येनापि स्यात् । अथार्थाकार्यत्वे तद्वन्नित्यत्वाभिखिलार्थ-  
ग्राहित्वानुषङ्गः; न; अक्षुरादिकार्यत्वेनानित्यत्वात् । प्रतिनियत-  
१५ शक्तित्वाच्च प्रतिनियतार्थग्राहित्वम् । न खलु यैकस्य शक्तिः  
सान्यस्यापि, अन्यथा सर्वस्य सर्वकर्तृत्वानुषङ्गो महेश्वरवत् ।  
यथैव हीश्वरः कार्यभ्रमेणानुपक्रियमाणोप्यविशेषेण तं करोति  
तथा कुम्भकारापि कुर्यात् । न हि सोऽपि तेनोपक्रियते येन  
'उपकारकमेव कुर्यान्नान्यम्' इति नियमः स्यात् । शक्तिप्रतिनि-  
२० यमार्तद्विशेषेपि कश्चित्कर्तृत्वचित्कर्तृत्वम्युपगमो ग्राहकत्वपक्षेपि  
समानः ।

ननु यद्यर्थाभावेपि ज्ञानोत्पत्तिः कुतो न नीलाद्यर्थरहिते प्रदेशे  
तद्भवति? भवत्येव नयनमनसोः प्रणिधाने । कथं न नीलाद्यर्थग्र-  
हणम्? तत्र तदभावात् । कथं 'तदुत्पन्नम्' इत्यवगमः? न हि

१ पुरुषेण । २ नीलपीतादिलक्षणैः । ३ नीललक्षणस्वार्थस्य प्रत्यक्षतः प्रतीतेः  
कोऽन्यो भावो नः प्रमाणान्तरेनैव चेति अन्वयस्य विरोधः । ४ प्रतिनियतस्य सादृश्यस्य  
ग्रहणं स्यान्न त्वर्थस्य । ५ कारणमेव परिच्छेद्यमिति वादिनः । ६ असदादिज्ञानेन ।  
७ असदादिज्ञानस्य । न-इति चेन्नैतत्तर्थाः । ८ असदादिज्ञानस्य । ९ ईश्वरज्ञानस्य ।  
१० असदादिज्ञानस्य । ११ एकस्य वा शक्तिः सान्वयस्य यदि । १२ नरस्य ।  
१३ सर्वकार्याणां । १४ आमाः समूहः । १५ अनुपकारककार्यकारणत्वस्याविशेषेपि ।  
१६ षट्पटादिषु मध्ये । १७ सर्वकार्यताऽभावेपि ज्ञानं कृत्यविद्योपवस्य ग्राहकं  
स्यादिति समानता । १८ पुरोदेशे ।

१ 'प्रकृत्वार्थस्वभावस्य प्रत्यक्षस्य सतः स्वयम् ।

कोऽन्यो न भागो बृहः स्वात्रः प्रमाणैः परीक्ष्यते ॥" [प्रमाणवा० १४४]

विषयमपरिच्छिन्दत् ज्ञानम् 'अस्ति' इति युक्तम्, अन्यथा सर्वत्र सर्वदा सर्वस्य तदनिवार्यं भवेदित्यप्यसारम्; तत्रोपनीतस्य नीलादेस्तैर्नैव ग्रहणोपलम्भात्। तदैव तदन्यज्ज्ञात(न)मिति चेत्किमिदानीं प्रतिविषयं प्रकाशकस्य भेदः? तथाभ्युपगमे प्रदीपादेरपि प्रतिविषयमन्यत्वप्रसङ्गः। प्रत्यभिज्ञानमुर्मयत्र समानम्। ५

नन्वर्थाभावेऽपि ज्ञानसद्भावेऽतीतानागते व्यवहिते च तत्स्यात्सन्निहितवत्। ननु (ननु) तत्र तत्स्यादिति कोऽर्थः? किं तत्रोत्पद्येत, तद्वाहकं वा भवेदिति? न तावत्तत्रोत्पद्येत; आत्मनि तदुत्पत्त्यभ्युपगमात्। नापि तद्वाहकं भवेत्; अयोग्यत्वात्। न खलु तदुत्पन्नमपि सर्वं वेत्ति, योग्यस्यैव वेदनात्। कारणेऽपि चैतच्छब्दोऽर्थः १० समानम्। तत्रापि हि कारणं कार्येणानुपक्रियमाणं यावत्प्रतिनिवृतं कार्यमुत्पादयति तावत्सर्वं कस्माच्चोत्पादयतीति चोद्ये योग्यतैव शरणम्। ततो ज्ञानस्यार्थान्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात्कथं तत्कार्यता यतः "अर्थवत्प्रमाणम्" [न्यायमा० पृ० १] इत्यत्र भाष्ये "प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरमव्यपदेश्याऽव्यभिचारिव्यव- १५ सायात्मके ज्ञाने कर्तव्येऽर्थसहकारितयार्थवत्प्रमाणम्" [ ] इति व्याख्या शोभेत? तन्नार्थकार्यता विज्ञानस्य।

नाप्यालोककार्यता; अक्षनादिसंस्कृतचक्षुषां नक्तञ्चराणां चालोकाभावेऽपि ज्ञानोत्पत्तिप्रतीतिः। अथालोकस्याकारणत्वेऽन्धकारावस्थायामप्यसदादीनां ज्ञानोत्पत्तिः स्यात्। न चैवम्; तत- २० स्तद्भावे भावात्तदभावे चाभावात्तत्कार्यताऽस्य। अन्यथा धूमो-

१ अर्थे। २ पुरोदेशे। ३ पूर्वज्ञानेनैव। ४ अन्यज्ज्ञानामीलसिद्धवसरे। ५ ज्ञानस्य। ६ य पदार्थं प्रदीपो वदस्य प्रकाशकः स पदार्थं पदस्य प्रकाशको यथा तथा य पद नीलज्ञानपरिणत आत्मा स पदान्यज्ञानपरिणतः। ७ कारणचोषपक्षेऽपि। ८ कुलादिदिव्यलक्षणम्। ९ वटादिच्छणेन। १० प्रमाणं भवति। कीदृशम्? अर्थवदर्थो विद्यते यस्य तत्। अर्थवत्प्रमाणमित्युक्ते ज्ञानमपि प्रमाणं स्यात्तत्परिहारार्थमर्थसहकारितयेति। न च ज्ञानमर्थसहकारितयाऽर्थवत् किन्तु अर्थविषयतयाऽऽत्मनव् अर्थसहकारितयाऽर्थवत्प्रमाणमित्युच्यमाने मनोऽपि प्रमाणं स्यात्। कथम्? सुखोत्पत्तौ सख्यनितादिसहकारितयाऽर्थवत्प्रवृत्तिरिति मनः। इति तद्वयवच्छेदार्थमव्यपदेश्यादिविशेषण-विशिष्टे ज्ञाने कर्तव्ये इत्युक्तम्। एवं चैतत्प्रमाता प्रमेयं च प्रमाणं स्यात्। कथम्? प्रागुक्तविशेषणे ज्ञाने कर्तव्ये सम्भाव्यार्थसहकारितया अर्थवत्प्रमाता भवति। इति प्रागुक्तविशेषणे ज्ञाने कर्तव्ये खण्डमुण्डादिव्यक्तिलक्षणाऽर्थसहकारितया अर्थवदिति प्रमेयं शोभाति सामान्यरूपम्। इति तत्परिहारार्थं प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरमित्युक्तम्। ११ अन्यव्यतिरेकसद्भावेऽपि आलोकज्ञानयोः कार्यकारणभावो नास्ति यदि।

प्यभिजन्यो न स्यात्, तद्व्यतिरेकेणान्यस्य तद्व्यवस्थापकस्याभा-  
वादिति चेत्, किं पुनरन्धकारावस्थायां ज्ञानं नास्ति? तथा चेत्,  
कथमन्धकारप्रतीतिः? तदन्तरेणापि प्रतीतावन्यत्रापि ज्ञानकल्प-  
नानर्थक्यम् । 'प्रतीयते, ज्ञानं नास्ति' इति च स्वप्नचनविरोधः,  
५ प्रतीतेरेव ज्ञानत्वात् ।

अथान्धकाराख्यो विषय एव नास्ति यो ज्ञानेन परिच्छिद्येत,  
अन्धकारव्यवहारस्तु लोके ज्ञानानुत्पत्तिमात्र इत्युच्यते; यद्येव-  
मालोकस्याप्यभावः स्याद्विशदज्ञानव्यतिरेकेणान्यस्यास्याप्यप्र-  
तीतिः । तद्व्यवहारस्तु लोके विशदज्ञानोत्पत्तिमात्रः । ननु ज्ञानस्य  
१० वैशद्यमेव तदभावे कथम्? इत्यप्यहोचोदम्, नक्तञ्चरादीनां  
रूपेऽस्यदादीनां रसादौ च तदभावेपि तस्य वैशद्योपलब्धेः ।

आलोकविषयस्य च ज्ञानस्यार्त एवालोकाद्वैशद्यम्, तदन्तराद्या,  
अन्यतो वा कृतञ्चित्? यद्यन्यतः, न तद्व्यालोककृतं वैशद्यम् । न हि  
यद्यदभावेपि भवति तत्तत्कृतमतिप्रसङ्गात् । अथालोकान्तरात्;  
१५ तद्विषयस्यापि तस्यालोकान्तरार्तदित्यनवस्था । न चालोकान्तर-  
मस्ति । अथास्मादेवालोकात्, स्वविषयादेव तर्हि वैशद्यम्, तथा  
घटादिरूपादन्यत् । तस्याभासुरत्वान्नातस्तत्, इत्यप्ययुक्तम् । च-  
हलान्धकारनिशीथिन्यां नक्तञ्चरादीनां तत्र वैशद्याभायप्रसङ्गात् ।  
'विशदं प्रत्यक्षम्' इत्यत्र चोक्तं वैशद्यकारणम् । यद्येवं प्रदीपाहु-  
२० पादानमनर्थकं तदन्तरेणापि ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्गात्, नाऽनर्थकम्,  
आवरणोपनयनद्वारेण विषये ग्राह्यतालक्षणस्य विशेषस्य इन्द्रिय-  
मर्जसोर्वा तज्ज्ञानजनकलक्षणस्यातोऽज्ञादेरिवोत्पत्तेः । न चैता-  
वता तस्य तत्कारणता; काण्डपटाद्यावरणापनेतुर्हस्तादेरपि  
तैरेवप्रसङ्गात् । ततो यथा ज्ञानानुत्पत्तिव्यतिरेकेण-नान्यत्तमः  
२५ तर्था विशदज्ञानोत्पत्तिव्यतिरेकेणालोकोप्यन्यो न स्यात् । . . .

ननु 'अत्र प्रदेशे बहल आलोकोऽत्र च मन्दः' इति लोकव्य-  
वहारादन्यः सोस्तीति चेत्, तर्हि 'गुहागह्वरादौ बहलं तमोन्यव

१ अन्यव्यतिरेकव्यतिरेकेण । २ कार्यकारणभावव्यवस्थापकस्य । ३ अन्धकारस्य ।  
४ घटादिविषये । ५ अर्थः । ६ परेण भवता । ७ ज्ञानानुत्पत्तिमात्रान्धकारप्रकारेण ।  
८ प्रकृतज्ञानविषयात् । ९ खराभावेपि जायमानो घृमः खरहेतुकोन्यथा स्यात् ।  
१० वैशद्यम् । ११ प्रथमालोकादेव । १२ विशानस्य । १३ घटादिर्जनवैशद्यम्,  
तत्रैव किमालोकपरिकल्पनेन । १४ आवरणप्रसङ्गः । १५ तमः । १६ सममीक्षिः ।  
१७ प्रदीपादिना मनोलोचनस्याप्यस्य च स्वविशेषजननेपि । १८ वैशद्यकारणत्वं ।  
१९ जैनमते । २० विशदज्ञानोत्पत्तेः सकाशात् ।

मन्दम्' इति लोकव्यवहारः किं काकैर्मक्षितः ? अत्रास्याऽप्रमाण-  
त्वेऽन्यत्र कः समाश्वासः ? ननु वहिर्दशादागत्य गृहान्तःप्रविष्टस्य  
सत्यप्यालोके तमःप्रतीतेर्न पारमार्थिकं तत्, न चालोकतमसो-  
र्विरुद्धयोरेकत्रावस्थानम्, ततो ज्ञानानुत्पत्तिमात्रमेव तदिति  
चेत्, तर्हि नक्तञ्चरादीनामेव (वं) विवरादौ प्रदीपाद्यालोकाभावेऽपि ५  
तत्प्रतीतेः सोऽपि पारमार्थिको न स्यात् । न चैकत्र तमोऽभावेऽपि  
तत्प्रतीतेः सर्वत्र तदभावो युक्तः, अन्यथाऽर्थोभावेऽपि क्वचित्तत्प्र-  
तीतेः सर्वत्र तदभावः स्यात् । तस्मादालोकवत्त्वमपि प्रतीतिसि-  
द्धम् । तत्र चालोकाभावेऽपि ज्ञानानुत्पत्तिप्रतीतेः । न च तत्प्रति-  
तस्य कारणता । तद्वार्थालोकयोर्ज्ञानं प्रति कारणत्वम् । १०

एवं तर्हि तत्तयोः प्रकाशकमपि न स्यादित्याह—

अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकम् ॥ ८ ॥

ताभ्यामर्थालोकाभ्यामजन्यमपि तयोः प्रकाशकम् ।

अत्रैवार्थे प्रदीपवदित्युभयप्रसिद्धं दृष्टान्तमाह—

प्रदीपवत् ॥ ९ ॥

१५

न खलु प्रकाश्यो घटादिः स्वप्रकाशकं प्रदीपं जनयति, स्वका-  
रणकलापादेवास्योत्पत्तेः । 'प्रकाश्याभावे प्रकाशकस्य प्रकाशक-  
त्वायोगात्स तस्य जनक एव' इत्यभ्युपगमे प्रकाशकस्याभावे  
प्रकाश्यस्यापि प्रकाश्यत्वाघटनात् सोऽपि तस्य जनकोऽस्तु ।  
तथा चेतरेतराभ्यः—प्रकाश्यानुत्पत्तौ प्रकाशकानुत्पत्तेः, तदनु- २०  
त्पत्तौ च प्रकाश्यानुत्पत्तेरिति । स्वकारणकलापादुत्पन्नयोः प्रदी-  
पघटयोरन्योन्यापेक्षया प्रकाश्यप्रकाशकत्वधर्मव्यवस्थाया एव  
प्रसिद्धेनेतरेतराभ्यावकाश इत्यभ्युपगमे ज्ञानार्थयोरपि स्वसाम-  
ग्रीविशेषवशादुत्पन्नयोः परस्परापेक्षया ग्राह्यग्राहकत्वधर्मव्यव-  
स्थाऽऽस्थीर्यताम् । कृतं प्रतीत्यपलापेन ।

२५

३- ननु चाजनकस्याप्यर्थस्य ज्ञानेनावगतौ निखिलार्थावगतिप्रस-  
ङ्गात्प्रतिकर्मव्यवस्था न स्यात् । 'यद्धि र्यतो ज्ञानमुत्पद्यते तत्तस्यैव  
आदकं नान्यस्य' इत्यस्यार्थजन्यत्वे सत्येव सा स्यादिति वदन्तं  
प्रत्याह—

१- तमसि । २- जरसः । ३- तमसोऽभावेऽपि तमःप्रतीतिप्रकरणे । ४- प्रकाश्याभावे  
सर्वत्राभावो यदि । ५- तमसि । ६- तमसः । ७- अर्थालोकयोर्ज्ञानं प्रत्यकारणत्व-  
प्रकरणे । ८- स्वरूप । ९- अभ्युपगम्यताम् । १०- नलमिलनः । ११- प्रतिनियत-  
विषयव्यवस्था । १२- अर्थात् ।



स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रति-

नित्यतमर्थं व्यवस्थापयति ॥ १० ॥

तथा हि—यदर्थप्रकाशकं तत्त्वात्मन्यपेतप्रतिबन्धम् यथा प्रदी-  
पादि, अर्थप्रकाशकं च ज्ञानमिति । प्रतिनियतस्वावरणक्षयो-  
पशमश्च ज्ञानस्य प्रतिनियतार्थोपलब्धेरेव प्रसिद्धः । न चान्यो-  
न्याश्रयः अस्याः प्रतीतिसिद्धत्वात् । तल्लक्षणयोग्यता च शक्ति-  
रेव । सैव ज्ञानस्य प्रतिनियतार्थव्यवस्थायामङ्गं नाथोत्पत्त्योर्हि,  
तस्य निषिद्धत्वादर्थत्रादर्शनाच्च । न खलु प्रदीपः प्रकाशार्थजन्य-  
स्तेषां प्रकाशको दृष्टः ।

१० किञ्च, प्रदीपोपि प्रकाशार्थाऽजन्तो यावत्काण्डपटाद्यानावृत-  
मेवार्थं प्रकाशयति तावत्तदावृतमपि किञ्च प्रकाशयेदिति बोधो  
भवतोऽप्यतो योग्यतातो न किञ्चिदुत्तरम् ।

कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभि-

चारः ॥ ११ ॥

१५ नदीन्द्रियमहृष्टादिकं वा विज्ञानकारणमप्यनेन परिच्छेद्यते । न  
ब्रूमः—कारणं परिच्छेद्यमेव किन्तु कारणमेव परिच्छेद्यम् इत्य-  
वधारयामः, तत्र, योगिविज्ञानस्य व्याप्तिज्ञानस्य चाशेषार्थप्राप्ति-  
ऽभावप्रसङ्गात् । न हि विनष्टानुत्पन्नाः समसमयभाविनो वार्था-  
स्तस्य कारणमित्युक्तम् । केशोण्डुकादिज्ञानस्य चाजनकार्यप्राप्ति-

२० त्वाभावप्रसङ्गः । कथं च कारणत्वाविशेषेपीन्द्रियादेरग्रहणम् ?  
अयोग्यत्वाच्चेत्, योग्यतैव तर्हि प्रतिकर्मव्यवस्थाकारिणी, अल-  
मन्यैकल्पनया । स्वाकारार्पकत्वाभावाच्चेन्न, ज्ञाने स्वाकारार्पकत्व-  
स्याप्यपास्तत्वात् । कथं च कारणत्वाविशेषेपि किञ्चित्स्वाकारार्पकं  
किञ्चित्चेति प्रतिनियमो योग्यतां विना सिध्येत् ? कथं च सकलं

२५ विज्ञानं सकलार्थकार्यं न स्यात् ? प्रतिनियतशक्तित्वाद्भावानाम्  
इत्युत्तरं ग्राह्यप्राहकमैवेति समानम् ।

१- ज्ञानं कर्तुं । २- ज्ञानस्यापेतप्रतिबन्धत्वं कारणमर्थप्रकाशके चेत्तर्हि सकलार्थप्रकाशकं  
किमिति न स्यादित्युक्ते-आह । ३- जादिपदेन ताद्रूप्यादिः । ४- प्रकाशके प्रदीपौदौ ।  
५- तदुत्पत्त्यादेः- ६- भर्मी-हेतुश्च । ७- साध्यम् । ८- घटादिवदिति दृष्टान्तः ।  
९- इन्द्रियादिना । १०- ज्ञानेन । ११- वयं सुगताः । १२- यस्तत्तत्सर्वं क्षणिकमिति ।  
१३- चरपत्त्यादि । १४- इन्द्रियादेः । १५- स्वस्य घटादिवत्सुतः । १६- सम्मल्लक्ष-  
णादर्थादनुत्पन्नमानं ज्ञानं सामानस्य आहकं यथा तथा निषेधार्थप्राहकं-कृतं न  
स्यादित्युत्तरं प्रतिनियतशक्तित्वाद्भावानामित्येवापि समानम् । १७- सामरस्येन ।

अथेदानीं मुख्यप्रत्यक्षप्ररूपणस्यावसरप्राप्तत्वात् तदुत्पत्तिका-  
रणस्वरूपप्ररूपणायाह—

**सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमऽतीन्द्रि-  
यमशेषतो मुख्यम् ॥ १२ ॥**

‘विशदं प्रत्यक्षम्’ इत्यनुवर्त्तते । तत्राशेषतो विशदमतीन्द्रियं<sup>५</sup>  
यद्विज्ञानं तन्मुख्यं प्रत्यक्षम् । किंविशिष्टं तत् ? सामग्रीविशेषवि-  
श्लेषिताखिलावरणम् । ज्ञानावरणादिप्रतिपक्षभूता हीह सम्यग्द-  
र्शनादिलक्षणांतरङ्गा बहिरङ्गानुभवादिलक्षणा सामग्री गृह्यते,  
तस्या विशेषोऽविकलत्वम्, तेन विश्लेषितं क्षयोपशमक्षयरूप-  
तया विधटितमखिलमवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानसम्बन्ध्यावरणम्<sup>१०</sup>  
अखिलं निःशेषं वाऽऽवरणं यस्यावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानत्रयस्य  
तत्तथोक्तम् ।

अत्र च प्रयोगैः—यद्यत्र स्पष्टत्वे सत्यवितथं ज्ञानं तत्तत्रापगता-  
खिलावरणम् यथा रजोनीहाराद्यन्तरितवृक्षादौ तदपगमप्रभवं  
ज्ञानम्, स्पष्टत्वे सत्यवितथं च कैचिदुक्तप्रकारं ज्ञानमिति । तथा-<sup>१५</sup>  
ऽतीन्द्रियं तत् मनोऽज्ञानपेक्षत्वात् । तदनपेक्षं तत् सकलकल-  
ङ्कविकलत्वात् । तद्विकलत्वं चास्यात्रैवं प्रसाद्यिष्यते । अत एव  
आशेषतो विशदं तत् । यत्तु नातीन्द्रियादिस्वभावं न तत्तदन-  
पेक्षत्वादिविशेषणविशिष्टम् यथास्मदादिप्रत्यक्षम्, तद्विशेषणवि-  
शिष्टञ्चेदम्, तस्मात्तथेति । तथा मुख्यं तत्प्रत्यक्षम् अतीन्द्रिय-<sup>२०</sup>  
त्वात् संविषयेऽशेषतो विशदत्वाद्वा, यत्तु नेत्यं तन्नैवम्, यथा-  
स्मदादिप्रत्यक्षम्, तथा चेदम्, तस्मान्मुख्यमिति ।

ननु आवरणप्रसिद्धौ तदपगमाज्ज्ञानस्योत्पत्तिर्युक्ता, न च  
तत्प्रसिद्धम् । तद्धि शरीरम्, रागादयः, देशकालादिकं वा  
भवेत् ? न तावच्छरीरं रागादयो वा, तद्व्यतिष्यर्थोपलम्भसम्भ-<sup>२५</sup>  
वात् । तदुपलम्भप्रतिबन्धकमेव हि काण्डपटादिकं, लोके प्रसि-

१ सत्त्वे । २ आदिपदेन देशकालादिग्रहणम् । ३ समग्रत्वम् । ४ आवरणापावे ।  
५ अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानं सतिषवेऽपगताखिलावरणं तत्र स्पष्टत्वे सत्यवितथज्ञान-  
त्वात् । ६ ज्ञानम् । ७ अपेक्षं । ८ अनुमानादिना अभिचारपरिहारार्थम् । ९ सत्त्व्या-  
दिना व्यभिचारपरिहारार्थम् । १० रूपेषु, परमनोगतार्थेषु, मूर्तामूर्तसकलवस्तुषु  
च । ११ क्रमेणावधिमनःपर्ययकेवलत्वम् । १२ असिन्परिच्छेदे । १३ सकल-  
कलङ्कविकल्पादेव । १४ अवध्यादित्रयम् । १५ मुख्यम् । १६ त्रौटः प्राह ।  
१७ आदिपदेन समानो वा ।

इमेवरणम् । ननु मेवादेवदेवता रावणादेस्तत्कालता परमा-  
ण्वादेः सूक्ष्मस्वभावता मूलकीलोदकादेव अन्येति आवरणं  
प्रसिद्धमेवेति चेत्तदसारम् । तदभावस्य कसुमशक्यत्वात् । न  
चलु सातिशयार्थमपि योगिना देशाद्यभावो विधातुं शक्यः ।  
५ न चान्यत् किञ्चिदावरणं प्रतीयते । ततः सामग्रीविशेषविश्लेषेति  
ताखिलावरणमित्युक्तम् ।

अत्रोच्यते-न शरीराद्यवरणम् । किं तर्हि ? तद्यतिरिक्तं क्रमं  
तुलानुमानतः प्रसिद्धम् । तथाहि-स्वपरप्रमेयबोधैकस्वभावत्वात्  
अतो हानेनगर्भस्थानशरीरविषयेषु विशिष्टाऽमिरतिः आत्मतत्त्वं  
१० तिरिक्तकारणपूर्विका तत्त्वान् कुन्तितपरपुदये कमनीयकुलका-  
मिन्यास्तन्वाद्युपयोगजनितविशिष्टाभिरतिवत् । तथा, भवद्वृत्ता  
मोहोदयः शरीरादिव्यतिरिक्तसम्बन्धन्तरपूर्वको मोहोदयत्वात्  
मोहिराद्युपयोगमत्तत्त्वात्मगुहाद्यो मोहोदयवत् ।

ननु चार्तः कस्मात्कमेव प्रसिद्धं नावरणम् ; ततस्तत्सिद्धावेव  
१५ प्रमाणमुच्यतां तत्रैव विवादादिति चेदुच्यते यज्ज्ञानं स्वविषयेऽ-  
प्रवृत्तिमत् तत्सावरणम् यथा कामलिनो लोचनविमानमेक-  
चन्द्रमिति, स्वविषये अशेषार्थलक्षणेऽप्रवृत्तिमत् ज्ञानमिति ।

ननु विश्रानस्याशेषविषयत्वं कुतः सिद्धम् ? आवरणापाये तत्र-  
काशकत्वाच्चेदन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि सकलविषयत्वे तस्य आव-  
२० रणापाये तन्प्रकाशनं सिध्यति, अतश्च सकलविषयत्वमिति । तद-  
प्यसमीक्षिताभिधानम् । यतोनुमानमिच्छता भवताप्यवश्यं सक-  
लवरणवैकल्यान्प्रागेव सकलस्य प्राणिमात्रस्याशेषविषयं व्याप्त्यो-  
दिज्ञानमभ्युपगतमेव । तथा, यत्स्वविषयेऽस्यष्टं ज्ञानं तत्सावर-  
णम् यथा राज्ञोहाराद्यन्तरिततरुनिकपादिज्ञानम्, अस्यष्टं च  
२५ स्व-सदनेकान्तात्मकम् इत्यादि व्याप्तिज्ञानम् । मिथ्यादृशां  
स्ववत्रानेकान्तात्मके भावे विपरितज्ञानं सावरणं मिथ्याज्ञानत्वाद्  
असूरकाद्युपयोगिनो सूक्ष्मकले काञ्चनज्ञानवदिति । अतः सिद्ध-  
मावरणं पौद्गलिकं कर्मेति ।

१. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००. १०१. १०२. १०३. १०४. १०५. १०६. १०७. १०८. १०९. ११०. १११. ११२. ११३. ११४. ११५. ११६. ११७. ११८. ११९. १२०. १२१. १२२. १२३. १२४. १२५. १२६. १२७. १२८. १२९. १३०. १३१. १३२. १३३. १३४. १३५. १३६. १३७. १३८. १३९. १४०. १४१. १४२. १४३. १४४. १४५. १४६. १४७. १४८. १४९. १५०. १५१. १५२. १५३. १५४. १५५. १५६. १५७. १५८. १५९. १६०. १६१. १६२. १६३. १६४. १६५. १६६. १६७. १६८. १६९. १७०. १७१. १७२. १७३. १७४. १७५. १७६. १७७. १७८. १७९. १८०. १८१. १८२. १८३. १८४. १८५. १८६. १८७. १८८. १८९. १९०. १९१. १९२. १९३. १९४. १९५. १९६. १९७. १९८. १९९. २००. २०१. २०२. २०३. २०४. २०५. २०६. २०७. २०८. २०९. २१०. २११. २१२. २१३. २१४. २१५. २१६. २१७. २१८. २१९. २२०. २२१. २२२. २२३. २२४. २२५. २२६. २२७. २२८. २२९. २३०. २३१. २३२. २३३. २३४. २३५. २३६. २३७. २३८. २३९. २४०. २४१. २४२. २४३. २४४. २४५. २४६. २४७. २४८. २४९. २५०. २५१. २५२. २५३. २५४. २५५. २५६. २५७. २५८. २५९. २६०. २६१. २६२. २६३. २६४. २६५. २६६. २६७. २६८. २६९. २७०. २७१. २७२. २७३. २७४. २७५. २७६. २७७. २७८. २७९. २८०. २८१. २८२. २८३. २८४. २८५. २८६. २८७. २८८. २८९. २९०. २९१. २९२. २९३. २९४. २९५. २९६. २९७. २९८. २९९. ३००. ३०१. ३०२. ३०३. ३०४. ३०५. ३०६. ३०७. ३०८. ३०९. ३१०. ३११. ३१२. ३१३. ३१४. ३१५. ३१६. ३१७. ३१८. ३१९. ३२०. ३२१. ३२२. ३२३. ३२४. ३२५. ३२६. ३२७. ३२८. ३२९. ३३०. ३३१. ३३२. ३३३. ३३४. ३३५. ३३६. ३३७. ३३८. ३३९. ३४०. ३४१. ३४२. ३४३. ३४४. ३४५. ३४६. ३४७. ३४८. ३४९. ३५०. ३५१. ३५२. ३५३. ३५४. ३५५. ३५६. ३५७. ३५८. ३५९. ३६०. ३६१. ३६२. ३६३. ३६४. ३६५. ३६६. ३६७. ३६८. ३६९. ३७०. ३७१. ३७२. ३७३. ३७४. ३७५. ३७६. ३७७. ३७८. ३७९. ३८०. ३८१. ३८२. ३८३. ३८४. ३८५. ३८६. ३८७. ३८८. ३८९. ३९०. ३९१. ३९२. ३९३. ३९४. ३९५. ३९६. ३९७. ३९८. ३९९. ४००. ४०१. ४०२. ४०३. ४०४. ४०५. ४०६. ४०७. ४०८. ४०९. ४१०. ४११. ४१२. ४१३. ४१४. ४१५. ४१६. ४१७. ४१८. ४१९. ४२०. ४२१. ४२२. ४२३. ४२४. ४२५. ४२६. ४२७. ४२८. ४२९. ४३०. ४३१. ४३२. ४३३. ४३४. ४३५. ४३६. ४३७. ४३८. ४३९. ४४०. ४४१. ४४२. ४४३. ४४४. ४४५. ४४६. ४४७. ४४८. ४४९. ४५०. ४५१. ४५२. ४५३. ४५४. ४५५. ४५६. ४५७. ४५८. ४५९. ४६०. ४६१. ४६२. ४६३. ४६४. ४६५. ४६६. ४६७. ४६८. ४६९. ४७०. ४७१. ४७२. ४७३. ४७४. ४७५. ४७६. ४७७. ४७८. ४७९. ४८०. ४८१. ४८२. ४८३. ४८४. ४८५. ४८६. ४८७. ४८८. ४८९. ४९०. ४९१. ४९२. ४९३. ४९४. ४९५. ४९६. ४९७. ४९८. ४९९. ५००. ५०१. ५०२. ५०३. ५०४. ५०५. ५०६. ५०७. ५०८. ५०९. ५१०. ५११. ५१२. ५१३. ५१४. ५१५. ५१६. ५१७. ५१८. ५१९. ५२०. ५२१. ५२२. ५२३. ५२४. ५२५. ५२६. ५२७. ५२८. ५२९. ५३०. ५३१. ५३२. ५३३. ५३४. ५३५. ५३६. ५३७. ५३८. ५३९. ५४०. ५४१. ५४२. ५४३. ५४४. ५४५. ५४६. ५४७. ५४८. ५४९. ५५०. ५५१. ५५२. ५५३. ५५४. ५५५. ५५६. ५५७. ५५८. ५५९. ५६०. ५६१. ५६२. ५६३. ५६४. ५६५. ५६६. ५६७. ५६८. ५६९. ५७०. ५७१. ५७२. ५७३. ५७४. ५७५. ५७६. ५७७. ५७८. ५७९. ५८०. ५८१. ५८२. ५८३. ५८४. ५८५. ५८६. ५८७. ५८८. ५८९. ५९०. ५९१. ५९२. ५९३. ५९४. ५९५. ५९६. ५९७. ५९८. ५९९. ६००. ६०१. ६०२. ६०३. ६०४. ६०५. ६०६. ६०७. ६०८. ६०९. ६१०. ६११. ६१२. ६१३. ६१४. ६१५. ६१६. ६१७. ६१८. ६१९. ६२०. ६२१. ६२२. ६२३. ६२४. ६२५. ६२६. ६२७. ६२८. ६२९. ६३०. ६३१. ६३२. ६३३. ६३४. ६३५. ६३६. ६३७. ६३८. ६३९. ६४०. ६४१. ६४२. ६४३. ६४४. ६४५. ६४६. ६४७. ६४८. ६४९. ६५०. ६५१. ६५२. ६५३. ६५४. ६५५. ६५६. ६५७. ६५८. ६५९. ६६०. ६६१. ६६२. ६६३. ६६४. ६६५. ६६६. ६६७. ६६८. ६६९. ६७०. ६७१. ६७२. ६७३. ६७४. ६७५. ६७६. ६७७. ६७८. ६७९. ६८०. ६८१. ६८२. ६८३. ६८४. ६८५. ६८६. ६८७. ६८८. ६८९. ६९०. ६९१. ६९२. ६९३. ६९४. ६९५. ६९६. ६९७. ६९८. ६९९. ७००. ७०१. ७०२. ७०३. ७०४. ७०५. ७०६. ७०७. ७०८. ७०९. ७१०. ७११. ७१२. ७१३. ७१४. ७१५. ७१६. ७१७. ७१८. ७१९. ७२०. ७२१. ७२२. ७२३. ७२४. ७२५. ७२६. ७२७. ७२८. ७२९. ७३०. ७३१. ७३२. ७३३. ७३४. ७३५. ७३६. ७३७. ७३८. ७३९. ७४०. ७४१. ७४२. ७४३. ७४४. ७४५. ७४६. ७४७. ७४८. ७४९. ७५०. ७५१. ७५२. ७५३. ७५४. ७५५. ७५६. ७५७. ७५८. ७५९. ७६०. ७६१. ७६२. ७६३. ७६४. ७६५. ७६६. ७६७. ७६८. ७६९. ७७०. ७७१. ७७२. ७७३. ७७४. ७७५. ७७६. ७७७. ७७८. ७७९. ७८०. ७८१. ७८२. ७८३. ७८४. ७८५. ७८६. ७८७. ७८८. ७८९. ७९०. ७९१. ७९२. ७९३. ७९४. ७९५. ७९६. ७९७. ७९८. ७९९. ८००. ८०१. ८०२. ८०३. ८०४. ८०५. ८०६. ८०७. ८०८. ८०९. ८१०. ८११. ८१२. ८१३. ८१४. ८१५. ८१६. ८१७. ८१८. ८१९. ८२०. ८२१. ८२२. ८२३. ८२४. ८२५. ८२६. ८२७. ८२८. ८२९. ८३०. ८३१. ८३२. ८३३. ८३४. ८३५. ८३६. ८३७. ८३८. ८३९. ८४०. ८४१. ८४२. ८४३. ८४४. ८४५. ८४६. ८४७. ८४८. ८४९. ८५०. ८५१. ८५२. ८५३. ८५४. ८५५. ८५६. ८५७. ८५८. ८५९. ८६०. ८६१. ८६२. ८६३. ८६४. ८६५. ८६६. ८६७. ८६८. ८६९. ८७०. ८७१. ८७२. ८७३. ८७४. ८७५. ८७६. ८७७. ८७८. ८७९. ८८०. ८८१. ८८२. ८८३. ८८४. ८८५. ८८६. ८८७. ८८८. ८८९. ८९०. ८९१. ८९२. ८९३. ८९४. ८९५. ८९६. ८९७. ८९८. ८९९. ९००. ९०१. ९०२. ९०३. ९०४. ९०५. ९०६. ९०७. ९०८. ९०९. ९१०. ९११. ९१२. ९१३. ९१४. ९१५. ९१६. ९१७. ९१८. ९१९. ९२०. ९२१. ९२२. ९२३. ९२४. ९२५. ९२६. ९२७. ९२८. ९२९. ९३०. ९३१. ९३२. ९३३. ९३४. ९३५. ९३६. ९३७. ९३८. ९३९. ९४०. ९४१. ९४२. ९४३. ९४४. ९४५. ९४६. ९४७. ९४८. ९४९. ९५०. ९५१. ९५२. ९५३. ९५४. ९५५. ९५६. ९५७. ९५८. ९५९. ९६०. ९६१. ९६२. ९६३. ९६४. ९६५. ९६६. ९६७. ९६८. ९६९. ९७०. ९७१. ९७२. ९७३. ९७४. ९७५. ९७६. ९७७. ९७८. ९७९. ९८०. ९८१. ९८२. ९८३. ९८४. ९८५. ९८६. ९८७. ९८८. ९८९. ९९०. ९९१. ९९२. ९९३. ९९४. ९९५. ९९६. ९९७. ९९८. ९९९. १०००.

ननु चोविद्यैवावरणं न पौद्गलिकं कर्म, मूर्त्तेर्नानेनामूर्त्तस्य  
ज्ञानादेरावरणायोगात्, अन्यथा शरीरादेरप्याव(वा)रकत्वानुष-  
ङ्गात्, इत्यप्यसमीचीनम्, मदिरादिना मूर्त्तेनाप्यमूर्त्तस्य ज्ञाना-  
देरावरणदर्शनात् । अमूर्त्तस्य चाव(वा)रकत्वे गगनादेर्ज्ञानान्त-  
रस्य च तैत्प्रसङ्गः । तद्विरुद्धत्वात्तस्य तच्चेति चेत्, तर्हि शरी-  
रादेरप्यत एव तन्मा भुत्तद्विरुद्धस्यैवावरकत्वप्रसिद्धेः । प्रवाहेण  
प्रवर्त्तमानस्य ज्ञानादेरविद्योदये निरोधात्तस्यास्तद्विरोधगतौ मद्दि-  
रादिवत्पौद्गलिककर्मणोपि सास्तु विशेषभावात् । तथाहि-आत्मनो  
मिथ्याज्ञानादिः पुद्गलविशेषसम्बन्धनिबन्धनः तत्स्वरूपान्यथाभा-  
वैस्त्वभावात्त्वात् उन्मत्तकादिजनितोन्मादादिवत् । न च मिथ्या-  
ज्ञानजनितापरमिथ्याज्ञानेनानेकान्तः, तस्यापरापरपौद्गलिककर्मो-  
दये सत्येव भावात् अपरापरोन्मत्तकादिरससद्भावे तत्कृतोन्मा-  
दादिसन्तानवत् ।

ननु चात्मगुणत्वात्कर्मणां कथं पौद्गलिकत्वमित्यन्ये, तेप्यप-  
रीक्षकाः, तेषामात्मगुणत्वे तत्पारतन्त्र्यनिमित्तत्वविरोधात् सर्व-  
आत्मनो बन्धानुपपत्तेः सदैव मुक्तिप्रसङ्गात् । न खलु यो यस्य  
गुणः स तस्य पारतन्त्र्यनिमित्तम् यथा पृथिव्यादे रूपादिः,  
आत्मगुणश्च धर्माधर्मसंज्ञकं कर्म परैरभ्युपगम्यते इति न तदा-  
त्मनः पारतन्त्र्यनिमित्तं स्यात् । न चैवम्, आत्मनः परैरन्वयतया  
प्रमाणतः प्रतीतेः । तथाहि-परतन्त्र्योऽसौ हीनस्थानपरिग्रहधत्वात् २०  
मद्योद्रेकपरतन्त्र्याशुचिस्थानपरिग्रहवद्विशिष्टपुरुषवत् । हीनस्थानं  
हि शरीरम्, आत्मनो दुःखहेतुत्वात्कारागारवत् । तत्परिग्रह-  
वोश्च संसारी प्रसिद्ध एव । न च देवशरीरे तदभावात्पक्षाभ्यासिः,  
तस्यापि मरणे दुःखहेतुत्वप्रसिद्धेः । यत्परतन्त्र्यश्चासौ तत्कर्म इति  
सिद्धं तस्य पौद्गलिकत्वम् । तथा हि-पौद्गलिकं कर्म आत्मनः पार-  
तन्त्र्यनिमित्तत्वाभिर्गलादिवत् । न च कोधादिभिर्व्यभिचारः,

१ पुरुषज्ञानादित्वादिनौ वदतः । २ आत्मनः । ३ आदिपदेनात्मनः । ४ अवि-  
द्यास्वरूपस्य । ५ गगनादिकं ज्ञानान्तरं च ज्ञानादेरावरणं भवति अमूर्त्तत्वादविधावत् ।  
६ तेन ज्ञानेन । ७ मिथ्याज्ञानमविद्या । ८ प्रवाहेण प्रवर्त्तमानस्य ज्ञानादेः पौद्ग-  
लिककर्मोदये निरोधस्याविशेषात् । ९ कर्मतापत्र । १० सम्यग्ज्ञानादि । ११ मिथ्या-  
ज्ञानादि । १२ योगाः । १३ धर्माधर्मसंज्ञकं कर्म आत्मनः पारतन्त्र्यनिमित्तं न भवति  
आत्मगुणत्वादित्यध्याहारः । १४ कर्मणा । १५ शरीरादिकगुण । १६ आगासिद्धिर्न  
दुःखहेतुत्वलक्षणस्य हेतोः । १७ मुखदुःखरागद्वेषादिकृतं पारतन्त्र्यम् । १८ निगलं  
गलबन्धनम् (शृङ्गलादिः) ।

तेषां जीवपरिणामानां पारतन्त्र्यस्वभावत्वात्, क्रोधादिपरिणामो हि जीवस्य पारतन्त्र्यं न पुनः पारतन्त्र्यनिमित्तम् ।

सत्यम्; नात्मगुणोऽदृष्टं प्रधानपरिणामत्वात्तस्य “प्रधानपरिणामः शुक्लं कृष्णं च कर्म” [ ] इत्यभिधानात्; इत्यपि मनो-  
५ रथमात्रम्; प्रधानस्यासत्त्वेन तत्परिणामत्वस्य कंचिदप्यसम्भ-  
वात् । तदसत्त्वं चात्रैवानन्तरं वैक्ष्यामः । तत्परिणामत्वेऽपि वा  
तस्यात्मपारतन्त्र्यनिमित्तत्वाभावे कर्मत्वायोगात्, अन्यथाति-  
प्रसङ्गः । प्रधानपारतन्त्र्यनिमित्तत्वात्तस्य कर्मत्वमिति चेन्न;  
प्रधानस्य तेन बन्धोपगमे मोक्षोपगमे चात्मकल्पनावैयर्थ्यप्रस-  
१० ङ्गात् । बन्धमोक्षफलानुभवनस्यात्मनि प्रतिष्ठानाञ्च तत्कल्पनावै-  
यर्थ्यमित्यसत्; प्रधानस्य तत्कर्तृत्ववत् तत्फलानुभोक्तृत्वस्यापि  
प्रमाणसामर्थ्यप्राप्तत्वात्, अन्यथा कृतवाशाकृतार्थाभ्यागमदोषानु-  
षङ्गः । अथात्मनश्चेतनत्वात्तत्फलानुभवनं न तु प्रधानस्याऽचेत-  
नत्वात्; तदप्ययुक्तम् । मुक्तात्मनोऽपि तत्फलानुभवनानुषङ्गात् ।  
१५ तस्य प्रधानसंसर्गाभावाच्च तत्फलानुभवनमिति चेत्; तर्हि  
संसारिणः प्रधानसंसर्गाद्वन्धफलानुभवनम् । तथा चात्मन एव  
बन्धः सिद्धः, तत्संसर्गस्य बन्धफलानुभवनेनिमित्तस्य बन्धरूप-  
त्वात्, बन्धस्यैव ‘संसर्गः’ इति पुद्गलस्य च ‘प्रधानम्’ इति  
नामान्तरकरणात् ।

२० ननु प्रसिद्धस्यापि यथोक्तप्रकारस्य कर्मणः कार्यकारणप्रवाहेण  
प्रवर्त्तमानस्यानादित्वाद्दिनाशहेतुभूतसामग्रीविशेषस्य चाभावा-  
त्कथं तेन विन्येषिताखिलावरणत्वं ज्ञानस्य; इत्यप्यपेशलम् ।  
सम्यग्दर्शनादित्रयलक्षणस्य तद्दिनाशहेतुभूतसामग्रीविशेषस्य  
सुप्रतीतत्वात् । सञ्चितं हि कर्म निर्जरातश्चारित्रविशेषरूपाया-  
२५ प्रलीयते । सा च निर्जरा द्विविधा-उपक्रमेतरमेवात् । तत्रौपक्र-  
मिकी तपसा द्वादशविधेन साध्या । अनुपक्रमा तु यथाकालं  
संसारिणः स्यात् ।

कुतः पुनः साकल्येन पूर्वोपात्तकर्मणां निर्जरा निश्चीयते इति  
चेदनुमानात्; तथाहि-साकल्येन कचिदात्मनि कर्माणि निर्जी-

१ साङ्ख्यः । २ पुण्यम् । ३ पापम् । ४ बुद्ध्यदौ विकारे । ५ कथं चेनाः ।  
६ घटादेरपि कर्मत्वं स्यात् । ७ प्रधानं बन्धफलानुभोक्तृ भवति बन्धाधिकरणत्वादि-  
गलबद्धदेवदत्तवत् । ८ तत्कृतत्वेऽपि तत्फलानुभोक्तृत्वं न स्यादिति तर्हि । ९ कृतस्य  
कर्मणः प्रधानसम्बन्धित्वेन नाशः । १० अकृतस्य फलस्यात्मनि आगमः । ११ तस्य  
कर्मणः फलं बन्धमोक्षी । १२ तस्य कर्मणः । १३ पौद्गलिकस्य ।

र्यन्ते विपाकान्तत्वात्, यानि तु न निर्जयन्ते न तानि विपाका-  
न्तानि यथा कौलादीनि, विपाकान्तानि च कर्माणि, तस्मात्साक-  
ल्येन कच्चिन्निर्जयन्ते । न चेदमसिद्धं साधनम्, तथाहि—विपाका-  
न्तानि कर्माणि फलावसानत्वाद्भीक्षादिवत् । न चेदमप्यसिद्धम्, १  
तेषां नित्यत्वानुषङ्गात् । न च नित्यानि कर्माणि नित्यं तत्फलानु- ५  
भवनप्रसङ्गात् ।

भावि पुनः कर्म संवरान्निरुध्येत—“अपूर्वकर्मणामास्रवनिरोधः  
संवरः” [ तत्त्वार्थसू० २।१ ] इत्यभिधानात् । आस्रवो हि मिथ्या-  
दर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगविकल्पात्पञ्चविधः, तस्मिन्सति  
कर्मणामास्रवणात् । स च संवरो गुतिसमितिधर्मानुपेक्षा- १०  
परीषद्भज्यचारित्रैर्विधीयते इत्यागमे विस्तरतः प्ररूपितं द्रष्ट-  
व्यम् । निर्जरासंवरयोश्च सम्यग्दर्शनाद्यात्मकत्वात्तत्प्रकर्षे कर्मणां  
सन्तानरूपतयाऽनादित्वेऽपि प्रक्षयः प्रसिध्यत्येव । न ह्यनादिस-  
न्ततिरपि शीतस्पर्शां विपक्षस्योष्णस्पर्शस्य प्रकर्षे निर्मूलतले  
प्रलयमुपव्रजन्नोपलब्धः, कार्यकारणरूपतया बीजाङ्कुरसन्तानो १५  
वाऽनादिः प्रतिपक्षभूतदहनेन निर्दग्धबीजो निर्दग्धाङ्कुरो वा न  
प्रतीयते इति वक्तुं शक्यम् ।

ननु तत्प्रकर्षमात्रात्कर्मप्रक्षयमात्रमेव सिध्येन्न पुनः साकल्येन  
तत्प्रक्षयः, सम्यग्दर्शनादेः परमप्रकर्षसम्भवाभावात्, इत्यप्य-  
सङ्गतम्, तत्प्रकर्षस्य कचिदात्मनि प्रसिद्धेः । तथाहि—यस्य २०  
तारतम्यप्रकर्षस्तस्य कचित्परमप्रकर्षः यथोष्णस्पर्शस्य, तारत-  
म्यप्रकर्षश्चासंयतसम्यग्दर्शनादौ सम्यग्दर्शनादेरिति । न च दुःख-  
प्रकर्षेण व्यभिचारः, सप्तमनस्कभूमौ नारकाणां तत्परमप्रकर्षप्र-  
सिद्धेः सर्वार्थसिद्धौ देवानां सांसारिकसुखपरमप्रकर्षवत्,  
मिथ्यादृष्टिष्वनन्तानुबन्धिक्रोधादिपरमप्रकर्षवत् । नापि ज्ञानहा- २५  
निप्रकर्षेणानेकान्तः, तस्यापि क्षायोपशमिकस्य हीयमानतया  
प्रकृष्यमाणस्य केवलिनि परमापकर्षप्रसिद्धेः । क्षाधिकस्य तु हाने-  
वासम्मवात्कृतस्तत्प्रकर्षो यतोऽनेकान्तः ।

इत्थं वा साकल्येन कर्मप्रक्षये प्रयोगः कर्तव्यः—“यस्यातिशये

१ फलवानपरिणतिविपाकः । २ परमतापेक्षया । ३ सम्यग्दर्शनादेः कर्मविनाशः  
हेतुत्वमुक्तमिदानीमन्यदेवोक्तमिति कर्षं न पूर्वापरविरोधः ? इत्युक्ते आह । ४ सति ।  
५ सम्यग्दर्शनादि कचिदात्मनि परमप्रकर्षं प्राप्नोति तारतम्यप्रकर्षमस्त्वादित्युपरिष्ठा-  
दध्याहियते । ६ केवलज्ञानस्य । ७ तारतम्यप्रकर्षः । ८ विपाकान्तत्वादित्यनुमाना-  
पेक्षया वाशब्दोऽत्र । ९ कचिन्कर्माणामत्यन्तद्वान्वतिष्ठयो धर्मी सम्यग्दर्शनादेरत्यन्ता-  
तिशये भवति तस्यातिशये तद्वान्वतिष्ठवर्धनादित्युपरिष्ठादध्याहियते ।

यद्वा न्यातिशयस्तस्यात्यन्तातिशयेऽन्यस्यात्यन्तहानिः यथाग्नेरत्य-  
न्तातिशये शीतस्य, अस्ति च सम्यग्दर्शनादेरत्यन्तातिशयः कचि-  
दात्मनि इति । यद्वा, आवरणहानिः कचित्पुरुषविशेषे परमप्रक-  
र्षप्राप्ता प्रकृत्यमाणत्वात् परिमाणवत् । न चात्रासिद्धं साधनम्,  
५ तत्थाहि-प्रकृत्यमाणान्वरणहानिः आवरणहानित्वात् भाणिक्याद्या-  
वरणहानिवत् । तद्धानिपरमप्रकर्षे च ज्ञानस्य परमः प्रकर्षः सिद्धः ।  
यद्धि प्रकाशात्मकं तत्स्वावरणहानिप्रकर्षे प्रकृत्यमाणं दृष्टम्  
यथा नयनप्रदीपादि, प्रकाशात्मकं च ज्ञानमिति । तदेवमावरण-  
प्रसिद्धिर्वत्तदभावोप्यनवैयवेन प्रमाणतः प्रसिद्धः । तत्प्रभवमेव  
१० चाशेषार्थगोचरं ज्ञानमभ्युपगन्तव्यम्, लेशतोप्यावरणसद्भावे  
तस्याशेषार्थगोचरत्वासम्भवात्, यत्रैवावरणसद्भावस्तत्रैवावस्य  
प्रतिबन्धसम्भवात् ।

आगमद्वारेणाशेषार्थगोचरं ज्ञानम्, इत्यप्यसुन्दरम्, विशदज्ञा-  
नस्य प्रस्तुतत्वात् । न चागमज्ञानं विशदम् । न चागमोप्यशेषार्थ-  
१५ गोचरः, अर्थपर्यायेषु तस्याप्रवृत्तेः । तं चार्थस्य प्रतिक्षणम् 'अर्थ-  
क्रियाकारित्वात्सत्त्वाद्वा सन्ति' इत्यवसीयन्ते । अन्यथास्याऽ-  
वस्तुत्वप्रसङ्गः । करणजन्यत्वे चाशेषज्ञानस्यातीन्द्रियार्थेषु प्रति-  
बन्धः प्रसिद्ध प्रथ, इन्द्रियाणां रूपादिमत्यव्यवहितेऽनेकावयव-  
प्रचयात्मकेऽर्थे प्रवृत्तिप्रतीतेः ।

२० ननु योगजधर्मानुगृहीतानामिन्द्रियाणां गगनाद्यशेषातीन्द्रिया-  
र्थसाक्षात्कारिज्ञानजनकत्वसम्भवात् कथं तत्राशेषज्ञानस्येन्द्रिय-  
जत्वमपि प्रतिबन्धसम्भवः, इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम् । योगज-  
धर्मानुग्रहस्येन्द्रियाणां प्रथमपरिच्छेदे प्रतिविहितत्वात् ।

भावनाप्रकर्षपर्यन्तजत्वाद्योगिविज्ञानस्य नोक्तदोषानुषङ्गः ।  
२५ भावना हि द्विविधा-श्रुतमयी, चिन्तामयी च । तत्र श्रुतमयी  
अर्थमात्रेभ्यः परार्थानुमानवाक्येभ्यः समुत्पद्यमानज्ञानेन श्रुतश-  
ब्दवाच्यतामास्कन्देता निवृत्ता परमप्रकर्षे प्रतिपद्यमाना स्वार्थाः  
नुमानज्ञानलक्षणया चिन्तया निवृत्तां चिन्तामयी भावनामारभते ।  
सा च प्रकृत्यमाणा परं प्रकर्षपर्यन्तं सम्प्राप्ता योगिप्रत्यक्षं जन-

१ कर्मणः । २ साक्येन । ३ आवरणभावप्रयत्नः । ४ परेण । ५ अर्थे ।  
६ प्रकृतत्वात् । ७ अर्थपर्यायाः । ८ अर्थोऽवस्तु असत्त्वात् । असत्त्वोऽर्थक्रिया-  
शून्यत्वात् । अर्थक्रियाशून्योर्थः-अर्थपर्यायरहितत्वात् खपुष्पवत् । ९ सीमातो वक्ति ।  
१० आचार्यात् । ११ सर्वं क्षणिकं सत्त्वादिति । १२ प्रामुखात् । १३ श्रुतमयी  
भावना कर्त्री ।

यतीति तत्कथमसौवरणापायप्रभवत्वम्? इत्यप्यसारम्; क्षणिकनैरात्म्यादिभावनायाश्चिन्तामध्याः श्रुतमध्याश्च मिथ्यारूपत्वात् । न च मिथ्याज्ञानस्य परमार्थविषययोगिज्ञानजनकत्वमतिप्रसङ्गात् । यथा च न क्षणिकत्वं नैरात्म्यं शून्यत्वं वा वस्तुनस्तथा वक्ष्यते । ५

किञ्च, अखिलप्राणिनां भावनावतां तैथाविद्यज्ञानोत्पत्तिः किञ्च स्यात् सुगतवत्? तेषां तथाभूतभावनाऽभावाच्चेत्; न; प्रतिपन्नतत्त्वानां भावनाप्रवृत्तमनसां सर्वेषां समाना भावनैव कुतो न स्यात्? प्रतिबन्धककर्मसङ्गवाच्चेत्; तर्हि भावनाप्रतिबन्धककर्मापाये भावनावत् योगिज्ञानप्रतिबन्धककर्मापाये तज्ज्ञानोत्पत्तिर- १० भ्युपगन्तव्या । इति सिद्धं साकल्येनावरणापाये यदातीन्द्रियमशेषार्थविषयं विशदं प्रत्यक्षम् ।

ननु चाशेषार्थज्ञातुस्त(ज्ञानस्यत)ज्ज्ञानवतः कस्यचित्पुरुषविशेषस्यैवासम्भवात्कथं तज्ज्ञानसम्भवः? तथाहि-न कश्चित्पुरुषविशेषः सर्वज्ञोस्ति स दुपलम्भकप्रमाणपञ्चकागोचरचारित्वा- १५ इन्ध्यास्तनन्धयवत् । न चायमसिद्धो हेतुः; तथाहि-सकलपदार्थवेदी पुरुषविशेषः प्रत्यक्षेण प्रतीयते, अनुमानादिप्रमाणेन वा? न तावत्प्रत्यक्षेण; प्रतिनियतासन्नरूपादिविषयत्वेन अन्यस्तानस्यसंवेदनमात्रेण्यस्य सामर्थ्यं नास्ति, किमङ्ग पुनरनाद्यनन्तातीतानागतवर्त्तमानसूक्ष्मादिस्वभावसकलपदार्थसाक्षात्कारि- २० संवेदनविशेषे तदध्यासिते पुरुषविशेषे वा तत्स्यात्? न चातीतादिस्वभावनिखिलपदार्थग्रहणमन्तरेण प्रत्यक्षेण तत्साक्षात्करणप्रवृत्तज्ञानग्रहणम्, ग्राह्याग्रहणे तन्निष्ठग्राहकत्वस्याप्यग्रहणात् ।

नाप्यनुमानेनासौ प्रतीयते; तद्धि निश्चितस्वसाध्यप्रतिबन्धादेः तोरुदयमासाद्यत्प्रमाणतां प्रतिपद्यते । प्रतिबन्धश्चाखिलपदार्थ- २५ ज्ञसत्त्वेन स्वसाध्येन हेतोः किं प्रत्यक्षेण गृह्येत, अनुमानेन वा? न तावत्प्रत्यक्षेण; अस्याऽत्यक्षज्ञानवत्सत्त्वसाक्षात्करणाक्षमत्वेन तत्प्रतिपत्तिनिमित्तहेतुप्रतिबन्धग्रहणेप्यक्षमत्वात् । न ह्यप्रतिपः असम्बन्धिनस्तद्गतसम्बन्धावगमो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । नाप्य-

१ मुख्यप्रत्यक्षः । २ दिव्यन्द्रादिज्ञानस्यापि योगिज्ञानजनकत्वप्रसङ्गात् । ३ अशेषविषयः । ४ सर्वज्ञः । ५ परेण त्वया । ६ मुख्यम् । ७ भीमासकः । ८ अन्यस्य प्रवृत्तान्तरस्य । ९ गहो । १० तत्सद्विद्वे । ११ कश्चित्पुरुषः सकलपदार्थसाक्षात्कारी बुद्बुदप्रत्यक्षमात्रेण सति प्रकीर्णप्रतिकल्पप्रत्यक्षादिज्ञानेन । १२ परमाणोरप्रतिपत्तावधि यदस्य परमाणुना सम्बन्धप्रतिपत्तिप्रसङ्गात् ।



नुमानेन; अनवस्थितरेतराश्रयदोषानुषङ्गात् । न चात्र धर्मो प्रत्यक्षेण प्रतिपन्नः; अनक्षज्ञानवत्यर्थेऽध्यक्षस्याप्रवृत्तेः । प्रवृत्तौ चाध्यक्षेणैवास्य प्रतिपन्नत्वाच्च किञ्चिदनुमानेन । नाप्यनुमानेन; हेतोः पक्षधर्मताव्रगममन्तरेणानुमानस्यैवाप्रवृत्तेः । न चाप्रतिपन्ने धर्मिणि हेतोस्तत्सम्बन्धावगमः । नाप्यप्रतिपन्नपक्षधर्मत्वो हेतुः प्रतिनियतसाध्यप्रतिपत्त्यङ्गम् ।

किञ्च, सत्तासाधने सर्वो हेतुरसिद्धविरुद्धानैकान्तिकत्वलक्षणां त्रयीं दोषजातिं नातिवर्त्तते । तथाहि-सर्वज्ञसत्त्वे साध्ये मावधर्मो हेतुः, अभावधर्मो वा स्यात्, उत उभयधर्मो वा? प्रथमपक्षेऽसिद्धः; १० भावेऽसिद्धे तद्धर्मस्य सिद्धिविरोधात् । द्वितीयपक्षे तु विरुद्धः; भावे साध्येऽभावधर्मस्याभावाव्यभिचारित्वेन विरुद्धत्वात् । उभयधर्मोऽप्यनैकान्तिकः सत्तासाधने; तदुभयव्यभिचारित्वात् ।

अपि चाविशेषेण सर्वज्ञः कश्चित्साध्यते, विशेषेण वा? तत्राद्यपक्षे विशेषतोऽर्हत्प्रणीतागमाश्रयणमनुपपन्नम् । द्वितीय- १५ पक्षे तु हेतोरपरसर्वज्ञस्य भावेन दृष्टान्तानुवृत्त्यसम्भवादसाधारणानैकान्तिकत्वम् ।

किञ्च, यतो हेतोः प्रतिनियतोऽर्हत् सर्वज्ञः साध्यते ततो बुद्धोपि साध्यतां विशेष्यभावात्, न चात्र सर्वज्ञत्वसाधने हेतुरस्ति ।

२० यदप्युच्यते-सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः कस्यचित्प्रत्यक्षाः प्रमेयत्वात्पावकादिवत्, तदप्युक्तिमात्रम्, यतोऽत्रैकज्ञानप्रत्यक्षत्वं सूक्ष्माद्यर्थानां साध्यत्वेनाभिप्रेतम्, प्रतिनियतविषयानेकज्ञानप्रत्यक्षत्वं वा? तत्राद्यकल्पनायां विरुद्धो हेतुः, प्रतिनियतरूपादिविषयग्राहकानेकप्रत्ययप्रत्यक्षत्वेन व्यासस्याभ्यादिदृष्टान्तधर्मिणि प्रमेय- २५ त्वस्योपलम्भात् साध्यविकलता च दृष्टान्तस्य । द्वितीयकल्पनायां सिद्धसाध्यता अनेकप्रत्यक्षैरनुमानादिभिश्च तत्परिज्ञानाम्युपगमात् ।

१ निश्चितविनाभावपूर्वकत्वादनुमानस्य । २ साध्यसाधकानुमाने । ३ परोक्षे । ४ धर्मो प्रतिपन्नः । ५ सर्वज्ञलक्षणे । ६ सर्वज्ञस्य । ७ त्रयोऽप्यस्या यस्याः । ८ भावस्वरूपः । ९ सर्वज्ञसत्त्वे । १० सर्वज्ञस्य । ११ भावभावोभय । १२ जैने । १३ दृष्टान्तप्रवर्तनाभावात् । १४ विषयसपक्षान्ते व्यावर्तमानो हेतुरसाधारणानैकान्तिकः । अस्योदाहरणमस्ति: शब्दः भाववत्त्वादिति । १५ हेतोः । १६ जगति । १७ अनुमाने । १८ सूक्ष्मान्तरितदूरार्थः ।

“यदि षड्भिः प्रमाणैः स्यात्सर्वज्ञः केन धार्यते ।

एकेन तु प्रमाणेन सर्वज्ञो येन कल्प्यते ॥

नूनं स चक्षुषा सर्वान् रसादीन्प्रतिपद्यते ।” [ मी० श्लो० चोद-  
नासू० श्लो० १११-१२ ] इत्यभिधानात् ।

किञ्च, प्रमेयत्वं किमशेषज्ञेयव्यापिप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिलक्षण-  
मभ्युपगम्यते, असदादिप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिस्वरूपं वा स्यात्,  
उभयव्यक्तिसाधारणसामान्यस्वभावं वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः;  
विवादाध्यासितपदार्थेषु तथाभूतप्रमाणप्रमेयत्वस्यासिद्धत्वात्,  
अन्यथा साध्यस्यापि सिद्धेहेतूपादानमपार्थकम् । सन्दिग्धान्वय-  
श्चायं हेतुः स्यात्; तथाभूतप्रमाणप्रमेयत्वस्य दृष्टान्तिऽसिद्धत्वात् ।  
द्वितीयपक्षेऽसिद्धो हेतुः, असदादिप्रमाणप्रमेयत्वस्य विवादगो-  
चरार्थेत्वसम्भवात् । सम्भवे वा ततस्तथाभूतप्रत्यक्षत्वसिद्धिरेव  
स्यात् । तत्र चाविवादाच्च हेतूपन्यासः फलवान् । नाप्युभय-  
प्रमेयत्वव्यक्तिसाधारणं प्रमेयत्वसामान्यं हेतुः, अत्यन्तविलक्ष-  
णीतीन्द्रियेन्द्रियविषयप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिद्वयसाधारणसामान्य-  
स्यैवासम्भवात् । तन्नानुमानाच्चैत्तिदिः ।

नाप्यागैमात्, सोपि हि नित्यः, अनित्यो वा तत्प्रतिपादकः  
स्यात् ? न तावन्नित्यः, तत्प्रतिपादकस्य तस्याभावात्, भावेपि  
प्रामाण्यासम्भवात् कैर्येऽर्थे तत्प्रामाण्यप्रसिद्धेः । अनित्योऽपि किं  
तर्त्तप्रणीतः, पुरुषान्तरप्रणीतो वा ? प्रथमपक्षेऽन्योन्याश्रयः—२०  
सर्वज्ञप्रणीतत्वे तस्य प्रामाण्यम्, ततस्तत्प्रतिपादकत्वमिति ।  
नापि पुरुषान्तरप्रणीतः, तस्योन्मत्तवाक्यवदप्रामाण्यात् । तन्ना-  
गमादप्यस्य सिद्धिः ।

नाप्युपमानात्, तत्त्वलूपमानोपमेययोरनवयवेनाध्यक्षत्वे सति  
सादृश्यावलम्बनमुदयमासादयति; नान्यथातिप्रसङ्गात् । न चोप-२५  
मानभूतः कश्चित्सर्वज्ञत्वेनाध्यक्षतः सिद्धो येन तत्सादृश्यादन्यस्य  
सर्वज्ञत्वमुपमानात्साध्येत ।

१ जैनादिभिः । २ प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वेन कारणेन विवादाध्यासितत्वम् । ३ सूक्ष्मा-  
दिषु । ४ विवादाध्यासितपदार्थेषु अशेषज्ञेयव्यापिप्रमाणप्रमेयत्व सिद्धं चेत् । ५ असा-  
धारणानैकान्तिकः । ६ अशेषज्ञेयप्रमाणप्रमेयत्वादित्यस्य । ७ पावकादौ । ८ अल-  
दादिप्रमाणप्रमेयत्वादिति हेतुः । ९ सूक्ष्मादिषु । १० असदादिप्रमाणभूतः ।  
११ अतीन्द्रियश्रेन्द्रियविषयश्च तेषां आद्यप्रमाणम् । १२ सर्वज्ञः । १३ हिरण्य-  
गर्भे प्रकृत्य सर्वज्ञ इति । १४ अग्निहोत्रेन यजेत स्वर्गकाम इति क्रियमाणेऽर्थे ।  
१५ सर्वज्ञः । १६ साकल्येन । १७ मूढवनवदितोरिवतत्सोपमानज्ञानप्रसङ्गात् ।  
१८ तत्सोपमानमूनसर्वज्ञत्वम् । १९ नुः ।

नाप्यर्थापत्तिस्तत्सिद्धिः सर्वज्ञसद्भावमन्तरेणानुपपद्यमानस्य प्रमाणवद्भविष्यतायस्य कस्यचिदभावात् । धर्माद्युपदेशस्य बहुजनपरिगृहीतस्यान्यथापि भावात् । तथा चोक्तम्—

“सर्वज्ञो दृश्यते तावज्ज्ञेदानीमसदादिभिः ।

[ मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११७ ]

दृष्टो न चैकदेशोस्ति लिङ्गं वा योर्नुमापयेत् ॥ १ ॥ [ ]

न चागमैर्विधिः कश्चिन्नित्यः सर्वज्ञबोधकः ।

न च मन्त्रार्थवादानां तात्पर्यमवकर्षते ॥ २ ॥ [ ]

न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्ति त्वं विधीयते ।

१० न चानुवदितुं शक्यः पूर्वमेन्यैरबोधितैः ॥ ३ ॥ [ ]

अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान् ।

कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥ ४ ॥ [ ]

अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते ।

प्रकल्पेन कथं सिद्धिरन्योन्याश्रययोस्तयोः ? ॥ ५ ॥ [ ]

१५ सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता ।

कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धैर्मूलान्तैराद्यते ॥ ६ ॥ [ ]

असर्वज्ञप्रणीतासु वचनान्मूर्खवर्जितात् ।

सर्वज्ञमवगच्छन्तः स्ववाक्यात्किञ्च जानते ? ॥ ७ ॥ [ ]

सर्वज्ञसदृशं कश्चिद्यदि पश्येत् स सम्प्रति ।

२० उपमानेन सर्वज्ञं जानीयाम ततो वयम् ॥ ८ ॥ [ ]

उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्माऽधर्मादिगोचरः ।

अन्यथा नोपपद्येत सर्वज्ञं यदि नाऽभवत् ॥ ९ ॥ [ ]

बुद्धादयो ह्यवेदज्ञास्तेषां वेदादसम्भवाः ।

उपदेशः कृतोऽतस्तैर्व्यामोहोदेव केवलात् ॥ १० ॥ [ ]

१ सर्वज्ञाभावेऽपि । २ सम्बन्धमन्तरं हेतुः । ३ लिङ्गं सूत्रेति शेषः । ४ सर्वज्ञः ।

५ प्रशंसामवभाषनादिः । ६ घटते । ७ वागाधः । ८ आगमैः । ९ आगमात् ।

१० अनुमापणात् । ११ प्रमाणान्तरेः । १२ सर्वज्ञः । १३ असादादिभिः ।

१४ सर्वज्ञागमसत्त्वार्थयोः । १५ कथमन्योन्याश्रय इत्युक्ते सत्ताह । १६ वचः ।

१७ आगमप्रमाणपुलक्षणत्वात् मूलादन्त्यत् सर्वज्ञप्रमाणपुलक्षणे मूलान्तरं वा द्रष्टव्यम् ।

१८ मूले प्राप्ताण्यसु । १९ सर्वज्ञसदृशदर्शनात् । २० सूत्रा । २१ न विपत्ते

संभव इत्यपत्तिर्विषयोपदेशस्य । २२ अज्ञानात् ।

१. ‘न च मन्त्रार्थवादानां न चानुवदितुं शक्यः’ इति श्लोकस्य विना सर्वज्ञप

र्त्तिकाः तत्सप्तप्रति ( ५०. ८१०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६ ) पूर्वपक्षे कुमा-

रिलक्षचुक्रान्त्येनोपलभ्यन्ते ।

ये तु मन्वादयः सिद्धाः प्राज्ञान्येन त्रयीविदाम् ।

त्रयीविदाश्चितप्रस्थान्ते वेदप्रभवोक्तयः ॥ ११ ॥

इति ।

न च प्रमाणान्तरं सदुपलम्भकं सर्वज्ञस्य साधकमस्ति ।

मा भूदत्रत्येदानीन्तनसदादिजनानां (नां) सर्वज्ञस्य साधकं प्रत्यक्षाद्यन्यतमं देशान्तरकालान्तरवर्तिनां केषाञ्चिद्भविष्यतीति चाऽयुक्तम् ।

“यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनम् ।

दृष्टं सम्प्रति लोकस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत् ॥”

[ मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११३ ] १०

इत्यभिधानात् । तथा हि—विवादाध्यासिते देशे काले च प्रत्यक्षादिप्रमाणम् अत्रत्येदानीन्तनप्रत्यक्षादिप्राज्ञसजातीयार्थप्राद्वकं तद्विजातीयसंज्ञैश्चाद्यर्थप्राद्वकं वा न भवति प्रत्यक्षादिप्रमाणत्वात् अत्रत्येदानीन्तनप्रत्यक्षादिप्रमाणवत् ।

नैव च यथाभूतमिन्द्रियादिजनितं प्रत्यक्षादि सर्वज्ञाद्यर्थासाधकं दृष्टं तथाभूतमेव देशान्तरे कालान्तरे च तथा साध्यते, अन्यथाभूतं चेत्सिद्धसाधनम् । अन्यथाभूतं चेदप्रयोजको हेतुः, जगतो बुद्धिमत्कारणत्वे साध्ये संनिवेशविशिष्टत्वादिवत्, तदसम्भूतम्, तथाभूतस्यैव तथा साधनात् । न च सिद्धसाधनमन्यादृशप्रत्यक्षाद्यभावात् । तथा हि—विर्वादात् प्रत्यक्षादिप्रमाणमिन्द्रियादिसामग्रीविशेषानपेक्षं न भवति प्रत्यक्षादिप्रमाणत्वात्प्रसिद्धप्रत्यक्षादिप्रमाणवत् । न गृह्यवर्गहृदिपीलिकादिप्रत्यक्षेण सञ्चितदेशविशेषानपेक्षिणा नक्तञ्चरप्रत्यक्षेण बालोकानपेक्षिणानेकान्तः, कौत्यायनाद्यनुमानातिशयेन, जैमिन्याद्यागर्भातिशयेन वा, तस्यापीन्द्रियादिप्रणिधानसामग्रीविशेषमन्तरेणासम्भवात्, —अपीन्द्रियाननुमेयाद्यर्थाविषयत्वेन स्वार्थातिलङ्घनाभावात् । तथा चोक्तम्—

१ सिद्धाः प्रसिद्धाः । २ मध्ये । ३ कर्त्रीभिस्त्रिराश्रितो ग्रन्थो येषां ते ।

४ वेदाग्रभव इत्युच्यते । ५ वेदप्रभवः, वेदग्रन्थो उक्तो येषां मन्वादीनां । ६ रूपादिमद्वलासञ्चादि । ७ असदादिप्रमाणसदृशप्रमाणप्रकरणे । ८ सर्वज्ञत्वादीं ज्ञेये । ९ अतीन्द्रियप्रलक्षणम् । १० सपक्षव्यापकपक्षव्यापकः प्रतिनिवृत्तार्थ-  
आक्षिप्ते सतीति-विशेषणजनितोपाधारितसम्बन्धो हेतुप्रयोजकः । ११ अतीन्द्रिय-  
नोपि कृपदुष्टादकत्वे सति । १२ अतीन्द्रिय । १३ देशान्तरकालान्तरवर्ति ।  
१४ अत्रत्येदानीन्तनं प्रसिद्धम् । १५ वररुचि । १६ अश्रुतवेदावलक्षणम् । १७ एका-  
ग्रता । १८ स्वल्पप्रत्यक्षादेः ।

१९ अतीन्द्रिय । २० सपक्षव्यापकपक्षव्यापकः प्रतिनिवृत्तार्थ-  
आक्षिप्ते सतीति-विशेषणजनितोपाधारितसम्बन्धो हेतुप्रयोजकः । २१ अतीन्द्रिय-  
नोपि कृपदुष्टादकत्वे सति । २२ अतीन्द्रिय । २३ देशान्तरकालान्तरवर्ति ।  
२४ अत्रत्येदानीन्तनं प्रसिद्धम् । २५ वररुचि । २६ अश्रुतवेदावलक्षणम् । २७ एका-  
ग्रता । २८ स्वल्पप्रत्यक्षादेः ।

२९ अतीन्द्रिय । ३० सपक्षव्यापकपक्षव्यापकः प्रतिनिवृत्तार्थ-  
आक्षिप्ते सतीति-विशेषणजनितोपाधारितसम्बन्धो हेतुप्रयोजकः । ३१ अतीन्द्रिय-  
नोपि कृपदुष्टादकत्वे सति । ३२ अतीन्द्रिय । ३३ देशान्तरकालान्तरवर्ति ।  
३४ अत्रत्येदानीन्तनं प्रसिद्धम् । ३५ वररुचि । ३६ अश्रुतवेदावलक्षणम् । ३७ एका-  
ग्रता । ३८ स्वल्पप्रत्यक्षादेः ।

३९ अतीन्द्रिय । ४० सपक्षव्यापकपक्षव्यापकः प्रतिनिवृत्तार्थ-  
आक्षिप्ते सतीति-विशेषणजनितोपाधारितसम्बन्धो हेतुप्रयोजकः । ४१ अतीन्द्रिय-  
नोपि कृपदुष्टादकत्वे सति । ४२ अतीन्द्रिय । ४३ देशान्तरकालान्तरवर्ति ।  
४४ अत्रत्येदानीन्तनं प्रसिद्धम् । ४५ वररुचि । ४६ अश्रुतवेदावलक्षणम् । ४७ एका-  
ग्रता । ४८ स्वल्पप्रत्यक्षादेः ।

४९ अतीन्द्रिय । ५० सपक्षव्यापकपक्षव्यापकः प्रतिनिवृत्तार्थ-  
आक्षिप्ते सतीति-विशेषणजनितोपाधारितसम्बन्धो हेतुप्रयोजकः । ५१ अतीन्द्रिय-  
नोपि कृपदुष्टादकत्वे सति । ५२ अतीन्द्रिय । ५३ देशान्तरकालान्तरवर्ति ।  
५४ अत्रत्येदानीन्तनं प्रसिद्धम् । ५५ वररुचि । ५६ अश्रुतवेदावलक्षणम् । ५७ एका-  
ग्रता । ५८ स्वल्पप्रत्यक्षादेः ।

“यत्राप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलङ्घनात् ।

दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तितः (ता) ॥ १ ॥

[ मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११४ ]

येषां सातिशयो दृष्टाः प्रज्ञामेधादिभिर्नराः ।

५ स्तोकस्तोकान्तरत्वेन न त्वतीन्द्रियदर्शनात् ॥ २ ॥ [ ]

प्राज्ञोपि हि नरः सूक्ष्मानर्थान्दृष्टुं क्षमोपि सन् ।

सजातीरनतिक्रामन्नतिशेते पराश्वरान् ॥ ३ ॥ [ ]

पैकशास्त्रविचारेषु दृश्यतेऽतिशयो महान् ।

न तु शास्त्रान्तरज्ञानं तन्मात्रेणैव लभ्यते ॥ ४ ॥ [ ]

१० ज्ञात्वा व्याकरणं दूरं बुद्धिः शब्दापशब्दयोः ।

प्रकृष्यते न नक्षत्रतिथिग्रहणनिर्णये ॥ ५ ॥ [ ]

ज्योतिर्विज्ञे प्रकृष्टोपि चन्द्रार्कग्रहणादिषु ।

न भवत्यादिशब्दानां साधुत्वं ज्ञातुमर्हति ॥ ६ ॥ [ ]

तथा वेदेतिहासादिज्ञानातिशयवानपि ।

१५ न स्वर्गदेवताऽपूर्वप्रत्यक्षीकरणे क्षमः ॥ ७ ॥ [ ]

देशद्वस्तान्तरं व्योम्नि यो नामोत्सृत्य गच्छति ।

न योजनमसौ गन्तुं शक्तोऽभ्यासशतैरपि ॥ ८ ॥ [ ]

इति ।

प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां चास्यैषोषार्थविषयत्वं बाध्यते; तथाहि—

२० सर्वज्ञस्य ज्ञानं प्रत्यक्षं यद्यभ्युपगम्यते तदा तद्वैर्मादिग्राहकं न

स्याद्विद्यमानोपलम्भनत्वात् । विद्यमानोपलम्भनं तत् सत्सम्प्र-

योगजत्वात् । सत्सम्प्रयोगजं तत्, प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वादसदा-

दिप्रत्यक्षवत् । तद्वैर्मादिग्राहकं चेत् न विद्यमानोपलम्भनं धर्मादि-

रविद्यमानत्वात् । तद्वै चासत्सम्प्रयोगजत्वे चाऽप्रत्यक्षशब्देवा-

२५ च्यत्वम् ।

१ गृह्यादीन्द्रिये । २ क्रियमाणायाय । ३ इन्द्रियाणामतिशयो नास्ति चेन्मा-

भूत्पुरुषणा भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । ४ अर्धग्रहणशक्तिः प्रज्ञा । ५ मेधा पाठग्रहण-

शक्तिः । ६ पूर्वोक्तं भावयति । ७ तत्र दृष्टान्तमाह । ८ दृष्टान्तं भावयति । ९ न्यास-

पर्यन्तम् । १० प्रकृष्टा भवति । ११ पुनरपि दृष्टान्तं भावयति । १२ चकारो दृष्टान्त-

समुच्चये । १३ अदृष्ट । १४ लोकप्रसिद्धं दृष्टान्तमाह । १५ प्रसङ्गविपर्यययोर्लक्षणमुत्त-

रपक्षे वदिष्यति । १६ सर्वज्ञज्ञानस्य । १७ जैनादिभिः सर्वज्ञवादिभिः । १८ गुण्य-

पापादि । १९ इति प्रसङ्गेन तस्याज्ञेयार्थविषयत्वं बाध्यते । २० तस्य परोक्षत्वमित्यर्थः ।

२१ इति विपर्ययेण तस्याज्ञेयार्थविषयत्वं बाध्यते । २२ अविद्यमानोपलम्भनत्वे ।

१ इमा अज्ञेयाः कारिकाः तत्त्वसंग्रहे (पृ० ८२५-२६) पूर्वपक्षतया उपलम्बन्ते ।

धर्मज्ञत्वनिषेधे चान्याशेषार्थप्रत्यक्षत्वेऽपि न प्रेरणाप्रामाण्य-  
प्रतिबन्धो धर्मे तस्या एव प्रामाण्यात् । तदुक्तम्—

“सर्वप्रमातृसम्बन्धिप्रत्यक्षादिनिवारणात् ।

केवलागमगम्यत्वं लप्स्यते पुण्यपापयोः ॥ १ ॥” [ ]

‘धर्मज्ञत्वनिषेधस्तु केवलोत्रोपयुज्यते ।

सर्वमैक्यद्विजानंस्तु पुरुषः केनैव वार्यते ॥ २ ॥” [ ]

किञ्च, अस्य ज्ञानं चक्षुरादिजनितं धर्मादिग्राहकम्, अभ्यास-  
जनितं वा स्यात्, शब्दप्रभवं वा, अनुमानाविर्भूतं वा ? प्रथमपक्षे  
धर्मादिग्राहकत्वायोगश्चक्षुरादीनां प्रतिनियतरूपादिविषयत्वेन  
तत्प्रभवज्ञानस्याप्यत्रैव प्रवृत्तेः । अथाभ्यासजनितम्, ज्ञानाभ्यास-<sup>१०</sup>  
सादिप्रकर्षतरतमादिकमेण तत्प्रकर्षसम्भवे सकलस्वभावातिर्शय-  
पर्यन्तं संवेदनमवाप्यते; इत्यपि मनोरथमात्रम्, अभ्यासो हि  
कस्यचित्प्रतिनियतशिल्पकलादौ तदुपदेशाद् ज्ञानाच्च दृष्टः । न  
चाशेषार्थोपदेशो ज्ञानं वा सम्भवति । तत्सम्भवे किमभ्यासप्रया-  
सेनाशेषार्थज्ञानस्य सिद्धत्वात् । अन्योन्याध्यायश्च-अभ्यासात्तज्ज्ञा-<sup>१५</sup>  
नम्, ततोऽभ्यास इति । शब्दप्रभवं तदित्यप्ययुक्तम्, परस्पर-  
अयणानुपङ्गात्-सर्वज्ञप्रणीतत्वेन हि तत्प्रामाण्येऽशेषार्थविषय-  
ज्ञानसम्भवः, तत्सम्भवे चाशेषज्ञस्य तथाभूतशब्दप्रणेदृत्वमिति ।  
अभ्युपगम्यते च प्रेरणाप्रभवज्ञानैवतो धर्मज्ञत्वम्,

“चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमि-<sup>२०</sup>  
त्येवंजातीयकमर्थमवगमयितुमलं नान्यत् किञ्चनेन्द्रियादिकम्”  
[ शाबरभा० १।१२ ] इत्यभिधानात् ।

अनुमानाविर्भूतमित्यप्यसङ्गतम्, धर्मादेरतीन्द्रियत्वेन तज्ज्ञा-  
पकलिङ्गस्य तेन सह सम्बन्धासिद्धेरसिद्धसम्बन्धस्य चाज्ञाप-  
कत्वात् ।

२५

किञ्च, अनुमानेनाशेषज्ञत्वेऽसदादीनामपि तत्प्रसङ्गः, ‘भावा-  
भावोभयरूपं जगत्प्रमेयत्वात्’ इत्याद्यनुमानस्यासदादीनामपि  
भावात् । अनुमानागमज्ञानस्य चास्पष्टत्वात्तज्जनितस्याप्यवैशद्य-  
सम्भवाच्च तज्ज्ञानैवान्सर्वज्ञो युक्तः ।

१ वेदिकी । २ प्रेरणाप्रामाण्ये । ३ धर्माधर्माभ्यामन्यत् । ४ न केनापि ।  
५ सर्वशस्य । ६ सकलार्थग्रहणलक्षणातिशय । ७ जागम । ८ धर्मादिग्राहकं सर्वज्ञ-  
ज्ञानम् । ९ अशेषार्थविषय । १० भन्नादेः । ११ कालेन । १२ देशेन ।  
१३ अनुमानादिज्ञानजनितस्पष्टज्ञानवान् ।

१ इमे कापिके तत्त्वसंग्रहे (पृ० ८१६, ८२०) पूर्वपक्षतया विधेते ।

प्र० क० भा० २२

न च वक्तव्यम्—‘पुनःपुनर्भाव्यमानं भावनाप्रकर्षपर्यन्ते योगि-  
ज्ञानरूपतामासादयत्तद्वैशद्यभावात् भविष्यति । इद्व्यते चाभ्यास-  
बलात्कामशोकाद्युपहृतज्ञानस्य वैशद्यम्’ इति, तद्वदस्याप्युपभुत-  
त्वप्रसङ्गात् ।

५ किञ्च, अस्याखिलार्थग्रहणं सकलज्ञत्वम्, प्रधानभूतकतिप-  
यार्थग्रहणं वा ? तत्राद्यपक्षे क्रमेण तद्वहणम्, युगपद्वा ? न ताव-  
त्क्रमेण; अतीतानागतवर्त्तमानार्थानां परिसमाप्त्यभावात्तज्ज्ञान-  
स्याप्यपरिसमाप्तेः सर्वज्ञत्वायोगात् । नापि युगपत्; परस्परविरु-  
द्धशीतोष्णाद्यर्थानामेकत्र ज्ञाने प्रतिभासासम्भवात् । सम्भवे वा  
१० प्रतिनियतार्थस्वरूपप्रतीतिविरोधः ।

किञ्च, एकक्षण एवाशेषार्थग्रहणाद् द्वितीयक्षणेऽकिञ्चिज्ज्ञः  
स्यात् । तथा परस्पररागादिसाक्षात्करणाद्रागादिमान्, अन्यथा  
सकलार्थसाक्षात्करणविरोधः ।

नापि प्रधानभूतकतिपयार्थग्रहणम्, इतरार्थव्यवच्छेदेन ‘पते-  
१५ षामेव प्रयोजननिष्णादकत्वात्प्राधान्यम्’ इति निश्चयो हि स-  
कलार्थज्ञाने सत्येव घटते, नान्यथा । तच्च प्रागेव कृतोत्तरम् ।

कथं चातीतानागतग्रहणं तत्स्वरूपासम्भवाद् ? असतो ग्रहणे  
तैमिरिकज्ञानवत्प्रामाण्याभावः । सत्त्वेन ग्रहणेऽतीतादेर्वर्त्तमान-  
त्वम् । तथा चान्यकालस्यान्यकालतया वस्तुनो ग्रहणात्तज्ज्ञान-  
२० स्यात्प्रामाण्यम् ।

कथं चासौ तद्वाच्याखिलार्थाज्ञाने तत्कालेऽप्यसर्वज्ञैर्वातुं श-  
क्यते ? तदुक्तम्—

“सर्वज्ञोयमिति ह्येतत्तत्कालेपि बुभुत्सुभिः ।

तज्ज्ञानक्षेयविज्ञानरहितैर्गम्यते कथम् ॥ १ ॥

२५ कैल्पनीयाश्च सर्वज्ञा भवेयुर्वहवस्तव ।

य एव स्यादसर्वज्ञः स सर्वज्ञं न बुद्धयते ॥ २ ॥

सर्वज्ञो नावबुद्धश्च येनैव स्यात्तं प्रति ।

तद्वाक्यानां प्रमाणत्वं मूलाज्ञानेऽन्यैवाक्यवत् ॥ ३ ॥”

[ मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १३४-३६ ] इति ।

१ आगमानुमानबनितास्पष्टं ज्ञानम् । २ व्याहृत । ३ सर्वज्ञज्ञानस्य । ४ मोक्ष-  
लक्षण । ५ सर्वज्ञः । ६ तेन सर्वज्ञज्ञानेन । ७ तर्हि सर्वज्ञैव सर्वज्ञो ज्ञायते इत्युक्ते  
सत्याह । ८ यतः । ९ मूलस्य वाक्यकारणस्य सर्वज्ञलक्षणस्य । १० अन्यस्य  
ख्यापुरुषस्य ।

✓ अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्-सदुपलम्भकप्रमाणपञ्चका-  
विषयत्वं साधनम्: तदसिद्धम्; तत्सद्भाववेदकस्यानुमानादेः  
सद्भावात् । तथाहि-कश्चिदात्मा सकलपदार्थसाक्षात्कारी तद्ग्रहण-  
स्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वात्, यद्यद्ग्रहणस्वभावत्वे  
सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययं तत्तत्साक्षात्कारि यथापगततिमि-५  
रादिप्रतिबन्धं लोचनविज्ञानं रूपसाक्षात्कारि, तद्ग्रहणस्वभावत्वे  
सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययश्च कश्चिदात्मेति । न तावत्सकलार्थ-  
ग्रहणस्वभावत्वमात्मनोऽसिद्धम्; चोदनावलाग्निलिखितार्थज्ञानोत्प-  
त्त्यन्यथानुपपत्तेस्तस्य तत्सिद्धेः, 'सकलमनेकान्तात्मकं सत्त्वात्' ८  
इत्यादिव्याप्तिज्ञानोत्पत्तेर्वा । यद्धि यद्विषयं तत्तद्ग्रहणस्वभावम् १०  
यथा रूपादिपरिहारेण रसविषयं रसनविज्ञानं रसग्रहणस्वभा-  
वम्, सकलार्थविषयश्चात्मा व्याप्त्यागमज्ञानाभ्यामिति । सोऽयं  
"चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयक-  
मर्थमवगमयितुमलं पुरुषान्" [ शाबरभा० १।१२ ] इति स्वयं  
ह्वाणो विधिप्रतिषेधविचारणानिबन्धनं साकल्येन व्याप्तिज्ञानं १५  
च प्रतिपद्यमानः सकलार्थग्रहणस्वभावतामात्मनो निराकरोतीति  
कथं स्वस्थः? प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वं च प्रागेव प्रसाधित-  
त्वाद्भासिद्धम् ।

साध्यसाधनयोश्च प्रतिबन्धो न प्रत्यक्षानुमानाभ्यां प्रतिज्ञा-  
यते येनोक्तदोषानुपपन्नः स्यात्, तर्काख्यप्रमाणान्तरात्तत्सिद्धेः । २०

यश्चाप्रतिपक्षपक्षधर्मत्वो हेतुर्न प्रतिनियतसाध्यप्रतिपक्षकृमि-  
त्युक्तम्: तदप्यपेक्षालम्: न हि सर्वज्ञोऽर्थं धर्मित्वेनोपात्तो येना-  
स्यासिद्धेरयं दोषः । किं तर्हि? कश्चिदात्मा । तत्र चाविप्रतिपत्तेः ।  
न चापक्षधर्मस्य हेतोरगमकत्वम्;

"पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमा ।

सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥" [

२५

इति स्वयमभिधानात् ।

यदप्युक्तम्-सत्तासाधने सर्वो हेतुस्वर्यो दोषजातिं नातिवर्चत  
इति: तत्सर्वानुमानोच्छेदकारित्वादयुक्तम्; शक्यं हि वक्तुं धूम-

१ ज्ञेयः । २ प्रक्षीणः प्रतिबन्धलक्षणः प्रत्ययः कारण यस्य । ३ वस्तु । ४ आत्मा  
सकलार्थग्रहणस्वभावो भवति सकलार्थनिषयत्वादित्युपरिष्टाद्योज्यम् । ५ भीमासकः ।  
६ बुद्धिनाम् । ७ विद्वेदम् । ८ जनबलेतरेतरानुपपन्नः । ९ अर्थसाक्षात्कारित्वे  
स्त्वेव प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वं लोचने निदं सम्भवाद्वा न दृष्टम् । अतः साध्यधर्मिणि  
साध्यसाधनयोः सम्बन्धसिद्धिर्भवत्येव । १० परेण । ११ अनुमाने । १२ धर्मिणः ।



त्वादिर्यद्यग्निमत्पर्वतधर्मस्तदाऽसिद्धः; को हि नामाग्निमत्पर्वत-  
धर्मं हेतुमिच्छन्नग्निमत्त्वमेव नेच्छेत् । तद्विपरीतधर्मश्चेद्विरुद्धः;  
साध्यविरुद्धसाधनात् । उभयधर्मश्चेद्व्यभिचारी सपक्षेतरयोर्वैत्त-  
नात् । विमत्यधिकरणभावापन्नधर्मिधर्मत्वे धूमवत्त्वादेः सर्वं  
५ सुस्थम् । यथा चाचलस्याचलत्वादिना प्रसिद्धसत्ताकस्य सन्दि-  
ग्धाग्निमत्त्वादिसाध्यधर्मस्य धर्मो हेतुर्न विरुध्यते, तथा प्रसिद्धा-  
त्मत्वादिविशेषणसत्ताकस्याप्रसिद्धसर्वव्रत्वोपाधिसत्ताकस्य च  
धर्मिणो धर्मः प्रकृतो हेतुः कथं विरुध्येत ?

यदपि अविशेषेण सर्वज्ञः कश्चित्साध्यते विशेषेण वेत्याद्यऽभि-  
१० हितम्; तदप्यभिधानमात्रम्; सामान्यतस्तत्साधानात्तत्रैव विवा-  
दात् । विशेषविप्रतिपत्तौ पुनर्दृष्ट्याविरुद्धवाक्त्वादहृत एवाशेषा-  
र्थज्ञत्वं सेत्स्यति । कथं वा तत्प्रतिषेधः अत्राप्यस्य दोषस्य समा-  
नत्वात् ? अर्हतो हि तत्प्रतिषेधसाधनेऽप्रसिद्धविशेषणः पक्षो  
व्यातिर्ष्यं न सिध्येत्, दृष्टान्तस्य साध्यशून्यतानुपपन्नात् । अनर्हत्-  
१५ श्चेत्; स एव दोषो बुद्धादेः परित्यासिद्धेः, अनिष्टानुपपन्नमर्हत्तत्तद-  
प्रतिषेधात् । सामान्यतस्तत्प्रतिषेधे सर्वं सुस्थम् ।

यच्चोक्तम्-यकज्ञानप्रत्यक्षत्वं सूक्ष्माद्यर्थानां साध्यत्वेनाभिप्रेतं  
प्रतिनियतविषयानेकज्ञानप्रत्यक्षत्वं वेत्यादि; तदप्युक्तिमात्रम्;  
प्रत्यक्षसामान्येन कस्यचित्सूक्ष्माद्यर्थानां प्रत्यक्षत्वसाधनात् ।

२० प्रसिद्धे च तेषां सामान्यतः कस्यचित्प्रत्यक्षत्वे तत्प्रत्यक्षस्यैकत्व-  
मिन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षत्वात्सिध्येत्, तदपेक्षस्यैवार्थानेकत्वप्र-  
सिद्धेः । तदनपेक्षत्वं च प्रमाणान्तरात्सिद्ध्येत्, तथाहि-योगिप्रत्य-  
क्षमिन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षं सूक्ष्माद्यर्थविषयत्वात्, यत्पुनरिन्द्रि-  
यानिन्द्रियापेक्षं तच्च सूक्ष्माद्यर्थविषयम् यथासदादिप्रत्यक्षम्,

२५ तथा च योगिनः प्रत्यक्षम्, तस्मात्तथेति ।

किञ्च, एवं साध्यविकल्पनेनानुमानोच्छेदः । शक्यते हि  
वक्तुम्-साध्यधर्मिधर्मोऽग्निः साध्यत्वेनाभिप्रेतः, दृष्टान्तधर्मिधर्मः,  
उभयधर्मो वा ? प्रथमपक्षे विरुद्धो हेतुः; तद्विरुद्धेन दृष्टान्तध-

१ ज्ञानवान् । २ अतश्च हेतुपन्यासो व्यर्थः । ३ अनग्निमत्पर्वतधर्मः । ४ आदि-  
पदेन स्थूलत्वादिना । ५ आदिपदेन अमूर्तत्वेन । ६ सर्वव्रत्तावने । ७ वीतो न  
सर्वव्रतः पुरुषत्वाद्व्यापुरुषनदिति । ८ यो यः पुरुषः स सोऽहं सन् सर्वज्ञो न  
भवतीति । ९ अन्यथा । १० रथ्यापुरुषस्य । ११ सर्वज्ञभाव । १२ बुगतादेः ।  
१३ गीमासकस्य । १४ तस्य सर्वज्ञत्वस्य । १५ असत्यक्षेपि समान इत्यर्थः ।  
कथम् ? सामान्यतः सर्वव्रत्तावने अप्रसिद्धविशेषणः पक्ष इत्यादिदूषणानि विशेषपक्षो-  
क्तानि नोपलोक्ये इति । १६ प्रत्यक्षस्य ।

मिणि तद्धर्मैणाग्निना धूमस्य व्याप्तिप्रतीतेः । साध्यविकलश्च  
द्वैष्टान्तः स्यात् । द्वितीयपक्षे तु प्रत्यक्षादिविरोधः । अथोभयग-  
ताग्निसामान्यं साध्यते तर्हि सिद्धसौच्यता ।

यच्चान्यदुक्तम्-प्रमेयत्वं किमशेषशेषव्यापिप्रमाणप्रमेयत्वव्य-  
किलक्षणमसदादिप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिस्वरूपं वेत्यादि; तद्धमादि-<sup>५</sup>  
सकलसाधनोन्मूलनहेतुत्वान्न वक्तव्यम् । तथाहि-साध्यधर्मिधर्मो  
धूमो हेतुत्वेनोपात्तः, दृष्टान्तधर्मिधर्मो वा स्यात्, उभयगतसा-  
मान्यरूपो वा? साध्यधर्मिधर्मत्वे दृष्टान्ते तस्याभावादनर्ह्ययो हेतु-  
दोषः । दृष्टान्तधर्मिधर्मत्वे साध्यधर्मिण्यभावादसिद्धता । उभय-  
गतसामान्यरूपत्वेऽप्यसिद्धतैव, प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वेनात्यन्तविल-<sup>१०</sup>  
क्षणमहानसाचलप्रदेशव्यक्तिद्वयाश्रितसामान्यस्यैवासम्भवात् ।  
अथ कण्ठाक्षिविक्षेपादिलक्षणधर्मकलापसाधर्म्यान्न महानसाचल-  
प्रदेशाश्रितधूमव्यक्त्योरत्यन्तवैलक्षण्यं येनोभयगतसामान्यासिद्धे-  
रसिद्धता स्यात्; तर्हि स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकत्वादिधर्मकला-  
पसाधर्म्यस्यातीन्द्रियेन्द्रियविषयप्रमाणव्यक्तिद्वयेऽत्यन्तवैलक्षण्य-<sup>१५</sup>  
निवर्त्तकस्य सम्भवादुभयसाधारणसामान्यसिद्धेः कथं प्रमेयत्व-  
सामान्यस्यासिद्धिः ?

यच्चैवमुक्तम्-प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां चासंश्लेषार्थविषयत्वं बाध्यत  
इत्यादि; तन्मनोरथमात्रम्; साध्यसाधनयोर्व्याप्यव्यापकभाव-  
सिद्धौ हि व्याप्याभ्युपगमो व्यापकाभ्युपगमनान्तरीयको यत्र <sup>२०</sup>  
प्रदर्श्यते तत्प्रसङ्गसाधनम् । व्यापकनिवृत्तौ चावश्यं भाविनी  
व्याप्यनिवृत्तिः स विपर्ययः । न च प्रत्यक्षत्वसत्प्रयोगजत्व-  
विधैमानोपलम्भनत्वधर्मैर्माद्यनिमित्तत्वानां व्याप्यव्यापकभावः  
कञ्चित् प्रतिपन्नः । सात्मन्येवासौ प्रतिपन्न इत्यन्यसङ्गतम्; चक्षु-  
रादिकरणग्रामप्रभवप्रत्यक्षस्याव्यवहितदेशकालस्वभावाविर्भूत-<sup>२५</sup>  
प्रतिनियतरूपादिविषयत्वाभ्युपगमात्, नियमस्य चाभावाद्भि-प्र-

१ महानसे पर्वताक्षेरभावाद । २ लौकिक । ३ सिद्ध नः ( जैनाना ) समीहित-  
मिति पाठान्तरम् । ४ पर्वतधूमवत्त्वादित्युक्ते । ५ महानसे । ६ यो व. पर्वतधूम-  
वान् स क्षोभमानिलन्वयो न । ७ महानसधूमवत्त्वादित्युक्ते । ८ अतीन्द्रियविषय-  
क्षेत्रियविषयश्च तयोर्ग्राहक प्रमाणम् । ९ सङ्घटनप्रवर्त्तकत्वेत्यर्थः । १० सर्वज्ञस्य ।  
११ अनुमाने । १२ व्याप्य । १३ व्यापक । १४ व्याप्य । १५ व्यापक ।  
१६ दृष्टान्ते । १७ समीपवर्ति । १८ मतः । १९ यथाविधे प्रत्यक्षे व्याप्यव्यापक-  
भावः साध्यसाधनानां प्रतिपन्नरूपाभिधेयस्यैव साज्ञ सर्वज्ञत्वप्रत्यक्षे तत्र व्याप्यव्यापक-  
भावस्याप्रतिपन्नत्वादित्यर्थः । २० यथासंज्ञसम्भवाच्च तदव्यवहितदेशकालार्थग्राहक-  
मिति नियमस्य ।

कृष्टार्थग्राहकेषु प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वदर्शनात् । तथाहि—अनेक-  
योजनशतव्यवहितार्थग्राहि वैततेयप्रत्यक्षं रामायणादौ प्रसिद्धम्,  
लोकै चातिदूरार्थग्राहि गृध्रवराहौदिप्रत्यक्षम्, स्मरणसव्यपेक्षे-  
न्द्रियैदिजन्यप्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षं च कालविप्रकृष्टस्यातीतकाल-  
५ सम्बन्धित्वस्यातीतदर्शनसम्बन्धित्वस्य च ग्राहि पुरोवर्त्तितायै  
मैवतैवाभ्युपगम्यते । अन्यथा—

“देशकालादिभेदेन तत्रास्त्यवसरो मितेः ।

इदानीन्तनमस्तित्वं न हि पूर्वधिया गतम् ॥”

[ मी० श्लो० प्रत्यक्षसू० श्लो० २३३-३४ ]

१० इत्यादिना तस्यागृहीतार्थाधिगन्तृत्वं पूर्वापरकालसम्बन्धित्वलक्ष-  
णनित्यत्वग्राहकत्वं च प्रतिपाद्यमानं विरुध्येत । प्रातिमं च ज्ञानं  
शब्दलिङ्गाक्षव्यापारानपेक्षं ‘श्वो मे आता आगन्ता’ इत्याद्याकार-  
मनागततीन्द्रियकालविशेषणार्थप्रतिभासं जाग्रदशायां स्फुटतर-  
मनुभूयते ।

१५ किञ्च, धर्मादेरतीन्द्रियत्वाच्चक्षुरादिनानुपलम्भः, अविद्यमान-  
त्वाद्वा स्यात्, अविशेषणत्वाद्वा ? न तावदाद्यः पक्षः, अतीन्द्रि-  
यस्याप्यतीतकालादेरुपलम्भाभ्युपगमात् । नाप्यविद्यमानत्वात्,  
भाविधैर्मादेरतीतकालादेरिवाविद्यमानत्वेऽप्युपलम्भसम्भवात् ।  
अविशेषणत्वं तु तस्यासिद्धं सकललोकोपभोग्यार्थजनकत्वेन

२० द्रव्यगुणकर्मजन्यत्वेन चास्याखिलार्थविशेषणत्वसम्भवात् । अती-  
तार्थतीन्द्रियकालादेरिवास्यापि विशेषणग्रहणप्रवृत्तचक्षुरादिना  
ग्रहणोपपत्तेः कथं धर्मं प्रत्यक्षैरिति निर्णयसाधने प्रसङ्गविपर्य-  
यसम्भवः ? प्रक्षेपादिमन्त्रादिना च संस्कृतं चक्षुर्यथा कालविप्रकृष्टा-  
र्थस्य द्रव्यविशेषसंस्कृतं च निर्जीविकादिचक्षुर्जलाद्यन्तरितार्थस्य

२५ ग्राहकं दृष्टम्, तथा पुण्यविशेषसंस्कृतं सूक्ष्माद्यशेषार्थग्राहि  
अविष्यतीति न कश्चिदुल्लेखभावातिक्रमः । ‘सात्मनि च यावद्भिः  
कारणैर्जनितं यथामृतार्थग्राहि प्रत्यक्षं प्रतिपन्नं तथा सर्वत्र  
सर्वदा प्राण्यन्तरेपि’ इति नियमे नक्तञ्चराणामनालोकान्ध-

१ ज्ञाने । २ वराहः पिपीलिका । ३ अनिन्द्रियमादिपदेन । ४ धर्मस्य ।  
५ देवदत्तलक्षणे । ६ मीमांसकेन । ७ स्वभावादिरादिपदेन । ८ पूर्वप्रमाणगृहीतेषु  
देवदत्तलक्षणे । ९ प्रत्यभिज्ञायाः । १० परिशतम् । ११ प्रत्यभिज्ञानस्य । १२ अत्र ।  
१३ योगजधर्मकारणधर्मोपलब्धे । १४ अनागतमादिपदेन । १५ सर्वज्ञानस्य ।  
१६ अग्राहकत्वसाधने । १७ आदिपदेन संज्ञा । १८ तत्रमादिपदेन । १९ कर्ण-  
धार । २० योगिबद्धः ।

कारव्यवहितरूपाद्युपलम्भो न स्यात्स्वात्मनि तथाऽनुपलम्भात् ।  
प्राप्यन्तरे स्वात्मन्यनुपलब्धस्यानालोकान्धकारव्यवहितरूपाद्युप-  
लम्भलक्षणातिशयस्य सम्भवे सूक्ष्माद्युपलम्भलक्षणातिशयोपि  
स्यात् । जात्यन्तरत्वं चोभयत्र समानम् । अभ्युपगम्य चाक्ष-  
जत्वं सर्वज्ञज्ञानस्यातीन्द्रियार्थसाक्षात्कारित्वं समर्थितं नार्थतैः,<sup>५</sup>  
तज्ज्ञानस्य धातिकर्मचतुष्टयक्षयोद्भूतत्वात् ।

यच्चास्य ज्ञानं चक्षुरादिजनितं वेत्याद्यभिहितम्; तदप्यचारु;  
चक्षुरादिजन्यत्वेऽप्यनन्तरं धर्मादिग्राहकत्वाविरोधस्योक्तत्वात् ।  
यच्चाभ्यासजनितत्वेऽभ्यासो हीत्याद्युक्तम्; तदप्ययुक्तम् ।  
“उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्” [ तत्त्वार्थसू० ५।३० ] इत्यखिलार्थ-<sup>१०</sup>  
विषयोपदेशस्याविरुद्धादिनो ज्ञानस्य च सामान्यतः सम्भवात् ।  
न च तज्ज्ञानवैत एवाशेषज्ञत्वात्त्वार्थोभ्यासः; तस्य सामान्यतोऽ-  
स्पष्टरूपस्यैवाविर्भावात्, अभ्यासस्य तत्प्रतिबन्धकापायसहा-  
यस्याशेषविशेषविषयस्पष्टज्ञानोत्पत्तौ व्यापारात् । नाप्यन्योन्या-  
श्रयः; अभ्यासादेर्वाखिलार्थविषयस्पष्टज्ञानोत्पत्तेरनभ्युपगमात् ।<sup>१५</sup>

शब्दप्रभवपक्षेप्यन्योन्याश्रयानुषङ्गोऽसङ्गतः; कारकपक्षे तद-  
सम्भवात् । पूर्वसर्वज्ञप्रणीतागमप्रभवं ह्येतस्याशेषार्थज्ञानम्,  
तस्याप्यन्यसर्वज्ञागमप्रभवम् । न चैवमनवस्थादोषानुङ्गः; बीजा-  
ङ्कुरवदनादित्वेनाभ्युपगमादागमसर्वज्ञपरम्परायाः ।

यच्चानुमानाविर्भावितत्वपक्षे सम्बन्धासिद्धेरित्युक्तम्; तदस-<sup>२०</sup>  
मीचनम्; प्रमाणान्तरात्सम्बन्धसिद्धेरभ्युपगमात् । न खलु कश्चि-  
त्तस्यागोचरोस्ति सर्वत्रेन्द्रियातीन्द्रियविषये प्रवृत्तेरन्यथा तज्जा-  
नुमानाप्रवृत्तिप्रसङ्गात्, तस्य तन्निबन्धनत्वात् ।

यच्चानुमानागमज्ञानस्य चास्पष्टत्वादित्यभिहितम्; तदप्यसमी-  
क्षिताभिधानम्; न हि सर्वथा कारणसदृशमेव कार्यं विलक्षण-<sup>२५</sup>  
स्याप्यङ्कुरादेर्बीजादेरुत्पत्तिदर्शनात् । सर्वत्र हि सामग्रीभेदात्कार-  
थभेदः । अत्राप्यागमादिज्ञानेनाभ्यासप्रतिबन्धकापायादिसामग्री-  
सहायेनासादिताशेषविशेषवैशद्यं विज्ञानमाविर्भाव्यते ।

भावनावलोक्यैशये कामाद्युपप्लुतज्ञानवत्सर्वोप्युपप्लुतत्वप्रसङ्गः;

१ नक्तञ्जरादी सर्वलक्षणे प्राप्यन्तरे च । २ परमावृतः । ३ सर्वज्ञस्य ।  
४ पुरुषस्य । ५ अशेषविशेषविषयस्पष्टज्ञान । ६ केवलात् । ७ जनैः । ८ उत्तरसर्व-  
ज्ञस्य । ९ सर्वलक्षणत्वात् । १० इन्द्रियतीन्द्रियाविषये प्रवृत्तिर्न स्यादिति । ११ सर्वज्ञे ।  
१२ आदिपदेनानुमानम् । १३ आदिपदेन देशकालादि । १४ अशेषज्ञानस्य ।

इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतो 'भावनावलाद् ज्ञानं वैशद्यमनुभवति' इत्येतावन्मात्रेण तज्ज्ञानस्य दृष्टान्तोपपत्तेः । न चाशेषदृष्टान्तधर्माणां साध्यधर्मिण्यापादनं युक्तं सकलानुमानोच्छेदप्रसङ्गात् । न चाशेषज्ञानं क्रमेणाशेषार्थग्राहीष्यते येन तत्पक्षनिक्षिप्तदोषोप-  
५ निपातः; सकलावरणपरिक्षये सहस्रकिरणवद्युगपन्निखिलार्थोद्-  
द्योतनस्वभावत्वात्तस्य कारणक्रमव्यवधानातिवर्त्तित्वाच्च ।

यच्चोक्तम्-युगपत्परस्परविरुद्धशीतोष्णाद्यर्थानामेकत्र ज्ञाने प्रतिभासासम्भवः; तदप्यसारम्; तत्र हि तेषामभावादप्रतिभासः; ज्ञानस्यासामर्थ्याद्वा ? न तावदभावात्; शीतोष्णाद्यर्थानां सकृ-  
१० त्सम्भवात् । ज्ञानस्यासामर्थ्यादित्यसत्; परस्परविरुद्धानाम-  
न्वकारोद्द्योतादीनामेकत्र ज्ञाने युगपत्प्रतिभाससंवेदनात् । सकृदेकत्र विरुद्ध्यर्थानां प्रतिभासासम्भवे 'यत्कृतकं तदित्यम्' इत्यादिव्यातिश्च न स्यात्, साध्यसाधनरूपतया तयोर्विरुद्धत्व-  
सम्भवात् । नाप्येकत्र तेषां प्रतिभासे तज्ज्ञानस्य प्रतिनियतार्थ-  
१५ ग्राहकत्वविरोधः; अन्वकारोद्द्योतादिविरुद्ध्यर्थग्राहिणोऽपि प्रतिनियतार्थग्राहकत्वप्रतीतेः ।

यच्चान्यदुक्तम्-एकक्षण एवाशेषार्थग्राहणाद्वितीयक्षणेऽहः स्यात्; तदप्यसम्भवम्; यदि हि द्वितीयक्षणेऽर्थानां तज्ज्ञानस्य चाभावस्तदाऽयं दोषः । न चैवम्, अनन्तत्वात्तद्वयस्य । पूर्वं हि  
२० भाविनोऽर्था भावित्वेनोत्पत्त्यमानतया प्रतिपक्षा न वर्त्तमानत्वेनो-  
त्पन्नतया वा । साप्युत्पन्नता तेषां भावितव्यतया प्रतिपक्षा न भूततया । उत्तरकालं तु तद्विपरीतत्वेन ते प्रतिपक्षाः । यदा हि यद्धर्मविशिष्टं वस्तु तदा तज्ज्ञाने तथैव प्रतिभासते नान्यथा विभ्रमप्रसङ्गात् इति कथं गृहीतग्राहित्वेनाप्यस्यैवप्रामाण्यम् ?

२५ यच्चोदं परस्परग्राहिसाक्षात्करणाद्रागादिमानित्युक्तम्; तद-  
प्युक्तम्; तेषापरिणामो हि 'तैत्त्वकारणं न संवेदनमात्रम्,  
अन्यथा 'मघादिकमेवंविधरसम्' इत्यादिवाक्यात्सञ्ज्ञोन्नियो  
यदा प्रतिपद्यते तदाऽस्यापि तद्रसास्वादनदोषः स्यात् । अरस-  
नेन्द्रियजत्वासंस्यादोषोयम्; इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि सर्व-

१ ग्राहोति । २ सर्वज्ञाने । ३ ज्ञेयैः । ४ भूपदद्वानावयविति । ५ भादि-  
पदेनाहिनकुण्ठादीनां च । ६ कृतकत्वमित्यतयोः । ७ अक्षयकक्षणेः । ८ भावि-  
नोऽर्थाः । ९ सर्वज्ञाने । १० उत्पत्त्यमानतादितिरूपप्रकारेण । ११ सर्वज्ञ-  
ज्ञानस्य । १२ रागादिरूपतया । १३ तत्त्वस्य रागादित्वस्य । १४ जानाति ।  
१५ मघादिज्ञानस्य । १६ सर्वज्ञानेति ।

ज्ञानमिन्द्रियप्रभवं प्रतिज्ञायते । किञ्चाङ्गनालिङ्गनसेवनाद्यमि-  
लाषस्येन्द्रियोद्रेकहेतोरविर्भावाद्वागादिमत्त्वं प्रसिद्धम् । न चासौ  
प्रक्षीणमोहे भगवत्पत्नीति कथं रागादिमत्त्वस्याशङ्कापि ।

यदप्यभिहितम्—कथं चातीतादेर्ग्रहणं तत्स्वरूपासम्भवादि-  
त्यादि; तदप्यसारम्; यतोऽतीतादेरतीतादिकालसम्बन्धित्वेना-<sup>५</sup>  
सत्त्वम्, तज्ज्ञानकालसम्बन्धित्वेन वा ? नाद्यः पक्षो युक्तः; वर्त्त-  
मानकालसम्बन्धित्वेन वर्त्तमानस्येव स्वकालसम्बन्धित्वेनातीता-  
देरपि सत्त्वसम्भवात् । वर्त्तमानकालसम्बन्धित्वेन त्वतीतादेर-  
सत्त्वमभिमतमेव, तत्कालसम्बन्धित्वेन तत्सत्त्वयोः परस्परं मेदात् ।  
न चैतत्कालसम्बन्धित्वेनासत्त्वे स्वकालसम्बन्धित्वेनाप्यतीतादेर-<sup>१०</sup>  
सत्त्वम्; वर्त्तमानकालसम्बन्धिनोऽप्यतीतादिकालसम्बन्धित्वेना-  
सत्त्वात् तस्याप्यसत्त्वप्रसङ्गात् सकलशून्यतानुषङ्गः । न चाती-  
तादेः सत्त्वेन ग्रहणे वर्त्तमानत्वानुषङ्गः; स्वकालनियतसत्त्वरूप-  
तयैव तस्य ग्रहणात् । ननु चातीतादेस्तज्ज्ञानैककाले असन्निधाना-  
त्कथं प्रतिभासः, सन्निधाने वा वर्त्तमानत्वप्रसङ्गः प्रसिद्धवर्त्त-<sup>१५</sup>  
मानवत्; इत्यपि मन्त्रादिसंस्कृतलोचनादिज्ञानेन व्याप्तिज्ञानेन  
च प्रागेव कृतोत्तरम् ।

अथोच्यते—“पूर्वं पश्चाद्वा यदि केचित्कदाचिन्निजिलदर्शिनो  
विज्ञानं विश्रान्तं तर्हि तावन्मात्रत्वात्संसारस्य कुतोऽनाद्यन-  
न्तता ? अथ न विश्रान्तं तर्हि नानेकयुगसहस्रेणापि सकलसंसा-<sup>२०</sup>  
रसाक्षात्करणम्” इति; तदप्युक्तिमात्रम्; यतः किमिदं विश्रा-  
न्तत्वं नाम ? किं किञ्चित्परिच्छेद्याऽपरस्यापरिच्छेदः, सकल-  
विषयदेशकालगमनासामर्थ्याद्वैतान्तरेऽवस्थानं वा, कचिद्विषये  
उत्पद्य विनाशो वा ? न तावदाद्यविकल्पो युक्तः; अर्नभ्युपगमात् ।  
न खलु सर्वज्ञज्ञानं क्रमेणार्थपरिच्छेदकम्, युगपदशेणार्थोद्घोत-<sup>२५</sup>  
कत्वात्तस्येत्युक्तम् । द्वितीयविकल्पोऽप्यनभ्युपगमादेवायुक्तः । न  
हि विषयस्य देशं कालं वा गत्वा ज्ञानं तत्परिच्छेदकमिति केना-  
प्यभ्युपगतम्, अप्राप्यकारिणस्तस्य कचिद्गमनाभावात् । केवलं  
यथाऽनाद्यनन्तरूपतया स्थितोऽर्थस्तथैव तत्प्रतिपद्यते । तृतीय-  
विकल्पोऽप्ययुक्तः; कचिद्विषये तस्योत्पन्नस्यात्मस्वभावतया विना-<sup>३०</sup>  
शासम्भवात् । न हि स्वभावो र्भावस्य विनश्यति स्फटिकस्य

१ नसः । २ अर्थस्य । ३ जैनानाम् । ४ तस्यातीतार्थस्य । ५ अन्यथा ।  
६ अतीतकाल । ७ वर्त्तमानज्ञानकाले । ८ उत्तरत्र । ९ अर्थे । १० सम्यगुक्तम् ।  
११ ता । १२ कसिश्चिदस्तुति । १३ जैनानाम् । १४ जैनानाम् । १५ ज्ञानस्य ।  
१६ प्रदार्पणम् ।

स्वच्छतादिवत्, अन्यथा तस्याप्यभावः स्यात् । औपाधिकमेव हि रूपं नश्यति यथा तस्यैव रक्तिमादि । कथं चैवैवैदिनो वेदस्यानाद्यनन्तताप्रतिपत्तिस्तत्राप्युक्तविकल्पानामवतारात् ? कथं वा साध्यसाधनयोः साकल्येन व्याप्तिप्रतिपत्तिः, सामान्येन व्याप्ति-  
५ प्रतिपत्तावप्यनाद्यनन्तसामान्यप्रतिपत्तावुक्तदोषानुषङ्ग एव ।

यच्चोक्तम्—‘कथं चासौ तत्कालेऽसर्वज्ञातुं शक्यते? तदपि फल्गुप्रायम्; विषयापरिज्ञाने विषयिणोऽप्यपरिज्ञानाभ्युपगमे कथं जैमिन्यादेः सकलवेदार्थपरिज्ञाननिश्चयोऽसकलवेदार्थविदोम् ? तदनिश्चये च कथं तद्व्याख्यातार्थाश्रयणादग्निहोत्रादावनुष्ठाने  
१० प्रवृत्तिः ? कथं वा व्याकरणादिसकलशास्त्रार्थापरिज्ञाने तदर्थज्ञतानिश्चयो व्यवहारिणाम् ? यतो व्यवहारप्रवृत्तिः स्यात् ।

तु निश्चितासम्भवद्व्याधकप्रमाणत्वाच्चाशेषार्थवेदिनो भगवतः सस्वसिद्धिः । न चेदमसिद्धम्; तथाहि—सर्वविदोऽभावः प्रत्यक्षेणाधिगम्यः, प्रमाणान्तरेण वा ? न तावत्प्रत्यक्षेण; तद्धि सर्वत्र  
१५ सर्वदा सर्वैः सर्वज्ञो न भवतीत्येवं प्रवर्त्तते, कचित्कदाचित्क-  
श्चिद्वा ? प्रथमपक्षे न सर्वज्ञाभावस्तज्ज्ञानवत् एवाशेषज्ञत्वात् । न हि सकलदेशकालाश्रितपुरुषपरिषत्साक्षात्करणमन्तरेण प्रत्यक्षतस्तदाधारमसर्वज्ञत्वं प्रत्येतुं शक्यम् । द्वितीयपक्षे तु न सर्वथा सर्वज्ञाभावसिद्धिः ।

२० अथ न प्रवर्त्तमानं प्रत्यक्षं सर्वज्ञाभावसाधकं किन्तु निवर्त्तमानम् । ननु कौरणस्य व्यापकस्य वा निवृत्तौ कौर्यस्य व्याप्यस्य वा निवृत्तिः प्रसिद्धा नैव निवृत्तावैव निवृत्तिरतिप्रसङ्गात् । न चाशेषज्ञस्य प्रत्यक्षं कौरणं व्यापकं वा येन तन्निवृत्तौ सर्वज्ञस्यापि निवृत्तिः । न चैवं घटाद्यमावासिद्धिः एकज्ञानसंसर्गिपदार्था-

१ जपाकुसुमादिजनितम् । २ सर्वज्ञानस्य कचिदिमान्तत्वाच्च सर्वज्ञत्वमित्येवं वादिनः । ३ वेदस्यानाद्यनन्तताग्राहकं जैमिन्यादिज्ञानं कचिदिमान्तमित्यादि । ४ किञ्च । ५ व्याप्तिविशेषतः प्रत्येतुं नायाति व्यक्तीनामानन्त्यात् । अतः सामान्येनेत्युक्तम् । ६ सामान्यमनाद्यनन्तमीदृशसामान्यस्य ग्राहकं व्याप्तिज्ञानं कचिदिमान्तं न वेत्यादि । ७ सर्वज्ञः । ८ सर्वज्ञः । ९ अर्थः । १० ज्ञानस्य । ११ अवाङ्मयः । १२ सात्मनि शुखादिवत् । १३ असदादेः । १४ अन्यादेः । १५ वृक्षत्वस्य । १६ वृमादेः । १७ शिशुपात्वस्य । १८ अकारणस्याऽव्यापकस्य वा । १९ अकार्यस्याऽव्याप्यस्य वा । २० घटनिवृत्तौ घटनिवृत्तिप्रसङ्गात् । २१ असदादेः । २२ सर्वज्ञाभावासिद्धि-प्रकारेण । कथम् ? न प्रवर्त्तमानं प्रत्यक्षं घटाभावसाधकं किन्तु निवर्त्तमानमित्युक्ते ननु कारणत्वेत्यादिग्रन्थो निवृत्तिपर्यन्तः । किन्तु सर्वज्ञपदस्याने घटपदं पठनीयम् ।

न्तरोपलम्भात् कचित्तत्सिद्धेः । न चात्राप्ययं न्यायः समानस्त-  
त्संसर्गिण एव कस्यचिद्भावत्, अन्यथा सर्वत्र तदभावविरोधो  
घटादिवत् । तत्र प्रत्यक्षेणाधिगम्यस्तदभावः ।

नाप्यनुमानेन; विवादाभ्यासितः पुरुषः सर्वज्ञो न भवति  
वक्तृत्वाद्रथ्यापुरुषवदित्यनुमाने हि प्रमाणान्तरसंवादिनोऽर्थस्य ५  
वक्तृत्वं हेतुः, तद्विपरीतस्य वा स्यात्, वक्तृत्वमात्रं वा? प्रथम-  
पक्षे विरुद्धो हेतुः, प्रमाणान्तरसंवादिसूक्ष्माद्यर्थवक्तृत्वस्याशे-  
पक्षे एव भावात् । द्वितीयपक्षे तु सिद्धसाधनम्; तथाभूतस्य  
वक्तुरसर्वज्ञत्वेनास्माभिरभ्युपगमात् । वक्तृत्वमात्रस्य तु हेतोः  
साध्यविपर्ययेण सर्वज्ञत्वेनानुपलब्धेन सह सहानवस्थानपररूप- १०  
रपरिहारस्थितिलक्षणविरोधासिद्धेस्ततो व्यावृत्त्यभावाच्च स्वसा-  
ध्यनिर्यतत्त्वं यतो गमकत्वं स्यात् । सर्वज्ञे वक्तृत्वस्यानुपलब्धे-  
स्ततो व्यावृत्तिरित्यप्यसम्यक्; सर्वसम्बन्धिनोऽनुपलम्भस्या-  
सिद्धेः, तेनैव सर्वज्ञान्तरेण वा तत्र तस्योपलम्भसम्भवात् । सर्व-  
ज्ञस्य कस्यचिद्भावात्सर्वसम्बन्धिनोऽनुपलम्भस्य सिद्धिरित्यस- १५  
ङ्गतम्, प्रमाणान्तरात्तत्सिद्धावस्य वैयर्थ्यात् । अतः सिद्धौ चैक-  
कानुपङ्गः । नापि स्वसम्बन्धिनोऽनुपलम्भात्तद्व्यतिरेकनिश्चयः,  
अस्य परचेतोवृत्तिविशेषैरनैकान्तिकत्वात् ।

न चाखिलसाधनेषु दोषस्यास्यै समानत्वाच्चिखिलानुमानो-  
च्छेदः, तत्र विपक्षव्यावृत्तिनिमित्तस्यानुपलम्भव्यतिरेकेण प्रमा- २०  
णान्तरस्य भावात् । न चात्र कार्यकारणभावः प्रसिद्धः, असर्व-  
ज्ञत्वधर्मानुविधानाभावाद्गचनस्य । यद्धि यत्कार्यं तत्तद्धर्मानुवि-  
धायि प्रसिद्धं ब्रह्मादिसामग्रीगतसुरभिगन्धार्धनुविधायिधूम-

१ भूतल । २ घटाद्यभाव । ३ सर्वज्ञेति । ४ एकज्ञानसंसर्गिपदार्थान्तरोप-  
लम्भात् कचिद् घटाभावप्रतिपत्तिलक्षणः । ५ प्रवेशस्य । ६ एकज्ञानसंसर्गिकोऽपि  
कश्चित्प्रदेशो भवेदपि । ७ आदिपदेनान्तरितं दूरम् । ८ जैनैः । ९ सर्वज्ञाभाव ।  
१० अतश्च सन्दिग्धमपि सुम्न्यावृत्तिको हेतुः । ११ वक्तृत्वमात्रस्य । १२ अविनामूत-  
त्वम् । १३ वक्तृत्वस्य । १४ प्रकृतसर्वज्ञेन । १५ प्रकृतानुमानस्य । १६ वक्तृत्वानु-  
मानस्य । १७ वक्तृत्वानुमानात्सर्वज्ञाभावसिद्धिरिति तद्वै न सर्वज्ञात्साधनस्य व्यावृत्ति-  
सिद्धिरतथ्यानुमानमिति । १८ वक्तृत्वस्य । १९ सर्वज्ञलक्षणादिपक्षाद् व्यावृत्ति-  
निश्चयः । २० अभावसाध्यसाधकानां निखिलसाधनानां पक्षेऽनुपलम्भः सर्वसम्बन्धी  
आत्मसंबन्धीवेत्याद्युक्ते असिद्धानैकान्तिकत्वलक्षणस्य । २१ यत्रास्तिनोस्ति तत्र धूमोऽपि  
नास्ति । २२ जहस्य । २३ वक्तृत्वसर्वज्ञत्वयोः । २४ वसतः । २५ वचनम-  
सर्वज्ञकार्यं न भवति तद्धर्मानुविधानाभावात् । २६ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सतीदमाह ।  
२७ यतः । २८ आदिपदेन योग्यम् ।



वत् । तथाहि असर्वज्ञत्वं सर्वज्ञत्वादन्यत्पर्युदासवृत्त्या किञ्चिज्ज्ञानमभिधीयते । न च तत्तरतमभावाद्बचनस्य तथाभावो दृश्यते तद्विप्रकृष्टमत्यल्पज्ञानेषु कृम्यादिषु, न च तत्र वचनप्रवृत्तेः प्रकर्षो दृश्यते । अथ प्रसज्यप्रतिषेधवृत्त्या सर्वज्ञत्वाभावोऽसर्वज्ञत्वं ५ तत्कार्यं वचनम्; तर्हि ज्ञानरहिते मृतशरीरादौ तस्योपलम्भप्रसङ्गो ज्ञानातिशयवत्सु चाखिलशास्त्रव्याख्यातृषु वचनातिशयोपलम्भो न स्यात् । न चैवम्, ततो ज्ञानप्रकर्षतरतमाद्यनुविधानदर्शनात्तस्य तत्कार्यता सातिशयतत्त्वादिकारणधर्मानुविधायिप्रासादादिकार्यविशेषवत् । तत्रानुमानात्तदभावसिद्धिः ।

- १० नाप्यागमात्, स हि तत्प्रणीतः, अन्यप्रणीतः, अपौरुषेयो वा तदभावसाधकः स्यात् ? तत्र यद्यागमप्रणेता सकलं सकलज्ञविकलं साक्षात्प्रतिपद्यते युक्तौ तैव प्रमाणम्, किन्तु विद्यमानोपि न प्रकृतार्थोपयोगी, तथा प्रतिपद्यमानस्य तस्यैवाशेषज्ञत्वात् । न प्रतिपद्यते चेत्, तर्हि रथ्यापुरुषप्रणीतागमवन्नासौ १५ तत्र प्रमाणम् । न ह्यविदितार्थस्वरूपस्य प्रणेतुः प्रमाणभूतागमप्रणयनं नामातिप्रसङ्गात् । द्वितीयविकल्पेऽप्येतदेव वक्तव्यम् ।

अपौरुषेयोप्यागमो जैमिन्यादिभ्यो यदि सर्वत्र सर्वदा सर्वत्राभावं प्रतिपादयेत्तर्हि सर्वस्य प्रतिपादयेत् केनचित् सह प्रत्यासत्तिविप्रकर्षविरहात् । तथा च—

- २० “विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो वाङ्मरुत विश्वतः पादौ” [ श्वेताश्वत० ३।३ ]

सं वेत्ति विश्वं न हि तस्य वेत्ता तमाहुरभ्यं पुरुषं ब्रह्मन्तम् ।” [ श्वेताश्वत० ३।१९ ] “हिरण्यगर्भे” [ ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १० सू० १२१ ] प्रकृत्य “सर्वज्ञः” इत्यादौ न न कस्यचिद्वि- २५ प्रतिपत्तिः स्यात्—“किमनेनै सर्वज्ञः प्रतिपाद्यते केनैविशेषो वा स्तूयते” इति । न खलु प्रदीपप्रकाशिते घटादौ कस्यचिद्वि- प्रतिपत्तिः—“किमयं घटः पटो वा” इति । न च खलु-

१ यदि । २ सर्वथा ज्ञानाभावः । ३ ज्ञानातिशय । ४ ययः । ५ सातिशयत्वं । ६ सर्वसकलज्ञविकलत्वे । ७ सर्वशास्त्रावलक्षणोऽर्थः । ८ सर्वशास्त्रादे । ९ रथ्यापुरुषस्य प्रमाणभूतागमप्रणेतृत्वं स्यात् । १० गीतासकेन नैयायिकादिना च । ११ प्रस्तुतः । १२ वेदनाक्येन । १३ यागलक्षणः ।

१ ‘सम्नाहृष्यां वसति सम्पत्तयैः जायाम्ली जनवन् देव दकः’ इत्युत्तरार्कस्य ।

२ ‘अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यक्षः स जृणोत्यङ्गणः’ इति पूर्वार्कस्य ।

पेऽस्याप्रामाण्यम् । अविसंवादो हि प्रमाणलक्षणं कार्ये स्वरूपे  
वार्थे, नान्यत् । यत्र सोस्ति तत्प्रमाणम् । न चाशेषज्ञाभावावेदकं  
किञ्चिद्देववाक्यमस्ति, तत्सद्भावावेदकस्यैव श्रुतेः । तन्नागमा-  
दप्यस्याभावसिद्धिः ।

नाप्युपमानात्; तत्त्वलूपमानोपमेययोरध्यक्षत्वे सति साह- ५  
इयावलम्बनमुदयमासादयति नान्यथा । न चात्रत्येदानीन्तनोप-  
मानभूताशेषपुरुषप्रत्यक्षत्वम् उपमेयभूताशेषान्यदेशकालपुरुष-  
प्रत्यक्षत्वं चाभ्युपगम्यते; सर्वज्ञसिद्धिप्रसङ्गात्, निखिलार्थप्रत्य-  
क्षत्वमन्तरेणाशेषपुरुषपरिषत्साक्षात्कारित्वासम्भवात् ।

नाप्यर्थापत्तेस्तदभावावगमः; सर्वज्ञाभावमन्तरेणानुपजायमा- १०  
नस्य प्रमाणपङ्क्तिविज्ञातस्य कस्यचिदर्थस्यासम्भवात् । वेदप्रामा-  
ण्यस्य शुण्ठपुरुषप्रणीतत्वे सत्येष भावात् । अपौरुषेयत्वस्याग्रे  
विस्तरतो निषेधात् । न चार्थापत्तिरनुमानात्प्रमाणान्तरमित्यग्रे  
वक्ष्यते । तद्वत्रापि व्योत्यादिचिन्तार्यां दोषान्तरं चापादनीयम् ।

नाप्यभावप्रमाणात्तदभावसिद्धिः; तस्यासिद्धेः, तदसिद्धिश्चा- १५  
भावप्रमाणलक्षणस्य

“प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते ।

सात्मनोऽपरिणामो वा विज्ञानं वान्यवस्तुनि ॥”

[ मी० श्लो० अभावप० श्लो० ११ ]

इत्यादेः प्रागेव विस्तरतो निराकरणात्सिद्धा । इत्यलमतिप्रसङ्गेन । २०  
न चानुमाने तत्सद्भावावेदके सत्येतत्प्रवर्त्तते—

“प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपे न जायते ।

वस्तुसत्तावधोऽर्थं तत्राभावप्रमाणता ॥”

[ मी० श्लो० अभावप० श्लो० १ ]

इत्यभिधानात् । किञ्च, अभावप्रमाणं

२५

“गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनम् ।

मानसं नास्तिताद्वानं जायतेऽक्षानपेक्षया ॥”

[ मी० श्लो० अभावप० श्लो० २७ ]

इति सामग्रीतः प्रादुर्भवति । न चाशेषज्ञनास्तिताधिकरणाखिल-  
देशकालप्रत्यक्षता कस्यचिदस्त्यतीन्द्रियार्थदर्शित्वप्रसङ्गात् । ३०

१ श्रुतिवाक्यस्य । २ प्रवर्त्तकस्य । ३ प्रमाणत्वेनावीकृतवचनादौ । ४ अभ्युप-  
गम्यते चेत्तर्हि सर्वज्ञो वेदप्रामाण्यान्यानुपपत्तेः । ५ सपक्षेऽन्वयादि । ६ विचारणा-  
यास्य । ७ आश्रयासिद्धिलक्षणादोषादन्यतसम्बन्धाप्रतिपत्त्यनवस्येतरेतत्प्रत्यक्षं दोषा-  
न्तरम् । ८ अभावप्रमाणदूषणविहारेण । ९ घटासदृशलक्षणे ।

नाप्यशेषः कश्चित्कदाचित्केनचित्प्रतिपन्नो येनासौ स्मृत्वा निवे-  
ध्येत, सर्वत्र सर्वदा तन्निषेधविरोधात् । न च निषेध्यनिषेध्याधार-  
योरप्रतिपत्तौ निषेधो नामातिप्रसङ्गात् । न ह्यप्रतिपन्ने भूतले घटे  
च घटनिषेधो घटते । यथा चाभावप्रमाणस्योत्पत्तिः स्वरूपं विषयो  
५ वा न सम्भवति तथा प्राक्प्रपञ्चेनोक्तमिति कृतमतिप्रसङ्गेन ।

तन्नाभावप्रमाणादप्यशेषज्ञाभावसिद्धिः । तदेवं सिद्धं सुनिश्चि-  
तासम्भवद्व्याधकप्रमाणत्वमप्यशेषज्ञस्य प्रसाधकम् इत्यलमतिप्र-  
सङ्गेन ।

ननु चावरणविश्लेषादशेषवेदिनो विज्ञानं प्रभवतीत्यसाम्प्रतम् ।  
१० तस्यानादिमुक्तत्वेनावरणस्यैवासम्भवादिति चेत्, तदयुक्तम् ।  
अनादिमुक्तत्वस्यासिद्धेः । तथाहि—नेश्वरोऽनादिमुक्तो मुक्तत्वा-  
त्तदन्यमुक्तवद् । बन्धापेक्षया च मुक्तव्यपदेशः, तद्रहिते  
चास्याप्यभावः स्यादाकाशवत् ।

ननु जानादिमुक्तत्वं तस्यानादेः क्षित्यादिकार्यपरम्परायाः कर्तृ-  
१५ त्वात्सिद्धम् । न चास्य तत्कर्तृत्वमसिद्धम्, तथाहि—क्षित्यादिकं  
बुद्धिमद्भेतुकं कार्यत्वात्, यत्कार्यं तद्बुद्धिमद्भेतुकं दृष्टम् यथा  
घटादि, कार्यं चेदं क्षित्यादिकम्, तस्माद्बुद्धिमद्भेतुकम् । न चात्र  
कार्यत्वमसिद्धम्, तथाहि—कार्यं क्षित्यादिकं सावयवत्वात् ।  
यत्सावयवं तत्कार्यं प्रतिपन्नम् यथा प्रासादादि, सावयवं चेदम्,  
२० तस्मात्कार्यम् ।

ननु क्षित्यादिगतात्कार्यत्वात्सावयवत्वाच्चान्यदेव प्रासादादौ  
कार्यत्वं सावयवत्वं च यदक्रियादर्शिनोपि कृतबुद्ध्युत्पादकम्,  
ततो दृष्टान्तदृष्टस्य हेतौर्धर्मिण्यभावादसिद्धत्वम्, इत्यसमीक्षिता  
भिधानम्, यतोऽर्द्युत्पन्नान्प्रतिपन्नधिरुत्यैवमुच्यते, व्युत्प-  
२५ न्नात्वा ? प्रथमपक्षे धूमादावप्यसिद्धत्वप्रसङ्गात्सकलानुमानो-  
च्छेदः । द्वितीयपक्षे तु नासिद्धत्वम्, कार्यत्वादेर्बुद्धिमत्कारण-  
पूर्वकत्वेन प्रतिपन्नाविनाभावस्य क्षित्यादौ असिद्धेः पर्वतादौ

१ सर्वशक्तज्ञाने प्रमाणोपन्यासविस्तरेण । २ भवेत्तदी सावरणो न भवति  
अनादिमुक्तत्वात् । ३ यः सावरणः सोनादिमुक्तो न भवति यथा स्तम्भादिः । ४ मुक्तो  
भवति अनादिमुक्तो भवतीति सन्निवृत्तानैकान्तिकत्वे सतीदं वक्तव्यम् । ५ ईश्वरो  
मुक्तव्यपदेशभागे न भवति बन्धरहितत्वादाकाशवत् । ६ पुरुषस्य । ७ कार्यत्वस्य  
सावयवत्वस्य च । ८ प्रासादादौ यदक्रियादर्शिनः कृतबुद्ध्युत्पादकं घटं कार्यत्वं  
सावयवत्वं वा साधनं तत् क्षित्यादौ नास्तीत्यसिद्धत्वमिति । ९ साध्यासाधनप्रतिपत्तिरहि-  
तान् । १० यथाविधौ भूतो ब्रह्मन्ते प्रतिपन्नसत्ताविवक्ष्य दाहान्तिकेऽभावात् । ११ पुः ।

धूमादिवत् । दृष्टान्तोपलब्धकार्यत्वादेस्ततो भेदे पर्वतादिधूमा-  
महानसधूमस्यापि भेदः स्यात् ।

ननु कार्यत्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेनाविनाभावोऽसिद्धः,  
अर्हं प्रभवैः स्थावरादिभिर्व्यभिचारात् ; तन्न ; साध्याभावेऽपि  
प्रवर्त्तमानो हेतुर्व्यभिचारीत्युच्यते, न च तत्र कर्त्रभावो निश्चितः ५  
केन्त्वग्रहणम् । उपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वे हि ततः कर्तुरभाव-  
निश्चयः, न च तत्तस्येध्यते ।

अथ क्षित्याद्यन्वयव्यतिरेकानुविधानोपलम्भात्तेषां नातिरि-  
क्तस्य कारणत्वकरूपना अतिप्रसङ्गात् ; तर्हि धर्माधर्मयोरपि तत्र  
कारणता न भवेत् । न च तयोरकारणतैव ; तरुतृणादीनां सुख-१०  
दुःखसाधनत्वाभावप्रसङ्गात्, धर्माधर्मनिरपेक्षोत्पत्तीनां तद-  
जाधनत्वात् । न चैवम्, न हि किञ्चिज्जागत्यस्ति वस्तु यत्साक्षा-  
त्परम्परया वा कस्यचित्सुखदुःखसाधनं न स्यात् ।

ननु क्षित्यादिसामग्रीप्रभवेषु स्थावरादिषु 'बुद्धिमतोऽभावा-  
ग्रहणं भावेऽप्यनुपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वाद्वा' इति सन्दिग्धो व्यति-१५  
रेकः कार्यत्वस्य ; इत्यप्यपेशलम् ; सकलानुमानोच्छेदप्रसङ्गात् ।  
यत्र हि वक्षेरदर्शने धूमो दृश्यते तत्र—'किं वक्षेरदर्शनमभावादनु-  
पलब्धिलक्षणप्राप्तत्वाद्वा' इत्यस्यापि सन्दिग्धव्यतिरेकत्वान्न गम-  
कत्वम् । यथा सामग्र्या धूमो जन्यमानो दृष्टत्वां नातिवर्त्तते  
इत्यन्यत्रापि समानम्—कार्यं कर्तृकरणादिपूर्वकं कथं तदतिक्रम्य २०  
वर्त्ततातिप्रसङ्गात् ।

अनुपलम्भस्तु शरीराद्यभावात् त्वसत्त्वात्, यत्र हि सशरीरस्य  
कुलालादेः कर्तृता तत्र प्रत्यक्षेणोपलम्भो युक्तोऽर्थः तु चैतर्न्यमा-  
त्रेणोपादानाद्यधिष्ठानात् प्रत्यक्षप्रवृत्तिः । न च शरीराद्यभावे  
कर्तृत्वाभावस्तस्य शरीरेणाविनाभावाभावात् । शरीरान्तररहि-२५  
तोपि हि सर्वश्चेतनः स्वशरीरप्रवृत्तिनिवृत्तीं करोतीति, प्रत्यक्षे-  
च्छावशात्तत्प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणकार्याविरोधे प्रैक्येति सोस्तु ।  
ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारता हि कर्तृत्वम् न सशरीरेतरता, घटादि-

१ ता । २ क्षिलादिगतकार्यत्वादेः (पञ्चमी) । ३ असिद्धत्वे वद्भाविते सकलानु-  
मानोच्छेदः प्रत्युत्तरमित्यर्थः । ४ मूलादिभिः । ५ ईश्वरस्य । ६ ईश्वरस्य ।  
७ कुम्भकारान्वयव्यतिरेकानुविधायिनि घटे तन्नुवाचस्य हेतुत्वं स्यात् । ८ कर्तुः ।  
९ विपक्षन्यावृत्तिः । १० पर्वते । ११ साधनस्य । १२ महानसप्रदेहे । १३ कार्यत्वे ।  
१४ दृष्टम् । १५ घटोपि कुम्भकारहेतुको न स्यात् । १६ ईश्वरस्य । १७ स्थाव-  
रादिकार्ये । १८ ज्ञानभावेन । १९ कर्तुः । २० प्रेरणात् । २१ स्थावरादेः ।

कार्यं कर्तुमजानतः-सशरीरस्यापि तत्कर्तृत्वाददर्शनात्, जानतो-  
पीच्छापाये तदनुपलम्भात्, इच्छतोपि प्रयत्नाभावे तदसम्भ-  
वात्, तत्रयमेव कारकप्रयुक्तिं प्रत्यङ्गं न शरीरेतरता ।

न च दृष्टान्तेऽनीश्वरासर्वशक्तृभिर्महानवता कार्यत्वं व्याप्तं  
५ प्रतिपन्नमित्यत्रापि तथाविधमेवाधिष्ठातारं साधयतीति विशेष-  
विरुद्धता हेतोः इत्यभिधातव्यम्, बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वमात्रस्य  
साध्यत्वात् । धूमाद्यनुमानेपि चैतत्समानम्-धूमो हि महानसादिदे-  
शासम्बन्धितार्थपार्णादिविशेषाधारेणाग्निना व्याप्तः पर्वतेपि तथा-  
विधमेवाग्निं साधयेदिति विशेषविरुद्धः । देशादिविशेषत्यागेना-  
१० श्मिमात्रेणास्य व्याप्तेर्न दोषः इत्यन्यत्रापि समानम् ।

सर्वज्ञता चास्याशेषकार्यकरणात्सिद्धा । यो हि यत्करोति स  
तस्योपादानादिकारणकलापं प्रयोजनं चावश्यं जानाति, अन्यथा  
तत्क्रियाऽयोगात्कुम्भकारादिवत् । तथा “विश्वतश्चक्षुः” [ श्वेता  
श्वतरोप० ३।३ ] इत्यागमादप्यसौ सिद्धः

१५ “द्राविमौ पुरुषौ लोके क्षौरश्चाक्षर एव च ।  
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १ ॥  
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।  
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ २ ॥”

[ भगवद्गी० १५।१६-१७ ]

२० इति व्यासवचनसङ्गावाच ।

न च स्वरूपप्रतिपादकानामप्राण्यम्, प्रमाजनकत्वस्य सङ्गा-  
वात् । प्रमाजनकत्वेन हि प्रमाणस्य प्रामाण्यं न प्रवृत्तिजनकत्वेन,  
तच्चेहस्त्येव । प्रवृत्तिनिवृत्ती तु पुरुषस्य सुखदुःखसाधनत्वा-  
ध्यवसर्गये समर्थस्यार्थित्वाद्भवतः । विधेरङ्गत्वादमीर्षो प्रामाण्यं  
२५ न स्वरूपार्थत्वात्, इत्यसत्, स्वार्थप्रतिपादकत्वेन विध्यङ्गत्वात् ।  
तथाहि-स्तुतेः स्वार्थप्रतिपादकत्वेन प्रवर्तकत्वं निन्दायास्तु  
निवर्तकत्वम्, अन्यथा हि तैर्दार्थापरिज्ञाने विहितैरतिषेधै-

१ अनिल । २ क्षिलादौ । ३ निलज्ञानेच्छाप्रयत्नवान्निषेपत्वेन । ४ धूमः ।  
५ ईश्वरे । ६ ईश्वरः । ७ अनिलः संसारी जीवसमूहः । ८ निल-ईश्वरः ।  
९ देहसम्बन्धीनि पृथिव्यादीनि । १० निलः । ११ प्रविश्य । १२ विदधाति ।  
१३ वेदवाक्यानाम् । १४ वषार्थानुभवः प्रमा । १५ वेदवाक्ये । १६ सति ।  
१७ प्रवृत्तेः । १८ वेदवाक्यानाम् । १९ वेदवाक्यानाम् । २० वेदवाक्यानां  
स्वार्थप्रतिपादकत्वेन प्रवर्तकत्वं निवर्तकत्वं वा नास्ति यदि । २१ वेदवाक्य ।  
२२ उपादेय । २३ निषिद्ध ।

विशेषेण प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा स्यात् । तथा विधिवौक्यस्यापि स्वार्थ-  
प्रतिपादनद्वारेणैव पुरुषमेरकत्वं दृष्टमेवं स्वरूपपरेष्वपि वाक्येषु  
स्यात्, वाक्यरूपताया अविशेषाद्विशेषहेतोश्चाभावात् । तथा  
स्वरूपार्थानामप्रामाण्ये “मेध्या आपो धर्मः पवित्रममेध्यमशुचि”  
इत्येवंस्वरूपापरिज्ञाने विध्यङ्गतायामविशेषेण प्रवृत्तिर्निवृत्तिः<sup>५</sup>  
प्रसङ्गः । न चैतदस्ति, मेध्येष्वेव प्रवर्तते अमेध्येषु च निव-  
र्तते इत्युपलम्भात् ।

एवं प्रमाणप्रसिद्धो भगवान् कारण्याच्छरीरादिसर्गं प्राणिनां  
प्रवर्तते । न चैवं सुखसाधन एव प्राणिसर्गोऽनुषज्यते; अदृष्टस-  
ङ्गकारिणः कर्तृत्वात् । यस्य यथाविधोऽदृष्टः पुण्यरूपोऽपुण्यरूपो<sup>१०</sup>  
वा तस्य तथाविधफलोपभोगाय तत्तापेक्षैस्तथाविधैशरीरादीन्सृ-  
जतीति । अदृष्टप्रक्षयो हि फलोपभोगं विना न शक्यो विधातुम् ।

न चादृष्टादेर्वैखिलोत्पत्तिरस्तु किं कर्तृकल्पनयेति वाच्यम्,  
तस्याप्यचेतनतयाधिष्ठात्रपेक्षोपपत्तेः । तथाहि—महद्वं चेतनाधि-  
ष्ठितं कार्यं प्रवर्ततेऽचेतनत्वात्तन्त्वादिवत् । न चासदाद्यात्मैवा-<sup>१५</sup>  
धिष्ठायकः, तस्यादृष्टपरमाण्वादिविषयविज्ञानाभावात् । न च  
(चा) चेतनस्याकर्तृत्वात्प्रवृत्तिरुपलब्धा, प्रवृत्तौ वा निष्पन्नेपि  
कार्यं प्रवर्तते विवेकशून्यत्वात् ।

तथा बार्त्तिककारेणापि प्रमाणद्वयं तत्सिद्धयेऽभ्यधायि—  
“महाभूतादि धैतकं चेतनाधिष्ठितं प्राणिनां सुखदुःखनिमित्तं<sup>२०</sup>  
रूपादिमत्त्वात्पूर्यादिवत् । तथा पृथिव्यादीनि महाभूतानि बुद्धि-  
मत्कारणाधिष्ठितानि स्वासु धारणाद्यासु क्रियासु प्रवर्तन्ते-  
ऽनित्यत्वाद्वास्यादिवत् ।” [ न्यायवा० पृ० ४६७ ]

तथोऽविद्धकर्णेन च—“तनुकरणभुवनोपादानौ चेतनाधि-  
ष्ठितानि स्वकार्यमारभन्ते रूपादिमत्त्वात्तन्त्वादिवत् ।” तथा,<sup>२५</sup>  
“हीन्निद्रयग्राह्याग्राह्यं विमर्तिमौवापन्नं बुद्धिमत्कारणपूर्वकं स्वार-

- १ किञ्च । २ प्रवृत्तिप्रतिपादकत्वं । ३ विधिवौक्यप्रकारेण । ४ शब्दार्थः ।  
५ स्वार्थप्रतिपादनद्वारेण विध्यङ्गता । ६ वेदवाक्यानाम् । ७ कारण्यात्प्रवर्तनेन ।  
८ सुखजनकः । ९ प्राणिसम्बन्धी शरीरादिसर्गः । १० प्राणिनः । ११ सुखदुःखादि-  
जनकः । १२ भगवान् । १३ सुखदुःखादिजनकान् । १४ अपि तु न भगवतः ।  
१५ जैनादिभिः । १६ प्रेरितम् । १७ प्रेरकः । १८ कारणं विना । १९ ईश ।  
२० परमाणुव्यवच्छेदार्थं महदिति पदम् । २१ पृथिव्यादि । २२ कार्यम् ।  
२३ यथा बार्त्तिककारेणाभ्यधायीति पूर्वेण सम्बन्धः । २४ परमाण्वादिकारणानि ।  
२५ क्षिप्तादिकम् ।

ममैकावयवसन्निवेशविशिष्टत्वाद् घटादिवत् । वैधर्म्येण परमाणवो यथा” [ ] ब्राह्म्यां दर्शनस्पर्शनेन्द्रियाभ्यां ग्राह्यं पृथिव्यतेः कोलक्षणं त्रिविधं द्रव्यमग्राह्यं वाय्वादिकम् । वायौ हि रूपसंस्काराभावादनुपलब्धिः रूपसंस्कारो रूपसमवायः । द्रव्यणुकादीनां त्वऽमहत्त्वात् । उक्तं च—“महत्त्वनैकद्रव्यत्वाद्व्यतिशेषार्थरूपोपलब्धिः” [ वैशे० सू० ४।१।६ ]

प्रशस्तमतिना च, “सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारोऽन्योपदेशपूर्वकः उत्तरकालं प्रबुद्धानां प्रत्यर्थनियतत्वादप्रसिद्धवाग्व्यवहाराणां कुमाराणां गवादिषु प्रत्यर्थनियतो वाग्व्यवहारो यथा १० मात्रार्थपदेशपूर्वकः” [ ] इति ।

उद्घोतकरेण च, “शुवनहेतवः प्रधानपरमाण्वदृष्टाः स्वकार्योत्पत्तावतिशयबहुबुद्धिमन्तमधिष्ठितारमपेक्षन्ते स्थित्वा प्रवृत्तेस्तन्तुतुर्यादिवत् । तथा, बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितं महाभूतादि व्यक्तं सुखदुःखनिमित्तं भवत्यचेतनत्वात्कार्यत्वाद्भिनाशित्वाद्व्यपादिम- १५ त्वाद्वा वात्सादिवत् ।” [ न्यायवा० पृ० ४५७ ] इत्यनवयवं भगवतः प्रलयकालेऽप्यलुप्तज्ञानाद्यतिशयस्य साधनम् ।

अत्र प्रतिविधीयते—साधयवत्त्वात्कार्यत्वं क्षित्यादेः प्रसाध्यते । तत्र किमिवं साधयवत्त्वं नाम ? सहायवैवैर्त्तमानत्वम्, तैर्जन्यमानत्वं वा, साधयवमिति बुद्धिविषयत्वं वा ? प्रथमपक्षे सामान्यादिनानेकान्तः, गोत्वादि सामान्यं हि सहायवैवैर्त्तते, न च कौर्यम् । द्वितीयपक्षेप्यसिद्धो हेतुः, परमाण्वाद्यवयवानां प्रत्यक्षतोऽसिद्धौ क्षित्यादेस्तत्जन्यमानत्वस्याप्यसिद्धेः । प्रत्यक्षानुपलम्भसाधनञ्च कार्यकारणभावः । द्रव्यणुकादिकं स्वपरिमाणोद्वयपरिमाणोपेतकारणारब्धं कौर्यत्वात्पटादिवदित्यनुमानात्तेषां प्रसिद्धिः, २० इत्यप्यसमीचीनम्, चेन्नकप्रसङ्गात्—परमाणुप्रसिद्धौ हि क्षित्यादे-

१ परमाणु । २ रत्नानिविशेष । ३ व्यतिरेकेण । ४ आदिपदेन द्रव्यणुकादिकम् । ५ अनेकद्रव्यत्वाद्व्यतिशेषार्थरूपोपलब्धिः स्यात्तद्वयवच्छेदार्थं महतीति पदम् । ६ महत्त्वनैकद्रव्यत्वादित्युच्यमाने वावापि रूपोपलब्धिः स्यात्तद्वयवच्छेदार्थं रूपविशेषादित्युक्तम् । ७ सृष्टिप्रारम्भे । ८ आदिपदेन तत्रादि । ९ साङ्ख्योद्देशेनास्य प्रयोगः । १० भीमासकापुरेक्षेनास्य पदस्य प्रयोगः । ११ खण्डमुण्ड-  
स्त्रावलेखत्वादित्यन्यकिमिः सह वर्त्तते । १२ मिलत्वात्तस्य । १३ द्रव्यणुकादि । ४ घटसृष्टिपण्डादौ कार्यकारणभावः प्रत्यक्षतः सिद्धो द्रव्यणुकपरमाण्वादी तु कार्यकारण-  
भावोऽनुमानादिति भावः । १५ बुद्ध्या ( व्यापकत्वान्महत्परिमाणोपेतारमनः कार्यत्वा-  
द्बुद्ध्यादेः ) व्यभिचारपरिद्वारार्थं द्रव्यत्वे सतीति विज्ञेयं द्रष्टव्यम् । १६ परमाण्वादी-  
नाम् । १७ त्रिमिरावर्त्तनं चक्रकदूषणम् ।

सौर्जन्यमानत्वलक्षणसावयवत्वसिद्धिः, तत्सिद्धौ च कार्यत्व-  
सिद्धिः, ततश्च परमाणुप्रसिद्धिरिति । महापरमाणोपेतप्रक्षिपि-  
लावयवकर्पासपिण्डोपादानेन अतिनिविडावयवाल्पपरमाणोपेत-  
कर्पासपिण्डेन अनेकान्तश्च । बलवत्पुरुषप्रयत्नप्रेरितहस्ताद्यभि-  
घातादवयवक्रियोत्पत्तेः अवयवविभागात् संयोगविनाशात् महा-  
कर्पासपिण्डविनाशः, अल्पकर्पासपिण्डोत्पादस्तु स्वारम्भकाव-  
यवकर्मसंयोगविशेषवशादेव भवति; इत्यपि विनाशोत्पादप्रक्षि-  
योद्धोर्षणमात्रम्, प्रमाणतोऽप्रतीतेः । कर्पासद्रव्यं हि महापरि-  
माणपिण्डाकारपरित्यागेनाल्पपरिमाणपिण्डाकारतयोत्पद्यमानं  
प्रमाणतः प्रतीयते । आशुत्पत्तेर्मेघानवधारणात्तथा प्रतीतिरित्य-  
प्यसङ्गतम्; सकलभावानां क्षणिकत्वानुपपन्नात् । अमेदाध्यवसा-  
यस्तु सदृशापरापरोत्पत्तिविग्रहलम्भादित्यनिवृत्तिसिद्धिर्प्रसङ्गात् ।  
नाप्यागमात्परमाण्वादिप्रसिद्धिस्तत्प्रामाण्याप्रसिद्धेः ।

सावयवमिति बुद्धिविषयत्वमपि, आत्मौदिनानैकान्तिकं तस्या-  
कार्यत्वेपि तत्प्रसिद्धेः । सार्वयवार्थसंयोगाद्विरवयवत्वेष्वस्य तद्बु-  
द्धिविषयत्वमित्यौपचारिकम्, तदप्यसङ्गतम्; तस्य निरवयवत्वे  
व्यापित्वविरोधात् परमाणुवत् । तदपि औपचारिकमेव स्यात् ।  
तदेवं सावयवत्वासिद्धेः कथं ततः क्षित्यादेः कार्यत्वसिद्धिः ?

प्रागसतः स्वकारणसमवायात्, सत्तासमवायाद्वा तत्सिद्धि-  
श्चेत्; कुतः प्राक् ? कारणसमवायाच्चेत्, तत्समवायसमये प्रागि-  
वास्य स्वरूपसत्त्वस्याभावात्, न वा ? अभावे 'प्राक्' इति विशे-  
षणमनर्थकम् । कार्यस्य हि कारणसमवायसमये स्वरूपेण सत्त्व-  
सम्भवे तद्वत्प्रागपि सत्त्वे कार्यता न स्यात् । ततः प्रागित्यर्थैव-  
त्स्यात् । प्रागिव तत्समवायसमयेष्वस्य स्वरूपसत्त्वाभावे तु  
'असतः' इत्येवामिष्टातव्यम् । न चासतः कारणसमवायः, खर-  
विषणादेरपि तत्प्रसङ्गात् । न चास्य कारणाभावाच्च तत्प्रसङ्गः;  
इत्यभिधौर्तव्यम्; क्षित्यादेरपि तदभावप्रसङ्गादसत्त्वाविशेषात् ।  
क्षित्यादेः कारणोपलम्भमात्रं दोषः; इत्यप्यसारम्; कार्यकारणयोरु-  
पलम्भे हीदमस्य कारणं कार्यं चेदमिति प्रति(वि)भागः स्यात् ।  
न च प्रत्यक्षतः क्षित्यादेरुपलम्भोऽसतस्तस्य तज्जनकत्वविरोधात् ३०

१ क्रिया । २ कथनमात्रम् । ३ पूर्वपिण्डविनाश एवोत्तरपिण्डोत्पत्तिरित्येदतया ।  
४ आशुवृत्तेः । ५ विसवादात् । ६ क्षित्यादिकं कार्यं सावयवत्वादित्यस्य । ७ आदि-  
पदेनाकाशादिना । ८ शरीरादिभूतिमग्निः । ९ परमाणु । १० इह तन्तुषु पटस-  
म्भावो यथा । ११ क्षित्यादिकार्यत्वस्य । १२ क्षित्यादिकार्यत्वस्य । १३ नासतः  
इति विशेषणम् । १४ कारण । १५ न प्रागिति । १६ पदेन त्वया ।



खरविषाणवत् । न चाजनैकं विषयैः, उँपलम्भकारणमुपैलम्भ-  
विषय इत्यभ्युपगमात् ।

प्रागसतः सत्तासम्बन्धैष्येतत्सर्वं समानम् । न समानम्; खर-  
शृङ्गादेः क्षित्यादिकार्यस्य, विशेषसम्भवात् । तच्चत्यन्ताऽसत्,  
५ क्षित्यादिकं न सँज्ञाऽप्यसत्सत्तासम्बन्धात् सत्; इत्यपि मनोर-  
थमात्रम्; सत्त्वासत्त्वयोरेकत्रैकदा प्रतिषेधविरोधात् । 'न सत्'  
इत्यभिधानात्तस्य सत्तासम्बन्धात्प्रागभावः स्यात्सत्प्रतिषेधलक्षण-  
त्वादस्य, 'नाप्यसत्' इत्यभिधानात्तु भावं; असत्त्वप्रतिषेधरूप-  
त्वात्तस्य रूपान्तराभावात् । ततोऽसदेव तदभ्युपगमर्तव्यम् ।  
१० तत्रास्य खरशृङ्गादेर्विशेषः ।

किञ्च, सत्ता सती, असती वा ? यद्यऽसती; कथं तथा बन्ध्या-  
सुतयेव सम्बन्धादेर्द्वेषां सत्त्वम् ? सती चेत्स्वतः, अन्यसत्तातो  
वा ? यदन्यसत्तातोऽनवस्था । स्वतश्चेत् पदार्थानामपि स्वत एव  
सत्त्वं स्यादिति व्यर्थं तत्परिकल्पनम् ।

१५ एतेन द्वितीयविकल्पोपपत्तिः । कार्यस्य हि स्वतः सत्त्वोपगमे  
किं तत्कल्पनया साध्यम् ? अनवस्थाप्रसङ्गात् । तदेवं कार्यत्वा-  
सिद्धेरसिद्धौ हेतुः ।

किञ्च, कथञ्चित्कार्यत्वं क्षित्यादेः, सर्वथा वा ? सर्वथा चेत्पु-  
नरप्यसिद्धत्वं द्रव्यतोऽशेषार्थानामकार्यत्वात् । कथञ्चित् चेद्वि-  
२० द्यत्वम्; सर्वथा बुद्धिमभिमिसत्त्वात्साध्यद्विपरीतस्य कथञ्चि-  
द्बुद्धिमभिमिसत्त्वस्य साधनात् ।

अनैकान्तिकं च आत्मादिभिः, तेषां बुद्धिमभिमिसत्त्वामावेपि  
तैत्सम्मवात् । कथञ्चिदप्यकार्यत्वे चैतेषां कार्यकारित्वस्याभावा-  
स्तस्याऽकर्तृरूपत्यागेन कर्तृरूपोपादानाविनाभावित्वात् । तस्या-  
२५ गोपादानयोश्चैकैकपे वस्तुन्यसम्मवात्तिसिद्धं कथञ्चित् कार्यत्वं  
तेषाम् । कर्तृत्वाकर्तृत्वरूपयोरत्मादिभ्योऽर्थान्तरत्वाच्च तद्विना-  
शोत्पादाभ्यां तेषामपि तैत्थामावो यतः कार्यत्वं स्यात्; इत्यपि

१ प्रत्यक्षज्ञानकक्षित्यादिकम् । २ असत्त्वादेवाजनकम् । ३ प्रत्यक्षज्ञान ।  
४ प्रत्यक्षकारणं प्रत्यक्षजनकमित्यर्थः । ५ प्रत्यक्षविषयः । ६ प्रागित्यादि । ७ सत्ता-  
सम्बन्धवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । ८ खरविषाण्यादेरपि सत्तासम्बन्धप्रसङ्गात् । ९ न सदित्यर्थः ।  
१० सङ्गावः । ११ परेण । १२ क्षित्यादीनाम् । १३ न वेत्यर्थः । १४ कारण-  
समवायसत्तासमवायकल्पनया । १५ द्रव्यपदार्थान्याम् । १६ कार्यत्वं । १७ कृतस-  
मित्येव । १८ नित्ये । १९ विनाशोत्पादः ।

अन्धामात्रम्; तयोस्ततोऽर्थान्तरत्वे सम्बन्धासिद्धिप्रसङ्गात् ।  
समवायादेश्च कृतोत्तरत्वादित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

बुद्धिमत्कारणमित्यत्र चै मत्वर्थस्य साध्यविशेषणस्यानुप-  
पत्तिः । बुद्धिमतो हि बुद्धिर्व्यतिरिक्ता वा, अव्यतिरिक्ता वा ? तत्र  
तस्यास्ततो व्यतिरेकैकान्ते तस्येति सम्बन्धस्याभावः । सा हि ५  
तस्य तद्गुणत्वात्, तत्समवायाद्वा, तत्कार्यत्वाद्वा, तदाधेयत्वाद्वा  
स्यात् ? न तावच्चद्गुणत्वात्सा तस्येत्यभिधार्तव्यम्; ततो व्यतिरेकै-  
कान्ते सा तस्यैव गुणो नाकाशादेरिति व्यवस्थापयितुमशक्तेः ।  
नापि तत्समवायात्; तस्यैवासम्भवात् । सम्भवे वा तस्य तौभ्यां  
भेदैकान्ते व्यवस्थापकत्वायोगात्सर्वत्राविशेषाच्च । तत्कार्यत्वात्सा १०  
तस्येति चेत्; कुतस्तत्कार्यत्वम् ? तस्मिन्सति भावार्त्तः, आकाशादौ  
प्रसङ्गः । तदभावेऽभावाच्चेन्न, नित्यव्यापित्वाभ्यां तस्य तदयो-  
गात् । तदाधेयत्वात्सा तस्येति चेत्; किमिदं तदाधेयत्वं नाम ?  
समवायेन तत्र वर्त्तनं चेत्तत्कृतोत्तरम् । तादात्म्येन वर्त्तनं चेन्न;  
अनभ्युपगमात् । सम्बन्धमात्रेण वर्त्तनं चेत्; तर्हि घटादेर्भूत-१५  
लादिगुणत्वप्रसङ्गः, सम्बन्धमात्रेण वर्त्तमानस्य तस्य तदाधेयत्व-  
सम्भवात् ।

किञ्च, व्याप्त्या तेनास्यास्तत्र वर्त्तनम्, अव्याप्त्या वा ? न  
तावद्व्याप्त्या; आत्मविशेषगुणत्वादसदादिबुद्ध्यादिवत् । परमम-  
हापरिमाणेन व्यभिचारः; इत्ययुक्तम्; तत्र विशेषगुणैत्वाभावात् । २०  
नन्वेवमसदादिबुद्ध्यादौ सकलार्थग्राहित्वाभावो दृष्टः सोऽपि तत्र  
स्यादिति चेत्; अस्तु नाम, दृष्टान्ते व्याप्तिदर्शनमात्रात्सर्वत्र  
साध्यसिद्धेर्भवताभ्युपगमात् । कथमन्यथा प्रकृतसिद्धिः ? यथा  
चासदादिबुद्धिवैलक्षण्यं तद्दुर्जेरदृष्टं परिकल्प्यते तथा घटादौ कर्म-  
कर्तृकरणनिर्वर्त्यकार्यत्वं दृष्टं वने वनस्पत्यादिषु चेतनकर्तृ- २५  
हितमपि स्यादित्येतैर्व्यभिचारो हेतोः । अथाऽव्याप्त्या; तर्हि  
वेदान्तरोत्पत्तिमत्कार्येषु कथं तस्या व्यापारः असन्निधानात् ?

१ समवायादिसम्बन्धनिराकरणविक्षरेण । २ किञ्च । ३ साध्यं कारणं तस्य विशेषणं  
बुद्धिमत् । ४ परेण योगेन । ५ बुद्धिबुद्धिमदस्यात् । ६ बुद्धिमत् इयं बुद्धिरिति ।  
७ गगनादौ समवायस्य व्यापकत्वात् । ८ चेत्तर्हि । ९ खमपि सर्वदाऽसि यतः ।  
१० सामत्येन । ११ आत्मविशेषगुणेन । १२ आकाशगुणत्वात्परममहापरिमाणस्य  
जनानाम् । आत्मा तु तेषां देहपरिमाण इति । १३ व्याप्त्या वर्त्तमानत्वप्रतिषेधे ।  
१४ ईश्वरलक्षणे बुद्धिमति । १५ नैयायिकेन । १६ बुद्धिमत्कारणत्वस्य । १७ का ।  
१८ परेण । १९ घट । २० कुम्भकार । २१ चक्रादि ।

तथापि व्यापारेऽर्हस्याप्यस्यादिदेशेऽसन्निहितस्योर्ध्वज्वलनादि-  
हेतुता स्यादिति—“अग्नेरूर्ध्वज्वलनम्” [ प्रश्न० व्यो० पृ० ४११ ]  
इत्याद्यात्मसर्वगतत्वसाधनमयुक्तम् । अव्यतिरेकैकान्ते चात्ममात्रं  
बुद्धिमात्रं वा स्यात्, तत्कथं मत्वर्थः ? न हि तदेव तेनैव  
५ तद्वञ्चति ।

किञ्च, असौ तद्बुद्धिः क्षणिका, अक्षणिका वा ? यदि क्षणिका,  
तदा तस्याः कथं द्वितीयक्षणे प्रादुर्भावः कारणत्रयाधीनत्वा-  
त्तस्य ? न चेश्वरेऽसमवायिकारणमात्ममनःसंयोगस्तच्छरीरादिकं  
च निमित्तं कारणमस्ति । कारणत्रयामावेत्थस्य ददिवुद्धिवैलक्ष-  
१० ण्यात्तस्याः प्रादुर्भावे क्षित्यादिकार्यस्य घटादिकार्यवैलक्षण्याद्बुद्धि-  
मत्कारणमन्तरेणाप्युत्पत्तिः किञ्च स्यात् ? महेश्वरबुद्धिवञ्च  
मुक्तात्मनामप्यानन्दादिकं शरीरादिनिमित्तकारणमन्तरेणाप्युत्प-  
त्त्यत इति कथं बुद्ध्यादिविकलं जडात्मस्वरूपं मुक्तिः स्यात् ?

अथाऽक्षणिका तद्बुद्धिः । नन्वत्रापि ‘क्षणिकशब्दोऽसदादि-  
१५ प्रत्यक्षत्वे सति विभुद्रव्यविशेषगुणत्वात् सुखादिवत्’ इत्यत्रानु-  
मानेऽनयैव हेतोरनेकान्तोऽस्या इव विभुद्रव्यविशेषगुणत्वेऽन्य-  
स्यासदादिप्रत्यक्षत्वेपि नित्यत्वसम्भवात् । तथा ‘क्षणिका  
महेश्वरबुद्धिर्बुद्धित्वादसदादिवुद्धिवत्’ इत्यनुमानविरोधश्च ।  
अथ बुद्धित्वाविशेषेपि ईशासदादिवुद्धयोरक्षणिकत्वेतरलक्षणो  
२० विशेषः परिकल्प्यते तथा घटादिक्षित्यादिकार्ययोरप्यकर्तृकर्तृ-  
पूर्वकत्वलक्षणो विशेषः किञ्चेज्यते ? तथा च कार्यत्वादिहेतोर-  
नेकान्तः । तदेवं बुद्धिमत्त्वासिद्धेः कथं तत्कारणत्वेन कार्यत्वं  
व्याप्येत ?

अस्तु वाऽविचारितरमणीयं बुद्धिमत्कारणत्वव्याप्तं कार्यत्वम् ;  
२५ तथाप्यत्र यादृग्भूतं बुद्धिमत्कारणत्वेनाऽभिनवकूपप्रासादादौ  
व्याप्तं कार्यत्वं प्रमाणतः प्रसिद्धं यदक्रियावर्तिनोपि जीर्णकूपप्रा-  
सादादौ लौकिकेतरयोः कृतबुद्धिजनकं तादृग्भूतस्य क्षित्यादाव-  
सिद्धेरसिद्धौ हेतुः । सिद्धौ वा जीर्णकूपप्रासादादाविवाऽ-

१ शुद्धतल । २ अग्नेरूर्ध्वस्थितगन्धादि, तस्य शुभपचनं मोक्षदेवदत्तादृष्टेनेति ।  
३ नैयायिकमते आत्मनः सर्वगतत्वात्तद्गुणोऽदृष्टमपि सर्वगतमेवातो देशान्तरे कालान्तरे  
चाक्षपाकपटमुक्ताफलादीन् तद्भोक्तृदेवदत्तादृष्टं तत्र गत्वा सहकारिभूयोत्पादयति ।  
४ समवाय्यसमवायिनिमित्तसिद्धिः । ५ समवायिकारणं त्वात्मास्ति । ६ नैयायिकमते ।  
७ अक्षणिकबुद्धिपक्षेति । ८ परममहापरिमाणेन व्यभिचारपरिहारार्थमेतत् । ९ परः ।  
१० इतरः परीक्षकः ।

क्रियादर्शिनोपि कृतबुद्धिप्रसङ्गः । न च प्रकृत्याऽत्यन्तमिन्नोपि धर्मः शब्दमात्रेणामेदी हेतुत्वेनोपादीयमानोऽभिमतसाध्यसिद्धये समर्थो भवत्यन्यत्राप्यस्याविरोधेनाशङ्काऽनिवृत्तेः । यथा वल्लीके धर्मिणि कुम्भकारकृतत्वसिद्धये मृद्विकारत्वमात्रं हेतुत्वेनोपादीयमानम् । ५

नन्वेतत्कार्यसमं नाम जात्युत्तरम् । तदुक्तम्—“कार्यत्वान्यत्व-  
लेशेन यत्साध्यासिद्धिदर्शनं तत्कार्यसमम्” [ ] इति ।  
अस्य चासदुत्तरत्वाभ्रातः प्रकृतसाध्यसिद्धिप्रतिबन्धोऽन्यथा  
सफलानुमानोच्छेदः । शब्दानित्यत्वे हि साध्ये किं घटादिगतं  
कृतकत्वं हेतुत्वेनोपादीयते, किं वा शब्दगतम्, उभयगतं वा ? १०  
प्रथमपक्षे हेतोरसिद्धिः, न ह्यन्यगतो धर्मोऽन्यत्र वर्तते । द्वितीये  
तु साधनविकल्पो दृष्टान्तः । तृतीयेऽप्युभयदोषानुपपन्नः, इत्यभ्य-  
सारम् ; कारणमात्रजन्यतालक्षणस्य कृतकत्वस्य विपक्षे बाधकप्र-  
माणबलादनित्यत्वमात्रव्याप्तत्वेनाऽवधारितस्य शब्देऽप्युपलम्भात्  
तत्रोक्तबुधण्यासदुत्तरत्वाज्जात्युत्तरत्वम् । न चैवं कार्यसामान्यं १५  
बुद्धिमत्कारणत्वमात्रव्याप्तं क्षित्यादावुपलभ्यते, विपक्षे बाधक-  
प्रमाणाभावेन सन्दिग्धानैकान्तिकत्वात्तस्य, अन्यथाऽक्रियादर्शि-  
नोपि कृतबुद्धिप्रसङ्गः । यदि च घटादिलक्षणं विशिष्टकार्यं  
तन्मात्रव्याप्तं प्रतिपद्याऽविशिष्टकार्यस्यापि क्षित्यादेस्तत्पूर्वकत्वं  
सौप्यते, तर्हि पृथ्वीलक्षणभूतस्य रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वं प्रतिपद्य २०  
भूतत्वादेव वायोरपि तत्साध्यताम् । अथाऽत्र प्रत्यक्षादिप्रमाण-  
बाधः, सोऽन्यत्रापि समानः ।

१ क्षित्यादौ । २ समानेन । ३ कार्यत्वशब्देन । ४ बुद्धिमत्हेतुकत्वम् । ५ विप-  
क्षेऽबुद्धिमत्हेतुकत्वादौ । ६ कृतबुद्ध्युत्पादकरूपस्य कार्यस्य । ७ क्षित्यादिकं घटादिवद्  
बुद्धिमत्हेतुर्न तर्वादिबद्बुद्धिमत्हेतुर्न वेलाशङ्का । ८ वल्लीकः कुम्भकारकृतो भवति  
मृद्विकारवाद् घटादिवत् । ९ पूर्वोक्तम् । १० नेदलेख. स कीदृश. कृतबुद्धयनुत्पा-  
दकः । ११ बुद्धिमत्हेतुकत्वम् । १२ कार्यसमजात्युत्तरात् । १३ घटादिगतकृतत्वस्य  
शब्देऽभावात् । १४ शब्दगतकृतत्वस्य घटादावभावात् । १५ नित्ये । १६ यत्रिलं  
नत्र कृतं यथाकाशमिति ज्ञानवशत् । १७ बुद्धिमत्कारणरहिते तर्वादौ । १८ बुद्धि-  
मत्कारणरहिते तर्वादौ कार्यसामान्यं वर्तते बुद्धिमत्कारणरहिते घटादौ च कार्यसामान्यं  
वर्तते । तत्किं बुद्धिमत्हेतुकमबुद्धिमत्हेतुकं वेति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वम् । १९ कार्य-  
त्वम् । २० विपक्षे गणक प्रमाण यदि स्यात् । २१ क्षित्यादौ । २२ दृष्टान्ते इव ।  
२३ अक्रियादर्शिनोपि कृतबुद्ध्युत्पादकत्वमात्रव्याप्तम् । २४ अक्रियादर्शिन. कृत-  
बुधनुत्पादकस्य । २५ परेण । २६ क्षित्यादौ बुद्धिमत्हेतुपूर्वकत्वेपि ।

यद्युक्तम्-व्युत्पन्नप्रतिपत्तूणां नासिद्धत्वं कार्यत्वादेः; तद्व्यु-  
 युक्तम्, यतः प्रतिबन्धप्रतिपत्तिलक्षणा व्युत्पत्तिस्तेषाम्, तद्व्यति-  
 रिक्ता वा स्यात्? प्रथमपक्षे क्षित्यादिगतकार्यत्वादौ प्रकृतसाध्य-  
 साधनाभिप्रेते व्युत्पत्त्यसम्भवः, यथोक्तसाध्यव्याप्तस्य तत्र तस्या-  
 ५ भावात् । भावे वा सशरीरस्यासदादीन्द्रियग्राह्यस्यानित्यबुद्ध्यादि-  
 धर्मकलापोपेतस्य घटादौ तद्व्यापकत्वेन प्रतिपन्नस्यात्र ततः  
 सिद्धिः । न खलु हेतुव्यापकं विहाया व्यापकस्यात्यन्तविलक्षण-  
 साध्यधर्मस्य धर्मिणि प्रतिपत्तौ हेतोः सामर्थ्यम् । कारणमात्र-  
 प्रतिपत्तौ तु सिद्धसाध्यता ।

- १० ननु बुद्धिमत्कारणमात्रं ततस्तत्र सिध्यत्पक्षधर्मताबलाद्विशिष्ट-  
 विशेषाधारमेव सेत्स्यति, निर्विशेषस्य सामान्यस्यासम्भवात्,  
 घटादौ प्रतिपन्नस्य चासदादेस्तन्निर्माणासामर्थ्यात् । नन्वेवं  
 क्षित्यादौ बुद्धिमत्कारणत्वासिद्धिरेव स्यादसदादेस्तन्निर्माणा-  
 सामर्थ्यादन्यस्य च हेतुव्यापकत्वेन कदाचनान्यप्रतिपत्तेः खरवि-  
 ५ षाणवत्, निराधारस्य च सामान्यस्यासम्भवात् । न हि गोत्वा-  
 धारस्य खण्डादिव्यक्तिविशेषस्यासम्भवे तद्विलक्षणमद्विष्याद्या-  
 भितं गोत्वं कुतश्चित्प्रसिध्यति ।

अस्मादृशान्यादृशविशेषपरित्यागेन कर्तृत्वमात्रानुमाने च  
 चेतनेतरविशेषत्यागेन कारणमात्रानुमानं किन्नानुमन्यते? धूम-  
 ० मात्रात्पावकमात्रानुमानवत् । यादृशमेव हि पावकमात्रं पैङ्गल्या-  
 दिधर्मोपेतं कण्टाक्षविक्षेपकादित्वापाण्डुरत्वादिधर्मोपेतधूममा-  
 त्रस्य प्रत्यक्षानुपलम्भप्रमाणजनितोद्वाक्यप्रमाणात्सर्वोपसंहारेण  
 व्यापकत्वेन महानसादौ प्रतिपन्नं तादृशस्यैवान्यत्रोप्यतोनुमानं  
 नात्यन्तविलक्षणस्य, व्यक्तिसम्बन्धित्वमात्रस्यैव मेदात् । न च  
 ५ व्यक्तीनामप्यात्यन्तिको मेदो महानसादिवदन्यासामपि दृश्यते-  
 योपगमात् । न च कार्यविशेषस्य कर्तृविशेषमन्तरेणानुपलम्भात्  
 तन्मात्रमपि कर्तृविशेषानुमापकं युक्तम्, तस्य कारणत्वमात्रेणैवा-  
 विनाभावनिश्चयात्, धूममात्रस्याग्निमात्रेणाविनाभावनिश्चयवत् ।

- १ प्रतिबन्धोऽविनाभावः । २ अक्रियादक्षिणोपि कृतबुद्ध्युत्पादकलक्षणं ।  
 ३ क्षित्यादौ । ४ कार्यत्व । ५ क्षित्यादौ । ६ अशरीरसर्वशतित्वज्ञानत्वादिलक्षण ।  
 ७ प्रोक्तक्षित्यादिके । ८ वस । ९ क्षित्यादि । १० सर्वशत्वादिवर्गकलापोपेतसेधरस्य ।  
 ११ कार्यत्वेति । १२ नेत्रादि । १३ परोक्ष । १४ स्वीकारेण । १५ पर्वतादौ ।  
 १६ अकलस्य । १७ महानसाख्य । १८ पर्वतादिरूपव्यक्तीनाम् । १९ उभयत्र ।  
 २० अक्रियादक्षिणः कृतबुद्ध्युत्पादकलक्षणस्य । २१ बुद्धिसद्वैलक्षण्य । २२ कार्य-  
 मात्रम् । २३ कार्यमात्रस्य ।

घटादिलक्षणकार्यविशेषस्य तु कारणविशेषेणाभिनाभावावस्यमः चान्द्रनादिधूमविशेषस्याग्निविशेषेणाविनाभावावगमवत् । तथापि कार्यमात्रस्य कारणविशेषानुमापकत्वे धूमादिकार्यविशेषस्य महान-सादौ तत्कालवन्धविनाभावोपलम्भाद् धूमघटिकादौ तन्मात्रं तत्कालवन्धानुमापकं स्यात् । अथ तत्र तत्कालवन्धानुमाने प्रत्य-<sup>५</sup>क्षविरोधः; सोऽकृष्टजाते भूरुहादौ कर्त्रेऽनुमानेऽपि समानः । तत्कर्तृरतीन्द्रियत्वात्तदविरोधे धूमघटिकादौ बह्वेभ्यतीन्द्रिय-त्वात्सोऽस्तु । भास्वरूपसम्बन्धवयविद्रव्यत्वान्नातीन्द्रियत्वं तस्येति चेत्; एतदेव कुतोऽवसितम् ? महानसादौ तथाभूतस्या-स्योपलम्भाच्चेत्; तर्हि क्षित्यादिकर्तुः शरीरसम्बन्धिनोऽतीन्द्रि-<sup>१०</sup>यत्वं भा भूत्कुम्भकारादौ तस्यानुपलम्भात् ।

ननु वृक्षशाखाभङ्गादौ पिशाचादिः, स्वशरीरावयवभेदेन चात्माऽशरीरोऽपि कर्त्तापलम्बः; इत्यप्यसुन्दरम् । पिशाचादेः शरीरसम्बन्धरहितस्य कार्यकारित्वानुपपत्तेर्मुक्तात्मवत् । तत्सम्बन्धेनैव हि कुम्भकारादौ कार्यकारित्वं दृष्टं नान्यथा । तत्सम्ब-<sup>१५</sup>न्धोपेगमे चास्य दृश्यत्वप्रसङ्गः कुम्भकारादिवत् । तच्छरीरस्य दृश्यत्वाद्दृश्योऽसौ न पिशाचादिर्विपर्ययादिति चेत्; ननु शरीर-त्वाविशेषेऽपि यथासदादिशरीरविलक्षणं तच्छरीरमभ्युपगम्यते तथा घटादिकार्यविलक्षणं भूरुहादिकार्यं कार्यत्वाविशेषेण्यभ्युप-गम्यताम् । तथा चानेन प्रकृतो हेतुर्व्यभिचारी । तथासदादेः<sup>२०</sup> शरीरसम्बन्धमात्रेणैव तदवयवानां प्रेरकत्वोपपत्तेर्नापरशरीर-सम्बन्धस्तत्रोपयोगी 'तत्सम्बन्धमन्तरेण हि चेतनस्य स्वशरीरा-वयवेष्वन्यत्र वा कार्यकारित्वं नास्त्यनुपलम्भात्' इत्येतावन्मात्र-मेव नियम्यत इति मद्देश्वरस्यापि शरीरसम्बन्धेनैव कर्तृत्वमभ्यु-पगन्तव्यम् ।

तच्छरीरं च तत्कृतं यच्च अभ्युपगम्यते; तर्हि शरीरान्तरं तस्या-भ्युपगन्तव्यमित्यनवस्थातः प्रकृतकार्यं तस्याऽव्यापारोऽपरापर-शरीरविवर्त्तनेऽप्योपक्षीणशक्तिकत्वात् । तदनिष्ठाद्यं चेत्; तत्किं कार्यम्, नित्यं वा ? प्रथमपक्षे तेनैव हेतोर्व्यभिचारस्तस्य कार्य-त्वेऽप्यबुद्धिमत्पूर्वकत्वात् । बुद्धिमत्कारणान्तरपूर्वकत्वे चानवस्था,<sup>२५</sup> तच्छरीरस्याप्यपरबुद्धिमत्कारणान्तरपूर्वकत्वात् । नित्यं चेत्;

१ कार्यविशेषस्य कारणविशेषेण न्यासिषिष्यवति । २ गोपालघटिकादौ । ३ गोपालघटिकादौ । ४ असादापात्या । ५ परेण । ६ ईश्वरस्य । ७ भूरुहादिना । ८ अनवयवभेदे । ९ अवयवभेदे । १० तर्हि । ११ परेण । १२ हि । १३ परेण । १४ क्षित्यादिकार्ये ।

तर्हि तच्छरीरस्य शरीरत्वाविशेषेपि नित्यत्वलक्षणः स्वभावाति-  
क्रमो यथाभ्युपगम्यते, तथा भूरुहादेः कार्यत्वे सत्यप्यकर्तृपूर्वक-  
त्वलक्षणोप्यभ्युपगम्यताम् इति स एव तैव्यभिचारः कार्य-  
त्वादेः । तन्न प्रतिबन्धप्रतिपत्तिलक्षणा व्युत्पत्तिस्तेषाम् ।

५ अथ तद्व्यतिरिक्ता व्युत्पत्तिः; सा सैदुरागमाहितवासनावतां  
भवतु, न पुनस्तावन्मात्रेण कार्यत्वादेः साध्यं प्रति गमकत्वम् ।  
अन्यथा वेदे मीमांसकस्य वेदाध्ययनवाच्यत्वादेरपौरुषेयत्वं प्रति  
गमकत्वं स्यात् ।

यच्चोक्तम्-‘साध्याभावेपि प्रवर्त्तमानो हेतुर्व्यभिचारीत्युच्यते ।  
१० न च तत्र कर्त्रभावो निश्चितः किन्त्वग्रहणम्’ इति; तदुक्तिमात्रम्;  
प्रमाणाविषयत्वेपि स्थावरादौ कर्त्रभावानिश्चये गगनादौ रूपाद्य-  
भावानिश्चयः स्यात् । तत्र रूपादीनां बाधकप्रमाणसङ्गावेनाभाव-  
निश्चये अत्रापि तथा कर्त्रभावनिश्चयोस्तु । न चोस्यानुपलब्धि-  
लक्षणप्राप्तत्वादभावानिश्चयः; शरीरसम्बन्धेन हि कर्तृत्वं नान्यथा  
१५ मुक्तात्मवत्, तत्सम्बन्धे चोपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वप्रसङ्गः कुम्भ-  
कारादिषु । तस्य हि शरीरसम्बन्ध एव दृश्यत्वं नान्यत्,  
स्वरूपेणात्मनोऽदृश्यत्वात् पिशाचादिशरीरवत् । तच्छरीरस्या-  
दृश्यत्वोपगमे च किञ्चित्कार्यमप्यबुद्धिपूर्वकं स्यादित्युक्तम् ।

यत्तुक्तम्-क्षित्याद्यन्वयव्यतिरेकानुविधानाच्चेपामेव कारणत्वे  
२० धर्माधर्मयोरपि तन्न स्यात्; तन्न सूक्तम्; जगद्वैचित्र्यान्यथानु-  
पपत्त्या तयोस्तत्कारणत्वप्रसिद्धेः । भूम्यादेः खलु सकलकार्यं  
प्रति साधारणत्वात् अदृष्टाख्यविचित्रकारणमन्तरेण तद्वैचित्र्या-  
नुपपत्तिः सिद्धा ।

यदप्युक्तम्-तत्र बुद्धिमतोऽभावादग्रहणं भावेप्यनुपलब्धिल-  
२५ क्षणप्राप्तत्वाद्धेति सन्दिग्धव्यतिरेकित्वे सकलानुमानोच्छेदः ।  
यथा सामान्या धूमादिर्जन्यमानो दृष्टस्तां नातिवर्त्तत इत्यन्यत्रापि  
समानम्; तदप्युक्तम्; यौहग्मूतं हि घटादिकार्यं यादृग्भूतसा-  
मैत्रीप्रभवं दृष्टं तौहग्भूतस्यैव तदतिक्रमाभावो नान्यादविधस्य  
धूमादिवदेवेत्युक्तं प्राक् ।

१ अनिलत्वरूपसमावस्य । २ पूर्वोक्त एव । ३ स्थावरादिभिः । ४ भूरुहादीनाम् ।  
५ व्युत्पन्नानाम् । ६ वीग । ७ परेण । ८ कर्तुः । ९ कर्तुः । १० ईश्वरस्य ।  
११ अशरीरत्वात्तस्य । १२ ईश्वर । १३ अकिंवादिभिः-कृतबुद्ध्यादिकम् ।  
१४ चक्रादिरूप । १५ कार्यस्य ।

यच्चेदमुक्तम्-ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारता हि कर्तृता न सशरी-  
रेतरता; इत्यप्यसङ्गतम्: शरीरमावे तदाधारत्वस्याप्यसम्भवा-  
न्मुक्तात्मवत् । तेषां खलूत्पत्तौ आत्मा समवायिकारणम्, आत्म-  
मनःसंयोगोऽसमवायिकारणम्, शरीरादिकं निमित्तकारणम् ।  
न च कारणत्रयाभावे कार्यात्पत्तिरनभ्युपगमात् । अन्यथा मुक्ता-<sup>५</sup>  
त्मनोपि ज्ञानादिगुणोत्पत्तिप्रसङ्गात् “नवानां गुणनामत्यन्तो-  
च्छेदो मुक्तिः” [ ] इत्यस्य व्याघातः । निमि-  
त्तकारणमन्तरेणाप्येवामुत्पत्तौ च बुद्धिमत्कारणमन्तरेणाप्यङ्कु-  
रादेः किं नोत्पत्तिः स्यात् ? नित्यत्वाभ्युपगमात्तेषामदोषोयमित्य-  
युक्तम्; प्रमाणविरोधात् । तथाहि-नेश्वरज्ञानादयो नित्यास्तत्त्वा-<sup>१०</sup>  
दस्यदादिज्ञानादिवत् । तज्ज्ञानादीनां दृष्टस्वभावातिक्रमे भूस्वहादी-  
नामपि स स्यात् ।

न चाऽचेतनस्य चेतनानधिष्ठितस्य चास्यादिवत्प्रवृत्त्यसम्भ-  
वात्, सम्भवे वा निरभिप्रायाणां देशादिनियमाभावप्रसङ्गात्  
तदधिष्ठातेश्वरः सकलजगदुपादानादिज्ञाताभ्युपगन्तव्यः इत्य-<sup>१५</sup>  
भिधायितव्यम्; तज्ज्ञत्वेनास्याद्याप्यसिद्धेः । न चास्य तत्कर्तृत्वादेव  
तज्ज्ञत्वम्; इतरेतराश्रयानुपपन्नात्-सिद्धे हि सकलजगदुपादा-  
नाद्यभिज्ञत्वे तत्कर्तृत्वसिद्धिः, तत्सिद्धौ च तदभिज्ञत्वसिद्धिः ।  
अचेतनबद्धेतनस्यापि चेतनान्तराधिष्ठितस्य विष्टिकर्मकरादिवत्  
प्रवृत्त्युपलम्भात्, महेश्वरेष्यधिष्ठात् चेतनान्तरं परिकल्पनीयम् ।<sup>२०</sup>  
स्वामिनोऽनधिष्ठितस्यापि प्रवृत्त्युपलम्भोऽङ्कुरोत्पन्नाङ्कुराद्युपादाने  
समानः । घटाद्युपादानस्यानधिष्ठितस्याप्रवृत्त्युपलम्भात् तथाङ्कुरा-  
द्युपादानस्यापि कल्पने विष्टिकर्मकरादेः स्वाम्यनधिष्ठितस्याप्रवृ-  
त्तेर्महेश्वरेपि तथा स्यात्, तथा चानवस्था । चेतनस्याप्यपर-  
चेतनाधिष्ठितस्य प्रवृत्त्यभ्युपगमे च ‘अचेतनं चेतनाधिष्ठितम्’<sup>२५</sup>  
इत्यत्र प्रयोगोऽचेतनमिति धर्मिविशेषणस्याचेतनत्वादिति हेतो-  
श्चापार्थकत्वम्, एवं चच्छेद्याभावात् । स्नेहेतुंप्रतिनिर्येमाञ्च अचेत-  
नस्यापि देशादिनियमो ज्यायान्, तस्य मैवताप्यवश्याभ्युपग-  
मनीयत्वात्, अन्यथा सर्वत्र सर्वदा सर्वकार्याणामुत्पत्तिः स्यात्,  
चेतनस्याधिष्ठानुर्नित्यव्यापित्वाभ्यां सर्वत्र सर्वदा सन्निधानात् ।<sup>३०</sup>

१ अन्यस्य । २ अमेरितस्य । ३ ज्ञानशक्त्यानां ( कारणानां ) । ४ परेण ।  
५ पाल्नि टोली इति वा लोके ख्याता संस्कृते च छिन्निरेति । ६ तर्हि । ७ चेतनस्य ।  
८ फलानावात् । ९ स्वस्य कार्यस्य । १० उपादानकारण । ११ अदृष्टादेः ।  
१२ युक्त इत्यर्थः । १३ योगेन ।



न च कारकशक्तिपरिज्ञानाविनाभावि तत्प्रयोक्तृत्वम्, तस्या-  
नेकधोपलम्भात् । किञ्चित्खलुपादानाद्यपरिज्ञानेपि प्रयोक्तृत्वं  
दृष्टम्, यथा स्वापमदमूर्च्छाद्यवस्थायां शरीरावयवानाम् । किञ्चि-  
त्पुनः कतिपयकारकपरिज्ञाने, यथा कुम्भकारादेः करादिव्या-  
५ पारेण दण्डादिप्रयोक्तृत्वम् । न खलु तस्याखिलकारकोपल-  
म्भोस्ति, धर्माधर्मयोस्तद्धेतुभूतयोरनुपलम्भात् । उपलम्भे वा  
तयोर्देशादिनिघतेषु कार्यविवेकव्याघातो न स्यात्, सर्वश्चाऽ-  
तीन्द्रियार्थदर्शी स्यात् । न हि कश्चित्तादृशो बुद्धिमानस्ति यो न  
किञ्चित्करोति कार्यं वा तादृशं विद्यते यत्राऽदृष्टं नोपयुज्यते ।  
१० कारणशक्तेऽस्तीन्द्रियत्वाच्चदपरिज्ञानं सर्वप्राणिनां सुप्रसिद्धम् ।  
यथास्थानं चास्याः सद्भावो निवेदितः । अन्येषु शरीराऽनायासतो  
वागव्यापारमात्रेण, यथा स्वामिनः कर्मकरादिप्रयोक्तृत्वम् । अस्तु  
वा कारकप्रयोक्तृत्वस्य परिज्ञानेनाविनाभावः, तथाप्यशरीरेष्वरे  
तस्यासम्भवः, सर्वत्र शरीरसम्बन्धे सत्येवावधोपलम्भात् ।

- १५ यदप्यन्यथायि-बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वमात्रस्य साध्यत्वाच्च  
विशेषविरुद्धता कार्यत्वस्य, अन्यथा धूमाद्यनुमानोच्छेदः, तदप्य-  
भिधानमात्रम्, कार्यमात्राच्च कारणमात्रानुमाने विशेषविरुद्ध-  
ताऽसम्भवस्तस्य तेन व्याप्तिप्रसिद्धेः, न पुनर्बुद्धिमत्कारणानुमाने  
तस्य तेनैव व्याप्तेः प्रतिपादितत्वात् । व्याप्तौ वा अनीश्वरसर्वज्ञत्वा-  
२० दिधर्मकलापोपेत एव कर्त्ता सिद्धोत्, तथाभूतेनैव घटादौ  
व्याप्तिप्रसिद्धेः, न पुनरीश्वरत्वादिविरुद्धधर्मोपेतैः, तस्यै तद्व्याप-  
कत्वेन स्वप्नेप्यप्रतिपत्तेः । तथाप्यस्यै तं प्रति गमकत्वे महानस-  
प्रदेशे बन्धिव्याप्तौ धूमः प्रतिपन्नो गिरिशिखरादौ प्रतीयमानो  
बन्धिविरुद्धधर्मोपेतोदकं प्रति गमकः स्यात् । धूमाद्यनुमानोच्छे-  
२५ दासम्भवश्च प्राक्प्रवर्त्तनेन प्रतिपादितः ।

यच्चान्यदुक्तम्-‘सर्वज्ञता चाशेषकार्यकारणात्’ इत्यादि, तदप्य-  
युक्तम्; कार्यकारित्वस्य कारणपरिज्ञानाविनाभावासम्भवस्योक्त-  
त्वात् । एकस्याशेषकार्यकारिणो व्यवस्थापकप्रमाणाभावात्,  
कार्यत्वादेश्च कृतोत्तरत्वात्कथमतः सर्वज्ञतासिद्धिः ?

- १ प्रेरकत्वम् । २ प्रेरकत्वम् । ३ प्रेरकत्वम् । ४ तस्य घटादिकार्यस्य । ५ असा-  
दृष्टेर्देवं कार्यं भवसेवेदं न भवसेवेतीच्छा । ६ न च तथा । ७ नेति संभवः ।  
८ प्रयोक्तृत्वम् । ९ विशेषविरुद्धताया असम्भवो न च । १० कार्यत्वस्य । ११ बुद्धि-  
मत्कारणपूर्वकत्वेन । १२ क्षित्वादी । १३ कर्त्ता । १४ ईश्वरसर्वज्ञत्वादिवर्मेकलापो-  
पेतसाध्यस्य । १५ कार्यत्वस्य । १६ कार्यत्वस्य । १७ ईश्वरसर्वज्ञत्वादिवर्मेकलापोपेत-  
साध्यं प्रति । १८ विस्मरेण ।

यच्चोक्तम्-‘तथा विश्वतश्चक्षुः’ इत्यागमादप्यसौ सिद्धः, तदप्युक्तिमात्रम्; अन्योन्याश्रयानुषङ्गात्-प्रसिद्धप्रामाण्यो ह्यागमस्तत्प्रसाधको नान्यथातिप्रसङ्गात् तैस्तत्प्रामाण्यप्रसिद्धौ महेश्वरसिद्धिः, तत्सिद्धौ च तत्प्रणीतत्वेनागमप्रामाण्यप्रसिद्धिः । अन्येश्वरप्रणीतागमात्तत्सिद्धौ तस्याप्यन्येश्वरप्रणीतागमात्सिद्धावी-  
श्वरागमानवस्था । पूर्वेश्वरप्रणीतागमात्तत्सिद्धौ परस्परश्रयः । स्वप्रणीतागमात्तत्सिद्धौ चान्योन्यसंश्रयः । नित्यस्य त्वागमस्य परैः प्रामाण्यं नेष्यते महेश्वरकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात्, प्रामाण्यस्योत्पत्तौ ब्रह्मैवैश्वरसद्भावस्याकिञ्चित्करत्वात् ।

यदप्युक्तम्-कारण्याच्छरीरादिसर्गे प्राणिनां प्रवर्तते, तद-  
प्युक्तम्; सुखोत्पादकस्यैव शरीरादिसर्गस्योत्पादकस्य प्रसङ्गात् । न हि करुणावतां यातनाशरीरोत्पादकत्वेन प्राणिनां सुखोत्पादकत्वं युक्तम् । धर्माधर्मसहकारिणः कर्तृत्वात्सुखदुःखस्याप्युत्पादकोऽसौ, फलोपभोगेन हि तयोः प्रक्षयादपवर्गः प्राणिनां स्यात् इति करुणयापि तद्विधाने प्रवृत्त्यविरोधः; इत्य-  
प्यसङ्गतम्; तयोरीश्वरानाद्यसत्त्वे कार्यत्वे च आप्यामेव कार्यत्वादेरनैकान्तिकत्वप्रसङ्गात्, तदुत्पत्तौ तस्याव्यापारे च विनाशोप्यव्यापारोस्तु, कारणान्तरोत्पन्नसुखदुःखलक्षणफलोपभोगेनानयोः प्रक्षयसम्भवात् । न हीश्वरस्यापि तत्फलोत्पादनादन्यस्तयोः क्षयकर्तृत्वम् ।

२०

किञ्च, धर्माधर्मौ निष्पाद्य पुनस्तयोः क्षयकरणे किमुत्पत्तिकरणप्रयासेन ? न हि प्रेक्षाकारी खात्वा पुनः समीकरणन्यायेनात्मानमायासयति “प्रक्षालनादि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्” ] इति प्रसिद्धेऽर्थः । अन्यथा प्रक्षालिताशुचिभोदकपरित्यागन्यायानुसरणप्रसङ्गः ।

२५

अपवर्गविधानार्थं चास्य प्रवृत्तौ कथमपूर्वकर्मसञ्चयकर्तृत्वम् ? उत्सहकारिणश्चास्य सुखदुःखोत्पादकशरीरोत्पादकत्वे वर तत्फलोपभोगेनोत्पत्तिप्राणिगणस्यैव तत्सर्वपेक्षस्य तदुत्पादकत्वमस्तु किमेश्वरपरिकल्पनया ? सर्वत्र कार्येऽदृष्टस्य व्यापारात् । तथाहि-

१ ईशः । २ ईश्वरः । ३ अमसिद्धप्रामाण्यादागमादन्वेषणीश्वराभावः स्वादि । यतः प्रसिद्धप्रामाण्यागमः ईश्वरप्रतिपादकः । ५ नैयायिकैः । ६ अन्यथा । तीव्रवेदनाननक । ८ सुखदुःख । ९ महेश्वरस्य । १० ईशकारणरहितत्वे । ११ भूमिं खनित्वा । १२ तयोर्धर्माधर्मयोः । १३ अमसिद्धस्य । १४ निश्चितं कार्यं नैव प्राण्यदृष्टपूर्वकं भवतीति साध्यो धर्मः तदुपभोग्यत्वात् ।

यद्यदुपभोग्यं तत्तददृष्टपूर्वकम् यथा सुखादि, उपभोग्यं च प्राणिनां निखिलं कार्यमिति ।

ननु यथा प्रभुः सेवामेदानुरोधात्फलप्रदो नाप्रभुस्तथेश्वरोपि कर्मापेक्षः फलप्रदो नान्यः, इत्यपि मनोरथमात्रम्; राज्ञो हि ५ सेवायत्तफलप्रदस्य यथा रागादियोगो नैर्घृण्यं सेवायत्तता च प्रतीता तथेशस्याप्येतत्सर्वं स्यात्, अन्यथाभूतस्य अन्यपरिहारेण कचिदेव सेवके सुखादिप्रदत्वानुपपत्तेः ।

अथ यथा स्थपत्यादीनामेकसूत्रधारनियमितानां महाप्रासा-  
दादिकार्यकरणे प्रवृत्तिः, तथात्राप्येकेश्वरनियमितानां सुखा-  
१० द्यनेककार्यकरणे प्राणिनां प्रवृत्तिः, इत्यप्यसाम्प्रतम्; नियमा-  
भावात् । न ह्ययं नियमः-निखिलं कार्यमेकेनैव कर्त्तव्यम्,  
नाप्येकनियतैर्वहुभिरिति; अनेकधा कार्यकर्तृत्वोपलम्भात् ।  
तथाहि-कचिदेक एवैककार्यस्य कर्त्तापलभ्यते यथा कुविन्दः  
पटस्य । कचिदेकोप्यनेककार्याणाम् यथा घटघटीशरावोदञ्चना-  
१५ दीनां कुलालः । कचिदनेकोप्यनेककार्याणाम् यथा घटपटम-  
कुटशकटादीनां कुलालादिः । कचिदनेकोप्येककार्यस्य यथा  
शिविकोद्वहनादिकार्यस्यानेकपुरुषसंघातः । न चानेकस्थपत्यादि-  
निष्पाद्ये प्रासादादिकार्येऽवश्यतयैकसूत्रधारनियमितानां तेषां  
तत्र व्यापारः, प्रतिनियताभिप्रायाणामप्येकसूत्रधाराऽनियमि-  
२० तानां तत्करणाविरोधात् ।

किञ्च, अदृष्टापेक्षस्यार्थं कार्यकर्तृत्वे तत्कृतोपकारोऽवश्यंभावी  
अनुपकारकस्यापेक्षायोगात् । तस्य चातो मेदे सम्बन्धासम्भवः ।  
सम्बन्धकल्पनायां ज्ञानवस्था । असेदे तत्करणे महेश्वर एव  
कृत इत्यदृष्टकार्यतास्य । नाऽस्यादृष्टेन किञ्चित्क्रियते सम्भूयं  
२५ कार्यमेव विधीयते सहकारित्वस्यैककार्यकारित्वलक्षणत्वात्;  
इत्यप्यसाम्प्रतम्; सहकारिसव्यपेक्षो हि कार्यजननस्वभावः तस्या-  
दृष्टादिसहकारिसन्निधानाद्यदि प्रागप्यस्ति तदोत्तरकालभावि-  
सकलकार्योत्पत्तिस्तदैव स्यात् । तथाहि-यद्येदा यजननसमर्थं  
तत्तदा तज्जनयत्येव यथान्त्यावस्थैप्राप्तं बीजमङ्कुरम्, प्रागप्युत्तर-

१ वस्तु । २ यस्य पुरुषस्य । ३ क्षामी । ४ निषेधः । ५ अनुसरणात् ।  
६ निष्कृपत्वम् । ७ तस्मादीनाम् । ८ ईश्वरस्य । ९ ईश्वरात् । १० तत्तत्तेश्वरस्य  
नित्यत्वं मिलीयते । ११ ईश्वरादृष्टाभ्यामेकीभूय । १२ एकस्यभावतयाभ्युपगतो  
महेश्वरो यस्मां उत्तरकालभावि सकलं कार्यमुदृष्टादिसन्निधानाप्रागपि जनयसीति साध्यो  
धर्मः तदा तस्य तज्जननसामर्थ्यादिति शेषः । १३ नश्यदवस्थाप्राप्तम् ।

कालभाषिसकलकार्यजननसमर्थश्चैकस्वभावतयाभ्युपगतो महेश्वर इति । तदा तदजनने वा तज्जननसामर्थ्याभावः, यद्धि यदा यन्न जनयति न तत्तदा तज्जननसमर्थस्वभावम् यथा कुसूलस्थं बीजमङ्कुरमजनयन्न तज्जननसमर्थस्वभावम्, न जनयति चोत्तरकालभावि सकलं कार्यं पूर्वकार्योत्पत्तिसमये महेश्वर इति । ५

तज्जननसमर्थस्वभावोप्यसौ सहकार्यऽभावात्तथा तन्न जनयति; इत्यपि चार्त्तम्; समर्थस्वभावस्यापरापेक्षाऽयोगात् । 'समर्थस्वभावश्चापरापेक्षश्च' इति विरुद्धमेतत्, अर्नाधेयाऽप्रहेयोतिशयत्वात्तस्य ।

किञ्च, एते सहकारिणः किं तदायत्तोत्पत्तयः, अतदायत्तोत्प-१०  
त्तयो वा ? प्रथमपक्षे किं नैकदैवोत्पद्यन्ते ? तदुत्पादकान्यसहकारिवैकल्याच्चेदनवस्था । तथा चास्यापरापरसहकारिजनने एवोपक्षीणशक्तिकत्वाच्च प्रकृतकार्ये व्यापारः । बीजाङ्कुरादिवदनादि-  
त्वात्तत्प्रवाहस्य नानवस्था दोषायेत्यभ्युपगमे महेश्वरकल्पनावैयर्थ्यम्, स्वसामर्थ्यधीनोत्पत्तितया पूर्वपूर्वसामग्रीविशेषवशा-१५  
दुपरापरखिलकार्योत्पत्तिप्रसिद्धेः । अथातदायत्तोत्पत्तयः; तर्हि तैरेव कार्यत्वादिहेतवोऽनैकान्तिकाः इति ।

एतेन 'महाभूतादि व्यक्तं चेतनाधिष्ठितं प्राणिनां सुखदुःख-  
निमित्तं रूपादिमत्त्वास्तुर्यादिवत्' इत्यादीनि वार्त्तिककारादिभि-  
रुपन्यस्तप्रमाणानि निरस्तानि; यादृशं हि रूपादिमत्त्वमनित्यत्वं २०  
च चेतनाधिष्ठितं बास्यादौ प्रसिद्धं तादृशस्य क्षित्यादावसिद्धेः ।  
रूपादिमत्त्वमात्रस्य च चेतनाधिष्ठितत्वेन प्रतिवैयर्थ्यासिद्धेः आशौ-  
ङ्कितविपक्षवृत्तितयाऽनैकान्तिकत्वम् । प्रतिवैयर्थ्याभ्युपगमे चेष्ट-  
विपरितसाधनाद्विरुद्धमित्यादि पूर्वोक्तं सर्वमत्रापि योजनीयम् ।

किञ्च, ईश्वरबुद्धेरनित्यत्वप्रसाधनात्तदभिन्नस्येश्वरस्यानित्य-२५  
त्वप्रसिद्धेस्तस्याप्यपरबुद्धिमदधिष्ठितत्वप्रसङ्गः स्यादित्यनवस्था ।  
तद्वनधिष्ठितत्वे वा तेनैवानेकान्तो हेतोः ।

यच्चोक्तम्—'सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारः' इत्यादि; तत्रोत्तरकालं  
प्रबुद्धानामित्येतद्विशेषणमसिद्धम् । न खलु प्रलयकाले प्रबुद्ध-

१ आरोपयितुमशक्योऽतिशयोऽनापेयः । २ अन्ये. स्फोटयितुमशक्योऽतिशयोऽ-  
प्रहेयः । ३ ईश्वरानपेक्षोत्पत्तयः ४ सहकारिभिः । ५ सावयवकार्यत्वहेतुनिराकरण-  
परेण अन्येन । ६ भविनाभावसिद्धेः । ७ भूरादिब्रह्मचेतनानधिष्ठिते महाभूतादिव्यक्ते  
रूपादिमत्त्वं वर्तते बास्यादिवचेतनाधिष्ठिते वा इति । ८ सर्वव्यापिभ्योऽपेक्षादिपरी-  
तस्यासर्वव्यापिभ्योऽपेक्षा ।

ज्ञानस्मृतयो वितनुकरणाः पुरुषाः सन्ति, तस्यैव सत्रैथाऽ-  
प्रसिद्धः । सिद्धो वा स्वकृतकर्मवशाद्विशिष्टज्ञानान्तरेषु (न्तरो) त्य-  
क्तेस्तेषां कथं वितनुकरणं वं प्रलुप्तज्ञानस्मृतित्वं वा ? सन्दिग्धवि-  
पक्षव्यावृत्तिकत्वादनैकान्तिकश्च हेतुः ।

५ किञ्च, अन्योपदेशपूर्वकत्वमात्रे साध्ये सिद्धसाध्यता, अना-  
देव्यवहारस्याशेषपुरुषाणामन्योपदेशपूर्वकत्वेनेष्टत्वात् । ईश्वरो-  
पदेशपूर्वकत्वे तु साध्येऽनैकान्तिकता, अन्यथापि तत्सम्भवात् ।  
साध्यविकर्लता च दृष्टान्तस्य । न चास्योपदेशपूर्वत्वसम्भवो विमु-  
क्तत्वान्मुक्तात्मवत् । तच्च वितनुकरणतयोपगमात्प्रसिद्धम् ।

१० 'स्थित्वा प्रवृत्तेः' इति चेश्वरेणैवानैकान्तिकम्, स हि क्रमव-  
त्कार्येषु स्थित्वा प्रवर्तते न च चेतनान्तराधिष्ठितोऽनवस्था-  
प्रसङ्गात् इति ।

अन्यैव दिशा 'सप्तभुवनान्येकबुद्धिमन्निर्मितानि एकवस्त्वन्त-  
र्गतत्वादेकावसंथान्तर्गतापवरकवत्' इत्यादिपरकीयप्रयोगोऽ-  
१५ म्यूहः । न ह्येकावसथान्तर्गतानामपवरकादीनमेकसूत्रधार-  
निर्मितत्वनियमः येनेश्वरः सकलभुवनैकसूत्रधारः सिद्ध्येत्,  
अनेकसूत्रधारनिर्मितत्वस्याप्युपलम्भात् ।

एकाधिष्ठाना ब्रह्मादयः पिशाचान्ताः परस्परातिशयवृत्ति-  
त्वात्, इह येषां परस्परातिशयवृत्तित्वं तेषामेकायत्तता इष्टा  
२० यथेह लोके गृहग्रामनगरदेशाधिपतीनामेकसिन्सार्वभौमनर-  
पती, तथा भुजगरक्षोयक्षप्रभृतीनां परस्परातिशयवृत्तित्वं च, तेन  
मन्यामहे तेषामेकसिन्नीश्वरे पारतन्त्र्यम्, इत्यसम्यक्; अत्र हि  
'ईश्वराख्येनाधिष्ठायकेनैकाधिष्ठानाः' इति साध्येऽनैकान्तिकता  
हेतोर्विपर्ययै<sup>१३</sup> वाचकप्रमाणाभावात् प्रतिबन्धोऽसिद्धेः । दृष्टान्तस्य च  
२५ साध्येविकलता । 'अधिष्ठायकमात्रेण साधिष्ठानाः' इति साध्ये  
सिद्धसाध्यता, स्वर्निकायस्वामिनः शक्रादेर्भवान्तरोपपात्ताऽदृष्टस्य  
चाधिष्ठायकतयाम्युपगमात् ।

१ प्रलयकालसमये यत्र न तु पश्चात् । २ परोपदेशरहिते मैयुनादिभ्यवहारवति  
पुंति । ३ (हेतोः) । ४ ईश्वरोपदेशं विनापि । ५ क्पनहारे प्रत्यर्थनियतत्वस्य ।  
६ पुत्रादीनां मात्राद्युपदेशपूर्वकत्वेनेश्वरोपदेशपूर्वकत्वाभावात् । ७ विगमश्रुत्वात् ।  
८ साधनम् । ९ आकाशः । १० मन्दिरः । ११ ईश्वराभिवाः कार्यकरणे । १२ सन्दि-  
ग्धनैकान्तिकता । १३ विपक्षे—कदानित्वतत्रेषु गृहग्रामनगरदेशाधिपतिषु ।  
१४ ईश्वराख्येनैकाधिष्ठायकेन परस्परातिशयवृत्तित्वस्वामिनाम्नावासिद्धेः । १५ सार्व-  
भौमनरपती ईश्वरेणत्वासिद्धेः ।

ततो महेश्वरस्याशेषजगत्कर्तृत्वप्रसाधकस्यानवद्यप्रमाणस्या-  
सम्भवात् कुतोऽनादिमुक्तत्वसिद्धिर्यतोऽनाद्यशेषशक्त्यमस्य स्यात् ?  
प्रयोगः—क्षित्यादिकं नैकैकस्वभावभावपूर्वकं विभिन्नदेशकाला-  
कारत्वात्, यदित्थं तदित्थम् यथा घटपटभकुटशकटादि,  
विभिन्नदेशकालाकारं चेदम्, तस्मान्नैकैकस्वभावभावपूर्वक-<sup>५</sup>  
मिति । न चेदमसिद्धं साधनम्; उर्वीपर्वततर्वादौ धर्मिणि विभि-  
न्नदेशकालाकारत्वस्य सुप्रसिद्धत्वात् । नाप्यनैकान्तिकं विरुद्धं  
वा; विपक्षस्यैकदेशे तत्रैव वा वृत्तेरभावात् ।

नन्वेकस्याप्यनेककार्यकरणकुशलस्य कर्तुर्विविचित्रसहकारिसा-  
न्निध्ये विविचित्रकार्यकारित्वं दृश्यते, अतोऽनेकान्तः, इत्यप्यनुपप-<sup>१०</sup>  
न्नम्, तत्राप्येकस्वभावत्वस्यासिद्धेः, स्वरूपमभेदयतां सहकारित्व-  
स्यासम्भवात्प्रतिपादनात् । नापि कालात्ययापदिष्टम्; प्रत्यक्षाग-  
माभ्यां पक्षस्याबाध्यमानत्वात् । न हि क्षित्यादौ विचित्रकार्ये  
प्रत्यक्षेणैकैकस्वभावः कर्त्तापलभ्यते, तस्यातीन्द्रियतया प्रत्यक्षागो-  
चरत्वस्य प्रागेव प्रतिपादनात्, आगमस्यापि तत्प्रतिपादकस्य <sup>१५</sup>  
प्रागेव प्रतिषेधात् । नापि सत्प्रतिपक्षम्; विपरीतार्थोपस्थापक-  
स्यानुमानान्तरस्याभावात्, कार्यत्वादिहेतूनां चात्रैवानेकदोषदु-  
ष्टत्वप्रतिपादनादिति ।

ननु साधूक्तमावरणापाये सर्वशक्त्यमिति । तनु प्रकृतेरेव अवै-  
वावरणसम्भवात्, नात्मनस्तस्यावरणाभावात् “प्रधानपरिणामः २०  
शुक्लं कृष्णं च कर्म” [ ] इत्यभिधानात् । निखिलजग-  
त्कर्तृत्वाच्चास्या एवाशेषशक्त्यमस्तु, तदेतदप्यसमीक्षिताभिधा-  
नम्; कर्मणः प्रधानपरिणामताप्रतिषेधात् सकलजगत्कर्तृत्वस्य  
चासिद्धेः । ननु प्रकृतिप्रभवैवेयं जगतः सृष्टिप्रक्रिया, तत्कथं  
तस्यास्तत्कर्तृत्वासिद्धिः? तथा हि—

२५

“प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः ।

तस्मादपि षोडशकात्पञ्चम्यः पञ्च भूतानि ॥”

[ सांख्यका० २१ ]

प्रथमं हि प्रकृतेर्महान्=विषयाध्यवसायलक्षणा बुद्धिरुपपद्यते ।  
बुद्धेर्आहङ्कारोऽहं सुभगोऽहं दर्शनीय इत्याद्यभिमानलक्षणः । <sup>३०</sup>  
अहङ्कारात्पञ्च तन्मात्राणि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मकानि, इन्द्रि-  
याणि चैकादश पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणल-  
क्षणानि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थसंज्ञानि,

मनश्च सङ्कल्पलक्षणम्—‘भोजनार्थं हि तत्र गृहे यास्यामि किं दधि भविष्यति गुडो वा भविष्यति’ इत्येवं सङ्कल्पवृत्तिर्मनः। पञ्चभ्यश्च तन्मात्रेभ्यः पञ्च भूतानि—शब्दादाकाशं, स्पर्शाद्वायुं, रूपात्तेजः, रसादापः, गन्धात्पृथ्वीति। पुरुषश्चेति। पञ्चविंशतितत्त्वानि।

५ प्रकृत्यात्मकाश्चेते महदादयो मेदाः न त्वऽतोऽत्यन्तमेदिनो लक्षणमेदाभावात्। तथाहि—

“त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।  
व्यक्तं तथा प्रधानं तैद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥”

[ सांख्यका० ११ ]

१० लोकै हि यदात्मकं कारणं तदात्मकमेव कार्यमुपलभ्यते यथा कृष्णैस्तन्तुभिरारब्धः पटः कृष्णः। एवं प्रधानमपि त्रिगुणात्मकम्, तथा बुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रेन्द्रियभूतात्मकं व्यक्तमपि। तथाऽविवेकि—इमे सत्त्वादेव इदं च महदादि व्यक्तम् इति पृथक्कर्तुं न शक्यते। किन्तु ‘ये गुणास्तद्व्यक्तं यद्व्यक्तं ते गुणाः’ इति। तथा

१५ व्यक्ताव्यक्तद्वयमपि विषयो भोग्यस्वभावत्वात्। सामान्यं च सर्व-पुरुषाणां भोग्यत्वात्पण्यकीवत्। अचेतनात्मकं च सुखदुःखमोहावेदकत्वात् प्रसवधर्मिवत्। तथाहि—प्रधानं बुद्धिं जनयति, बुद्धिरप्यहङ्कारम्, अहङ्कारोऽपि तन्मात्राणीन्द्रियाणि चैकादश, तन्मात्राणि च महाभूतानीति।

२० प्रकृतिविकृतिभावेन परिणामविशेषाल्लक्षणमेदोप्यविरुद्धः। यथोक्तम्—

“हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।  
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥”

[ सांख्यका० १० ]

२५ व्यक्तमेव हि कारणवत्। तथाहि—प्रधानेन हेतुमती बुद्धिः, बुद्ध्या चाहङ्कारः, अहङ्कारेण पञ्च तन्मात्राण्येकादश चैन्द्रियाणि, भूतानि तन्मात्रैः। न त्वेवमव्यक्तम्—तस्य कुतश्चिदनुत्पत्तेः। तथा व्यक्तमनित्यम् उत्पत्तिधर्मकत्वात्, नाव्यक्तम् तस्यानु-

१ महादादिकार्यं त्रिगुणादिरूपेण व्यक्तम्। २ व्यक्ताऽव्यक्तान्याम्। ३ प्रधानमेव त्रिगुणात्मकम्। महादादिकार्यं कवं त्रिगुणात्मकं सादित्युक्ते सत्याह। ४ आदिपदेन रजस्तमसी। ५ पुरुषेण। ६ स्वरूपावसानम्। ७ लक्षणमेदाभावात्कर्तव्यकारणभावः सादित्युक्ते आह। ८ महादादि। ९ प्रधानम्। १० हेतुमान्। ११ महादादि कार्यम्। १२ कारणात्।

त्पत्तिमत्त्वात् । यथा च प्रधानपुरुषौ दिवि चान्तरिक्षेऽत्र सर्वत्र व्यापितया वर्तते न तथा व्यक्तम् । यथा च संसारकाले त्रयोदशविधेन बुद्ध्यहङ्कारेन्द्रियलक्षणेन संयुक्तं सूक्ष्मशरीरादिकं व्यक्तं संसरति, नैवमव्यक्तं तस्य विभुत्वेन सक्रियत्वायोगात् । बुद्ध्यहङ्कारादिभेदेन चानेकविधं व्यक्तम्, नाव्यक्तम् तस्यैकस्यैव सतो लोकत्रयकारणत्वात् । आश्रितं च व्यक्तम्, यद्यस्मादुत्पद्यते तस्य तदाश्रितत्वात् । न त्वेवमव्यक्तम् तस्याकार्यत्वात् । लिङ्गं च 'ल्यं गच्छति' इति कृत्वा, प्रलयकाले हि भूतानि तन्मात्रेषु लीयन्ते, तन्मात्राणीन्द्रियाणि चाहङ्कारे, अहङ्कारो बुद्धौ, बुद्धिश्च प्रधाने । न चाव्यक्तं कचिदपि ल्यं गच्छतीति तस्याविद्यमान-१० कारणत्वात् । सावयवं च व्यक्तम् शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मकैरवयवैर्युक्तत्वात् । न त्वेवमव्यक्तम् प्रधानात्मनि शब्दादीनामनुपलब्धेः । यथा च पितरि जीवति पुत्रो न स्वतन्त्रो भवति तथा व्यक्तं सर्वदा कारणात्तत्त्वात्परतन्त्रम् । न त्वेवमव्यक्तं तस्य नित्यमकारणाधीनत्वत् । १५

ननु प्रधानात्मनि कुतो महदादीनां सद्भावसिद्धिर्यतः प्रागुत्पत्तेः सदैव कार्यमिति चेत्;

“असदकरणादुपादानग्रहणात्सर्वसम्भवाभावात् ।

शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥”

[ सांख्यका० ९ ] २०

इति हेतुपञ्चकात् । यदि हि कारणात्मनि प्रागुत्पत्तेः कार्यं नाभविष्यत्तदा तन्न केनचिदकरिष्यत । यैदसत्तन्न केनचित्क्रियते यथा गगनाम्मोरुहम्, असच्च प्रागुत्पत्तेः परमते कार्यमिति । क्रियते च तिलादिमित्तैलादिकार्यम्, तस्मात्तच्छक्तितः प्रागपि सत्, व्यक्तिरूपेण तु कापिलैरपि प्राक् सत्त्वस्थानिष्ठ-२५ त्वात् ।

यदि चासद्भवेत्कार्यं तर्हि पुरुषाणां प्रतिनियतोपादानग्रहणं न स्यात् । यथाहि-शालिवीजादिषु शाक्यादीनामसत्त्वं तथा कोद्रववीजादिष्वपि । तथा च कोद्रववीजादयोपि शालिफलार्थिभिरुपादीयेरन् । न चैवम्, तस्मात्तत्र तर्त्कार्यमस्तीति गम्यते ।--- ३०

१ प्रवर्तते । २ गच्छति । ३ व्यापकत्वेन । ४ तिरोभावम् । ५ परमते प्रागुत्पत्तेः कार्यं भूमि, न केनचित्क्रियते इति साध्यो वसः-असत्त्वात् । ६ कैनादियते । ७ मृत्पिण्डे घटो नास्ति पटोपि नास्ति तदा मृत्पिण्डो घटस्योपादानं पटस्य न, तस्य नु तन्तव पदेति नियतोपादानम् । ८ शाक्यादि ।



यदि चासदेव कार्यं सर्वस्याचृणपांशुलोष्ठादिकात्सर्वं सुवर्ण-  
रजतादि कार्यं स्यात्, तादात्म्यविगमस्य सर्वैर्लिङ्गविशिष्टत्वात् ।  
न च सर्वं सर्वतो भवति तस्मात्तत्रैव तस्य सद्भावसिद्धिः ।

ननु कारणानां प्रतिनिर्यतेष्वेव कार्येषु प्रतिनियताः शक्यः ।  
५ तेन कार्यस्यासत्त्वाविशेषेपि किञ्चिदेव कार्यं कुर्वन्ति, इत्यप्यनु-  
त्तरम्, शक्ता अपि हि हेतवः शक्यक्रियमेव कार्यं कुर्वन्ति  
नाशक्यक्रियम् । यैश्चासत्तत्र शक्यक्रियं यथा गगनाम्भोरुहम्,  
असत्त्व परमते कार्यमिति ।

वीजादेः कारणभावाच्च सत्कार्यं कार्यासत्त्वे तदयोगात् ।  
१० तथाहि-न कारणभावो वीजादेः अविद्यमानकार्यत्वात्स्वरविषा-  
णवत् । तत्तिष्ठमुत्पत्तेः प्राक्कारणे कार्यम् ।

तच्च कारणं प्रधानमेवेत्यावेदयति हेतुपञ्चकात्—

“मेदानां परिमाणात्समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च ।  
कारणकार्यविभागादविभागाद्वैश्वरूप्यस्य ॥”

१५

[ सांख्यका० १५ ]

लोके हि यस्य कर्त्ता भवति तस्य परिमाणं दृष्टम् यथा कुलालः  
परिमितान्मृत्पिण्डात्परिमितं प्रस्थप्राहिणमाढकप्राहिणं च घटं  
करोति । इदं च महदादि व्यक्तं परिमितं दृष्टम्-एका बुद्धिः,  
एकोऽहङ्कारः, पञ्च तन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चभूता-  
२० नीतिः । अतो यत्परिमितं व्यक्तमुत्पादयति तत्प्रधानमित्यवगमः ।

इतश्चास्ति प्रधानं मेदानां समन्वयदर्शनात् । यैजातिसम-  
न्वितं हि यदुपलभ्यते तत्तन्मयकारणसम्भूतम् यथा घट-  
शरावादयो मेवा सृज्जातिसमन्विता सृदात्मककारणसम्भूताः,  
सत्त्वरजस्तमोजातिसमन्वितं चेदं व्यक्तमुपलभ्यते । सत्त्वस्य हि  
२५ प्रसादलाघवोर्द्ध्वप्रीत्यादयः कार्यम् । रजसस्तु तापशोषोद्वेगा-  
दयः । तमसश्च दैन्यवीभत्सगौरवादयः । अतो महदादीनां  
प्रसाददैन्यतापादिकार्योपलम्भात्प्रधानान्वितत्वंसिद्धिः ।

१ तर्हि । २ अभावस्य । ३ उपादानेऽनुपादाने च । ४ कारणे । ५ तदुपादाने ।  
६ शक्यक्रियेषु । ७ परमते कर्मणि शक्यक्रियं न भवति असत्त्वादिति शेषः ।  
८ महदादि । ९ महदादीनाम् । १० कर्त्तव्यस्य । ११ महदादिव्यक्तमेककारणपूर्वकं  
परिमितत्वाद् घटादिवत् । १२ महदादिव्यक्तमेककारणसम्भूतमेकस्वरूपान्वितत्वाद्वा  
घटघटीशरावोदञ्जनादिवत् । १३ उत्सव । १४ महदादिव्यक्तस्य ।

- इतश्चास्ति प्रधानं शक्तिः प्रवृत्तेः । लोके हि यो यस्मिन्नर्थे प्रवर्त्तते स तत्र शक्तः यथा तन्तुवायः पटकरणे, प्रधानस्य चास्ति शक्तिर्यथा व्यक्तमुत्पादयति, सा च निराधारा न सम्भवतीति प्रधानास्तित्वसिद्धिः ।

कार्यकारणविभागाच्च, दृष्टो हि कार्यकारणयोर्विभागः, यथा ५ मृत्पिण्डः कारणं घटः कार्यम् । स च मृत्पिण्डाद्विभक्तस्वभावो घटो मद्योदकादिधारणाहरणसमर्थो न तु मृत्पिण्डः । एवं महदादि कार्यं दृष्ट्वा साधयामः—‘अस्ति प्रधानं यतो महदादिकार्यमुत्पन्नम्’ इति ।

इतश्चास्ति प्रधानं वैश्वरूप्यस्याविभागात् । वैश्वरूप्यं हि लोक- १० त्रयमभिधीयते । तच्च प्रलयकाले कचिद्विभागं गच्छति । उक्तं च प्राक्—‘पञ्चभूतानि पञ्चसु तन्मात्रेष्वविभागं गच्छन्ति’ इत्यादि । अविभागो हि नामाविवेकः । यथा क्षीरावस्थायाम् ‘अन्यत्क्षीरमन्यद्दधि’ इति विवेको न शक्यते कर्तुं तद्वत्प्रलयकाले व्यक्तमिदमव्यक्तं चेदमिति । अतो मन्यामहेऽस्ति प्रधानं यत्र १५ महदाद्यऽविभागं गच्छतीति ।

अत्र प्रतिविधीर्यते—प्रकृत्यात्मकत्वे महदादिभेदानां कार्यतया ततः प्रवृत्तिविरोधः । न खलु यद्यस्मात्सर्वथाऽव्यतिरिक्तं तत्तस्य कार्यं कारणं वा युक्तं मित्रलक्षणत्वात्तयोः । अन्यथा तद्व्यवस्था सङ्कीर्यते । तथा च यद्भवद्भिर्मूलप्रकृतेः कारणत्वमेव, भूतेन्द्रिय- २० लक्षणपोडशकगणस्य कार्यत्वमेव, बुद्ध्यहङ्कारतन्मात्राणां पूर्वोत्तरापेक्षया कार्यत्वं कारणत्वं चेति प्रतिज्ञातं तच्च स्यात् । तथा चेदमसङ्गतम्—

“मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।

पोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥”

२५

[ सांख्यका० ३ ] इति ।

सर्वेषामेव हि परस्परमव्यतिरेके कार्यत्वं कारणत्वं वा प्रस-

१ महदादिभेदानात् । २ कार्यप्रवृत्तिः शक्तिपूर्विका प्रवृत्तित्वात्तन्तुवायप्रवृत्तिवत् । ३ महदादिन्यक्तमेकारणपूर्वकं कार्यरूपत्वाद् घटादिवत् । ४ महदाद्यविभागः कच्चिदाश्रितः अविभागत्वात्क्षीरे दध्याद्यविभागवत् । ५ एकत्वम् । ६ जैनैः । ७ प्रकृतेः । ८ प्रधानं महदादेः कारणं न भवति तस्मात्सर्वथाऽव्यतिरिक्तत्वात् । महदादि प्रधानकार्यं न भवति तस्मात्सर्वथाऽव्यतिरिक्तत्वात् । ९ मित्रलक्षणाभावे । १० प्रकृतादि कार्यरूप कार्यरूपान्महदादेरव्यतिरेकात् ।

ज्येत । आपेक्षिकत्वाद्वा तद्भावस्यै, रूपान्तरस्य चापेक्षणीयस्या-  
भावात्सर्वेषां पुरुषवत्प्रकृतिविकृतित्वाभावः । अन्यथा पुरुष-  
स्यापि प्रकृतिविकृतित्वपदेशः स्यात् ।

यच्चेदम्-हेतुमत्त्वादिधर्मयोगि व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्, तदपि  
५ बालप्रलापमात्रम्; न हि यद्येसादभिन्नस्वभावं तत्तद्विपरीतं शुक्तं  
भिन्नस्वभावलक्षणत्वाद्विपरीतत्वस्य । अन्यथा मेदव्यवहारोच्छे-  
द्यः(दः) स्यात् । सत्त्वरजस्तमसां चान्योन्यं भिन्नस्वभावनिब-  
न्धनो मेदो न स्यादिति विश्वमेकरूपमेव स्यात् । ततो व्यक्तरू-  
पाव्यतिरेकादव्यक्तमपि हेतुमत्त्वादिधर्मयोगि स्यात् व्यक्तरूप-  
१० वत् । व्यक्तं चाऽहेतुमत्त्वादिधर्मयोगि स्यादव्यक्तरूपाव्यति-  
रेकात्तत्त्वरूपवदित्येकान्तैः ।

किञ्च, अन्वयव्यतिरेकनिश्चयसमधिगम्यो लोके कार्यकारण-  
भावः प्रसिद्धः । न च प्रधानादिभ्यो महदाद्युत्पत्तिनिश्चयेऽन्वयो  
व्यतिरेको वा प्रतीतोस्ति येन प्रधानान्महान्महतोऽहङ्कार इत्यादि  
१५ सिद्ध्येत् ।

न च नित्यस्य कारणभावोस्ति, क्रमाऽक्रमाभ्यां तस्यार्थक्रिया-  
विरोधात् । ननु नित्यमपि प्रधानं कुण्डलादौ सर्ववन्महदादिरू-  
पेण परिणामं गच्छत्तेषां कारणमित्युच्यते, ते च तत्परिणामरू-  
पत्वात्तत्कार्यतया व्यपदिश्यन्ते । परिणामश्चैकवस्त्वऽधिष्ठान-  
२० त्वादमेदेपि न विरुध्यते; इत्यप्यनेकान्तावलम्बने प्रमाणोपपन्नं  
नित्यैकान्ते परिणामस्यैवासिद्धेः । स हि तत्र भवन् पूर्वरूपत्या-  
गाद्वा भवेत्, अत्यागाद्वा ? यद्यत्यागात्, तदाऽवस्थासाङ्कर्यं वृद्धा-  
द्यवस्थायामपि युवाद्यवस्थोपलब्धिप्रसङ्गात् । अथ त्यागात्,  
तदा स्वभावहानिप्रसङ्गः ।

२५ किञ्च, सर्वथा तत्यागः, कथञ्चिद्वा ? सर्वथा चेत्, कस्य  
परिणामः ? पूर्वरूपस्य सर्वथा त्यागादपूर्वस्य चोत्पादात् । कथ-  
ञ्चित् चेत्, न किञ्चिद्विरुद्धम्, तस्यैवार्थस्य प्राच्यरूपत्यागेना-

१ अपेक्षणीयामावेति प्रकृतिविकृतिमात्रो नविष्यतीत्युक्ते आह । २ भिन्नलक्षणत्वा-  
त्कार्यकारणभावयोरित्यस्यापेक्षया वाशब्दः । ३ कार्यकारणभावस्य । ४ अपेक्षणीयस्या-  
भावेति कस्यचिद्विकृतित्वं वा वदते चेत् । ५ अव्यक्तं यमि व्यक्ताद्विपरीतं न भवति  
तस्मादभिन्नस्वभावत्वात् । ६ विपरीतत्वं भिन्नस्वभावनिबन्धनं न भवतीति चेत् ।  
७ सर्वं व्यक्तरूपमेवाऽव्यक्तरूपमेव वा स्यादिति । ८ ऋतुः सर्पो यथा कुण्डलाकारेण  
जायते स एव ऋक्षाकारेण जायते । कुण्डलादौ स्वर्णवदिति पाठान्तरम् । ९ इत्यतएव  
पर्यायतया च । १० प्रधानस्यैव । मनुष्यलक्षणस्य वा । ११ बालवत्सायाः ।

न्यथाभावलक्षणपरिणामोपपत्तेः । नित्यैकान्तता तु तस्य व्याह-  
न्येत । अत्र हि नैकदेशेन तैत्त्यागो निरंशस्यैकदेशाभावात् ।  
नापि सर्वात्मना; नित्यत्वव्याघातात् ।

किंच, प्रवर्त्तमानो निवर्त्तमानैश्च धर्मो धर्मिणोऽर्थान्तरभूतो वा  
स्यात्, अनर्थान्तरभूतो वा ? यद्यर्थान्तरभूतः; तर्हि धर्मी तद्-<sup>५</sup>  
वैश्य एवेति कथमसौ परिणतो नाम ? न ह्यर्थान्तरभूतयोरर्थयो-  
रुत्पादविनाशे सत्यविचलितात्मनो वैस्तुनः परिणामो भवति,  
अन्यथाऽऽत्मापि परिणामी स्यात् । तत्सम्बद्धयोर्धर्मयोरुत्पाद-  
विनाशात्तस्य परिणामः; इत्यप्यसुन्दरम्; धर्मिणा सदसतोः  
सम्बन्धाभावात् । सम्बन्धो हि धर्मस्य सतो भवेत्, असतो वा ? <sup>१०</sup>  
न तावत्सतः; स्वातन्त्र्येण प्रसिद्धाशेषस्वभावसम्पत्तेरनपेक्षतया  
कचित्पारतन्त्र्यसम्भवात् । नाप्यसतः; तस्य सर्वोपाख्याविरु-  
द्धलक्षणतया कचिदप्याश्रितत्वानुपपत्तेः । न खलु खरविपणादिः  
कचिदाश्रितो युक्तः । न च प्रवर्त्तमानाप्रवर्त्तमानधर्मद्वयव्यतिरिक्तो  
धर्मो उपलब्धिलक्षणप्राप्तो दर्शनपथप्रस्थायी कस्यचिदिति । अतः <sup>१५</sup>  
स तादृशोऽसद्व्यवहारविषय एव विदुषाम् । अथानर्थान्तरभूतः;  
तथाप्येकस्याद्धर्मिसरूपादव्यतिरिक्तत्वात्तयोरेकत्वमेवेति कथं  
परिणामो धर्मिणः, धर्मयोर्वा विनाशप्रादुर्भावौ धर्मिसरूपवत् ?  
धर्मिण्यां च धर्मिणोऽनन्यत्वाद्धर्मिसरूपवदपूर्वस्योत्पादः पूर्वस्य  
विनाश इति नैव कस्यचित्परिणामः सिध्यति । तस्मान्न परिणाम-<sup>२०</sup>  
वशादपि भवतां कार्यकारणव्यवहारो युक्तः ।

यच्चेदमुत्पत्तेः प्राकार्यस्य सत्त्वसमर्थनार्थमसदकरणादिहेतुप-  
ञ्चकमुक्तम्; तद् असत्कार्यवादपक्षेपि तुल्यम् । शक्यते ह्येवम-  
प्यभिधातुम्-‘न सदकरणादुपादानग्रहणार्त्सर्वसम्भवाभावात् ।  
शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ।’ न सत्कार्यमिति <sup>२५</sup>  
सम्बन्धः ।

किञ्च, सर्वथा सत्कार्यम्, कथञ्चिद्धा ? प्रथमपक्षोऽसम्भाव्यः;  
यदि हि क्षीर्यदौ दध्यादिकार्याणि सर्वथा विशिष्टरसवीर्यविपाका-

१ युवावस्थायाः । २ प्रधानस्य । ३ पूर्वरूपलागः । ४ उत्तरपरिणामलक्षणः ।  
५ पूर्वपरिणामलक्षणः । ६ पुरुषादेः । ७ सा अवस्था वक्ष्यते । पूर्वोक्तसाक्षः ।  
८ नित्यस्य । ९ प्रधानस्य । १० अभिन्नत्वात् । ११ पारतन्त्र्यं हि सम्बन्ध इति  
वचनात् । १२ उपाख्या स्वभावः । १३ धर्मिण्योः । १४ धर्मयोर्विनाशप्रादुर्भावौ  
धर्मिणो न भवत इति साध्यो धर्मिणोऽनर्थान्तरत्वात् । १५ धर्मो उपादविनाशवान्  
उत्पादविनाशरूपधर्माभ्यामभिन्नत्वाद्धर्मिसरूपवत् । १६ सकाशात् । १७ सर्वेभ्यः  
कारणेभ्यः । १८ कारणे । १९ आदिना नवनीतत्वादि ।

दिना विभक्तरूपेण मध्यावस्थावत्सन्ति, तर्हि तेषां किमुत्पाद्यमस्ति येन तानि कारणैः क्षीरादिभिर्जन्यानि स्युः ? तथा च प्रयोगः-यत्सर्वाकारेण सत्तत्र केनचिज्जन्यम् यथा प्रधानमात्मा वा, सच्च सर्वात्मना परमते दध्यादीति न भवदादेः कार्यता । नापि प्रधानस्य

५ कारणता; अविद्यमानकार्यत्वात् । यदविद्यमानकार्यं तत्र कारणम् यथात्मा, अविद्यमानकार्यं च प्रधानमिति । क्षीराद्यवस्थायामपि दध्यादीनां पश्चादिवोपलम्भप्रसङ्गश्च । अथ कथञ्चिच्छक्तिरूपेण सत्कार्यम्; ननु शक्तिर्द्रव्यमेव, तद्रूपतया सतः पर्यायरूपतया चासतो घटादेरुत्पत्त्यभ्युपगमे जिनपतिमतानुसरणप्रसङ्गः ।

१० किञ्च, तच्छक्तिरूपं दध्यादेर्मिन्नम्, अमिन्नं वा ? मिन्नं चेत्, कथं कारणे कार्यसङ्गावसिद्धिः ? कार्यव्यतिरिक्तस्य शक्त्याख्यपदार्थान्तरस्यैव सङ्गावाम्युपगमात् । आविर्भूतविशिष्टरसादिगुणोपेतं हि वस्तु दध्यादि कार्यमुच्यते । तच्च क्षीराद्यवस्थायामुपलब्धिलक्षणाप्रसादानुपलब्धेर्नास्ति । यच्चास्ति शक्तिरूपं तत्कार्यमेव न भवति ।

१५ न चान्यस्य भावेऽन्यदस्त्यतिप्रसङ्गात् । अथामिन्नम्; तर्हि दध्यादेर्नित्यत्वात्कारणव्यापारवैयर्थ्यम् ।

अमिव्यक्तौ कारणानां व्यापाराच्च वैयर्थ्यम्; इत्यप्यसत्, यतोऽमिव्यक्तिः पूर्वं सती, असती वा ? सती चेत्, कथं क्रियेत ? अन्यथा कारकव्यापारानुपरमः स्यात् । अथासती; तथाप्याकाश-  
२० कुशेशयवत्कथं क्रियेत ? असदकरणादित्यभ्युपगमाच्च ।

सर्वस्य सर्वथा सत्त्वेन च कार्यत्वासम्भवादुपादानपरिग्रहोपि न प्राप्नोति । सर्वसम्भवाभावोपि प्रतिनियतादेव क्षीरादेर्दध्यादीनां जन्मोच्यते । तच्च सत्कार्यवादपक्षे दूरोत्सारितम् । शक्तस्य शक्यकरणादिति चात्रासम्भाव्यम्; यदि हि केनचित् किञ्चि-  
२५ त्रिष्पाद्येत तदा निर्णोदकस्य शक्तिर्व्यवस्थाप्येत निर्णोद्यस्य च करणं नान्यथा । कारणभावोप्यर्थानां न घटते कार्यत्वाभावादेव ।

१ दध्यावस्थावत् । २ दध्यादि धर्मि केनचिज्जन्यं न भवति पूर्वमेव सर्वाकारेण सत्त्वादिशुपरिष्ठाद्योच्यम् । ३ इति=अनुमानात् । ४ प्रधानं कसन्नित्कारणं न भवति । ५ दध्यादिकार्यं धर्मि शक्तिरूपे कारणे नास्ति ततो मिन्नत्वात् । ६ ततो मिन्नत्वं स्यात्कारणे विद्यमानत्वं च स्यादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह । ७ शक्तिरूपस्य । ८ व्यक्तिरूपं दध्यादिकार्यम् । ९ घटस्य भावे घटस्य भावप्रसङ्गात् । १० विद्यमानापि क्रियमाणा चेत् । ११ अविमान्तिः । १२ परेणैव । १३ पदार्थस्य । १४ जैनैः । १५ कारणस्य । १६ कार्यस्य । १७ निष्पाद्यनिष्पादकभावभावे शक्तिः करणं वा न व्यवस्थाप्यते । १८ कार्यस्य सर्वथा सत्त्वात् । १९ कारणपेक्षया ।

किञ्च, एते हेतवो भवत्पक्षे प्रवृत्ताः किं कुर्वन्ति? स्वविषये हि प्रवृत्तं साधनं द्वयं करोति-प्रमेयार्थविषये प्रवृत्तौ संशयविपर्यासौ निवर्त्तयति, निश्चयं चोत्पादयति। तच्च सत्कार्यवादे न सम्भवति। संशयविपर्यासौ हि भवतां मते चैतन्यात्मकौ, बुद्धिः मनःस्वभावौ वा? पक्षद्वयेऽपि न तयोर्निवृत्तिः सम्भवति; चैतन्य-<sup>५</sup> बुद्धिमनसां नित्यत्वेनानयोरपि नित्यत्वात्। नापि निश्चयस्योत्पत्तिः; तस्यापि सदा सत्त्वात्, इति साधनोपन्यासवैयर्थ्यम्। तस्मात्साधनोपन्यासस्यार्थवत्त्वमिच्छता निश्चयोऽसन्नेव साधनोत्पाद्यत इत्यङ्गीकर्त्तव्यम्। तथा चासद्वरणदेहेतुगणस्यानेनैवानैकान्तिकता। यथा चासतोपि निश्चयस्य कारणम्, तन्निष्प-<sup>१०</sup>त्तये च यथा विशिष्टसाधनपरिग्रहः, यथा चास्य न सर्वसात्साधनाभावादेः सम्भवः, यथा चासावसन्नपि शक्येहेतुभिः क्रियते, तत्र च हेतूनां कारणभावोस्ति तथान्यत्रापि भविष्यति।

अथ यद्यपि साधनप्रयोगात्प्राक्सन्नेव निश्चयः, तथापि न तत्प्रयोगवैयर्थ्यं तदभिव्यक्तौ तस्य व्यापारात्। तत्र केयमभि-<sup>१५</sup> व्यक्तिः-किं स्वभावातिशयोत्पत्तिः, तद्विषयज्ञानं वा, तदुपलम्भावरणपगमौ वा? न तावत्स्वभावातिशयः; स हि निश्चयस्वरूपावमिन्नः, मिन्नो वा? यद्यमिन्नः; तर्हि निश्चयस्वरूपवत् सर्वदा सत्त्वाजोत्पत्तिर्युक्ता। अथ मिन्नः; तस्यासाविति सम्बन्धाभावः। स ह्याधारधेयभावलक्षणो वा, अन्यजनकभावलक्षणो<sup>२०</sup> वा? तत्राप्यपक्षोऽयुक्तः; परस्परमनुपकारोपकारैक्योस्तदसम्भवात्। उपकारे वा तस्याप्यर्थान्तरत्वे सम्बन्धासिद्धिरनवस्था च। अर्थान्तरत्वे साधनप्रयोगवैयर्थ्यं निश्चयादेवोपकारोऽनर्थान्तरस्यातिशयस्योत्पत्तेः। अमूर्त्तत्वाच्चातिशयस्याधोगमनाभावाच्च तस्य कश्चिदाधारो युक्तः, अधोगतिप्रतिबन्धकत्वेनाधारस्याव-<sup>२५</sup> स्थितेः। नापि अन्यजनकभावलक्षणः; सर्वदैव निश्चयावधारणस्य सन्निहितत्वेन नित्यमतिशयोत्पत्तिप्रसङ्गात्। न च साधनप्रयोगापेक्षया निश्चयस्यातिशयोत्पादकत्वं युक्तम्; अनुपकारिण्यपेक्षाऽयोगात्। उपकारित्वे वा पूर्ववदोपोऽनवस्था च।

अपि चायमतिशयः सन्, असन्वा क्रियेत? असत्त्वे पूर्व-<sup>३०</sup>वत्साधनानामनैकान्तिकतापत्तिः। सत्त्वे च साधनवैयर्थ्यम्।

१ महदादावपि। २ निश्चयस्वभावातिशययोः। ३ निश्चयेनातिशयस्य। ४ अति-  
शयात्। ५ अन्वयः। ६ निश्चयेनातिशयस्य किमप्यत्र उपकारः अतिशयादनर्थान्तर-  
मिलसिन् दूषणमाह। ७ उपकाराय। ८ न दूषकारकस्योत्पत्तिः।

तत्राप्यभिव्यक्तावनवस्था । तच्च स्वभावातिशयोत्पत्तिरभिव्यक्तिः ।

नापि तद्विषयज्ञानम् । सत्कार्यवादिनो मते तस्यापि नित्यत्वात्, द्वितीयज्ञानस्यासम्भवाच्च । एकमेव हि भवतां मते विज्ञानम्—“आसर्गप्रलयादेका बुद्धिः” [ ] इति सिद्धान्त-  
५ स्वीकारात् ।

तदुपलम्भावरणापगमोप्यभिव्यक्तिर्न युक्ता; तदावरणस्य नित्यत्वेनापगमासम्भवात् । तिरोभावलक्षणोप्यपगमो न युक्तः; अत्यक्तपूर्वैरूपस्य तिरोभावासम्भवात् । द्वितीयोपलम्भस्य चासम्भवात्कथं तदावरणसम्भवो येनास्यापगमोभिव्यक्तिः स्यात् ? न  
१० ह्यावरणमसतो युक्तं स्रष्टुविषयत्वात्तस्य ।

बन्धमोक्षाभावश्च सत्कार्यवादिनोऽनुषज्यते । बन्धो हि मिथ्याज्ञानात्, तस्य च सर्वदावस्थितत्वेन सर्वदा सर्वेषां बद्धत्वात्कुतो मोक्षः ? प्रकृतिपुरुषयोः कैवल्योपलम्भलक्षणतत्त्वज्ञानाच्च मोक्षः, तस्य च सदावस्थितत्वेन सर्वदा सर्वेषां मुक्तत्वात्कुतो बन्धः ?  
१५ सकलव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गश्च; लोकः खलु हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थं प्रवर्तते । सत्कार्यवादपक्षे तु न किञ्चिदप्राप्यमहेयं चास्तीति निरीहमेव जगत्स्यात् ।

यदसत्तच्च केनचित्क्रियते इति चासङ्गतम् । हेतोर्विपक्षे बाधकप्रमाणाभावेनानेकान्तात् । कारणशक्तिप्रतिनियमाद्धि किञ्चि-  
२० देवासत्क्रियते यस्योत्पादकं कारणमस्ति । यस्य तु गगनाम्भोरुद्धादेर्नास्ति कारणं तच्च क्रियते । न हि सर्वं सर्वस्य कारणमिष्टम् । नापि ‘यद्यदसत्तच्चक्रियते एव’ इति व्याप्तिरिष्टा । किं तर्हि ? ‘यत्क्रियते तत्प्रागुत्पत्तेः कथञ्चिदसदेव’ इति । ननु तुर्येप्यसत्कारित्वे कारणानां किमिति सर्वं सर्वस्यासत्तः कारणं न स्यादि-  
२५ त्यन्यत्रापि समानम् । समावे हि सत्कारित्वे किमिति सर्वं सर्वस्य सत्तः कारणं न स्यात् ? कारणशक्तिप्रतिनियमात् ‘सदप्यात्मादि न क्रियते’ इत्यन्यत्रापि समानम् । प्रतिपादितप्रकारेण सर्वेथा

१ स्वभावातिशयेऽपि । २ साधनेन । ३ प्रागुक्तप्रकारेण ग्रन्थानवस्था । ४ तत्रि-  
क्षयम् । ५ निश्चयलक्षणज्ञानापेक्षया निश्चयव्यवस्थापकज्ञानस्य ( तद्विषयज्ञानस्य )  
द्वितीयत्वम् । ६ सांख्यानां । ७ निश्चयस्य । ८ निश्चयज्ञानस्य । ९ आवरणस्य  
अव्यक्तरूपं न संभवति—नित्यत्वात् । १० प्राणिनां । ११ निर्वेकस्याविलक्षणदेः ।  
१२ बन्धमोक्षलक्षणस्य । १३ परमते दध्यादिकार्यं यमि न केनचित्क्रियते ।  
१४ असत्प्रति क्रियत इत्यसिन् । १५ खरविषाणादेः । १६ आत्मादेः । १७ अस-  
त्कार्यवादपक्षेऽपि ।

सतः कार्यत्वासम्भवात्कथञ्चिदसत्कार्यवादे एव चोपादानग्रह-  
णादित्यावेहेतुचतुष्टयस्य विरुद्धता साध्यविपर्ययसाधनात् । तन्नो-  
त्पत्तेः प्राक्कारण(णे)कार्यसङ्गावसिद्धिः ।

यच्चोक्तम्-मेदानां परिमाणादित्यादिहेतोः कारणं च प्रधान-  
मेवैकं सिद्ध्यति; तदप्युक्तिमात्रम्; 'मेदानां परिमाणात्' इत्यस्यै-  
ककारणपूर्वकत्वेनाविनाभावासिद्धेः, अनेककारणपूर्वकत्वेप्यस्या-  
विरोधात् । कारणमात्रपूर्वकत्वेनैव हि तस्याविनाभावः, तत्सा-  
धने च सिद्धसाधनम् ।

'मेदानां समन्वयदर्शनात्' इति चासिद्धम्; न खलु सुख-  
दुःखमोहसमन्वितं प्रमाणतः प्रसिद्धम्, शब्दादिव्यक्तसाचेतन-  
तया चेतनसुखादिसमन्वयविरोधात् । प्रयोगः-ये चैतन्यरहिता  
न ते सुखादिसमन्वयाः यथा गगनाम्मोजादयः, चैतन्यरहिताश्च  
शब्दादय इति ।

ननु चैतन्येन सुखादिसमन्वयस्य यदि व्याप्तिः प्रसिद्धा, तर्हि  
तन्निवर्तमानं शब्दादिषु सुखादिसमन्वयत्वं निवर्तयेत् । न १५  
चासौ सिद्धा, पुरुषस्य चेतनत्वेपि सुखादिसमन्वयासिद्धेः;  
इत्यप्यपेशलम्; स्वसंबेदनसिद्धिप्रस्तावे सुखादिस्वभावतयात्मनः  
प्रसाधनात् ।

यच्चान्यदुक्तम्-प्रसादतापदैत्यादिकार्योपलम्भात्प्रधानान्वित-  
त्वसिद्धिः; तदप्ययुक्तम्; अनेकान्तात्, कापिलयोगिनां हि पुरुषं २०  
प्रकृतिविभक्तं भावयतां पुरुषमालम्ब्य स्वभ्यस्तयोगानां प्रसादो  
भवति प्रीतिश्च, अनभ्यस्तयोगानां क्षिप्रतरमात्मानमपश्यता-  
मुद्वेगः, प्रकृत्या जडमतीनां मोहो जायते, न चासौ पुरुषः प्रधा-  
नान्वितः परैरिष्टः । सङ्कल्पप्रीत्याद्युत्पत्तिर्न पुरुषादिति शब्दा-  
दिष्वपि समानम् । सङ्कल्पमात्रभावित्वे च प्रीत्यादीनामात्मरूप-  
ताप्रसिद्धिः, सङ्कल्पस्य ज्ञानरूपत्वात्, ज्ञानस्य चात्मधर्मतया  
स्वसंबेदनसिद्धिप्रस्तावे प्रतिपादितत्वात् इत्यलमिति प्रसङ्गेन ।

अस्तु वा प्रीत्यादिसमन्वयो व्यक्ते, तथापि न प्रधानप्रसिद्धिः,  
साधनस्यान्यथासिद्धेः । न खलु यथाभूतं त्रिगुणात्मकमेकं नित्यं  
व्यापि चास्य कारणं साधयितुमिष्टं तथाभूतेन कैचिद्धेतोः प्रति- ३०

१ पर्यायरूपतया । २ परमते सर्वथा सत्कार्यं साध्यम् । ३ कथञ्चिदसत्कार्यस्य ।  
४ शब्दादिव्यक्तम् । ५ तथा इति मूलपुस्तके पाठः । ६ मिश्रम् । ७ मनसः ।  
८ सङ्कल्पाप्रीत्यादिहेतुः शब्दादिरिति । ९ ज्ञानस्यात्मधर्मत्वसमर्थनविस्तरेण ।  
१० समन्वयदर्शनादित्यस्य । ११ व्याप्त्यसिद्धेः । १२ वृथान्ते ।



बन्धः सिद्धः । नापि यदात्मकं कार्यमुपलभ्यते कारणेनाप्यवश्यं तदात्मना भाव्यम्, अन्यथा महदादौ हेतुमत्त्वानित्यत्वाव्यापित्वादिधर्मोपलम्भात् प्रधानेपि तादृष्यप्रसिद्धिप्रसङ्गादितोर्विरुद्ध-  
तानुषङ्गः ।

५ यद्येदं निदर्शनमुक्तम्—‘यथा घटशरावादयो मृज्जातिसमन्विताः’ इति, तदप्यसङ्गतम्, साध्यसाधनविकलत्वादस्य । न हि मृत्त्वसुवर्णत्वादिजातिनित्यनिरंशव्याप्येकरूपा प्रमाणतः प्रसिद्धा येन तदात्मककारणसम्भूतत्वं तत्समन्वितत्वं च प्रसिद्धेत्, प्रतिव्यक्ति तस्याः प्रतिभासमेवाद्भेदसिद्धेः । विस्तरेण  
१० चास्याः सिद्धभावं सामान्यविचारप्रस्तावे प्रतिपादयिष्याम इत्यलमतिविस्तरेण ।

तथा ‘समन्वयात्’ इत्यस्यानेकान्तः, चेतनत्वमोक्तत्वादिधर्मैः पुरुषाणाम्, प्रधानपुरुषाणां च नित्यत्वादिधर्मैः समन्वितत्वेपि तथाविधैककारणपूर्वकत्वानभ्युपगमात् ।

१५ इत्थेन शक्तितः प्रवृत्तेरित्याद्येनैकान्तिकत्वादिदोषदुष्टत्वादेककारणपूर्वकत्वासाधनमित्यवसातव्यम् । तथा हि—प्रेक्षावत्कारणमेतैर्मध्यः प्रसाध्यते, कारणमात्रं वा ? प्रथमविकल्पे अनेकान्तः, विनापि हि प्रेक्षावता कर्मा स्वहेतुसामर्थ्यप्रतिनियमात्प्रतिनियतकार्यस्योत्पत्त्यविरोधात् । न च प्रधानं प्रेक्षावद्युक्तं तस्याचेतन-  
२० त्वात् प्रेक्षायाश्च चेतनापर्यायत्वात् । अथ कारणमैवं साध्यते, तर्हि सिद्धसाध्यता । न ह्यसौकं कारणमन्तरेण कार्यस्योत्पादोऽसीष्टः । कारणमात्रस्य च ‘प्रधानम्’ इति संज्ञाकरणे न, किञ्चिद्विरुध्यतेऽर्थमेदाभार्यात् ।

किञ्च, शक्तितः प्रवृत्तेरित्यनेन यदि कथञ्चिद्व्यतिरिक्तशक्ति-  
३० योगिकारणमात्रं साध्यते, तदा सिद्धसाध्यता । अथ व्यतिरिक्त-

१ सत्त्वादि । २ समन्वयादिति हेतुनित्यत्वादिधर्मोपेते प्रधाने साध्ये प्रयुक्तोऽनित्यत्वादिधर्मोपेतप्रधानप्रसाधनादिरुद्धः । ३ सा नित्यनिरञ्जव्याप्येकरूपभातिः । ४ तथा नित्यनिरञ्जव्याप्येकरूपवाला । ५ नित्यनिरञ्जव्याप्येकरूपभातिनिराकरणविस्तरेण । ६ नित्यनिरञ्जव्याप्येकरूपवाला । ७ हेतोः । ८ निरञ्जतादिभिः । ९ परेण । १० हेतुद्वयनिराकरणपरेण अन्येन । ११ हेतुत्रयमपि । १२ नित्यत्वमेवायतः । १३ हेतुभ्याः । १४ अकृष्यभूरादिकं प्रेक्षावत्कारणमन्तरेणापि दृश्यतेऽप्रः सर्वं प्रेक्षावत्कारणपूर्वकं वा नेति सन्दिग्धानेकान्तः । १५ कारणसामान्यम् । १६ जैनानाम् । १७ असाभिः कारणमात्रं यवन्तिः प्रधानं प्रतिपाद्यते इत्यत्र । १८ द्रव्यस्वभावेन । १९ कार्यनिष्पादने ।

विचित्रशक्तियुक्तमेकं नित्यं कारणम्; तदानैकैकान्तिकता हेतोः । तथाभूतेन क्वचिदन्वयासिद्धेरसिद्धता च, न खलु व्यतिरिक्तशक्ति-  
वशात् कस्यचित्कारणस्य क्वचित्कार्ये प्रवृत्तिः प्रसिद्धा, शक्तीनां  
स्वात्मभूतत्वात् ।

यच्चैदमुक्तम्-अविभागाद्वैश्वरूप्यस्य; तदप्यसाम्प्रतम्; प्रल-५  
यकालस्यैवाप्रसिद्धेः । सिद्धौ वा तदासौ महदादीनां लयो भवन्  
पूर्वस्वभावप्रच्युतौ भवेत्, अप्रच्युतौ वा? यदि प्रच्युतौ,  
तर्हि तेषां तदा विनाशसिद्धिः स्वभावप्रच्युतेर्विनाशरूपत्वात् ।  
अथाप्रच्युतौ; तर्हि लयानुपपत्तिः, नहि अविकलमात्मनस्तत्त्व-  
मनुभवतः कस्यचिद्लयो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । परस्परविरुद्धं १०  
चैवम् 'अविभागो वैश्वरूप्यम्' इति च । वैश्वरूप्यं च प्रधान-  
पूर्वत्वे नोपपद्यत एव, तन्मयत्वेन सर्वस्य जगतस्तत्स्वरूपवदेक-  
त्वप्रसङ्गात्, इति कस्याऽविमोहः स्यादिति? तत्र प्रधानस्य  
सकलजगत्कर्तृत्वं सिद्धम्, यतस्तत्सिद्धौ प्रधानस्य सर्वज्ञता,  
कर्तृत्वस्य कारणशक्तिपरिज्ञानाविनाभावसिद्धेरित्युक्तं प्रागीश्वर- १५  
निराकरणे, तदलमतिप्रसङ्गेन ।

इति तेन सेश्वरसाङ्ख्यैर्यदुक्तम्-'न प्रधानादेव केवलादमी  
कार्यमेदः प्रवर्तन्ते तस्याचेतनत्वात् । न ह्यचेतनोऽधिष्ठायैक-  
मन्तरेण कार्यमारम्भमाणो दृष्टः । न चान्यात्माऽधिष्ठायको युक्तः;  
सृष्टिकाले तस्याज्ञत्वात् । तथा हि-बुद्ध्यव्यवसितमेवार्थं पुरुष- २०  
श्चेतयते । बुद्धिसंसर्गाच्च पूर्वमसावज्ञ एव, न जातु कश्चिदर्थं  
विजानाति । न चाज्ञातमर्थं कश्चित्कर्तुं शक्तः । अतो नासौ कर्त्ता ।  
तस्मादीश्वर एव प्रधानापेक्षः कार्यमेदानां कर्त्ता, न केवलः । न  
खलु देवदत्तादिः केवलः पुत्रम्, कुम्भकारो वा घटं जनयति'  
इति; तदपि प्रतिव्यूढम्, प्रत्येकं तयोः कर्तृत्वस्यासम्भवे सहि- २५  
तयोरप्यसम्भवात्, अन्यथा प्रत्येकपक्षनिक्षिप्तदोषानुपपन्नः ।

अथोच्यते-यदि नाम प्रत्येकं तयोः कर्तृत्वासम्भवस्तथापि  
सहितयोः कथं तदभावः? न हि केवलानां चक्षुरीदीनां रूपादि-

१ धर्मस्वभावे भेदः । २ साध्यत्वे इति शेषः । ३ सन्दिग्धरूपाः । ४ तत्त्व ।  
५ स्वरूपम् । ६ वस्तुनः । ७ प्रधानात्मनोरपि लयप्रसङ्गात् । ८ अविभागाद्वै-  
श्वरूप्यमिति । ९ यकत्वम् । १० अनेकत्वम् । ११ लोके आदौ विभागोक्तिरिति  
...दा पश्चाद्विभागानामविभागः स्यात् । १२ कर्तृत्वं कारणशक्तिज्ञानाविनाभावो न  
भवतीति समर्थनेन । १३ प्रकृतीश्वरनिराकरणपरेण अन्येन । १४ महदादयः ।  
१५ ईश्वर प्रेरकम् । १६ सप्तार्वात्मा । १७ कार्यम् । १८ सहितयोस्तयोः कर्तृत्व-  
सम्भवश्चेत् । १९ आलोकादीनां च ।

ज्ञानोत्पत्तिसामर्थ्याभावे सहितानामप्यसौ युक्तः, तदप्युक्ति-  
मात्रम्; यतः साहित्यं नामानयोरन्योन्यं सहकारित्वम्। तच्चा-  
न्योन्यातिशयाधानाद्वा स्यात्, एकार्थकारित्वाद्वा? न तावदाद्य-  
कल्पना युक्ता; नित्यत्वेनानयोर्विकाराभावात्। नापि द्वितीय-  
५ कल्पना युक्ता; कार्याणां यौगपद्यप्रसङ्गात्। अप्रतिहतसामर्थ्यस्ये-  
श्वरप्रधानाख्यकारणस्य सदा सन्निहितत्वेनाविकलकारणत्वात्ते-  
षाम्। तथाहि—यद्यदाऽविकलकारणं तच्चदा भवत्येव यथाऽन्त्य-  
क्षणप्राप्तायाः सामग्रीतोऽङ्कुरः, अविकलकारणं चाशेषं कार्यमिति।

ननु यद्यपि कारणद्वयमेतन्नित्यं सन्निहितं तथापि क्रमेणैवामी  
१० कार्यभेदाः प्रवर्त्तिष्यन्ते। महेश्वरस्य हि प्रधानगताः सत्त्वादय-  
स्त्रयो गुणाः सहकारिणः, तेषां च क्रमवृत्तित्वात्कार्याणामपि  
क्रमः। तथाहि—यदोद्भूतवृत्तिना रजसा युक्तो भवत्यसौ तदा  
सर्गहेतुः प्रजानां भवति प्रसवकार्यत्वाद्भ्रजसः, यदा तु सत्त्व-  
मुद्भूतवृत्ति संश्रयते तदा लोकानां स्थितिकारणं भवति सत्त्वस्य  
१५ स्थितिहेतुत्वात्, यदा तमसोद्भूतशक्तिना समायुक्तो भवति तदा  
प्रलयं सर्वजगतः करोति तमसः प्रलयहेतुत्वात्। तदुक्तम्—

“रजोजुवे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे।  
अजौय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः  
॥ १ ॥” [ कादम्बरी पृ० १ ]

२० इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतः प्रकृतीश्वरयोः सर्गस्थितिप्रलयानां  
मध्येऽन्यतमस्य क्रियाकाले तदपरकार्यद्वयोत्पादने सामर्थ्यमस्ति,  
न वा? यद्यस्ति, तर्हि सृष्टिकालेपि स्थितिप्रलयप्रसङ्गोऽविकल-  
कारणत्वादुत्पादवत्। एवं स्थितिकालेप्युत्पादविनाशयोः, विनाश-  
काले च स्थित्युत्पादयोः प्रसङ्गः, न चैतद्युक्तम्। न खलु पर-  
२५ स्परपरिद्वारेणावस्थितानामुत्पादादिधर्माणामेकत्र धर्मिण्येकदा  
सङ्भावो युक्तः। अथ नास्ति सामर्थ्यम्; तदैकमेव स्थित्यादीनां  
मध्ये कार्यं सदा स्यात् यदुत्पादने तयोः सामर्थ्यमस्ति, नापरं  
कदाचनापि तदुत्पादने तयोः सदा सामर्थ्याभावात्। अविकारि-  
णोश्च प्रकृतीश्वरयोः पुनः सामर्थ्योत्पत्तिविरोधात्, अन्यथा  
३० नित्यैकस्वभावताव्याघातः।

अथ तत्त्वभावेपि प्रधाने सत्त्वादीनां मध्ये यदेवोद्भूतवृत्ति  
तदेव कारणतां प्रतिपद्यते नान्यत्, तत्कथं स्थित्यादीनां यौगपद्य-

१ प्रसव उत्पत्तिः। २ ईश्वरः कर्ता। ३ न जायते ब्रह्मणो ब्रह्मस्यै। ४ त्रयी  
वेदाख्यौ। ५ सत्त्वरजसमोक्त्याय। ६ स्थितिप्रलयौ धर्मिणौ सृष्टिकाले भवतः तदा  
अविकलकारणत्वात्। ७ प्रजालक्षणे। ८ सामर्थ्यमुत्पद्यते वेदः।

सङ्ग इति ? अत्रोच्यते-तेषामुद्भूतवृत्तित्वं नित्यम्, अनित्यं वा ? तावन्नित्यम्, कादाचित्कत्वात्, स्थित्यादीनां यौगपद्यप्रसङ्गाच्च । अथानित्यम्, कुतोऽस्य प्रादुर्भावः ? प्रकृतीश्वरादेव, अन्यतो वा हेतोः, स्वतन्त्रो वा ? प्रथमपक्षे सदास्य सद्भावप्रसङ्गः, प्रकृतीश्वराख्यस्य हेतोर्नित्यरूपतया सदा सन्निहितत्वात् । न चान्यतस्त-<sup>५</sup>प्रादुर्भावो युक्तः, प्रकृतीश्वरव्यतिरेकेणापरकारणस्यानभ्युपगमात् । तृतीयपक्षे तु कादाचित्कत्वविरोधोऽस्य स्वातन्त्र्येण भवतौ देशकालनियमायोगात् । स्वभावान्तरायचतुर्त्तयो हि भावाः कादाचित्काः स्युः तद्भावाभावप्रतिबद्धत्वात्तत्सत्त्वासम्बन्धोः, नान्ये तेषामपेक्षणीयस्य कस्यचिदभावात् । १०

किञ्च, आत्मानं जनयति भौवो निष्पन्नः, अनिष्पन्नो वा ? न तावन्निष्पन्नः, तस्यामवस्थायामात्मनोपि निष्पन्नरूपाव्यतिरेकितया निष्पन्नत्वात्निष्पन्नस्वरूपवत् । नाप्यनिष्पन्नः, अनिष्पन्नस्वरूपत्वादेव गगनाम्भोजवत् । तस्मात्प्रकारान्तरेणाशेषवृत्तासिद्धेरावरणापाये एवाशेषविषयं विज्ञानम् । तच्चात्मन एवेति परीक्षा-<sup>१५</sup>दक्षैः प्रतिपत्तव्यम् । तच्च विज्ञानमनन्तदर्शनसुखवीर्याविनाभावि-त्वादनन्तचतुष्टयस्वरूपलाभलक्षणः, तस्यापेक्षप्रतिबन्धकस्या-त्मस्वरूपतया जीवन्मुक्तिवत्परममुक्तावप्यभावासिद्धेः ॥

ये त्वात्मनो जीवन्मुक्तौ कवलाहारमिच्छन्ति तेषां तत्रास्यान-<sup>२०</sup>न्तचतुष्टयस्वरूपाभावोऽनन्तसुखविरहात् । तद्विरहश्च बुभुक्षा-प्रभवपीडाक्रान्तत्वात् । तत्पीडाप्रतीकारार्थं हि निखिलजनानां कवलाहारग्रहणप्रयासः प्रसिद्धः । ननु भोजनादेः सुखाद्यनुकूलत्वात्कथं भगवतोऽतोऽनन्तसुखाद्यभावः ? इदं दृश्यते ह्यसदादौ श्रुत्पीडिते निश्शक्तिके च भोजनसद्भावे सुखं वीर्यं चोत्प-<sup>२५</sup>द्यमानम्, इत्यप्ययुक्तम्, असदादिमुखादेः कादाचित्कतया विषयेभ्य एवोत्पत्तिसम्भवात् । भगवत्सुखादेश्च तत्सम्भवेऽनन्तताव्याघातः । तथाहि-क्षुत्क्षामकुक्षिर्निश्शक्तिकश्चासौ यदा कवलाहारग्रहणे प्रवृत्तस्तदैव तदीयसुखवीर्ययोर्नष्टत्वात्कुतोऽनन्तता ? वीतरागद्वेषत्वाच्चास्य तद्ग्रहणप्रयासायोगः । प्रयोगः-कैवली न ३०

१ कारणस्य । २ चावमानस्य । ३ कार्यलक्षणाद्भावादपरः कारणलक्षणो यावः समाधानात् । ४ कारणापीनइत्तम इत्यर्थः । ५ तस्य कार्यस्य । ६ स्वरूपस्य । ७ कार्यलक्षणः । ८ निष्पन्नायात् । ९ जगत्कर्तृत्वादिलक्षणेन । १० जीवन्मयत्वेन । ११ श्रेयपटाः । १२ भगवदीय ।

मुक्ते रागद्वेषाभावानन्तवीर्यसङ्गावान्यथानुपपत्तेः । ननु सममित्र-  
शत्रूणां साधूनां भोजनादिकं कुर्वतामपि वीतरागद्वेषत्वसम्भ-  
वादनैकान्तिको हेतुः । इत्यप्यसाम्प्रतम् ; मोहनीयकर्मणः सङ्गावे  
भोजनादिकं कुर्वतां प्रमत्तगुणस्थानप्रवृत्तीनां साधूनां परमार्थतो  
५ वीतरागत्वासम्भवात् । तन्नानैकान्तिकोऽयं हेतुः । नापि विरुद्धो  
विपक्षे वृत्तेरभावात् ।

कवलाहारित्वे चास्य सरागत्वप्रसङ्गः । प्रयोगः—यो यः कवलं  
मुक्ते स स न वीतरागः यथा रथ्यापुरुषः, मुक्ते च कवलं  
भवन्मतः केवलीति । कवलाहारो हि सरणामिलाषाभ्यां भुज्यते,  
१० मुक्तवता च कण्ठोष्ठप्रमाणतस्तृतेनाऽरुचितस्त्यज्यते । तथा  
चामिलाषाऽरुचिभ्यामाहारे प्रवृत्तिनिवृत्तिमत्त्वात्कथं वीतराग-  
त्वम् ? तदभावाच्चासता । अथाभिलाषाद्यभावेऽप्याहारं गृह्णात्यसौ  
तथाभूतातिशयत्वात्, ननु चाहाराभावलक्षणोप्यतिशयोऽस्या-  
भ्युपगन्तव्योऽनन्तगुणत्वाद्गगनगमनाद्यतिशयवत् ।

१५ अथाहाराभावे देहस्थितिरेवास्य न स्यात् ; तथाहि—भगवतो  
देहस्थितिः आहारपूर्विका देहस्थितित्वादसदादिदेहस्थितिवत् ।  
नन्वेनेनानुमानेनास्याहारमात्रम्, कवलाहारो वा साध्येत ?  
प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता, 'आसयोगकेवलिनो जीवा आहारिणः'  
इत्यभ्युपगमात्, तत्र च कवलाहाराभावेऽप्यन्यस्य कर्मनोकर्म-  
२० दानलक्षणस्याविरोधात् । षड्विधो आहारः—

“नोर्कम्म कम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो ।

ओज मणो वि य कमसो आहारो छव्विहो जेयो ॥” [ ]

इत्यभिधानात् । न खलु कवलाहारेणैवाहारित्वं जीवानाम् ;  
एकेन्द्रियाण्डजत्रिदशानाममुज्जानतिर्यग्मनुष्याणां चानाहारित्व-  
२५ प्रसङ्गात् । न चैवम्—

“विगैहगइमावण्णा केवलिणो समुह्वो अजोगी य ।

सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिणो जीवा ॥”

[ जीवकाण्ड गा० ६६५, आचकप्रश्न० गा० ६८ ]

१ कवलाहाराभावमन्तरेणानुपपत्तेस्तयोः । २ हेतोरैकाग्रं गृहीत्वा दूयति ।  
३ कवलाहारिणि । ४ अभिलाषाद्यभावेऽप्याहारग्रहणलक्षणम् । ५ जैनैः । ६ नोर्कर्म  
( १ ), कर्महारः ( २ ), कवलाहारः ( ३ ), लेप्पः आहारः ( ४ ) ओजः  
( ५ ), मानसिकः ( ६ ) अपि च क्रमशः आहारः षड्विधो ज्ञेयः । ७ विग्रहगति-  
मापन्नाः केवलिनः समुद्घात ( दर्पकपाटेति समुद्घातइत्ये ) यताः ‘अयोगिनश्च’ ।  
सिद्धाश्च अनाहाराः तेषां आहारिणो जीवाः । ८ दर्पकपाटपक्षायाश्च । ९ अर्हदव-  
स्थातः अन्ये सिद्धावस्थात आदौ वा अवस्था सा जयोगावस्था ।

इत्यभिधानात् । द्वितीयपक्षे तु त्रिदशादिमिर्व्यभिचारः, तेषां कवलाहारभावेऽपि देहस्थितिसम्भवात् । अथ 'औदारिकशरीर-स्थितित्वात्' इति विशेष्योच्यते । तथाहि-या या औदारिक-शरीरस्थितिः सा सा कवलाहारपूर्विका यथासदादीनाम्, औदारिकशरीरस्थितिश्च भगवतः, इति न त्रिदशशरीरस्थित्या व्यभिचारः, इत्यप्यसारम्; तदीयौदारिकशरीरस्थितेः परमौ-दारिकशरीरस्थितिरूपतयाऽऽसदाद्यौदारिकशरीरस्थितिविलक्षण-त्वात् । तस्याश्च केवलावस्थायां केशादिवृक्षभावबहुत्तयभावोप्य-विरुद्ध एव ।

कथं चैवं बोधिनो भगवत्प्रत्यक्षमतीन्द्रियं स्यात् ? शक्यं हि १० वक्तुम्-तत्प्रत्यक्षमिन्द्रियजं प्रत्यक्षत्वादसदादिप्रत्यक्षवत् । तथा सरागोऽसौ वक्तृत्वात्तद्वदेव । न ह्यसदादौ हृष्टो धर्मः कैश्चित्तत्र साध्यः कैश्चित्तेति वक्तुं युक्तम्, खेच्छाकारित्वानुपपन्नात् । तथा च न कश्चित्केवली वीतरागो वा, इति कस्य भुक्तिः प्रसाध्यते ? यदि वैकृत्यं तच्छरीरस्थितेः कवलाहारपूर्वकत्वोपलम्भात्सर्वत्र १५ तथामावः साध्यते; तर्हि घटादौ सन्निवेशादेर्बुद्धिमत्पूर्वकत्वोप-लम्भात्तन्वादीनामप्यतो बुद्धिमत्पूर्वकत्वसिद्धिः स्यात् । द्विचन्द्रा-दिप्रत्ययस्य निरालम्बनत्वोपलम्भाच्चाखिलप्रत्ययानां निरालम्ब-नत्वप्रसङ्गः स्यात् । अथ यादृशं बुद्धिमत्कारणव्याप्तं सन्निवेशादि घटादौ हृष्टं तादृशस्य तन्वादिष्वभावात्तत्तेषां तत्पूर्वकत्व- २० सिद्धिः; तर्हि यौदृशमौदारिकशरीरस्थितित्वमसदादौ तद्भुक्ति-पूर्वकं हृष्टं तादृशस्य भगवत्परमौदारिकशरीरस्थितावभावाच्चा-तस्तस्यास्तद्भुक्तिपूर्वकत्वसिद्धिः । यथा च प्रत्ययत्वाविशेषेऽपि कस्यचिन्निरालम्बनत्वमन्यस्यान्यत्वम्, तथा च तच्छरीरस्थिते-स्तत्त्वाविशेषेऽपि निराहारत्वमिर्तरेष्वेव्यतामविशेषात् । २५

अथ 'अन्यौदृशमौदारिकशरीरस्थितित्वमन्यौदृशाश्च पुरुषा न सन्ति' इत्युच्यते तर्हि मीमांसकमतानुप्रवेशः । अतो यथान्या-

१ औदारिकशरीरस्थितित्वात्कवलाहारित्वमेवेति । २ कवलाहारलक्षणः । ३ सरा-गत्वसेन्द्रियत्वलक्षणः । ४ भगवदः सरागत्वे तत्प्रत्यक्षसेन्द्रियवत्त्वे च । ५ अस-दादौ । ६ अक्रियादिशिनः कृन्तुश्रुत्यादकत्वम् । ७ सप्तपातुमलोपेतम् । ८ तत्स-कवलस्य । ९ औदारिकशरीरस्थितित्वादिति हेतोः । १० कवलस्य । ११ द्विचन्द्रादि-प्रत्ययस्य । १२ घटादिप्रत्ययस्य । १३ सालम्बनत्वम् । १४ आहारपूर्वकत्वम् । १५ परमौदारिकम् । १६ अनाहारिणः । १७ मीमांसकमतेति सर्वशुल्लक्षणोऽन्या-दृशः पुरुषो नास्ति ।

दशाः सन्ति पुरुषास्तथा तत्स्थितित्वमपि । कथमन्यथा सप्तधातु-  
मलापेतत्वं तच्छरीरस्य स्यात् ? तत्सम्भवे तत्स्थितेरतद्भुक्तिपूर्व-  
कत्वमपि स्यात् ।

तपोमाहात्म्याच्चतुरास्यत्वादिविज्ञाभुक्तिपूर्वकत्वे तस्याः को  
५ विरोधः ? दृश्यते च पञ्चकृत्वो भुजानस्य यादृशी तच्छरीर-  
स्थितिस्तादृश्येव प्रतिपक्षभावनोपेतस्य चतुस्त्रिद्व्येकभोजनस्यापि ।  
तथा प्रतिदिनं भुजानस्य यादृशी सा तादृश्येवैकद्व्यादिदिनान्तरि-  
तभोजिनोपि । श्रूयते च बाहुबलिप्रभृतीनां संवत्सरप्रमिताहार-  
वैकल्येपि विशिष्टा शरीरस्थितिः । आयुःकर्मैव हि प्रधानं तत्स्थिते-  
१० निमित्तम्, मुक्त्यादिस्तु सहायमात्रम् । तच्छरीरोपचर्योपि  
लाभान्तरायविनाशात्प्रतिसमयं तदुपचयनिमित्तभूतानां दिव्य-  
परमाणूनां लाभाद् घटते । एवं छन्नस्यावस्थावच्च केवल्यवस्थाया-  
मप्यस्य भुक्त्यऽभ्युपगमे अक्षिपक्षनिमेषो नञ्जकेशवृद्ध्यादिश्चा-  
भ्युपगम्यताम् । तदभावातिशयाभ्युपगमे वा मुक्त्यभावातिशयो-  
१५ प्यभ्युपगन्तव्यो विशेषाभावात् ।

ननु मासं वर्षं वा तदभावे तत्स्थितावपि नाऽऽकालं तत्स्थितिः  
पुनस्तदाहारे प्रवृत्त्युपलम्भादिति चेत्, कुत एतत् ? आकालं  
तत्स्थितेरनुपलम्भाच्चेत्, सर्वज्ञवीतरागस्याप्यत एवासिद्धेर्लोभ-  
मिच्छतो मूलोच्छेदः स्यात् । दोषावरणैर्योर्हान्यतिशयोपलम्भेन  
२० कैचिदाल्यन्तिकप्रक्षयसिद्धेस्तत्सिद्धौ कचिच्छरीरिण्यात्यन्तिको  
मुक्तिप्रक्षयोपि प्रसिध्येत् तदुपलम्भस्याप्राप्यविशेषात् । तन्न  
शरीरस्थितेर्भगवतो भुक्तिसिद्धिः ।

अथोच्यते-वेदनीयकर्मणः सङ्गावात्तत्सिद्धिः, तथाहि-भग-  
वति वेदनीयं स्वफलदायि कर्मत्वादायुःकर्मवत्, तदप्युक्ति-  
२५ मात्रम्, यतोऽतोऽप्यनुमानात्तत्फलमात्रं सिध्येन्न पुनर्भुक्तिलक्ष-  
णम् । अथ क्षुदादिनिमित्तवेदनीयसङ्गावाद्भुक्तिसिद्धिः, ननु  
तन्निमित्तं तत्तत्रास्तीति कुतः ? क्षुदादिफलाच्चेद्व्योन्याश्रय-  
सिद्धे हि भगवति तन्निमित्तकर्मसङ्गावे तत्फलसिद्धिः, तस्याश्च  
तन्निमित्तकर्मसङ्गावसिद्धिरिति ।

१ अन्यादृशौदारिकशरीरस्थितेः । २ अकल । ३ भोजने विरक्तभावनोपेतस्य ।  
४ पुष्टिः । ५ बीतरागस्य । ६ अतिशये । ७ कालमभिन्याय्य । भरणपर्यन्तमित्यर्थः ।  
८ कवलाहारमन्तरेण । ९ तस्य कवलस्य । १० सर्वज्ञसङ्गावत् । ( कवलाहारवत् )  
११ सर्वज्ञसङ्गावोच्छेदः । १२ दोषा रागादिभावकर्म । १३ आवरणं द्रव्यकर्म ।  
१४ दृष्टान्ते । १५ आत्मनि । १६ स्वफलं क्षुदादिदुःखम् ।

अथाऽसातवेदनीयोदयात्तत्र तत्सिद्धिः; न; सामर्थ्यवैकल्यात् तस्य । अविकलसामर्थ्यं ह्यसातादिवेदनीयं स्वकार्यकारि, सामर्थ्य-  
वैकल्यं च मोहनीयकर्मणो विनाशात्सुप्रसिद्धम् । यथैव हि पतिते  
सैन्यनायकेऽसामर्थ्यं सैन्यस्य तथा मोहनीयकर्मणि नष्टे भगवत्स-  
सामर्थ्यमघातिकर्मणाम् । यथा च मन्त्रेण निर्विपीकरणे कृते मन्त्रि-  
णोपभुज्यमानमपि विपं न दाहमूर्च्छादिकं कर्तुं समर्थम्, तथा  
असातादिवेदनीयं विद्यमानोदयमप्यसति मोहनीये निःसामर्थ्य-  
त्वात् क्षुब्धः स्वकरणे प्रभु सामग्रीतः कार्योत्पत्तिप्रसिद्धेः ।

मोहनीयामावश्च प्रसिद्धो भगवतः, तीव्रतरशुक्लध्यानानलनिर्द-  
ग्धघनघातिकर्मन्धनत्वात् । यदि च तदभावेऽपि तदुदयः स्वकार्य-  
कारी स्यात्, तर्हि परघातकर्मोदयात्परान् यष्ट्यादिभिस्ताडयेत्  
स एव वा परैस्ताडयेत् । परघातोदयोऽपि हि संयतानामर्हद्व-  
स्रानानामस्ति । अथ परमकारुणिकत्वात्तदुदयेऽपि न परांस्ताडयति  
उपसर्गाभावाच्च न च तैस्ताड्यते; तर्ह्यनन्तसुखवीर्यत्वाद्वाध्याविर-  
हाच्चासातादिवेदनीयोदये सत्यपि भोजनादिकं न कुर्यात् । मोह-  
कार्यत्वाच्च कर्तव्याः कथं तत्क्षये परमकारुणिकत्वं तस्य स्यात् ?

किञ्च, कर्मणां यद्युदयो निरपेक्षः कार्यमुत्पादयति; तर्हि  
त्रिवेदानां कषायाणां वा प्रमत्तादिषूदयोस्तीति मैथुनं भ्रूकुट्या-  
दिकं च स्यात् । ततश्च मनसः संक्षोभात्कथं शुक्लध्यानातिः क्षप-  
कश्रेण्यारोहणं वा ? तदभावाच्च कथं कर्मक्षपणादि घटेत् ? २०

नन्वेवं नामाद्युदयोऽपि तत्र स्वकार्यकारी न स्यात्; इत्यप्यसङ्ग-  
तम्; शुभप्रकृतीनां तत्राप्रतिबद्धत्वेन स्वकार्यकारित्वसम्भवात् ।  
यथा हि बलवता राक्ष्सा स्वमार्गानुसारिणा लब्धे देशे दुष्टा जीव-  
न्तोऽपि न स्वदुष्टाचरणस्य विधातारः शुजनास्त्वप्रतिहततया स्वका-  
र्यस्य विधातारस्तथा प्रकृतमपि । कथं पुनरशुभप्रकृतीनामेवाहति २५  
प्रतिबद्धं सामर्थ्यम् न पुनः शुभप्रकृतीनामिति चेत्; उच्यते-  
अशुभप्रकृतीनामर्हत्तुमागं घातयति न तु शुमानाम्, यतो  
गुणघातिनां दण्डो नाऽदोषाणाम् । यदि च प्रतिबद्धसामर्थ्यमप्य-  
सातादिवेदनीयं स्वकार्यकारि स्यात्, तर्हि दण्डकघाटप्रतरादिवि-  
धानं भगवतो व्यर्थम् । तद्धि यदा न्यूनमायुर्वेदनीयादिकमधिक-  
स्थितिकं भवति तदाऽनेन कर्मणां समस्थित्यर्थं विधीयते । न  
चाधिकस्थितिकत्वेन फलदानसमर्थं कर्म उपायशतेनाप्यन्यथा

१ इति चेन्न । २ केवलशुणसानान्नानाम् । ३ उदितस्य कर्मणः स्वकार्यकारि-  
त्वाभावात्प्रकारेण । ४ दुष्टनिग्रहशिष्टपालनकारिणा । ५ शुभाशुभकर्म । ६ शक्तिम् ।



कर्तुं शक्यमिति न कश्चिन्मुक्तः स्यात् । अथ तपोमाहात्म्या-  
न्निर्जीर्णमधिकस्थितिकत्वेन फलदानासमर्थम् आयुःकर्मसमानं  
क्रियते; तथा वेद्यैमपि क्रियतामविशेषात् ।

- एतेनेदमप्यपास्तम्-यदि वेदनीयमर्फलम् तत्र तन्नास्त्येव  
५ ज्ञानावरणादिवत्, तथा च कर्मपञ्चकस्याभावस्तत्र प्राप्नोतीति ।  
कथम् ? यद्यायुरधिकानि वेद्यादीनि स्वफलदानसमर्थानि; तर्हि  
मुक्त्यभावः । नो चेन्न तेषां कर्मत्वमिति तदपनयनाय योगिनो  
लोकपूरणादिप्रयासो व्यर्थः । अनुष्ठानविशेषेणापहतसामर्थ्याना-  
मवस्थानं वेद्येऽपि समानम् । न च कारणमस्तीत्येतावतैव कार्यो-  
१० त्पत्तिः, अन्यथेन्द्रियादिकैर्यस्याप्यनुषङ्गाद्भगवतो मतिज्ञानस्य  
रागादीनां च प्रसङ्गः । अथावरणक्षयोपशमस्य मोहनीयकर्मणश्च  
सहकारिणो विरहाच्चेन्द्रियादि स्वकार्ये व्याप्रियते; अत एव वेद-  
नीयमपि न व्याप्रियेत । न ह्यत्यन्तमात्मनि परत्र वा विरतव्यामो-  
हस्तदर्थं किञ्चिदादातुं हातुं वा प्रवर्तते । प्रयोगः-यो यत्रात्यन्तं  
१५ व्यावृत्तव्यामोहः स तदर्थं किञ्चिदादातुं हातुं वा न प्रवर्तते यथा  
व्यावृत्तव्यामोहा माता पुत्रे, व्यावृत्तात्यन्तव्यामोहश्च भगवान्,  
ततः सोऽपि भोजनमादातुं क्षुदादिकं वा हातुं न प्रवर्तते । प्रवृत्तौ  
वा मोहवत्त्वप्रसङ्गः, तथाहि-यस्तदादातुं हातुं वा प्रवर्तते स  
मोहवान् यथाऽसदादिः, तथा चायं श्वेतपटमभिमतो जिन इति ।  
२० तथा च कुतोऽस्यातता रथ्यापुदपवत् ?

- न चेयं बुभुक्षा मोहनीयानपेक्षस्य वेदनीयस्यैव कार्यम्, येना-  
त्यन्तव्यावृत्तव्यामोहेऽप्यस्याः सम्भवः । भोक्तुमिच्छा हि बुभुक्षा,  
सा कथं वेदनीयस्यैव कार्यम् ? इतरथा योन्यादिषु रन्तुमिच्छा  
रिरंसा तत्कार्यं स्यात् । तथा च कवलाहारवत् कयादावपि तत्प्र-  
२५ वृत्तिप्रसङ्गाधेश्वरादस्य विशेषः । यथा च रिरंसा प्रतिपक्षभा-  
वनातो निवर्तते तथा बुभुक्षापि । प्रयोगः-भोजनाकाङ्क्षा प्रतिपक्ष-  
भावनातो निवर्तते आकाङ्क्षात्वात् कयाद्याकाङ्क्षावत् । नन्वस्तु  
तद्भावनाकाले तन्निवृत्तिः, पुनस्तदभावे प्रवृत्तिरित्येतत् कयाद्या-  
काङ्क्षायामपि समानम् । यथा चास्याश्चेतसः प्रतिपक्षभावनाम-  
३० यत्त्वाद्यत्यन्तनिवृत्तिस्तथा प्रकृताकाङ्क्षया अपि ।

१ शुद्धव्यानतपोमाहात्म्येन भगवता । २ फलदानासमर्थम् । ३ अवाप्तिकर्म-  
त्वम् । ४ फलदानासमर्थम् । ५ कर्मपास्तमित्युच्यते । ६ फलदानसमर्थानि न  
भवन्तीति-चेत् । ७ तर्ह्यप्युच्यते । ८ इति सप्तानामभावेन परस्मानिष्टपादनम् ।  
९ नामगोत्रविशेषाणाम् । १० कर्मत्वेन । ११ आदिना त्रिवेदम् । १२ मतिज्ञानस्य  
रागादेः । १३ इच्छा हि बोधमेवत्येन मोहनीयस्य-कार्यम् । १४ नरस्य ।

अथाकाङ्क्षारूपा धुन्न भवति, तेन वीतमोहेष्यस्याः सम्भवः; तदप्ययुक्तम्; अनाकाङ्क्षारूपत्वेऽप्यस्या दुःखरूपतयाऽनन्तसुखे भगवत्सम्भवात् । तथाहि—यत्र यद्विरोधि बलवदस्ति न तत्राभ्युदितकारणमपि तद्भवति यथाऽत्युष्णप्रदेशे शीतम्, अस्ति च धुदुःखविरोधि बलवत् केवलिन्यनन्तसुखम् । तथा यत्कार्य-५ विरोध्यनिर्वर्त्य यत्रास्ति तत्र तदविकलमपि स्वकार्यं न करोति यथा श्लेष्मादिविरुद्धानिवर्त्यपि च विकाराक्रान्ते न दृष्यादि श्लेष्मादि करोति, वेद्यफलविरुद्धाऽनिर्वर्त्यसुखं च भगवतीति ।

अस्तु वा चेद्यं तत्र वृषुक्षाफलप्रदायि, तथापि—वृषुक्षातः सम-  
वसरणस्थित एवासौ भुङ्क्ते, चर्यामार्गेण वा गत्वा? प्रथमपक्षे १०  
मार्गस्तेन नाशितः स्यात् । कथं च वृषुक्षोदयानन्तरमाहारास-  
म्पत्तौ ग्लानस्य यथाबद्धोद्धहीनस्य मार्गोपदेशो घटेत? अथ तदु-  
दयानन्तरं देवास्तत्राहारं सम्पादयन्ति; न; अत्र प्रमाणाभावात् ।  
‘आगमः’ इति चेन्न, उभयप्रसिद्धस्यास्याप्यभावात् । स्वप्रसिद्धस्य  
मावेपि नातस्तत्प्रसिद्धिः, ‘भुक्त्युपसर्गाभावः’ इत्यादेरपि प्रमाणभू- १५  
तागमस्य भावात् । अथ चर्यामार्गेण गत्वासौ भुङ्क्ते, तत्रापि किं  
गृहं गृहं गच्छति, एकसिन्धेव वा गृहे मिश्रालाभं ज्ञात्वा प्रव-  
र्त्तते? तत्राद्यपक्षे मिश्रार्थं गृहं गृहं पर्यटतो जिनस्याहानित्व-  
प्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे तु मिश्राशुद्धिस्तस्य न स्यात् । कथं चासौ  
मत्स्यादीन् व्याधलुब्धकप्रभृतिभिः सर्वत्र सर्वदा व्याहन्यमाना- २०  
म्प्राणिनस्तेषां पिशितानि च तथाऽशुच्यादीन्श्चार्थान् साक्षात्कुर्व-  
न्नाहारं गृहीयात्? अन्यथा निष्करुणः स्यात् । जीवानां हि वधं  
विघादिकं च साक्षात्कुर्वन्तो व्रतशीलविहीना अपि न भुञ्जते,  
भगवांस्तु व्रतादिसम्पन्नस्तत्साक्षात्कुर्वन् कथं भुञ्जीत? अन्यथा  
तेभ्योऽप्यसौ हीनसत्त्वः स्यात् ।

२५

यदप्युच्यते—यत्किञ्चिद्दृष्टं शुद्धमशुद्धं तत्सरन्तो यथासदाद्यो  
भोजनं कुर्वन्ति तथा केवली साक्षात्कुर्वन्ति; तदप्युक्तिमात्रम्;  
न ह्यसदादीनां परमचारित्रपदप्राप्तेनाशेषशेन भगवता साम्यमस्ति ।  
असदाद्योपि हि यथा(यदा) कथञ्चित्किञ्चिदशुद्धं वस्तु दृष्टं

- १ शुद्धादिदुःखं षडि । २ यस्य वेदनीयस्य । ३ कार्यं सुत् । ४ अनन्तसुखम् ।  
५ न केनापि निराकर्तुं शक्यम् । ६ वेदनीयम् । ७ (नरे) । ८ श्लेष्मादिलक्षणस्य  
कार्यस्य करणे अविकलमपि । ९ अनन्तसुखम् । १० वेदनीयम् । ११ येतपटस्य ।  
१२ भगवतः । १३ अर्थे । १४ येतपटपते प्रसिद्धसागमस्य । १५ जैनागमस्य ।  
१६ केनचित्प्रकारेण मार्गादिगमनलक्षणेन ।

स्मरन्तो भोजनपरित्यागेऽसमर्थास्तद्भुञ्जते तदा तद्दोषविशुद्ध्यर्थं  
शुरुवचनादात्मानं निन्दन्तः प्रायश्चित्तं कुर्वन्ति । ये तु तत्त्यागे  
समर्थाः पिण्डविशुद्धाद्युद्यतमनसो निर्वेदस्य परां काष्ठमापन्ना-  
स्त्यक्तशरीरापेक्षा जितजिह्वा अन्तरायविषये निपुणमतयस्ते  
५ स्मरन्तोऽपि न भुञ्जते ।

किञ्च, असौ भोजनं कुर्वाणः किमेकाकी करोति, शिष्यैर्वा  
परिवृतः ? यदि एकाकी, पैश्चाल्लग्नान् शिष्यान्विनिवार्य भ्रावकानां  
गृहे गत्वा भुङ्क्ते तर्हि दीनः स्यात् । अथ तैः परिवृतः, तर्हि सावद्य-  
प्रसङ्गः ।

- १० किञ्च, असौ भुक्त्वा प्रतिक्रमणादिकं करोति वा, न वा ?  
करोति चेत्, अवश्यं दोषवान् सम्भाव्यते, तत्करणान्यथानु-  
पपत्तेः । न करोति चेत्, तर्हि भुजिक्रियातः समुत्पन्नं दोषं कथं  
निराकुर्यात् ? औद्धारकथामात्रेणापि ह्यप्रमत्तोऽपि सन् खाद्युः  
प्रमत्तो भवति, नार्हन्भुञ्जानोपीति श्रद्धामात्रम् । प्रमत्तत्वे चास्य  
१५ श्रेणितः पतितत्वाच्च केवलभावत्वम् ।

- किमर्थं चासौ भुङ्क्ते-शरीरोपचयार्थम्, ज्ञानध्यानसंयमसंशि-  
द्ध्यर्थं वा, क्षुब्धेदनाप्रतीकारार्थं वा, प्राणत्राणार्थं वा ? न तावच्छ-  
रीरोपचयार्थम्, लाभान्तरायप्रक्षयात्प्रतिसमर्थं विशिष्टपरमाणु-  
लाभतस्तत्सिद्धेः । तदर्थं तद्गृहणे चासौ कथं निर्ग्रन्थः स्यात्  
२० मौक्ततपुरुषवत् ? नापि ज्ञानादिसिद्ध्यर्थम्, यतो ज्ञानं तस्यास्ति-  
लाभविषयमक्षयस्वरूपम्, संयमश्च यथाक्यातः सर्वदा विद्यते ।  
ध्यानं तु परमार्थतो नास्ति निर्मलस्कत्वात्, योगनिरोधत्वेनोप-  
चारतस्तत्रास्य सम्भवात् । नापि प्राणत्राणार्थम्, अपमृत्युरहि-  
तत्वात् । नापि क्षुब्धेदनाप्रतीकारार्थम्, अनन्तसुखवीर्यं भगव-  
२५ त्स्यस्याः सम्भवामावस्योक्तत्वात् ।

- ननु भगवतो भोजनाभावे कथम् 'एकादश जिने परीपहाः'  
इत्यागमविरोधो न स्यात् ? तदसत्, तेषां तद्दोषचारेणैव प्रति-  
पादनात्, उपचारनिमित्तं च वेदनीयसंज्ञावमात्रम् । परमार्थ-  
तस्तु तत्र तेषां सद्भावे क्षुदादिपरीषदसद्भावाद्भुक्ष्णवद् रोगवच-  
३० तृणस्पर्शपरीषदसद्भावान्महदुःखं स्यात्, तथा च दुःखितत्वा-  
न्नासौ जिनोऽसदादिवत् । तथा भोजनं रसनेन शीतादिकं च

१ यतयः । २ गृहे । ३ भगवतो भुजिक्रियातो दोष एव न सम्पद्यते इत्युक्ते  
भाह । ४ प्रमत्तो न भवतीति यावत् । ५ प्राकृतो नीचः । ६ आद्युपोऽपवर्तरहित-  
त्वात् । ७ जिने । ८ द्रव्यरूपेण । ९ भोजनं रसनेनानुभवेद्वा केवलज्ञानेन वेति  
विकल्प्य क्रमेण द्वयत्राह ।

स्पर्शनादिनेन्द्रियेण यद्यसावनुभवेत् ; तर्हि भगवतो मतिज्ञानानु-  
षङ्गः । अथ केवलज्ञानेन; तत्रापि सर्वे भोजनादिकं परशरीरस्थ-  
मप्यस्यानुषज्यते । न चात्मशरीरस्थमेवास्य तन्नान्यदित्यभिधा-  
तव्यम् ; भगवतो वीतमोहस्य स्वपरशरीरमतिविभागाभावात् ।

यच्चोपचारतोप्यस्यैकादश परीषद्वा न सम्भाव्यन्ते तत्र तत्रि- ५  
पेधपरत्वात् सूत्रस्य, 'एकैनाधिका न दश परीषद्वा जिने एकादश  
जिने' इति व्युत्पत्तेः । प्रयोगः-भगवान् क्षुदादिपरीषहरहितो-  
ऽनन्तमुखत्वात्सिद्धवत् ।

किञ्च, भोजनं कुर्वाणो भगवान् किल लोकैर्नावलोक्यते चक्षु-  
षेत्यभिधीयते भवता । तत्रादर्शनेऽयुक्तसेवित्वादेकान्तमाश्रित्य १०  
मुक्त इति कारणम्, बह्वलान्धकारस्थितमोजनं वा, विद्याविशेषेण  
स्वस्य तिरोधानं वा ? तत्राद्यपक्षे पारदारिकवद्दीनबद्धा दोष-  
सम्भावनाप्रसङ्गः । अन्धकारस्तु न सम्भाव्यते, तद्देहदीप्त्या तस्य  
निहतत्वात् । विद्याविशेषोर्पयोगे चास्य निग्रन्थत्वाभावः । कथं  
चाह्वयाय तस्मै दानं दातुमिर्दीयते ? अथातिशयविशेषः कश्चि- १५  
त्तस्य, येन मुञ्चानो नावलोक्यते; तर्हि भोजनाभावलक्षण एवा-  
स्यातिशयोस्तु किं मिथ्याभिनिवेशेन ? ततो जीवन्मुक्तस्यात्म-  
नोऽनन्तचतुष्टयस्वभावत्वमिच्छता कवलाहाररहितत्वमेवैष्टव्य-  
मित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

ननु च 'अनन्तचतुष्टयस्वरूपलामो मोक्षः' इत्युक्तम्; बुद्ध्या- २०  
दिविशेषगुणोच्छेदरूपत्वात्तस्य । तदुच्छेदे च प्रमाणम्-नवा-  
नामात्मविशेषगुणानां संन्तानोऽत्यन्तमुच्छिद्यते सन्तानत्वात्  
प्रदीपसन्तानवत् । न चायमसिद्धो हेतुः, पक्षे प्रवर्त्तमानत्वात् ।  
नापि विरुद्धः; सपक्षे प्रदीपादौ सत्त्वात् । नाप्यनैकान्तिकः; पक्ष-  
सपक्षवद्विर्पक्षे परमाण्वादावप्रवृत्तेः । नापि कालात्ययापदिष्टः; २५  
विपरीतार्थोपस्थापकयोः प्रत्यक्षागमयोरसम्भवात् । नापि सत्प्रति-  
पक्षः; प्रतिपक्षसाधनाभावात् ।

१ तर्हि । २ केवलज्ञानेन तत्राप्यनुभवोक्तीति भावः । ३ ( एकादश जिने इति  
सूत्रस्य भिननिष्ठैकदशपरीषद्वाणा निषेधपरत्वात् ) । ४ अथे । ५ मा बुद्ध्या कश्चि-  
ज्ज्ञानं याचिष्यत इति दीनचित्तत्वं दोषो दीनचित्तस्य । ६ व्यापारे । ७ प्रपञ्चेन ।  
८ बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नप्रमाणसंस्कारलक्षणानाम् । ९ वर्माषर्माभ्यां बुद्धि-  
रूपवत्ते बुद्धेः संस्कारः संस्कारादिच्छाद्वेषा इच्छाद्वेषाभ्यां प्रयत्नसंसाध्यसुखदुःखे भवत  
इति नवार्वा गुणानां सन्तानः । १० सर्वथा । ११ निले । १२ प्रतिपक्षसाधको  
हेतुः सत्प्रतिपक्षः ।

ननु सन्तानोच्छेदरूपेऽपि मोक्षे हेतुर्वाच्यो निर्हेतुकविनाशान-  
भ्युपगमात्; इत्यप्युच्यते; तत्त्वज्ञानस्य विपर्ययज्ञानव्यवच्छेद-  
क्रमेण निःश्रेयसहेतुत्वोपपत्तेः । इष्टं च सम्यग्ज्ञानस्य मिथ्या-  
ज्ञानोच्छेदे श्रुतिकादौ सामर्थ्यम् । ननु चातत्त्वज्ञानस्यापि  
५ तत्त्वज्ञानोच्छेदे सामर्थ्यं दृश्यते, ज्ञानस्य ज्ञानान्तरविरोधित्वेन  
मिथ्याज्ञानोत्पत्तौ सम्यग्ज्ञानोच्छेदप्रतीतिः; इत्यप्युक्तम्; यतो  
नानयोरुच्छेदमात्रमभिप्रेतम् । किं तर्हि ? सन्तानोच्छेदः । यथा  
च सम्यग्ज्ञानान्मिथ्याज्ञानसन्तानोच्छेदो नैव मिथ्याज्ञानात्सम्य-  
ग्ज्ञानसन्तानस्य, अस्य सत्यार्थत्वेन बलीयस्त्वात् । निवृत्ते च  
१० मिथ्याज्ञाने तन्मूला रागादयो न सम्भवन्ति कारणभावे कार्या-  
नुत्पादात् । रागाद्यभावे तत्कार्या मनोवाक्कायप्रवृत्तिर्व्यावर्तते ।  
तदभावे च धर्माधर्मयोरनुत्पत्तिः । आरब्धशरीरेन्द्रियविषय-  
कार्ययोस्तु सुखदुःखफलोपभोगात्प्रक्षयः । अनारब्धतत्कार्ययोर-  
प्यवस्थितयोस्तत्फलोपभोगादेव प्रक्षयः । तथा चागमः—

१५ “नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि” [ ] इति ।

अनुमानं च, पूर्वकर्मण्युपभोगादेव क्षीयन्ते कर्मत्वात् प्रारब्ध-  
शरीरकर्मवत् । न चोपभोगात्प्रक्षये कर्मान्तरस्यावश्यं भावा-  
त्संसारानुच्छेदः; समोधिबलादुत्पन्नतत्त्वज्ञानस्यावगतकर्मसा-  
मर्थ्योत्पादितयुगपदशेषशरीरद्वारावाप्ताशेषभोगस्योपात्तकर्मप्रक्ष-  
२० यात्, भाविकर्मोत्पत्तिनिमित्तमिथ्याज्ञानजनितानुसन्धानविकल-  
त्वाच्च संसारोच्छेदोपपत्तेः । अनुसन्धानं हि रागद्वयो ‘अनु-  
सन्धीयते’ गतं चित्तमाभ्याम्’ इति व्युत्पत्तेः । न च मिथ्या-  
ज्ञानाभावेऽभिलाषसैवासम्भवाद्भोगोपात्तुपपत्तिः; तदुपभोगं विना  
हि कर्मणां प्रक्षयानुपपत्तेः तत्त्वज्ञानिनोऽपि कर्मक्षयार्थतया प्रवृत्ति-  
२५ वैद्योपदेशेनातुरवदौषधाचरणे । यथैव ह्यातुरस्यानभिलषितेऽप्यौ-  
षधाचरणे व्याधिप्रक्षयार्थं प्रवृत्तिः, तद्व्यतिरेकेण तत्प्रक्षयानुप-  
पत्तेस्तथात्रापि ।

१ मिथ्या । २ सम्यग्ज्ञानान्मिथ्याज्ञानाभावनस्तदभावाद्वागवशात्तदभावाच्च मनो-  
वाक्कायप्रवृत्तिरूपप्रत्यक्षाभावस्तदभावाद्धर्माधर्मयोरभाव इति । ३ द्विचन्द्रादिज्ञानस्य ।  
४ एकचन्द्रज्ञानस्य । ५ आभूतः सन्ततिच्छेदे प्रथमिप्रायः । ६ स्ववनितादिकं सुख-  
हेतुरिति अद्विकृष्टादिकं दुःखहेतुरिति च सम्यग्ज्ञानात् । ७ स्ववनितादिकं दुःखहेतु-  
रिति ज्ञानात् । ८ चर्माधर्मयोः । ( वतः ) । ९ प्रारब्धं शरीरं येन तच्च तत्कर्म च ।  
१० ध्यान । ११ नुः । १२ पूर्वोपात्त । १३ सम्बध्यते । १४ अनेन पूर्वं मनेन्द्रियं  
दुःखादिकं दत्तमिति । १५ बुद्धिः । १६ तत्त्वज्ञानिनः पुरुषस्य । १७ कर्मफलस्य ।  
१८ कर्मफलोपभोगे । १९ उक्तमेव समर्थयति । २० कर्मफलोपभोगे तत्त्वज्ञानिनः ।

ननु तत्त्वज्ञानिनां तत्त्वज्ञानादेव सञ्चितकर्मप्रक्षय इत्यप्या-  
गमोस्ति—

“यथैधांसि संमिद्धोऽग्निर्मससात्कुर्वते क्षणात् ।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्मणि भस्मसात्कुर्वते तथा”

[ भगवद्गी० ४।३७ ] इति । ५

तथा च विरुद्धार्थत्वादुभयोरैकत्रार्थे कथं प्रामाण्यम् ? इत्युक्तम्,  
तत्त्वज्ञानस्य साक्षात्तद्विनाशे व्यापाराभावात् । तद्धि कर्मसा-  
मर्थ्यावगमतोऽशेषशरीरोत्पत्तिद्वारेणोपभोगात्कर्मणां विनाशे  
व्याप्रियते इत्यग्निरिवोपचर्यते ज्ञानमित्यागमव्याख्यानादविरोधः ।  
न चैतद्वाच्यम्—‘तत्त्वज्ञानिनां कर्मविनाशस्तत्त्वज्ञानादितरेषां १०  
तूपभोगात्’ इति; ज्ञानेन कर्मविनाशे प्रसिद्धोदाहरणाभावात्,  
फलोपभोगानु तत्प्रक्षये तत्सद्भावात् ।

अन्ये तु मिथ्याज्ञानजनितसंस्कारस्य सहकारिणोऽभावाद्वि-  
द्यमानान्यपि कर्मणि न जन्मान्तरे शरीराद्योरम्भकाणीति  
मन्यन्ते; तेषामनुत्पादितकार्यस्यादृष्ट्याप्रक्षयान्नित्यत्वसङ्गः । १५  
अनागतयोर्धर्माधर्मयोरुत्पत्तिप्रतिषेधे तत्त्वज्ञानिनो नित्यनैमित्ति-  
कानुष्ठानं किमर्थमिति चेत् ? प्रत्ययैयपरिहारार्थम् । न च  
मिथ्याज्ञानाभावे दुष्कर्मणोऽभावात् कस्य परिहारार्थं तदित्यभि-  
धातव्यम्; यतो मिथ्याज्ञानाभावे निषिद्धाचरणनिमित्तस्यैव  
प्रत्यवायस्याभावो न विहितानुष्ठाननिमित्तस्य, २०

“अकुर्वन्विहितं कर्म प्रत्यवायेन लिप्यते” [ ] इत्या-  
गमात् । ततस्तदनुष्ठानं तत्परिहारार्थं युक्तम् । तदुक्तम्—

“नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया ।

मोक्षार्थी न प्रवर्त्तत तत्र कार्यनिषिद्धयोः ॥ १ ॥

[ मी० श्लो० सम्बन्धा० श्लो० ११० ] २५

१ दीप्तः । २ तथाप्यागमसङ्गात्वे च । ३ आगमयोः । ४ मोक्षोपायलक्षणे ।  
५ अग्रे वक्ष्यमाणम् । ६ अतत्त्वज्ञानिनाम् । ७ कुतः ? । ८ आरम्भशरीरकर्म-  
नदिति । ९ तत्त्वज्ञाने समुत्पत्ते उतीति शेषः । १० मलनारूपस्य । ११ इन्द्रिय-  
विषयादेव । १२ नैयायिकविशेषाः । १३ धर्माधर्मस्य । १४ यतोऽनुभवनप्रकारेणैव  
मोक्षोऽन्युपगन्तव्यः । १५ सति । प्राशुक्त्यानेन । १६ नरस्य । १७ दुष्कर्म ।  
१८ जैनादिना । १९ विप्रवृत्ति । २० नित्यनैमित्तिकदेः । २१ कर्मणि । २२ कान्यं  
यागः । २३ निषिद्धं विप्रवृत्ति । २४ कर्मणोः ।

नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् ।

ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन तु पाचयेत् ॥ २ ॥

अभ्यासात्प्रेकविज्ञानः कैवस्यं लभते नरः ।

काम्ये निषिद्धे च परं प्रवृत्तिप्रतिषेधतः ॥ ३ ॥ [ ]

- ५ 'स्वर्गकामः' इत्याद्यागमजनितकामेन यागाभिलाषेण निर्वर्त्य हि काम्यमग्निहोमादि । कैवस्यं तु सकलविशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूपं निर्वाणम् । न च विपर्ययज्ञानप्रध्वंसादिक्रमेण तद्विशिष्टात्मस्वरूपनिर्वाणस्य तत्त्वज्ञानकार्यत्वादनित्यत्वं वाच्यम् । यतो विशेषगुणोच्छेदस्यानित्यत्वमापाद्यते, तद्विशिष्टात्मनो वा ?
- १० न तावद्विशेषगुणोच्छेदस्य; अस्य प्रध्वंसाभावरूपत्वात् । कार्यवस्तुनो ह्यनित्यत्वं प्रसिद्धम् । तद्विशिष्टात्मनश्च वस्तुत्वेऽपि कार्यत्वाभावाच्चानित्यत्वम् । न च बुद्ध्यादिविनाशे गुणिनस्तथाभावो युक्तः; तथोरत्यन्तमेवात् । तत्तादात्म्ये त्वयं दोषः स्यादेव ।

अथ मोक्षावस्थायां चैतन्यस्याप्युच्छेदाच्च कृतबुद्धयस्तत्र प्रवर्तन्ते इत्यानन्दरूपो मोक्षोऽभ्युपगन्तव्यः—

- “आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च मोक्षेऽभिव्यज्यते” [ ] इत्यागमात् । 'आत्मा सुखस्वभावोऽत्यन्तप्रियंबुद्धिविषयत्वात्, अनन्यपरैतयोर्पादीयमानत्वाच्च । यद्यदेवंविधं तत्तत्सुखस्वभावम् यथा वैषयिकं सुखम्, तथैवात्मा एवंविधः, तस्मात्सुखस्वभावः' इत्यनुमानाच्चास्यानन्दस्वभावताप्रतीतिः; इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतस्तत्सुखं नित्यम्, अनित्यं वा ? न तावदनित्यम्; तत्स्वभावतयात्मनोऽप्यनित्यत्वप्रसङ्गात् । नित्यं चेत्; तत्संवेदनमपि नित्यम्,

१ अनुष्ठानैः । २ मनुष्यः । ३ विस्तारयेत् । ४ उत्कृष्टविज्ञानः । ५ मोक्षश्च । ६ ( मूलपाठस्तत्र 'केवलं' इति । अनेन त्रिमासिकाक्षरेण छन्दोमङ्गः स्यादिति 'पर' शब्दो नियोजितः । केवलशब्दस्य परशब्दोऽर्थः टिप्पण्यां लिखितम् ) । ७ निष्ठापनमनुष्ठानम् । ८ मिथ्याज्ञान । ९ निस्स्वरूपत्वात् । १० गुणगुणिनोः । ११ गुणगुणिनोः । १२ गुणविनाशे गुणविनाशकलक्षणः । १३ वेदान्ती आत्मीयः । १४ बुद्धेः । १५ विनाशात् । १६ प्रेक्षावन्तः । १७ वैशेषिकेण । १८ आत्मनः । १९ व्यक्तीक्रियते । २० संसारियुक्तात्मनोः साधारणमनुमानम् । २१ पुत्रादिचरीरेण व्यभिचारपरिहारार्थमत्यन्तपदोपादानम् । २२ आत्मनः । २३ वनिताचरीरेण व्यभिचारपरिहारार्थमनन्यपरतयेत्युक्तम् । २४ स्वप्रधानत्वेनेत्यर्थः । २५ अनन्यपरतयोपादीयमानत्वादिति कोऽर्थः ? आत्मन आत्मनि छीनतवा स्वस्वरूपस्योपादीयमानत्वं ग्राह्यमाणत्वं यस्यात्मन इति । २६ वैषयिकसुखप्रकारेण । २७ संसारावस्थायां युक्तावस्थायां च ।

अनित्यं वा ? यदि नित्यम् ; मुक्तेतरावस्थयोरविशेषप्रसङ्गः तत्सु-  
खसंवेदनयोर्नित्यत्वेनोभयत्र सत्त्वाविशेषात् । स्मरणानुपपत्तिश्च ;  
अनुभवस्यैवावस्थानात् । संस्कारानुपपत्तिश्च ; अनुभवस्य निरति-  
शयत्वात् । करणजन्यसुखेन चास्य संसारावस्थार्या साहचर्यग्र-  
हणप्रसङ्गात् सुखद्वयोपलम्भः संदा स्यात् । ५

अथ धर्माधर्मफलेन सुखादिना शरीरादिना वा नित्यसुख-  
संवेदनस्य प्रतिवर्द्धत्वेनानुभवामावाप्तं मुक्तेतरावस्थयोरविशेषः  
सदा सुखद्वयोपलम्भो वा ; तदयुक्तम् ; शरीरादेः सुखार्थत्वेन  
तत्प्रतिबन्धकत्वायोगात् । न हि यद्यदर्थं तत्तस्यैव प्रतिबन्धकं  
युक्तम् । नापि वैषयिकसुखाद्यनुभवेन तत्प्रतिबन्धः । तेन हि १०  
नित्यसुखस्य तदनुभवस्य वा प्रतिबन्धोऽनुत्पत्तिरक्षणे विनाश-  
रक्षणो वा न युक्तः ; द्वयोरपि नित्यत्वाभ्युपगमात् । न च  
संसारावस्थायां बाह्यविषयव्यासङ्गाद्विद्यमानस्याप्यनुभवस्यासंवे-  
दनम्, तदभावात्तु मोक्षावस्थायां संवेदनमित्यभिधातव्यम् ;  
तदनुभवस्य नित्यत्वेन व्यासङ्गानुपपत्तेः । आत्मनो हि व्यासङ्गो १५  
रूपादौ विषये ज्ञानोत्पत्तौ विषयान्तरे ज्ञानानुत्पत्तिः, इन्द्रिय-  
स्याप्येकस्मिन्विषये ज्ञानजनकत्वेन प्रवृत्तस्य विषयान्तरे ज्ञानाजन-  
कत्वम् । स चात्रानुपपन्नः ; सुखवत्तज्ज्ञानस्यापि सदा सत्त्वात् ।  
शरीरादेस्तु प्रतिवर्द्धकत्वे तदपहर्तृत्वं हि साफलं न स्यात्, प्रति-  
बन्धकविधातकारकस्योपकारकत्वेन लोके प्रतीतेः । २०

अथानित्यं तत्संवेदनम् ; तदोत्पत्तिकारणं चान्यैम् । अथ  
योगजधर्मापेक्षः पुरुषान्तःकरणसंयोगोऽसमवायिकारणम् । ननु  
योगजधर्मस्य मुक्तावसम्भवात् कथमसौ तत्संयोगेनापेक्ष्येत

१ संसारावस्थायां मुक्तवस्थायां च । २ अस्ति च संसारावस्थायां सुखस्मरणम् ।  
३ प्रत्यक्षम् । ४ प्रत्यक्षविशेषो धारणाज्ञान सत्कारः । ५ अस्ति च सत्कारस्योत्पत्तिः  
संसारावस्थायां । ६ भावरूपम् । ७ नित्यसुखम् । ८ नित्यानित्यसुखद्वयम् ।  
९ यदा यदा वैषयिकं सुखमुत्पद्यते तदा तदा द्वयोरुपलम्भ इत्यर्थः । १० कार्येण ।  
११ दुःखादिना च । १२ इन्द्रियादिना च । १३ प्रतिवृत्तेन । १४ अत्रार्थः  
प्रयोजनम् । १५ भोगायत्तनं शरीरमिति वचनात् । १६ प्रतिपक्षम् । १७ वनिता-  
दिनत् । १८ नित्यसुखसंवेदनयोः । १९ वेदान्तिना । २० नित्यसुखानुभवस्य ।  
२१ वेदान्तिना । २२ आत्मन इन्द्रियस्य वा । २३ तत्समये । २४ व्यासङ्गः ।  
२५ रूपे । २६ रते । २७ नित्यसुखे । २८ सुखतत्संवेदनयोः । २९ नरस्य ।  
३० वेदान्तिना । ३१ मनः । ३२ आत्मा तु समवायिकारणम् । ३३ नित्यसुख-  
संवेदनस्य । ३४ वैशेषिकः ।



यतस्तत्र ततस्तदुत्पत्तिः स्यात्? अथाद्यं योगजधर्मापेक्षान्तः-  
करणसंयोगो विज्ञानं जनयति तच्चापेक्ष्योत्तरोत्तरं ज्ञानम्, तद-  
प्ययुक्तम्; न हि शरीरसम्बन्धानपेक्षं विज्ञानमेवान्तःकरण-  
संयोगस्य ज्ञानोत्पत्तौ सहकारिकारणं दृष्टम् । न च दृष्टविपरीतं  
५ शक्यं कल्पयितुमिति प्रसङ्गात् । आकस्मिकं तु कार्यं न भवत्येव,  
अहेतोः सर्वत्र सर्वदा भावप्रसङ्गात् ।

किञ्च, यथा मुक्तावस्थायामनित्यसुखमतिक्रम्य नित्यं परि-  
कल्प्यते, तथा नित्यत्वधर्माधिकरणं शरीरादिकमपि परिकल्प-  
नीयम् । कार्यत्वात् तस्य कथं नित्यत्वधर्माधिकरणत्वम् दृष्टविरो-  
१० धादप्रमाणकत्वाच्च? इत्यन्यत्रापि समानम् । न खलु नित्यसुख-  
साधकत्वेन प्रत्यक्षानुमानागमानां मध्ये किञ्चित्प्रवर्तते, असदा-  
दीन्द्रियजप्रत्यक्षस्यात्र व्यापारानुपलम्भात् । 'योगिप्रत्यक्षं त्वेवं  
प्रवर्ततेऽन्यथा वा' इत्याद्यापि विवादपदापन्नम् ।

यच्चात्मा सुखस्वभाव इत्यनुमानं तदपि न नित्यसुखस्वभावता-  
१५ साधकम्; सुखस्वभावतामात्रस्यैवातः प्रसिद्धेः ।

किञ्च, सुखस्वभावत्वं सुखत्वर्जातिसम्बन्धित्वम्; तच्चात्मनि  
सम्भाव्यते गुणे एवास्योपलम्भात् । न ह्येका काचिज्जातिर्द्रव्य-  
गुणयोः साधारणोपलभ्यते । अथ सुखाधिकरणत्वम्; तन्न, अस्य  
नित्यानित्यविकल्पानुपपत्तेः । तर्था सुखत्वस्य सुखस्य बाधिकरण-  
२० तायां तज्ज्ञानस्यापि नित्यानित्यविकल्पः समानः ।

साधनं च अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वमनन्यपरतयोपादीयमानत्वं  
चानैकान्तिकत्वादसाधनम्, दुःखामोवेपि भावात् । अनन्यपरतयो-  
पादीयमानत्वं चासिद्धम्; न ह्यात्माऽन्यार्थं नोपादीयते; सुखैवै-

१ नित्यसुख । २ नित्यसुखसंवेदनम् । ३ आत्मान्तःकरणसंयोगो जनयति ।  
४ किन्तु शरीरसम्बन्धापेक्षं सद्विज्ञानं सहकारिकारणं दृष्टम् । ५ सौगतादेरपि संवेद-  
नस्य क्षणिकत्वादिसिद्धिप्रसङ्गात् । ६ वेदान्तिना भवता । ७ इन्द्रियं च ।  
८ नित्यसुखे । ९ नित्यसुखग्राहकत्वेन । १० नित्यसुखग्राहकत्वेन । ११ जातिः=  
सामान्यम् । १२ निश्चीयते । १३ सुखलक्षणे । १४ सुखाधिकरणत्वस्य सुखस्वभाव-  
त्वस्य । १५ अन्यलीनतया । १६ वैशेषिकः । १७ निर्लं चेन्मुक्तेतरावस्यावा  
अविशेषप्रसङ्ग इत्यादि दूषणम् । अन्तर्लं चेदुत्पत्तिकारणं वाच्यमित्यादि दूषणम् ।  
१८ तथा दूषणान्तरसमुच्चये । १९ आत्मनः । २० दुःखामोवो हि लक्ष्मणरसा-  
त्यन्तप्रियबुद्धिविषयः अनन्यपरतयोपादीयमानश्च । न त्वसौ सुखस्वभावत्वस्य पुञ्छ  
रूपत्वात् । २१ अभावस्य निःस्वरूपत्वाच्चैवानिकादिमते । २२ सुखलीनतयाऽहं  
सुखीत्युल्लेखेन ।

प्रस्योपादानात् । अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वमप्यसिद्धम्; दुःखि-  
तार्यामप्रियबुद्धेरपि भावात् ।

‘आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्’ इत्याद्यागमो नित्यसुखसद्भावावेदकः;  
इत्यप्यसमीचीनम्; तस्यैतदर्थत्वासिद्धेः । आनन्दशब्दो ह्यात्य-  
न्तिकदुःखाभावे प्रयुक्तत्वाद्गौणः । इदंश्च दुःखाभावे सुखशब्द- ५  
प्रयोगः, यथा भाराक्रान्तस्य ज्वरादिसन्तप्तस्य वा तदपाये ।

किञ्च, आत्मस्वरूपात्तन्नित्यसुखमव्यतिरिक्तम्, तद्व्यतिरिक्तं  
वा? प्रथमपक्षे आत्मस्वरूपवत् सर्वदा सुखसंवित्तिप्रसङ्गाद्ब्रह्म-  
मुक्तयोरविशेषप्रसङ्गः ।

अनाद्यविद्याच्छादितत्वाच्च स्वप्रकाशानन्दसंवित्तिः संसारिणः, १०  
इत्यप्यपेशलम्; आच्छाद्यते ह्यप्रकाशस्वरूपं वस्तु, यत्तु प्रकाश-  
स्वरूपं तत्कथमन्येनाच्छाद्येत? मेघादिना त्वादित्यादेराच्छादनं  
शुक्तम् तस्यातोऽर्थान्तरत्वात्, मूर्त्तस्य मूर्त्तेनाच्छादनापत्तेः  
(द्वनोपपत्तेः) । अविद्यायास्तु सत्त्वान्यत्वाभ्यामनिर्वचनीयतया  
तुच्छसमावत्त्वात् न स्वप्रकाशानन्दाच्छादकत्वम् । तन्नाद्यः १५  
पक्षो युक्तः ।

द्वितीयपक्षोप्ययुक्तः, नित्यसुखस्यात्मनोऽर्थान्तरस्य प्रत्यक्षादेः  
प्रतिपादकस्य प्रतिषिद्धत्वाद्वाचकस्य च प्रदर्शितत्वात् । तन्न  
परमानन्दमिव्यकिर्मोक्षः ।

नैपि विशुद्धज्ञानोत्पत्तिः, रागादिमतो विज्ञानात्प्रहितस्या- २०  
स्योत्पत्तेरयोगात् । यथैव हि बोधाद्बोधरूपता ज्ञानान्तरे तथा  
रागादेरपि स्यात्तादात्म्यार्तं, अन्यथा तादात्म्याभावः स्यात् । न  
च ‘बोधादेव बोधरूपता’ इति प्रमाणमस्ति, विलक्षणद्वयकार-  
णाद्विलक्षणकार्यस्योत्पत्तिदर्शनात् । बोधस्य च बोधान्तरहेतुत्वे  
पूर्वकालभावित्वं समानजातीयत्वमेकैकसन्तानत्वं वा न हेतुः, २५  
व्यभिचारात्; तथाहि-पूर्वकालभावित्वं तैत्समानक्षैणैः, समान-  
जातीयत्वं च सन्तानान्तरक्षैर्नैर्व्यभिचारि, तेषां हि पूर्वकाल-  
भावित्वे तैत्समानजातीयत्वे च सत्यपि न विवक्षितैकानहेतुत्वम् ।

१ अवस्थायाम् । २ भाग्ये । ३ बद्धः संसारी । ४ ब्रह्मणः सकाशात् ।  
५ विद्यमानत्वाविद्यमानत्वान्वायाम् । ६ सौगताग्रहः । ७ मोक्षः । ८ पूर्वज्ञानात् ।  
९ उत्तरज्ञाने । १० बोधस्य रागादिना । ११ रागादिवर्द्धि न स्यात् । १२ बीजादेः ।  
१३ अङ्कुरादेः । १४ प्रथमस्य । १५ पक्षात्मात्मम् । १६ उत्तरज्ञानजनकप्राप्त्य-  
बोधस्य । १७ पुरुषान्तरबोधैः पूर्वकालभावितिः । १८ ज्ञानत्वेन समानजातीय-  
त्वम् । १९ पुरुषान्तरबोधैः पूर्वकालभावितिः । २० पूर्वज्ञानस्य । २१ विवक्षित-  
मुत्तरम् ।

एकसन्तानत्वं च अन्यज्ञानेन व्यभिचारि । अथ नेष्यैत एवा-  
न्यज्ञानं सर्वैदाऽऽरम्भात् ; तथाहि-मरणशरीरज्ञानमपि ज्ञानान्तः,  
रहेतुर्जाग्रदवस्थाज्ञानं च सुषुप्तावस्थाज्ञानस्यति । नन्वेवं मरणश-  
रीरज्ञानस्यान्तराभवशरीरज्ञानहेतुत्वे गर्भशरीरज्ञानहेतुत्वे वा  
५ सन्तानान्तरेपि ज्ञानजनकत्वं किञ्च स्यान्नियतहेतोरभावात् ;  
अथेव्यंते एव उपाध्यायज्ञानं शिष्यज्ञानस्य हेतुः । अन्यैरेकस्मान्न  
भवति ? कर्मवैसिना निर्यामिका चेन्न ; तस्या ज्ञानव्यतिरेकेणास-  
म्भवात् । तच्चादात्म्ये हि विज्ञानं बोधरूपतया अविशिष्टं बोधाच्च  
बोधरूपतेर्येविशेषेण ज्ञानं विद्म्येत् ।

- १० सुषुप्तावस्थाज्ञानस्य जाग्रदवस्थाज्ञानं कारणम् ; इत्यप्यसम्भा-  
व्यम् । सुषुप्तावस्थायां च ज्ञानाम्युपगमे जाग्रदवस्थातो विशेषो न  
स्यादुभयत्रापि स्वसंविदितज्ञानसङ्गावाविशेषात् । मिद्धेर्नाभिभू-  
तत्वं विशेषः ; इत्यप्यसत् ; तस्यापि तद्वैततया तादात्म्येनाभि-  
भावकत्वायोगात् । तद्व्यतिरेके तु रूपवेदनौदिपदार्थस्वरूपव्यति-  
१५ रिक्तं तत्स्वरूपं निरूप्यताम् । अभिभवश्च यदि विनाशः ; कथं  
तत्र ज्ञानस्य सत्त्वं विनाशस्य वा निर्हेतुकत्वम् ? अथ तिरो-  
भावः ; न ; विज्ञानसत्तैव संवेदनमित्यम्युपगमे तस्यानुपपत्तेः ।  
अतः सुषुप्तावस्थायां विज्ञानासत्त्वेनान्यज्ञानसङ्गावादेकसन्ता-  
नत्वं व्यभिचारीति ।

- २० यच्चोच्यते-विशिष्टभावनाभ्यासवशाद्वागादिविनाशः ; तदप्य-  
सङ्गतम् ; निर्हेतुकत्वाद्दिनाशस्य अभ्यासानुपपत्तेर्न । अभ्यासो

१ बौद्धानां मते योगिना मरणे चत्सवित्तमुत्तरचित्तं बोत्पादयतीति भावः ।  
२ योगिचरमचित्तेन । ३ मया । ४ पूर्वविज्ञानेन विज्ञानान्तरेण । ५ जननात् ।  
६ गर्भशरीरज्ञानस्य । ७ ( जाग्रदवस्थाज्ञानवदिति सुषुप्तस्य ) ( ? ) । ८ जैनमतमङ्गीकृत्य  
योगं प्रति सौगतेनोक्तम् । ९ मध्यमवक्त्ररीरस्य कार्यणस्य । १० बौद्धेन । ११ वैशे-  
षिकः । १२ शिष्यात् । १३ बौद्धः । १४ वासना ज्ञानरूपैव । १५ अदृष्टं क्रिया  
य । १६ कथं निर्यामिका ? मरणशरीरज्ञानादन्तराभवशरीरज्ञानं गर्भशरीरज्ञानं  
चोत्पद्यते उपाध्यायज्ञानाच्छिष्यज्ञानं चेति । १७ वैशेषिकः । १८ विज्ञानस्य ।  
१९ साधारणम् । २० विशेषरहितम् । २१ हेतोः । २२ सन्तानान्तरेपि । २३ उत्प-  
रस्य । २४ पूर्वज्ञानं कर्तुं । २५ बौद्धेन त्वया । २६ सुषुप्तावस्थानाजाग्रदवस्थयोः ।  
२७ सुषुप्तावस्थानाजाग्रदवस्थयोः । २८ अतिनाल्लेनानिनिद्रया वा । २९ पराभवः ।  
३० बौद्धानां मते यथा नैसर्ग्यादिगुणो ज्ञानस्य तथा मिद्धादिदोषोपि ज्ञानस्य धर्म-  
इति । ३१ ज्ञानात् । ३२ मिद्धस्य । ३३ आदिशब्देन विज्ञानसंज्ञासंस्कारा गृह्यन्ते ।  
३४ सुषुप्तावस्थायास्य । ३५ विज्ञानस्य ( तिरोभावस्य ) । ३६ बौद्धेन । ३७ क्रिया ।

श्रवस्थिते ज्ञातर्यतिशयाभायकत्वेन स्यान्न क्षणिकज्ञानमात्रे । न च सन्तानापेक्षयाऽतिशयो युक्तः; तस्यैवासत्त्वात्, अवशिष्टाद्देशिष्टोत्पत्तेरयोगाच्च । अवशिष्टाद्धि पूर्वज्ञानादुत्तरोत्तरं साति शयं कथमुत्पद्येत? तत्कथं योगिनां सकलकल्पनाविकलज्ञानसम्भव इति? ५

यच्च 'सन्तानोच्छित्तिर्निःश्रेयसम्' इति मतम्; तत्र निर्हेतुकतया विनाशस्योपर्यवैयर्थ्यमयत्नसिद्धत्वादिति ।

अन्ये त्वनेकान्तभावनातो विशिष्टप्रवेशेऽक्षयशरीरादिलोभो निःश्रेयसमिति मन्यन्ते । तथाहि-नित्यत्वभावनायां ग्रहोऽनित्यत्वे च द्वेय इत्युभयपरिहारार्थमनेकान्तभावना; इत्यप्यपरीक्षिताभिधानम्; मिथ्याज्ञानस्य निःश्रेयसकारणत्वायोगात् । अनेकान्तज्ञानं मिथ्यैव विरोधवैयधिकरण्याद्यनेकबाधकोपनिपातात् । स्वदेशादिषु सत्त्वं परदेशादिषु चासत्त्वम् इतरेतराभावादिर्भेदे एव । स्वकार्येषु कर्तृत्वं कार्यान्तरेषु चाकर्तृत्वं न प्रतिपिप्यते, यैर्धर्मान्वयव्यतिरेकाभ्यामुत्पत्तौ व्याप्रियमाणमुपलब्धे तत्तस्य कारणं नान्यस्येत्यभ्युपगमात् । तथा मुक्तावप्यनेकान्तो न व्यावर्त्तत इति 'स एव मुक्तः संसारी च' इति प्रसक्तम् । तथाऽनेकान्तप्यनेकान्तप्रसङ्गात् सदसञ्चित्यानित्यादिरूपव्यतिरिक्तं रूपान्तरमपि प्रसज्येतेति ।

अन्ये त्वात्मैकत्वज्ञानात्परमात्मनि लैयः सम्पद्यते इति ब्रुवन्ते । २० तथाहि-आत्मैव परमार्थसंस्ततोऽन्यत्र भेदे प्रमाणाभावात् । प्रैत्यक्षं हि पदार्थानां सद्भावस्यैव ग्राहकं न भेदस्येत्येविद्योसमैरोपितो भेदः; तेष्वतत्त्वज्ञाः; आत्मैकत्वज्ञानस्य मिथ्यारूपतया निःश्रेयसाऽसाधकत्वात् । तन्मिथ्यात्वं चार्थानां प्रमाणतो वांस्त-  
वभेदप्रसिद्धेः । २५

- १ रागादिसहितत्वेन । २ निशुद्धज्ञानोत्पत्तेः । ३ मिथ्य । ४ निर्विशेषः । ५ योगाचारस्य । ६ ध्यानादेः । ७ विनाशस्य । ८ जैनाः । ९ मोक्षशिक्षोपरि । १० स्वरूपदेहो वा । ११ आदिशब्देन ज्ञानादि । १२ जेहः । १३ युक्तः । १४ वैयर्थ्यिकेणापि भया । १५ कारणम् । १६ कार्यस्य । १७ द्रवणान्तरम् । १८ सत्त्वं सत्त्वमसत्त्वं चैतनेन प्रकारेण । १९ ग्राह्यदेतवादिनः । २० प्रवेशः । २१ मोक्षम् । २२ निर्विकल्पकम् । २३ षट्पदवादीनाम् । २४ हेतोः । २५ मिथ्याभावेन । २६ कल्पितः । २७ षट्पदवादीनाम् । २८ अलक्षादेः । २९ परमार्थः ।

एवं शब्दाद्वैतज्ञानमपि मिथ्यारूपतया निःश्रेयसाप्रसाधकं द्रष्टव्यम् । निरस्तं चात्माद्वैतं शब्दाद्वैतं च प्राक्प्रवन्धेनेत्यलमिति प्रसङ्गेन ।

प्रकृतिपुरुषविवेकोपलम्भः स्वरूपे चैतन्यमात्रेऽवस्थानलक्षण-  
 ५ निःश्रेयसस्य साधनमित्यन्ये । तथाहि-पुरुषार्थसम्पादनाय प्रधानं  
 प्रवर्त्तते । पुरुषार्थश्च द्वेधा-शब्दादिविषयोपलब्धिः, प्रकृतिपु-  
 रुषविवेकोपलम्भश्च । सम्पन्ने हि पुरुषार्थे चरितार्थत्वात्प्रधानं  
 न शरीरादिभावेन परिणमते, विज्ञानं(तं) वा दुष्टतया कुप्तिनीत्सी-  
 वद्भोगसम्पादनाय पुरुषं नोपसर्पति; इत्यप्यसाम्प्रतम्; प्रधाना-  
 १० सत्त्वस्य प्रागेवोक्तत्वात् । सति हि प्रधाने पुरुषस्य तद्विवेको-  
 पलम्भः स्यात् । अस्तु वा तत्; तथापि पुरुषस्य निमित्तमनपेक्ष्य  
 तत्प्रवर्त्तते, अपेक्ष्य वा ? न तावदनपेक्ष्य; मुक्तात्मन्यपि शरीरा-  
 दिसम्पादनाय तत्प्रवृत्तिप्रसङ्गात् । अथापेक्ष्य प्रवर्त्तते; किं तद-  
 पेक्ष्यम् ? विवेकानुपलम्भः, अदृष्टं वा ? न तावद्विवेकानुप-  
 १५ लम्भः; तस्य विवेकोपलम्भविनष्टत्वेन मुक्तात्मन्यपि सम्भवात् ।  
 न चानुत्पत्तिविनाशयोरसत्त्वेन विशेषं पश्यामः । द्वितीयविक-  
 लोप्ययुक्तः; अदृष्टस्यापि प्रधाने शक्तिरूपतया व्यवस्थितस्यो-  
 भयत्रांविशेषात् ।

दुष्टतया च विज्ञातं प्रधानं पुरुषं नोपसर्पतीति चायुक्तम्;  
 २० तस्याचैतनतया 'अहमनेन' दुष्टतया विज्ञातम्' इति ज्ञानासम्भ-  
 वात् । ततः पूर्ववत्प्रवृत्तिरविशेषेणैव स्यात् इत्यलमिति प्रसङ्गेन ।

'तदा' द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं मोक्षः' इति आभ्युपगमतमेव,  
 विशेषगुणरहितात्मस्वरूपे तस्यावस्थानाभ्युपगमात् । 'चिद्रू-  
 पेऽवस्थानम्' इत्येतत्तु न घटते; अनित्यत्वेन चिद्रूपताया  
 २५ विनाशात् । न चाक्षाद्यन्वयव्यतिरेकानुविधाधिनि्यास्तस्या नित्यत्वे

१ शास्त्रभेदसिद्धिप्रकारेण । २ अद्वैतनिराकरणस्य । ३ का । ४ भेदभावना-  
 ज्ञानम् । ५ प्रति प्रधानं । ६ भेदभावनाभावः । ७ भेदभावनाया योग्यवस्त्वाया  
 सम्भवात् । मुख्यवस्त्वाया तु तस्या विनाशाद्ययोग्यनाभावात् । ८ किञ्च । ९ विवे-  
 कानुपलम्भो नाम विवेकोपलम्भमाभावः । कथम् ? विवेकोपलम्भस्यानुत्पत्तिः संसार्या-  
 त्मनि विवेकोपलम्भस्य विनाशो मुक्तात्मनि । १० संसारिमुक्तात्मनोः । ११ पुरुषेण ।  
 १२ सादृश्यपरिकल्पितमुख्यप्राप्त्यनिराकरणेन । १३ उक्तरीत्या मोक्षोपायस्वरूपं  
 विचार्यमाणं नास्ति चेन्मा भूयोक्षस्वरूपं तु सादित्युक्तं बाह । १४ मुख्यवस्त्वावात् ।  
 १५ आत्मनः । १६ (आत्मनः) । १७ योगेन । १८ स्वरूपे निर्दिष्टमेतत् ।  
 १९ योगमते चिद्रूपं बुद्धिः ।

प्रमाणमस्ति । आत्मस्वरूपतास्तीति चेत्, ननु चिद्रूपतात्मनोऽभिज्ञा, मित्रा वा स्यात्? अमेदे पर्यायमात्रम् 'आत्मा, चिद्रूपता च' इति, तस्य च नित्यत्वाभ्युपगमात् सिद्धसाध्यता । मेदे तु संयोगादिभिरनैकान्तिकत्वम् : तेषामात्मधर्मत्वेऽपि नित्यत्वाभावात् । गुणगुणिनोश्च तादात्म्यविरोधादित्युपरम्यते । ततो बुद्ध्यादिविशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूप एव मोक्षस्तत्त्वज्ञानादिति स्थितम् ।

अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्-नवानामात्मविशेषगुणानां सन्तानोत्पन्तमुच्छिद्यते; तत्रात्मनो मित्रानां बुद्ध्यादिविशेषगुणानामात्मन्येव समवायादिना वृत्त्यसिद्धेः प्रागेवोक्तत्वात् कथ-१० मात्मविशेषगुणानां सन्तानः सिद्धो यतः हेतोराश्रयासिद्धिर्न स्यात्? तथा तेषां परेणोत्पन्नसंविदितत्वेनाभ्युपगमात् । शान्तरप्राज्ञत्वे चानवस्थादिदोषप्रसक्तेः, अज्ञानस्य च सत्त्वाप्रसिद्धेः पुनरप्याश्रयासिद्धत्वम् । आत्मनोऽभिज्ञानां तत्साधने तु तस्याप्यत्यन्तोच्छेदप्रसङ्गात् कस्यासौ मोक्षः? कथञ्चिदमेदस्तु नाभ्युपग-१५ म्यते । अभ्युपगमे वा नात्यन्तोच्छेदसिद्धिः इत्येनन्तरं वक्ष्यामः ।

सन्तानत्वं च हेतुः सामान्यरूपम्, विशेषरूपं वा? सामान्यरूपं चेत्, परसामान्यरूपम्, अपरसामान्यरूपं वा? प्रथमपक्षे गगनादिनानैकान्तः, अत्यन्तोच्छेदोभावेऽप्यत्र हेतोर्वर्तनात् । सत्तासामान्यरूपत्वे च सन्तानत्वस्य 'सत् सत्' इति प्रत्ययहेतुत्वमेव २० स्यात् न पुनः सन्तानप्रत्ययहेतुत्वम् । अथ विशेषगुणाश्रिता जातिः सन्तानत्वम्, तर्हि द्रव्यविशेषे प्रदीपदृष्टान्ते तस्याऽसम्भवात्साधनविकलो दृष्टान्तः । न च सन्तानत्वं परमपरं वा सामान्यं सर्वथा मित्रं बुद्ध्यादिषु वृत्तिमत्प्रसिद्धम्; तद्वत्तेः समवायस्य प्रतिषिद्धत्वात् इति स्वरूपासिद्धत्वम् । २५

अथ विशेषरूपम्, तत्राप्युपादानोपादेयभूतबुद्ध्यादिलक्षणक्षणाविशेषरूपम्, पूर्वापरसमानजातीयक्षणप्रवाहमात्ररूपं वा? प्रथमपक्षे सन्तानत्वस्यासाधारणानैकान्तिकत्वं तथाभूतस्यास्या-

१ नाममात्रम् । २ पराभ्युपगतमोक्षनिराकरणे । ३ मया । ४ तदापेयत्वं तदुपलब्धि । ५ बुद्ध्यादीनाम् । ६ उच्छेद इत्यन्वयः । ७ वैमयिकेण । ८ बुद्धयन्तर । ९ आदिनेतरेतराश्रयः । १० सन्तानस्य । ११ परेण । १२ अक्षिप्तववादे । १३ सत्ताख्यम् । १४ साध्याभावे । १५ किञ्च । १६ द्वितीयविकल्पः । १७ सामान्यम् । १८ किञ्च । १९ सन्तानत्वम् । २० सह । २१ रूपत्वेन सगदीयत्वम् ।

न्यत्रानुवृत्तेः । अभ्युपगमविरोधश्च; न खलु परेण बुद्ध्यादिक्ष-  
णोपादानोऽपैरोऽखिलो बुद्ध्यादिक्षणोऽभ्युपगम्यते । अन्यथा  
मुक्त्यऽवस्थायामपि पूर्वपूर्वबुद्ध्याष्टुपादानक्षणदुसरोत्तरोपादे-  
यबुद्ध्यादिक्षणोत्पत्तिप्रसङ्गाच्च बुद्ध्यादिसन्तानस्यात्यन्तोच्छेदः  
५ स्यात् । द्वितीयपक्षे तु पाकजपरमाणुरूपादिनानेकान्तः; तथा-  
विधसन्तानत्वस्यात्र सद्भावेऽप्यत्यन्तोच्छेदाभावात् ।

विरुद्धश्चायं हेतुः; कार्यकारणभूतक्षणप्रबाहलक्षणसन्तानत्वस्य  
एकान्तनित्यवदनित्येऽप्यसम्भवात्, अर्थक्रियाकारित्वस्यानेकान्ते  
एव प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् ।

१० शब्दबिद्युत्प्रदीपादीनामप्यत्यन्तोच्छेदासम्भवात् साध्यवि-  
कलो दृष्टान्तः । न च ध्वस्तस्यापि प्रदीपादेः परिणामान्तरेण स्थित्य-  
भ्युपगमे प्रत्यक्षबाधा; वारि स्थिते तेजसि भासुररूपाभ्युपगमेपि  
तत्प्रसङ्गात् । अथोष्णस्पर्शस्य भासुररूपाधिकरणतेजोद्रव्याभावे-  
ऽसम्भवात् तत्रानुद्भूतस्यास्य परिकल्पनमनुमानतः; तर्हि 'प्रदीपादे-

१५ रप्यनुपादानोत्पत्तेरिव अन्त्यावस्थातोऽपरापरपरिणामाधारत्वम-  
स्तरेण सत्त्वकृतकत्वादिकं न सम्भवति' इत्यनुमानतस्तत्सन्त-  
नुच्छेदः किञ्च कल्प्यते ? तथाहि-पूर्वापरस्वभावपरिहारावातिशि-  
तिलक्षणपरिणामवान् प्रदीपादिः सत्त्वात् कृतकत्वाद्वा घटादिषु ।

सत्प्रतिपक्षश्च; तथाहि-बुद्ध्यादिसन्तानो नात्यन्तोच्छेदवान्,  
२० अखिलप्रमाणानुपलभ्यमानतयोच्छेदत्वात्, य एवं स न  
तत्त्वेनोपेयं यथा पाकजपरमाणुरूपादिसन्तानः, तथा चायम्,  
तस्मान्नात्यन्तोच्छेदवानिति । न च प्रस्तुतानुमानत एव सन्ता-  
नोच्छेदप्रतीतेः सर्वप्रमाणानुपलभ्यमानतयोच्छेदत्वमसिद्धम्;  
सन्तानत्वसाधनस्यासत्प्रतिपक्षत्वासिद्धेः, तत्सिद्धौ हि हेतोर्गम-  
२५ कत्वम् । कालात्ययापदिष्टत्वं च; अनेनैवानुमानेन बाधितपक्षनि-  
र्देशानन्तरं प्रयुक्तत्वात् ।

यच्च तत्त्वज्ञानस्य विपर्ययज्ञानव्यवच्छेदकमेण निःश्रेयसहेतुः  
त्वमित्युक्तम्; तदप्युक्तिमात्रम्; ततो विपर्ययज्ञानव्यवच्छेदकमेण  
धर्माधर्मयोस्तत्कार्यस्य च शरीरादेरमात्रेऽपि अनन्तातीन्द्रियाशि-  
३० लपदार्थविषयसम्यग्ज्ञानसुखादिसन्तानस्याभावासिद्धेः । इन्द्रि-  
यजज्ञानादिसन्तानोच्छेदसाधने च सिद्धसाधनम् । इन्द्रियाशु-

१ दृष्टान्ते प्रदीपे । २ उपादेयः । ३ आदिना गन्धरसादि । ४ कथञ्चित्स्थि-  
तिरे । ५ तयोरुपेय । ६ उष्णो । ७ जलौ । ८ ईप्सु । ९ सन्तानत्वं हेतुः ।  
१० अभ्युपगम्यः । ११ सन्तानत्वादिलतः ।

पाये ज्ञानादिसन्तानसद्भावश्चाशेषक्षसिद्धिप्रस्तावे प्रतिपादितः ।  
कथं चातीन्द्रियज्ञानाद्यनभ्युपगमे महेश्वरे तत्सद्भावः स्यात् ?  
नित्यत्वं चेश्वरज्ञानस्येश्वरनिराकरणे प्रतिषिद्धम् । शरीराद्यपा-  
येष्वस्य ज्ञानाद्यभ्युपगमेऽन्यात्मनोपि सोस्तु तत्संभावत्वात् । न  
च स्वभावापाये तद्वतोऽवस्थानमिति प्रसङ्गात् । ५

यत्तूक्तम्-आरब्धकार्ययोश्चोपभोगात्प्रक्षयः, तदपि न सूक्तम्;  
उपभोगात्कर्मणः प्रक्षये तदुपभोगसमये अपरकर्मनिमित्तस्याभि-  
लाषपूर्वकमनोवाक्षाव्यापारादेः सम्भवात् अविकलकारणस्य  
प्रचुरतरकर्मणो भवतः कथमात्यन्तिकः प्रक्षयः ? सम्यग्ज्ञानस्य  
तु मिथ्याज्ञानोच्छेदकमेव बाह्याभ्यन्तरक्रियानिवृत्तिलक्षणचा- १०  
रित्रोपबृंहितस्यागामिकर्मानुत्पत्तिसामर्थ्यवत् सञ्चितकर्मक्षयेपि  
सामर्थ्यं सम्भाव्यत एव । यथोष्णस्पर्शस्य भाविशीतस्पर्शा-  
नुत्पत्तौ सामर्थ्यवत् प्रवृत्ततर्लपशादिष्वंसेपि सामर्थ्यं प्रती-  
यते । किन्तु परिणामिजीवाजीवादिवस्तुविषयमेव सम्यग्ज्ञानम्,  
न पुनरेकान्तनित्यानित्यात्मादिविषयम्; तस्य विपरीतार्थग्राहक- १५  
त्वेन मिथ्यात्वोपपत्तेरित्येव निवेदयिष्यते । अतो यदुक्तम्-‘यथै-  
धांसि’ इत्यादि; तत्सर्वं संवररूपचारित्र्योपबृंहितसम्यग्ज्ञानाग्रेर-  
शेषकर्मक्षये सामर्थ्याभ्युपगमात्सिद्धसाधनम् ।

यच्चाभ्यधायि-समाधिवलादुत्पन्नतत्त्वज्ञानस्येत्यादि; तदप्यभि-  
धानमात्रम् । अभिलाषरूपरागाद्यभावेऽङ्गनाशुपभोगासम्भवात् । २०  
तत्सम्भवे वावदयमावी शुद्धिर्मेतो भवदभिप्रायेण योगिनोपि प्रचु-  
रतरधर्माधर्मसम्भवो नृपत्यादेरिवातिभोगिनः । वैद्योपदेशादा-  
तुर्योप्यौषधाद्याचरणे नीरग्भावाभिलाषेणैव प्रवर्तते, न पुनर्ज्ञान-  
मात्रात् । तन्नाशेषशरीरद्वारावाप्ताशेषभोगस्य कर्मान्तरानुत्पत्तिः ।  
किं तर्हि ? परिपूर्णसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यस्य, इत्यलं विवादेन, २५  
जीवन्मुक्तैरपि त्रितयात्मकादेव हेतोः सिद्धेः । संसारकारणं हि

१ किञ्च । २ तद्व-ज्ञानम् । ३ पृथुबुद्धोदराचाकाराभावे षडावस्थानप्रसङ्गात् ।  
४-सस्य कर्मफलम् । ५ उत्पद्यमानस्य । ६ सम्यग्ज्ञानमिथ्याज्ञानाभावः, मिथ्या-  
ज्ञानाभावाद्वागाद्यभावः, रागाद्यभावाद्वाक्षा ( वचनादि ) न्यन्तर ( चिन्तन ) क्रिया-  
निवृत्तिरिति । ७ सद्विषयः । ८ अङ्गकर्मफलप्राप्तादेः । ९ अस्मदीयमपि तत्त्वज्ञानं  
सञ्चितकर्मक्षयनिबन्धनमागामिकर्मानुत्पत्तिकारणं स्यादित्युक्ते आह । नित्यादिवस्तुविषय-  
ज्ञानस्य सम्यग्ज्ञानता न प्रतीयते किन्तु इत्यादि । १० नित्यात्मादिविषयज्ञानस्य ।  
११ अनेकानुसिद्धे । १२ आकाङ्क्षावतः । १३ न केवलं योगी । १४ सम्यग्दर्श-  
नादित्रयमोक्षकारणविषयविवादेन । १५ न केवलं परममुक्तिः । १६ कारणम् ।



मिथ्यादर्शनादित्रयात्मकं न पुनर्मिथ्याज्ञानमात्रात्मकम्, तच्चैक-  
स्मात्सम्यग्ज्ञानमात्रात्कथं व्यावर्त्तत इत्युक्तं सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे ।

यच्चान्यदुक्तम्-नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं केवलज्ञानोत्पत्तेः प्राक्  
काम्यनिषिद्धानुष्ठानपरिहारेण ज्ञानावरणादिदुरितक्षयनिमित्त-  
५ त्वेन केवलज्ञानप्राप्तिहेतुः, तदिष्टमेवास्माकम् ।

आनन्दरूपता तु मोक्षस्याभीष्टैव । एकान्तनित्यता तु तस्याः  
प्रतिषिध्यते । चिद्रूपतावदानन्दरूपताप्येकान्तनित्याः इत्यप्य-  
युक्तम् । चिद्रूपताया अप्येकान्तनित्यत्वासिद्धेः, सकलवस्तुस्वभा-  
धानां परिणामिनित्यत्वेनाग्रे समर्थयिष्यमाणत्वात् ।

१० अथानित्यत्वे तस्याः तत्संवेदनस्य चोत्पत्तिकारणं वक्तव्यम्;  
ननूकमेव प्रतिबन्धकापायलक्षणं तत्कारणं सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे ।  
आत्मेव हि प्रतिबन्धकापायोपेतो मोक्षावस्थायां तैथाभूतज्ञान-  
सुखादिकारणम्, घटाद्यावरणापायोपेतप्रदीपक्षणवत् स्वपर-  
प्रकाशकापरप्रदीपक्षणोत्पत्तौ, तदुत्पादन[स्व]भावस्यान्यौपेक्षा-

१५ योगात् । यद्धि तदुत्पादनस्वभावं न तत्तदुत्पादनेऽन्यौपेक्षम्  
यथान्त्या कारणसामग्री सैकार्योत्पादने, तदुत्पादनस्वभावश्चाती-  
न्द्रियज्ञानसुखाद्युत्पत्तौ प्रतिबन्धकापायोपेत आत्मेति । सैकारा-  
वस्थायामप्युपलभ्यते-वासीचन्दनकल्पानां सैवैव समवृत्तीनां  
विशिष्टभ्यानादिव्यवस्थितानां सेन्द्रियशरीरव्यापाराऽजन्यः पर-

२० माल्हावरूपोऽनुभवः । अस्यैव भावनावशादुत्तरोत्तरावस्थामासा-  
दयतः परमकाष्ठा गतिः संभाव्यत एव ।

आनन्दरूपतामिव्यक्तिश्चानाद्यऽविद्याविलयात्; इत्यभीष्टमेव;  
अष्टप्रकारपारमार्थिककर्मप्रवाहरूपाऽनाद्यविद्याविलयाद् अनन्त-  
सुखसंज्ञानादिस्वरूपप्रतिपैत्तिलक्षणमोक्षावाप्तेरभीष्टत्वात् ।

२५ विशुद्धज्ञानसन्तानोत्पत्तिलक्षणेऽप्यसौ मोक्षोऽभ्युपगम्यते ।  
स तु चित्सन्तानः सौन्वयो युक्तः । बद्धो हि मुच्यते नावद्धः ।

१ ननुर्षपरिच्छेदे । २ अतीन्द्रिय । ३ पदम् । ४ घटस्यप्रदीपवत् । ५ उत्तर ।  
६ आत्मनः । ७ इन्द्रियवनितादेः । ८ प्रतिबन्धकापायोपेत आत्मा यमी अतीन्द्रिय-  
ज्ञानसुखाद्युत्पत्तौ अन्यं नापेक्षते इति साध्यं, तदुत्पादनस्वभावत्वादिति शेषः ।  
९ अन्यतन्तुसंयोगः । १० पदलक्षणम् । ११ स प्रसिद्ध उपादनस्वभावो यसा-  
त्मनः । १२ असिद्धत्वे हेतोरुद्भाविते परिहारमाह । १३ कुठारः । १४ उपानासः ।  
१५ ऋत्विजयोः । १६ आदिना दानम् । १७ मैदः । १८ निश्चीयते ।  
१९ प्राप्तिः । २० बौद्धविशेषैरभ्युपगतः । २१ ज्ञानम् । २२ सद्रव्यः ।

न च निरन्वये चित्तसन्ताने वद्धस्य मुक्तिः । तत्र ह्यन्यो वद्धोऽन्यैश्च मुच्यते ।

सन्तानैक्याद्वद्धस्यैव मुक्तिरपीति चेत् ; ननु यदि सन्तानार्थः परमार्थसन् ; तदात्मैव सन्तानशब्देनोक्तः स्यात् । अथ संवृत्तिसन् ; तदैकस्य परमार्थसतोऽसत्त्वात् 'अन्यो वद्धोऽन्यश्च ५ मुच्यते' इति मुक्त्यर्थं प्रवृत्तिर्न स्यात् । अथात्यन्तनानात्वेऽपि दृढतरैकत्वाध्यवसायाद् 'वद्धमात्मानं मोचयिष्यामि' इत्यभिसन्धानवतः प्रवृत्तेर्नयं दोषः ; न तर्हि नैरात्म्यदर्शनम्, इति कुतस्तन्निवन्धना मुक्तिः ? अथास्ति तद्दर्शनं शास्त्रसंस्कारजम् ; न तर्ह्येकत्वाध्यवसायोऽस्वलद्रूप इति कुतो वद्धस्य मुक्त्यर्थं प्रवृत्तिः १० स्यात् ? तथा च—

“मिथ्याभ्यारोपद्धानार्थं यैकोऽसत्यपि मोक्तिर” [ प्रमाणवा० २।१९२ ] इति ह्युच्यते । तस्मात्सत्त्वात् चित्तसन्ततिरभ्युपगन्तव्या, सकलविज्ञानक्षणत्वेऽपि जीवाभावे बन्धमोक्षयोस्तदर्थं वा प्रवृत्तेरनुपपत्तेः । न चान्योन्यविलक्षणाऽपरापरचित्तक्ष- १५ णानामनुयायिजीवाभावे विरोधात् ; इत्यभिधौतव्यम् ; स्वसंबेदनप्रत्यक्षेण तत्रानुयायिरूपतया तस्य प्रतीतेः । प्रतीयमानस्य च कथं विरोधो नाम अनुपलम्भसाध्यत्वात्तस्य ?

तद्व्यापारे चासति आत्मनि प्रत्यभिज्ञानप्रत्ययस्य प्रादुर्भावो न स्यात् । अथात्मन्यभ्यारोपितैकत्वविषयत्वादस्य प्रादुर्भावः ; न ; २० अस्यारोपितैकत्वविषयत्वे स्यात्प्रत्यनुमानात्क्षणिकैकत्वं निश्चिन्वतो निवृत्तिप्रसङ्गात्, निश्चयारोपमनसोर्विरोधात् । निर्वर्तत एवेति

१ पूर्वक्षणः । २ उत्तरक्षणः । ३ अपिशब्दादन्वोपि । ४ बौद्धानां मते पूर्वोत्तरक्षणानामेक आधारभूतः सन्तानः स अपरमार्थः सन्नेकलः पूर्वक्षणः उत्तरक्षणः सन्तानौ स तु परमार्थसन् । ५ कल्पनासन् । ६ आत्मनः । ७ क्षणानाम् । ८ अभिप्रायवतः । ९ निर्विकल्पकस्य । १० भावना । ११ वद्धस्य मुक्त्यर्थं प्रवृत्त्यभावे च । १२ नैरात्म्यभावनालक्षणः । १३ विनश्यति । १४ अन्वयाभावे बन्धो मोक्षो वा न घटते यतः । १५ सन्न्या । १६ अन्यथा । १७ परेण । १८ पूर्वक्षणे अहमेव दुःखी उत्तरक्षणेऽहमेव सुखीति । १९ स्तसिन् । २० न केवलं नहिः । २१ सृष्ट्या । २२ चेदिति शेषः । २३ स्वरूपे । २४ यत्सत्ताक्षणिकमित्यादि । २५ आरोपितैकत्वविषयस्य प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययस्य । २६ अनुमानेन । २७ सोऽहं प्रत्यभिज्ञानरूपो विकल्पः । २८ मनः=ज्ञानम् । २९ एकत्र । ३० अनुमानमनित्यत्वसाधने एकस्मिन्स्वनि प्रवृत्तं प्रत्यभिज्ञानं त्वैकत्वसाधने इति विरोधः । ३१ क्षणिकत्वनिश्चयसमये एकत्वविषयं प्रत्यभिज्ञानम् ।

चेत्; तर्हि संहजस्याभिसंस्कारिकस्य च सैत्त्वदर्शनस्याभावाच्चदैवं तन्मूलरागादिनिवृत्तेर्मुक्तिः स्यात् । भ्रान्तत्वे चास्य प्रत्यक्षस्याशेषस्यापि भ्रान्तत्वप्रसङ्गः, बाह्याभ्यात्मिकभावेष्वेकत्वग्राहकत्वेनैवाशेषप्रत्यक्षाणां प्रवृत्तिप्रतीतिः । तथा च प्रत्यक्षस्याभ्रान्तत्वविशेषेणमसम्भाव्यमेव स्यात् । समर्थयिष्यते च प्रत्यभिज्ञानप्रत्ययस्यानारोपितार्थग्राहकत्वमभ्रान्तत्वं च । तत्रैकत्वाभावः । अनुभूयमानस्यापि चैकत्वस्यानेकत्वेन विरोधे ग्राह्यग्राहकसंवित्ति-लक्षणविरुद्धरूपत्रयाध्यासितज्ञानस्य, अर्थसैलक्षण्यस्य चैकदा स्वपरकार्यकर्तृत्वाकर्तृत्वलक्षणविरुद्धधर्मद्वयाध्यासितस्य एकत्व-  
१० विरोधः स्यात् ।

यच्चान्यत्-रागादिमतो विज्ञानाच्च तद्रहितस्यास्योत्पत्तिरित्याद्युक्तम्; तदप्यसाम्प्रतम्; रागादिरहितस्याखिलपदार्थनिबन्धविज्ञानस्याशेषज्ञसाधनप्रस्तावे प्रतिपादितत्वात् । न च बोधाद्वोध-रूपतेति प्रमाणमस्ति; इत्यप्ययुक्तम्; विलक्षणकारणाद्विलक्षण-  
१५ कार्यस्योत्पत्त्यभ्युपगमे अचेतनाच्छरीरादेश्चेतन्योत्पत्तिप्रसङ्गाच्चा-र्वाकमतानुषङ्गः । प्रसिद्धितश्च परलोकी प्रागित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

यच्चाभ्यधायि-सुषुप्तावस्थायां विज्ञानसद्भावे जाग्रदवस्थातो न विशेषः स्यात्; तदप्यभिधानमात्रम्; यतस्तदा विज्ञानसैक्यावेपि अतिनिद्रयाभिभूतत्वाच्च जाग्रदवस्थातोऽविशेषः, मत्तमूर्च्छिता-  
२० षवस्थायां मदिराद्युत्पादितमद्वैतदेर्नाशमभूतविज्ञानवत् ।

ननु कोयं मिद्धेनामिभवः ? ज्ञानस्य नाशश्चेत्; कथं तस्य सैत्त्वम् ? तिरोभावश्चेत्; न; स्वपरप्रकाशरूपज्ञानाभ्युपगमे तस्याप्यसम्भवात्; इत्यप्यचर्चिताभिधानम्; मणिमन्त्रादिनाश्यादिप्रतिबन्धे शरावादिना प्रदीपादिप्रतिबन्धे च समानत्वात् । न हि तत्राप्यश्या-  
२५ देर्नाशः प्रतिबन्धः; प्रत्यक्षविरोधात् । नापि तिरोभावः; स्वपरप्रकाशस्वभावस्य स्फोटादिकार्यजननसमर्थस्य तिरोभावस्याप्यस-

१ ग्राम्यजनसम्बन्धिनः । २ पण्डितजनसम्बन्धिनः । ३ जीव । ४ प्रलम्बि-  
ज्ञानस्य । ५ क्षणिकत्वनिश्चयसमये पद । ६ सौगतस्य । ७ प्रलम्बं कल्पनापोढम-  
भ्रान्तमित्यत्र सूत्रे । ८ किञ्च । ९ सुखदुःखानालक्ष्णोपलम्भेन । १० नील-  
स्वलक्षणस्य । ११ वृत्तानीलादिक्षणस्य । १२ अर्थान्तरपीतार्थः । १३ अचेतनादि-  
त्मनः । १४ ज्ञानलक्षणस्य । १५ दूरस्थितेन चावोक्तोक्तमसदीयमतवेवास्तु ।  
तत्राह । १६ सुप्तावस्था ज्ञानवती आत्मनः अवस्थात्वान्मैतन्मूर्च्छितावस्थानवत् ।  
१७ मत्तता । १८ पीडा । १९ विषयपीडा । २० सुषुप्तावस्थायाश्च । २१ मणि-  
मन्त्रशरावादिना अभिप्रदीपप्रतिबन्धे ।

म्भवात् । प्रतीत्यनतिक्रमेणात्र स्वरूपसामर्थ्यप्रतिबन्धाम्युपगमोऽन्यत्रापि समानः । सिद्धादिसामग्रीविशेषवशाद्धि बाह्याध्यात्मिकार्थविचारविधुरं गच्छन्तृणस्पर्शज्ञानसमानं सुषुप्तावस्थायां ज्ञानमास्ते ।

न हि स्वपरप्रकाशस्वभावत्वमात्रेणैवास्य तद्विरूपणसामर्थ्यम्; सर्वत्रानभिभूतस्यैवार्थस्य स्वकार्यकारित्वप्रतीतेः, अन्यथा दहनादिस्वभावस्याग्नेः सदा दाहकत्वप्रकाशकत्वप्रसङ्गः, गच्छन्तृणस्पर्शसंवेदनस्य वा तदर्थनिरूपकत्वानुषङ्गः । अथात्र मनोऽसंज्ञोऽस्मरणकारणम्, अन्यत्र सिद्धादिकमित्यविशेषः । अस्ति चात्र स्वापलक्षणार्थनिरूपणम्—‘एतावत्कालं निरन्तरसुप्तोहमेता-१० वत्कालं सान्तरम्’ इत्यनुस्मरणप्रतीतिः । न च स्वापलक्षणार्थाननुभवेषु सुप्तोत्थानानन्तरं ‘गाढोहं तदा सुप्तः’ इत्यनुस्मरणं घटते; तस्यानुभूतवस्तुविषयत्वेनानुभवाविनाभावित्वात्, अन्यथा घटाद्यर्थाननुभवेषु तत्रानुस्मरणसम्भवात्कुतस्तदनुभवोपि सिद्ध्येत् ? न च भूतमूर्च्छिताद्यवस्थायामपि विज्ञानाभावाद् दृष्टा-१५ न्तस्य साध्यविकलता; इत्याशङ्कनीयम्; तदवस्थातः प्रच्युतस्योत्तरकालं ‘मया न किञ्चिदप्यनुभूतम्’ इत्यनुभवाभावप्रसङ्गात्, स्मृतेरनुभवपूर्वकत्वात् । अतो येनानुभवेन सतात्मा निखिला-नुभवविकलोऽनुभूयते तस्यामवस्थायां सोऽवस्थाभ्युपगन्तव्यः ।

किञ्च, सुप्ताद्यवस्थायां विज्ञानाभावं स एवात्मा प्रतिपद्यते, २० पार्श्वस्थो वा ? स एव चेत्, तत एव ज्ञानात्, तदभावाद्वा, ज्ञानान्तराद्वा ? न तावत्तत एव; अस्यासत्त्वात्, ‘तदेव नास्ति तत्र, तत एव चाभावगतिः’ इत्यन्योन्यं विरोधात् । ज्ञानाभावात्तत्र तदभावपरिच्छित्तिः, इत्युक्तम्; परिच्छेदस्य ज्ञानधर्मतयाऽर्भोवेऽसम्भवात्, अन्यथा ज्ञानस्यैव ‘अभावः’ इति नामकृतं स्यात् । २५

अथ ज्ञानान्तरात्तत्र तदभावगतिः, किं तत्कालभाविनः, जाग्रत्प्रबोधकालभाविनो वा ? प्रथमपक्षे कथं सुषुप्ताद्यवस्थायां सर्वथा ज्ञानाभावः ? अथ जाग्रत्प्रबोधकालभाविज्ञानाभ्यामन्तराले ज्ञाना-

-१ ज्ञानस्य स्वपरप्रकाशरूपं तिरोहितमतिरोहितं चैतन्यम् । २ चैतन्यस्य । ३ देशे । ४ अभिभूतस्य स्वकार्यकारित्वं यदि स्यात् । ५ प्रतिबन्धसमयेपि । ६ कार्यान्तरे प्रवृत्तिः । ७ असावधानत्वं वा । ८ किञ्च । ९ सुप्तोहमिति शेषः । १० मलक्षणे । ११ अनुभवाविनामातित्वं स्मरणस्य यदि न स्यात् । १२ स्मृतिः । १३ अन्यः । १४ सुषुप्तावस्थायां यस्य ज्ञानाभावात्तस्यादेव ज्ञानात् । १५ ज्ञानस्य । १६ ज्ञानाभावे परिच्छेदो यदि स्यात् । १७ ज्ञानमन्तरेण परिच्छेदानुपपत्तिर्यतः । १८ सन्ध्याकालमातःकाळः, तत्र गतिः ।

भावोऽवसीयते; ननु तद्वशाभाविज्ञानयोः सुपुष्पाद्यवस्थाभाविज्ञानं नोपलब्धिलक्षणप्राप्तम्, तत्कथं ताभ्यां तदभावोऽवसीयते? अन्यथाऽदृष्टस्यापि परलोकादेरभावोऽध्यक्षत एव स्यात् । तथा च “प्रमाणेतरसामान्यस्थितेः” [ . . . ] इत्यर्थेऽसङ्गतम् ।

- ५ नापि पार्श्वस्थोन्यस्तत्र तदभावं प्रतिपद्यते; कारणस्वभावव्यापकानुपलब्धेर्विरुद्धविधेर्वा तदभावाविनाभाविनो लिङ्गस्यात्रानुपलब्धेः । न तत्र विज्ञानसद्भावेपि लिङ्गाभावः समान इत्यभिधातव्यम्; स्वात्मनि स्वसंविदितज्ञानाविनाभावित्वेनाऽवधारितस्य प्राणापानशरीरोष्णताकारविशेषादेस्तत्सद्भावावेदिनो लिङ्गस्याऽन्योपलब्धेः, जाग्रद्वशायां मन्यन्तेतोवृत्तेस्तद्व्यतिरेकेणान्यतोऽप्रतीतेः ।

- ननु द्विविधोऽत्र प्राणादिः चैतन्यप्रभवो जाग्रद्वशायाम्, प्राणादिप्रभवश्च सुपुष्पाद्यवस्थायामिति । तत्र चैतन्यप्रभवप्राणादेर्जाग्रद्वशायां चैतन्यानुमानं युक्तम्, न पुनः प्राणादिर्प्राणादेः । न  
१५ खलु गोपालघटादौ धूमप्रभवधूमादित्यनुमानं दृष्टम्, अग्निप्रभवधूमादेव तद्दर्शनात्; इत्यप्यसङ्गतम् । सुषुप्तेतरावस्थयोः प्राणादेर्विशेषाऽप्रतीतेः । यथैव हि सुषुप्तः प्रीणिति तथैतरोपि, अन्यथा ‘किमयं सुषुप्तः किं वा जागर्ति’ इति सन्देहो न स्यात् । यदि चैते सुषुप्तस्य चैतन्यप्रभवा न स्युः किन्तु प्राणा-  
२० दिप्रभवाः, तर्हि जाग्रतः परवञ्चनाभिप्रायेण सुषुप्तव्याजेनावस्थितस्य तद्वशामेव तेषां भावो न स्यात् । न ह्यग्नेर्जायमानो धूमः प्रयत्नशतैरपि धूमादन्यतो वा जायते धूमप्रभवो वीक्षेति । दृश्यन्ते च ते यादृशा एव सुषुप्तस्य तादृशा एवास्यापि । तन्नैते भिन्नकारणप्रभवाः । चैतन्येतेऽप्रभवांश्च प्राणादीन् विवेचयन्वीत-  
३० रागेतरप्रभवव्यापारादीनपि विवेचयतु । तथा च

“सरागा अपि वीतरागवच्चेष्टन्ते वीतरागाश्च सरागवदिति वीतरागेतरविभागो निश्चेतुमशक्यः ।” [ . . . ] इति सूचते ।

१ तादिः । २ यथा घट उपलब्धिलक्षणप्राप्तो भवति तदा पश्चादन्यत्र घटाभावोऽवसीयते । ३ अनुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य प्रत्यक्षाद्यभावः स्यादिति । ४ प्रतिषेधाच्च कस्यचिदितिपर्यन्तम् । ५ अन्यपुरुषैः । ६ आत्मावस्थायाम् । ७ समयोर्नित्ये । ८ प्रभव । ९ पुरुषः । १० आसौच्छ्रासं गृह्णाति । ११ जीवति । १२ जाग्रत् । १३ समयोः आस्ते विशेषश्चेत् । १४ यतः सादृश्ये एव सन्देहः । अस्ति च सन्देहः । १५ किञ्च । १६ सुषुप्तस्य यादृशः प्राणः । १७ घटादेः । १८ धूमः । १९ न जायते । २० प्राण ।

धूमश्चाग्नेर्धूमाच्चोत्पद्यमानो यथा प्रतिपन्नस्तथा प्राणादिश्चैत-  
न्यात्तदभावाच्चोत्पद्यमानः स्वात्मनि परत्र चानेन प्रत्येतुं न  
शक्यते क्वचित्तदभावस्य निश्चेतुमशक्यत्वादित्युक्तम् । धूमे च  
'किमयं धूमोऽग्नेः, धूमान्तराद्वा' इति सन्देहः प्रवृत्तस्याग्निद-  
र्शनेतराभ्यां निवर्त्तते । प्राणादौ तु 'किमयमनन्तरचैतन्य-  
प्रभवः, किं वा भूतभाविजन्मान्तरचैतन्यप्रभवः' इति सन्देहः  
कुतो निवर्त्तत परचैतन्यस्य द्रष्टुमशक्यत्वात्? ततोऽयं न  
निश्शङ्कं परप्रतिपादनार्थं शास्त्रप्रणयनं युक्तम् । सन्देहात्तु  
तत्प्रणयनं चार्वाकस्याप्यविरुद्धम्, इत्युक्तमुक्तम्—“अन्यधियो  
नातेः” [ ] इति । १०

सुषुप्तादौ चाद्यः प्राणादिः कुतो जायताम्? जाग्रद्विज्ञानसह-  
कारिणोजाग्रप्राणादेरिति चेत्, न; एकसात्त्वाग्रद्विज्ञानादनन्त-  
रभावीप्राणादिः कालान्तरभावि च प्रबोधज्ञानमित्यस्यासम्भा-  
व्यमानत्वात् । न ह्येकसात्त्वाग्रविशेषात् क्रमभावि कार्यद्वय-  
सम्भवो नाम, अन्यथा नित्यादप्यर्कमात्रमवतार्योत्पत्तिप्रसङ्गः । १५  
तथाच “नाऽक्रमात्क्रमिणो भावाः” [प्रमाणवा० १।४५] इत्यस्य  
विरोधः । तस्मात्तत्कालभाविन एव ज्ञानात् प्राणादिप्रभवोऽभ्यु-  
पगन्तव्यः । तत्कथं तत्र ज्ञानाभावसिद्धिः?

स्वापसुखसंवेदनं चात्रै सुप्रतीतम्—‘सुखमहमस्वापम्’ इत्युत्तर-  
कालं तत्प्रतीत्यन्यथा नुपपत्तेः । न ह्यननुभूते वस्तुनि स्मरणं प्रत्यभि- २०  
ज्ञानं चोपपद्यते । न च तदा स्वापसुखनिरूपणाभावात्तत्संवेदना-  
भावः; तदहर्जातवालकस्य मुखप्रक्षिप्तस्तैन्यजनितसुखसंवेदनेन  
व्यभिचारात् । न खलु तत्तेन ‘इदमित्यम्’ इति निरूप्यते ।

न च दुःखाभावात्सुखशब्दप्रयोगोऽत्र गौणः; अर्भावस्य प्रति- २५  
योगिभावात्तन्तरस्वभावतया व्यवस्थितेः इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

यच्चोक्तम्—अनेकान्तज्ञानस्य बाधकसङ्गावेन मिथ्यात्वोपप-  
त्तेर्न निःश्रेयससाधकत्वम्; तदप्युक्तिमात्रम्; तज्ज्ञानस्यैवावाधित-

१ लौकिकेन । २ इतरदम्यदर्शनम् । ३ जाग्रदज्ञानम् । ४ तथागतस्य ।  
५ किञ्च । ६ नतस्य । ७ एकसात्त्वर्यद्वयसम्भवश्चेत् । ८ एकरूपात् । ९ स्वाप-  
दशा । १० सुषुप्तावसायान् । ११ किञ्च । १२ सुषुप्तावसायान् । १३ सुख-  
संवेदनं विना । १४ सुषुप्तावसायान् । १५ दुग्ध । १६ दुःखाभावे सुखशब्दो  
न पारमार्थिकसुखस्य बाधक इति हेतोः । १७ सुखमहमस्वापमित्यसिन्वाक्ये ।  
१८ औपचारिकः । १९ दुःखस्य । २० दुःखलक्षणाज्ञावात्पर सुखलक्षणं भावा-  
न्तरम् । २१ स्वापवसायां ज्ञानसङ्गावसावनविवरेण ।  
‘प्र० क० भा० २८

तथा सम्यक्त्वेन वक्ष्यमाणत्वात् । नित्यानित्यत्वयोर्विधिप्रतिषेध-  
रूपत्वादभिन्ने धर्मिण्यभावः, इत्याद्यप्ययुक्तम्, प्रतीयमाने वस्तुनि  
विरोधासिद्धेः । न च येन रूपेण नित्यत्वविधिस्तेनैवानित्यत्व-  
विधिः, येनैकत्र विरोधः स्यात्, अनुवृत्त-व्यावृत्ताकारतया नित्या-  
५ नित्यत्वविधेरभ्युपगमात् । विभिन्नधर्मनिमित्तयोश्च विधिप्रति-  
षेधयोर्नैकत्र प्रतिषेधः अतिप्रसङ्गात् । न चानुवृत्तव्यावृत्ताका-  
रयोः सामान्यविशेषरूपतयाऽऽत्यन्तिको भेदः, पूर्वोत्तरकालभा-  
विस्वपर्यायतादात्म्येनावस्थितस्यानुगताकारस्य बाह्याध्यात्मिका-  
र्थेषु प्रत्यक्षप्रतीतौ प्रतिभासनादित्यग्रे प्रपञ्चयिष्यते ।

१० स्वदेशादिषु सत्त्वं परदेशादिष्वसत्त्वं च वस्तुनोऽभ्युपगम्यते  
एवेतरेतराभावात्, इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्, इतरेतराभार्यस्य  
घटादभेदे तद्विनाशे पटोत्पत्तिप्रसङ्गात् पटाभावात् विनष्टत्वात् ।  
अथ घटाद्भिन्नोऽसौ, तर्हि घटादीनामन्योन्यं भेदो न स्यात् ।  
यथैव हि घटस्य घटाभावाद्भिन्नत्वाद् घटरूपता तथा पटादेरपि  
१५ स्यात् । नाप्येषां परस्पराभिन्नानामभावेन भेदः कर्तुं शक्यः,  
भिन्नाभिन्नभेदकरणे तस्याकिञ्चित्करत्वप्रसङ्गात् । नापि भेद-  
व्यवहारः, स्वहेतुभ्योऽसाधारणतयोत्पन्नानां सकलभावानां प्रत्यक्षे  
प्रतिभासनादेव भेदव्यवहारस्यापि असिद्धेः । प्रतिक्षिप्तमेतरेतरा-  
भावः प्रागेवेति कृतं प्रयासेन ।

२० कार्यान्तरेषु चाऽकर्तृत्वं न प्रतिषिध्यते, इत्याद्यप्यसारम् ।  
एकान्तपक्षे कार्यकारित्वस्यैवासम्भवात् ।

यच्च मुक्तावप्यनेकान्तो न व्यावर्तते, तदिष्यते एव । अने-  
कान्तो हि द्वेधा-क्रमानेकान्तः, अक्रमानेकान्तश्च । तत्र क्रमाने-  
कान्तापेक्षया य एव प्रागमुक्तः स एवेदानीं मुक्तः संसारी  
२५ चेत्यविरोधः । अनेकान्तेऽनेकान्ताभ्युपगमोप्यदूर्ध्वर्णमेव, प्रमाण-

१ अनेकान्तसिद्धौ । २ एकसिद्धौ । ३ नित्यानित्यात्मकतया । ४ वसः ।  
५ अन्यथा । ६ कर्तृत्वाकर्तृत्वधर्मयोरेकत्र धर्मिणि प्रतिषेधप्रसङ्गात् । ७ अनेकान्त-  
सिद्धौ । ८ घटे पटाभावः पटे घटाभाव इतीतरेतराभावः । ९ कपालेषु । १० घटे ।  
११ घटाभावाद्भिन्नरूपत्वाद् घटरूपता । १२ वसः । १३ अभिन्नभेदकरणे पदार्थ  
एव कृतो भवेद् । भिन्नभेदकरणे पदार्थसादृश्यम् । १४ असाङ्कृतः । १५ इतरेतरा-  
भावनिराकरणप्रयासेनालम् । १६ अनेकान्त एवेति बीजावेकान्तः (सर्वथा) सोऽने-  
कार्त्तं प्रतिषिध्यते । केन ? द्वितीयानेकान्तपदेन । कथम् ? न विद्यते अनेकान्त  
एवेति एकान्तो यस्यानेकान्तस्य तस्याभ्युपगमः । १७ अनवसादिकम् ।

परिच्छेद्यस्यानेकधर्माध्यासितवस्तुस्वरूपानेकान्तस्य नयपरिच्छेद्यै-  
कान्ताविनाभावित्वात् ।

‘आत्मैकत्वज्ञानात्’ इत्यादिग्रन्थस्तु सिद्धसाध्यतया न समा-  
धानमर्हति ।

न च गुणपुरुषान्तरविवेकदर्शनं निःश्रेयससाधनं घटते; प्रकर्ष-५  
पर्यन्तावेष्टायामप्यात्मनि शरीरेण सहावस्थानान्मिथ्याज्ञानवत् ।

अथ फलोपभोगकृतोपात्तकर्मक्षयापेक्षं तत्त्वज्ञानं परनिःश्रेय-  
सस्य साधनम्, तदनपेक्षं चाऽपरनिःश्रेयसस्येत्युच्यते; तदप्युक्ति-  
मात्रम्; फलोपभोगस्यौपक्रमिकानौपक्रमिकविकल्पानतिक्रमात् ।  
तस्यौपक्रमिकत्वे कुतस्तदुपक्रमोऽन्यत्र तपोतिशयात्, इति १०  
तत्त्वज्ञानं तपोतिशयसहायमन्तर्मूततत्त्वार्थश्रद्धानं परनिःश्रेयस-  
कारणमित्यनिच्छतोप्यायातम् । तस्यानौपक्रमिकत्वे तु सदा  
संज्ञाबालुषङ्गः ।

यच्च स्वरूपे चैतन्यमात्रेऽवस्थानं मोक्ष इत्युक्तम्; तदयुक्तम्;  
चैतन्यविशेषेऽनन्तज्ञानादिस्वरूपेऽवस्थानस्य मोक्षत्वसाधनात् । १५  
न ह्यनन्तज्ञानादिकमात्मनोऽस्वरूपं सर्वज्ञत्वादिविरोधात् । प्रधा-  
नस्य सर्वज्ञत्वादिसवरूपं नात्मन इत्यसत्; तस्याचैतन्यत्वेनाकाशा-  
दिवत्तद्विरोधात् । ज्ञानादेरप्यचैतन्यत्वात् प्रधानस्वभ (भा) वत्त्वा-  
विरोधश्चेत्; कुतस्तदचैतन्यत्वसिद्धिः ? ‘अचैतना ज्ञानादय उत्प-  
त्तिमत्त्वाद् घटादिष्वत्’ इत्यनुमानाच्चेत्; न; हेतोरनुमनेनानेका- २०  
न्तात्, तस्य चैतन्यत्वेत्युत्पत्तिमत्त्वात् । न चोत्पत्तिमत्त्वमसिद्धम्;  
परापेक्षत्वाद्बुद्ध्यादिवत् । परापेक्षोक्तौ बुद्ध्यध्यवर्त्तयापेक्षत्वात्  
“बुद्ध्यध्यवर्त्तितमर्थं पुरुषश्चित्तर्यते” [ ] इत्यभिधानात् ।

कालात्ययापदिष्टश्चायं हेतुः; ज्ञानादीनां स्वसंवेदनप्रत्यक्षाच्चैतन-  
त्वप्रसिद्धेरध्यक्षवाधितपक्षानन्तरं प्रयुक्तत्वात् । चेतनसंसर्गात्तेषां २५  
चेतनत्वप्रसिद्धिः; इत्यप्यचर्चिताभिधानम्; शरीरादेरपि तत्प्रसि-  
द्धिप्रसङ्गात् चेतनम(त्व)संसर्गाविशेषात् । शरीराद्यसम्भवी तेषां

१ यतः । कथम् ? स चासाधनेकान्तश्च तस्य । २ प्रकृतिसत्त्वादिगुणयोरभेदाद्गुण  
इत्युक्ते प्रकृतिर्माया । ३ पुरुषविशेष । ४ भेदभावनाज्ञानम् । ५ विवेकदर्शनस्य ।  
६ असम्भवे तु सम्यग्दर्शनादिकं परमप्रकर्षप्राप्तं शरीरेण सहावस्थानं न भवति  
अयोगिचरमसमये एव शरीराभावकक्षणे तत्सङ्गात् । ७ जीवभुक्तिः । ८ सका-  
मनिर्जरा अकामनिर्जरा चेति । ९ भेद । १० वर्त्तने । ११ बौगस्य । १२ फलोप-  
भोगश्चेति कृत्वा । १३ सदा भुक्तिप्रसङ्गः । १४ दर्शनेन । १५ अनुभवस्य ।  
१६ अर्थप्रतिबिम्बन । १७ निश्चितम् । १८ आत्मा । १९ अनुभवति ।



संसर्गविशेषोस्तीति चेत्; स कोन्योऽन्यत्र कथञ्चित्तादात्म्यात् ? तददृष्टकृतकत्वादेः शरीरादावपि भावात् । ततो नाचेतना ज्ञानादयः स्वसंवेद्यत्वादनुभववत् । स्वसंवेद्यास्ते परसंवेदनान्यथानुपपत्तेरिति स्वसंवेदनसिद्धिप्रस्तावे प्रतिपादितम् । तथा चात्म-  
५ स्वभावास्ते चेतनत्वादनुभववत् । सुखमप्यात्मस्वभाव एव मोक्षेऽभिव्यज्यमानत्वाद् ज्ञानवत् । अनात्मस्वभावत्वे तत्र तदभिव्यक्तिर्न स्यादुःखवत् ।

तथा सुखात्मको मोक्षश्चेतनार्त्मकत्वे सत्यखिलदुःखविवेकात्मकत्वात् संहृतसकलविकल्पध्यानावस्थावत् । तथानन्तं तत्  
१० आत्मस्वभावत्वे सत्यपेर्तप्रतिबन्धत्वात् ज्ञानवदेव । अपेतप्रतिबन्धत्वं तु मोहनीयादेः प्रतिबन्धकस्य कर्मणोऽपायात्प्रसिद्धमेव । इति सिद्धमनन्तज्ञानादिवैतन्यविशेषेऽवस्थानं पुंसो मोक्ष इति ।

ननु पुंस एवानन्तज्ञानादिस्वरूपलामलक्षणो मोक्ष इत्ययुक्तम् ;  
स्त्रीणामप्यस्योपपत्तेः । तथाहि—अस्ति स्त्रीणां मोक्षोऽविकलकारण-  
१५ त्वात् पुरुषवत् ; तदसत् ; हेतोरसिद्धेः, तथाहि—मोक्षहेतुज्ञानादिपरमप्रकर्षः स्त्रीषु नास्ति परमप्रकर्षत्वात् सप्तमपृथ्वीगमनकारणापुण्यपरमप्रकर्षवत् । यदि नाम तत्र तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षाभावो मोक्षहेतोः परमप्रकर्षाभावे किमायातम् ? कार्यकारणव्याप्यव्यापकभावाभावे हि तैयोः कथमन्यस्याभावेऽन्यस्याभावोऽस्तिप्र-  
२० संज्ञात् इति चेत् ; सत्यम् ; अयं हि तावन्निर्यमोस्ति—यद्वेदस्य मोक्षहेतुपरमप्रकर्षस्तद्वेदस्य तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षोऽप्यस्त्येव, यथा पुंवेदस्य । न च चरमशरीरेणैव्यभिचारः ; पुंवेदसामान्यापेक्षयोक्तः ।

. १ विना । २ पुरुषादृष्टकृतः अन्यः संसर्गविशेषो ज्ञानादिभिरात्मनोऽस्तीत्युक्ते आह । ३ संसर्गस्य । ४ पदादिः परः । ५ ज्ञानस्य स्वसंवेदितत्वाभावे । ६ चेतनत्वसिद्धितया । ७ सुखस्य । ८ अखिलदुःखविवेकात्मकत्वादित्युक्ते षटेन व्यभिचारस्तत्परिहारार्थं चेतनात्मकत्वे सतीत्युक्तम् । ९ चेतनात्मकत्वादित्युच्यमाने षण्ण्यमाननरेण व्यभिचारस्तत्परिहारार्थमखिलदुःखविवेकात्मकत्वादित्युक्तम् । १० आत्मस्वभावत्वादित्युच्यमाने दुःखेन व्यभिचारस्तत्परिहारार्थमपेतप्रतिबन्धत्वादित्युक्तम् । ११ अपेतप्रतिबन्धत्वादित्युच्यमाने प्रदीपेन व्यभिचारस्तत्परिहारार्थमात्मसमावृत्ते सतीत्युक्तम् । १२ लक्षणम् । १३ श्वेतपटः । १४ मोक्षहेतुज्ञानादिपरमप्रकर्षतत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षयोः । १५ अकारणस्यान्यापकस्य वा । १६ अकार्यस्यान्यापकस्य वा । १७ षटाभावे त्रैलोक्यमागतो भवेत् । १८ अविनाभावः । १९ पुंति सप्तमपृथ्वीगमनकारणापुण्यप्रकर्षोस्ति मोक्षहेतुज्ञानादिपरमप्रकर्षत्वात् । २० न्यायो हेतुः । २१ साध्यो व्यापकः । २२ इति पुंति अनयोऽन्योऽप्यन्यापकभावः सिद्धः सन् स्त्रीषु व्यापकाभावेऽन्याप्याभावं साधयत्येवेति भावः । २३ आत्मना ।

विपरीतस्तु नियमो न सम्भवत्येव; नपुंसकवेदे तत्कारणापुण्य-  
परमप्रकर्षे सत्यप्यन्यस्यानभ्युपगमात् पुंस्यभ्युपगमाच्च, अनित्य-  
त्वस्य प्रयत्नानन्तरीयकत्वेतरत्ववत् । ततश्च स्त्रीवेदस्यापि यदि  
मोक्षहेतुः परमप्रकर्षः स्यात्, तदा तदभ्युपगमादेवापरोप्यनि-  
ष्टोऽवश्यमापद्यते, अन्यथा पुंस्यपि न स्यात् । सिद्धे च प्रतिबन्धार्ह- ५  
यामावेपि कृतिकोदयादिवदुक्तप्रकर्षयोरविनाभावे स्त्रीणां तत्का-  
रणापुण्यपरमप्रकर्षप्रतिषेधेन मोक्षहेतुपरमप्रकर्षो निषिध्यते ।

न च 'नपुंसकस्य मोक्षहेतुपरमप्रकर्षोऽस्ति तत्कारणापुण्य-  
परमप्रकर्षसद्भावात् पुंवत् । पुंसो वा नास्ति एव नपुंसकवत् ।  
तत्कारणाऽपुण्यपरमप्रकर्षो वा नपुंसके नास्ति परमप्रकर्ष- १०  
त्वात् स्त्रीवदित्यप्यनिष्ठापत्तिः उभयप्रसिद्धाद्वेतोरुभयप्रसिद्धस्य  
निषेधेनोभेयोस्तुल्यत्वात्' इत्यभिधातव्यम्; उभयाभिप्रेतागमेन  
बाधनीत् । स्त्रीणां तु तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षे पराभ्युपगतेनैव  
मोक्षहेतुपरमप्रकर्षेणाप्य तत्प्रतिषेधेन तद्धेतुरेव प्रतिषिध्यत  
इत्यस्ति विशेषः । १५

यद्वा नोक्तानुमाने तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षाभावादेतोर्मोक्ष-  
हेतुपरमप्रकर्षः स्त्रीषु निषिध्यते, अपि तु परमप्रकर्षत्वाद् दृष्टान्ते  
दृष्टसाध्यव्याप्तिकात् । न चार्त्र केनचिद्व्यभिचारः; स्त्रीसम्बन्धनः  
कस्यचित्परमप्रकर्षस्यासम्भवात् । मायापरमप्रकर्षोऽस्तीति चेत्, न;  
स्त्रीणां मायावोदुल्यमात्रस्यैवागमे प्रसिद्धेः । अन्यथा पुंवत्सप्तम- २०  
पुंविबीगमनानुषङ्गः । 'मायापरमप्रकर्षादन्यत्वे सति' इति विशेषो-  
पगौह्वा न दोषः । तत्र ज्ञानादिपरमप्रकर्षो मोक्षहेतुस्तत्रास्तीत्यै-

१ मोक्षहेतुपरमप्रकर्षो व्यापकः सार्वं तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षो व्याप्यो  
हेतुरिति । २ अविनाभावः । ३ शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकः अनित्यत्वादित्यत्रानित्यत्वस्य  
व्याप्यरूपस्य हेतोर्यथा प्रयत्नानन्तरीयकत्वम् । ४ नियमः सिद्धो यतः । ५ मोक्ष-  
हेतुपरमप्रकर्षसद्भावेपि अपरोऽनिष्टो नोपपद्यते चेत् । ६ तादात्म्यतदुत्पत्तिद्वये  
हे । ७ मोक्षहेतुपरमप्रकर्षसप्तमपुंविबीगमनकारणापुण्यपरमप्रकर्षलक्षणयोः । ८ मोक्ष-  
हेतुपरमप्रकर्षः । ९ साध्यत्वम् । १० नादिप्रतिवादिनोः । ११ सितपटप्रसिद्धस्य  
स्त्रीनिर्वाणस्यासाभिः प्रतिषेधादसत्प्रसिद्धस्य सितपटेन प्रतिषेधात् इति तुल्यत्वम् । १  
१२ सितपटपक्षस्य । १३ परः सितपटः । १४ इति कर्तुं तुल्यत्वमुपयोः । १५  
आयुक्तस्य परिहारान्तरे यद्वाशब्दः । १६ व्यापकत्वात् व्याप्याभावं न कुर्वी  
इत्यर्थः । १७ यो यः परमप्रकर्षः स स स्त्रीषु नास्तीति । १८ स्त्रीषु मोक्षप्रतिषेधे ।  
१९ शत्रुर्गमात्रं न तु परमप्रकर्षः । २० मायापरमप्रकर्षः स्त्रीष्वस्ति यदि ।  
२१ परमप्रकर्षत्वे । २२ व्यविचारलक्षणः । २३ परमप्रकर्षत्वादित्यत्रानुमाने ।

सिद्धो हेतुः । न खलु ज्ञानादयो यथा पुरुषे प्रकृष्यमाणाः प्रमाणतः प्रतीयन्ते तथा स्त्रीष्वपि, अन्यथा नपुंसके ते तथा स्युः, तथा चास्याप्यपवर्गप्रसङ्गः ।

संयमस्तुं तद्धेतुस्तत्रासम्माच्य एव; तथाहि-स्त्रीणां संयमो न मोक्षहेतुः नियमेनर्द्धिविशेषाहेतुत्वान्यथानुपपत्तेः । यत्र हि संयमः सांसारिकलब्धीर्नामप्यहेतुः तत्रासौ कथं निःशेषकर्मवि-प्रमोक्षलक्षणमोक्षहेतुः स्यात् ? नियमेन च स्त्रीणामेव ऋद्धिविशेषहेतुः संयमो नैष्यते, न तु पुरुषाणाम् । यदि हि नियमेन लब्धिविशेषस्याजनकः संयमः कचिदन्यत्राविषादास्पदीभूते मोक्षहेतुः १० प्रसिध्येत् तदा तद्वृष्टान्तावष्टम्भेनात्राप्यसौ तथा प्रत्येतुं शक्येत, नान्यथातिप्रसङ्गात् । संयममात्रं तु सदप्यासां न तद्धेतुः तिर्यग्गृहस्थादिसंयमवत् ।

सचेलसंयमत्वाच्च नासौ तद्धेतुर्गृहस्थसंयमवत् । न चायमसिद्धो हेतुः; न हि स्त्रीणां निर्वृत्तः संयमो दृष्टः प्रवचनप्रति- १५ पादितो वा । न च प्रवचनाभावेपि मोक्षसुखाकाङ्क्षया तासां वस्तुत्यागो युक्तः; अर्द्धप्रणीतागमोल्लङ्घनेन मिथ्यात्वात्प्राधान्यात् । यदि पुनर्नृणामचेलसौ तद्धेतुः स्त्रीणां तु सचेलः; तर्हि कारणमेवान्मुक्तेरप्यनुषज्येत मेदः स्वर्गादिवत् । देशसंयमिर्नैवेद्यं मुक्तिः प्रसज्यते । तथा च लिङ्गग्रहणमनर्थकम् । सचेलसंयमश्च २० मुक्तिहेतुरिति कुतोऽवगतम् ? स्वागमाद्येत्; न; अस्यास्मान् प्रत्यागमामासत्वाद् भवतो यस्मादुल्लानागमवत् ।

स्त्रियो न मोक्षहेतुसंयमवत्यः साधूनामवन्धत्वाद् बृहत्स्थवत् । न चात्रोसिद्धो हेतुः;

“वरिर्संसयदिविस्त्रयाप अज्जाप अज्ज दिविस्त्रयो साह ।

२५ अभिगमैणवर्द्धणंमंसणविणएण सो पुज्जो ॥” [ ]

इत्यभिधानात् ।

वाह्याभ्यन्तरपरिग्रहवत्त्वाच्च न तास्तद्वत्स्तद्वत् । न चायमसिद्धो हेतुः; प्रत्यक्षेणावगतो हि वस्तुग्रहणादिवाह्यपरिग्रहोऽभ्य-

१ अविकलकारणभाविति । २ स्त्रीषु ज्ञानादयः प्रकृष्यमाणाभेदाहि । ३ स्त्रीणां मोक्षहेतुसंयमो विषते चेत् । ४ तु पुनः । ५ स्त्रीणां मोक्षहेतुसंयमो विषते चेत्तर्हि । ६ ऋद्धीनाम् । ७ दृष्टान्तत्वमन्तरेण । ८ गृहस्थस्यापि मोक्षः स्यात् स्वसंभवात् । ९ निर्वृत्तसंयमः । १० अदृष्टलक्षणकारणमेदाद्यथा स्वर्गादेः प्रथमद्वितीयादिप्रकारेण मेदः । ११ सचेलसंयमवत्स्त्रीमुक्तिप्रकारेण । १२ निर्गन्धतालक्षणम् । १३ सितपटस्य । १४ महेश्वराय । १५ अनुमाने । १६ वर्षशतदीक्षितायाः आर्थिकायाः अथ वीक्षिताः साधुः । अभिगमनवन्दनानमस्कारेण विनयेन स पूज्यः । १७ सम्मुखगमन । १८ गुरुभक्तिपूर्वक । १९ नमस्कार ।

न्तरं स्वशरीरानुरागादिपरिग्रहमनुमापयति । न च शरीरोष्मणा वातकायिकादिजन्तूपघातनिवारणार्थं स्वशरीरानुरागाद्यभावेऽप्यसाधुपादीयते इत्यभिधेयम् ; पुंसामाचेलक्ष्यव्रतस्य हिंसात्वानुषङ्गात् । तथा चार्हदादयो मुक्तिभाजस्तदुपदेशारो वा न स्युः, किन्तु सवस्त्रा एव गृहस्था मुक्तिभाजो भवेयुः । न चाचेलक्ष्यं नेष्यते ५

“आचेलकुर्वेत्सिय सेज्जाहररायपिंडकिदिकम्म” [ जीतकल्प-भा० गा० १९७२ ] इत्यादेः पुरुषं प्रति देशविधस्य स्थितिकल्पस्य मध्ये तदुपदेशात् ।

किञ्च, गृहीतेपि वस्त्रे जन्तूपघातस्तदवस्थः, तेनानावृतपाणिपादादिप्रदेशोष्मणा तदुपघातस्य परिहर्तुमशक्तेः । वस्त्रस्य १० शूकालिक्षाद्यनेकजन्तुसम्भूच्छेनाधिकरणत्वाच्च । तथाविधस्यापि स्वीकरणे मूर्खजनानां लुञ्चनादिक्रिया न स्यात् । वस्त्राकुञ्चनोद्देशात्-वातेनाकाशप्रदेशावस्थितजन्तूपपीडनाच्च व्यजनादिवातवत् ।

किञ्च, एवमेकप्रमाण्युपघातनिवारणार्थमविहारीष्यनुष्ठेयो वस्त्रग्रहणवद्विशेषात् । ग्रन्थेन गच्छतो जन्तूपघातेऽप्यहिंसा निश्चे- १५ लेपि समा । यथा च यज्ञानुष्ठानं पशुहिंसाद्वत्वेनाऽश्रेयस्करत्वात् त्याज्यं तथा वस्त्रग्रहणमप्यविशेषात् ।

एतेन संयमोपकरणार्थं तदित्यपि निरस्तम् ।

किञ्च, बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहपरित्यागः संयमः । स च याचन-सीवनप्रक्षालनशोषणनिक्षेपादानचौरहरणादिभनःसंक्षोभकारिणि २० वस्त्रे गृहीते कथं स्यात् ? प्रेत्युत संयमोपघातकमेव तत् स्याद्वा-ह्याभ्यन्तरनैर्ग्रन्थप्रतिपत्तिर्निर्यात्वात् ।

ऋशीतीतार्तिनिवृत्त्यर्थं वस्त्रादि यदि गृह्यते ।

कामिनीादिसौथा किञ्च कामपीडादिशान्तये ? ॥ १ ॥

येन येन विना पीडा पुंसां समुपजायते ।

तत्तत्सर्वमुपादेयं लावर्कादिपल्लौदिकम् ॥ २ ॥

२५

१ परेण । २ आचेलक्ष्यादेशिकशब्दावररावकीयपिण्डोष्माकृतिकर्मप्रतरोपपन्नोन्मत्तं ज्येष्ठवा प्रतिकर्मणं मासिकवासिवा स्थितिकल्पो योगश्च वार्षिको दशमः । ३ अनु-प्रेक्षासंयमस्य । ४ शूकाद्यनेकजन्तुसम्भूच्छेनाधिकरणत्वाविशेषात् एषा निवारणापेक्षः । ५ प्रसारणाच्च । ६ व्यसक्तः । ७ जन्तूपघातपरिहारार्थं वस्त्रसोपादानप्रकारेण । ८ जगमनम् । ९ वस्त्रस्य जन्तूपघातसमर्पनपरेण ग्रन्थेन । १० निक्षेपतः । ११ विरोधित्वात् । १२ तान्त्र्यादिच्च । १३ वस्त्रग्रहणप्रकारेण । १४ गृह्यते । १५ यदि तर्हीति शेषः । १६ लावकाः पक्षिमिक्षेपः । पल्लं मांसम् । १७ उपादेयम् ।

- वस्त्रं खण्डे गृहीतेपि विरक्तो यदि तत्त्वतः ।  
 स्त्रीमात्रेपि तथा किञ्च तुल्याक्षेपसमाधितः ॥ ३ ॥  
 नापि तन्वीमनःक्षोभनिर्वृत्यर्थं तदादृतम् ।  
 तद्वाञ्छाऽहेतुकत्वेन तन्निषेधस्य सम्भवात् ॥ ४ ॥  
 ५ चक्षुरुत्पाटनं पट्टबन्धनं च प्रसज्यते ।  
 लोचनौदस्तदुत्पत्तौ निमित्तत्वाविशेषतः ॥ ५ ॥  
 चलच्चित्ताङ्गना काचित्संयतं च तपस्विनम् ।  
 यदीच्छति भ्रातृवर्त्तिकं दोषस्तस्य मतो नृणाम् ॥ ६ ॥  
 बीभत्सं मलिनं साधुं दृष्ट्वा शवशरीरवत् ।  
 १० अङ्गना नैव रज्यन्ते विरज्यन्ते तु तत्त्वतः ॥ ७ ॥  
 स्त्रीपरीषद्भ्यश्चैव चन्द्ररागैश्च विग्रहे ।  
 वस्त्रमादीयते यस्मात्सिद्धं ग्रन्थद्वयं र्ततः ॥ ८ ॥

न चैवं जन्तुरक्षागण्डादिप्रतीकारार्थं पिच्छौषधादौ गृह्यमाणे-  
 प्ययं दोषः समानः, त्रिचतुरपिच्छग्रहणस्य जन्तुरक्षार्थत्वात्,  
 १५ शरीरे ममेदेर्भावाऽसूचकत्वाच्च, औषधस्यापि प्रतिपन्नसाम-  
 र्थ्यस्य गण्डादेर्व्यावृत्तिहेतुत्वात् नाभ्यांविरोधित्वाच्च, वस्त्रे तु  
 विपर्ययात्, परमनैर्ग्रन्थसिद्ध्यर्थं पिच्छस्याप्यग्रहणाच्चौषधवर्त्त ।  
 पिण्डौषध्यादयो हि सिद्धान्तानुसारेणोद्गमादिदोषरहिता रत्न-  
 त्रयाराधनहेतवो गृह्यमाणा न कस्यापि मोक्षहेतोः हन्तारः । न हि  
 २० तद्ग्रहणे रागादयोऽन्तरङ्गा वहिरङ्गा वा स्वैर्भूयैर्विषादैर्यो ग्रन्था  
 जायन्ते, अतस्ते मोक्षहेनोरुपकर्तार एव । पिण्डग्रहणमन्तरेण  
 ह्यपूर्णकालेपि विपत्तेरापत्तेरात्मघातित्वं स्यात्, न तु वैखे ।  
 षष्ठाष्टमादिक्रमेण च मुमुक्षुभिः पिण्डोपि त्यज्यते, न तु स्त्रीभिः  
 कदाचिद्वस्त्रम् ।

१ रागादिसङ्गत्वे सत्येव क्षीपरिग्रह इत्याक्षेपो वक्षेपि समान इति समाधानम् ।  
 २ यं यदि वस्त्रमात्रे गृहीते न रागस्ताहि स्त्रीमात्रपरिग्रहेपि न रागः । २ स्वस्य ।  
 ३ औत्रादेश्च । ४ यथा प्राप्तुमानर्त्नं वनितायाय । कुत एतत्तस्य । इच्छारहित-  
 त्वात्तस्य तपस्विनः । ५ शरीरे । ६ कारणात् । ७ वस्त्ररागद्वन्द्वबाधान्प्यन्तरपरि-  
 ग्रहः । ८ तत्तत् इत्ययं शब्दः कोकादौ द्रष्टव्यस्तेनायमर्थः वस्त्रस्तीक्ष्णरेण अपर प्रयोजन  
 नास्ति यतस्ततः । ९ वस्त्रभकारेण । १० गण्डो रोगविशेषः । ११ मूर्च्छा-  
 १२ नैर्ग्रन्थ- १३ जन्तुरक्षार्थमावात्ममेदस्यावसूचकत्वाद् गण्डाद्यव्यावृत्तिहेतुत्वाद्  
 नाभ्यांविरोधित्वाच्च । १४ किञ्च । १५ औषधादेर्यथाऽग्रहणम् । १६ सम्प्रदर्श-  
 नादेः । १७ अलङ्कार- १८ मण्डन- १९ देशनैयत्येन वस्त्रपरिधानादिकक्षणे  
 वेधः । २० अगृह्यमाणे आत्मघातित्वं स्यादिति शेषः ।

अथ चक्ष्मादन्यस्याखिलस्य त्यागात्साकल्येनासां चाहं नैर्ग्रन्थ्यम्; तर्हि लोभादन्यकषायत्यागादेवाबाह्यमपि स्यात् । न च गृहीतेपि चक्षे ममेदम्भावस्याभावात्तदवतिष्ठते; विरोधात्-  
'बुद्धिपूर्वकं हि हस्तेन पतितवस्त्रमादाय परित्रधानोपि तन्मूर्च्छा-  
रहितः' इति कञ्चेतनः श्रद्दधीत? तन्वीमान्निव्यतोपि तद्ग्रहित-  
त्वप्रसङ्गात् । ततो वस्त्रग्रहणे बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहप्राप्तेर्नैर्ग्रन्थ्यद्व-  
यासम्भवाच्च स्त्रीणां मोक्षः । स हि बाह्याभ्यन्तरकारणजन्यः  
कार्यत्वान्माषपाकौदिवत् । तच्च बाह्यमभ्यन्तरं च कारणमाकि-  
ञ्चन्यम्, तदभावे कथं स स्यात्? इति परहेतोरसिद्धेर्नानुमानात्  
स्त्रीमुक्तिसिद्धिः । १०

नाप्यागमात्; तन्मुक्तिप्रतिपादकस्याभावात् ।

"पुंवेदं वेदंतां जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा ।

सेसोदयेणें वि तहा झाणुवैजुत्ता य ते दु सिज्झंति ॥"

[ ]

इत्यादेरप्यागमस्य स्त्रीमुक्तिप्रतिपादकत्वाभावः । स हि पुंवे-१५  
दोदयवत् शेषवेदोदयेनापि पुंसामेवापवर्गोवेदक उभयत्रापि  
'पुरुषाः' इत्यभिसम्बन्धात् । उदयश्च भावस्यैव न द्वयस्य ।

स्त्रीत्वान्यथानुपपत्तेः प्राप्तां न मुक्तिः । आगमे हि जघन्येन  
सत्ताष्टमिर्मवैः उत्कर्षेण द्वित्रैर्जीवस्य रत्नत्रयाराधकस्य मुक्तिरुक्ता ।  
यदा चास्य सम्यग्दर्शनाराधकत्वम् तत्प्रवृत्ति संवाप्तु स्त्रीवृत्ति-२०  
रेव न सम्भवतीति कथं स्त्रीमुक्तिसिद्धिः ।

ननु ज्ञानादिमिथ्यादृष्टिरपि जीवः पूर्वमवनिर्जीर्णाशुभकर्म  
प्रथमतरेव रत्नत्रयमाराध्य भरतपुत्रादिवन्मुक्तिमाप्तादयत्यतः  
स्त्रीत्वेनोत्पन्नस्यापि मुक्तिरविरुद्धेति; तदप्ययुक्तम्, पूर्वं निर्जीर्णा-  
शुभकर्मणः स्त्रीवेदेनोत्पत्तेरसम्भवात्, तस्याप्यशुभकर्मत्वेन २५  
निर्जीर्णत्वात् । कथं पुनः स्त्रीवेदस्याशुभकर्मत्वमिति चेत्,  
सम्यग्दर्शनोपेतस्य तत्त्वेनोत्पत्तेरयोगात् ।

ततो नास्ति स्त्रीणां मोक्षः पुरुषादन्यत्वात् नपुंसकवत् । अन्य-  
थाऽस्याप्यसौ स्यात् । न चैतद्व्याच्यम्-नास्ति पुंसो मोक्षः स्त्रीतो-

१ तत्प-पागादि । २ बाह्यमभ्यन्तरादिकमन्तरा अकिरेव तथा न हेतुः । ३ सितपट-  
प्रयुक्तस्य अविकलकारणत्वादित्यस्य । ४ अनुभवन्तः । ५ नपुंसकस्त्रीवेदोदयेनापि ।  
६ ध्यानोपयुक्तः । ७ पुरुषाः । ८ मुक्तिसङ्गाते सति । ९ दिव्यरूपादिपु ।  
१० अन्यथानुपपत्तिः सिद्धा यतः । ११ स्त्रीणां मोक्षश्चेत् ।

न्यत्वात् नपुंसकवत्; उभयवादिसम्मततागमेन बाधितत्वात्,  
भवेदागमस्य चास्मान्प्रति अप्रमाणत्वात् ।

तथा स्त्रीणां मोक्षो नास्ति उत्कृष्टध्यानफलत्वात् सप्तमपृथ्वी-  
गमनवत् । अतोपि न तासां मुक्तिसिद्धिः । ततोऽनन्तचतुष्टय-  
५ स्वरूपलामलक्षणो मोक्षः पुरुषस्यैवेति प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् ।

मुख्यं सांव्यवहारिकं च गदितं भानुप्रदीपोपमम्,

प्रत्यक्षं विशदस्वरूपनियतं साकल्यवैकल्यतः ।

निर्बाधं निर्यतस्वहेतुजनितं मिथ्यैर्तैः कल्पितम्,

तल्लक्षमेति विचारचारुचिषणैश्चेतस्यलं त्रिन्यताम् ॥ १ ॥

१० इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षासुखालङ्कारे  
द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

१ पुरुषावन्यत्वादित्यनुमानं न वक्तव्यमसदागमेन बाधितत्वादिति सितपटेनोक्तं तं  
प्रत्याह धरिः । २ अनेन पदेन परिच्छेदाद्यैमुपसंहरन्नाह । ३ सामग्रीविशेषेलादिक-  
मिन्द्रियानिन्द्रियं च । ४ नैयायिकादिभिः । ५ कृतम् ।

। श्रीः ।

## ॥ अथ तृतीयः परोक्षपरिच्छेदः ॥

अथेदानीं परोक्षप्रमाणस्वरूपनिरूपणाय—

### परोक्षमितरत् ॥ १ ॥

इत्याह । प्रतिपादितविशदस्वरूपविज्ञानाद्यदन्यदऽविशदस्वरूपं विज्ञानं तत्परोक्षम् । तथा च प्रयोगः—अविशदज्ञानात्मकं परोक्षं परोक्षत्वात् । यन्नाऽविशदज्ञानात्मकं तन्न परोक्षम् यथा मुख्ये-५ तरप्रत्यक्षम्, परोक्षं चेदं वक्ष्यमाणं विज्ञानम्, तस्मादविशदज्ञानात्मकमिति ।

तन्निमित्तप्रकारप्रकाशनाय प्रत्यक्षेत्याद्याह—

### प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञान-

### तर्कानुमानागमभेदम् ॥ २ ॥

१०

प्रत्यक्षादिनिमित्तं यस्य, स्मृत्यादयो भेदा यस्य तथोक्तम् ।

तत्र स्मृतेस्तावत्संस्कारेत्यादिना कारणस्वरूपे निरूपयति—

### संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः ॥ ३ ॥

संस्कारः सांख्यव्यवहारिकप्रत्यक्षभेदो धारणा । तस्योद्बोधः प्रबोधः । स निबन्धनं यस्याः तदित्याकारो यस्याः सा तथोक्ता १५ स्मृतिः ।

विनेयानां सुखावबोधार्थं दृष्टान्तद्वारेण तत्स्वरूपं निरूपयति—

### यथा स देवदत्त इति ॥ ४ ॥

यथेत्युदाहरणप्रदर्शने । स देवदत्त इति । एवंप्रकारं तच्छब्द-परामृष्टं यद्विज्ञानं तत्सर्वं स्मृतिरित्यवगन्तव्यम् । न चासावप्रमाणं २०

१ स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमविशेषाः स्वभाविनो वर्णिताः प्रतिज्ञाः । तत्र परोक्षत्वं सामान्यरूपं बादिप्रतिवादिनोः असिद्धलभावः—तेन वस्तुनोऽनेकधर्मात्मकत्वात् । नत्र स्थितौ द्वितीयोऽविशदज्ञानात्मकोऽप्रतिदः साध्यते इति विशेषं स्वभाविनं (स्वभावस्वभावविनोर्भेदात्) सामान्यस्वार्थं नुवर्तां दोषाभावात् । २ कारण । ३ भेदः । ४ स्मृतिः प्रत्यक्षपूर्विका । प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षस्मरणपूर्वकम् । तर्कः प्रत्यक्षस्मरणप्रत्यभिज्ञानपूर्वकः । अनुमानं प्रत्यक्षस्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्कपूर्वकम् । आगमस्तु भावनाध्यक्षसद्वैतस्मृतिपूर्वकः । ५ संस्कारस्य कारणमार्थं देवदत्तदर्शनम् । उन्नेयस्य कारणं पाश्चात् तत्तद्दृष्टान्तकार्यादिदर्शनम् । ६ प्राकट्यम् ।



संवादकत्वात् । यत्संवादकं तत्प्रमाणं यथा प्रत्यक्षादि, संवादिका च स्मृतिः, तस्मात्प्रमाणम् ।

ननु कोयं स्मृतिशब्दवाच्योर्थः-ज्ञानमात्रम्, अनुभूतार्थविषयं वा विज्ञानम् ? प्रथमपक्षे प्रत्यक्षादेरपि स्मृतिशब्दवाच्यत्वानु-  
 ५ पङ्क्तः । तथा च कस्य दृष्टान्तता ? न खलु तदेव तस्यैव दृष्टान्तो भवति । द्वितीयपक्षेपि देवदत्तानुभूतार्थं यद्वदत्तादिज्ञानस्य स्मृति-  
 रूपताप्रसङ्गः । अथ 'येनैव यदेव पूर्वमनुभूतं वस्तु पुनः काला-  
 न्तरे तस्यैव तत्रैवोपजायमानं ज्ञानं स्मृतिः' इत्युच्यते ननु  
 'अनुभूते जायमानम्' इत्येतत् केन प्रतीयताम् ? न तावदनुभवेन,  
 १० तत्काले स्मृतेरेवासत्त्वात् । न चासती विषयीकर्तुं शक्या । न चाविषयीकृता 'तत्रोपजायते' इत्यधिगतिः । न चानुभवकालेऽर्थ-  
 स्यानुभूततास्ति, तदा तस्यानुभूयमानत्वात्, तथा च 'अनुभूयमाने  
 स्मृतिः' इति स्यात् । अथ 'अनुभूते स्मृतिः' इत्येतत्स्मृतिरेव प्रति-  
 पद्यते; न; अनयाऽतीतानुभवार्थयोरविषयीकरणे तथा प्रतीययो-  
 १५ गात् । तद्विषयीकरणे वा निखिलातीतविषयीकरणप्रसङ्गोऽवि-  
 शेषात् । यदि चानुभूतता प्रत्यक्षगम्या स्यात्, तदा स्मृतिरपि जानी-  
 यात् 'अहमनुभूते समुत्पन्ना' इति अनुभवानुसारित्वात्तस्याः ।  
 न चासौ प्रत्यक्षगम्येत्युक्तम्; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; स्मृति-  
 शब्दवाच्यार्थस्य प्रागेव प्ररूपितत्वात् । 'तदित्याकारानुभूतार्थ-  
 २० विषया हि प्रतीतिः स्मृतिः' इत्युच्यते ।

ननु चोक्तमनुभूते स्मृतिरित्येतच्च स्मृतिप्रत्यक्षाभ्यां प्रतीयते;  
 तदप्यपेक्षलम्; मतिज्ञानापेक्षेणात्मना अनुभूयमानाऽनुभूतार्थवि-  
 षयतायाः स्मृतिप्रत्यक्षाकारयोश्चानुभवसम्भवात् चित्राकारप्रती-  
 तिवत् चित्रज्ञानेन । यथा चाशक्यविवेचनत्वाद् युगपच्चित्राका-  
 २५ रतैकस्याविरुद्धा, तथा क्रमेणापि अवग्रहेहावायधारणास्मृत्यै-  
 दिच्चित्रस्वभावता । न च प्रत्यक्षेणानुभूयमानतानुभवे तदैवार्थेऽ-  
 नुभूतताया अप्यनुभवोऽनुषज्यते; स्मृतिविशेषणापेक्षत्वात्तत्र  
 तत्प्रतीतेः, नीलाद्याकारविशेषणापेक्षया ज्ञाने चित्रप्रतिपत्तिवत् ।

न चानुभूतार्थविषयत्वे स्मृतेर्युहीतग्राहित्वेनाऽप्रामाण्यम्,  
 ३० [प] रिच्छित्तिविशेषसम्भवात् । न खलु यथा प्रत्यक्षे विशदाकार-

१ संगतो वक्ति । २ अनुत्पन्नत्वेन । ३ अनुभूतेऽर्थे । ४ अनुभवकालेऽप्येसा-  
 नुभूयमानत्वे च । ५ अनुभवश्चार्थश्च अनुभवार्थौ । अतीतो ज्ञ तावदनुभवार्थौ च ।  
 ६ अतीतत्वस्य । ७ कर्ता । ८ प्रत्यक्षस्मरणयोः । ९ विज्ञानस्य । १० आदिना  
 प्रत्यक्षज्ञानादि । ११ यत्संवादनोऽविरुद्धा । १२ उत्तरकालमात्मनः । १३ तमेव  
 दर्शयति ।

तथा वस्तुप्रतिभासः तथैव स्मृतौ तत्र तस्या ( तस्य ) वैशद्याऽ-  
प्रतीतिः । पुनः पुनर्भावयतो वैशद्यप्रतीतिस्तु भावनाज्ञानम्, तच्च  
तद्वृत्ततया भ्रान्तमेव स्वप्नादिज्ञानवत् । तथाप्यनुभूतार्थविषयत्व-  
मात्रेणास्याः प्रामाण्यानभ्युपगमे अनुमानेनाधिगतेऽग्नौ यत्प्रत्यक्षं  
तदप्यप्रमाणं स्यात् । असत्यतीतेर्यै प्रवर्त्तमानत्वात्तदप्रामाण्ये ५  
प्रत्यक्षस्यापि तत्प्रसङ्गः, तदर्थस्यापि तत्कालेऽसत्त्वात् । तज्जन्मा-  
देस्तत्रास्य प्रामाण्ये स्मरणेपि तदस्तु । निराकृतं चार्थजन्मादि  
ज्ञानस्य प्रागेवेति कृतं प्रयासेन ।

न चाविसंवादकत्वं स्मृतेरसिद्धम्; स्वयं स्थापितनिक्षेपादौ  
तद्वृद्धीतार्थं प्राप्तिप्रमाणान्तरप्रवृत्तिलक्षणाविसंवादप्रतीतिः । यत्र १०  
तु विसंवादः सा स्मृत्याभासा प्रत्यक्षाभासवत् । विसंवादकत्वे  
चास्याः कथमनुमानप्रवृत्तिः सम्बन्धस्यातोऽप्रसिद्धेः ? न च  
सम्बन्धस्मृतिमन्तरेणानुमानमुदेत्यतिप्रसङ्गात् ।

किञ्च, सम्बन्धार्भावात्तस्याः विसंवादकत्वम्, कल्पितसम्ब-  
न्धविषयत्वाद्वा, सतोप्यस्याऽनया विषयीकर्तुमशक्यत्वाद्वा ? १५  
प्रथमपक्षे कुतोऽनुमानप्रवृत्तिः ? अन्यथा यतः कुतश्चित्सम्बन्ध-  
रहितौघत्र कचिदनुमानं स्यात् । कल्पितसम्बन्धविषयत्वेनास्याः  
विसंवादित्वे इदं प्रामाण्यैकत्वे प्राप्यविकल्प्यैकत्वे च प्रत्यक्षानुमान-  
योर्विसंवादो न स्यात् । तैत्सम्बन्धस्य कल्पितत्वे च अनुमान-  
मप्येवंविधमेव स्यात् । तथा च कथमतोऽभीष्टैतत्त्वसिद्धिः ? अथ २०  
सन्नपि सम्बन्धोऽनया विषयीकर्तुं न शक्यते, यत्तु विषयीक्रियते  
सामान्यं तस्याऽसत्त्वात् स्मृतेर्विसंवादित्वम्; तदेतदनुमानेपि  
समानम् । अर्च्यविसर्तिलक्षणाव्यभिचारित्वं स्मृतौवैपि ।

१ वैशद्यमेव नास्ति कुतः परिच्छिप्तिनिषेधः इत्यभिप्रायं वक्ति बौद्धः । २ अक्-  
प्राहादिभेदेनानुभवतो नरसः । ३ क्षणिकत्वात् । ४ आदिना तादृप्यम् । ५ अर्थ-  
जन्मादिनिराकरणप्रयासेन । ६ प्रलक्ष । ७ निरुद्धतसम्बन्धस्यापि अनुमानोत्पत्ति-  
प्रसङ्गात् । ८ इष्टान्तसाध्यसाधनयोः । ९ सम्बन्धाभावे अनुमानप्रवृत्तिर्यदि स्यात् ।  
१० अर्वाक्षिज्ञानीयात् । ११ यदेव इदं बललक्षणे तदेव प्राप्तमिति । १२ अनु-  
मानलक्षणो विकल्पः । विकल्पस्य विषयो विकल्प्यो यो जलादिः । पूर्वं विकल्प्यः  
पश्चात्प्राप्य इति । कथम् ? विवादापघ्नो देशः प्रवृत्तस्य ज्ञानादिमान् जलत्वात्सम्प्रतिपन्नः  
देशवत् । इति यदेवानुमित ज्ञानादिक तदेव प्राप्तमिति । १३ स्मृतिगृह्यमाण । १४ सर्वं  
क्षणिकं सत्त्वादिति क्षणिकत्वसिद्धिः । १५ तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणः । १६ अन्या-  
पोहः । १७ न्यायरूपमनुमानेन स्वलक्षणं विषयमानं न विषयीक्रियते ( यदि विषयीक्रि-  
यते ) सामान्यं तद्विषयमानं न भवतीति । १८ प्रलक्षणेन । १९ भसः । २० स्वलक्षणं  
न व्यभिचरतीति न स्मृदेवेति । २१ समानम् ।

किञ्च, लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धः सत्तामात्रेणानुमानप्रवृत्तिहेतुः; तद्दर्शनात्, तत्स्मरणाद्वा? तत्राद्यविकल्पे नालिकैरद्वीपायातस्या-  
प्रतिपक्षाग्निधूमसम्बन्धस्यापि धूमदर्शनादग्निप्रतिपत्तिः स्यात् ।  
न चाविज्ञातः सम्बन्धोस्ति उपलम्भनिबन्धनत्वात्सङ्ख्यवहारस्य,  
५ अन्यथातिप्रसङ्गात् । तद्दर्शनमात्रेण तत्प्रवृत्तौ बालावस्थायां प्रति-  
पक्षाग्निधूमसम्बन्धस्य पुनर्वृद्धदर्शनायां धूमदर्शनादग्निप्रतिपत्ति-  
प्रसङ्गः, न चैवम् । तत्स्मृतावस्थेवेति चेत्; कथं नासौ प्रमाणम्? को हि स्मृतिपूर्वकमनुमानमभ्युपगम्य पुनस्तां निराकुर्यात्? अनु-  
मानस्यापि निराकरणानुषङ्गात् । न खलु कारणाभावे कार्योत्पत्ति-  
१० नोमाऽतिप्रसङ्गात् ।

समारोपव्यवच्छेदकत्वाच्चास्याः प्रामाण्यमनुमानवत् । न च  
स्मृतिविषयभूते सम्बन्धादौ समारोपस्यैवासम्भवात् कस्य व्यव-  
च्छेद इत्यभिधातव्यम्; साधर्म्यदृष्टान्ताभिधानानर्थक्यप्रसङ्गात् ।  
तत्र स्मृतिहेतुभूतं हि तत्, अन्यथा हेतुरेव केवलोभिधीयेत ।  
१५ ततस्तदभिधानान्यथानुपपत्तस्तद्विषयभूते सम्बन्धादौ विस्मरण-  
संशयविपर्ययासलक्षणः समारोपोस्तीत्यवगम्यते । तन्निराकरणा-  
च्चास्याः प्रामाण्यमिति ।

अथेदानीं प्रत्यभिज्ञानस्य कारणस्वरूपप्रकरणार्थं दर्शनेत्या-  
द्याह—

२० दर्शन-स्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानम् ।

तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि ॥५

दर्शनस्मरणे कारणं यस्य तत्तथोक्तम् । सङ्कलनं विवक्षित-  
धर्मयुक्तत्वेन प्रत्येवमर्शनं प्रत्यभिज्ञानम् । ननु प्रत्यभिज्ञायाः प्रत्य-  
क्षप्रमाणस्वरूपत्वात् परोक्षरूपतयात्रौमिधानमयुक्तम्; तथाहि—  
२५ प्रत्यक्षं प्रत्यभिज्ञा अक्षान्वयव्यतिरेकानुविधानात् तदन्यप्रत्यक्ष-  
वत् । न च स्मरणपूर्वकत्वात्तस्याः प्रत्यक्षत्वाभावः; सत्सम्प्रयोगज-  
त्वेन स्मरणपञ्चाङ्गावित्वेन्यस्याः प्रत्यक्षत्वाविरोधात् । उक्तं च—

१ परपक्षप्रतिक्षेपं करोति सूरिः । २ ग्रहण । ३ अज्ञातस्यापि सत्त्वसिद्धिश्चेत् ।  
४ ईश्वरपदेरपि सत्त्वसिद्धिप्रसङ्गात् । ५ विस्मृतसम्बन्धस्य । ६ अनुमानप्रवृत्तिः ।  
७ मुक्तिपञ्चानावे षटोत्पत्तिप्रसङ्गात् । ८ साध्यसाधनविषये । ९ समारोपाभावे इति  
शेषः । १० यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकं यथा जलधरः । ११ सम्बन्धव्यतिहेतुभूतो दृष्टान्तो  
यदि न स्यात् । १२ एकत्रसादृश्यादिलक्षण । १३ पुनर्ग्रहणम् । १४ मीमांसकः ।  
१५ परोक्षप्रमाणे । १६ सतो विद्यमानस्यावैतन्निद्वयेण सह संयोगः सन्निकर्षसाहा-  
ज्यातः सत्सम्प्रयोगनक्षस्य मानस्त्वं तेन ।

“न हि स्मरणतो यत्प्राक्त नन् प्रत्यक्षमितीदृशम् ।

वचनं राजकीयं वा लौकिकं चापि विद्यते ॥ १ ॥

न चापि स्मरणान्ध्यादिन्द्रियस्य प्रवर्त्तनम् ।

धार्यते केनचिद्वापि तत्तदानीं प्रदुष्यति ॥ २ ॥

तेनेन्द्रियार्थसम्बन्धात्प्रागूर्ध्वं चापि यन्स्मृतैः ।

विधानं जायते सर्वं प्रत्यक्षमिति गम्यताम् ॥ ३ ॥”

[ मी० श्लो० मू० ४ श्लो० २३४-२३७ ]

अनेकदेशकालावस्थासमन्वितं सामान्यं द्रव्यादिकं च वस्तुभ्याः  
प्रमेयमित्यपूर्वप्रमेयसद्भावः । तदुक्तम्—

“गृहीतमपि गोत्वादि स्मृतिस्पृष्टं च यद्यपि ।

तथापि व्यतिरेकेण पूर्वबोधान्प्रतीयते ॥ १ ॥

देशकालादिभेदेन तत्रास्त्यवसरो मितेः ।

यः पूर्वमचगतोऽर्थः स न नाम प्रतीयते ॥ २ ॥

इदानीन्तनमस्ति त्वं न हि पूर्वधिया गतम् ॥”

[ मी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३२-२३४ ]

तदप्यसमीचीनम् ; प्रत्यभिधानेऽक्षान्वयव्यतिरेकानुविधानस्या-  
सिद्धेः, अन्यथा प्रथमव्यक्तिदर्शनकालेऽप्यस्योत्पत्तिः स्यात् ।

पुनर्दर्शने पूर्वदेशनिर्वाहितसंस्कारप्रबोधोत्पन्नस्मृतिसहायमिन्द्रियं  
तज्जनयति; इत्यप्यसाम्प्रतम् ; प्रत्यक्षस्य स्मृतिनिरपेक्षत्वात् ।

तत्सापेक्षत्वेऽपूर्वार्थसाक्षान्कारित्वाभावः स्यात् ।

देशकालेत्याद्यप्युक्तमुक्तम् : यतो देशादिभेदेनाप्यध्यक्षं चक्षुः-  
सम्बद्धमेवार्थं प्रकाशयन्प्रतीयते । न च प्रत्यभिधा तं प्रकाशयति  
पूर्वोत्तरविवर्त्तयत्येकत्वविषयत्वात्तस्याः । धर्त्तमानश्चायं चक्षुः-  
सम्बद्धः प्रसिद्धः ।

१ प्रागम् । २ सामान्यमितिन्द्रियमर्थग्रहणाय न प्रवर्त्तते इत्युक्तं आह ।  
३ शरणोपगमात् । ४ दुष्टं भवति । ५ राजकीयं लौकिकं इत्यनेन न विभजेत ।  
आत्मादिन्द्रियस्य प्रवर्त्तने वा केनचिद्वा न विचार्यते इति । इन्द्रियं वा दुष्टं न भवति इति  
कारणेन । ६ प्रत्यक्षत्वात्प्रागूर्ध्वं प्रत्यभिधानं प्रत्यक्षमिति । स्वाध्यायस्य  
आह । ७ विषयान्तरम् । ८ कालिना पुनः । ९ भेदेन । १० गतमिति ।  
११ यत् पूर्वबोधान्प्रदेन प्रतीयते इत्युक्तं आह । १२ अवसरो भेदेन । १३ प्रत्य-  
क्षान्तरमिति । १४ प्रत्यभिधानमिति । १५ पूर्वोत्तरविवर्त्तयः ।  
१६ आह । १७ यतः । १८ यतः । १९ यत् । २० ततः । २१ यतः ।  
२२ यतः । २३ यतः । २४ सन्निधौ निधौ गतये उक्तमिति इति वाक्ये परिहारः ।

यदप्युच्यते-स्मरतः पूर्वदृष्टार्थानुसन्धानादुत्पद्यमाना मतिश्चक्षुः-  
सम्बद्धत्वे प्रत्यक्षमिति; तदप्यसारम्; न हीन्द्रियमतिः स्मृति-  
विषयपूर्वरूपग्राहिणी, तत्कथं सा तत्सन्धानमात्मसात्कुर्यात् ?  
पूर्वदृष्टसन्धानं हि तत्प्रतिभासनम्, तत्सम्भवे चेन्द्रियमतेः  
५ परोक्षार्थग्राहित्वात् परिस्पष्टप्रतिभासता न स्यात् । यदि च  
स्मृतिविषयस्वभावतया दृश्यमानोर्थः प्रत्यक्षप्रत्ययैरवगम्येत  
तर्हि स्मृतिविषयः पूर्वस्वभावो वर्तमानतया प्रतिभातीति विपै-  
रीतव्याप्तिः सर्वं प्रत्यक्षं स्यात् । अव्यवधानेन प्रतिभासनलक्षण-  
वैशद्याभावाच्च न प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षम् इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

१० तच्च तद्वेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादिप्रकारं  
प्रतिपत्तव्यम् । तदेवोक्तप्रकारं प्रत्यभिज्ञानमुदाहरणद्वारेणाखिल-  
जनावबोधार्थं स्पष्टयति—

यथा स एवायं देवदत्तः ॥ ६ ॥

गोसदृशो गवयः ॥ ७ ॥

१५ गोविलक्षणो महिषः ॥ ८ ॥

इदमस्मादूरम् ॥ ९ ॥

वृक्षोयमित्यादि ॥ १० ॥

नेतुं स एवायमित्यादि प्रत्यभिज्ञानं नैकं विज्ञानम्-‘सः’ इत्यु-  
ल्लेखस्य स्मरणत्वात् ‘अयम्’ इत्युल्लेखस्य चाप्यक्षत्वात् । न चाभ्या-  
२० व्यतिरिक्तं ज्ञानमस्ति यत्प्रत्यभिज्ञानशब्दाभिधेयं स्यात् । नाप्यन-  
योरेक्यं प्रत्यक्षानुमानयोरपि तत्प्रसङ्गात् । स्पष्टेतररूपतया तयो-  
र्मैदेऽत्रापि सोऽस्तु; तदसाम्प्रतम्; स्मरणप्रत्यक्षजन्यस्य पूर्वोक्त-  
रविवर्तवर्त्येकद्रव्यविषयस्य सङ्कलनज्ञानस्यैकस्य प्रत्यभिज्ञानत्वेन  
सुप्रतीतत्वात् । न खलु स्मरणमेवातीतवर्तमानविवर्तवर्तिद्रव्यं  
२५ सङ्कलयितुमलं तस्यातीतविवर्तमात्रगोचरत्वात् । नापि दर्शनम्;

१ पुरुषस्य । २ प्रतिभासात् । ३ तर्कस्य प्रत्यक्षतापरिहारार्थमाह । ४ इन्द्रिय-  
मतिः स्मृतिविषयरूपग्राहिणी न भवति इन्द्रियमतित्वादित्यसिद्धानुमाने सन्दिग्धानैका-  
न्तिकाने परिहारे इदं वाक्यम् । ५ दृश्यमानार्थादिपरीतस्मृतिविषयो विपरीतव्याप्तिः ।  
६ इत्यापवते । ७ पूर्वस्मरणमुत्तरदर्शनं च व्यवभावकं प्रत्यभिज्ञानस्य । ८ प्रत्यभि-  
ज्ञानभेदलक्षणप्रत्यक्षप्रमाणस्य निराकरणविस्तरेण । ९ प्रत्यभिज्ञानभेदं दर्शयति ।  
१० प्रागुक्तलक्षणलक्षितमेव । ११ तेन सदृश इत्यादि च । १२ अत्राह सौगतः ।

तस्य वर्तमानमात्रपर्यायविषयत्वात् । तदुभयसंस्कारजनितं कल्पना-  
ज्ञानं तत्सङ्गलयतीति कल्पने तदेव प्रत्यभिज्ञानं सिद्धम् ।

प्रत्यभिज्ञानानभ्युपगमे च 'यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकम्' इत्याद्यनु-  
मानवैयर्थ्यम् । तद्व्येकत्वप्रतीतिनिरासार्थम् न पुनः क्षणक्षयप्रसि-  
द्ध्यर्थं तस्याध्यक्षसिद्धत्वेनाभ्युपगमात् । समारोपनिषेधार्थं तत्; ५  
इत्यप्यपेशलम्; सोयमित्येकत्वप्रतीतिमन्तरेण समारोपस्याप्यस-  
म्भवात् । तदभ्युपगमे च 'अयं सः इत्यध्यक्षस्मरणव्यतिरेकेण  
नापरमेकत्वज्ञानम्' इत्यस्य विरोधः । न चाध्यक्षस्मरणे एव समा-  
रोपः; तेनानयोर्व्यवच्छेदेऽनुमानस्यानुत्पत्तिरेव स्यात् तत्पूर्वक-  
त्वात्तस्य । कथं चास्याः प्रतिक्षेपेऽभ्यासेतरावस्थार्यां प्रत्यक्षानुमा- १०  
नयोः प्रामाण्यप्रसिद्धिः ? प्रत्यभिज्ञाया अभावे हि 'यदुष्टं यच्चानु-  
मितं तदेव प्राप्तम्' इत्येकत्वाध्यवसायाभावेनानयोरविसंवादास-  
म्भवात् । तथा च "प्रमाणमविसंवादि ज्ञानम्" [ प्रमाणवा० २।१ ]  
इति प्रमाणलक्षणप्रणयनमयुक्तम् । अन्यद् दृष्टमनुमितं वा प्राप्तं  
चान्यदित्येकत्वाध्यवसायाभावेप्यविसंवादे प्रामाण्ये चानयोरभ्यु- १५  
पगम्यमाने मरीचिकावक्रे जलज्ञानस्यापि तत्प्रसङ्गः ।

न चैवंवादिनो नैरात्म्यभावनाभ्यासो युक्तः फलमावात् । न  
चात्मदृष्टिनिवृत्तिः फलम्; तस्या एवासम्भवात् । 'सोहम्' इत्य-  
स्तीति चेत्; न; स्मरणप्रत्यक्षोल्लेखव्यतिरेकेण तदनभ्युपगमात् ।  
तथा च कुतस्तन्निमित्ता रागादयो यतः संसारः स्यात् ? २०

ननु पूर्वापरपर्याययोरेकत्वग्राहिणी प्रत्यभिज्ञा, तस्य चासम्भ-  
वात् कथमियमविसंवादिनी यतः प्रमाणं स्यात् ? प्रत्यक्षेण हि  
तुष्टद्रूपयोः प्रतीतिः स्वकालनियतार्थविषयत्वात्तस्य; इत्यपि मनोर-  
थमात्रम्; सर्वथा क्षणिकत्वस्याग्रे निराकरिष्यमाणत्वात् । प्रत्यक्षे-  
णाऽलुर्ध्वद्रूपतयार्थप्रतीतेऽन्यनुभवात् कथं विसंवादकत्वं तस्याः ? २५  
ततः प्रमाणं प्रत्यभिज्ञा स्वगृहीतार्थाविसंवादित्वात् प्रत्यक्षादिवत् ।  
नीलाद्यनेकाकाराक्रान्तं चैकज्ञानमभ्युपगच्छतः 'स एवायम्'  
इत्याकारद्वयाक्रान्तैकज्ञाने को विद्वेषः ?

१ सद्दुभयस्य कार्यः संस्कारः सौगताभिप्रायेण वा सत्ता तेन जनितम् । २ प्रथम-  
मेव निशरारवः (क्षणक्षमिनः) परमापवः प्रत्यक्षेण निक्षीयन्ते इति वचनात् ।  
३ ग्रन्थस्य । ४ चिन्त । ५ अर्थान्वयिचारित्वनविसंवादः । ६ प्रमाणे अविसंवादि-  
त्वादिति प्रनिदहेतुभूतधर्मेण प्रामाण्यमप्रतिदधर्मेः साध्यते इति प्रामाण्याविसंवाद-  
योर्मेदः । ७ जलम् । ८ अन्वज्जलमित्यर्थः । ९ प्रत्यभिज्ञानाभावादित्येववादिनः ।  
१० पक्षादात्मदर्शनाभावः । ११ कुतः । १२ नश्यद्रूपयोः । १३ चतुर्थपरि-  
च्छेदे । १४ अन्वयरूपतया । १५ परस्परतादात्म्येन ।

- ननु सं एवायमित्याकारद्वयं किं परस्परानुप्रवेशेन प्रतिभासते; अननुप्रवेशेन वा? प्रथमपक्षेऽन्यतराकारस्यैव प्रतिभासः स्यात् । द्वितीयपक्षे तु परस्परविविक्तेप्रतिभासद्वयप्रसङ्गः । अथ प्रतिभासद्वयमेकाधिकरणमित्युच्यते; न; एकाधिकरणत्वासिद्धेः । न खलु परोक्षापरोक्षरूपौ प्रतिभासावेकमधिकरणं विभ्राते सर्वसंविदामेकाधिकरणत्वप्रसङ्गात् । इत्यप्यसारम्; तदाकारयोः कथञ्चित्परस्पराणुप्रवेशेनात्माधिकरणतयात्मन्येवानुभवात् । कथं चैवंवादि-  
नश्चित्रज्ञानसिद्धिः? नीलादिप्रतिभासानां परस्पराणुप्रवेशे सर्वेषामेकरूपतानुषङ्गात् कुतश्चित्रतैकनीलाकारज्ञानवत्? तेषां तदननुप्रवेशे भिन्नसन्ताननीलादिप्रतिभासानामिवात्यन्तमेदसिद्धेर्नि-  
तरां चित्रताऽसम्भवः । एकज्ञानाधिकरणतया तेषां प्रत्यक्षतः प्रतीतेः प्रतिपादितदोषाभावे प्रकृतेऽप्यसौ मा भूतत एव ।

अथोच्यते—‘पूर्वमुत्तरं वा दर्शनमेकत्वेऽप्रवृत्तं कथं स्मरणसहायमपि प्रत्यभिज्ञानमेकत्वे जनयेत्? न खलु परिमलस्मरण-  
सहायमपि चक्षुर्गन्धे ज्ञानमुत्पादयति’ इति; तदप्युक्तिमात्रम्; तथा च तज्जनकत्वस्यात्र प्रमाणप्रतिपक्षत्वात् । न च प्रमाणप्रति-  
पक्षं वस्तुस्वरूपं व्यलीकविचारसहस्रेणार्थान्यथाकर्तुं शक्यं सह-  
कारिणां चाचिन्त्यशक्तित्वात् । कथमन्यथाऽसर्वज्ञज्ञानमभ्यास-  
विशेषसहायं सर्वज्ञज्ञानं जनयेत्? एकत्वविषयत्वं च दर्शन-  
स्यैव, अन्यथा निर्विषयकत्वमेवास्य स्यादेकान्ताऽनित्यत्वस्य  
कदाचनप्यप्रतीतेः । केवलं तेनैकत्वं प्रतिनियतवर्तमानपर्या-  
याधारतयार्थस्य प्रतीयते, स्मरणसहायप्रत्यक्षजनितप्रत्यभिज्ञानेन  
तु स्मर्यमाणानुभूयमानपर्यायाधारतयेति विशेषः ।

न च लूनपुनर्जातनखकेशादिवत्सर्वत्र निर्विषया प्रत्यभिज्ञा;  
क्षणक्षयैकान्तस्यानुपलम्भात् । तदुपलम्भे हि सा निर्विषया  
स्यात् एकचन्द्रोपलम्भे द्विचन्द्रप्रतीतिवत् । लूनपुनर्जातन-  
खकेशादौ च ‘स एवायं नखकेशादिः’ इत्येकत्वपरामर्शप्रत्यभि-  
ज्ञानं ‘लूननखकेशादिसदृशोयं पुनर्जातनखकेशादिः’ इति साद-  
ृश्यनिबन्धनप्रत्यभिज्ञानान्तरेण वाच्यमानत्वादप्रमाणं प्रसिद्धम्;  
न पुनः सादृश्यप्रत्यक्षमर्शि तत्रास्याऽवाच्यमानतया प्रमाणत्व-

१ समयोर्मध्ये । २ एकज्ञानस्य । ३ भिन्न । ४ एकत्वज्ञानिः सादिति दूषणम् ।  
५ एकज्ञान । ६ जनेः । ७ देनदत्तयश्चदादि । ८ द्रव्यापेक्षया । ९ एकाधि-  
करणप्रतीतेः । १० प्रत्यक्षम् । ११ पूर्वोत्तरविनष्टवर्तकत्वे । १२ दर्शनस्य ।  
१३ प्रत्यक्ष । १४ अभावरूपत्वेन । १५ सहकारिणामचिन्त्यशक्तिर्न यदि न स्यात् ।  
१६ न केवलं प्रत्यभिज्ञानस्य । १७ दर्शनमेकत्वविषयं यदि न स्यात् ।

प्रसिद्धेः । न चैकत्रैकत्वपरामर्शिप्रत्यभिज्ञानस्य मिथ्यात्वदर्शनाः  
तैस्सर्वत्रास्य मिथ्यात्वम् : प्रत्यक्षस्यापि सर्वत्र भ्रान्तत्वानुपपत्त्या  
किञ्चित्कुतैश्चित्कस्यचित्प्रसिद्धेत् । ततो यथा शुक्ले शङ्खे पीता-  
भासं प्रत्यक्षं तत्रैव शुक्लाभासप्रत्यक्षान्तरेण बाध्यमानत्वादप्रमा-  
णम्, न पुनः पीते कनकादौ तथा प्रकृतमपीति । ५

कथं च प्रत्यभिज्ञानविलोपेऽनुमानप्रवृत्तिः ? येनैवं हि पूर्वधू-  
मोऽग्नेर्दृष्टस्तस्यैव पुनः पूर्वधूमसदृशधूमदर्शनादग्निप्रतिपत्तिर्युक्ता  
नान्यस्यान्यदर्शनात् । न च प्रत्यभिज्ञानमन्तरेण 'तेनेदं सदृशम्'  
इति प्रतिपत्तिरस्तिः पूर्वप्रत्यक्षेणोच्येतस्य तत्प्रत्यक्षेण च  
पूर्वस्याग्रहणात्, द्वयप्रतिपत्तिनिवन्धनत्वादुभयसादृश्यप्रतिपत्तेः १०  
सम्बन्धप्रतिपत्तिवत् । ततः प्रत्यभिज्ञा प्रमाणमभ्युपगन्तव्या ।

तदप्रामाण्यं हि गृहीतग्राहित्वात्, स्मरणानन्तरभावित्वात्,  
शब्दाकारधारित्वाद्वा, बाध्यमानत्वाद्वा स्यात् ? न तावदाद्य-  
विकल्पो युक्तः ; न हि तद्विषयमूतमेकं द्रव्यं स्मृतिप्रत्यक्षग्राह्य-  
मित्युक्तम् । तद्गृहीतातीतवर्त्तमानविवर्त्ततादात्म्येनावस्थितद्रव्यस्य १५  
कथञ्चित्पूर्वार्थत्वेऽपि तद्विषयप्रत्यभिज्ञानस्य नाप्रामाण्यम्, लैङ्गि-  
कौदेरप्यप्रामाण्यप्रसङ्गात् तस्यापि सर्वथैवापूर्वार्थत्वासिद्धेः, स-  
म्बन्धग्राहिविज्ञानविषयसाधर्म्यादिसामान्यात् कथञ्चिदभिज्ञस्यानु-  
मेर्यस्य देशकालविशिष्टस्य तद्विषयत्वात् कथञ्चित्पूर्वार्थत्वसिद्धेः ।  
तत्र गृहीतग्राहित्वात्तत्राप्रामाण्यम् । २०

नापि स्मरणानन्तरभावित्वात् : रूपस्मरणानन्तरं रससन्निर्पाते  
समुत्पन्नरसज्ञानस्याप्यप्रामाण्यप्रसङ्गात् । तत्र हि रूपस्मृतेः  
पूर्वकालभावित्वात् समनन्तरकारणत्वं "बोधोद्बोधरूपता" [ ]  
इत्यभ्युपगमात् । न चात्र बोधरूपतया समनन्तरकारणत्वमन्यत्र  
स्मृतिरूपतयेत्यभिधातव्यम् : स्मृतिरूप-बोधरूपयोस्तादात्म्ये २५  
कचिद्बोधरूपतया तत्तस्य कचिज्जु स्मृतिरूपतयेति व्यवस्थापयि-  
तुमशक्तेः । कथं चैवंवादिनोऽनुमानं प्रमाणम् ? तद्धि लिङ्गलिङ्गि-

१ देवदत्तादयः । २ किञ्चिदस्तु । ३ प्रमाणात् । ४ प्रतिपत्तुः । ५ अग्र-  
तिथेदतः । ६ यत्कृतनिवन्धस्य सादृश्यनिवन्धनस्य च । ७ देवदत्तेन । ८ यद्वा-  
दतस्य । ९ निषप्रलक्षणप्रस्तरदर्शनात् । १० वृक्षत्वादियर्थायस्य । ११ युवादि-  
वर्गायस्य । १२ संयोगादि । १३ द्रव्यापेक्षया । १४ आदिना शब्दस्य ।  
१५ तर्कः । १६ आदिना साधनम् । १७ अन्वादेः । १८ साक्षिण्ये । १९ स्मृति-  
रूपता बोधरूपता चास्ति स्मरणज्ञानस्य । २० स्मृतौ । २१ स्मरणानन्तरभावित्वात्  
अनागं प्रत्यभिज्ञा इत्येवम् ।



सम्बन्धस्मरणानन्तरमेवोपजायते, अन्यथा साधर्म्यदृष्टान्तोप-  
न्यासो व्यर्थः स्यात् ।

शब्दाकारधारित्वं च प्रागेव प्रतिषिद्धम् ।

बाध्यमानत्वं चासिद्धम्; न खलु प्रत्यक्षं तद्वाचकम्; तस्य  
५ तद्विषयप्रवृत्त्यऽसम्भवात् । यद्वि यद्विषये न प्रवर्तते न तत्र तस्य  
साधकं वाचकं वा यथा रूपज्ञानस्य रसज्ञानम्, न प्रवर्तते च  
प्रत्यभिज्ञानस्य विषये प्रत्यक्षमिति । नाप्यनुमानं तद्वाचकम्;  
प्रत्यभिज्ञानविषये तस्याप्यप्रवृत्तेः, कच्चिदनुमेयमात्रे प्रवृत्ति-  
प्रसिद्धेः । तस्य तद्विषये प्रवृत्तौ वा सर्वथा वाचकत्वविरोधः ।  
१० ततः प्रमाणं प्रत्यभिज्ञा सकलवाचकरोहितत्वात्प्रत्यक्षादिवत् ।

एतैनैव 'गोसदृशो गवयः' इत्यादि सादृश्यनिबन्धनं प्रत्यभि-  
ज्ञानं प्रमाणभावेदितं प्रतिपत्तव्यम्, तस्यापि स्वविषये वाधवि-  
धुरत्वस्य संवादकत्वस्य च प्रसिद्धेः ।

ननु सादृश्यस्यार्थेभ्यो मित्राभिर्जादिविकल्पैर्विचार्यमाणस्यायो-  
१५ गात्तद्विषयप्रत्यभिज्ञानस्य वाधविधुरत्वमविसंवादकत्वं चासि-  
द्धम्; इत्यप्यास्तां तावत्, प्रत्यक्षादिप्रमाणविषयभूतत्वेनावधि-  
ततत्स्वरूपस्य सामान्यसिद्धिप्रक्रमे प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् । न  
च तस्मिन्नेव स्वपुत्रादौ 'तादृशोयम्' इति प्रत्यभिज्ञानं सादृश्य-  
निबन्धनं 'स एवायम्' इत्येकत्वनिबन्धनप्रत्यभिज्ञानेन बाध्य-  
२० मानमप्रमाणं प्रतिपाद्य स्वपुत्रादिना सदृशे पुरुषे 'तादृशोयम्'  
इत्यपि प्रत्यभिज्ञानमप्रमाणं प्रतिपादयितुं युक्तम्; तस्यावाध्य-  
मानत्वेन प्रमाणत्वात् ।

स्यान्मतम्-प्रत्यभिज्ञानमनुमानत्वेन प्रमाणमिष्यत एवं;  
तथाहि-पूर्वोक्तैरार्थक्षणयोरनर्थान्तरभूतं सादृश्यं तत्प्रत्यक्षाभ्यां  
२५ प्रतीयत एव । यस्तु तथा प्रतिपद्यमानोपि सादृश्यव्यवहारं न  
करोति घटविविक्तभूतलप्रतिपत्तावपि घटाभावव्यवहारवैतं,  
स 'प्रागुपलब्धार्थसैर्मानोयं तत्सदृशाकारोपलम्भोत्' इत्युभय-

१ जाने । २ शब्दाद्वैतनिराकरणे । ३ अत्र्यादौ । ४ एकत्वनिबन्धनप्रत्यभिज्ञान-  
प्रामाण्यसमर्थनग्रन्थेन । ५ देवदत्तेन सदृशो यक्षदत्त इत्यादि च । ६ आदिना  
उभयग्रहणम् । ७ पुनः । ८ आदिनानुमानादि । ९ एकसिन् । १० बौद्ध-  
सिद्धान्तोक्तम् । ११ गोगवयलक्षणौ पूर्वोक्तस्त्रलक्षणाविप्रलक्षसम्बन्धितत्वेन पूर्वोक्तार्थ-  
क्षणौ । १२ यथा घटभावे व्यवहारं न करोति साङ्ख्यः इत्यर्थः । १३ पूर्ववृत्तेन  
यक्षदत्तादिना । १४ दृश्यमानो देवदत्तादिः । १५ अयं दृश्यमानो गवयो गोसदृशः  
गोसदृशाकारत्वाद्गोगवयप्रलक्षत्वे सति सादृश्यव्यवहारात् । १६ व्यसिद्धयगतः ।

गतसदृशाकारदर्शनेन तथा व्यवहारं कार्यते, दृश्यानुपलम्भोप-  
दर्शनेन घटाभावव्यवहारवत्; तदप्यसङ्गतम्; 'प्राक्प्रतिपन्नधूम-  
सदृशोऽयं धूमः' इत्यादिलिङ्गप्रत्यभिज्ञाज्ञानस्य लैङ्गिकत्वे तल्लिङ्ग-  
प्रत्यभिज्ञाज्ञानस्यापि लैङ्गिकत्वमित्यनवस्थाप्रसङ्गात् ।

किञ्च, अर्थे सादृश्यव्यवहारस्य सदृशाकारनिबन्धनत्वे सदृ-  
शाकारेऽपि कुतस्तद्व्यवहारसिद्धिः ? अपरतद्गतसदृशधर्मदर्शना-  
च्चेत्, अनवस्था । धर्मिसादृश्यव्यवहारे चान्योन्याश्रयः । तन्नेयं  
सादृश्यप्रत्यभिज्ञा लिङ्गज्ञानमुपगन्तव्या ।

नेनु गोदर्शनाद्विगतसंस्कारस्य पुनर्गवयदर्शनाद्वि वि सरणे सति  
'अनेन समानः सः' इत्येवमाकारस्य ज्ञानस्योपमानरूपत्वाच्च प्रत्य-  
भिज्ञानता । सादृश्यविशिष्टो हि विशेषो विशेषविशिष्टं वा  
सादृश्यमुपमानस्यैव प्रमेयम् । उक्तं च—

“तैस्साधैर्त्सर्यते तत्स्यात्सादृश्येन विशेषितम् ।

प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तैर्दन्विर्भेत् ॥ १ ॥

प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि सादृश्ये गवि च स्मृते ।

१५

विशिष्टैर्योन्यतैः सिद्धेरुपमानप्रमाणता ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० उपमान० श्लो० ३७-३८ ] इति ।

तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; एकत्वसादृश्यप्रतीत्योः सङ्कल-  
ना(न)ज्ञानरूपतया प्रत्यभिज्ञानतानतिक्रमात् । 'स एवायम्'  
इति हि यथोत्तरपर्यायस्य पूर्वपर्यायेणैकताप्रतीतिः प्रत्यभिज्ञा, २०  
तथा सादृश्यप्रतीतिरपि 'अनेन सदृशः' इत्यविशेषात् । पूर्वोत्तर-

१ अत्र षटो नास्ति इत्येव सत्यनुपलम्भेति । २ इयं शिक्षा पूर्वदृष्टशिक्षापात-  
माना इति च । ३ लिङ्गरूपस्य । ४ अनुमानरूपत्वे अङ्गीक्रियमाणे । ५ तद्वत्त्वमस्य ।  
६ पर्वतधूमः पूर्वदृष्टधूमसदृशस्तसदृशाकारत्वात्सम्प्रतिपन्नधूमवत् । तत्सदृशाकारत्वेन  
समानं सदृशाकारत्वात् सम्प्रतिपन्नसदृशाकारवत् । ७ गोगवयलक्षणे । ८ गोगवयौ  
सदृशौ सदृशाकारत्वादेवदत्तयदत्तवत् । गोगवयाकारौ सदृशौ सादृशाकारत्वात् तद्वत् ।  
द्वितीयौ आकारी सादृशौ सदृशाकारत्वादित्यादि । ९ त्यादि । १० मीमांसकाः ।  
११ पश्चात् । १२ गोलक्षणे । १३ धर्मः । १४ दृश्यमानात् । १५ गव-  
यात् । १६ सर्वमाणस्य । १७ वस्तु । १८ सर्वमाणगवान्वितस्य । १९ उपमान-  
स्येवेत्यत्र यः प्रवकारस्तस्य सबाधं दर्शयति । २० गवयगवे । २१ सादृश्यविशिष्टस्य  
गोसदृशस्य वा साक्षादेः । २२ सरणप्रत्यक्षान्यात् । २३ सरणप्रत्यक्षान्या  
सकाशादन्यदुपमानं ततः । २४ प्रत्यभिज्ञा । २५ सङ्कलनरूपवायाः ।

प्रत्ययवेद्यैकत्वगोचरत्वात्तस्याः प्रत्यभिज्ञानत्वे सादृश्यप्रतीतावपि तत्स्यात् । न हि तत्ताभ्यां न परिच्छिद्यते—

“वस्तुत्वे सति चैस्यैवं सम्बद्धस्य च चक्षुषा ।

द्वयोरेकत्र वा द्वौ प्रत्यक्षत्वं न वार्यते ॥ १ ॥

५

सामान्यवच्च सादृश्यमेकैकत्र समाप्यते ।

प्रतियोगिन्यदपि तत्तस्मादुपलभ्यते ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० उपमान० श्लो० ३४-३५ ]

इत्यस्य विरोधानुपपत्तात् । यथा च पूर्वोत्तरप्रत्ययाभ्यां गवयग-  
वादिविशिष्टमप्रतिपक्षं सादृश्यमनेन प्रतीयते तथा पूर्वोत्तरपर्या-  
१० यविशिष्टमेकत्वं प्रत्यभिज्ञानेन ।

यदि च ‘एकत्वज्ञानमेव प्रत्यभिज्ञा सादृश्यज्ञानं तूपमानम्’  
इत्यभ्युपगमः; तर्हि वैलक्षण्यज्ञानं किञ्चाम प्रमाणं स्यात्? यथैव  
हि गोवर्शनाहितसंस्कारस्य गवयदर्शिनः ‘अनेन समानः सः’  
इति प्रतिपत्तिस्तथा महिष्यादिदर्शिनः ‘अनेन विलक्षणः सः’  
१५ इति वैलक्षण्यप्रतीतिरप्यस्ति । सा च न प्रत्यभिज्ञोपमानयोरन्य-  
तरा तदेकत्वसादृश्याविषयत्वात्, अतः प्रमाणान्तरं प्रमाण-  
संख्यानियमविधातकृद्भवेत्परस्य ।

ननु सादृश्याभावो वैलक्षण्यम्, तस्याभावप्रमाणविषयत्वाच्च  
प्रमाणसंख्यानियमविधातः; तर्हि वैलक्षण्याभावः सादृश्यमिति  
२० स एव दोषः । नन्वेकस्यैव समानैर्धर्मयोगः सादृश्यम्, तत्कथं  
वैलक्षण्याभावमत्र स्यादिति चेत्; तर्हि वैलक्षण्यमपि विसदृश-  
धर्मयोगः, तत्कथं सादृश्याभावमत्र स्यादिति समानम्?

एतेन ‘गौरिव गवयः’ इत्युपमानवाक्याहितसंस्कारस्य पुनर्वने  
गवयदर्शनात् ‘अयं गवयशब्दवाच्यः’ इति संज्ञासंज्ञिसम्बन्धप्रति-

१ पूर्वोत्तरप्रत्ययवेद्यत्वाविशेषात् । २ अन्यथा । ३ उक्तप्रकारेण मीमांसकग्रन्था-  
पेक्षया सादृश्यस्य वस्तुत्वं कमिति प्रश्ने अवयवसामान्ययोगप्रकारेण वस्तुत्वम् ।  
४ गोगवयलक्षणयोर्विशेषयोः । ५ गवये वा । ६ प्रत्यक्षे सति । ७ एकत्र प्रत्यक्षत्वं  
कथं न वार्यते इत्युक्ते आह । ८ अन्यथा । ९ पक्षानता अन्येन एकरव-  
प्रतीतिवत्सादृश्यप्रत्यभिज्ञानस्यापि पूर्वोत्तरप्रत्ययवेद्यसादृश्यगोचरत्वमस्तीति समर्थितम् ।  
१० अप्रतिपक्षं प्रतीयते । ११ प्रत्यभिज्ञानस्य उपमानस्य च । १२ वैलक्षण्यज्ञानं ।  
१३ मीमांसकस्य । १४ वैलक्षण्याभावलक्षणसादृश्यस्याभावप्रमाणवेद्यत्वात् उपमान-  
प्रमाणभावे सति । १५ गोगवयलक्षणार्थस्य । १६ गवयः । १७ तुच्छाभावरूपम् ।  
१८ अवयव । १९ मीमांसिकं प्रत्युपमानस्य प्रत्यभिज्ञानत्वसमर्थनपरेण अन्येन ।  
२० उपमानस्य । २१ गवयशब्दस्य । २२ गवयणिष्ठस्य ।

पक्षिरूपमानमिति नैयायिकमतमपि प्रत्युक्तम् । यथैव ह्येकदा घटः  
मुपलब्धवतः पुनस्तस्यैव दर्शने 'स एवायं घटः' इति प्रतिपत्तिः  
प्रत्यभिज्ञा, तथा 'गोसदृशो गवयः' इति सङ्केतकाले गोसदृश-  
गवयाभिधानयोर्वाच्यवाचकसम्बन्धं प्रतिपद्य पुनर्गवयदर्शनात्-  
प्रतिपत्तिः प्रत्यभिज्ञा किञ्चेष्यते? न खलु पूर्वमप्रतिपक्षेऽपूर्व-  
दर्शनात्स्मृतिर्युक्ता, यतस्तथा प्रतिपत्तिः स्यात् ।

गोविलक्षणमहिष्यादिदर्शनाच्च 'अयं गवयो न भवति' इति  
तैत्तिरीयासंज्ञिसम्बन्धप्रतिषेधप्रतिपत्तिश्च यद्युपमानम्—'प्रसिद्ध-  
साधर्म्यात्सौम्यसाधनमुपमानम्' [न्यायसू० १।१।६] इति व्याह-  
न्येत । अथ प्रसिद्धार्थवैधर्म्यादपीर्यते, तर्हि 'प्रसिद्धार्थवैधर्म्याच्च १०  
सौम्यसाधनमुपमानम्' इत्युपख्यानं सैत्रे कर्तव्यम् ।

किञ्च, प्रसिद्धार्थैकत्वात्सौम्यसाधनमुपमानमित्यप्यभ्युपगम्य-  
ताम् । तैत्तिरीया च प्रत्यभिज्ञानस्य प्रत्यक्षेन्तर्भावोऽयुक्तः ।

तथा स्वसमीपवर्तिप्रासादादिदर्शनोपजनितसंस्कारस्य तत्प्र-  
तियोगिभूतयद्युपलम्भात् 'इदमसादूरम्' इति प्रतिपत्तिः, १५  
आमलकदर्शनाद्वितसंस्कारस्य विद्वादिदर्शनात् 'अतस्तत्सूक्ष्मम्'  
इति, ह्रस्वदर्शनाविर्भूतसंस्कारस्य तद्विपरीताथोपलम्भात् 'अतोयं  
प्राञ्चुः' इति च प्रतिपत्तिः किं नाम मीनं स्यात् ?

तथा वृक्षाद्यनभिज्ञो यदा कश्चित्कश्चित्पृच्छति कीदृशो  
वृक्षादिरिति ? स तं प्रत्याह—'शाखादिमान्वृक्ष एकशृङ्गो गण्ड- २०  
कोऽष्टपादः शरभः चारुसटान्वितः सिंहः' इत्यादि । तैद्व्याख्याहित-  
संस्कारः प्रष्टा यदा शाखादिमतोर्थान् प्रतिपद्य 'अयं स वृक्षश्च-  
ब्दवाच्यः' इत्यादिरूपतया तैत्तिरीयासंज्ञिसम्बन्धं प्रतिपद्यते तदा  
किं नाम तैत्तिरीयमात्रं स्यात् ? उपमानम्, इत्यसम्भाव्यम्; सर्वत्रो-  
क्तप्रकारप्रतिपत्तौ प्रसिद्धार्थसाधर्म्यासम्भवात् । ततः प्रति- २५

१ शानवतः । २ आटविकाद् शाखा । ३ वाच्यवाचकसम्बन्धे । ४ गवयः ।  
५ गोः । ६ ज्ञातार्थसम्बन्धसाधर्म्यात् । ७ गवयस्य । ८ साध्यस्य अयं गवयश्चब्द-  
वाच्य इति संज्ञासंज्ञिसम्बन्धस्य । ९ गवा । १० महिषस्य । ११ साध्यसाधनमुप-  
मानम् । १२ गोगवयलक्षणेन । १३ महिषस्य । १४ साध्यस्य अयं गवयश्चब्दवाच्य  
इति संज्ञासंज्ञिसम्बन्धस्य । १५ गणना । १६ तत्रास्तेव गवदीये सूत्रे । १७ पूर्व-  
पर्यायेण । १८ उत्तरपर्यायस्य । १९ स एवावमित्यादि । २० रूपणान्तरसमुच्चये ।  
२१ कुञ्ज । २२ प्रमाणम् । २३ पृच्छ्यमानपुरुषस्य । २४ ते च ते संज्ञासंज्ञिनश्च,  
इत्य इति संज्ञा, शाखादिभ्यान् पदार्थः संज्ञा । २५ अयं वृक्षश्चब्दवाच्य इत्यादिकम् ।  
२६ इदमसादूरमित्यादौ च ।

नियतप्रमाणव्यवस्थामभ्युपगच्छता प्रतिपादितैप्रकारा प्रतीतिः  
प्रत्यभिज्ञैवेत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

अथेदानीमूहस्योपलम्भेत्यादिना कारणस्वरूपे निरूपयति—

**उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः ॥११॥**

- ५ उपलम्भानुपलम्भौ साध्यसाधनयोर्यथाक्षयोपशमं सकृत् पुनः-  
पुनर्वा दृढतरं निश्चयानिश्चयौ न भूयोदर्शनादर्शने । तेनातीन्द्रि-  
यसाध्यसाधनयोरगमानुमाननिश्चयानिश्चयहेतुकसम्बन्धबोध-  
स्यापि सङ्गहाद्वाव्याप्तिः । यथा 'अस्त्यस्य प्राणिनो धर्मविशेषो  
विशिष्टसुखादिसङ्गाधान्यथानुपपत्तेः' इत्यादौ, 'आदित्यस्य गम-  
१० नशक्तिसम्बन्धोऽस्ति गतिमत्त्वान्यथानुपपत्तेः' इत्यादौ च । न  
खलु धर्मविशेषः प्रवचनादन्यतः प्रतिपत्तुं शक्यः, नाप्यतोनुमा-  
नादन्यतः कुतश्चिप्रमाणादादित्यस्य गमनशक्तिसम्बन्धः साध्य-  
त्वाभिमतः, साधनं वा गतिमत्त्वं देशादेशान्तरप्राप्तिमत्त्वानुमा-  
नादन्यत इति । तौ निमित्तं यस्य व्याप्तिज्ञानस्य तत्तथोक्तम् ।  
१५ व्याप्तिः साध्यसाधनयोरविनाभावः, तस्य ज्ञानमूहः ।

- न च बालावस्थायां निश्चयानिश्चयभ्यां प्रतिपन्नसाध्यसाधन-  
स्वरूपस्य पुनर्बुद्धावस्थायां तद्विस्मृतौ तत्स्वरूपोपलम्भेऽप्यविना-  
भावप्रतिपत्तेरभावात्तयोस्तदहेतुत्वम् । सैरण्णैदेरपि तद्वेतुत्वात् ।  
भूयो निश्चयानिश्चयौ हि स्वर्यमाणप्रत्यभिज्ञायमानौ तत्कारण-  
२० मिति स्मरणादेरपि तन्निमित्तत्वप्रसिद्धिः । मूलकारणत्वेन  
तूपलम्भादेरत्रोपदेशः, स्मरणादेस्तु प्रकृतत्वादेव तत्कारणत्व-  
प्रसिद्धेरनुपदेश इत्यभिप्रायो गुरुणाम् ।

तच्च व्याप्तिज्ञानं तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिभ्यां प्रवर्तत इत्युपद-  
र्शयति—इदमस्मिन्नित्यादि ।

- १ प्रसिद्धाभेन पूर्वप्रतिपन्नेन प्रासादादिना आत्मादिमान्धक्ष इत्यादिवाक्येन ।  
२ तत्सदृशं तद्विलक्षणमित्यादिरूपा । ३ एकवारम् । ४ अक्षरानुपलम्भो भावान्तरो-  
पलम्भोऽनिश्चयः । ५ प्रत्यक्षेण साध्यसाधनयोः । ६ उपलम्भानुपलम्भौ निश्चया-  
निश्चयौ येन कारणेन । ७ तौ हेतु वक्ष्य सम्बन्धबोधस्य । ८ प्रत्यक्षपूर्वकनिश्चया-  
निश्चययोः सङ्गहः अपिशब्दात् । ९ निश्चयानिश्चयहेतुकसम्बन्धबोधस्य सङ्गहः क  
इत्युक्ते आह । १० अस्य प्राणिनोऽवर्मविशेषोऽस्ति दुःखादिसङ्गाधादिलादौ च ।  
११ चन्द्रो गमनशक्तियुक्तो गतिमत्त्वादिलादौ च । १२ केवलमुपलम्भानुपलम्भयोः ।  
१३ साध्यसाधनयोः । १४ आदिना, प्रत्यभिज्ञानम् । १५ अनुपलम्भस्य च ।  
१६ चक्षे । १७ प्रस्तुतत्वात् ।

इदमस्मिन् सत्येव भवति असति तु  
न भवत्येवेति ॥ १२ ॥

इदं साधनत्वेनाभिप्रेतं वस्तु, अस्मिन्साध्यत्वेनाभिप्रेते वस्तुनि  
सत्येव सम्भवतीति तथोपपत्तिः । अन्यथा साध्यमन्तरेण न  
भवत्येवेत्यन्यथानुपपत्तिः । वाशब्द उभयप्रकारसूचकः । ५

तैवेवोभयप्रकारौ सुप्रसिद्धव्यक्तिनिष्ठतया सुखावेवोद्योग्यं  
प्रदर्शयति-

यथाम्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च ॥ १३ ॥

ननु चास्याऽप्रमाणत्वात्किं कारणस्वरूपनिरूपणप्रयासेन; इत्य-  
प्यसाम्प्रतम्; यतोस्याप्रामाण्यं गृहीतग्राहित्वात्, विसंवादि-१०  
त्वाद्वा स्यात्, प्रमाणविषयपरिशोधकत्वाद्वा ? प्रथमपक्षे साध्य-  
साधनयोः साकल्येन व्याप्तिः प्रत्यक्षात् प्रतीयते, अनुमानाद्वा ?  
न तावत्प्रत्यक्षात्; तस्य सन्निहितमात्रगोचरतया देशादिवि-  
प्रकृष्टाशेषार्थालम्बनत्वानुपपत्तेः, तत्रास्य वैशद्यासम्भवाच्च । न  
खलु सत्त्वानित्यत्वादयोऽग्निधूमादयो वा सर्वे भावाः सन्निधान-१५  
वत् प्रत्यक्षे विशदतया प्रतिभान्ति, प्राणिमात्रस्य सर्वज्ञतापत्तेरनु-  
मानानर्थक्यप्रसङ्गाच्च । अविचारकतया चाप्यक्षं 'यावान् कश्चि-  
द्धूमः स सर्वोपि देशान्तरे कालान्तरे वाग्निजन्माऽन्यजन्मा वा  
न भवति' इत्येतावतो व्यापारान् कर्तुमसमर्थम् । पुरोव्यव-  
स्थितार्थेषु प्रत्यक्षतो व्याप्तिं प्रतिपद्यमानः सर्वोपसंहारेण प्रति-२०  
पद्यते; इत्यप्यसुन्दरम्; अविषये सर्वोपसंहारायोगात् ।

प्रत्यक्षपृष्ठभाविनो विकल्पस्यापि तद्विषयमात्राध्यवसायत्वात्  
सर्वोपसंहारेण व्याप्तिग्राहकत्वाभावात्, तथा चानिश्चितप्रतियन्ध-  
कत्वाद्देशान्तरादौ साधनं साध्यं न गमयेत् ।

ननु कार्यं धूमो दुर्लभः कार्यधर्मानुवृत्तितो विशिष्टप्रत्यक्षा-२५  
नुपलम्भाम्ना निश्चितः, स देशान्तरादौ तदभावेपि भवेत्तत्कार्य-

१ उद्देश्योयम् । २ तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिरूपी । ३ अनुमान । ४ अनिर्णय-  
रूपत्वात्तर्कसाप्रामाण्यमिलमिप्राये सत्ताह । ५ क्षणिकत्व । ६ अन्यथेति शेषः ।  
७ निर्विकल्पकस्य परामर्शश्च्युत्वात् । ८ न विद्यते - विचारः यावान्कश्चिद्धूमः स  
सर्वोपसंहारे, कार्यं नार्थान्तरमेति । ९ जनः । १० प्रत्यक्षत्व । ११ प्रत्यक्षतः  
सर्वोपसंहारे व्याप्तिग्राहनाभावे च । १२ कर्तुं । १३ जनेः । १४ कार्यस्य धर्मैः  
कारणे सति भवनलक्षणसदभावे भवनलक्षणः ।

तामेवातिवर्त्तत, इत्याकैसिकोऽग्निनिवृत्तौ न कैचिदपि निव-  
र्त्तत, नाप्यवश्यंतया तत्सद्भावे एव स्यादिति, अहेतोः खरवि-  
षाणवत्तस्यासत्त्वात् कचिदप्युपलम्भो न स्यात्, सर्वत्र सर्वदा  
सर्वाकारेण वोपलम्भः स्यात् । स्वभावश्च 'तद्वर्तोर्यस्याभावेपि  
५ यदि स्यात्तदार्थस्य निःस्वभावत्वं स्वभावस्य वाऽसत्त्वं स्यात्,  
तत्स्वभावतया चास्य कदाचिदप्युपलम्भो न स्यात् । उक्तञ्च—

“कार्यं धूमो हुतमुजः कार्यधर्मानुवृत्तितः ।

‘सम्भवंस्तदभावेपि हेतुमत्तां विलङ्घयेत् ॥”

[ प्रमाणवा० १।३५ ]

१०

“स्वभावेप्यविनाभावो भावमात्रानुवर्त्तितः ।

तदभावे स्वयं भावस्याभावः स्यादमेदतः ॥”

[ प्रमाणवा० १।४० ] इति ।

व्याप्तिप्रतिपत्तावपि तन्निश्चयकालोपलब्धेनैव व्यापकेन  
व्याप्यस्य व्याप्तिः स्यात् तस्यैव तथा निश्चयात्, न तादृशस्य ।  
१५ तादृशस्यापि साध्यव्याप्तत्वग्रहणे तद्भाहिणो विकल्पस्यार्थहीत-  
ग्राहित्वं कथं न स्यात् ? यत्तु प्रत्यक्षेण कैचित्प्रदेशे साध्यव्याप्त-  
त्वेन प्रतिपन्नं ततस्तस्यैवानुमाने विशेषतो दैर्घ्यानुमानं स्यात्,  
अन्यदेशादिस्थसाध्येनास्याव्याप्तेः ।

पारिशेष्यात्तादृशेन व्यापकेनान्यत्र तादृशस्य व्याप्तिसिद्धिश्चेत्,  
२० ननु किमिदं पारिशेष्यम्—प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा ? न तावत्प्रत्य-  
क्षम्; देशान्तरस्थस्यानुमेयस्य प्रत्यक्षेणाप्रतिपत्तेः, अन्यथानु-  
मानानर्थक्यानुषङ्गः । नाप्यनुमानम्; तत्राप्यनुमानान्तरेण व्याप्ति-  
प्रतिपत्तावनवस्थाप्रसङ्गात्, तेनैव तत्प्रतिपत्तावन्योन्याश्रयः ।

१ अतिक्रमेत् । २ अकारणकः । ३ भूषणप्रदेशे । ४ सत्त्वलक्षणहेतुर्व्याप्यः ।  
५ स्वलक्षणे हेतुर्व्याप्यः । ६ अनिलत्वलक्षणस्य साध्यस्य व्यापकस्य । ७ अनुपा-  
यिनि । ८ इति स्थितिः । ९ स्वभावस्य भावस्य वा । १० स्वभावस्य अर्थस्य वा ।  
११ साध्यसाधनयोः । १२ स्वातन्त्र्येणानवस्थानाभावात्स्वभावस्य । १३ अविशेषादि-  
त्यर्थः । १४ व्याप्तिसिद्ध्यकालोपलब्धस्य व्याप्यस्य साधनस्य । १५ साधनेन व्याप्तत्व-  
प्रकारेण । १६ पूर्वदृष्टधूमसदृशस्य धूमस्य न तथा निश्चयः । १७ पूर्वदृष्टसदृशस्यापि  
धूमस्य । १८ सादृश्यमगृहीतम् । १९ महानसे । २० साधनम् । २१ साध्यस्य ।  
२२ विशेषतः खदिरादिरूपतया दृष्टस्य महानसादौ यादृशाधिः प्रतिपन्नस्य भूषणदौ  
अनुमानस्य । २३ महानसस्याधिसदृशेन । २४ भूषणतन्मादौ २५ अयं धूमोभिन-  
व्याप्तौ धूमत्वान्महानसधूमवदिति ।

पंतेन साध्यसाधनयोः साकल्येनानुमानाद्यासिप्रतिपत्तेस्सर्क-  
स्याप्रामाण्यमिति प्रत्युक्तम् । तत्र प्रत्यक्षानुमानयोः साकल्येन  
व्याप्तिप्रतिपत्तौ सामर्थ्यम् ।

अथासदादिप्रत्यक्षस्य व्याप्तिप्रतिपत्तावसामर्थ्येऽपि योगिप्रत्य-  
क्षस्य तत् स्यात्, इत्यप्यसत्, तस्याप्यविचारकतया तावतो  
व्यापारान् कर्तुमसमर्थत्वाविशेषात् । कुतश्चास्योत्पत्तिः—विकल्प-  
मात्राभ्यासात्, अनुमानाभ्यासाद्वा ? प्रथमपक्षे कामशोकादिज्ञान-  
वत्तस्याप्रामाण्यप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षेऽप्यन्योन्याश्रयः—व्याप्तिविषये  
हि योगिप्रत्यक्षे सत्यनुमानम्, तस्मिंश्च सति तदभ्यासाद्योगि-  
प्रत्यक्षमिति । अस्तु वा योगिप्रत्यक्षम्, तथापि—तत्प्रतिपन्नार्थेष्व-  
नुमानवैयर्थ्यम् । साध्यसाधनविशेषेषु स्पष्टं प्रतिभातेष्वपि  
अनुमाने सर्वत्रानुमानानुषङ्गात् स्वरूपस्याप्यप्यक्षतोऽप्रसिद्धिः ।

परार्थं तस्यानुमानमिति चेत्, तर्हि योगी परार्थानुमानेन  
गृहीतव्याप्तिकम्, अगृहीतव्याप्तिकं वा परं प्रतिपादयेत् ? गृहीत-  
व्याप्तिकं चेत्, कुतस्तेन गृहीता व्याप्तिः ? न तावत्स्वसंवेदनेन्द्रिय-  
मनोविज्ञानैः, तेषां तद्विषयत्वात् । योगिप्रत्यक्षेण व्याप्तिप्रति-  
पत्तावनुमानवैयर्थ्यमित्युक्तम् । अगृहीतव्याप्तिकस्य च प्रतिपाद-  
नानुपपत्तिरतिप्रसङ्गात् ।

मानसप्रत्यक्षाद्यासिप्रतिपत्तिरित्यन्ये, तेऽप्यतत्त्वज्ञाः, प्रत्यक्षस्ये-  
न्द्रियार्थसन्निकर्षप्रमत्तत्वाभ्युपगमात् । अंशुस्वभावमनसो युग-  
पदशेषार्थैस्तत्सम्बन्धस्य च प्रागेव प्रतिविहितत्वात् कथं तत्प्रत्य-  
येनापि व्याप्तिप्रतिपत्तिः ?

ननु साध्यसाधनैर्धर्मयोः कचिद्व्यक्तिविशेषे प्रत्यक्षत एव  
सम्बन्धप्रतिपत्तिः, इत्यप्युक्तम् ; साकल्येन तत्प्रतिपत्त्यभावानु-  
षङ्गात् । साध्यं च किमग्निसामान्यम्, अग्निविशेषैः, अग्निसामान्य-  
विशेषो वा ? न तावदग्निसामान्यम् ; तदनुमाने सिद्धे साध्यती-  
पत्तेः, विशेषतोऽसिद्धेर्धर्मो नाप्यग्निविशेषः, तस्यानन्वयात् ।

१ अनुमानेन व्याप्तिग्रहणेऽनवस्थेत्तत्तामयलनिरूपणपरेण ग्रन्थेन । २ तद्वा-  
दित्वादस्याप्रामाण्यमित्यत्रासौ यो विकल्पः । ३ निर्विकल्पकत्वेन । ४ विकल्पस्या-  
प्रमाणत्वेनाऽङ्गीकरणात् । ५ उत्पत्तेः । ६ सत्स्वरूपादौ । ७ भूयस्वनवार्द्धितोऽत्यन्तमपि  
नरं प्रतिपादयेत् । ८ योगाः । ९ तैरेव । १० अणुपरिमाणं मनः । ११ ते एक-  
धर्मौ । १२ अशित्वसामान्यम् । १३ यत्र यत्र भूयस्त्वत्र तत्र खदिराशित्वेति ।  
१४ अशित्वस्य । १५ साधनवैयर्थ्यमिति यावत् । १६ तन्नाविवादादव्याप्तिग्रहणकाले  
पवासा प्रसिद्धेः । कथमन्यथा साध्यसाधनयोर्व्याप्तिनिर्णीतिः स्यात् ? १७ देशादिना ।  
१८ अशित्वस्य ।



अग्निसामान्यविशेषस्य साध्यत्वे तेन धूमस्य सम्बन्धः कथं सकल-  
देशकालव्याप्त्याध्यक्षतः सिध्येत्? तथा तत्सम्बन्धासिद्धौ च  
यत्र यत्र यदा यदा धूमोपलम्भस्तत्र तत्र तदा तदाग्निसामान्य-  
विशेषविषयमनुमानं नोदयमासादयेत् । न ह्यन्यथा सम्बन्ध-  
५ ग्रहणमन्यैथानुमानोत्थानं नाम, अतिप्रसङ्गात् । ततः सर्वाक्षेपेण  
व्यासिग्राही तर्कः प्रमाणयितव्यः ।

ननु 'यावान्कश्चिद्धूमः स सर्वोप्यग्निजन्माऽनग्निजन्मा वा न  
भवति' इत्युद्वापोहविकल्पज्ञानस्य सम्बन्धग्राहिप्रत्यक्षफलत्वाच्च  
प्रामाण्यम्; इत्यप्यसमीचीनम्; प्रत्यक्षस्य सम्बन्धग्राहित्वप्रतिषे-  
१० धात् । तत्फलत्वेन चास्याऽप्रामाण्ये विशेषणहानिफलत्वाद्विशेष्य-  
ज्ञानस्याप्यप्रामाण्यानुषङ्गः । हानोपादानोपेक्षाबुद्धिफलत्वात्तस्य  
प्रामाण्ये च ऊद्वापोहज्ञानस्यापि प्रमाणत्वमस्तु सर्वथा विशेषा-  
भावात् । तन्नास्य गृहीतग्राहित्वादप्रामाण्यम् ।

नापि विसंवादित्वात्; स्वविषयेस्य संवादप्रसिद्धेः । साध्य-  
१५ साधनयोरविनाभावो हि तर्कस्य विषयः, तत्र चाविसंवादकत्वं  
सुप्रसिद्धमेव । कथमन्यैथानुमानस्याविसंवादकत्वम्? न कलु  
तर्कस्यानुमाननिवन्धनसम्बन्धे संवादाभावेऽनुमानस्यासौ घटते ।

ननु चास्य निश्चितः संवादो नास्ति विप्रकृष्टार्थविषयत्वात्;  
तदसत्; तर्कस्य संवादसन्देहे हि कथं निस्सन्देहानुमानोत्था-  
२० नम्? तदभावे च कथं सामस्त्येन प्रत्यक्षस्याप्रामाण्यव्यवच्छेदेन  
प्रामाण्यप्रसिद्धिः? ततो निस्सन्देहमनुमानमिच्छता साध्यसा-  
धनसम्बन्धग्राहि प्रमाणमसन्दिग्धमेवाभ्युपगन्तव्यम् ।

समारोपव्यवच्छेदकत्वाच्चास्य प्रामाण्यमनुमानवत् ।

प्रमाणविषयपरिशोधकत्वाच्चोद्देशः प्रमाणम्; इत्यपि वार्तम्;  
२५ प्रमाणविषयस्याप्रमाणेन परिशोधनविरोधात् मिथ्याज्ञानवत्प्र-  
मेयार्थवच्च । प्रयोगः-प्रमाणं तर्कः प्रमाणविषयपरिशोधकत्वा-  
दनुमानैदिवत् । यस्तु न प्रमाणं स न प्रमाणविषयपरिशोधकः

१ अग्निसामान्यविशेषेण । २ देशान्तरकालान्तरसम्बन्धित्वेन । ३ अग्न्याविना-  
भूतधूमाच्छानुमानोत्पत्तिप्रसङ्गात् । ४ स्वीकारेण । ५ अन्वयः । ६ व्यतिरेकः ।  
७ साकल्येन । ८ दण्डज्ञान । ९ दण्डि । १० अनुमानलक्षणफलसङ्गात् ।  
११ तर्कस्य । १२ साकल्येन । १३ तर्कस्य अविसंवादकत्वं सुप्रसिद्धं यदि न स्यात् ।  
१४ विषये । १५ प्रत्यक्षं प्रमाणमविसंवादकत्वादिति । १६ तर्कस्य संवादसन्देहे  
निस्सन्देहानुमानोत्थानं न साधतः । १७ तर्कः । ८ अनुमान । ९ तर्कः ।  
२० दूरस्थितसार्थस्य प्रत्यक्षविषयस्य यथानुमान परिशोधकम् ।

यथा मिथ्याज्ञानं प्रमेयो चार्थः, प्रमाणविषयपरिशोधकश्चायम्, तस्मात्प्रमाणम् ।

तथा, प्रमाणं तर्कः प्रमाणानामनुग्राहकत्वात्, यत्प्रमाणोन्निमित्तं अनुग्राहकं तत्प्रमाणम् यथा प्रवेचनानुग्राहकं प्रत्यक्षमनुमानं वा, प्रमाणानामनुग्राहकश्चायमिति । न चायमसिद्धो हेतुः १ प्रमाणानुग्रहो हि प्रथमप्रमाणप्रतिपन्नार्थस्य प्रमाणान्तरेण तथैवावसायः, प्रतिपत्तिदार्ढ्यविधानात् । स चात्रास्ति प्रत्यक्षादिप्रमाणेनावगतस्य देशतः साध्यसाधनसम्बन्धस्य दृढतरमनेनावर्णमात् । ततः साध्यसाधनयोरविनाभावो धनियन्धनमूहज्ञानं परीक्षाद्वयैः प्रमाणमभ्युपगन्तव्यम् । १०

न चोहः सम्बन्धज्ञानजन्मा यतोऽपरापरोहानुसरणादनवस्था स्यात्, प्रत्यक्षानुपलम्भजन्मत्वात्तस्य । स्वयोग्यताविशेषवशाच्च प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं प्रत्यक्षवत् । प्रत्यक्षे हि प्रतिनियतार्थः रिच्छेदो योग्यतात् एव न पुनर्स्तदुत्पत्त्यादेः, ततस्तत्परिच्छेदत्वस्य प्राक्प्रतिषिद्धत्वात् । योग्यताविशेषः पुनः प्रत्यक्षस्यैवास्य १५ विषयज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमविशेषः प्रतिपत्तव्यः ।

ननु यथा तर्कस्य स्वविषये सम्बन्धग्रहणनिरपेक्षा प्रवृत्तिस्तथा-नुमानस्याप्यस्तु सर्वत्र ज्ञाने सावरणक्षयोपशमस्य स्वार्थप्रकाश-हेतोरविशेषात्, तथा चानर्थकं सम्बन्धग्रहणार्थं तर्कपरि-कल्पनम्; तदप्यसमीचीनम्; यतोऽनुमानस्याभ्युपगम्यत एव २० त्रयोग्यताग्रहणनिरपेक्षमनुमेयार्थप्रकाशनम्, उत्पत्तिस्तु लिङ्ग-लेङ्गिसम्बन्धग्रहणनिरपेक्षा नास्ति, अगृहीततत्सम्बन्धस्य प्रति-पत्तुः क्वचित्कदाचित्तदुत्पत्त्यप्रतीतिः । न च प्रत्यक्षस्याप्युत्पत्तिः त्रणार्थसम्बन्धग्रहणापेक्षा प्रतिपन्ना; स्वयमगृहीततत्सम्बन्ध-प्रापि प्रतिपत्तुस्तदुत्पत्तिप्रतीतिः । तद्वदूहस्यापि स्वार्थसम्बन्ध-२५ ग्रहणानपेक्षस्योत्पत्तिप्रतिपत्तेर्नोत्पत्तौ सम्बन्धग्रहणापेक्षा युक्ति-तीत्यनर्थव्यम् ।

अथेदानीमनुमानलक्षणेन व्याख्यातुकामः साधनादित्याद्याह—

१ प्रत्यक्ष । २ दूरसबलक्षणस्य । ३ द्वितीयप्रत्यक्षेण । ४ एकदेशतः । निश्चयात् । ५ यथानुमानं साध्यसाधनसम्बन्धग्राहितर्कपूर्वकमूहोपि तथा स्यात्, या चानवस्था इत्युक्ते आह । ६ धूमधूमध्वनविषय एक एवोहः सकलानुमानव्यव-पकः कुतो न सादित्युक्ते आह । ७ तस्य अर्थस्य । ८ सत्यनुमानस्य कारण-ता योग्यता । ९ अपिवान्देनानुमानस्य संज्ञकः । १० इन्द्रिय । ११ वृत्तादि । १२ स्वमात्मीयः तत्किमुपलम्भानुपलम्भोः अर्थ इति सम्बन्धः, अथवा उपलम्भानुप-म्ययोक्ष सम्बन्धः । १३ व्याप्तिज्ञानस्य कारणस्वरूपनिरूपणम् । १४ स्वरूपम् ।

## साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् ॥ १४ ॥

साध्याऽभावाऽसम्भवनियमनिश्चयलक्षणात् साधनादेव हि शक्याऽभिप्रेतोऽप्रसिद्धत्वैलक्षणस्य साध्यस्यैव यद्विज्ञानं तदनुमानम् । प्रोक्तविशेषणयोरन्यतरस्याप्यपाये ज्ञानस्यानुमानत्वा-  
५ सम्भवात् ।

ननु चास्तु साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् । तत्तु साधनं निश्चितपक्षधर्मत्वादिरूपत्रययुक्तम् । पक्षधर्मत्वं हि तस्यासिद्ध-  
त्वव्यवच्छेदार्थं लक्षणं निश्चीयते । सपक्ष एव सत्त्वं तु विरुद्धत्व-  
व्यवच्छेदार्थम् । विपक्षे चासत्त्वमेव अनैकान्तिकत्वव्यवच्छि-  
१० तये । तदनिश्चये साधनस्यासिद्धत्वादोषत्रयपरिहारासम्भ-  
वात् । उक्तञ्च—

“हेतोस्त्रिष्वपि रूपेषु निर्णयस्तेर्न वर्णितः ।

२॥५ असिद्धविपरीतार्थव्यभिचारिविपक्षतः ॥” [ प्रमाणवा०  
२॥१६ ] इत्याशङ्क्याह—

## १५ साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ॥ १५ ॥

असाधारणो हि स्वभावो भावस्य लक्षणमव्यभिचारादभेदै-  
ष्यवत् । न च त्रैरूप्यस्यासाधारणता, हेतौ तदाभासे च  
तत्सम्भवात्पञ्चरूपत्वादिवत् । असिद्धत्वादोषपरिहारआस्य  
अन्यथानुपपत्तिनियमनिश्चयलक्षणत्वादेव प्रसिद्धः, स्वयमसिद्ध-  
२० स्यान्न्यथानुपपत्तिनियमनिश्चयासम्भवाद् विरुद्धनैकान्तिकवत् ।

किञ्च, त्रैरूप्यमात्रं हेतुर्लक्षणम्, विशिष्टं वा त्रैरूप्यम् ?  
तत्राद्यविकल्पे धूमवत्त्वादिवद्वक्तृत्वादावप्यस्य सम्भवात्कथं तल्ल-  
क्षणत्वम् ? न खलु ‘बुद्धोऽसर्वज्ञो वक्तृत्वादे रथ्यापुरुषवत्’ इत्यत्र  
हेतोः पक्षधर्मत्वादिरूपत्रयसङ्गावे परैर्गमकत्वमिष्यतेऽन्यथानुप-  
२५ पन्नत्वविरहात् । द्वितीयविकल्पे तु कुतो वैशिष्ट्यं त्रैरूप्यस्या-  
न्यत्रान्यथानुपपन्नत्वनियमनिश्चयात्, इति स एवास्य लक्षण-  
मर्क्ष्यं परीक्षादक्षैरुपलक्ष्यते । तद्भावे पक्षधर्मत्वाद्यभावेपि ‘उदे-

१ शक्यं=प्रत्यक्षावधिष्यत् । २ अभिप्रेतम्=उद्दिष्टम् । ३ अप्रसिद्धत्वम्=प्रसिद्धम् ।

४ वसः । ५ साध्यसाधनयोः । ६ साध्यस्य साधनस्य वा । ७ सपक्षे एव सत्त्वं  
मित्युच्यमाने विपक्षे एकदेवेन सत्त्वनिवृत्तिः सात् । तद्व्यवच्छेदार्थं साध्येन विपक्षे  
हेतोरसत्त्वं यथा सादिति विपक्षे चासत्त्वं चेत्तुक्तम् । ८ दिग्भागेन । ९ एते एव  
विपक्षास्तैर्म्यस्यतः । १० सरूपेण । ११ वसः । १२ तादृशः । १३ अनुमाने ।  
१४ नौदेः । १५ वर्जने । १६ परिपूर्णम् ।

‘अति शकटं कृत्तिकोदयात्’ इत्यादेर्गमकत्वेन वक्ष्यमाणत्वात्, सपक्षे सत्त्वरहितस्य च आवर्णत्वादेः शब्दानित्यत्वे साध्ये गमकत्वप्रतीतिः ।

ननु नित्यादाकाशादेर्विपक्षादिव सपक्षादप्यनित्याद् घटादेः सैतो व्यावृत्तत्वेन आवर्णत्वादेरसाधारणत्वादनैकान्तिकता; तद- ५ सत्यम्; असाधारणत्वस्यानैकान्तिकत्वेन व्यस्यऽसिद्धेः । सपक्ष-विपक्षयोर्हि हेतुरसत्त्वेन निश्चितोऽसाधारणः, संशयितो वा ? निश्चितश्चेत्, कथमनैकान्तिकः ? पक्षे साध्याभावेन्युपपद्यमानतया निश्चितत्वेन संशयहेतुत्वाभावात् ।

आवर्णत्वं हि अवर्णज्ञानग्राह्यत्वम्, तज्ज्ञानं च शब्दादात्मानं १० लभमानं तस्य ग्राहकम् नान्यथा, “नाकारणं विषयः” [ ] इत्यभ्युपगमात् । शब्दश्च नित्यस्तज्जननैकस्वभावो यदि, तर्हि अवर्णप्रणिधानात्पूर्वं पक्षाच्च तज्ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्गः । न ह्यविकले कारणे कार्यस्यानुत्पत्तिर्युक्ता अतत्कार्यत्वप्रसङ्गात् । प्रयोगः-यस्मिन्नविकले सत्यपि यन्न भवति न तत्तत्कार्यम् यथा सत्यप्य- १५ विकले कुलाले अभवन्पटो न तत्कार्यः, सत्यपि शब्दे पूर्वं पक्षाच्चाविकले न भवति च तज्ज्ञानमिति । ननु च ओजप्रणिधानात्पूर्वं पक्षाच्च तज्ज्ञानजननैकस्वभावोपि शब्दस्तत्र जनयत्यावृत्तत्वात्; तदप्यसङ्गतम्; आवरणं हि द्रष्टृदृश्ययोरेतराले वर्तमानं वस्तु लोके प्रसिद्धम्, यथा कार्ण्डपटादिकम् । ओज- २० शब्दयोश्च व्यापकत्वे सर्वत्र सर्वदा तत्करणैकस्वभावयोरत्यन्त-संश्लिष्टयोः किं नामान्तराले वर्तेत ? वृत्तौ वा तयोर्व्यापकत्व-व्याघातः, तदवष्टब्धदेशपरिहारेणानयोर्वर्तनादिति ‘आसवच-नादिनिवन्धनमर्थज्ञानमागमः’ (परीक्षामु० ३।१००) इत्यत्र विस्तरेण विचारयिष्यामः । तत्रास्याऽऽवृत्तत्वात्तज्ज्ञानाजमकत्वं २५ किन्त्वसत्त्वादेव, इति आवर्णत्वादेः सपक्षविपक्षाभ्यां व्यावृ-त्तत्वेपि पक्षे साध्याविनाभावित्वेन निश्चितत्वाद्वगमकत्वमेव । न च सपक्षविपक्षयोरसत्त्वेन निश्चितः पक्षे साध्याविनाभावित्वेन निश्चेतुमशक्यः; सर्वानित्यत्वे साध्ये सत्त्वादेरहेतुत्वप्रसङ्गात् ।

१ शब्दत्वादेव । २ विषयानात् । ३ वचदसाधारणं तत्तदनैकान्तिकमिति ।

४ शब्दे । ५ अनित्यत्वस्य । ६ आवर्णत्वहेतोः । ७ साध्याभावे अनुपपद्यमानतया निश्चितत्वं हेतोः कथमित्युक्ते ग्राह । ८ एकामतावाः । ९ शब्दक्षणे । १० अवर्ण-ज्ञानस्य । ११ अवर्णज्ञानं शब्दकार्यं न भवति शब्देऽविकले सति पूर्वं पक्षाच्चावृत्तत्व-प्रसङ्गात् । १२ आवरणकलाश्रयिः । १३ द्रष्टृत्वयोः । १४ मध्ये । १५ वक्ष्यविशेषः । १६ आवरणभावं । १७ शब्दस्य । १८ हेतुः । १९ सर्वमनित्यं सत्त्वादिति ।

न खलु सत्त्वादिर्विपक्ष एवासत्त्वेन निश्चितः, सपक्षेपि तदसत्त्व-  
निश्चयात् ।

सपक्षस्याभावाच्च सत्त्वादेरसत्त्वनिश्चयान्निश्चयहेतुत्वम्, न  
पुनः आवणत्वादेः सङ्गाद्विपीति चेत्; ननु आवणत्वादिरपि यदि  
५ सपक्षे स्यात्तदा तं व्याप्नुयादेवेति समानान्तर्व्याप्तिः । सति विपक्षे  
धूमादिश्चासत्त्वेन निश्चितो निश्चयहेतुर्मा भूत् । विपक्षे सत्यसति  
चासत्त्वेन निश्चितः साध्याविनाभावित्वाद्धेतुरेवेति चेत्; तर्हि  
सपक्षे सत्यसति चासत्त्वेन निश्चितो हेतुरस्तु तत एव । नन्वेवं  
सपक्षे तदेकदेशे वा सन्कथं हेतुः ? 'सपक्षेऽसत्त्वेव हेतुः' इत्यनव-  
१० धारणात् । विपक्षेपि तदसत्त्वानवधारणमस्तु; इत्ययुक्तम्; साध्या-  
विनाभावित्वव्याघातानुषङ्गात् ।

यदि पुनः सपक्षविपक्षयोरसत्त्वेन संशयितोऽसाधारण इत्यु-  
च्यते, तदा पक्षत्रयवृत्तितया निश्चितया संशयितया वाऽनै-  
कान्तिकत्वं हेतोरित्यायातम् । न च आवणत्वादौ सास्तीति  
१५ गमकत्वमेव । विरुद्धताप्येतेन प्रत्युक्ता । यो हि विपक्षैकदेशेपि  
न वर्तते, स कथं तत्रैव वर्तते ? असिद्धता तु दूरोत्सारितैव,  
आवणत्वस्य शब्दे सत्त्वनिश्चयात् । तत्र पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं  
वा हेतोरलक्षणम् ।

विपक्षे पुनरसत्त्वमेव निश्चितं साध्याविनाभावनियमनिश्चय-  
२० स्वरूपमेव । इति तदेव हेतोः प्रधानं लक्षणमस्तु किमत्र लक्षणा-  
न्तरेण ? न च सपक्षे सत्त्वाभावे हेतोरनन्वयत्वानुषङ्गः; अन्त-  
र्व्याप्तिर्लक्षणस्य तथोपपत्तिरूपस्यान्वयस्य सङ्गावादन्यथानुप-  
पत्तिरूपव्यतिरेकवत् । न खलु दृष्टान्तधर्मिण्येव साधर्म्यं वैधर्म्यं  
वा हेतोः प्रतिपत्तव्यमिति नियमो युक्तः; सर्वस्य क्षणिकत्वादि-  
२५ साधने सत्त्वादेरहेतुत्वप्रसङ्गात् ।

१ निले । २ निश्चयहेतुत्वम् । ३ सपक्षस्य । ४ सपक्षेऽसत्त्वनिश्चयादिति शेषः ।  
५ सपक्षे (पक्षे) । ६ आवणत्वादेः सति विपक्षे तत्रासत्त्वेन निश्चितस्य सत्ताभ्यसाधकत्वे  
अङ्गीक्रियमाणे । ७ पक्षे । ८ सत्ताभ्यस्य । ९ सति विपक्षे असत्त्वाविशेषात् ।  
१० हेतुः । ११ सपक्षे असत्त्वेन निश्चितस्य हेतुत्वप्रकारेण । १२ चेतनाकारणः  
स्वापदिमत्वात्, सत्त्वादिति हेतुः सिद्धेषु न प्रवर्तते अन्वयः प्रवर्तते । १३ निले ।  
१४ न केवलं सपक्षे । १५ अनैकान्तिकत्वविराकरणपरेण अन्येन । १६ पक्ष-  
धर्मत्वसपक्षेसत्त्वलक्षणेन । १७ पक्षे एव । १८ अन्यतः । १९ व्यतिरेकः ।  
२० दृष्टान्तस्यासत्त्वात् ।

ननु त्रैरूप्यं हेतोर्लक्षणं मा भूत् 'पक्षान्येतानि फलान्येकशाखा-  
प्रभवत्वादुपयुक्तं फलवत्' इत्यादौ 'मूर्खोऽयं देवदत्तस्तत्पुत्रत्वादि-  
तरतत्पुत्रवत्' इत्यादौ च तदामासेपि तत्सम्भवात् । पञ्चरूपत्वं  
तु तल्लक्षणं युक्तमेवानवद्यत्वात्, एकशाखाप्रभवत्वस्यावाधित-  
विषयत्वासम्भवाद् आत्मताग्राहिप्रत्यक्षेणैव तद्विषयस्य बाधित-  
त्वात्, तत्पुत्रत्वादेऽसत्प्रतिपक्षत्वार्मावात् तत्प्रतिपक्षस्य शाखा-  
व्याख्यानादिलिङ्गस्य सम्भवात् ।

प्रकरणसमस्याप्यसत्प्रतिपक्षत्वाभावादहेतुत्वम् । तस्य हि  
लक्षणम्, "यस्मात् प्रकरणचिन्ता स प्रकरणसमः" । [न्यायसू०  
१।२।७] इति । प्रक्रियेते साध्यत्वेनाधिक्रियेते अनिश्चितौ पक्ष-  
प्रतिपक्षौ यौ तौ प्रकरणम् । तस्य चिन्ता संशयात्प्रभृत्याऽऽनिश्च-  
यात्पर्यालोचना र्येतौ भवति स एव, तन्निश्चयार्थं प्रयुक्तः प्रकरण-  
समः । पक्षद्वयेऽप्यर्थं समानत्वाद्धुमयत्राप्यन्वयादिसद्भावात् ।  
तथैवा- 'अनित्यः शब्दो नित्यधर्मानुपलब्धेर्घटादिवत्, यत्पुन-  
र्नित्यं तन्नानुपलब्धमाननित्यधर्मकम् यथात्मादि' एवमैकेनान्य-  
तैरानुपलब्धैरनित्यत्वसिद्धौ साधकत्वेनोपन्यासे सति द्वितीये-  
प्राद-यथनेन प्रकारेणानित्यत्वं प्रसाध्यते तर्हि नित्यतासिद्धि-  
रप्यस्यऽन्यतरानुपलब्धेस्तत्रापि सद्भावात् । तथा हि-नित्यः  
शब्दोऽनित्यधर्मानुपलब्धेरात्मादिवत्, यत्पुनर्न नित्यं तन्नानुप-  
लब्धमानाऽनित्यधर्मकम् यथा घटादिः

२०

इत्यप्यविचारितरमणीयम्, साध्याविनामावित्वव्यतिरेकेणाप-  
रस्याबाधितविषयत्वादेरसम्भवात् तदेव प्रधानं हेतोर्लक्षणमस्तु  
किं पञ्चरूपप्रकल्पनया ? न च प्रमाणप्रसिद्धत्रैरूप्यस्य हेतोर्विषये  
बाधा सम्भवति, अनयोर्विरोधात् । सौध्यसद्भावे एव हि हेतो-

१ योगः । २ भक्षितः । ३ स इयामस्तत्पुत्रत्वादित्यादौ च । ४ अनुष्णोक्षि-  
द्रव्यत्वाज्जलवत् इति च । ५ साध्यस्य । ६ तत्पुत्रो विद्वान् आख्यव्याख्यानसद्भा-  
वात् । ७ तत्पुत्रत्वादिति हेतोः । ८ हेतोः । ९ स्वीक्रियेते । १० बादिना यः  
पक्षो निश्चितः स प्रतिवादिना अनिश्चितः । यः प्रतिवादिना निश्चितः स बादिना च  
निश्चितः । ११ बादिप्रतिवादिन्याम् । १२ बाधकादिमध्ये । १३ वा मर्वादयान् ।  
१४ हेतोः । १५ हेतुः । १६ हेतोः । १७ पक्षधर्मत्वादि । १८ सपक्षधर्मत्वादि ।  
१९ तथा हि । २० नित्यत्वं । २१ योगेन । २२ अनित्यधर्मस्य । २३ मीमांसकः ।  
२४ असत्प्रतिपक्षत्वस्य च । २५ योगमतमालम्ब्य परिभिरुच्यते । २६ वसः ।  
२७ किं त्रैरूप्यं का च बाधा कथं च तयोर्विरोध इत्युक्ते आह ।

धर्मिणि सद्भावलैक्यम्, तदभावे एव च तत्र तत्सम्भवो बाधा,  
भौवाभावयोश्चैकत्रैकस्य विरोधः ।

किञ्च, आध्यक्षागमयोः कुतो हेतुविषयबाधकत्वम्? स्वार्थ-  
(र्थी)व्यभिचारित्वाच्चेत्, हेतौवपि सति त्रैरूप्ये तत्समानमित्यसा-  
५ वप्यनयोर्विषये बाधकः स्यात् । दृश्यते हि चन्द्रार्कादिस्थैर्यग्राह्यऽ-  
ध्यक्षं देशान्तरप्रासिलिङ्गप्रभवानुमानेन वाच्यमानम् । अथैक-  
शाखाप्रभवत्वाद्यनुमानस्य भ्रान्तत्वाद्वाध्यत्वम् । कुतस्तद्भ्रान्त-  
त्वम्-अध्यक्षबाध्यत्वात्, त्रैरूप्यवैकल्याद्वा? प्रथमपक्षेऽन्योन्या-  
श्रयः-भ्रान्तत्वेऽध्यक्षबाध्यत्वम्, ततश्च भ्रान्तत्वमिति । द्वितीय-  
१० पक्षस्त्वयुक्तः, त्रैरूप्यसद्भावस्यात्र परेणाभ्युपगमात् । अनभ्युप-  
गमे वाऽत एवास्याऽगमकत्वोपपत्तेः किमध्यक्षबाधासाध्यम्?

किञ्च, अबाधितविषयत्वं निश्चितम्, अनिश्चितं वा हेतोर्लक्षणं  
स्यात्? न तावदनिश्चितम्, अतिप्रसङ्गात् । नापि निश्चितम्,  
तन्निश्चयासम्भवात् । स हि स्वसम्बन्धी, सर्वसम्बन्धी वा?  
१५ स्वसम्बन्धी चेत्, तत्कालीनः, सर्वकालीनो वा? न तावत्तत्काली-  
नः, तस्यासम्यगनुमानेपि सम्भवात् । नापि सर्वकालीनः,  
तस्यासिद्धत्वात्, 'कालान्तरेऽप्यत्र बाधकं न भविष्यति' इत्यसर्व-  
विदा निश्चेतुमशक्यत्वात् ।

सर्वसम्बन्धिनोपि तत्कालस्योत्तरकालस्य वा तन्निश्चयस्या-  
२० सिद्धत्वम्, अर्वाग्रदृशा 'सर्वत्र सर्वदा सर्वेषामत्रै बाधकस्याभावः'  
इति निश्चेतुमशक्येस्तन्निश्चयनिबन्धनस्याभावात् । तन्निबन्धनं  
हेतुपलम्भः, संवादो वा स्यात्? न तावदनुपलम्भः, सर्वात्मसम्ब-  
न्धिनोऽस्याऽसिद्धानैकान्तिकत्वात् । नापि संवादः, प्रागनुमान-  
प्रवृत्तेस्तस्यासिद्धेः । अनुमानोत्तरकालं तत्सिद्धयभ्युपगमे पर-  
२५ स्पराश्रयः-अनुमानात्प्रवृत्तौ संवादनिश्चयः, ततश्चाबाधितविषय-  
त्वावगमेऽनुमानप्रवृत्तिरिति । न चाविनाभावनिश्चयादेवाबाधित-  
विषयत्वनिश्चयः, हेतौ पञ्चरूपयोगिन्यविनाभावपरिसमाप्ति-

१ पर्वते । २ यदा हेतोर्धर्मिणि सद्भावस्तदा पक्षधर्मत्वम् । यदा च साध्यसद्भावे  
हेतोर्धर्मिणि सद्भावस्तदान्वयः । यदा च साध्यसद्भावे एव हेतोर्धर्मिणि सद्भावस्तदा  
विपक्षेऽसत्त्वम् । कथं साध्यसद्भाव एव श्लेषकारेण विपक्षेऽसत्त्वं गम्यम् । ३ साध्यसः ।  
४ साध्यः । ५ एकशाखाप्रभवत्वलक्षणे । ६ यौगेन । ७ पक्षधर्मत्वादेरप्यनिश्चितस्य  
हेत्वङ्गत्वप्रसङ्गात् । ८ अनुमानकालीनः । ९ एकशाखाप्रभवत्वलक्षणे । १० सन्त्य-  
गनुमाने । ११ अनुमान । १२ नृणां । १३ अनुमानविषये । १४ भावुकसः ।  
१५ आत्मनः स्वसः ।

वादिनामवाधितविषयत्वाऽनिश्चये अविनाभावनिश्चयस्यैवासम्भ-  
वात् । तन्नैकशाखाप्रभवत्वादेर्वाधितविषयत्वाद्देवत्वाभासत्वम् ।

नापि तत्पुत्रत्वादेः सत्यतिपक्षत्वात् । यतः प्रतिपक्षस्तुल्य-  
बलः, अतुल्यबलो वा सन् स्यात् ? न तावदाद्यः पक्षः; द्वयो-  
स्तुल्यबलत्वे 'एकस्य बाधकत्वमपरस्य च बाध्यत्वम्' इति ५  
विशेषानुपपत्तेः । न च पक्षधर्मत्वाद्यभाव एकस्य विशेषः; तस्या-  
नभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा अत एवैकस्य दुष्टत्वसिद्धेर्न  
किञ्चिदनुमानबाधया ? द्वितीयपक्षेऽप्यतुल्यबलत्वं तैयोः पक्षधर्म-  
त्वादिभावार्थावकृतम्, अनुमानबाधाजनितं वा स्यात् ? प्रथम-  
पक्षोनभ्युपगमादेवायुक्तः, पक्षधर्मत्वादेरुभयोरप्यभ्युपगमात् । १०  
द्वितीयोप्यसम्भाव्यः; तस्याद्यापि विवादपदापन्नत्वात् । न खलु  
द्वयोस्त्रैरूप्याविशेषतस्तुल्यत्वे सति 'एकस्य बाध्यत्वमपरस्य च  
बाधकत्वम्' इति व्यवस्थापयितुं शक्यमविशेषेणैव तत्प्रसङ्गात् ।  
इतरेतराश्रयश्च-अतुल्यबलत्वे सत्यनुमानबाधा, तस्यां चातुल्य-  
बलत्वमिति ।

१५

यच्च प्रकरणसमस्यानित्यः शब्दोऽनुपलभ्यमाननित्यधर्मकत्वा-  
दित्युदाहरणम्, तत्रानुपलभ्यमाननित्यधर्मकत्वं शब्दे तत्त्वतोऽ-  
प्रसिद्धम्, न वा ? प्रथमपक्षे पक्षवृत्तितयाऽस्याऽसिद्धेरसिद्धत्वम् ।  
द्वितीयपक्षे तु साध्यधर्मान्विते धर्मिणि तत्प्रसिद्धम्, तद्वहिते वा ?  
आद्यविकल्पे साध्यबल्येव धर्मिण्यस्य सद्भावसिद्धिः, कथमगम-२०  
कत्वम् ? न हि साध्यधर्ममन्तरेण धर्मिण्यऽभवन्न विहायापरं  
हेतोरविनाभावित्वम् । तच्चेत्समस्ति, कथं न गमकत्वम् अवि-  
नाभावनिवन्धनत्वात्तस्य ? द्वितीयपक्षे तु विरुद्धत्वम्; साध्यधर्म-  
रहिते धर्मिणि प्रवर्तमानस्य विपक्षवृत्तितया विरुद्धत्वोपपत्तेः ।  
अथ सन्दिग्धसाध्यधर्मवति तत्तत्र प्रवर्तते; तर्हि सन्दिग्ध-२५  
विपक्षव्यावृत्तिकत्वाद्स्याऽनैकान्तिकत्वम् ।

नन्वेवं सर्वो हेतुरनैकान्तिकः स्यात्, साध्यसिद्धेः प्राक्साध्य-  
धर्मिणः साध्यधर्मसदसत्त्वाश्रयत्वेन सन्दिग्धत्वात्, ततोऽनुमेय-  
व्यतिरिक्ते साध्यधर्मवति धर्म्यन्तरे साध्याभावे च प्रवर्तमानो

१ यौगादीनाम् । २ उक्त्यायेन । ३ तत्पुत्रत्वव्याख्यानवत्त्वहेतोः । ४ तत्पुत्र-  
त्वादित्येतस्य । ५ यौगेन । ६ तत्पुत्रत्वादित्येतस्य । ७ तत्पुत्रत्वव्याख्यानवत्त्वहेतोः ।  
८ तत्पुत्रत्वस्य पक्षधर्माद्यभावः व्याख्यानवत्त्वस्य च पक्षधर्मोदिसङ्गावः । ९ तत्पुत्र-  
त्वव्याख्यानवत्त्वहेतोः । १० सन्दिग्धसाध्यधर्मवति प्रवर्तमानस्यानैकान्तिकत्वप्रका-  
रेण । ११ पूर्वतस्तु शब्दस्य वा । १२ अनित्यतयाऽनुमेयाच्छब्दात् । १३ षटे ।  
१४ आकाशादौ । १५ सपक्षविपक्षयोरिति यावत् ।



हेतुरनैकान्तिकः, साध्याभाववत्त्वे तु पक्षधर्मत्वे सति विरुद्धः, यस्तु विपक्षाख्यावृत्तः सपक्षे चात्रुगतः पक्षधर्मो निश्चितः स्वसाध्यं गमयत्येवेत्यभ्युपगन्तव्यम्; इत्यप्यसुन्दरम्; यतो यदि साध्यधर्मिव्यतिरिक्ते धर्म्यन्तरे हेतोः स्वसाध्येन प्रतिबन्धोऽभ्युपगम्यते; तर्हि साध्यधर्मिण्युपादीयमानो हेतुः कथं साध्यं साधयेत्, तत्र साध्यमन्तरेणाप्यस्य सद्भावाभ्युपगमात् १. तद्व्यतिरिक्ते एव धर्म्यन्तरे साध्येनास्य प्रतिबन्धग्रहणात् । न चान्यत्र साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुरन्यत्र साध्यं गमयत्यतिप्रसङ्गात् । ततः साध्यधर्मिण्येव हेतोर्व्याप्तिः प्रतिपत्तव्या ।

- १० ननु यदि साध्यधर्मान्वितत्वेन साध्यधर्मिण्यसौ पूर्वमेव प्रतिपन्नः, तर्हि साध्यधर्मस्यापि पूर्वमेव प्रतिपन्नत्वाद्धेतोः पक्षधर्मताग्रहणस्य वैयर्थ्यम्; तदप्यसङ्गतम्; यतः प्रतिबन्धसाधकप्रमाणेन सर्वोपसंहारेण 'साधनधर्मः साध्यधर्माभावे कचिदपि न भवति' इति सामान्येन प्रतिबन्धः प्रतिपन्नः । पक्षधर्मताग्रहणकाले १५ तु 'यत्रैव धर्मिण्युपलभ्यते हेतुस्तत्रैव साध्यं साधयेति' इति पक्षधर्मताग्रहणस्य विशेषविषयप्रतिपत्तिनिबन्धनत्वान्नानुमानस्य वैयर्थ्यम् । न कलु विशिष्टधर्मिण्युपलभ्यमानो हेतुस्तद्गतसाध्यमन्तरेणोपपत्तिमान्, तस्य तेन व्याप्तत्वाभावाप्रसङ्गात् । अत एव प्रतिपन्नप्रतिबन्धैकहेतुसद्भावे धर्मिणि न विपरीतसाध्योपस्थापकहेत्वन्तरस्य सद्भावः, अन्यथा द्वयोरन्योन्योः स्वसाध्याविनाभावित्वात्, नित्यत्वानित्यत्वयोश्चैकैत्रैकदैकान्तवादिमते विरोधतोऽसम्भवात्, तद्व्यवस्थापकहेत्वोरप्यसम्भवः । सम्भवे वा तयोः स्वसाध्याविनाभूतत्वान्नित्यत्वानित्यत्वधर्मसिद्धिर्धर्मिणः स्यादिति कुतः प्रकरणसमस्यागमकता एकान्तत्वसिद्धिर्वा ?

- १ शब्दो नित्यः कृतकत्वाद्वदव । साध्याभाववत्त्वेन धटे कृतकत्वस्य शब्दलक्षण-पक्षधर्मत्वे सति प्रवर्तमानस्य विरुद्धत्वम् । २ शब्दात् पर्वतात् वा । ३ धटे महानसादौ वा । ४ शब्दे पर्वते वा । ५ धटे महानसे वा । ६ धटे महानसे वा । ७ शब्दे पर्वते वा । ८ काष्ठे लोहलेख्यत्वोपलम्भादत्रेपि तथाप्रसङ्गात् । ९ शब्दे । १० पक्षधर्मताग्रहणात् । ११ ऊहेन । १२ हेतुः । १३ ननु यथासाक साध्यधर्मव्यतिरिक्ते एव धर्म्यन्तरे स्वसाध्येन हेतोः प्रतिबन्धग्रहणाभ्युपगमे साध्यधर्मिणि साध्यधर्ममन्तरेणाप्यस्य सद्भावादगमकत्वम् । तथा अत्रतामपि प्रतिबन्धप्रसाधकप्रमाणेन सामान्येनैवाविनाभावप्रतिपत्तेर्विशिष्टधर्मिणि उपलभ्यमानस्य हेतोस्तद्गतसाध्यमन्तरेणाप्युपपत्तिसम्भवादित्युक्ते वक्ति न खल्विति । १४ अन्यथा । १५ सर्वत्र । १६ अनुपलभ्यमाननित्यधर्मत्व-लक्षणस्य । १७ शब्दे । १८ नित्यत्वलक्षण । १९ अनुपलभ्यमाननित्यधर्मकत्व-लक्षणस्य । २० हेतोः । २१ शब्दे धर्मिणि । २२ अनित्यत्वमेव शब्दस्येति ।

अथान्यतरस्यात्र स्वसाध्याविनाभाववैकल्यम्; तथाप्यत एवास्या-  
गमकतेति किं तत्प्रतिपादनप्रयासेन ?

किञ्च, नित्यधर्मानुपलब्धिः प्रसज्यप्रतिषेधरूपा, पर्युदासरूपा  
वा शब्दानित्यत्वे हेतुः स्यात् ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; तुच्छाभावस्य  
साध्यासाधकत्वाभिषिद्धत्वाच्च । द्वितीयपक्षे तु अनित्यधर्मोप-  
लब्धिरेव हेतुः, सा च शब्दे यदि सिद्धा कथं नानित्यतासिद्धिः ?  
अथ तच्चिन्तासम्बन्धिपुरुषेणैसा प्रयुज्यत इति तत्रासिद्धा; तर्हि  
कथं न सन्दिग्धो हेतुर्वादिनं प्रति ? प्रतिवादिनस्त्वसौ स्वरूपा-  
सिद्ध एव; नित्यधर्मोपलब्धेस्तत्रार्थं सिद्धेः । तत्र पञ्चरूपत्वम-  
प्यस्य लक्षणं घटते अवाधितविषयत्वदेर्विचार्यमाणस्यायोगात्पक्ष- १०  
धर्मत्वादिवत् ।

यदि चैकस्य हेतोः पक्षधर्मत्वाद्यनेकधर्मात्मकत्वमिष्यते,  
तदाऽनेकान्तः समाश्रितः स्यात् । न च यदेव पक्षधर्मस्य सपक्षे  
एव सत्त्वम् तदेव विपक्षात्सर्वतोऽसत्त्वमित्यभिधातव्यम्; अन्यथ-  
व्यतिरेकयोर्भावाभावरूपयोः सर्वथा तादात्म्यायोगात्, तत्त्वे वा १५  
केवलान्वयी केवलव्यतिरेकी वा सर्वो हेतुः स्यात्, न त्रिरूपवान् ।

व्यतिरेकस्य चाभावरूपत्वाद्धेतोस्तद्रूपत्वेऽभावरूपो हेतुः स्यात् ।  
न चाभावस्य तुच्छरूपत्वात्स्वसाध्येन धर्मिणा सम्बन्धः । यदि च  
सपक्ष एव सत्त्वं विपक्षासत्त्वम् न ततो भिन्नम्; तर्हि तदेवास्या-  
साधारणं कथं स्यात् ? वस्तुभूतान्योर्भावंमन्तरेण प्रतिनियतस्या- २०  
स्याप्यत्रासम्भवात् । अथ ततस्तदन्यधर्मान्तरम्; तर्ह्येकस्यानेक-  
धर्मात्मकस्य हेतोस्तथाभूतसाध्याविनाभावित्वेन निश्चितस्य अने-  
कान्तात्मकार्थप्रसाधकत्वात् कथं न पर्योपन्यस्तहेतूनां विरुद्धता ?  
एकान्तविरुद्धेनानेकान्तेन व्यासत्वात् ।

किञ्च, परैः सामान्यरूपो हेतुरुपादीयते, विशेषरूपो वा, उभ- २५  
यम्, अनुमयं वा ? सामान्यरूपश्चेत्; तर्हि व्यक्तिभ्यो भिन्नम्,  
अभिन्नं वा ? भिन्नं चेत्; न, व्यक्तिभ्यो भिन्नस्य सामान्यस्याऽप्रति-

१ द्वयोर्मध्ये एकसाधकस्य । २ प्रकरण । ३ नित्यधर्मानुपलब्धेरनित्यत्वं प्रतिपाद-  
यामः । अनित्यधर्मानुपलब्धेरनित्यत्वं साधयामः इति । ४ शब्दे धर्मिणि । ५ शब्दे ।  
६ असत्प्रतिपक्षत्वस्य च । ७ हेतोः । ८ सपक्षे सत्त्वम् । ९ विपक्षेऽसत्त्वम् ।  
१० अस्मिन्पक्षे व्यतिरेकस्यान्यरूपत्वे तादात्म्यम् । ११ अत्र पक्षे अन्यस्य  
व्यतिरेकरूपित्वे तादात्म्यम् । १२ केवलव्यतिरेकीत्यस्मिन्पक्षे । १३ हेतुरुपस्य ।  
१४ अभावपक्षे हेतोः । १५ यसः । १६ भिन्न । १७ यसः । १८ विपक्षासत्त्व-  
लक्षणम् । १९ वैशेषिक ।

भासमानतयाऽसिद्धत्वात् । तथाभूतस्यास्य सामान्यविचारे निरा-  
करिष्यमाणत्वाच्च । अथामिन्नम्; कथञ्चित्, सर्वथा वा ? सर्वथा  
चेत्; न; सर्वथा व्यक्त्यव्यतिरिक्तस्यास्य व्यक्तिस्वरूपवद्व्यक्त्यन्तरा-  
ननुगमतः सामान्यरूपतानुपपत्तेः । कथञ्चित्पक्षस्त्वनभ्युपगमा-  
५ देवायुक्तः । नापि व्यक्तिरूपो हेतुः; तस्यासाधारणत्वेन गमकत्वा-  
योगात् । नाप्युभयं परस्पराननुविद्धम्; उभयदोषप्रसङ्गात् ।  
नाप्यनुभयम्; अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणामेकामावे द्वितीयविधाना-  
दनुभयस्यासत्त्वेन हेतुत्वायोगात् । ततः पदार्थान्तरानुवृत्तव्यावृ-  
त्तरूपमात्मानं विभ्रदेकमेवार्थस्वरूपं प्रतिपत्तुर्मेदामेदं प्रत्ययप्रसू-  
१० तिनिबन्धनं हेतुत्वेनोपादीयमानं तथाभूतसाध्यसिद्धिनिबन्धन-  
मभ्युपगन्तव्यम् ।

किञ्च, एकान्तवाद्युपन्यस्तहेतोः किं सामान्यं साध्यम्, विशेषो  
वा, उभयं वा, अनुभयं वा ? न तावत्सामान्यम्; केवलस्यास्या-  
सम्भवादर्थक्रियाकारित्वविकलत्वाच्च । नापि विशेषः; तस्या-  
१५ ननुयायितया हेत्वव्यापकस्य साधयितुमशक्तेः । नाप्युभयम्;  
उभयदोषानतिवृत्तेः । नाप्यनुभयम्; तस्यासतो हेत्वव्यापकत्वेन  
साध्यत्वायोगात् ।

यथान्यदुक्तम्—“प्रत्यक्षपूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सा-  
मान्यतो दृष्टं च ।” [ न्यायसू० १।१।५ ] इति । तत्र पूर्ववच्छेषव-  
२० त्केवलान्वयि, यथा सैद्धर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनमनैकत्वात्  
पञ्चाङ्गुलवत् । पञ्चाङ्गुलव्यतिरिक्तस्य सदसद्वर्गस्य पक्षीकरणाद-  
न्यस्यामावाद्विपक्षामावः, अत एव व्यतिरेकामावः । पूर्ववत्सामा-  
न्यतोऽदृष्टम् केवलव्यतिरेकि, यथा सात्मकं जीवच्छरीरं प्राणा-  
दिमत्त्वादिति । पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोऽदृष्टमन्वयव्यतिरेकि,

१ पराभ्युपगतसामान्यं यमि सामान्यरूपता न भवति व्यक्त्यन्तराननुगमाद  
व्यक्तिस्वरूपवत् । सामान्यं व्यक्त्यन्तरं नानुगच्छति व्यक्तिभ्योऽसिद्धत्वात् व्यक्ति-  
स्वरूपवत् । २ परेण । ३ दृष्टान्तेऽसत्त्वेन । ४ परस्पराननुविद्धं तु परैर्नाभ्युपगम्यते ।  
५ निरपेक्षम् । ६ व्यक्त्यन्तरेषु । ७ सदृशपरिणामेन । ८ व्यक्तिभेदेषु । ९ देश-  
कालादिभेदेन भेदप्रत्ययः । १० धूमो घूम इत्यभेदप्रत्ययः । ११ व्यक्तिरहितस्य ।  
१२ पाकादि । १३ अन्यत्र व्यक्तिनिषेधेषु । १४ लिङ्गप्रत्ययं यतः । १५ समास-  
रहितानि पदान्यत्र । १६ सर्वावयवापेक्षाऽऽदौ प्रयुज्यमानत्वात्पक्षः पूर्वः पूर्वमस्य  
हेतोरस्तीति पूर्ववत्पक्षमर्थं इत्यर्थः । १७ ज्ञेयो दृष्टान्तः सोऽस्य हेतोरस्तीति शेषवत्स-  
पक्षे सन्निलयः । १८ सपक्षे सत्साध्यम् । १९ द्रव्यगुणादि । २० प्रागभावादि ।  
२१ पक्षीभूतात् दृष्टान्तभूतादन्यस्य व्यतिरिक्तस्य विपक्षस्य । २२ साधनसामान्यस्य  
साध्यसामान्येन व्याप्तिः सामान्यं ततोऽदृष्टं व्यतिरेकिदृष्टान्ते ।

यथा विवादास्पदं तनुकरणमुबनादि बुद्धिमत्कारणं कार्यत्वादिभ्यो घटादिवत् । यत्पुनर्बुद्धिमत्कारणं न भवति न तत्कार्यत्वाद्विधर्माधारो यथात्मोदिः' इति ।

तदप्येतैः प्रत्याख्यातम्; सर्वत्रान्यथानुपपन्नत्वस्यैव हेतुलक्षणतोपपत्तेः, तस्मिन्सत्येव हेतोर्गमकत्वप्रतीतेः । ५

केवलान्वयिनो हि यद्यन्यथानुपपन्नत्वं प्रमाणनिश्चितमस्ति, किमन्वयामिधानेन ? अथान्वयाभावे तदभावस्तदनिश्चयो वेति तदभिधानम्; स्यादेतत् यद्यविनाभावस्तेन व्याप्तः स्यात्, अन्वयापकनिवृत्तेरव्याप्यनिवृत्तावतिप्रसङ्गात् । व्याप्त्येत्; तर्हि प्राणादौ तद्विवृत्तावविनाभावनिवृत्तेरगमकत्वं स्यात् । न खलु यद्यसौ १० व्यापकं तत्तदभावे भवति वृक्षत्वाभावे शिंशापात्ववत् । गमकत्वे वास्य नान्वयेर्नसौ व्याप्तः स्यात् । यदभावे हि यद्भवति न तत्तेन व्याप्तम् यथा रासभाभावे भवन्धूमादिर्न तेन व्याप्तः, भवति आन्वयाभावेऽपि तदविनाभाव इति ।

। 'सदसद्वर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनमनेकत्वात्' इत्ययं च हेतुः १५ कुतः केवलान्वयी ? व्यतिरेकाभावाच्चेद्; अयमपि कुतः ? तद्विषयस्य विपक्षस्याभावाच्चेद्; अथ कोऽयं विपक्षाभावः-पक्षसपक्षावेव, निवृत्तिर्मात्रं वा ? प्रथमपक्षे परमैतप्रसङ्गः अभावस्य भावान्तरभावतासीर्कोरात् । द्वितीयपक्षे तु स तथाविधः प्रतिपक्षः, न वा ? न प्रतिपक्ष्येत्; तर्हि विपक्षाभावसन्देहाद्व्यतिरेकाभावोऽपि २० सन्दिग्ध इति केवलान्वयोऽपि तादृगेव । अथ प्रतिपक्षः; स यदि साध्यनिवृत्त्या साधननिवृत्त्याधारः प्रतिपक्षः; तर्हि स एव विपक्षः, कथं विपक्षाभावो यतो व्यतिरेकाभावः ? साध्यसाधनाभावाधारतया निश्चितस्य विपक्षत्वात् । तेषां भाववदभावस्यापि न विरुध्यते, कथमन्यथा 'सदसद्वर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनम्' २५ इत्यत्रासन् पक्षः स्यात् ? असन् पक्षो भवति न विपक्ष इति किङ्कतो

१ व्यतिरेकिद्वयान्तः । २ गगनं च । ३ अन्यथानुपपन्नत्वमेव हेतुलक्षणमिति समर्थनपरेण ग्रन्थेन । ४ अनुमाने । ५ तर्कलक्षण । ६ दृष्टान्ते हेतोः सत्त्वमन्वयः । ७ अन्वयस्य । ८ अविनाभावस्य । ९ सत्याम् । १० घटनिवृत्तौ घटनिवृत्तिप्रसङ्गात् । ११ अविनाभावोऽन्वयेन । १२ अविनाभावस्य । १३ अन्वयः । १४ अविनाभावः । १५ प्रसङ्गः । १६ जैनमत । १७ जैनेन । १८ विपक्षाभावो विपक्षो भवति साध्यनिवृत्त्या साधननिवृत्त्याधारः सात्त्विकप्रतिपक्षविपक्षवत् । १९ भाव एव महान्दलक्षणः आकाशलक्षणो वा विपक्षः स्यात् न त्वभाव इत्युक्ते आह । २० अभावस्य विपक्षत्वे विरोधश्चेत् । २१ असन् । २२ केन ।

विभागः ? अथाऽसद्वर्गशब्देन सामान्यसमवायान्तरविशेषा एवो-  
च्यन्ते, नाभावः; तर्हि तद्विषयं ज्ञानं न कस्यचिदनेन प्रसाधित-  
मिति सुव्यवस्थितम् ईश्वरस्याखिलकार्यकारणग्रामपरिज्ञानम् ।  
प्रागभावाद्यज्ञाने कार्यत्वादेरेष्यज्ञानात् ।

- ५ किञ्च, यद्यभावोऽत्र पक्षसपक्षाभ्यां बहिर्भूतः; तर्ह्यनेनानेकत्वा-  
दित्यनेकान्तिको हेतुः, तदनेकत्वेऽपि कस्यचिदेकज्ञानावलम्बन-  
त्वानभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा कथमभावो न पक्षः ? तथा  
विपक्षोप्यस्तेतु । नन्वेवं विपक्षाभावोऽपि तदावलम्बनमिति पक्ष एव  
स्यात्, तथा च पुनरपि विपक्षाभावोऽपि एव इति चेत्, तर्हि पुनरपि  
१० तदेव चोद्यम्—‘कोऽयं विपक्षाभाव इति ? यदि पक्षसंपक्षावेव,  
भावाद्भिन्नस्याभावस्याभावः ।

- अथ तुच्छा विपक्षनिवृत्तिस्तदभावः; सोऽपि यद्यप्रतिपक्षस्तर्हि  
सन्दिग्धः । तत्सन्देहे च व्यतिरेकाभावोऽपि तादृगेवेति न निश्चितः  
केवलान्वयः’ इत्यादि तदेवस्थं पुनः पुनरावर्तते इति चक्रक-  
१५ प्रसङ्गः । ततः केवलान्वयित्वेनाभ्युपगतस्य विपक्षाभाव एव  
तुच्छो विपक्षः । ततः साध्यनिवृत्त्या साधननिवृत्तिश्चेति कथं न  
व्यतिरेकः ? अत एवाविनाभावस्य तत्परिज्ञानस्य च प्राणादिमर्त्य-  
वद्भावात्मिकमन्वेयेन ?

- अथ विपक्षाभावस्यापादानत्वायोगात् ततः साध्यसाधनयो-  
२० र्यावृत्तिः; तन्न, ‘भावः प्रागभावादिभ्यो भिन्नस्ते वा परस्पर-  
रतो भिन्नाः’ इत्यादावप्यभावस्यापादानत्वाभावप्रसङ्गात् सर्वेषां  
साङ्कर्यं स्यात् ।

- किञ्च, अन्वयो व्याप्तिरभिधीयते । सा च त्रिधा—बहिर्व्याप्तिः,  
साकल्यव्याप्तिः, अन्तर्व्याप्तिश्चेति । तत्र प्रथमव्याप्तौ भग्नघटव्यति-  
२५ र्तिं सर्वे क्षणिकं सत्त्वात्कृतकत्वाद्वा तद्वत्, विवादापन्नाः प्रत्यया

१ ये सत्तासम्बन्धात्सन्तस्ते सद्वर्गवाच्याः । ये तु स्वतः सन्तस्ते असद्वर्गशब्द-  
वाच्या इत्यर्थः । २ अनेकत्वादित्यनेन अनुमानेन । ३ उपहासः । ४ प्रागसत्कार्य  
यस्मिन् कपाले उत्पन्ने यस्य वस्तुनो घटलक्षणस्य निवर्तनेन प्रवृत्तसत्कारणम् ।  
५ कारणत्वम् । ६ प्रागभावादिरूपः । ७ अनुमाने । ८ अभावस्यैकभावावलम्बन-  
त्वम् । ९ तुच्छरूपोऽभावः । १० अभावस्य विपक्षतासद्भावाप्रकारेण । ११ विपक्ष-  
भावाभावभावश्चेति । १२ एकज्ञानरूपः । १३ पूर्वोक्तमेव । १४ विपक्षाभावस्तर्हि ।  
१५ सा प्राक्तनी अवस्था यस्य । १६ अन्वयचक्रकः । १७ हेतोः । १८ व्यतिरेक-  
सद्भावादेव । १९ ईदृशे वत् । २० अनेकत्वादिगतेन । २१ तुच्छरूपत्वादपादा-  
नत्वायोगः । २२ भावाभावानां प्रागभावादीनां भावाभावादीनाम् ।

निरालम्बनः प्रत्ययत्वात्स्वप्रत्ययवत्, ईश्वरः किञ्चिज्ज्ञो रागादिमान्वा वक्तृत्वादिभ्यो रथ्यापुरुषवत् इत्यादेर्गमकत्वं स्यात् केवलान्वयस्यात्र सुलभत्वात् । ननु सर्वं न सत्त्वादिकं क्षणिकत्वादिना व्याप्तम् आत्मादौ क्षणिकत्वाद्यसत्त्वात् ; तन्न ; तदसत्त्वे तत्रार्थक्रियाऽसत्त्वात् सत्त्वं न स्यात् । ५

किञ्च, घटादिदृष्टान्ते सत्त्वादिकं क्षणक्षयादौ सति दृष्टमपि यदि कचिच्चिदमावेपि स्यान्न तर्हि बहिर्व्याप्तिरन्वयः, लक्षणयुक्ते धाद्यासम्भवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात् ।

अथ सकलव्याप्तिरन्वयः, ननु केयं सकलव्याप्तिः ? 'दृष्टान्तधर्मिणीव साध्यधर्मिण्यन्यत्र च साध्येन साधनस्य व्याप्तिः सा' १० इति चेत्, सा कुतः प्रतीयताम् ? प्रत्यक्षतः, अनुमानाद्वा ? प्रत्यक्षतश्चेत्, किमिन्द्रियात्, मानसाद्वा ? न तावदिन्द्रियात्, चक्षुरादेरिन्द्रियस्य सकलसाध्यसाधनार्थसन्निकर्षवैधुर्ये तदनुपपत्तेः । न हि तद्वैधुर्ये तद्युक्तम् "इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमव्यपदेश्यमऽव्यभिचारि व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्" [ न्यायसू० १।१।४ ] १५ इत्यभिधानात् । तस्य तत्सन्निकर्षे वा प्राणिमात्रस्याशेषवृत्तप्रसङ्गाच्च कश्चिदीश्वराद्विशेष्येत ।

ननु साध्यसाधनयोः साकल्येन ग्रहणं सकलव्याप्तिग्रहणम् । साध्यं चाक्षिसामान्यं साधनं च धूमसामान्यम्, तयोश्चान्वयवयोरेकत्रापि साकल्येन ग्रहणमस्ति, विशेषप्रतिपत्तिस्तु सर्वत्र २० पक्षधर्मतावलादेवेति चेत्, तर्हि क्षणिकत्वादि साध्यम्, सत्त्वादि साधनम्, तयोश्चान्वयवयोः प्रदीपादौ संहर्शनादेव सकलव्याप्तिग्रहः किञ्च स्यात् ? मानसप्रत्यक्षादपि व्याप्तिप्रतिपत्तावयमेव दोषः । तन्न प्रत्यक्षतः सकलव्याप्तिग्रहः । नाप्यनुमानतोऽनवस्थाप्रसङ्गात् । २५

सामान्यस्य च साध्यत्वे साधनवैकल्यम् तत्राविवादात्, व्याप्तिग्रहणकाले एवास्य प्रसिद्धेः । कथमन्यथा सामान्यधर्मयोः साकल्येन व्याप्तिर्निर्णीता स्यात् ?

१ यौगं प्रति । २ लक्षणम् । ३ लक्ष्यम् । ४ सत्त्वादिलक्षणे हेतौ । ५ बहिर्व्याप्तिरूपसामान्यस्य कथं नावासम्भवः ? आत्मादौ क्षणिकत्वाभावेति सत्त्वमस्ति यतः । ६ सकलेषु साध्यसाधनेषु । ७ व्यत्यन्तरेषु । ८ नक्षन्दवत् । ९ सकलयोः । १० अनुमाने । ११ अनुमाने । १२ हेतोः । १३ निरक्षयोः । १४ युगपत् । १५ पूर्वोक्तिमान्ब्रह्मवत्त्वादिति सलानुमाने दूरोत्तिकार्ये तदन्वयव्यतिरेकानुविधानिवाहितनेनानुमानेन व्याप्तिः प्रतीयते इत्यादिप्रकारेण । १६ साध्यसामान्यस्य । १७ व्याप्तिग्रहणकाले साध्यसामान्यस्य सिद्धिर्नास्ति चेत् । १८ साध्यसाधनयोः ।

साध्यत्वं चास्यासतः कारणम्, सतो ज्ञापनं वा? प्रथमपक्षे सामान्यस्यानित्यत्वाऽसर्वगतत्वप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षेऽस्य दृश्यत्वे धर्मिवत्प्रत्यक्षत्वमिति किं केन ज्ञाप्यते? अन्यथा धूमसामान्यमप्यग्निसामान्येन ज्ञाप्येत । अथ व्यक्तिसहायत्वाद्भूमसामान्यमेव प्रत्यक्षं नान्यत् ततोऽयमदोषः; न; अस्य सामान्यविचारे सहायापेक्षा-प्रतिक्षेपात् ।

यच्चोक्तम्-विशेषप्रतिपत्तिस्तु पक्षधर्मताबलादेवेति; तत्र पक्षधर्मता धूमस्य, तत्सामान्यस्य वा? तत्राद्यः पक्षोऽसङ्गतः; विशेषेण व्योमेरप्रतिपत्तितस्तद्गमकत्वायोगात् ।

१० द्वितीयपक्षेऽप्यग्निसामान्यस्यैव धूमसामान्यात्सिद्धिः स्यात् तेनैव तस्य व्याप्तेः, नाग्निविशेषस्य अनेनाव्याप्तेः । अथ साधनसामान्यात् साध्यसामान्यप्रतिपत्तेरेव विशेषप्रतिपत्तिः सामान्यस्य विशेषनिष्ठत्वात् । ननु तत्सामान्यमपि विशेषमात्रेण व्याप्तं सत्तदेव गमयेन्नान्यत् । अथ विशिष्टविशेषोधारं लिङ्गसामान्यं १५ प्रतीयमानं विशिष्टविशेषोधिर्कारणं साध्यसामान्यं गमयतीत्युच्यते; तदप्युक्तिमात्रम्; तथा व्योमेरभावात् । अथ विपक्षे सद्भावाधर्कप्रमाणवशात्सिद्धिरिष्यते; तर्हि तावतैव पर्याप्तत्वात् किमन्वयेन परस्य ?

इतेनान्तर्व्याप्तिरपि चिन्तिता । न खलु प्रत्यक्षादितः सापि २० प्रसिध्यति । तत्र पूर्ववच्छेषवदिति सूक्तम् ।

अथान्यदुक्तम्-पूर्ववत्सामान्यतोदृष्टं चेति चशब्दो भिन्नप्रक्रमः 'सामान्यतः' इत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः । ततोयमर्थः-पूर्ववत्पक्षवत्सामान्यतोपि न केवलं विशेषतो दृष्टं विपक्षे । अनेन केवलव्यतिरेकी हेतुर्दर्शितः- 'सात्मकं जीवच्छरीरं प्राणादिमत्त्वात्' २५ इत्यादिः; तदप्युक्तम्; यतः प्राणादेरन्यथाभावे कुतोऽविनाभाववगतिः? व्यतिरेकाच्चेत्; तथाहि-यस्माद् घटादेः सात्मकत्व-

१ निष्पादनम् । २ हेतुना । ३ साध्यसामान्यस्य । ४ हेतुना । ५ प्रत्यक्षमपि ज्ञाप्यते चेत् । ६ धूमविशेष । ७ अग्निसामान्यम् । ८ साध्यसाधनसामान्यस्य । ९ अन्ये । १० साध्यसाधनयोः । ११ यत्र यत्र पुरो भवति पर्वतस्य धूमस्तत्राशिरिति । १२ सिद्धिः । १३ धूमसामान्यस्य । १४ यतः । १५ अग्निविशेष । १६ प्रेष्टविशेषम् । १७ पर्वतस्य धूमः । १८ पर्वतस्याग्निः । १९ यतः । २० यो यः पुरो भवति पर्वतस्य धूमः स पुरो भवति पर्वतस्याशिमिति । २१ हेतोः । २२ अनुपलम्बम् । २३ व्याप्तिः । २४ व्याप्तेः । २५ योगस्य । २६ साकल्यव्याप्तिशोचनपरेण अन्येन । २७ निराकृता । २८ अन्यदृष्टान्तस्य । २९ कारणात् ।

निवृत्तौ प्राणादयो नियमेन निवर्त्तन्ते तस्मात्सात्मकत्वाभावः प्राणाद्यभावेन व्याप्तो धूमाभावेनैव पावकाभावः । जीवच्छरीरे च प्राणाद्यभावविद्वद्ः प्राणादिसङ्गावः प्रतीयमानस्तदभावं निवर्त्तयति । स च निवर्त्तमानः स्वव्याप्यं सात्मकत्वाभावमादाय निवर्त्तते इति सात्मकत्वसिद्धिस्तत्र; इत्यप्यसारम् । यतोनुमा-<sup>५</sup> नान्तरेण्येवमविनाभावप्रसिद्धेः केवलव्यतिरेक्येव सर्वमनुमानं स्यात्, अन्वयमात्रेण तत्सिद्धावतिप्रसङ्गस्योक्तत्वात् ।

किञ्च, साध्यनिवृत्त्या साधननिवृत्तिर्व्यतिरेकः, स च क्वचित् कदाचित्, सर्वत्र सर्वदा वा स्यात्? न तावदाद्यः पक्षः, तथा व्यतिरेकस्य साधनाभासेपि सम्भवात् । द्वितीयपक्षोप्ययुक्तः; <sup>१०</sup> साकल्येन व्यतिरेकप्रतिपत्तेः प्रत्यक्षादिप्रमाणतः परेषामन्वय-प्रतिपत्तेरिवासम्भवात् ।

एतैर्न पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोऽदृष्टमन्वयव्यतिरेक्यनुमानं प्रत्याख्यातम्; पक्षद्वयोपक्षितदोषानुषङ्गात् ।

यच्च तदुदाहरणम्-विवादापन्नं तनुकरणमुचनादिकं बुद्धिमद्वे-<sup>१५</sup> नुक्तं कार्यत्वादिभ्यो घटादिवदित्युक्तम्; तदपीश्वरनिराकरण-प्रकरणे विशेषतो दूषितमिति पुनर्न दूष्यते ।

अथ “पूर्ववत्-कारणात्कार्यानुमानम्, शेषवत्-कार्यात्कारणा-नुमानम्, सामान्यतोऽदृष्टम्-अकार्यकारणादकार्यकारणानुमानम् सामान्यतोऽविनाभावमात्रात्” [ न्यायमा०, वार्त्ति० १।१५ ] इति <sup>२०</sup> व्याख्यायते; तदप्यविनाभावनियमनिश्चायकप्रमाणाभावादेवायुक्तं परेषाम् । स्याद्वादिनां तु तदुक्तं तत्सङ्गावात् इत्याचार्यः स्वयमेव कार्यकारणेत्यादिना हेतुप्रपञ्चे प्रपञ्चयिष्यति ।

१ कारणात् । २ न्यापकेन । ३ धूमाभावः पावकाभावे सत्यसति च भवति धूमाभावस्य न्यापकत्वेन तदतन्निष्ठत्वात् । ४ देहे । ५ स इयामस्त्युपनत्वादितर-तत्पुत्रवदित्वादौ । ६ केवलान्वयिकेवलव्यतिरेकिलक्षणपक्षद्वयनिराकरणपरेण अन्वेन । ७ पूर्व कारणं तद्विज्ञमसानुमानसास्तीति पूर्ववत् । कारणविज्ञमवितमनुमानमित्यर्थः । ८ जसौ पुमान् रूपादिज्ञानवान् चक्षुरादिमत्त्वान्मदित्युदाहरणम् । शेषवदिति शेषः कार्यं तद्विज्ञमसानुमानसास्तीति शेषवत् । कार्यविज्ञमवितमनुमानमित्यर्थः । सात्मकं जीवच्छरीर प्राणादिमत्त्वादित्युदाहरणम् । ९ इष्टान्ते । १० कार्यं यो हेतुर्न भवति कारणं वा यो हेतुर्न भवति तस्यादेतोः कार्यं यन्न भवति साध्यं कारणं वा यन्न भवति साध्यं तस्यानुमानम् । मातुलिङ्गं रूपवत्प्रसवत्वात्सम्प्रतिपन्नमातुलिङ्गवदित्युदाहरणम् । ११ सप्तम् । १२ न्यायस्थानम् । १३ ऊह । १४ जटावराणां । १५ अनुमान-नितयम् ।



यदपि-पूर्ववत्पूर्वं लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धस्य कैचिन्निश्चयादैन्यत्र प्रवर्तमानमनुमानम् । शेषवत्परिशेषानुमानम्, प्रसक्तप्रतिषेधे परिशिष्टस्य प्रतिपत्तेः । सामान्यतो ईष्टं विशिष्टव्यक्तौ सम्बन्धाग्रहणार्त्तिसामान्येन दृष्टम्, यथा गतिमानादित्यो देशादेशान्तर-  
५ प्राप्तेर्देवदत्तवदिति । तदप्येतेन प्रत्याख्यातम्; उक्तप्रकाराणां प्रमाणतः प्रसिद्धाविनाभावानां प्रतिपादयिष्यमाणहेतुप्रपञ्चत्वेन स्याद्वादिनामेव सम्भवात् ।

न चायं मेदो घटते । सर्वं हि लिङ्गं पूर्ववदेव; परिशेषानुमान-  
स्यापि पूर्ववत्त्वप्रसिद्धेः<sup>१</sup> प्रसक्तप्रतिषेधस्य परिशिष्टप्रतिपत्त्यविना-  
१० भूतस्य पूर्वं कैचिन्निश्चितस्य विवादाध्यासितपरिशिष्टप्रतिपत्तौ साधनस्य प्रयोगात् । सामान्यतो दृष्टस्याऽपि पूर्ववत्त्वप्रतीतेः; कचिद्देशान्तरप्राप्तेर्गतिमत्त्वाविनाभाविन्या एव देवदत्तादौ प्रति-  
पत्तेः; अन्यथा तदनुमानाप्रवृत्तेः । परिशेषानुमानमेव वा सर्वम्; पूर्ववत्तोपि धूमात्पावकानुमानस्य प्रसक्ताऽपावकप्रतिषेधात्प्रवृ-  
१५ त्तिघटनात्, तदप्रसक्तौ विवादानुपपत्तेरनुमानवैयर्थ्यं स्यात् । सामान्यतो दृष्टस्यापि देशान्तरप्राप्तेरादित्यगत्यनुमानस्य तदगति-  
मत्त्वस्य प्रसक्तस्य प्रतिषेधादेवोपपत्तेः । सैकलं सामान्यतो दृष्टमेव वा; सर्वत्र सामान्येनैव लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धस्य प्रतिपत्तेः, विशेषतस्तत्सम्बन्धस्य प्रतिपत्तुमशक्तेः । ततोनुमानं तत्प्रमेदं  
२० चेच्छ्रुताऽविनाभाव एवैकं हेतोः प्रधानं लक्षणं प्रतिपत्तव्यम् ।

ननु चास्तु प्रधानं लक्षणमविनाभावो हेतोः । तत्स्वरूपं तु निरूप्यतामप्रसिद्धस्वरूपस्य लक्षणत्वायोगादित्याशङ्क्य सहकमे-  
त्यादिना तत्स्वरूपं निरूपयति—

१ लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धः पूर्वं निश्चीयमानत्वात् पूर्वं सोऽयानुमानसास्तीति पूर्ववत् । अस्मिन्मार्गतो धूमवत्त्वान्महानसवदित्युदाहरणम् । २ महानसे । ३ पर्वते । ४ शेषः परिशिष्ट्यमाणोर्थः सोऽसास्तीति शेषवत् । अत्रोदाहरणं शब्दः कचिदाभितो गुणत्वा-  
द्रूपवदिति । ५ उद्धरितार्थसाक्षात्तादेः । ६ अनुमानम् । ७ साध्यसाधनयोर्षययोः  
चेत् । ८ हेतुनाम् । ९ देवदत्ते गतिमत्त्वदेशादेशान्तरप्राप्त्योः साध्यसाधनयोर्षययोः  
सामान्येन प्रतिपत्तिः । १० पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टलक्षणानाम् । ११ क-  
लङ्गणात् । १२ कचिदनाभितत्वस्य । १३ घटस्य । १४ कचिदाभितत्वस्य ।  
१५ आकाशस्य । १६ कचिदाभितत्वस्य । १७ रूपादौ । १८ शब्दे कचिदा-  
भितत्वस्य । १९ गुणत्वस्य । २० देशादेशान्तरप्राप्तेर्गतिमत्त्वाविनाभाविन्या देवदत्ते  
प्रतिपत्तिर्नास्तीति चेत् । २१ आदित्यगत्यनुमानम् । २२ पूर्ववच्छेषवदित्यनुमान-  
द्वयम् । २३ अनुमाने । २४ योगेन भवता ।

**सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः ॥ १६ ॥**

सहभावनियमः क्रमभावनियमश्चाविनाभावः प्रतिपत्तव्यः ।  
कयोः पुनः सहभावः कयोश्च क्रमभावो यन्नियमोऽविनाभावः  
स्यादित्याह—

**सहचारिणोः व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः ॥ १७ ॥ ५**

**पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः ॥ १८ ॥**

सहचारिणो रूपरसादिलक्षणयोर्व्याप्यव्यापकयोश्च शिंशपा-  
त्ववृक्षत्वादिसहभावयोः सहभावः प्रतिपत्तव्यः । पूर्वोत्तरचारिणोः  
कृतिकाशकटोदयादिस्वरूपयोः कार्यकारणयोश्चाग्निधूमादिस्वरू-  
पयोः क्रमभाव इति ।

१०

कुतोसौ प्रोक्तप्रकारोऽविनाभावो निर्णयते इत्याह—

**तर्कात्तन्निर्णयः ॥ १९ ॥**

न पुनः प्रत्यक्षादेरित्युक्तं तर्कप्रामाण्यप्रसाधनप्रस्तावे ।

ननु साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानमित्युक्तम् । तत्र किं साध्य-  
मित्याह—

१५

**इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ॥ २० ॥**

संशयादिव्यवच्छेदेन हि प्रतिपन्नमर्थस्वरूपं सिद्धमुच्यते,  
तद्विपरीतमसिद्धम् । तच्च—

**सन्दिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा**

**स्यादित्यसिद्धपदम् ॥ २१ ॥**

२०

किमयं स्थाणुः पुरुषो वेति चलितप्रतिपत्तिविषयभूतो ह्यर्थः  
सन्दिग्धोभिधीयते । शुक्तिकाशकले रजताध्यवसायलक्षणवि-  
पर्यसगोचरस्तु विपर्यस्तः । गृहीतोऽगृहीतोपि वार्थो यथावद-  
निश्चितस्वरूपोऽव्युत्पन्नः । तथाभूतस्यैवार्थस्य साधने साधन-  
सामर्थ्यात्, न पुनस्तद्विपरीतस्य तत्र तद्वैफल्यत् ।

२५

इष्टाऽबाधितविशेषणद्वयस्यानिष्टेत्यादिना फलं दर्शयति—

१ तादिः ( पष्ठीदिवचनमिलवः ) । ययोः । २ तस्य अविनाभावस्य । ३ साध्य-  
त्वेनाभिप्रेतम् । ४ अर्थानाम् । ५ पूर्वम् । ६ सिद्धौ । ७ सूत्रेण ।

## अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं माभूदितीष्टाबाधितवचनम् ॥ २२ ॥

अनिष्टं हि सर्वथा नित्यत्वं शब्दे जैनस्य । अश्रावणत्वं तु प्रत्यक्षबाधितम् । आदिशब्देनानुमानादिबाधितपक्षपरिग्रहः ।  
५ तत्रानुमानबाधितः यथा-नित्यः शब्द इति । आगमबाधितः यथा-प्रेत्याऽऽसुखप्रदो धर्म इति । स्ववचनबाधितः यथा-माता मे यन्ध्येति । लोकबाधितः यथा-शुचि नरक्षिरः कपार्लमिति । तैयोरनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं मा भूदितीष्टाबाधितवचनम् ।

१० ननु यथा शब्दे कथञ्चिदनित्यत्वं जैनस्येष्टं तथा सर्वथाऽनित्यत्वमाकाशशुणत्वं चान्यस्येति तदपि साध्यमनुषज्यते । न च वादिनो यदिष्टं तदेव साध्यमित्यभिधातव्यम् ; सामान्याभिधातित्वेनेष्टस्यान्यत्राप्यविशेषात् । इत्याशङ्कापनोदार्थमाह—

## न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ॥ २३ ॥

१५ विशेषणम् । न हि सर्वं सर्वापेक्षया विशेषणं प्रतिनियतत्वाद्विशेषणविशेष्यभावस्य । तत्रासिद्धमिति साध्यविशेषणं प्रतिवाद्यपेक्षया न पुनर्वाद्यपेक्षया, तस्यार्थस्वरूपप्रतिपादकत्वात् । न चाविज्ञातार्थस्वरूपः प्रतिपादको नामातिप्रसङ्गात् । प्रतिवादिनस्तु प्रतिपाद्यत्वात्तस्य चाविज्ञातार्थस्वरूपत्वाविरोधात् तदपेक्षयैवेदं ।  
२० विशेषणम् । इष्टमिति तु साध्यविशेषणं वाद्यपेक्षया, वादिनो हि यदिष्टं तदेव साध्यं न सर्वस्य । तदिष्टमप्यध्यक्षाद्यबाधितं साध्यं भवतीति प्रतिपत्तव्यं तत्रैव साधनसामर्थ्यात् ।

तदेव समर्थयमानः प्रत्यायनाय हीत्याद्याह—

## प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ॥ २४ ॥

२५ इच्छया खलु विषयीकृतमिष्टमुच्यते । स्वाभिप्रेतार्थप्रतिपादनाय चेच्छा वक्तुरेव ।

तस्य चोक्तप्रकारस्य साध्यस्य हेतौर्व्याप्तिप्रयोगकालापेक्षया साध्यमित्यादिना भेदं दर्शयति—

१ शब्दः अश्रावण इत्युक्ते । २ प्रत्यक्षबाधमानत्वादिति हेतुः । ३ कृतकत्वादिति हेतुना बाध्यः पक्षोऽत्र । ४ पुरुषाभितत्वादकर्मवत् । ५ पुरुषसंयोगेति अगर्भत्वादप्रतिबन्धनत्वावत् । ६ प्राण्यङ्गत्वान्छङ्गशुक्तिवत् । ७ साध्ययोः । ८ वैशेषिकस्य । ९ जैनस्य । १० प्रतिवादिन्यपि । ११ इष्टाऽस्तित्यर्थेन्ये । १२ सम्बन्धिनः ।

**साध्यं धर्मः क्वचित्द्विशिष्टो वा धर्मी ॥ २५ ॥**

क्वचिद्व्याप्तिकाले साध्यं धर्मो नित्यत्वादित्येनैव हेतोर्व्याप्ति-  
सम्भवात् । प्रयोगकाले तु तेन साध्यधर्मेण विशिष्टो धर्मी साध्य-  
मभिधीयते, प्रतिनियतसाध्यधर्मविशेषणविशिष्टतया हि धर्मिणः  
साधयितुमिष्टत्वात् साध्यव्यपदेशाविरोधः । ५

अस्यैव पर्यायमाह—

**पक्ष इति यावत् ॥ २६ ॥**

ननु च कथं धर्मी पक्षो धर्मधर्मिसमुदायस्य तत्त्वात्, तन्न;  
साध्यधर्मविशेषणविशिष्टतया हि धर्मिणः साधयितुमिष्टस्य  
पक्षाभिधाने दोषाभावात् । १०

स च पक्षत्वेनाभिप्रेतः—

**प्रसिद्धो धर्मी ॥ २७ ॥**

तत्प्रसिद्धिश्च क्वचिद्विकल्पतः क्वचित्प्रत्यक्षादितः क्वचिन्नोभयत  
इति प्रदर्शनार्थम्—‘प्रत्यक्षसिद्धस्यैव धर्मित्वम्’ इत्येकान्तनिरा-  
करणार्थं च विकल्पसिद्ध इत्याद्याह— १५

**विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये ॥ २८ ॥**

**अस्ति सर्वज्ञः नास्ति खरविषाणमिति ॥ २९ ॥**

विकल्पेन सिद्धे तस्मिन्धर्मिणि सत्तेतरे साध्ये हेतुसामर्थ्यतः ।  
यथा अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासम्भवद्वाधकप्रमाणत्वात्, नास्ति  
खरविषाणं तद्विपर्ययादिति । न खलु सर्वज्ञखरविषाणयोः सद- २०  
सत्तायां साध्यायां विकल्पादन्यतः सिद्धिरस्ति, तत्रेन्द्रियव्यापा-  
राभावात् ।

ननु चेन्द्रियप्रतिपक्ष एवार्थे मनोविकल्पस्य प्रवृत्तिप्रतीतिः कथं  
तत्रेन्द्रियव्यापाराभावे विकल्पस्यापि प्रवृत्तिः, इत्यप्यपेशलम्;  
धर्माधर्मादौ तत्प्रवृत्त्यभावानुर्बन्नात् । आगमसामर्थ्यप्रभवत्वेना- २५  
स्यात्र प्रवृत्तौ प्रकृतेऽप्यतस्तत्प्रवृत्तिरस्तु विशेषाभावात् ।

१ शब्दस्य । २ इति । ३ पक्ष इति । ४ अनुमाने । ५ निश्चितसंवादः संवादः  
( अनिश्चितसंवादार्थवादः ) शब्दप्रत्ययो विकल्पत्वेन । ६ असत्ता । ७ इन्द्रिय-  
व्यापाराभावात् । ८ शब्दगम्यत्वानिर्देशात् ।

प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ॥ ३० ॥

अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा ३१

प्रमाणं प्रत्यक्षादिकम्, उभयं प्रमाणविकल्पौ, ताभ्यां सिद्धे पुनर्धर्मिणि साध्यधर्मेण विशिष्टता साध्या । यथाग्निमानयं देशः, ५ परिणामी शब्द इति । देशो हि धर्मित्वेनोपात्तोऽध्यक्षप्रमाणत एव प्रसिद्धः, शब्दस्तु साध्याम् । न खलु देशकालान्तरिते ध्वनौ प्रत्यक्षं प्रवर्त्तते, श्रूयमाणमात्र एवास्य प्रवृत्तिप्रतीतेः । विकल्पस्य त्वऽनियतविषयतया तत्र प्रवृत्तिरविरुद्धैव ।

ननु चैवं देशस्याप्यग्निमत्त्वे साध्ये कथं प्रत्यक्षसिद्धता ? तत्र १० हि दृश्यमानभागस्याग्निमत्त्वसाधने प्रत्यक्षवाधानं साधनवैफल्यं वा, तत्र साध्योपलब्धेः । अदृश्यमानभागस्य तु तत्साधने कुतस्तत्प्रत्यक्षतेति ? तदप्यसमीचीनम्; अवयविद्रव्यापेक्षया पर्वतादेः सांख्यैवहारिकप्रत्यक्षप्रसिद्धताभिधानात् । अतिसूक्ष्मेक्षिकापर्यालोचने न किञ्चित्प्रत्यक्षं स्यात्, बहिरन्तर्वाऽसदादिप्रत्यक्षस्या- १५ शेषविशेषतोऽर्थसाक्षात्करणेऽसमर्थत्वात्, योगिप्रत्यक्षस्यैव तत्र सामर्थ्यात् ।

ननु प्रयोगकालवद्व्याप्तिकालेपि तद्विशिष्टस्य धर्मिण एव साध्यव्यपदेशः कुतो न स्यादित्याशङ्क्याह—

व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव ॥ ३२ ॥

२० न पुनस्तद्वान् ।

अन्यथा तदघटनात् ॥ ३३ ॥

अनेन हेतोरन्वयासिद्धेः । न खलु यत्र यत्र कृतकत्वादिकं प्रतीयते तत्र तत्रानित्यत्वादिविशिष्टशब्दाद्यन्वयोस्ति ।

‘ननु प्रसिद्धो धर्मोऽपि पक्षलक्षणप्रणयनमयुक्तम्; अस्ति सर्वज्ञ २५ इत्याद्यनुमानप्रयोगे पक्षप्रयोगस्यैवासम्भवात् अर्थादापन्नत्वा-  
त्तस्य । अर्थादापन्नस्याप्यभिधाने पुनरुक्तत्वप्रसङ्गः—“अर्थादा-  
पन्नस्य स्वशब्देनाभिधानं पुनरुक्तम्” [ न्यायसू० ५।२।१५ ] इत्य-  
भिधानात् । तत्प्रयोगेपि च हेत्वादिवचनमन्तरेण साध्याप्रसिद्धे-

१ प्रसिद्धः । २ शब्दस्य कैवल्यप्रत्यक्षतः सिद्धभावप्रकारेण । ३ साद । ४ नाऽ-  
वयव ( प्रदेश ) द्रव्यापेक्षया । ५ असर्वज्ञप्रत्यक्ष । ६ विचार । ७ साध्यधर्म ।  
८ बोद्धः । ९ अर्थादापन्नस्य ।

स्तद्वचनादेव च तत्प्रसिद्धेर्व्यर्थः पक्षप्रयोगः' इत्याशङ्क्य साध्य-  
धर्माधारेत्यादिना प्रतिविधत्ते—

साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि

पक्षस्य वचनम् ॥ ३४ ॥

साध्यधर्मोऽस्तित्वादिः, तस्याधार आश्रयः यत्रासौ साध्यधर्मो  
वर्तते, तत्र सन्देहः—किमसौ साध्यधर्मोऽस्तित्वादिः सर्वत्र वर्तते  
सुखादौ वेति, तस्यापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ।

साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय

पक्षधर्मोपसंहारवत् ॥ ३५ ॥

तस्याऽवचनं साध्यसिद्धिप्रतिबन्धकत्वात्, प्रयोजनाभावाद्वा ? १०  
तत्र प्रथमपक्षोऽयुक्तः, वादिना साध्याविनाभावनियमैकलक्षणेन  
हेतुना स्वपक्षसिद्धौ साध्यितुं प्रस्तुतायां प्रतिज्ञाप्रयोगस्य  
तत्प्रतिबन्धकत्वाभावात् ततः प्रतिपक्षासिद्धेः । द्वितीयपक्षोऽप्य-  
युक्तः, तत्प्रयोगे प्रतिपाद्यप्रतिपत्तिविशेषस्य प्रयोजनस्य सङ्गा-  
त्वात्, पक्षाऽप्रयोगे तु केषाञ्चिन्मन्दमतीनां प्रकृतार्थाप्रतिपत्तेः । १५  
ये तु तत्प्रयोगमन्तरेणापि प्रकृतार्थं प्रतिपद्यन्ते तान्प्रति तदप्रयो-  
गोऽभीष्ट एव । “प्रयोगपरिपाटी तु प्रतिपाद्यानुरोधतः” [ ]  
इत्यभिधानात् । ततो युक्तो गम्यमानस्याप्यस्य प्रयोगः, कथ-  
मन्यथा शास्त्रादावपि प्रतिज्ञाप्रयोगः स्यात् ? न हि शास्त्रे नियत-  
कथायां प्रतिज्ञा नामिधीयते—‘अग्निरत्र धूमात्, वृक्षोयं शिशपा-२०  
त्वात्’ इत्याद्यभिधानानां तत्रोपलम्भात् । परानुग्रहप्रवृत्तानां  
शास्त्रकाराणां प्रतिपाद्यावबोधनापीनधियां शास्त्रादौ प्रतिज्ञा-  
प्रयोगो युक्तिमानेवोपयोगित्वात्तस्येत्यभिधाने वादेपि सोऽस्तु  
तत्रापि तेषां तादृशत्वात् ।

अमुमेवार्थं को वेत्यादिना परोपहसनव्याजिन समर्थयते— २५

को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न

पक्षयति ? ॥ ३६ ॥

को वा प्रामाणिकः कार्यस्वभावानुपलम्भमेवेन पक्षधर्मत्वादि-

१ व्याप्तिप्रदर्शनद्वारेण । २ सुनिश्चिताऽसम्भवद्वारकप्रमाणव्यायमिति साधनस्य  
पक्षधर्मत्वेन प्रदर्शनमुपसंहारस्तद्वत् । ३ अस्ति सर्वत्र इति । ४ गम्यमानस्य पक्षस्य  
प्रयोगो न साधयति । ५ सुगोचरम् । ६ सर्वकोर्त्वादीनाम् । ७ सौगतेन । ८ मिथेन ।  
प्र० क० भा० ३२

रूपत्रयमेवेन चा त्रिधा हेतुमुक्त्वाऽसिद्धत्वादिदोषपरिहारद्वारेण  
समर्थयमानो न पक्षयति । अपि तु पक्षं करोत्येव । न चाऽस-  
मर्थितो हेतुः साध्यसिद्धाङ्गमतिप्रसङ्गात् । ततः पक्षप्रयोगम-  
निच्छता हेतुमनुक्तवैव तत्समर्थनं कर्तव्यम् । हेतोरवचने कस्य  
५ समर्थनमिति चेत् ? पक्षस्याप्यनभिधाने क हेत्वैदिः प्रवर्त्तताम् ?  
गम्यमाने प्रतिज्ञाविषये एवेति चेत् ; गम्यमानस्य हेत्वादेरपि  
समर्थनमस्तु । गम्यमानस्यापि हेत्वैदेर्मन्दमतिप्रतिपत्त्यर्थं  
वचने तदर्थमेव प्रतिज्ञावचनमप्यस्तु विशेषाभावात् । ततः  
साध्यप्रतिपत्तिमिच्छता हेतुप्रयोगवत्पक्षप्रयोगोप्यभ्युपगन्तव्यः ।  
१० तद्वयस्यैवानुमानाङ्गत्वात्, इत्याह—

**एतद्वयमेवानुमानाङ्गम्, नोदाहरणम् ॥ ३७ ॥**

ननु “पक्षहेतुद्वयान्तोपनयनिगमनान्यवयवाः” [न्यायसू०  
१।१।३२ (?) ] इत्यभिधानाद् दृष्टान्तादेरप्यनुमानाङ्गत्वसम्भवा-  
देतद्वयमेवाङ्गमित्ययुक्तमुक्तम् । प्रतिज्ञा ज्ञागमः । हेतुर्नुमानम्,  
१५ प्रतिज्ञातार्थस्य तेनानुमीयमानत्वात् । उदाहरणं प्रत्यक्षम्, “वादि-  
प्रतिवादिनोर्यत्र बुद्धिसाम्यं तदुदाहरणम्” [ ] इति वच-  
नात् । उपनय उपमानम्, दृष्टान्तधर्मिसाध्यधर्मिणोः सादृश्यत्,  
“प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्” [न्यायसू० १।१।६]  
इत्यभिधानात् । सर्वेषामेकविषयत्वप्रदर्शनफलं निगमनमित्या-  
२० शङ्कोदाहरणस्य तावच्चदङ्गत्वं निराकुर्वन्नाह—नोदाहरणम् । अनु-  
मानाङ्गमिति सम्बन्धः ।

तद्वि किं साक्षात्साध्यप्रतिपत्त्यर्थमुपादीयते, हेतोः साध्यावि-  
नाभावनिर्वाहार्थं वा, व्याप्तिस्वरणार्थं वा प्रकारान्तरसम्भवात् ?  
तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः—

**२५ न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव  
व्यापारात् ॥ ३८ ॥**

१ हेत्वाभासस्यापि साध्यसिद्धाङ्गताप्रसङ्गात् । २ न केवलं हेतोः । ३ साध्यं च ।  
४ साध्यसाधनस्यैव परिहारेण दृष्टान्तस्य समर्थनमादिशब्देन ज्ञाप्यम् । ५ पतव ।  
६ करणे शुद्ध । ७ महानसादि । ८ भूमवत्त्वेन । ९ प्रसिद्धं महानसे तेन साधर्म्यं  
पर्वतस्य भूमवत्त्वेन । १० भूमवत्साध्यम् । ११ भूमवत्त्वशब्दवाच्यत्वं पर्वतस्य साध्यं  
तस्य साधनं ज्ञानम् । १२ प्रमाणाणान् । १३ अशित्व । १४ अक्रमपरम्परया  
साध्यप्रतिपत्तिः कथमेवंविधाहेतोः साध्यसिद्धिरिति ।

न हि तत् साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव साध्याविना-  
भावनियमैकलक्षणस्य व्यापारात् । द्वितीयविकल्पोप्यसम्भाव्यः—

तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव  
तत्सिद्धेः ॥ ३९ ॥

न हि हेतोस्तेन साध्येनाविनाभावस्य निश्चयार्थं वा तदुपादानं ५  
युक्तम् । विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः । न हि सपक्षे सत्त्वमात्रा-  
द्धेतोर्व्याप्तिः सिध्यति, 'स इयामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत्' इत्यत्र  
तदाभासेपि तत्सम्भवात् । ननु साकल्येन साध्यनिवृत्तौ साधन  
निवृत्तेरत्रासम्भवात्परत्र गौरेपि तत्पुत्रे तत्पुत्रत्वस्य भावान्न  
व्याप्तिः, तर्हि साकल्येन साध्यनिवृत्तौ साधननिवृत्तिनिश्चयरूपा- १०  
बाधकादेव व्याप्तिप्रसिद्धेरलं दृष्टान्तकल्पनया ।

व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिः  
तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्यात्  
दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् ॥ ४० ॥

किञ्च, वादिप्रतिवादिनोर्यत्र बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तो भवति १५  
प्रतिनियतव्यक्तिरूपः, यथाऽऽशौ साध्ये महानसादिः । व्यक्तिरूपं  
च निदर्शनं कथं तदविनाभावनिश्चयार्थं स्यात् ? प्रतिनियतव्यक्तौ  
तन्निश्चयस्य कर्तुमशक्तेः । अनियतदेशकालाकाराधारतया सामा-  
न्येन तु व्याप्तिः । कथमन्यथान्यत्र साधनं साध्यं साधयेत् ?  
तत्रापि दृष्टान्तेपि तस्यां व्याप्तौ विप्रतिपत्तौ तस्यां दृष्टान्तान्तर- २०  
न्वेषणेऽनवस्थानं स्यात् ।

नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयो-  
गादेव तत्स्मृतेः ॥ ४१ ॥

नापि व्याप्तिस्मरणार्थं दृष्टान्तोपादानं तथाविधस्य प्रतिपत्ता-  
विनाभावस्य हेतोः प्रयोगादेव तत्स्मृतेः । एवं चाप्रयोजनं २५  
तदुदाहरणम् ।

१ कदात् । २ अविनाभावः । ३ कदात् । ४ पर्वते । ५ साध्यसाधनयोः ।  
६ प्रतिनियतव्यक्तौ तन्निश्चयस्य कर्तुमशक्तेरित्युक्तमस्ति । ७ सामान्येन व्याप्तिर्न  
साधदि । ८ दृष्टान्तादन्यत्र ।



तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्य-

साधने सन्देहयति ॥ ४२ ॥

कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ? ॥ ४३ ॥

परं केवलमभिधीयमानं साध्यसाधने साध्यधर्मिणि सन्देह-  
यति सन्देहवती करोति । कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ?

मा भूद्दृष्टान्तस्यानुमानं प्रत्यङ्गत्वमुपनयनिगमनयोस्तु स्यादि-  
त्याशङ्कापनोदार्थमाह—

न च ते तदङ्गे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययो-

र्वचनादेवाऽसंशयात् ॥ ४४ ॥

१० न च ते तदङ्गे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेव हेतु-  
साध्यप्रतिपत्तौ संशयाभावात् । तथापि दृष्टान्तोदेरनुमानाव-  
यवत्वे हेतुरूपत्वे वा—

समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो-

वास्तु साध्ये तदुपयोगात् ॥ ४५ ॥

१५ समर्थनमेव वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तस्यो-  
पयोगात् । समर्थनं हि नाम हेतोः सिद्धत्वादिदोषं निराकृत्य  
स्वसाध्येनाऽविनाभावसाधनम् । साध्यं प्रति हेतोर्गमकत्वे च  
तस्यैवोपयोगो नान्यस्येति ।

ननु व्युत्पन्नप्रज्ञानां साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवा-  
२० संशयादर्थप्रतिपत्तेर्दृष्टान्तादिवचनमनर्थकमस्तु । बालानां त्वव्यु-  
त्पन्नप्रज्ञानां व्युत्पत्त्यर्थं तन्नानर्थकमित्याह—

बालव्युत्पत्त्यर्थं तन्नयोपगमे शास्त्र एवासौ

न वादेऽनुपयोगात् ॥ ४६ ॥

बालव्युत्पत्त्यर्थं तन्नयोपगमे दृष्टान्तोपनयनिगमनत्रयाभ्युप-

१ यदि सन्देहवती न करोति । २ उपनयनिगमनादेश्च । ३ सपक्षे दृष्टान्ते  
सत्त्वमुपनयस्य हेतुरूपस्य । कुतः ? त्रिरूपो हेतुर्यत इति सीगतः । ४ हेतुलक्षणं  
कीदृशम् ? दृष्टान्तोपनयनिगमनलक्षणत्रिरूपत्वप्रदर्शनस्वरूपम् । ५ हेतुरूपोऽस्तु ।  
कथम् ? हेतोः समर्थनं हेतुरेवैवनेन प्रकारेण । ६ निप्रक्षे साकल्येन बाधकप्रमाण-  
प्रदर्शनं हेतुसमर्थनम् । ७ एतदेव ।

गमे, शास्त्र एवासौ तदभ्युपगमः कर्तव्यः न चादेऽनुपयोगात् ।  
न खलु चादकाले शिष्या व्युत्पाद्यन्ते व्युत्पन्नप्रज्ञानामेव चादे-  
ऽधिकारात् । शास्त्रे चोदाहरणादौ व्युत्पन्नप्रज्ञा वादिनो चादकाले  
ये प्रतिवादिनो यथा प्रतिपद्यन्ते तान् तथैव प्रतिपादयितुं समर्था  
भवन्ति, प्रयोगपरिपाच्याः प्रतिपाद्यानुरोधतो जिनपतिमतानु-  
सारिभिरभ्युपगमात् ।

तत्र तद्व्युत्पादनार्थं दृष्टान्तस्य स्वरूपं प्रकारं चोपदर्शयति—

दृष्टान्तो द्वेधाऽन्वयव्यतिरेकभेदात् ॥ ४७ ॥

दृष्टो हि विधिनिबेधरूपतया चादिप्रतिवादिभ्यामविप्रतिपत्त्या  
प्रतिपन्नोऽन्तः साध्यसाधनधर्मो यत्रासौ दृष्टान्त इति व्युत्पत्तेः । १०

अथ कोऽन्वयदृष्टान्तः कश्च व्यतिरेकदृष्टान्त इति चेत्—

साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोन्वय-

दृष्टान्तः ॥ ४८ ॥

यथाग्नीं साध्ये महाहदादिः ।

साध्याभावे साधनव्यतिरेको यत्र कथ्यते स ॥ १५

व्यतिरेकदृष्टान्तः ॥ ४९ ॥

यथा तस्मिन्नेव साध्ये महाहदादिः ।

अथ को नाम उपनयो निगमनं वा किमित्याह—

हेतोरुपसंहार उपनयः ॥ ५० ॥

प्रतिज्ञायास्तु निगमनम् ॥ ५१ ॥

प्रतिज्ञायास्तुपसंहारो निगमनम् । उपनयो हि साध्याविना-  
भावित्वेन विशिष्टे साध्यधर्मिण्युपनीयते येनोपदर्श्यते हेतुः  
सोपिधीयते । निगमनं तु प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयाः साध्य-  
लक्षणैकैक्यतया निगम्यन्ते सम्बद्ध्यन्ते येन तदिति ।

तद्व्यानुमानं ध्वंशयवं ध्वंशयवं पश्चाद्वयवं वा द्विप्रकारं भवतीति २५  
दर्शयन्—

१ शास्त्रे बहुदाहरणादि तस्मिन् । २ वा । ३ एवं च सति । ४ सामान्यतः  
स्वरूपं दृष्टान्तेनोक्तं शेषतस्तत्स्वरूपं तु साध्यव्याप्तमित्यादिना दर्शयति । ५ वसः ।  
६ जैनस्य । ७ मीसासकस्य । ८ योगस्य ।

तदनुमानं द्वेधा ॥ ५२ ॥

इत्याह ।

कुतस्तद् द्वेवेति चेत् ?

स्वार्थपरार्थभेदात् ॥ ५३ ॥

५ तत्र—

स्वार्थमुक्तलक्षणम् ॥ ५४ ॥

स्वार्थमनुमानं साधनात्साध्यविज्ञानमित्युक्तलक्षणम् ।

किं पुनः परार्थानुमानमित्याह परार्थमित्यादि—

परार्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातम् ॥ ५५ ॥

१० तस्य स्वार्थानुमानस्वार्थः साध्यसाधने तत्परामर्शिवचनाज्जातं यत्साध्यविज्ञानं तत्परार्थानुमानम् ।

ननु वचनात्मकं परार्थानुमानं प्रसिद्धम्, तच्चोक्तप्रकारं साध्य-  
विज्ञानं परार्थानुमानमिति वर्णयता कथं सङ्गृहीतमित्याह—

तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात् ॥ ५६ ॥

१५ तद्वचनमपि तदर्थपरामर्शिवचनमपि तद्धेतुत्वात् ज्ञानलक्षण-  
मुख्यानुमानहेतुत्वादुपचारेण परार्थानुमानमुच्यते । उपचार-  
निमित्तं चास्य प्रतिपादकप्रतिपाद्यापेक्षयानुमानकार्यकारणत्वम् ।  
तत्प्रतिपादकज्ञानलक्षणानुमान(नं)हेतुः कारणं यस्य तद्वचनस्य,  
तस्य वा प्रतिपाद्यज्ञानलक्षणानुमानस्य हेतुः कारणम्, तद्भाव-  
२० स्तद्धेतुत्वम्, तस्मादिति । मुख्यरूपतया तु ज्ञानमेव प्रमाणं  
परनिरपेक्षतयाऽर्थप्रकाशकत्वादिति प्राक्प्रतिपादितम् ।

यथा चानुमानं द्विप्रकारं तथा हेतुरपि द्विप्रकारो भवतीति  
दर्शनार्थं स हेतुर्द्वेवेत्याह—

स हेतुर्द्वेधा उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् इति ॥ ५७ ॥

२५ योऽविनाभावलक्षणलक्षितो हेतुः प्राक्प्रतिपादितः स द्वेधा  
भवति उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् ।

तत्रोपलब्धिर्विधिसाधिकैवानुपलब्धिश्च प्रतिषेधसाधिकैवेत्य-  
नयोर्विषयनियममुपलब्धिरित्यादिना विघटयति—

१, २ अनेन प्रकारेण । ३ तदर्थेति । ४ परार्थानुमानमुच्यते इति सम्बन्धः ।

५ हेतोः । ५ अनेन प्रकारेण ।

उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च ॥ ५८ ॥

अविनाभावनिमित्तो हि साध्यसाधनयोर्गम्यगमकभावः । यथा चोपलब्धेर्विधौ साध्येऽविनाभावाद्गमकत्वं तथा प्रतिषेधेपि । अनुपलब्धेश्च यथा प्रतिषेधे ततो गमकत्वं तथा विधौर्विधौ स्वयमेवाचार्यो वक्ष्यति । ५

सा चोपलब्धिर्द्विप्रकारा भवत्यविरुद्धोपलब्धिर्विरुद्धोपलब्धिश्चेति—

अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा व्याप्यकार्यकारण-  
पूर्वोत्तरसहचरभेदात् ॥ ५९ ॥

तत्र साध्येनाविरुद्धस्य व्याप्यादेरुपलब्धिर्विधौ साध्ये षोढा १० भवति व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात् ।

ननु कार्यकारणभावस्य कुतश्चित्प्रमाणादप्रसिद्धेः कथं कार्यकारणस्य तद्वा कार्यस्य गमकं स्यादित्यप्यास्तां तावद्विषयपरिच्छेदे सम्बन्धपरीक्षायां कार्यकारणतादिसम्बन्धस्य प्रसाधयिष्यमाणत्वात् ।

ननु प्रसिद्धेपि कार्यकारणभावे कार्यमेव कारणस्य गमकं तस्यैव तेनाविनाभावात्, न पुनः कारणं कार्यस्य तदभावात् । इत्यसङ्गतम् । कार्याविनाभावितयाऽवधारितस्यानुमानकालप्राप्तस्य छद्मादेर्विशिष्टकारणस्य कार्यादिकार्यानुमापकत्वेन सुप्रसिद्धत्वात् । न ह्यनुकूलमात्रमन्त्यैक्षणप्राप्तं वा कारणं लिङ्गमुच्यते, येन प्रतिबन्धै- २० वैकल्यसम्भवाद्द्वयमिचारि स्यात्, द्वितीयक्षणे कार्यस्य प्रत्यक्षीकरणादनुमानानर्थक्यं वा । तदेव समर्थयमानो रसादेकसामग्र्यनुमानेनेत्याधाह—

रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरि-  
ष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्या-  
प्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये ॥ ६० ॥

१ साध्ये । २ अविनाभावाद्गमकत्वमुपलब्धेः । ३ साध्ये । ४ ततो गमकत्वमुपलब्धेः । ५ समावहेतुत्वम् । ६ आनादेववादी शून्यवादी वा बौद्ध-  
विशेषः प्राह । ७ न केवलमग्रे प्राक्तनं वक्ष्यतीत्यर्थः । ८ आदिना सयोगादिग्रहणम् ।  
९ चन्द्रशेखरा । १० आदिना समुद्रवृद्धिः । ११ तन्नुसयोगरूपः । १२ मञ्जुषाया  
दिना प्रतिबन्धः । १३ इन्द्रः । १४ सहकारिणा मित्वादीना वैकल्यम् ।

‘आस्वाद्यमानाद्धि रसार्तञ्जनिका सामग्र्यनुमीयते । पश्चात्तदनुमानेन रूपानुमानम् ।’ सजातीयं हि रूपक्षणान्तरं जनयञ्चैव प्राक्तनो रूपक्षणो विजातीयरसादिक्षणान्तरोत्पत्तौ प्रभुर्भवेन्नान्यथा । तथा चैकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव ५ किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये भवतः ।

अथ पूर्वोत्तरचरिणोः प्रतिपादितहेतुभ्योर्थान्तरत्वसमर्थनार्थमाह—

न च पूर्वोत्तरकालवर्त्तिनोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा

१० कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः ॥ ६१ ॥

प्रयोगः—र्यद्यत्काले अनन्तरं वा नास्ति न तस्य तेन तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा यथा भविष्यच्छब्दचक्रवर्त्तिकाले असतो रावणादेः, नास्ति च शकटोदयादिकाले अनन्तरं वा कृत्तिकोदयादिकमिति । तौतादात्म्यं हि समसमयस्यैव कृतकत्वानित्यत्वादेः प्रतिपन्नम् । १५ अग्निधूमादेश्चान्योन्यमव्यवहितस्यैव तदुत्पत्तिः, न पुनव्यवहितकालस्य अतिप्रसङ्गात् ।

ननु प्रवृत्तिरामिप्रायेण भाविरोहिण्युदयकार्यतया कृत्तिकोदयस्य गमकत्वात्कथं कार्यहेतौ नास्यान्तर्भाव इति चेत् ? कथमेवंममूद्गरण्युदयः कृत्तिकोदयादित्यनुमानम् ? अथ भरण्युदयोपि कृत्तिकोदयस्य कारणं तेनायमदोषः, ननु येन स्वभावेन २० भरण्युदयात्कृत्तिकोदयस्तेनैव यदि शकटोदयात्, तदा भरण्युदयादिवाऽनोपि पश्चादसौ स्यात् । यथा च शकटोदयात्प्राक्तमैव भरण्युदयादपि । यदि चातीतानागतयोरेकत्र कार्यं व्यापारः, तर्ह्यस्वाद्यमानरसस्यातीतो रसो भावि च रूपं हेतुः स्यात् । ततो

१ तस्य सहकारिकारणस्य । २ समर्थः । ३ विशिष्टं वानुज्ञादिरूप कारणम् । ४ मणिमन्त्रादिना । ५ क्षित्युदकादिकस्य । ६ हेतोः । ७ साध्यसाधनयोः । ८ तादात्म्यतदुत्पत्तौ वर्त्तिनी कृत्तिकोदयशकटोदययोर्न भवतः शकटोदयकालेऽनन्तरं वा कृत्तिकोदयस्यानुपलब्धेः । ९ तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा । १० सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सतीदं वाक्यम् । ११ रावणशब्दचक्रवर्त्तिनोऽतीतानागतयोस्तादात्म्यतदुत्पत्तिप्रसङ्गात् । १२ बौद्धानां मध्ये प्रवृत्तिरामिप्राये नाम भाविकारणवादी कश्चिद्व्यवहारः । १३ पूर्वचरस्य । १४ पूर्वचरस्य कार्यहेतवान्तर्भावप्रकारेण । १५ भूतकारणवादिमतमाश्लिष्यते । १६ अनुमानासावळक्षणः । १७ कृत्तिकोदयः । १८ रोहिणी । १९ कृत्तिकोदयः । २० भाक् कृत्तिकोदयः स्यात् ।

न वर्तमानस्य रूपस्य चातीतस्य वा प्रतीतिः । इत्ययुक्तमुक्तम्—“अतीतैककालौनां गतिर्नाऽनागतानाम्” [ प्रमाणवा० खट्व० १।१३ ] इति । अथान्यतरकार्यमसौ; तर्ह्यऽन्यतरस्यैवातः प्रतीतिर्भवेत् ।

ननु स्वसत्तासमवायात्पूर्वमसन्तोपि मरणादयोऽरिष्टादिकार्यकारिणो दृष्टास्ततोऽनेकान्तो हेतोरित्याशङ्क्य भाव्यतीतयोरित्या-५ दिना प्रतिविधत्ते—

भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्वोधयोरपि  
नारिष्टोद्वोधौ प्रति हेतुत्वम् ॥ ६२ ॥

तद्भाषापाश्रितं हि तद्भावभावित्वम् ॥ ६३ ॥

न च पूर्वमेवोत्पन्नमरिष्टं करतलरेखादिकं वा भाविनो मरणस्य १० राज्यादेर्व्यापारमपेक्षते; स्वयमुत्पन्नस्यापरापेक्षायोगात् । अथास्योत्पत्तिर्मरणादिनैव क्रियते; न; असेतः स्वरविषाणवत्कर्तृत्वा-योगात् । कार्यकालेऽसत्त्वेपि स्वकाले सत्त्वाददोषश्चेत्; ननु किं भाविनो मरणादेः स्वकाले पूर्वं सत्त्वम्, अरिष्टादेर्वा । भाविनः पूर्वं सत्त्वे ततः पश्चादरिष्टादिकमुपजायमानं पाश्चात्यं न पूर्वम् । १५ इत्ययुक्तमुक्तम्—“पूर्वमसन्तोपि मरणादयोऽरिष्टादिकार्यकारिणः” इति । अथान्यभाविमरणाद्यपेक्षयारिष्टादिकं पूर्वमुच्यते; ननु तदपि सत् स्वकाले यदि ततः प्रागेव स्यात्; तर्हि पाश्चात्यमरिष्टादिकं कथं ततः पूर्वमुच्यते ? अन्यभाविमरणाद्यपेक्षया जेदनंवस्था ।

अथ पूर्वमरिष्टादिकं स्वकाले पश्चाद्भावमरणादिकं स्वकाल-२० नियतं भवेत्; तर्हि निष्पन्नस्य निराकाङ्क्षस्यास्य पश्चादुपजायमानेन मरणादिना कथं करणं कृतस्य करणायोगात् ? अन्यथा न कचित्कार्ये कस्यचित्कारणस्य कदाचिदुपरमः स्यात्, पुनःपुनस्तस्यैव करणात् । अथ निष्पन्नस्याप्यनिष्पन्नं किञ्चिद्रूपमस्ति तत्करणात्तत्तत्कारणं कैल्यते, तत्ततो यद्यभिन्नम्; तदेव तत्तस्य च २५ न करणमित्युक्तम् । भिन्नं चेत्; तदेव तेन क्रियते नारिष्टादिकमित्यायातम् । तत्सम्बन्धिनस्तस्य करणात्तदपि कृतमिति चेत्;

१ अतीतस्यैकस्य अतीतकौ कालौ येषां रूपादीनाम् । २ साध्यादीनाम् । ३ अक्ष-  
दोदयमरण्युदययोर्मध्ये । ४ कारणस्य । ५ आदिना राज्यादयम् । ६ उत्थात-  
हस्तरेखादि । ७ अरिष्टादिना । ८ कारणस्य । ९ कारणस्य । १० इति चेत् ।  
११ अरिष्टादिकाले । १२ मरणादेः, सकाशात्पूर्वं सत्त्वम् । १३ सकाशात् ।  
१४ द्वितीयविकल्पोयम् । १५ अरिष्टादेः । १६ परेण ।

भिन्नयोः कार्यकारणभावाभ्यां सम्बन्धः, स्वयं सौगतैस्तथा-  
ऽभ्युपगमात् । तत्र चारिष्टादिना तत्क्रियेत, तेन चारिष्टादिकम् ?  
प्रथमपक्षेऽरिष्टादेरेव तन्निष्पत्तेर्मरणादिकमकिञ्चित्करमेव किञ्चि-  
दप्यनुपयोगात् । तेनारिष्टादिकरणे पूर्वनिष्पन्नस्य पश्चादुपजाय-  
मानेन तेन किं क्रियत इत्युक्तम् । अथाऽनिष्पन्नं किञ्चिदस्ति;  
तत्रापि पूर्ववच्चर्चानवस्था च ।

ननु यद्यत्र कार्यकारणभावो न स्यात्कथं तर्हि एकदर्शनादन्या-  
नुमानमिति चेत्; 'अविनाभावात्' इति ब्रूमः । तादात्म्य-  
तदुत्पत्तिलक्षणप्रतिबन्धेऽप्यविनाभावादेव गमकत्वम् । तदभावे  
१० वक्तृत्वतत्पुत्रत्वादेस्तादात्म्यतदुत्पत्तिप्रतिबन्धे सत्यपि असर्वज्ञत्वे  
इयामत्वे च साध्ये गमकत्वाप्रतीतेः । तदभावेपि चाविनाभाव-  
प्रसादात् कृत्तिकोदय-चन्द्रोदय-उद्गृहीताण्डकपिपीलिकोर्त्तर्पण-  
पर्काम्रफलोपलभ्यमानमधुररसस्वरूपाणां हेतूनां यथाक्रमं शक-  
टोदय-समानसमयसमुद्भववृद्धि-भाविबृष्टि-समसमयसिन्दूरारुण-  
१५ रूपस्वभावेषु साध्येषु गमकत्वप्रतीतेः । तदुक्तम्—

“कार्यकारणभावादिस्सम्बन्धानां द्वयी भेतिः ।

नियमानियमाभ्यां स्यादनियेमादनङ्गता ॥ १ ॥

सर्वेऽप्यनियेमा हेतौ नानुमोत्पत्तिकारणम् ।

नियमोत्केवलदेव न किञ्चिन्नानुमीयते ॥ २ ॥” [ १ ]

२० ततः शरीरनिर्वर्त्तकाऽऽहर्ष्टादिकारणकलापादरिष्टकरतलरेखा-  
दयो निष्पन्नाः भाविनो मरणराज्यादेरनुमापका इति प्रति-  
पत्तव्यम् ।

जाग्रद्वोधस्तु प्रबोधबोधस्य हेतुरित्येतत्प्रौढेव प्रतिविहितम्,  
स्वापाद्यवस्थायामपि ज्ञानस्य प्रसाधितत्वात् । ततो भाव्यतीत-

१ निष्पन्नानिष्पन्नयोः । २ सयोगादिः । ३ अन्यसम्बन्धाभावप्रकारेण । ४ अनि-  
ष्पन्नम् । ५ अनिष्पन्नरूपेण । ६ कार्ये । ७ अरिष्टादि । ८ चदन । ९ अन्य-  
कारावस्थायामास्वाद्यमानमात्रफलं सिन्दूरारुणरूपयुक्तं भवति मधुररसोपेतत्वादुपयुक्त-  
अफलवत् । १० आदिना तादात्म्यसयोगादि । ११ प्रकारः । १२ अविनाभावा-  
भावात् । १३ अनुमानं प्रति । १४ अनियमादनङ्गतेलेतदेवाचष्टे सर्वे इत्यादिना ।  
१५ कार्यकारणतादात्म्यादयः । १६ वक्तृत्वतत्पुत्रत्वादीनां हेत्वाभासानां येऽविना-  
भावरहिताः कार्यकारणादिसम्बन्धास्ते सर्वे अनुमानोत्पत्तिकारण न भवन्ति । १७ तर्हि-  
नुमानोत्पत्तिं प्रति किं कारणमित्युक्ते सत्याह । १८ अविनाभावात् । १९ साध्यम् ।  
२० आदिनात्मादि । २१ योगेन । २२ मोक्षविचारवसरे ।

योर्मैरजगद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वम्, येनाभ्याम-  
नैकान्तिको हेतुः स्यादिति स्थितम् ।

यथा च पूर्वोत्तरचरिणोर्न तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा तथा—

**सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थाना-  
त्सहोत्पादौच्च ॥ ६४ ॥**

यैयोः परस्परपरिहारेणावस्थानं न तयोस्तादात्म्यम् यथा घट-  
पटयोः, परस्परपरिहारेणावस्थानं च सहचारिणोरिति । एक-  
कालत्वाच्चानयोर्न तदुत्पत्तिः । ययोरेककालत्वं न तयोस्तदुत्पत्तिः  
यथा सव्येतरगोविपाणयोः, एककालत्वं च सहचारिणोरिति ।

न चास्वाद्यमानाद्रसात्सामग्र्यनुमानं ततो रूपानुमानमनुमिता-१०  
नुमानादित्यभिधार्तव्यम्; तथा व्यवहाराभावात् । न हि आस्वाद्य-  
मानाद्रसाद् व्यवहारी सामग्रीमनुमिनोति, रससमसमयस्य रूप-  
स्यानेनानुमानात् । व्यवहारेण च प्रमाणचिन्ता भवता प्रतन्यते ।  
“प्रामाण्यं व्यवहारेण” [प्रमाणवा० ३।५] इत्यभिधानात् ।  
सामग्रीतो रूपानुमाने च कारणात्कार्यानुमानप्रसङ्गाद्विज्ञानसंख्या-१५  
व्याघातः स्यात् ।

तानेव व्याप्यादिहेतून् बालव्युत्पत्त्यर्थमुदाहरणद्वारेण स्फुट-  
यति । तत्र व्याप्यो हेतुर्यथा—

**परिणामी शब्दः, कृतकत्वात्, य एवं स एवं  
दृष्टः यथा घटः, कृतकश्चायम्, तस्मात्परिणामीति । २०  
यस्तु न परिणामी स न कृतकः यथा वन्ध्यास्त-  
नन्धयः, कृतकश्चायम्, तस्मात्परिणामीति ॥ ६५ ॥**

‘दृष्टान्तो द्वेधा अन्वयव्यतिरेकमेदात्’ इत्युक्तम् । तत्रान्वय-  
दृष्टान्तं प्रतिपाद्य व्यतिरेकदृष्टान्तं प्रतिपादयन्नाह—यस्तु न  
परिणामी स न कृतको दृष्टः यथा वन्ध्यास्तनन्धयः, कृतकश्चा-२५  
यम्, तस्मात्परिणामीति । कृतकत्वं हि परिणामित्वेन व्याप्तम् ।

१ साम्यसाधनयोः । २ तादात्म्यतदुत्पत्त्योरभावः । ३ तादात्म्यं सहचारिणो-  
र्नस्ति परस्परपरिहारेणावस्थानात् । ४ कृतम् । ५ अनुमितायाः सामग्र्याः, सक-  
शादनुमानं रूपम् । ६ परेण मवना । ७, सौगतेन । ८, वि । ९, उद्दिष्टेनैव ।  
१० अपेक्षितपरव्यापारः कृतकं जन्यते ।



पूर्वोत्तराकारपरिहारावासिस्थितिलक्षणपरिणामशून्यस्य सर्वथा  
नित्यत्वे क्षणिकत्वे वा शब्दस्य कृतकत्वानुपपत्तेर्वैक्ष्यमाणत्वाद् ।

किं पुनः कार्यलिङ्गस्योदाहरणमित्याह—

अस्त्यत्र शरीरे बुद्धिर्व्याहारादेः ॥ ६६ ॥

५ व्याहारो वचनम् । आदिशब्दाद्व्यापाराकारविशेषपरिग्रहः ।

ननु तात्वाद्यन्वयव्यतिरेकानुविधायितया शब्दस्योपलम्भात्कथ-  
मात्मकार्यत्वं येनातस्तदस्तित्वसिद्धिः स्यात् ? न खल्वात्मनि  
विद्यमानेषु विचक्षार्त्रैर्द्वर्परिकरे कणादिदोषकण्ठादिव्यापाराभावे  
वचनं प्रवर्त्तते, तदप्यसारम्, शब्दोत्पत्तौ तात्वादिसहायस्यै-

१० वात्मनो व्यापाराम्युपगमात् । घटाद्युत्पत्तौ चक्रादिसहायस्य  
कुम्भकारादेर्व्यापारवत्, कथमन्यथा घटादेरप्यात्मकार्यता ?  
कार्यकार्यादेश्च कार्यहेतावेवान्तर्भावः ।

कारणलिङ्गं यथा—

अस्त्यत्र छाया छत्रात् ॥ ६७ ॥

१५ कारणकारणादेरत्रैवानुप्रवेशाच्चार्यान्तरत्वम् ।

पूर्वचरलिङ्गं यथा—

उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् ॥ ६८ ॥

पूर्वपूर्वचराद्यनेनैव सङ्गृहीतम् ।

उत्तरचरं लिङ्गं यथा—

२० उद्गाद्भरणिस्तत एव ॥ ६९ ॥

कृत्तिकोदयादेव । उत्तरोत्तरचरमेतेनैव सङ्गृह्यते ।

सहचरं लिङ्गं यथा—

अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात् ॥ ७० ॥

संयोगिने एकार्थसमैवार्थिनैश्च साध्यसमकालस्यात्रैवान्तर्भावो

२५ द्रष्टव्यः ।

१ आत्मा । २ सुच्छायतादि । ३ सहित । ४ सहाय । ५, कण्ठादिव्यवहार-  
भाव एव कारणम् । ६ जैनैः । ७ तात्वाद्यन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वेन तात्वादेरेव  
कार्यं शब्द इत्येव यदि । ८ अमूदत्र शिवकः स्यात् । ९ महोद्भूतानां कण्ठा-  
दोषविशेषकारी धूमवदभिमन्त्रात् । कण्ठादिविशेषस्य स्वरूपं धूमस्तस्य च कारणं बहि-  
रिति । १० उदाह्रियते । ११ आत्मनोत्रास्तित्वं विशिष्टशरीरात् । अत्रापि नैवाधिक-  
मतानुसरणे कार्यहेतोरेव धूमादेरिव सहा । १२ नैवाधिकमतानुसरणे सहचरहेतोरेव  
सहा । १३ हेतोः ।

अथाविरुद्धोपलब्धिमुदाहृत्येदानीं विरुद्धोपलब्धिमुदाहर्तुं  
विरुद्धेत्याद्याह—

**विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथेति ॥ ७१ ॥**

प्रतिषेधेन यद्विरुद्धं तत्सम्बन्धिनां तेषां व्याप्यादीनामुप-  
लब्धिः प्रतिषेधे साध्ये तथाऽविरुद्धोपलब्धिवत् षट्प्रकाराः । ५  
तानेष षट् प्रकारान् यथेत्यादिना प्रदर्शयति—

**(यथा) नास्त्यत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ॥ ७२ ॥**

यथेत्युदाहरणप्रदर्शने । औष्ण्यं हि व्याप्यमग्नेः । स च विरुद्धः  
शीतस्पर्शेन प्रतिषेध्येनेति ।

विरुद्धकार्यं लिङ्गं यथा—

१०

**नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ॥ ७३ ॥**

विरुद्धकारणं लिङ्गं यथा—

**नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ॥ ७४ ॥**

सुखेन हि प्रतिषेध्येन विरुद्धं दुःखम् । तस्य कारणं हृदय-  
शल्यम् । तत्कुतश्चित्तदुपदेशादेः सिद्ध्यत्सुखं प्रतिषेधतीति । १५

विरुद्धपूर्वचरं यथा—

**नोदेष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं**

**रेवत्युदयात् ॥ ७५ ॥**

शकटोदयविरुद्धो ह्यश्विन्युदयस्तत्पूर्वचरो रेवत्युदय इति ।

विरुद्धोत्तरचरं यथा—

२०

**नोदगाद्भरणिर्मुहूर्त्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ॥ ७६ ॥**

भरण्युदयविरुद्धो हि पुनर्वसुदयस्तदुत्तरचरः पुष्योदय इति ।

विरुद्धसहचरं यथा—

**नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागात् ॥ ७७ ॥**

परभागाभावेन हि विरुद्धस्तत्सद्भाषस्तत्सहचरोऽर्वाग्भाग इति । २५

अथोपलब्धि व्याख्यायेदानीमनुपलब्धि व्याचष्टे । सा चानुपलब्धिरुपलब्धिवद्विप्रकारा भवति । अविरोद्धानुपलब्धिर्विरोद्धानुपलब्धिश्चेति । तत्राद्यप्रकारं व्याख्यातुकामोऽविरुद्धेत्याद्याह—

**अविरोद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभाव-**

**५ व्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसह-**

**चरानुपलम्भभेदादिति ॥ ७८ ॥**

प्रतिषेधेनाविरुद्धस्यानुपलब्धिः प्रतिषेधे साध्ये सप्तधा भवति । स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलब्धिभेदात् ।

१० तत्र स्वभावानुपलब्धिर्यथा—

**नास्त्यत्र भूतले घट उपलब्धिलक्षण-**

**प्राप्तस्यानुपलब्धेः ॥ ७९ ॥**

पिशाचादिभिर्व्यभिचारो मा भूदित्युपलब्धिलक्षणप्राप्तस्येति विशेषणम् । कथं पुनर्यो नास्ति स उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्तत्प्राप्तत्वे १५ वा कथमसत्त्वमिति वेदुष्यते—आरोप्यैतद्रूपं निषिध्यते सर्वत्रारोपितरूपविषयत्वाज्जिषेधस्य । यथा 'नायं गौरः' इति । न ह्यत्रैतच्छब्दकथं वक्तुम्—सति गौरत्वे न निषेधो निषेधे वा न गौरत्वमिति । नन्वेवैमदृश्यमपि पिशाचादिकं दृश्यरूपतयाऽऽरोप्य प्रतिषेध्यतामिति चेन्न, आरोपयोग्यत्वं हि यस्यास्ति तस्यैवारोपः । र्यश्चार्थो विद्यमानो नियमेनोपलभ्येत स एवारोपयोग्यः, २० न तु पिशाचादिः । उपलम्भकारणसाकल्ये हि विद्यमानो घटो नियमेनोपलम्भयोग्यो गम्यते, न पुनः पिशाचादिः । घटस्योपलम्भकारणसाकल्यं चैकज्ञानसंसर्गिणि प्रदेशादानुपलम्भमाने निश्चीयते । घटप्रदेशयोः खलूपलम्भकारणान्यविशिष्टानीति ।

१ व्याख्य । २ प्रतिषेधेन घटेनाविरुद्धः कः तत्त्वभावो घटस्त्वभाव इत्यर्थः । ३ कृतम् । ४ प्रकल्प्य घटसम्बन्धित्वेन भूतलम् । ५ कचिदपि न निषेध्यसारोपितरूपविषयत्वमित्युक्ते आह । ६ वस्तुनि । ७ आरोपितस्य प्रतिषेध्यत्वे । ८ विद्यमानत्वे पिशाचादिरन्युपलम्भ्येत्युक्ते आह । ९ पिशाचादिरन्यारोपयोग्यः कुतो न स्यादित्युक्ते आह । १० प्रत्यक्ष । ११ इन्द्रियालोकादिना । १२ निषेध्यस्य घटस्य कथमुपलम्भकारणसाकल्यं निश्चीयत इत्युक्ते आह । १३ इन्द्रिय । १४ घटेन । १५ घटस्योपलम्भकारणसाकल्यं च न स्यात् एकज्ञानसंसर्गिण्यपदान्तरोपलम्भस्य भविष्यतीत्युक्ते आह । १६ समानानि ।

यंश्च यद्देशावेयतया कल्पितो घटः स एव तेनैकज्ञानसंसर्गां, न  
वैशान्तरस्थः । तैतश्चैकज्ञानसंसर्गिपदार्थान्तरोपलम्भे योग्यतया  
सम्भावितस्य घटस्योपलब्धिलक्षणप्राप्तानुपलम्भः सिद्धः ।

ननु चैकज्ञानसंसर्गिण्युपलम्भमौने सत्यपीतरविषयज्ञानोत्पा-  
दनशक्तिः सामग्र्याः समस्तीत्यवसातुं न शक्यते, प्रभाववतो ५  
योगिनः पिशाचादेर्वा प्रतिबन्धात्सतोपि घटस्यैकज्ञानसंसर्गिणि  
प्रदेशादावुपलम्भ्यमानेप्यनुपलम्भसम्भवात्, तदयुक्तम्; यतः  
प्रदेशादिनैकज्ञानसंसर्गिण एव घटस्याभावो नान्यस्य । यस्तु  
पिशाचादिनाऽन्यत्वमापादितः स नैव निषेध्यते । ईदं चैकज्ञान-  
संसर्गिभासमौनोर्थस्तज्ज्ञानं च पर्युदासवृत्त्या घटस्याऽसत्तानुप- १०-  
लब्धिश्चोच्यते ।

ननु चैवं केवलभूतलस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्तद्रूपो घटाभावोपि  
सिद्ध एवेति किमनुपलम्भसाध्यम् ? सत्यमेवैतत्, तथापि प्रत्यक्ष-  
प्रतिपक्षेभ्यभावे यो व्यामुह्यति साङ्ख्यादिः सौनुपलम्भं निमित्ती-  
कृत्य प्रतिपाद्यते । अनुपलम्भनिमित्तो हि सस्वरजस्तमःप्रवृत्ति- १५  
ष्वसङ्ख्यवर्होरः । स चात्राप्यस्तीति निमित्तप्रदर्शनेन व्यवहोरः  
प्रसाध्यते । दृश्यतेहि विशाले गवि साक्षादिमत्त्वात्प्रवर्तितगो-  
व्यवहारो मूढमतिर्विशङ्कटे सादृश्यमुत्प्रेक्षमाणोपि न गोव्यवहारं  
प्रवर्त्तयतीति विशङ्कटे वा प्रवर्त्तितो गोव्यवहारो न विशाले, स  
निमित्तप्रदर्शनेन गोव्यवहारे प्रवर्त्तयते । साक्षादिमन्मात्रनिमि- २०  
त्तको हि गोव्यवहारस्त्वया प्रवर्त्तितपूर्वो न विशालत्वविशङ्कट-  
त्वनिमित्तक इति । तथा महत्यां शिशपायां प्रवर्त्तितवृक्षव्यवहारो  
मूढमतिः स्वरूपायां तस्यां तद्व्यवहारमप्रवर्त्तयन्निमित्तोपदर्शनेन  
प्रवर्त्तयते वृक्षोऽर्थं शिशपात्वादिति ।

व्यापकानुपलब्धिर्यथा—

२५.

- १ घटप्रदेशयोगिभ्रान्तानप्राप्तात्वादेकज्ञानसंसर्गित्वाभावो भूतलस्युक्ते आह ।  
२ कल्पितस्य घटस्यैकज्ञानसंसर्गित्वं सिद्धं यतः । ३ भूतल । ४ दृश्यत्वेन ।  
५ प्रदेशे । ६ घट । ७ अतिशयवतो मायाविनः कुतश्चिद् । ८ भ्रान्तज्ञानसंसर्गिणः ।  
९ अदृश्यत्वम् । १० कुतो न प्रतिपेक्ष्यतेत्युक्ते आह । ११ भूतललक्षणः ।  
१२ जैनैः । १३ भूतलसङ्गाव एव घटाभाव इत्येवम् । १४ अनेन हेतुना ।  
१५ प्रतिबोध्यते । १६ प्रत्यक्षसिद्धेऽभावे व्यवहारः सत्यमेव साक्षान्साध, एतोऽ-  
नुपलम्भो व्यर्थ इत्युक्ते आह । १७ सत्ते रजो नास्त्वनुपलब्धेति । १८ कथं  
निमित्तप्रदर्शनमिहाह स चात्राप्यस्तीति । १९ अस्मिन् । ३० इत्थे । २१ साक्षादि-  
मत्त्वादिति निमित्तम् । २२ कथम् । २३ काष्ठादिसहकारिवैकस्याभावतः ।

नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षाऽनुपलब्धेः ॥ ८० ॥

कार्यानुपलब्धिर्यथा—

नास्त्यत्राऽप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्निर्धूमानुपलब्धेः ८१

नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ॥ ८२ ॥

५ इति कारणानुपलब्धिः ।

न भविष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं कृत्तिकोदया-  
नुपलब्धेः ॥ ८३ ॥

इति पूर्वचरानुपलब्धिः ।

नोदगाद्भरणिर्मुहूर्त्तात्प्राक् तत एव ॥ ८४ ॥

१० कृत्तिकोदयानुपलब्धेरेव । इत्युत्तरचरानुपलब्धिः ।

नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ८५

इति सहचरानुपलब्धिः ।

अथानुपलब्धिः प्रतिषेधसाधिकैवेति नियमप्रतिषेधार्थं विरुद्धे-  
त्याद्याह—

१५ विरुद्धानुपलब्धिः विधौ त्रेधा विरुद्धकार्य-  
कारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ॥ ८६ ॥

विधेयेन विरुद्धस्य कार्यादेरनुपलब्धिर्विधौ साध्ये सम्भवन्ती  
त्रिधा भवति—विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ।

तत्र विरुद्धकार्यानुपलब्धिर्यथा—

२० अस्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोस्ति निरामय-  
चेष्टानुपलब्धेः ॥ ८७ ॥

आमयो हि व्याधिः, तेन विरुद्धस्तदभावः, तत्कार्या विशिष्ट-  
चेष्टा तस्या अनुपलब्धिर्व्याधिविशेषास्तित्वानुमानम् ।

विरुद्धकारणानुपलब्धिर्यथा—

२५ अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ॥ ८८ ॥

दुःखेन हि विरुद्धं सुखम्, तस्य कारणमभीष्टार्थेन संयोगः,  
तदभावस्तदनुपलब्धिर्दुःखास्तित्वं गमयतीति ।

विरुद्धस्वभावानुपलब्धिर्यथा—

अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तानुपलब्धेः ॥ ८९ ॥

अनेकान्तेन हि विरुद्धो नित्यैकान्तः क्षणिकैकान्तो वा । तस्य  
चानुपलब्धिः प्रत्यक्षादिप्रमाणेनाऽस्य ग्रहणाभावात्सुप्रसिद्धा ।  
यथा च प्रत्यक्षादेस्तद्ग्राहकत्वाभावस्तथा विषयविचारप्रस्तावे  
विचारयिष्यते ।

ननु चैतत्साक्षाद्विधौ निषेधे वा परिसङ्ख्यातं साधनमस्तु ।  
यत्तु परम्परया विधेर्निषेधस्य वा साधकं तदुक्तसाधनप्रकारे-१०  
भ्योऽन्यत्वाद्भुक्तसाधनसङ्ख्याव्याघातकारि छलसाधनान्तरमनु-  
पज्येत । इत्याशङ्क्य परम्परयेत्यादिना प्रतिविधत्ते—

परम्परया संभवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम् ॥ ९० ॥

यतः परम्परया सम्भवत्कार्यकार्यादि साधनमत्रैव अन्तर्भाव-  
नीयं ततो नोक्तसाधनसङ्ख्याव्याघातः ।

तत्र विधौ कार्यकार्यं कार्यविरुद्धोपलब्धौ अन्तर्भावनीयम्  
यथा—

अमूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ।

कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ॥ ९१-९२ ॥

शिवकस्य हि साक्षाच्छत्रकः कार्यं स्थासस्तु परम्परयेति । २०  
निषेधे तु कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथाऽन्तर्भा-  
व्यते तद्यथा—

नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं मृगारिशब्दनात्

कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ

यथेति ॥ ९३ ॥

मृगक्रीडनस्य हि कारणं मृगः । तेन च विरुद्धो मृगारिः ।  
तत्कार्यं च तच्छब्दनमिति ।

१ एकान्तस्वरूपानुपलब्धेरिति पाठान्तरम् । २ विद्यमानम् । ३ कार्यादिष्वेव ।  
४ साध्ये । ५ ता । ६ तथा कार्यकार्यं कार्याविरुद्धोपलब्ध्यावन्तर्भावनीयमिति  
सम्बन्धः ।

ननु यद्यव्युत्पन्नानां व्युत्पत्त्यर्थं दृष्टान्तादियुक्तो हेतुप्रयोगस्तर्हि व्युत्पन्नानां कथं तत्प्रयोग इत्याह—

व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथाऽ-  
नुपपत्त्यैव वा ॥ ९४ ॥

५ एतदेवोदाहरणद्वारेण दर्शयति—

अग्निमानयं देशस्तथा धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूम-  
वत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा ॥ ९५ ॥

कुतो व्युत्पन्नानां तथोपपत्त्यन्यथाऽनुपपत्तिभ्यां प्रयोगनियम इत्याशङ्क्य हेतुप्रयोगो हीत्याद्याह—

१० हेतुप्रयोगो हि यथाव्याप्तिग्रहणं विधीयते,  
सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नै-  
रवधार्यते इति ॥ ९६ ॥

यतो हेतोः प्रयोगो व्याप्तिग्रहणानतिक्रमेण विधीयते । सा च व्याप्तिस्तावन्मात्रेण तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिप्रयोगमात्रेण व्युत्प-  
१५ न्नैर्निश्चीयते इति न दृष्टान्तादिप्रयोगेण व्याप्त्यवधारणार्थेन किञ्चि-  
त्प्रयोजनम् ।

नापि साध्यसिद्ध्यर्थं तत्प्रयोगः फलवान्—

तावतैव च साध्यसिद्धिः ॥ ९७ ॥

यतस्तावतैव चकार एवकारार्थं निश्चितविपक्षासम्भवहेतु-  
२० प्रयोगमात्रेणैव साध्यसिद्धिः ।

तेन पक्षः तदाधारसूचनाय उक्तः ॥ ९८ ॥

तेन पक्षो गम्यमानोऽपि व्युत्पन्नप्रयोगे तदाधारसूचनाय साध्याधारसूचनायोक्तः । यथा च गम्यमानस्यापि पक्षस्य प्रयोगो नियमेन कर्तव्यस्तथा प्रागेव प्रतिपादितम् ।

२५ अथेदानीमवसरप्राप्तस्यागमप्रमाणस्य कारणस्वरूपे प्ररूपयज्ञा-  
सेत्याद्याह—

## आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ॥ ९९ ॥

आप्तेन प्रणीतं वचनमाप्तवचनम् । आदिशब्देन हेस्तसंज्ञादिपरिग्रहः । तैन्निबन्धनं यस्य तत्तथोक्तम् । अनेनाक्षरश्रुतमनक्षरश्रुतं च सङ्गृहीतं भवति । अर्थज्ञानमित्यनेन चान्यापोहज्ञानस्य शब्दसन्दर्भस्य चागमप्रमाणव्यपदेशाभावः । शब्दो हि प्रमाण-५ कारणकार्यत्वादुपचारत एव प्रमाणव्यपदेशमर्हति ।

ननु चातीन्द्रियार्थस्य द्रष्टुः कस्यचिदाप्तस्याभावात् तत्रापौरुषेयस्यागमस्यैव प्रामाण्यात् कथमाप्तवचननिबन्धनं तद्? इत्यपि मनोरथमात्रम्; अतीन्द्रियार्थद्रष्टुर्मगवतः प्राक्प्रसाधितत्वात्, अगमस्य चापौरुषेयत्वासिद्धेः । तद्धि पदस्य, वाक्यस्य, वर्णानां १० वाऽभ्युपगम्येत प्रकारान्तराऽसम्भवात्? तत्र न तावत्प्रथमद्वितीयविकल्पौ घटेते; तथाहि-वेदपदवाक्यानि पौरुषेयानि पदवाक्यत्वाद्भारतादिपदवाक्यवत् ।

अपौरुषेयत्वप्रसाधकप्रमाणाभावाच्च कथमपौरुषेयत्वं वेदस्योपपन्नम्? न च तत्प्रसाधकप्रामाणाभावोऽसिद्धः; तथाहि-तत्प्र-१५ साधकं प्रमाणं प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, अर्थापत्त्यादि वा स्यात्? न तावत्प्रत्यक्षम्; तस्य शब्दस्वरूपमात्रग्रहणे चरितार्थत्वेन पौरुषेयत्वापौरुषेयत्वधर्मग्राहकत्वाभावात् । अनादिसत्त्वरूपं चापौरुषेयत्वं कथमक्षप्रभवप्रत्यक्षपरिच्छेद्यम्? अक्षाणां प्रतिनियतरूपादिविषयतया अनादिकालसम्बन्धाऽभावतस्तत्सम्बन्ध-२०

१ शब्देन सञ्ज्ञा । २ अर्थज्ञानमित्येतावत्सुच्यमाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिरत उक्तं वाक्यनिबन्धनमिति । वाक्यनिबन्धनमर्थज्ञानमित्युच्यमानेति बाहुच्छिक्तसंज्ञादिषु विप्र-  
कम्भवाक्यजन्येषु सुप्तोन्मत्तादिवाक्यजन्येषु वा नदीतीरफलसंसर्गादिज्ञानेष्वतिव्याप्तिः अत उक्तमासेति । आप्तवाक्यनिबन्धनज्ञानमित्युच्यमानेन्याप्तवाक्यकर्तृके (कारणे) आवणप्रत्यक्षोऽतिव्याप्तिरत उक्तमर्थेति । अर्थज्ञात्पर्यरूढः प्रयोजनरूढ इति यावत् । तात्पर्यमेव वचसीलाभियुक्तवचनात् वचसां प्रयोजनस्य प्रतिपादकत्वात् । ३ आप्तवचनादि । ४ अर्थज्ञानस्य । ५ आदिपदेन । ६ आप्तशब्दोपादानादपौरुषेयव्यवच्छेदः । ७ अन्यसात्पर्यार्थान्वयस्य पदार्थसाधोदो निराकरणं तस्य व्यावृत्तिरूपापोहविषय एव शब्दो न त्वर्थविषय इति वीर्यः । ८ अयोः व्यावृत्तिर्गौः । व्यावृत्तिस्तुच्छा अर्थरूपा न भवति । ९ शब्द एवार्थो न वाक्यार्थः । १० ज्ञान । ११ ता । १२ गणचरादि-  
प्रतिपाद्यज्ञानापेक्षया कारणत्वं शब्दस्य (दिब्यध्वनेः) । १३ प्रतिपादकज्ञानस्य (सर्वज्ञज्ञानस्य) हि कार्यं शब्दः । १४ अर्थज्ञानम् । १५ परेण नीमासकेन । १६ आवणप्रत्यक्षम् । १७ वचः । १८ ता ।



सत्त्वेनोप्यसम्बन्धात् । सम्बन्धे वा तद्वदऽनौगतकालसम्बन्ध-  
धर्मादिस्वरूपेणापि सम्बन्धसम्भवाच्च धर्मज्ञप्रतिषेधः स्यात् ।

नाप्यनुमानं तत्प्रसाधकम्; तद्धि कर्त्रऽस्मरणहेतुप्रभवम्,  
वेदाध्ययनशब्दवाच्यत्वलिङ्गजनितं वा स्यात्, कालत्वसाधनस-  
५ मुत्थं वा? तत्राद्यपक्षे किमिदं कर्तुरस्मरणं नाम-कर्तृस्मरणाभावः,  
अस्मर्यमाणकर्तृकत्वं वा? प्रथमपक्षे व्यधिकरणाऽसिद्धो हेतुः,  
कर्तृस्मरणाभावो ह्यात्मन्यपौरुषेयत्वं वेदे वर्तते इति ।

द्वितीयपक्षे तु दृष्टान्ताभावः; नित्यं हि वस्तु न स्मर्यमाणकर्तृकं  
नाप्यस्मर्यमाणकर्तृकं प्रतिपन्नम्, किन्त्वकर्तृकमेव । हेतुश्च व्यर्थ-  
१० विशेषणः; सति हि कर्तरि स्मरणमस्मरणं वा स्यान्नासति स्मर-  
विषाणवैत् । अथाऽकर्तृकत्वमेवौत्र विवक्षितम्; तर्हि स्मर्यमाण-  
ग्रहणं व्यर्थम्, जीर्णकूपप्रासादादिभिर्व्यभिचारश्च । अथ सम्प्र-  
दायीऽविच्छेदे सत्यऽस्मर्यमाणकर्तृकत्वं हेतुः; तथाप्यनेकान्तः ।  
सन्ति हि प्रयोजनाभावादस्मर्यमाणकर्तृकाणि 'वटे वटे वैश्रवणः'

१५ [ ] इत्याद्यनेकपदवाक्यान्वविच्छिन्नसम्प्रदायानि ।  
न च तेषामपौरुषेयत्वं भवतापीष्यते । असिद्धश्चायं हेतुः; पौरा-  
णिका हि ब्रह्मकर्तृकत्वं स्मरन्ति "वर्षत्रैर्यो वेदास्तस्य विनि-  
सृताः" [ ] इति । "प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्यौ  
विधीयते" [ ] इति चाभिधानात् । "यो वेदांश्च  
२० प्रहिणोति" [ ] इत्यादिवेदवाक्येभ्यश्च तत्कर्त्ता स्मर्यते ।

स्मृतिपुराणादिवच्च ऋषिनामाङ्किताः काण्वमाध्यन्दिनतैत्तिरी-  
यादयः शास्त्रमेदाः कथमस्मर्यमाणकर्तृकाः? तथाहि-एतास्तत्कृत-

१ न केवलमनादिकालेन । २ अनुष्ठेयत्वेन । ३ पुण्य । ४ जादिना पापम् ।  
५ इति । ६ कर्तृविषयं यत्स्मरणं ज्ञानं तस्याभावः । ७ स्मर्यमाणकर्तृप्रतिषेधः ।  
८ आकाशवदिति दृष्टान्तः । ९ मित्राधिकरणाः सन् । १० दृष्टान्ते । ११ व्यर्थ-  
विशेषणः कथमित्युक्ते आह । १२ स्मरविषाणे यथा स्मरणमस्मरणं वा नास्ति कर्त्रऽ-  
भावात् । १३ अनुमाने । १४ वेदे वर्णक्रमः पाठक्रमः उदात्तादिक्रमश्च सम्प्र-  
दायः । १५ चत्वरं चत्वरं ईश्वरः पर्वते पर्वते रायः सर्वत्र मनुसदनः । सा ते  
भवतु सुप्रीता देवी गिरिनिवासिनी । विचारममं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ।  
१६ कथम् । १७ चतुर्थ्यः । १८ ब्रह्मणः । १९ अस्मर्यमाणकर्तृकस्य हेतोरने-  
कान्तिकत्वासिद्धत्वे ते उद्गाथ्य पुनरप्यसिद्धत्वमुद्गावयन्ति । २० एकस्यान्मनोः सका-  
शादपरो मनुः भन्वन्तरम् । तत्तत्प्रति प्रतिमन्वन्तरम् । २१ वेदः । २२ स्मृतिः ।  
२३ मित्रा । २४ करोति । २५ प्रसन्नो भवतु इत्यादिभ्यश्च । २६ सन्तानः ।  
२७ गोजमेदाः ।

कर्त्वात्तन्नामभिरङ्किताः, तद्वृष्टत्वात्, तत्प्रकाशितत्वाद्वा ? प्रथम-  
पक्षे कथमासामपौरुषेयत्वमस्मर्यमाणकर्तृकत्वं वा ? उत्तरपक्ष-  
द्वयेपि यदि तावदुत्सङ्गा शाखा कण्वादिना दृष्टा प्रकाशिता वा  
तदा कथं सम्प्रदायाऽविच्छेदोऽतीन्द्रियार्थदर्शिनः प्रतिक्षेपश्च  
स्यात् ? अथानवच्छिन्नैव सा सम्प्रदायेन दृष्टा प्रकाशिता वा, ५  
तर्हि यावद्भिरुपाध्यायैः सा दृष्टा प्रकाशिता वा तावतां नाम-  
भिस्तस्याः किञ्चाद्वितत्वं स्याद्विशेषाभावात् ?

एतेन 'छिन्नमूलं वेदे कर्तृस्मरणं तस्य ह्यनुभवो मूलम् । न  
चासौ तत्र तद्विषयत्वेन विद्यते' इत्यपि प्रत्युक्तम् । यतोऽध्यक्षेण  
तदनुभवामावात् तत्र तच्छिन्नमूलम्, प्रमाणान्तरेण वा ? अध्य- १०  
क्षेण चेत्, किं भवत्सम्बन्धिना, सर्वसम्बन्धिना वा ? यदि भव-  
त्सम्बन्धिना, तर्ह्यागमान्तरेपि कर्तृग्राहकत्वेन भवत्प्रत्यक्षस्या-  
प्रवृत्तेस्तत्कर्तृस्मरणस्य छिन्नमूलत्वेनास्मर्यमाणकर्तृकत्वस्य भावाद्  
व्यभिचारी हेतुः । अथागमान्तरे कर्तृग्राहकत्वेनास्तत्प्रत्यक्षस्या-  
प्रवृत्तावपि परैः कर्तृसङ्गावाभ्युपगमात् ततो व्यावृत्तमस्मर्यमाण- १५  
कर्तृकत्वमपौरुषेयत्वेनैव व्याप्यते इति अव्यभिचारः, न, परकी-  
याभ्युपगमस्याप्रमाणत्वात्, अन्यथा वेदेपि परैः कर्तृसङ्गावाभ्यु-  
पगमतोऽस्मर्यमाणकर्तृकत्वादित्यसिद्धो हेतुः स्यात् ।

अथ वेदे सविर्गानकर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेः कर्तृस्मरणमऽतोऽ-  
प्रमाणम्-तत्र हि केचिद्विरण्यगर्मम्, अपरे अष्टकादीन् कर्तृन् २०  
स्मरन्तीति । नन्वेवं कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेस्तद्विशेषस्मरणमेवा-  
प्रमाणं स्यात् न कर्तृमात्रस्मरणम्, अन्यथा कादम्बर्यादीनामपि  
कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेः कर्तृमात्रस्मरणत्वेनास्मर्यमाणकर्तृकत्वस्य  
भावात्पुनरप्यनेकान्तः । अथ वेदे कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तिवत्कर्तृ-  
मात्रेपि विप्रतिपत्तेस्तत्स्मरणमप्यप्रमाणम्, कादम्बर्यादीनां तु २५  
कर्तृविशेषे एव विप्रतिपत्तेस्तत्प्रमाणमित्यनेकान्तिकत्वाभावोऽ-  
स्मर्यमाणकर्तृकत्वस्य विपक्षे प्रवृत्त्यभावात् । ननु वेदे सौगतादयः  
कर्त्तारं स्मरन्ति न मीमांसका इत्येवं कर्तृमात्रे विप्रतिपत्तेर्यदि  
तदप्रमाणम्, तर्हि तद्वदस्मरणमप्यऽप्रमाणं किञ्च स्याद्विप्रति-  
पत्तेरविशेषात् ? तथा चासिद्धो हेतुः ।

३०

१ कण्वादि । २ कण्वादि । ३ नष्टा । ४ कर्तृस्मरणमूलस्य वेदपदवाक्यानीत्याद्य-  
नुमानेऽस्य पुराणस्मृतिवेदवाक्यस्य च प्रवर्तनपरेण अन्येन । ५ कारणम् । ६ कथम् ।  
७ शानादिपिटकत्रये । ८ सौगतैः । ९ व्यावृत्तित्वम् । १० सविप्रतिपत्तिक ।  
११ यदि कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तिः कर्तृमात्रस्मरणसाऽप्रामाण्यम् । १२ वाणः शङ्करो  
वेति । १३ कादम्बर्यादौ ।

अथ यद्यनुपलम्भपूर्वकमस्यमाणकर्तृकत्वं हेतुत्वेनोच्येत; तदोक्तप्रकारेणाऽसिद्धानैकान्तिकत्वे स्याताम्, तदभावपूर्वके तु तस्मिंस्तयोरनवकाशः, न; अत्र कर्त्रेऽभावग्राहकस्य प्रमाणा-  
न्तरस्यैवाऽसम्भवात् । अस्मादेवानुमानात्तदभावसिद्धावन्योन्या-  
५ अयः—अतो ह्यऽनुमानात्तदभावसिद्धौ तत्पूर्वकमस्यमाणकर्तृकत्वं सिद्ध्यति, तत्सिद्धौ चातोऽनुमानात्तदभावसिद्धिरिति ।

ननु वेदे कर्तृसङ्गावाभ्युपगमे तत्कर्तुः पुरुषस्यावश्यं तदनुष्ठान-  
समये अनुष्ठानात्प्राप्तमनिश्चितप्रामाण्यानां तत्प्रामाण्यप्रसिद्धये स्मरणं  
स्यात् । ते ह्यदृष्टफलेषु कर्मस्वैवं निःसंशयाः प्रवर्तन्ते । यदि  
१० तेषां तद्विषयः सत्यत्वनिश्चयः, सोऽपि तदुपदेष्टुः स्मरणात्स्यात् ।  
यथा पित्रादिप्रामाण्यवशात्स्वयमदृष्टफलेष्वपि कर्मसु तदुपदेशा-  
त्प्रवर्तन्ते 'पित्रादिमिरेतदुपदिष्टं तेनानुष्ठीयते', एवं वैदिकेष्वपि  
कर्मस्वनुष्ठीयमानेषु कर्तुः स्मरणं स्यात् । न चाभियुक्तानामपि  
वेदार्थानुष्ठानाणां त्रैवर्णिकानां तत्स्मरणमस्ति । तथा चैवं प्रयोगः—  
१५ 'कर्तुः स्मरणयोग्यत्वे सत्यस्यमाणकर्तृकत्वादपौरुषेयो वेदः' ।  
तदप्यसम्बद्धम्; आगमान्तरेऽप्यस्य हेतोः सङ्गाववाचकप्रमा-  
णाऽसम्भवेन सङ्गावसम्भवतः सन्दिग्धविपक्षैर्व्यावृत्तिकत्वेना-  
नैकान्तिकत्वात् ।

किञ्च, विपक्षविरुद्धं विशेषणं विपक्षाद्वावर्तमानं स्वविशेष्य-  
२० मादाय निवर्तते । न च पौरुषेयत्वेन सह कर्तुः स्मरणयोग्यत्वस्य  
सद्धानवस्थानलक्षणः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणो वा विरोधः  
सिद्धः । सिद्धौ वै तत एव सौम्यप्रसिद्धेः 'अस्यमाणकर्तृकत्वात्'  
इति विशेष्योपादानं व्यर्थम् ।

१ उक्तप्रकारेण हेतोरसिद्धत्वे प्रतिपादितेऽनुमानवलेन हेतुसिद्धिं करोति परः ।  
२ अनुपलम्भेन हेतुना साधितं यदस्यमाणकर्तृकत्वं साधनं तत् । ३ अनुपलम्भः  
स्वसम्बन्धी सर्वसम्बन्धी वा स्यात् । पौरुष्यपक्षेऽसिद्धत्वम् । पाश्चात्यपक्षेऽनैकान्तिकत्वम् ।  
४ वेदः अस्यमाणकर्तृकः अनुपलम्भ्यमानकर्तृकत्वात् आकाशवत् इत्यनेनानुमानेन  
हेतुसिद्धिं विदधाति । ५ अनुपलम्भलक्षणस्य हेतोरस्यदोषदुष्टवादेत्यन्तरेण प्रकृतहेतुं  
साधयति । ६ वेदः अस्यमाणकर्तृकः कर्त्रेऽभावग्रहोमवत् इत्यनेनानुमानेन साधितः ।  
७ अस्यमाणकर्तृकत्वादेव । ८ अस्यमाणकर्तृकत्वात् । ९ अस्यमाणकर्तृकत्वात् ।  
१० कुत एतदित्याह । ११ अनिरीक्षितफलेषु । १२ यागेषु । १३ वक्ष्यमाणप्रकारेण ।  
१४ कर्म निःसंशयाः प्रवर्तन्ते । १५ कर्म । १६ कारणेन । १७ व्यावृत्तानाम् ।  
१८ उक्तप्रकारेण । १९ वक्ष्यमाणरीत्या । २० पितृके । २१ पौरुषेयपितृके ।  
२२ पौरुषेयत्वं विपक्षः । २३ विरोधस्य । २४ अपौरुषेयत्वमिति ।

यच्चोक्तम्-तदनुष्ठानसमय इत्यादि; तदागमान्तरेपि समानम् ।  
 'न च' इति चिन्त्यताम्-न चार्यं नियमः--'अनुष्ठातारोऽभिप्रेतार्थ-  
 अनुष्ठानसमये तर्कचर्चामनुस्मृत्यैव प्रवर्तन्ते' । न खलु पाणिन्यादि-  
 प्रणीतव्याकरणप्रतिपादितशाब्दव्यवहारानुष्ठानसमये तदर्थानुष्ठा-  
 तारोऽवश्यन्तया व्याकरणप्रणेतारं पाणिन्यादिकमनुस्मृत्यैव प्रव-  
 र्तन्ते इति प्रतीतम् । निश्चिततत्समैयानां कर्तृस्मरणव्यतिरेकेणा-  
 प्याशुतरं भवत्यादिसाधुशब्दोपलम्भात् । तन्न भवत्सम्बन्धि-  
 प्रत्यक्षेणानुभवाभावात् तत्र तच्छिन्नमूलम् ।

नापि सर्वसम्बन्धिप्रत्यक्षेण; तेन ह्यनुभवाभावोऽसिद्धः । न  
 ह्यर्वागंशं 'सर्वेषां तत्र कर्तृग्राहकत्वेन प्रत्यक्षं न प्रवर्तते' इत्यव-  
 सातुं शक्यमिति तत्र तत्स्मरणस्य छिन्नमूलत्वासिद्धेरस्यमाण-  
 कर्तृकत्वादित्यसिद्धो हेतुः ।

अथ प्रमाणान्तरेणानुभवाभावः; तन्न; अनुमानस्य आगमस्य च  
 प्रमाणान्तरस्य तत्र कर्तृसङ्गावावेदकस्य प्राक्प्रतिपादितत्वात् ।

किञ्च, अस्यमाणकर्तृकत्वं वादिनः, प्रतिवादिनः, सर्वस्य वा  
 स्यात्? वादिनश्चेत्; तदनैकान्तिकं "सा ते भवतु सुप्रीता"  
 [ ] इत्यादौ विद्यमानकर्तृकैष्यस्य सम्भवात् । प्रतिवादिन-  
 श्चेत्; तदसिद्धम्; तत्र हि प्रतिवादी स्मरणेव कर्तारम् । एतेन  
 सर्वस्यास्मरणं प्रत्याख्यातम् । सर्वात्मज्ञानविज्ञानरहितो वा कथं  
 सर्वस्य तत्र कर्त्रऽस्मरणमवैति? २०

किञ्च, अतः स्वातन्त्र्येणापौरुषेयत्वं साध्येत, पौरुषेयत्वसाधन-  
 मनुमानं वा साध्येत? प्राच्यविकल्पे स्वातन्त्र्येणापौरुषेयत्वस्यार्थः  
 साधनम्, प्रसक्तो धी? स्वातन्त्र्यपक्षे नाऽतोऽपौरुषेयत्वसिद्धिः  
 पदवाक्यत्वतः पौरुषेयत्वप्रसिद्धेः । अतो न ज्ञायते किमस्य-  
 माणकर्तृत्वादपौरुषेयो वेदः पदवाक्यात्मकत्वात्पौरुषेयो वा? न २५  
 च सन्देहहेतोः प्रामाण्यम् ।

ननु न प्रकृतोद्धेतोः सन्देहोत्पत्तिर्येनास्याऽप्रामाण्यम् किन्तु  
 प्रतिहेतुतः, तस्य चैतस्मिन्सत्यऽप्रवृत्तेः कथं संशयोत्पत्तिः?

१ अभिप्रेतार्थप्रतिपादकवाक्य । २ भवतीत्यादि । ३ उच्चारण । ४ अस्य शब्द-  
 स्थायमर्थ इति । ५ संकृतानां । ६ तस्मात् । ७ असर्वज्ञानात् । ८ वेदे । ९ वेदे ।  
 १० प्रसङ्गा । ११ वेदे । १२ वेदे । १३ अस्यमाणकर्तृकत्वात् । १४ अस्य-  
 माणकर्तृकत्वादिति । १५ साधनम् । १६ अस्यमाणकर्तृकत्वात् । १७ कारणस्य ।  
 १८ अस्यमाणकर्तृत्वस्य । १९ अपौरुषेयत्वलक्षणस्य साध्यसाधकस्य । २० अस्य-  
 माणकर्तृत्वादिति । २१ निप्रतिकूलहेतुतः ।

तद्युक्तम्; यथैव हि प्रकृतहेतोः सङ्गावे पौरुषेयत्वसाधकहेतोर-  
प्रवृत्तिरभिधीयते तथा पदवाक्यत्वलक्षणहेतुसङ्गावे सत्यसर्व-  
माणकर्तृकत्वस्याप्यप्रवृत्तिरस्तु विशेषाभावात् । तन्न स्वतन्त्र-  
साधनमिदम् ।

५ नापि प्रसङ्गसाधनम्; तत्त्वत्तु 'पौरुषेयत्वाभ्युपगमे वेदस्य  
तत्कर्तुः पुरुषस्य स्मरणप्रसङ्गः स्यात्' । इत्यनिष्टापादनसमावयम् ।  
न च कर्तृस्मरणं परस्यानिष्टम्; स हि पदवाक्यत्वेन हेतुना  
तत्कर्तुः स्मरणं प्रतीयन् कथं तत्स्मरणस्याऽनिष्टतां ब्रूयात् ?

पौरुषेयत्वसाधनानुमानबाधापक्षेपि किमनेनास्य स्वरूपं वाच्यते,  
१० विषयो वा ? न तावत्स्वरूपम्; अपौरुषेयत्वानुमानस्याप्यनेन  
स्वरूपबाधनानुषङ्गात्, तयोस्तुल्यबलत्वेनान्योन्यं विशेषाभावात् ।  
अतुल्यबलत्वे वा किमनुमानबाधया ? येनैव दोषेणास्याऽतुल्य-  
बलत्वं तत् एवाप्रामाण्यप्रसिद्धेः । विषयवाधाप्यनुपपन्ना; तुल्य-  
बलत्वेन हेत्वोः परस्परविषयप्रतिबन्धे वेदस्योभयधर्मशून्यत्वा-  
१५ नुषङ्गात् । एकस्य वा स्वविषयसाधकत्वेऽन्यस्यापि तत्प्रसङ्गाद्  
धर्मद्वयात्मकत्वं स्यात् । अतुल्यबलत्वे तु यत् एवानुल्यबलत्वं  
तत् एवाऽप्रामाण्यप्रसिद्धेः किमनुमानबाधयेत्युक्तम् ।

एतेन

“वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम् ।

२० वेदाध्ययनवाच्यत्वादधुनाध्ययनं यथा” [ मी० श्लो० अ० ७  
श्लो० ३५५ ] इत्यनेनानुमानेन पौरुषेयत्वप्रसाधकानुमानस्य बाधा;  
इत्यपि प्रत्याख्यातम्; प्रकृतदोषाणामत्राप्यविशेषात् ।

किञ्च, अत्र निर्विशेषणमध्ययनशब्दवाच्यत्वमपौरुषेयत्वं प्रति-  
पादयेत्, कर्त्रऽस्मैरणविशिष्टं वा ? निर्विशेषणस्य हेतुत्वे निश्चित-  
२५ कर्तृकैषु भारतादिष्वपि भावादनैकान्तिकत्वम् ।

१ प्रकृतहेतोः सति पदवाक्यत्वं हेत्वन्तरं न प्रवर्तते । पदवाक्यत्वे तु सत्यपि  
प्रकृतो हेतुः वर्तते इति योऽतौ विशेषस्तस्माभावात् । २ वेदः सर्वमाणकर्तृकः  
पौरुषेयत्वाङ्गात्तवत् । हेतुरुपन्यास्याभ्युपगमेनानिष्टस्य साध्यरूपन्यापकाभ्युपगमस्या-  
पादनं प्रसङ्गः । ३ जैनस्य । ४ जानन् । ५ पदवाक्यत्वलक्षण । ६ पौरुषेयत्वाऽ-  
पौरुषेयत्वानुमानयोः । ७ पौरुषेयत्वलक्षणस्य विषयस्य । ८ पदवाक्यत्वाऽसर्वमाण-  
कर्तृकत्वलक्षणयोः । ९ अपौरुषेयत्वपौरुषेयत्वलक्षण । १० पौरुषेयत्वाऽपौरुषेयत्व-  
लक्षण । ११ वेदस्य । १२ असर्वमाणकर्तृकत्वानुमानस्यापौरुषेयत्वप्रसाधनानुमानं  
प्रति बाधकत्वानिराकरणपरेण ग्रन्थेन । १३ विशेषणमेतत् ।

किञ्च, यथाभूतानां पुरुषाणामध्ययनपूर्वकं दृष्टं तथाभूतानामे-  
वाध्ययनशब्दवाच्यत्वमध्ययनपूर्वकत्वं साधयति, अन्यथाभूतानां  
चा? यदि तथाभूतानां तदा सिद्धसाधनम् । अथान्यथाभूतानां  
तर्हि सन्निवेशादिवदऽप्रयोजको हेतुः । अथ तथाभूतानामेव  
तत्तथा ततः साध्यते, न च सिद्धसाधनं सर्वपुरुषाणामतीन्द्रियार्थ-  
दर्शनशक्तिवैकल्येनातीन्द्रियार्थप्रतिपादकप्रेरणाप्रणेतृत्वासामर्थ्य-  
नेदृशत्वात् । तदप्यसाम्प्रतम्, यतो यदि प्रेरणायास्तथाभूतार्थ-  
प्रतिपादने अग्रामाप्याभाषः सिद्धः स्यात् स्यादेतत्-यौवता गुण-  
वद्वक्त्रऽभावे तद्वृणैरनिराकृतैर्दोषैरपोहितत्वात् तत्र सापेक्षं  
प्रामाण्यम्, तथाभूतां प्रेरणामतीन्द्रियार्थदर्शनशक्तिविरहिणोपि १०  
कर्तुं समर्था इति कुतस्तथाभूतप्रेरणाप्रणेतृत्वासामर्थ्येनाऽशेष-  
पुरुषाणामीदृशत्वसिद्धिर्यतः सिद्धसाधनं न स्यात्?

अथ न गुणवद्वक्त्रत्वेनैव शब्देऽग्रामाप्यनिवृत्तिरपौरुषेयत्वे-  
नाप्यस्याः सम्भवात् तेनायमदोषः । तदुक्तम्—

“शब्दे दोषोद्धवस्तावद्वक्त्रंभीन इति स्थितम् ।

१५

तदभावः किंचित्तावद्गुणवद्वक्त्रकर्तृत्वतः ॥ १ ॥

तद्वृणैरपेक्षानां शब्दे सङ्क्रान्त्यऽसम्भवात् ।

यद्वा वक्त्रभावेन न स्युर्दोषो निरोध्याः ॥ २ ॥”

[ मी० ग्लो० सू० २ ग्लो० ६२-६३ ]

इति । तदप्यसमीचीनम्, यतोऽपौरुषेयत्वमस्याः किमन्यतः २०  
प्रमाणात्प्रतिपन्नम्, अत एव चा? यद्यन्यतः, तदाऽस्यै वैयर्थ्यम् ।  
अत एव चेत्, नन्वेतोऽनुमानादपौरुषेयत्वसिद्धौ प्रेरणायामग्रा-

१ अनुनातनसदृशानाम् । २ असागिरिणि तथाभूतानां शब्देऽध्ययनपूर्वकत्वं प्रति-  
पाद्यते । ३ अतीन्द्रियार्थदर्शनाय । ४ आदिना कार्यत्वादिवत् । ५ अकिञ्चित्करो  
हेतुस्तेषां शब्देऽध्ययनपूर्वकत्वं नास्ति यतः । ६ सपक्षग्यापकपक्षग्यावृत्तौ कुपाग्याहित-  
सम्बन्धो हेतुरप्रयोजकः । ७ जैनानां तु मते सर्वपुरुषाणामतीन्द्रियार्थदर्शने शक्तिवैकल्यं  
नास्ति केषाञ्चिदतीन्द्रियार्थदर्शनशक्तिरस्तीति भावः । ८ अक्षिप्तोमेन यत्नेनेति छिडादि-  
अवगानन्तर शब्दो मा प्रेरयतीति दर्शनात् प्रेरणान्विततया कृतिः ( वाचः ) प्रवीयते ।  
९ सा च प्रेरणा वेद शल्यैः । १० तर्हि । १० न कुतोपि । ११ येन कारणेन ।  
१२ ग्रामाप्यनिराकृतत्वात् । १३ सदोषश्च । १४ अग्रामाप्यभूतार्थ । १५ सङ्क्रमः ।  
१६ न तु लभावतः । १७ अपौरुषेयवेदवाक्यान्तरौत्पद्येपु स्थितिवाक्येषु । १८ पृथ-  
देव समर्थयत्यत्र । १९ अपौरुषेयवेदे । २० निराकृतानाम् । २१ अर्चनपादयः ।  
२२ व्याग्रयः पुरुषः । २३ वेदाध्ययनवाक्यत्वादिति । २४ वेदाध्ययनवाक्यत्वस्य ।  
२५ वेदाध्ययनवाक्यत्वात् । २६ वेदाध्ययनवाक्यत्वात् ।

माण्याभावः स्यात्, तदभावाच्च तथाभूतप्रेरणप्रणेतृत्वासामर्थ्येन सर्वपुरुषाणामीदृशत्वसिद्धिरित् (रितीत) रेतयश्रयः । तन्न निर्विशेषणोयं हेतुः प्रकृतसाध्यसाधनः ।

‘अथ सविशेषणः, तदा विशेषणस्यैव केवलस्य गमकत्वाद्विशेषोपादानमनर्थकम् । भवतु विशेषणस्यैव गमकत्वम् का नो हानिः, सर्वथाऽपौरुषेयत्वसिद्ध्या प्रयोजनात्, तदप्ययुक्तम्, यतः कर्त्रेऽस्मरणं विशेषणं किमभावाख्यं प्रमाणम्, अर्थापत्तिः, अनुमानं वा ? तत्राद्यः पक्षो न युक्तः, अभावप्रमाणस्य स्वरूपसामग्रीविषयाऽनुपपत्तिः प्रामाण्यस्यैव प्रतिषिद्धत्वात् ।

१० किञ्च, सदुपलम्भकप्रमाणपञ्चकनिवृत्तिनिवन्धनास्य ‘प्रवृत्तिः “प्रमाणपञ्चकं यत्र” [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० १ ] इत्याद्यभिधानात् । न च प्रमाणपञ्चकस्य वेदे पुरुषसद्भावावेदकस्य निवृत्तिः, पदवाक्यत्वलक्षणस्य पौरुषेयत्वप्रसाधकत्वेनानुमानस्य प्रतिपादनात् । न चास्याऽप्रामाण्यमभिधानं शक्यम्, यतोऽ-  
१५ स्याऽप्रामाण्यम्-किमनेन बाधितत्वात्, साध्याविनाभावित्वाभावाद्वा स्यात् ? तत्राद्यपक्षे चक्रकप्रसङ्गः, तथाहि-न यावदभावप्रमाणप्रवृत्तिर्न तावत्प्रस्तुतानुमानबाधा, यावच्च न तस्य बाधा न तावत्सदुपलम्भकप्रमाणनिवृत्तिः, यावच्च न तस्य निवृत्तिर्न तावत्तन्निवन्धनाऽभावाख्यप्रमाणप्रवृत्तिः, तदप्रवृत्तौ च नानु-  
२० मानवाधेति । द्वितीयपक्षस्त्वयुक्तः, स्वसाध्याविनाभावित्वस्यात्र सम्भवात् । न खलु पदवाक्यात्मकत्वं पौरुषेयत्वमन्तरेण कचिद्बुद्धं येनास्य स्वसाध्याविनाभावामावः स्यात् ।

एतेन कर्तुरस्मरणमन्यर्थानुपपद्यमानं कर्त्रेऽभावनिश्चायकमर्थोपत्तिगम्यमपौरुषेयत्वं वेदानामित्यपास्तम्, अन्यथानुपपद्यमान-  
२५ त्वासम्भवस्यार्त्रं प्रागेव प्रतिपादितत्वात् । कर्त्रेऽस्मरणमनुमानरूपमपौरुषेयत्वं प्रसाधयतीत्यन्यनुपपन्नम्, प्रागेव कृतोत्तरत्वात् ।

एतेन—

“अतीतानागतौ कालौ वेदकारविवर्जितौ ।

‘कालत्वात्तर्द्धंथा कालो वर्त्तमानः समीक्ष्यते ॥ १ ॥” [ ]

१ अप्रामाण्याभावात् । २ अनुमानवाधेति । ३ कथम् ? । ४ एव । ५ अभावप्रमाणेप्रवृत्तौ प्रस्तुतानुमानबाधा तस्या सदुपलम्भकप्रमाणनिवृत्तिस्तस्या च पदवाक्यत्वस्य स्वसाध्याविनाभावित्वमिति समर्थनपरेण ग्रन्थेन । ६ अपौरुषेयत्वं विना । ७ वेदोऽपौरुषेयः कर्त्रेऽस्मरेणान्यथानुपपत्तेः । ८ कर्तृस्मरणद्वित्व । ९ पिटकादौ । १० वटे वटे वैभवण इत्यादिनाऽनैकान्तिकसमर्थनेन ।

इत्यपि प्रत्युक्तम्: प्राक्तनानुमानद्वयोक्ताशेषदोषाणामत्राप्य-  
विशेषात् । आगमान्तरेष्यस्य तुल्यत्वाच्च ।

किञ्च, इदानीं यथाभूतो वेदाकरणसमर्थपुरुषयुक्तस्तर्कैर्तृ-  
पुरुषरहितो वा कालः प्रतीतोऽतीतोऽनागतो वा तथाभूतः  
कालत्वोत्साध्येत, अन्यथाभूतो वा ? यदि तथाभूतः; तदा सिद्ध-  
साध्यता । अथान्यथाभूतः; तदा सन्निवेशादिवदऽप्रयोजको हेतुः ।  
अथ तथाभूतस्यैवातीतस्यानागतस्य वा कालस्य तद्वहितत्वं  
साध्यते, न च सिद्धसाध्यताऽन्यथाभूतस्य कालस्यासम्भवात् ।  
नन्वन्यथाभूतः कालो नास्तीत्येतत्कुतः प्रमाणात्प्रतिपन्नम् ? यद्य-  
न्यतः; तर्हि तत एवापौरुषेयत्वसिद्धेः किमनेन ? अत एवेति १०  
चेत् । ननु 'अन्यथाभूतकालाभावसिद्धावतोऽनुमानाच्चर्तद्वहितत्व-  
सिद्धिः, तत्सिद्धेश्चान्यथाभूतकालाभावसिद्धिः' इत्यन्योन्याश्रयः ।

नाप्यागमतोऽपौरुषेयत्वसिद्धिः; इतरेतराश्रयानुपपन्नात् । तथा-  
हि-आगमस्याऽपौरुषेयत्वसिद्धावप्रामाण्याभावसिद्धिः, तत्सिद्धे-  
श्चातोऽपौरुषेयत्वसिद्धिरिति । न चाऽपौरुषेयत्वसिद्धिरिति । न १५  
चाऽपौरुषेयत्वप्रतिपादकं वेदवाक्यमस्ति । नापि विधिवाक्याद्-  
पैरस्य पैरः प्रामाण्यमिष्यते, अन्यथा पौरुषेयत्वमेव स्यात्तत्प्रति-  
पादकानां "हिरण्यगर्भः समवर्त्ततीत्रे" [ ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १०  
सू० १२१ ] इत्यादिप्रचुरतरवेदवाक्यानां श्रवणात् ।

अपौरुषेयत्वधर्माधारतया प्रमाणप्रसिद्धस्य कस्यचित्पदवाक्या-३०  
देरसम्भवान्न तत्सादृश्येनोपमानादप्यपौरुषेयत्वसिद्धिः ।

नाप्यर्थापत्तेः; अपौरुषेयत्वव्यतिरेकेणानुपपद्यमानस्यार्थस्य  
कस्यचिदप्यभावात् । स ह्यप्रामाण्याभावलक्षणो वा स्यात्, अती-  
न्द्रियार्थप्रतिपादनस्वभावो वा, परार्थशब्दोच्चारणरूपो वा ? न  
तावदाद्यः पक्षः; अप्रामाण्याभावस्यागमान्तरेपि तुल्यत्वात् । न २५  
चासौ तत्र मिथ्याः वेदेपि तन्मिथ्यात्वप्रसङ्गात् । अथागमान्तरे  
पुरुषस्य कर्तुरभ्युपगमात्, पुरुषाणां तु रागादिदोषदुष्टत्वेन तज्ज-  
नितस्याऽप्रामाण्यस्यात्र सम्भवात्तत्रासौ मिथ्या, न वेदे तत्रा-  
प्रामाण्योत्पादकदोषाश्रयस्य कर्तुरभावात् । नन्वत्र कुतः कर्तुर-  
भावो निश्चितः ? अन्यतः, अत एव वा ? यद्यन्यतः; तदेवोच्यताम्, ३०

• १ काष्ठत्वादिलनेनानुमानेन पौरुषेयत्वसाधकानुमावस्य स्वरूपं नाध्येत विषयो  
वेलादिप्रकारेण । २ वेद । ३ साधनात् । ४ तेन वेदकर्ता । ५ वेदकर्ता । ६ अस्तु  
वा वेदवाक्यमपौरुषेयत्वप्रतिपादकं तथापि । ७ प्रतिषेधवाक्यादेः । ८ नीमांशकैः ।  
९ अगरस्य प्रामाण्यं यदीष्यते । १० चातः । ११ आदौ । १२ प्रमाणात् ।



किमर्थापत्त्या? अर्थापत्तेश्चेत्; न; इतरेतराश्रयानुषङ्गात्-अर्थाप-  
त्तितो हि पुरुषाभावसिद्धावप्रामाण्याभावसिद्धिः, तत्सिद्धौ चार्था-  
पत्तितः पुरुषाभावसिद्धिरिति ।

द्वितीयपक्षोप्युक्तः; अतीन्द्रियार्थप्रतिपादनलक्षणार्थस्यागमा-  
५ न्तरेपि सम्भवात् ।

परार्थशब्दोच्चारणान्यथानुपपत्तेर्नित्यो वेदः; इत्यप्यसमीची-  
नम्; धूमादिवत्सादृश्यादप्यर्थप्रतिपत्तेः प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् ।

किञ्च, अपौरुषेयत्वं प्रसज्यप्रतिषेधरूपं वेदस्याभ्युपगम्यते,  
पर्युदासस्वभावं वा? प्रथमपक्षे तर्हि सदुपलम्भकप्रमाणग्राह्यम्,  
१० उताऽभावप्रमाणपरिच्छेद्यम्? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; सदुपलम्भक-  
प्रमाणपञ्चकस्यापौरुषेयग्राहकत्वप्रतिषेधात् । तद्ग्राह्यस्य तुच्छ-  
स्वभावाभावरूपत्वानुपपत्तेश्च । प्रतिक्षिप्तश्च तुच्छस्वभावाभावः  
प्राक्प्रबन्धेन । द्वितीयपक्षस्तु श्रद्धामात्रगम्यः; अभावप्रमाण-  
स्याऽसम्भवतस्तेन तद्ग्राहणानुपपत्तेः । तदसम्भवश्च तत्सामग्री-  
१५ स्वरूपयोः प्राक्प्रबन्धेन प्रतिषिद्धत्वात्सिद्धः ।

अथ पर्युदासरूपं तदभ्युपगम्यते । नन्वत्रापि किं पौरुषेयत्वाद्-  
न्यत्पर्युदासवृत्त्याऽपौरुषेयत्वशब्दाभिधेयं स्यात्? तत्सत्त्वमिति  
चेत्; तर्हि निर्विशेषणम्, अनाविशेषणविशिष्टं वा? प्रथमपक्षे  
सिद्धसाध्यता; ततोऽन्यस्य वेदसत्त्वमात्रसाध्यक्षादिप्रमाणप्रति-  
२० ष्ठस्यासामिरभ्युपगमात् । पौरुषेयत्वं हि कृतकत्वम्, तत्तद्व्याप्य-  
त्सत्त्वमित्यत्र को वै विप्रतिपद्यते? द्वितीयपक्षः पुनरविचारितर-  
मणीयः; वेदानादिसत्त्वे प्रत्यक्षादिप्रमाणतः प्रसिद्धसम्भवस्याऽ-  
नन्तरमेव प्रतिपादितत्वात् ।

अस्तु वाऽपौरुषेयो वेदः; तथाप्यसौ व्याख्यातः, अव्याख्यातो  
२५ वा स्वार्थे प्रतीतिं कुर्यात्? न तावद्व्याख्यातः; अतिप्रसङ्गात् ।  
व्याख्यातश्चेत्, कुतस्तद्व्याख्यानम्-स्वतः, पुरुषाद्वा? न ताव-  
त्स्वतः; 'अयमेव मदीयपदवाक्यानामर्थो नाथम्' इति स्वयं  
वेदेनाऽप्रतिपादनात्, अन्यथा व्याख्यामेदो न स्यात् । पुरुषाच्चेत्;  
कथं तद्व्याख्यानात्पौरुषेयादर्थप्रतिपत्तौ दोषाशङ्का न स्यात्?  
३० पुरुषा हि विपरीतमप्यर्थं व्याचक्षाणा दृश्यन्ते । संवादेन प्रामा-

१ इति । २ निजत्वादपौरुषेयत्वम् । ३ वेदे । ४ जैनैः । ५ दिनवत्सीगता-  
नाप्यर्थप्रतीतिं कुर्यात् । ६ वेदस्य जडत्वेन वक्तुमशक्यत्वात् । ७ यदि वेदः  
प्रतिपादयति । ८ अत्रनाविधिनियोगादिः । ९ व्याख्यानानात् । १० व्याख्या-  
नानात् ।

ण्याभ्युपगमे च अपौरुषेयत्वकल्पनाऽनर्थिका तद्वद्वेदस्यापि प्रमाणान्तरसंवादादेव प्रामाण्योपपत्तेः । न च व्याख्यानानां संवादोऽस्ति, परस्परविरुद्धभावनानियोगादिव्याख्यानानामन्योन्यं विसंवादोपलम्भात् ।

किञ्च, असौ तद्व्याख्याताऽतीन्द्रियार्थद्रष्टा, तद्विपरीतो वा ? ५ प्रथमपक्षे अतीन्द्रियार्थदर्शिनः प्रतिषेधविरोधो धर्मादौ चास्य प्रामाण्योपपत्तेः “धर्मे चोदनैव प्रमाणम्” [ ] इत्य-  
वधारणानुपपत्तिश्च ।

अथ तद्विपरीतः, कथं तर्हि तद्व्याख्यानाद्यथार्थप्रतिपत्तिः अय-  
थार्थाभिधानाशङ्कया तदनुपपत्तेः ? न च मन्वादीनां सातिशय-१०  
प्रकृत्याचद्व्याख्यानाद्यथार्थप्रतिपत्तिः, तेषां सातिशयप्रकृत्या-  
सिद्धेः । तेषां हि प्रज्ञातिशयः स्वतः, वेदार्थाभ्यासात्, अदृष्टात्,  
प्रज्ञाणो वा स्यात् ? स्वतश्चेत्, सर्वस्य सादृशेपाभावात् । वेदार्था-  
भ्यासाच्चेत् किं ज्ञातस्य, अज्ञातस्य वा तदर्थस्याभ्यासः स्यात् ?  
न तावदज्ञातस्याऽतिप्रसङ्गात् । ज्ञातस्य चेत्, कुतस्तज्ज्ञातिः-स्वतः, ५१  
अन्यतो वा ? स्वतश्चेत्, अन्योन्याश्रयः-सति हि वेदार्थाभ्यासे  
स्वतस्तत्परिज्ञानम्, तस्मिन् तदर्थ्याभ्यास इति । अन्यतश्चेत्,  
तस्यापि तत्परिज्ञानमन्यत इत्यतीन्द्रियार्थदर्शिनोऽनभ्युपगमेऽ-  
न्धपरम्परातो यथार्थनिर्णयानुपपत्तिः ।

अदृष्टोपि प्रज्ञातिशयाऽसाधकः, तस्यात्मान्तरेपि सम्भवात् । २०  
न तथाविधोऽदृष्टोऽन्यत्र मन्वादावैर्वांस्य सम्भवादिति चेत्,  
कुतोऽत्रैर्वांस्य सम्भवः ? वेदार्थानुष्ठानविशेषाच्चेत्, स तर्हि  
वेदार्थस्य ज्ञातस्य, अज्ञातस्य वाऽनुष्ठानात् स्यात् ? अज्ञातस्य चेत्,  
अतिप्रसङ्गः । ज्ञातस्य चेत्, परस्पराश्रयः-सिद्धे हि वेदार्थ-  
ज्ञानातिशये तदर्थानुष्ठानविशेषसिद्धिः, तत्सिद्धौ च तज्ज्ञानाति-२५  
शयसिद्धिरिति ।

प्रज्ञाणोपि वेदार्थज्ञाने सिद्धे सत्यऽतो मन्वादेस्तदर्थपरिज्ञानाति-  
शयः स्यात् । तच्चास्य कुतः सिद्धम् ? धर्मेविशेषाच्चेत्,—स

१ प्रत्यक्षप्राप्तये प्रत्यक्षं संवादकमनुमेयेयं अनुमानमेव संवादकं परोक्षेऽपि पूर्वो-  
परविरोधः संवादः । २ मीमांसकप्रते । ३ तस्यादतीन्द्रियार्थद्रष्टुः । ४ अतीन्द्रि-  
यार्थद्रष्टुर्विपरीतस्य किञ्चिन्वत् । ५ गोपालादीनामपि वेदार्थस्याभ्यासप्रसङ्गात् ।  
६ पुराणम् । ७ परस्य तव । ८ अवेत् । ९ प्रज्ञातिशयसाधकः । १० प्रज्ञाति-  
शयसाधकादृष्टस्य । ११ प्रज्ञातिशयसाधकादृष्टस्य । १२ गोपालादीनामपि वेदार्था-  
नुष्ठानप्रसङ्गः ।

एवेतरेतराश्रयः-वेदार्थपरिज्ञानाभावे हि तत्पूर्वकानुष्ठानजनित-  
धर्मविशेषानुत्पत्तिः, तदनुत्पत्तौ च वेदार्थपरिज्ञानाभाव इति ।  
तच्चातीन्द्रियार्थदर्शिनाऽनभ्युपगमे वेदार्थप्रतिपत्तिर्घटते ।

- ननु व्याकरणाद्यभ्यासालौकिकपदवाक्यार्थप्रतिपत्तौ तदवि-  
५ शिष्टवैदिकपदवाक्यार्थप्रतिपत्तिरपि प्रसिद्धेरश्रुतकाव्यादिवत्,  
तत्र वेदार्थप्रतिपत्तावऽतीन्द्रियार्थदर्शिना किञ्चित्प्रयोजनम्;  
इत्यप्यसारम्; लौकिकवैदिकपदानामेकत्वेऽप्यनेकार्थत्वव्यवस्थितेः  
अन्यपरिहारेण व्याचिख्यासितार्थस्य नियमयितुशक्तेः । न च  
प्रकरणादिभ्यस्तन्नियमः; तेषामप्यनेकप्रवृत्तेर्द्विसन्धानादिवत् ।  
१० यदि च लौकिकेनाश्रयादिशब्देनाविशिष्टत्वाद्द्वैदिकस्याश्रयादिशब्द-  
स्यार्थप्रतिपत्तिः; तर्हि पौरुषेयेणाविशिष्टत्वात्पौरुषेयोऽसौ कथं न  
स्यात् ? लौकिकस्य श्रयादिशब्दस्यार्थवत्त्वं पौरुषेयत्वेन व्याप्तम् ।  
तत्रायं वैदिकोऽश्रयादिशब्दः कथं पौरुषेयत्वं परित्यज्य तदर्थमेव  
ग्रहीतुं शक्नोति ? उभयमपि हि गृहीयाज्जग्राह्यम् ।

- १५ न च लौकिकवैदिकशब्दयोः शब्दस्वरूपीविशेषे सङ्केतग्रहणस-  
व्यपेक्षत्वेनाऽर्थप्रतिपादकत्वे अनुस्यार्यमाणयोश्च पुरुषेणाऽश्रवणे  
समाने अन्यो विशेषो विद्यते यतो वैदिका अपौरुषेयाः शब्दा  
लौकिकास्तु पौरुषेया स्युः । सङ्केते(ता)नतिक्रमेणार्थप्रत्यायनं  
चोभयोरपि ।

- २० न चापौरुषेयत्वे पुरुषेष्वावशादर्थप्रतिपादकत्वं युक्तम्, उप-  
लभ्यन्ते च यत्र पुरुषैः सङ्केतिताः शब्दास्तं तमर्थमविगानेन  
प्रतिपादयन्तः, अन्यथा तत्सङ्केतमेवपरिकल्पनानर्थक्यं स्यात् ।  
ततो ये नररचितवचनरचनाऽविशिष्टास्ते पौरुषेयाः यथाऽभिनव-  
कूपप्रासादादिरचनाऽविशिष्टा जीर्णकूपप्रासादादयः, नररचित-  
२५ वचनाऽविशिष्टं च वैदिकं वचनमिति ।

न चात्राश्रयासिद्धो हेतुः; वैदिकीनां वचनरचनानां प्रत्यक्षतः  
प्रतीतेः । नाप्यप्रसिद्धविशेषणैः पक्षः; अभिनवकूपप्रासादादौ

- १ आदिना निवण्डः । २ तस्मात्कारणात् । ३ सङ्कल्पे । ४ अन्यावस्य ।  
५ द्विसन्धानकान्यवत् । ६ सङ्कल्पत्वात् । ७ शब्देन । ८ अश्रयादिशब्दस्यार्थवत्त्वे  
पौरुषेयत्वेन व्याप्तेः सति । ९ अपौरुषेयत्वपौरुषेयत्वद्वयम् । १० वैदिकानां शब्दानां  
कक्षेन विशेषोक्तिं ततोऽमीषामपौरुषेयत्वमिलाशङ्काह । ११ समानत्वे । १२ अस्म  
शब्दस्यावयव इति । १३ समाने । १४ समावयम् । १५ वेदे । १६ अर्थे ।  
१७ वैदिकं वचनं यमि पौरुषेयं भवति नररचितवचनरचनाऽविशिष्टत्वात् । १८ अनु-  
माने । १९ अवगणेन । २० स्वमतापेक्षया । २१ साध्यं पौरुषेयत्वम् । २२ सपक्षे ।

पुरुषपूर्वकत्वेनास्य साध्यविशेषणस्य सुप्रसिद्धत्वात् । न च हेतोः स्वरूपासिद्धत्वम् ; तद्वचनरचनासु विशेषैर्ग्राहकप्रमाणाभावेनास्याऽभावात् ।

न चाप्रामाण्याभावलक्षणो विशेषस्तत्रेत्यभिधातव्यम् ; तस्य विद्यमानस्यापि तन्निराकारकत्वाभावात् । यादृशो हि विशेषः ५ प्रतीयमानः पौरुषेयत्वं निराकरोति तादृशस्यास्याऽभावादऽविशिष्टत्वम् न पुनः सर्वथा विशेषाभावात्, एकांस्तेनाऽविशिष्टस्य कस्यचिद्वस्तुनोऽभावात् । अप्रामाण्याभावलक्षणश्च विशेषो दोषवन्तमप्रामाण्यकारणं पुरुषं निराकरोति न गुणवन्तमप्रामाण्यनिवर्त्तकम् । न च गुणवतः पुरुषस्याभावादन्वस्य चानेन १० विशेषेण निराकृतत्वात्सिद्धमेवापौरुषेयत्वं तत्रेत्यभ्युपगन्तव्यम् ; तत्सद्भावस्य प्रकृतिपादितत्वात् । तदभावेऽप्रामाण्याभावलक्षणविशेषाभावप्रसङ्गाच्च ।

पौरुषेये प्रासादादौ हेतोर्दर्शनादपौरुषेये चाकाशादावऽदर्शनाज्ञानैकान्तिकत्वम् । अत एव न विरुद्धत्वम् ; पक्षधर्मत्वे हि सति १५ विपक्षे वृत्तिर्यस्य स विरुद्धः, न चासौ विपक्षे वृत्तिः । नापि कालात्ययापदिष्टत्वम् ; तद्धि हेतोः प्रत्यक्षागमवार्धितकर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्तं भवतेष्यते । न च यत्र स्वसाध्याविनाभूतो हेतुर्धर्मिणि प्रवर्त्तमानः स्वसाध्यं प्रसाधयति तत्रैव प्रमाणान्तरं प्रवृत्तिमासाद्यत्तमेव धर्मं व्यावर्त्तयति, पैकस्यैकदैकत्र विधिप्रतिषेधयोः २० विरोधात् । प्रकरणसमत्वमपि प्रतिहेतोर्विपरीतधर्मप्रसाधकस्य प्रकरणचिन्ताप्रवर्त्तकस्य तत्रैव धर्मिणि सद्भावोऽभिधीयते । न च स्वसाध्याविनाभूतहेतुप्रसाधितधर्मिणो विपरीतधर्मोपेतत्वं सम्भवतीति न विपरीतधर्मार्थायिनो हेत्वन्तरस्य तत्र प्रवृत्तिरिति । तन्न वेदपदवाक्यैर्योनित्यत्वं घटते ।

२५

१ पौरुषेयत्वम् । २ लौकिकं नररचितरचनाऽविशिष्टं वैदिकं नेति भेदः । ३ पौरुषेयत्वम् । ४ वैदिकलौकिकशब्दयोरभिन्नत्वम् । ५ अविविक्तत्वम् । ६ सर्वथा वैदिकलौकिकशब्दयोरविरोधादभेदो गमिष्यतीत्युक्ते आह । ७ सर्वप्रकरणे । ८ अभेदरूपम् । ९ वैदिकलौकिकशब्दयोरतीन्द्रियार्थेन्द्रियार्थप्रतिपादकत्वाद्भेदो यतः । १० वेदे । ११ सर्ववृत्तिद्विप्रसाधने । १२ यथा शब्दो निलः कृतकत्वादिति कृतकत्वस्य शब्दधर्मत्वेन निलात्साध्याविपरीतेऽनिले विपक्षे वृत्तिमत्त्वाद्भिरुक्तः । १३ हेतोः । १४ पक्षः । १५ शक्तिक्रियाविषयत्वात्कर्मत्वमिधानम् । १६ प्रत्यक्षागमलक्षणम् । १७ धर्मस्य । १८ प्रतिपक्षसाधकस्य । १९ सत्यवात्ममूल्यानिश्चयात्पर्यालोचना । २० सत्यतिपक्षो द्येः प्रकरणसम इति वचनात् । २१ प्रसाधकस्य । २२ विधिप्रतिषेधरूपयोः ।

नापि वर्णानां कृतकत्वतः शब्दमात्रस्यानित्यत्वसिद्धौ तेषामप्य-  
नित्यत्वसिद्धौ तेषामप्यनित्यत्वोपपत्तेः । तथाहि-अनित्यः शब्दः  
कृतकत्वाद् घटवत् । न च कृतकत्वमसिद्धम् ; तथाहि-कृतकः  
शब्दः कारणान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्तद्वदेव । न चेदमप्य-  
५ सिद्धम् ; तात्वादिकारणव्यापारे सत्येव शब्दस्यात्मलाभप्रतीति-  
स्तदभावे वाऽप्रतीतिः, चक्रादिव्यापारसङ्गात्वासङ्गावयोर्घटस्या-  
त्मलाभात्प्रतीतिवत् ।

ननु शब्दस्याऽनित्यत्वोपगमे ततोर्थप्रतीतिर्न स्यात्, अस्ति  
चासौ । ततो 'नित्यः शब्दः स्वार्थप्रतिपादकत्वान्यथानुपपत्तेः' इत्य-  
१० भ्युपगन्तव्यम् । स्वार्थेनावगतसम्बन्धो हि शब्दः स्वार्थं प्रतिपाद-  
यति, अन्यथाऽगृहीतसङ्केतस्यापि प्रतिपत्तुस्ततोऽर्थप्रतीतिप्रसङ्गः ।

सम्बन्धावगमश्च प्रमाणत्रयसम्पाद्यः, तथाहि-यदैको ब्रह्मोऽ-  
न्यसौ प्रतिपन्नसङ्केताय प्रतिपादयति-‘देवदत्तं नामभ्याजं शुक्लं  
दण्डेन’ इति, तदा पार्श्वस्थान्योऽव्युत्पन्नसङ्केतः शब्दाद्यौ प्रत्य-  
१५ संतः प्रतिपद्यते, श्रोतुंश्च तद्विषयक्षेपणंदिचेष्टोपलम्भानुमीनतो  
गवादिविषयां प्रतिपत्तिं प्रतिपद्यते, तत्प्रतिपत्त्यन्यथानुपपत्त्या  
च तच्छब्दस्यैव तत्र वाचिकां शक्तिं परिकल्पयति पुनः पुनस्त्वि-  
च्छब्दोच्चारणादेव तदर्थस्य प्रतिपत्तेः । सोऽयं प्रमाणत्रयसम्पाद्यः  
२० पुनः पुनरुच्चारणं घटते, तदभावे नान्वयव्यतिरेकाभ्यां वाचक-  
शक्त्यवगमः, तदसत्त्वान्न प्रेक्षावद्भिः परावबोधाय वाक्यमुच्चा-  
र्येत । न चैवम् । ततः परार्थवाक्योच्चारणान्यथानुपपत्त्या निश्ची-  
यते नित्योसौ ।

तदुक्तम्-“दर्शनस्य परार्थत्वाच्चित्यः शब्दः” [जैमिनिस् ० १।१८]

२५ अथ मतम्-पुनः पुनरुच्चार्यमाणः शब्दः सादृश्यादेकत्वेन  
निश्चीयमानोऽर्थप्रतिपत्तिं विदधाति न पुनर्नित्यत्वात्, तदसमी-

२ नित्यत्वमन्तरेण । २ जेनेन त्वया । ३ गृहीतः । ४ प्रत्यक्षानुमानार्थावतीति ।  
५ पूर्व श्लोके सकाशात् । ६ ना । ७ मालकाय । ८ सुतीपः । ९ गुरुसन्निधौ  
गंगानयनसमये । १० गोशब्दं आनयप्रत्यक्षेण, गोकृष्णमयं नायनप्रत्यक्षेण । ११ वं  
श्वेतदत्तं प्रति वाक्यं प्रोक्तं तस्य । १२ आदिना तादृगन्तरेणादि । १३ सुतीपः ।  
१४ क्षिप्तो गोकृष्णार्थं ज्ञानवान् तद्विषयचेष्टाकल्पान्मदत् । १५ गोशब्दो गोकृ-  
ष्णार्थवाचकशक्तियुक्तो गोप्रतीत्यन्यथानुपपत्तेरिति । १६ यो इति । १७ अनित्यस्य  
शब्दस्य । १८ गोशब्दे उच्चारिते गोकृष्णार्थप्रतिपत्तिर्भवति, अनुच्चारिते गोकृष्णार्थ-  
प्रतिपत्तिर्न भवतीति । १९ वाचकशक्त्यवगमस्य । २० शब्दः । २१ उच्चारणस्य ।  
२२ षटोऽयं मुनर्देशकान्तरे षटोऽयमिति ।

चीनम्; सादृश्येन ततोर्थाऽप्रतिपत्तेः । न हि सदृशतया शब्दः प्रतीयमानो वाचकत्वेनाव्यवसीयते किन्त्वेकत्वेन । य एव हि सम्बन्धग्रहणसमये मया प्रतिपन्नः शब्दः स एवायमिति प्रतीतेः ।

किञ्च, सादृश्यादर्थप्रतीतौ भ्रान्तः शाब्दः प्रत्ययः स्यात् । न ह्यन्यस्मिन्नगृहीतसङ्केतेऽन्यस्मादर्थप्रत्ययोऽभ्रान्तैः, गोशब्दे ५ गृहीतसङ्केतेऽश्वशब्दाद्भवार्थप्रत्ययेऽभ्रान्तत्वप्रसङ्गात् । न च भूयोऽवयवसाम्ययोगीस्वरूपं सादृश्यं शब्दे सम्भवति, विशिष्ट-वर्णात्मकत्वाच्छब्दानां वर्णानां च निरवयवत्वात् । न च गत्वादि-विशिष्टानां गौदीनां वाचकत्वं युक्तम्; गत्वादिसामान्यस्याऽभावात्, तदभावश्च गादीनां नीनात्वायोगात्, सोऽपि प्रत्यभिज्ञया १० तेषामेकत्वनिश्चयात् । न चात्र प्रत्यभिज्ञा सामान्यनिवन्धना, भेदे निष्ठस्य सामान्यस्यैव गौदिष्वसम्भवौत् ।

किञ्च, गत्वादीनां वाचकत्वम्, गादिव्यक्तीनां वा? न तावद्गत्वादीनाम्; नित्यस्य वाचकत्वेऽसंभ्रमताश्रयणप्रसङ्गात् । नापि गादिव्यक्तीनाम्; तथा हि-गादिव्यक्तिविशेषो वाचकः, व्यक्तिमात्रं वा? १५ न तावद्गादिव्यक्तिविशेषः, तस्यानन्वयात् । नापि व्यक्तिमात्रम्; तद्धि सामान्यान्तःपाति, व्यत्यन्तभूतं वा? सामान्यान्तःपातित्वे स एवासंभ्रमताश्रयः । व्यत्यन्तभूतत्वे तदवस्थोऽनन्वयदोष इति । तैतोऽर्थप्रतिपौदकत्वान्यथानुपपत्तेर्नित्यः शब्दः । तदुक्तम्—

“अर्थापत्तिरियं चोक्ता पक्षधर्मादिर्विजिर्ता ।

२७

१ उत्तरः । २ एकत्वान्नित्यम् । ३ ज्ञानम् । ४ शब्दे । ५ शब्दात् । ६ अन्यत्वाऽविशेषात् । ७ अन्यथा । ८ नष्टे सति । ९ गृहीतसङ्केतशब्दस्य गृह्यत्वात् । १० बहु । ११ सन्तत्य । १२ सामान्यम् । १३ सादृश्यवधर्मरहितैकत्वधर्मः, स एव विशेषस्तेनोपलक्षितो वर्णः, स आत्मा स्वरूपं यस्य शब्दस्य । १४ वर्णानां पुद्गलात्मकत्वात् शब्दस्य च वर्णात्मकत्वाच्छब्दे तथाविधं सादृश्यं अविध्यतीत्यारोकायामाह । १५ निरुद्धत्वात् । अद्याभावे किं केन सादृश्यं स्यात्? । १६ अत्वादिना च । १७ अकारादीनां च । १८ अनेकसम्भवेतत्वात्सामान्यस्य । १९ स एवार्थं गकार इति । २० गत्वादि । २१ विशेष । २२ अभेदरूपेषु । २३ गकार यत्न एवेति गमेदाभावात् । २४ सामान्यरूपाणाम् । २५ अन्यथानुपपत्तिरसिद्धेत्युक्ते आह । २६ गोमिष्टस्य । २७ भीमासक । २८ सङ्केतकाले गृहीतस्य शब्दस्य व्यवहारकाले आगमनाभावात् सङ्केतव्यवहारशब्दयोर्भेदो यतः । २९ सामान्यस्य नित्यत्वात् । ३० विपक्षेऽनित्यत्वे शब्दस्यार्थप्रतिपादकत्वं न षट्ठे यतः । ३१ वाचकसामर्थ्यमित्यर्थः । ३२ आदिना संपक्षे सरसम् । ३३ अर्थापत्तौ पक्षधर्मादीनां प्रयोजनं नास्ति यतः ।

- यदि नाशिनित्ये वा विनाशिन्येव वा भवेत् ॥ १ ॥  
 शब्दे वाचकसामर्थ्यं ततो दूषणमुच्यताम् ।  
 फलवद्यवहाराङ्गभूतार्थप्रत्ययाङ्गता ॥ २ ॥  
 निष्फलत्वेन शब्दस्य योग्यत्वादवगम्यते ।  
 ५ परीक्षमाणस्तेनोस्य युक्त्या नित्यविनीशयोः ॥ ३ ॥  
 स धर्मोऽभ्युपगन्तव्यो यः प्रधानं न बाधते ।  
 न ह्यङ्गोऽङ्गोऽनुरोधेन प्रधानफलबाधनम् ॥ ४ ॥  
 युज्यते नाशिपक्षे च तदैकान्तात्प्रसज्यते ।  
 न ह्यद्वैतार्थसम्बन्धः शब्दो भवति वाचकः ॥ ५ ॥  
 १० तथा च स्यादपूर्वोपि सर्वः सर्वं प्रकाशयेत् ।  
 सम्बन्धदर्शनं चैतस्य नाऽनित्यस्योपपद्यते ॥ ६ ॥  
 सम्बन्धज्ञानेनैतद्विभक्त्यैव कालान्तरस्थितिः ।  
 अन्यस्मिन् ज्ञातसम्बन्धे न चान्यो वाचको भवेत् ॥ ७ ॥  
 गोशब्दे ज्ञातसम्बन्धे नाऽश्वशब्दो हि वाचकः ।  
 १५ [ मी० ग्लो० शब्दनि० ग्लो० २३७-२४४ ] इति ।  
 अथ विभिन्नदेशादितैर्योपलभ्यमानत्वाद्भकारादीनां नानात्वा-  
 ऽनित्यत्वे साध्येते; तन्न; अनेकप्रतिपत्तुभिर्विभिन्नदेशादितयो-  
 पलभ्यमानेनादित्येनानेकान्तात् । विभिन्नदेशादितयोपलभ्यमानैषां  
 व्यञ्जकभवन्यधीनो, न स्वरूपमेव निवन्धनः । तदुक्तम्—  
 २० “नित्यत्वं व्यापकत्वं च सर्ववर्णेषु संस्थितम् ।  
 प्रत्यभिज्ञानतो मौनाद्वाधसंज्ञमचर्जितात् ॥ १ ॥” [ ]

१ अर्थोपपत्तिरेवास्तीति तत्त्वान्यथासिद्धत्वन्यपेक्ष सिद्धत्वं वा सादित्युक्ते आह ।  
 २ उभयात्मके । ३ केवलेऽनित्ये । ४ मिलानिलारूपके केवलेऽनित्ये शब्दे वाचक-  
 सामर्थ्यस्य नर्तमानात् । ५ न चैवमिति भावः । ६ फलवाङ्मयासौ प्रवृत्तिनिवृत्ति-  
 लक्षणव्यवहारश्च तस्याङ्गमूर्तं कारणमूर्तं च तदर्थप्रत्ययश्च, तस्याङ्गता कारणता  
 शब्दस्य । ७ अन्यथा । ८ हेतुना । ९ अर्थप्रतीतिः लक्षणफलराहित्ये । १० अर्थ-  
 प्रतिपत्तिः । ११ लक्षप्रकारेण सफलत्वभावात् शब्दस्येति प्रकृतं भवतु को दोष  
 इत्युक्ते आह परीक्षेत्यादि । १२ फलवत्त्वं सिद्धं शब्दस्य येन कारणेन । १३ द्वयो-  
 र्धर्मयोर्मध्ये । १४ नित्यफललक्षणः । १५ नित्यधर्मस्य फलम् । १६ नित्यत्वं  
 वाचकं भविष्यति प्रधानफलस्येत्युक्ते आह न हीत्यादि । १७ कारण । १८ भावेन ।  
 १९ लक्षणतः । २० अर्थप्रतीतिः लक्षणमुख्यफलस्य । २१ नित्यपक्षवत्तादिति  
 प्रधानफलभावनं नास्तीत्युक्ते आह । २२ नियमेन । २३ अशातार्थ । २४ शब्दस्य ।  
 २५ गृहीतसम्बन्ध एव प्रलक्षोक्तिर्याह । २६ अवश्यम् । - २७ शब्दस्य काल-  
 न्तरस्थितिपक्षे । २८ आदिना कालः । २९ ग्राहयो धर्मिणो नाना अनित्याश्च भवन्ति  
 विभिन्नदेशकालत्वादित्यनुमानेन । ३० प्रमाणात् । ३१ संगमः=संबन्धः ।

“शो यो गृहीतः सर्वस्मिन्देशे शब्दो हि विद्यते ।  
 न चास्याऽवयवाः सन्ति येन वर्त्तत भागशः ॥ २ ॥  
 शब्दो वर्त्तत इत्येव तत्र सर्वात्मकश्च सः ।  
 व्यञ्जकध्वन्यऽधीनत्वात्तद्देशे स च गृह्यते ॥ ३ ॥  
 न च ध्वनीनां सामर्थ्यं व्याप्तुं व्योम निरन्तरम् ।  
 तेनाऽविच्छिन्नरूपेण नासौ सर्वत्र गृह्यते ॥ ४ ॥  
 ध्वनीनां भिन्नदेशत्वं श्रुतिस्तत्रानुरुध्यते ।  
 अपुरितान्तरालत्वाद्भिच्छेदश्चावसीयते ॥ ५ ॥  
 तेषां चाल्पकदेशत्वाच्छब्देऽप्यविश्रुतामतिः ।  
 गतिमद्वेगवत्त्वाभ्यां ते चायान्ति यतो यतः ॥ ६ ॥  
 श्रोता ततस्ततः शब्दमायान्तमिव मन्यते ।”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७२-१७५ ]

अथैकेन भिन्नदेशोपलम्भाद् घटादिवज्जानात्वम्; न; आदित्ये-  
 नानेकान्तात् । इदम्यते श्लोकेनादित्यो भिन्नदेशः, न चैतावतासौ  
 नाना । अथ ‘युगपदेकेन भिन्नदेशोपलब्धेः’ इति विशेष्योच्यते । १५  
 तथाप्यनेनैवानेकान्तः । जलपात्रेषु हि भिन्नदेशेषु सवितैकोप्ये-  
 केन युगपद्भिन्नदेशो गृह्यते । उक्तं च—

“सूर्यस्य देशभिन्नत्वं न त्वेकेन न गृह्यते ।  
 न नाम सर्वथा तावद्दृष्ट्यानेकदेशता ॥ १ ॥  
 सविशेषेण हेतुश्चेत्तथापि व्यभिचारिता ।  
 ईदम्यते भिन्नदेशोयमित्येकोपि हि बुध्यते ॥ २ ॥  
 जलपात्रेषु चैकेन नानैकः सवितेक्ष्यते ।  
 युगपन्ने च भेदेऽस्य प्रमाणं तुल्यवेदर्नात् ॥ ३ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७६-१७८ ]

१ प्रलम्बिजानाच्छब्दस्य व्यापकत्वं कथमित्युक्ते आह । २ अवयवसङ्ग्राहात्  
 लक्ष्यशो वर्त्तते इत्युक्ते आह । ३ भागशो न वर्त्तते तर्हि कथं वर्त्तते इत्युक्ते आह ।  
 ४ सर्वत्र विद्यते चेत्तर्हि सर्वत्रैवोपलम्भात् सादित्युक्ते आह । ५ ध्वनयोपि सकलदेशं  
 कथं न व्याप्नुवन्तीत्युक्ते आह । ६ जानादेशेषूपलम्बनानन्तरम् । ७ शब्दध्वनयम् ।  
 ८ शब्दध्वन्यवक्रतायूनान् । ९ अत एव अवगम्यनिचारो इदम्यते । १० गतिः=  
 त्रिकारूपा । वेगः=सत्कारनिश्चयः । ११ भिन्नदेशश्चेदुपलभ्यते तदा भिन्नदेशो  
 भविष्यतीत्युक्ते आह नेति । १२ सूर्यस्य । १३ युगपदिति । १४ कथं व्यभिचारो  
 इदम्यते इत्युक्ते आह । १५ एकः सूर्यो भिन्नदेशतया कथं बुध्यते इत्युक्ते आह ।  
 १६ एवं चेत्तर्हि सूर्यो नानारूपो भविष्यतीत्युक्ते आह । १७ आदित्य आदित्य इति  
 समानरूपत्वेनैवनादेवैरेकं प्रमाणमित्युज्जुनीयते । न चास्य भेदे प्रमाणं किञ्चिदित्यर्थः ।



कश्चिदाह—न तत्र सवितेक्ष्यते तस्य नभसि व्यवस्थानात्,  
तन्निमित्तानि तु तेषु प्रतिबिम्बानि प्रतीयन्ते, ततो नानेकान्तः ।

“आहैकेन निमित्तेन प्रतिपात्रं पृथक् पृथक् ।

भिन्नानि प्रतिबिम्बानि गृह्यन्ते युगपन्मया ॥ १ ॥”

५

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७९ ]

एतत्कुमारिलः परिहरन्नाह—

“अत्र ब्रूमो यदा यावज्जले सौर्येण तेजसां ।

स्फुरता चाक्षुषं तेजः प्रतिचोर्तः प्रवर्तितम् ॥ १ ॥

संदेशमेव गृह्णाति सवितारमनेकधा ।

२० भिन्नमूर्त्तिं यथापात्रं तदास्यानेकता कुतः ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८०-१८१ ]

यथा च प्रदीपः ।

“ईर्षत्सम्मिलितेऽङ्गुल्या यथा चक्षुषि दृश्यते ।

पृथगेकोपि भिन्नत्वाच्चक्षुर्वृत्तेस्तथैव नः ॥ १ ॥

१५

अन्ये तु बोदयन्त्यत्र प्रतिबिम्बोदयेषिणः ।

स एव चेत्प्रतीयेत कस्मान्नोपरि दृश्यते ॥ २ ॥

कूपादिषु कुतोऽघस्तात्प्रतिबिम्बाद्विनेक्षणम् ।

प्राक्तुल्यो दर्पणं पश्यन् स्याच्च प्रत्यक्षुषः कथम् ॥ ३ ॥

तत्रैव बोधयेदर्थं बहिर्यातं यदीन्द्रियम् ।

२० तत एतद्भवेदेवं शरीरे तत्तु बोधकम् ॥ ४ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८२-१८५ ]

अत्राह—

“अप्सूर्यदर्शिनां नित्यं द्वेष्टा चक्षुः प्रवर्तते ।

एकमूर्द्धमघस्ताच्च तत्रोर्ध्वोऽप्रकाशितम् ॥ १ ॥

२५

अधिष्ठानानुजुत्वाच्च नात्मा सूर्यं प्रपद्यते ।

पारम्पर्यार्पितं स तमर्वागवृत्त्या तु बुध्यते ॥ २ ॥

१ जैनादिः । २ स सूर्यो निमित्तं तेषां तानि । ३ चक्षुः । ४ नानात्वेन ।  
५ क्रियाविशेषणमेतत् । ६ पात्राण्यनतिक्रम्य । ७ यदा दृश्यते । ८ अमेतन्कोक-  
नतर्यथाशब्दः केन सह संबन्धनीय इत्यन्वयात् । ‘यथा च प्रदीपः’ शब्द उक्तः ।  
९ एक एव सविता नाना कर्म दृश्यते इत्याह ईषदिति । १० नानारूपेण ।  
११ चक्षुःप्रवृत्तिर्नारूपास्ति यत इत्यर्थः । १२ नः=अस्माकमभि, तत्रैव=प्रदीप-  
प्रकारेणैव । एकोप्यादिलो नानात्वेन दृश्यते चक्षुषः प्रवृत्तेर्भिन्नत्वात् । १३ कूपादिषु  
कुत इत्यस्य समाधानमिदममेतन्मयम् ।

ऊर्ध्ववृत्ति तदेकत्वादवागिव च मन्यते ।  
 अधस्तादेव तेनार्कः सान्तरालः प्रतीयते ॥ ३ ॥  
 एवं प्रागर्तया वृत्त्या प्रत्यग्वृत्तिसमर्पितम् ।  
 बुध्यमानो मुखं भ्रान्तेः प्रत्यगित्यवगच्छति ॥ ४ ॥  
 'अनेकदेशवृत्तौ च सत्यपि प्रतिविम्बके ।  
 समानबुद्धिगम्यत्वान्नानात्वं नैव विद्यते ॥ ५ ॥'  
 [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८६-१९० ]

किञ्च,

"देशभेदेन भिन्नत्वं यत् तच्चानुमानिकम् ।  
 प्रत्यक्षस्तु स एवेति प्रत्ययस्तेन बाधकः ॥ ६ ॥  
 पर्यायेण यथा चैको भिन्नदेशान् ब्रजन्नपि ।  
 देवदत्तो न भिद्येत तथा शब्दो न भिद्यते ॥ ७ ॥  
 क्वातैकत्वो यथा चासौ दृश्यमानः पुनः पुनः ।  
 न भिन्नः कालभेदेन तथा शब्दो न देशतः ॥ ८ ॥  
 पर्यायादविरोधंश्चेद्व्यापित्वादपि दृश्यताम् ।  
 दृष्टसिद्धो हि यो धर्मः सर्वथा सोऽभ्युपेयताम् ॥ ९ ॥"  
 [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९७-२०० ] इति ।

अत्र प्रतिविधीयते । नित्यः शब्दोऽर्थप्रतिपादकत्वान्यथानुपप-  
 त्तेरित्युक्तम्; धूमादिवदनित्यस्यापि शब्दस्यावगतसम्बन्धस्य  
 सादृश्यतोऽर्थप्रतिपादकत्वसम्भवात् । न खलु य एव सङ्केतकाले २०  
 दृष्टस्तेनैवार्थप्रतीतिः कर्त्तव्येति नियमोस्ति, महानसदृष्टधूमस-  
 दृशादपि पर्वतधूमादग्निप्रतिपत्त्युपलम्भात् । न हि महानसप्रदे-  
 शोपलब्धैव धूमव्यक्तिरेन्यत्रान्याग्निं गमयति; सदृशपरिणामा-  
 क्रान्तव्यत्ययन्तरस्य तन्नमकत्वप्रतीतिः, अन्यथा सर्वस्य सर्वगत-  
 त्वानुपपन्नः । सदृशपरिणामप्रधानतया च साध्यसाधनयोः २५  
 सम्बन्धावधारणम् । न ह्यनाश्रितसमानपरिणतीनां निखिलधूमा-  
 दिव्यक्तीनां स्वसाध्येनाऽवर्गदृशा सम्बन्धः शक्यो गृहीतुम्;

१ गच्छता । २ संमुखम् । ३ सर्वस्योपलम्भद्वारेण । ४ इत्यस्यापि प्रतिविम्बके  
 सर्वस्योपलम्भद्वारेणानेकदेशवृत्तिकं तत्त्वानैकान्तिकत्वं प्रकृतसाधनस्यानेनेति चेन्न  
 तस्यापि नानात्वसंभवात् इति वदन्तं प्रति । ५ यवमनेकान्तद्रूपणमुद्राण्य काल-  
 तयापदिष्टत्वमुद्गावयति । भिन्नदेशसैकत्वं नास्तीति प्रत्यक्षं कथमनुमानबाधकमित्युक्ते  
 चेद । ६ गन्धरादीनाम् । ७ कारणेन । ८ कालक्रमेण । ९ व्यवहारकाले ।  
 १० समानत्वमित्यर्थः । ११ अग्निधूमयोः शब्दार्थयोश्च । १२ शब्दप्रकरणेन  
 शब्दव्यक्तिर्भवति पक्षे शब्दत्वादिति वक्तव्यम् । १३ असर्वत्रेन ।

असाधारणरूपेण तस्य तासामप्रतिभासनात्, अथ धूमसामान्य-  
मेवाग्निप्रतिपत्तिकारणम्; न; व्यक्तिसादृश्यव्यतिरेकेण तद-  
सम्भवात् । न च 'धूमत्वान्मया प्रतिपन्नोऽग्निः' इति प्रतिपत्तिः,  
किन्तु धूमात् । सा च सामान्यविशिष्टव्यक्तिमात्रयोः सम्बन्ध-  
५ ग्रहणे घटते । न तु धूमाग्निसामान्ययोरवश्यं चानुमेयानुमाप-  
कयोः सामान्यविशिष्टविशेषरूपतोपगन्तव्या, अन्यथा सामान्य-  
मात्रस्य दाहाद्यर्थक्रियासाधकत्वाऽभावात् ज्ञानाद्यर्थक्रियायाश्च  
तत्साध्यायास्तदैवोत्पत्तेः, दाहाद्यर्थिनामनुमेयार्थप्रतिभासात्  
प्रवृत्त्यभावातोऽस्यैवामाण्यप्रसङ्गः । सामान्यविशिष्टविशेषरूपता  
१० चात्र वाच्यवाचकयोरपि समाना न्यायस्य समानत्वात् ।

यदप्युक्तम्—

“सदृशत्वात्प्रतीतिश्चेत्तद्द्वारेणाप्यवाचकः ।

कस्य चैकस्य सादृश्यत्कल्प्यतां वाचकोऽपरः ॥ १ ॥

अदृष्टसङ्गतत्वेन सर्वेषां तुल्यता यदा ।

१५ अर्थवैतन्पूर्वदृष्टश्चेत्तस्य तावान्क्षणः कुतः ॥ ३ ॥

द्विस्तावानुपलब्धो हि अर्थवान्सम्प्रतीयते ।”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४८-२५० ]

इत्यादि; तदप्यसारम्; अनुमानवाचोच्छेदप्रसङ्गात् । धूमादि-  
लिङ्गात्पूर्वोपलब्धधूमादिसादृश्यतोऽप्यादिसाध्यप्रतिपत्तावप्यस्य  
२० सर्वस्य समानत्वात् ।

एतेनैवमपि प्रत्युक्तम्—

“शब्दं तावदनुच्चार्य सम्बन्धैर्करणं कुतः ।

न चोच्चारितनष्टस्य सम्बन्धेन प्रयोजनम् ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २५६ ] इत्यादि ।

२५ यतोऽदृष्टे धूमे सम्बन्धो न शक्यते कर्तुम् । नापि दृष्टनष्टस्यास्य  
सम्बन्धेन प्रयोजनं किञ्चित् ।

१ शब्दपक्षे शब्दसामान्यमेवार्थप्रतिपत्तिकारणमिति वाच्यम् । २ धूमसामान्यात् ।  
३ सादृश्यपरिणामविशिष्टा व्यक्तिरेव भावा स्वरूपं ययोः साध्यसाधनयोरुक्तयोः ।  
४ साध्यसाधनयोः । ५ शब्दसोच्चारणसमये, अग्न्याद्यनुमानसमये च । ६ विज्ञेये  
पर्वतादौ । ७ सामान्यस्य । ८ नहीत्यादिपूर्वोक्तस्य । ९ सकेतकाजोपलब्धशब्देन  
व्यवहारकाजोपलब्धशब्दस्य । १० तदेति शेषः । कथमवाचक इत्युक्ते कसेसाह ।  
कस्य=सकेतकाजोपलब्धस्य । ११ व्यवहारकाजोपलब्धः शब्दः । १२ अदृष्ट-  
सम्बन्धेन । १३ शब्दज्ञानम् । १४ वाच्यवाचकसंबन्धवात् शब्दः । १५ दिवारात् ।  
१६ बाष्पेन सह । १७ बाष्पेनाग्निना सह ।

यच्च सादृश्ये दूषणमुक्तम्—

“तथा भिन्नमभिन्नं वा सादृश्यं व्यक्तिो भवेत् ।

एवमेकमनेकं वा नित्यं वानित्यमेव वा ॥ १ ॥

भिन्नं चैकत्वनित्यत्वे जातिरेव प्रकल्पिता ।

व्यक्त्यऽनन्यद्वयैकं च सादृश्यं नित्यमिष्यते ॥ २ ॥

व्यक्तिनित्यत्वमापन्नं तथा सत्यसैदीहितम् ।”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७१-२७३ ] इत्यादि;

तदप्ययुक्तम्: स्वहेतोरेकस्य हि यादृशः परिणामस्तादृश एवा-  
परस्य सादृश्यम्, न तु स एव । सै च व्यक्तिभ्यो भिन्नोऽभि-  
न्नश्च, तथाप्रतीतेः । न च जातिस्तथाभूता; नित्यव्यापित्वेनाभ्यु-१०  
पगमात् । तथाभूताभ्यासाः सामान्यनिराकरणे निराकरिष्यमाण-  
त्वात् । ततः प्रवृत्तिमिच्छता लिङ्गाच्छब्दाद्वा न सामान्यमात्रस्य  
प्रतिपत्तिरभ्युपगन्तव्या ।

ननु सामान्यस्य विशेषमन्तरेणानुपपत्तितो लक्षितलक्षणाया  
विशेषप्रतिपत्तेर्न प्रवृत्त्याद्यभावात्पङ्कः; इत्यप्रातीतिकम्; कमप्र-१५  
तीतेरभावात् । न हि वाचकोद्भूतवाच्यप्रतिभासे प्राक् सामान्या-  
वभासः पश्चाद्विशेषप्रतिभास इत्यनुभवोस्ति ।

किञ्च, सामान्याद्विशेषः प्रतिनियतेन रूपेण लक्ष्येत, साधा-  
रणेन वा ? न तावदाद्यः पक्षः; प्रतिनियतरूपतयाऽस्याऽप्रतीतेः ।  
न हि शब्दोच्चारणवेलायां जातिपरिमितो विशेषोऽसाधारण-२०  
रूपतयाऽनुभूयते प्रत्यक्षप्रतिभासाऽविशेषप्रसङ्गात् । प्रतिनिय-  
तरूपेण जातेरविनाभावाभावाच्च कुतस्तथा तस्य लक्षणम् ? नापि  
द्वितीयः; साधारणरूपतया प्रतिपन्नस्यापि विशेषस्यार्थक्रिया-  
कारित्वाऽसामर्थ्येन प्रवृत्त्यहेतुत्वात्, प्रतिनियतस्यैव रूपस्य  
तत्र सामर्थ्योपलब्धेः । पुनरपि साधारणरूपतातो विशेष-२५  
प्रतिपत्तावनवस्था स्यात् । साधारणरूपतया चातो विशेष-

१ तथाशब्दः समन्यापेक्षया दूषणान्तरसमुच्चये । २ अनेकं सादृश्यं चेत्तत्किं  
नित्यमनित्यं वा ? अनित्यं चेन्न संन्यप्रतिपत्तिः । नित्यं चेत्तदेकैव सादृश्ये-  
नार्थप्रतिपत्तिपत्तेरनेकनिष्ठसादृश्यपरिकल्पनं व्यर्थम् । ३ परोक्षां परिहारमाह ।  
४ असमिधैः । ५ ब्रूमादेः । ६ ब्रूमादेः । ७ सादृश्यपरिणामः ।  
८ भिन्नाभिन्नत्वप्रकारेण । ९ भिन्नाभिन्नरूपा । १० परेण त्वया । ११ सामान्य-  
साधुनेयरूपत्वे प्रवृत्तिर्न षट्त्वे यतः । १२ सामान्यस्य विशेषनिष्ठत्वात् । १३ सामा-  
न्यवन्तिप्रतिपत्त्या । १४ सामान्यस्य नित्यसर्वगतत्वात् । १५ पूर्वोक्तस्य समर्थन-  
नेवम् । १६ अन्येति शेषः । १७ शानम् ।

प्रतिपत्तौ सामान्यात्सामान्यप्रतिपत्तौ सामान्यप्रतिपत्तिरेव स्यान्न विशेषप्रतिपत्तिः, साधारणरूपतायाः सामान्यस्वभावात् ।

किञ्च, यदि नाम शब्दाज्जातिः प्रतिपन्ना व्यक्तेः किमायातम्, येनासौ तां गमयति ? तयोः सम्बन्धाच्चेत् ; सम्बन्धस्तयोस्तदा प्रतीयते, पूर्वं वा ? न तावत्तदा, व्यक्तेरनधिगतेः 'जातिरेव हि केवला तदा प्रतिभासते' इत्यभ्युपगमात्, अन्यथा किं लक्षितलक्षणया ? न च व्यक्त्यनधिगमे तत्सम्बन्धाधिगमः, द्विष्टत्वात्तस्य । अथ पूर्वमसौ प्रतीयः, तथापि तदेवासौ भवतु । न ह्येकदा तत्सम्बन्धेऽन्यदाप्यसौ भवत्यतिप्रसङ्गात् । न च जातेः विशेषनिष्ठतैव स्वरूपम्, व्यक्त्यन्तराले तत्स्वरूपाऽसत्त्वप्रसङ्गात् । तत्कथं व्यक्त्यऽविनाभावोऽस्याः ?

किञ्च, सर्वदा जातिर्व्यक्तिनिष्ठेति प्रत्यक्षेण प्रतीयते, अनुमानेन वा ? प्रत्यक्षेण चेत्किं युगपत्, क्रमेण वा ? तत्राद्यपक्षोऽयुक्तः, सर्वव्यक्तीनां युगपदप्रतिभासनात् । न च तासामप्रतिभासे तथा सम्बन्धावसायोऽतिप्रसङ्गात् । नापि द्वितीयः, क्रमेण निरवधेः सकलव्यक्तिपरम्परायाः परिच्छेदमुपशङ्के । कादाचित्के तु जातेर्व्यक्तिनिष्ठताधिगमे सर्वत्र सर्वदा न तन्निष्ठताधिगमः स्यात् । तन्न प्रत्यक्षेण जातेस्तन्निष्ठताधिगमः । नाप्यनुमानेन, अस्याऽध्यक्षपूर्वकत्वेनाभ्युपगमात् । तस्य चात्राऽप्रवृत्तावनुमानस्याप्यप्रवृत्तिः । तन्न लक्षितलक्षणया विशेषप्रतिपत्तिः सम्भवति, इति वाच्यवाचकयोः सामान्यविशिष्टविशेषरूपतोपगन्तव्या धूमादिवत् ।

ननु धूमादेः सामान्यसङ्गावात्तद्विशिष्टस्योक्तन्यायेन गमकत्वमस्तु, शब्दे तु तस्याभावात्कथं तद्विशिष्टस्य गमकत्वम् ? तदभावश्च वर्णान्तरग्रहणे वर्णान्तरानुसन्धानाभावात् । यत्र हि सामान्यमस्ति तत्रैकग्रहणेऽपरस्यानुसन्धानं दृष्टं यथा शावलेयग्रहणे बाहुलेयस्य । वर्णान्तरे च गादौ गृह्यमाणे न कादीनामनुसन्धानम्, तदसम्प्रतम् ; गादौ हि वर्णान्तरे गृह्यमाणे यदि 'अयमपि वर्णः' इत्यनुसन्धानाभावः 'सोऽसिद्धः, तथानुभू (तथाभू)-

१ व्यक्तिम् । २ शब्दाज्जातिप्रतिपत्तिक्वाले । ३ शब्दोच्चारणसमये व्यक्तिरपि प्रतिभासते चेत्तर्हि । ४ लक्षितेन ज्ञातेन सामान्येन लक्षणा=विशेषप्रतिपत्तिस्तथा । ५ संबन्धस्य । ६ षट्पदयोरेकदा संबन्धे सर्वदा संबन्धप्रसङ्गात् । ७ संबन्धो बाधित यतः । ८ कदाचिद्वैलप्यत्र द्रष्टव्यम् । ९ पिशाचाप्रतिभासे पिशाचैर्न कूटस्य संबन्धप्रत्यक्षप्रसङ्गात् । १० विशेषस्य । ११ अवस्थापकत्वम् । १२ अनुसन्धानं=प्रत्यक्षमिदं । १३ व्यक्तित्वम् । १४ गत्याभावात् काचित् । १५ अनुसन्धानाभावः ।

तानुसन्धानस्यानुभूयमानत्वेनाऽभावासिद्धेः । अथ गादौ वर्णान्तरे  
गृह्यमाणे 'अयमपि कादिः' इत्यनुसन्धानाभावाच्च सामान्यस-  
द्भावः; तर्हि शावलेयादावपि व्यक्त्यन्तरे गृह्यमाणे 'अयमपि चाहु-  
लेयः' इत्यनुसन्धानाभावाद्गोत्वस्याप्यभावः । अथ 'गौगौः' इत्यनु-  
गताकारप्रत्ययसद्भावाच्च गोत्वाऽसत्त्वम्; तदन्यत्रापि समानम्-  
५ तत्रापि हि 'वर्णो वर्णः' इत्यनुगताकारप्रत्ययोस्तु, तत्कथं वर्णेषु  
वर्णत्वस्य गादिषु गत्वादेः शब्दे शब्दत्वस्याभावः निमित्ताऽ-  
विशेषात्? तथाहि-समानासमानरूपास्तु व्यक्तिषु क्वचित्  
'समानाः' इति प्रत्ययोऽन्वेत्यन्यत्र व्यावर्त्तते । यत्र च प्रत्ययानु-  
वृत्तिस्तत्र सामान्यव्यवस्था, नान्यत्र । सा च प्रत्ययानुवृत्तिर्गादि-  
१० त्वपि समानेति कथं न तत्र सामान्यव्यवस्था? तथाप्यत्र सामा-  
न्यानभ्युपगमे शावलेयादावपि सोस्तु । न हि तत्रापि तथा-  
भूतप्रत्ययानुवृत्तिमन्तरेण सामान्याभ्युपगमेऽन्यन्निति चमुत्प-  
श्यामः । यदि चात्राऽनुगताऽवाधिताऽक्षजप्रत्ययविषयत्वे  
सत्यपि गत्वादेरभावः; तर्हि गादेरपि व्यावृत्तप्रत्ययविषयस्या-  
१५ भावः स्यात् । तथा च कैस्य दर्शनेस्य परार्थत्वाभित्यत्वं साध्येत?

यच्चोक्तम्-'सादृश्येन ततोऽर्थाप्रतिपत्तेः' इति; तत्सदृशप-  
रिणामलक्षणसामान्यविशिष्टव्यक्तेरर्थप्रतिपादकत्वसमर्थनात्प्रत्यु-  
क्तम् ।

यदप्यभिहितम्-'सादृश्यादर्थप्रतीतौ भ्रान्तः शाब्दः प्रत्ययः' २०  
स्यात्; तद्वद्भादेरप्यादिप्रतिपत्तौ समानम् ।

यदप्युक्तम्-'गत्वादीनां वाचकत्वं गादिव्यक्तीनां वा' इत्यादि;  
तत्सामान्यविशिष्टव्यक्तेर्वाचकत्वसमर्थनादेव प्रत्युक्तम् ।

यच्चोक्तम्-'यो यो गृहीतः' इत्यादि; तदप्युक्तिमात्रम्; पक्ष-  
स्यानुमानवाचितत्वात् । तथाहि-अनेको गोशब्द एकैकैकदा २५  
भिन्नदेशस्थभाषतयोपलभ्यमानत्वाद् घटादिवत् । न चानेक-  
प्रतिपत्तुर्भिर्मिन्नदेशतयोपलभ्यमानेनादित्यादिना, कालभेदेन  
भिन्नदेशादितयोपलभ्यमानेन देवदत्तेन वा व्यभिचारः; 'एके-  
नैकदा' इति विशेषणद्वयोपादानात् । एकैकैकदा दर्शनस्पर्शानाम्यां  
भिन्नस्वभावतयोपलभ्यमानेन घटादिना वा; 'भिन्नदेशतया' इति ३०  
विशेषणात् । जलपात्रसङ्क्रान्तादित्यादिप्रतिविम्बैस्तद्व्यभिचारः;

१ गत्वलक्षणं सामान्यं नास्ति तथापि वर्णत्वलक्षणं सदृशसामान्यं कादिष्वत्त्वेनेति  
ज्ञेयमिष्टम् । २ अभावे सति । ३ गादेः । ४ उच्चारणम् । ५ हेतोः ।  
६ न चेति पूर्वेषु संवन्तोत्र हेतुः ।

तेषामग्रेऽनेकत्वप्रसाधनात् । तथाप्यत्र सर्वगतत्वादिधर्मसम्भवे  
घटादावपि सोऽस्तु-

‘न चास्याऽवयवाः सन्ति येन वर्त्तत भागशः ।

घटो वर्त्तत इत्येव तत्र सर्वात्मकश्च सः ॥’

५ इत्यादेरत्राप्यभिधानुं शक्यत्वात् । यथा च—

क्वचिद्रक्तः क्वचित्पीतः क्वचित्कृष्णश्च गृह्यते ।

प्रतिदेशं घटस्तेन विभिन्नो मम युक्तिमान् ॥

तथा—

उदात्तः कुत्रचिच्छब्दोऽनुदात्तश्च तथा क्वचित् ।

१० अकारो मि(कारमि)श्रितोऽन्यत्र विभिन्नः स्याद् घटादिवत् ॥

ननु ‘व्यञ्जकध्वनिधर्मा एवोदात्तादयो नाऽकारादिधर्माः, ते तु  
तत्रारोपात्तद्धर्मा इवावभासन्ते जपाकुसुमरक्ततेव स्फटिकादा-  
विति । उक्तञ्च—

“बुद्धितीव्रत्वमन्दत्वे महत्त्वास्पत्त्वकल्पना ।

१५ सा च पट्वी भवत्येव महातेजःप्रकाशिते ॥ १ ॥

मन्दप्रकाशिते मन्दा घटादावपि सर्वदा ।

एवं दीर्घादयः सर्वे ध्वनिधर्मा इति स्थितम् ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१९-२२० ]

तदप्यसारम्; यतो यद्युदात्तादिधर्मरहितोऽकारादिस्तत्स-

२० हितश्च ध्वनिः रक्तेतरस्वभावजपाकुसुमस्फटिकवत् क्वचिदुप-  
लब्धः स्यात् तदा स्यादेतत् ‘अन्यधर्मस्तदारोपात्तद्धर्मतयेवा-  
वभाति’ इति । न चासौ स्वमेपि तथोपलभ्यते । शब्दधर्मतया  
चैते प्रतीयमाना यद्यन्यस्येप्यन्तेऽन्यत्र कः समाश्वासहेतुः ?

बाधकाभावश्चेत्सोत्रापि समानः । विपरीतदर्शनं हि बाधकम्,  
२५ यथा द्विचन्द्रदर्शनस्यैकचन्द्रदर्शनम् । न चात्र तदस्ति-उदात्ता-  
दिधर्मात्मकस्यैवाकारादेः सर्वदा प्रतीतेः । तथापि तत्कल्पने  
रक्तादिधर्मरहितस्य घटादेर्दर्शनं तथैव कल्प्यताम् । तथाविध-  
स्यानुपलम्भादसत्त्वम्; शब्देऽपि समानम् ।

किञ्चेद् बुद्धेस्तीव्रत्वं नाम ? किं महत्त्वरहितस्यार्थस्य महत्त्वेनो-  
३० पलम्भः, यथाऽवस्थितस्याऽत्यन्तस्पष्टतया वा ? प्रथमे विकल्पे  
आन्तताऽस्याः स्यात् । ‘सा च पट्वी भवत्येव महातेजःप्रकाशिते  
घटादौ सर्वदा’ इति च निदर्शनमयुक्तम्; न हि महातेजःसाम-  
र्थ्यादुपलोपि घटो ‘महान्’ इत्यवभासते, किन्त्वत्यन्तस्पष्टतया ।  
द्वितीयविकल्पे तु महत्त्वादिधर्मरहितस्यास्याऽत्यन्तस्पष्टतया  
३५ ग्रहणं स्यात् । तथा च न व्यञ्जकध्वनिधर्मानुविधायित्वं स्यात् ।

एतेन बुद्धिमन्दत्वेऽल्पता निरस्ता । न खलु मन्दतेजसः प्रकाशिते घटादौ महति बुद्धिमन्दत्वेनाल्पत्वप्रतीतिरस्ति । ततो 'महाताल्वादिधर्मापारे महत्त्वादिधर्मोपेतोऽल्पे चाल्पत्वादिधर्मोपेतः शब्द एवोत्पद्यते' इत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

यदि च ताल्वादयो ध्वनयो वास्य व्यञ्जकाः; तर्हि तद्व्यापारे ५ तद्धर्मोपेतस्यास्य नियमेनोपलब्धिर्न स्यात् । कारकव्यापारो ह्येषः—स्वसन्निधाने नियमेन कार्यसन्निधापनं नाम, न व्यञ्जकव्यापारः । न खलु यत्र यत्र व्यञ्जकः प्रदीपादिस्तत्र तत्र व्यङ्ग्यघटादिसन्निधापनमुपलब्धिर्वा नियमतोस्ति, अन्यथा तयोरविशेषप्रसङ्गात्, चक्रादिव्यापारवैयर्थ्यालुषङ्गाच्च । अथ घटादेरसर्वगतत्वान्न १० तद्व्यञ्जनसन्निधाने सर्वत्रोपलम्भः, शब्दस्य तु सम्भवति विपर्ययात्; इत्यप्यनिरूपिताभिधानम्; तस्य सर्वगतत्वाऽसिद्धेः । तथाहि—न सर्वगतः शब्दः सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकैन्द्रियप्रत्यक्षत्वाद् घटादिवत् । ततो घटादिभ्यः शब्दस्य विशेषाभावाभ्युपगन्तव्यम् । १५

किञ्च, एते ध्वनयः ओत्रग्राह्याः, न वा ? ओत्रग्राह्यत्वे अत एव शब्दाः तल्लक्षणत्वाच्चेष्टाम् । तत्र च तात्त्विका एवोदात्तादयो धर्माः । तथा चापरशब्दकल्पनानर्थक्यम् । अथ न ओत्रग्राह्याः; कथं तर्हि तद्धर्मा उदात्तादयस्तद्ग्राह्याः ? न हि रूपादीनां धर्मा भासुरत्वादयो रूपादेरग्रहणे ओत्रेण गृह्यन्ते । २० अथ न भावतस्तेन ते गृह्यन्ते, किन्त्वारोपात् । ननु चाऽगृहीतस्यारोपोपि कथम् ? अन्यथा भासुरत्वादेरपि तन्नारोपः स्यात् । अथ व्यञ्जकत्वाद् ध्वनीनां तद्धर्मा एव तन्नारोप्यन्ते, न रूपादीनां विपर्ययात्; ननु ज्ञानजनकत्वाच्चापरं व्यञ्जकत्वम् । तथा सत्यल्पेन चक्षुषा व्यज्यमानः पर्वतो महानपि २५ तद्धर्मोपात्तत्परिमाणतया प्रतीयेत सर्वपञ्च बृहत्परिमाणतया, न चैवम् । तन्नैते ध्वनिधर्मा उदात्तादयोऽपि तु शब्दधर्माः । तथाप्यस्यैकव्यक्तिकत्वे घटादेरपि तदस्तु विशेषाभावात् ।

ननु चास्यैकत्वे नमोवत्कारणानायत्तत्वाच्च तदुत्कर्षापकर्षाभ्यामुत्कर्षापकर्षौ स्याताम्; तच्छब्देऽपि समानम्—तस्यापि हि ३० प्रत्येकमेकव्यक्तिकत्वे तात्वोत्कर्षाऽपकर्षाभ्यामुत्कर्षापकर्षयोगो न स्यात्, किन्तु सर्वत्र तुल्यप्रतीतिविषयता स्यात् । ननु चासिद्धं ताल्वादेर्महत्त्वादेः शब्दस्य महत्त्वादिकम्; तथाहि—

“कारणानुविधायित्वं यच्चाल्पत्वमहत्त्वयोः ।

तदसिद्धं न वर्णो हि वर्द्धते न पदं क्वचित् ॥



वर्णान्तरजनौ तावत्तत्पदत्वं विहन्यते ।

अपदं हि भवेदेतद्यदि वा स्यात्पदान्तरम् ॥

वर्णोऽनवयवत्वात्तु वृद्धिहासौ न गच्छति ।

व्योमादिवदतोऽसिद्धा वृद्धिरस्य स्वभावतः ॥”

५

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१०-२१३ ]

अत्रोच्यते-किं कारणानुविधायित्वमल्पत्वमहत्त्वयोः स्वभाव-  
सिद्धत्वादसिद्धम्, आहोस्वित्कारणाल्पत्वमहत्त्वाभ्यां शब्दस्या-  
ल्पत्वमहत्त्वे एव न विद्येते स्वभावतस्तद्रहितत्वात् इति ?  
तत्राद्यपदे स्वभावे एव चास्याऽल्पत्वमहत्त्वे विद्येते, न तु ते  
१० तस्य कारणाल्पत्वमहत्त्वाभ्यां कृते इत्यायातम्, तथा च घट-  
देरपि तथा तत्सत्त्वप्रसङ्गः । निर्हेतुकत्वेन सर्वदा भावानुप-  
पन्नोभयत्र समानः । द्वितीयस्तु पक्षोऽसङ्गतः, तयोस्तत्र प्रतीय-  
मानत्वेन स्वभावतस्तद्रहितत्वासिद्धेः । न खलु महति तात्वाद्यै  
महानऽल्पे चाल्पः शब्दो न प्रतीयते, सर्वत्र तयोरनाम्नास-  
१५ प्रसङ्गात् ।

यदप्युक्तम्-‘न हि वर्णो वर्द्धते’ इत्यादि, तत्र यदि तावत्  
‘अल्पतात्वादिजनितो वर्णादिरल्पो महतस्तात्वादिव्यापारात्  
वर्द्धते’ इत्युच्यते; तदा सिद्धसाधनम् । न हि घटोऽल्पान्मृ-  
त्पिण्डास्यथाविधो जातोऽन्यतः स एव वर्द्धते अघटत्वप्रसङ्गात्,  
२० घटान्तरमेव वा स्यात् । यथान्योपि वृद्धिमात्रं जायते; तत्र;  
तथाविधस्य दृष्टत्वात् । दृष्टस्य चाऽपह्नवाऽयोगात् ।

एतेनैतन्निरस्तम्—

“अथ तादृज्यविज्ञानं हेतुरित्यभिधीयते ।

तथापि व्यभिचारित्वं शब्दत्वेपि हि तन्मतिः ॥ १ ॥

२५

व्यक्त्यल्पत्वमहत्त्वे हि तद्यथानुविधीयते ।

तथैवानुविधातायं ध्वन्यल्पत्वमहत्त्वयोः ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१३-२१४ ] इति ।

सदृशपरिणामो हि सामान्यम् । तस्य च वर्णवदऽल्पत्वमह-  
त्त्वसम्भवात् कथं तेनानेकान्तः ? भवत्कल्पितं तु सामान्यमग्रे  
३० निषिद्धत्वात्स्वरविषाणप्रख्यसिति कथं तेन व्यभिचारोद्भावनम् ?

यदप्युच्यते—

व्यङ्ग्यानां चैतदस्तीति लोकेष्वैकान्तिकं न तत् ।

वर्षणाल्पमहत्त्वे हि दृश्यतेऽनुपतन्मुखम् ॥ १ ॥

न स्यादव्यङ्ग्यता तस्मिंस्तत्क्रियाजन्यतापि वा ।

३५

न चास्योच्चारणादन्या विद्यते अनिका क्रिया ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१५-२१७ ]

तदप्यचारः; भ्रान्तेनाऽभ्रान्तस्य व्यभिचाराऽयोगात् । शब्दे हि महत्वादिप्रत्ययोऽभ्रान्तो बाधवर्जितत्वादित्युक्तम् । मुखे तु भ्रान्तो विपर्ययात् । न चान्यस्य भ्रान्तत्वेऽन्यस्यापि तत्, अन्यथा सकलशून्यतानुषङ्गः—स्वप्नादिप्रत्ययवत्सकलप्रत्ययानां भ्रान्ततापत्तेः । न च खड्गे प्रतिविम्बितदीर्घतया मुखमेवाऽऽ-  
भाति दर्पणे तु वर्तुलतया गौरनीले काचे नीलतया; किन्तु तदा-  
कारस्तत्र प्रतिविम्बितस्तद्धर्मानुकारी प्रतिभाति । न च शब्दस्या-  
प्याकारो ध्वनौ, ध्वनेर्वा शब्दे प्रतिविम्बितस्तद्धर्मानुकारी भवती-  
त्यभिधातव्यम्; शब्दस्याऽमूर्त्तत्वेन मूर्त्ते ध्वनौ तत्प्रतिविम्बमा-  
ऽसम्भवात् । मूर्त्तानामेव हि मुखादीनां मूर्त्ते दर्पणादौ तत्प्रति-  
विम्बनं दृष्टं नाऽमूर्त्तानामात्मादीनाम् । न चाऽश्रोत्रग्राह्यत्वे ध्वनेः  
प्रतिविम्बितोऽप्याकारः श्रोत्रेण ग्रहीतुं शक्योऽतिप्रसङ्गात् । तन्ना-  
शब्दे वा अपरशब्दकल्पना व्यर्थेत्युक्तम् ।

यथाप्युक्तम्—

“यथा महत्यां खातायां सृदि व्योम्नि महत्स्वधीः ।

अल्पायामल्पधीरेवमत्यन्ताऽकृतके मतिः ॥

तेनात्रैवं परोपाधिः शब्दवृद्धौ मतिर्भ्रमः ( मतिभ्रमः ) ।

न च स्थूलत्वसूक्ष्मत्वे लक्ष्येते शब्दवर्तिनी ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१७-२१९ ]

तदप्यसमीचीनम्; व्योम्नोऽतीन्द्रियत्वेन महत्त्वादिप्रत्ययवि-  
धयत्वायोगात् । तद्योने चाल्पया खातयाऽवष्टब्धो व्योमप्रदे-  
शोऽल्पो महत्या च महानिति नाऽनेनाऽनेकान्तः । निरवयवत्वे  
हि तस्याणुबहुतापित्वासम्भवः, अत्यन्ताकृतकत्वेन च क्रमयौ-  
गपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोध इति वक्ष्यते । तथा शब्दस्यापि  
सावयवत्वाभ्युपगमे—

“पृथग् न चोपलभ्यन्ते वर्णस्यावयवाः क्वचित् ।

न च वर्णेष्वनुस्यूता दृश्यन्ते तन्तुवत्पटे ॥ १ ॥

तेषामनुपलब्धेश्च न जाता लिङ्गतो गतिः ।

नागमस्तत्परश्चासिन्नाऽदृश्ये चोपमा क्वचित् ॥ २ ॥

न चास्यानुपपत्तिः स्याद्वर्णस्यावयवैर्विना ।

यथान्यावयवानां हि विनाप्यवयवान्तरैः ॥ ३ ॥

प्रत्यक्षेणावबुद्धश्च वर्णोऽवयववर्जितः ।

किञ्च स्याद्योमवञ्चात्र लिङ्गं तद्रहिता मतिः ॥ ४ ॥”

[ मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० ११-१४ ]

इति वचो विरुद्धेत ।

यत्पुनरुक्तम्—‘व्यञ्जकध्वन्यधीनत्वात्तद्देशे स च गृह्यते’  
इत्यादि; तत्र कुतो ध्वनयः प्रतिपन्ना येन तदधीना शब्दश्रुतिः  
स्यात्? प्रत्यक्षेण, अनुमानेन, अर्थापत्त्या वा? प्रत्यक्षेण  
चोक्तिं श्रोत्रेण, स्पर्शनेन वा? न तावच्छ्रोत्रेण; तथा प्रतीत्यभा-  
५ वात् । न खलु शब्दवत्तत्र ध्वनयः प्रतिभासन्ते विप्रतिपत्त्यभा-  
वप्रसङ्गात् । तत्र ध्वनिप्रतिभासे चापरशब्दकल्पनावैयर्थ्यमि-  
त्युक्तम् । अथ स्पर्शानुप्रत्यक्षेण ते प्रतीयन्ते—स्वकरपिहितवदनो  
हि वदन् स्वकरसंस्पर्शनेन तान्प्रतिपद्यते, वदतो मुखग्रे स्थित-  
दूलादेः प्रेरणोपलम्भादनुमानेनेति; तदप्यसाम्प्रतम् । वायुवत्ता-  
१० स्वादिव्यापारानन्तरं कफांशानामप्युपलम्भेन शब्दामिव्यञ्जकत्व-  
प्रसङ्गात् । चक्षुर्वक्त्रप्रदेश एवैषां प्रक्षयेण श्रोत्रश्रोत्रप्रदेशे गम-  
नाभावात् तत्; इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि वायवोपि तत्र  
गच्छन्तः समुपलभ्यन्ते । शब्दप्रतिपत्त्यन्यथानुपपत्त्या प्रतिपत्ति-  
रुत्तमयत्रसमाना । यथा च स्तिमितभाषिणो न कफांशोपलम्भ-  
१५ स्तथा वायूपलम्भोपि नास्ति । स्तिमितस्य कल्पनमुभयत्र समा-  
नम् । तन्न प्रत्यक्षेणानुमानेन वा तत्प्रतिपत्तिः ।

अथार्थापत्त्या तेषां प्रतिपत्तिः; तथाहि—शब्दस्तावन्नित्यत्वा-  
श्रोत्पद्यते संस्कृतिरेव तु क्रियते । सा च विशिष्टा नोपपद्येत  
यदि ध्वनयो न स्युः । तदुक्तम्—

२० “शब्दोत्पत्तेर्निषिद्धत्वादन्यथानुपपत्तिः ।  
विशिष्टसंस्कृतेर्जन्म ध्वनिभ्यो व्यवसीर्यते ॥ १ ॥

तद्भावभाविता चात्र शक्त्यस्तित्वावबोधिनी ।

श्रोत्रशक्तिवदेवेष्टा दुद्धिस्तत्र हि संहृता ॥ २ ॥

कुब्जादिप्रतिबन्धोपि युज्यते मार्तरिश्वनः ।

२५ श्रोत्रादेरभिघातोपि युज्यते तीव्रवैचैना ॥ ३ ॥”

[ मी० ग्लो० शब्दनि० ग्लो० १२६-१२९ ]

इति; तत्र केयं विशिष्टा संस्कृतिर्नाम—शब्दसंस्कारः, श्रोत्र-  
संस्कारः, उभयसंस्कारो, वा? परेण हि त्रेधा संस्कारोऽभ्युप-  
गम्यते । स च—

१ शब्दस्य अभिव्यक्तिः । २ निम्नीयते । ध्वनयः सन्ति शब्दसंस्कारान्य-  
थानुपपत्तेरिति । ३ तद्भावभावित्वमसिद्धमित्युक्ते ग्राह्यं दुद्धिरिति । दुद्धिः=मल-  
दुद्धिः । ४ नियता । ५ शब्दस्यामूर्तत्वे कुब्जादिप्रतिबन्धो न स्याच्छ्रोत्राभिघातो वा  
न स्यादित्युक्ते ग्राह्यं । ६ शब्दव्यञ्जकवायोः । ७ शब्दव्यञ्जकवायुना । ८ ध्वनेः  
सकाशात् । ९ मीमांसकेन ।

“स्याच्छब्दस्य हि संस्कारादिन्द्रियस्योभयस्य वा ।”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ५२ ]

“स्थिरवाच्यपनीत्या च संस्कारोऽस्य भवन्मवेत् ।”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६२ ]

इत्यभिधानात् ।

५

तत्राद्ये पक्षे कोऽयं शब्दसंस्कारः-शब्दस्योपलब्धिः, तस्यात्म-  
भूतः कचिदतिशयः, अनतिशयव्यावृत्तिर्वा, स्वरूपपरिपोषो वा,  
व्यक्तिसमवायो वा, तद्गृहणापेक्षग्रहणता वा, व्यञ्जकसन्निधान-  
मात्रं वा, आवरणविगमो वा स्यात्? यदि शब्दोपलब्धिः, कथ-  
मसौ ध्वनीनां गमिका शब्दे श्रोत्रमात्रभावित्वात्तस्याः? तथाप्य-१०  
न्यनिमित्तकल्पने हेतूनामनवस्थितिः स्यात् ।

तस्यात्मभूतः कश्चिदतिशयोऽनतिशयव्यावृत्तिर्वा इत्यत्रापि  
अतिशयो दृश्यस्वभाव एव, अनतिशयव्यावृत्तिस्त्वदृश्यस्वभावल-  
यहनमेव । ते चेत्ततोऽन्ये, तर्करणेऽपि शब्दस्य न किञ्चित्कृतमिति  
तदवस्थाऽस्याऽश्रुतिः । अथाऽन्ये, तदा शब्दस्यापि कार्यतया १५  
अनित्यत्वानुपपन्नः । यो हि यस्मादसमर्थस्वभावपरित्यागेन समर्थ-  
स्वभावं लभते स चेन्न तस्य जन्यः, केदानीं जन्यताव्यवहारः?   
न च समर्थस्वभाव एव जन्यो न शब्दः इत्यभिधातव्यम्;  
तस्याऽतो विवदधर्माभ्यासतो मेदानुपपन्नात् । तत्र चोक्तो दोषः ।

श्रोत्रप्रदेशे एव चास्य संस्कारे तावन्मात्रक एव शब्दः, २०  
न सर्वगतः स्यात् । तस्यैवान्यत्र तद्विपर्ययेणैव स्थाने दृश्याऽऽ-  
दृश्यत्वप्रसङ्गात् निरंशैत्वव्याघातो विप्रतिपत्त्यभावश्चासौ परि-  
णामित्वप्रसिद्धेः । यदस्माभिः ‘आवणस्वभावविनाशोत्पत्तिर्म-  
त्पुद्गलैर्द्रव्यम्’ इत्यभिधीयते तद्युष्माभिः ‘वर्णः’ इत्याख्यायते ।  
यौ च आवणस्वभावोत्पादविनाशौ शब्दोत्पादविनाशा- २५  
वस्माभिरिदौ तौ युष्माभिः शब्दामिव्यक्तितरोभावविति नास्त्व

१ शब्दस्य । २ नियमाभावः । ३ शब्दस्य । ४ तत्त्व=अतिशयस्य अनति-  
शयव्यावृत्तेर्वा । ५ शब्दस्य । ६ शब्दात् । ७ ध्वनेः । ८ असमर्थस्वभावः=  
पूर्वावस्था (शब्दाप्राकट्यम्) । ९ अपि तु न कापीत्यर्थः । १० शब्दस्य ।  
११ श्रोत्रप्रदेशादप्यत्र । १२ सनावस्य अन्यत्रा शब्दस्य त्वजन्यतेति मेदे ।  
१३ सर्वगतत्वे च शब्दस्य । १४ शब्दस्य । १५ जैनैः । १६ पुद्गले एव आवण-  
स्वभावोत्पत्तये नश्यति च । १७ तदेव शब्दः । १८ नीमासकैः । १९ शब्द-  
रूपः । २० जैनैः । २१ नीमासकैः ।

विवादो नार्थे । दृश्येतररूपता वैकंस्य ब्रह्मवादं समर्थयते तद्भेदेतनेतररूपतयाप्येकस्याऽवस्थित्यविरोधात् । घटादेरपि वैवं सर्वगतत्वानुषङ्गः—‘सोपि हि दृष्टप्रदेशे दृश्योऽन्यत्र चादृश्यः’ इति वदतो न वक्तुं वक्रीभवेत् । सर्वत्र चास्य संस्कारे सर्व-  
५ दोषलब्धिः स्यात्, न वा कश्चित्कदाचित् विशेषोभावात् ।

स्वरूपपरिपोषः संस्कारोस्य; इत्यप्यऽवचित्तामिधानम्; नित्यस्य स्वभावान्यथाकरणाऽसम्भवात् । करणे वा स्वभावाति-  
शयपक्षर्भावी दोषोलुप्यते ।

नापि व्यक्तिसमवायः; वर्णस्य व्यक्त्यऽसम्भवात्, अन्यथा  
१० सामान्यात्कोस्य विशेषः ? अत एव न तद्ब्रह्मणापेक्षग्रहणता ।

नापि व्यञ्जकसन्निधानमात्रम्; सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रति-  
पचुभिः सर्ववर्णानां ग्रहणप्रसङ्गात् । ननु प्रतिनियतेन ध्वनिना  
प्रतिनियतो धर्षः संस्कृतः प्रतिनियतेनैव प्रतिपन्ना प्रतीयते  
तथैव सामर्थ्यात् । उक्तं च—

१५ “विषयस्यापि संस्कारे तेनैकस्यैव संस्कृतिः ।

नरैः सामर्थ्यमेवाद्य न सर्वैरवगम्यते ॥ १ ॥

यथैवोत्पद्यमानोयं न सर्वैरवगम्यते ।

विश्वेशाद्यविभागेन सर्वान्प्रति भवन्नपि ॥ २ ॥

तथैव यत्समीपस्थैर्नादैः स्याद्यस्य संस्कृतिः ।

२० तैरेव श्रूयते शब्दो न दूरस्थैः कथञ्चन ॥ ३ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८३-८६ ] इति ।

तदप्यपेशलम्; तेषां तदुपलम्भाऽसामर्थ्यं सर्वदाऽनुपलम्भ-  
प्रसङ्गाद्भवत् । यदा तत्समीपस्थैर्व्यञ्जकैर्व्यज्यतेऽसौ तदा  
तैरेवोपलभ्यते इत्यप्यसुन्दरम्; यतस्तेषां व्यञ्जकैः किं कियते  
२५ येन ते तैर्नियमेनापेक्षन्तेऽकिञ्चित्करेऽपेक्षाऽसम्भवात् ? तद्ब्रह्मे  
योग्यतेति चेत्; किमात्मनः, शब्दस्य, इन्द्रियस्य वा ? आद्यविक-  
ल्पद्वये सर्वदोषलम्भोऽनुपलम्भो वा स्यात् । इन्द्रियसंस्कारस्तु  
निराकरिष्यते ।

१ ( एकस्यैव, शब्दस्य दृश्यत्वादृश्यत्वरूपतास्वीकारादद्वैतं सिध्यतीत्यर्थः ) ।

२ ब्रह्मवादसमर्थने हेतुमाह । ३ द्वितीयपक्षोपपत्तिः । ४ संस्कृतत्वेन । ५ ध्वनिभिः ।

६ स स्वभावस्ततो भिन्नोऽभिन्नो वा ? भिन्नमेव तैर्ध्वनिभिः शब्दस्य करणम्  
इत्यादिः । ७ अन्यथा—शब्दस्य व्यक्तित्वे सामान्यत्वादिरूपताप्रसङ्गोपि सादित्वार्थः ।

८ तस्य—शब्दसंस्कारस्य । ९ शब्दस्य ।

यदप्युक्तम्—यथैवोत्पद्यमानोऽयमित्यादि; तदप्यसङ्गतम्; न हि दिग्गोद्यपेक्षयाऽसौभिस्तद्गृहणमिष्यतेऽपि तु श्रवणान्तर्गतत्वेन । अतो यस्यैव श्रवणान्तर्गतो यः शब्दः स तेनैव गृह्यते । सर्वगतवर्णपक्षे तु नायं परिहारो निखिलवर्णानां अकलप्रतिपत्तुश्रवणान्तर्गतत्वेन तथैवोपलम्भप्रसङ्गात् । ५

आवरणविगमः शब्दसंस्कारः; इत्यप्यसत्यम्; यतः प्रमाणान्तरेण शब्दसङ्गावे सिद्धे तस्यावरणं सिद्धेत् स्पर्शानप्रत्यक्षप्रतिपत्ते घटेऽन्धकारादिवत् । न चासौ सिद्धः । तत्कथमस्यावरणम्? नित्यस्याऽस्याऽनाघेयाऽग्रहेयाऽतिशयात्मतयाऽस्याकिञ्चित्करत्वाच्च । न चाऽकिञ्चित्करः कस्यचिदावरणमतिप्रस- १० ज्ञात् । उपलब्धिप्रतिबन्धकारणात्तच्चेत्; न; तज्जननैकस्वभावस्य तदयोगात् । न हि कारणाऽक्षये कार्यक्षयो युक्तस्तस्याऽतत्कार्यत्वप्रसङ्गात् । कथमेवं कुठ्यादयो घटादीनामावारका इति चेत्; तज्जनकस्वभावखण्डनात् । कथमन्यस्योपलब्धि जनयन्तीति चेत्? तं प्रति तत्स्वभावत्वात् । कथमेकस्योभयरूपता? इत्यप्य- १५ चोद्यम्; तथा दृष्टत्वात् । शब्दस्यापि स्वभावखण्डनेऽनित्यतेत्युक्तम् ।

सर्वगतत्वे चास्यावियमाणत्वायोगः । आचार्या हि येनो-  
च्यते तदावारकम्, यथा पटो घटस्य । शब्दस्त्वावारक-  
मध्ये तद्देशे तत्पार्श्वे च सर्वत्र विद्यमानत्वात्कथं केनचिदा- २०  
वियेत? प्रत्युत स एवावारकः स्यात् । तद्वत्तदावारकमपि सर्व-  
गतमिति चेत्; न तर्ह्यवारकम् । न ह्याकाशमात्मादीनामा-  
वारकम् । मूर्त्तत्वाच्चदिति चेत्; न तर्हि सर्वगतं घटादिवत् ।

अथ यावज्ज्योमव्यापिनो यद्वै एवास्यावारकाः ते; किं सान्तराः,  
निरन्तरा वा? यदि सान्तराः; न तर्हि तस्यावरणम्, तन्मध्ये २५  
तद्देशे तत्पार्श्वे च विद्यमानत्वात् । अथ स्वमाहात्म्यात्तथापि  
स्वदेशे तदावारकाः; तर्ह्यन्तराले तदुपलम्भप्रसङ्गः । तथा च  
सान्तरा प्रतिपत्तिः प्रतिवर्णं खण्डशः प्रतिपत्तिश्च स्यात् । सर्वत्र  
सर्वदा सर्वात्मना विद्यमानत्वाच्च दोषश्चेत्; नैवम्; प्रतिप्रदेशमका-  
रादिवहुत्वस्य ध्वन्यादिवैफल्यस्य चानुषङ्गात्, तदभावेऽप्यन्तराले ३०  
उपलम्भसम्भवात् । अथान्तरालेऽसन्तोष्यावारकाः; तर्ह्येकमेवा-  
वारकं प्रदेशनियतं कल्पनीयं किं तद्वद्वत्त्वेन? अन्यत्राविद्यमानं

१ आदिना देशकालादिर्मात्राः । २ जनैः । ३ अन्धकारादिवैथाऽऽवरणं घटस्य ।  
४ आनारकेण । ५ मूलपुस्तके 'अन्यत्वा-' इति ।

कथमावारकमिति चेत्? अन्तरालवदिति त्रयम् । तन्मते  
सान्तराः । निरन्तरत्वे चैषाम् तद्वच्छब्दस्यापि निरन्तरत्वादा-  
वार्यावारकभावः समान एवोभयत्र । अथ वस्तुस्वाभाव्यात्  
स्तिमिता वायव एव तदावारकाः; ननु दृष्टे वस्तुन्येतद्वक्तुं  
५ 'शक्यम्', यथा दृष्टेऽग्नौ दाहकत्वेन 'वस्तुस्वाभाव्यादग्निर्दाहति न  
जलम्' इत्युच्यते । न च तथाविधा वायवो दृष्टाः । नापि सन्  
शब्दस्तैराव्रियमाणो येनैवं स्यात् । अदृष्टकल्पनमुभयत्र समानम् ।  
तत्र किञ्चित्तस्यावारकम् ।

अस्तु वा तत्, तथाप्यस्य कुतो विगमः? ध्वनिभ्यश्चेत्, न;  
१० तत्सङ्गावावेदकप्रमाणप्रतिषेधतस्तेषामसत्त्वात् । सत्त्वे वा कुत-  
स्तेषामुत्पत्तिः? तात्त्वादिव्यापाराच्चेत्, न; तद्वच्छब्दस्यापि  
तद्यापारे सत्पुलभ्यतस्तत्कार्यतानुषङ्गात् । ननु खननाद्यनन्तरं  
व्योमोपलभ्यते, न च तत्कार्यमतोऽनैकान्तिकत्वम् । तदुक्तम्—

“अनैकान्तिकता तावद्धेतूनामिदं कथ्यते ।

१५ प्रयत्नानन्तरं दृष्टिर्नित्येऽपि न विरुध्यते ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९ ]

“आकाशमपि नित्यं सद्यदा भूमिजलादृतम् ।

व्यज्यते तदपोद्घेन खननोत्सेचनादिभिः ॥ २ ॥

प्रयत्नानन्तरं ज्ञानं तदा तत्रापि दृश्यते ।

२० तेनानैकान्तिको हेतुर्यदुक्तं तत्र दर्शनम् ॥ ३ ॥

अथ स्थगितमप्येतदस्त्येवैत्यनुमीयते ।

शब्दोऽपि प्रत्यभिज्ञानात्प्रागस्तीत्यवगम्यताम् ॥ ४ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३०-३३ ]

तदप्यसङ्गतम्, ध्वनीनामप्येवं तात्त्वादिव्यापारकार्यत्वाभाव-  
२५ प्रसङ्गात् । एकरूपता चाकाशस्याप्यसिद्धा, स्वविज्ञानजननैक-  
स्वभावत्वे हि तस्य न खननाद्यनन्तरमेवोपलब्धिः; किन्तु पूर्वमपि  
स्यात् । तदस्वभावत्वे वा न कदाचनाप्युपलब्धिः स्याद्विशेषा-  
भावात् । विशेषे वा एकरूपताव्याघातः । प्रत्यभिज्ञानाच्छब्दे  
प्राक् सत्त्वसिद्धिश्च ध्वनावपि समाना 'य एव पूर्वमकारस्य  
३० व्यञ्जको ध्वनिः स एव पश्चादपि' इति प्रतीतिः । तथा च व्यञ्जन-  
स्यापि सर्वत्र सर्वदा सङ्गावे तात्त्वादिव्यापारवैफल्यं सर्वत्र सर्वदा  
व्यङ्ग्यप्रतीतिश्च स्यात् । तत्र तात्त्वादिव्यापारकार्यता ध्वनीना-  
मेव । अतः कथं तेषां सत्त्वमुत्पादकाभावात्?

१-चैनाः ।- १ शब्दो वायोसवारकः कुतो न सादिति जैनेनोक्ते परः प्राह-  
अदृष्टकल्पना सादिति । तस्योपरि जैनेनोच्यते ।

‘सन्तु वा ते, तथाप्यतः कचिदावरणविगमे विवक्षितवर्णवन्नि-  
खिलवर्णोपलब्धिप्रसङ्गः, व्यापकत्वेन सर्वेषां तत्र सङ्गावात्,  
तथा च ध्वन्यन्तरस्य वैफल्यम् । ननु चाचार्याणामिवावारकाणां  
तद्वच्च तदपनेदृणां मेदस्तेनायमदोषः । उक्तञ्च—

“व्यञ्जकानां हि वायूनां मित्रावयवदेशता ।

५

जातिमेदश्च तेनैवं संस्कारो व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥

अन्यार्थं प्रेरितो वायुर्यथान्यं न करोति वः ।

तथान्यवर्णसंस्कारशक्तो नान्यं करिष्यति ॥ २ ॥

अन्यैस्ताल्वादिसंयोगैर्वर्णो नान्यो यथैव हि ।

तथा ध्वन्यन्तराक्षेपो न ध्वन्यन्तरसारिभिः ॥ ३ ॥

१०

तस्मादुत्पत्त्यभिव्यक्तयोः कार्यार्थापत्तितः समः ।

सामर्थ्यमेदः सर्वत्र स्यात्प्रयत्नविवक्षयोः ॥ ४ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ७९-८२ ]

तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; अभिन्नदेशेऽभिन्नेन्द्रियग्राह्ये चा-  
चार्ये आवरणमेदस्याभिव्यञ्जकमेदस्य चाऽप्रतीतेः । न खलु १५  
घटाशरावोद्भवादीनां तथाविधानामावरणव्यञ्जकमेदो दृष्टः,  
काण्डपटादेरेकस्यैवावरणत्वस्य प्रदीपादेर्द्वैकस्यैवामिव्यञ्जकत्वस्य  
प्रसिद्धेः । तथा च प्रयोगः-शब्दाः प्रतिनियतावरणाचार्याः  
प्रतिनियतव्यञ्जकव्यङ्ग्या वा न भवन्ति, समानदेशैकेन्द्रियग्राह्य-  
त्वाद्, घटादिवत् । न चाऽऽचार्यवर्णानां देशमेदो युक्तः; व्यापक- २०  
त्वाभावप्रसङ्गात् । देशमेदो हि परस्परदेशपरिहारेणावस्थाना-  
त्यसिद्धो गोकुञ्जरवत् । तथा चावरणमेदस्याऽसतः कथं जाति-  
मेदप्रकल्पनं तदपनेदृजातिमेदप्रकल्पनं च श्रेयो यतो ‘जाति-  
मेदश्च’ इत्यादि शोभेत ।

नन्वेकेन्द्रियग्राह्यस्यापि व्यङ्ग्यस्य व्यञ्जकमेदो दृष्टः, यथा २५  
भूमिगन्धस्य जलसेकः न शरीरगन्धस्य । अस्यापि मरीचिचक्र-  
सहायस्तैलाम्यङ्गो न भूमिगन्धस्येति । सत्यं दृष्टः; स तु विषय-  
संस्कारकस्य व्यञ्जकस्य, न त्वावरणविगमहेतोः । नैव वा गन्ध-  
स्याभिव्यञ्जका जलसेकादयोऽपि तु कारकाः, तत्सहकारिणः  
पृथिव्यादेर्विशिष्टस्य गन्धस्योत्पत्तेः पूर्वं तत्र तत्सङ्गावावेदक- ३०  
प्रमाणाभावात् । कारकाणां चैकेन्द्रियग्राह्ये समानदेशे च कार्यं  
नियमो दृष्टः । यथैकत्र स्थिता अपि यवबीजादयो न सर्वे  
शाल्यङ्कुरं यवाङ्कुरं चोत्पादयन्ति, किन्तु शालिवीजमेव शाल्यङ्कुरं  
यवबीजं च यवाङ्कुरम् इति ।



एतेन 'अन्यैस्तात्वादिसंयोगैः' इत्यादि निरस्तम्; कथम्? ध्वन्यन्तरसारिभिस्तात्वादिभिर्यद्यपि ध्वन्यन्तराक्षेपो नास्ति तथापि य एव तैराक्षिप्यते तत एव सर्ववर्णश्रुतेर्ध्वन्यन्तराक्षे-  
पपक्षदोषस्तदवस्थः । तन्न शब्दसंस्कारोभिव्यक्तिर्घटते ।

५ अथेन्द्रियसंस्कारोसौ । तदुक्तम्—

“अथापीन्द्रियसंस्कारः सोप्यधिष्ठानदेशतः ।

शब्दं न श्रोष्यति श्रोत्रं तेनाऽसंस्कृतशष्कुलि ॥ १ ॥

अप्राप्तकर्णदेशत्वाङ्गनेर्न श्रोत्रसंस्क्रिया ।

अतोऽधिष्ठानमेदेन संस्कारनियमस्थितिः ॥ २ ॥”

१० [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६९-७० ]

“यद्यपि व्यापि चैकं च तथापि ध्वनिसंस्कृतिः ।

अधिष्ठानेषु सा यस्य तच्छब्दं प्रतिपत्स्यते ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६८ ] इति ।

अत्रापि संस्कृतसंस्कृतं श्रोत्रं युगपत्सर्ववर्णान् शृणुयात् ।  
१५ न ह्यङ्गनादिना संस्कृतं चक्षुः सन्निहितं नीलववलादिकं काञ्चि-  
त्पश्यति काञ्चिन्नेति । बलतैलादिना संस्कृतं श्रोत्रं वा काञ्चिदेव  
गकारादीन् शृणोति काञ्चिन्नेतीति नियमो दृष्टो येनात्रापि तथा  
कल्पना स्यात् ।

ततो निराकृतमेतत्—

२० “तथा(यथा)घटादेर्दोषादिरभिव्यञ्जक इष्यते ।

चक्षुषोऽनुग्रहादेवं ध्वनिः स्याच्छ्रोत्रसंस्कृतेः ॥ १ ॥

न चा(च)पर्यनुयोगोत्र केनाकारेण संस्कृतिः ।

उत्पत्तावपि तुल्यत्वाच्छक्तिस्तत्राप्यतीन्द्रिया ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ४२-४३ ] इति ।

२५ प्रदीपादिनानुगृहीतचक्षुषा पटाद्यनेकार्थग्रहणवत् ध्वन्यनु-  
गृहीतश्रोत्रेणाप्येकदानेकशब्दश्रवणप्रसङ्गात् । प्रयोगः—श्रोत्र-  
मेकेन्द्रियग्राह्यामिन्नदेशावस्थितार्थग्रहणाय प्रतिनियतसंस्कारक-  
संस्कार्यं न भवति इन्द्रियत्वाच्चक्षुर्वत् । तन्न श्रोत्रसंस्कारोप्यभि-  
व्यक्तिर्घटते ।

३० अस्तु तर्ह्यभयसंस्कारः । न चात्रोक्तदोषानुपपन्नः । तदुक्तम्—

“द्वयसंस्कारपक्षे तु वृथा दोषद्वये वचः ।

येनान्यतरवैकल्यात्सर्वैः सर्वो न गृह्यते ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८६ ]

तदप्ययुक्तम्; उक्तदोषादेव, तथाहि-यदैकवर्णप्राद्वकत्वेन संस्कृतं श्रोत्रं संस्कृतं वर्णं प्रतिपद्यते तदा तत्रत्यसर्ववर्णान्प्रति-  
पद्येत संस्कृतं च वर्णं सर्वत्र सर्वदाऽवस्थितत्वेन, अन्यथा तत्प्र-  
तीतिरेव न भवेत्तदात्मकत्वाच्चस्य । अतो व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावस्य  
विचार्यमाणस्याऽयोगाच्च व्यञ्जकध्वन्यधीनो विभिन्नदेशकालस-<sup>५</sup>  
भावतया शब्दस्योपलम्भोऽपि तु तत्त्वभावमेदनिवन्धनः ।

यच्चोक्तम्-‘जलपात्रेषु च’ इत्यादि; तदप्यसाम्प्रतम्; तत्रोप-  
लभ्यमानस्यादित्यप्रतिविम्बस्यानेकत्वात् । ‘गगनतलावलम्बी हि  
सविता तत्रोपलभ्यते’ इत्यत्र न प्रत्यक्षं प्रमाणं तत्स्वरूपाप्रति-  
भासनात् । तस्य हि स्वरूपं गगनतलावलम्बि चैकं च, तन्नाव-<sup>१०</sup>  
भासते । यच्चावभासि जलपात्रावलम्बि चानेकं च, तद्वृक्षच्छाया-  
दिवद्भस्वन्तरमेव । न चाभ्यप्रतिभासेऽन्यप्रतिभासो नामाऽति-  
प्रसङ्गात् । न च जलभानोर्गगनभानुना सादृश्यादेकत्वम्;  
कमनीयकामिनीनयनयोरपि तत्प्रसङ्गात् । नापि तद्विकारे जल-  
भानुविकारादेकत्वम्; वृक्षच्छाययोरपि तत्प्रसङ्गात् । <sup>१५</sup>

ननु तत्र तत्प्रतिविम्बानां धस्त्वन्तरत्वे कुतः प्रादुर्भावः स्यादिति  
चेत्? जलादित्यादिलक्षणस्वसामग्रीविशेषात् । तर्हि सच्छता-  
विशेषसङ्गाबाज्जलावशादयो मुख्यादित्यादिप्रतिविम्बाकारविका-  
रधारिणः कस्मान्न सर्वदोषलभ्यन्ते इति चेत्? स्वसामग्र्यऽभा-  
वतोऽभावाच्छब्दसुखादिवत् । कश्चिद्धि विकारः सहकौरिनि-<sup>२०</sup>  
वृत्तावप्यनिवर्त्तमानो दृष्टो यथा घटादिः, कश्चित्तु निवर्त्तमानो  
यथा शब्दादिः, अचिन्त्यशक्तित्वाद्भावानाम् । तैल्लादिव्यापार-  
सहकारिनिवृत्तौ हि पुद्गलस्य आवणलमावव्यावृत्तिः । शङ्ख-  
नितानिवृत्तौ चाल्लादनाकारव्यावृत्तिरात्मनः सकलजनप्रसिद्धा,  
एवमादित्यादिसहकारिनिवृत्तौ जलादेस्तत्प्रतिविम्बाकारनिवृ-<sup>२५</sup>  
त्तिरविरुद्धा ।

ततो निराकृतमेतत्-‘अत्र दूरो यदा तावज्जले सौर्येण’ इत्यादि;  
स्वप्रदेशस्थतया सवितुर्ग्रहणासिद्धेः । ‘वाष्पुषं तेजः प्रतिश्रोतः  
प्रवर्त्तितम्’ इति चातीवाऽसङ्गतम्; प्रमाणाभावात् । न हि चक्षु-  
स्तेजांसि जलेनामिसम्बन्ध्य पुनः सवितारं प्रति प्रवर्त्तितानि <sup>३०</sup>  
प्रत्यक्षादिप्रमाणतः प्रतीयन्ते । यथा च चक्षुरश्मीनां विषयं प्रति

१ मुख्यादिप्रतिविम्बाकारस्य । २ चक्रीवपदि । ३ जलपत्रेचरकाले । ४ जादिना  
लुण्ठम् । ५ कथम् । ६ शब्दरूपस्य । ७ व्यावृत्तम् । ८ यस्माद्वसन्तरत्वं सिद्धं  
प्रतिविम्बानाम् । ९ पुनः । १० सौर्येण तेजसा । ११ घटादिपदार्थम् ।

प्रवृत्तिर्नास्ति तथा चक्षुरप्राप्यकारित्वप्रघट्टके प्रतिपादितम् ।  
इत्यलमतिविस्तरेण ।

यच्चान्यदुक्तम्—‘देशमेवेन मिश्रत्वम्’ इत्यादि; तदप्यसारम्;  
यतो यदि प्रत्यक्षमेवानुमानस्य बाधकं नानुमानं प्रत्यक्षस्य; तर्हि  
५ चन्द्रार्कादौ स्थैर्याध्यक्षं देशादेशान्तरप्राप्तिलिङ्गजनितगत्यनुमानेन  
बाध्यं न स्यात् । अथास्य प्रत्यक्षरूपतैव नास्ति बाधितविषयत्वात्;  
तत्प्रकृतेऽपि समानम्, लूनपुनर्जातनखकेशादिवत्सादृश्यप्रतीत्या  
तैश्चानात्वप्रसाधकानुमानेन चाऽर्जाप्येकत्वप्रतीतेर्बाधितविषय-  
त्वाऽविशेषात् । अतोऽयुक्तमेतत्—

१० “स एवेति मतिर्नापि सादृश्यं न च तत्कञ्चित् ।

विनावयवसामान्यैर्वैर्गणैर्वयवैर्वा न च ॥”

[ मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० १८ ] इति ।

अवयवसामान्यस्याप्यत्रात एव प्रसिद्धेः । तेनायुक्तमुक्तम्—  
‘पर्यायेण’ इत्यादि; देवदत्ते हि ‘स एवायम्’ इति प्रत्ययः, अत्र  
१५ तु ‘तेनैनेन चैवं सदृशः’ इति । न च सदृशप्रत्ययादेकत्वम्;  
गोर्गवययोरपि तत्प्रसङ्गात् । यद्यप्युच्यते—

“जैनकोपिलनिर्दिष्टं शब्दश्रोत्रादिसर्पणम् ।

साधीयोऽस्मात्तदप्यत्रै युक्त्या नैवावतिष्ठते ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०६ ]

२० जैनेन हि निर्दिष्टं श्रोतारं प्रति शब्दस्य सर्पणं कापिलेन तु  
वक्तारम् । श्रोत्रैर्दिष्टदेव साधीयोऽस्मान्नैयायिकोपकल्पितात् ।  
धीवीतैरन्यायेन शब्दस्यामूर्त्तस्यागमनात् । तदप्यत्र युक्त्या  
नैवावतिष्ठते । यस्मात्—

“शब्दस्यागमनं तावदैहं परिकल्पितम् ।

२५ मूर्त्तिस्पर्शादिमत्त्वं च तेषामभिभवः सताम् ॥ १ ॥

१ चक्षुरक्ष्मीनां निषण्णं प्रति गमननिराकरणेन । २ बाधकम् । ३ ग्राहि ।  
४ स्थैर्यलक्षणम् । ५ गकारे । ६ कथम् । ७ गकारः । ८ गकारे । ९ सादृश्य-  
प्रतीत्यैकत्वप्रतीतेर्बाधितविषयत्वं यतः । १० स एवायं गकारादिः । ११ गकारादौ ।  
१२ वर्णानां निरवस्थात्वात् । १३ अशाः । १४ तेन सदृशोयं गकारः । १५ वर्णेन ।  
१६ वर्णः । १७ अन्यथा । १८ मीमांसकेन । १९ साङ्ख्य । २० अर्थः ।  
२१ अग्रे वक्ष्यमाणात् । २२ जगति वर्णेषु वा । २३ मीमांसकस्य । २४ गमनम् ।  
२५ लहरी । २६ कुतः । २७ प्रत्यक्षादिप्रमाणेनाप्राप्तीतिकम् । २८ कुल्यादिना  
तिरोभावः ।

त्वग्राह्यत्वमन्ये च भागाः सूक्ष्माः प्रकल्पिताः ।  
 तेषामदृश्यमानानां कथं च रचनार्कर्मः ॥ २ ॥  
 कीदृशाद्रचनामेवाद्वर्णमेदश्च जायताम् ।  
 द्रवित्वेन विना चैषां संश्लेषः (संश्लेषः) कल्प्यते कथम् ॥ ३ ॥  
 अगच्छतां च विश्लेषो न भवेद्वायुना कथम् ।  
 लघवोऽर्धयवा ह्येते निबद्धा न च केनचित् ॥ ४ ॥  
 वृक्षाद्यभिर्हृतानां च विश्लेषो लोष्ट्वद्भवेत् ।  
 पक्कश्चोत्रप्रवेशे च नान्येषां स्यात्पुनः श्रुतिः ॥ ५ ॥  
 न चावार्त्तरवर्णानां नानात्वस्यास्ति कारणम् ।  
 न चैकैस्यैव सर्वासु गमनं दिक्षु येज्यते ॥ ६ ॥” १०  
 [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०७-११२ ]

इत्यादि । तद्व्यञ्जकवैय्यागमनेपि समानम् । शक्यते हि शब्द-  
 स्थाने वायुं पठित्वा ‘वायोरागमनं तावद्वद्वं परिकल्पितम्’  
 इत्याद्यभिधातुम् ।

किञ्च, अदृष्टकल्पनागौरवदोषो भवत्पक्ष एवानुषज्यते, १५  
 तथाहि-शब्दस्य पूर्वापरकोट्योः सर्वत्र च देशेऽनुपलभ्यमानस्य  
 सत्त्वम्, तस्य चावारकाः स्तिमिता वायवः प्रमाणतोऽनुपलभ्य-  
 मानाः कल्पनीयाः, तदपनोदकाद्यन्ये, तेषां शक्तिनानात्वं कल्प-  
 नीयम्, नास्मैत्पक्षे । पौत्रलिकत्वं च यथावसरं शुणनिषेधप्रक्रमे  
 प्रसाधयिष्यामः । तत्सिद्धं घटस्य चक्रादिव्यापारकार्यत्ववच्छब्दस्य २०  
 तात्त्वादिव्यापारकार्यत्वमिति साधूक्तम्—‘आप्तवचनम्’ इत्यादि ।

नैतु शब्दार्थयोः सम्बन्धासिद्धेः कथमाप्तप्रणीतोपि शब्दोऽर्थे  
 ज्ञानं कुर्याद्यत आप्तवचननिबन्धनमित्यादि वचः शोभेतेत्याशङ्का-  
 पनोदार्थम् ‘सहजयोग्यता’ इत्याद्याह—

सहजयोग्यतासङ्केतवशाद्धि शब्दादयः वस्तु- २५  
 प्रतिपत्तिहेतवः ॥ १०० ॥

१ अवयवाः । २ अदृष्टाः । ३ रचना-तन्त्रः । ४ अदृष्टः । ५ मेदः ।  
 ६ वर्णोत्पत्तौ । ७ शब्दानां पुद्गलरूपाणाम् । ८ जैनानाम् । ९ शब्दानां वायुनां  
 च । १० जैनोक्ताः । ११ सम्बन्धाः । १२ कारणेन । १३ वर्णवायुत्पत्तौ ।  
 १४ पुद्गलरूपाणां वर्णानाम् । १५ पक्षस्य नरस्य । १६ गुणस्य । १७ अन्वयपक्षः  
 शब्दो जैनप्रते यतः । १८ अभ्योत्पन्नानाम् । १९ नैवाधिकस्य । २० यस्य ।  
 २१ जैनस्य । २२ तात्त्वादिजनितशब्दाभिव्यञ्जकत्वाने । २३ भीमासकपक्षे ।  
 २४ व्यञ्जकाः । २५ जैन । २६ सौगतः । २७ निराकरणार्थम् ।

सहजा स्वाभाविकी योग्यता शब्दार्थयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादक-  
शक्तिः ज्ञानक्षेययोर्ज्ञाप्यज्ञापकशक्तिवत् । न हि तत्राप्यतो योग्य-  
तातोऽन्यः कार्यकारणभावादिः सम्बन्धोऽस्तीत्युक्तम् । तस्यां सत्यां  
संज्ञेतः । तद्वशाद्धि स्फुटं शब्दार्थयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ।

५ . यथा मेवादयः सन्ति ॥ १०१ ॥

इति ।

ननु चासौ सहजयोग्यताऽनित्या, नित्या वा ? न तावदनित्या;  
अनवस्थाप्रसङ्गादे-येन हि प्रसिद्धसम्बन्धेन 'अयम्' इत्यादिना  
शब्देनाप्रसिद्धसम्बन्धस्य घटादेः शब्दस्य सम्बन्धः क्रियते  
१० तस्याप्यन्येन प्रसिद्धसम्बन्धेन सम्बन्धस्तस्याप्यन्येनेति । नित्यत्वे  
चास्याः सिद्धं नित्यसम्बन्धाच्छब्दानां वस्तुप्रतिपत्तिहेतुत्वमिति  
मीमांसकाः; तेप्यतत्त्वज्ञाः; हस्तसंज्ञादिसम्बन्धवच्छब्दार्थसम्ब-  
न्धस्यानित्यत्वेऽप्यर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वसम्भवात् । न खलु हस्तसंज्ञा-  
दीनां स्वार्थेन सम्बन्धो नित्यः, तेषामनित्यत्वे तदाश्रितसम्बन्धस्य  
१५ नित्यत्वविरोधात् । न हि भित्तिर्वैपाये तदाश्रितं चित्रं न व्यपै-  
तीत्यभिधानुं शक्यम् ।

न चानित्यत्वेऽस्यार्थप्रतिपत्तिहेतुत्वं न दृष्टम्, प्रत्यक्षविरो-  
धादे । एवं शब्दार्थसम्बन्धेऽप्येतद्व्याच्यम्-स हि न तावदना-  
श्रितैः; नैवोपदेनाश्रितस्य सम्बन्धत्वाऽसम्भवात् । आश्रितश्रोत्रिक  
२० तदाश्रयो नित्यः, अनित्यो वा ? नित्यश्चेत्, कोऽयं नित्यत्वे-  
नाभिप्रेतस्तदाश्रयो नाम ? ज्ञातिः, व्यक्तिर्वा ? न तावज्ज्ञातिः;  
तस्याः शब्दार्थत्वे प्रवृत्त्याद्यभावप्रतिपादनात्, निराकरिष्य-

१ न लोपाधिकी । २ वाच्यवाचकसामर्थ्यम् । ३ अपरः । ४ पूर्व प्रथम-  
परिच्छेदे । ५ अस्य शब्दस्यायमर्थः, अस्य शोभशब्दस्य साक्षादिमानर्थ इति च ।  
६ प्रायुक्ताः । ७ आदिना हस्ताङ्गुलीसंज्ञाः । ८ उदाहरणे । ९ अन्यथा ।  
१० कथम् ? तथा हि । ११ अयेन सह । १२ इदमित्यादिना च । १३ यथा  
प्रसिद्धसम्बन्धेन घटशब्देन घट एव वाच्यस्तथाऽप्रसिद्धसम्बन्धेनापि घटशब्देन घट एव  
वाच्य इति । १४ शब्देन । १५ नदन्ति । १६ आदिना नयनाङ्गुल्यादिसंज्ञाः ।  
१७ विनाशे । १८ विनश्यति । १९ वक्तुम् । २० अन्यथा । २१ प्रत्यक्षेण सिद्धा  
हस्तसंज्ञादयोऽनित्या यतः । २२ अनित्यहस्तसंज्ञादिसम्बन्धस्यार्थप्रतिपत्तिप्रतिपाद-  
कत्वप्रकारेण । २३ तादिः । २४ वक्ष्यमाणम् । २५ अन्यथा । २६ अमूर्त-  
मोवत् । २७ गगनस्य त्वयेन सम्बन्ध उपचारत एव, न तु साक्षात्पक्षाऽमूर्तत्वात् ।  
२८ दृष्टः । २९ सामान्यम् । ३० विशेषः । ३१ यदा सामान्यरूपो शब्दार्थौ  
सम्बन्धस्य वाच्यवाचकरूपसाधारभूतौ तदा तावेन विषयीकुर्याच्छब्द इति भावः ।  
३२ आदिना निवृत्तिः । ३३ पूर्वम् ।

माणत्वाच्च । व्यक्तेस्तु तदाश्रयत्वे कथं नित्यत्वमर्नभ्युपगमा-  
त्तथाप्रतीत्यभावाच्च । अनित्यत्वे च तदाश्रयत्वस्य सिद्धं तद्व्य-  
पाये सम्बन्धस्यानित्यत्वं भित्तिव्यपाये चित्रवत् । ततोऽयुक्त-  
मुक्तम्—

“नित्याः शब्दार्थसम्बन्धास्तत्राज्ञातो महर्षिभिः ।

५

सूत्राणां सानुतज्जाणों माध्याणां च प्रणेतुभिः ॥”

[वाक्यपदी० १।२३] इति;

सहशपरिणामविशिष्टस्यार्थस्य शब्दस्य तदाश्रितसम्बन्धस्य  
वैकान्ततो नित्यत्वासम्भवात् । सर्वथा नित्यस्य वस्तुनः क्रम-  
योगपद्याभ्यामर्थक्रियासम्भवतोऽसत्त्वं चाऽश्वविषाणवत् । अन-१०  
वस्थादुषणं चायुक्तमेव; ‘अयम्’ इत्यादेः शब्दस्यानादिपरम्पर्य-  
तोऽर्थभेदे प्रसिद्धसम्बन्धत्वात्, तेनावर्गेतिसम्बन्धस्य घटादि-  
शब्दस्य सङ्केतकरणात् ।

नित्यसम्बन्धवादिनोपि चानवस्थादोषस्तुल्य एवं-अनभिव्य-  
क्तसम्बन्धस्य हि शब्दस्याभिव्यक्तसम्बन्धेन शब्देन सम्बन्धा-१५  
भिव्यक्तिः कर्त्तव्या, तस्याप्यन्येनाभिव्यक्तसम्बन्धेनेति । यदि  
पुनः कस्यचित्सत् एवं सम्बन्धाभिव्यक्तिः; अपरस्यापि सा  
तथैवास्तीति सङ्केतकियौ व्यर्था । शब्दविभेदाभ्युपगमे चालं  
सम्बन्धस्य नित्यत्वकल्पनया । कल्पने चाऽगृहीतसङ्केत-  
स्याप्यतोऽर्थप्रतिपत्तिः स्यात् । सङ्केतस्य व्यञ्जकः इत्यप्य-२०  
युक्तम् । नित्यस्य व्यञ्ज्यत्वायोगात् । नित्यं हि वस्तु यदि व्यक्तं  
व्यक्तमेव, अथाव्यक्तमप्यव्यक्तमेव, अभिन्नसंभावत्वात्तस्य ।  
शब्दाभिव्यक्तिपक्षनिक्षिप्तदोषैर्नुपपन्नश्चात्रापि तुल्य एव ।

१ चतुर्वर्गपरिच्छेदे । २ नित्यवातेः । ३ सम्बन्धस्य । ४ परेण । ५ व्यक्तनित्य-  
त्वस्य । ६ व्यक्तिकल्पस्य । ७ अनित्यः सम्बन्धो वतः । ८ सामान्यः । ९ वाक्य-  
वाचकलक्षणः । १० भीमासार्वार्थान्वे । ११ अभ्युपगताः । १२ विषमपदव्याख्या-  
नमनुतर्गं तेन सह वर्तन्ते इति । तेषां सूत्राणाम् । १३ सर्वथा । १४ प्रवाहतः ।  
१५ पुरोवर्तिन्यनिर्धारितार्थे । १६ अर्थेन सह । १७ भीमासक्तस्य । १८ कथम् ।  
१९ अर्थेन सह । २० अनवस्थापरिहारार्थम् । २१ नापरेण । २२ हेतोः ।  
२३ पुरुषेण क्रियमाणा । २४ अयमित्यादिशब्दस्य सत्त एव सम्बन्धः । घटादि-  
शब्दस्य तु अयमित्यादिना शब्देनापरेण सम्बन्ध इति । २५ नित्यत्वस्य । २६ नुः ।  
२७ सम्बन्धस्य नित्यत्वात् । २८ नित्यशब्दस्य । २९ सङ्केतेन । ३० एकत्वभाव-  
त्वात् । ३१ नित्यसम्बन्धाभिव्यक्तौ जटविकल्पप्रकारेण ।

किञ्च, सङ्केतः पुरुषाश्रयः, स चातीन्द्रियार्थज्ञानविकलतयाः  
न्यथापि वेदै सङ्केतं कुर्यादिति कथं न मिथ्यात्वलक्षणमस्य-  
प्रामाण्यम् ?

किञ्च, असौ नित्यसम्बन्धवशादेकार्थनियतः, अनेकार्थ-  
नियतो वा स्यात् ? एकार्थनियतश्चेत्किमेकदेशेन, सर्वात्मना  
वा ? सर्वात्मनैकार्थनियमे अर्थान्तरे वेदात्प्रतिपत्तिर्न स्यात्,  
तैत्तश्चास्याज्ञानलक्षणमप्रामाण्यम् । एकदेशेन चेत्, स किमे-  
कदेशोऽभिमतैकार्थनियतः, अनभिमतैकार्थनियतो वा ? अनभि-  
मतैकार्थनियतश्चेत्, कथं न मिथ्यात्वलक्षणमप्रामाण्यम् ? अभि-  
मतैकार्थनियतश्चेत्किं पुरुषात्, स्वभावाद्वा ? प्रथमपक्षे अपौरुषे-  
यत्वसमर्थनप्रयासो व्यर्थः । पुरुषो हि रागाद्यन्वत्वात्प्रति-  
क्षिप्यते, तस्माच्चेद्वैकदेशोऽर्थनियमं प्रतिपद्यते, किमपौरुषेय-  
त्वेन ? अनेकार्थनियमे च विरुद्धोप्यर्थः सम्भवेत्, तथा चास्य  
मिथ्यात्वम् ।

१५ किञ्च, असौ सम्बन्धेन्द्रियः, अतीन्द्रियः, अनुमानगम्यो वा  
स्यात् ? न तावदैन्द्रियः, खेन्द्रिये स्वेन रूपेणाप्रतिभासमानत्वात् ।  
अतीन्द्रियश्चेत्, कथं प्रतिपत्त्यङ्गं ज्ञापकस्य निश्चयापेक्षणात् ?  
संज्ञिधिमात्रेण ज्ञापनेऽतिप्रसङ्गात् ।

अनुमानगम्यश्चेत्, न; लिङ्गभावात् । तस्य हि लिङ्गं ज्ञानम्,  
२० अर्थः, शब्दो वा ? न तावज्ज्ञानम्; सम्बन्धासिद्धौ तत्कार्यत्वे-  
नास्याऽनिश्चयात् । नार्थ्यर्थः, तस्य तेन सम्बन्धासिद्धेः । न हि  
सम्बन्धार्थयोस्तावात्म्यम्; सम्बन्धस्यानित्यत्वानुपपत्त्यात् । नापि  
तदुत्पत्तिः, अनन्युपगमात् । असम्बद्धार्थः कथं सम्बन्धं ज्ञाप-  
यत्यतिप्रसङ्गात् ? ज्ञापने वा शब्दा एवं सम्बन्धविकलाः किमर्थ-  
२५ न ज्ञापयन्त्यलं सिद्धोपस्थापिना नित्यसम्बन्धेन ?-तत्रार्थोपि-

१ सर्वस्वरूपेण । २ पुरुषाणाम् । ३ वेदेनार्थान्तरप्रतिपत्त्यभावात् । ४ भीमास-  
कस्य । ५ भीमासकैः । ६ वेदस्य । ७ द्वितीयपक्षे । ८ वेदस्य । ९ इन्द्रियविषयः ।  
१० ओष्रलोचनलक्षणे । ११ असाधारणरूपेण । १२ बाह्यवाचकसामर्थ्यसाती-  
न्द्रियत्वात् । १३ सम्बन्धस्य । १४ नाज्ञात् ज्ञापकं नाम । १५ शब्दार्थयोः सारूप्येण  
सम्बन्धस्यार्थज्ञापने । १६ सम्बन्धमात्रेण । १७ भीमासकवत्सौगतानपि बोधयेदिति ।  
१८ सम्बन्धेन सहाविनामाविलिङ्गस्य । १९ सम्बन्धोक्तिं ज्ञानात् । २० सम्बन्धासिद्धे-  
रिति खण्डितकीयः पाठः । २१ सम्बन्धोक्तिं अर्थात् । २२ कथम् । २३ अन्यथा ।  
२४ अर्थवत् । २५ सम्बन्धाद्व्युत्पत्तिरिति । २६ सम्बन्धेन सह । २७ तथा  
च खरविषाणं सम्बन्धं ज्ञापयद्वा । २८ असम्बन्धार्थेन । २९ सम्बन्धस्य ।

लिङ्गम् । नापि शब्दः, अर्थपक्षोक्तदोषानुपज्ञात् । ततो नित्यस-  
म्बन्धस्य प्रमाणतोऽप्रसिद्धेर्न तद्वशाद्देवोऽर्थप्रतिपादकः ।

अथ स्वभावादेवासौ तत्प्रतिपादकः, तत्र, 'अयमेवास्माकमर्थो  
नायम्' इति वेदेनानुक्तेः । तदुक्तम्—

“अयमर्थो नायमर्थ इति शब्दा वदन्ति न ।

५

कल्प्योयमर्थः पुरुषैस्ते च रागादिविप्लुताः ॥ १ ॥”

[प्रमाणवा० ३।३१२]

इति । ततो लौकिको वैदिको वा शब्दः सहजयोग्यतासङ्केत-  
वशादेवार्थप्रतिपादकोऽभ्युपगन्तव्यः प्रकारान्तरासम्भवात् ।

ननु चार्थप्रतिपादकत्वमेवामसम्भाव्यम्, य एव हि शब्दाः १०  
संत्यर्थे दृष्टास्ते एवातीतानागतौ तदभावेपि दृश्यन्ते । यदभावे  
च यदुच्यते न तत्तत्प्रतिबद्धम् यथाऽश्वाऽभावेपि दृश्यमानो  
गौर्न तत्प्रतिबद्धः, अर्थाभावेपि दृश्यन्ते च शब्दाः, तत्रैतेऽर्थप्रति-  
पादकाः, किन्त्वन्यापोहमात्राभिधायकाः । तदप्यविचारितरमणी-  
यम्, अर्थवतः शब्दात्तद्ग्रहितस्यास्यान्यत्वात् । न चान्यस्य व्यभि- १५  
चारेऽन्यस्याप्यसौ युक्तः, अन्यथा गोपालघटिकादिधूमस्याग्नि-  
व्यभिचारोपलम्भात्पर्यतादिप्रवेशवर्त्तिनोपि स स्यात्, तथा च  
कार्यहेतवे वृत्तो जलाञ्जलिः । सकलशून्यता च, स्वप्नादिप्रत्ययानां  
केचिद्विभ्रमोपलम्भतो निखिलप्रत्ययानां तत्प्रसङ्गात् । ‘यत्नतः  
परीक्षितं कौर्थं कौरवं नातिवर्त्तते’ इत्यन्यत्रापि समानम्—‘यत्नतो २०  
हि शब्दोर्थवत्त्वेतरस्वभावतया परीक्षितोर्थे न व्यभिचरति’ इति ।  
तथा चान्यापोहमात्राभिधायित्वं शब्दानां श्रद्धामात्रगम्यम् ।

किञ्च, अन्यापोहमात्राभिधायित्वे प्रतीतिविरोधः—गवादि-  
शब्देभ्यो विधिरूपोवसायेन प्रत्ययप्रतीतिः । अन्यनिषेधमौत्राभि-  
धायित्वे च तत्रैव चरितार्थत्वात्सास्त्रादिमतोर्थस्यातोऽप्रतीतिः २५  
तद्विपयाया गवादिबुद्धेर्जनकोन्यो ध्वनिरन्वेषणीयः । अथैकेनैव  
गोशब्देन बुद्धिद्वयस्योत्पादाच्च परो ध्वनिर्मुग्यः, न; ऐक्यस्य  
विधिकारिणो निषेधकारिणो वा ध्वनेर्युगपद्विज्ञानद्वयलक्षणफला-

१ सीगतः । २ विद्यमाने । ३ काले । ४ सा । ५ अपोहते व्यावर्त्ततेनेन-  
मावेनेति । ६ यत् । ७ मित्रत्वात् । ८ घृमात् । ९ परेण । १० कथम् ।  
११ अर्थे । १२ घृमादि । १३ अग्न्यादि । १४ शब्दे । १५ कथम् । तथा हि ।  
१६ व्यभिचारभावे च । १७ कुतः । १८ अस्तित्वरूपनिश्चयेन । १९ ज्ञानादि-  
मदर्थस्य । २० अगवादिभ्यादृष्टि । २१ यत् । २२ द्वितीयः । २३ शब्दः ।  
२४ ध्वनेः । २५ गवाद्यस्तित्व । २६ अगवादिभ्यादृष्टि ।



नुपलम्भात् । विधिनिषेधज्ञानयोश्चान्योन्यं विरोधात् कथमेकसा-  
त्सम्भवे ?

यदि च गोशब्देनागोशब्दनिवृत्तिर्मुच्यतः प्रतिषेधते; तर्हि  
गोशब्दश्चवर्णानन्तरं प्रथमतः 'अगौः' इत्येषा श्रोतुः प्रतिपत्ति-  
५ भवेत् । न चैवम्, अतो गोबुद्धयनुत्पत्तिप्रसङ्गात् । तदुक्तम्—

“नन्वन्यापोहकृच्छब्दो युष्मत्पक्षेऽनुवर्णितः ।

निषेधमात्रं नैवेह प्रतिभासेऽवगम्यते ॥ १ ॥

किन्तु गौर्गवयो हस्ती वृक्ष इत्यादिशब्दतः ।

विधिरूपावसायेन मतिः शाब्दी प्रवर्तते ॥ २ ॥”

१०

[ तत्त्वसं० का० ९१०-११ पूर्वपक्षे ]

“यदि गौरित्ययं शब्दः समर्थोऽर्थनिवर्तने ।

जनको गवि गोबुद्धिः (द्धे)र्मुच्यतामपरो ध्वनिः ॥ ३ ॥

नैवु ध्वनिफलाः शब्दा न चैकस्य फलद्वयम् ।

अपवादविधिज्ञानं फलमेकस्यैव कथम् ॥ ४ ॥

१५

प्रोगौरिति विज्ञानं गोशब्दध्वनिगो भवेत् ।

येनोऽगोः प्रतिषेधाय प्रवृत्तो गौरिति ध्वनिः ॥ ५ ॥”

[ भाष्यार्थलं० ६।१७-१९ ]

किञ्च, अपोहलक्षणं सामान्यं वाच्यत्वेनोभिधीयमानं पशुदास-  
लक्षणं चाभिधीयेत, प्रसज्यलक्षणं वा ? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता-

२० यदेव ह्यगोनिवृत्तिलक्षणं सामान्यं गोशब्देनोच्यते भवेता-  
तदेवासौभिर्गोत्वाख्यं भौवलक्षणं सामान्यं गोशब्दवाच्यमित्य-  
भिधीयेत, अभावस्य भावान्तरात्मकत्वेन व्यवस्थितत्वात् ।

कश्चायं भवतामश्वदिनिवृत्तिस्वभावो भावोऽभिप्रेतः ? न ता-  
वदसाधारणो गवादिस्वलक्षणात्मैः तस्य संकलविकल्पगोचराति-

१ परस्परविरुद्धार्थप्रतिपादनविरोधात् । २ यत्र विधिविज्ञानं तत्र निषेधविज्ञानं  
नास्ति । यत्र निषेधज्ञानं न तत्र विधिविज्ञानमिति । ३ बुद्धिद्वयस्य । ४ परेण भवता ।  
५ अगोः निवृत्तेः पूर्वम् । ६ एव । ७ अश्वः । ८ अन्यथा । ९ गौरिति  
बुद्धिस्तस्या अनुत्पत्तिः । १० तं करोतीति । ११ बौद्ध । १२ प्रतिपादितः ।  
१३ गौरयमित्यसिन् । १४ तर्हि कथं प्रतिभासः ? । १५ अर्थस्य । १६ अश्वः ।  
१७ तर्हि । १८ भवन्तु । १९ विधिनिषेधज्ञानं । २० शब्दस्य । २१ विधिनिषेध-  
लक्षणम् । २२ निषेधः । २३ शब्दस्य । २४ बौद्धानाम् । २५ अगोनिवृत्तेः पूर्वम् ।  
२६ अश्वः । २७ जनस्य । २८ कुतः । २९ गोशब्दसार्थत्वेन । ३० बौद्धमते ।  
३१ कथम् । ३२ सौगतेन । ३३ चैनेः । ३४ सत्ता । ३५ अगोनिवृत्तिलक्षणोऽ-  
भावो भावान्तरेण गोत्वेन व्यवतिष्ठते । ३६ क्षणिकनिर्देशनिरन्तररूपः ।

क्रान्तत्वात् । नापि शाबलेयादिव्यक्तिविशेषः, असामान्यप्रसङ्गतः ।  
यदि गोशब्दः शाबलेयादिवाचकः स्यात्तर्हि तस्यानैव्ययाश्च स  
सामान्यविषयः स्यात् । तस्मात्सर्वेषु सजातीयेषु शाबलेयादि-  
पिण्डेषु यत्प्रत्येकं परिसमाप्तं तन्निबन्धना गोबुद्धिः, तच्च गोत्वा-  
ख्यमेव सामान्यम् । तस्याऽगोऽपोहशब्देनाभिधानान्नाममार्गः  
मिथेर्त । उक्तञ्च—

“अगोनिवृत्तिः सामान्यं वाच्यं यैः परिकल्पितम् ।

, गोत्वं वस्त्वेव तैरुक्तमगोपोहगिरा स्फुटम् ॥ १ ॥

भावान्तरात्मकोऽभावो येन सर्वो व्यवस्थितः ।

तत्राश्वादिनिवृत्त्यात्मा भावः क इति कथ्यताम् ॥ २ ॥ १०

नेष्टोऽसाधारणस्तावद्विशेषो निर्विकल्पनात् ।

तथा च शाबलेयादिरसामान्यप्रसङ्गतः ॥ ३ ॥”

[ मी० श्लो० अपोह० श्लो० १-३ ]

“तस्मात्सर्वेषु यद्रूपं प्रत्येकं परिनिष्ठितम् ।

गोबुद्धिस्तन्मिसित्ता स्याद्गोत्वादव्यञ्च नास्ति तत् ॥” १५

[ मी० श्लो० अपोह० श्लो० १० ]

द्वितीयपक्षे तु न किञ्चिद्वस्तु वाच्यं शब्दानामिति अतोऽप्र-  
वृत्तिनिवृत्तिप्रसङ्गः । तुच्छरूपभावस्य चानभ्युपगमाच्च प्रसज्य-  
प्रतिषेधाभ्युपगमो युक्तैः, परंप्रतप्रवेशानुपपन्नात् ।

अपि च ये विभिन्नसामान्यशब्दा गवाद्यो ये च विशेषशब्दाः २०  
शाबलेयादयस्ते नैवद्विप्रायेण पर्यायाः प्रोप्नुवन्त्यर्थमेदाभावा-  
द्वृक्षपादपादिशब्दवत् । न खलु तुच्छरूपभावस्य सेदो युक्तः,

—१ अन्यथा । २ सामान्यस्यापोहस्याभावोऽसामान्यं तस्य प्रसङ्गात् । ३ विशेष ।  
४ शाबलेयादिना । ५ यो यः शब्दः स स शाबलेयाद्यर्थवाचक इति । ६ साक्षादि-  
मत्तन् । ७ अगोव्यावृत्तिः । ८ नाश्वतः । ९ गोशब्दस्य । १० सौगतैः । ११ गोत्वं  
वस्त्वेवाऽगोपोहगिरा उक्तम् । कुतस्तथा हि । १२ कारणेन । १३ पर्युदासपक्षे ।  
१४ नेष्ट इति शेषः । १५ अन्यथा । १६ असाधारणशाबलेयद्वयं न घटते यस्मात् ।  
१७ सकलगोव्यक्तिषु । १८ वर्तते । १९ सामान्यम् । २० प्रसज्यपक्षे ।  
२१ अद्विप्रायेण निवृत्तिश्च अद्विप्रायेण तयोरभावोऽप्रवृत्तिनिवृत्ती तयोः प्रसङ्गः ।  
२२ सौगतैः । २३ अन्यथा युक्तमेव । २४ नैवापिकादि । २५ सौगतस्य ।  
२६ यतः । २७ अश्वशब्दगोशब्दादि । २८ सामान्यस्याभिप्रायकाः । २९ बौद्ध ।  
३० भवन्ति । ३१ सर्वेषां पदार्थानां तुच्छस्वरूपत्वं यतः । ३२ निःस्वभावस्य ।  
३३ अपोहस्य ।

वस्तुन्येव संस्पृष्टं (संस्पृष्टत्वेकत्वनानात्वौदिविकल्पानां प्रतीतिः ।  
मेदाभ्युपगमे वा अर्थावस्थ वस्तुरूपतापत्तिः, तथाहि-ये परस्परं  
मिथ्यन्ते ते वस्तुरूपा यथा खलक्षणानि, परस्परं मिथ्यन्ते  
चाऽपोहो इति ।

- ५ न चापोहोऽलक्षणसम्बन्धिमेदादपोहोनां भेदः, प्रमेयाभिधेया-  
दिशब्दानामप्रवृत्तिप्रसङ्गात्, तदभिधेयापोहानामपोहोऽलक्षणै-  
सम्बन्धिमेदाभवेतो मेदासम्भवात् । अत्र हि धैतिकाद्वैतवच्छेद-  
त्वेन कल्प्यते तत्सर्वं व्यवच्छेदोकारेणालम्ब्यमानं प्रमेयादिस्मा-  
धमेवावतिष्ठते । न ह्यविषयीकृतं व्यवच्छेदं शक्यमतिप्रसङ्गात् ।  
१० न च सम्बन्धिभेदो भेदः, अन्यथा बहुषु शावलेयादिव्यक्तिवै-  
कस्याऽगोपोहस्याऽर्थावप्रसङ्गः । यस्य चान्तरङ्गाः शावलेयादि-  
व्यक्तिविशेषा न मेदकाः 'तस्याऽश्वादयो मेदकाः' इत्यतिसाह-  
सम् । सम्बन्धिमेदाश्च वस्तुन्यपि भेदो नोपलभ्यते किमुता-  
ऽवैस्तुनिः, तथाहि-देवदत्तादिकमेकमेव वस्तु युगपत्क्रमेण धाने-  
१५ कैरामरणीदिभिरभिस्तम्बल्यमानमनासादितमेदमेवोपलभ्यते ।

भवतु वा सम्बन्धिभेदो भेदः, तथापि-वैस्तुभूतसामान्याभ्युप-  
गमे भवतां स एवापोहाभ्यः सम्बन्धी न सिद्धिमासादयति धैत्य  
मेदासंभेदः स्यात् । तथाहि-गर्वादीनां यदि वस्तुभूतं सारूप्यं  
प्रसिद्धं भवेत्तदाश्वाद्यपोहाभ्यत्वमविशेषेणैषां प्रसिद्धोक्तार्थेन ।  
२० अतोऽपोहविषयत्वमेवामिच्छताऽवैद्यं सारूप्यमङ्गीकर्तव्यम् ।  
तदेव च सामान्यं वस्तुभूतं भविष्यतीत्यपोहकल्पना वृथैव ।

१ न पुच्छरूपमात्रे । २ अन्ये सम्बन्धे । ३ आदिना प्रमेयत्वादि । ४ मेदा-  
नाम् । ५ सौगतेः । ६ अपोहस्य । ७ तल्लक्षणत्वाद्वस्तुत्वस्य । ८ कथम् ।  
९ अत्रादिनिवृत्तयः । १० अपोहो व्यावर्त्ता अत्रादयः । ११ अभावानाम् ।  
१२ अन्यथा । १३ अप्रमेयादि । १४ स्वरूप । १५ स्वरूपेण नास्ति यतः ।  
१६ प्रमेयादिशब्देषु । १७ अप्रमेयादि । १८ व्यावर्त्तत्वेन । १९ व्यावर्त्ताकारेण ।  
२० विषयीक्रियमाणम् । २१ वर्तते । २२ व्यवच्छेदमप्रमेयादि । २३ परिच्छेत्तुम् ।  
२४ गगनकुसुममपि परिच्छेत्तुं शक्यं स्यात् । २५ अपोहानाम् । २६ किन्तु  
प्रतिन्यक्ति मित्र एव स्यात् । २७ अन्यभिचारि प्रतिलिखितमन्तरङ्गम् । २८ अपोहे ।  
२९ कटककुण्डलादिभिः । ३० सम्बन्धिभिः । ३१ अपोहस्य । ३२ परमार्थस्य ।  
३३ गोत्वादि । ३४ विवक्षितः । ३५ सन् । ३६ सम्बन्धिनः । ३७ अपोहस्य ।  
३८ अर्थानाम् । ३९ सङ्घरूपम् । ४० शावलेयादिषु । ४१ सामान्यम् ।  
४२ गोत्वादि । ४३ साधारणेन । ४४ सारूप्याभावे । ४५ सामान्याभ्युपगमे  
विवक्षितोऽपोहाशयः सम्बन्धी न सिध्यति यतः । ४६ सौगतेन । ४७ नियमेन ।

यदि चाऽसत्यपि सारूप्ये शावलेयादिष्वगोपोहकल्पना तदा गवाश्वयोरपि कस्माच्च कल्प्येताऽसौ विशेषामावात् ? तदुक्तम्—

“अथाऽसत्यपि सारूप्ये स्यादपोहस्य कल्पना ।

गवाश्वयोरप्येकसादगोपोहो न कल्प्यते ॥ १ ॥

शावलेयाच्च भिन्नत्वं बाहुलेयाश्वयोः संमम् ।

सामान्यं नान्यदिदं चेतकागोपोहः प्रवर्त्तताम् ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ७६-७७ ]

यथा च खलुर्क्षणादिषु संमयासम्भवाच्च शब्दार्थत्वं तथाऽपोहेषु । निश्चितार्थो हि संमयकृत्समयं करोति । न चापोहः केनचिदिन्द्रियैर्व्यवसीयते ; तस्यावस्तुत्वादिन्द्रियाणां च वस्तुविषय-त्वात् । नाप्यनुमानेन ; वस्तुभूतसामान्यमन्तरेणानुमानस्यैवाऽप्रवृत्तेः ।

अस्तु चा संमयः, तथोपि-कथमश्वदीनां गोशब्दानभिधेयत्वम् ? ‘संस्वर्णानुभवक्षणेऽश्वोदेस्तद्विषयत्वेनादिष्टः’ इत्यनुत्तरम् ; यतो यदि यद्गोशब्दसङ्केतकाले दृष्टं ततोऽन्यत्र गोशब्द-प्रवृत्तिर्न भवेत्, तदैकसात्सङ्केतेन विषयीकृताच्छावलेयादिगोपिण्डात् अन्यद्बाहुलेयोदि गोशब्देनापोहां न भवेत् ।

इतिरेतराश्रयश्च-अगोच्यवच्छेदेन हि गोः प्रतिपत्तिः, स चाऽगौर्गोनिषेधात्मा, ततश्च अगौः इत्यत्रोत्तरपदार्थो वैकल्यो यो ‘न गौः’ इत्यत्र नञा प्रतिषेधेत । न ह्यनिर्ज्ञातस्वरूपस्य निषेधो

- १ अश्वशब्दः । २ एकः । ३ सारूप्यासत्त्वाविशेषात् । ४ यदि । ५ शावलेयादौ । ६ एकगोः । ७ कारणात् । ८ गवाश्वयोर्मिन्नत्वादेकगोपोहामयत्वं नेत्युक्ते आह । ९ समानम् । १० परमार्थभूतम् । ११ भिन्नम् । १२ विशेषेषु शृणिकनिरञ्जादियु । १३ शावलेयादिषु । १४ सङ्केतः । १५ पठते इति शेषः । १६ अस्म शब्दस्याप्यमर्थ इति । १७ ना । १८ नरेण । १९ निश्चीयते । २० खलुक्षण । २१ अपोहे । २२ अपोहे समयसम्भवमिति । २३ स्यात् । २४ अनुमानमप्यन्यापोहं नावबोधयति । २५ गोशब्देन साक्षाद्विमर्शस्य अनुमानस्य कार्यसंवावसम्पाद्यत्वात् । अन्यापोहस्य निरुपाख्यत्वेनानर्थक्रियाकारित्वेन च स्वभावकार्ययोरसम्भवात् । २६ काले । २७ ता । २८ दर्शनाभावात् । २९ दृष्टं वर्जयित्वा । ३० अथे । ३१ परेण । ३२ खण्ड-शृण्वादिनाम्ना । ३३ गोशब्दस्यार्थं वाच्य इति । ३४ सौगतेन । ३५ गोपिण्डम् । ३६ अश्वदि । व्यावर्त्त्यम् । ३७ सङ्केतकाले सङ्केतेनाविषयीकृतत्वाद्बाहुलेयादेः । ३८ दूषणान्तरमाह । ३९ कथम् । ४० गोशब्दार्थः । ४१ परेण त्वया । ४२ समासारम्भे वाक्ये । ४३ पदार्थस्य ।

विधातुं शक्यः । अथाऽगोनिवृत्त्यात्मा गौरेव, नन्वेवमगोनिवृत्ति-  
स्वभावत्वाद्गौरेप्रतिपत्तिद्वारेणैव प्रतीतिः, अगोश्च गोप्रति-  
षेधात्मकत्वाद्गोप्रतिपत्तिद्वारेणेति स्फुटमितरेतराश्रयत्वम् ।

अथाऽगोशब्देन यो गौर्निषिध्यते स विधिरूप एवागोव्य-  
५ वच्छेदलक्षणापोहसिद्ध्यर्थम् तेनेतरेतराश्रयत्वं न भविष्यति;  
यथैवम्—‘सर्वस्य शब्दस्यापोहोऽर्थः’ इत्येवमपोहकल्पना वृथा  
विधिरूपस्यापि शब्दार्थस्य भावात्, अन्यथेतरेतराश्रयो दुर्नि-  
वारः । तदुक्तम्—

“सिद्धेश्चागौरपोहोतं गोनिषेधात्मकश्च सः ।

१० तत्र गौरेव वक्तव्यो नञा यः प्रतिषिध्यते” ॥ १ ॥

स चैदगोनिवृत्त्यात्मा भवेदन्योन्यसंश्रयः ।

सिद्धेश्चैद्गौरपोहार्थं वृथापोहप्रकल्पनम् ॥ २ ॥

गौर्नसिद्धे त्वगौर्नास्ति तदभावेऽप्यपि गौः कुतः ।

नोपधाराधेयवृत्त्यौदिसम्बन्धश्चाप्यभावेऽप्योः ॥ ३ ॥”

१५

[ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८३-८५ ]

दिशोऽंगेन विशेषणविशेष्यभावसमर्थनार्थम् “नीलोत्पलादि-  
शब्दा अर्थान्तरनिवृत्तिविशिष्टैर्नर्थानाहुः” [ ] इत्युक्तम्;

तदयुक्तम्; यस्मै हि येनै कश्चिद्वास्तवः सम्बन्धः सिद्धस्तत्रेन  
विशिष्टमिति वक्तुं युक्तम्, न च नीलोत्पलयोरनीलानुत्पल-

२० व्यवच्छेदरूपत्वेनाभावरूपयोराधाराधेयत्वादिः सम्बन्धः सम्भ-  
वति; नीरूपत्वात् । आदिग्रहणेन संयोगसमवायैकार्थसमवाया-  
दिसम्बन्धग्रहणम् । न चासति वास्तवे सम्बन्धे तद्विशिष्टस्य  
प्रतिपत्तिर्युक्ताऽतिप्रसङ्गात् ।

१ पुरुषेण । २ अश्वस्यभावात्मा । ३ उत्तरपदार्थः । ४ ओ सौगत । ५ ता ।  
६ उत्तरपदार्थस्य । ७ अश्वदेः । ८ ता । ९ यव । १० प्रतीतिः । ११ पूर्वोक्त-  
प्रकारेण । १२ साक्षादिमात्रभावरूप इति भावः । १३ नागोनिवृत्त्यात्मा ।  
१४ स्वरूप । १५ तर्हि । १६ ज्ञातः । १७ गोशब्देन । १८ यमं सति । १९ उच्यते  
यव गौरित्युक्ते आह । २० निषिरूपेण । २१ अद्यापि । २२ जैनैरुच्यते ।  
२३ विशेष्यपदार्थिवेयोऽभावो विशेष्य आधाराश्च विशेषणपदार्थिवेयोऽभावो विशेषण-  
भावेयश्चेत्यभिप्रायः परस्व (सौगतस्य) नीलो घट इत्यादिष्व । २४ न केवलं संकेतः ।  
२५ कारिकोत्तरार्थं व्याचष्टे । २६ अनील अनुत्पललक्षण । २७ अभावसहितत्वात् ।  
२८ कथम् । २९ विशेष्यस्य । ३० विशेषणेन । ३१ अर्थरूपयोः । ३२ पदार्थ-  
समवायः मातुलिङ्गक्षणं रूपवद्भावेः । ३३ आदिना तादात्म्यम् । ३४ नील ।  
३५ उत्पलस्य । ३६ विशेषणविशेष्यतया सद्भाविन्वययोरेभि प्रतिपत्तिः स्यादिति ।

नास्माकमनीलादिव्यावृत्त्या विशिष्टोऽनुत्पलादिव्यवच्छेदोऽ-  
भिमतो यतोयं दोषः स्यात् । किं तर्हि ? अनीलानुत्पलाम्यां  
व्यावृत्तं वस्त्वेव तथा व्यवस्थितम् । तच्चार्थान्तरव्यावृत्त्या  
विशिष्टं शब्देनोच्यते, इत्यप्यपेशलम्, स्वलक्षणस्याऽवैच्यत्वात् ।  
न च स्वलक्षणस्य व्यावृत्त्या विशिष्टत्वं सिद्ध्यति, यतो न वस्त्व-  
पोहोऽसाधारणं तु वस्तु, न च वस्त्वऽवस्तुनोः सम्बन्धो  
युक्तः, वस्तुव्याधारत्वात्तस्य ।

अस्तु वा सम्बन्धः, तथापि विशेषणत्वमपोहस्याऽयुक्तम्, न  
हि संचितमात्रेण किञ्चिद्विशेषणम् । किं तर्हि ? ज्ञातं सचत्वा-  
कारानुरक्तया बुद्ध्या विशेष्यं रक्षयति तद्विशेषणम् । न चापो-१०  
हेऽयं प्रकारः सम्भवति । न ह्यश्वादिवुद्ध्यापोहोऽध्यवसीयते ।  
किं तर्हि ? वस्त्वेव । अपोहज्ञानासम्भवश्चोक्तः प्राक् । न चाज्ञा-  
तोप्यपोहो विशेषणं भवति । “नागृहीतविशेषणा विशेष्ये  
बुद्धिः” [ ] इत्यभिधानात् ।

अस्तु वाऽपोहज्ञापनम्, (ज्ञानम्,) तथापि-अर्थे तद्वैकार-१५  
ज्ञमावात्तस्याऽविशेषणत्वम् । सर्वे हि विशेषणं स्वाकारानुरक्त्या  
विशेष्ये बुद्धिं जनयद्बुद्धम्, न त्वन्यादृशं विशेषणमन्यादृशीं बुद्धिं  
विशेष्ये जनयति । न कलु नीलमुत्पले ‘रक्तम्’ इति प्रत्यय-  
मुत्पादयति, दण्डो वा ‘कुण्डली’ इति । न चाश्वादिवैभवावैलु-  
रक्ता शौन्दी बुद्धिरपजायते । किन्तर्हि ? भौवाकाराप्यवसा-२०  
यिनी । तथापि विशेषणत्वे सर्वे सर्वस्य विशेषणं स्यात् । अनु-

- १ भवतामयं प्रसङ्ग इत्युक्ते सखाह । २ जैनानाम् । ३ रक्तादि । ४ विशेषणेन ।  
५ अपवादि । ६ विशेष्यः । ७ न कुतोपि । ८ नीलोत्पलरूपेण । ९ इति जैनः ।  
१० अर्थः स्वलक्षणरूपः । ११ अनीलानुत्पलरूपः । १२ इति सौगतः । १३ कुतः ।  
१४ यद्वस्तु तत्स्वलक्षणमेवेति शब्देन । १५ सौगतामते । १६ अन्यव्यावृत्तिरूपं  
तु सामान्यमेव । १७ अपोहोत्पलसिद्धमात्रेण । १८ लोके । १९ उत्पलम् ।  
२० स्यात् । २१ अज्ञातत्वादपोहस्य । २२ न तावत्प्रत्यक्षेणापोहग्रहणमित्यादिः ।  
२३ स्वलक्षणरूपे । २४ सिरस्यूलान्तरः स्वलक्षणोत्पत्तिं ज्ञायते न त्वमावरूपानोहा-  
कारः । २५ सती सट्टशीम् । २६ अभावरूपम् । २७ भावरूपम् । २८ कथम् ।  
२९ पुरुषस्य । ३० स्वलक्षणरूपेषु । ३१ अपोहासक्य । ३२ शब्दजनितता  
सविकल्पत्वार्थः । बौद्धानां मते निर्विकल्पकत्वान्तरात्पञ्चसविकल्पकत्वानेन स्वलक्षणस्य  
निश्चयो यतः । ३३ सिरस्यूलान्तरं पदार्थान्तरम् । ३४ स्वाकारानुरूपपञ्चजनकत्वेति ।  
३५ अपोहस्य । ३६ स्वाकारानुरूपपञ्चजनकत्वाविशेषात् ।

रोगो वा अभावरूपेण वस्तुनः प्रतीतेर्वस्तुत्वमेव न स्यात्, भावा-  
भावयोर्विरोधात् । शब्देनाऽगम्यमानत्वाच्चाऽसाधारणवस्तुनो न  
व्यावृत्त्या विशिष्टत्वं प्रत्येतुं शक्यम् । उक्तञ्च—

- “न चासाधारणं वस्तु गम्यतेपोहवत्तया ।  
५ कथं वा परिकल्प्येत सम्बन्धो वस्त्ववस्तुनोः ॥ १ ॥  
स्वरूपसत्त्वमात्रेण न स्यात्किञ्चिद्विशेषणम् ।  
स्वबुद्ध्या रज्यते येन विशेष्यं तद्विशेषणम् ॥ २ ॥  
न चाप्यश्वादिशब्देभ्यो जायतेपोहमौसनम् ।  
विशेष्ये बुद्धिरिष्टे<sup>३</sup> न चाज्ञातविशेषणा ॥ ३ ॥  
३० न चान्यैरूपमन्यादृक्<sup>४</sup> कुर्याज्ज्ञानं विशेषणम् ।  
कथं वाऽन्यादृशे<sup>५</sup> ज्ञाने तदुच्येत विशेषणम् ॥ ४ ॥  
अथान्यथा विशेष्येऽपि स्याद्विशेषणकल्पेना ।  
तथा सति हि यैत्किञ्चित्सज्येत विशेषणम् ॥ ५ ॥  
अभावगम्यरूपे च न विशेष्येऽस्ति वस्तुता ।

- १५ विशेषितमपोहेन<sup>६</sup> वस्तु<sup>७</sup> बौध्यं न तेऽस्त्यतः ॥ ६ ॥”  
[ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८६-९१ ]

“शब्देनागम्यमानं च विशेष्ये<sup>८</sup>मिति साहसम् ।  
तेन सामान्यमेष्टव्यं विषयो बुद्धिशब्दयोः ॥”

[ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९४ ]

- २० इतश्च सामान्यं वस्तुभूतं शब्दविषयः, यतो व्यक्तीनामसा-  
धारणवस्तुरूपाणामशब्दवैच्यत्वाच्च व्यक्तीनामपोहेत, अनुक्तस्य

१ अन्वादिषु शब्दबहुदेरभावेन सहाजुरागे सति । २ वदा भावाकारो वृत्तस-  
दाऽभावरूपमेव स्वलक्षणं निश्चिनुयादिति भावः । ३ स्वलक्षणस्य । ४ कुतः ।  
५ स्वलक्षणस्य । ६ अपोहेन । ७ अर्थान्तरव्यावृत्त्या विज्ञिष्टं स्वलक्षणरूपं वस्तु  
शब्देनोच्यत । इति वदन्तं वाक्षितं यति समर्थनमुक्तमिति ज्ञेयम् । ८ अपोहस्य ।  
९ कथं तर्हि विशेषणं सादित्युक्ते आह । १० स्वस्य=विशेषणस्य । ११ प्रतीतिः ।  
१२ जगति । १३ अभावरूपम् । १४ भावरूपम् । १५ विशेष्ये । १६ ज्ञानानामिदं  
रूपं न जायते तेषां सर्वं वस्तु भावाभावात्मकं यतः । १७ भावरूपे । १८ अभाव-  
रूपे । १९ परेण । २० यदि । २१ भावरूपे । २२ अपोहस्य । २३ अनिवर्त-  
नीयम् । २४ स्वलक्षणरूपे । २५ विशेषणेन । २६ स्वलक्षणरूपस्य । २७ शब्देन ।  
२८ सौगतस्य । २९ अपोहस्य विशेषणस्य । ३० स्वलक्षणम् । ३१ येन करणे-  
नापोहशब्दयोर्वैच्यत्वाच्चकमावो नास्ति तेन । ३२ शब्दजनितगुण्या गम्यः शब्देन-  
वाच्यश्च । ३३ गोत्वादि । ३४ स्वलक्षणस्यावाच्यत्वं कुतः । सहेताभावात् ।  
३५ शब्देनाव्याच्यस्य ।

निरोक्तमशक्यत्वात्, अपोहोत सामान्यं तस्य वाच्यत्वात् ।  
अपोहानां त्वभावरूपतयाऽपोहत्वासम्भवात्, अभावानामभावा-  
भावात्, वस्तुविषयत्वात्प्रतिषेधस्य । अपोहत्वेऽपोहानां वस्तु-  
त्वमेव स्यात् । तस्मादश्वादौ गवादेरपोहो भवेन् सामान्यभूत-  
स्यैव भवेदित्यपोहत्वाद्वास्तुत्वं सामान्यस्य । तदुक्तम्—

“यदा चाऽशब्दवाच्यत्वान्न व्यक्तीनामपोहता ।  
तदापोहोत सामान्यं तस्यापोहान्न वस्तुता ॥ १ ॥  
नाऽपोहत्वमभावानामभावाऽभाववर्जनात् ।  
व्यक्तोऽपोहान्तराऽपोहस्तस्मात्सामान्यवस्तुनः ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९५-९६ ] १०

किञ्च, अपोहानां परस्परतो वैलक्षण्यं वा स्यात्, अवैलक्षण्यं  
वा ! तत्रापक्षे [अ]भावस्यागोशब्दाभिधेयस्याभावो गोशब्दाभि-  
धेयः, स चेत्पूर्वोक्तादभौवादिलक्षणः, तदा भाव एव भवेदभाव-  
निवृत्तिरूपत्वाद्भावस्य । न चेद्विलक्षणः, तदा गौरैर्यगौः प्रस-  
ज्येत तदैवैलक्ष्येण ( तद्वैलक्षण्येन ) तादात्म्यप्रतिपत्तेः । तन्न १५  
वाच्यमिमतापोहानां मेदसिद्धिः ।

नापि वैचक्राभिमतानाम्, तथाहि-शब्दानां भिन्नसामान्य-  
वाचिनां विशेषवाचिनां च परस्परतोऽपोहमेदो वासनैमेद-  
निमित्तो वा स्यात्,--वाच्योपोहमेदनिमित्तो वा ? प्रथम-  
पक्षोऽयुक्तः, अवेस्तुनि वासनाया एवासम्भवात् । तदसम्भवश्च २०

१ अपोहितम् । २ शब्देन । ३ अन्यव्यावृत्तीनाम् ( सर्वेषां पदार्थानामपोह-  
रूपत्वात्सर्वे भावा अपोहाः ) । ४ व्यावर्त्यत्वम् । ५ अत्र स्वरविभागवद्वृत्तान्तः ।  
६ अपोहानाम् व्यावर्तीनाम् । ७ व्यावर्त्यत्वे । ८ अङ्गीक्रियमाणे परेण । ९ अभाव-  
भावानाम् । १० वर्तमानः । ११ हेतोः । १२ स्वलक्षणानाम् । १३ वस्तुविषयो  
निषेधो यतः । १४ निषेधस्य निषेधासम्भवात् । १५ अपोहा(ह)न्तराऽश्वादौ ।  
१६ गोः । १७ व्यक्तीनामपोहानां आपोहत्वा नास्ति यस्मात् । १८ एवम् । १९ ता ।  
२० गोशब्दाश्चशब्दवाच्यानामन्यव्यावृत्तीनाम् । २१ विसृष्टता । २२ अथ ।  
२३ वाच्यस्य । २४ गोशब्दाभिधेयोऽभावो यतः । २५ अगोशब्दाभिधेयात् ।  
२६ द्वितीयपक्षे दूषणमुद्गाहयन्ति । २७ एकस्वरूपः । २८ भवेत् । २९ भिन्नपदार्थः ।  
३० तस्मादगोशब्दवाच्यादपोहादवैलक्षण्यं गोशब्दवाच्यापोहस्य । ३१ एकत्वात् ।  
३२ गोशब्दाऽगोशब्दवाच्यापोहयोः । ३३ अर्थः । ३४ शब्दः । ३५ अपोहानाम् ।  
३६ गोलक्षणभलक्षणम् । ३७ खण्डमुण्डादि । ३८-शब्दापोहमेदः । ३९ पूर्वविकल्प-  
शानं शब्दविषयं वासना । ४० एवम् । ४१ यतः । ४२ अर्थः । ४३ वाचकापोहे ।



तद्धेतोर्निर्विषयप्रत्ययस्यायोगात् । नापि वाच्यापोहमेदनिमित्तः;  
तद्धेदस्य प्रागेव कृतोत्तरत्वात् ।

ननु प्रत्यक्षेणैव शब्दानां कारणमेदाद्विद्वद्धर्माध्यासाच्च मेदः  
प्रसिद्ध एव; इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतो वाचकं शब्दमङ्गीकृत्यै-  
५ वमुच्यते । न च श्रोत्रज्ञानप्रतिमासिखलक्षणात्मा शब्दो वा-  
चकः; सङ्केतकालानुभूतस्य व्यवहारकालेऽचिरनिरुद्धत्वात् इति  
न खलक्षणस्य वाचकत्वं भवदभिप्रायेण । तदुक्तम्—

“नार्थशब्दविशेषेण वाच्यवाचकतेर्भ्येते ।

तस्य पूर्वमदृष्टत्वात्सामान्यं तूपदिश्यते ॥ १ ॥” [ ]

१० “तत्र शब्दान्तरापोहे सामान्ये परिकल्पिते ।

तथैवावस्तुरूपत्वाच्छब्दमेदो न कल्प्यते ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० अपोह० श्लो० १०४ ]

ततो ये अवस्तुनी न तयोर्गम्यगमकभावो यथा क्षुप्प-खर-  
विषाणयोः । अवस्तुनी च वाच्यवाचकापोहौ भवेतामिति । ननु  
१५ मेधाभावाद्बुध्यभावप्रतिपत्तेरनैकान्तिकता हेतोः; इत्यप्युक्तम्;  
तद्विवेकाकाशालोकात्मकं हि वस्तु मत्पक्षेऽत्रापि प्रयोगेऽप्येव,  
अभावस्य भावान्तरसमावत्त्वप्रतिपादनात् । भवत्पक्षे तु न केव-  
लमपोहयोर्विवादास्पदीभूतयोर्गम्यगमकत्वाभावोऽपि तु वृद्धि-  
मेधाद्यभावयोरपि ।

२० किञ्च, अपोहो वाच्यैः, अर्थवाच्यौ वा ? वाच्यश्रेयसि विधि-  
रूपेण, अन्यव्यावृत्त्या वा ? यदि विधिरूपेण; कथमपोहः सर्व-

१ वासनाकारणस्य । २ पुच्छरूपत्वाच्चिविषयत्वमपोहस्य सविकल्पकज्ञानस्य ।  
३ गवादीनाम् । ४ तात्वादि । ५ मित्र । ६ अध्यासो ग्रहणम् । ७ पारमार्थिका-  
श्रेयस्य । ८ परेण सौगतेन । ९ खलक्षणरूपशब्दस्य । १० विनष्टत्वात् । ११ हेतोः ।  
१२ शब्दस्वभावस्य । १३ बौद्ध । १४ अखलक्षणरूपैः शब्दैरखलक्षणरूपाव्यभि-  
पादने न किञ्चित्साध्यसिद्धिर्नोदभवे इत्यभिप्रायः । १५ परेण । १६ सङ्केतकालात् ।  
१७ अज्ञातत्वात् । १८ उत्तरकाले । १९ अर्थशब्दयोः । २० तर्हि सामान्याकारेण  
वाच्यवार्चकतास्त्वित्याशङ्क्यामाह । सामान्यस्य वाच्यवाचकतयोपदेशे च ।  
२१ गोशब्दादन्वयशब्दः शब्दान्तरं तेन वाच्योऽपोहस्तत्र । २२ अवास्तवे । परि-  
कल्पितप्रकारेण । २३ शब्दीनाम् । २४ समर्थ्यते । २५ सौगतानाम् ।  
२६ अभावरूपयोरपि गम्यगमकभावोऽस्तीति वक्ति बौद्धः । २७ गम्यगमकभावसङ्गा-  
थात् । २८ अवस्तुत्वादिति । २९ मेवादिभिन्न । ३० जैन । ३१ सौगत ।  
३२ वाच्यवाचकयोः । ३३ पुच्छरूपत्वात् । ३४ अन्यथा । ३५ शब्देन ।  
३६ जयया । ३७ शब्देन । ३८ अस्तित्वसङ्गावेन । ३९ यथा ।

शब्दार्थः? अथान्यव्यावृत्त्याः तर्हि नापोहोऽपि शब्दाधिगम्यो मुख्यः । अनवरत्ना च-तद्व्यावृत्तेरपि व्यावृत्त्यन्तरेणाभिधानात् । अथाऽर्वाच्यः, तर्हि 'अन्यैर्वाच्यार्थाऽपोहं शब्दः प्रतिपादयति' इत्यस्य व्याधीतः ।

किञ्च, 'नैन्यापोहः अनन्यापोहः' इत्यादौ विधिरूपादन्यै-  
द्वाच्यं नोपलभ्यते प्रतिषेधद्वयेन विधेरेवाध्यवसायात् ।

कश्चायमन्यापोहशब्दवाच्योर्थो यत्रान्यापोहसंज्ञा स्यात्? अथ विज्ञातीयव्यावृत्तार्थानाश्रित्यानुभवादिकैमेण यदुत्पन्नं विकल्प-  
ज्ञानं तत्र यत्प्रतिभाति ज्ञानात्मभूतं विज्ञातीयव्यावृत्तार्थाकार-  
तयाध्यवसितमर्थप्रतिविम्बकं तत्रान्यापोह इति संज्ञा । ननु १०  
विज्ञातीयव्यावृत्तपदार्थानुभवद्वारेण शब्दं विज्ञानं तथाभूतार्था-  
ध्यवसाय्युत्पद्यते इत्यत्राविर्वाद एव । किन्तु तत्तथाभूतपार-  
मार्थिकार्थप्राप्त्युपगन्तव्यमध्यवसायस्य ग्रहणरूपत्वात् । विज्ञा-  
तीयव्यावृत्तेऽपि समानपरिणामरूपवस्तुवर्तित्वेन व्यवस्थापित-  
त्वाभिमतामेव भिद्येत ।

१५

यश्चोक्तम्-“तत्प्रतिविम्बकं च शब्देन अन्यमानत्वात्तस्य कार्य-  
मेवेति कार्यकारणभाव एव वाच्यवाचकभावः” [ ]

१ अपोहस्य विधिरूपेण वाच्यत्वात्तद्वैशब्दापोहोऽपि न भवतीत्यर्थः । २ अपोहः ।  
३ न केवलं स्वरूपम् । ४ अन्यव्यावृत्तिरपि वाच्याऽवाच्या वा स्यात्? अवाच्या  
तत्राऽवाच्ययान्यव्यावृत्त्या कथमपोहो वाच्योतिप्रसङ्गात् । अथ वाच्या किं विधिरूपेणा-  
न्यव्यावृत्त्या वा? न तावद्विधिरूपेणोक्तोपायुपज्ञात् । अथान्यव्यावृत्त्या अन्यव्या-  
वृत्तिर्वाच्या चेत्तत्राप्यन्यव्यावृत्तिर्यथा वाच्या सापि वाच्याऽवाच्या वेत्यादिप्रका-  
रेणानवस्था । ५ कुतः । ६ शब्देन । ७ अथ । ८ यतः । ९ अश्लक्ष्णम् ।  
१० गौरिति । ११ मतस्य । १२ अपोहस्याऽवाच्यत्वात् । १३ सर्वेषां परस्परेण  
व्यावृत्तिस्तमानो यतः । १४ अविधिरूपम् । वस्तु । १५ आदौ यो ननु स  
एकोपोहो द्वितीयेन तस्याप्यपोहः । द्वौ नवौ प्रकृतमर्थं गमयतः । १६ इति ।  
१७ सद्देतः । १८ कश्चिद्विधिशेषः प्राह । १९ अवादिभ्यः । २० खण्डमुण्डा-  
दिस्वरूपान् । २१ प्रथमं खण्डमुण्डापनुभवो नाम निर्विकल्पकं दर्शनं, तदनु  
विकल्पवानुद्बोधस्तदनु सद्देतकालगृहीतवाच्यवाचकस्मरणं तदन्वितं वाच्यवाचकमिति  
योजनं, तदनु विकल्पोऽयं गौरिति । २२ अवादिभ्यः । २३ ज्ञानादपेक्षरूपम् ।  
२४ जैनबौद्धयोः । २५ ज्ञाने ज्ञानस्वरूपार्थकारोऽपोह इति बौद्धविशेषस्याऽभिप्रायः ।  
२६ आवणप्रलक्ष्णम् । २७ निश्चयस्य । ८ सौगतेन । ९ पदार्थानां ज्ञानस्य ।  
३० बौद्धमते । ३१ खण्डमुण्डादिस्वरूपस्यपेक्षया । ३२ विज्ञातीयव्यावृत्तिः समान-  
परिणामरूपसामान्यं चेति । ३३ स्वग्रन्थे । ३४ अथ । ज्ञाने ।

तदप्ययुक्तम्; शब्दाद्विशिष्टसङ्केतसव्यपेक्षाद्वाह्यार्थे प्रतिपत्तिप्र-  
वृत्तिप्राप्तिप्रतीतेः स पदार्थार्थो युक्तः, न तु विकल्पप्रतिबिम्बक-  
मात्रं शब्दात्तस्य वाच्यतयाऽप्रतीतेः ।

अतोऽयुक्तम्—“प्रतिबिम्बस्य मुख्यमन्यापोहत्वं विजातीयव्या-  
वृत्तस्वलक्षणस्यान्यव्यावृत्तेश्चौपचारिकम्” [ ]  
इति । अन्यापोहस्य हि चाच्यत्वे मुख्योपचारकल्पना युक्तिमती,  
तच्चास्य नास्तीत्युक्तम् । ततः प्रतिनियताच्छब्दात्प्रतिनियतेऽर्थे  
प्राणिनां प्रवृत्तिदर्शनात्सिद्धं शब्दप्रत्ययानां वस्तुभूतार्थविषय-  
त्वम् । प्रयोगः—ये परस्परासङ्कीर्णप्रवृत्तयस्ते वस्तुभूतार्थविषयाः  
१० यथा ओत्रादिप्रत्ययाः, परस्पराऽसङ्कीर्णप्रवृत्तयश्च दण्डीत्या-  
दिशब्दप्रत्यया इति । न चायमसिद्धो हेतुः, ‘दण्डी विषाणी’  
इत्यादिधीध्वनी हि लोके द्रव्योर्पोधिकौ प्रसिद्धौ, ‘शुक्लः  
कृष्णो भ्रमति चलति’ इत्यादिकौ तु गुणक्रियानिमित्तौ, ‘गौरश्चः’  
इत्यादी संमान्यविशेषोर्पोधी, ‘इहात्मनि ज्ञानम्’ इत्यादिकौ  
१५ सम्बन्धोर्पोधिकावेवेति प्रतीतेः ।

नैतु चाकृतसमया ध्वनयोर्थाभिधायकाः, कृतसमया वा ?  
प्रथमपक्षेति प्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे तु क तेषां सङ्केतः—स्वलक्षणे,  
जौतौ वा, तद्योगे वा, जातिमत्यर्थे वा, वैयर्थ्यकारे वा प्रकारान्त-  
रासम्भवात् ? न तावत्स्वलक्षणे, समयो हि व्यवहारार्थं क्रियमाणः  
२० सङ्केतव्यवहारकालव्यापके वस्तुनि युक्तो नान्यत्र । न च स्वल-  
क्षणस्य सङ्केतव्यवहारकालव्यापकत्वम्, शाबलेयादिव्यक्तिविशे-  
षाणां देशादिभेदेन परस्परतोऽत्यन्तव्यावृत्ततयाऽन्यथाभावात्,

१ षटपदादिलक्षणे । २ अर्थतया । ३ सन्निविष्टाः । ४ तथा हि । ५ शब्देन ।  
६ किञ्चापोहावाच्योपेक्षादिना । ७ शब्दार्थोऽपोहो विचार्यमाणो न षटपदे यतः ।  
८ परमार्थः । ९ वसः । १० असङ्कलितः । ११ लोचनदिशानानि । १२ इन्द्रः ।  
१३ ध्वनिः शब्दः । १४ उपाधिः—विशेषणं कारणमिलनं । १५ धीध्वनी ।  
१६ धीध्वनी । १७ योत्नादि । १८ अथादेव्यावर्तमानत्वात्तदेव विशेषः ।  
१९ धीध्वनी । २० सम्बन्धः—समवायः । २१ अत्र प्रतिविधीयते । इत्येतावतः  
प्राक् सौगतः पूर्वपक्षयति । २२ षटादिवाचकाः । २३ षटशब्दः षटभिधायको  
भवतु सङ्केताभावात् । २४ सङ्क्षपरिणामलक्षणे संकेतोक्तिः । २५ बुद्धावयकारे ।  
२६ प्रतिबिम्बके । २७ क्षणिकादिरूपे । २८ प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपः । २९ साधितः ।  
३० अव्यापके क्षणिके । ३१ आदिना खण्डमुख्यलक्षणादीनाम् । ३२ आदिना  
कालस्वरूपसमावाः । ३३ खण्डो मुख्यादलन्तव्यावृत्त इति सम्बन्धाभावात् ।  
३४ यो यत्रैव स तत्रैव यो यदैव तदैव सः । न देशकालयोर्ध्यासिर्भावानामिदं विद्यते ।

तत्रानन्त्येन सङ्केतोसम्भवाच्च । विकल्पवृद्धावध्याहृत्य तेषु 'सङ्के-  
ताभ्युपेगमे विकल्पसमारोपितार्थविषय एव शब्दसङ्केतः, न  
परमार्थवस्तुविषयः स्यात् । स्थिरैकरूपत्वाद्विमाचलादिभार्वानां  
सङ्केतव्यवहारकालव्यापकत्वेन समयसम्भवोप्यसम्भाव्यः; तेषा-  
मप्यनेकाणुप्रचयस्वभावानां प्रादुर्भावानन्तरमेवार्पणं गितया तद-  
सम्भवात् ।

किञ्च, एतेषु समयः क्रियमाणोऽनुत्पत्तेषु क्रियेत, उत्प-  
त्तेषु वा ? न तावदनुत्पत्तेषु परमार्थतः समयो युक्तः, असतः  
सर्वापीत्यारोहितस्योधारत्वानुपपत्तेः । नाप्युत्पत्तेषु; तस्यार्थानुभ-  
वशब्दस्मरणपूर्वकत्वात्, शब्दस्मरणकाले चार्थस्य प्रवृत्तत्वात् । १०  
सर्वेषां स्वलक्षणक्षणानां सादृश्यमैक्येनाध्यारोप्य सङ्केतविधाने  
सिद्धं स्वलक्षणस्याऽवाच्यत्वम् बुद्ध्यारोपितसादृश्यस्यैवामिधानै-  
रभिधानात् । वैच्येत्वे वा शब्दबुद्धेः स्पष्टप्रतिभासप्रसङ्गः, न  
चैवम् । न खलु यथेन्द्रियबुद्धिः स्पष्टप्रतिभासा प्रतिभासते तथा  
शब्दबुद्धिः । प्रयोगश्च-यो यत्कृते प्रत्यये न प्रतिभासते न स १५  
तस्यार्थः यथा रूपशब्दप्रभवप्रत्यये रसाप्रतिभासने नैसौ तदर्थः,  
न प्रतिभासते च शब्दप्रत्यये स्वलक्षणमिति । उक्तञ्च—

“अन्यैवाग्निर्लैस्वन्धाहोहं दैग्धो हि मन्यते ।

अन्यथा दाहशब्देन दाहार्थः सम्प्रतीयते ॥ १ ॥”

[ वाक्यप० २।४२५ ]

२०

न चैकस्य वस्तुनो रूपद्वयमस्ति, येनास्पष्टं वस्तुर्गतमेव रूपं  
शब्दैरभिधीयत एकस्य द्वित्वविरोधात् । तन्न स्वलक्षणे सङ्केतः ।

१ यो यो गोशब्दः स स गुणवाचक इति । २ व्यक्तिषु । ३ गोशब्दस्य ।  
४ सर्वव्यक्त्यो गोशब्देन वाच्या इति आरोप्य । ५ वैवादिना । ६ वसः ।  
७ वसः । ८ पदार्थानाम् । ९ सङ्केत । १० विनाशितया । ११ शाश्वलेयादि-  
विशेषेषु । १२ अजातेषु । १३ उपाख्या स्वभावः । १४ समयस्य । १५ अवमल  
शब्दस्य वाच्य इति । १६ त्रिकालत्रिलोकोद्भवचित्तानाम् । १७ सदृशपरापरोत्पत्त्या  
यत्सादृश्यम् । १८ अमेदेन । १९ अङ्गीक्रियमाणे वैनादिना । २० शब्देन ।  
२१ आरोपितसामान्यस्यैव वाच्यत्वं शब्देन यतः । २२ शब्दैः आतायाः ।  
२३ स्वलक्षणस्य । २४ उपयुक्तसमर्थनम् । २५ नेत्रादि । २६ स्वलक्षणरूपार्थः ।  
२७ स्पष्टत्वेन । २८ वसः । २९ स्पष्टनेन्द्रियेण । ३० साक्षात् । ३१ (नहि)  
दाहमित्युक्ते मुख्यं दहते । ३२ पुमान् । ३३ अस्पष्टत्वेन । ३४ स्पष्टत्वास्पष्टत्वे ।  
३५ बुक्तिसिद्धम् । ३६ स्पष्टस्पष्टत्वलक्षणम् । ३७ रूपस्य । ३८ परमार्थभूतः ।

नापि जातौ; तस्याः क्षणिकत्वे खलक्षणस्यैवान्वयाभावाच्च सङ्केतः फलवान् । अक्षणिकत्वे तु क्रमेण ज्ञानोत्पादकर्त्तृभावः । नित्यैकः स्वभावस्य परापेक्षायसम्भाव्या । प्रतिविद्धा चैवं यथास्थानम् इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

५ नापि तद्योगे सङ्केतः; तस्यापि समवायादिलक्षणस्य निराकृतत्वात् । जातितद्योगयोश्चासम्भवे तद्वतोप्यर्थस्यासम्भवात्कथं तत्रापि सङ्केतः ? बुद्ध्यर्थकारे वा, स हि बुद्धिंतादात्म्येन स्थितत्वाच्च बुद्ध्यन्तरं प्रतिपाद्यमर्थं वारुणं गच्छति ।

किञ्च, 'इतः शब्दार्थद्वयक्रियार्थं पुरुषोऽर्थक्रियाक्षमानर्थान्वि-  
१० ज्ञाय प्रवर्तिष्यते' इति मन्यमानैर्व्यवहर्तुभिरभिधायकौ नियुज्यन्ते न व्यसन्ति तैः । न चासौ विकल्पबुद्ध्याकारोऽर्थिनोभिप्रेतं शीतापनोदादिकार्यं सम्पादयितुं समर्थः ।

किञ्च, बुद्ध्याकारे शब्दसङ्केताभ्युपगमेऽपोहवैदिपक्ष एवाभ्युपगतो भवेत्, तथाहि-अपोहवैदिनापि बुद्ध्याकारो बाह्यरूप-  
१५ तयाध्यवसितः शब्दार्थोभीष्ट एव, अर्थविवक्षां च कार्यतया शब्दो गमयति यथा धूमोग्निमिति ।

अत्र प्रतिविधीयते । कृतसमया एव चैवैनयोऽर्थोभिधायकाः । समयश्च सामान्यविशेषात्मकेर्योऽभिधीयते न जात्यादिमैत्रे ।

१ कृतः । २ जातेः । ३ गोत्वादिसामान्ये । ४ भवेत् । ५ अनुत्प्लुत्वे । ६ तस्या जातेः । ७ परं=निमित्तम् । ८ जातिः । ९ जातौ सङ्केतनिराकरणप्रसङ्गेन । १० पक्षान्तरम् । ११ तयोः खलक्षणबालोः सम्भवे । १२ आदिना संयोगतदात्म्यादेश्च । १३ शब्देन । १४ अर्थस्य । १५ नान्तेति । १६ अतः केन सार्क सङ्केतः स्यात् । १७ विवक्षितत्वात् । १८ जैनमताभिप्रायं वक्ति सौगतः । १९ अर्थः=प्रयोजनम् । २० शब्दाः । २१ कार्यं विना प्रवृत्तिव्यसनम् । २२ अर्थस्य । २३ पुरुषस्य । २४ अर्थप्रतिबिम्बरूपे । २५ जेनेन । २६ सौगत । २७ जैनस्य । २८ सौगतेन । २९ ज्ञानात्मा बुद्ध्याकार एव बाह्यार्थो नापरः कश्चिदित्यभिप्रायो बौद्धविशेषस्य । ३० आन्तरार्थस्य वक्तुमिच्छा ज्ञानस्वभावा शब्दस्य कारणभूतात् । ३१ कार्यरूपः । ३२ ज्ञापयति । ३३ ज्ञानस्वभावा विवक्षा एव बाह्यार्थः शब्दविषयो नापरः कश्चिदित्यपि बौद्धविशेषाभिप्रायः । अन्यापोहरूपो बुद्ध्याकाररूपो विवक्षारूप एव त्रिविधः शब्दविषयो बौद्धमते इति हेयम् । ३४ कार्यम् । ३५ कारणम् । ३६ परकृतपक्षे । ३७ शब्दाः । ३८ वचिकाः । ३९ वादात्मस्वरूपे । ४० परार्थे । ४१ क्रियते । ४२ केवलायां जातौ केवले विशेषे वा नाभिधीयते ।

तथाभूतश्चायं वास्तवः सङ्केतव्यवहारकालव्यापकत्वेन प्रमाण-  
सिद्धः 'सामान्यविशेषात्मा तदर्थः' [परीक्षामु० ४।१] इत्यत्राति-  
विस्तरेण वर्णयिष्यते । सामान्यविशेषयोर्वस्तुभूतयोस्तत्सम्ब-  
न्धस्य चात्र प्रमाणतः प्रसाधयिष्यमाणत्वात् । न चात्रा-  
प्यानन्त्याद्व्यक्तीनां परस्परानुगमाच्च सङ्केताऽसम्भवः; समाने-  
परिणामापेक्षया क्षयोपशमविशेषाविर्भूतोहास्यप्रमाणेन तासां  
प्रतिमासमानतया सङ्केतविषयतोपपत्तेः, कथमन्यथानुमानप्र-  
वृत्तिः तत्राप्यानन्त्याननुगमरूपतया साध्यसाधनव्यक्तीनां सम्ब-  
न्धग्रहणासम्भवात् ?

अन्यव्यावृत्त्या सम्बन्धग्रहणम्; इत्यप्यसत्; तस्या एव सङ्देश-  
परिणामसामान्यासम्भवे असम्भाव्यमानत्वात् । न चाऽसदृशोऽप्य-  
र्थेषु सामान्यविकल्परजनकेषु तद्दर्शनं द्वारेण सदृशव्यवहारे हेतुत्व-  
म्; नीलादिविशेषाणामप्यभावानुपपत्तात् । यथा हि परमार्थतोऽस-  
दृशा अपि तथाभूतविकल्पोत्पादकदर्शनहेतवः सदृशव्यवहारमौ-  
जो भावाः तथा सैवमनीलादिसैवाभा अपि नीलादिविकल्पोत्पाद-  
कदर्शननिमित्ततया नीलादिव्यवहारभाक्त्वं प्रतिपत्स्यन्ते । सङ्-  
शपरिणामाभावे च अर्थानां सजातीयैतरेव्यवस्थाऽसम्भावात्कृतः  
कस्य व्यावृत्तिः ? अन्यव्यावृत्त्या सम्बन्धोऽवगमोऽपि चैतत्सर्वं  
समैर्नम्-तत्रानन्त्याननुगमरूपत्वस्याऽविशेषात् । ततो ये यत्र  
भावतः कृतसमया न भवन्ति न ते तस्याभिधायकाः यथा ३०

१ सङ्केतितायो नास्तीत्युक्ते आह । २ सन्ने । ३ वैनाचार्यैः । ४ प्रत्यक्षादितः ।  
५ व्यवहारकाले । ६ अस्य शब्दसाधर्म्यं इत्येवंरीत्या । ७ सदृश । ८ ये ये  
त्रिकालत्रिकोकोदरवर्तिनः साक्षादिमन्तरे ते गोशब्देन वाच्या इत्येवम् । ९ कृतः ।  
१० अनुमानव्यवहारकाले । ११ परस्पर । १२ असाध्यासाधनरूपेण । १३ अवि-  
ज्ञाभावलक्षण । १४ या गोव्यक्तयस्ता गोशब्देन वाच्या इति । १५ पूर्वं निराकृत-  
त्वात् । १६ खण्डादिषु । १७ सामान्यरूपक्षासौ विकल्पश्च । १८ अवयवेन सदृश  
इति विकल्पोऽयं गौरवं गौर्वेति विकल्पः । १९ सिसृक्षार्थं । २० प्रतीति । २१ मुखेन ।  
२२ कथम् ? तथा हि । २३ गण्डमुण्डादयः पदार्थाः । २४ सन्तः । २५ स्युः ।  
२६ स्वरूपेण । २७ नीललक्षणभावाः । २८ विकल्पः-मान्य । २९ सामान्य ।  
३० साक्षादिमन्त्रादिना । ३१ गोघटपटादीनान् । ३२ विजातीय । ३३ कलात् ।  
३४ साध्यसाधनव्यक्तीनाम् । ३५ किञ्च । ३६ सङ्केतपक्षे उत्तरेणोच्यते ।  
३७ अन्यव्यावृत्तिविषयकम् । ३८ अन्यव्यावृत्तयोऽनन्ता इत्येवम् । ३९ व्यावृत्तिग्रह-  
णकाले । ४० साध्यसाधनव्यक्तीनां सम्बन्धावगमो यथा वस्तुनि शब्दस्य सङ्केतपरी-  
क्षानमसि तथा स्थापतः । ४१ वस्तुनि । ४२ परमार्थतः ।

साक्षादिमत्यर्थेऽकृतसमयोऽश्वशब्दः, न भवन्ति च भावतः  
कृतसमयाः सर्वस्मिन्वस्तुनि सर्वे ध्वनयः' इत्यत्र प्रयोगेऽसिद्धौ  
हेतुः; उक्तप्रकारेणार्थे ध्वनीनां समयसम्भवात् ।

यच्च हिमाचलादिभावानामप्यनेकपरमाणुप्रचयात्मनां क्षणिक-  
५ त्वेन समयासम्भव इत्युक्तम्; तदप्युक्तिमात्रम्; सर्वथा क्षणिक-  
त्वस्य वाह्याध्यात्मिकार्थं प्रतिपेत्यमानत्वात् । तथा चोत्पन्नेष्वप्य-  
र्थेषु सङ्केतसम्भवात्, अयुक्तमुक्तम्-‘उत्पन्नेष्वनुत्पन्नेषु वा सङ्केता-  
सम्भवः’ इत्यादि ।

ननु शब्देनार्थस्याभिधेयत्वे साक्षादेवातोर्थप्रतिपत्तेरिन्द्रिय-  
१० संहतेर्वैफल्यप्रसङ्गः; तन्न; अतोऽर्थस्याऽस्पष्टाकारतया प्रतिपत्तेः,  
स्पष्टाकारतया तत्प्रतिपत्त्यर्थमिन्द्रियसंहतिरप्युपपद्यते एवेति  
कथं तस्या वैफल्यम्? स्पष्टाऽस्पष्टाकारतयार्थप्रतिभासमेवैव  
सामग्रीमेदाज्ञ विरुध्यते, दूरासन्नार्थोपनिबद्धेन्द्रियप्रतिभासवत् ।

अथाऽस्त्यप्यर्थेऽतीतानागतादौ शब्दस्य प्रवृत्ति(त्ते)र्नास्यार्थो-  
१५ मिधायकत्वमेव; तदसत्; तस्येदानीमभावेऽपि स्वकाले भावात्,  
अन्यथा प्रत्यक्षस्याप्यर्थविषयत्वाभावः स्यात् तद्विषयस्यापि  
तत्कालेऽभावोत् । अविसंवादस्तु प्रमाणान्तरप्रवृत्तिलक्षणोऽप्य-  
क्षवैच्छाब्देऽप्यनुभूयत एव । ‘आसीद्वैद्विः’ इत्याद्यतीतविषये वाक्ये  
विशिष्टमस्मादिकार्यदर्शनोद्भूतानुमानेन संवादोपलब्धेः, चन्द्रार्क-  
२० ग्रहणाद्यनैगतरथविषये तु प्रत्यक्षप्रमाणेनैव । कैचिद्विसंवादा-  
त्सर्वत्र शब्दस्याऽप्रामाण्ये प्रत्यक्षस्यापि कचिद्विसंवादात्सर्वत्रा-  
प्रामाण्यप्रसङ्गः । ततो निराकृतमेतत्—

“अन्यदेवेन्द्रियग्राह्यमन्यच्छब्दस्य गोचरः ।

१ साक्षादिमदर्थमिधायको न भवति यतः । २ परवृत्ते । ३ आगतोऽकृतसमय-  
त्वादिति । ४ समानपरिणामापेक्षयेत्यादिना । ५ परेण । ६ षटादौ । ७ ज्ञानादौ ।  
८ परेण । ९ प्रतिपाद्यत्वे । १० अन्यवधानेन । ११ भूपमाणाच्छब्दात् ।  
१२ चक्षुरादिसमूहस्य । १३ सक्तम् । १४ विवक्षिताच्छब्दात् । १५ षट्ते ।  
१६ पक्षार्थे । १७ पक्षार्थस्य । १८ स्पष्टाऽस्पष्टतया । १९ पक्षार्थस्य । २० शब्दो-  
च्चारणसमये । २१ अर्थस्थानमिधायकत्वे । २२ क्षणिकत्वात् । २३ प्रत्यक्षोत्पत्ति-  
काले इव । २४ ज्ञाने । २५ कथम् । २६ इह प्रदेष्टे । २७ किञ्चिदुपगताकाशा-  
याकारवारित्वविशिष्ट । २८ मविष्यत् । २९ वाक्ये । ३० शब्दप्रतिपाद्ये । ३१ अर्थे ।  
३२ अङ्गीक्रियमाणे परेण । ३३ अभिन्नविषयत्वेऽपि शब्दप्रत्यक्षयोः प्रतिभासमेदो  
दर्शितो यतः । ३४ स्वरक्षणम् । ३५ सामान्यम् ।

शब्दात्प्रत्येति भिन्नाक्षो न तु प्रत्यक्षमौक्षते ॥ १ ॥" [ ]

"अन्यथैवाग्निसर्वत्वादाहं दग्धोभिमन्यते ।

अन्यथा दाहशब्देन दाहार्थः सम्प्रतीयते ॥"

[ वाक्यप० २।४।२५ ] इत्यादि ।

सामग्रीमेदाद्विशेषेतरप्रतिभासमेदो न पुनर्विपर्ययेमेदात्, सामा-५  
न्यविशेषात्मकौर्थविषयतया सकलप्रमाणानां तद्वेदाभावादित्ये  
वक्ष्यमाणत्वात् । ततो 'यो यत्कृते प्रत्यये न प्रतिभासते' इत्यादि-  
प्रयोगे हेतुरसिद्धेः, सामान्यविशेषात्माथलक्षणखलक्षणस्य शब्द-  
प्रत्यये प्रतिभासनात् ।

प्रयोगः-यद्यत्र व्यवहृतिमुपजनयति तत्तद्विषयम् यथा सामान्य-१०  
विशेषात्मके वस्तुनि व्यवहृतिमुपजनयत्येव तद्विषयम्, तत्र  
व्यवहृतिमुपजनयति च शब्द इति । न चासिद्धो हेतुः, ध्वंश्चिरन्तश्च  
शब्दव्यवहारस्य तथाभूते वस्तुन्युपलम्भात् । भवेत्कल्पित-  
खलक्षणस्य तु प्रत्यक्षेऽन्यत्र वा स्वप्नेष्यप्रतिभासनात् ।

प्रतिष्ठापदयोश्च व्याघातः, तैर्वाहि-<sup>१</sup> 'अन्यदेवेन्द्रियग्राह्यम्' १५  
इत्यनेन शब्देन कश्चिदर्थोमिधीयते वा, न वा ? नाभिधीयते  
चेत्, कथमिन्द्रियग्राह्यस्यान्यत्वेमतः प्रतीयते ? अथाभिधीयतेर्थः,  
तर्हि तस्यैव तद्विषयत्वप्रसिद्धेः कथञ्च शब्दस्यार्थागोचरत्वप्रति-  
ष्ठाऽतो व्याहृत्येत ? साक्षादिन्द्रियग्राह्यागोचरोऽसाविति चेत्,  
पारम्पर्येणालौ तद्वैचरो भवति, न वा ? यदि न भवति, तर्हि २०  
'साक्षात्' इति विशेषणं व्यर्थम् । अथ भवति, तर्हि तज्ज्ञा(तज्ज्ञा)

१ कुतः । २ अर्थम् । ३ जानाति । ४ उत्पादित्वाहः अन्य इत्यर्थः । ५ क्रिया-  
विशेषणमेतद् । ६ परोक्षं जानातीत्यर्थः । ७ अर्थम् । ८ स्पष्टेनेन्द्रियग्राह्यतया ।  
९ स्पष्टत्वेन । १० जानाति । ११ अस्पष्टत्वेन । १२ असत्तद्गूढत्वादि ।  
१३ सामान्यविशेषात्मकार्यो विषयो भवतीति साध्यः, ज्ञानो यमी । १४ वसः ।  
१५ विषय । १६ चतुर्थाध्याये । १७ शब्दप्रत्ययेऽर्थप्रतिभासः सिद्धो यतः ।  
१८ अनुमाने । १९ शब्दकृते प्रत्ययेऽप्रतिभासमानत्वात्खलक्षणस्येति । २० कुतः ।  
२१ यतः । २२ शब्दज्ञानजनितज्ञाने । २३ विकल्पज्ञानम् । २४ विकल्पम् ।  
२५ नायनादि । २६ तत्र व्यवहृतिबनकत्वात् । २७ गवादी । २८ आत्मादी ।  
२९ सौम्य । ३० अनुमानादी । ३१ खरमिषाणवत् । ३२ व्याघातमेव दर्शयति ।  
३३ बौद्धमते शब्दः कश्चिदप्यर्थ न क्वि तर्हि । ३४ अर्थम् । ३५ भिन्नत्वम् ।  
३६ अर्थोऽगोचरो यस्य । ३७ अन्यव्याघातेन । ३८ वसः । ३९ खलक्षणं प्रत्यक्षं  
गुह्यति । प्रत्यक्षाच्च विकल्पः ( नीलमिदं पीतमिदमिति ) । विकल्पाच्च शब्द उत्पद्यते ।  
विकल्पयोनयः शब्दः इत्यभिधानादिति । ४० स गोचरो यस्य शब्दस्य । ४१ पार-  
म्पर्येनेन्द्रियग्राह्यार्थागोचरो भवति शब्दः ।



प्रतीतिः किमिन्द्रियजप्रतीतितुल्या, तद्विलक्षणा वा? यदि तत्तुल्या; तदा 'शब्दात्प्रत्येति विनैष्टाक्षो न तु प्रत्यक्षमीक्षते' इत्यनेन विरोधः । तद्विलक्षणा चेत्; न तर्हि प्रतीतिवैलक्षण्यं विषयभेदसाधनम्, एकत्रापि विषये तदभ्युपगमात् ।

५ दाहशब्देन चात्र कोर्थोभिप्रेतः-किमग्निः, उष्णस्पर्शः, रूपविशेषः, स्फोटः, तडुःखं वा? अस्तु यः कश्चित्, किमेभिर्विकल्पैर्भवेतां सिद्धमिति चेत्? एतेषां मध्ये योर्थोभिप्रेतो भवेतां तेनार्थनार्थवत्त्वैप्रसिद्धेः तस्यानर्थविषयत्वाभावः सिद्ध इति ।

नन्वेवं दहनसम्बन्धाद्यथा स्फोटो दुःखं वा तथा दाहशब्दादपि १० किञ्च स्यादर्थप्रतीतेरविशेषात्? तच्च; अन्यकार्यत्वात्तस्य, न खलु दहनप्रतीतिकार्यं स्फोटादि । किं तर्हि? दहनदेहसम्बन्धविशेषकार्यम्, सुषुप्ताद्यवस्थायामप्रतीतावपि अग्नेस्तत्सम्बन्धविशेषात् स्फोटादेर्दर्शनात्, दूरस्थस्य चक्षुषा प्रतीतावप्यदर्शनात्, मन्त्रादिबलेन त्वगिन्द्रियेणापि प्रतीतावप्यदर्शनात् । तस्मादभिज्ञेपि १५ विषये सामग्रीभेदाद्विशदेतरप्रतिभासभेदोऽभ्युपगन्तव्यः ।

तथा चेदमप्ययुक्तम्-'न चैकस्य वस्तुनो रूपद्वयमस्त्येकस्य द्वित्वविरोधात्' इति ।

यदि चाभावाभिधीयते शब्दैर्भावो नामिधीयते इति क्रियाप्रतिषेधोऽत्र किञ्चित्कृतं स्यात् । तथा च कथं नदीदेशद्वीपपर्वत- २० स्वर्गोपवर्गादिप्लासप्रणीतवाक्यात्प्रतिपत्तिः श्रेयःसाधनानुष्ठाने प्रवृत्तिर्वा? अन्यथा सर्वस्मादपि वाक्यात्सर्वत्रार्थे प्रतिपत्तिप्रवृत्त्यादिप्रसङ्गः ।

१ सामान्यार्थं जानाति । २ अन्यो वा । ३ क्रियाविशेषणम् । चक्षुःप्रत्यक्षेण शास्त्रमीक्षते न तादृशमिति भावः । ४ अर्थम् । ५ शब्देजेन्द्रियजप्रतीतोः समानत्वात् । ६ दूरनिकटैकपादपादौ स्वरक्षणौ । ७ परेण । ८ श्लोके । ९ सौगतस्य तव । १० ज्ञानानाम् । ११ पदार्थानाम् । १२ सौगतानाम् । १३ शब्दस्य । १४ तेनार्थनार्थवत्त्वसिद्धिप्रकारेण । १५ बहिर्दहनसम्बन्धादर्थप्रतीतिविषये-शब्दादप्यर्थप्रतीतिरिति । १६ दहनस्य । १७ स्फोटादिकस्य । १८ दूरपादपादौ । १९ दूरनिकटादि । २० परेण । अनेन कथनेन बौद्धस्य यथा स्वरक्षणस्य प्रत्यक्षेण स्पष्टतया प्रतिभासनं तथा शब्देनाप्यस्पष्टतया प्रतिभासनं जातमिति । २१ सामग्रीभेदात्प्रतिभासभेदे च । २२ वैशेषिकैश्चकुरम् । २३ अपोहः । २४ भावस्य । २५ तर्हीति श्रेयः । २६ शब्दैः । २७ शब्दैर्न किञ्चित् वाच्यं स्यात् । २८ शब्देन कस्याप्यकरणेणार्थप्रतीतिरनुष्ठाने प्रवृत्तिश्च नदि । २९ अकृतत्वाविशेषात् ।

सत्येतरव्यवस्थाभावश्च तत्त्वेतरप्रतिपत्तेरभावात् । तंथाच्च  
‘यत्सत्तत्सर्वमक्षणिकं क्षणिकं क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरो-  
धात्’ इत्यादेरिव ‘यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकं नित्ये क्रमयौगपद्याभ्या-  
मर्थक्रियानुपपत्तेः’ इत्यादेरप्यसत्त्वानुषङ्गः । विपर्ययप्रसङ्गो वा,  
सर्वथार्थासंस्पृशित्वाविशेषात् । कैस्यचिदनुमानवाक्यस्य कैश्-<sup>५</sup>  
ञ्चिदर्थसंस्पृशित्वे सर्वथार्थस्यानभिधेयत्वविरोधः । स्वपक्षविपक्ष-  
योश्च सत्यासत्यत्वप्रदर्शनाय शास्त्रं प्रैणयन् वैस्तु सर्वथाऽनभि-  
धेयं प्रतिजानाति इत्युपेक्षणीयप्रश्नः, सर्वथाभिधेयरहितेन तेन  
तस्य प्रणेतुमशकः ।

‘शैकस्य सूचकं हेतुवचोऽशकैमपि खैयम्’ [ प्रमाणवा० १०  
४।१७ ] इत्यभिधानात् । तत्कृता तत्त्वसिद्धिमुपैजीवति, नार्थस्य  
तद्वान्यत्तामिति किमपि महान्तम् । वैस्तुदर्शनवशंप्रभवत्वाच्चे-  
तुवचो वस्तुसूचकम् । इत्यक्षणिकेवादिनोपि समानम् । मन्त्र-  
चनमेवार्थदर्शनवशंप्रभवं न पुनः परवचनम्, इत्यन्यत्रापि  
समानम् । १५

सकलवचसां विवक्षाभात्रविषयत्वाभ्युपगमाच्च, तावन्मात्र-  
सूचकत्वेन च शब्दस्य प्रामाण्ये सर्वं शब्दविज्ञानं प्रमाणं स्यात्,  
प्रत्यागमैस्यापि प्रतिवैधमिप्रायप्रतिपादकत्वाविशेषात् ।

किञ्च, अर्थव्यभिचारवच्छब्दानां विवक्षाव्यभिचारस्यापि दर्श-  
नात्कथं ते तामपि प्रतिपादयेयुः ? गोत्रैस्सल्लनादौ ह्यन्यविवक्षाया-<sup>२०</sup>  
मप्यन्यैशब्दप्रयोगो दृश्यते एव । ‘सुविवेचितं कौर्यं कौर्यं न  
व्यभिचरति’ इति नियमोऽर्थविशेषप्रतिपादकत्वेऽप्यस्याऽस्तु ।

न चास्य विवक्षायास्तदधिकृढार्थस्य वा प्रतिपादकत्वं युक्तम् ;  
ततो वैहिरथं प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिप्रतीतिः प्रत्यक्षवत् । यथैव हि

१ सत्येतरव्यवस्थाऽभावे च । २ पूर्वोक्तस्य सत्यत्वमुत्तरोक्तस्यासत्यत्वमित्यर्थः ।  
३ अविषयत्वं शब्दानां, यतः । ४ सौगतोक्तस्य । ५ कथञ्चित्सारमर्थेण । कथम् ।  
प्रभवतस्किरूपधूमादिसकलक्षणलिङ्गदर्शनं, तदनु सम्बन्धधारणं, तदनु शब्दप्रयोग  
इति । ६ सौगतेनाक्षीक्रियमाणे । ७ विप्राणादिः । ८ सकलक्षणम् । ९ शब्देन ।  
१० शास्त्रान्तरेपि सकलक्षणसूचकं वचोस्तीति वदति शक्यस्य समर्थस्य हेतोर्धूमादि-  
सकलक्षणस्य वाक्यस्य । ११ साध्वेऽशक्तमपि । १२ स्वरूपेण । १३ सौगतेन ।  
१४ वचनम् । १५ वक्षीकरोति । १६ विरूपधूमादिसकलक्षणलिङ्गम् । १७ वंशः=  
अवयवः । १८ वैतलम् । १९ ज्ञानम् । २० परवचनम् । २१ वैचादि । २२ गोत्र-  
नाम् । २३ दैवदत्तम् । २४ चित्रदत्तम् । २५ शम्भुलक्षणम् । २६ विवक्षालक्षणम् ।  
२७ शब्दप्रदादौ ।

प्रत्यक्षात्प्रतिपत्तुप्रणिधानंसामग्रीसापेक्षात्प्रत्यक्षार्थप्रतिपत्तिस्तथा  
सङ्गतेसामग्रीसापेक्षादेव शब्दाच्छब्दार्थप्रतिपत्तिः सकलजन-  
प्रसिद्धा, अन्यथाऽतो वहिरर्थे प्रतिपत्त्यादिविरोधः । न चार्थेऽर्थि-  
नोऽर्थित्वादेव प्रवृत्तेः शब्दोऽप्रवर्तकः; अध्यक्षादेरप्येवमप्रवर्त-  
५ कत्वप्रसङ्गात् तदर्थेऽप्यभिलाषादेव प्रवृत्तिप्रसिद्धेः । परम्परया  
प्रवर्तकत्वं शब्देऽर्थस्तु विशेषामावात् ।

का चेयं विवक्षा नाम—किं शब्दोच्चारणेच्छामात्रम्, 'अनेन  
शब्देनामुमर्थं प्रतिपादयामि' इत्यभिप्रायो वा ? प्रथमपक्षे वक्तु-  
श्रोत्रोः शास्त्रादौ प्रवृत्तिर्न स्यात् । न खलु कश्चिदनुमन्तः शब्द-  
१० निमित्तेच्छामात्रप्रतिपत्त्यर्थं शास्त्रं वाक्यान्तरं वा प्रणेतुं श्रोतुं  
प्रवर्तते । दशदाडिमादिवाक्यैः सह सर्ववाक्यानामविशेष-  
प्रसङ्गश्च, सर्वेषां स्वप्रभवेच्छामात्रानुमार्पकत्वाविशेषात् । अथ  
'अनेन शब्देनामुमर्थं प्रतिपादयामि' इत्यभिप्रायो विवक्षा,  
तत्सूचकत्वेन शब्दानामनुमानत्वम्; तदप्ययुक्तम्; व्यभिचारात् ।  
१५ न हि शुक्लशरिकोन्मत्तादयस्तथाभिप्रायेण वाक्यमुच्चारयन्ति ।

किञ्च, संमयानपेक्षं वाक्यं तादृशमभिप्रायं गमयेत्, तत्सापेक्षं  
वा ? आद्यविकल्पे सर्वार्थमर्थप्रतिपत्तिप्रसङ्गाच्च कश्चिद्भाषानमिहः  
स्यात् । संमयापेक्षस्तु शब्दोऽर्थमेव किं न गमयति ? न ह्यय-  
मर्थाद्विमेति येन तत्र साक्षाच्च वर्तेत । यैश्चाशक्यसमयत्वादिकेयं  
२० शब्दाप्रवृत्तौ न्यायः, सोऽभिप्रायेऽपि समान इत्यभिप्रायावगमोऽपि  
शब्दाच्च स्यात् । तत्र खलक्षणस्याभिधानेर्नानिर्देयत्वम् ।

किञ्च, तच्छब्देनाऽप्रतिपाद्याऽनिर्देयत्वमस्योच्येत, प्रतिपाद्य  
वा ? न तावदप्रतिपाद्यः अतिप्रसङ्गात् । प्रतिपाद्य चेत्, न;

१ प्रणिधानमेव सामग्री । २ शब्दात् । ३ पुरुषस्य । ४ पुरुषस्य । ५ अभिलाषादेव ।  
६ प्रत्यक्षमभिलाषमुत्पादयति, अभिलाषाच्चार्थे प्रवृत्तिरिति । ७ प्रत्यक्षस्य । ८ शब्दोऽप्य-  
भिलाषमुत्पादयति, अभिलाषाच्चप्रवृत्तिरिति । ९ परम्परया प्रवर्तकत्वस्य । १० धीमात् ।  
११ शब्दस्य निमित्तं कारणं या सा, सा चासाविच्छा च सैवेच्छा यवसूता यतः शब्दो-  
च्चारः पुरुषस्य । १२ तेषां वाक्यानां प्रभव उत्पत्तिर्वैसा इच्छायाः सा चासाविच्छा  
चेति । १३ विवक्षा धर्मिणी ज्ञास्तीति साध्यं शब्दोच्चारणान्यथानुपपत्तेरिति ।  
१४ असैवंविधोभिप्रायोऽस्ति तदभिप्रायकशब्दोच्चारणादिति । १५ समयः—संकेतः ।  
१६ सर्वतया । १७ अविवेकतः । १८ कनिर्देशादौ । १९ सकलभाषात्मकशब्दव्य-  
णात् । २० द्वितीयविकल्पः । २१ अर्थानामानन्त्यात् । २२ अभिप्रायाणामानन्त्यात् ।  
२३ शब्दश्रोतृणां । २४ अशक्यसमयत्वाविशेषात् । २५ सामान्यविशेषात्मकसा-  
र्थस्य । २६ शब्देन । २७ खलक्षणेति शब्देन । २८ घटादेरप्यनिर्देयत्वप्रसङ्गात् ।

स्ववचनविरोधात् । शब्देन हि स्वलक्षणं प्रतिपादयता निर्देश्य-  
त्वमस्याभ्युपगतं स्यात्, पुनश्च तदेव प्रतिषिद्धमिति । कथं चानि-  
र्देश्यशब्देनाप्यस्यानभिधाने अनिर्देश्यत्वसिद्धिः ? भ्रान्तिमात्रात्  
ततस्तत्सिद्धौ न परमार्थतस्तदनिर्देश्यमसाधारणं वा सिद्धेत् ।  
प्रत्यक्षात्तथाभूतस्यास्य प्रसिद्धिः, इत्यपि मनोरथमात्रम् । निर्देश ५  
योग्यस्य साधारणासाधारणरूपस्य वस्तुनस्तेन साक्षात्करणात् ।  
'वस्तुव्यतिरेकेण नापरा निर्देश्यता साधारणता वा प्रतिभाति'  
इत्यसाधारणतायामपि समानम् । 'वस्तुस्वरूपमेव सा' इत्यन्यत्रापि  
समानम् ।

किञ्च, विकल्पप्रतिभासऽन्यापोहगता वैच्यता वस्तुनि प्रति- १०  
विध्यते, वस्तुगता वा ? आद्यविकल्पे सिद्धसाध्यता । न ह्यन्या-  
पोहवाच्यतैव वस्तुवाच्यता; तर्तप्रतिषेधविरोधात् । द्वितीयपक्षे  
तु स्ववचनविरोध इत्युक्तम् । ततः प्रामाणिकत्वमात्मनोऽभ्युप-  
गच्छता प्रतीतिसिद्धा वैच्यतार्थस्याभ्युपगन्तव्या ।

सैत्थम्, वैच्य एवार्थः । तद्वाचकस्तु पदादिस्फोट एव, न १५  
पुनर्वर्णाः । तै हि किं सैमस्ताः, व्यस्ता वा तद्वाचकाः ? यदि व्यस्ताः,  
तदैकेनैव वर्णेन गवाद्यर्थप्रतिपत्तिरुत्पादितैति द्वितीयैदिवर्णोच्चा-  
रणमनर्थकम् । अथ समुदिताः, तच्च, क्रमोत्पन्नानामन्तरेविमष्टत्वेन  
समुदायस्यैवासम्भवात् । न च युगपदुत्पन्नानां तेषां समुदाय-  
कल्पना, एकपुरुषापेक्षया युगपदुत्पत्त्यसम्भवात्, प्रतिनियतै- २०  
स्थानकारणप्रयत्नप्रभवत्वात्तेषाम् । न च भिन्नपुरुषप्रयुक्तगकारौ-  
कारविसर्जनीयानां समुदायेऽप्यर्थप्रतिपादकं प्रतिपन्नम्, प्रति-  
नियतवर्णक्रमप्रतिपत्त्युत्तरकालमावित्वेन शाब्दप्रतिपत्तेः प्रति-  
भासनात् ।

१ इति । २ इदं स्वलक्षणमनिर्देश्यमिति ज्ञापने । ३ स्वलक्षणस्य । ४ निर्दि-  
कल्पकात् । ५ शब्देन । ६ स्वलक्षणव्यतिरेकेण साधारणतायै प्रयत्नो नो जायते ।  
७ निर्देश्यतायां साधारणतायां च । ८ वस्तुस्वरूपत्वम् । ९ बुद्धिः । १० शब्देन ।  
११ स्वलक्षणे । १२ स्वलक्षणमनिर्देश्यमित्यनेनोद्धेत्तम् । १३ बुद्धिप्रतिबिम्बरूप-  
स्यान्यापोहगतस्य (वाच्यत्वस्य) स्वलक्षणेऽस्माभिरपि प्रतिषेधाभ्युपगमात् । १४ वस्तुनि  
अन्यापोहवाच्यता विद्यते चेन्न तर्हि प्रतिषेधः । कथमिति विरोधः । १५ शब्देन  
रीत्यादि । १६ शब्देन । १७ लब्धावसरो भीमासकोऽवतिष्ठते । १८ शब्दैः ।  
१९ वर्णादिनामिन्न्यमानो निलो व्यापकः पदादीनामर्थः पदादिस्फोटः । २० तदेव  
भावयति । २१ गौरिलञ्ज गकारौकारविसर्जनीयाः गकारादिना । २२ हेतोः ।  
२३ औकारादि । २४ उत्पत्तेः । २५ तात्त्वादि । २६ किंवा ।

न चान्त्यो वर्णः पूर्ववर्णानुगृहीतो वर्णानां क्रमोत्पादे सत्यर्थ-  
प्रतिपादकः; पूर्ववर्णानामन्त्यवर्णं प्रत्यनुग्राहकत्वायोगात् । तद्धि  
अन्त्यवर्णं प्रति जनकत्वं तेषां स्यात्, अर्थज्ञानोत्पत्तौ सह-  
कारित्वं वा? न तावज्जनकत्वम्; वर्णाद्वर्णोत्पत्तेरभावात्, प्रति-  
५ नियतस्थानकरणादिप्रभवत्वात्तस्य, वर्णाभावेऽप्याद्यवर्णोत्पत्त्युपल-  
म्भाच्च । नाप्यर्थज्ञानोत्पत्तौ सहकारित्वं तेषामन्त्यवर्णानुग्राह-  
कत्वम्; अविद्यमानानां सहकारित्वस्यैवासम्भवात् । यथा  
चान्त्यवर्णं प्रति पूर्ववर्णाः सहकारित्वं न प्रतिपद्यन्ते तथा तज्ज-  
नितसंवेदनान्यपि, तत्प्रभवसंस्कारार्थं ।

- १० किञ्च, संवेदनप्रभवसंस्काराः स्तोत्रादकविज्ञानविषयस्मृति-  
हेतवो नार्थान्तरे ज्ञानमुत्पादयितुं समर्थाः । न खलु घटज्ञान-  
प्रभवः संस्कारः पटे स्मृतिं विदधदृष्टः । न च तत्संस्कारप्रभव-  
स्मृतीनां तत्सहायता; तासां युगपदुत्पत्त्यभावात् । अयुगपदुत्प-  
न्नानां चावस्थित्यसंभवात् । न चाखिलसंस्कारप्रभवैका स्मृतिः  
१५ सम्भवति; अन्योन्यविरुद्धानेकार्थानुभवप्रभवसंस्काराणामप्येक-  
स्मृतिजनकत्वप्रसङ्गात् । न चान्यवर्णाऽनपेक्ष एव 'गौः' इत्यत्रा-  
न्त्यो वर्णोर्थे(र्थ)प्रतिपादकः; पूर्ववर्णोच्चारणवैयर्थ्यानुषङ्गात् । घट-  
शब्दान्त्यव्यवस्थितस्यापि ककुदादिर्मैदर्थप्रतिपादकत्वप्रसङ्गाच्च ।  
तन्न वर्णाः समस्ता व्यक्ता वार्थप्रतिपादकाः सम्भवन्ति । अस्ति  
२० च गवादिशब्देभ्योऽर्थप्रतीतिः, तैर्दन्यथानुपपत्त्या वर्णव्यति-  
रिक्तोऽर्थप्रतीतिहेतुः स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः ।

ओत्रविज्ञाने चासौ निरवैयवोऽक्रमः प्रतिभासते, अवण-  
व्यापारानन्तरमभिज्ञोर्थावैभासिन्याः संविदोऽनुभवात् । न चासौ  
वर्णविषया; वर्णानां परस्परव्यावृत्तरूपतयैकप्रतिभासजनकत्व-  
२५ विरोधात् । न चेयं सामान्यविषया; वैर्णैर्त्वेव्यतिरेकेणापरसामा-

- १ विसर्जनीयलक्षणः । २ गकारौकाराभ्याम् । ३ उत्पद्य विनष्टत्वात्पूर्ववर्णानाम् ।  
४ आषो गकारः । ५ असता पूर्ववर्णानाम् । ६ उत्पत्त्यनन्तरं विनष्टत्वात् ।  
७ (पूर्ववर्णानां) वारणारूपाः । ८ अन्त्यवर्णमवणकाळे प्राक्तनवर्णसंवेदनसंस्कारा-  
भावात् । ९ पूर्ववर्णानाम् । १० पूर्णवर्णज्ञान । ११ पूर्ववर्णलक्षण । १२ बहिर्ये  
गवादी । १३ पूर्ववर्णस्मृतीनाम् । १४ प्राक्तनप्राक्तनानां विनष्टत्वात् । १५ सर्व-  
वर्णैका स्मृतिर्मिष्यतीत्युक्ते जाह । १६ अन्त्यवर्णसहाया । १७ घटपटलकुट-  
शकटादि । १८ अन्त्यवर्णोपेक्षया अन्यवर्णोऽगकारौकारौ । १९ विसर्जनीयस्य ।  
२० गोरूपः । २१ या भवन्तिव्युक्ते जाह । २२ स्फोटं विना । २३ निरस्यः ।  
२४ अभिज्ञः—पक्षः । २५ अर्थः स्फोटः तेव । २६ प्रकाशेनावभासिन्याः ।  
२७ अभिज्ञरूपः । २८ प्रकाशिनिरूपकः ।

न्यस्य गकारौकारविसर्जनीयेष्वसम्भवात्, वर्णत्वस्य च प्रति-  
नियताथप्रत्यायकत्वायोगात् । न चेयं आन्ता, अवाध्यमानत्वात् ।  
न चावाध्यमानप्रत्ययगोचरस्यापि स्फोटस्यासत्त्वम्; अवयविद्वै-  
व्यादेरप्यसत्त्वप्रसङ्गात् । नित्यश्चासौ स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः ।  
अनित्यत्वे सङ्केतकालानुभूतस्य तदैव ध्वस्तत्वात्कालान्तरे देशा-  
न्तरे च गोशब्दश्रवणात्ककुदादिमदर्थप्रतीतिर्न स्यात्, असङ्केति-  
ताच्छब्दादर्थप्रतिपत्तेरसम्भवात् । सम्भवे वा द्वीपान्तरादागतस्य  
गोशब्दाद्वार्थप्रतिपत्तिः स्यात्, सङ्केतकरणवैयर्थ्यं चासज्येत ।

अत्र प्रतिविधीयते । प्रतीयमानात्पूर्ववर्णध्वंसविशिष्टादन्त्यवर्णा-  
दर्थप्रतीतेरभ्युपगमादुक्तदोषोभावः । न चाभावस्य सहकारित्वं १०  
विरुद्धम्; ध्वस्तफलसंयोगाभावस्य अप्रतिबैधर्ग्यवत्फलप्रपातक्रि-  
याजनने तद्दर्शनात्, दृष्टं चोत्तरसंयोगं कुर्वन्माकनसंयोगाभाव-  
विशिष्टं कैर्म, परमाण्वग्निसंयोगश्च परमाणौ तद्वत्पूर्वरूपप्रध्वं-  
सविशिष्टो रक्ततामुत्पादयन्प्रतीतिः ।

यद्वा, पूर्ववर्णविज्ञानाभावविशिष्टः तज्ज्ञानजनितसंस्कारसञ्च- १५  
पेक्षो वाऽन्त्यो वर्णोऽर्थप्रतीत्युत्पादकः । ननु संस्कारस्य कथं  
विधेयान्तरे विज्ञानजनकत्वम्, इत्यप्यबोध्यम्, तद्भावमावितयार्थ-  
प्रतीतेरुपलब्धेः ।

पूर्ववर्णविज्ञानप्रभवसंस्कारश्च प्रैणालिकयाऽन्त्यवर्णसहायतां  
प्रतिपद्यते; तथाहि-प्रथमवर्णे तावद्विज्ञानमै, तेन च संस्कारो २०  
जन्यते । ततो द्वितीयवर्णविज्ञानम्, तेन च पूर्वज्ञानाहितसंस्कार-  
सहितेन विशिष्टः संस्कारो जन्यते । एवं तृतीयादावपि योजनीयं  
यावदन्यः संस्कारोऽर्थप्रतिपत्तिजनकान्त्यवर्णसहायः ।

अथवा, शब्दार्थोपलब्धिनिमित्तस्योपशमप्रतिनियमादविनष्टा  
एव पूर्ववर्णसंविदस्तत्संस्कारोऽन्त्यवर्णसंस्कार-विद्वति- २५

१ गवादेः । २ स्फोट एव प्रतिनियताथप्रत्यायको यतः । ३ अर्थः=गोलक्षणः,  
तस्य, ककुदादिमतोर्थस्य च । ४ (घटवाचकघटशब्दे)घकारादावपि वर्णत्वस्य सत्त्वात् ।  
५ औन्नप्रत्यक्षज्ञानेन । ६ प्रत्यक्षज्ञानगोचरस्य घटादेः । ७ स्फोटस्य । ८ स्फोटात् ।  
९ गोरहितात् । १० तथा च । ११ भ्रममाणात् । १२ वाक्यपक्षे वर्णस्थाने पदं  
ग्राह्यम् । १३ कैरेन । १४ पूर्ववर्णोच्चारणादिवैयर्थ्यलक्षण उक्तदोषः । १५ श्याबादिना ।  
१६ वसः । १७ तस्य कारणत्वस्य । १८ इमेनादेः । १९ गमनक्रिया । २० कृष्णा-  
दिरूप । २१ घटादी । २२ पक्षेऽन्यपदम् । २३ पूर्ववर्णानाम् । २४ गोविण्डे ।  
२५ प्रवाहेण । २६ पक्षे प्रथमपदे । २७ समुत्पद्यते । २८ उभयविषयः, घातणाऽ-  
परजामकः । २९ भवति । ३० द्रव्यस्वरूपापेक्षया । ३१ वे ज्विनद्याः ।

तथामृतसंस्कारप्रभवस्तुतिसव्यपेक्षो बान्त्यो वर्णः पदार्थप्रति-  
पत्तिहेतुः । वाक्यार्थप्रतिपत्तावप्ययमेव न्यायोऽङ्गीकर्तव्यः ।  
वर्णाद्वर्णोत्पत्त्यभावप्रतिपादनं च सिद्धसौघनमेव । तदेवं यथोक्त-  
सद्वकारिकारणसव्यपेक्षादन्यवर्णादर्थप्रतिपत्तेरन्वयव्यतिरेकाभ्यां  
५ निश्चयात् स्फोटपरिकल्पनाऽसम्भव एव; तदभावेऽप्यर्थप्रतिपत्ते-  
रुक्तप्रकारेण सम्भवेऽन्यथानुपपत्तेः प्रक्षयात् । न खलु दृष्टादेव  
कारणात्कार्योत्पत्तावद्वृत्तकारणान्तरपरिकल्पना युक्तिः स(क्तिः)-  
ज्ञता अतिप्रसङ्गात् ।

न चैवंवादिनो वर्णभ्यः स्फोटाभिव्यक्तिर्घटते; तथाहि-न सम-  
१० स्तास्ते स्फोटमभिव्यज्यन्ति; उक्तप्रकारेण तेषां सामस्यासम्भ-  
वात् । नापि प्रत्येकम्; वर्णान्तरोच्चारणार्थक्यप्रसङ्गात्, एकेनैव  
वर्णेन सर्वात्मनाऽस्याभिव्यक्तत्वात् । पदार्थान्तरप्रतिपत्तिव्यवच्छे-  
दार्थं तदुच्चारणमिति चेत्; न; तदुच्चारणेऽपि तत्प्रतिपत्तेरेवानुष-  
ङ्गात् । यथाहि 'गौः' इति पदस्यार्थो गौकारोच्चारणात्प्रतीयते तथो-  
१५ कारोच्चारणात् 'औशनसः' इति पदार्थोऽपि, तथा च 'गौः' इति  
पदादेव 'गौः, औशनसः' इत्यर्थद्वयं प्रतीयेत । संशयो वा स्यात्-  
'किमेकपदस्फोटाभिव्यक्तये गाद्यनेकवर्णोच्चारणं पदान्तरस्फोट-  
व्यवच्छेदेन, किं वानेकपदस्फोटाभिव्यक्तयेऽनेकाद्यवर्णोच्चारणम्'  
इति ।

२० न च पूर्ववर्णैः स्फोटस्य संस्कारेऽन्यो वर्णस्तस्याभिव्यजकः  
इति न वर्णान्तरोच्चारणवैयर्थ्यम्; अभिव्यक्तिव्यतिरिक्तसंस्कार-  
स्वरूपानवधारणात् । न खलु तत्र तैर्वैगाह्यः संस्कारो निर्वर्त्यते;  
तस्य मूर्त्तैरेव भावात् । नापि वासनारूपः; अचेतनत्वात् ।  
स्फोटस्य तच्चैतन्याभ्युपगमे वा स्वशैल्यविरोधः । नापि स्थित-

१ ततः संस्कारस्य सव्यपेक्षोऽन्यवर्णोऽर्थप्रतीतिजनक इति । २ परेण । ३ जैन-  
नाम् । ४ उक्तप्रकारेण । ५ तात्वादि । ६ अन्यवर्णसङ्गावेऽर्थप्रतिपत्तिस्तदभावेऽर्थ-  
प्रतिपत्त्यभाव इत्येवम् । ७ स्फोटसङ्गावेऽर्थप्रतिपत्तिः स्फोटाभावे च तदभाव इति  
स्फोटानुमापिकायाः । ८ दृष्टाधिकारणादूक्तो जलकार्यं स्यात् । ९ समस्तभ्यो व्यस्तभ्यो  
वा वर्णभ्योऽर्थप्रतीतिर्नास्तीत्येवं वादिनः । १० गौरित्यत्र गौमिष्यस्तस्फोटप्रतिपन्नार्थ-  
ल्लोक्षणादन्यपदाभिव्यक्तस्फोटप्रतिपन्नार्थोऽर्थान्तरम्, प्रकृतापदार्थादन्यः पदार्थः  
पदार्थान्तरम् । ११ षटादिपदस्फोट । १२ पदार्थप्रतिपत्तिं दर्शयन्त्याचार्याः ।  
१३ एकस्य गकारस्य । १४ उच्यते अन्ते सव औशनसः श्रुत इत्यर्थः ।  
१५ कृत्वा । १६ हेतोः । १७ उच्यते वर्णः । १८ कथम्? तथा हि । १९ वर्णैः ।  
२० पदार्थैः । २१ वासनारूपश्चेतनत्वात् । २२ गौमांसकम् ।

स्थापकः, अस्यापि मूर्च्छद्रव्यवृत्तित्वात्, स्फोटस्य चाऽमूर्च्छत्वा-  
भ्युपगमात् ।

किञ्च, असौ संस्कारः स्फोटस्वरूपः, तद्धर्मो वा ? तत्राद्यविक-  
ल्पोऽयुक्तः, स्फोटस्य वर्णोत्पाद्यत्वानुपपन्नात् । द्वितीयविकल्पोऽ-  
सम्भाव्यः, व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तविकल्पानुपपत्तेः । स्फोटात्तस्या-५  
व्यतिरेके तत्करणे स्फोट एव कृतो भवेत्, तथा चास्याऽनित्यत्वा-  
नुपपन्नात् स्वाभ्युपगमविरोधः । ततस्तद्धर्मस्य व्यतिरेके संभ्वन्धा-  
नुपपत्तिः तदनुपकारकत्वात् । तस्योपकाराभ्युपगमे व्यतिरिक्ताऽ-  
व्यतिरिक्तविकल्पानुपपन्नः, तत्रापि पूर्वोक्त एव दोषोऽनवस्थाकारी ।  
न च व्यतिरिक्तैर्धर्मसद्भावेपि स्फोटस्यानभिव्यक्तस्वरूपापरित्यागे १०  
पूर्ववदर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वम् । तस्यागे चाऽनित्यत्वप्रसक्तिः ।

किञ्च, पूर्ववर्णैः संस्कारः स्फोटस्य क्रियमाणः क्रियेकदेशेन  
क्रियते, सर्वात्मना वा ? यद्येकदेशेन, तदा तद्देशानामप्यतोऽर्थान्त-  
रानर्थान्तरपक्षयोः पूर्वोक्तदोषानुपपन्नः । सर्वात्मना तु संस्कारे  
सर्वत्र सर्वेषां ततोऽर्थप्रतिपत्तिः स्यात् । १५

किञ्च, स्फोटसंस्कारः स्फोटविषयसंवेदनोत्पादनम्, आव-  
रणापनयनं वा ? यद्यावरणापनयनम्, तदैकैकैकदावरणापगमे  
सर्वदेशावस्थितैः सर्वदा व्यापिनित्यतयोपलभ्येत, नित्यव्यापित्वा-  
भ्यामपगतावरणस्यास्य सर्वत्र सर्वदोषलभ्यस्वभावत्वात् । अनुप-  
लभ्यस्वभावत्वे वा न कचित्कदाचित्कैर्नचिदप्युपलभ्येत । अथैक-२०  
देशेनैवावरणापगमः क्रियते, नन्वेवमावृत्तानावृत्तत्वेन सावयवत्व-  
मस्यानुपपद्येत । अथाऽविनिर्माणत्वौदेकत्रानावृत्तः सर्वत्रानावृत्तोऽ-  
भ्युपगम्यते, तर्हि तदैवस्थोऽशेषदेशैर्विस्थितैरुपलब्धिप्रसङ्गः ।  
यथा च निरवयवत्वादेकत्रानावृत्तः सर्वत्रानावृत्तः तथैकत्रावृत्तः  
सर्वत्राप्यावृत्त इति मैत्रेयगोपि नोपलभ्येत । २५

१ स्थितस्थापकरूपकस्य । २ मीमांसकेन । ३ तथा च स्फोटनित्यत्वव्यापातः ।  
४ स्फोटेन सह । ५ स्फोटधर्मलक्षणसंस्कारेण स्फोटस्योपकारः क्रियते । ६ परेण ।  
७ स्फोटात् । ८ धर्म = संस्कारः । ९ सस्कारात्पूर्वं यथाऽऽकृतसंस्कारस्य स्फोटस्यार्ध-  
प्रतिपत्तिहेतुत्वं नास्ति । १० षट्ते । ११ अन्यथा । १२ स्फोटोऽनित्यः । पूर्वोक्त-  
परित्यागाद् षट्कारपरिणतवृत्तिपण्डवत् । १३ स्फोटस्य । १४ प्राणिनाम् । १५ व्याप-  
कत्वनित्यत्वात् । १६ प्रतिपत्तुमान् । १७ यकसानेक । १८ स्फोटकाळे ।  
१९ नरेण । २० नित्यव्यापिनः सदैकस्वभावत्वात् । २१ न सर्वात्मना । २२ ततश्च  
निरधत्वव्यापातः । स्फोटो न निरवयव आवृत्ताऽनावृत्तदेशत्वात् । २३ निरवयवत्वात् ।  
२४ मीमांसकेन । २५ पूर्ववत् । २६ शुभिः । २७ ईषत् । २८ स्फोटः ।



अथ स्फोटविषयसंवेदनोत्पादस्तत्संस्कारः; सोप्ययुक्तः; वर्णानामर्थप्रतिपत्तिजननवत् स्फोटप्रतिपत्तिजननेपि सामर्थ्यासम्भवौत्, न्यायस्य समानत्वात् ।

अथ मंतम्-पूर्ववर्णश्रवणज्ञानाहितैसंस्कारस्यात्मनोऽन्त्यवर्ण-  
५ श्रवणज्ञानानन्तरं पदादिस्फोटस्याभिव्यक्तेरयमदोषः; तदप्यसङ्गतम्; पदार्थप्रतिपत्तेरप्येवं प्रसिद्धेः स्फोटपरिकल्पनार्थनक्यात् ।  
चिदात्मव्यतिरेकेण तत्त्वान्तरस्यास्यार्थप्रकाशनसामर्थ्यासम्भवाच्च  
स एव हि चिदात्मा विशिष्टशक्तिः स्फोटोऽस्तु । 'स्फुटति प्रकटी-  
भवत्यर्थोऽस्मिन्' इति स्फोटश्चिदात्मा । पदार्थज्ञानावरणवीर्यान्त-  
१० रायक्षयोपशमविशिष्टः पदस्फोटः । वाक्यार्थज्ञानावरणवीर्यान्त-  
रायक्षयोपशमविशिष्टस्तु वाक्यस्फोटः इति । भावश्रुतज्ञानपरि-  
णतस्यात्मनस्तथाभिधानाऽविरोधात् ।

वायवैः स्फोटाभिव्यञ्जकाः; इत्यप्ययुक्तम् शब्दाभिव्यक्तिव-  
त्स्फोटाभिव्यक्तेस्तेभ्योऽनुपपत्तेः । तेषां च व्यञ्जकत्वे वर्णकल्पना-  
१५ वैफल्यम्, स्फोटाभिव्यक्तावर्थप्रतिपत्तौ चामीषामनुपयोगात् ।  
स्थिते च स्फोटस्य वर्णवायूत्पादात्पूर्वं सङ्गावे वर्णानां वायूनां वा  
व्यञ्जकत्वं परिकल्प्येत । न चास्य सङ्गावः कुतश्चित्प्रमाणात्प्रति-  
पन्नः । यन्बोक्तम्—

“नौदेनाऽहितबीजायौमन्ये (न्ये) न र्वेनिना सह ।

२० औवृत्तिपरिपौकायां ह्वेदौ र्वेन्दोऽवमासते ॥”

[ वाक्यप० १।८५ ] इति;

तदप्येतेनौपाकृतम्; नित्यैत्वमन्तरेणामपि चार्थप्रतिपत्तिर्यथा  
भवति तथा प्रतिपादितमेव ।

१ प्रथमपक्षः । २ पुरुषं प्रति । ३ समस्ता व्यस्ता वा वर्णाः स्फोटप्रतिपत्ति  
जनयन्तीत्यादिप्रकारेण । ४ गीमांसकस्य तव । ५ जनिता । ६ पुरुषस्य । ७ तथा  
च । ८ ज्ञान । ९ कथम्? तथा हि । १० हेतोः । ११ आत्मा । १२ भवति ।  
१३ कथमिदानीं द्वैविध्यमस्य सादित्वाशङ्कयामाह । १४ वीर्यं शक्तिः । १५ आत्मा ।  
१६ तथाभिधाने विरोधो न विन्यवीलनाह । १७ वर्णां वा सवन्तु किन्तु । १८ कुतः ।  
१९ स्फोटस्य । २० उपकारमावाह । २१ सति । २२ पूर्ववर्णेन वायुना वा ।  
२३ बीजः संस्कारः । २४ जन्तवर्णेन वायुना वा । २५ आवृत्तिः सामस्त्येनो-  
च्चारणम् । २६ पूर्णायाम् । २७ ज्ञाने । २८ स्फोटः । २९ वायुभ्यः स्फोटाभि-  
व्यक्तिरिराकरणेन । ३० अनित्येभ्यो वर्णेभ्यः कथं सादर्थ्यप्रतिपत्तिरित्युक्ते सत्याह ।  
३१ पूर्व वर्णविचारे ।

यच्च श्रवणव्यापारानन्तरमित्याहुंकम्; तदप्यसारम्; घटा-  
दिशब्देषु परस्परव्यावृत्तकालप्रत्यासत्तिविशिष्टवर्णव्यतिरेकेण  
स्फोटात्मनोऽर्थप्रकाशकस्यैकस्याव्यक्षप्रतिपत्तिविषयत्वेनाप्रति-  
भासनात् । न चामिन्नप्रतिभासमात्रादभिन्नार्थव्यवस्था, अन्यथा  
दूरादविरलानेकतरुषु एकप्रतिभासादेकत्वव्यवस्था स्यात् । न  
चास्य वाच्यमानत्वात्तैकत्वव्यवस्थापकत्वम्; स्फोटप्रतिभासेपि  
वाच्यमानत्वस्य प्रदर्शितत्वात् । न खलु निरवयवोऽक्रमो नित्य-  
त्वादिधर्मोपेतोऽसौ कचिदपि प्रत्ययेऽवभासते ।

कथं चेवं शब्दस्फोटवद्गन्धादिस्फोटोप्यऽर्थप्रतीतिनिमित्तं न  
स्यात् ? यथैव हि शब्दः कृतसङ्केतस्य कचिदर्थं प्रतिपत्तिहेतुस्तथा  
गन्धादिरप्येवमिदं विशेषात् । एवंविधमेकं गन्धं समाधाय स्पर्शं च  
संसृज्य रसं चास्वाद्य रूपं चालोक्य त्वयैवंविधोर्थः प्रतिपत्तव्यः  
[ इति समयग्राहिणां पुनः कचित्तादृशगन्धाद्युपलम्भात् तथैव  
विधार्थनिर्णयप्रसिद्धो गन्धादिविशेषाभिव्यङ्ग्यो गन्धादिस्फोटो-  
ऽस्तु [ वर्ण ] विशेषाभिव्यङ्ग्यपदादिस्फोटवत् ।

यत्तेन हस्तपादकरणमात्रिकाङ्गद्वारादिस्फोटोप्यापादितो द्र-  
ष्टव्यः । पदादिस्फोट एव, न तु सौवर्ण्यवक्रियाविशेषाभिव्यङ्ग्यो  
हंसपक्षमादिर्हस्तस्फोटः, विकृष्टिर्तादिलक्षणः पादस्फोटः, हस्त-  
पादसमीयोगलक्षणः करणस्फोटः, करणद्वयरूपो मात्रिकास्फोटः,  
मात्रिकासमूहलक्षणोऽङ्गद्वारस्फोटो वेति मनोरथमात्रम्; तस्यापि  
स्वस्वावयवाभिव्यङ्ग्यस्य स्वाभिनेयैर्यथैव प्रतिपत्तिहेतोरशक्यनिराक-  
रणत्वात् । तन्निराकरणे वा शब्दस्फोटाभिनिवेशो दूरतः परि-

१ परेण । २ वकारात् टकारो व्यावृत्त इत्यादिप्रकारेण । ३ पूर्वक्षणे वकारो-  
च्चारणमुत्तरक्षणे टकारोच्चारणमिति । ४ यद्यपि वटादिशब्देषु परस्परव्यावृत्तकाल-  
प्रत्यासत्तिविशिष्टवर्णव्यतिरेकेण स्फोटः प्रत्यक्षविषयत्वेन नावभासते तथापि नमिन्न-  
प्रतिभासोक्तिः । ननु ततः स्फोटव्यवस्था अविष्यवीत्याद्यङ्गावभाह । ५ शब्देषु  
स्फोटस्य । ६ समीपं गते सति । ७ अनेकतरुप्रतीत्या । ८ स्फोटः । ९ श्रवणेन्द्रिय-  
विषयभूते शब्दे शब्दस्यार्थप्रतिपादकत्वाभावादर्थप्रतिपत्त्यर्थं स्फोटकरत्वे प्राणेन्द्रियादि-  
विषयेषु गन्धादिषु तदर्थं चत्वारः स्फोटाः कल्पनीयास्तेषामपि तदभावादिति भावः ।  
१० गन्धादिस्फोटनिराकरणद्वारेण शब्दादिस्फोटं निराकुर्वन्तीति भावः । ११ अस्य  
शब्दस्यायमर्थ इति । १२ नातिकुसुमादीनामगन्धादीनामात्रफलदीनां कामिन्यादीनां  
च प्रतिपत्तिहेतुः । १३ अर्थे कृतसङ्केतस्य । १४ गन्धादिस्फोटस्य कर्तुं सङ्केत इत्या-  
द्यङ्गावभाह । १५ यथाविधः पूर्वं श्रुतः । १६ गन्धादिस्फोटापादनपरेण ग्रन्थेन ।  
१७ नवतन्त्रसमये नृलकारस्य । १८ अवयवाः=हस्तपादादयोऽङ्गव्यावृत्तव्यवस्था । १९ विकृ-  
ष्टिर्न भ्रमणम् । २० शुण्णपदव्यापारः समायोगः । २१ अभिनेयः=अनुकरणम् ।

स्याज्यः आक्षेपसमाधानानामुभयत्र समानत्वात् । ततः शब्द-  
स्फोटस्वरूपस्य विचार्यमाणस्यायोगावाप्तौ पदार्थप्रतिपत्तिनि-  
बन्धनं प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् । किन्तु पदं वाक्यं वा तन्नि-  
बन्धनत्वेन प्रतिपत्तव्यम् ।

- ५ किं पुनः पदं वाक्यं वा यन्निबन्धनाऽर्थप्रतिपत्तिरित्यभिधीयते ?  
वर्णानां परस्परापेक्षाणां निरपेक्षः समुदायः पदम् । पदानां तु  
तदपेक्षाणां निरपेक्षैः समुदायो वाक्यमिति । नन्वेवं कथमिदं  
साधनवाक्यं घटते—‘यत्सत्तत्सर्वं परिणामि यथा घटः, संश्च शब्दः’  
इति ? ‘तस्मात्परिणामी’ इत्याकाङ्क्षणीत्साकाङ्क्षस्य वाक्यत्वोन्निष्टेः ।  
१० इत्यप्युच्यते, कैस्यचित्प्रतिपत्तुस्तदनाकाङ्क्षत्वोपपत्तेः । निराका-  
ङ्क्षत्वं हि प्रतिपेक्ष्यमर्थो वाक्येष्वध्यारोप्यते, न पुनः शब्दधर्म-  
स्तस्याचेतनत्वात् । स चेत्प्रतिपत्ता तौवर्तार्थं प्रत्येति, किमित्यप-  
रमाकाङ्क्षेत् ? पक्षधर्मोपसंहारपर्यन्तसाधनवाक्यादर्थप्रतिपत्ता-  
वपि निगमनवचनापेक्षायाम् निगमनान्तपञ्चावयववाक्यादप्यर्थ-  
१५ प्रतिपत्तौ परापेक्षाप्रसङ्गाच्च कैचिन्निराकाङ्क्षत्वसिद्धिः । तेषां च  
वाक्याभावाच्च वाक्यार्थप्रतिपत्तिः कस्यचित्स्यात् । ततो यस्यै  
प्रतिपत्तुर्यावत्सु परस्परापेक्षेषु पदेषु समुदितेषु निराकाङ्क्षत्वं  
तस्य तावत्सु वाक्यत्वसिद्धिरिति प्रतिपत्तव्यम् ।

एतेनैव प्रकरणोद्दिगन्मैपदान्तरसापेक्षश्रूयमाणसमुदायस्य नि-

१ (जैनमतपेक्षया) अवयवक्रियाभिनेयार्थव्यतिरेकेणान्यार्थस्य हस्तपादादिस्फोट-  
कक्षणस्याप्रतिभासनकक्षण आक्षेपस्तादि वर्णार्थव्यतिरेकेणान्यस्य स्फोटकक्षणार्थस्याप्रति-  
भासनमिति समाधानम् । ननु वर्णानामनित्यत्वेनार्थप्रतिपादकत्वायोगात्स्फोट पदार्थ-  
प्रतिपत्तिहेतुरित्युपगन्तव्यम् । तत्र; क्रियाया अप्यनित्यत्वेनाभिनेयार्थप्रतिपादकत्वा-  
योगादस्तादिस्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः (मीमांसकेन) इति । २ पदादिस्फोटहस्तादि-  
स्फोटयोः । ३ प्रश्ने सति । ४ जैनैः । ५ पदान्तरगतवर्णनिरपेक्षः । ६ परस्पर ।  
७ वाक्यान्तरपदात् । ८ निरपेक्षस्य पदसमुदायस्य वाक्यत्वप्रकारेण । ९ साध्यसिद्धौ ।  
१० जैनस्य तत्र । ११ सर्वं परिणामि सत्त्वादिति योज्यम् । १२ आकाङ्क्षे वाक्यत्वं  
कृतो न स्यादित्युक्ते सत्याह साक्षात्कृत्येति । १३ जैनस्य । १४ व्युत्पन्नस्य यस्य हि  
प्रतिपत्तुस्तस्मात्परिणामीत्यत्राकाङ्क्षयस्तदपेक्षया तद्वार्थं भवत्युक्तवाक्यकक्षणसङ्गात्पद-  
नान्मापेक्षया । १५ जैनतः । १६ शब्दोऽचेतन इति वचनात् । १७ साधनवार्क-  
मात्रेण । १८ साध्यार्थम् । १९ तदीति शेषः । २० वाक्ये । २१ निराकाङ्क्ष-  
सिध्यभावे च । २२ कचिद् । २३ वाक्याभावाद्वाक्यार्थप्रतिपत्तिर्नास्ति यतः ।  
२४ अर्थप्रतिपत्तिमिच्छतः प्रत्यक्षम् । २५ वाक्यसिद्धिप्रकारेण । २६ आदिना  
सामर्थ्यम् । २७ तिष्ठतिभनतीत्यादि ।

राकाङ्क्षस्य सत्यंभामादिपदैवद्वाक्यत्वं प्रतिपादितं प्रतिपत्तव्यम् ।

यच्चोच्यते—

“आख्यातेशब्दः संज्ञातो जातिः संघातवर्तिनी ।

यकोऽनवयवः शब्दः क्रमो बुद्ध्यऽनुसंहति ॥ १ ॥

पदमाद्यं पदं चान्त्यं पदं सापेक्षमित्यपि ।

वाक्यं प्रति मतिर्मिथा बहुधा न्यायवेदिनाम् ॥ २ ॥”

[ वाक्यप० २।१-२ ]

इति; तदप्युक्तिमात्रम्; यस्मादाख्यातशब्दः पदान्तरनिरपेक्षः, सापेक्षो वा वाक्यं स्यात्? न तावदाद्यः पक्षः, पदान्तरनिरपेक्ष-स्यास्य पदत्वात् । अन्यथा आख्यातपदामावः स्यात् । द्वितीयपक्षेपि १० केचिन्निरपेक्षोसौ, न वा? प्रथमपक्षेऽसौ नैतत्प्रसङ्गः । द्वितीयपक्ष-स्त्वयुक्तः, पदान्तरसापेक्षस्याप्यस्य केचिन्निरपेक्षत्वाभावे प्रकृ-तार्थापरिसमाप्त्या वाक्यत्वाऽयोगादूर्ध्ववाक्यवत् ।

संघातो वाक्यमिर्त्यत्रापि देशकृतः, कालकृतो वा वर्णानां संघातः स्यात्? न तावदाद्यविकल्पो युक्तः, क्रमोत्पन्नप्रवृत्तिसिन्धु १५ प्रथमेकस्मिन्देशेऽवस्थित्या संघातत्वासम्भवात् । द्वितीयविकल्पे तु पदरूपतामापन्नोऽसौ वर्णोऽसौ मित्रः, अमित्रो वा? न तावद्विज्ञानार्थः, तथाविधस्यास्याऽप्रतीतिः, संघातत्वविरोधाच्च वर्णान्तरवैत् । अथ तेभ्योऽमित्रोसौ, किं सर्वथा, कथञ्चिद्वा? सर्वथा चेत्, कथमसौ संघातः संघातित्वरूपवत्? अन्यथा २० प्रतिवर्णं संघातप्रसङ्गः । न चैको वर्णः संघातो नैमातिप्रसङ्गात् । कथञ्चिच्चेत्, जैनमतप्रसङ्गः—परस्पररूपेक्षाऽनैकाकाङ्क्षपदरूपतापन्न-

१ प्रकरणादिगन्धपदान्तरादपरवाक्यान्तरपदस्य । २ पदसमुदायस्य प्रकरणादि-गन्धतिष्ठतीत्यादिपदान्तरसापेक्षस्य वाक्यत्वं यथा पद्वदत्रापि विचारणीयम् । ३ वाक्यस्य लक्षणान्तरम् । ४ मन्त्रसिगच्छतीत्यादिः । ५ वाक्यम् । ६ वर्णानाम् । ७ वर्णत्व-लक्षणा । ८ स्फोटः । ९ वर्णानाम् । १० अनुसंहतिः—परामर्शः । ११ आख्यात-शब्दस्य वाक्यत्वे । १२ वाक्यान्तरे । १३ जैन । १४ असद्वृत्तस्यैव वाक्यलक्षणसे-च्छयान्मुपगमात् । १५ निरपेक्षत्वात् । १६ पदान्तरे । १७ देवदत्त गामित्रादिवत् । १८ पक्षे । १९ पदानां वा । २० वाक्यम् । २१ सङ्घट्ट । २२ खपुस्तके ‘नङ्ग’ इति पाठो नास्ति । पदेभ्यो मित्र इत्यर्थः । २३ एकस्य वर्णस्य संघातत्वं विरुद्धं यथा । २४ वर्णः । २५ संघातः सर्वथा संघातिभ्यो वर्णोऽमित्रोऽपि यदि साक्षात् । २६ अस्तु इत्युक्ते सत्याह । २७ प्रकार्यव्यक्तेरपि जातित्वप्रसङ्गात् । २८ प्रकृतिगन्धे विनर्तमाने ( वर्णसमूहाद्ये सति ) संघातो न निवर्तते इति मित्रः । वर्णोऽसौ ( पक्षे पदेभ्यः ) भेदेनानुपलभ्यमानत्वादमित्रः ( संघातः ) इति । २९ वाक्यान्तरपदेभ्यः ।

वर्णानां कालप्रत्यासत्तिरूपसंघातस्य कथञ्चिद्वर्णैर्भ्योऽभिन्नस्य  
जैनोक्तवाक्यलक्षणानतिक्रमात् । साकाङ्क्षान्योन्यानपेक्षाणां तु तेषां  
वाक्यत्वे प्राक्प्रतिपादितदोषानुषङ्गः ।

एतेन जातिः संघातवर्तिनी वाक्यम्, इत्यपि नोत्सृष्टम्, नि-  
५ राकाङ्क्षान्योन्यापेक्षपदसंघातवर्तिन्याः सदशपरिणामलक्षणायाः  
कथञ्चिद्वर्तितोऽभिन्नाया जातेर्वाक्यत्वघटनात्, अन्यथा संघातप-  
क्षोक्तशेषदोषानुषङ्गः ।

एकोनर्वयवः शब्दो वाक्यम्, इत्येतत्तु मनोरथमात्रम्, तस्या-  
प्रामाणिकत्वात्, स्फोटस्यार्थप्रतिपादकत्वेन प्रागेव प्रतिविहि-  
१० तत्वात् ।

क्रमो वाक्यमित्येतत्तु संघातवाक्यपक्षाच्चातिशेते इति तद्दो-  
षेणैव तदुष्टं द्रष्टव्यम् ।

बुद्धिर्वाक्यमित्येवापि भाववाक्यम्, द्रव्यवाक्यं वा सा स्यात् ?  
प्रथमप्रकरणनायां सिद्धज्ञाध्यता, पूर्वपूर्ववर्णज्ञानाहितसंस्कारस्या-  
१५ त्मनो वाक्यार्थग्रहणपरिणतस्यान्यवर्णश्रवणाऽनन्तरं वाक्यार्थाव-  
बोधहेतोर्बुद्ध्यात्मनो भाववाक्यस्याऽसौभिरभीष्टत्वात् । द्रव्यवा-  
क्यरूपतां तु बुद्धेः कञ्चेतनः अदधीत प्रतीतिविरोधोत् ?

एतेनानुसंहतिर्वाक्यम्, इत्यपि चिन्तितम्, यथोक्तपदानुसं-  
२० हतिरूपस्य चेतसि परैस्फुरतो भाववाक्यस्य परामर्शात्मानोऽ-  
२० भीष्टत्वात् ।

‘अर्थाच्च पदमन्त्यैर्मन्यद्वा पदान्तरापेक्षं वाक्यम्’ इत्यपि नोक्तवै-  
क्याद्भिद्यते, परस्परापेक्षपदसमुदायस्य निराकाङ्क्षस्य वाक्यत्व-  
प्रसिद्धेः, अन्यथौ पदासिद्धेरभावाऽनुषङ्गः स्यात् ।

- १ पदानां परस्परापेक्षाणां निरपेक्षः समुदायो वाक्यमिति । २ वाक्यान्तरपदेभ्यः ।  
३ संघातो वाक्यमित्येतन्निराकरणपरेण ग्रन्थेन । ४ सर्वेषु वर्णेषु वर्णत्वलक्षणा ।  
५ ओषध्याद्यत्वेन सात्त्वादिभ्यापारबन्धितत्वेन वा, न सर्वथा । ६ पदेभ्यो वर्णैर्भ्यश्च ।  
७ प्रतिवर्णं वाक्यत्वप्रसङ्गरूपः । ८ निरपेक्षः । ९ स्फोटः । १० एको वर्णः समु-  
त्पद्यते पञ्चाङ्गितीयः ततस्तृतीय इत्यादिप्रकारेण वर्णानां क्रमः । ११ वर्णानाम् ।  
१२ पक्षे । १३ जैनैः । १४ जनेतनत्वाद्वाक्यानां चेतनत्वाद्बुद्धेः । १५ बुद्धि-  
र्वाक्यमित्येतन्निराकरणपरेण ग्रन्थेन । १६ पदरूपतामापन्नानां वर्णानां परामर्शो-  
संहतिः । १७ प्रतिभासमानस्य । १८ ‘देवदत्तः’ इति । १९ ‘गच्छति’ इति ।  
२० परस्परापेक्षादि इत्यस्यात् । २१ परस्परापेक्षारहितं पदं यदि वाक्यम् ।  
२२ सर्वस्य पदस्य वाक्यत्वात् ।

अन्ये मन्यन्ते-‘पदान्येव पदार्थप्रतिपादनपूर्वकं वाक्यार्थावबोधं विदधानानि वाक्यव्यपदेशं प्रतिपद्यन्ते ।

“पदार्थानां तु मूलत्वमिदं तद्भाषनावर्तः ।”

[मी० श्लो० वाक्या० श्लो० १११]

“पदार्थपूर्वकस्तस्माद्वाक्यार्थोयमवस्थितः ।”

[मी० श्लो० वाक्या० श्लो० ३३६]

इत्यभिधानात्, तेप्यन्वसेर्पविलप्रवेशन्यायेनोक्तं वाक्यलक्षणमे-  
वानुसरन्ति, अन्योन्यापेक्षानाकाङ्क्षाक्षरपदसमुदायस्य वाक्यत्वेन  
तैरप्यभ्युपगमात् ।

यदि च पदान्तरार्थैरन्वितानामेवार्थानां पदैरभिधानात्पदार्थ-<sup>१०</sup>  
प्रतिपत्तेर्वाक्यार्थप्रतिपत्तिः स्यात्, तदा देवदत्तपदेनैव देवदत्ता-  
र्थस्य गामभ्याजेत्यादिपदवाक्यार्थैरन्वितस्याभिधानाच्छेषपदो-  
च्चारणवैयर्थ्यम् । प्रथमपदस्यैव च वाक्यरूपताप्रसङ्गः । यावन्ति  
वा पदानि तावतां वाक्यत्वं यावन्तश्च पदार्थास्तावतां वाक्या-  
र्थत्वं स्यात् । अविबक्षितपदार्थव्यवच्छेदार्थत्वाच्च ‘गाम्’ इत्यादि-<sup>१५</sup>  
पदोच्चारणवैयर्थ्यम्, इत्यत्राप्याहुस्तथा वाक्यार्थप्रतिपत्तिः स्यात्-  
प्रथमपदेनाभिहितस्य द्वितीयादिपदाभिधेयैरन्वितस्यार्थस्य द्विती-  
यादिपदैः पुनः पुनः प्रतिपादनैव ।

अथ द्वितीयादिपदैः स्वार्थस्य प्रधानभावेन पूर्वोत्तरपदाभिधे-  
यार्थैरन्वितस्याभिधानं नैवपदेन अतोयमदोषः, तर्हि यावन्ति <sup>२०</sup>  
पदानि तावन्तस्तदार्थाः पदान्तराभिधेयार्थान्विताः प्राधान्येन  
प्रतिपत्तव्या इति तावस्यो वाक्यार्थप्रतिपत्तयः कथं न स्युः ?

१ मरुप्रानाकराः । २ अवयवावप्रतिपत्तिपूर्वकत्वाद्वाक्यार्थप्रतिपत्तेः । ३ कारणत्वं  
वाक्यार्थं प्रति । ४ वाक्यार्थस्य । ५ विपीलिक्वाधुपप्रवभयाद्विकृतिरित्याने अमित्वा पुनरपि  
तत्रैव प्रवेशो यथा तयाविच्छया स्त्रीकारोन्वसर्पविलप्रवेशन्यायः । ६ जैनोक्तं ।  
७ वाक्यविचारानन्तरं वाक्यार्थं विचारतन्नाह । ८ गामित्यादिपदान्तरार्थं ।  
९ सन्मद्वान्नाम् । १० देवदत्तलक्षणोर्ध्वं गामित्यादिपदार्थैरन्वितो गामित्यादिपदार्थाश्च  
पूर्वोत्तरपदार्थैरन्विता भवन्ति । ११ सर्वथा । १२ केवलैर्देवदत्तादिकैः । १३ एकेन ।  
१४ गामन्यायं शुद्धा दण्डेनेति । १५ पूर्वपदार्थस्योत्तरपदार्थः सर्वथान्वितत्वात् ।  
१६ तथा च । १७ देवदत्तेति । १८ विवक्षितत्वाद् देवदत्त इत्युक्ते गामन्यायं शुद्धां  
दण्डेनेत्यादिपदार्थादविबक्षितो देवदत्तोऽप्युक्ते पठ गच्छ आदि भिद्येत्यादि पदार्थः तस्य  
व्यवच्छेदार्थत्वात् । १९ पुनः पुनः प्रवृत्तिरावृत्तिः । २० एकसैवार्थस्य । २१ देव-  
दत्तपदपेक्षया गामन्यायं शुद्धा दण्डेनेति पदैः । २२ द्वितीयादिपदार्थस्याभिधानं  
प्रधानभावेन । २३ न द्वितीयादिपदार्थस्याभिधानं प्रधानभावेन नतः ।

न ह्यन्त्यपदोच्चारणात्तदर्थस्याशेषपूर्वपदामिधेयैरन्वितस्य प्रति-  
पत्तेर्वाक्यार्थावबोधो भवति, न पुनः प्रथमपदोच्चारणात् तदर्थ-  
स्यावान्तरपदामिधेयैरन्वितस्य, द्वितीयादिपदोच्चारणाच्चाऽशेषप-  
दामिधेयैरन्वितस्य तदर्थस्य प्रतिपत्तेरित्यत्र निमित्तमुक्त्ययमः ।

- ५ अथ 'गम्यमानैस्तैस्तस्यान्वितत्वम् न पुनरभिधीयमानैः तेना-  
यमदोषः; किमिदानीमभिधीयमान एव पदस्यार्थः? तथोपेक्षे  
कथमन्विताभिधानम्-विवक्षितपदस्य गम्यमानपदान्तरामिधेया-  
र्थानामविषयत्वात्?

अथ पदानां द्वौ व्यापारौ—स्वार्थाभिधानव्यापारः, पदान्तरार्थ-

- १० गमकत्वव्यापारश्च । कथमेवं पदार्थप्रतिपत्तिरावृत्त्या न स्यात्?   
पदव्यापारात्प्रतीयमानस्यैव गम्यमानस्यापि पदार्थत्वात् । न च   
पदव्यापारात्प्रतीयमानत्वाविशेषेपि कश्चिदभिधीयमानः कश्चि-  
द्गम्यमान इति विभागो युक्तः ।

- ननु पदप्रयोगः प्रेक्षावता पदार्थप्रतिपत्त्यर्थः, वाक्यार्थप्रति-  
१५ पत्त्यर्थो वाभिधीयेत? न तावत्पदार्थप्रतिपत्त्यर्थः; अस्य प्रवृत्त्य-  
हेतुत्वात् । अथ वाक्यार्थप्रतिपत्त्यर्थः; तदा पदप्रयोगानन्तरं  
पदार्थे प्रतिपत्तिः साक्षाद्भवतीति तत्र पदस्याभिधानव्यापारः  
पदार्थान्तरे तु गमकत्वव्यापारः; तदप्यसाम्प्रतम्; 'वृक्षः' इति  
पदप्रयोगे शाखादिमदर्थस्यैव प्रतिपत्तेः । तदर्थोच्च प्रतिपन्नात्  
२० 'तिष्ठति' इत्यादिपदवाच्यस्य स्थानाद्यर्थस्य सामर्थ्यतः प्रतीतेः;  
तत्र पदस्य साक्षाद्व्यापाराऽभावतो गमकत्वायोगात् तदर्थस्यैव

१ उक्तमेव समर्थयन्ति । सर्वेभ्यः पदेभ्यो वाक्यार्थावबोधो, भवतीति परस्वामि-  
भार्य ननसि वृत्ता वक्ति जैनः । २ दण्डेनेति । ३ प्रकृताहुचार्यमाणारपदादन्यस्यर्ध  
पदान्तरम् । ४ प्रतिपत्तेर्वाक्यार्थावबोधो, न पुनरिति । भाष्यं न पुनरिति पदमत्र  
सन्बन्धीयम् । ५ वाक्यार्थावबोधो, न पुनरिति सन्बन्धः । ६ बर्ध जैनाः ।  
७ पदान्तरामिधेयार्थैरन्वितत्वे आवृत्त्या वाक्यान् प्रतिपत्तिरुक्त्युपदोपो जायते तस्मिन्नास्य  
पदान्तरार्थानां गम्यमानामिधेयमानी द्वावर्थाविति परो वदति । ८ पदान्तरैर्वायमा-  
नैर्गोचरीकृतैरित्यर्थः । ९ उच्चार्यमाणपदार्थस्य । १० उच्यमानैर्द्वितीयादिपदार्थैः ।  
११ आक्षेपः । १२ एवं प्रतिपादनसमये । १३ ज्ञावमानो न भवति । १४ परेणाक्षी-  
कृते सति । १५ पूर्वपदान्तरपदार्थैरन्वित इति । १६ देवदत्तादेः । १७ गामि-  
त्यादि । १८ द्वितीयादि । १९ सति । २० पुनः पुनः । २१ केवलं देवदत्तपदार्थस्य  
केवलमभ्याजोति पदार्थस्य चेति । २२ प्रयोजनार्थिनां पुंसां प्रवृत्तिहेतुर्न भवति ।  
नहि गोरिति शब्दश्रवणात्प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा भवते । २३ पदप्रयोगः । २४ गम्ये ।  
२५ तत्तस्यान्वितत्वेनैव शब्दार्थः । २६ वृक्ष इत्यादेः । २७ वृक्षपदार्थस्य ।

तद्वर्त्मकत्वात् । परम्परया तत्रास्य व्यापारे लिङ्गवचनस्य लिङ्गि-  
प्रतिपत्तौ व्यापारोऽस्तु, तथा च शाब्दमेवानुमानज्ञानं स्यात् ।  
लिङ्गवाचकान्छब्दाद्विङ्गस्य प्रतिपत्तेः सैव शाब्दी, न पुनस्तत्प्रति-  
पन्नलिङ्गाद्विङ्गिप्रतिपत्तिरतिप्रसङ्गात्, तर्हि वृक्षशब्दात्स्थानाद्यर्थ-  
प्रतिपत्तिर्भवन्ती शाब्दी मा भूत्त एव, अस्य सार्थप्रतिपत्तावेव<sup>५</sup>  
पर्यवसितत्वाद्विङ्गशब्दवत् ।

किञ्च, विशेष्यपदं विशेष्यं विशेषणसामान्येनान्वितम्,  
विशेषणविशेषेण वाऽभिधत्ते, तदुभयेन वा ? प्रथमपक्षे विशिष्ट-  
वाक्यार्थप्रतिपत्तिविरोधः । द्वितीयपक्षे तु निश्चयासम्भवा-  
प्रतिनियतविशेषणस्य शब्देनानिर्दिष्टस्य स्वोक्तविशेष्येऽन्वयसं-<sup>१०</sup>  
शीतेः, विशेषणान्तराणामपि संभवात् । वक्तुरभिप्रायात्प्रति-  
नियतविशेषणस्य तत्रान्वयश्चेत्, न; यं प्रति शब्दोच्चारणं तस्य  
वक्तृभिप्रायाऽप्रत्यक्षतस्तदनिर्णयप्रसङ्गात्, आत्मानमेव प्रति वक्तुः  
शब्दोच्चारणानर्थक्यात् । तृतीयपक्षे तु उभयदोषानुपपन्नः ।

एतेन क्रियासामान्येन क्रियाविशेषेण तदुभयेन वान्वितस्य<sup>१५</sup>  
साधनस्य, साधनसामान्येन साधनविशेषेण तदुभयेन वान्वि-  
तायौः प्रतिपादनमाख्यातेन प्रत्याख्यातम् ।

यदि च पदात्पदार्थे उत्पन्नं ज्ञानं वाक्यार्थाध्यवसायि स्यात्;  
तर्हि चक्षुरादिप्रमवं रूपादिज्ञानं गन्धाध्यवसायि किन्न स्यात् ?  
अथास्य गन्धादिसाक्षात्कारित्वाभावाच्चायं दोषः, तर्हि पदोत्थ-<sup>२०</sup>  
पदार्थज्ञानस्यापि वाक्यार्थावभासित्वाभावात्कथं तदध्यवसायित्वं

१ सामर्थ्यात् । २ वृक्षशब्दान्छब्दादिमदर्थप्रतिपत्तिस्तस्याः सक्तात्स्थानाद्यर्थ-  
प्रतिपत्तिरिति परम्पर्या । ३ वृक्षपदस्य । ४ परेणाद्वीकृते सति । ५ भूमवचनस्य ।  
६ लिङ्गी—गतिः । ७ किंतु न लिङ्गप्रयत्नम् । ८ शाब्दी । ९ प्रत्यक्षप्रतीतिरिन्द्रिया-  
दुत्पद्यमाना शाब्दी स्यात् । १० वृक्षशब्दस्य शाखादिमत्स्यै साक्षात्वापारः स्थानाद्यर्थे तु  
परम्परयेति । ११ शाखादिमदर्थः । १२ यथा लिङ्गवाचकः शब्दो ध्रुवप्रतिपत्तौ  
पर्यवसितः सन्नभिगमको न भवति, ध्रुवसैव गयकस्तथा वृक्षशब्दः शाखादिमदर्थस्य  
वाचको भवति, न पदार्थान्तरगमकः । १३ अन्विताभिधानपक्षे दूषणमाह ।  
१४ गामिति कर्तुं । १५ गोलक्षणम् । १६ शुद्धेति । १७ प्रतिनियतविशेषमिति ।  
१८ शुद्धमिति शब्देन । १९ गामिति शब्देन । २० साक्षादिमदर्थं गोमिण्डे ।  
२१ या गौः सा किं शुद्धेन मिश्रिष्य कृष्णेन वेति । २२ कृष्णादीनाम् । २३ शब्दे-  
नानिर्दिष्टत्वाविशेषात् । २४ गोमिलादिकारकपदस्य क्रियाकाङ्क्षित्वे विकल्पत्रयम् ।  
२५ अन्वयानेनादिक्रियापदस्य कारकपदाकाङ्क्षित्वे विकल्पत्रयम् ।



स्यात्? चक्षुरादेर्गन्धादाविव पदस्य वाक्यार्थसम्बन्धानवधारणतः सामर्थ्यानुपपत्तेः । तन्त्रान्वितामिधानं श्रेयः ।

नान्यमिहितान्वयः; यतोऽभिहिताः पैदैरर्थाः शब्दान्तरादन्वीर्यन्ते, बुद्ध्या वा? न तावदाद्यः पक्षः; शब्दान्तरस्याशेषपदार्थविषयस्याभिहितान्वयनिबन्धनस्याभार्यात् । द्वितीयपक्षे तु बुद्धिरेव वाक्यं ततो वाक्यार्थप्रतिपत्तेः, न पुनः पदान्येवं । ननु पदार्थभ्योऽपेक्षाबुद्धिसन्निधानात्परस्परमन्वितेभ्यो वाक्यार्थप्रतिपत्तेः परस्परया पदेभ्य एव भावाच्चातो व्यतिरिक्तं वाक्यम्; तर्हि प्रकृत्यादिव्यतिरिक्तं पदमपि मा भूत्, प्रकृत्यादीनामन्वितानामि-  
१० मिधाने अभिहितानां वीन्वये पदार्थप्रतिपत्तिप्रसिद्धेः ।

ननु 'पदमेव लोके वेदे वार्थप्रतिपत्तये प्रयोगार्हम् न तु कैवल्यप्रकृतिः प्रत्ययो वा, पदादपोद्धृत्य तद्व्युत्पादनार्थं यथाकथञ्चित्तदभिधानात् । तदुक्तम्—“अर्थं गौरित्यत्र कः शब्दः? गकारौकारविसर्जनीया इति भगवानुपेवर्षः” [शाबरभा० १।१।५] १५ इति । यथैव हि वर्णोऽनंशः प्रकल्पितमात्रमेदं तथा 'गौः' इति पदमप्यनंशमपोद्धृताकारादिमेवं सैवार्थप्रतिपत्तिनिमित्तमवसीयते । इत्यप्यनालोचितामिधानम्; वाक्यस्यैवं तात्त्विकत्वप्रसिद्धेः, तद्व्युत्पादनार्थं ततोऽपोद्धृत्य पदानामुपदेशाद्व्यवस्थैव लोके शास्त्रे वार्थप्रतिपत्तये प्रयोगार्हत्वात् । तदुक्तम्—

२० “द्विधा कैश्चित्पदं भिन्नं चतुर्धा पञ्चैधापि वा ।  
अपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः प्रकृतिप्रत्ययादिवत् ॥”

[

] इति ।

१ वाक्यवाचकलक्षण । २ पदार्थान्तरैरन्विता अर्था इति । ३ इति प्राप्ताकरमतं निरस्य भाट्टमतनिरासार्थमाह । ४ वाक्यार्थः । ५ देवदत्तादिकैः । ६ एकेन शब्दान्तरेण । ७ परस्परं सम्बध्यन्ते । ८ एकेन पदान्तरेण सर्वेषां पदार्थो ज्ञातो मनैस्तदा तेन कृत्वा सम्बन्धप्रतिपत्तिर्यतः । ९ पदपरिज्ञानम् । १० वाक्यम् । ११ यतः । १२ आदिपदेन प्रत्ययघात्वादिग्रहणम् । १३ परस्परं सम्बन्धानाम् । १४ क्रियाकारकरूपे विशेषणविशेष्यरूपे च । १५ वृथकृतम् । १६ पदनिष्पत्त्यर्थम् । १७ अहो । १८ पदसंज्ञकः । १९ (उपवर्षनामा ऋषिः) आह । २० मात्राः उदात्तादयः । २१ यतः । २२ कल्पितम् । २३ साक्षादिसदर्थम् । २४ उक्तप्रकारेण । २५ पदानि । २६ अर्थः प्रकृतिनिवृत्तिलक्षणः । २७ न तु गामिति पदेन कस्य चित्प्रकृतिनिवृत्तिर्वा घटते यतः । २८ सुबन्तं तिङन्तं पदमित्यादि । २९ वृथकृतम् । ३० नामाऽऽख्यातनिपातकर्मप्रवचनीयमेवेन । ३१ उपसर्गाधिकम् । ३२ पदानि । ३३ तद्यथा पदादपोद्ध्रियते तथा वाक्येभ्यः पदान्वयोद्ध्रियन्ते इति ज्ञातम् ।

ततः प्रकृत्याद्यवयवेभ्यः कथञ्चिद्विभ्रमेभिन्नं च पदं प्रातीति-  
कमभ्युपगन्तव्यम्, न तु सर्वथाऽनंशं वर्णवैतद्वाहकाभावात् ।  
तद्वत्पदेभ्यः कथञ्चिद्विभ्रमेभिन्नं च वाक्यं द्रव्यभाववाक्यमेदभिन्नं  
प्रोक्तलक्षणलक्षितं प्रतीतिपदमारूढमभ्युपगन्तव्यम् अलं प्रती-  
त्यपलापेनेति ।

५

प्रामाण्यं ह्युच्यते धियो यदि मतं संवादतो निश्चितात्,  
स्मृत्यादेरपि किञ्च तन्मतमिदं तस्याऽविशेषात्स्फुटम् ।  
तत्संख्या परिकल्पितेयमर्धुना सन्तिष्ठतेऽतः कथम्,  
तस्माज्जनमते प्रतिर्मतिमतां श्लेषाच्चिरं निर्मले ॥ १ ॥

इति श्रीप्रभाचन्द्रदेवविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे  
तृतीयः परिच्छेदः ॥ श्रीः ॥

१०

१ पदं प्रकृतिर्न भवति, पदं च प्रकृतिर्नेति व्यावृत्तिरूपेण । २ समुदायरूपेण ।  
३ निरक्षरस्य वर्णस्य यथा आहकं प्रमाणं नास्ति तथाऽनंशपदस्य च । ४ पदं वाक्यं  
न भवति, वाक्यं च पदं न भवतीति व्यावृत्तिरूपेण । ५ समुदायरूपेण । ६ वच-  
नात्मकं द्रव्यवाक्यं, बोधात्मकं तु भाववाक्यम् । ७ पदानां परस्परपेक्षाणां निरपेक्षः  
समुदायो वाक्यमिति । ८ सकलं परिच्छेदायैमुपसंहरन्नाह । ९ पुंसः । १० प्रामा-  
ण्यम् । ११ संवादस्य । १२ तस्य अभिप्रायस्य । १३ स्मृत्युद्घाटीनां प्रामाण्यप्रति-  
पादनसमये ।

श्रीः ।

## अथ चतुर्थः परिच्छेदः ॥

अथोक्तप्रकारं प्रमाणं किं निर्विषयम्, सविषयं वा? यदि निर्विषयम्, कथं प्रमाणं केशोण्डुकादिज्ञानवत्? अथ सविषयम्, कोऽस्य विषयः? इत्याशङ्क्य विषयविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थं 'सामान्यविशेषात्मा' इत्याद्याह—

५ सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ॥ १ ॥

तस्य प्रतिपादितप्रकारप्रमाणस्यार्थो विषयः । किंविशिष्टः? सामान्यविशेषात्मा । कुत एतत्?

पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणप-  
रिणामेन अर्थक्रियोपपत्तेश्च ॥ २ ॥

१० अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात्, यो हि यदाकारोल्लेखिप्रत्य-  
यगोचरः स तदात्मको दृष्टः यथा नीलाकारोल्लेखिप्रत्ययगोचरो  
नीलसमाधोर्थः, सामान्यविशेषाकारोल्लेख्यनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्यय-  
गोचरश्चाखिलो बाह्याध्यात्मिकप्रमेयोर्थः, तस्मात्सामान्यविशे-  
षात्मेति । न केवलमतो हेतोः स तदात्मा, अपि तु पूर्वो-  
१५ त्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेनाऽर्थक्रियोपपत्तेश्च ।  
'सामान्यविशेषात्मा तदर्थः' इत्यभिसम्बन्धः ।

कतिप्रकारं सामान्यमित्याह—

सामान्यं द्वेधा ॥ ३ ॥

कथमिति चेत्—

२० तिर्यगूर्ध्वताभेदात् ॥ ४ ॥

तत्र तिर्यक्सामान्यस्वरूपं व्यक्तिनिष्ठतया सोदाहरणं  
प्रदर्शयति—

१ स्वापूर्वेत्यादि । २ ज्ञानं धर्मि प्रमाणं न भवतीति साध्यो धर्मो निर्विषयत्वात्के-  
शोण्डुकज्ञानवत् । ३ सामान्यं च विशेषश्च सामान्यविशेषौ तावात्मानौ यस्य स  
तयोक्तः । ४ सिद्धम् । ५ गौर्गौरित्यादिप्रत्ययः अनुवृत्तः । इयामः स्रक्लो न  
भवतीत्यादिप्रत्ययो व्यावृत्तरूपः । ६ उल्लेखः=प्रतिभासः । ७ पूर्वोत्तराकारौ पर्यायौ=  
विशेषः । ८ स्थितिलक्षणं द्रव्यमूर्ध्वतासामान्यम् । औप्यमित्यर्थः । ९ विशेषो व्यक्तिः ।

## सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत् ॥ ५ ॥

ननु खण्डमुण्डादिव्यक्तिव्यतिरेकेणापरस्य भवत्कल्पितसामान्यस्याप्रतीतितो गगनाम्पोरुहवदसत्त्वादसाम्प्रतमेवेदं तल्लक्षण-  
प्रणयनम्; इत्यप्यसमीचीनम्; 'गौर्गौः' इत्याद्यवाधितप्रत्ययविष-  
यस्य सामान्यस्याऽभावासिद्धेः । तथाविधस्याप्यस्यासत्त्वे विशेष-  
स्याप्यसत्त्वप्रसङ्गः, तथाभूतप्रत्ययत्वव्यतिरेकेणापरस्य तद्व्य-  
वस्थानिबन्धनस्यात्राप्यसत्त्वात् । अवाधितप्रत्ययस्य च विषय-  
व्यतिरेकेणापि सद्भावाभ्युपगमे ततो व्यवस्थाऽभावप्रसङ्गः । न  
चोऽनुगताकारत्वं बुद्धेर्वाच्यते; सर्वत्र देशोदावनुगतप्रतिभासस्याऽ-  
स्त्वरूपस्य तथाभूतव्यवहारहेतोरुपलम्भात् । अतो व्यावृत्ता-  
कारानुभवानधिगतमनुगताकारमवभासन्त्याऽवाधितरूपा बुद्धिः  
अनुभूयमानानुगताकारं वस्तुभूतं सामान्यं व्यवस्थापयति ।

ननु विशेषव्यतिरेकेण नापरं सामान्यं बुद्धिर्मेदोभावात् । न च  
बुद्धिर्मेदमन्तरेण पदार्थमेदव्यवस्थाऽतिप्रसङ्गात् । तदुक्तम्— १५

“न मेदोद्विषमस्त्येन्यत्सामान्यं बुद्ध्यमेदतैः ।

बुद्ध्याकारस्य मेदेन पदार्थस्य विभिन्नता ॥”

[ ] इति;

तदप्यपेशलम्; सामान्यविशेषयोर्बुद्धिर्मेदस्य प्रतीतिसिद्ध-  
त्वात् । अपरसादेस्तुल्यकालस्याभिन्नाश्रयवर्तिनोऽप्येत एव मेद-  
प्रसिद्धेः । एकेन्द्रियाध्यवसेयत्वाज्जातिव्यत्योरमेदे वातातपा-  
दावप्यमेदप्रसङ्गः । तत्रापि हि प्रतिभासमेदोन्नान्यो मेदव्यव-  
स्थाहेतुः । स च सामान्यविशेषयोरप्यस्ति । सामान्यप्रतिभासो  
ह्यनुगताकारः, विशेषप्रतिभासस्तु व्यावृत्ताकारोऽनुभूयते ।

१ साक्षादिमत्त्वेन । २ सौगहः । ३ चैन । ४ परेणाहिक्रियमाणे सति ।  
५ अवाधितप्रत्ययविषयत्वाविशेषादिति । ६ प्रमाणांतरस्य । ७ विशिष्टसितिकारणं  
न्यूनस्या । ८ विशेषसत्त्वेति । ९ परेण । १० गौर्गौरिति । ११ विशेषणम् ।  
१२ आदिना कालादी । १३ अनुगताकारत्वं बुद्धेर्न वाच्यते यतः । १४ इदं  
सामान्यमयं विशेष इति । १५ विशेषात् । १६ सत्तत्त्वम् । १७ अमेदे हेतुरयम् ।  
१८ यतः । १९ बीजपूरादि । २० अयं रस इदं रूपमिति बुद्धिर्मेदात् । २१ एके-  
न्द्रिया (स्पर्शनेन्द्रिय) ध्वनसायस्याविशेषात् । २२ अयं वातोऽयमसत्तप इति ।  
२३ गौर्गौरित्येवम् । २४ अयमसाक्षिण इति ।

दूरादुद्भूतासामान्यमेव च प्रतिभासते न स्थाणुपुरुषविशेषौ तत्र सन्देहात् । तत्परिहारेण प्रतिभासनमेव च सामान्यस्य ततो व्यतिरेकस्तल्लक्षणत्वान्नेदस्य ।

यदप्युक्तम्—

- ५ “ताभ्यां तद्व्यतिरेकश्च किन्नाऽदूरेऽवभासनम् ।  
दूरेऽवभासमानस्य सन्निधानेऽतिभासनम् ॥”

[ प्रमाणवार्त्तिकालं० ]

तदप्यसुन्दरम्; विशेषेपि समानत्वात्, सोपि हि यदि सामान्याव्यतिरेकः; तर्हि दूरे वस्तुनः स्वरूपे सामान्ये प्रतिभासमाने  
१० किञ्चावभासते ? न हीन्द्रधनुषि नीले रूपे प्रतिभासमाने पीतदि-  
रूपं दूरात् प्रतिभासते । अथ निकटदेशसामग्री विशेषप्रति-  
भासस्य जनिका, दूरदेशवर्त्तिनां च प्रतिपत्तुणां सा नास्तीति न विशेषप्रतिभासः; तर्हि सामान्यप्रतिभासस्य जनिका दूरदेश-  
सामग्री निकटदेशवर्त्तिनां चासौ नास्तीति न निकटे तत्प्रति-  
१५ भासनमिति समः समाधिः । अस्ति च निकटे सामान्यस्य प्रति-  
भासनं स्पष्टं विशेषस्य प्रतिभासवत्, यादृशं तु दूरे तस्यास्पष्टं  
प्रतिभासनं तादृशं न निकटे स्वीयसामग्र्यभावात् तद्वदेव ।

न चानुगतप्रतिभासो बहिःसाधारणनिमित्तनिरपेक्षो घटते;  
प्रतिनियतदेशकालाकारतया तस्य प्रतिभासाभावप्रसङ्गात् । न  
२० चाऽसाधारणा व्यक्त्य एव तन्निमित्तम्; तासां भेदरूपतया-  
ऽऽविष्टत्वात् । तथापि तन्निमित्तत्वे कर्कादिव्यक्तीनामपि गौर्गौ-  
रिति बुद्धिनिमित्तत्वानुषङ्गः ।

न चाऽतर्त्कार्यकारणव्यावृत्तिः पर्यप्रत्यवमर्शाधिकार्यसाधन-

१ शुच्यन्तरेण सामान्यं व्यवस्थापयति जैनः । २ कर्ष्यताकारसदृशसामान्यम् ।  
३ कर्ष्यताकारसामान्यम् । ४ विशेषः । ५ इन्द्रधनुषि विद्यमानम् । ६ दूरदेशतादि ।  
७ समानाकारलक्षणसामान्यपदार्थः । ८ न बहिः साधारणनिमित्तं सामान्यं तन्नि-  
मित्तम् । ९ व्यापकत्वात् । १० परेणाङ्गीकृते । ११ कर्तुः—वेत्ताम् । १२ व्यक्तीनां  
तन्निमित्तत्वाविशेषात् । १३ या या व्यक्त्यस्यास्या भेदरूपाः । १४ कार्यं च कारणं  
च कार्यकारणे तस्य खण्डादेः कार्यकारणे न विद्येते ते अकार्यकारणे यस्याऽसावत-  
त्कार्यकारणः कर्कादिस्वसाम्यावृत्तिः । इष्टान्ते समासयुक्तिं दर्शयति । इष्टान्ते त्वेके-  
न्द्रियादिरूपे तच्छब्देन विवक्षितेन्द्रियादिरन्यथ समुद्दितेतरयुद्धादिर्ग्राहः । बहुव्रीहि-  
समासकारणानन्तर कर्कादिवदन्या विवक्षितेन्द्रियादिरन्या विवक्षितप्रयोगश्च ग्राहः ।  
तस्माद्यावृत्तिरित्यवसातव्यः । १५ कर्कादीनामुत्तरलक्षणाः कारणानि, तेभ्यो व्यावृत्तिः ।  
१६ गौर्गौरिलादि । १७ आदिशब्देनैकव्यवहारादिर्ग्राहः ।

हेतुः अत्यन्तमेदेषीन्द्रियादिवत् समुदितेतरगुह्य्यादिवच्चेत्य-  
मिधातव्यम्; सर्वथा समानपरिणामानाधारे वस्तुन्यतत्कार्य-  
कारणव्यावृत्तेरेवासम्भवात् । अनुगतप्रत्ययाद्वस्तुनि प्रवृत्त्य-  
ऽभावप्रसङ्गाच्च । गुह्य्यादिदृष्टान्तोपि साध्यविकलः; न खलु  
ज्वरोपशमनशक्तिसमानपरिणामाभावे 'गुह्य्यादयो ज्वरोपश-  
मनहेतवः न पुनर्दधित्रपुसादयोपि' इति शक्यव्यवस्थम्,  
'चक्षुरादयो वा रूपज्ञानहेतवस्तज्जननशक्तिसमानपरिणामविर-  
हिणोपि न पुनरसादयोपि' इति निर्निबन्धना व्यवस्थितिः ।

किञ्च, अनुगतप्रत्ययस्य सामान्यमन्तरेणैव देशादिनियमेनो-  
त्पत्तौ व्यावृत्तप्रत्ययस्यापि विशेषमन्तरेणैवोत्पत्तिः स्यात् । शक्यं १०  
हि वक्तुम्-अमेदाविशेषेभ्येकमेव ब्रह्मादिरूपं प्रतिनियतानेकनीला-  
द्याभासनिबन्धनं भविष्यतीति किमपररूपादिखलक्षणपरिकल्पै-  
नया । ततो रूपादिप्रतिभासस्येवानुगतप्रतिभासस्याप्यालम्बनं  
वस्तुभूतं परिकल्पनीयम् इत्यस्ति वस्तुभूतं सामान्यम् ।

एककार्यतासादृश्येनैकत्वाध्यवसायो व्यक्तीनाम्; इत्यप्यन्वादः १५  
कार्याणाममेदासिद्धेः, बाह्यदोहादिकार्यस्य प्रतिव्यक्तिमेदात् । तत्रा-  
प्यैककार्यतासादृश्येनैकत्वाध्यवसायेऽनवस्था । ज्ञानलक्षणमपि  
कार्यं प्रतिव्यक्तिं भिन्नमेव ।

अनुभवानामेकपरामर्शप्रत्ययहेतुत्वादेकत्वम्, तद्धेतुत्वाच्च व्य-  
क्तीनामित्युपचरितोपचारोपि अद्वयमात्रगम्यः; अनुभवानामप्य- २०  
त्यन्तवैलक्षण्येनैकपरामर्शप्रत्ययहेतुत्वायोगात्, अन्यथा कर्का-  
दिव्यक्त्यनुभवेभ्योपि खण्डमुण्डादिव्यक्तौ एकपरामर्शप्रत्ययस्यो-  
त्पत्तिः स्यात् । अथ प्रत्यासत्तिविशेषात्खण्डमुण्डाद्यनुभवेभ्य  
एवास्योत्पत्तिर्नान्यतः । ननु प्रत्यासत्तिविशेषः कोन्योऽन्यत्र

१ खण्डादयो विज्ञेया भूमिणः समानपरिणामरहिता एव एकप्रत्ययमर्शवैकार्य-  
साधनहेतवः अतत्कार्यकारणकर्कादिभ्यावृत्तत्वादिन्द्रियादिवत् । २ व्यक्तीनाम् ।  
३ आदिना-अर्थालोक्योन्यतादिग्रहणम् । ४ समुदितेतरगुह्य्यादयो विज्ञेयाः समान-  
परिणामरहिता एव एकप्रत्ययमर्शवैकार्यहेतवोऽतत्कार्यकारणाविवक्षितेन्द्रियादिभ्यावृत्ति-  
त्वावया । ५ गुण्यादि । ६ खण्डादिव्यक्ती । ७ अयावरूपाया व्यावृत्तेर्वाततादनु-  
गतप्रत्ययस्य । ८ तथा हि । ९ कर्कटी । १० निर्विकल्पस्य । ११ बाह्यानीलादि-  
खलक्षणम् । १२ बाह्यानीलादिविशेषमन्तरेणैव । १३ सोपतेन त्वया । १४ व्यक्ती-  
नामेककार्यत्वसमर्थनार्थम् । १५ निर्विकल्पकप्रत्ययज्ञानानाम् । १६ गोगौरेति ।  
१७ एकत्वम् । १८ विकल्पयतमेकत्वमनुभवेऽनुभवगतं चैकत्वं व्यक्तिष्विति ।  
१९ निर्विकल्पकेभ्यः ।

स्मानाकारानुमवात्, एकप्रत्यवमर्शहेतुत्वेनाभिमतानां निर्विकल्पकबुद्धीनामप्रसिद्धेऽत्र । अतोऽयुक्तमेतत्—

“एकप्रत्यवमर्शस्य हेतुत्वाद्दीरमैदिनी ।

एकधीहेतुभावेन व्यक्तीनामप्यभिन्नता ॥”

५

[ प्रमाणवा० १।११० ] इति ।

ततोऽबाधबोधाधिरूढत्वात्सिद्धं सदृशपरिणामरूपं वस्तुभूतं सामान्यम् । तस्याऽनैभ्युपगमे—

“नो चेद्भ्रान्तिनिमित्तेन संयोज्येत गुणान्तरम् ।

शुक्लौ वा रजताकारो रूपसौधर्म्यदर्शनात् ॥”

१०

[ प्रमाणवा० १।४५ ] इत्यस्य,

“अर्थेन धैर्त्येनां न हि मुक्त्यर्थरूपताम् ।

तस्मात्प्रमेयो(या)ऽधिगतेः प्रमाणं मेर्यरूपता ॥”

[ प्रमाणवा० ३।३०५ ]

इत्यस्य च विरोधानुषङ्गः ।

३५ तच्चाऽनित्यासर्वगतस्वभावमभ्युपगन्तव्यम्; नित्यसर्वगतस्वभावेत्वेऽर्थक्रियाकारित्वायोगात् । न खलु गोत्वं बाह्यदोहाबाधुपयुज्यते, तत्र व्यक्तीनामेव व्यापाराभ्युपगमात् ।

स्वविषयज्ञानजनकैवैपि व्यापारोऽस्य केवलस्य, व्यक्तिसहितस्य वा ? केवलस्य चेत्, व्यत्यन्तरालेष्युपलम्भप्रसङ्गः । व्यक्तिसहितस्य चेत्, किं प्रतिपन्नाखिलव्यक्तिसहितस्य, अप्रतिपन्नाखिलव्यक्तिसहितस्य वा ? तत्रापक्षोऽयुक्तः, असर्वविदोऽखिलव्यक्तिप्रतिपत्तेरसम्भवात् । द्वितीयपक्षे पुनः एकव्यक्तेरप्यग्रहणे

१ सौगतेन । २ उपचरितोपचारोपि ब्रह्मावागम्यो नतः । ३ निर्विकल्पिकबुद्धिः । ४ एका । ५ परेण । ६ चैत्यक्षान्तरसूचकम् । इति हेतोः स्वरूपेणाभ्रान्तिनिमित्तेनाक्षणिकत्वं नो संयोज्येत चेच्छिद् स्वरूपेण परमार्थभूतमक्षणिकत्वं स्यात् स्वरूपेण क्षणिकत्वसिद्ध्यर्थं सर्वं क्षणिकं सत्त्वादित्यनुमानं च व्यर्थं सादिति भावः । ७ परमार्थभूतसदृशापरापरोत्यसिद्धक्षणेन । ८ पुरुषेण । ९ क्षणिके स्वरूपेण वस्तुनि । १० अक्षणिकत्वक्षणे । ११ वायथार्थकः । १२ अपरमार्थभूतः । १३ परमार्थभूतरूपसादृश्यदर्शनात् । १४ अन्यत्वं । १५ विषयविषयिभावं न कारयतीत्यर्थः । १६ निर्विकल्पकबुद्धिम् । १७ अन्यत्संज्ञिकवर्धादि कर्तुं । १८ पदार्थसादृश्याकारपारित्यम् । १९ उभयान्ता ओकाभ्यां परस्व सादृश्याङ्गीकारो विषय इति सूचितम् । २० सामान्यम् । २१ व्यक्तिसहितं केवलम् । २२ पुरुषं प्रति । २३ सामान्यम् । न च तथा ।

सामान्यज्ञानानुषङ्गः । प्रतिपन्नकतिपयव्यक्तिसहितस्य जनकत्वे तु तस्य तामिरूपकारः क्रियते, न वा ? प्रथमपक्षे सामान्यस्य व्यक्तिकार्यता, तदभिन्नोपकारकरणात् । ततो भिन्नस्यास्य करणे 'तस्य' इतिव्यपदेशासिद्धिः । तत्कृतोपकारेणान्युपकारान्तर-करणेऽनवस्था । द्वितीयपक्षे तु व्यक्तिसहभाववैयर्थ्यम् सामा-५ न्यस्य, अकिञ्चित्करस्य सहकारित्वासम्भवात् ।

सामान्येन सहैकज्ञानजनने व्यापाराद्व्यक्तीनां तत्सहकारित्वेपि किमालम्बनभावेन तत्र तासां व्यापारः, अधिपतित्वेन वा ? प्राच्यकल्पनायाम् एकैकनेकाकारं सामान्यविशेषज्ञानं सर्वदा स्यात्, स्वालम्बनानुरूपत्वात्सकलविज्ञानानाम् । १०

द्वितीयविकल्पे तु व्यक्तीनामनधिगमेपि सामान्यज्ञानप्रसङ्गः । नै खलु रूपज्ञाने चक्षुषोधिगतस्याधिपतित्वेन व्यापारो दृष्टः ब्रह्मस्य वा, सर्वथा नित्यवस्तुनः क्रमाऽक्रमाभ्यामर्थक्रियाविरोधाभास्य न कस्याञ्चिदर्थक्रियायां व्यापारः । व्यापारे वा सहकारिनिरपेक्षितया सदा कार्यकारित्वानुषङ्गः, तदवस्थामाविर्नैः १५ कार्यजननस्वभावस्य सदा सम्भवात्, अभावे च अनित्यत्वं स्वभावभेदलक्षणत्वात्तस्य । कार्यजननस्वभावत्वे वा अस्य सर्वदा कार्यजनकत्वप्रसङ्गः । यो हि यद्ऽजनकस्वभावः सोऽर्थसहितोपि न तज्जनयति यथा शालिवीजं क्षित्याद्यविकलसामग्रीयुक्तं कोट्ट-बाह्वरम्, अजनकस्वभावं च सामान्यं कार्यस्य, इत्यवस्तुत्वापत्ति-२० नित्यैकस्वभावसामान्यस्य, अर्थक्रियाकारित्वलक्षणत्वाद्बस्तुनः ।

तथा तत्सर्वसर्वगतम्, स्वैक्यसर्वगतं वा ? न तावत्सर्व-सर्वगतम्, व्यक्त्यन्तराकेऽनुपलभ्यमानत्वाद्व्यक्तिसत्त्वात्मवत् । तत्रानुपलम्भो हि तस्याऽव्यक्तत्वात्, व्यवहितत्वात्, दूरस्थित-

१ न विशेषज्ञानानुषङ्गः, न च तथा-विशेषमन्तरेण सामान्याप्रतीतिः । २ जन्यमुपकारः सामान्यसेति । ३ सम्बन्धसिद्ध्यर्थम् । ४ गौरीरित्यादि । ५ सामान्यसैकत्वादेवं सामान्यज्ञानम् । ६ व्यक्तीनामनेकत्वाद्नेकाकारम् । ७ अपरिष्ठाता व्यक्तयः सामान्यज्ञानं कथं जनयन्तीत्युक्ते सत्सादाचार्यः । ८ चक्षुष्यमस्य । ९ सामान्यलक्षणम् । १० स्वविषयज्ञानलक्षणम् । ११ तदवस्था-सहकारिरहितत्वम् । १२ कूटस्थानिलसामान्यम् । १३ सामान्यं कार्यजनकं न भवति तदजनकत्वादित्यप्याहम् । १४ सहकारिकारणम् । १५ अर्थो यदादिः तस्य क्रिया कार्यत्वं जन्यत्वमिति यावत्, तां करोति यः पदार्थो दृष्टिण्डलक्षणः सोऽर्थक्रियाकारी, तस्य भावसत्त्वम्, सत्तात् । १६ सर्वास्तु सत्सम्बन्धिसत्त्वमुष्ण्णादिव्यक्तिषु । १७ स्वम्यक्तौ विवक्षितैकम्यक्तौ ।



त्वात्, अदृश्यत्वात्, स्वाश्रयेन्द्रियसम्बन्धविरहात्, आश्रयसम-  
वेतरूपाभावाद्वा स्याद्व्यत्यन्तराऽभावात् ? न तावदव्यक्तत्वात् ;  
एकत्र व्यक्तौ सर्वत्र व्यक्तेरभिन्नत्वात् । अव्यक्तत्वाच्चान्तराले  
तस्यानुपलम्भे व्यक्तिसात्मनोऽप्यनुपलम्भोऽत एवास्तु । तत्रास्य  
५ सद्भावावेदकप्रमाणाभावादसत्त्वादेवाऽनुपलम्भे सामान्यस्यापि  
सोऽसत्त्वादेवास्तु विशेषाभावात् । न खलु प्रत्यक्षतस्तत्तत्रोपल-  
भ्यते विशेषरहितत्वात् खरविषाणवत् ।

किञ्च, प्रथमव्यक्तिग्रहणवेलायां तदभिव्यक्तस्यास्य ग्रहणे  
अमेदात्तस्य सर्वत्र सर्वदोषलम्भप्रसङ्गः सर्वात्मनाभिव्यक्त-  
१० त्वात्, अन्यथा व्यक्ताव्यक्तस्वभावमेदेनानेकत्वानुषङ्गादसामान्य-  
रूपतापत्तिः । तस्मादनुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलम्भाद्व्यत्यन्तराले  
सामान्यस्यासत्त्वं व्यक्तिसात्मवत् ।

‘व्यत्यन्तरालेऽस्ति सामान्यं युगपद्भिन्नदेशसाधारणवृत्तित्वे  
सत्येकत्वाद्दर्शादिवत्’ इत्यनुमानात्तत्र तद्भावासिद्धिः, इत्यप्यसङ्ग-  
१५ तम्, हेतोः प्रतिपाद्यऽसिद्धत्वात् । न हि भिन्नदेशास्तु व्यक्तिषु  
सामान्यमेकं प्रत्यक्षतः स्थूणादौ वंशादिवत्प्रतीयते, यतो युग-  
पद्भिन्नदेशसाधारणवृत्तित्वे सत्येकत्वं तस्य सिध्यत्साधारणत्वे-  
रालेऽस्तित्वं साधयेत् । तन्नाव्यक्तत्वात्तत्राऽनुपलम्भः ।

नापि व्यवहितत्वादभिर्भेदादेव । नापि दूरस्थितत्वात्तत्त एव ।  
२० नाप्यदृश्यात्मत्वात्, स्वाश्रयेन्द्रियसम्बन्धविरहात्, आश्रय-  
समवेतरूपाभावाद्वा, अमेदादेव । तत्र सर्वसर्वगतं सामान्यम् ।

नापि स्वव्यक्तिसर्वगतम् ; प्रतिव्यक्तिपरिसमाप्तत्वेनास्याऽनेक-  
त्वानुषङ्गाद् व्यक्तिसवरूपवत् । कात्स्न्यैकदेशाभ्यां वृत्त्यनुपपत्ते-  
र्भेदाऽसत्त्वम् ।

२५ किञ्च, एकत्र व्यक्तौ सर्वात्मना वर्त्तमानस्यास्यान्यत्र वृत्तिर्न  
स्यात् । तत्र हि वृत्तिस्तद्देशे गमनात्, पिण्डेन सहोत्पादात्,

१ यकसा व्यक्तौ । २ प्राकये सति । ३ व्यक्तिषु । ४ सामान्यस्याभिव्यक्तेः ।

५ प्रकटरूपसामान्यस्यैकत्वात् । ६ व्यत्यन्तराले । ७ नाऽभावात् । ८ तत्तत्र सामान्य-  
वद्व्यक्तेरपि व्यापकत्वान्नित्यप्रसङ्गः । ९ सद्भावावेदकप्रमाणाभावात् । १० व्यापकत्व-  
नित्यत्वात् । ११ विशेषरूपताप्रतिपत्तिरिति भावस्तस्याऽनेकरूपत्वात् । १२ देवदत्तेन  
व्यभिचारपरिहारार्थं विशेषणद्वयम् । १३ स्तम्भादौ । १४ जैनादि । १५ व्यक्ताव्य-  
भिव्यक्तस्य सामान्यस्य । १६ यकलभावत्वात् ( व्यक्त्वा सह ) । १७ व्यापित्वात् ।  
१८ सामान्यसाध्याः खण्डादयः । १९ इन्द्रियसम्बद्धत्वादिविशिष्टव्यक्तिरूपत्वात् ।  
२० व्यक्तीनामानन्त्यात् । २१ अनेकत्वसाधत्वलक्षणं रूपमुदेव्यतीति भावः ।

तद्देशे सङ्गात्वात्, अंशवत्तया वा स्यात्? न तावद्गमनादन्यत्र पिण्डे तस्य वृत्तिः, निष्क्रियत्वोपगमात् ।

किञ्च, पूर्वपिण्डपरित्यागेन तत्तत्र गच्छेत्, अपरित्यागेन वा? न तावत्परित्यागेन; प्राक्तनपिण्डस्य गोत्वपरित्यक्तस्यागोरूपता-प्रसङ्गात् । नाप्यपरित्यागेन; अपरित्यक्तप्राक्तनपिण्डस्यास्थानंशस्य ५ रूपादेरिव गमनासम्भवात् । न ह्यपरित्यक्तपूर्वाचाराणां रूपादी-नामाचारान्तरसङ्क्रान्तिर्दृष्टा ।

नापि पिण्डेन सहोत्पादात्, तस्याऽनित्यतानुषङ्गात् । नापि तद्देशे सत्त्वात्; पिण्डोत्पत्तेः प्राक् तत्र निराधारस्यास्यावस्थाना-भावात् । भावे वा स्वाश्रयमात्रवृत्तित्वविरोधः । १०

नाप्यंशवत्तया; निरंशत्वप्रतिष्ठानात् । ततो व्यक्त्यन्तरे सामा-न्यस्याभावानुपपन्नः । परेषां प्रयोगः 'ये यत्र नोत्पन्ना नापि प्राग-वस्थाधिगो नापि पञ्चादन्यतो देशादागतिमन्तस्ते तत्राऽसन्तः यथा खरोत्तमाङ्गे तद्विपाणम्, तथा च सामान्यं तच्छून्यदेशो-त्पादवति घटादिके वस्तुनि' इति । उक्तञ्च— १५

“न यति न च तत्रासीदस्ति पञ्चात्र वींशवत् ।

जहाति पूर्वमाधारमहो व्यसैनसन्ततिः\* ॥ १ ॥”

[ प्रमाणवा० १।१५३ ]

ये तु व्यक्तिसमाधेयं सामान्यमभ्युपगच्छन्ति

“तौदात्म्यमस्य कसाचेत्समाधादिति गम्यताम् ।” [ १२०

इत्यभिधानात्; तेषां व्यक्तिवत्तस्यासाधारणरूपत्वानुषङ्गाद् व्यक्त्युत्पादविनाशयोर्भास्यापि तद्योगित्वं प्रसङ्गाच्च सामान्यरू-पता । अथाऽसाधारणरूपत्वमुत्पादविनाशयोगित्वं चास्य नाभ्यु-पगम्यते, तर्हि विरुद्धमार्गव्याप्तौ व्यक्तिस्योऽस्य भेदः स्यात् ।

१ सामान्यं निष्क्रियमिति वचनात् । २ परेण । ३ व्यक्तिदेशे । ४ नदित्वा-नाम् । ५ सामान्यमसत् अनुत्पन्नमानादित्वादित्युपनिषद्योज्यम् । ६ तच्छून्यौ च तद्देशोत्पादौ चेति । ७ व्यक्त्यन्तरम् । ८ व्यक्तिदेशे । ९ व्यक्तौ मध्यां सत्याम् । १० सामान्यस्य विशेषणम् । ११ वृथा स्थितिः । \* श्लोकोऽयं सुदृढपुस्तके 'व्यक्ति-स्योऽस्य भेदः स्यात्' इत्यनन्तरं सुदृढः । प्रकरणानुरोधात् स्थानग्रहो भाति-सम्पा० । १२ गीमासकाः । १३ व्यक्तिरेव श्रयणो वस्य त्वनोरभेदात् । १४ व्यक्त्या सह । १५ गीमासकानाम् । १६ असाधारणरूपताया व्यक्तेरभिज्ञत्वात् । १७ सामान्यस्य । १८ व्यक्ति सामान्ययोरभेदात् । १९ परेण । २० घटपटयोरिव ।

- “तादात्म्यं चेन्मतं जातेर्व्यक्तिजन्मन्यजातता ।  
 नाशोऽनाशश्च केनेष्टस्तद्विधानन्वयो न किम् ॥ २ ॥  
 व्यक्तिजन्मन्यजाता चेदागता नाशर्यान्तरात् ।  
 प्रागासीन्न च तद्देशे सा तथा सङ्गता कथम् ॥ ३ ॥  
 व्यक्तिनाशे न चेन्नष्टा गता व्यक्त्यन्तरं न च ।  
 तरुहून्वे न स्थिता देशे सा जातिः केति कथ्यताम् ॥ ४ ॥  
 व्यक्तेर्जात्यौदियोगेपि यदि जातेः सै नैर्ष्यते ।  
 तौदात्म्यं कथमिष्टं स्यादनुपप्लुतंचेतसाम् ॥ ५ ॥” [ ]
- ततो यदुक्तं कुमारिलेन—

- १० “विषयेण हि बुद्धीर्ना विना नोत्पत्तिरिच्छते ।  
 विशेषादन्यदिच्छन्ति सामान्यं तेन तैर्बुधम् ॥ १ ॥  
 तौ हि तेन विनोत्पन्ना मिथ्याः स्युर्विपर्ययादृते ।  
 न त्वन्येन विना वृत्तिः सामान्यस्येह दुर्व्यति ॥ २ ॥”  
 [ मी० श्लो० आकृति० श्लो० ३७-३८ ]

- १५ इति; तन्निरस्तम्; नित्यसर्वगतसामान्यस्याश्रयादेकान्ततो  
 भिन्नस्याभिन्नस्य वाऽनेकदोषैर्बुद्धत्वेन प्रतिपादितत्वात् । अनुगत-  
 प्रत्ययस्य च सैहशपरिणामनिबन्धनत्वप्रसिद्धेः । स चानित्योऽ-  
 सर्वगतोऽनेकव्यक्त्यात्मकतयाऽनेकरूपश्च रूपादिवत्प्रत्यक्षत एव  
 प्रसिद्धः । ततो मद्देनायुक्तमुक्तम्—

- “पिण्डमेदेषु गोबुद्धिरेकगोत्वनिबन्धना ।  
 गवाभासैकरूपाभ्यामेकगोपिण्डबुद्धिवत् ॥ १ ॥”  
 [ मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४४ ]

यच्चेदमुक्तम्—

“न शाबलेयाद्गोबुद्धिस्ततोऽन्यौलम्बनापि वै ।

१ व्यक्त्या सह । २ तदा इति शेषः । ३ जातेः । ४ व्यक्तेः । ५ जातेः ।  
 ६ व्यक्तिवत् । ७ असाधारणता । ८ किन्तु स्यादेव । ९ सति । १० व्यक्त्य-  
 न्तरात् । ११ जातिः=जन्म । १२ आदिना विनाशग्रहणम् । १३ बालादियोगः ।  
 १४ तर्हीति शेषः । १५ जातिव्यक्तयोः । १६ अत्रान्तचेतसात् । १७ सामान्येन ।  
 १८ अनुगताकाराणाम् । १९ वेदादिभिः । २० ते । २१ नित्यमचलम् । २२ विष-  
 येण विनोत्पत्तिः कथमित्युक्ते आह । २३ यतः । २४ समवायेन । २५ तादा-  
 त्व्येन स्वभावाद्भवत इत्यर्थः । २६ व्यक्तेः सकाशात् । २७ यक्त्वापत्तिव्यप-  
 देशाभावादगोनेके । २८ साक्षादिभस्वेनावमनेन सङ्गश्च इति । २९ गौर्गौरिति ।  
 ३० गवाभासस्यैकरूपं च तान्याम् । एक ( गौर्गौरित्याभ्यासिमकारण ) शानत्वादेकरूप-  
 ( गोरूपपिण्ड बाष्पकारण )त्वाच्चैत्यर्थः । ३१ सामान्यनिबन्धनेति । ३२ ततोऽन्य-  
 खण्डादि । ३३ नेति संबन्धः ।

तदभावेऽपि सैद्धावाद् घटे पार्थिवबुद्धिबत् ॥”

[ मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४ ]

तत्सिद्धसाधनम्; व्यक्तिव्यतिरिक्तसदृशपरिणामालम्बनत्वा-  
त्तस्याः ।

यच्च सामान्यस्य सर्वगतत्वसाधनमुक्तम्—

“प्रत्येकसमवेतार्थविषया वैय गोमतिः ।

प्रत्येकं कृत्स्नरूपत्वात्प्रत्येकं व्यक्तिबुद्धिबत् ॥ १ ॥”

[ मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४६ ]

प्रयोगः—येयं गोबुद्धिः सा प्रत्येकसमवेतार्थविषया प्रतिपिण्डं  
कृत्स्नरूपपदार्थाकारत्वात् प्रत्येकव्यक्तिविषयबुद्धिबत् । एकत्वम्-१०  
प्यस्य प्रसिद्धमेव; तथाहि—यद्यपि सामान्यं प्रत्येकं सर्वात्मना  
परिसमाप्तं तथापि तदेकमेवैकाकारबुद्धिग्राह्यत्वात्, यथा नन्यु-  
क्तवाक्येषु ब्राह्मणादिनिवर्त्तनम् । न चेयं मिथ्या; कारणदोषवा-  
धकप्रत्ययाभावात् । उक्तञ्च—

“प्रत्येकसमवेतापि जातिरेकैर्बुद्धितः ।

नन्युक्तेष्विव वाक्येषु ब्राह्मणादिनिवर्त्तनम् ॥ १ ॥

नैकरूपा मतिर्गोत्वे मिथ्या वक्तुं च शक्यते ।

नात्र कारणदोषोस्ति बाधकप्रत्ययोपि वा ॥ २ ॥”

[ मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४७-४९ ]

तदप्युक्तिमात्रम्; प्रतिपिण्डं कृत्स्नरूपपदार्थाकारत्वेऽस्य सदृश-२०  
परिणीमाविनाभावित्वेन सौम्यविपरीतार्थं साधनस्य विरुद्धत्वात् ।  
नित्यैकरूपप्रत्येकपरिसमाप्तसामान्यसाधने दृष्टान्तस्य सौम्यविक-  
लता । तैथामूतस्य चास्य सर्वात्मना वैदुष्ये परिसमाप्तत्वे सर्वेषां  
व्यक्तिभेदानां परस्परमेकरूपतापत्तिः एकव्यक्तिपरिनिष्ठितस्वभाव-  
सामान्यपदार्थसंसृष्टत्वात् एकव्यक्तिस्वरूपवत् । सामान्यस्य २५

१ श्वालेयामात्रेण खण्डादिगोबुद्धिसङ्गावात् तदभावेऽपि श्वालेयादेस्तत्सङ्गावादि-  
त्यर्थः । २ गोबुद्धेः । ३ श्वेतपीतादिविशेषमन्तरेण यथा घटे पृथिवीत्वसामान्येन  
पार्थिवबुद्धिः । ४ न केवलमेकगोलनिवन्धना । ५ एकमेकां व्यक्तिं प्रति । ६ गोमतेः ।  
७ गौर्गौरिति प्रत्ययः । ८ अर्थो—गोलव्यञ्जनसामान्यम् । ९ गोत्वादिसामान्यम् ।  
१० अर्थं गौर्यं गौरिति । ११ नायं ब्राह्मणो नायं ब्राह्मण इत्यादि । १२ एकमेव ।  
१३ इन्द्रियादि । १४ गौर्गौरिति । १५ हेतोः । १६ सदृशपरिणामा—साध्यम् ।  
१७ सर्वगतत्वम् । १८ असर्वगतत्वे । १९ व्यञ्जीना मिलत्यनेकरूपत्वं च नास्ति  
यतः । २० एकत्वानुमाने दूषणमाह । २१ विशेषेषु । २२ अभिप्रायात्, तादा-  
त्म्यापन्नत्वात् ।

वानेकत्वापत्तिः, युगपद्वनकेवस्तुपरिसमाप्तात्मरूपत्वात् दूरतरदे-  
शौचच्छिन्नानेकभाजनगतवित्त्वादिफलवत् । ततोऽयुक्तमुक्तम्—  
'नात्र बाधकप्रत्ययोस्ति' इति; प्राक्प्रतिपादितप्रकारेणानेकबाध-  
कप्रत्ययोपनिपातात् । प्रत्येकसमवेतार्थाश्च जातेरसिद्धत्वात्  
५ 'एकबुद्धिप्राप्तत्वात्' इत्याश्रयासिद्धो हेतुः । स्वरूपासिद्धश्च;  
अबाधसाहचर्ययोधाधिगम्यत्वेनैकाकारप्रत्ययप्राप्तत्वस्यासिद्धेः ।  
ब्राह्मणादिनिवृत्तिश्च परमार्थतो नैकरूपास्तीति सौम्यविकल-  
मुदाहरणम् ।

प्रातेन यदुक्तमुद्योतकरेण—“गवादिष्वनुवृत्तिप्रत्ययः पिण्डा-  
१० दिव्यतिरिक्ताक्षिमिसौम्यवति विशेषकर्तृव्रीलादिप्रत्ययवत् ।  
तथा गोतोऽर्थान्तरं गोत्वं भिन्नप्रत्ययविषयत्वाद्व्यापादिवत् सैव्येति  
च व्यपदेशविषयत्वात्, यथा चैत्रस्याश्वश्चैत्राद्व्यपदिश्यमानः”  
[ न्यायवा० पृ० ३३३ ] इति; तद्विरस्तम्; अनुवृत्तिप्रत्ययस्य हि  
सौमान्येन पिण्डादिव्यतिरिक्तनिमित्तमात्रसाधने सिद्धेऽसाध्यता-  
१५ नुपपन्नात्, सदृशपरिणामनिबन्धनतयाऽस्याभ्युपगमात् । नित्यै-  
कानुगामिसामान्यनिबन्धनत्वसाधने दृष्टान्तस्य सौम्यविकलता ।  
न ह्येवम्भूतेन क्वचिद्वैतव्यः सिद्धः ।

न चानुगतज्ञानोपलम्भादेव तथाभूतसामान्यसिद्धिः । यतः किं  
यत्रानुगतज्ञानं तत्र सामान्यसम्भवः प्रतिपाद्यते, यत्र वा सामान्य-  
२० सम्भवस्तत्रानुगतज्ञानमिति? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः, गोत्वादि-  
सामान्येषु 'सामान्यं सौमान्यम्' इत्यनुगताकारप्रत्ययोपलम्भे-  
नाऽपरिसामान्यकल्पनाप्रसङ्गात् । न चानासौ प्रत्ययो गौणः;  
अस्त्वलङ्घ्यत्वेन गौणत्वासिद्धेः । तथा प्रागभावादिव्यप्यमावेषु

१ सम्पूर्ण । २ भिन्नभिन्न । ३ नित्याया एकरूपायाः प्रत्येकं परिसमाप्तायाश्च ।  
४ जयं गौरयं गौरिति । ५ आश्रयभूताया जातेरभावात् । ६ अयमेनेन सदृश इति ।  
७ अनेकरूपसामान्य । ८ कृत्वा । ९ एकाकारप्रत्ययेन प्राप्तं सामान्यं परमते ।  
१० सामान्यस्य । ११ नायं क्षत्रियो ब्राह्मणो नायं वैश्यो ब्राह्मण इत्यादिवा  
कृत्वाऽभावानामनेकत्वात्, अभावः अभाव इति प्रत्ययसंयुक्तप्रागभावानादिवत् ।  
१२ एकत्वेन साध्येन । १३ भीमांसकं प्रति नित्यसर्वगतजातिनिराकरणपरेण ग्रन्थेन ।  
१४ शबलज्ञानकेयादिनिषेधगोपिण्डादि । १५ सर्वगमित्यत्वात् । १६ भेदकत्वात् ।  
१७ गौरिर्दं गोत्वमिति । १८ भेदेनाभिधीयमानः । १९ साधारणेन कृत्वा ।  
२० जैनानाम् । २१ पिण्डादिव्यतिरिक्ताक्षिलैकानुगामिसामान्याक्षिमिसौम्यवतीति  
साध्यम् । २२ यो यो भेदकप्रत्ययः स स नित्यैकानुगामिसामान्याङ्गवतीति ।  
२३ -परेण । २४ गवादिष्वक्षिनिष्ठेषु गोत्वादिसामान्येषु सदृशमपि सामान्यं पटव्यमपि  
सामान्यमित्यनुगताकारप्रत्ययः । २५ गोत्वादिभ्यः । २६ कल्पित ।

‘अभावोऽभावः’ इत्यनुगतप्रत्ययप्रवृत्तिरस्ति, न च परैरभाव-  
सामान्यमभ्युपगतम् । न खलु तत्रानुगाम्येकं निमित्तमस्त्यन्यत्र  
सदृशपरिणामात् ।

‘ननु चापरसामान्यस्य प्रागभावादिष्वभावेऽपि सत्ताख्यं मद्वा-  
सामान्यमस्ति, तद्वलादेवाभावप्रत्ययोऽनुगतो भविष्यति । ५  
उक्तञ्च—

“ननु च प्रागभावादौ सामान्यं वस्तु नेष्यते ।

सैत्तैव ह्यत्र सामान्यमनुत्पत्त्यादिरूपता” ॥ १ ॥

[ मी० श्लो० अपोहवाद श्लो० ११ ]

अनुत्पत्त्यादिविशिष्टेत्यर्थः । तदयुक्तम्, अभिप्रेतपदार्थव्यतिरि- १०  
क्तानां मतान्तरीयार्थानाम् उत्पाद्यकथार्थानां वाऽभावप्रतीतिविष-  
यतोपलम्भेन सत्त्वप्रसङ्गात् । तत्राभावेऽनुवृत्तप्रतीतेरनुगाम्ये-  
कसामान्यनिबन्धनत्वमस्तीत्यन्यत्राप्यस्यास्तत्रिबन्धनत्वाभावः ।  
प्रयोगः—ये क्रमित्वानुगामित्ववस्तुत्वोत्पत्तिमत्त्वसत्त्वादिधर्मोपे-  
तास्ते परकल्पितनित्यैकसर्वगतसामान्यनिबन्धना न भवन्ति १५  
यथाऽभावेऽभावोऽभाव इति प्रत्ययाः, सामान्येषु सामान्यं  
सामान्यमिति प्रत्यया वा, तथा चामी प्रत्यया इति ।

अथ यत्र सामान्यं तत्रैवानुगतज्ञानकल्पना, न, पांचकादिषु  
तदभावेऽनुगतप्रत्ययप्रवृत्तेः । न खलु तत्रानुगाम्येकं सामान्य-  
मस्ति यत्प्रसादात्तत्प्रवृत्तिः स्यात् । निमित्तान्तरमस्तीति २०  
चेत्तत्किं कर्म, कर्मसामान्यं वा स्यात्, व्यक्तिः, शक्तिर्वा? न  
तावत्कर्म, तस्य प्रतिव्यक्ति विभिन्नत्वात् । ‘विभिन्नं ह्यऽभिर्ज्ञेयस्य  
कारणं न भवति’ इति सर्वोपभारम्भः । तच्चेद्भिन्नमपि तथाभूत-  
कार्यकारणं तदैन्यत्र कः प्रक्षेपः ?

किञ्च, तत्कर्म नित्यं वा स्यात्, अनित्यं वा? न तावन्नित्यम्; २५  
तथानुपलब्धेरनभ्युपगमाच्च । अनित्यं तु न सर्वदा स्थितिमदिति  
विनष्टे तस्मिन् तथाभूतो व्यपदेशो ज्ञानं वा स्यात्, अपचतः

१ अभावत्वस्य । २ परेण । ३ पक्षा सर्वगता । ४ आदिना नित्यसर्वगतत्वादि-  
ग्रहणम् । ५ ततोऽभावप्रत्ययोऽनुगतो भविष्यति । ६ अभिप्रेतानि द्रव्यगुणकर्माणि ।  
७ अद्वैतप्रधानादीनाम् । ८ लोके विचित्रकथार्थानाम् । ९ पुरुषेषु । १० पाचकः  
पाचक इत्यादि । ११ कर्म सामान्यं नास्तीत्युक्ते आह । १२ पचनक्रियायाः पूर्वं नास्ति ।  
१३ देवदत्तपशुदत्तचैत्रमैत्रेषु पचनक्रियालक्षणे कर्म भिन्नम् । १४ अनुगताकारस्य ।  
१५ जैनमताभ्युपगते प्रतिव्यक्ति भिन्ने सदृशपरिणामे । १६ शब्दानुवृत्तिवर्णां त्रिलोका-  
वसामित्वाभ्युपगमात् । १७ परेण । १८ पाचक इति । १९ पाचक इति ।

क्रियाविरहात् । पचचेव हि तंथा व्यपदिश्येत नान्यदा । तन्न कर्मैतस्य प्रत्ययस्य निबन्धनम् ।

नापि कर्मसामान्यम्, तद्धि कर्माश्रितम्, कर्माश्रयाश्रितं वा ? यदि कर्माश्रितम्; कथमन्यत्र ज्ञानं जनयेत् ? न ह्यन्यत्र वृत्ति-  
५ मदन्यत्र ज्ञानकारणमतिर्प्रसङ्गात् ।

किञ्च, कर्मसामान्यात् 'पाकः पाकः' इति प्रत्ययः स्यान्न पुनः 'पाचकः पाचकः' इति । अथ कर्माश्रयाश्रितम्; तन्न; कर्माश्रित-  
त्वात् । परम्परया कर्माश्रयाश्रितं तत्; इत्यसारम्; अपर्चतः कर्म-  
विवेकात् । विविके च कर्मणि न कर्मत्वं कर्मणि तदाश्रये वाऽऽ-  
१० श्रितम्, अनाश्रितं च कथं तत्तत्र तंथाज्ञानहेतुः स्यात् ?

अथाऽपचतोऽतीतानागते कर्मणी तंथाव्यपदेशज्ञाननिबन्धनं  
न कर्मत्वम्; ननु सती, असती वा ते तन्निबन्धनं स्याताम् । न  
तावत्सती, अतीतस्य प्रच्युतत्वाद्नागतस्य चालब्धात्मस्वरूप-  
त्वात् । असती च कथं कस्यापि निबन्धनमतिप्रसङ्गात् ? तन्न  
१५ कर्मत्वमपि तत्प्रत्ययस्य निबन्धनम् ।

नापि व्यक्तिः, अनिष्टेर्विभिन्नत्वाच्च ।

नापि शक्तिः; सा हि पाचकादन्या, अनन्या वा स्यात् ? अन-  
न्यत्वे तयोरन्यतरदेव स्यात् । अन्यत्वे च अस्या एव कार्योपयोगि-  
त्वेन कर्तृरकर्तृत्वानुषङ्गः । अथ पारम्पर्येणोपयोगः-कर्त्ता हि  
२० शक्तावुपयुज्यते शक्तिश्च कार्ये । नन्वसौ शक्तावुपयुज्यते स्वरूपेण,  
शक्त्यन्तरेण वा ? शक्त्यन्तरेणोपयोगेऽवस्था । स्वरूपेणोपयोगे  
कार्येण्यसौ तथा किञ्चोपयुज्यते किं परम्परापरिभ्रमेण ? न  
चान्यन्निमित्तमस्ति ।

पाचकत्वमस्तीति चेत्; तर्हि त्रैव्योत्पत्तिकाले व्यक्तम्,  
२५ अव्यक्तं वा ? व्यक्तं चेत्; तर्हि पाकक्रियायाः प्रागेव तंथा ज्ञाना-  
मिधाने स्याताम् । अथाऽव्यक्तम्; तर्हि पश्चादपि न ते स्यातां

१ पाचक इति । २ कर्मवत्पुरुषाश्रितम् । ३ कर्माश्रये देवदत्ते । ४ कर्मणि ।  
५ देवदत्ते । ६ गृहे वृत्तिमान्मदीपो गुहायां ज्ञानकारणं स्यादित्यतिप्रसङ्गः । ७ कर्मत्वं  
कर्माश्रितं कर्म च देवदत्ताश्रितमिति । ८ पुरुषस्य । ९ नष्टे । १० सामान्यम् ।  
११ देवदत्ते । १२ पाचक इति । १३ पाचकः पाचक इति । १४ अनुगत-  
प्रत्ययस्य । १५ परेणानुपपन्नात् । १६ अनेकत्वात् । १७ पचनलक्षणं कार्यम् ।  
१८ कर्मादिभ्योऽन्यन्निमित्तं-अविष्यतीत्याह । १९ पाचकः पाचक इति ज्ञानव्यपदेश-  
योरनुगतप्रत्ययहेतुः । २० देवदत्तलक्षणम् । २१ पाचक इति ।

विशेषाभावात् । तथाहि—तत्पूर्वं द्रव्यसमवायधर्मः स्याद्वा, न वा ? सत्त्वे सत्त्ववत्पूर्वमेव व्येकिः, तर्थाव्यपदेशश्च स्यात् । अथ न; तदा पैश्चादपि द्रव्यसमवायधर्मत्वं न स्यादेकरूपत्वात्तस्य । तन्न पश्चाद्व्यक्तितस्य ।

अस्तु वा; तथाप्यसौ द्रव्येण, क्रियया, उर्माभ्यां वाभिधीयते ? ५ न तावद्द्रव्येण; अस्य प्रागपि विद्यमानत्वात् । नापि क्रियया; तस्या ज्ञानावेयातिशयेऽकिञ्चित्करत्वात् । नाप्युर्माभ्याम्; पृथगऽसामर्थ्यं सहितयोरप्यसौमर्थ्यात् । तन्नानुगतः प्रत्ययोऽनुगाम्येकं सामान्यमालम्बते ।

किञ्च, 'गोत्वं वर्त्तते' इत्यभ्युपेतं भवता, तत्र किं गोत्वे<sup>१</sup> गोत्वं १० वर्त्तते, किं वा गोषु गोत्वंमेव, गोषु गोत्वं वर्त्तते एवेति वा ? प्रथमपक्षेऽनन्वयित्वाविशेषाद्यावत्तेषु गोत्वं वर्त्तते तावदन्यत्रापि किञ्च वर्त्तते ? द्वितीये पक्षे तु सत्त्वद्रव्यत्वादीनां व्यवच्छेदाद्व्यक्तेरप्यभावप्रसङ्गस्तद्रूपत्वात्तस्याः । अथ 'गोषु गोत्वं वर्त्तते' एवेति पक्षः; 'तत्र चान्यत्र गोत्वं वर्त्तते एव' इति गोव्यक्तिवत्कर्कादावपि १५ 'गौर्गौ' इति ज्ञानं स्यात्तद्व्यक्तेरविशेषात् । तन्न व्यक्त्यात्मकात् प्रतिव्यक्तिविभिन्नात्सदृशपरिणामात् अन्यद् व्यक्त्यो भिन्नमेकं सामान्यं घटते ।

विभिन्नं हि प्रतिव्यक्ति सदृशपरिणामलक्षणं सामान्यं विसदृश-परिणामलक्षणविशेषवत् । यथैव हि काचिद्व्यक्तिरुपलभ्यमाना २० व्यक्त्यन्तराद्विशिष्टा विसदृशपरिणामदर्शनादवतिष्ठते तथा सदृशपरिणामदर्शनात्किञ्चित्केनचित्समानमपि 'तेनार्थं समानः सोऽनेन समानः' इति प्रतीतेः । न च व्यक्तिस्वरूपादभिन्नत्वात्सामान्यरूपताव्याघातोऽस्य; रूपादेरप्यत एव रूपादिसमावताव्याघात-

- १ मेदाभावात्तत्त्वस्यैकत्वमावत्वात् । २ देवदत्तलक्षण । ३ धर्मः=समानः । ४ देवदत्तल । ५ पाचकत्वस्य । ६ पाचकः पाचक इति । ७ द्रव्योत्पत्तिकालेपि । ८ पचाकत्वस्य । ९ पश्चाद्व्यक्तिः (प्रकटनम्) । १० द्रव्यक्रियान्याम् । ११ देवदत्तादिना । १२ पचनलक्षणया । १३ पाचकत्वसामान्ये । १४ न च ज्ञानाभिर्दूषणं तेषां शक्तेरङ्गीकारात्, परेषां शक्तेरङ्गीकारो नास्ति यतः । १५ नैयायिकेन । १६ नान्यत्रेत्यर्थः । १७ न सत्त्वद्रव्यत्वादिकं गोषु वर्त्तते । इत्यन्यथावृत्तिः (!) । १८ अन्यत्रापि गोत्वं वर्त्तते इत्यर्थः । १९ गोषु गोत्वसम्बन्धमात्राविशेषात् । २० समवायादीनां प्रागेव प्रतिक्षिप्तत्वात् । २१ अनन्वयो=विभिन्नत्वमसम्बद्धत्वं वा । २२ जन्मादिषु । २३ कर्कादिषु । २४ एवकारयोगेनान्वयोगयोगाऽत्यन्ताऽयोगव्यवच्छेदादिति सिद्धम् । २५ अनेकम् । २६ व्यक्त्यात्मकादिति विशेषणं समर्थयति ।



प्रसङ्गात् । प्रत्यक्षविरोधोऽन्यत्रापि समानः-सामान्यविशेषात्म-  
तयार्थस्याध्यक्षे प्रतिभासनात् ।

ननु प्रथमव्यक्तिदर्शनवेलायां सामान्यप्रत्ययस्याभावात्सदृश-  
परिणामलक्षणस्यापि सामान्यस्यासम्भवः; तदप्यसाम्प्रतम् । तदा  
१ सद्रव्यत्वादिप्रत्ययस्योपलम्भात् । प्रथममेकां गां पश्यन्नपि हि  
सद्वादिना सादृश्यं तद्वार्थान्तरेण व्यपदिशत्येव । अननुभूत-  
व्युत्तर्यन्तरस्यैकव्यक्तिदर्शने कस्मान्न समानप्रत्ययोत्पत्तिः तत्र  
सदृशपरिणामस्य भावादिति चेत् ? तवापि विशिष्टप्रत्ययोत्पत्तिः  
कस्मान्न स्याद्वैसादृश्यस्यापि भावात् ? परापेक्षत्वात्तस्याप्रसङ्गोऽ-  
न्यत्रापि समानः । समानप्रत्ययोपि हि परापेक्षतामन्तरेण कचि-  
त्कदाचिदप्यभावात् द्वित्वादिप्रत्ययवद्भूत्वादिप्रत्ययवद्भा ।

द्विविधो हि वस्तुधर्मः-परापेक्षः, परानपेक्षश्च, स्थौल्यादि-  
चङ्घर्णादिवर्धः । अतो यथान्यापेक्षो विशेषः स्वामर्थक्रियां व्यावृत्ति-  
ज्ञानलक्षणां कुर्वन्नर्थक्रियाकारी, तथा सामान्यमप्यनुगतज्ञान-  
१५ लक्षणामर्थक्रियां कुर्वन्नर्थक्रियाकारि न स्यात् ? तद्वाह्यां  
पुनर्वाहदोहाद्यर्थक्रियां यथा न केवलं सामान्यं कर्तुमुत्सहते  
तथा विशेषोपि, उभयात्मनो वस्तुनो गवादेस्तत्रोपयोगात्,  
इत्यर्थक्रियाकारित्वेर्नापि सामान्यविशेषाकारयोरभेदात्सिद्धं वास्त-  
वत्वम् ।

२० ततोऽपाकृतमेतत्—

“सर्वे भावाः स्वभावेन स्वस्वभावव्यवस्थितेः ।

स्वभावपरभावाभ्यां यसाद्यावृत्तिभागिनः ॥ १ ॥

तस्माद्यतो यतोऽर्थानां व्यावृत्तिस्तैश्चिबन्धनाः ।

-- १-व्यक्तिस्वरूपत्वादभिन्नत्वाविशेषात् । २ पक्षगति । ३ सत्त्वादिनार्य सदृश  
त्रयादि । ४ पुरुषस्य । ५ निश्चिष्टः=विसृष्टः । ६ परे=महिषादिः । ७ परा-  
पेक्षात् । ८ समानप्रत्ययस्य । ९ यथा द्विषयेकत्वापेक्षं दूरत्वं चासन्नत्वापेक्षम् ।  
१० भेदपीतादिवत् । ११ सदृशपरिणामलक्षणम् । १२ अनुगतज्ञानलक्षणार्थक्रिया  
यतः । १३ विशेषनिरपेक्षम् । १४ केवलतया । १५ सामान्यविशेषात्मनः ।  
१६ न केवलमभाषितप्रत्ययविषयत्वेन । १७ सामान्यविशेषापेक्षं, चाकारो तयो-  
रभेदाद्विशेषभावादित्यर्थः । १८ सामान्यविशेषाकारो सिद्धो यतः । १९ प्रतिक्षणं  
ध्वंसिनः परस्परमसंसृष्टाः परमाणुरूपा गवादिस्त्रलक्षणाः । २० वर्तन्ते इति  
शेषः । २१ स्वेषां भावानां स्वरूपेण व्यवस्थितेः । २२ समावीयविनावीयपर-  
माणुरूपावतः । २३ विनावीयादभावात् । २४ स्त्रलक्षणानां । २५ व्यावृत्ति-  
निबन्धनं येषां ते ।

जातिभेदाः प्रकल्प्यन्ते तद्विशेषावगाहिनः ॥ २ ॥”

[ प्रमाणवा० १।४१-४२ ] इति ।

ननु सादृश्ये सामान्ये ‘स एवायं गौः’ इति प्रत्ययः कथं शबलं दृष्ट्वा धवलं पश्यतो घटेतेति चेत् ? ‘एकत्वोपचारात्’ इति ब्रूमः । द्विविधं ह्येकत्वम्-मुख्यम्, उपचरितं च । मुख्यमात्मादिद्रव्ये ।<sup>५</sup> सादृश्ये तूपचरितम् । नित्यसर्वगतस्वभावत्वे सामान्यस्यानेक-  
दोषदुष्टत्वप्रतिपादनात् ।

‘तेन समानोयम्’ इति प्रत्ययश्च कथं स्यात् ? तयोरेकसामान्य-  
योगाच्चेत्, न; ‘सामान्यवन्तावेतौ’ इति प्रत्ययप्रसङ्गात् । तयोरे-  
भेदोपचारे तु ‘सामान्यम्’ इति प्रत्ययः स्यात्, न पुनः ‘तेन<sup>१०</sup>  
समानोयम्’ इति । यद्विपुरुषयोरभेदोपचाराद्यद्विसदृशचरितः पुरुषो  
‘यद्विः’ इति यथा ।

ननु ‘व्यक्तिर्बैतस्मान्परिणामेष्वपि समानप्रत्ययस्यापरसमान-  
परिणामहेतुकत्वप्रसङ्गादनवस्था स्यात् । तमन्तरेणाप्यत्र समान-  
प्रत्ययोत्पत्तौ पर्याप्तं खण्डादिव्यक्तौ समानपरिणामकल्पनया’<sup>१५</sup>  
इत्यन्यत्रापि समानम्-विसदृशपरिणामेष्वपि हि विसदृशप्रत्ययो  
यदि तदन्तरहेतुकोऽनवस्था । स्वभावतश्चेत्; सर्वत्र विसदृश-  
परिणामकल्पनानर्थक्यम् ।

न च सदृशपरिणामानामर्थवत्त्वात्मन्यपि समानप्रत्ययहेतुत्वे  
अर्थानामपि तत्प्रसङ्गः; प्रतिनियतशक्तित्वाद्भावानाम्, अन्यथा<sup>२०</sup>  
घटादेः प्रदीपात्स्वरूपप्रकाशोपलम्भात्प्रदीपेऽपि तत्प्रकाशः प्रदीपा-  
न्तरादेव स्यात् । स्वकारणकलापादुत्पन्नाः सर्वेऽर्था विसदृशप्रत्य-  
यविषयाः स्वभावत एवेत्यभ्युपगमे समानप्रत्ययविषयास्ते तथा  
किं नाभ्युपगम्यन्ते अलं प्रतीत्यपलापेन ?

१ सामान्यभेदाः । २ वासनादयः । ३ ते खण्डादिकर्कादयश्च विशेषाश्च तान-  
वगाह्ये इत्येवंशीलाः । ४ निवेद्या एव सन्ति न सामान्यमिति भावः । ५ जैने-  
नाङ्गीक्रियमाणे सादृश्ये सामान्ये सन्ति । ६ स एवायमात्मादिः पदार्थ इति ।  
७ साक्षादिमत्त्वेन । ८ भवता भीमासकानाम् । ९ खण्डशुण्डयोः शबलधवलयोर्वा ।  
१० सामान्यतद्गतोः । ११ परेणाङ्गीक्रियमाणे । १२ इदं (व्यक्तिः) सामान्य-  
मिति । १३ कुन्ताः प्रविशन्ति अथा आगच्छन्तीत्यादिवद्वा । १४ व्यक्तिर्वा  
सादृश्यपरिणामात्तेन शुण्डेन सदृशः खण्ड इत्यादि । १५ समान इति परिणामेव ।  
१६ विसदृशपरिणामपक्षेऽपि । १७ अपरविसदृशः । १८ तद्वीति शेषः ।  
रूपाणाम् । २० स्वात्मनि समानप्रत्ययहेतुत्वप्रसङ्गः । २१ प्रतिनियतश-  
क्तौ सौमतेन ।

एतेन नित्यं निखिलब्राह्मणव्यक्तिव्यापकं ब्राह्मण्यमपि प्रत्या-  
ख्यातम् । न हि तत्तथाभूतं प्रत्यक्षादिप्रमाणतः प्रतीयते । ननु च  
'ब्राह्मणोयं ब्राह्मणोयम्' इति प्रत्यक्षत एवास्य प्रतिपत्तिः । न चेदं  
विपर्ययज्ञानम्; बाधकाभावात् । नापि संशयज्ञानम्; उभयांशा-  
५ नवलम्बित्वात् । पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानपूर्वकोपदेशसहाया चास्य  
व्यक्तिव्यक्षिका, तत्रापि तत्सहायेति । न चान्नाऽनवस्था; बीजाङ्क-  
रादिवदनादित्वात्तत्तद्रूपोपदेशपरम्परयाः ।

तथानुमानतोपि; तथाहि—ब्राह्मणपदं व्यक्तिव्यतिरिक्तैकनिमित्त-  
भिधेयसम्बद्धं पदत्वात्पटादिपदवत् । न चायमसिद्धो हेतुः;  
१० धर्मिणि विद्यमानत्वात् । नापि विरुद्धः; विपक्षे एवाभावात् । नाप्य-  
नैकान्तिकः; पक्षविपक्षयोरवृत्तेः । नापि दृष्टान्तस्य साध्यवैक-  
ल्यम्; पटादौ व्यक्तिव्यतिरिक्तैकनिमित्तभिधेयसम्बद्धत्वाभावे  
व्यक्तीनामानन्त्येनाऽनन्तेनापि कालेन सम्यन्त्रग्रहणावदनात् ।  
तथा, 'धर्णविशेषाध्ययनाचारयज्ञोपवीतादिव्यतिरिक्तनिमित्तनि-  
१५ बन्धनं 'ब्राह्मणः' इति ज्ञानम्, तन्निमित्तबुद्धिविलक्षणत्वात्,  
गवाश्वादिज्ञानवत्' इत्यतोपि तत्सिद्धिः । तथा 'ब्राह्मणेन  
यष्टव्यं ब्राह्मणो भोजयितव्यः' इत्याद्यागमौचितेति ।

अत्रोच्यते । यत्तावदुक्तम्—प्रत्यक्षत एवास्य प्रतिपत्तिः; तत्र  
किं निर्विकल्पकात्, विकल्पकाद्वा ततस्तत्प्रतिपत्तिः स्यात् ? न  
२० तावद्विर्विकल्पकात्, तत्र जाल्यादिपरामर्शाभावात्, भावे वा  
सविकल्पकानुषङ्गः । अन्यथा—

“अस्ति ह्यालोर्चनज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम् ।

बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम् ॥ १ ॥

ततः परं पुनर्वस्तुधर्मैर्जाल्यादिभिर्यथा ।

२५ बुद्ध्यावसीयते सापि प्रत्यक्षत्वेन सम्मता ॥ २ ॥”

[ मी० श्रो० प्रत्यक्षसू० ११२, १२० ] इति वचो विरुद्धेति ।

१ निष्कारिताक्षस्य पुरुषस्य पुरो व्यवस्थितेषु क्षत्रियादिसङ्केषु । २ इति=  
अनुगतैकाग्रप्रत्ययतया । ३ पित्रादिब्राह्मण्यधानादस्य पुत्रस्य ब्राह्मण्यमित्युपदेशः ।  
४ षष्ठकलापादिः । ५ ब्राह्मणोयं ब्राह्मणोयमिति सामान्यस्य वाचकत्वात् ब्राह्मण इति  
सामान्यपदस्य । ६ ब्राह्मण्य तदेवाभिधेयं तेन सम्बद्धम् । ७ पदत्वस्य । ८ नापि  
दृष्टान्तस्य साधनवैकल्यं पटादिपदे पदत्वस्य विद्यमानत्वात् । ९ पदत्व ।  
१० द्वितीयमनुमानम् । ११ गौरत्वादि । १२ ब्राह्मण इति ज्ञानम् । १३ अपुरुष-  
कृतात् । १४ जाल्यादिपरामर्शकत्वेपि निर्विकल्पकत्वे । १५ इन्द्रिय । १६ अक्षि-  
विस्फाल्लानन्तरम् । १७ तज्ज्ञानं वस्तु न ज्ञायते यतः । विशेषणविशेष्यरहितं शुद्धं  
भेदरहितसम्प्राप्तलक्षणवस्तुतो जातम् । १८ भेदरहितं समन्वितमिति यावत् ।

नापि सविकल्पकात्, कंठकलापादिव्यक्तीनां मनुष्यत्वविशिष्ट-  
तयेव ब्राह्मण्यविशिष्टतयापि प्रतिपत्त्यसम्भवात् । पित्रादि-  
ब्राह्मण्यज्ञानपूर्वकोपदेशसहाया व्यक्तिर्व्यञ्जिकाश्च, इत्यप्यसारम्;  
यतः पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानं प्रमाणम्, अप्रमाणं वा? अप्रमाणं  
चेत्; कथमतोर्थसिद्धिरतिर्प्रसङ्गात्? प्रमाणं चेत्; किं प्रत्यक्ष-  
क्षम्, अनुमानं वा? प्रत्यक्षं चेत्; न; अस्य तद्ब्राह्मणत्वेन प्रागेव  
प्रतिषेधात् ।

किञ्च, 'ब्राह्मण्यजातेः प्रत्यक्षतासिद्धौ यथोक्तोपदेशस्य प्रत्यक्ष-  
हेतुतासिद्धिः, तत्सिद्धौ च तत्प्रत्यक्षतासिद्धिः' इत्यन्योन्या-  
भयः । यथा च ब्राह्मण्यजातेः प्रत्यक्षत्वमुपदेशेन व्यवस्थाप्यते १०  
तथा ब्रह्माद्यद्वैतप्रत्यक्षत्वमपि, तत्कथमप्रतिपक्षा पक्षसिद्धिर्भवतः  
स्यात्? अथाद्वैताद्युपदेशस्याध्यक्षयाचितत्वाच्च प्रत्यक्षज्ञत्वम्;  
तदन्यत्रापि समानम् । ब्राह्मण्यविवेकपिण्डप्राहिणाध्यक्षेणैव हि  
तदुपदेशो बाध्यते । अथाऽऽहस्या ब्राह्मण्यजातिस्तेनायमदोषः;  
कथं तर्हि सा 'प्रत्यक्षा' इत्युक्तं शोभेत? १५

किञ्च, औपाधिकोर्यं ब्राह्मणशब्दः, तस्य च निमित्तं वाच्यम् ।  
तच्च किं पित्रोरविभूतत्वम्, ब्रह्मप्रभवत्वं वा? न तावदविभूतत्वम्;  
अनादौ काले तस्याध्यक्षेण प्रहीतुमशक्यत्वात्, प्रायेण प्रमदानां  
कामातुरतयेह जन्मन्यपि व्यभिचारोपलम्भाच्च कुतो योनिनिप-  
न्धनो ब्राह्मण्यनिश्चयः? न च विभूतेतरपित्रऽपत्येषु वैलक्षण्यं २०  
लक्ष्यते । न खलु वज्रवायां गर्दभाश्वप्रभवापत्येष्वेव ब्राह्मण्या  
ब्राह्मणशब्दप्रभवापत्येष्वपि वैलक्षण्यं लक्ष्यते ।

क्रियाविलोपीत् शूद्राद्यादेश्च जातिलोपः स्वयमेवाभ्युपगतः—

“शूद्राद्याच्छूद्रसम्पर्काच्छूद्रेण सह माषणात् ।

इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चामिजायते ॥”

[

] इत्यभिधानात् ।

२५

१ कठः स्वरे कचा भेदः । २ ब्राह्मणव्यक्तीनाम् । ३ वैषम्यदृष्टान्तोक्तम् । यत्र  
दृष्टान्तदार्ष्टान्तयोरेकमोरस्तित्वं सन्नान्यदृष्टान्तः । यत्रैकसाक्षिरप्येकस्य नास्तित्वं  
तत्र व्यतिरेकदृष्टान्तः । ४ संज्ञादपि स्वाभिमतार्थसिद्धिप्रसङ्गात् । ५ ब्राह्मण्य-  
जातिः । ६ अनन्तरमेव । ७ व्यवस्थाप्यता शब्दोपदेशेन । ८ परपक्षस्यानिरा-  
करणात् । ९ अङ्गकारणम् । १० विशेष्यवान्यस्य विशेषणं (तस्य वाचकत्वात्)  
वचः (सद्वाचकं) इत्यभिधानात् । ११ प्रवृत्तेरिति शेषः । १२ अत्रान्तत्वात् ।  
१३ पित्रोः । १४ ब्राह्मण्यस्य । १५ जातेः ब्राह्मण्यस्य । १६ ततो नित्यत्वव्याघातः ।  
१७ जीमासकेन ।

कथं चैवं वादिनो ब्रह्मव्यासविश्वामित्रप्रभृतीनां ब्राह्मण्यसिद्धि-  
स्तेषां तज्जन्यत्वासंभवात् । तन्न पित्रोरविष्टतत्वं तन्निमित्तम् ।

नापि ब्रह्मप्रभवत्वम्; सर्वेषां तत्प्रभवत्वेन ब्राह्मणशब्दाभि-  
धेयतानुषङ्गात् । 'तन्मुखाज्जातो ब्राह्मणो नान्यः' इत्यपि भेदो  
५ ब्रह्मप्रभवत्वे प्रजानां दुर्लभः । न खल्वेकवृक्षप्रभवं फलं मूले मध्ये  
शाखायां च भिद्यते । ननु नागवल्लीपत्राणां मूलमध्यादिदेशोत्पत्तेः  
कण्ठभ्रामर्यादिभेदो दृष्ट एवमत्रापि प्रजामेदः स्यात्; इत्यप्यसत्;  
यतस्तत्पत्राणां जघन्योत्कृष्टप्रदेशोत्पादात्तत्पत्राणां तद्भेदो युक्तो  
ब्रह्मणस्तु तद्देशाभावाच्च तद्भेदः । तद्देशभावे चास्य जघन्योत्कृष्ट-  
१० तादिप्रसङ्गः स्यात् ।

किञ्च, ब्रह्मणो ब्राह्मण्यमस्ति वा, न वा? नास्ति चेत्, कथमतो  
ब्राह्मणोत्पत्तिः? न ह्यमनुष्यादिभ्यो मनुष्याद्युत्पत्तिर्घटते । अस्ति  
चेत्किं सर्वत्र, मुखप्रदेश एव वा? सर्वत्र इति चेत्, स एव  
प्रजानां भेदाभावोऽनुषज्यते । मुखप्रदेशे एव चेत्, अन्यत्र प्रदेशे  
१५ तस्य शूत्रत्वानुषङ्गः, तथा च न पादादयोऽयं वन्धा वृषलादि-  
वत्, मुखमेव हि विप्रोत्पत्तिस्थानं वन्द्यं स्यात् ।

किञ्च, ब्राह्मण एव तन्मुखाज्जायते, तन्मुखादेवासौ जायेत?  
विकल्पद्वयेऽप्यन्योन्याश्रयः-सिद्धिं हि ब्राह्मणत्वे तस्यैव तन्मुखादेव  
जन्मसिद्धिः, तत्सिद्धेश्च ब्राह्मणत्वसिद्धिरिति । अथ ज्ञात्वा  
२० ब्राह्मण्यस्य सिद्धिस्तन्मुखादेव तज्जन्मनर्थायमदोषः; न; अस्याः  
प्रत्यक्षतोऽप्रतीतेः । न खलु खण्डमुण्डादिषु सादृश्यलक्षण-  
गोत्ववद्देवदत्तादौ ब्राह्मण्यजातिः प्रत्यक्षतः प्रतीयते, अन्यथा  
'किमयं ब्राह्मणोऽन्यो वा' इति संशयो न स्यात् । तथा च  
तन्निरासाय गोत्राद्युपदेशो व्यर्थः । न हि 'गौरयं मनुष्यो वा'  
२५ इति निश्चयो गोत्राद्युपदेशमपेक्षते ।

ननु यथा सुवर्णादिकं परोपदेशसहायात्प्रत्यक्षात्प्रतीयते तथा  
सापि; इत्यप्ययुक्तम्; यतो न पीततामात्रं सुवर्णमतिप्रसङ्गात्,  
किन्तु तद्विशेषः, स च नाच्यक्षो दाहच्छेदादिवैयर्थ्यप्रसङ्गात् ।  
तस्यापि सहायत्वे तज्जातौ किञ्चित्त्वाविधं सहायं वाच्यम्-तच्चा-

१ पित्रोरविष्टतत्वं ब्राह्मणशब्दप्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तमित्येवं वादिनः । २ अविष्टत-  
त्वे । ३ ब्राह्मणशब्दप्रवृत्तिनिमित्तम् । ४ मूले उत्पन्नानि पत्राणि कण्ठस्य अग्रे  
कुर्वन्ति, मध्ये उत्पन्नानि कण्ठस्य सुखरत्वं कुर्वन्तीति भेदः । ५ तत्र ब्राह्मण्या-  
भावात् । ६ सिद्धिरिति सम्बन्धः । ७ रीतिकादेः सुवर्णत्वप्रसङ्गात् । ८ सुवर्णादि-  
ज्ञाने । ९ ब्राह्मण्यम् ।

कारविशेषो वा स्यात्, अध्ययनादिकं वा ? न तावदाकारविशेषः;  
तस्याब्राह्मणेपि सम्भवात् । अत एवाध्ययनं क्रियाविशेषो वा  
तत्सहायतां न प्रतिपद्यते । दृश्यते हि शूद्रोपि स्वजातिविलोपा-  
द्देशान्तरे ब्राह्मणो भूत्वा वेदाध्ययनं तत्प्रणीतां च क्रियां कुर्वाणः ।  
ततो ब्राह्मण्यजातेः प्रत्यक्षतोऽप्रतिभासनात्कथं अतबन्धवेदाध्य-  
यनादि विशिष्टव्यक्तावेव सिद्ध्येत् ?

यदप्युक्तम्-‘ब्राह्मणपदम्’ इत्याद्यनुमानम्; तत्र व्यक्तिव्यति-  
रिक्तैकनिमित्ताभिधेयसम्बद्धत्वं तत्पदस्याध्यक्षवाधितम्, कठ-  
कलापादिव्यक्तीनां ब्राह्मण्यविविकानां प्रत्यक्षतो निश्चयात्,  
अभ्रावणत्वविविकशब्दवत् । अप्रसिद्धविशेषणञ्च पक्षः; न खलु १०  
व्यक्तिव्यतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयाभिसम्बद्धत्वं मीमांसकस्या-  
स्माकं वा कैचित्प्रसिद्धम्, व्यक्तिभ्यो व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तस्य  
सामान्यस्याभ्युपगमोत् ।

हेतुश्चानैकान्तिकः, सत्ताकाशकालपदे अद्वैतादिपदे वा व्यक्ति-  
व्यतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयसम्बद्धत्वार्थावेपि पदेत्वस्य भावात् । १५  
सैत्रापि तत्सम्बद्धत्वकल्पनायाम् सामान्यवत्त्वेनैद्वैताश्वविषाणो-  
र्वैवस्तुभूतत्वाजुषकात् कुतोऽप्रतिपक्षा पक्षसिद्धिः स्यात् ? सत्ता-  
याञ्च सामान्यवत्त्वप्रसङ्गः, गगनादीनां चैकैक्यकित्वात्कथं  
सामान्यसम्भवः ? ईष्टान्तश्च साध्यविकलः, पटादिपदे व्यक्ति-  
व्यतिरिक्तैकनिमित्तत्वासिद्धेः ।

२०

यैतेन वर्णविशेषेत्याद्यनुमानं प्रत्युक्तम् । नैगरादौ च व्यक्ति-  
व्यतिरिक्तैकनिमित्तनिर्बन्धनाभावेपि तैथामूतज्ञानस्योपलम्भोद-  
नैकान्तः । न खलु नगरादिज्ञाने व्यतिरिक्तमनुवृत्तप्रत्ययनिव-  
न्धनं किञ्चिदस्ति, काष्ठादीनामेव प्रत्यासत्तिविशिष्टत्वेन प्रासा-

१ ब्राह्मणे । २ ब्राह्मण्य । ३ साध्यपदः । ४ अभाषणत्वविविकशब्दस्याध्य-  
क्षतो निश्चयाद्यथाऽभावणः शब्द इति पक्षः प्रत्यक्षवाधितत्वात्तर्कः । ५ दृष्टान्ते ।  
६ भिन्नज्ञानजनकत्वे भिन्न व्यक्तिभ्यः, पृथक्पृथक्जन्यत्वादभिन्नं सामान्यमिति ।  
७ मीमांसकैर्बन्धः । ८ पदत्वादिति । ९ आदिना अश्वविषाणादिपदे । १० साध्या-  
भावे । ११ हेतोः । १२ इदमेव सिद्ध्यति । १३ पटादिवत् । १४ अर्थः ।  
१५ परमते । १६ यथा भेदा उपचरिता इत्यर्थः । १७ नैकन्यक्तिकं सामान्यमिति  
वचनात् । १८ गगनत्वादि । १९ इति साध्याभावो दक्षितः । २० पटादिपद-  
वृत्तिः । २१ निरुपलब्धतादिरूपसामान्यं । २२ पदत्वाजुगाननिराकरणेन । २३ पदे ।  
२४ साध्याभावे । २५ वर्णविशेषादिनिमित्तजुष्टिवैलक्षण्यस्योपलम्भ्यात् । २६ नगर-  
मिति ज्ञानोपलम्भ्यात् । २७ व्यक्तेः सकाशात् ।

दादिव्यवहारनिबन्धनानां नगरादिव्यवहारनिबन्धनत्वोपपत्तेः,  
अन्यथा 'षण्णगरी' इत्यादिष्वपि वस्त्वन्तरकल्पनानुषङ्गः ।

‘ब्राह्मणेन यष्टव्यम्’ इत्याद्यागमोपि नात्र प्रमाणम्; प्रत्यक्ष-  
वाधितार्थभिधायित्वात् तृणाग्रे हस्तियूथशतमास्ते इत्यागमवत् ।

- ५ ननु ब्राह्मण्यादिजातिविलोपे कथं वर्णाश्रमव्यवस्था तन्निबन्धनो  
वा तपोदानादिव्यवहारो जैनानां घटेत ? इत्यप्यसमीचीनम् ;  
क्रियाविशेषयज्ञोपवीतादिचिन्होपलक्षिते व्यक्तिविशेषे तद्व्यवस्था-  
यास्तद्व्यवहारस्य चोपपत्तेः । कथमन्यथा परशुरामेण निःक्षत्री-  
कृत्य ब्राह्मणदत्तायां पृथिव्यां क्षत्रियसम्भवं ? यथा चानेन निःक्ष-  
१० त्रीकृतासौ तथा केनचिन्निर्ब्राह्मणीकृतापि सम्भाव्येत । ततः क्रिया-  
विशेषादिनिबन्धन एवायं ब्राह्मणादिव्यवहारः ।

- यतेनोविर्गोनतस्त्रैवर्णिकोपदेशोत्रै वस्तुनि प्रमाणमिति प्रत्यु-  
क्तम्; तस्याप्यव्यभिचारित्वाभावात् । इत्यन्ते हि बह्वैवैवैर्ण-  
कैरविगानेन ब्राह्मणत्वेन व्यवह्रियमाणा विपर्ययभाजः । तत्र  
१५ परपरिकल्पितायां जातौ प्रमाणमस्ति यतोऽस्याः सद्भावः स्यात् ।

- सद्भावे वा वेद्यापाटकादिप्रविष्टानां ब्राह्मणीनां ब्राह्मण्याभावे  
निन्दा च न स्यात् जातिर्यतः पवित्रताहेतुः, सा च भवन्मते  
तदवस्थैव, अन्यथा गोत्वादपि ब्राह्मण्यं निकृष्टं स्यात् । गवादीनां  
हि चाण्डालादिगृहे चिरोषितानामपीष्टं शिष्टैरादानम्, न तु  
२० ब्राह्मण्यादीनाम् । अथ क्रियाभ्रंशात्तत्र ब्राह्मण्यादीनां निन्द्यता;  
न; तज्जात्युपलम्भे तद्विशिष्टवस्तुव्यवसाये च पूर्वैवक्रियाभ्रंश-  
स्याप्यऽसम्भवं । ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टव्यक्तिव्यवसायो ह्यप्रवृ-  
त्ताया अपि क्रियायाः प्रवृत्तेर्निमित्तम्, स च तदवस्थ एव

१ नगरषट्कव्यतिरिक्तं षण्णगरीशब्दाव्यवस्त्वन्तरम् । २ ब्राह्मण्ये । ३ ब्राह्मण्य ।  
४ ब्रह्मचारी गृहीत्यादिः । ५ वर्णाश्रमाणां तदधीनत्वात् न तु शुद्धजालधीनत्वम् ।  
६ ब्राह्मण्यो । ७ अतो ज्ञायते क्रियामिशेषादिकं चिह्नं दृष्ट्वैव पुरुषेषु क्षत्रियव्यवहारः  
कृतः । ८ रावणेन । ९ पुनर्ब्राह्मणेति व्यवहारः क्रियादिविशेषचिह्नं दृष्ट्वैव कुलोत्पत्ति  
ज्ञायते । १० क्षत्रियब्राह्मणयोः निराकरणे पुनर्म्यवस्थापने च क्रियादिविशेष एव निब-  
न्धनमित्यर्थः । ११ आगमनिराकरणपरेषु । १२ अविवादतः । १३ यत्र ब्राह्मण्य-  
जातिस्तत्र त्रैवर्णिकोपदेश इति । १४ ब्राह्मण्ये । १५ त्रैवर्णिकशास्त्रोपदेशैः ।  
१६ शूद्राः । १७ गृहप्रासादशालादिस्थानभेदे पाठकशब्दः । १८ इवं ब्राह्मणीति ।  
१९ वेद्यागृहादिप्रवेशात्पूर्ववत् । २० वेद्यादिगृहे । २१ नमस्कारादेः ।  
२२ वेद्यादिगृहादी ।

भवद्भ्युपगमेन । क्रियाभ्रंशे तज्जातिनिवृत्तौ च त्रैलोक्यस्या निवृत्तिः स्यात्तद्भ्रंशाविशेषात् ।

किञ्च, क्रियानिवृत्तौ तज्जातेर्निवृत्तिः स्याद् यदि क्रिया तस्याः कारणं व्यापिका वा स्यात्, नान्यथातिप्रसङ्गात् । न चास्याः कारणं व्यापकं वा किञ्चिदिष्टम् । न च क्रियाभ्रंशे जातेर्विकारोस्तिः ५ “मिमेध्वमिज्ञा नित्या निरवयवा च जातिः ।” [ ] इत्यभिधानात् । न चाविकृताया निवृत्तिः सम्भवत्यतिप्रसङ्गात् ।

किञ्चेदं ब्राह्मणत्वं जीवस्य, शरीरस्य, उभयस्य वा स्यात्, संस्कारस्य वा, वेदाध्ययनस्य वा गत्यन्तरासम्भवात् ? न ताव- जीवस्य, क्षत्रियविद्वंशप्रादीनामपि ब्राह्मण्यस्य प्रसङ्गात्, तेषामपि १० जीवस्य विद्यमानत्वात् ।

नापि शरीरस्य, अस्य पञ्चभूतात्मकस्यापि घटादिवद् ब्राह्मण्या- सम्भवात् । न खलु भूतानां व्यस्तानां समस्तानां वा तत्सम्भवति । व्यस्तानां तत्सम्भवे क्षितिजलपवनहुताशनाकाशानामपि प्रत्येकं ब्राह्मण्यप्रसङ्गः । समस्तानां च तेषां तत्सम्भवे घटादीनामपि १५ तत्सम्भवः स्यात्, तत्र तेषां सामस्यसम्भवात् । नाप्युभयस्य, उभयदोषालुपङ्गात् ।

नापि संस्कारस्य, अस्य शूद्रबालके कर्तुं शकितस्तत्रापि तत्प्र- सङ्गात् ।

किञ्च, संस्कारात्प्राग्ब्राह्मणचालस्य तदस्ति वा, न वा ? यद्यस्ति; २० संस्कारकरणं ब्रूयात् । अथ नास्ति; तथापि तद्वृथा । अब्राह्मणस्या- प्यतो ब्राह्मण्यसम्भवे शूद्रबालकस्यापि तत्सम्भवः केन वार्येत ?

नापि वेदाध्ययनस्य, शूद्रेपि तत्सम्भवात् । शूद्रेपि हि कश्चि- देशान्तरं गत्वा वेदं पठति पाठयति वा । न तावतास्य ब्राह्मणत्वं भवद्भिरभ्युपगम्यत इति । ततः सदृशक्रियापरिणामादिनिवन्ध- २५ नैवेयं ब्राह्मणक्षत्रियादिव्यवस्था इति सिद्धं सर्वत्र सदृशपरिणाम- लक्षणं समानप्रत्ययहेतुस्तिर्यक्सामान्यमिति ।

किं पुनरुर्ध्वतासामान्यमित्याह—

१ निलत्वादिरूपाया जातेः ततो नास्ति क्रियाभ्रंश इत्यर्थः । २ कदाचि- भ्रमस्कारहीनेषु । ३ अग्निनिवृत्तौ धूमनिवृत्तिरतोऽग्निः कारणं धूमस्य तद्वत् । ४ इक्षनिवृत्तौ शिशुपातनिवृत्तिरतो बृक्षः शिशुपाया व्यापकस्तद्वत् । ५ घटनिवृत्तौ पटनिवृत्तिः स्यात् । ६ क्रिया-सम्बन्धावन्दनादिः । ७ नाशरूपः । ८ आत्माका- शादेरपि निवृत्तिः स्यादिति । ९ वेदाध्ययनमात्रेण ।



## परंपरविवर्तव्यापिद्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु ॥ ६ ॥

सामान्यमित्यभिसम्बन्धः । तदेवोदाहरणद्वारेण स्पष्टयति-  
मृदिव स्थासादिषु ।

- ५ ननु पूर्वोत्तरविवर्तव्यतिरेकेणापरस्य तद्व्यापिनो द्रव्यस्याप्रती-  
तितोऽसत्त्वात्कथं तल्लक्षणमूर्ध्वतासामान्यं सत् । इत्यप्यसमीची-  
नम् । प्रत्यक्षत एवार्थानामन्वैथिरूपप्रतीतेः प्रतिक्षणविशारदतया  
स्वमेति तत्र तेषां प्रतीत्यभावात् । यथैव पूर्वोत्तरविवर्तयोर्व्या-  
वृत्तप्रत्ययादन्योन्यमभौवः प्रतीतेस्तथा मृदाद्यनुवृत्तप्रत्ययात्स्थि-  
१० तिरपि ।

ननु कालत्रयानुर्यायित्वमेकैस्य स्थितिः, तस्याश्चाऽक्रमेण प्रतीतौ  
युगपन्मरणावधि ग्रहणम्, क्रमेण प्रतीतौ न क्षणिका बुद्धिस्तथा  
तां प्रत्येतुं समर्था क्षणिकत्वात्, इत्यप्ययुक्तम् ; बुद्धेः क्षणिकत्वेपि  
प्रतिपक्षैरक्षणिकत्वात् । प्रत्यक्षादिसहायो ह्यात्मैवोत्पादव्ययभौ-  
१५ व्यात्मकत्वं भौवानां प्रतिपद्यते । यथैव हि घटकपालयोर्विनाशो-  
त्पादौ प्रत्यक्षसहायोसौ प्रतिपद्यते तथा मृदादिरूपतया स्थिति-  
मपि । न तल्लु घटादिर्बुद्धौदीनां भेद एवावभासते न त्वेकत्व-  
मित्यभिधातुं युक्तम् ; क्षणक्षयानुमानोपन्यासस्यानर्थक्यप्रसङ्गात् ।  
स ह्येकत्वप्रतीतिनिरासार्थो न क्षणक्षयप्रतिपत्त्यर्थः, तस्य प्रत्यक्षे-  
२० णैव प्रतीत्यभ्युपगमात् ।

१ पूर्वापरकालवृत्ति त्रिकालानुयायीत्यर्थः । २ पर्यावरूपविज्ञेयव्यापित्वाद्यकि-  
निष्ठत्वमूर्ध्वतासामान्यं सिद्धम् । ३ विवर्तेषु । ४ तदेव जनैरुपादानकारण प्रोक्तं  
नैयायिकादिभिश्च समवायिकारणमुक्तमित्यर्थः । ५ सौगतः । ६ विषयानन् ।  
७ सर्वविवर्त्तानुगामी=अन्वयी । ८ न केवलं आप्रदवसायान् । ९ पूर्वविवर्त्तानुत्तर-  
विवर्त्तौ व्यावृत्तः । १० भेदः । ११ बौद्धप्रते । १२ इदं शुद्धपमिदं शुद्धपमिति ।  
१३ द्रव्यरूपपदार्थस्य । १४ सत्ताम् । १५ यथा भवति तथा । १६ ज्ञान स्यादात्म-  
द्रव्यादेः । १७ आत्मनः । १८ अक्षणिक आत्मा स चेत्सदेव क्व न जानातीत्युक्ते  
आह । १९ आदिपदेन प्रत्यभिज्ञानादि । २० मृदादिपदार्थानाम् । २१ बाह्यपदार्थः ।  
२२ आभ्यन्तरीयपदार्थः । २३ आदिना आत्मादीनाम् । २४ घटात्कपालं भिन्नं  
कपालाददो भिन्न इति भेदः परस्पर तथा सुखदुःखादेरात्मा भिन्नस्तस्मात्सुखादि  
भिन्नमिति भेदः परस्परम् । २५ अभिधीयते सौगतेन । २६ सर्वथा नास्तिरूपस्य  
निषेधो न घटते गगनकुलभवत् । २७ सौगतेन ।

न चानन्तरातीतानागतक्षणेयोः प्रत्यक्षस्य प्रवृत्तौ स्मरण-  
प्रत्यभिज्ञानुमानानां वैफल्यम्; तत्र तेषां साफल्यानभ्युपगमात्,  
अतिव्यवहिते तदङ्गीकरणात् । न चाक्षणिकस्यात्मनोऽर्थग्राहकत्वे  
स्वगतबालबुद्धाद्यवस्थानामतीतानागतजन्मपरम्परायाः सकल-  
भावपर्यायाणां चैकदैवोपलम्भप्रसङ्गः; ज्ञानसहायस्यैवार्थग्राह-५  
कत्वाभ्युपगमात्, तस्य च प्रतिबन्धकक्षयोपशमाऽनतिक्रमेण  
प्रादुर्भावाच्चोक्तदोषानुषङ्गः ।

न च द्रव्यग्रहणेऽतीताद्यवस्थानां ततोऽभिन्नत्वाद्ग्रहणप्रसङ्गः;  
अभिन्नत्वस्य ग्रहणं प्रैत्यनङ्गत्वात्, अन्यथा ज्ञानादिक्रिष्णानुभवे  
सञ्चेतनादिवत् क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्त्याद्यनुभवीनुषङ्गः । तस्मा-१०  
द्यत्रैवास्य ज्ञानपर्यायप्रतिबन्धापायस्तत्रैव ग्राहकत्वनियमो नान्य-  
त्रेत्यनवद्यम्-‘आत्मा प्रत्यक्षसहायोऽनन्तरातीतानागतेपर्याययोरे-  
कत्वं प्रतिपद्यते’ इति, स्मरणप्रत्यभिज्ञानसहायश्चातिव्यवहित-  
पर्यायेर्ष्वपि । तथैव प्रामाण्यं प्रैगेव प्रसाधितम् ।

ननु स्मरणप्रत्यभिज्ञानयोः पूर्वोपलब्धार्थविषयत्वे तद्दर्शनकाल-१५  
पवोत्पत्तिप्रसङ्गः, तद्दर्शनवत्तद्विषयत्वेनानयोरप्यविकलकारण-  
त्वात्, न चैवम्, तस्माच्च ते तद्विषये । प्रयोगः-यस्मिन्नविकलेपि  
यन्न भवति न तत्तद्विषयम् यथा रूपेऽविकले तत्राभवच्छ्रोत्र-  
विज्ञानम्, न मैवतोऽविकलेपि च पूर्वोपलब्धार्थे स्मृतिप्रत्यभि-  
ज्ञाने इति; तदप्यपेशलम्; तद्दर्शनकाले तयोः कारणाभावे-२०  
नाऽप्रादुर्भावात् । न ह्यर्थस्तयोः कारणम्; ज्ञानं प्रति कारणत्व-  
स्यार्थं प्रैगेव प्रतिषेधात् । स्मरणं हि संस्कारप्रबोधकारणम्,

१ प्रत्यक्षादिसहाय इत्यत्रादिग्रहणं निरर्थकमित्युक्ते आह । २ षट्कपाललक्षणयोः ।  
३ जैनेन । ४ मिल आत्मातीतानागतपर्यायानेकदेव ग्रहीष्यतीत्युक्ते आह । ५ अङ्गी-  
क्रियमाणे जैनेः । ६ स्वतोऽभिज्ञाना पर्यायाणात् । ७ जैनेः । ८ ज्ञानेन युज्यपद्मही-  
ष्यतीत्युक्ते आह । ९ ज्ञानस्य । १० प्रतिबन्धकं कर्म । ११ युगपन्मरणावधि-  
ग्रहणलक्षण । १२ ज्ञानम् । १३ अकारणत्वात् । १४ संसृतिः । १५ पदार्थः ।  
१६ तत्र सौगतस्य । ज्ञानादिलक्षणत्वमिन्नसङ्गात्वात् । १७ षट्कपाललक्षणयोः ।  
१८ एकत्वं प्रतिपद्यते । १९ स्मृतिप्रत्यभिज्ञानयोः प्रामाण्यं न विषये, तत्सहाय  
आत्मातिव्यवहितपर्यायेषु कथमेकत्वं जानीयादित्युक्ते सत्याह । २० श्रुतीयाध्याये ।  
२१ प्रत्यक्षेण । २२ स उपलब्धोर्ध्वो विषयो यद्योक्ते तत्त्वे । २३ प्रत्यक्ष ।  
२४ स उपलब्धार्थो विषयो यद्योक्ते । २५ अनुत्पाद्यमानत्वात् । २६ नार्थालोको  
कारणं परिच्छेद्यत्वात्तन्मोवदित्यत्र द्वितीयपरिच्छेदे । २७ तर्हि स्मरणप्रत्यभिज्ञानयोः  
कारणं किमित्युक्ते आह ।

संस्कारश्च कालान्तराविसरणकारणलक्षणधारणारूपः, तद्दर्शन-  
काले नास्तीति कथं तदैवास्योत्पत्तिः प्रत्यभिज्ञानस्य वा? तदु-  
त्पत्तौ हि दर्शनं पूर्वदर्शनाहितसंस्कारप्रबोधप्रभवस्मृतिसहायं  
प्रवर्त्तते, तच्च प्राप्तास्तीति कथं तदैव तदुत्पत्तिः?

- ५ अथ मतम्-आत्मनः कैवल्यैवातीताद्यर्थग्रहणसामर्थ्ये स्वर-  
णाद्यपेक्षावैयर्थ्यम्, तदसामर्थ्यं वा नितरां तद्वैयर्थ्यम्, न खलु  
केवलं चक्षुर्विज्ञानं गन्धग्रहणेऽसमर्थं सत्तत्स्मृतिसहायं समर्थं  
दृष्टमिति; तदप्यसङ्गतम्, यतः स्वरणादिरूपतया परिणतिरेवा-  
त्मनोऽतीताद्यर्थग्रहणसामर्थ्यम्, तत्कथं तदपेक्षावैयर्थ्यम्? चक्षु-  
१० विज्ञानस्य तु गन्धग्रहणपरिणामस्यैवामावाञ्च तत्स्मृतिसहाय-  
स्यापि गन्धग्रहणे सामर्थ्यमिति युक्तमुत्पश्यामः।

ततो निराकृतमेतत्-‘पूर्वोत्तरक्षणयोर्ग्रहणे कथं तत्र स्थासु-  
ताप्रतीतिः’ इति; आत्मनो तयोर्ग्रहणसम्भवात्। भवतां तु तयोर्-  
प्रतीतौ कथं मध्यक्षणस्य तत्राऽऽस्थासुताप्रतीतिरिति चिन्त्यताम्?  
१५ पूर्वदर्शनाहितसंस्कारस्य मध्यक्षणदर्शनात्तत्क्षणस्मृतिस्तस्यार्क्षं  
‘स इह नास्ति’ इत्यस्थासुतावगमे स्थासुतावगर्गोभ्येवं किञ्च  
स्यात्?

- ननु चास्थासुता पूर्वोत्तरयोर्मध्येऽभावः तस्य वा तत्रैव, स च  
तदात्मकत्वाच्चद्रहणेनैव गृह्यते; तदप्यसारम्, तदप्रतीतौ तत्रास्य  
२० अत्र वा तयोर्निषेधस्याप्यसम्भवात्। न ह्यप्रतिपन्नघटस्य ‘अत्र  
घटो नास्ति’ इति प्रतीतिरस्ति। कथं चैवं स्थासुता न प्रतीयेत?  
सापि हि पूर्वोत्तरयोर्मध्ये कैथञ्चित्सद्भावस्तस्य वा तत्रैव, स च  
तदात्मकत्वाच्चद्रहणेनैव गृह्येत।

ननु स्थासुतार्थानां नित्यतोच्यते, सा च त्रिकालापेक्षा, तद-  
२५ प्रतिपत्तौ च कथं तदपेक्षनित्यताप्रतिपत्तिः? तदसाम्प्रतम्, वस्तु-  
स्वभावभूतत्वेनान्यानपेक्षत्वान्नित्यतायाः, तथाभूतायाश्चास्याः  
प्रत्यक्षादिप्रमाणप्रसिद्धत्वेन प्रतीतेः प्रतिपादनात्। न खलु स्वयं  
नित्यतारहितस्यै त्रिकालेनासौ क्रियतेऽनित्यतावत्। न हि वर्त-

१ कारणम्। २ द्वितीयम्। ३ तस्य प्रत्यक्षादिसहावरहितस्य। ४ क्षणिकतुष्ट्या।

५ अक्षणिकेन। ६ अयं मध्यक्षणस्तत्र नाभूच्च मविष्यतीति प्रतीतिः। ७ परेण।

८ क्षणः। ९ दर्शनम्=अनुभवः। १० सकाशात्। ११ पूर्वदर्शनाहितसंस्कारस्य

मध्यक्षणदर्शनात्तत्क्षणस्मृतिः, तस्याश्च स इह द्रव्यरूपेणास्तीति। १२ क्षणयोः।

१३ क्षणे। १४ अभावः। १५ पूर्वोत्तरक्षणयोरेवात्मकत्वान्मध्यक्षणस्य।

१६ द्रव्यरूपेण। १७ द्रव्यरूपेण। १८ द्रव्यरूपेण मध्यक्षणस्य। १९ अग्रे।

२० पदार्थस्य।

मानकालेनानित्यता क्रियते तस्याऽसत्त्वात्, सत्त्वे वा तदनित्य-  
त्वस्याप्यपरेण करणेऽनवस्थाप्रसङ्गः । ततो यथा स्वभावतः  
पूर्वोत्तरकोटिविच्छिन्नः क्षणो जातः क्षणिको विधीयते काल-  
निरपेक्षश्च प्रतीयते तथाऽक्षणिकत्वंमपि ।

ननु चाक्षणिकत्वम् अर्थानामतीतानागतकालसम्बन्धित्वेना-  
तीतानागतत्वम् । न च कालस्यातीतानागतत्वं सिद्धम्; तद्धि  
किमपरातीतादिकालसम्बन्धात्, तथाभूतपदार्थक्रियासम्ब-  
न्धाद्वा स्यात्, स्वतो वा ? प्रथमपक्षेऽनवस्था ।

द्वितीयपक्षेपि पदार्थक्रियाणां कृतोऽतीतानागतत्वम् ? अपराती-  
तानागतपदार्थक्रियासम्बन्धाच्चेत्; अनवस्था । अतीतानागतकाल-  
सम्बन्धाच्चेत्; अन्योन्यार्क्षयः । सतः कालस्यातीतानागतत्वे अर्था-  
नामपि सत एवातीतानागतत्वमस्तु किमतीतानागतकालसम्ब-  
न्धित्वकल्पनया ? इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; स्वरूपत एवाती-  
तादिसमयस्यातीतादित्वप्रसिद्धेः । अनुभूतवर्त्तमानत्वो हि सम-  
योतीर्तः, अनुभविष्यवर्त्तमानत्वञ्चानागतः, तैस्तसम्बन्धित्वा-  
न्ध्यानामतीतानागतत्वम् । न च कालवदर्थानामपि स्वरूपेणैवा-  
तीतानागतत्वं युक्तम्; न ह्येकस्य धर्मोन्यत्राप्यासङ्गयितुं युक्तः,  
अन्यथा निम्बादेस्तिकतादिधर्मो गुडादेरपि स्यात्, ज्ञानधर्मो  
वा स्वप्नप्रकाशकत्वं घटादेरपि स्यात्, तद्वर्मो वा जडता ज्ञान-  
स्यापि स्यात् ।

२०

ननु चानुवृत्ताकारप्रत्ययोपलम्भादक्षणिकत्वधर्मोर्थानां सा-  
ध्यते, स च बाध्यमानत्वादसत्यः, तदप्यसम्यक्; यतोऽस्य  
बाधको विशेषप्रतिभास एव, स चानुपपन्नः । तथाहि-अनु-  
वृत्ताकारे प्रतिपन्ने, अप्रतिपन्ने वासौ तद्बाधको भवेत् ? यदि  
प्रतिपन्ने; तदा किमनुवृत्तप्रतिभासात्मको विशेषप्रतिभासः, तद्व्य-  
तिरिक्तो वा ? प्रथमपक्षेऽनुवृत्तप्रतिभासस्य मिथ्यात्वे विशेष-  
प्रतिभासस्यापि तदात्मकत्वात्तत्प्रसक्तेः कथमसौ तद्बाधकः ?  
द्वितीयपक्षेऽनुवृत्ताकारप्रतिभासमन्तरेण स्यासकोशादिप्रति-  
भासस्य तद्व्यतिरिक्तस्यासंवेदनात्तद्बाधकत्वायोगात् । अनुवृत्ता-  
कारप्रतिपत्तौ च विशेषप्रतिभासस्यैवासम्भवात्कथं तद्बाधकता ? ३०

१ सीगताभ्युपगमरीत्या । २ कालस्य । ३ कालेन । ४ कालनिरपेक्षम् । ५ अप-  
रसापरसात्तिज्ञानन्योन्याभयप्रसङ्गात् । ६ कालस्यातीतानागतत्वे सिद्धे सति पदार्थ-  
क्रियाणामतीतानागतत्वसिद्धिरित्यसौ च तस्तिष्ठिरिति । ७ इत्यरूपेण पुरुषेण ।  
८ मण्डले । ९ समयः । १० अतीतानागतकाल । ११ सयोनवितुम् । १२ बाध-  
कत्वेनेति शेषः । १३ मिथ्यारूपः । १४ द्वितीयविकल्पोऽप्यम् ।

किञ्च, विपरीतार्थव्यवस्थापकं प्रमाणं बाधकमुच्यते । प्रति-  
क्षणविनाशिपदार्थव्यवस्थापकत्वेन च प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा  
प्रवर्ततान्यस्य प्रमाणत्वेन सौगतैरनभ्युपगमात् ? तत्र न ताव-  
त्प्रत्यक्षं तद्व्यवस्थापकम् ; तत्र तथार्थानामप्रतिभासनात् । न हि  
१५ प्रतिक्षणं बुद्ध्यद्रूपतां विभ्राणास्तत्रार्थाः प्रतिभासन्ते, स्थिरस्थूल-  
साधारणरूपतयैव तत्र तेषां प्रतिभासनात् । न चान्याद्गभूतः  
प्रतिभासोऽन्याद्गभूतार्थव्यवस्थापकोऽतिप्रसङ्गात् ।

न च तत्र तथा तेषां प्रतिभासेपि सदृशापरापरोत्पत्तिविप्रल-  
म्भाद्यथानुभवं व्यवसायानुपपत्तेः स्थिरस्थूलादिरूपतया व्यव-  
१० सायः । इत्यभिधातव्यम् ; अनुपदृतेन्द्रियस्यान्याद्गभूतार्थनिश्चयो-  
त्पत्तिकल्पनायां प्रतिनियतार्थव्यवस्थित्यभावानुषङ्गात् । नीलानु-  
भवेपि पीतादिनिश्चयोत्पत्तिकल्पनाप्रसङ्गात् । तथा च “यत्रैव  
जैनयेदेनां तत्रैवास्व प्रमाणता” [ ] इत्यस्य विरोधः ।  
ततो यथाविधार्थाध्यवसायी विकल्पस्तथाविधार्थस्यैवानुभवो  
१५ ग्राहकोभ्युपगन्तव्यः । न चार्थस्य प्रति[क्षण]विनाशित्वाच्चैत्सा-  
मर्थ्यबलोद्भूतेनाध्यक्षेणापि तद्रूपमेवानुकरणीयमिति वाच्यम् ;  
इतरेतराभ्यानुषङ्गात्-सिद्धे हि क्षणक्षयित्वेऽर्थानां तत्सामर्थ्या-  
विनाभाविनोऽध्यक्षस्य तद्रूपानुकरणं सिद्ध्यति, तत्सिद्धौ च क्षण-  
क्षयित्वं तेषां सिद्ध्यतीति ।

२० नाप्यनुमानं तद्ग्राहकम् ; तत्र प्रत्यक्षाप्रवृत्तावनुमानस्याप्रवृत्तेः ।  
तथा हि-अध्यक्षाधिर्गतमविनाभावमाश्रित्य पक्षधर्मतावगमब-  
लादनुमानमुदयमासादयति । प्रत्यक्षाविषये तु स्वर्गादाविचानु-  
मानस्याप्रवृत्तिरेव ।

किञ्च, अत्र स्वभावहेतोः, कार्यहेतोर्वा व्यापारः स्यात् ? न  
२५ तावत्स्वभावहेतोः, क्षणिकस्वभावतया कस्याचिदर्थस्वभावस्या-  
निश्चयात्, क्षणिकत्वस्याध्यक्षागोचरत्वात् । अध्यक्षगोचरे एव  
ह्यर्थे स्वभावहेतोर्व्यवहृतिप्रवर्तनफलत्वम्, यथा विशददर्शनाव-  
भासिनि तरौ र्वृक्षत्वव्यवहारप्रवर्तनफलत्वं शिक्षपायाः ।

१ आगमादेः । २ विनश्यद्रूपताम् । ३ पटञ्चान घटव्यवस्थापकं स्यात् ।  
४ क्षणिकोय क्षणिकोयमिति । ५ जायते । ६ निर्विकल्पकप्रत्यक्षं कर्तुं । ७ सविकल्पका  
बुद्धिम् । ८ निर्विकल्पकस्य । ९ अतिप्रसङ्गो यतः । १० तस्य विनाशयर्थस्य ।  
११ तस्य प्रतिक्षणं विनाशयर्थस्य । १२ तथा च सति यथाविधार्थस्यैवानुभवो ग्राहको  
भविष्यतीत्यर्थः । १३ क्षणिकेर्त्ये । १४ वृष्टान्तपसिणि । १५ विनाशिपदार्थेन सह ।  
१६ सत्त्वादिति । १७ वृष्टम् । १८ अर्थं वृक्षः शिक्षपात्वादिति ।

अथोच्यते-‘यो यद्भावं प्रत्यन्यानपेक्षः स तत्त्वभावनियतः  
इत्याऽन्त्या कारणसामग्री स्वकार्योत्पादने, विनाशं प्रत्यन्यान-  
पेक्षाश्च भावाः’ इति; तदप्युक्तिमात्रम्; हेतोरसिद्धेः । न खलु  
मुद्राराद्यनपेक्षा घटादयो भावाः प्रमाणतो विनाशमनुभवन्तोनु-  
पयन्ते प्रतीतिविरोधात् । ५

किञ्च, अत्रान्यानपेक्षत्वमात्रं हेतुः, तत्त्वभावत्वे सत्यन्यान-  
पेक्षत्वं वा ? प्रथमपक्षे यवबीजादिभिरनेकान्तो हेतोः, शाल्य-  
न्तोत्पादनसामग्रीसंविधानावस्थायां तदुत्पादनेऽन्यानपेक्षाणा-  
मपेक्षो तद्भावनियमाभावात् । द्वितीयपक्षे तु विशेष्यासिद्धो हेतुः,  
तत्त्वभावत्वे सत्यन्यानपेक्षत्वासिद्धेः । न ह्यन्त्या कारणसामग्री १०  
स्वकार्योत्पादनस्वभावापि द्वितीयंक्षणानपेक्षा तदुत्पादयति, पृथ-  
क्भावो वा बहिः करतलादिसंयोगानपेक्षो दाहं विवधाति ।  
भोगे विशेषणासिद्धं च तत्त्वभावत्वे सत्यन्यानपेक्षत्वम् । शृङ्गो-  
त्थशरादीनां क्षणिकस्वभावाभावात् ।

किञ्च, यदि नामाऽहेतुको विनाशस्तथापि यदैव मुद्ररादिव्या- १५  
पारानन्तरमुपलभ्यते तदैवासावभ्युपगमनीयो नोदयानन्तरम्,  
कस्यचित्तदा तदुपलम्भाभावात् । न च मुद्ररादिव्यापारानन्तर-  
मस्योपलम्भात्प्रागपि सङ्भावः कल्पनीयः, प्रथमक्षणे तस्यानुपल-  
म्भान्मुद्ररादिव्यापारानन्तरमप्यभावानुपपन्नात् । न चान्ते क्षयोप-  
लम्भावादावप्यैसावभ्युपगन्तव्यः, सन्तानेनानेकान्तात् । २०

किञ्च, उदयानन्तरध्वंसित्वं भावानाम् भिन्नाभिन्नविकल्पाभ्या-  
मन्येन ध्वंसस्यासम्भवादवसीयते, प्रमाणान्तराद्वा ! तत्रोत्तरविक-  
ल्पोऽयुक्तः; प्रत्यक्षादेरुदयानन्तरध्वंसित्वेनार्थग्राहकत्वाप्रतीतेः ।  
प्रथमविकल्पे तु भिन्नाभिन्नविकल्पाभ्यां मुद्रराद्यनपेक्षत्वमेवास्य

१ ‘आवा वर्णिगः, विनाशस्वभावनियता इति साध्यवर्गः, विनाशं प्रत्यन्यान-  
पेक्षादिति हेतुः’ इत्युपरितः । २ साध्याभावे प्रवर्तमानत्वात् । ३ विनाशहेतुः ।  
४ बीजमतेऽपि एकस्मिन्क्षणे कारणं कार्यं न करोति वतः । ५ सर्वे भावा विनाश-  
स्वभावनियता इति पक्षलोकदेशे भागासिद्धो हेतुरित्यर्थः । ६ महिषमुगादिशुद्धेऽन्य-  
निरपेक्षतयोत्थशरीरादीनाम् । ७ एकस्मिन्क्षणे पदार्थ उत्पन्नः द्वितीयक्षणे मुद्ररादि-  
व्यापारमन्तरेण विनश्यतीति नाम्भ्युपगमनीयं त्वया सौरतेन । ८ तस्य विनाशस्य ।  
९ मुद्ररादिव्यापारानन्तरं विनाशोक्तिं मुद्ररादिव्यापारात्पूर्वं ( कल्पचिक्षणाद् द्वितीय-  
क्षणे ) मपि विनाशोच्छीत्युक्ते आह । १० विनाशस्य । ११ मुद्ररादिव्यापारा-  
त्पूर्वक्षणे । १२ मुद्ररादिव्यापारस्यान्ते । १३ मुद्ररादिव्यापारात्पूर्वम् । १४ निर्वाण-  
स्यान्ते उत्तरक्षणोत्पत्तेः क्षयोक्तिः, नादौ । १५ वचदन्ते क्षपि तत्तदादौ क्षयीति ।  
१६ मुद्ररादिना । १७ स्थितिपक्षे उत्पादपक्षे चाप्ये बहुकमसि तत्सर्वमत्र द्रष्टव्यम् ।  
प्र० क० मा० ४२

स्यात् न तद्दयानन्तरं भावः । न खलु निर्हेतुकस्याश्वविषाणादेः  
पदार्थोदयानन्तरमेव भावितोपलब्धः ।

अथाहेतुकत्वेन ध्वंसस्य सदा सम्भवात्कालाद्यनपेक्षातः पदा-  
र्थोदयानन्तरमेव भावः, नन्वेवमहेतुकत्वेन सर्वदा भार्वात्प्रथम-  
५ क्षणे एवास्य भावानुषङ्गो नोदयानन्तरमेव । न ह्यनपेक्षत्वाद्-  
हेतुकः क्वचित्कदाचिच्च भवति, तथाभावस्य सापेक्षत्वेनाहेतुकत्व-  
विरोधिना सहेतुकत्वेन व्यासत्वात्, तथा सौगतैरप्यभ्युपगमात् ।

ननु प्रथमक्षणे एव तेषां ध्वंसे सत्त्वस्वैवासम्भवात्कृतस्त-  
त्प्रच्युतिलक्षणो ध्वंसः स्यात् ? ततः स्वहेतोरेवार्था ध्वंसस्वभावाः  
१० प्रादुर्भवन्ति, इत्यप्यविचारितरमणीयम्, यतो यदि भावहेतोरेव  
तत्प्रच्युतिः, तदा किमेकक्षणस्थायिभावहेतोस्तत्प्रच्युतिः, काला-  
न्तरस्थायिभावहेतोर्वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः, एव(क)क्षणस्थायि-  
भावहेतुत्वस्याऽद्याप्यसिद्धेः तत्कृतत्वं तत्प्रच्युतेरसिद्धमेव ।  
द्वितीयपक्षे तु क्षणिकताऽभावानुषङ्गः ।

१५ किञ्च, भावहेतोरेवं तत्प्रच्युतिहेतुत्वे किमसौ भौवजनना-  
त्प्राक्तत्प्रच्युतिं जनयति, उत्तरकालम्, समकालं वा ? प्रथमपक्षे  
प्रागभावः प्रच्युतिः स्यान्न प्रध्वंसाभावः । द्वितीयपक्षे तु भावो-  
त्पत्तिवैलायां तत्प्रच्युतेरुत्पत्त्यभावान्न भौवहेतुस्तद्धेतुः । तर्था-  
चोत्तरोत्तरकालभाविभावपरिणतिमपेक्ष्योत्पद्यमाना तत्प्रच्युतिः  
२० कथं भावोदयानन्तरं भाविनी स्यात् ? तृतीयपक्षेपि भावोदयस-  
मसमयभाविन्या तत्प्रच्युत्या सह भावस्यावस्थानाविरोधान्न  
कदाचिद्भावेन नष्टव्यम् । कथं चासौ मुद्रादिव्यापारानन्तरमेवो-  
पलभ्यमाना तदभावे चानुपलभ्यमाना तज्जन्या न स्यात् ?  
अन्यत्रापि हेतुफलभावस्यान्वैयव्यतिरेकानुविधानलक्षणत्वात् ।

२५ न च मुद्रादीनां कपालसन्तत्युत्पादे र्ध्व व्यापार इत्यभिधात-  
व्यम्, घटादेः स्वरूपेणाविकृतस्यावस्थाने पूर्ववदुपलब्ध्यादि-  
र्भसङ्गात् । न चास्य तदौ स्वयमेवाभावान्नोपलब्ध्यादिप्रसङ्गः ।

१ अर्थस्य । २ नाशस्य । निर्हेतुकत्वात् । ३ अश्लक्ष्ण । ४ कालाद्यनपेक्षत्वा-  
विशेषात् । ५ किं तु सर्वदैव अवतीत्यर्थः । ६ क्वचित्कदाचिद्भवतः पदार्थस्य ।  
७ कालादिना । ८ अनुत्पन्नत्वात् । ९ अर्थोत्पत्तिकारणात् । १० शृङ्गमादेः ।  
११ भावस्य घटादेः । १२ घटादिभावस्य । १३ घटप्रध्वंसस्य । १४ भावोत्पत्ति-  
वैलायां येन कारणेन भावोत्पत्तिर्भावा तस्मिन्नेव समये तेनैव कारणेन घटप्रध्वंसो  
जायते तदा समयोः कारणभेदं स्यादिति भावः । १५ भावहेतोर्विनाशहेतुत्वाभावे  
च । १६ कपालोत्पत्तौ । १७ मुद्रादिना सह । १८ न घटप्रच्युतौ । १९ आदिना  
जलाहरणादिग्रहणम् । २० मुद्रादिसन्निधानकाले ।

तदभावस्यापि तदैवोपलभ्यमानतयाऽन्यदा चानुपलभ्यमानतया कपालादिवर्त्तकार्यतालुषङ्गात् ।

अथ घट एव मुद्गरादिकं विनाशकारणत्वेन प्रसिद्धमपेक्ष्य समानक्षणान्तरोत्पादनेऽसमर्थे क्षणान्तरमुत्पादयति, तदप्यपेक्ष्य अपरमसमर्थतरम्, तदप्युत्तरमसमर्थतमम्, यावद्घटसन्ततेर्निवृत्तिरित्युच्यते; ननु चात्रापि घटक्षणस्यासमर्थक्षणान्तरोत्पादकत्वेनाभ्युपगतस्य मुद्गरादिना कश्चित्सामर्थ्यविघातो विधीयते वा, न वा ? प्रथमविकल्पे कथमभावस्याहेतुत्वम् ? द्वितीयविकल्पे तु मुद्गरादिसन्निपाते तज्जनकस्वभावाऽव्याहतौ समर्थक्षणान्तरोत्पादप्रसङ्गः, समर्थक्षणान्तरजननस्वभावस्य भौवात्प्राक्तनक्षणवत् । १०

किञ्च, भावोत्पत्तेः प्राग्भावस्याभावनिश्चये तदुत्पादककारणोपादेनं कूर्चन्तः प्रतीयन्ते प्रेक्षापूर्वकारिणः तदुत्पत्तौ च निवृत्त्यापाराः, विनाशकहेतुव्यापारानन्तरं च शैलमित्रध्वंसे सुखदुःखमाजोऽर्जुभूयन्ते । न चानयोः सद्भावः सुखदुःखहेतुः, ततस्तद्व्यतिरिक्तोऽभावस्तद्धेतुर्म्युपगन्तव्यः । १५

किञ्च, अभावस्यार्थान्तरत्वानभ्युपगमे किं घट एव प्रध्वंसोऽभिधीयते, कपालानि, तदपरं पदार्थान्तरं वा ? प्रथमपक्षे घटस्वरूपेऽपरं नामान्तरं कृतम् । तत्स्वरूपस्य त्वविचलितत्वाभित्यत्वेऽनुपद्रवः । अथैकक्षणस्यापि घटस्वरूपं प्रध्वंसः, न, एकक्षणस्यापि तदा तद्रूपस्याद्याप्यप्रसिद्धेः । द्वितीयपक्षेपि प्राक्कपालोऽप्युत्पत्तेः घटस्यावस्थितेः कालान्तरावस्थायितैर्वाप्य, न क्षणिकता ।

किञ्च, कपालकाले 'सः, न' इति शब्दयोः किं भिन्नार्थत्वम्, अभिन्नार्थत्वं वा ? भिन्नार्थत्वे कथं न नञ्शब्दवाच्यः पदार्थान्तरमभावः ? अभिन्नार्थत्वे तु प्रागपि नञ्प्रयोगेऽप्रसक्तिः । न चानुपलब्धौ सति नञ्प्रयोगे इत्यभिधातव्यम्, व्यवधानाद्यभावे २५

१ घटाभावः कार्य भवति मुद्गराद्यन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् । २ सहायमात्रम् । ३ घटस्य घट एव । ४ घटभङ्गक्षणम् । ५ मुद्गरादिकं कर्मत्वेन । ६ भवदुष्कर्मम् । ७ घटस्य । ८ मुद्गरादिकारणवन्वत्त्वात् । ९ समानक्षणान्तरोत्पादने । १० घटस्य । ११ उत्पादात् । १२ सुखकादि । १३ स्त्रीकरणम् । १४ कलत्रिपुरुषस्य घटं दृष्ट्वा केनो जायते कस्यचित्पु द्वेनो जायते इति जगत्प्रत्ययश्रुत्वाद्घट एव शब्दमित्ररूपः, तस्य प्रध्वंसे । १५ अनेन वाक्येन सहेतुको विनाशोस्तीति दर्शितम् । १६ स मुद्गरादिर्हेतुर्व्यस्य सः । १७ घटादिकमित्यर्थः । १८ प्रध्वंस इति । १९ गगनादिवत् । २० घटतरकाद्यम् । २१ नायत् कपालानि । २२ घटे सत्यपि घटो नास्तीति । २३ घटस्य । २४ कर्तव्यः । २५ देसकलादिना ।



स्वरूपादप्रच्युतार्थस्योनुपलम्भानुपपत्तेः । स्वरूपात्प्रच्युतौ वा कथं न कपालकाले मुद्गरादिहेतुकं भावान्तरं प्रच्युतिर्भवेत् ?

अथ घटकपालव्यतिरिक्तं भावान्तरं घटप्रध्वंसः, नन्वत्रापि तेन सह घटस्य युगपदवस्थानाविरोधात् कथं तत्तत्प्रध्वंसः ? अन्य-  
५ थोत्पत्तिकालेपि तत्प्रध्वंसप्रसङ्गाद्घटस्योत्पत्तिरेव न स्यात् ।

अन्यानपेक्षतया चाग्नेरुष्णत्ववत्स्वभावतोऽभावस्य भावे स्थिते-  
रपि स्वभावतो भावः किञ्च स्यात् ? शक्यते हि तत्राप्येवं वक्तुं  
कालान्तरस्थायी स्वहेतोरेवोत्पन्नो भावो न तद्भावे भावान्तर-  
मपेक्षते अग्निरिवोष्णत्वे । मित्राभिन्नविकल्पस्य चाभाववत्  
१० स्थितावपि समानत्वात् तत्राप्यन्यानपेक्षया निर्हेतुकत्वानुषङ्गः ।  
तथाहि—न वस्तुनो व्यतिरिक्ता स्थितिस्तद्हेतुना क्रियते, तस्या-  
ऽस्थास्युत्पत्तेः । स्थितिसम्बन्धात्स्थास्युता, इत्यप्ययुक्तम्, स्थिति-  
तद्गतोर्व्यतिरेकपक्षाभ्युपगमे तावत्तादात्म्यसम्बन्धोऽसङ्गतः ।  
कार्यकारणभावोप्यनयोः सहभावादयुक्तः । असहभावे वा स्थितेः  
१५ पूर्वं तत्कारणस्यास्थितिप्रसङ्गः । स्थितेरपि स्वकारणादुत्तरकाल-  
मनाश्रयतानुषङ्गः । अव्यतिरिक्तस्थितिकरणे च हेतुवैयर्थ्यम् । ततः  
स्थितिस्वभावनियतार्थसिद्धावं प्रत्यन्यानपेक्षत्वादिति स्थितम् ।

अहेतुकविनाशाभ्युपगमे च उत्पादस्याप्यऽहेतुकत्वानुषङ्गो  
८ विनाशहेतुपक्षनिक्षिप्तविकल्पानामत्राप्यविशेषात्, तथा हि—  
२० उत्पादहेतुः स्वभावत एवोत्पितुं भावमुत्पादयति, अनुत्पितुं  
वा ? आद्यविकल्पे तद्हेतुवैयर्थ्यम् । द्वितीयविकल्पेपि अनुत्पि-  
त्सोरुत्पादे गगनाम्भोजादेरुत्पादप्रसङ्गः । स्वहेतुसन्निधेरेवोत्पि-  
त्सोरुत्पादाभ्युपगमे विनाशहेतुसन्निधानाद्धिनश्वरस्य विनाशो-  
प्यभ्युपगमनीयो न्यायस्य समानत्वात् ।

१ पृथुष्टोदरादेः । २ घटलक्षणस्य । ३ घटात् । ४ चतुर्थविकल्पः । ५ पदार्थो-  
न्तरस्य सदैव संज्ञावात् । ६ मित्राभिन्नविकल्पाभ्यां यथाऽभावः कारणान्तरनिरपेक्षं  
(वौद्धमते) स्यात् ताभ्यां स्थितिरपि कारणनिरपेक्षे (चैतन्यमते) ति भावः । ७ घट-  
पटयोरिव । ८ सन्वेतरगोविषाणवत् । ९ घटस्य । १० स्वकारणस्य क्षणमङ्गुरत्वेन  
नष्टत्वादिति भावः । ११ घटात् । १२ अव्यतिरिक्तस्थितिकरणे च स्थितिमद्वस्त्वेव  
कृतं स्यात्, तस्य च स्वहेतुनैव कृतत्वात्स्थितेर्हेतुना कारणमनुपपन्नमित्यस्य  
वैयर्थ्यम् । १३ स्थितान्यानपेक्षतया निर्हेतुकत्वं सिद्धं यतः । १४ स्थितिस्वभावस्य ।  
१५ मित्राऽभिन्नवक्ष्यमाणनाम् । १६ स्वभावत एव भावस्योत्पत्तिसम्भवात् ।  
१७ कारणेन ।

ततः कार्यकारणयोरुत्पादविनाशौ न सहेतुकाऽहेतुकौ कार-  
णानन्तरं सहभावाद्वृत्तादिवत् । न चानयोः सहभावोऽसिद्धः,  
“नाशोत्पादौ समं यद्वन्नामोन्नामौ तुलान्तयोः ॥” [ ]

इत्यभिधानात् । न चाहेतुकेन पर्यायसहभाविना द्रव्येणाने-  
कान्तः, ‘कारणानन्तरम्’ इति विशेषणात् । न चैवमसिद्धत्वम्, ५  
मुद्गरादिव्यापारानन्तरं कार्योत्पादवत्कारणविनाशस्यापि प्रतीतिः,  
‘विनष्टो घटः, उत्पन्नानि कपालानि’ इति व्यवहारद्वयदर्शनात् ।  
न च साध्यविकलमुदाहरणम्; न हि कारणभूतो रूपादिकलापः  
कार्यभूतस्य रूपस्यैव हेतुर्न तु रसादेरिति प्रतीतिः । नाप्यसह-  
भावो रूपादीनां येन साधनविकलं स्यात् । तन्नोक्तहेतोरर्थानां १०  
क्षणक्षयावसायः ।

नापि सत्त्वात्, प्रतिबन्धासिद्धेः । न च विद्युदादौ सत्त्वक्षणि-  
कत्वयोः प्रत्यक्षत एव प्रतिबन्धसिद्धेर्घटादौ सत्त्वमुपलभ्यमानं  
क्षणिकत्वं गमयति इत्यभिधातव्यम्; तत्राप्यनयोः प्रतिबन्धा-  
सिद्धेः । विद्युदादौ हि मध्ये स्थितिदर्शनं पूर्वोत्तरपरिणामौ प्रसा- १५  
द्यति । न हि विद्युदादेरनुपादानोत्पत्तिर्युक्तिमती; प्रथमचैतन्य-  
स्याप्यनुपादानोत्पत्तिप्रसङ्गतः परलोकाभावानुपङ्गात्, विद्युदा-  
दिवत्तत्रापि प्रागुपादानाऽदर्शनात् । न चानुमीर्यमानमत्रोपा-  
दानम् । विद्युदादावपि तथात्वानुपङ्गात् ।

नान्यस्य निरन्वया सन्तानोच्छिन्नसिद्धेः, चरमक्षणस्याकिञ्चित्क- २०  
स्त्वेनावस्तुत्वापत्तिः पूर्वपूर्वक्षणानामप्यवस्तुत्वापत्तेः सकल-  
सन्तानाभावप्रसङ्गः । विद्युदादेः सजातीयकार्याकरणेपि योगि-  
नस्य करणान्नावस्तुत्वमिति चेत्; न; आस्ताद्यमानरससमान-  
कालरूपोपादानस्य रूपाकरणेपि रससद्वकारित्वप्रसङ्गात् । ततो

१ ययोः सहभावस्तयोः सहेतुकासहेतुकत्वभावेन न जननमिति । २ रूप-  
रसादीनां यथा । ३ उपादानरूपः । ४ सहकारिकक्षणः । ५ इत्युदाहरणम् ।  
६ उदाहरणम् । ७ तत्सहभावेन सत्त्वान्वापेक्षत्वादिति । ८ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे  
सत्याह । ९ प्रथमचैतन्यं जन्मान्तरचैतन्यपूर्वकं विद्विषत्त्वान्वाप्यविद्विषत्तनदिति ।  
१० विद्युदुत्तरपरिणामाविनामाविनी न भविष्यतीत्युक्ते आह । ११ उत्तराकारपरि-  
णमनविषये । १२ अकिञ्चित्करत्वाविशेषात् । १३ अन्तर्निचक्षणस्वार्थकियाशून्य-  
त्वेनासत्त्वप्रसङ्गात् तस्यासत्त्वे ‘तत्पूर्वक्षणस्याप्यर्थकियारहितत्वेनासत्त्वम्’, तत एव  
तत्पूर्वक्षणानामप्यसत्त्वेन सर्वशून्यतापत्तिरेव स्यात् । १४ पूर्वोत्तरक्षणानां समूहः  
सन्तानः, तन्मध्ये एकैकक्षणः सन्तानी । १५ विनासीयत्वं । १६ पूर्वरूपम् ।  
१७ उत्तररूपाकरणे ।

रसाद्रूपानुमानं न स्यात् । 'तथा दृष्टत्वाज्ञ दोषः' इत्यन्यत्रापि समानम्, विद्युच्छब्दादेरपि विद्युच्छब्दाद्यन्तरोपलम्भात् ।

न चैकत्र सत्त्वक्षणिकत्वयोः सहभावोपलम्भात्सर्वत्र ततस्तदनुमानं युक्तम्; अन्यथा सुवर्णे सत्त्वादेव शुक्लतानुमितिप्रसङ्गः, ५ शुक्ले शङ्खे शुक्लतया तत्सहभावोपलम्भात् । अथ सुवर्णाकारनिर्भासिप्रत्यक्षेण शुक्लतानुमानस्य बाधितत्वाच्च तत्र शुक्लतासिद्धिः; तर्हि घटादौ क्षणिकतानुमानस्य 'स एवायम्' इत्येकत्वप्रतिभासेन बाधितत्वात्प्रतिक्षणविनाशितासिद्धिर्न स्यात् ।

अथैकत्वप्रत्यभिज्ञा भिन्नेष्वपि लूनपुनर्जातनखकेशादिष्वमेद-  
१० मुल्लिखन्ती प्रतीयत इत्येकत्वे नाऽसौ प्रमाणम्; नन्वेवं कामलोपहृताक्षाणां धवलिमामाबिभ्राणेष्वपि पदार्थेषु पीताकारनिर्भासिप्रत्यक्षमुदेतीति सत्यपीताकारेपि न तत्प्रमाणम् । भ्रान्तादभ्रान्तस्य विशेषोन्यत्रापि समानः । प्रसाधितं च प्रत्यभिज्ञानस्याभ्रान्तत्वं प्रागित्यलमितिप्रसङ्गेन ।

१५ अथ विपक्षे र्वाधकप्रमाणबलात्सत्त्वक्षणिकत्वयोरविनाभावोष-  
गम्यते । ननु तत्र सत्त्वस्य बाधकं प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा स्यात् ?  
न तावत्प्रत्यक्षम्; तत्र क्षणिकत्वस्याप्रतिभासनात् । न चाप्रतिभासमानक्षणक्षयैस्वरूपं प्रत्यक्षं विपक्षाद्व्यावर्त्य सत्त्वं क्षणिकत्वनियतमादर्शयितुं समर्थम् । अथानुमानेन तत्ततो व्यावर्त्य क्षणि-  
२० कनियततया साध्येत, ननु तदनुमानेप्यविनाभावस्यानुमानबलात्प्रसिद्धिः, तथा चानवस्था । न च तद्वाधकमनुमानमस्ति ।

ननु 'यत्र क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधो न तत्सत् यथा गगनाम्भोरुद्धम्, अस्ति च नित्ये सः' इत्यतोनुमानात्ततो व्यावर्तमानं सत्त्वमनित्ये एवावतिष्ठत इत्यवसीयते; तच्च, सत्त्वाऽ-  
२५ क्षणिकत्वयोर्विरोधाऽसिद्धेः । विरोधो हि सहानवस्थानलक्षणः, परस्परपरिहारस्थितिलक्षणो वा स्यात् ? न तावदाद्यः; स हि पदार्थस्य पूर्वमुपलम्भे पश्चात्पदार्थान्तरसङ्गात्वाद्भाववगतौ निश्चीयते शीतोष्णवत् । न च नित्यत्वस्योपलम्भोस्ति सत्त्वप्रसङ्गात् । नापि द्वितीयो विरोधस्तथोः सम्भवति; नित्यत्वपरि-  
३० हारेण सत्त्वस्य तत्परिहारेण वा नित्यत्वस्यानवस्थानात् ।

१ अस्त्वत्र भातुल्लिखे रूपं रसादिति । २ उपादानकारणाद्रूपत्वं सत्तावीयरूपकरणप्रकारेण । ३ सुवीयपरिच्छेदे । ४ प्रत्यभिज्ञानस्याभ्रान्तत्वसमर्थनेन । ५ अक्षणिकत्वे । ६ सत्त्वस्य । ७ वसः । ८ सत्त्वं क्षणिकत्वनियतं तदन्वयव्यतिरेकानुविधानादिति । ९ नित्यं सन्न भवति क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात् । १० तमः प्रकाशयोरिव वा ।

‘क्षणिकतापरिहारेण ह्यक्षणिकता व्यवस्थिता तत्परिहारेण च क्षणिकता’ इत्यनयोः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणो विरोधः । न चार्थक्रियालक्षणसत्त्वस्य क्षणिकतया व्याप्तत्वान्नित्येन विरोधः, अन्योन्याश्रयानुषङ्गात्—अर्थक्रियालक्षणं सत्त्वं क्षणिकतया व्याप्तं नित्यताविरोधात्सिध्यति, सोप्यस्य क्षणिकतया व्याप्तेरिति । ५

ननु च अर्थक्रियायाः क्रमयौगपद्याभ्यां व्याप्तत्वात्तयोश्चाक्ष-  
णिकेऽसम्भवात्कृतः क्रमवत्यऽर्थक्रिया नित्ये सम्भविनी ? न च  
सहकारिक्रमान्नित्ये क्रमवत्यप्यसौ सम्भवति, अस्योपकारकानु-  
पकारकपक्षयोः सहकार्यऽपेक्षाया एवासम्भवात् । नापि यौगपद्ये-  
नासौ नित्ये सम्भवति, पूर्वोत्तरकार्ययोरेकक्षण एवोत्पत्तेर्द्वितीय- १०  
क्षणे तस्यानर्थक्रियाकारित्वेनावस्तुत्वप्रसङ्गात्, इत्यप्यसारम्,  
एकान्तनित्यवदऽनित्येपि क्रमाक्रममाभ्यामर्थक्रियाऽसम्भवात्,  
तस्याः कैथञ्चित्त्रित्ये एव सम्भवात्, तत्र क्रमाक्रमवृत्त्यनेकस्वभाव-  
त्वप्रसिद्धेः, अन्यत्र तु तत्त्वभावत्वाप्रसिद्धेः पूर्वापरस्वभावत्यागो-  
पादानान्वितरूपभावात्, सकृदनेकशक्त्यात्मकत्वाभावाच्च । न १५  
अतु कूटस्थेयं पूर्वोत्तरस्वभावत्यागोपादाने स्तः, क्षणिके चान्वितं  
रूपमस्ति, यतः क्रमः कालकृतो देशकृतो वा । नापि युगपदनेक-  
स्वभावत्वं यतो यौगपद्यं स्यात्, कौटस्थ्यविरोधाभिरन्वयविना-  
शित्वव्याघाताच्च ।

किञ्च, क्षणिकं वस्तु विनष्टं सत्कार्यमुत्पादयति, अविनष्टम्, २०  
उभयरूपम्, अनुभयरूपं वा ? न तावद्विनष्टम्, चिरतरनष्टत्वेवा-  
नन्तरनष्टस्याप्यसत्त्वेन जनकत्वविरोधात् । नाप्यविनष्टम्, क्षण-  
भङ्गमङ्गप्रसङ्गात् सकलशून्यतानुषङ्गाद्वा, सकलकार्याणामेकदैवो-  
त्पद्य विनाशात् । नाप्युभयरूपम्, निरंशैकस्वभावस्य विरुद्धोभय-  
रूपासम्भवात् । नाप्यनुभयरूपम्, अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणामेक- २५  
निषेधस्यापरविधाननान्तरीयकत्वेनानुभयरूपत्वायोगात् ।

कथं च निरन्वयनाशित्वे कारणस्योपादानसहकारित्वस्य  
व्यवस्था तत्स्वरूपापरिज्ञानात् ? उपादानकारणस्य हि स्वरूपं किं

१ न तु सत्त्वाक्षणिकत्वयोः । २ प्रथममेदे बाधबाधकभावेन विरोधः । द्वितीय-  
मेदे तु स्वभावेनैव—यत्र क्षणिकत्वं तत्र न सत्त्वमिति विरोधः । ३ द्रव्यत्वेन ।  
४ सर्वथा क्षणिके । ५ अवस्थितस्य पदार्थसैकस्य हि नानादेशकालकालाव्यापित्वं  
देशक्रमः कालक्रमश्च । ६ नित्यक्षणिकान्यां कृतानां कार्याणाम् । ७ एकानेकात्मक-  
त्वप्रसङ्गेः । ८ क्षणिकत्व । ९ युगपदनेकस्वभावत्ववत् क्रमेणापि तथा प्राप्तेः ।  
१० द्वितीयक्षणे कार्याजनकत्वात् । ११ अविनाशित्वेन । १२ एकं कार्यं प्रत्युपादा-  
नत्वमपरं प्रति सहकारित्वमिति । १३ जैनो बौद्धे प्रति वक्ति । १४ बौद्धमते ।

स्वसन्ततिनिवृत्तौ कार्यजनकत्वम्, यथा मृत्पिण्डः स्वयं निवर्तमानो घटमुत्पादयति, आहोस्विदनेकंसादुत्पद्यमाने कार्ये स्वगतविशेषाधायकत्वम्, समनन्तरप्रत्ययत्वमात्रं वा स्यात्, नियमवन्वयव्यतिरेकानुविधानं वा ? प्रथमपक्षे कथञ्चित्सन्ताननिवृत्तिः, सर्वथा वा ? कथञ्चित्चेत्, परमतप्रसङ्गः । सर्वथा चेत्, परलोकाभावानुषङ्गो ज्ञानसन्तानस्य सर्वथा निवृत्तेः ।

द्वितीयपक्षेपि किं स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वम्, सकलविशेषाधायकत्वं वा ? तत्राद्यविकल्पे सर्वज्ञज्ञाने सौकारार्पकस्यासदादिज्ञानस्य तत्प्रत्युपादानभावः, तथा च सन्तानसङ्करः ।  
 १० रूपस्य वा रूपज्ञानं प्रत्युपादानभावोनुपज्येत स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वाविशेषात् । रूपोपादानत्वे च परलोकाय दत्तो जलालिः । कतिपयविशेषाधायकत्वेनोपादानत्वे च एकस्यैव ज्ञानीदिक्षणस्यानुवृत्तव्यावृत्ताऽनेकविधैर्धर्माध्यासप्रसङ्गात् स एव परमतप्रसङ्गः । द्वितीयविकल्पे तु कथं निर्विकल्पकाद्विकल्पो-  
 १५ त्यप्तिः रूपाकारात्समनन्तरप्रत्ययाद्रसाकारप्रत्ययोत्पत्तिर्वा, स्वगतसकलविशेषाधायकत्वाभावात् ? सन्तानवहुत्वोपाभावात्सर्वस्य सहस्रशदेवोत्पत्तिरित्यभ्युपगमे तु एकस्मिन्नपि पुरुषे प्रमादवहुत्वोत्पत्तिः । तथा च गवाश्वादिदर्शनयोर्भिन्नसन्तानत्वादेकैर्दृष्टेयै परैरानुसन्तानैर्न न स्यादेवदत्तेन दृष्टे यद्वदत्तवत् ।

१ (ज्ञानं प्रति) इन्द्रियाणीलोकादिकारणकलापात् । (वर्तं प्रति) बुद्धादिकारणकलापात् । २ ज्ञानलक्षणे घटादौ वा । ३ पर्यायरूपेण । ४ द्रव्यरूपेणापि । ५ तथैव ज्ञानानामपीष्टत्वात् । ६ एकनन्मनि वर्तमानस्य, उत्तरोत्तराणसन्तानश्रुत्यामेति वचनात् । ७ किञ्चित्तत्त्वं वर्जयित्वाऽन्यान् चेतनत्वाद्विज्ञानगतविशेषान् समर्पयतीति भावः । ८ सहकारिकारणभूतस्य । ९ असदादिज्ञानं यदा सर्वज्ञो विषयीकरोति तदा तत्साकार कतिपयं समर्पयति यतः । १० सहकारिकारणभूतस्य । ११ कार्यभूतस्य । १२ कतिपयविशेषाः—रूपगतजडत्वं वर्जयित्वा स्वगतमेतदीतथाकारविशेषाः । १३ रूपज्ञानस्य । १४ अनेतेनरूपादुपादानाच्चैतन्योत्पत्तिर्यतः । १५ रूपं रूपज्ञाने रूपं समर्पयति न तु जडत्वम् । १६ आदिना अर्थादि । १७ अपितानपि तादिविशेषधेयस्याऽनुवृत्तव्यावृत्तरूप । १८ अनेकान्तात्मकत्वान् ज्ञानस्य । १९ उत्तरनिर्विकल्पकज्ञानस्योपादानात्सविकल्पकस्य सहकारिकारणात् । २० रूपज्ञानादुत्तररूपज्ञानस्योपादानादुत्तररसज्ञानस्य सहकारिकारणात् । २१ पञ्चसिन्धुरूपे । २२ निर्विकल्पकस्य निर्विकल्पकमुपादानं सविकल्पकस्य सविकल्पकमुपादानमिति भावः । २३ ज्ञानसन्तानस्य बहुत्वात् । २४ गोदर्शनेन । २५ अश्वादिदर्शनस्य । २६ य एवाहं पूर्वं गामद्राक्षं स मनाहमिदानीमहं पश्यामीति क्रमेण, शुगपदश्वगवौ पश्यामीलक्रमेण च ।

किञ्च, सकलखगतविशेषाधीयकत्वे सर्वात्मनोपादेयक्षणे एवास्योपयोगात् तत्रानुपयुक्तस्वभावान्तराभावाच्च एकसामर्थ्य-  
न्तर्गतं प्रति सङ्कारित्वाभावः, तत्कथं रूपादेः रसतो गतिः? स्वभावान्तरोपगमे त्रैलोक्यान्तर्गतान्यजन्यकार्यान्तरापेक्षया तस्या-  
जनकत्वमपि स्वभावान्तरमभ्युपगन्तव्यम्, इत्यायातमेकस्यैवो-  
पादानसङ्कार्यजनकत्वाद्यनेकविरुद्धधर्माध्यासितत्वम् । न चैते  
धर्माः काल्पनिकाः, तत्कार्याणामपि तथात्वप्रसङ्गात् ।

समनन्तरप्रत्ययत्वमप्युपादानलक्षणमनुपपन्नम्, कार्ये समत्वं  
कारणस्य सर्वात्मना, एकदेशेन वा? सर्वात्मना चेत्, यथा  
कारणस्य प्राग्भावित्वं तथा कार्यस्यापि स्यात्, तथा च सवेतर-  
गोविषाणवदेककालत्वात्तयोः कार्यकारणभावो न स्यात् । तथा  
कारणमिमतस्यापि स्वकारणकालेता, तस्यापि सेति सकलशून्यं  
जगदापद्येत । कथञ्चित्समत्वे योगिज्ञानस्याप्यसदादिज्ञानाव-  
लम्बनस्य तदाकारत्वेनैकसन्तानत्वप्रसङ्गः स्यात् ।

अनन्तरत्वं च देशकृतम्, कालकृतं वा स्यात्? न तावदेशकृतं १५  
तत्तत्रोपयोगि, व्यवहितदेशस्यापि इह जन्ममरणचित्तस्य भावि-  
जन्मचित्तोपादानत्वोपेक्षमात् । नापि कालानन्तर्यं तत्, व्यवहित-  
कालस्यापि जाग्रच्चित्तस्य प्रबुद्धचित्तोत्पत्ताधुपादानत्वाभ्युपग-  
मात् । अव्यवधानेन त्रैलोक्याभावमात्रमनन्तरत्वम्, इत्यप्ययुक्तम्;  
क्षणिकैकान्तवादिनां विवक्षितक्षणानन्तरं निखिलजगत्क्षणाना-  
मुत्पत्तेः सर्वेषामेकसन्तानत्वप्रसङ्गात् । २०

निर्यमवदन्व्यतिरेकानुविधानं तल्लक्षणम्, इत्यप्यसमीची-  
नम्, बुद्धेतरचित्तानामप्युपादानोपादेयभावानुपपन्नात्, तेषामव्य-  
तिरेकेण कार्यकारणभूतत्वाविशेषात् । निर्यमवचित्तोत्पादात्पूर्वे

१ खगतसकलविशेषाधीयकत्वे दूषणान्तरमाह । २ कार्यजन्ये । ३ रूपाधुपादा-  
नस्य । ४ पूर्वरूपरसो एकसामर्थी । ५ उत्तररसः । ६ पूर्वरूपस्य । ७ ज्ञानस्य ।  
८ रूपाधुपादानस्य । ९ आदिपदेन पूर्वकालभावित्वमुत्तरकालनाशित्वस्य । १० अव्य-  
थाधीः । ११ तृतीयविकल्पः । १२ प्रलयः—कारणस्य । १३ समकालत्वमित्यर्थः ।  
१४ सर्वात्मना समानत्वात् । १५ पूर्वरूपक्षणे कार्ये पूर्वतरूपक्षणस्य कारणभूतस्य  
समत्वम् । १६ कार्यकारणबोरव्यापात् । १७ शातत्वेन । १८ बहुव्रीहिः ।  
१९ कथञ्चित्समत्वेन सङ्गात्वात् । २० क्षीणत्वेन । २१ निद्रावासः । २२ अन्येन  
वस्तुना तिरोधायकेन । २३ पूर्वरूपस्य कारणस्य । २४ चेतनाऽचेतनानां कार्या-  
णाम् । २५ चतुर्थविकल्पः । २६ खगत । २७ किञ्चिन्त । २८ चित्तं ज्ञानम् ।  
२९ असदादिज्ञानसङ्गात्वे खगतस्मासदादिज्ञानविवक्षानोत्पत्तिस्तदभावे नोत्पत्ति-  
रित्यन्वयव्यतिरेकान्याह । ३० आक्षेपवहितचित्तम् ।

बुद्धचित्तं प्रति सन्तानान्तरचित्तस्याकारणत्वान्न तेषामव्यभि-  
चारी कार्यकारणभावः इति चेत्; यैतः प्रभृति तेषां कार्यकारण-  
भावस्तत्प्रभृतितस्तस्याव्यभिचारात्, अन्यथाऽस्याऽसर्वज्ञत्वं  
स्यात् । “नाकारणं विषयः” [ ] इत्यभ्युपगमात् ।

५ अव्यभिचारेण कार्यकारणभूतत्वाविशेषेपि प्रत्यासत्तिविशेष-  
वशात्केषांश्चिदेवोपादानोपादेयभावो न सर्वेषामिति चेत्; स  
कोन्योन्यत्रैकैव्यवतादात्म्यात् ? देशप्रत्यासत्तेः रूपरसादिभिर्वाता-  
तपादिभिर्वा व्यभिचारात् । कालप्रत्यासत्तेः एकसमयवर्तिभि-  
रशेषार्थैरनेकान्तात् । भावप्रत्यासत्तेश्च एकार्थोद्भूतानेकपुरुष-  
१० विज्ञानैरनेकान्तात् ।

न चान्रान्वयव्यतिरेकानुविधानं घटते । न खलु समर्थे  
कारणे सत्यमवैतः सैयमेव पश्चाद्भवतस्तदन्वयव्यतिरेकानु-  
विधानं नाम नित्यवत् । ‘स्वदेशवत्स्वकाले सति समर्थे  
कारणे कार्यं जायते नासति’ इत्येतावता क्षणिकपक्षेऽन्वयव्यति-  
१५ रेकानुविधाने नित्येपि तत्स्यात्, स्वकालेऽनाद्यनन्ते सति समर्थे  
नित्ये सैसमये कार्यस्योत्पत्तेरसत्यऽनुत्पत्तेश्च प्रतीयमानत्वात् ।  
सर्वदा नित्ये समर्थे सति स्वकाले एव कार्यं भवत्कथं तदन्वय-  
व्यतिरेकानुविधायीति चेत् ? तर्हि कारणक्षणात्पूर्वं पश्चाच्छाना-  
द्यनन्ते तदभावेऽविशिष्टे कचिदेव तदभावसमये भवत्कार्यं कथं  
२० तदनुविधायीति समानम् ?

-नित्यस्य प्रतिक्षणमनेककार्यकारित्वे क्रमशोनेकस्वभावत्वसिद्धेः  
कथमेकत्वं स्यादिति चेत् ? क्षणिकस्य कथमिति समः पर्यनु-  
योगः ? सै हि क्षणस्थितिरेकोपि भावोऽनेकस्वभावो विचित्र-  
कार्यत्वान्नानार्थक्षणवत् । न हि कारणशक्तिभेदमन्तरेण कार्य-  
२५ नानात्वं युक्तं रूपादिज्ञानवत् । यथैव हि कर्कटिकादौ रूपादि-  
ज्ञानानि रूपादिस्वभावभेदनिबन्धनानि तथा क्षणस्थितेरेकसा-

१ साक्षवत् । २ निराक्षवचित्तोत्पत्तेः । ३ यदेव घटस्तदेव दृष्टिगृह्य इति ।  
४ बुद्धस्य । ५ यत्सुगतज्ञानोत्पत्तौ कारणं तदेव विषयः । ६ सुगतनिर्णानां  
परस्परम् । ७ अत्रालौकिकप्रवृत्त्यम् । ८ प्रत्यासत्तिरैक्यम् यत्र यत्र देशप्रत्या-  
सत्तिस्तत्र तत्रोपादानोपादेयभाव इत्युच्यमाने । ९ भावः=स्वरूपम् । १० क्षणिके ।  
११ पूर्वक्षणे आग्रदृशान्विते । १२ उत्तरक्षणस्य प्रबुद्धचित्तस्य । १३ कारणं  
विना । १४ सौगतेनाङ्गीक्रियमाणे । १५ कारणे । १६ अभ्यापकत्वेनाभिमतम् ।  
१७ क्षणिकस्यानेकस्वभावत्व नास्त्यतः कथं समः पर्यनुयोग इत्याह । १८ विचित्र-  
कार्यत्वमस्तु न त्वनेकस्वभावत्वमिति सन्दिग्धानैकान्वितकाले सतीदम् ।

एतदीपादिकृणाद् वर्तिकादाहृतैलशोषादिविचित्रकार्याणि शक्ति-  
मेदनिमित्तकानि व्यवतिष्ठन्ते, अन्यथा रूपादेरपि नानात्वं न  
स्यात् ।

ननु च शक्तिर्मतोऽर्थान्तरानर्थान्तरपक्षयोः शक्तीनामवट-  
नात्तासां परमार्थसत्त्वाभावः, तर्हि रूपादीनामपि प्रतीतिसि-  
द्धद्रव्यादर्थान्तरानर्थान्तरविकल्पयोरसम्भवात्परमार्थसत्त्वाभावः  
स्यात् । प्रत्यक्षबुद्धौ प्रतिभासमानत्वादूपादयः परमार्थसन्तो न  
पुनस्तच्छक्यस्तासामनुमानबुद्धौ प्रतिभासमानत्वात्, इत्यप्य-  
शुक्लम्, क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्त्यादीनामपरमार्थसत्त्वप्रसङ्गात् ।  
ततो यथा क्षणिकस्य युगपदनेककार्यकारित्वेप्येकत्वाविरोधः, १०  
तथाऽक्षणिकस्य क्रमशोनेककार्यकारित्वेपीत्यनवद्यम् ।

यथार्थक्रियालक्षणं सत्त्वमित्युक्तम्, तत्र लक्षणशब्दः कार-  
णार्थः, स्वरूपार्थः, ज्ञापकार्यो वा स्यात् ? प्रथमपक्षे किमर्थक्रियां  
लक्षणं कारणं सत्त्वस्य, तद्वार्थक्रियायाः ? तत्रार्थक्रियातः सत्त्व-  
स्योत्पत्तौ प्राक् पदार्थानां सत्त्वमन्तरेणाप्यस्याः प्रादुर्भावादि- १५  
हेतुकत्वं निराधारकत्वं धातुष्येत । अथ सत्त्वादर्थक्रियोत्पद्यते,  
तद्वार्थक्रियातः प्रागपि सत्त्वसिद्धेर्भावानां स्वरूपसत्त्वमायातम् ।

अथ स्वरूपार्थोसौ, तत्रापि तद्धेतोरसत्त्वप्रसङ्गः, न ह्यर्थक्रिया-  
काले तद्धेतुर्विद्यते । न चान्यकालस्यास्यान्यकाला सा स्वरूपम-  
तिप्रसङ्गात् ।

२०

नापि ज्ञापकार्योसौ, अर्थक्रियाकालेर्यस्यासत्त्वादेव । असत्त-  
त्वाद्याऽतः कथं सत्ताद्वसित्तिप्रसङ्गात् ? न चार्थक्रियोर्देया-  
त्प्राक् कारणमासीदिति व्यवस्थापयितुं शक्यम् । यतो यदि  
स्वरूपेण पूर्वं हेतुर्भवगतो भवेत्तदनन्तरं चार्थक्रिया, तद्वार्थक्रिया  
प्रतिपन्नसम्बन्धोर्पलम्ब्यमाना प्राग्हेतुसत्तां व्यवस्थापयतीति २५

१ आदिना स्वपरप्रकाशनादिग्रहणम् । २ अर्थात्सकाशात् । ३ भिन्नाक्षेपसेति  
सम्बन्धाभावः । सम्बन्धसिद्धिर्गुणप्रकारकत्वेऽनवस्था । अभिन्नाक्षेपलक्षणं एव  
शक्तिमन्त एव वा स्युः । ४ तस्य प्रदीपस्य । ५ साधनं विचार्यते । ६ लक्ष्यतो  
अन्यतो कार्यमनेनेति लक्षणं कारणमिलम्बः—अनेकार्थत्वाद्वातुलात् । ७ सत्त्वस्य ।  
८ सत्त्वस्य । ९ द्वयोः पक्षयोर्मध्ये । १० कारणभूतात् । ११ सर्वथा क्षणिकत्वात् ।  
१२ न हि स्वरूपस्वरूपयोः कालमेदो यतः । १३ गगनजलमादेरपि ज्ञापकत्व-  
प्रसङ्गात् । १४ अर्थक्रिया—ज्ञानपानादिः । १५ अनादिलक्षणः अर्थक्रियायाः ।  
१६ कारणेन सह ।



स्यात् । न चार्थक्रियामन्तरेण हेतुः स्वरूपेण कदाचिदप्युपलब्ध-  
पैरैः स्वरूपसत्त्वप्रसङ्गात् ।

अर्थक्रियायाश्चापरार्थक्रिया यदि सत्त्वव्यवस्थापिका; तदान-  
वस्था । न चार्थक्रियाऽनधिगतसत्त्वस्वरूपापि हेतुसत्त्वव्यवस्था-  
पिका; अश्वविषाणादेरपि तत्सत्त्वव्यवस्थापकत्वानुषङ्गात् । न  
च हेतुजन्यत्वादर्थक्रिया सती नार्थक्रियान्तरोदयात्, इत्यभि-  
धातव्यम् । इतरेतराश्रयानुषङ्गात्-हेतुसत्त्वाच्चऽर्थक्रिया सती  
तत्सत्त्वाच्च हेतोः सत्त्वमिति ।

अस्तु चार्थक्रियालक्षणं सत्त्वम् । तथाप्यतोर्थानां क्षणस्थायित-  
१० क्षणिकत्वं साध्येत, क्षणादूर्द्ध्वभावो वा ? प्रथमपक्षे सिद्धसा-  
ध्यता, नित्यस्याप्यर्थस्य क्षणावस्थित्यभ्युपगमात् । कथमन्य-  
थास्य सदावस्थितिः क्षणावस्थितिनिबन्धनत्वात् क्षणान्तराद्यव-  
स्थितेः ? अथ क्षणादूर्द्ध्वभावः साध्यते; तन्न; अभावेन सदास्य  
प्रतिबन्धासिद्धेः । न चाप्रतिबन्धविषयोऽश्वविषाणादिवद-  
१५ नुमेयः । तन्न सत्त्वादप्यर्थानां क्षणिकत्वावगतिः ।

नापि कृतकत्वात्, उक्तप्रकारेण क्षणिके कार्यकारणभाव-  
प्रतिषेधतः कृतकस्याऽसिद्धस्वरूपत्वेन तदवगतिं प्रत्यनङ्गत्वात्  
तैतः प्रतीत्यनुरोधेन स्थिरः स्थूलः साधारणस्वभावश्च भावो-  
भ्युपगन्तव्यः ।

२० ननु चार्थानामयःशलाकाकल्पत्वेनान्योन्यं सम्बन्धाभावतः  
स्थूलादिप्रतीतेर्भ्रान्तत्वात्कथं तद्वशात्सत्त्वभावो भावः स्यात् ?  
तथाहि-सम्बन्धोर्थानां पारतन्त्र्यलक्षणो वा स्यात्, रूपश्लेष-  
लक्षणो वा स्यात् ? प्रथमपक्षे किमसौ निष्पन्नयोः सम्बन्धिनो-  
स्यात्, अनिष्पन्नयोर्वा ? न तावदनिष्पन्नयोः, स्वरूपस्यैवाऽसत्त्वात्  
२५ शशाश्वविषाणवत् । निष्पन्नयोश्च पारतन्त्र्याभावादसम्बन्ध एव ।

उक्तञ्च—

“पारतन्त्र्यं हि सम्बन्धः सिद्धे का परतन्त्रता ।

तस्मात्सर्वस्य भावस्य सम्बन्धो नास्ति तत्त्वतः ॥ १ ॥”

[ सम्बन्धपरी० ]

३० नापि रूपश्लेषलक्षणोसौ; सम्बन्धिनोर्द्वित्वे रूपश्लेषविरो-

१ अर्थक्रियाकारणम् । २ सौगतेः । ३ अनुमानत्रयेण क्षणिकत्वं पदार्थानां न  
सिद्ध्यति यतः । ४ रूपरसगन्धस्पर्शपरमाणूनां सजातीयविजातीयव्यावृत्तानां पर-  
स्परसम्बन्धानाम् । ५ सम्बन्धिनः । ६ सप्तविन्ध्ययोरिव । ७ अन्योन्यसमावा-  
प्रवेशलक्षणः ।

धातुं । तयोरैक्ये वा सुतरां सम्बन्धाभावः, सम्बन्धिनोरभावे सम्बन्धायोगात् द्विष्टत्वात्तस्य । अथ नैरन्तर्यं तयो रूपश्लेषः; न; अस्यान्तरालाभावरूपत्वेनाऽतात्त्विकत्वात् सम्बन्धरूपत्वा-योगः । निरन्तरतायाश्च सम्बन्धरूपत्वे सान्तरतापि कथं सम्बन्धो न स्यात् ? ५

किञ्च, असौ रूपश्लेषः सर्वात्मना, एकदेशेन वा स्यात् ? सर्वात्मना रूपश्लेषे अणूनां पिण्डः अणुमात्रः स्यात् । एकदेशेन तच्छ्लेषे किमेकदेशोस्तस्यात्मभूताः, परभूताः वा ? आत्मभूता-श्चेत्, न एकदेशेन रूपश्लेषस्तदभावात् । परभूताश्चेत्, तैरप्य-णूनां सर्वात्मनैकदेशेन वा रूपश्लेषे स एव पर्यनुयोगोनवस्था १० च स्यात् । तदुक्तम्—

“रूपश्लेषो हि सम्बन्धो द्वित्वे स च कथं भवेत् ।

तस्मात्प्रकृतिभिन्नानां सम्बन्धो नास्ति तत्त्वतः ॥ २ ॥”

[ सम्बन्धपरी० ]

किञ्च, परोपेक्षैव सम्बन्धः, तस्य द्विष्टत्वात् । तं चापेक्षते १५ भावः स्वयं सन्, असन्वा ? न तावदसन्; अपेक्षाधर्माभ्यत्ववि-रोधात् कुर्यादभवत् । नापि सन्, सर्वनिराशंसत्वात्, अन्यथा सत्त्वविरोधात् । तत्र परापेक्षा नाम यद्रूपः सम्बन्धः सिद्ध्येत् । उक्तञ्च—

“परापेक्षा हि सम्बन्धः सोऽसन् कथमपेक्षते ।

सञ्च सर्वनिराशंसो भावः कथमपेक्षते ॥ ३ ॥”

२०

[ सम्बन्धपरी० ]

किञ्च, असौ सम्बन्धः सम्बन्धिभ्यां मिश्रः, अभिन्नो वा ? यद्य-भिन्नः, तदा सम्बन्धिनावेव न सम्बन्धः कश्चित्, स एव वा न ताविति । मिश्रश्चेत्, सम्बन्धिनौ केवलौ कथं सम्बन्धौ (द्वौ) २५ स्याताम् ?

भवतु वा सम्बन्धोर्यान्तरम्; तथापि तेनैकेन सम्बन्धेन सह द्वयोः सम्बन्धिनोः कः सम्बन्धः ? यथा सम्बन्धिनो-र्यथोक्तदोषान्न कश्चित्सम्बन्धस्तथात्रापि । तेनानयोः सम्बन्धा-

१ इति चेदित्युपरितः । २ अन्तरालाभावो नैरन्तर्यमिति । ३ तुच्छमावरूपत्वाद-भावस्य । ४ निरन्तरतावत्पदार्थद्वयापेक्षत्वाविशेषात् । ५ अंशाः । ६ निरक्षत्वादणोः । ७ सम्बन्धिनोः । ८ प्रकृता=स्वभावेन । ९ अणूनाम् । १० सम्बन्धलक्षणः । ११ सर्वेषु निराकाशत्वात् । १२ परमपेक्षते चेत् । १३ परम् । १४ सम्बन्ध-रहितौ । १५ सम्बन्धिभ्याम् ।

न्तराभ्युपगमे चानवस्था स्यात्तत्रापि सम्बन्धान्तरानुषङ्गात् । तच्च सम्बन्धिर्नोः सम्बन्धबुद्धिर्वास्तवी तद्व्यतिरेकेणान्यस्य सम्बन्धस्यासम्भवात् । तदुक्तम्—

“द्वयोरेकामिसम्बन्धात्सम्बन्धो यदि तद्वयोः ।

५ कैः सम्बन्धो नैवस्था च न सम्बन्धमतिस्तथा ॥ ४ ॥

ततः—

तौ च भावौ तदन्यश्च सर्वे ते स्वात्मनि स्थिताः ।

इत्यमिश्राः स्वयं भावास्तान् मिश्रयति कल्पना ॥ ५ ॥”

[ सम्बन्धपरी० ]

३० तौ च भावौ सम्बन्धिनौ ताभ्यामन्यश्च सम्बन्धः सर्वे ते स्वात्मनि स्वस्वरूपे स्थिताः । तेनामिश्रा व्यावृत्तस्वरूपाः स्वयं भावास्तथापि तान्मिश्रयति योजयति कल्पना । अत एव तद्वास्तवसम्बन्धाभावेऽपि तामेव कल्पनामनुबन्धानैर्व्यवहर्तुमिर्भावानां मैदोऽन्यापोहस्तस्य प्रत्यायनाय क्रियाकारकादिवाचिनः शब्दाः प्रयोज्यन्ते—“देवदत्त गामभ्याज शुक्लां वण्डेन” इत्यादयः । न खलु कारकाणां क्रियया सम्बन्धोस्ति; क्षणिकत्वेन क्रियाकाले कारकाणामसम्भवात् । उक्तञ्च—

“तौमेव चानुबन्धानैः क्रियाकारकवाचिनः ।

भावमेवप्रतीत्यर्थं संयोज्यन्तेभिधायकाः ॥ ६ ॥”

[ सम्बन्धपरी० ]

२० कार्यकारणभावस्तर्हि सम्बन्धो भविष्यति; इत्यप्यसमीचीनम्; कार्यकारणयोरसहभावोऽस्तस्यापि द्विष्टस्यासम्भवात् । न खलु कारणकाले कार्यं तत्काले वा कारणमस्ति, तुल्यकालं कार्यकारणभावानुपपत्तेः सव्येतरगोविषाणवत् । तच्च सम्बन्धिनौ २५ सहभाविनौ विद्येते येनानयोर्वर्तमानोसौ सम्बन्धः स्यात् । अद्विष्टे च मैवे सम्बन्धतानुपपत्तैव ।

कार्ये कारणे वा क्रमेणासौ सम्बन्धो वर्तते; इत्यप्यसम्मतम्; यतः क्रमेणापि भावः सम्बन्धाख्य एकत्र कारणे कार्ये

१ स च सम्बन्धिनौ च । २ सम्बन्धसम्बन्धिनोः । ३ अन्यथेति शेषः । ४ सम्बन्धः । ५ वासनारूपा कर्मा । ६ अवास्तवी । ७ कल्पनैव मिश्रयति यतः । ८ स्थिरस्थूलसाधारणाकाररूपः । ९ जगोभ्यावृत्तिर्गोः, अवदन्त्यावृत्तिर्वद इत्यादि । १० कल्पनामवास्तवी बुद्धिश्च । ११ सामान्यसम्बन्धं संदूष्य सम्बन्धविशेषं दूषयन्नाह । १२ क्षणिकत्वात् । १३ कार्यकारणलक्षणी । १४ कार्यकारणलक्षणे ।

वा वर्तमानोऽन्यनिस्पृहः=कार्यकारणयोरन्यतरानपेक्षो - नैकवृ-  
त्तिमान् सम्बन्धो युक्तः, तदभावेपि=कार्यकारणयोरभावेपि  
तद्भावात् । यदि पुनः कार्यकारणयोरेकं कार्यं कारणं वापेक्ष्या-  
न्यत्र कार्ये कारणे चासौ सम्बन्धः क्रमेण वर्तत इति सस्पृह-  
त्वेन द्विष्ट एवेष्यते; तदानेनापेक्ष्यमाणेनोपकारिणा भवितव्यं ५  
यस्मादुपकार्योपेक्ष्यः स्यान्नान्यः । कथं चोपकरोत्यऽसन् ? यदा  
कारणकाले कार्याख्यो भावोऽसन् तत्काले वा कारणाख्यस्तदा  
नैवोपेक्ष्योपासामर्थ्यात् ।

किञ्च, यद्येकार्थमिसम्बन्धात्कार्यकारणता तयोः कार्यकार-  
णभावत्वेनाभिमतयोः, तर्हि द्वित्वसंख्यापरत्वापरत्वविभागादि- १०  
सम्बन्धात्प्राप्ता सा सव्येतरगोविषाणैर्योरपि । न येन केनचिदेकेन  
सम्बन्धात्सेष्यते; किं तर्हि ? सम्बन्धलक्षणेनैवेति चेत्; तन्न;  
द्विष्टो हि कश्चित्पदार्थः सम्बन्धः, नातोर्थद्वयामिसम्बन्धाद-  
न्यस्य लक्षणम्, येनास्य संख्यादेर्विशेषो व्यवस्थाप्येत ।

कैसाचिद्भावे भावोऽभावे चाभावः तावुपाधी विशेषणं यस्य १५  
योगस्य=सम्बन्धस्य स कार्यकारणता यदि न सर्वसम्बन्धः;  
तदा तावेव योगोपाधी भावाभावौ कार्यकारणताऽस्तु किमसत्स-  
म्बन्धकल्पनया ? मेदौचेत् 'भावे हि भावोऽभावे चाभावः' इति  
बहवोभिर्धेयाः कथं कार्यकारणतेत्येकार्थमिधायिना शब्दे-  
नोच्यन्ते ? नन्वयं शब्दो नियोकारं समाश्रितः । नियोक्ता हि यं २०  
शब्दं यथा प्रयुक्ते तथा प्रोह, इत्यनेकत्राप्येकां श्रुतिर्न विद्वन्त्यते  
इति तावेव कार्यकारणता ।

यस्मात् पश्यजेकं कारणमिमत्तमुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्याऽदृष्टस्य  
कार्याख्यस्य दर्शने सति तददर्शने च सत्यऽपश्यत्कार्यमन्वेति

१ 'अन्यनिस्पृहस्य' अर्थः । २ प्रत्ययः । ३ अन्यतरस्य । ४ अस्य कार्यसेदं  
कारणमिति । ५ हेतोः । ६ कार्येण कारणेन वा । ७ सम्बन्धेन । ८ लोके । ९ कार्यं  
कारणमपेक्ष्य कारणे कार्यमपेक्ष्य यो वर्तते सम्बन्धस्य । १० स्वरविषाणादिवत् ।  
११ सम्बन्धलक्षण । १२ इन्द्रः । १३ आदिना पुनकृत्वादि । १४ द्वित्वसंख्यालक्षणे-  
कार्यामिसम्बन्धस्याविकेयात् । १५ एकेन सह । १६ कार्यस्य कारणस्य वा । १७ कार्य-  
कारणत्वायाः स्यात् । १८ भावाभावौ । १९ उपाधि=विशेषणम् । २० सम्बन्धः ।  
२१ जैनानाशङ्काद नौडः । २२ भावाभावान्या कार्यकारणभावसम्बन्धस्य । २३ सम्ब-  
न्धस्य । २४ चत्वारोऽर्थाः । २५ कार्यकारणसम्बन्धप्रतिपादकः कार्यकारणलक्षणः ।  
२६ पदार्थमभिप्रेत्यानेकार्थं वाभिप्रेत्य । २७ पदार्थाननेकार्थान्वा । २८ वयोदपिशब्दः  
उदकानि अस्मिन्वीयन्ते स उदधिरित्यादिः । २९ कारणाभिमत्तपदार्थदर्शनात्पूर्वम् । -

‘इदमतो भवति’ इति प्रतिपद्यते जनः ‘अत इदं जातम्’ इत्याख्यातुमिर्विनापि । तस्माद्दर्शनादर्शने-विपरिणि विपरयोपचारात्-भावाभावौ मुक्त्वा कार्यबुद्धेरसम्भवार्त्तं कार्यादिश्रुतिरप्यत्र ‘भावाभावयोर्मा लोकाः प्रतिपद्यमिथैतीं शब्दमालामभिवच्चात्’ ५ इति व्यवहारलाघवार्थं निवेशितेति ।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कार्यकारणता नान्या चेत् कथं भावाभावाभ्यां सा प्रसाध्यते ? तदभावाभावात् लिङ्गात्तत्कार्यतागतिर्याप्यनुवर्त्यते ‘अस्येदं कार्यं कारणं च’ इति; सङ्केतविपर्याख्या सा । यथा ‘गौरयं सास्त्रादिमत्त्वात्’ इत्यनेन गोव्यवहारस्य १० विषयः प्रदर्श्यते । यतश्च ‘भावे भाविनि=भवनधर्मिणि तद्भावः=कारणाभिमतस्य भाव एव कारणत्वम्, भावे एव कारणाभिमतस्य भाविता कार्याभिमतस्य कार्यत्वम्’ इति प्रसिद्धे प्रत्यक्षा-नुपलम्भतो हेतुफलत्वे । ततो भावाभावावेव कार्यकारणता नान्या । तेनैतावन्मात्रं=भावाभावौ तावेव तैस्त्वं यस्यार्थस्यासावे १५ तावन्मात्रतत्त्वः, सौथो येषां विकल्पानां ते एतावन्मात्रतत्त्वार्थाः=एतावन्मात्रदीजाः कार्यकारणगोचराः, दर्शयन्ति घटितानिव=सर्वैर्यद्वा निवाऽसम्बद्धानप्यर्थान् । एवं घटनाच्च सिद्ध्यार्थाः ।

किञ्च, असौ कार्यकारणभूतोर्थो भिन्नः, अमिन्नो वा स्यात् ? यदि भिन्नः, तर्हि भिन्ने का घटना स्वस्वभावव्यवस्थितेः ? अथाऽ- २० भिन्नः, तदाऽभिन्ने कार्यकारणतापि का ? नैव स्यात् ।

स्यादेतत्, न भिन्नस्याभिन्नस्य वा सम्बन्धः । किं तर्हि ? सम्बन्धाख्येनैकेन सम्बन्धात्, इत्यत्रापि भावे सैत्तायामन्यस्य

१ कथम् ? तथा हि । २ स्वयम् । ३ शब्दोद्धेखनन्तरेण उपदेशकैः पुरुषैः । ४ कारणस्य । ५ कार्यस्य । ६ कार्यकारणाभिमतयोः पदार्थयोः कार्यकारणता भवत्विति । ७ दर्शनादर्शनलक्षणे ज्ञाने । ८ भावाभावावेव कार्यं, नान्यदित्यर्थः । ९ श्रुतिः=शब्दः । १० न केवलं कार्यकारणश्रुतिः किन्तु । ११ भावे भावः अभावे चाऽभाव इत्येतावतीम् । १२ समर्थिता । १३ इति=सम्बन्धवादी मते । १४ भावाभावाभ्यामनुमीयमाना यदि कार्यकारणता तान्यामन्या तदा दूषणम् । १५ सम्बन्धकादिना । १६ तस्य=कारणस्य । १७ अस्य कारणस्येदं कार्यमस्य च कार्यस्येदं कारणमिति । १८ अनुमानेन । १९ प्रकारान्तरेण तावेव कार्यकारणतेति निरूपयति । २० कार्यलक्षणे । २१ स्वरूपम् । २२ कार्यकारणस्य । २३ अर्थः=विषयः । २४ आन्तर्ज्ञानानाम् । २५ वसः । २६ विकल्पाः । २७ प्रत्ययः । २८ विकल्पाः । २९ परस्परम् । ३० सम्बन्धः । ३१ कार्यकारणयोः । ३२ कार्यस्य कारणस्य वा । ३३ प्रत्ययार्थम् । ३४ भिन्नस्य ।

सम्बन्धस्य विच्छिद्यौ कार्यकारणामिमौ विच्छिद्यौ स्याताम् कथं च तौ संयोगिसमवायिनौ ? आदिग्रहणात्सम्बन्धस्यादिकम्, सर्वमेतेनानन्तरोक्तेन सामान्यसम्बन्धप्रतिषेधेन चिन्तितम् ।

संयोग्यादीनामन्योन्यमनुपकाराच्चाऽजन्यजनकभावाच्च न सम्बन्धी च तादृशानुपकार्योपकारकभूतः । ५

अथास्ति कश्चित्समवायी योऽवयविरूपं कार्यं जनयति अतो नानुपकारादसम्बन्धितेति, तन्न, यतो जननेपि कार्यस्य केनचित्समवायिनाभ्युपगम्यमाने समवायी नासौ तदा जननकाले कार्यस्यानिर्णयः । न च ततो जननात्समवायित्वं सिद्ध्यति, कुम्भकारादेरपि घटे समवायित्वप्रसङ्गात् । तैयोः समवायिनोः १० परस्परमनुपकारेपि ताभ्यां वा समवायस्य नित्यतया समवायेन वा तयोः परं वा कचिदनुपकारेपि सम्बन्धो यदीष्यते, तदा विश्वं परस्परसम्बद्धं समवायि परस्परं स्यात् । यदि च संयोगस्य कार्यत्वात्तस्य तैभ्यां जननात्संयोगिता तैयोः तदा संयोगजननेपीदौ, ततः संयोगजननाच्च तौ संयोगिनौ, कर्मणोरपि १५ संयोगितोपपत्तेः । संयोगो ह्यन्यतैरकर्मजः उभयकर्मजश्चेत्येतैः । आदिग्रहणात्संयोगस्यापि संयोगिता स्यात् । न संयोगजननात्संयोगिता । किन्तु हि ? स्थापनादिति चेत्, न स्थितिर्न प्रतिवर्तिताः ग्रन्थान्तरे प्रतिक्षिप्तौ, स्थाप्यस्थापकयोर्जन्यजनकत्वाभावाभ्यामन्या स्थितिरिति । २०

“कार्यकारणभावोपि तयोरसद्भावतः ।

प्रसिद्धयति कथं द्विष्टोऽद्विष्ट सम्बन्धता कथम् ॥ ७ ॥

१ स्वरूपेण । २ कारिकायाम् । ३ स्वामिश्रभावनसम्बन्धादिकम् । ४ निराकृतम् । ५ अर्थः । ६ उपकारकः । ७ तन्वादिः । ८ सम्बन्धवादिना । ९ कार्येण समम् । १० समवायिना कारणेन कार्यस्य निष्पादनसमये कार्यस्य निष्पन्नत्वात्कुतः कार्येण समत्वं कारणस्य । तत्कारणे सति तस्य निवृत्त्यात् । ११ तन्वायाम् । १२ तन्मुपपत्तयोः । १३ असमवायिनि कारणे कार्ये वा । १४ उपकारकत्वाभावाविशेषात् । १५ सम्बन्धस्य । १६ समवायिभ्याम् । १७ संयोगिनोः । १८ क्रियायाः । १९ कर्मणः सकाशात्संयोगजननात् । २० तथा च द्रव्ययोरेव हि संयोगो, न कर्मणोरेवेति भर्तृविषये । २१ शैलवनेययोः । २२ मल्लयोः । २३ कारिकायाम् । २४ गुणरूपस्य । २५ हस्तपुस्तकसयोगात्पापपुस्तकसयोगसोत्पत्तेः । २६ संयोगिन्या स्थाप्यपदार्थस्य सयोगलक्षणस्य स्थितिनिष्पादनात् । २७ संयोगिनोः संयोगस्य च । २८ निराकृता । २९ प्रत्ययः । ३० जन्यजनकभावस्तु प्राकृतमिच्छित्प्रत्ययः ।

- क्रमेण भावं एकत्र वर्त्तमानोन्यनिस्पृहः ।  
 तदभावेपि तद्भावात्सम्बन्धौ नैकवृत्तिमान् ॥ ८ ॥  
 यद्यपेक्ष्य तयोरेकमन्यत्रासौ प्रवर्त्तते ।  
 उपकारी ह्यपेक्ष्यः स्यात्कथं चोपकरोत्यसन् ॥ ९ ॥
- ५ यद्येकार्थमिसम्बन्धात्कार्यकारणता तयोः ।  
 प्राप्ता द्वित्वादिसम्बन्धात्सव्येतरविषाणयोः ॥ १० ॥  
 द्विष्टो हि कश्चित्सम्बन्धो नातोऽन्यत्तस्य लक्षणम् ।  
 भावाभावोपधिर्योगैः कार्यकारणता यदि ॥ ११ ॥  
 योगोपाधी न तावेव कार्यकारणतात्र किम् ।  
 १० मेदाब्जेन्नन्वऽयं शब्दो नियोक्तारं समाश्रितः ॥ १२ ॥  
 पश्यन्नेकमदृष्टस्य दर्शने तददर्शने ।  
 अपश्यत्कार्यमन्वेति विना व्याख्यातुर्भिर्जनः ॥ १३ ॥  
 दर्शनादर्शने मुक्त्वा कार्यबुद्धेरसम्भवात् ।  
 कार्यादिश्रुतिरप्यत्र लाघवाय निवेशिता ॥ १४ ॥
- १५ तद्भावाभावात्तत्कार्यगतियोन्यनुवर्त्यते ।  
 सङ्केतविषयाख्या सा संज्ञादेर्गोणतिर्यया ॥ १५ ॥  
 भावे भाविनि तद्भावाभाव एव च भावितौ ।  
 प्रसिद्धे हेतुफलते प्रत्यक्षानुपलम्भतैः ॥ १६ ॥  
 यतावन्मात्रतत्त्वार्थाः कार्यकारणगोचराः ।  
 २० विकल्पा दर्शयन्त्यर्थान् मिथ्यार्था ब्रुवतानिव ॥ १७ ॥  
 मित्रे का घट्टनाऽमित्रे कार्यकारणतापि का ।  
 भावे ह्यन्यस्य विस्त्रिष्टौ त्रिष्टौ स्यातां कथं च तौ ॥ १८ ॥  
 संयोगिसमवाय्यादि सर्वमेतेन चिन्तितम् ।  
 अन्योन्यानुपकाराच्च न सम्बन्धौ च तादृशः ॥ १९ ॥
- २५ जननेपि हि कार्यस्य केनचित्समवायिना ।  
 समवायी तदा नासौ न ततोतिप्रसङ्गतः ॥ २० ॥  
 तथैरनुपकारेपि समवाये परत्र वा ।  
 सम्बन्धो यदि विश्वं स्यात्समवायि परस्परम् ॥ २१ ॥  
 संयोगजननेपीष्टौ ततः संयोगिनौ न तौ ।

१ कार्ये कारणे वा । २ तयोः कार्यकारणयोः । ३ तस्य=सम्बन्धस्य ।  
 ४ सम्बन्धः । ५ नरम् । ६ कारणम् । ७ कार्यम् । ८ तस्य=कारणस्य । ९ तस्य=  
 कारणस्य । १० तस्य=कारणस्य । ११ साधनात् । १२ कार्यता । १३ अन्य-  
 व्यतिरेकतः । १४ सम्बन्धः । १५ सम्बन्धस्य । १६ समवायिनोः । १७ तद्वीति  
 शेषः । १८ कृतः । यतः ।

कर्मादियोगितापत्तेः स्थितिश्च प्रतिवर्णिता ॥ २२ ॥”

[ सम्बन्धपरी० ] इति ।

अस्तु वा कार्यकारणभावलक्षणः सम्बन्धः, तथाप्यस्य प्रति-  
पन्नस्य, अप्रतिपन्नस्य वा सत्त्वं सिद्धयेत्? न तावदप्रतिपन्नस्य; अति-  
प्रसङ्गात् । प्रतिपन्नस्य चेत्; कुतोऽस्य प्रतिपत्तिः—प्रत्यक्षेण, प्रत्यक्षा-  
नुपलम्भोभ्यां वा, अनुमानेन वा प्रकारान्तराऽऽसम्भवात्? प्रत्यक्षेण  
चेत्; अग्निस्वरूपग्राहिणा, धूमस्वरूपग्राहिणा, उभयस्वरूपग्राहिणा  
वा? न तावदग्निस्वरूपग्राहिणा; तद्धि तत्सद्भावमात्रमेव प्रतिपद्यते  
न धूमस्वरूपम्, तदप्रतिपत्तौ च न तदपेक्षयाग्रेः कारणत्वाव-  
गमः । न हि प्रतियोगिस्वरूपाप्रतिपत्तौ तं प्रति कैस्यचित्कारण-  
त्वमन्यद्वा धर्मान्तरं प्रत्येतुं शक्यमतिप्रसङ्गात् । नापि धूमस्वरूप-  
ग्राहिणा प्रत्यक्षेण कार्यकारणभावावगमः; अत एव, उभयस्वरूप-  
ग्रहणे खलु तन्निष्ठसम्बन्धावगमो युक्तो नान्यथा । नाप्युभयस्व-  
रूपग्राहिणा; तत्रापि हि तैर्योः स्वरूपमात्रमेव प्रतिभासते न त्वग्रे-  
धूमं प्रति कारणत्वं तस्यैव तं प्रति कार्यत्वम् । न हि स्वरूपनिष्ठ-  
पदार्थद्वयस्यैकज्ञानप्रतिभासमात्रेण कार्यकारणभावप्रतिभासः,  
घटपटादेरपि तैरप्रसङ्गात् । यत्प्रतिभासानन्तरमेकत्र ज्ञाने र्यस्य  
प्रतिभासस्तयोस्तदवगमः; इत्यपि तादृशं; घटप्रतिभासानन्तरं  
पटस्यापि प्रतिभासनात् । न च ‘क्रमभाविपदार्थद्वयप्रतिभास-  
संभन्धव्येकं ज्ञानम्’ इति वक्तुं शक्यम्; सर्वत्र प्रतिभासभेदस्य २०  
भेदनिबन्धनत्वात् ।

अथाग्निधूमस्वरूपद्वयग्राहिज्ञानद्वयानन्तरभाविस्वरणसहकारी-  
न्द्रियजनिताविकल्पज्ञाने तद्वयस्य पूर्वापरकालभाविनः प्रतिभासा-  
त्कार्यकारणभावनिश्चयो भविष्यतीत्युच्यते; तदप्युक्तिमात्रम्;  
चक्षुरादीनां तज्ज्ञानजननासामर्थ्ये स्वरणसव्यपेक्षाणामपि जैन- २५

१ गगनाब्जादेरपि सत्त्वप्रसङ्गोऽप्रतिपन्नत्वाविशेषात् । २ अन्यन्यतिरेकज्ञाना-  
न्यात् । ३ वक्तृकारणस्य प्रमाणान्तरस्य परेणान्युपगमात् । ४ अयमग्निधूमस्य  
कारणमिति । ५ प्रतियोगी=धूमः । ६ धूमन् । ७ अत्र्यादेर्वस्तुनः । ८ सादृश्या-  
दिकम् । ९ स्वकुष्ठमादिकं अत्रापि कल्पनित्कारणत्वप्रसङ्गात् । १० अग्निधूमयोः ।  
११ न त्वयमग्निधूमस्य कारणं धूमोऽग्रेः कार्यमिति प्रतिभासः । १२ एव ।  
१३ युक्तः । १४ तस्य=कार्यकारणभावस्य । १५ एकपानप्रतिभासमानत्वसाविशे-  
षात् । १६ अर्थस्य । १७ कुतः । १८ एकं ज्ञानं परिहरति परः पदार्थद्वयप्रतिभासे ।  
१९ अनुयायि । २० ज्ञाने हेतुः च । २१ घटपटयोरिव । २२ वा अग्निधूमविति-  
मीमांसकान्मुपगते प्रत्यभिज्ञाप्रलक्षे । २३ सन्नन्धवादिना । २४ अग्निधूमद्वय-  
कार्यकारणभावज्ञानोत्पादनासामर्थ्ये । २५ ज्ञानस्य ।



कत्वविरोधात् । न हि परिमलस्मरणसव्यपेक्षं लोचनं 'सुरभि चन्दनम्' इति प्रत्ययमुत्पादयति । तत्सव्यपेक्षलोचनव्यापारानन्तरमेते कार्यकारणभूता इत्यवभासनात्तद्भावः सविकल्पक-प्रत्यक्षप्रसिद्धः; इत्यप्यसमीचीनम्; गन्धस्यापि लोचनज्ञानविषय-  
५ त्वप्रसङ्गात्, गन्धस्मरणसहकारिलोचनव्यापारानन्तरं 'सुरभि चन्दनम्' इति प्रत्ययप्रतीतेः । तच्च प्रत्यक्षेणासौ प्रतीयते ।

नापि प्रत्यक्षानुपलम्भाभ्याम्; प्रत्यक्षस्येवानुपलम्भस्यापि प्रति-  
षेधविविक्तवस्तुभात्रविषयत्वेनात्राऽसामर्थ्यात् । अथाग्निसङ्गाव  
एव धूमस्य भावस्तदभावे चाभावः कार्यकारणभावः, स चैताभ्यां  
१० प्रतीयते इच्युच्यते; तर्हि वक्तृत्वस्यासर्वज्ञत्वादिना व्याप्तिः  
स्यात् । तद्धि रागादिमत्त्वाऽसर्वज्ञत्वसङ्गावे स्वात्मन्येव दृष्टम्,  
तदभावे चोपलक्षकलादौ न दृष्टम् । तथा च सर्वज्ञवीतरागाय  
दत्तो जलाञ्जलिः ।

वक्तृत्वस्य वक्तृकामताहेतुकत्वाभ्यां दोषः; रागादिसेङ्गावेपि  
१५ वक्तृकामताभावे तस्यासत्त्वात् । नन्वेवं व्यभिचारे विवक्षाप्यस्य  
निमित्तं न स्यात्, अन्यविषक्षायामप्यन्यैशब्दोपलम्भात्, अन्यथा  
गोत्रैस्त्वलनादेरभावप्रसङ्गात् । अथार्थविवक्षाव्यभिचारेपि शब्द-  
विवक्षायामप्यव्यभिचारः; न; स्वभावस्थायामन्यत्र गतचित्तस्य वा  
शब्दविवक्षाभावेपि वक्तृत्वसंवेदनात् । न च व्यवहिता सा  
२० तन्निमित्तमिति वक्तव्यम्; प्रतिनियतकार्यकारणभावाभाव-  
प्रसङ्गात्, सर्वस्यै तैत्प्राप्तेः । अथ 'असर्वज्ञत्वैवाद्यभावे सर्वज्ञे'  
वक्तृत्वं न सम्भवति' इत्यत्र प्रमाणाभावाच्च तस्य तेन कार्यकारण-  
भावलक्षणः प्रतिवर्त्यः सिद्ध्यति; तैदृग्निधूमादावपि समानम् ।

१ कर्तृपदम् । २ कर्मपदम् । ३ परिमलस्मरणसव्यपेक्षत्वेपि लोचने सति चन्दनं  
सुरभीति शब्दं प्राणेन्द्रियादेव आगत इत्यर्थः । ४ अग्निधूमादयः । ५ तदपि कुत इत्याह ।  
६ अग्निधूमादि । ७ महाहृदादि । ८ असर्वज्ञत्वादिसङ्गावे वक्तृत्वस्य सङ्गावस्तदभावे  
चाभाव इति । ९ सर्वज्ञो वीतरागश्च नास्तीति, भावः । १० सर्वज्ञास्तित्वादिना  
जेनादिना । ११ सर्वज्ञास्तित्वं सूत्रवद्वाह । १२ साधनस्य । १३ न तु रागादि-  
हेतुकत्वात् । १४ असर्वज्ञत्वलक्षणः । १५ आदिना देवादि । १६ उक्तप्रकारेण ।  
१७ वक्तृत्वसाधनस्य । १८ अग्निदत्त । १९ जिनदत्तादि । २० नाम । २१ वक्तृत्वस्य ।  
२२ कार्यान्तरे । २३ शब्दविवक्षा यदासीत्तदा वक्तृत्वस्य निमित्तं स्यात्कार्यान्तरेणान्यव-  
-हिता । अतोऽव्यवहिता वा शब्दविवक्षा पश्चात्तन्निमित्तं भवतीत्युक्ते आह । २४ व्यव-  
-हितस्य कार्यस्य । २५ तस्य=व्यवहितकारणत्वस्य । २६ आदिना रागादिमत्त्वादि ।  
२७ नृपु । २८ अविनाभावः । २९ यतो युक्तिमन्तरेण नौद्वेनोक्तमिति भावः ।

अथ 'अइयभावे धूमस्य भावे तदेतुकताविरहात्सकृदप्यहेतो-  
रस्तेस्तस्य भावो न स्यात्, इदयते च महानसादावैश्रितः,  
ततो नानश्रेष्ठमसद्भावः' इति प्रतिर्वन्धसिद्धिरित्यभिधीयते;  
तदप्यभिधानमात्रम्; यथैव हीन्धनादेरेकदा समुद्भूतोप्यग्निः  
अन्यद्वारणिनिर्मथनात् मर्ण्यादेर्वा भवश्चुपलभ्यते, धूमो वाग्नितो ५  
जायमानोपि गोपालघटिकादौ पावकोद्भूतधूमादप्युपजायते, तथा  
'अइयभावेपि कदाचिद्धूमो भविष्यति' इति कुतः प्रतिर्वन्धसिद्धिः ?  
अथ 'यादृशोऽग्निरिन्धनादिसामग्रीतो जायमानो दृष्टो न तादृशोऽ-  
रणितो मर्ण्यादेर्वा । धूमोपि यादृशोऽग्नितो न तादृशो गोपाल-  
घटिकादौ बहिःप्रभवधूमात्, अन्यादृशात्तादृशभावेति प्रसङ्गात्' १०  
इति नाग्निजन्यधूमस्य तत्सदृशस्य चानश्रेर्भावः । भावे वा तादृ-  
शधूमजनकस्याग्निस्वभावतैव इति न व्यभिचारः । तदुक्तम्—

“अग्निस्रभावः शक्रस्य मूर्धा यद्यग्निरेव सः ।

अथानग्निस्रभावोसौ धूमस्तत्र कथं भवेत् ॥”

[प्रमाणवा० ३।३५] इत्यादि । १५

तदेतद्वक्तृत्वेपि समानम्—‘तद्धि सर्वेभ्यो वीतरागे वा यदि  
स्यात्, असर्वेष्वाद्यागादिमतो वा कदाचिदपि न स्यादेहेतोः  
सकृदप्यसर्मन्वात्, भवति च तत्ततः, अतो न सर्वेभ्यो तस्य  
तत्सदृशस्य वा सम्भवः’ इति प्रतिर्वन्धसिद्धिः ।

किञ्च, कार्यकारणभावः सकलदेशकालावस्थिताखिलाग्निधूम- २०  
व्यक्तिर्कोडीकरणेनावगतोऽनुमाननिमित्तम्, नान्यथा । न च  
निर्विकल्पकसविकल्पकप्रत्यक्षस्येयति वस्तुनि व्यापारः, प्रत्यक्षा-  
नुपलम्भयोर्वा ।

किञ्च, कार्योत्पादनशक्तिविशिष्टत्वं कारणत्वम् । न चासौ  
शक्तिः प्रत्यक्षावसेया किन्तु कार्यवर्शनगम्या, २५

“शक्तयः सर्वभावानां कार्यार्योपपत्तिगोचराः”

[मी० खो० शून्यवाद खो० २५४] इत्यभिधानात् ।

१ धूमोऽग्नौ कार्यं न भवतीति भावः । २ तस्य भावः । ३ अनेन प्रकारेण ।  
४ कार्यकारणवोरविनाभावसिद्धिः । ५ चैनादिना भवता । ६ सर्वकान्तादेः ।  
७ धूमाग्निलक्षणकार्यकारणयोः । ८ मतम् । ९ न दृष्ट इति संबन्धः । १० बहि-  
प्रभवधूमः । ११ बलादग्निसद्भावप्रसङ्गात् । १२ अर्थस्य । १३ धूमाग्निलक्षणकार्य-  
कारणयोः । १४ तदि । १५ कुतः ? । १६ वचनत्वस्य । १७ वचनत्वस्यसर्व-  
त्वादिना । १८ आद्युत्तरेण प्रकलेन च ।

तत्र कार्यात्कारणत्वावगमेऽनुमानाच्छक्त्यवगमः स्यात् । तत्रापि शक्तिकार्ययोः प्रतिबन्धप्रतीतिर्न प्रत्यक्षादेः, उक्तदोषानुषङ्गात् । अनुमानात्तदवगमेऽनवस्थेतरैतराश्वयानुषङ्गो वा स्यात् । एतेन द्वितीयोपि पक्षश्चिन्तित इति ।

- ५ तदेतत्सर्वमसमीचीनम्; सम्बन्धस्याध्यक्षेणैवार्थानां प्रतिभासनात्; तथाहि-पटस्तन्तुसम्बद्ध एवावभासते, रूपादयश्च पटादिसम्बद्धाः । सम्बन्धामावे तु तेषां विच्छिष्टः प्रतिभासः स्यात्, तेमन्तरेणान्यस्य संश्लिष्टप्रतिभासहेतोरभावात् । कथं च सम्बन्धे प्रतीयमानेऽप्रतीयमानस्याप्यसम्बन्धस्य कल्पना प्रती-  
१० तिविरोधात्? अर्थक्रियाविरोधश्च, अणूनीमन्योन्यमसम्बन्धतो जलधारणाहरणार्थक्रियाकारित्वानुपपत्तेः । रज्जुवंशदण्डादीनामेकदेशाकर्षणे तदन्यैर्कर्षणे चासम्बन्धवैदिनो न स्यात् । अस्ति चैतत्सर्वम् । अतस्तदन्यथानुपपत्तिश्चासौ सिद्धः ।

- यच्च-‘पारतन्त्र्यं हि’ इत्याद्युक्तम्; तदप्युक्तम्, एकैकत्वपरि-  
१५ णतिलक्षणपारतन्त्र्यस्यार्थानां प्रतीतितः सुप्रसिद्धत्वात्, अन्यथोक्तदोषानुषङ्गः । न चार्थानां सम्बन्धः सर्वात्मनैकदेशेन वाभ्युपगम्यते येनैकैर्दोषः स्यात् प्रकारान्तरेणैवास्याभ्युपगम्यताम् । सर्वात्मैकदेशाभ्यां हि तस्यासम्भवात् प्रकारान्तरस्य वा भावात्, तत्प्रतीत्यन्यथानुपपत्तेश्च ताभ्यां जात्यन्तरतया श्लेषः  
२० श्लिङ्गरूपतानिबन्धनो बन्धोऽभ्युपगन्तव्योऽसौ सकृतोयादिवत् । विच्छिष्टरूपतापरित्यागेन हि संश्लिष्टरूपतया कथञ्चिद्वन्ध्यत्वलक्षणेकत्वपरिणतिः सम्बन्धोऽर्थानां चित्रसंवेदने नीलाद्याकारवत् । न हि चित्रसंविदो जात्यन्तररूपतयोत्पत्त्यादा-

१ ब्रूमादेः । २ अग्न्यादेः । ३ कार्यकारणभावरूपेण । ४ अनुमानेन वाली कार्यकारणभावः प्रतीयते इति । ५ बौद्धोक्तम् । ६ कथमर्थानां सम्बन्धस्याध्यक्षेण प्रतिभासनमित्युक्ते सत्याह । ७ अवभासन्ते । ८ पटादेः सकाशात्त्रिजः । ९ अन्यः कश्चित्संश्लिष्टप्रतिभासहेतुर्मविश्वतीत्युक्ते सत्याह । १० प्रत्यक्षेण । ११ अर्थानाम् । १२ अन्यथेति शेषः । १३ असम्बन्धपक्षे । १४ अन्यस्य=श्लेषसकलभागस्य । १५ सौगतस्य । १६ परस्परमसम्बद्धत्वात् । १७ भा अवतित्युक्ते सत्याह । १८ अनुमानतः । १९ स्वरूपेण । २० बाष्पाध्यात्मिकानाम् । २१ तत्र सौगतस्य स्यात् । २२ जनैः । २३ सौगतोक्तम् । २४ पिण्डोणुमात्रः स्वादित्यादिः । २५ कर्त्तव्यं सम्बन्ध इत्युक्ते सत्याह । २६ जनैः । २७ अपरप्रकारस्य । २८ प्रकारान्तरत्वेन । २९ परेण । ३० एकलोलीमावात्मलक्षणम् । ३१ पर्यायरूपेण । ३२ भावौ दधियुद्धौ श्रृङ्गश्च सिद्धतः पश्चात्संयोगेन कृत्वाऽन्यथास्त्वामं पर्यायरूपं पानकं जातमिति । ३३ ज्ञानस्य । ३४ कथञ्चिन्नीलाकारेभ्योऽश्वमयविवेचनत्वेन । ३५ उत्पत्तेः ।

द्वयो नीलाद्यनेकाकारैः सम्बन्धः, सर्वात्मनैकदेशेन वा तैस्तस्याः सम्बन्धे प्रौक्तौशेषदोषानुपपन्नाविशेषात् ।

स चैवंविधः सम्बन्धोर्थानां कचिन्निखिलप्रदेशानामन्योन्य-  
प्रदेशानुप्रवेशतः—यथा सङ्गतोयादीनाम्, कचित्तु प्रदेशसंनिष्ठ-  
तामात्रेण—यथाङ्गुल्यादीनाम् । न चान्तर्वह्निर्वा सांशवस्तुवादिनः ५  
सांशत्वानुपपन्नो दोषाय; इष्टत्वात् । न चैवमनवस्था; तद्वत्तत्त्वप्रदे-  
शानामत्यन्तमेदाभावात् । तद्भेदे हि तेषामपि तद्वत्ता प्रदेशान्तरैः  
सम्बन्ध इत्यनवस्था स्यात् नान्यथा, अनेकान्तात्मैकवस्तुनोऽ-  
त्यन्तमेदामेदाभ्यां जात्यन्तरत्वाच्चित्रसंवेदनवदेव ।

नैवेवं परमाणूनामप्यंशवत्त्वप्रसङ्गः स्यात्; इत्यप्यनुत्तरम्, १०  
यतोऽत्रांशशब्दः स्वभावार्थः, अवयवार्थो वा स्यात् ? यदि स्वभा-  
वार्थः, न कश्चिदोपस्तेपां विभिन्नदिग्विभागव्यवस्थितानेकाणुभिः  
सम्बन्धान्तर्याणुपपत्त्या तावद्वा स्वभावमेदोपपत्तेः । अवयवार्थस्तु  
तत्रासौ नोपपद्यते; तेषाममेद्यत्वेनावयवासम्भवात् । न चैवं  
तेषामविभागित्वं विरुध्यते, यतोऽविभागित्वं मेदयितुमशक्यत्वं १५  
न पुनर्निःस्वभावत्वम् ।

यसूक्तम्—‘निष्पन्नयोरनिष्पन्नयोर्वा पारतन्त्र्यलक्षणः सम्बन्धः  
स्यात्’ इत्यादि; तदप्यसारम्; कथञ्चिन्निष्पन्नयोस्तदभ्युपगमात् ।  
पटो हि तन्तुद्रव्यरूपतया निष्पन्न एव अन्वयिनो द्रव्यस्य पटपरि-  
णामोत्पत्तेः प्रागपि सत्त्वात्, स्वरूपेण त्वऽनिर्पन्नः, तन्तुद्रव्यमपि २०  
स्वरूपेण निष्पन्नं पटपरिणामरूपतयाऽनिष्पन्नम् । तथाङ्गुल्यादि-  
द्रव्यं स्वरूपेण निष्पन्नम् संयोगपरिणामात्मकत्वेनानिष्पन्नमिति ।

किञ्च, पारतन्त्र्यस्याऽभावाद्भावानां सम्बन्धाभावे तेन व्याप्तः  
कचित्सम्बन्धः प्रसिद्धः, न वा ? प्रसिद्धश्चेत्, कथं सर्वत्र सर्वदा  
सम्बन्धाभावः विरोधात् ? नो चेत्, कथमर्थोपकाभावादव्योप्य- २५  
स्याभावसिद्धिरितिप्रसङ्गात् ?

१ मित्रः । २ सौपतेन । ३ पिण्डोणुमात्रः सादित्यादि । ४ सांशत्वादि ।  
५ इति प्रतिबन्धविधानम् । ६ सम्बन्धविनि पदार्थे । ७ भवति । ८ सम्बन्धमात्रेण ।  
९ नैवस्य । १० पदार्थात् । ११ सर्वथा । १२ कथञ्चिद्भेदे । १३ अन्तो=धर्मः,  
न्यञ्चिद्भेदादेरूपस्य । १४ सर्वशानेकत्वेकत्वान्याम् । १५ सांशवस्तुप्रकारेण ।  
१६ तर्हि । १७ स्वभावमेदाभावे । १८ स्वभावमेदसम्भवे । १९ कथम् ।  
२० तन्त्वादेः । २१ पटरूपेण । २२ पटः । २३ भावानां सम्बन्धो नास्ति पारतन्त्र्य-  
भावात् । २४ दृष्टान्ते । २५ सातः । २६ सातत्वस्य । २७ अथ न प्रसिद्धस्तर्हि ।  
२८ असाध्य । २९ असाधनस्य । ३० अन्यथा । ३१ पदभावे पदभावप्रसङ्गात् ।

‘रूपश्लेषो हि’ इत्याद्यप्येकान्तवादिनामेव दूषणं नास्माकम्; कथञ्चित्सम्बन्धिनोरेकत्वापत्तिस्वभावस्य रूपश्लेषलक्षणसम्बन्धस्याभ्युपगमात् । अशक्यविवेचनत्वं हि सम्बन्धिनो रूपश्लेषः, असाधारणस्वरूपता च तदऽश्लेषः । स चानयोर्द्वित्वं न विरु-  
 ५ न्ध्यात् तथा प्रतीतिश्चित्राकारैकसंवेदनवत् । न चापेक्षिकत्वात्सम्बन्धस्वभावो मिथ्याऽर्थानां सूक्ष्मत्वादिवदित्यभिघातव्यम्; असम्बन्धस्वभावस्यापि तथाभावानुपपत्तात् । सोपि ह्यापेक्षिक एव कश्चिदर्थमपेक्ष्य कस्यचित्तद्वयवस्थित्यन्त्यथानुपपत्तेः स्थूलतादिवत् । ‘प्रत्यक्षं बुद्धौ प्रतिभासमानः सोर्नोपेक्षिक एव तत्पृष्ठभावि-  
 १० विकल्पेनाध्यवसीयमानो यथापेक्षिकस्तथाऽवास्तवोपि’ इत्यन्यत्रापि समानम् । न खलु सम्बन्धोऽध्यक्षेण न प्रतिभासते यतोऽनापेक्षिको न स्यात् ।

एतेन ‘परापेक्षा हि’ इत्याद्यपि प्रत्युक्तम्; असम्बन्धेपि समानत्वात् ।

१५ ‘द्वयोरेकाभिसम्बन्धात्’ इत्याद्यप्यविज्ञातपरंभिप्रायस्य विजृम्भितम्; यतो नास्माभिः सम्बन्धिनोस्तथोपरिणतिव्यतिरेकेणान्यः सम्बन्धोऽभ्युपगम्यते, येनानवस्था स्यात् ।

तथा च ‘तामेव चानुरुन्धानैः’ इत्याद्यप्युक्तम्; क्रियाकारकौदीनां सम्बन्धिनां तत्सम्बन्धस्य च प्रतीत्यर्थं तदभि-  
 २० धार्यकानां प्रयोगप्रसिद्धेः । अन्यापोहस्य च प्रागेवापास्तस्वरूपत्वाच्छब्दार्थत्वमनुपपन्नमेव । चित्रैर्ज्ञानैव चानेकसम्बन्धितादात्म्येऽप्येकत्वं सम्बन्धस्याविरुद्धमेव ।

यदप्युक्तम्-‘कार्यकारणभावोपि’ इत्यादि; तदप्यविचारितरमणीयम्; यतो नास्माभिः सहभावित्वं क्रमभावित्वं वा कार्य-

१ अनेकान्तवादिना जैनानाम् । २ एकलोलीभाव । ३ इदं तोयमिमे सक्रव इति विभागस्य कर्तुमशक्यत्वात् । ४ सङ्कुतोययोगिन्नस्वरूपता । ५ पृथक्त्वम् । ६ इदं चित्रज्ञानमिमे चित्राकारा इति । ७ परेण । ८ अर्थानाम् । ९ आपेक्षिकत्वाविशेषात् । १० आपेक्षिकत्वभावे । ११ निर्विकल्पकबुद्धौ । १२ साधनमसिद्ध-मुद्भावयति । १३ सादेव । १४ भवदुत्तया सम्बन्धस्य परानपेक्षित्वसमर्थनेन । १५ दूषणम् । १६ सौगतोक्त्यावयव । १७ जैन । १८ सौगतस्य । १९ विहित-रूपतापरित्यागेन सल्लिख्यरूपतया एकलोलीमानलक्षणपरिणतिः । २० सम्बन्धसिद्धौ । २१ देवदत्त गामन्याजेल्लादीनाम् । २२ शब्दानाम् । २३ सम्बन्धिनासनेकत्वे सम्बन्धस्याप्यनेकत्वं सादित्युक्ते सत्यात् । २४ चित्रैकज्ञानवत् । २५ तन्तुलक्षणैः पक्षे नीलकारादिभिः । २६ षट्स्य । २७ जैनैः ।

कारणभावनिवन्धनमिष्यते । किन्तु यद्भावे नियता यस्योत्पत्ति-  
स्तत्तस्य कार्यम्, इतरच्च कारणम् । तच्च किञ्चित्सहभावि, यथा  
घटस्य सुद्रव्यं वण्डादि वा । किञ्चित्तु क्रमभावि, यथा प्राक्तनः  
पौर्यायः । तत्प्रतिपत्तिश्च प्रत्यक्षानुपलम्भसहायेनात्मना नियते  
व्यक्तिविशेषे, तर्कसहायेन वाऽनियते प्रसिद्धा । एकमेव च ५  
प्रत्यक्षं प्रत्यक्षानुपलम्भशब्दामिधेयम् । तद्धि कार्यकारणभावामि-  
मर्तार्थविषेयं प्रत्यक्षम्, तद्विविक्तान्येवस्तुविषयमनुपलम्भशब्दा-  
मिधेयम् । तथाहि-एतावद्भिः प्रकारैर्धूमोग्निजन्यो न स्यात्-यदि  
अग्निं सन्निधानात्प्रागपि तत्र देशे स्यात्, अन्यतो वाऽऽगच्छेत्,  
तदन्यहेतुको वा भवेत् । एतच्च सर्वमनुपलम्भपुरस्सरेण प्रत्य- १०  
क्षेण प्रत्याख्यातम् ।

एतेन प्रागनुपलब्धस्य रासमस्य कुम्भकारसन्निधानानन्तर-  
मुपलभ्यमानस्य तस्य तत्कार्यता स्यादिति प्रतिषेधम् ; यदि हि  
तस्य तत्र प्रागसत्त्वमन्यदेशादनागमन्याहेतुकत्वं च निश्चेतुं  
शक्येत स्यादेव कुम्भकारकार्यता । तच्च निश्चेतुमशक्यम् । १५

न च मिथैवैवाहि प्रत्यक्षद्वयं द्वितीयग्रहणे तदपेक्षं कारणत्वं  
कार्यत्वं वा प्रदीतुमसमर्थमित्यभिधीतव्यम् ; क्षयोपशमविशेषवतां  
धूममात्रोपलम्भेन्यस्यासवशाद्वह्निजन्यत्वावगमप्रतीतिः, अन्यथा  
बाष्पादिवैलक्षण्येनास्याऽनवधारणात्ततोऽयमुभाभावे सकलव्यव-  
हारोच्छेदप्रसङ्गः । ततः कारणाभिमतपदार्थग्रहणपरिणामापरि- २०  
त्यागवतात्मना कार्यस्वरूपप्रतीतिरभ्युपगम्येत्या नीलाद्याकारव्या-  
प्येकज्ञाने तत्स्वरूपवत् ।

- १ सहस्रवतीत्येवंशीलम् । २ क्व वयोत्पत्तिकाले भवति । ३ कुन्नुदादिः ।  
४ उत्तरपर्यायस्य कारणम् । ५ महानसे । ६ महान्दे । ७ परिमिटे । ८ भूमाभ्योः ।  
९ बावान् कश्चित्कार्यलक्षणपदार्थः स कारणे सति भवति, नान्यथेति । १० आत्मना ।  
११ अनुपलम्भशब्देन किञ्चन्यते इत्याह । १२ नाजुमानादिकम् । १३ अग्निधूमः ।  
१४ वसः । १५ महान्देदादि । १६ 'अनुपलम्भ' इति । १७ प्रत्यक्षम् ।  
१८ तथा हीलादिना प्राक् प्रतिपादितार्थं व्यतिरेकद्वारेण समर्थयते । १९ प्राक्  
प्रतिपादितैः प्रत्यक्षानुपलम्भादिभिः । २० तान्त्रकारानाह । २१ ध्वमस्तु इत्युक्ते  
सत्याह । २२ प्रत्यक्षानुपलम्भादिभिः कार्यकारणभाववित्तिसमर्थनेन । २३ निराकृतम् ।  
२४ कुम्भकारावसितप्रदेशे । २५ कुम्भकारसन्निधानात् । २६ कुम्भकारापेक्षया ।  
२७ तर्हि । २८ रासमस्य । २९ अग्निधूमः । ३० अग्निधूमयोर्मध्येऽन्यतरस्य ।  
३१ यत्नेन । ३२ अगृहीतकार्यकारणान्यतरापेक्षम् । ३३ परेण । ३४ कार्यकारण-  
भावज्ञानाच्छादककर्मणः । ३५ नृणां । ३६ धूमस्य । ३७ पूर्वोक्ताकारणाद्धूमस्य  
बन्धिजन्यत्वावगमाभावे । ३८ दूरतः । ३९ भूमाभ्योः कार्यमिति । ४० परेण ।  
अ० क० सा० ४४

ननु नालिकेरद्वीपादिवासिनामकसाद्गमस्याग्नेर्वौपलस्मेपि कार्यकारणभावस्यानिश्चयान्नासौ वास्तवः; तदप्यपेशलम्; बाह्यान्तःकारणप्रभवत्वात्तन्निश्चयस्य । क्षयोपशमविशेषो हि तस्यान्तःकारणम्, तद्भावभावित्वोभ्यासस्तु बाह्यम्, अकार्यकारणभावः ५ वगमस्य त्वऽतद्भावभावित्वोभ्यासः । तदभावाच्च कचित्तेषां कार्यकारणभावस्याऽकार्यकारणभावस्य वा निश्चय इति ।

धूमादिज्ञानजननसामग्रीमात्रार्तत्कार्यत्वादिनिश्चयानुत्पत्तेर्न कार्यत्वादि धूर्मादेः स्वरूपमिति चेत्; तर्हि क्षणिकत्वादिरपि तत्स्वरूपं मा भूतेत एव । क्षणिकत्वाभावेऽवस्तुत्वम् अन्यत्रापि १० समानम्, सर्वथाप्यकार्यकारणस्य वस्तुत्वानुपपत्तेः खरभृङ्गवत् ।

न च कार्यस्यानुत्पन्नस्यैव कार्यत्वं धर्मः, असत्त्वात् । नाप्युत्पन्नस्यात्यन्तं भिन्नं तत्; तद्धर्मत्वात् । तत एव कारणस्यापि कारणत्वं धर्मो नैकान्ततो भिन्नम् । तच्च ततोऽभिन्नत्वात्तद्वाहिप्रत्यक्षेणैव प्रतीयते तद्व्यक्तिसवरूपवत् । हेतुयते हि पिपासाद्याक्रान्तचेतः १५ सामितरार्थव्यवच्छेदेनावलं तदपनोदसमर्थं जलोदौ प्रत्यक्षाद्भवति । तच्छक्तिप्रधानतायां तु कार्यदर्शनार्तं निश्चीयते तद्व्यक्तिरेकेणास्यासम्भवात् । न च स्वरूपेणाकार्यकारणयोस्तद्भावः सम्भवति । नाप्युत्तरकाले भिन्ने तेनैनयोः कार्यकारणताऽभिज्ञा कर्तुं शक्या; विरोधात् । नापि भिन्ना; तयोः स्वरूपेण कार्यकारणताः २० प्रसङ्गात् । न च स्वरूपेण कार्यकारणयोरर्थान्तरभूततत्तत्स्वबन्धकल्पने किञ्चित्प्रयोजनं कार्यकारणतायाः स्वतः सिद्धत्वात् ।

ननु कार्याप्रतिपत्तौ कथं कारणस्य कारणताप्रतिपत्तिस्तदपेक्षत्वात्तस्याः? कथमेवं पूर्वापरमागामप्रतिपत्तौ मध्यभागस्यातो व्यावृत्तिप्रतिपत्तिरपेक्षाकृतत्वाविशेषात्? तर्तः “पदयैज्ञयं क्षणि-

१ कारण । २ कार्यस्य । ३ पुनः पुनर्दर्शनम् । ४ कारणम् । ५ बाह्यान्तः-कारणयोः । ६ अग्निधूमयोरुपलम्भेपि येषां बाह्यान्तःकारणे सास्तेषामेव तयोः कार्यकारणभावपरिच्छिन्नान्नेषामिति भावः । ७ नेत्रादि । ८ बहिः । ९ आदिना कारणत्वादि । १० आदिनाग्न्यादेः । ११ धूमादिज्ञानसामग्रीमात्राद् क्षणिकत्वा-निश्चयादेव । १२ धूमादिकं धर्म्यऽवस्तु यवतीति साध्यमकार्यकारणत्वाच्छक्तिविधानवत् । १३ धर्मधर्मिणोरत्यन्तमेदाभावात् । १४ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वेयं परिहारः । १५ कारणभूते । १६ कारणत्वम् । १७ कार्यस्य । १८ घटपटयोरिव । १९ कार-णात् । २० सम्बन्धेन । २१ अभिज्ञा चैत्कथं भिन्नेन सम्बन्धेन विधीयते? विधीयते चैत्कथमभिज्ञेति विरोधः । २२ अभ्यादेः । २३ क्षणविशेषणम् । २४ वर्त-मानक्षणस्य । २५ पूर्वापरमागमाद्व्यावृत्तिर्मध्यक्षणस्येति प्रतिपत्तिः कथं घटते । २६ मध्यभागस्यातो व्यावृत्तिप्रतिपत्त्यभावात् । २७ योगी ।

कमेव पश्यति” इति [ ] वचो विरुध्येत । मध्यक्षणस्वभावत्वात्-  
 तद्वाह्यवृत्तेः तद्वाहिज्ञानेन प्रतिपत्तिश्चेत्, तर्हि कार्योत्पादनशक्तेः  
 कारणस्वभावत्वात्तद्वाहिणैव ज्ञानेन प्रतिपत्तिरिष्यतां विशेषा-  
 र्भावात् । उक्ता च कार्यप्रतिपत्तिः प्रत्यक्षादिसहायेनात्मनेत्यु-  
 परम्यते । ५

किञ्च, कार्यानिश्चये शैकेरप्यनिश्चये नीलादिनिश्चयोपि भा-  
 श्यत् । यदेव हि तस्याः कार्यं तदेव नीलादेरपि, अर्नयोरमेदात् ।  
 वक्तृत्वस्य चासर्वज्ञत्वादिना व्याप्त्यसम्भवः सर्वज्ञसिद्धिप्रघटके  
 प्रतिपादितः ।

न चेन्धनादिप्रभवपावकस्य मण्यादिप्रभवपावकोद्भेदो येन १०  
 नियतः कार्यकारणभावो न स्यात् । अन्यादृशाकारो ह्यन्धनप्रभवः  
 पावकोऽन्यादृशाकारश्च मण्यादिप्रभवः । तद्विचारे च प्रतिपन्ना  
 निर्पुणेन भाव्यम् । यत्नतः परीक्षितं हि कार्यं कारणं नातिवर्त्तते ।  
 कथमन्यथा वीतरागेतरव्यवस्था तच्चेष्टीयाः साङ्ख्योपलम्भात् ?

कथं चैवंवादिनो मृतेतरव्यवस्था स्यात् ? व्यापारव्याहारा-१५  
 कारविशेषस्य हि कैश्चिच्चैतन्यकार्यतयोपलम्भे सत्यस्यत्र जीव-  
 च्छरीरे चैतन्यं व्यापारादिकार्यविशेषोपलम्भात्, मृतशरीरे तु  
 नास्ति तदनुपलम्भादिति कार्यविशेषस्योपलम्भानुपलम्भाभ्यां  
 कारणविशेषस्य भावाभावप्रसिद्धेस्तद्व्यवस्था युज्येत ।

अकार्यकारणभावेपि चैतत्सर्वं समानम्-सौमि हि द्विष्टः २०  
 कथमसहर्भाविनोः कार्यकारणत्वाभ्यां निषेध्योर्वर्त्तते ? न  
 चाद्विष्टोसौ, सम्बन्धाभावविरोधोत् । पूर्वत्र भावे वर्त्तित्वा परत्र  
 क्रमेणासौ वर्त्तमानोऽन्यनिस्पृहत्वेनैकवृत्तिमत्त्वात्कथं सम्बन्धा-  
 भावरूपता(तां) प्रतिपद्यते ? अथाकार्यकारणयोरेकमपेक्ष्यान्य-  
 त्रासौ क्रमेण वर्त्तत इति सस्पृहत्वेर्नोस्य द्विष्टत्वात्तदभावरूपते-२५

१ वक्तुः । २ पृष्ठ । ३ कार्यस्य । ४ मध्यक्षणस्वभावत्वाद्व्याहृतेस्तद्वाहिज्ञानेन  
 प्रतिपत्तिर्घटते, कार्योत्पादनशक्तेः कारणभावत्वात्तद्वाहिज्ञानेन प्रतिपत्तिर्नैव ।  
 ५ कारणसम्बन्धिन्याः कार्योत्पादनलक्षणायाः । ६ तत्र सौगतस्य । ७ कुतः ।  
 ८ शक्तिनीलापोः । ९ निरञ्जवस्तुवादिनते । १० जैनेः । ११ किंतु भेद एव ।  
 १२ सर्वज्ञेन । १३ अम्नादिलक्षणम् । १४ इन्धनमण्यादिकम् । १५ जपतपोध्या-  
 नादेः । १६ दृष्टान्तमृते । १७ कथम् । १८ योगद्विषयोः । १९ अकार्यकारणयोः ।  
 २० जनयोः सम्बन्धाभावो वक्तुः । २१ अकार्यकारणभावतः सम्बन्धाभावरूपो न  
 भवत्यद्विष्टत्वाद्धटसत्त्ववत् । २२ अभावात् । २३ अकारणे । २४ अकार्ये ।  
 २५ यथासाकं सम्बन्धो न घटते तथा तवापीलम्बः । २६ असम्बन्धस्य ।



व्यते; तदा तेनोपेक्ष्यमाणेनोपकारिणा भवितव्यम् । 'कथं चोप-  
करोत्यसन्' इत्यादि सर्वमत्रापि योजनीयम् ।

अकार्यकारणभावस्याप्यर्थानामनभ्युपगमे तु कार्यकारणभावो  
वास्तवः स्यात् । उभयाभावस्तु न युक्तः विरोधात्, कचिन्नीले-  
५ तरत्वाभाववत् । ततो यथा कुतश्चित्प्रमाणादकार्यकारणभावो  
गवाश्वादीनामतद्भावभावित्वंप्रतीतेः परस्परं परमार्थतो व्यव-  
तिष्ठते, तथाग्निधूमादीनां तद्भावभावित्वंप्रतीतेः कार्यकारण-  
भावोपि बाधकाभावाद् । तत्र प्रमाणतः प्रतीयमानः सैम्बन्धः  
सौमिप्रेततत्त्ववर्षाद्विह्वनीयो येन स्थूलादिप्रतीतेर्भ्रान्तत्वात्तत्त्व-  
१० भावतार्थस्य न स्यात् । चित्रज्ञानवद्युगपदेकस्यानेकाकारसम्ब-  
न्धित्ववत्कमेणापि तत्तस्याविरुद्धम् । इति सिद्धं परापरविषय-  
व्याप्येकद्रव्यलक्षणमूर्द्धतासामान्यम् ।

यथा च द्वेधा सामान्यं तथा—

विशेषश्च ॥ ७ ॥

१५ अकारोऽपि शब्दार्थे । कथं तद्वैविध्यमित्याह—

पर्यायव्यतिरेकभेदात् ॥ ८ ॥

तत्र पर्यायस्वरूपं निरूपयति—

एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्यायाः

आत्मनि हर्षविषादादिवत् ॥ ९ ॥

२० अत्रोदाहरणमाह आत्मनि हर्षविषादादिवत् ।

ननु हर्षादिविशेषव्यतिरेकेणात्मनोऽसत्त्वादयुक्तमिदमुदाहरण-  
मित्यन्यैः; सोप्यप्रेक्षापूर्वकारी; चित्रसंवेदनवदनेकाकारव्यापित्वे-  
नात्मनः स्वसंवेदनप्रत्यक्षप्रसिद्धत्वात् । 'यद्यथा प्रतिभासते तत्-

१ सौगतेन मया । २ असम्बन्धेन । ३ अकारणेनाऽकार्येण वा । ४ अकार्य-  
मकारणं वा । ५ असम्बन्धे । ६ न केवलं कार्यकारणभावस्य । ७ परेण । ८ उक्त-  
प्रकारेण सम्बन्धो निराकर्तुं न शक्यते यतः । ९ असम्बन्धः । १० नराश्ववदं ।  
११ चैतन्यव्याहारादिकार्यवत् । १२ परस्परं परमार्थतो व्यवतिष्ठते । १३ उभयत्र ।  
१४ कार्यकारणाविनाभावः । १५ सौगत । १६ असम्बन्धादिवत् । १७ किंनु  
स्यादेव । १८ ज्ञानस्य । १९ जीवादिपदार्थस्य । २० ज्ञानसुखवीर्यदर्शनादय-  
आत्मनः सहमावित्वाहुणाः स्युः । क्रममावित्वाच्च पर्यायाश्च भवन्ति—कुतो वस्तुनोऽ-  
नेकधर्मात्मकत्वात् । २१ भेद । २२ अपरस्य । २३ सौगतः ।

यैव व्यवहर्तव्यम् यथा वेद्याद्याकारात्मसंवेदनरूपतया प्रतिभास-  
मानं संवेदनम्, सुखौघनेकाकारैकात्मतया प्रतिभासमानात्मा  
इत्यनुमानप्रसिद्धत्वाच्च ।

सुखदुःखादिपर्यायाणामन्योन्यमेकान्ततो मेदे च 'प्रागहं सु-  
ख्यासं सम्प्रति दुःखी वर्ते' इत्यनुसन्धानप्रत्ययो न स्यात् । तथा-  
विधवासनाप्रबोधादनुसन्धानप्रत्ययोत्पत्तिः, इत्यप्यसत्यम्, अनु-  
सन्धानवासना हि यद्यनुसन्धीयमानसुखादिभ्यो भिन्ना, तर्हि  
सन्तानान्तरसुखादिवत्सन्तानेप्यनुसन्धानप्रत्ययं नोत्पादयेद्-  
विशेषार्थं । तदभिधा वेत्ति, तद्वेत्ता भिद्येत । न खलु भिन्नादभिन्नमै-  
भिन्नं नामोऽतिप्रसङ्गात् । तथा तत्प्रबोधात्कथं सुखादिष्वेकमनु-  
सन्धानज्ञानमुत्पद्येत ? तेभ्यस्तस्याः कथञ्चिद्भेदे नैममात्रं भिद्येत-  
अहमहमिकया स्वसंवेदनप्रत्यक्षप्रसिद्धस्यात्मनः सहकमभाविनो  
गुणपर्यायानात्मसात्कर्तुं 'वासना' इति नामान्तरकरणात् ।

क्रमवृत्तिसुखादीनामेकसन्ततिपतितत्वेनानुसन्धाननिबन्धन-  
त्वम्, इत्यपि तादृगेव, आत्मनः सन्ततिशब्देनाभिधानात् । तेषां १५  
कैश्चिदेकत्वाभावे नैकपुरुषसुखादिवदेकसन्ततिपतितत्वस्याप्य-  
योगात् ।

आत्मनोऽनभ्युपगमे च कृतनाशकृताभ्यागमदोषानुषङ्गः ।  
कर्तुर्निरन्वयनाशे हि कृतस्य कर्मणो नाशः कर्तुः फलानभिसम्ब-  
न्धात्, अकृताभ्यागमश्च अकर्तुरेव फलानभिसम्बन्धात् । ततस्त-  
दोपपरिहारमिच्छतात्मानुगमोभ्युपगन्तव्यः । न चाप्रमाणकोयम्,  
तत्सद्भावावेदकयोः स्वसंवेदानुमानयोः प्रतिपादनात् ।

'अहमेव ज्ञातव्यं नहमेव वैशि' इत्यादेरेकप्रमादविषयप्रत्य-  
भिज्ञानस्य च सद्भावात् । तथा चोक्तं भट्टेन—

१ आदिना वेदकसमिच्छिग्रहः । २ हर्षविषादादिग्रहः । ३ साधनसिद्धिमित्युक्ते  
सत्याह । ४ सर्वथा । ५ आत्मनः सकाशात् । ६ प्रत्यभिज्ञान । ७ गम्यमान ।  
८ सर्वथा । ९ सुखादिसंज्ञकेण । १० उभयत्र भिन्नत्वस्य । ११ तर्हि । १२ सुखादयो  
यावन्तः । १३ एकम् । १४ अन्यथा । १५ षट्पटादिभ्योऽभिज्ञाना तत्संस्काराणां  
भिन्नत्वप्रसङ्गात् । १६ वासनाया अचेतनत्वे च । १७ अनेकवासना । १८ अनेक-  
सुखानुसन्धानज्ञानमुल्लेखेतेत्यर्थः । १९ कारणबहुत्वे कार्यबहुत्वमिति वचनात् ।  
२० आत्मा नास्तेति च । २१ अहं सुखार्हं दुःखीति । २२ स्वपर्यायः । २३ हर्ष-  
विषादादीना च । २४ आत्मद्रव्यापेक्षया । २५ कथम् ? । २६ कर्मणः ।  
२७ पुरुषस्य । २८ कर्मणः । २९ कर्मफलकाळे तदभावात् । ३० सीगतेन ।  
३१ पूर्वम् । ३२ इदानीम् ।

“तस्मादुभयहानेनैव्यवृत्त्यनुर्गमात्मैकः ।

पुरुषोभ्युपगन्तव्यः कुण्डलादिर्षु संपवत् ॥”

[ मी० श्लो० आत्मवाद श्लो० २८ ] इति ।

“तस्मात्तत्प्रत्यभिज्ञानात्सर्वलोकावधारितात् ।

५. नैरात्म्यवादबाधः स्यादिति सिद्धं समीहितम् ॥”

[ मी० श्लो० आत्मवाद श्लो० १३६ ] इति च ।

अथ कथमतः प्रत्यभिज्ञानादात्मसिद्धिरिति चेत्? उच्यते-‘प्रमा-  
तृविषयं तत्’ इत्यत्र तावदावयोरविवाद एव । स च प्रमाता भव-  
न्नात्मा भवेत्, ज्ञानं वा? न तावदुत्तरः पक्षः, ‘अहं ज्ञातवानहमेव  
१० च साम्प्रतं जानामि’ इत्येकप्रमातृपरामर्शेन ह्यहंबुद्धेरुपजायमा-  
नाया ज्ञानक्षणो विषयत्वेन कल्प्यमानोतीतो वा कल्प्येत, वर्तमानो  
वा, उभौ वा, सन्तानो वा प्रकारान्तरासम्भवात्? तत्राद्यविकल्पे  
‘ज्ञातवान्’ इत्ययमेवाकारावसौर्था युज्यते पूर्वं तेन ज्ञातत्वात्,  
‘सम्प्रति जानामि’ इत्येतत् न युक्तम्, न ह्यसावतीतो ज्ञानक्षणो  
१५ वर्त्तमानकाले वेत्ति पूर्वमेवास्य निरुद्धत्वात् । द्वितीयपक्षे तु  
‘सम्प्रति जानामि’ इत्येतद्युक्तं तस्येदानीं वेदकत्वात्, ‘ज्ञातवान्’  
इत्याकारणग्रहणं तु न युक्तं प्रागस्यासम्भवात् । अत एव न  
तृतीयोपि पक्षो युक्तः, न खलु वर्त्तमानातीताद्युभौ ज्ञानक्षणौ  
ज्ञानं(त)वन्तौ, नापि जानीतः । किं तर्हि? एको ज्ञातवान् अन्यस्तु  
२० जानातीति । चतुर्थपक्षोप्ययुक्तः, अतीतवर्त्तमानज्ञानक्षणव्यति-  
रेकेणान्यस्य सन्तानस्यासम्भवात् । कल्पितस्य सम्भवेपि न  
ज्ञातृत्वम् । न ह्यऽसौ ज्ञान(त)वान्पूर्वं नाप्यधुना जानाति,  
कल्पितत्वेनास्याऽवस्तुत्वात् । न चावस्तुनो ज्ञातृत्वं सम्भवति  
चस्तुधर्मत्वाच्चस्य इति अतोऽन्यस्य प्रमातृत्वासम्भवादात्मैव  
२५ प्रमाता सिद्ध्यति । इति सिद्धोऽतः प्रत्यभिज्ञानादात्मेति ।

ननु चात्मासुखादिपर्यायैः सम्बद्ध्यमानः परित्यक्तपूर्वरूपो वा

१ सुखादिपर्यायाणां सर्वथात्मनः सकाशाद्भेदाभिदौ, तयोः । २ परिहारेण ।  
३ सुखादिसंरूपतया । ४ विद्रूपतया । ५ भेदाभेदात्मकः । ६ आकारेण । ७ स्वर्ण-  
वदिति पाठान्तरम् । ८ ज्ञानसन्ततिरेवात्मा नान्यः कश्चिदिति हेतोर्नैरात्म्यम् । ९ जैन-  
बौद्धयोः । १० प्रत्यभिज्ञानेन । ११ सौमतेन । १२ अतीतवर्त्तमानलक्षणौ ।  
१३ निश्चयः । १४ अतीतज्ञानक्षणस्य । १५ अतीतज्ञानक्षणस्य । २६ कथम्? ।  
१७ विनष्टत्वात् । १८ एकस्य ज्ञातवत्त्वज्ञातृत्वासम्भवादेव । १९ इत्युल्लेखः ।  
२० इत्युल्लेखः । २१ इत्युल्लेखो युक्तः । २२ अतीतज्ञानक्षणादेः । २३ अवशिष्य-  
माणत्वात् ।

सम्बन्धेत, अपरित्यक्तपूर्वरूपो वा? प्रथमपक्षे निरन्वयनाश-  
प्रसङ्गः, अवस्थातुः कस्याचिवभावात् । द्वितीयपक्षे तु पूर्वोत्तरा-  
वस्थयोरात्मनोऽविशेषादपरिणामित्वानुषङ्गः । प्रयोगः यत्पूर्-  
वोत्तरावस्थासु न विशिष्यते न तत्परिणामि यथाकाशम्,  
न विशिष्यते पूर्वोत्तरावस्थास्वात्मेति; तदपरीक्षिताभिधानम्, ५  
आत्मनो मेदेन प्रसिद्धसत्ताकैः सुखादिपर्यायैः स्वस्य सम्बन्धान-  
स्युपगमात् । आत्मैव हि तत्पर्यायतया परिणमते नीलाद्याका-  
रतया चित्रज्ञानवत्, स्वपरग्रहणशक्तिद्वयात्मकतयैकविज्ञानवद्वा ।  
न खलु ययैव शक्त्यात्मनं प्रतिपद्यते विज्ञानं तयैवार्थम्, तयोर-  
मेदप्रसङ्गात् । अन्यथात्मनो येन रूपेण सुखपरिणामस्तेनैव दुःख- १०  
परिणामेपि अनयोरमेदो न स्यात् । न च तच्छक्तिमेदे तदात्मनो  
ज्ञानस्यापि मेदः, अन्यैकस्य स्वपरग्राहकत्वं न स्यात् । नापि  
चित्रज्ञानस्य नीलाद्यनेकाकारतया परिणामेपि एकाकारताव्या-  
घातः । तद्वत्सुखाद्यनेकाकारतया परिणामेपि आत्मनो नैकत्व-  
व्याघातो विशेषाभावात् । न चैकत्र युगपत्, अन्यत्र तु कालमेदेन १५  
परिणामाद्विशेषः, प्रतीतेर्नियामकत्वात् । यत्र हि प्रतीतिर्देश-  
कालमिमे तदमिमे वा वस्तुन्येकत्वं प्रतिपद्यते तत्रैकत्वं प्रति-  
पत्त्यर्थम्, यत्र तु नानात्वं प्रतिपद्यते तत्र तु नानात्वमिति ।

ततो र्येदुक्तम्-सर्वात्मनैर्वैमिदे मेदस्तद्विपरीतः कथं भवेत्? न  
लोकदा विधिर्प्रतिषेधौ परस्परविरुद्धौ युक्तौ । प्रयोगः-यत्रा- २०  
मेदस्तत्र तद्विपरीतो न मेदः यथा तेषामेव पर्यायीणां द्रव्यस्य  
च यत्प्रतिनियतमसाधारणमात्मस्वरूपं तस्य न स्वभावाद्भेदः,  
अमेदश्च द्रव्यपर्यायैर्योरिति । किञ्च, पर्यायैर्भेदो द्रव्यस्यामेदः,  
द्रव्यात्पर्यायाणां वा? प्रथमपक्षे पर्यायवद्द्रव्यस्याप्यऽनेकत्वानुषङ्गः ।

१ पूर्वाकारपरित्यागात् । २ 'आत्मा चर्मी' परिणामी न भवतीति साध्यम्  
पूर्वोत्तरावस्थानविविधत्वात् इत्युपरिष्ठात्संयोज्यम् । ३ भिषते । ४ का (पञ्चमी) ।  
५ लैनैः । ६ कथम्? तथा हि । ७ ज्ञानस्य शक्तिद्वयं न विभजे इत्याशङ्क्यामाह ।  
८ स्वस्य स्वरूपम् । ९ एकैव शक्त्या स्वरूपाद्योः प्रतिपत्तौ । १० आत्मनि ।  
११ आत्मनि । १२ ('प्रतीतेः' इतिखण्डके पाठः) । १३ सुखादिपर्यायैः ।  
१४ परेण । १५ नीलाद्यनेकाकारैः । १६ परेण । १७ सति । १८ द्रव्यपर्याययो-  
र्मेदः । १९ मेदामेदौ । २० द्रव्यपर्यायो धर्मिणो भिन्नौ न सवतस्तयोरमेदादिति  
अनुमानः सौगतप्रयुक्तमुपरितोत्र योज्यम् । २१ पक्षे नीलाबाकाराणां । २२ प्रथ-  
मपक्षे आत्मनः, द्वितीयपक्षे चित्रज्ञानस्य । २३ अन्योन्यम् । २४ पक्षे नीलाबा-  
कारचित्रज्ञानयोः । २५ पक्षे नीलाबाकारेभ्यः । २६ पक्षे चित्रज्ञानस्य ।

तथा हि-यद्व्यावृत्तिस्वरूपाऽभिन्नस्वभावं तद्व्यावृत्तिमत् यथा पर्यायाणां स्वरूपम्, व्यावृत्तिमद्रूपाव्यतिरिक्तं च द्रव्यमिति । द्वितीयपक्षे तु पर्यायाणामप्येकत्वानुपपन्नः । तथाहि—यदनुगत-स्वरूपाऽव्यतिरिक्तं तदनुगतात्मकमेव यथा द्रव्यस्वरूपम्, अनु-  
५ गतात्मस्वरूपाऽभिन्नस्वभावाश्च सुखादयः पर्यायाः इत्यादि;

तन्निरस्तम्; प्रमाणप्रतिपक्षे वस्तुतरे कुचोर्ध्वाऽनवकाशात् । न खलु मदोन्मत्तो हस्ती सन्निहितम् व्यवहितं वा परं मारयति, सन्निहितस्य मारणे मेण्डस्यापि मारणप्रसङ्गः । व्यवहितस्य च मारणेऽतिप्रसङ्गः, इत्यनर्थानल्पकल्पनाभयात् स्वकार्यकरणादुप-  
१० रमते । चित्रज्ञानादावपि चैतत्सर्वं समानम् । प्रतिक्षितं च प्रतिक्षणं क्षणिकत्वं प्रागित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

अथेदानीं व्यतिरेकलक्षणं विशेषं व्याचिख्यासुरर्थान्तरेत्याह—

अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेकः

गोमहिषादिवत् ॥ १० ॥

१५ एकस्मादर्थत्सजातीयो विजातीयो वार्थोऽर्थान्तरम्, तद्वतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् । यथा गोषु खण्ड-मुण्डादिलक्षणे विसदृशपरिणामः, महिषेषु विशालविसङ्कटलक्षणे, गोमहिषेषु चान्योन्यमसाधारणस्वरूपलक्षण इति । तावेवंप्रकारौ सामान्यविशेषावात्मा यस्यार्थस्याऽसौ तथोक्तः । स  
२० प्रमाणस्य विषयः न तु केवलं सामान्यं विशेषो वा, तस्य द्वितीय-परिच्छेदे 'विषयमेवात्प्रमाणमेदः' इति सौगतमतं प्रतिक्षिपता प्रतिक्षिप्तत्वात् । नाप्युभयं स्वतन्त्रम्, तथाभूतस्यास्याप्यप्रति-भासनात् ।

ननु चार्थस्य सामान्यविशेषात्मकत्वमयुक्तम्; तदात्मकत्वे-  
२५ नास्य ग्राहकप्रमाणाभावात् । सामान्यविशेषाकारयोश्चान्योन्यं प्रतिभासमेवेनात्यन्तं मेदात् । प्रयोगः—सामान्याकारविशेषाकारौ

१ व्यावृत्तयः=पर्यायाः । २ मेदवत् । ३ तस्मादनेकमिति । ४ अनुगतस्वरूपं=द्रव्यम् । ५ द्रव्यपर्यायात्मके । ६ कुप्रश्नः । ७ मदोन्मत्तो हस्ती मारयत्येवेति प्रमाण-प्रतिपक्षः । ८ इक्षिपकत्वं । ९ मारणात् । १० हस्ती । ११ सर्वात्मनेत्यादि सौगतमते । १२ निवक्षानाकारौ मित्रौ न भवतः तयोरेवादिलेख्यम् । १३ खण्ड-लक्षणाद्विः सजातीयो मुण्डलक्षणे गोः, विजातीयो महिषः, खण्डापेक्षया मुण्डो विसदृशाकारो महिषापेक्षया च विसदृशाकार इत्यर्थः । १४ वैशेषिकः । १५ सर्वथा ।

परस्परतोऽत्यन्तं भिन्नौ भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वाद्वटपटवत् । पटादौ हि भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वमत्यन्तभेदे सत्येवोपलब्धम्, तत् सामान्यविशेषाकारयोरुपलभ्यमानं कथं नात्यन्तभेदं प्रसाधयेत् ? अन्यत्राप्यस्य तदप्रसाधकत्वप्रसङ्गात् । न खलु प्रतिभासभेदाद्विरुद्धधर्माध्यासाच्चान्यत् पटादीनामप्यन्योन्यं भेदनिबन्धनमस्ति । ५ स चावयवावयविनोर्गुणगुणिनोः क्रियातद्वतोः सामान्यविशेषयोश्चास्त्येव । पटप्रतिभासो हि तन्तुप्रतिभासवैलक्षण्येनानुभूयते, तन्तुप्रतिभासश्च पटप्रतिभासवैलक्षण्येन । एवं पटप्रतिभासाद्भूपादिप्रतिभासवैलक्षण्यमप्यवगन्तव्यम् ।

विरुद्धधर्माध्यासोप्यनुभूयत एव, पटो हि पटत्वजातिस-१० म्यन्धी विलक्षणार्थकिंयासम्पादकोतिशयेन महत्त्वयुक्तः, तन्तवस्तु तन्तुत्वजातिसम्यन्धिनोल्पपरिमाणाश्च, इति कथं न भिद्यन्ते ? तादात्म्यं चैकत्वमुच्यते, तस्मिंश्च सति प्रतिभासभेदो विरुद्धधर्माध्यासश्च न स्यात्, विभिन्नविषयत्वात्तत्तयोः । यदि च तन्तुभ्यो नार्थान्तरं पटः, तर्हि तन्तवोपि नांशुभ्योर्थान्तरम्, १५ तेषां स्वावयवेभ्यः इत्येवं तावच्चिन्त्यं यावन्निरंशाः परमाणवः, तेभ्यश्चाभेदे सर्वस्य कार्यस्यानुपलम्भः स्यात् । तस्मादर्थान्तरमेव पटात्तन्तवो रूपादयश्च प्रतिपत्तव्याः ।

तथैव विभिन्नैककर्तृकत्वात्तन्तुभ्यो भिन्नः पटो घटादिवत् । विभिन्नशक्तिकत्वाद्वा विपाऽर्गवैवत् । पूर्वोत्तरकालमावित्वाद्वा २० पितापुत्रवत् । विभिन्नपरिमाणत्वाद्वा वदरामलकवत् ।

तथा तन्तुपटादीनां तादात्म्ये 'पटः तन्तवः' इति वैचनभेदः, 'पटस्य भावः पटत्वम्' इति षष्ठी, तद्धितोत्पत्तिश्च न भ्रामोतीति ।

किञ्च, 'तादात्म्यम्' इत्यत्र किं स पट आत्मा येषां तन्तूनां तेषां २५ भावस्तादात्म्यमिति विग्रहः कर्तव्यः, ते वा तन्तवः आत्मा यस्य

१ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे प्रतिपादिते सत्याह । २ साधनभेदश्च । ३ स्वरूपम् । ४ कथम् ? तथा हि । ५ आदिपदेन क्रियादिग्रहः । ६ शीतापनोदादि । ७ अवयवावयव्यादयः । ८ प्रतिभासभेदे विरुद्धधर्माध्यासे च सत्यपि तादात्म्यं मविष्यतीत्युक्ते सत्याह । ९ सन्तवयवेभ्यः । १० द्व्यणुकादिलक्षणत्वात् । ११ परमाणुद्वयेन द्व्यणुकमारम्यते, द्व्यणुकात्रितयेन त्र्यणुकमारम्यते, तच्च प्रत्यक्षमेव तत्र उपरितननियमाभावः । १२ जैनेन । १३ प्रतिभासभेदविरुद्धधर्माध्यासप्रकारेण । १४ योषित्खुविन्द । १५ अगदः=औषधम् । १६ एकवचनबहुवचनत्वेन । १७ भेदाभावे सति । भेदे षष्ठी वचनात् ।

पटस्य, स च ते आत्मा यस्येति वा ? प्रथमपक्षे पटस्यैकत्वात्त-  
न्तुनामप्येकत्वप्रसङ्गः, तन्तूनां चाऽनेकत्वात्पटस्याप्यनेकत्वानु-  
षङ्गः । अन्यथा तत्तादात्म्यं न स्यात् । द्वितीयविकल्पेऽप्ययमेव  
दोषः । तृतीयपक्षश्चाविचारितरमणीयः; तद्व्यतिरिक्तस्य वस्तुनोऽ-  
५ सम्भवात् । न हि तन्तुपटव्यतिरिक्तं वस्त्वन्तरमस्ति यस्य  
तन्तुपटस्वभावतोच्येत ।

न च तन्तुपटादीनां कथञ्चिद्भेदाभेदात्मकत्वमभ्युपगन्तव्यम् ;  
संशयादिदोषोपनिपातानुषङ्गात् । 'केन खलु स्वरूपेण तेषां भेदः  
केन चाभेदः' इति संशयः । तथा 'यत्राभेदस्तत्र भेदस्य विरोधो  
१० यत्र च भेदस्तत्राभेदस्य शीतोष्णस्पर्शवत्' इति विरोधः । तथा—  
'अभेदस्यैकत्वस्वभावस्यान्यदधिकरणं भेदस्य चानेकस्वभावस्या-  
न्यत्' इति वैयधिकरण्यम् । तथा 'एकान्तेनैकात्मकत्वे यो  
दोषोऽनेकस्वभावत्वाभावलक्षणोऽनेकात्मकत्वे चैकस्वभावत्वाभा-  
वलक्षणः सोऽर्थाप्यनुषज्यते' इत्युभयदोषः । तथा 'येन स्वभावे-  
१५ नार्थस्यैकस्वभावता तेनानेकस्वभावत्वस्यापि प्रसङ्गः, येन चाने-  
कस्वभावता तेनैकस्वभावत्वस्यापि' इति सङ्करप्रसङ्गः । "सर्वेषां  
शुणपत्प्राप्तिः सङ्करः" [ ] इत्यभिधानात् । तथा 'येन स्वभावे-  
नानेकत्वं तेनैकत्वं प्राप्नोति येन चैकत्वं तेनानेकत्वम्' इति व्यति-  
करः । "परस्परविषयगमनं व्यतिकरः" [ ] इति प्रसिद्धेः । तथा  
२० 'येन रूपेण भेदस्तेन कथञ्चिद्भेदो येन चाभेदस्तेनापि कथञ्चि-  
द्भेदः' इत्यनवस्था । अतोऽप्रतिपत्तितोऽभावस्तत्त्वस्यानुषज्येता-  
नेकान्तवादिनाम् । एवं सत्त्वाद्यनेकान्ताभ्युपगमेऽप्येतेष्वैव दोषा  
द्रष्टव्याः । तत्र तदात्मार्थः प्रमाणप्रमेयः ।

किन्तु परस्परतोऽत्यन्तविभिन्ना द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेष-  
२५ समवायाख्याः षडेव पदार्थाः । तत्र पृथिव्यसेजोवाय्वाकाशकाल-  
दिगात्ममनांसि नवैव द्रव्याणि । पृथिव्यसेजोवायुरित्येतच्चतुःसंख्यं

१ वस्तुनः । २ स तदात्मा, तस्य भावस्तादात्म्यम् । ३ एकत्पटवदभिजा-  
स्तान्तव एकरूपमापन्ना इति । ४ तन्तुपटौ स्वभावौ यस्य । ५ आदिपदेन शुण्णगुण्य-  
दीनाम् । ६ कथम् ? तथा हि । ७ भेदाभेदात्मकत्वे वस्तुनोऽसत्त्वावगमाकारेण  
निश्चेतुमशक्यैः संशयः । ८ भेदाभेदात्मकत्वे । ९ अयमपि वैयधिकरण्येऽन्तर्भवति ।  
१० स्वभावानाम् । ११ सञ्चयादिदोषतः । १२ अनुपलम्भः । १३ आदिना=  
असत्त्वादि । १४ सामान्यविशेषात्मा । १५ आद्यः । १६ विभिन्नप्रत्ययविषय-  
त्वादिभेदलक्षणलक्षितत्वादिभेदकारणप्रत्ययत्वादिभेदावैक्याकारित्वाच्च षट्पटवत् ।  
१७ प्रमाणग्राह्याः ।

नित्यानित्यविकल्पाद्विभेदम् । तत्र परमाणुरूपं नित्यं सद्-  
कारणवत्त्वात् । तदारब्धं तु द्रव्यणुकादि कार्यद्रव्यमनित्यम् ।  
आकाशादिकं तु नित्यमेवानुत्पत्तिमत्त्वात् । येषां च द्रव्यत्वाभि-  
सम्बन्धाद्रव्यरूपता ।

एतच्चेतरद्रव्यच्छेदकमेषां लक्षणम्, तथाहि-पृथिव्यादीनि<sup>५</sup>  
मनःपर्यन्तानीतरेभ्यो भिद्यन्ते, 'द्रव्याणि' इति व्यवहर्तव्यानि,  
द्रव्यत्वाभिसम्बन्धात्, यानि नैवं न तानि द्रव्यत्वाभिसम्बन्धवन्ति  
यथा गुणादीनीति । 'पृथिव्यादीनामप्यवान्तरभेदवतां पृथिवीत्वा-  
भिसम्बन्धो लक्षणम्' इतिरेभ्यो भेदे व्यवहारे तच्छब्दवाच्यत्वे  
वा साध्ये केवलव्यतिरेकिरूपं द्रव्यम् । अमेदवतां त्वाकाश-<sup>१०</sup>  
कादिद्रव्याणामनादिसिद्धा तच्छब्दवाच्यता द्रष्टव्या ।

एवं रूपादयश्चतुर्विंशतिगुणाः । उत्क्षेपणादीनि पञ्च कर्माणि ।  
परिपरमेदमिदं द्विविधं सामान्यम् अनुगतज्ञानकारणम् । नित्यद्र-  
व्यव्यावृत्त्ययोऽस्या विशेषा अत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतवः ।  
अनुतसिद्धानामाधार्याधारभूतानामिहेदमितिप्रत्ययहेतुर्यः सम्ब-<sup>१५</sup>  
न्धः स समवायः ।

अत्र पदार्थषट्के द्रव्यचक्रुणा अपि केचित्त्रितया एव केचित्सर्व-  
नित्या एव । कर्माऽनित्यमेव । सामान्यविशेषसमवायास्तु नित्या  
एवेति ।

१ खड्गमादिना व्यभिचारपरिहारार्थं सदिति, तेनाव्यापिषटादिना व्यभिचार-  
सन्निरासार्थमकारणवत्त्वादिति । २ अवयविरूपम् । ३ उत्पत्तिमत्त्वात् । ४ सत्त्वे  
सतीति बोध्यम् । ५ नवसंख्योपेतपृथिव्यादीनाम् । ६ प्रतिपत्तव्या । ७ इतरे-  
गुणादयः । ८ असाधारणस्वरूपम् । ९ अत्राणि साध्यानामे साधनाभावोक्तिः ।  
१० द्रव्याणां गुणादिभ्यो भेदादिक प्रसाध्येदानीं नवद्रव्याणां तद्भेदानां च परस्परं  
भेदादिकं साधयति वैशेषिकः । ११ ननु वचसि नवानां पृथिव्यादीनां गुणादिभ्यो  
भेदस्तथा व्यवहारस्तच्छब्दवाच्यत्वं च समर्थितं तथापि तेषां तद्भेदानां च परस्परं  
भेदस्तथा व्यवहारस्तच्छब्दवाच्यत्वमिति च साध्येषु किं साधनमित्युक्ते आह ।  
१२ षट्पटादिमृष्टजलादिप्रतिपादिशुतवातादि हलादयोऽवान्तरभेदाश्च तेष्वेव सम्भ-  
वन्ति, आकाशादीनां नित्यनिरञ्जत्वाम्नामवान्तरभेदासम्भवात् । १३ जगदिभ्यः ।  
१४ साधनम् । १५ पृथिवी धर्मिणीतरेभ्यो भिद्यते पृथिवीति वा व्यवहर्तव्या  
पृथिवीत्वाभिसम्बन्धादमादिवत्, एवमनादिष्वपि द्रष्टव्यम् । १६ पृथिव्यादिप्रकारेण ।  
१७ सत्तात्पर्यम् । १८ द्रव्यत्वादि । १९ इदं सदिवं सत्, इदं द्रव्यमिदं द्रव्यमित्ये-  
षम् । २० अपृथग्विसिद्धानाम् । २१ गुणगुणवादीनाम् । २२ नित्यद्रव्याभिज्ञाः ।  
२३ यथाकाशादौ परममहत्त्वादि । २४ अनिलद्रव्याभिज्ञाः । २५ स्वामिदासादयः ।



अत्र प्रतिविधीयते । अनेकधर्मात्मकत्वेनार्थस्य ग्राहकप्रमाणा-  
भावोऽसिद्धः, तथाहि—वास्तवानेकधर्मात्मकोर्थः, परस्परवि-  
लक्षणानेकार्थक्रियाकारित्वात्, पितृपुत्रपौत्रभ्रातृभागिन्याद्यने-  
कार्थक्रियाकारिदेवदत्तवत् । न चायमसिद्धो हेतुः, आत्मनो  
५ मनोज्ञानानिरीक्षणस्पर्शनमधुरध्वनिश्रवणताम्बूलादिरसास्वाद-  
नकर्पूरादिगन्धाघ्राणमनोक्षवचनोच्चारणचङ्क्रमणावस्थानहर्षविषा-  
दाशुबुत्तव्यावृत्तज्ञानाद्यन्योन्यविलक्षणानेकार्थक्रियाकारित्वेन अ-  
ध्यक्षतोनुभवात् । घटादेश्च स्वान्यव्यक्तिप्रदेशौघपेक्षयाशुबुत्तव्यावृ-  
त्तसदसत्प्रत्ययस्थानगमनैजलधारणादिपरस्परविलक्षणानेकार्थ-  
१० क्रियाकारित्वेन प्रत्यक्षतः प्रतीतेरिति । दृष्टान्तोपि न साध्यसाधन-  
विकलः, वास्तवानेकधर्मात्मकत्वाऽन्योन्यविलक्षणानेकार्थक्रिया-  
कारित्वयोस्तत्र सङ्गाधात् ।

ननु भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वेन धर्मधर्मिणोरत्यन्तमेदप्रसिद्धेः सिद्धेपि  
धर्मिणि वास्तवानेकधर्माणां सङ्गाधे तादौत्म्याप्रसिद्धिः, इत्यप्य-  
१५ समीचीनम् । अनैकान्तिकत्वाद्धेतोः, प्रत्यक्षानुमानाभ्यां हि भिन्न-  
प्रमाणग्राह्यत्वेभ्यामादिवस्तुनो मेदाभावः, दूरेतरदेशवर्तमानम-  
स्पष्टेतरप्रत्ययग्राह्यत्वेपि वा पादपस्याऽमेदः । ननु चात्र प्रत्यय-  
मेदाविषयमेदोऽस्त्येवं, प्रथमसमर्थवर्ति हि विज्ञानमूर्कताविषय-  
मुत्तरं च शोखादिविशेषविषयम्, इत्यप्यसाम्प्रतम् । एवंविषय-  
२० मेदाभ्युपगमे 'यमहमद्राक्षं दूरस्थितः पादपमेतर्हि तमेव  
पश्यामि' इत्येकत्वाध्यवसायो न स्यात्, स्पष्टेतरप्रतिभासानां सा-  
मान्यविशेषविषयत्वेन घटादिप्रतिभासवद्भिन्नविषयत्वात् । अथ  
पादपापेक्षया पूर्वोत्तरप्रत्ययानामेकविषयत्वं सामान्यविशेषापेक्षया  
तु विषयमेदः, कथमेवमेकान्ताभ्युपर्यगो न विशीर्येत ? गुण-

१ बाह्यार्थस्य । २ स्वश्रान्यश्च तो व्यक्तिश्च प्रदेशादयश्च ते स्वान्योन्योक्ति-  
प्रदेशादयः तेषामपेक्षा तथा, ततश्चावमर्षः स्वव्यक्त्यपेक्षया स्वप्रदेशावपेक्षयान्य-  
व्यक्त्यपेक्षयाऽन्यप्रदेशावपेक्षया यथाक्रममनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययः सदसत्प्रत्ययलक्षणार्थ-  
क्रियाकारित्वादि । ३ आदिना कालभावग्रहणम् । ४ घटस्तिष्ठति । ५ घटो जले  
गच्छति पत्रमाकाशे गच्छतीत्यादि । ६ सत्प्रतिपक्षत्वं हेतोः सङ्गाधयति परः । ७ धर्मैः  
सह धर्मिणो धर्मिणा वा धर्माणाम् । ८ सर्वथा मेदाभावे । ९ भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वादि-  
त्यस्य । १० अहं मुख्यहं दुःखीत्यादिस्वसंवेदनेन आत्मास्ति व्याहारादिकार्य-  
दर्शनादित्याद्यनुमानेन च । ११ पुरुषाणाम् । १२ यथा । १३ कुलस्त्रिया हि ।  
१४ दूरतः । १५ समीपे ज्ञात्वादिमानति । १६ नरः । १७ तत्र परस्य ।  
१८ यवोभिन्नप्रमाणग्राह्यत्वं तयोः सर्वथा भेद इति ।

गुण्यादिष्वप्यतस्तद्वत्कथञ्चिद्भेदाभेदप्रसिद्धेर्मिन्नप्रमाणग्राह्यत्वस्य विरुद्धत्वम् ।

एकान्ततोऽवयवावयव्यादीनां मिन्नप्रमाणग्राह्यत्वं चासिद्धम् ; 'पटोयम्' इत्याद्युल्लेखेनाभिन्नप्रमाणग्राह्यत्वस्यापि सम्भवात् । ननु 'पटोयम्' इत्याद्युल्लेखेनावयव्येव प्रतिभासते नावयवास्तत्क-५ थमभिन्नप्रमाणग्राह्यत्वम् ; इत्यप्यपेशलम् ; तद्भेदाप्रसिद्धेः । तन्तव एव ह्यातानवितानीभूता अवस्थाविशेषविशिष्टाः 'पटोयम्' इत्याद्युल्लेखेन प्रतिभासन्ते नान्यस्ततोर्थान्तरं पटः । प्रमाणं हि यथाविधं वस्तुस्वरूपं गृह्णाति तथाविधमेवाभ्युपगन्तव्यम्, यत्रा-त्यन्तमेदग्राहकं तत्तत्रात्यन्तमेदो यथा घटपटादौ, यत्र पुनः १० कथञ्चिद्भेदग्राहकं तत्र कथञ्चिद्भेदो यथा तन्तुपटादाविति ।

अतः कालात्ययापदिष्टं चेदं सार्धेन यथातुष्णोष्मिर्द्रव्यत्वाज्जल-चत् । न च घटादौ तथाविधमेवेनास्य व्यात्युपलम्भात्सर्वत्रात्यन्त-मेदकल्पना युक्ता; क्वचित्तार्णत्वादिविशेषाधारेणाग्निना धूमस्य व्यात्युपलम्भेन सर्वत्राप्यतस्तथाविधविशेषसिद्धिप्रसङ्गात् । १५ अथ तार्णत्वादिविशेषं परित्यज्य सकलविशेषसाधारणमग्निमात्रं धूमात्प्रसाध्यते । नन्वेवमत्यन्तमेदं परित्यज्यावयवावयव्यादिष्वपि मिन्नप्रमाणग्राह्यत्वाद्भेदमौत्रं किं न प्रसार्ध्यते विशेषेणाभावात् ?

दृष्टान्तैश्च सार्धविकलत्वाच्च साधनाङ्गम् ; अत्यन्तमेदस्यात्राप्य-सिद्धेः । तदसिद्धिश्च सद्रूपतया घटादीनामभेदात् । साधनविकलञ्च, २० स्फारिताक्षस्यैकस्मिन्नप्यन्येन घटादीनां प्रतिभाससम्भवात् । न च प्रतिविषयं विज्ञानमेदोभ्युपगन्तव्यः, मेचकज्ञानाभावप्रसङ्गात् । घटादिवस्तुनोप्येकविज्ञानविषयत्वाभावात्तुषकाच्च, अत्राप्यूर्ध्वो-मध्यभागेषु तद्भेदस्य कल्पयितुं शक्यत्वात् । तथैवावयवविप्रसि-द्धये क्वचो जलाञ्जलिः । प्रतीतिविरोधोर्नैत्रापि न काकैर्भक्षितः । २५

१ मिन्नप्रमाणग्राह्यत्वात् । २ साम्यविपर्ययव्याप्तौ विरुद्धः । ३ साधनम् । ४ अति-द्धत्वं परिहरति पटः । ५ पटः । ६ पर्णवत्तया । ७ अभ्युपगन्तव्यः । ८ प्रमाणेन सर्वथा भेदस्य नावनात् । ९ न केनकमसिद्धम् । १० मिन्नप्रमाणग्राह्यत्वादिति । ११ घटपटयोः । १२ सर्वथा । १३ तन्तुपटादौ । १४ यथाग्निमात्रे साधिते सति आदिराग्निरपि तार्णविरपि कल्प्यते एवं भेदभागे साधिते भेदो कल्प्यतेऽभेदोपि (ते कथञ्चिद्भेदोऽपि) कल्प्यते इति भावार्थः । १५ परेण त्वया । १६ विशेषपरि-त्यागस्य । १७ घटपटवदिति । १८ अत्यन्तमेदः साम्यः । १९ युगपत् । २० सेनावनादिज्ञानवत् । २१ सर्वथा । २२ तस्य ज्ञानस्य । २३ घटादिवस्तुनो भेदे च । २४ ज्ञानभेदेनैव सिद्धेः । २५ एकोनं घट इति । २६ अवयवावय-व्यादेः सर्वथा भेदे साध्ये ।

विरुद्धधर्माभ्यासोपि धूमादिनानैकान्तिकत्वाभावावयवावयवि-  
नोरात्यन्तिकं भेदं प्रसाधयति । न खलु स्वसाध्यैतरयोगम-  
कत्वागमकत्वलक्षणविरुद्धधर्माभ्यासेपि धूमो भिद्यते । नन्वत्रापि  
सामग्रीभेदोस्त्येव-धूमस्य हि पक्षधर्मत्वादिकारणोपचितस्य  
५ स्वसाध्यं प्रति गमकत्वम्, तद्विपरीतकारणोपचितस्य सामग्र्य-  
न्तरत्वात्साध्यान्तरेऽगमकत्वम्, न त्वेकस्यैव गमकत्वागम-  
कत्वं सम्भवति; इत्यप्यन्धसर्पविलप्रवेशन्यायेनानैकान्तावल-  
म्बनम्; धूमस्याभिन्नत्वात् । य एव हि धूमोऽविनाभावसम्ब-  
न्धस्तरणादिकारणोपचितो वर्हिः प्रति गमकः स एव साध्या-  
१० न्तरेऽगमक इति । अथान्यः स्वसाध्यं प्रति गमकोऽन्यश्चान्यत्रागम-  
कः; तर्हि यो गमको धूमस्तस्य स्वसाध्यवत्साध्यान्तरेपि  
सामर्थ्यादेकसादेव धूमात्रिल्लिसाध्यसिद्धिप्रसङ्गाद्धेत्वन्तरोप-  
न्यासो व्यर्थः स्यात् ।

किञ्च, अतोऽप्राप्तपटावस्थेभ्यः प्राक्तनावस्थाविशिष्टेभ्यस्त-  
१५ न्तुभ्यः पटस्य भेदः साध्येत, पटावस्थाभाविभ्यो वा ? प्रथमपक्षे  
सिद्धसाध्यता, पूर्वात्तरावस्थयोः सकलभावानां भेदाभ्युपगमात् ।  
न खलु यैवार्थस्य पूर्वावस्था सैवोत्तरावस्था पूर्वाकारपरित्यागेनै-  
वोत्तराकारोत्पत्तिप्रतीतिः । द्वितीयपक्षे तु हेतूनामसिद्धिः, न  
खलु पटावस्थाभावितन्तुभ्यः पटस्य भेदाप्रसिद्धौ विरुद्धधर्मा-  
२० भ्यासविभिन्नकर्तृकत्वादयो धर्माः सिद्धिर्भासादयन्ति । काला-  
त्ययापदिष्टत्वं चैतेषाम्; आतानवितानीभूततन्तुव्यतिरेकैकार्था-  
न्तरभूतस्य पटस्याध्यक्षेणानुपलब्धेस्तेन भेदपक्षस्य बाधितत्वात् ।

‘तन्तवः पटः’ इति संज्ञामेदोप्यवस्थामेदनिबन्धनो न पुनर्द्र-  
व्यान्तरनिमित्तः । योषिदादिकरव्यापारोत्पन्ना हि तन्तवः कुवि-  
२५ न्दादिव्यापारात्पूर्वं शीतापनोदाद्यर्थोसमर्थोस्तन्तुव्यपदेशं लभन्ते,  
तद्व्यापाराच्चूत्तरकालं विशिष्टावस्थाप्राप्तास्तत्समर्थाः पटव्यपदेश-  
मिति ।

विभिन्नशक्तिकत्वाद्यैप्यवस्थामेदमेव तन्तूनां प्रसाधयति न  
त्ववयवावयवित्वेनात्यन्तिकं भेदम् ।

१ हेतुः । २ चक्षुरादिना च । ३ यवोविरुद्धधर्माभ्यासस्तदोरात्यन्तिको भेद-  
इत्यनुमाने । ४ उक्तमेव समर्थयन्ति । ५ महानसादौ । ६ जलादौ । ७ जादिना  
पक्षधर्मत्वादिग्रहणम् । ८ विरुद्धधर्माभ्यासात् । ९ चैतैः । १० सात्त्विकगन्धिम् ।  
११ विरुद्धधर्माभ्यासादयो यदि भेदप्रसाधका न भवेयुस्तदा कथं संशयेनो भविष्य-  
तीत्याह । १२ साधनम् ।

यच्चोक्तम्-‘पटस्य भावः’ इत्यभेदे<sup>१</sup> षष्ठी न प्राप्नोतीति; तदप्यप्रयुक्तम्; ‘षण्णां पदार्थानामस्तित्वम्, षण्णां पदार्थानां वैर्गः’ इत्यादौ भेदाभावेऽपि षष्ठ्याश्रुत्युत्तिप्रतीतिः । न हि भवता षट्पदार्थव्यतिरिक्तमस्तित्वादीप्यते । ननु सत्तौ चापकप्रमाणविषयस्य भावः सत्त्वैम्-सदुपलम्भकप्रमाणविषयत्वं नाम धर्मान्तरं<sup>२</sup> षण्णामस्तित्वमिष्यते, अतो नानेनानेकान्तः, तदसत्; षट्पदार्थसंख्याव्याघातानुषङ्गात्, तस्य तेऽन्योन्यत्वात् । ननु धर्मिरूपा एव ये भावास्ते षट्पदार्थाः प्रोक्ताः, धर्मरूपास्तु तद्व्यतिरिक्ता इष्टौ एव । तथौ च पदार्थप्रवेशकग्रन्थैः-“एवं धर्मैर्विना धर्मिणामेव निर्देशः कृतः” [ प्रशस्तपादभा० पृ० १५ ] इति । १०

अस्त्वेवं तथाप्यस्तित्वादेर्धर्मस्य षट्पदार्थैः सार्धं कः सम्बन्धो येन तत्तेषां धर्मः स्यात्-संयोगः, समवायो वा ? न तावत्संयोगः, अस्य गुणत्वेन द्रव्याभ्रयत्वात् । नापि समवायः, तस्यैकत्वेनैष्टत्वात् । समवायेन चास्य समवायसम्बन्धे समवायानेकत्वप्रसङ्गः । सम्बन्धमन्तरेण धर्मधर्मिभावाभ्युपगमे चातिप्रसङ्गः । १५

किञ्च, अस्तित्वादेरपरास्तित्वाभावात्कथं तत्र व्यतिरेकनिवन्धना विभक्तिर्मवेत् ? अथ तत्राप्यपरमस्तित्वमङ्गीक्रियते तदानवस्थौ स्यात् । उत्तरोत्तरधर्मसमावेशेन च सैत्त्वादेर्धर्मिरूपत्वानुषङ्गात् ‘षडेव धर्मिणः’ इत्यस्य व्याघातः । ‘ये धर्मिरूपा एव ते षडेनावधारिताः’ इत्यप्यसारम् ; एवं हि गुणकर्मसामान्यविशेष-<sup>३</sup> २० समवायानामनिर्देशः स्यात् । न ह्येषां धर्मिरूपत्वमेव, द्रव्याश्रितत्वेन धर्मरूपत्वस्यापि सम्भवात् ।

१ सामान्यविशेषयोः । तन्नुपलक्षणीनाम् । २ षट् पदार्था एव समूहः । ३ वस्तुनः । ४ तदेव । ५ षट्पदार्थेभ्यो मित्रम् । ६ धर्मिधर्मरूपयोः षट्पदार्थास्तित्वयोः सर्वथा भेदाभेदसङ्गात्वात् । ७ यत्र षष्ठीतद्विद्योत्पत्तिस्तत्रालन्तिको भेद इत्यस्य । ८ समप्रदार्थपक्षेः । ९ अस्तित्वादयः । १० गम वैशेषिकस्य । ११ धर्मिभ्यो धर्मिणा व्यतिरिक्तान्वेषणप्रकारेण । १२ भ्रूयते । १३ परेण । १४ अन्ययेति शेषः । १५ समवायपदार्थेऽस्तित्वेन भाव्यं तत्तु तत्रापरसमवायपदार्थेन कृत्वा वर्तते । एवं तस्यानेकतापधिमवेत् । १६ गमगुप्तगापस्तित्वाधोर्धर्मिधर्मभावः सादित्यमिति प्रसङ्गः । १७ यत्र षष्ठी विभक्तिस्तत्रालन्तभेद इत्यसिन्धुश्लेषनैकान्तिकं दूषणमुद्गाढयति जैनः । १८ सामान्यस्य । १९ सत्ताया अस्तित्वं गोत्वादेरास्तित्वमित्यत्र । २० जनेकान्त-शेषपरिहाराय परेण । २१ अपरापरस्तित्वसङ्गात्वात् । २२ दूषणान्तरम् । २३ पूर्वस्य पूर्वस्य । २४ अर्थात्-एकलोच द्रव्यस्य निर्देशः स्यात् ।

तथा 'खस्य भावः खत्वम्' इत्यत्रामेदेपि तद्वितोत्पत्तेरुप-  
लम्भाच्च सापि भेदपक्षमेवावलम्बते ।

यच्चोक्तम्—'तादात्म्यमित्यत्र कीदृशो विग्रहः कर्तव्यः' इत्यादि;  
तत्रेत्यं विग्रहो द्रष्टव्यः—तस्य वस्तुन आत्मानौ द्रव्यपर्यायौ  
५ सत्त्वासत्त्वादिधर्मौ वा तदात्मानौ, तच्छब्देन वस्तुनः परामर्शात्,  
तयोर्भावस्तादात्म्यम्—भेदाभेदात्मकत्वम् । वस्तुनो हि भेदः  
पर्यायरूपतैव, अभेदस्तु द्रव्यरूपत्वमेव, भेदाभेदौ तु द्रव्यपर्याय-  
स्वभावावेव । न खलु द्रव्यमात्रं पर्यायमात्रं वा वस्तु; उभयात्मनः  
समुदायस्य वस्तुत्वात् । द्रव्यपर्याययोस्तु न वस्तुत्वं नाप्यव-  
१० स्तुता; किन्तु वस्तुवेकदेशता । यथा समुद्रांशो न समुद्रो  
नाप्यसमुद्रः, किन्तु समुद्रैकदेश इति ।

'स पट आत्मा येषाम्' इत्यपि विग्रहे न दोषः; अवस्थाविशेषा-  
पेक्षया तन्तूनामेकत्वस्याभीष्टत्वात् ।

'ते तन्तव आत्मा यस्य इति विग्रहे तन्तूनामनेकत्वे पटस्या-  
१५ प्यनेकत्वं स्यादिति चेत्; किमिदं तस्यानेकत्वं नाम—किमनेका-  
वयवात्मकत्वम्, प्रतितन्तु तत्प्रसङ्गो वा? प्रथमपक्षे सिद्ध-  
साध्यता; आतानवितानीभूतानेकतन्त्वाद्यवयवात्मकत्वात्तस्य ।  
द्वितीयपक्षस्त्वयुक्तः; प्रत्येकं तेषां तत्परिणामाभावात् । समुद्रि-  
तानामेव ह्यातानवितानीभूतः परिणामोऽमीषां प्रतीयते, तथा-  
२० भूताश्च ते पटस्यात्मेत्युच्यते ।

वस्तुनो भेदाभेदात्मकत्वे संशयादिदोषानुषङ्गोऽयुक्तः; भेदा-  
भेदाऽप्रतीतौ हि संशयो युक्तः, कचित्स्थानुपुरुषत्वाप्रतीतौ  
तत्संशयवत् । तत्प्रतीतौ तु कथमसौ स्थानुपुरुषप्रतीतौ  
तत्संशयवदेव? चलिता च प्रतीतिः संशयः, न चेयं तथेति ।

२५ न चानयोर्विरोधः; कथञ्चिदर्पितयोः सत्त्वासत्त्वयोरिव भेदा-  
भेदयोर्विरोधासिद्धेः, तत्राप्रतीतेश्च । प्रतीयमानयोश्च कथं विरोधो  
नामास्यानुपलम्भसाध्यत्वात्? न च स्वरूपादिना वस्तुनः सत्त्वे  
तदैव पररूपादिभिरसत्त्वस्यानुपलम्भोस्ति । न खलु वस्तुनः

१ एतेनोद्धृतासामान्यपर्यायलक्षणविशेषात्मकवस्तु गृहीतम् । २ एतेन तिर्यक्-  
सामान्यव्यतिरेकविशेषात्मकं वस्तु सङ्गृहीतम् । ३ प्रत्येकम् । ४ तन्तूनाम् । ५ पटस्यै-  
कत्वे तन्तूनामेकत्वानुपलक्षणः । ६ अवस्था—पटरूपा । ७ आदिना अंशुग्रहणम् ।  
८ अस्माभिर्जनैः । ९ द्रव्यपर्यायापेक्षया । १० निवक्षितयोः (मुख्ययोः) ।  
११ स्वरूपद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया । १२ पर्यायापेक्षया भेदः । द्रव्यापेक्षया चाभेदः ।  
१३ भेदाभेदप्रकारेण ।

सर्वथा भाव एव स्वरूपम्; स्वरूपेणैव पररूपेणापि भाव-  
प्रसङ्गात् । नाप्यभाव एव; पररूपेणैव स्वरूपेणाप्यभावप्रसङ्गात् ।

न च स्वरूपेण भाव एव पररूपेणाभावः, परात्मना चाभाव  
एव स्वरूपेण भावः; तदपेक्षणीयनिमित्तभेदात्, स्वद्रव्यादिकं  
हि निमित्तमपेक्ष्य भावप्रत्ययं जनयत्यर्थः परद्रव्यादिकं त्वपे-  
क्ष्याऽभावप्रत्ययम् इति एकैकद्वित्वादिसंख्यावदेव वस्तुनि  
भावाभावयोर्भेदः । न ह्येकत्र द्रव्ये द्रव्यान्तरमपेक्ष्य द्वित्वादि-  
संख्या प्रकाशमाना स्वात्ममात्रापेक्षैकत्वसंख्यातो नान्या प्रती-  
यते । नापि सोमयी तद्वतो मित्रैव; अस्याऽसंख्येयत्वप्रसङ्गात् ।  
संख्यासमवायात्तत्त्वम्; इत्यप्यसुन्दरम्; कथञ्चित्तादात्म्यव्यति-  
रिक्तस्य समवायस्यासत्त्वप्रतिपादनात् । तत्सिद्धोऽपेक्षणीयमे-  
दात्संख्यावत्सत्त्वासत्त्वयोर्भेदः । तथाभूतयोश्चानर्थोरेकवस्तुनि  
प्रतीयमानत्वात्कथं विरोधः द्रव्यपर्यायरूपत्वादिना भेदभेद-  
योर्वा? मिथ्येयं प्रतीतिः; इत्यप्यसङ्गतम्; बाधकामावात् ।  
विरोधो बाधकः; इत्यप्ययुक्तम्; इतरेतराभयानुषङ्गात्-सति १५  
हि विरोधे तेनास्याबाध्यमानत्वान्मिथ्यात्वसिद्धिः, ततश्च तद्वि-  
रोधसिद्धिरिति ।

विरोधश्च अविकलकारणस्यैकस्य भवेतो द्वितीयसंज्ञिधानेऽ-  
भावादवसीयते । न च भेदसंज्ञिधानेऽभेदस्याऽभेदसंज्ञिधाने वा  
भेदस्याभावोऽनुभूयते ।

२०

किञ्च, अत्र विरोधः सहानवस्थानलक्षणः, परस्परपरिहार-  
स्थितिसमावो वा, वध्यघातकरूपो वा स्यात्? न तावत्सहान-  
वस्थानलक्षणः, अन्योन्याव्यवच्छेदेनैकसंज्ञाधारे भेदाभेदयो-  
र्धर्मयोः सत्त्वासत्त्वयोर्वा प्रतिभासमानत्वाद् । परस्परपरिहार-  
स्थितिलक्षणस्तु विरोधः सहैकत्राभ्रफलादौ रूपरसयोरिवानयोः २५  
सम्भवतोरेव सौख्यं त्वसम्भवेतोः सम्भवदसम्भवेतोर्वा ।

किञ्च, अयं विरोधो धर्मयोः, [धर्म] धार्मिकोर्वा? प्रथमपक्षे  
सिद्धसाधनम्, एतल्लक्षणत्वाद् धर्माणाम् । ऐकाधिकरण्यं तु

१ मानः=अस्तित्वम् । २ तयोः=मावाभावयोः । ३ कथम्? तथा हि ।  
४ आपेक्षया एकार्थं यथा तथा परापेक्षया द्वित्वं च । ५ विशेषः । ६ सख्येयत्वम् ।  
७ अये । ८ मित्रयोः । ९ सत्त्वासत्त्वयोः । १० शीतल । ११ जायमानल ।  
१२ लण्य । १३ ययोस्तथा प्रतिभासमानत्वं न तयोस्तथा विरोधो यथा रूपरसयोः,  
तथा प्रतिभासमानत्वं च भेदाभेदयोरिति । १४ विद्यमानयोः । १५ असिन्विरोधे सति  
दोषो नास्तीत्यर्थः । १६ लक्ष्मणमिषाण्योरिव । १७ वन्व्याऽकन्व्यास्तन्ययोरिव ।

तेषां न विरुध्यते मातुलिङ्गद्रव्ये रूपादिवत् । धर्मधर्मिणोस्तु विरोधे धर्मिणि धर्माणां प्रतीतिरेव न स्यात्, न चैवम्, अबाध-  
बोधाधिरूढप्रतिभासत्वाच्च तेषाम् । वध्यघातकभावोपि विरोधः फणिनकुलयोरिव बलवदवलगतोः प्रतीतः सत्त्वा-  
५ सत्त्वयोर्मैदाभेदयोर्वा नाशङ्कनीयः; तयोः समानवलत्वात् ।

अस्तु वा कश्चिद्विरोधः; तथाप्यसौ सर्वथा, कथञ्चिद्वा स्यात् ?  
न तावत्सर्वथा, शीतोष्णस्पर्शादीनामपि सत्त्वादिना विरोधा-  
सिद्धेः । एकाधारतया चैकस्मिन्नपि हि धूपदहनादिभाजने कचित्प्र-  
देशे शीतस्पर्शः कचिच्छोष्णस्पर्शः प्रतीयत एव । अथानयोः  
१० प्रदेशयोर्मैद एवेष्यते; अस्तु नामानयोर्मैदः, धूपदहनाद्यवयवि-  
नस्तु न भेदः । न चास्य शीतोष्णस्पर्शाधारता नास्तीत्यभिधात-  
व्यम्; प्रत्यक्षविरोधात् । तन्न सर्वथा विरोधः । कथञ्चिद्विरोधस्तु  
सर्वत्र समानः ।

किञ्च, भावेभ्योऽभिन्नो, भिन्नो वा विरोधः स्यात् ? न  
१५ तावत्तेभ्योऽभिन्नो विरोधो विरोधको युक्तः; स्वात्मभूतत्वात्त-  
त्स्वरूपवत्, विपर्ययानुषङ्गो वा । अथ भिन्नः; तथापि न  
विरोधकः; अनात्मभूतत्वादर्थान्तरवत् । अथार्थान्तरभूतोपि  
विरोधो विरोधको भावानां विशेषणभूतत्वात्, न पुनर्भावान्तरं  
तस्य तद्विशेषणत्वाभावात्; तदप्यसमीचीनम्; विरोधो हि  
२० तुच्छरूपोऽभावः, स यदि शीतोष्णद्रव्ययोर्विशेषणं तर्हि तयोर्मै-  
दनापत्तिस्तत्सम्बद्धरूपत्वात् । असम्बद्धस्य च विशेषणत्वेऽति-  
प्रसङ्गात् ।

अन्यतरविशेषणत्वेऽप्येतदेव दूषणम् । तदेव च विरोधि स्याद्य-

१ जैनमते । २ प्रदीपादौ । ३ स्वपदप्रकाशादीनाम् । ४ सत्त्वादिरूपाव्यव-  
च्छेदतः । ५ शीतस्पर्शः सन्नृष्णस्पर्शः सन्निल्लादिना धर्मेण । ६ शीतोष्णस्पर्शादयो  
न विरुद्धा एकाधारतया प्रतीयमानत्वात्, न चैवम् प्रतीयते न तत्सर्वथा विरुद्धं यथा  
रूपरसादि, एकजुलाया नामोज्जामादिर्वा, एकाधारतया प्रतीयन्ते च धूपदहनादौ  
शीतोष्णस्पर्शादय इति । ७ परेण । ८ भावानामसाधारणस्वरूपप्रकारेण । ९ घटा-  
कारस्य पटेऽभावात् । १० घटपटादौ घटपटरूपादौ वा । ११ भावा अपि विरोधस्य  
विरोधकाः कुतो न भवेयुर्विरोधादभिन्नत्वाविशेषात् । १२ भावा विशेष्याविरोधो  
विशेषणमनयोर्भावयोर्विरोध इति । १३ घटपटादिरूपः । १४ विवादापेक्षे शीतोष्ण-  
द्रव्ये धर्मिणी न दृश्येते, इति साध्यो धर्मः, अभावसम्बद्धरूपत्वात् कचित्प्रदेशे  
घटनत् । १५ शीतोष्णद्रव्ययोर्मैद्व्ये शीतद्रव्यस्योष्णद्रव्यस्य वा । १६ शीतोष्ण-  
द्रव्ययोर्मैद्व्ये । १७ विरोधस्य । १८ अदर्शनापत्तिदूषणम् । १९ द्वितीयम् ।

स्यासौ विशेषणं नान्यत् । न चैकैत्र विरोधो नामास्य द्विष्टत्वात्,  
अन्यथा सर्वत्र सर्वदा तत्प्रसङ्गः ।

अथ विरुध्यमानत्वविरोधकर्त्तृत्वापेक्षया कर्मकर्तृस्थो विरोधः,  
विरोधसामान्यापेक्षयोभयविशेषणत्वाद्विष्टोभिधीयते । नन्वेवं  
रूपादेरपि द्विष्टत्वापत्तिः किञ्च स्यात् तत्सामान्यस्यापि द्विष्टत्वा-५  
विशेषात् ? विरोधस्याभावरूपत्वे सामान्यविशेषत्वाभावात्तुपप-  
त्तिश्च । गुणरूपत्वे गुणविशेषणत्वाभावात्तुपपत्तिः ।

अथ षट्पदार्थव्यतिरिक्तत्वात् पदार्थविशेषो विरोधोऽनेकस्थो  
विरोध्यविरोधकप्रत्ययविशेषप्रसिद्धः समाश्रीयते; तदाप्यस्या-  
सम्बद्धस्य द्रव्यादौ विशेषणत्वम्, सम्बद्धस्य वा ? न तावदसम्ब-१०  
द्धस्य; अतिप्रसङ्गात्, दण्डादौ तथाऽप्रतीतेश्च । न खलु पुरुषेणा-  
सम्बद्धो दण्डस्तस्य विशेषणं प्रतीतो येनात्रापि तथाभावः । अथ  
सम्बद्धः; किं संयोगेन, समवायेन, विशेषणभावेन वा ? न ताव  
त्संयोगेन, अस्याद्रव्यत्वेन संयोगानाश्रयत्वात् । नापि समवायेन,  
अस्य द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषव्यतिरिक्तत्वेनासमवायित्वात् । १५  
नापि विशेषणभावेन; सम्बन्धान्तरेणासम्बद्धे वस्तुनि विशेषण-  
भावस्याप्यसम्भवात्, अन्यथा दण्डपुरुषादौ संयोगादिसम्बन्धा-  
भावेऽपि च स्यात् इत्यलं संयोगादिसम्बन्धकल्पनाप्रयासेन ।  
'विरोध्यविरोधकप्रत्ययविशेषस्तु विशिष्टं वस्तुधर्ममेवालम्ब्यते'  
इति वक्ष्यते समवायसम्बन्धनिराकरणप्रक्रमे । ततो विरोधस्य २०  
विचार्यमाणस्यायोगाजानर्थोरसौ घटते ।

नापि वैयधिकरण्यम्; निर्वाधबोधे भेदामेदयोः सत्त्वासत्त्व-  
योर्वा एकाधारतया प्रतीयमानत्वात् ।

१ शीतद्रव्यस्योष्णद्रव्यस्य वा । २ उष्णद्रव्यं शीतद्रव्यं वा । ३ उष्णद्रव्ये शीतद्रव्ये  
वा । ४ तथा च षट्स्य सद्रूपतावत् (सत्तासम्बन्धात्सद्रूपानीति भावो वैशेषिकमते)  
रूपादिसमावतापि न स्यात्, न चैतदुक्तं प्रतीतिविरोधात् । ५ विरुध्यमानः=शीतः ।  
६ विरोधकः=दण्डः । ७ विरोध्यविरोधकभावसम्बन्धापेक्षया । ८ ननु विशेषापेक्षया  
यतः कर्तृस्थो विरोधो हि कर्मणि नास्ति कर्तृस्यः कर्तारि नास्तीत्यद्विष्टो विशेषापेक्षयेति  
भावः । ९ विरोधप्रकारेण । १० भावानां विरोधकत्वापत्तिः । ११ विरोधस्या-  
भावरूपत्वं मा भूद्गुणरूपत्वं स्यादित्युक्ते आहार्चनः । १२ गुणा निर्गुणा इति  
वचनाच्छीतोष्णस्पर्शयोर्गुणरूपयोर्विरोधो गुणरूप इति विशेषणत्वमस्य न घटतेऽन्यथा ।  
१३ सक्षो विन्ध्यं प्रति विशेषणं सादसम्बद्धत्वाविशेषात् । १४ असम्बद्धविशेषणत्व-  
प्रकारेण । १५ असम्बद्धत्वप्रकारेण । १६ षड्विधं पदार्थेषु समवायोक्तिं यतः ।  
१७ प्रत्यय=ज्ञानम् । १८ वस्तुनोऽप्यतिरिक्तमभावरूपं विरोधमवलम्बते न तु  
व्यतिरिक्तम् । १९ भेदामेदयोः सत्तासत्त्वयोर्वा ।



नाभ्युपगमदोषः, चौर[पार]दारिकाभ्यामचौरपारदारिकवत्  
जैनाभ्युपगतवस्तुनो जात्यन्तरत्वात् । न खलु भेदाभेदयोः  
सत्त्वासत्त्वयोर्वाऽन्योन्यनिरपेक्षयोरेकत्वं जैनैरभ्युपगम्यते येनायं  
दोषः, तत्सापेक्षयोरेव तदभ्युपगमात्, तथाप्रतीतिश्च ।

५ नापि सङ्करव्यतिकरौ, स्वरूपेणैवार्थे तयोः प्रतीतेः ।

नाप्यनवस्था, 'धर्मिणो ह्यनेकरूपत्वं न धर्माणां कथञ्चन'  
इति, वस्तुनो ह्यभेदो धर्म्येव, भेदस्तु धर्मा एव, तत्कथमनवस्था?

अभावदोषस्तु दूरोत्सारित एव, अशेषप्राणिनामनेकान्तात्म-  
कार्यस्यानुभवसम्भवात् ।

१० ननु शरीरेन्द्रियबुद्धिव्यतिरिक्तात्मद्रव्यस्येच्छादिगुणाश्रयस्य  
नित्यैकरूपत्वात्कथं सर्वस्यानेकान्तात्मकत्वम्? न च नित्यैक-  
रूपत्वे कर्तृत्वभोक्तृत्वजन्ममरणजीवनहिंसकत्वादिव्यपदेशा-  
भावः, ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नानां समर्थायो हि कर्तृत्वम्, सुखादि-  
संवित्समवायस्तु भोक्तृत्वम्, अपूर्वैः शरीरेन्द्रियबुद्ध्यादिभि-

१५ आभिसम्बन्धो जन्म, प्राणात्तैस्तैस्तु वियोगो मरणम्, जीवनं  
तु सदेहस्यात्मनो धर्माधर्मापेक्षो मनसा सम्बन्धः, हिंसकत्वं च  
शरीरचक्षुरादीनां वर्धमानं पुनरात्मनो विनाशात् । तथा च सूत्रम्-  
“कार्याश्रयकर्तृवधाहिंसा” [न्यायसू० ३।१।६] इति । कार्या-  
श्रयः शरीरं सुखादेः कार्याश्रयत्वात् । कर्तृणीन्द्रियाणि विषयो-

२० पलब्धेः कर्तृत्वादिति ।

तदप्यसमीक्षितामिधानम्, सर्वथाऽपरित्यक्तपूर्वरूपत्वेनास्या-  
काशकुशेशयवत् ज्ञानादिसमवायस्यैवासम्भवात् कथं तदपेक्षया  
कर्तृत्वादिस्वरूपसम्भवः? पूर्वरूपपरित्यागे वा कथं नानेकान्ता-  
त्मकत्वम्, व्योवृत्यनुगमात्मकस्योत्पन्नः स्वसंवेदनप्रत्यक्षतः

२५ प्रसिद्धेः । व्यावृत्तिः खलु सुखदुःखादिस्वरूपापेक्षया आत्मनः  
अनुगमश्च चैतन्यद्रव्यत्वसत्त्वादिस्वरूपापेक्षया । तदात्मकत्वं  
चाप्यक्षत एव प्रसिद्धम् ।

१ आत्मादिवस्तुनः । २ द्रव्यं पर्यायमपेक्ष्य वर्तते पर्यायो द्रव्यमपेक्ष्य वर्तते ।  
३ परस्परापेक्षया । ४ मेचकरत्नादौ । ५ धर्माणामपरधर्माऽसम्भवात् । ६ प्रलब्धादि-  
प्रमाणतः । ७ येषां बाहिना शरीरमेवात्मा इन्द्रियाण्येवात्मा बुद्धिरेवात्मा वा तेषां  
भूतनिरासार्थमिदं विशेषणम् । ८ आत्मना सह । ९ बादिना चिकीर्षाप्रयत्नादि ।  
१० घटते । ११ आत्मनः । १२ व्यापित्वाव्यापित्वरूपे । १३ घटपटादौ ।  
१४ पर्यायापेक्षया व्यावृत्त्यात्मकस्य चैतन्यापेक्षयानुगमात्मकस्य । १५ आकारवै-  
लक्षण्यविशेषात् । १६ आत्मसुखादिवत् ।

ननु चानुवृत्तव्यावृत्तस्वरूपयोः परस्परं विरोधात्कथं तदात्म-  
कत्वमात्मनो युक्तम् ? इत्यप्यसत् ; प्रमाणप्रतिपक्षे वस्तुस्वरूपे  
विरोधानवकाशात् । न खलु सर्पस्य कुण्डलेतरावस्थापेक्षया  
अङ्गुल्यादेर्वा सङ्कोचितेतरस्वभावापेक्षया व्यावृत्त्यनुगमात्मकत्वं  
प्रत्यक्षप्रतिपक्षं विरोधमध्यास्ते । ५

ननु सुखाद्यवस्थानामात्मनोऽत्यन्तमेदाच्चक्ष्यावृत्तावप्यात्मनः  
किमायातं येनास्यापि व्यावृत्त्यात्मकत्वं स्यात् ? इत्यप्यपेशलम् ;  
सुखाद्यात्मनोरत्यन्तमेदस्य प्रथमपरिच्छेदे प्रतिविहितत्वात् । ननु  
आकारवैलक्षण्येप्यात्मसुखादीनामनानात्वे अन्यत्राप्यन्यतोऽन्यै-  
स्यान्यत्वं न स्यात् ; तदप्यविचारितरमणीयम् ; तद्वत्तादात्म्येना- १०  
न्यैत्रान्यस्य प्रमाणतोऽप्रतीतेः । प्रतीतौ तु भवत्येवाकारनानात्वे-  
प्यनानात्वम् प्रत्यभिज्ञाज्ञानवत्, सामान्यविशेषवत्, संशयज्ञान-  
वत्, मेचकज्ञानवद्वेति ।

यच्चोक्तम्-‘द्रव्यादयः षडेव पदार्थाः प्रमाणप्रमेयाः’ इत्यादिः  
तदप्युक्तिमात्रम् । द्रव्यादिपदार्थपट्टकस्य विचारासद्वत्त्वात् ; १५  
तथाहि-यत्तावच्चतुःसंख्यं पृथिव्यादिनित्यानित्यविकल्पाद्विभेद-  
मित्युक्तम् ; तदयुक्तम् ; एकान्तनित्ये क्रमयौगपद्याभ्यामर्थ-  
क्रियाविरोधात् । तल्लक्षणसत्त्वस्यातो व्यावृत्त्याऽसत्त्वप्रसङ्गात् ।  
यदि हि परमाण्वो ह्यणुकादिकार्यद्रव्यजननैकस्वभावाः ; तर्हि  
तत्प्रभवकार्याणां सङ्कदेवोत्पत्तिप्रसङ्गोऽविकलकारणत्वात् । २०  
प्रयोगः-येऽविकलकारणास्ते सङ्कदेवोत्पद्यन्ते यथा समान-  
समयोत्पादा षड्वोऽङ्कुराः, अविकलकारणाभ्याणुकार्यत्वेना-  
मिमता भावा इति । तथाभूतानामप्यनुत्पत्तौ सर्वदानुत्पत्ति-  
प्रसक्तिर्विशेषार्थवात् ।

ननु समवाय्यऽसमवायिनिमित्तमेदात्रिविधं कारणम् । यत्र हि २५  
कार्यं समवेति तत्समवायिकारणम्, यथा ह्यणुकस्याणुद्वयम् ।  
यच्च कार्यैकार्यसमवेतं कार्यकारणैकार्यसमवेतं वा कार्यमुत्पाद-  
यति तदसमवायिकारणम्, यथा पटारम्भे तन्नुसंयोगः, पट-

- १ षटे । २ पटस्य । ३ तादात्म्ये । ४ पूर्वोत्तरपर्यायज्ञानद्वयाकारणवत् ।  
५ षटादौ । ६ षटादेः । ७ यथा गोत्वं सामान्यमन्वत्सामान्यापेक्षाया विशेषः ।  
८ एकान्तनित्यस्य । ९ एकान्तनित्याः । १० अविकलकारणत्वस्य । ११ साधनम-  
सिद्धमिति परः सम्भावयति । १२ प्रथमपक्षेनोत्पद्यते । १३ कार्यं=पटः तेनैकार्ये  
तन्नुलक्षणे समवेतं पटम् । १४ कार्यकारणं षटगतत्वादि (देः कार्यस्य कारणं पटः)  
तेन सह पदार्थसमवेतं तन्नुगतत्वं ।

समवेतरूपाधारम्मे पटोत्पादकतन्तुरूपादि च । शेषं उत्पादकं निमित्तकारणम्, यथाऽदृष्टाकाशादिकम् । तत्र संयोगस्यापेक्षणीयस्याभावादविकलकारणत्वमसिद्धम् ; तदप्यसाम्प्रतम् ; संयोगादिनाऽनाधेयातिशयत्वेनाऽणूनां तदपेक्षया अयोगात् ।

५ अथ संयोग एवामीषामतिशयः, स किं नित्यः, अनित्यो वा ? नित्यश्चेत् ; सर्वदा कार्यात्पत्तिः स्यात् । अनित्यश्चेत् ; तदुत्पत्तौ कोऽतिशयः स्यात्संयोगः, क्रिया वा ? संयोगश्चेत्किं स एव, संयोगान्तरं वा ? न तावत्स एव ; अस्याद्याप्यसिद्धेः, खोत्पत्तौ स्वस्यैव व्यापारविरोधाच्च । नापि संयोगान्तरम् ; तस्यानभ्युपगमात् ।  
१० मात् । अभ्युपगमे वा तदुत्पत्तावप्यपरसंयोगातिशयकल्पनायामनवस्था । नापि क्रियातिशयः ; तदुत्पत्तावपि पूर्वोक्तदोषानुपह्नात् ।  
किञ्च, अदृष्टापेक्षादीन्माणुसंयोगात्परमाणुषु क्रियोत्पद्यते इत्यभ्युपगमात् आत्मपरमाणुसंयोगोत्पत्तावप्यपरोतिशयो वाच्यस्तत्र च तदेव दूषणम् ।

१५ किञ्च, असौ संयोगो द्रव्यणुकादिनिर्वर्तकः किं परमाण्वाद्याभितः, तद्व्याभितः, अनाभितो वा ? प्रथमपक्षे तदुत्पत्तौ बाधार्थं उत्पद्यते, न वा ? यच्च उत्पद्यते ; तदाणूनामपि कार्यतानुषङ्गः । अथ नोत्पद्यते ; तर्हि संयोगस्तदैवाभितो न स्यात्, सैमवायप्रतिषेधात्, तेषां च तं प्रत्यकारकत्वात् । तदकार-  
२० कत्वं चाऽनतिशयत्वेत् । अनतिशयानामपि कार्यजनकत्वे सर्वदा कार्यजनकत्वप्रसङ्गोऽविशेषात् । अतिशयान्तरकल्पने च अनवस्था-तदुत्पत्तावप्यपरातिशयान्तरपरिकल्पनात् । तैत-

१ आदिना कुविन्दादि । २ कारणत्रयमध्ये । ३ द्रव्यणुकादिकार्योत्पादने । ४ परमाणुभिः । ५ परमाणूनां परमाणुभिः सह संयोगः । ६ नित्यत्वात् । ७ सर्वदा नित्यसंयोगलक्षणातिशयसङ्गात्वात् । ८ कारणम् । ९ परमाण्वोः । १० परमाण्वोः । ११ स्वमनुत्पन्नस्य स्वात्मनि व्यापारः कथमिति विरोधः । १२ परेण । १३ द्रव्यणुकादीनि कार्याण्युत्पन्नोऽदृष्टवशाज्जायन्ते आत्मनो व्यापकत्वादिति हेतोः । १४ द्रव्यणुकादिकार्योत्पादकलक्षणा । १५ परेण । १६ जनवसालक्षणम् । १७ ततोऽन्यत्=अदृष्टाकाशादि निमित्तकारणम् । १८ तस्य संयोगस्य । १९ द्रव्यणुकोत्पादकः संयोगः परमाण्वाभितः, व्यणुकोत्पादकसंयोगो द्रव्यणुकाभितः, स्कन्वोत्पादकः संयोग-रूपणुकाभित इति । २० परमाण्वादिः । २१ उत्पद्यमानत्वादद्वयत् । २२ तस्य परमाणोः । २३ समवायाद्भविष्यतीत्युक्ते सत्यात् । २४ अग्रे । २५ कार्यकारणभाव-सम्बन्धेन तदाभितो भविष्यतीत्युक्ते सत्यात्तार्थात् । २६ संयोगजनकसमावातिशयाभावात् । २७ अनतिशयत्वस्य । २८ संयोगाश्रयस्यानुत्पद्यमानत्वेन संयोगसुदाभितो न स्यात्तः ।

स्तेषामसंयोगरूपतापरित्यागेन संयोगरूपतया परिणतिरभ्युपग-  
न्तव्या इति सिद्धं तेषां कथञ्चिदनित्यत्वम् । अन्याश्रितत्वेऽपि  
पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गः । अनाश्रितत्वे तु निहेतुकोत्पत्तिप्रसङ्गेः सदा  
सत्त्वप्रसङ्गतैः कार्यस्यापि सर्वदा भावानुपपन्नः । कैयं चासौ गुणः  
स्यादनाश्रितत्वादाकाशादिवत् ? ५

किञ्च, असौ संयोगः सर्वात्मना, एकदेशेन वा तेषां स्यात् ?  
सर्वात्मना चेत्, पिण्डोणुर्मात्रः स्यात् । एकदेशेन चेत्, सांश-  
त्वप्रसङ्गोऽमीषाम् । तदेवं संयोगस्य विचार्यमाणस्यायोगात्कथ-  
मसौ तेषामतिशयः स्यात् ? निरतिशयानां च कार्यजनकत्वे तु  
सकृद्विखिलकार्याणामुत्पादः स्यात् । न चैवम् । ततोमीषां प्राक्त- १०  
नाजनकस्वभावपरित्यागेन विशिष्टसंयोगपरिणामपरिणतानां जन-  
कस्वभावसम्भवासिद्धं कथञ्चिदनित्यत्वम् । प्रयोगः—ये क्रमव-  
त्कार्यहेतवस्तेऽनित्या यथा क्रमवद्ङ्कुरादिनिर्वर्तका बीजादयः,  
तथा च परमाणव इति ।

ततोऽयुक्तमुक्तम्—‘नित्याः परमाणवः सद्कारणवत्त्वादाका- १५  
शवत् । न चेदमसिद्धंभावयोः परमाणुसत्त्वेऽविवादात् । अकार-  
णवत्त्वं चातोऽल्पपरिमाणकारणाभावात्तेषां सिद्धम् । कारणं हि  
कार्यवृत्त्यपरिमाणोपेतमेव; तथाहि—‘अणुकाद्यवयविद्रव्यं स्वप-  
रिमाणादल्पपरिमाणोपेतकारणारब्धं कार्यत्वात्पटवत्,’ इति;  
अकारणवत्त्वाऽसिद्धिः (हेः), परमाणवो हि स्कन्धावयविद्रव्य- २०  
विनाशकारणकाः तद्भावमावित्वाद् घटविनाशपूर्वककपालवत् ।  
न चेदमसिद्धं साधनम्; अणुकाद्यवयविद्रव्यविनाशे सत्येव पर-  
माणुसद्भावप्रतीतिः । सर्वदा स्वतन्त्रपरमाणूनां तद्विनाशमन्तरेण-  
प्यत्र सम्भवाद् भागासिद्धो हेतुः, इत्यप्यसुन्दरम्; तेषामसिद्धेः ।  
तथाहि—विर्वादापन्नाः परमाणवः स्कन्धमेदपूर्वका एव तत्त्वाद् २५  
अणुकादिमेदपूर्वकपरमाणवत् ।

ननु पटोत्तरकालमावितन्तूनां पटमेदपूर्वकत्वेऽपि पटपूर्वका-  
लभाविनां तेषामतत्पूर्वकत्ववत् परमाणूनामप्यस्कन्धमेदपूर्व-

१ पूर्वरूप । २ सत्रो हेतुरद्विषयः सर्वदा व्यवस्थितः । ३ इत्युक्तादेः ।  
४ अनाश्रितपक्षे दूषणान्तरमाहाचार्यः । ५ अवयवनिर्णयश्च भवेत् । ६ कथञ्चिदेकव-  
लक्षणम् । ७ आदिना द्रष्टिजलवातावपादयः । ८ परमाणूनां कथञ्चिदनित्यत्वं यतः ।  
९ आद्यवासिद्धं स्वरूपसिद्धं वा । १० जैनैश्चेतिकयोः । ११ द्वितीयविशेषणम् ।  
१२ दृष्टान्ते तन्त्रवः । १३ कथम् ? तथा हि । १४ अवयविद्रव्यमात्रं पूर्वंप्राप्ताना-  
मित्यर्थः । १५ जगति । १६ स्वतन्त्रत्वेन । १७ नन्दो—विनाशः । १८ साधन-  
सामैकान्तिकत्वमुद्भावयति परः । १९ निम्नपटसिद्धासिद्धानाम् ।

कत्वं केषाञ्चित्स्यात्; इत्यप्यनुपपन्नम्; तेषामपि प्रवेणीभेद-  
पूर्वकत्वेन प्रतीत्या स्कन्धभेदपूर्वकत्वसिद्धेः । 'बलवत्पुरुषप्रेरित-  
मुद्राराद्यभिघातादवयवक्रियोत्पत्तेः अवयवविभागात्संयोगविना-  
शाद्विनाशोर्थानाम्' इत्यादि विनाशोत्पादप्रक्रियोद्घोषणं तु प्रागेव  
५ कृतोत्तरम् । ततो नित्यैकत्वस्वभावाणूनां जनकत्वासम्भवा-  
सदारब्धं तु व्यणुकाद्यवयविद्रव्यमनित्यमित्यप्ययुक्तमुक्तम् ।

तैन्त्वाद्यवयवेभ्यो भिन्नैश्च च पटाद्यवयविद्रव्यस्योपलब्धिल-  
क्षणप्राप्तस्यानुपलम्भेनासत्त्वात् । न चास्योपलब्धिलक्षणप्राप्तै-  
वमसिद्धम्; "महर्त्यनेकद्रव्यत्वाद्व्यविशेषांश्च रूपोपलब्धिः"  
१० [ वैशे० सू० ४।१।६ ] इत्यभ्युपगमात् । न च समानदेशत्वादवय-  
विनोऽवयवेभ्यो भेदेनानुपलब्धिः; वातातपादिभ्यो रूपरसादिभि-  
न्नानेकान्तात्, तेषां समानदेशत्वेपि भेदेनोपलम्भसम्भवात् ।

किञ्च, अवयवावयविनोः शास्त्रीयदेशापेक्षया समानदेश-  
त्वम्, लौकिकदेशापेक्षया वा? प्रथमपक्षेऽसिद्धो हेतुः; पटाद्यव-  
१५ विनो ह्यन्ये एवारम्भकालस्तन्त्वादयो देशास्तेषां चान्ये भवैर्द्विर-  
भ्युपगम्यन्ते । द्वितीयपक्षेऽप्यनेकान्तः; लोके हि समानदेशत्व-  
मेकभाजनवृत्तिलक्षणं भेदेनार्थानामनुपलम्भेऽप्युपलब्धम्, यथा  
कुण्डे षडरादीनाम् ।

किञ्च, कतिपयावयवप्रतिभासे सत्यवयविनः प्रतिभासा,  
२० निखिलावयवप्रतिभासे वा? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; जलनिम-  
ग्नमहाकायगजादेरुपरितनकतिपयावयवप्रतिभासेऽप्यखिलावयव-  
व्यापिनो गजाद्यवयविनोऽप्रतिभासनात् । नापि द्वितीयविकल्पो  
युक्तः; मध्यपरभागवर्तिसकलावयवप्रतिभासासम्भवेनावयवि-  
नोऽप्रतिभासप्रसङ्गात् । मूयोऽवयवग्रहणे सत्यवयविनो ग्रहण-  
२५ मित्यप्ययुक्तम्; यतोऽर्वाङ्गभागमाव्यवयवग्राहिणा प्रत्यक्षेण पर-  
भागमाव्यवयवाग्रहणाच्च तेन तद्व्याप्तिरवयविनो ग्रहीतुं शक्या,

१ स्कन्धभेदपूर्वकत्वेऽस्कन्धभेदपूर्वकत्वे च तस्यादिति हेतोर्वर्तनात् । २ षडविनाश-  
पूर्वककपालवदिति इष्टान्त साध्यसाधनविकल दर्शयन्नाह परः । ३ यत्र प्रवेणीरूप-  
स्यार्थस्य विनाशो वेद्यः, तन्तवस्तु सारम्भकावयवेभ्यः समुत्पन्नत्वे, ततः प्रवेणी-  
भेदपूर्वकत्वं पटपूर्वकालमाविनामपि तन्तुना नास्तीति भावः । ४ उक्त्यायात् ।  
५ योगपरिकल्पितं स्थूलावयविद्रव्यं निराकुर्वन्नाह वैतः । ६ सर्वथा । ७ भेदेन ।  
८ विशेषणम् । ९ परमाणुनाऽव्यभिचारार्थमेतत् । १० आकाशेन व्यभिचारपरि-  
हारार्थं रूपविशेष इति । ११ भेदे सत्यपि । १२ अन्यः क्षीरवत् । १३ पटस्य ।  
१४ अन्यथा समानदेशत्वाद्भेदेनानुपलब्धिरिति तर्हि । १५ कथम्? तथा हि ।  
१६ प्रवेणिकासम्भन्विनोऽर्वाः । १७ वैशेषिकैः । १८ सर्वथा तयोर्भेदात् । १९ षड् ।

व्याप्याग्रहणे तद्व्यापकस्यापि ग्रहीतुमशक्तेः। प्रयोगैः-यद्येन रूपेण प्रतिभासते तत्तथैव तद्व्यवहारविषयः यथा नीलं नीलरूपतया प्रतिभासमानं तद्रूपतयैव तद्व्यवहारविषयः, अर्वाग्भागमाव्यवयवसम्बन्धितया प्रतिभासते चावयवीति । न च परभागभाविव्यवहितावयवाप्रतिभासनेप्यव्यवहितोऽवयवी प्रतिभाती-<sup>५</sup>त्यभिधातव्यम्; तदप्रतिभासने तद्वर्तत्वेनास्याऽप्रतिभासनात् । तथाहि-यस्मिन्प्रतिभासमाने यद्रूपं न प्रतिभाति तत्ततो भिन्नम् यथा घटे प्रतिभासमानेऽप्रतिभासमानं पटस्वरूपम्, न प्रतिभासते। अर्वाग्भागमाव्यवयवसम्बन्धव्यवयवविस्वरूपे प्रतिभासमाने परभागमाव्यवयवसम्बन्धव्यवयवविस्वरूपम्, इति कथं निरंशैकाव-<sup>१०</sup>यविसिद्धिः? अर्वाग्भागपरभागमाव्यवयवसम्बन्धित्वलक्षणविरुद्धधर्माभ्यासेप्यस्याभेदे सर्वत्र भेदोपरतिप्रसङ्गः, अर्थस्य भेदनिबन्धनस्यासम्भवात् । प्रतिभासभेदो भेदनिबन्धनमित्यप्यपेश-<sup>१५</sup>लम् । विरुद्धधर्माभ्यासं भेदकमन्तरेण प्रतिभासस्यापि भेदकत्वासम्भवात् ।

१५

नापि परभागमाव्यवयवावयविग्राहिणा प्रत्यक्षेणार्वाग्भागमाव्यवयवसम्बन्धित्वं तस्मै ग्रहीतुं शक्यम्; उक्तदोषानुपपन्नात् । नापि स्मरणेनार्वाकपरभागमाव्यवयवसम्बन्धव्यवयवविस्वरूपग्रहः; प्रत्यक्षानुसारेणास्य प्रवृत्तेः, प्रत्यक्षस्य च तद्ग्राहकत्वप्रतिषेधात् । नाप्यात्मा अर्वाकपरभागावयवव्यापित्वमवयविनो ग्रहीतुं समर्थः;<sup>२०</sup> उक्ततया तस्य तद्ग्राहकत्वानुपपत्तेः, अन्यथा स्वापमदमूर्च्छाद्यवस्थास्यपि तद्ग्राहित्वानुपपत्तेः । प्रत्यक्षादिसिद्ध्याप्यात्मनोऽवयवविस्वरूपग्राहित्वायोगः; अवयविनो निखिलावयवव्याप्तिग्राहित्वेनाभ्यक्षादेः प्रतिषेधात् ।

१ दण्डाग्रहणे तत्सम्बन्धवान्दण्डी पुमान् ग्रहीतुं न शक्नोति यथा । २ अवयवी धर्मी अर्वाग्भागमाव्यवयवसम्बन्धितया तद्व्यवहारविषयस्तथैव प्रतिभासमानत्वादित्युपदिष्टाचोच्यते । ३ परभागभाविव्यवहितावयवाप्रतिभासमानेति अव्यवहितोऽवयवी भाति, ततस्तथैव प्रतिभासमानत्वमसिद्धमित्युक्तेः सत्याह । ४ अवयवी परभागमाव्यवयवगतत्वेन च प्रतिभासतेऽगृहीतापारत्वान्नेरमूर्ति मोदकराक्षिवत् । ५ भिन्नम् । ६ तस्मिन्प्रतिभासमानेऽप्रतिभासमानत्वादिमि हेतोः । ७ तस्माद्विग्रहेव । ८ भागद्वये सति । ९ तन्मुलक्षणैरणीः कृत्वा पटोऽशी प्रतिपाद्यते तस्मात्सर्वथा मित्रा अतो निरज्ञावयवी ते तस्मात्सर्वथा मित्रा अतस्तेषां विनाशेति अस्य विनाशो नातो नित्यत्वमिति भावः । १० तत्र परस्मै । ११ व्यवहिताऽव्यवहितलक्षणम् । १२ घटपटादौ । १३ विरुद्धधर्माभ्यासादपरस्मै । १४ अवयवविचः । १५ व्याप्याग्रहणे तद्व्यापकस्यापि ग्रहीतुमशक्तेरित्यादि । १६ परमते नहं आत्मा । १७ आदिना स्मरणग्रहणम् ।

ननु चार्वागभागदर्शने सत्युत्तरकालं परभागदर्शनानन्तरस्सरण-  
सहकारीन्द्रियजनितं 'स एवायम्' इति प्रत्यभिज्ञाज्ञानमध्यक्षम-  
वयविनः पूर्वापरवयवव्याप्तिग्राहकम्; तदप्यसाम्प्रतम्; प्रत्य-  
भिज्ञाज्ञानेऽप्यक्षरूपत्वस्यैवासिद्धेः । अक्षाश्रितं विशदस्वभावं हि  
५ प्रत्यक्षम्, न चास्यैतल्लक्षणमस्तीति । अक्षाश्रितत्वे चास्याखिला-  
वयवव्याप्यवयवविस्वरूपग्राहकत्वासम्भवः; अक्षाणां सकलावयव-  
ग्रहणे व्यापारासम्भवात् । न च सरणसहायस्यापीन्द्रियस्या-  
विषये व्यापारः सम्भवति । यद्यस्याविषयो न तत्तत्र सरणसहा-  
यमपि प्रवर्तते यथा परिमलसरणसहायमपि लोचनं गन्धे,  
१० अविषयश्च व्यवहितोऽक्षाणां परभागभाव्यवयवसम्बन्धित्वलक्ष-  
णोऽवयविनः स्वभाव इति ।

न चानेकावयवव्यापित्वमेकस्वभावंस्यावयविनो घटते; तथा  
हि-यन्निरंशैकस्वभावं द्रव्यं तत्र सकृदनेकद्रव्याश्रितम् यथा पर-  
माणु, निरंशैकस्वभावं चावयविद्रव्यमिति । यद्वा, यदनेकं द्रव्यं  
१५ तत्र सकृन्निरंशैकद्रव्यान्वितम् यथा कुटकुड्यादि, अनेकद्रव्याणि  
चावयवा इति ।

अस्तु चानेकत्रावयविनो वृत्तिः; तथाप्यस्यासौ सर्वात्मना,  
एकदेशेन वा स्यात्? यदि सर्वात्मना प्रत्येकमवयवेष्ववयवी  
वर्तते; तदा यावन्तोऽवयवास्तावन्त एवावयविनः स्युः, तथा  
२० चानेककुण्डादिव्यवस्थितविल्वादिषडनेकावयवस्युपलम्भानुपपन्नः ।

अथैकदेशेन; अत्राप्यस्यानेकत्र वृत्तिः किमेकावयवक्रोडीकृतेन  
स्वभावेन, स्वभावान्तरेण वा स्यात्? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; तस्य  
तेनैवावयवेन क्रोडीकृतत्वेनान्यत्र वृत्त्ययोगात् । प्रयोगः-यदेक-  
क्रोडीकृतं वस्तुस्वरूपं न तदेवान्यत्र वर्तते यथैकभाजनक्रोडी-  
२५ कृतमाग्रादि न तदेव भाजनान्तरमध्यमध्यास्ते, एकावयवक्रोडी-  
कृतं चावयवविस्वरूपमिति । वृत्तौ वान्यत्र अत्रावयवे वृत्त्यनुपपत्ति-  
रपरस्वभावाभावात् । एकावयवसम्बद्धस्वभावस्याऽतद्देशावयवा-  
न्तरसम्बन्धाभ्युपगमे च तदवयवानामेकदेशतार्पितः, एकदेश-  
तायां चैकाल्प्यमविमकरूपत्वात् । विभक्त्युपावस्थितौ चैकदेशत्वं

१ सरणं हि पूर्वभागस्य । २ तदविषयत्वात् । ३ परपरिकल्पितमवयविनः  
स्वरूपमऽवयवग्रहणतया निराकुर्वन्नाह । ४ एकस्वभावत्वं च नित्यनिरंशैकस्वभाव-  
त्वात् । ५ अवयवान्तरे । ६ विवक्षितवयवे । ७ तेषां=विवक्षितविवक्षितानाम् ।  
८ विवादापन्ना अवयवा एकदेशत्वभावात् अन्यत्वेकस्वभावेनावयविना व्याप्यत्वादेक-  
वयवत्वम् । ९ अवयवानाम् । १० अविमकरूपत्वमसिद्धमित्युक्ते सत्याह ।

न स्यात् । अथ स्वभावान्तरेणासाववयवान्तरे वर्तते; तदास्य निरंशताव्याघातः, कथञ्चिदनेकत्वप्रसङ्गश्च, स्वभावमेदात्मकत्वाद्भ्रस्तुमेदस्य । ते च स्वभावा यद्यतोऽर्थान्तरभूताः; तदा तेष्वप्यसौ स्वभावान्तरेण वर्ततेत्यनवस्था । अथानर्थान्तरभूताः; तर्ह्यवयवैः किमपराधं येनैते तथा नेष्यन्ते ? तदिष्टौ बावयविनोऽने-<sup>५</sup>कैत्वमनित्यत्वं च स्वशिरस्ताडं पृथक्पूर्वतोप्यायातम् ।

यदि चावयवविभागः स्यात्तदैकदेशस्यावरणे रागे च अखिलस्यावरणं रागश्चानुषज्यते, रक्तारक्तयोरावृतानावृतयोश्चावयविरूपयोरेकत्वेनाभ्युपगमात् । न चैवं प्रतीतिः, प्रत्यक्षविरोधात् । न चान्योन्यं विरुद्धधर्माध्यासेनैकं युक्तम्, अत एव, अनुमान-१० विरोधाच्च । तथाहि-यद्विरुद्धधर्माध्यासितं तन्नैकम् यथा कुट-कुट्याद्युपलभ्यानुपलभ्यस्वभावम्, आवृतानावृतादिसंख्येण विरुद्धधर्माध्यासितं चावयविविस्वरूपमिति । तथाप्येकत्वे विश्वस्यैकद्रव्यत्वानुपपन्नः ।

ननु रक्तादे रागः कुक्कुमादिद्रव्येण संयोगः, स चाव्याप्यवृत्ति-१५ स्तत्कथमेकैत्र रागे सर्वत्र राग एकदेशावरणे सर्वसंज्ञावरणम् ? तदप्यसारम्, यतो यदि पटादि निरंशमेकं द्रव्यम्, तदा कुक्कुमादिना किं तत्राव्याप्तं येनाऽव्याप्यवृत्तिः संयोगो भवेत् ? अव्याप्तौ वा भेदप्रसङ्गो व्याप्ताव्याप्तस्वरूपयोर्विरुद्धधर्माध्यासेनैकत्वायोगात् ।

किञ्च, अस्याव्याप्यवृत्तित्वं सर्वद्रव्याव्यापकत्वम्, एकदेश-२० वृत्तित्वं वा ? न तावत्प्रथमः पक्षः, द्रव्यस्यैकस्य सर्वशब्दविषयत्वानभ्युपगमात् । अनेकत्र हि सर्वशब्दप्रवृत्तिरिष्टा । नापि द्वितीयः, तस्यैकदेशासम्भवात्, अन्यथा सावयवत्वप्रसङ्गात् । ततो नास्त्यवयवी वृत्तिविकल्पाद्यनुपपत्तेरिति ।

ननु चावयविनो निरासे यत्साधनं तर्त्तिकं स्वर्तन्त्रम्, प्रसङ्गसा-२५

१ किं तु साश्रवप्रसङ्गः । २ अवयविनः सकाशादभिधाः । ३ तन्मुल्लङ्घने । ४ अवयवी धर्म्येऽनेको भवतीति साध्यो धर्मोऽवयवेभ्योऽनर्थान्तरत्वात्स्वरूपवत् । अवयवी धर्म्येऽनिलो भवति अवयवेभ्योऽनर्थान्तरत्वात्स्वरूपवत् । अवयवाना बहुत्वादित्येवमेवेति समग्र हेतुः । ५ वैशेषिकस्य । ६ निरस्य । ७ तस्माच्चैकम् । ८ एकदेशे । ९ अव्याप्यवृत्तिर्गुणः संयोगलक्षण इति वचनात् । १० एकदेशे । ११ देशे । १२ देशस्य । १३ परेण । १४ तथा च निरस्यव्याघातः स्यात् । १५ शशमिषाणवत् । १६ पक्षहेतुद्वयान्तादयो वत्र विद्यन्ते तत्सत्तत्रम् ।



धनं वा ? स्वतन्त्रं चेत् ; धर्मिसाध्यपदयोर्व्याघातः, यथा-‘इदं च नास्ति च’ इति । हेतोराश्रयासिद्धत्वञ्च, अवयविनोऽप्रसिद्धेः । न च वृत्त्या सत्त्वं व्याप्तम् ; समवायवृत्त्यनभ्युपगमेऽपि भवता रूपादेः सत्त्वाभ्युपगमात् । एकदेशेन सर्वात्मना वावयविनोः वृत्तिप्रतिषेधे विशेषप्रतिषेधस्य शेषाभ्यनुष्ठाविषयत्वात् प्रकारान्तरेण वृत्तिरभ्युपगता स्यात्, अन्यथा ‘न वर्तते’ इत्येवाभिधातव्यम् । वृत्तिश्च समवायः, तस्य सर्वत्रैकत्वाभिरवयवत्वाच्च कात्स्न्यैकदेशशब्दाविषयत्वेम् । अथ प्रसङ्गसाधनं परस्येष्ट्याऽनिष्ठापादनात् । ननु परेष्टिः प्रमाणम्, अप्रमाणं वा ? यदि प्रमाणम् ; १० तर्हि तथैव बाध्यमानत्वादनुत्थानं विपरीतानुमानस्य । न चानेनैवास्या बाधा ; तामन्तरेणास्याऽपक्षधर्मत्वात् । अथाप्रमाणम् ; तर्हि प्रमाणं विना प्रमेयस्यासिद्धिरित्यभिधौतव्यम्, किमनुमानोपन्यासेनास्याऽपक्षधर्मतयाऽप्रमाणत्वात् ?

इत्यन्यपरीक्षिताभिधानम् ; यतः प्रसङ्गसाधनमेवेदम् । तच्च १५ ‘साध्यसाधनयोर्व्याप्यव्यापकभावसिद्धौ व्याप्याभ्युपगमो व्यापकाभ्युपगमनान्तरीयकः, व्यापकाभावो वा व्याप्याभावाविनाभावी’ इत्येतत्प्रदर्शनफलम् । [ व्याप्य ] व्यापकभावसिद्धिश्चात्र लोकप्रसिद्धैव । लोको हि कस्यचित्कचित्सर्वात्मना वृत्तिमभ्युपगच्छति यथा विद्वादेः कुण्डादौ, कस्यचित्त्वेकदेशेन यथानेक- २० पीठादिशयितस्य चैत्रादेः । यत्र च प्रकारद्वयं व्यावृत्तं तत्र वृत्ते-

१ परेष्ट्यानिष्ठापादनं च तत्प्रसङ्गसाधनम् । २ अवयवी भर्मी, नास्तीति साध्यपदम् । ३ स्वमतापेक्षया वक्ति वैशेषिकः । लोकप्रसिद्धोऽस्ति नास्तीति प्रतिपाद्यते जैनैरिति विरोध इति भावः । परस्पर विरोध इत्यर्थः । ४ वादिनो जैनस्यापेक्षयाऽवयविनो धर्मिणः । ५ समवायवृत्त्यानगवेष्यवयवी वर्तते यतः । ६ जैनेन । ७ तादात्म्येन, न तु समवायेनेति भावः । ८ किञ्च । ९ शेषाभ्यनुष्ठा=सामान्याभ्युपगमः । १० समवायेन । ११ विशेषप्रतिषेधस्य शेषाभ्यनुष्ठाविषयत्वाभावे । १२ न तु सर्वात्मनैकदेशेनेत्याभिधातव्यम् । १३ अवयवेष्ववयविनः । १४ अवयवेषु । १५ अवयवेष्ववयविनः समवायः कात्स्न्यैकदेशेन वेति शब्दः । १६ प्रतिवादिनो वैशेषिकस्य । १७ पराभ्युपगमेन परस्यैवानिष्ठापादनात् । १८ अवयवेष्वो मित्रोऽवयवी सर्वथा विषये इति परेष्टिः । १९ अवयवी नास्ति वृत्तिविरूपाद्यनुपपत्तेरिति । २० अवयवी नास्ति वृत्तिविरूपाद्यनुपपत्तेरित्यस्य । २१ विपरीतानुमानेन परेष्टेः पराभ्युपगमस्य यदा बाधा स्यात्तदा परेष्टिविषयस्यावयविनोऽसत्तात्तद्धर्मत्वं हेतोर्नास्तीति भावः । २२ अवयवविरूपस्य । २३ जैनेन । २४ एवकारः स्वतन्त्रसाधननिरासार्थः । २५ कचिदुच्यते । २६ अविनाभूतः । २७ धर्मिणि । २८ प्रसङ्गसाधनं भवति । २९ कात्स्न्यैकदेशवृत्ति-त्वयोः । ३० अवयवेषु । ३१ अवयवेष्ववयविनः सर्वात्मनैकदेशेन वा वृत्तेः ।

रभाव एव इति कथं न व्याप्तिर्यतोत्रे प्रसङ्गसाधनस्यावकाशो न स्यात् ? निरस्ता चानेकस्मिन्नेकस्य वृत्तिः प्रागेव ।

यच्चोक्तम्—‘परेष्टिः प्रमाणमप्रमाणं वा’ इत्यादि; तदव्ययुक्तम्; यतः प्रमाणाप्रमाणचिन्ता संवादविस्वादाधीना । परेष्टिमात्रेण च प्रतिपक्षेवयविनि संवादकप्रमाणाभावादप्रामाण्यं स्वयमेव भविष्यति । ननु च ‘इहेदम्’ इति प्रत्ययप्रतीतिः प्रत्यक्षेणैवावयविनो वृत्तिसिद्धेः कथं संवादकप्रमाणाभावो यतोऽस्याः प्रामाण्यं न स्यात् ? इत्यप्यसङ्गतम्; तन्त्वाद्यवयवेषु व्यतिरिक्तस्य षटाद्यवयविनः समवायवृत्तेः समेष्ट्यप्रतीतिः । न च मेदेनाप्रतिभासमानस्य ‘इहेदं वर्त्तते’ इति प्रतीतिर्युक्ता । न हि मेदेनाप्रतिभासमाने कुण्डे ‘इह कुण्डे वदराणि’ इति प्रत्ययो दृष्टः ।

यद्य(व)न्युक्तम्—वृत्तिश्च समवायस्तस्य सर्वत्रैकत्वाच्चिरवयवत्वाच्च कात्स्न्यैकदेशशब्दाविषयत्वमिति; तदपि स्वमनोरथमाश्रम् । समवायस्याग्रे प्रयन्वेन प्रतिषेधात् । ननु तथाप्येकस्मिन् अवयविनि कात्स्न्यैकदेशशब्दाप्रवृत्तेर्युक्तोऽयं प्रश्नः—‘किमेकदेशेन एकदेशः’ इति चानेकत्वे सति कस्याचिदभिधानम् । ताविमौ कात्स्न्यैकदेशशब्दावेकस्मिन् अवयविन्यनुपपन्नौ; इत्यप्यसमीचीनम्; एकैकैकत्वेनावयविनोऽप्रतिभासमानात् प्रकारान्तरेण च वृत्तेरसम्भवात् । न खलु कुण्डादौ वदरादेः स्तम्भादौ वा वंशादेः कात्स्न्यैकदेशं परित्यज्य प्रकारान्तरेण वृत्तिः प्रतीयते । ततोऽवयवैभ्यो भिन्नस्यावयविनो विचार्यमाणस्यायोगाज्ञासौ तथाभूतोभ्युपगन्तव्यः । किं तर्हि ? तन्त्वाद्यवयवानामेवावस्थाविशेषैः स्वात्मभूतैः शीतापनोदाद्यर्थक्रियाकारी प्रमाणतः प्रतीयमानः षटाद्यवयवीति प्रेक्षादक्षैः प्रतिपक्षव्यम् ।

ननु रूपादिव्यतिरेकेणापरस्यावस्थानुः शीताद्यपनोदसमर्थस्याप्रतीतितोऽसत्त्वात् कस्यावयवित्वं भवतापि प्रसाध्यते ? चेष्टुः—

१ एकदेशेन सर्वात्मना वेति प्रकारद्वयेन वृत्तिर्वासा, तथा वाऽवयवविस्वरूपव्याप्तिरिति हेतोः । २ एकस्यावयविनोऽनेकैश्वर्यवेषु वृत्तिर्भविष्यति जन्मत्यासङ्गायामाश्रयः । ३ सङ्गश्चात् । ४ वदरेभ्यः । ५ विस्तरेण । ६ जनेषाणां स्वभावानाम् । ७ देशानाम् । ८ देशस्य । ९ सर्वथा । १० अवयवेषु । ११ परमप्रापेक्षया । १२ वर्तनस्य । १३ सर्वथा । १४ आज्ञानवित्तानीभूतपरिणामविशेषः । १५ अवयवैभ्यः कथञ्चिदभिन्नः । १६ रूपप्रतिषेधकः सौगतः । १७ आदिना रसगन्धवर्णशब्दाः । १८ अवयविरूपप्रदार्थस्य । १९ हेतोर्विद्वत् परिरति परः ।

प्रभवप्रत्यये हि रूपमेवावभासते नापरस्तद्धान्, एवं रसनादिप्रत्ययेषु वाच्यम्; इत्यविचारितरमणीयम्, यतः किमेकस्य रूपादिमतोऽसम्भवो विरुद्धधर्माध्यासेनैकत्रैकत्वानेकैतव्योस्तादात्म्यविरोधात्, तद्ग्रहणोपायासम्भवाद्वा? प्रथमपक्षे तत्र तयोः कथञ्चित्तादात्म्यं विरुद्धते, सर्वथा वा? सर्वथा चेत्, सिद्धसाध्यता। कथञ्चिदेकत्वं तु रूपादिमिर्विरुद्धधर्माध्यासेष्येकस्यैव विरुद्धम् चित्रज्ञानस्येव नीलाद्याकारैर्विकल्पज्ञानस्येव वा विकल्पेतरौकारैरिति। यथा च रूपादिरहितं प्रत्यक्षे न प्रतिभासते तथा तद्ग्रहिता रूपादयोपि। न खलु मातुलिकद्रव्यरहितास्तद्रूपादयः  
 १० स्वप्नेषुपलभ्यन्ते। वेस्तुनश्चेदमेवाध्यक्षत्वं यदनात्मस्वरूपपरिहारेण बुद्धौ स्वरूपसमर्पणं नाम। इमे तु रूपादयो द्रव्यरहितास्तत्र स्वरूपं न समर्पयन्ति प्रत्यक्षतां च स्वीकर्तुमिच्छन्तीत्यमूल्यदानक्रयिणैः।

किञ्च, इदं स्तम्भादिव्यपदेशार्हं रूपम्-किमेकं प्रत्येकम्, अनेकानंशपरमाणुसञ्चयमार्त्तं वा? प्रथमपक्षे अधोमध्योर्द्धात्मकैकरूपवत् रसाद्यात्मकैकस्तम्भद्रव्यप्रसङ्गः। द्वितीयपक्षे तु किमेकमनेकपरमाणवाकारं ज्ञानं तद्ग्राहकम्, एकैकपरमाणवाकारमनेकं वा? प्रथमविकल्पे चित्रैकज्ञानवद्रूपाद्यात्मकैकद्रव्यप्रसिद्धिरनिवेष्ट्या स्यात्। द्वितीयविकल्पे तु परस्परविविक्तज्ञानपरमाणुप्रति-  
 २० भासैस्यासंवेदेनात्सकलशून्यतानुपेक्षेः।

अथ तद्ग्रहणोपायासम्भवाद्रूपादिमतो द्रव्यस्याभावः, तन्न; 'यमहमद्राक्षं तमेतर्हि स्पृशामि' इत्यनुसन्धानं प्रत्ययस्य तद्ग्राहिणः सद्भावात्। न च द्वाभ्यामिन्द्रियार्थ्यौ रूपस्पर्शोच्चारैकार्थ्यग्रहणं विना प्रतिसन्धानं न्यार्थ्यम्। रूपस्पर्शयोश्च प्रतिनियतेन्द्रियग्राह्य-  
 २५ त्वादेतन्न सम्भवति। चेत्तन्नत्वाच्चात्मनः स्पर्शोर्द्विरप्यायसहायस्य

१ एकसिन्वस्तुनि। २ अवयविनः। ३ रूपादीनाम्। ४ द्रव्यरूपतया। ५ साहित्ये। ६ अवयविनः। ७ इतरो=निर्विकल्पकः पूर्वसविकल्पकाद्रुपादानमूला-  
 द्विविकल्पकालसहकारिभूतात्सविकल्पकमुत्पद्यते तदा तदुभयोराकारमिति। ८ इदमेव सम्भावयति। ९ तर्हि रूपादयो द्रव्यरहिता बुद्धौ स्वरूपसमर्पणं अविध्यन्तीत्याह। १० द्रव्यरहितत्वादिति प्रथमान्तोपि हेतुशेषः। ११ मूलं स्वरूपसमर्पणलक्षणमदत्ता क्रयिण इति भावः। १२ सौगतमते चित्रैकज्ञानं स्वीकृतम्। १३ एकसिन्वस्तुनि। १४ लोके। १५ ज्ञेयग्राहकज्ञानाभावाद् ज्ञेयस्याप्यभावात्। १६ अनुसन्धानं=प्रत्यभिज्ञानम्। १७ बह्वुःस्पर्शेनान्याम्। १८ अनेव प्रत्यक्षमपि तद्ग्राहकमुक्तम्, तत्तत्त्वात्मसिद्धिरिति। १९ वेदेभिरुक्तमनिरासायम्। २० बौद्धमतनिरासायम्।

अर्वाक्परभागावयवव्यापित्वग्रहणमप्यवयवविद्रव्यस्योपपन्नम् । प्रसाधितं चानुसन्धानस्य सविषयत्वमित्यलमतिप्रसङ्गेन । तन्न परेषां चतुःसंख्यं द्रव्यं यथोपैवर्णितस्वरूपं घटते, सर्वथा नित्यस्वभावाणूनामनर्थक्रियाकारित्वेनासम्भवतः तदारब्धवृत्त्यणुकावयवविद्रव्यस्याप्यसम्भवात् । न हि कारणाभावे कार्यं प्रभव-<sup>५</sup>त्यतिप्रसङ्गात् । स्वावयवेभ्योर्यान्तरस्यावयविनो ग्राहकप्रमाणाभावाच्चासत्त्वम् ।

जातिभेदेन पृथिव्यादिद्रव्याणां भेदोपवर्णनं चानुपपन्नम्; स्वरूपासिद्धौ शशशृङ्गवद्धेवोपवर्णनासम्भवात् । जातिभेदेनात्यन्तं तेषां भेदे चान्योन्यमुपादानोपादेयभावो न स्यात् । येषां हि १० जातिभेदेनात्यन्तिको भेदो न तेषां तद्भावः यथात्मपृथिव्यादीनाम्, तथा तद्भेदश्च पृथिव्यादिद्रव्याणामिति । तन्तुपटाद्युपादानोपादेयभावेन व्यभिचारपरिहारायम् आत्यन्तिकविशेषणम् । न हि तन्नात्यन्तिकस्तद्भेदः, पृथिवीत्वादिसामान्यस्याभिन्नस्यापीदृशः । नन्वेवं द्रव्यत्वादिना पृथिव्यादीनामप्यभेदात्तद्भावोऽस्तु; १५ तन्न; आत्मपृथिव्यादीनामप्येवं तद्भेदाभावाद्युपादानोपादेयभावः स्यात्, तथा चात्माद्वैतप्रसङ्गात्कुतः पृथिव्यादिभेदः स्यात् ? तन्नात्यन्तिकभेदे पृथिव्यादीनां तद्भावो घटते । अस्ति चासौ चन्द्रकान्ताजलस्य, जलान्मुक्ताफलादेः, काष्ठादनलस्य, व्यजनादेः आनिलस्योत्पत्तिप्रतीतिः । चन्द्रकान्ताद्यन्तर्भूताजलादेरेव द्रव्या-<sup>२०</sup>जलाद्युत्पत्तिः; इत्यप्यनुपपन्नम्, तन्न तत्सद्भावावेदकप्रमाणाभावात् । तथापि चन्द्रकान्तादौ जलाद्यभ्युपगमे सृत्तिपण्डादौ घटाद्यभ्युपगमोपि कर्तव्यं इति सांख्यदर्शनमेव स्यात् । ततो सृत्तिपण्डादौ घटादिवच्चन्द्रकान्तादौ जलादेरप्यप्रतीतितोऽभावात्, आत्यन्तिकभेदे चोपादानोपादेयभावासम्भवात्, 'पर्यायभेदेना-<sup>२५</sup>न्योन्यं पृथिव्यादीनां भेदो रूपरसगन्धस्पर्शात्मकपुद्गलद्रव्यरूपतया चाभेदः' इत्यनवद्यम् । केषादिसमन्वैयञ्च गुणपदार्थ-

१ रूपस्पर्शः । २ प्रत्यभिज्ञानसमर्थनसमये । ३ अनुसन्धानसमर्थनेन । ४ वैशेषिकाणाम् । ५ सर्वथा नित्यानिलतया । ६ पृथिवीत्वादिना । ७ द्योर्जातिभेदेन भेदो न तयोर्भादानोपादेयभावोऽस्तीत्युक्तं तत्सन्तुपटादौ व्यभिचारो भवति । ८ तन्तुत्वपटत्वजातिभेदे सत्यपि । ९ तन्तुपटादिषु । १० अवयवभेदे पृथिव्यादय इति । ११ ना भवतित्युक्ते सत्याह । १२ पृथिवीरूपात् । १३ सर्वं सर्वं विधत्ते इति वचनात् । १४ पृथिव्यामेव गन्धोऽप्येव रस इति वचनात्कर्म चतुर्णामविशेषेण रूपाधारमकत्वमित्याह । १५ समन्वयः सम्बन्धः ।

परीक्षायां चतुर्णामपि समर्थयिष्यते । तच्च नित्यादिस्वभावमा-  
त्यन्तिकमेदमिजं च पृथिव्यादिद्रव्यं घटते ।

नाप्याकाशादिः सर्वथा नित्यनिरंशत्वादिधर्मोपेतस्यास्याप्य-  
प्रतीतेः । ननु चाकाशस्य तद्धर्मोपेतत्वं शब्दादेव लिङ्गाप्रतीयते;  
५ तथाहि-ये विनाशित्वोत्पत्तिमत्त्वादिधर्माध्यासितास्ते कंचिदा-  
श्रिता यथा घटादयः, तथा च शब्दा इति । गुणत्वाच्च ते कचिदा-  
श्रिता यथा रूपादयः । न च गुणत्वमसिद्धम्, तथाहि-शब्दो  
गुणः प्रतिषिध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वे सति सत्तासम्बन्धित्वाद्-  
पादिषत् । न चेदं साधनमसिद्धम्, तथाहि-शब्दो द्रव्यं न भव-  
१० त्येकद्रव्यत्वाद्वादिषत् । न चेदमप्यसिद्धम्, तथाहि-एकद्रव्यः  
शब्दः सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्तद्वदेव ।  
'सामान्यविशेषवत्त्वात्' इत्युच्यमाने हि परमाणुभिर्व्यभिचारः,  
तन्निवृत्त्यर्थम् 'इन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्' इत्युक्तम् । तथापि घटादिना  
व्यभिचारः, तन्निरासार्थमेकविशेषणम् । 'एकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्'  
१५ इत्युच्यमाने आत्मना व्यभिचारः, तन्निवृत्त्यर्थं बाह्यविशेषणम् ।  
रूपत्वादिना व्यभिचारपरिहारार्थं च 'सामान्यविशेषवत्त्वे सति'  
इति विशेषणम् ।

तथा, कर्मापि न भवत्यसौ संयोगविभागाकारणत्वाद्वादि-  
षदेवेति । तस्मात्सिद्धं प्रतिषिध्यमानद्रव्यकर्ममैवैवं शब्दस्य ।  
२० 'सत्तासम्बन्धित्वात्' इत्युच्यमाने च द्रव्यकर्मभ्यामनेकान्तः,  
तन्निवृत्त्यर्थं 'प्रतिषिध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वे सति' इति विशे-  
षणम् । 'प्रतिषिध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वात्' इत्युच्यमानेपि सामा-  
न्यादिना व्यभिचारः, तन्निवृत्त्यर्थं 'सत्तासम्बन्धित्वात्' इत्यभिधा-  
नम् । तत्सिद्धं गुणत्वेन कचिदाश्रितत्वं शब्दानाम् ।

१ जैनैः । २ गगने । ३ स्थावयवेषु । ४ तस्मात्कचिदाश्रिता भवन्त्येव ।  
५ आकाशविशेषगुणः शब्द इति वचनात् । ६ रूपद्रव्ये । ७ शब्दो द्रव्यं न  
भवति कर्म च नेति । ८ त्रयः पदार्थाः स्वरूपेणासन्तः सत्तासम्बन्धात्सन्त इति  
वचनात् । ९ गगनलक्षणेकं द्रव्यं यस्य स एकद्रव्यस्यैव भावः, इष्टान्तपक्षे  
घटाधिकद्रव्यं यस्य रूपादेः । १० सामान्यशब्देनात्रापरसामान्यं गृह्यते । ११ एक-  
द्रव्यत्वाभावात् । १२ घटादीनामेकद्रव्यत्वाभावात् । १३ घटस्य स्पर्शनचक्षुरि-  
न्द्रियाभ्यां ग्राह्यत्वात् । १४ यतो मनोऽक्षणेन्द्रियप्रत्यक्ष आत्मा । १५ अनेक-  
द्रव्याश्रितत्वात् । १६ विशेषणम् । १७ इदानीं विशेष्यं विचारयति । १८ सत्ताः  
सम्बन्धित्वे द्रव्यकर्मणोऽगुणत्वाभावात् । १९ आदिनां विशेषसमवाययोर्महणम् ।  
२० गुणत्वाभावात् । २१ सामान्यविशेषसमवायाः स्वरूपेण सन्तो न तु सत्ता-  
सम्बन्धादित्यभिधानात् ।

: यश्चैषामाश्रयस्तत्पारिशेष्यादांकाशम्; तथाहि-न तावत्स्पर्श-  
वतां परमाणूनां विशेषगुणः शब्दोऽसदादिप्रत्यक्षत्वात्कार्यद्रव्य-  
रूपादिवत् । नापि कार्यद्रव्याणां पृथिव्यादीनां विशेषगुणोक्तौ;  
कार्यद्रव्यान्तराग्राहुर्भावेऽप्युपजायमानत्वात्सुखादिवत्, अकारण-  
गुणपूर्वकत्वादिवच्छादिवत्, अथावद्रव्यभाविर्त्वात्, असदादिपुरु-  
षान्तरप्रत्यक्षत्वे सति पुरुषान्तराप्रत्यक्षत्वाच्च तद्वत्, आश्रया-  
द्भेदादेरन्यत्रोपलब्धेऽप्यत्र । स्पर्शवतां हि पृथिव्यादीनां यथोक्तवि-  
परीती गुणाः प्रतीयन्ते । नाप्यात्मविशेषगुणः, अहङ्कारेण विभे-  
कग्रहणात्, बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्, आत्मान्तरग्राह्यत्वाच्च । बुद्ध्या-  
दीनां चात्मगुणानां तैर्द्वैपरीत्योपलब्धेः । नापि मनोगुणः, असदा-  
दिप्रत्यक्षत्वाद्वपादिवत् । नापि दिक्कालविशेषगुणः, तयोः पूर्वापरा-  
दिप्रत्ययहेतुत्वात् । अतः पारिशेष्याद्गुणो भूत्वाकाशस्यैव लिङ्गम् ।

तच्च शब्दलिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गामाशाच्चैकम् । विमुक्त्वा सर्व-  
त्रोपलभ्यमानगुणत्वात्, नित्यत्वे सत्यसदार्थ्युपलभ्यमानगुणी-  
चिद्धानत्वाच्चात्मादिवत् । नित्यं शब्दाधिकरणं द्रव्यं सामान्य-  
विशेषवत्त्वे सत्यनाश्रितत्वादात्मादिवत् । अनाश्रितं शब्दाधिकरणं  
द्रव्यं गुणवत्त्वे सत्यस्पर्शवत्त्वात्तद्वत् । असमर्थवायवत्त्वे सत्यऽना-  
श्रितत्वाच्चास्य द्रव्यत्वमिति ।

१ पृथिव्यादिचतुर्णां । २ योतिप्रलक्षणे अभिचारपरिहारार्थम् । ३ वैषाम्नी-  
न्द्रियत्वाच्चतुर्णाम्यसौन्द्रिय एवेति भावः । ४ कार्यद्रव्यगुणादि । ५ कारणस्य  
गगनस्य गुणः कारणगुणः न विद्यते कारणगुणः पूर्वं यस्य शब्दस्यासावकारणगुण-  
पूर्वकत्वात् भावत्वात्सात्, ६ विभेदादिविशेषगुणे परमाणुरूपस्य कारणस्य गुणपूर्व-  
कत्वमस्तीति । ७ इष्टान्तपक्षे आत्मा कारणम् । ८ गगने सर्वत्र न विद्यते यतः ।  
८ इच्छादिवदेव । ९ योतिशयेन दूरान्तरितः । १० सर्वत्र समिधधानैकान्तिकत्वे  
सत्याह । ११ कार्यद्रव्यान्तराग्राहुर्भावे समुपजायमानलक्षणाः । १२ अहं सुखमहं  
दुःखीत्यादिवदहंशब्दान् इत्यहकारेण विभक्तस्य रहितस्य शब्दस्य ग्रहणात् ।  
१३ समिधधानैकान्तिकत्वे सत्याह । १४ हेतोरस्तिकत्वपरिहारार्थमिदम् । १५ दिग्ग-  
णाश्रयादि सर्वगर्भं परमते शब्दस्य दिक्कालविशेषगुणत्वे शब्द एव तयोस्तत्त्वावे-  
लिङ्गं स्यादिति भावः । १६ अनिवेशः एकत्वम् । १७ पटेन व्यभिचारपरि-  
हारार्थम् । १८ परमाणुभिर्व्यभिचारपरिहारार्थम् । १९ स गुणः शब्दः ।  
२० नित्यत्वमसिद्धमित्युक्ते सत्याह । २१ गमावेन वा व्यभिचारपरिहारार्थम् ।  
२२ षटेन व्यभिचारपरिहारार्थम् । २३ असिद्धत्वे सत्याह । २४ गुणेन व्यभिचार-  
परिहारार्थं गुणवत्त्वमिति विशेषणं गुणानां निर्गुणत्वात् । २५ समवायेनाभावेन वा  
व्यभिचारपरिहारार्थम् ।

अत्र प्रतिविधीयते । शब्दानां सामान्येनाश्रितत्वं किमेतः साध्यते, नित्यैकामूर्तविभुद्रव्याश्रितत्वं वा? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता; तेषां पुद्गलकार्यतया तदाश्रितत्वाभ्युपगमात् । द्वितीयपक्षे तु सन्दिग्धविपक्षव्यावृत्तिकत्वेनानैकान्तिको हेतुः; तथाभूतसा-

५ ध्यान्वितत्वेनास्य कचिदुद्धान्तेऽप्रसिद्धेः । प्रतिषिध्यमानकर्मभावत्वे सत्यपि च प्रतिषिध्यमानद्रव्यभावत्वमसिद्धम्; द्रव्यत्वाच्छब्दस्य । तथा हि-द्रव्यं शब्दः, स्पर्शाल्पत्वमहत्त्वपरिमाणसंख्यासंयोगगुणाश्रयत्वात्, यद्यदेवंविधं तत्तद्रव्यम् यथा वदरामलकविल्लादि, तथा चायं शब्दः, तस्माद्रव्यम् ।

१० तत्र न तावत्स्पर्शाश्रयत्वमस्यासिद्धम्; तथाहि-स्पर्शवान्छब्दः स्वसम्बद्धान्तराभिघातहेतुत्वात् सुवरादिवत् । सुप्रतीतो हि कंसपाज्यादिध्वानाभिसम्बन्धेन श्रोत्राद्यभिघातस्तत्कार्यस्य बाधिर्यादेः प्रतीतेः । स चास्याऽस्पर्शवत्त्वे न स्यात् । न ह्यस्पर्शवता कालादिनाभिसम्बन्धेऽसौ दृष्टः । न च शब्दसहचरितेन वायुना

१५ तदभिघातः इत्यभिघातव्यम्; शब्दाभिसम्बन्धान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्तस्य, तथाभूतेपि तदभिघातेऽन्यस्यैव हेतुकल्पने तत्रापि कः समाश्वासः? शक्यं हि वक्तुम्-न चाव्याधमिसम्बन्धात्तदभिघातः किन्त्वन्येन, इत्यनवस्थानं हेतूनाम् । गुणत्वेनास्य निर्गुणत्वात्स्पर्शाभावात्तदभिघाताहेतुत्वे चक्रकप्रसङ्गः—गुणत्वं

२० ह्यद्रव्यत्वे, तदप्यस्पर्शवत्त्वे, तदपि गुणत्वे इति । स्पर्शवतार्थेनाभिहन्यमानत्वाच्च स्पर्शवानसौ । न चैनैनाभिहन्यमानत्वमस्यासिद्धम्; प्रतिघातमित्यादिभिः शब्दस्याभिहन्यमानतया सकलजनसाक्षिकत्वात् मूर्तेन चामूर्त्तस्याविरोधेनाऽप्रतिघाताद्भग्नमित्यादिवत् । तत्रास्य स्पर्शाश्रयत्वमसिद्धम् ।

२५ नाप्यल्पमहत्त्वपरिमाणाश्रयत्वं; अल्पमहत्त्वप्रतीतिविषयत्वाद्दरादिवत् । ननु च 'अल्पः शब्दो मन्दः' इत्यादिप्रतीत्या मन्द-

१ गुणत्वादिति हेतोः । २ इति विज्ञेयम् । ३ अतोनुमानाद्यमसौ द्रव्यसिद्धिराश्रयमानस्यैव सिद्धिप्रसङ्गात् । ४ जैनानाम् । ५ विषयः अनित्यानेकमूर्त्ताऽविभुद्रव्याश्रितम् । ६ रूपादयो दृष्टान्तभूता अनित्यादिविशिष्टपक्षे नर्तन्तेऽतोऽन्यमपि हेतुस्मादृष्टे पक्षे नर्तते अन्यादृष्टे वेति सन्दिग्धः । ७ गुणत्वात् । ८ नित्यैकग्राह्याश्रयमित्येव साध्यविक्रलो दृष्टान्तो रूपादीनां तद्विपरीताश्रयमित्येव । ९ ते च ते गुणाश्च । १० अनिर्वचनीयेन । ११ आशौ मत्प्रतिपादितं तदेवान्ते स्मादिति चक्ररूपेण इति आशः । १२ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे इदम् । १३ स्पर्शवद्विः । १४ असिद्धमिति संनन्धः । १५ शब्दस्य । १६ अल्पत्वमहत्त्वपरिमाणम् ।

त्वमेव धर्मो गृह्यते, 'महान् पटुस्तीव्रः' इत्यादिप्रतीत्या च तीव्र-  
त्वम्, न पुनः परिमाणमित्युक्तानवधारणात् । नहि 'अयं महा-  
च्छब्दः' इति व्यवस्यन् 'इयान्' इत्यवधारयति, यथा द्रव्याणि बद्ध-  
रामलकविल्वादीनि । मन्दतीव्रता चावान्तरो जातिविशेषो गुण-  
वृत्तित्वाच्छब्दत्ववत्; तदप्यपेशलम्; यतः कथं शब्दस्य गुणत्वं ५  
सिद्धं यतस्तद्वृत्तित्वात्मन्मन्दत्वादेर्जातिविशेषत्वं सिद्धयेत् ? अद्रव्य-  
त्वाच्चेत्; तदपि कथम् ? अल्पमहत्त्वपरिमाणानधिकरणत्वाच्चेत्;  
तदपि कुतः ? गुणत्वात्; चक्रकप्रसङ्गः ।

द्रव्यान्तरवदित्युक्तानवधारणाच्चेत्; न; वायुनानेकान्तात् । न  
खलु चित्त्वबद्धादेरिव वायोरित्युक्तावधार्यते । वायोरप्रत्यक्षत्वा-१०  
दित्युक्ता सत्यपि नावधार्यते, न शब्दस्य विपर्ययात्; इत्यप्य-  
युक्तम्; गुणगुणिनोः कथञ्चिदेकत्वे गुणप्रतिभासे गुणिनोपि  
प्रतिभाससम्भवात् । वायुगतस्पर्शविशेषस्यैवाध्यक्षत्वाभ्युपगमे  
च 'स्पर्शोत्र शीतः खरो वा' इति प्रतीतिः स्यान्न वायुरिति । न  
खलु रूपावभासिनि प्रत्यये सौवभासते । स्पर्शविशेषपरिणामस्यैव १५  
च वायुत्वात्कथं नास्य प्रत्यक्षत्वम् ?

इयत्ता चेयं यदि परिमाणार्धन्या; कथमन्यस्यानवधारणेऽन्यस्या-  
भावः ? न खलु घटानवधारणे पटाभावो युक्तः । परिमाणं चेत्;  
तर्हि 'इयत्तानवधारणात्परिमाणं नास्ति' इत्यत्र 'परिमाणं नास्ति  
परिमाणानवधारणात्' इत्येतावदेवोक्तं स्यात् । अल्पत्वमहत्त्व-२०  
प्रत्ययतस्तत्परिमाणावधारणे च कथं तदनवधारणं नामामल-  
कादाद्यपि तत्प्रसङ्गात् ? मन्दतीव्रताभिसम्बन्धात्तत्प्रत्ययसम्भवे  
च मन्दवाहिनि नर्मदानीरे 'अल्पमेतत्' तीव्रवाहिनि च कुल्यौजले

१ इयन्ति अवधारयति जनः । २ तीव्रत्व मन्दत्वं च परिमाणविशेषोऽस्तिवत्युक्ते  
संज्ञाह । ३ शब्दे । ४ चक्रकपरिहारार्थं गुणत्वादिति हेतुसम्बन्धे इत्युक्तानवधारणादिति  
हेतुं योजयति परः । ५ अत्यल्पमहत्त्वपरिमाणानधिकरणत्वेति वायोरित्युक्ता नावधार्यते  
इति भावः । ६ अनेकान्तिकत्वं हेतोः परिहरणाह । ७ प्रत्यक्षत्वात् । ८ इयत्तावाच्योः ।  
९ भेदोभेदाभावात् । १० तत्तस्य वायुगतस्य स्पर्शस्य प्रत्यक्षत्वादायोरेति प्रत्यक्षत्वं  
स्यात्, तथा च वायोरप्रत्यक्षत्वं वक्तुमशक्यं तत्र परस्य । ११ न वायुः शीतः खरो वेति  
प्रतीतिः । १२ रूपी वायुः । १३ तथा च वायोरभावः स्यात् । १४ कथञ्चिदेक-  
त्वेन । १५ त्वमिन्द्रियप्राप्तत्वम् । १६ इयत्ताया अनवधारणे शब्दस्यात्यल्पमहत्त्व-  
परिमाणस्याभावः इत्यासिन्धौ दूषणान्तरम् । १७ इयत्ता परिमाणाद्विज्ञाभिज्ञा वेति  
विकल्पद्वयम् । १८ इयत्तालक्षणस्य । १९ परिमाणलक्षणस्य । २० अन्येति विकल्पे ।  
२१ द्वितीयपक्षे । २२ परेणाक्षीकृत्यमाने । २३ बलम् । २४ अस्या सरित् कुल्या ।



‘महदेतत्’ इति प्रत्ययः स्यात् । न चैवम् । तस्माच्च मन्दतीव्रता-  
निबन्धनोयं प्रत्ययः, अपि त्वल्पमहत्त्वपरिमाणनिबन्धनः, अन्यथा  
वदरामलकादावपि तन्निबन्धनोसौ न स्यात् । वदरादीनां द्रव्य-  
त्वेन तत्परिमाणसम्भवात्तस्यै तन्निबन्धनत्वे शब्देऽप्यत एवासौ  
५ तन्निबन्धनोस्तु विशेषाभावात् । कारणगतस्य चाल्पमहत्त्वपरि-  
माणस्य शब्दे उपचारात्तथा प्रत्यये वदरादावप्यसौ तथानुष-  
ज्येत । तन्नाल्पमहत्त्वपरिमाणाश्रयत्वमप्यस्यासिद्धम् ।

नापि सङ्ख्याश्रयत्वम्, ‘एकः शब्दो द्वौ शब्दौ बहवः शब्दाः’  
इति संख्यावस्त्वप्रतीतेर्घटादिवत् । अथोपचाराच्छब्दे संख्याव-  
१० त्वप्रतीतिः, ननु किं कारणगता, विषयगता वा शब्दे संख्योप-  
चर्येत ? कारणगता चेत्, किं समवायिकारणगता, कारणमात्र-  
गता वा ? आद्यपक्षे ‘एकः शब्दः’ इति सर्वदा व्यपदेशप्रसङ्गस्त-  
स्यैकत्वात् । द्वितीयपक्षे तु ‘बहवः शब्दाः’ इति व्यपदेशः स्यात्संख्य-  
बहुत्वात् । विषयसंख्योपचारे तु गगनाकाशव्योमादिशब्दा बहु-  
१५ व्यपदेशमाजो न स्युर्गगनलक्षणविषयस्यैकत्वात् । पञ्चोदीनां च  
बहुत्वात् ‘एको गोशब्दः’ इति स्वमेपि दुर्लभम् । यथाऽविरोधं  
संख्योपचारः, इत्यप्युक्तम्; स्वयं संख्यावस्त्वमन्तरेणाविरोधाऽ-  
सम्भवात् ।

किञ्च, विपरीतोपलम्भस्य बाधकस्य सङ्गत्वे सत्युपचारकल्पना  
२० स्यात्, न चाग्निस्वरहितपुरुषस्यैकत्वादिसंख्यारहितस्य ‘शब्द-  
स्योपलम्भोस्तीति कथमुपचारकल्पना ? तथैपि तत्कल्पने अनुप-  
चरितमेव न किञ्चित्स्यात् । तच्च संख्याश्रयत्वमप्यसिद्धम् ।

नापि संयोगाश्रयत्वम्; वाय्वादिनामिहान्यमानत्वात्, पांश्वादि-  
वत् । संयुक्ता एव हि पांश्वादयो वायुनान्येन वाऽमिहान्यमाना  
२५ दृष्टाः । तेनै तदभिघातश्च देवदत्तं प्रत्यागच्छतः प्रतिवातेन प्रति-

१ जलम् । २ अग्नित्वित्युक्ते सलाहाचार्यः । ३ अल्पत्वमहत्त्वलक्षणः । ४ वद-  
रादिष्वल्पत्वमहत्त्वप्रत्ययस्य । ५ अल्पत्वमहत्त्वप्रत्ययः । ६ द्रव्यत्वेनाल्पत्वमहत्त्वपरि-  
माणससम्भवस्य । ७ शब्दस्य कारणमाकाशस्य । ८ द्रव्यस्य । ९ कार्यरूपे ।  
१० तात्त्वादिभेदोदिकारणमात्रस्य । ११ विषयः=शब्दस्य वाच्यः । १२ वागिदम्भ-  
सिद्धिभारिवाणाख्यसर्गाणां ग्रहणमादिशब्देन । १३ किन्तु गोशब्दा बहवो भवेयुस्तीति  
भावः, न तु गोशब्दो बहुप्रकारः । १४ एकस्मिन्घटे-एकः शब्द इत्यादिवत् ।  
१५ प्रदार्थनाम् । १६ शब्दलक्षणार्थानाम् । १७ असंख्यावत्त्वस्य । १८ एकत्वादि-  
संख्यारहितस्योपलम्भमाश्रयेति । १९ संयोगो गुणः । २० शब्दस्य । २१ सन्दिग्धत्वे  
सलाहः । २२ साधनमसिद्धमित्युक्ते-सलाहः । २३ शब्दस्य ।

नेवर्त्तनात्पांश्चादिवदेवार्चसीयते, तदप्यन्यदिगवस्थितेन अव-  
णात् । ननु गन्धादयो देवदत्तं प्रत्यागच्छन्तस्तेन निवर्त्यन्ते, न  
च तेषां तेन संयोगो निर्गुणत्वाद्गुणानाम् । तन्न; तद्वतो द्रव्यस्यै-  
वानेन प्रतिनिवर्त्तनात्, केवलानां तेषां निष्क्रियत्वेनागमननिव-  
र्त्तनायोगात् । ततः सिद्धं गुणवत्त्वाद्व्यत्वं शब्दस्य । ५

क्रियावत्त्वाच्च वाणादिवत् । निष्क्रियत्वे तस्य ओत्रेणाऽग्रहणम-  
नभिसम्बन्धात् । तथापि ग्रहणे ओत्रस्याप्राप्यकारित्वं स्यात् ।  
तथा च, 'प्राप्यकारि चक्षुर्वक्षिन्निद्रयत्वात्त्वग्निन्द्रियवत्' इत्यस्यानै-  
कान्तिकत्वम् । सर्वेन्द्रियकल्पने ओत्रं वा शब्दोत्पत्तिप्रदेशं गत्वा  
शब्देनाभिसम्बध्येत, शब्दो वा स्वोत्पत्तिदेशादागत्य ओत्रेणाभिस- १०  
म्बध्येत ? न तावद्धर्माधर्माभ्यां संस्कृतकर्णशङ्कुल्यवरुद्धनमोदेश-  
लक्षणओत्रस्य शब्दोत्पत्तिदेशे गतिः, तथा प्रतीत्यभावात्, निष्क्रि-  
यत्वाच्च । गतौ वा विवक्षितशब्दान्तेरालवर्त्तिनामल्पशब्दानामपि  
ग्रहणप्रसङ्गः, सर्वेन्द्रियाविशेषात् । अनुवातप्रतिवाततिर्यग्वातेषु  
प्रतिपत्यप्रतिपत्तीष्वप्रतिपत्तिभेदामाषश्च, ओत्रस्य गच्छेत्तत्तात्क- १५  
तोपकारार्थयोगात् । नापि शब्दस्य ओत्रप्रदेशागमनम्, निष्क्रिय-  
त्वोपगमात् । आगमने वा सक्रियत्वम् ।

ननु नाथ एवाकाशतच्छब्दमुखसंयोगेभ्वर्दिः समवाय्यसम-  
वायिनिमित्तकारणाज्जातः शब्दः ओत्रेणागत्य सम्बध्यते येनायं  
दोषः, अपि तु बीचीतरङ्गन्यायेनापरपर एवाकाशशब्दोदिलक्ष- २०  
णात् समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणाज्जातः तेनाभिसम्बध्यते;  
तदप्यसमीचीनम्; सर्वत्र क्रियोच्छेदानुपपन्नात् । 'वाणादयोपि हि  
पूर्वपूर्वसमानजातीयलक्षणप्रभवा लक्ष्यप्रदेशव्यापिनो न पुनरस्ते  
एव' इति कल्पयितुं शक्यत्वात् । तत्र प्रत्यभिज्ञानाश्रित्यत्वसिद्धेर्नैवं

१ निक्षीयते । २ न चेदमसिद्धम् । ३ पुरुषेणावसीयते । ४ अनैकान्तिक-  
हेतुमुक्तावयति परः । ५ द्रव्यरहितानाम् । ६ व्यभिचारो नास्ति प्रतिनिवर्त्त-  
नादित्यस्य हेतोर्मतः । ७ शब्दस्य । ८ तात्वादिकम् । ९ निष्क्रियत्वमसिद्ध-  
मिहाह । १० अन्तरालं भेदादिशब्दे । ११ अविवक्षितानां नरादिसद्धानाम् ।  
१२ ओत्रेण । १३ सत्त्व । १४ शब्दोत्पत्तिदेशं प्रति । १५ आदिना अनुप-  
कारेणुपकारग्रहणम् । १६ परेण । १७ तथा च द्रव्यं शब्द इत्यायातश्च  
शब्दः क्रियावान्पूर्वदेशलक्षणेन देशान्तरे समुपलभ्यमानत्वात्, यदित्यं तदित्यं यथा  
वाणादि, न चेदमसिद्धं वक्तुमुक्तप्रदेशलक्षणेन ओत्रप्रदेशे समुपलभ्यमानत्वात् ।  
१८ आदिनानुकूलभातादिग्रहः । १९ आदिना ईश्वरादिग्रहः । २० अन्यः शब्दः ।  
२१ प्रथममुक्तः ।

कल्पना चेत् नन्विदं प्रत्यभिज्ञानं शब्देऽपि समानम् 'उपाध्यायोक्तं शृणोमि शिष्योक्तं वा शृणोमि' इति प्रतीतिः ।

ननु प्रत्यभिज्ञानस्य भवद्दर्शने दर्शनस्मरणकारणकत्वाद्वा न तदभावात्कथं तदुत्पत्तिः ? न खलूपाध्यायोक्ते शब्दे दर्शनवत्स्मरणं भवति; अस्य पूर्वदर्शनाद्याहितसंस्कारप्रबोधनिबन्धनत्वात् । न च कारणाभावे कार्यं भवत्यतिप्रसङ्गात् । इत्यप्यनुपपन्नम् : सम्बन्धितप्रतिपत्तिद्वारेणात्रैकत्वस्य प्रतीतिः । सम्बन्धितायां च दर्शनस्मरणयोः सद्भावसम्भवात्प्रत्यभिज्ञानस्योत्पत्तिरविरुद्धा । तथाहि- प्रत्यक्षानुपलम्भतोऽनुमानतो वा तत्कार्यतया तत्संबन्धिनं शब्दं प्रतिपद्येदानीं तैस्त्वृत्त्युपलम्भोद्भूतं प्रत्यभिज्ञानं तत्सम्बन्धितया तं प्रतिपद्यमानमेकत्वविशिष्टमेव प्रतिपद्यते, अन्यथा 'उपाध्यायोक्तं शृणोमि' इति प्रतीतिर्न स्यात्, किन्तु 'तदुक्तोद्भूतं तत्संदर्शं शब्दान्तरं शृणोमि' इति प्रतीतिः स्यात् । वीचीतरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिश्चात्रैव निषेत्स्यते ।

२५ यदि पुनर्जनपुनर्जातनखकेशादिवत्सदृशापरपरोत्पत्तिनिबन्धनमेतत्प्रत्यभिज्ञानं न कालान्तरस्थायित्वनिबन्धनम् । तद्वाणादावपि समानम् । न समानमर्थं बाधकसद्भावात् तथैव कल्पना, नान्यत्र विपर्ययोत् । नन्वेव प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा बाधकं कल्प्येत ? प्रत्यक्षं चेत् ; किमेकत्वविषयम्, क्षणिकत्वविषयं वा ? न तावदेकत्वविषयम् ; समविषयत्वेन तदुक्तकृत्वात् । नापि क्षणिकत्वविषयम् ; शब्देऽन्यत्र वा तस्य विवादगोचरार्थकत्वात् । नाप्यनुमानम् ; प्रत्यभिज्ञानं हि मानसप्रत्यक्षं भवन्मते तस्य कथमनुमानं बाधकम् ? प्रत्यक्षमेव हि बाधकम् आमताग्राह्यैर्कशाखाप्रभवत्वानुमानस्य, न पुनस्तदनुमानं प्रत्यक्षस्य । अथाप्यक्षा-

१ पूर्वकणे । २ उत्तरकणे । ३ अहं श्रुतः । ४ एकत्वप्राप्तिः । ५ ब्रह्मते । ६ ओत्रेन्द्रिययज्ञानवत् । ७ अचनुपाध्यायोक्तः शब्द इति । ८ तथा चः शब्दः श्रूयते च उपाध्यायेनोक्त इति । ९ अन्यन्यतिरेकतः । १० श्रूयनापत् । ११ उपाध्याय-  
नन्विन्वित्वेन तस्य शब्दस्य । १२ दर्शनस्मृतिप्रभवत् । १३ तेन उपाध्यायोक्तेन शब्देन । १४ व्यवनानिलवत् । १५ न चैवम् । १६ तथा चाक्षेपार्थानां क्षणिकत्वप्रसङ्गास्तीगत्ववत्तिद्धिः स्यात् । १७ शब्दे । १८ क्षणिकत्वेन । १९ नेने ते नानादय इत्यत्र बाधकभावात् । २० शब्दाक्षणिकत्वप्रत्यभिज्ञाने । २१ प्रत्यभि-  
ज्ञानस्यैकविषयत्वं प्रत्यक्षस्यान्यैकविषयवत् । २२ तेन=प्रत्यभिज्ञानेन । २३ क्षणिक-  
त्वविषयस्य प्रत्यक्षस्य । २४ अस्तिरूपादिति भावः । २५ वैशेषिकमते । २६ पक्ष-  
न्येतानि फलानि एकशाखाप्रभवत्वादिलानुमानसाऽऽमताग्राहि प्रत्यक्षं बाधकम् ।

भासत्वादस्यानुमानं बाधकम्, यथा स्थिरचन्द्रार्कादिविज्ञानस्य  
देशान्तरप्राप्तिलिङ्गजनितं गत्यनुमानम्; कथं पुनरस्याध्यक्षाभास-  
त्वम्? अनुमानेन बाधनाच्चेत्; अनेनानुमानस्य बाधनादनुमाना-  
भासता किन्न स्यात्? अथानुमानबाधितविषयत्वाच्चेदमनुमानस्य  
बाधकम्; अनुमानमप्येतद्बाधितविषयत्वाच्चास्य बाधकं स्यात् । न  
च तदनुमानमस्ति ।

नन्विदमस्ति-क्षणिकः शब्दोऽसदादिप्रत्यक्षत्वे सति विमुद्रव्य-  
विशेषगुणत्वात् सुखादिवत् । सत्यमस्ति, किन्त्वेकशाखाग्रभव-  
त्ववदेतत्साधनं प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षबाधितकर्मनिर्देशानन्तरं प्रयुक्त-  
त्वाच्च साध्यसिद्धिनिबन्धनम् । विमुद्रव्यविशेषगुणत्वं चासिद्धम्, १०  
शब्दस्य द्रव्यत्वप्रसाधनात् । धर्मादिना व्यभिचारश्च, अस्य विमु-  
द्रव्यविशेषगुणत्वेऽपि क्षणिकत्वाभावात् । तस्यापि पक्षीकरणीद-  
व्यभिचारे न कश्चिच्चेतुर्व्यभिचारी, सर्वत्र व्यभिचारविषयस्य  
पक्षीकरणात् । 'असदादिप्रत्यक्षत्वे सति' इति च विशेषणमनर्थ-  
कम्; व्यवच्छेद्योभावात् । धर्मादेश्च क्षणिकत्वे स्रोत्पत्तिसमया- १५  
नन्तरमेव विनष्टत्वाच्चतो जन्मान्तरे फलं न स्यात् ।

शब्दकल्लब्धोत्पत्तिवद्धर्मादेश्चोत्पत्तिः, इत्यप्ययुक्तम्, तथा-  
भ्युपगमाभावात्, तद्वदपरापरतत्कार्योत्पत्तिर्पक्षेऽप्यस्ति । 'परस्यानु-  
कूलेऽनुकूलमिमानजनितोमिलापः अभिलषितुरर्थमिमुञ्चक्रियौ-  
कारणमैतन्निशेषगुणमाराप्नोति' अनुकूलेऽनुकूलमिमानजनि- २०

१ शब्देकत्वविषयसाध्यक्षस्य । २ शब्दस्य क्षणिकत्वसाधकेन । ३ परेन  
मानसप्रत्यक्षेण । ४ शब्दक्षणिकत्वाऽनुमानम् । ५ परममहापरिमाणेन व्यभिचार-  
परिहारार्थमिदं विशेषणम् । ६ विमुद्राकाशमात्रा च । ७ षडादिगतरूपादिना  
व्यभिचारनिरासार्थं विशेषेति । ८ उपहासे । ९ कर्मोपनिष्ठा । १० प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षेण  
पूर्वं शब्दसाक्षणिकत्वं साधितं यत्तः । ११ विमुद्रव्यविशेषगुणत्वादित्येवोच्यमाने ।  
१२ क्षणिकत्वं साध्यम् । १३ अनेकान्तपरिहाराय, पक्षान्तःपातित्वाद्धर्मादेश्च क्षणि-  
कत्वमापातमिति भावः । १४ व्यवच्छेदकफलं हि विशेषणमिति बचनात् । १५ अस-  
दादिप्रत्यक्षत्वे सतीति विशेषणेन । किलासदाद्यऽप्रत्यक्षो धर्मादिव्यवच्छेदः, तस्यापि  
पक्षीकरणे, व्यवच्छेदकप्रत्यक्षे विशेषणस्य नास्तीति भावः, सर्वेषां पक्षीकरणादिशेषणेन  
परिहरणीयस्याभावात् । १६ परेण । १७ धर्माधर्मयोः क्षणिकत्वे । १८ अस्तु, न  
नैवम्, न खलु धर्माभ्युत्पत्तिवदपरापरवन्निवाधक्राधुत्पत्तिः प्रतीयते । १९ प्रकृतसाध्ये  
हेत्वन्तरमिदम् । २० अनुग्राह्यवैधेयिकस्य । २१ इत्यायागादिपूजादिषु धर्मोत्पादन-  
कारणभूतेषु । २२ धर्मजनकत्वेन । २३ इमान्यनुकूलनीत्यभिमानत्वेन जनितः ।  
२४ अर्थः—क्षणिकवन्दनादिकं प्रति । २५ क्रियाः—कार्यम् । २६ उत्तरजनमिति ।  
२७ धर्मलक्षणं दृष्टान्तपक्षे प्रयत्नलक्षणं च । २८ उत्पादवधि, साधयति ।

तामिलापत्वात् 'आत्मनो नैकूलेष्वनुकूलाभिमानजनितामिलाष-  
वत्' इत्यस्य च विरोधः, यस्माद्योऽसौ परस्यानुकूलेष्वनुकूला-  
भिमानजनितामिलाषजनित आत्मविशेषगुणो नासावमिलवितु-  
रर्थामिमुखक्रियाकारणम्, तत्समानस्य तत्कारणत्वात्, यच्च  
५ तत्क्रियाकारणं नासौ यथोक्तामिलाषजनित इति ।

'इच्छाद्वेषनिमित्तौ प्रवर्त्तकनिवर्त्तकौ धर्माधर्मौ, अव्यवधानेन  
हिताहितविषयप्राप्तिपरिहारहेतोः कर्मणः कारणत्वे सत्यात्म-  
विशेषगुणत्वात्, प्रवर्त्तकनिवर्त्तकप्रयत्नवत्' इत्यत्र हेतोर्व्यभिचै-  
रश्च-जन्मान्तरफलोदययोर्धर्माधर्मयोः अव्यवधानेन हिताहित-  
१० विषयप्राप्तिपरिहारहेतोः कर्मणः कारणत्वे सत्यात्मविशेषगुणत्वे-  
पीच्छाद्वेषजनितत्वाभावात् । ततः शब्दाच्छब्दोत्पत्तिवद्धर्मादे-  
र्धर्माद्युत्पत्त्यभावात् । क्षणिकत्वे चातो जन्मान्तरे फलासम्भ-  
वाक्षणिकत्वं तस्याभ्युपगन्तव्यमित्यनेनानैकान्तिको हेतुः ।

अथासदादिप्रत्यक्षत्वविशेषणविशिष्टस्य विमुद्रव्यविशेषगुण-  
१५ त्वस्योक्तसम्भवाच्च व्यभिचारः । ननु मा भूद्यभिचारः, तथापि  
साकल्येन हेतोर्विपैक्षाद्व्याधुत्पत्तिसिद्धिः । विपक्षविरुद्धं हि विशेषणं  
ततो हेतुं निवर्त्तयति । यथा सहेतुकैत्वमहेतुकैत्वविरुद्धं ततः

१ सामान्यं हेतुं भुवतां दोषाभावात् । २ जीवस्य स्वस्य वा । ३ यथादिपु सङ्-  
ख्यनानादिषु च । ४ अनुमानस्य । ५ धर्मादिधर्माद्युत्पत्तौ सत्याम् । ६ धर्मैकक्षणः ।  
७ अनुष्ठापुर्वैशेषिकस्य । ८ परापरोक्षस्या तस्मादन्वत्त्वात् । ९ अन्तो धर्मः ।  
१० इच्छाद्वेषौ निमित्तं कारणं ययोर्धर्माधर्मयोरिति भावः । ११ कार्यस्य निष्पादका-  
निष्पादकौ । १२ कारणत्वादित्युच्यमाने चक्षुरादिना व्यभिचारस्य विपक्षव्यवधानेन  
विशेषगुणत्वादित्युक्तम्, तावत्युक्ते स्रष्टादिनानेकान्तस्त्वपरिहारार्थं कर्मणः कारणत्वं  
सतीति विशेषणम्, तावत्युक्ते स्रष्टादिनानेकान्तस्त्वजिरासार्थं हिताहितविषयप्राप्ति-  
परिहारहेतोरित्युपात्तम्, तावत्युक्ते इच्छाद्वेषान्यामनेकान्तस्त्वजिरासार्थमव्यवधानेनेति  
विशेषणमुपादीयते । १३ धर्माद्विषयप्राप्त्यहितविषयपरिहारो भवतः, अधर्माद्विष-  
यविषयप्राप्तिद्विषयपरिहारो स्य इति सम्बन्धः । १४ धर्माधर्मयोः । १५ अनुभावे ।  
१६ धर्मादेः क्षणिकत्वे । १७ पूर्वधर्माधर्मसदृशयोः । १८ धर्मादेः क्षणिकत्वे साम्ये ।  
१९ धर्मादेः क्षणिकत्वाभावात् । २० असादादिप्रत्यक्षत्वे सतीति विशेषणं लक्ष्वा  
विमुद्रव्यविशेषगुणत्वादित्युक्तं हेतुः । २१ व्यभिचारपरिहारार्थम् । २२ साधनस्य ।  
२३ धर्मादौ । २४ शब्दे यथा सम्भवस्तथा धर्मादौ नास्ति यतः । २५ अक्षणीकात् ।  
२६ कथम् ? तथा हि । २७ हेतोर्विपक्षे वृत्तिं वारयति यत्तदेव हेतुविशेषणम् ।  
२८ अनित्यः शब्दः कादान्तिकत्वात् वदवदित्युक्ते खननोत्सेचनादिना कादान्तिकेन  
नभसानेकान्तिकवत्, तदव्यवच्छेदार्थं सहेतुकत्वे सति कादान्तिकत्वादिति साधनं  
भयोक्तव्यम् । २९ विशेषणम् । ३० अहेतुकम्-आकाशादि ।

कादाचित्कत्वं । न चासदादिप्रत्यक्षत्वमक्षणिकत्वविरुद्धम् ;  
अक्षणिकेष्वपि सामान्यादिषु भावौत् । ततो यथासदादिप्रत्यक्षा  
अपि कैचित्प्रदीपादयो भावौः क्षणिकाः सामान्यादयस्त्वक्षणि-  
कास्तथासदादिप्रत्यक्षा अपि विमुद्रव्यविशेषगुणाः 'कैचित्क्ष-  
णिकाः कैचिदक्षणिका मविष्यन्ति' इति सन्दिग्धो व्यतिरेकः । ५  
अथाक्षणिके कैचिदसदादिप्रत्यक्षत्वविशेषणविशिष्टस्य विमुद्रव्य-  
विशेषगुणत्वस्यादर्शनात्ततो व्यावृत्तिसिद्धिः, न; भवदीयादर्शनस्य  
साकल्येन भावाभावाप्रसाधकत्वात्, अन्यथा परलोकादेरप्य-  
भावानुषङ्गः । सर्वस्यादर्शनं चासिद्धम्; सैतोऽपि निश्चेतुम-  
शक्यत्वात् ।

१०

विपक्षेऽदर्शनमौत्तान्त्र्यावृत्तिसिद्धौ—

“यद्वेदाध्ययनं किञ्चित्त्वध्ययनपूर्वकम् ।

वेदाध्ययनवाच्यत्वादधुनाध्ययनं यथा ॥”

[ मी० श्लो० पृ० ९४९ ]

इत्यस्यापि गमकत्वप्रसङ्गः । न खलु वेदाध्ययनमतदध्ययन- १५  
पूर्वकं दृष्टम् । तथा चास्यानादित्वसिद्धेरीश्वरपूर्वकत्वेन ग्रामाण्यं  
न स्यात् । न च कृतकत्वादावप्ययं दोषः समानः; तत्र विपक्षे  
हेतोः सद्भावयाधकप्रमाणसम्भवात् ।

धर्मादेश्चासदाद्यप्रत्यक्षत्वे 'देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः पञ्चादयो  
देवदत्तगुणाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वाद्ब्रह्मादिवत्' इत्यनुमानं न २०  
स्यात्, व्याप्तेरग्रहणात् । मानसप्रत्यक्षेण व्याप्तिग्रहणे सिद्धं धर्मा-  
देश्चासदादिप्रत्यक्षत्वम् । अथ 'बाह्येन्द्रियेणासदादिप्रत्यक्षत्वे सति'

१ हेतुं निवर्तयति । २ असदादिप्रत्यक्षत्वविशेषणस्य । ३ पदार्थाः । ४ सुखा-  
दयः । ५ धर्मादयः । ६ हेतोर्विपक्षाव्यावृत्तिः । ७ धर्मादौ । ८ आदिना परमाप्त्वा-  
देश्च । ९ भवदीयादर्शनस्य परलोकादौ सद्भावविशेषात्, तथा च चाधोक्तप्रसङ्गः ।  
१० नरस्य । ११ सर्वेषां हेतोर्विपक्षेऽदर्शनं विद्यते तस्यापि तस्य । १२ सर्वेषां  
प्राणिना ग्रहणमाभावात्, अन्यथाऽज्ञेयकत्वप्रसङ्गः । १३ अक्षणिके । १४ अदर्शन-  
सामान्यात् । १५ विपक्षात् । १६ अपौरुषेयत्वलक्षणसाध्यस्य । १७ जवेदाध्य-  
यनपूर्वके लोकवचने विपक्षे हेतोर्दर्शनमात्रादेतोर्विपक्षादवावृत्तिसिद्धेः सद्भावात् ।  
१८ ईश्वरकर्तृकत्वेन । १९ गमनमते । २० हेतौ । २१ नित्ये गगनादौ, यत्कृतं  
न भवति तदनित्यं न भवति यथा गगनमिति । २२ यच्च प्रत्युपसर्पणवत्तदेवदत्त-  
गुणाकृष्टमिति प्रत्यक्षेण धर्मादेश्चासदादिप्रत्यक्षत्वात् । २३ तदस्य धर्मादिना व्यभिचारः  
पूर्ववदस्य पक्षः । २४ इति विशेषणेन ।

इति हेतुर्विशेष्यते तदा साधनवैकल्यं दृष्टान्तस्य, सुखादेस्तथा प्रत्यक्षत्वाभावात् ।

यदि च वीचीतरङ्गन्यायेन शब्दोत्पत्तिरिष्यते तदा प्रथमतो वक्तृव्यापारादेकः शब्दः प्रादुर्भवति, अनेको वा ? यद्येकः; कथं नानादिकानेकशब्दोत्पत्तिः सकृदिति चिन्त्यम् । सर्वैदिकतात्वा-  
 ५ दिव्यापारजनितवाय्वाकाशसंयोगानामसमवायिकारणानां सम-  
 वायिकारणस्य चाकाशस्य सर्वगतस्य भावात् सकृत्सर्वैदिकता-  
 नाशब्दोत्पत्त्यविरोधे शब्दस्यारम्भकत्वायोगः । यथैवाद्यः शब्दो न  
 शब्देनारब्धस्तात्वाद्याकाशसंयोगादेवासमवायिकारणादुत्पत्तेः,  
 १० तथा सर्वैदिकशब्दान्तराण्यपि तात्वादिव्यापारजनितवाय्वाकाश-  
 संयोगेभ्य एवासमवायिकारणेभ्यस्तदुत्पत्तिसम्भवात् । तथा च  
 “संयोगोद्भिर्भागाच्छब्दाच्च शब्दोत्पत्तिः” [ वैशे० सू० २।२।३१ ]  
 इति सिद्धान्तव्याधीतः ।

अथ शब्दान्तराणां प्रथमः शब्दोऽसमवायिकारणं तत्सदृश-  
 १५ त्वात्, अन्यथा तद्विसदृशशब्दान्तरोत्पत्तिप्रसङ्गो नियामकमा-  
 वात् । नन्वेवं प्रथमस्यापि शब्दस्य शब्दान्तरसदृशस्यान्यशब्दाद-  
 समवायिकारणादुत्पत्तिः स्यात् तस्याप्यपरपूर्वशब्दादित्यनादित्वा-  
 पत्तिः शब्दसन्तानस्य स्यात् । यदि पुनः प्रथमः शब्दः प्रतिनियतैः  
 प्रतिनियताद्वक्तृव्यापारादेवोत्पन्नः स्वसदृशानि शब्दान्तराण्यार-  
 २० भेत, तर्हि किमाद्येन शब्देनासमवायिकारणेन ? प्रतिनियतवक्तृ-  
 व्यापारात्तज्जनितप्रतिनियतवाय्वाकाशसंयोगेभ्यश्च सदृशापरा-  
 परशब्दोत्पत्तिसम्भवात् । तत्रैकः शब्दः शब्दान्तरारम्भकः ।

नाप्यनेकः; तस्यैकस्यात्तात्वाद्याकाशसंयोगादुत्पत्त्यसम्भवात् ।  
 न चानेकस्तात्वाद्याकाशसंयोगः सकृदेकस्य वक्तुः सम्भवति,  
 २५ प्रत्यक्षस्यैकत्वात् । न च प्रत्यक्षमन्तरेण तात्वादिक्रियापूर्वकोऽन्यै-  
 तरकर्मजस्तात्वाद्याकाशसंयोगः प्रसूते यतोऽनेकशब्दः स्यात् ।

अस्तु वा कुतश्चिदाद्यः शब्दोऽनेकः; तथाप्यसौ खेदेशे शब्दा-  
 न्तराण्यारभते, देशान्तरे वा ? न तावत्सदेशे; देशान्तरे शब्दो-

१ विजुद्रव्यविशेषशुभलादित्ययम् । २ बाह्येन्द्रियेण सुखादिवदिति दृष्टान्तः प्रलब्धो  
 न भवतीति भावः । ३ शब्दादेव । ४ सर्वैदिकः—सर्वगतः । ५ उपादानस्यैव ।  
 ६ भवन्तीति । ७ प्रथमस्य । ८ शब्दान्तरं प्रति । ९ शब्दान्तरेणारब्धानि । १० शब्द-  
 स्यारम्भकत्वायोगे च । ११ नेरीदण्डयोः । १२ वंशादिविभागात् । १३ वैदिकस्य  
 तव । १४ प्रतिनियतरूपः विशिष्टः । १५ कल्पितेन । १६ न चेदनतिद्वयम् ।  
 १७ तात्वादिषु । १८ स्वोत्पत्तिदेशे जालान्दी । १९ स्वोत्पत्तिदेशादन्यदेशेषु ।

पलम्भाभावप्रसङ्गात् । अथ देशान्तरे; तत्रापि किं तद्देशे गत्वा, स्वदेशस्थ एव वा देशान्तरे तान्यसौ जनयेत् ? यदि स्वदेशस्थ एव; तर्हि लोकान्तेपि 'तज्जनकत्वप्रसङ्गः । अदृष्टमपि च शरीरदेशस्थ-मेव देशान्तरवर्तिमणिमुक्ताफलाद्याकर्षणं कुर्यात् । तथा च "धर्माधर्मौ स्वाध्वयसंयुक्ते आध्वयान्तरे कर्मरमेते" [ ५ ] इत्यादिविरोधः । न च वीचीतरङ्गादावप्यप्राप्तकार्यदेशत्वे सत्या-रम्भकत्वं दृष्टं येनात्रापि तथा तत्कल्प्येताध्यक्षविरोधात् । अथ तद्देशे गत्वा; तर्हि सिद्धं शब्दस्य क्रियावत्त्वं द्रव्यत्वप्रसाधकम् ।

किञ्च, आकाशगुणत्वे शब्दस्यासदादिप्रत्यक्षता न स्यादाकाश-स्यात्यन्तपरोक्षत्वात्; तथाहि-येऽत्यन्तपरोक्षगुणिगुणा न तेऽस- १० दादिप्रत्यक्षाः यथा परमाणुरूपादयः, तथा च परमाणुपगतः शब्द इति । न च वायुस्पर्शेन व्यभिचारः; तस्य प्रत्यक्षत्व-प्रसाधनात् ।

किञ्च, आकाशगुणत्वेऽसदादिप्रत्यक्षत्वे चास्यात्यन्तपरोक्षा-काशविशेषगुणत्वायोगः । प्रयोगः-यदसदादिप्रत्यक्षं तत्रात्यन्त- १५ परोक्षगुणिगुणः यथा घटरूपादयः, तथा च शब्द इति ।

यच्चोक्तम्- 'सत्तासम्बन्धित्वात्' इति; तत्र किं स्वरूपभूतया सत्तया सम्बन्धित्वं विवक्षितम्, अर्थान्तरभूतयोर्वौ ? प्रथम-पक्षे सामान्यादिभिर्व्यभिचारः; तेषां प्रतिषिध्यमानद्रव्यकर्म-भावत्वे सति तथाभूतया सत्तया सम्बन्धित्वेऽपि गुणत्वासिद्धेः । २० द्वितीयपक्षस्त्वयुक्तः; न हि शब्दादयः स्वयमसन्त एवार्थान्तर-भूतया सत्तया सम्बन्धमानाः सन्तो नामाभ्यविषाणादेरपि तथाभावात्प्रसङ्गात् । प्रतिषेत्स्यते चार्थान्तरभूतसत्तासम्बन्धे-नार्थानां सत्त्वमित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

यच्चोक्तम्-शब्दो द्रव्यं न भवत्येकद्रव्यत्वात्; तत्रैकद्रव्यत्वं २५ साधनमसिद्धम्, यतो गुणत्वे, गगने एवैकद्रव्ये समवायेन वर्तने च सिद्धे, तत्सिद्धेत्, तच्चोक्तया रीत्याऽपास्तमिति कथं तत्सिद्धिः ?

१ आधोऽनेकः शब्दः । २ सामयः आत्मा आत्मनो व्यापकत्वात् । ३ मणिमुक्ता-फलादी, शरीरपेक्षया । ४ आकर्षणादिब्रह्मणम् । ५ कार्यम्=उत्तरपीवीकृष्टणम् । ६ सत्तरङ्गाणां । ७ वायुस्पर्शौ-शालन्तपरोक्षगुणिगुणो भवत्सदादिप्रत्यक्षो न भवतीति न । ८ आकाशगुणः शब्दः । ९ सामान्यविशेषसमवायवत् ( सामान्य-विशेषसमवायाः स्वतः सन्त इति वचनात् ) । १० शब्दस्य । ११ द्रव्यगुणकर्मवत् । १२ समवाया सत्तासम्बन्धित्वस्य द्रव्यत्वात्कारणान्तरासम्भवात् । १३ आदिना विशेष-समवाययोर्दृष्टणम् । १४ रूपादिवत् । १५ शब्दस्य ।



यदप्येकद्रव्यत्वे साधनमुक्तम्—‘एकद्रव्यः शब्दः सामान्य-  
विशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्’ इति; तदपि प्रत्य-  
नुमानबाधितम्; तथाहि—अनेकद्रव्यः शब्दोऽस्मदादिप्रत्यक्षत्वे  
सत्यपि स्पर्शवत्त्वाद् घटादिवत् । वायुनानेकान्तश्च; स हि बाह्यैके-  
न्द्रियप्रत्यक्षोपि नैकद्रव्यः, चक्षुषैकेनाऽस्मदादिभिः प्रतीयमानैश्च-  
न्द्रार्कादिभिश्च । अस्मदादिविलक्षणेर्वाह्येन्द्रियान्तरेण तत्प्रतीतौ  
शब्देपि तथा प्रतीतिः किञ्च स्यात् ? अत्र तथातुपलम्भोऽन्यत्रापि  
सर्मानः ।

एतेनैवमपि प्रत्युक्तम्—‘गुणः शब्दः सामान्यविशेषवत्त्वे सति  
१० बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वादूपादिवत्’ इति; वाय्वादिभिर्व्यभिचारात्,  
ते हि सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षा न च गुणाः,  
अन्यथा द्रव्यसंख्याव्याघातः स्यात् । ततः शब्दानां गुणत्वासिद्धे-  
रयुक्तमुक्तम्—‘यश्चैषामाश्रयस्तत्पारिशेष्यादाकाशम्’ इति ।

यच्चोक्तम्—‘न तावत्स्पर्शवतां परमाणूनीम्’ इत्यादि; तत्सिद्ध-  
१५ साधनम्; तद्गुणत्वस्य तत्रानभ्युपगमात् । यथा चास्मदादिप्रत्य-  
क्षत्वे शब्दस्य परमाणुविशेषगुणत्वस्य विरोधस्तथाकाशविशेष-  
गुणत्वस्यैव । तथा हि—शब्दोऽत्यन्तपरोक्षाकाशविशेषगुणो  
न भवत्यस्मदादिप्रत्यक्षत्वात्कार्यद्रव्यरूपादिवत् । न ह्यस्मदादि-  
प्रत्यक्षत्वं परमाणुविशेषगुणत्वमेव निराकरोति शब्दस्य नाकाश-  
२० विशेषगुणत्वम् उभयत्राविशेषात् । यथैव हि परमाणुगुणो  
रूपादिरस्मदाद्यप्रत्यक्षस्तथाकाशगुणो महत्त्वादिरपि ।

यच्चाप्युक्तम्—‘नापि कार्यद्रव्याणीम्’ इत्यादि; तदप्ययुक्तम्;  
शब्दस्याकाशगुणत्वनिषेधे कार्यद्रव्यान्तराप्रामादुर्भावेऽप्युत्पत्त्यभ्युप-  
गमे शब्दो निराधारो गुणः स्यात् । तथा च ‘बुद्ध्यादयः कचिद्-

१ अनेकानि द्रव्याणि यस्य परमाणुद्वयाद्यपेक्षया । २ योगिप्रत्यक्षेण परमाणुना  
व्यभिचारपरिहारायैव । ३ एकेन वायुपरमाणुना व्यभिचारपरिहारायैव । ४ पर-  
माण्वपेक्षया । ५ परमाण्वपेक्षया । ६ अनेकान्त इति संबन्धः एकद्रव्यलक्षणसाध्या-  
भावात् । ७ योगिभिः । ८ चक्षुषोपेक्षयान्तेन स्पर्शनेकलक्षणेन । ९ तथा चानै-  
कान्तिकं यत्र हेतुः स्यादिति यावत् । १० एकद्रव्यः शब्द इत्यादिनिराकरणेन ।  
११ आदिना पृथिव्येतेनर्त्ता ग्रहः । १२ नवद्रव्याणां पञ्चद्रव्यत्वप्रसङ्ग इत्यर्थः ।  
१३ शब्दो विशेषगुणो न भवत्यस्मदादिप्रत्यक्षत्वात्कार्यद्रव्यरूपादिवत् । १४ जैनैः ।  
१५ विशेषणे । १६ मन्मते । १७ असन्मते । १८ अस्मदादिप्रत्यक्षत्वस्य ।  
१९ पृथिव्यादीनाम् । २० जैनैः । २१ परेण ।

तन्त्रे गुणत्वात्' इत्यस्य व्यभिचारः । ततः कार्यद्रव्यान्तरोत्पत्ति-  
स्तन्मन्युपगन्तव्येत्यसिद्धो हेतुः ।

अकारणगुणपूर्वकत्वं चासिद्धम्; तथा हि-आकारणगुणपूर्वकः  
शब्दोऽसदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वे सति गुणत्वात्पटरूपादिवत् । न  
चाणुरूपादिना सुखादिना वा हेतोर्व्यभिचारः, 'बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वे  
सति' इति विशेषणात् । नापि योगिबाह्येन्द्रियग्राह्येणाणुरूपादिना;  
असदादिग्रहणात् । नापि सामान्यादिना; गुणग्रहणात् ।

अथावद्रव्यभावित्वं च विरुद्धम्; साध्यविपरीतार्थप्रसाधन-  
त्वात् । तथाहि-स्पर्शवद्रव्यगुणः शब्दोऽसदादिबाह्येन्द्रियप्रत्य-  
क्षत्वे सत्यथावद्रव्यभावित्वात्पटरूपादिवत् । 'असदादिपुरुषान्तर-  
प्रत्यक्षत्वे सति पुरुषान्तराप्रत्यक्षत्वात्' इति वाखाद्यमानेन रसा-  
दिनानैकान्तिकः । 'आश्रयाद्रेयादेरन्यत्रोपलब्धेः' इति चासङ्गतम्;  
मेर्यादेः शब्दाश्रयत्वासिद्धेस्तस्य तन्निमित्तकारणत्वात् । आत्मादि-  
गुणत्वा(त्व)प्रतिषेधस्तु सिद्धसाधनाच्च समाधानमर्हति ।

यच्च 'शब्दलिङ्गाविशेषित' इत्याद्युक्तम्; तद्वन्व्यासुतसौभाग्य-१५  
व्यावर्णनप्रत्ययम्; कार्यद्रव्यस्य व्यापित्वादिधर्मासम्भवात् ।

'तैनेदमपि निरस्तम्'-विधिमुच्यन्तरिक्षे च शब्दः श्रूयमाणे-  
नैकैर्यसमवर्धिनिः शब्दत्वात् श्रूयमाणायशब्दवत् । श्रूयमाणः  
शब्दः समानजातीयसमवायिकारणः सामान्यविशेषधत्वे सति  
नियमेनार्सेदादिबाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात् कार्यद्रव्यरूपोदिवत् २०

१ शब्दस्य गुणरूपस्य कनिष्ठतनाभावात् । २ कार्यद्रव्यान्तरात्परमाणुरूपान्तर-  
जनकत्वात् । ३ अकारणमगमम्, तस्य गुणो महत्त्वादिः । ४ किन्तु स्पर्शरसगन्धवर्णव-  
स्युद्रव्यवैतुक्त इति भावः । ५ पटगतरूपगुणो यथा तन्नुगतरूपगुणपूर्वकः । ६ प्रसङ्ग-  
साधनमेतत् । ७ आत्मनः स्वभावत्वात् । ८ बीचीतरङ्गन्यायेन शब्दाच्छब्दोत्पत्ते-  
र्निषिद्धत्वात् । ९ प्रसङ्गसाधनमेतत् । १० विशेषगुणो न भवतीति साध्याभावात् ।  
११ शब्दस्मान्तर्गतरूपस्य । १२ आदिना मनोहिकक्षाया गृह्यते । १३ भेदाभावादिक-  
मित्यर्थः । १४ सत्त्वज्ञम् । १५ शब्दस्य आकाशविशेषगुणत्वनिराकरणेन कार्यद्रव्यविशेष-  
गुणत्वसाधनेन वा । १६ शब्देन । १७ यकार्थे-आकाशशब्दधर्माः । १८ गगनसम-  
वायिकारणकाः । १९ बीचीतरङ्गन्यायागतेन श्रूयमाणेन षट्शब्देन आद्या षट्शब्दाः  
श्रूयमाणा षट्शब्दस्यासमवायिकारणत्वेनाभिमतता यकार्थसमवायिनो यथा । २० सामा-  
न्यादिना व्यभिचारपरिहारायम् । २१ न चाकाशेन व्यभिचार इन्द्रियग्रहणात्, नापि  
षट्पादिना धकपदोपादानात्, नापि सुखादिना नाशपदोपादानात्, नापि योगिबाह्यै-  
केन्द्रियप्रत्यक्षेण परमाणुना तद्रूपादिना वाऽसदादिप्रग्रहणात्, नापि निश्चादादिना  
नियमेनेति पदोपादानात् । २२ पट्समवेतरूपाधारम्ये पट्येत्पादकतन्तुरूपमिव ।

इति; प्रतिशब्दं पुद्गलद्रव्यस्य तत्समवायिकारणस्य मेदात्। शब्दस्य क्षणिकत्वनिषेधोच्च कथं समानजातीयासमवायिकारणत्वम् १. ;

यदि चाकाशमनवयवं शब्दस्य समवायिकारणं स्यात्; तर्हि शब्दस्य नित्यत्वं सर्वगतत्वं च स्यादाकाशगुणत्वात्तन्महत्त्ववत्।  
५ क्षणिकैकदेशवृत्तिविशेषगुणत्वस्य शब्दे प्रमाणतः प्रतिषेधोच्च। तत्त्वे वा कथं न शब्दाधारस्याकाशस्य सावयवत्वम्? न हि निरवयवत्वे 'तस्यैकदेशे एव शब्दो वर्तते न सर्वत्र' इति विभागो घटते।

किञ्च, सावयवमाकाशं हिमवद्विन्ध्यावद्विभिन्नदेशत्वाद्-  
१० मिवत्। अन्यथा तयो रूपरसयोरिवैकदेशाकाशावस्थितिप्रसङ्गः। न चैतद् दृष्टमिष्टं वा।

कथं वा तदधेयस्य शब्दस्य विनाशः? स हि न तावदाश्रय-  
विनाशाद्धटते; तस्य नित्यत्वाभ्युपगमात्। नापि विरोधिगुणसङ्गा-  
त्वात्; तन्महत्त्वादेरेकार्थसमवेतत्वेन रूपरसयोरिव विरोधित्वा-  
१५ सिद्धेः। सिद्धौ वा ध्रुवणसमयेपि तदभावप्रसङ्गः; तदा तन्मह-  
त्त्वस्य भावात्। नापि संयोगादिर्विरोधिगुणः; तस्य तत्कारण-  
त्वात्। नापि संस्कारः; तस्याकाशेऽसम्भवात्। सम्भवे वा  
तस्याभावे आकाशस्याप्यभावानुपपन्नस्य तदव्यतिरेकात्। व्यति-  
रेके वा 'तस्य' इति सम्बन्धो न स्यात्। नापि शब्दोपलब्धिप्राप-  
२० कादृष्टाभावात्तदभावः; तुच्छाभावस्यासामर्थ्यतो विनाशाद्हेतुत्वात्  
खरविषाणवत्। तन्न शब्दस्याकाशप्रभवत्वमभ्युपगन्तव्यम्।

ननु चाऽस्य पौद्गलिकत्वेऽसदाद्यनुपलभ्यमानरूपाद्याश्रयत्वं  
न स्यात्पटादिवत्; तन्न; द्यर्णुकादिना हेतोर्व्यभिचापत्। नाय-  
नरश्मिषु जलसंयुक्तानिले चानुद्भूतरूपस्पर्शवत् शब्दाश्रयद्रव्ये-  
२५ ऽसदाद्यनुपलभ्यमानानामप्यनुद्भूततया रूपादीनां वृत्त्यविरोधः।  
यथा च प्राणेन्द्रियेणोपलभ्यमाने गन्धद्रव्येऽनुद्भूतानां रूपादीनां  
वृत्तिस्तथात्रापि। यथा च तैजसत्वात्पार्थिवत्वाच्चात्रैवानुपलभ्यमेपि

१ अनेकात्। २ पर्यायरूपेण वस्तुनो विनाशात्। ३ जैनेन। ४ तन्महत्त्ववत्।  
५ तथा च हिमवद्विन्ध्ययोः सहचरभाव इति भावः। ६ परेण। ७ विरोधिगुण-  
रूपस्य। ८ शब्दं प्रति। ९ संयोगादिः शब्दकारणमिति वचनात्। १० कार्यरूपेण।  
११-यत्पौद्गलिकं तदसदाद्यनुपलभ्यमानरूपाद्याश्रयमित्युक्ते द्रव्यगुकादिना, पौद्गलिकेन  
व्यभिचारोऽसदाद्यनुपलभ्यमानरूपाद्याश्रयत्वलक्षणसाध्याभावात्। १२ दृष्टान्तार्थे। १३ अत्र  
रूपं मासुरम्। १४ परमते। १५ परमते। १६ नायनरश्म्यादिषु (जलसंयुक्तानिले  
गन्धद्रव्ये) त्रिषु।



भीष्टो नित्यत्वविरोधानुषङ्गात् । क्षणविशराकृतया निखिलार्थानां नाधाराधेयभावः; इत्यपि मनोरथमात्रम्; क्षणविशराकृतव्यसार्थानां प्रागेव प्रतिषेधात् । 'खे पतत्री' इत्याद्यऽबाधितप्रत्ययाश्च तद्भावप्रसिद्धेः । ततः परेषां निरवद्यलिङ्गाऽभावाच्चाकाशद्रव्यस्य ५ प्रसिद्धिः ।

नापि कालद्रव्यस्य । यच्चोच्यते—कालद्रव्यं च परापरादिप्रत्ययादेव लिङ्गात्प्रसिद्धम् । कालद्रव्यस्य च इतरसाङ्गदे 'कालः' इति व्यवहारे वा साध्ये स एव लिङ्गम् । तथा हि—काल इतरसाङ्गिद्यते 'काल' इति वा व्यतहर्त्तव्यः, परापरव्यतिकरयौगपद्यायौगपद्यचि-  
 १० रक्षिप्रप्रत्ययलिङ्गत्वात्, यस्तु नेतरसाङ्गिद्यते 'काल' इति वा न व्यवहियते नासावुकलिङ्गः यथा क्षित्यादिः, तथा च कालः, तस्माच्च येति । विशिष्टकार्यतया चैते प्रत्ययाः काले एव प्रतिबद्धाः । यद्विशिष्टकार्यं तद्विशिष्टकारणादुत्पद्यते यथा घट इति प्रत्ययाः, विशिष्टकार्यं च परापरव्यतिकरयौगपद्यायौगपद्यचिरक्षिप्रप्रत्यया  
 १५ इति । परापरयोः सल्लु दिग्देशकृतयोः व्यतिकरो विपर्ययः—यत्रैव हि दिग्बिम्बानो पितर्युत्पन्नं परित्वं तत्रैव स्थिते पुत्रेऽपरित्वम्, यत्र चापरत्वं तत्रैव स्थिते पितरि परत्वमुत्पद्यमानं दृष्टमिति दिग्देशाभ्यामन्यभिमित्तान्तरं सिद्धम्; निमित्तान्तरमन्तरेण व्यतिकरासम्भवात् । न च परापरादिप्रत्ययस्य आदित्यादिक्रिया द्रव्यं बलि-  
 २० पलितादिकं वा निमित्तम्; तत्प्रत्ययविलक्षणत्वात्पटादिप्रत्ययवत् । तथा च सूत्रम् "अपरस्मिन्परं युगपदयुगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि" [ वैशे० सू० २।२।६ ] आकाशवच्चास्यापि विमुक्त-  
 नित्यैकत्वादयो धर्माः प्रतिपत्तव्यौ इति ।

अत्रोच्यते—परापरादिप्रत्ययलिङ्गानुमेयः कालः किमेकद्र-  
 २५ व्यम्, अनेकद्रव्यं वा ? न तावदेकद्रव्यम्; मुख्येतरकालसेवेनास्य द्वैविध्यात् । न हि समयावलिकार्दिव्यवहारकालो मुख्यकालद्रव्य-  
 मन्तरेणोपपद्यते यथा मुख्यसत्त्वमन्तरेण क्वचिदुपचरितं सत्त्वम् ।

१ आत्मनः । २ सौगतमतमालम्ब्य । ३ आदिपदेन यौगपद्यायौगपद्यचिरक्षि-  
 प्रादिग्रहः । ४ वसः । ५ तद्धेतो प्रत्यया अवशिष्टनिमित्तका भविष्यन्तीत्युक्ते सत्याह ।  
 ६ घटे सलेष प्रसिद्धाः । ७ कथम् ? तथा हि । ८ प्रत्ययैः । ९ सन्निहितदिग्देशे ।  
 १० कालापेक्षया दूरत्वम् । ११ कालापेक्षया सन्निहितत्वम् । १२ कालद्रव्यम् ।  
 १३ कालद्रव्यम् विनाऽन्यभिमितं परापरादिप्रत्ययस्य भविष्यतीत्याशङ्क्यामाह ।  
 १४ प्रत्ययः=प्रतीतिः । १५ चैनादिभिः । १६ चैनेः । १७ व्यवहारः । १८ आदिना  
 लवनिमेषवटिकासुहृत्प्रहरादिग्रहणम् । १९ अन्त्यादेरस्तित्वम् । २० मायवके ।  
 २१ अश्वेः ।

सं च मुख्यः कालोऽनेकद्रव्यम्, प्रत्याकाशप्रदेशं व्यवहारकालमे-  
वान्यथानुपपत्तेः । प्रत्याकाशप्रदेशं विमिश्रो हि व्यवहारकालः  
कुरुक्षेत्रलङ्काकाशदेशयोर्दिवसादिभेदान्यथानुपपत्तेः । ततः प्रति-  
लोकाकाशप्रदेशं कालस्याणुरूपतया भेदसिद्धिः ।

तदुक्तम्—

“लोयैयासपपसे पकेके जे टिया हु पकेका ।

रयणाणं रासीविव ते कालाणू मुणैयव्वा ॥ १ ॥”

[ द्रव्यर्स० गा० २२ (?) ]

यौगपद्यादिप्रत्ययाविशेषात्तस्यैकत्वम्, इत्यप्यसत्; तत्प्रत्यया-  
विशेषासिद्धेः । तेषां परस्परं विशिष्टत्वात्कालस्याप्यतो विशिष्टत्व-१०  
सिद्धिः । सहकारिणामेव विशिष्टत्वं न कालस्य, इत्यप्यनुत्तरम्;  
स्वरूपमभेदयतां सहकारित्वप्रतिक्षेपात् ।

यदि चास्य निरवयवैकद्रव्यरूपताभ्युपगम्यते कथं तर्ह्यती-  
तादिकालव्यवहारः ? स हि किमतीताद्यर्थक्रियासम्बन्धात्,  
स्वतो वा स्यात् ? अतीताद्यर्थक्रियासम्बन्धाच्चेत्, कुतस्तासाम-१५  
तीतादित्वम् ? अपरातीताद्यर्थक्रियासम्बन्धाच्चेत्, अनवस्था ।  
अतीतादिकालसम्बन्धाच्चेत्, अन्योन्यार्घ्यः । स्वतस्तस्यातीतादि-  
रूपता चायुक्ता, निरंशत्वमेदरूपत्वयोर्विरोधात् ।

यौगपद्यादिप्रत्ययाभावश्चैवंवादिनः स्यात्, तथाहि—यत्कार्य-  
जातमेकस्मिन्काले कृतं तद्युगपत्कृतमित्युच्यते । कालैकत्वे चाखि-२०  
लकार्याणामेककालोत्पाद्यत्वेनैकदैवोत्पत्तिप्रसङ्गाच्च किञ्चिद्युगप-  
त्कृतं स्यात् ।

चिरक्षिप्रव्यवहाराभावश्चैवंवादिनः । यत्खलु बहुना कालेन  
कृतं तच्चिरेण कृतम् । यच्च स्वल्पेन कृतं तत्क्षिप्रं कृतमित्युच्यते ।  
तच्चैतदुभयं कालैकत्वे दुर्घटम् ।

२५

१ कालपरमाणुक्षणम् । २ मुख्यकालद्रव्यानेकत्वाभावे । ३ हेतुरसिद्ध इत्युक्ते  
संज्ञा । ४ चन्द्रार्कादिदक्षिणायनोत्तरायणयोः सतोः । ५ लोकाकाशप्रदेशे पकेके  
ये स्थिताः खड्ड पकेके । रत्नानां राक्षसिव ते कालाणो भ्रातृव्याः । ६ सिद्धे हि  
क्रियाणामतीतादित्वे तत्सम्बन्धात्प्रलम्बातीतादित्वसिद्धिस्तिस्रसिद्धौ च तत्सम्बन्धात्तासा  
तत्तिरस्तिरिति । ७ निरंशस्य कालस्यातीतत्ववर्तमानत्वयन्तव्यत्वक्षणधर्माणां सङ्गानो  
न पटते इति भावः । ८ कार्यसमूहः । ९ कालस्य नित्यैकत्वादिरूपत्वे । १० अयौग-  
पद्याभावे सदपेक्षया जायमानस्य यौगपत्साप्यभाव इति भावः ।

प्र० क० भा० ४८

ननु चैकत्वेऽपि कालस्योपाधिमेदाद्भेदोपपत्तेर्न यौगपद्यादि-  
प्रत्ययाभावः । तदुक्तम्—“मणिवत्पाचकवद्भेदोपाधिमेदात्कालभेदः”  
[ ] इति; तदप्युक्तम्; यतोऽत्रोपाधिभेदः  
कार्यभेद एव । स च ‘युगपत्कृतम्’ इत्यत्राप्यस्त्येवेति किमित्य-  
५ युगपत्प्रत्ययो न स्यात् ? अथ क्रमभावी कार्यभेदः कालभेदव्यव-  
हारहेतुः । ननु कोऽस्य क्रमभावः ? युगपदनुत्पादश्चेत्; ‘युगपद-  
नुत्पादः’ इत्यस्य भाषितस्य कोऽर्थः ? एकस्मिन्कालेऽनुत्पादः;  
सोऽयमितरेतराश्रयः—यावद्धि कालस्य भेदो न सिद्ध्यति न ताव-  
त्कार्याणां भिन्नकालोत्पादलक्षणः क्रमः सिद्ध्यति, यावच्च कार्याणां  
१० क्रमभावो न सिद्ध्यति न तावत्कालस्योपाधिमेदाद्भेदः सिद्ध्यतीति ।  
ततः प्रतिक्षणं क्षणपर्यार्यः कालो भिन्नस्तत्समुदायात्मको लव-  
निमेषादिकालश्च । तथा चैककालमिदं चिरोत्पन्नमनन्तरोत्पन्न-  
मित्येवमादिव्यवहारः स्यादुपपन्नो नान्यथा ।

एतेन परापरव्यतिकारः कालैकत्वे प्रत्युक्तः; तथाहि—भूम्यवय-  
१५ वैरालोकावयवैर्वा बहुभिरन्तरितं वस्तु विप्रकृष्टं परमिति चोच्यते  
स्वल्पैस्त्वन्तरितं सन्निकृष्टमपरमिति च । तथा बहुभिः क्षणैरहो-  
रात्रादिभिर्वान्तरितं विप्रकृष्टं परमिति चोच्यते स्वल्पैस्त्वन्तरितं  
सन्निकृष्टमपरमिति च । बह्वर्त्यभावश्च गुरुत्वपरिमाणौादिवदपेक्षा-  
निबन्धनः कालैकत्वे दुर्बल इति ।

२० यौगपद्यादिप्रत्ययाविशेषात् कालस्यैकत्वे च गुरुत्वपरिमाणौ-  
देरप्येकत्वप्रसङ्गस्तुल्याक्षेपसमाधानत्वेनात् । ततो गुरुत्वपरिमाणा-  
देरनेकगुणरूपतावत्कालस्यानेकद्रव्यरूपताभ्युपगन्तव्या ।

ये तु चास्तत्त्वं कालद्रव्यं नाभ्युपगच्छन्ति तेषां परापरयौगपद्या-

१ यथा स्फटिकमणौ पावके च यथाक्रमं जपाकुसुमादिखादिरादिष्वुपाधिमेदाद्भेद-  
स्याप्यकार्यलक्ष्णोपाधिमेदाद्भेदः कालस्यापीत्यर्थः, ततश्च व्यतिकारो न स्यादिति भावः ।  
२ कालक्रमेणोत्पाद इत्यर्थः । ३ कालस्यैकत्वे यौगपद्याभावो यतः । ४ वसः ।  
५ विपर्ययः । ६ कालस्य । ७ असादवं गुरुत्वाच्छ्रुतिरिति व्यवहारो वस्तुन प्रकृतौ  
दुर्बलो यथा । ८ संपरापेक्षा । ९ गुरुत्वादिप्रत्ययाविशेषात् । १० अल्पपरिमाणस्यापि ।  
११ गुरुत्वपरिमाणमल्पत्वपरिमाणं च प्रतिपदार्थं मिथेय इत्याक्षेपः, समाधानं—तर्हि  
यौगपद्यादिप्रत्ययोपि प्रतिपदार्थं मिथेय इति समानम् । १२ नित्यनिरक्षैकद्रव्यरूपत्वे  
चार्याणां भूतसविष्यद्वर्तमानत्वं दुर्बलमतीतानागतवर्तमानकालभेदाभावात्, सिद्धे हि  
तद्भेदे तत्सम्बन्धादर्शानां तथा व्यपदेशः सात्रान्यथातिप्रसङ्गात् । न चास्य तत्सिद्धिर्बलते  
नित्यनिरक्षैकरूपत्वात् । यदेवंनिर्णयं न तत्रातीतादिस्वरूपभेदाः । यथा परमाणौ ।  
नित्यनिरक्षैकरूपश्च भवद्भिः परिकल्पितः कालः । १३ गीतासक्तगीतब्रह्मविद्याः ।

यौगपद्यन्विरक्षिप्रप्रत्ययानामभावः स्यात् । न खलु ते निर्निमित्ताः ; कादाचित्कत्वाद्दृष्टादिवत् । नाप्यविशिष्टनिमित्ताः ; विशिष्टप्रत्ययत्वात् । न च दिग्गुणजातिनिमित्तास्ते ; तज्जातप्रत्ययवैलक्षण्येनोपपत्तेः । तथा हि—अपरदिग्व्यवस्थितेऽप्रशस्तेऽध्वमजातीये स्थविरपिण्डे 'परोयम्' इति प्रत्ययो दृश्यते । परदिग्व्यवस्थिते चोत्तम-<sup>५</sup>जातीये प्रशस्ते यूनि पिण्डे 'अपरोयम्' इति प्रत्ययो दृश्यते ।

अथादित्यादिक्रिया तन्निमित्तम् ; जन्मतो हि प्रभृत्येकस्य प्राणिन आदित्यवर्तनानि भूयासीति परत्वमन्यस्य चाल्पीयांसीत्यपरत्वम् । नन्वेवं कथं यौगपद्यादिप्रत्ययप्रादुर्भावः एकस्मिन्नेवादित्यपरिवर्तने सर्वेषामुत्पादात् ? तथाव्यपदेशाभावाच्च<sup>१०</sup> 'युगपत्कालः' इति हि व्यपदेशो न पुनः 'युगपदादित्यपरिवर्तनम्' इति ।

न च क्रियैव कालः ; अस्याः क्रियारूपतयाऽविशेषतो युगपदादिप्रत्ययभावाद्युपपत्तात् । तस्य चोक्तकार्यनिर्वर्तकस्य कालस्य 'क्रिया' इति नामान्तरकरणे नाममात्रं सिध्येत् । १५

न च कर्तृकर्मणी एव यौगपद्यादिप्रत्ययस्य निमित्तम् ; यतो यौगपद्यं बहुनां कर्तॄणां कार्ये व्यापारो 'युगपदेते कुर्वन्ति' इति प्रत्ययसमधिगम्यः । बहुनां च कार्याणामार्त्तलाभो 'युगपदेतानि कृतानि' इति प्रत्ययसमधिगम्यः । न चैत्र कर्तृमात्रं कार्यमात्रं बालमर्धेनमतिप्रसङ्गात् । यत्र हि क्रमेण कार्यं तत्रापि कर्तृकर्मणोः<sup>२०</sup> सद्भावात्स्यादेतद्विज्ञानम्, न चैवम् । यथाऽ(तथाऽ)यौगपद्यप्रत्ययोप्ययुगपदेते कुर्वन्तीति, अयुगपदेतत्कृतमिति नाविशिष्टं कर्तृ-

१ किं बहु कालद्रव्यकारणोत्पादा इत्यर्थः । २ अवशिष्टं—साधारणम् । ३ पर-प्रत्ययः, अपरप्रत्यय इत्यादिरूपेण । ४ परापरादिप्रत्ययानाम् । ५ निकटदिक् । ६ गुणपेक्षया । ७ मातृज्ञात्वात् । ८ अतद्गुणसंविज्ञानोर्ध्ववत्तः, यौगपद्यमादियेषाम-यौगपद्यादीनां ते यौगपद्यादय इति, तेनायौगपद्यादिप्रत्ययप्रादुर्भावः कथमित्यर्थः संपन्नः । ९ युगपदादित्यपरिवर्तनमिति । १० अमुना हेतुना यौगपद्यस्याभावः कृतः । ११ कालम्यतिरेकस्य निमित्तस्य यौगपद्यादिप्रत्यये विचार्यमाणस्यानुपपद्यमानत्वात्तदा-दित्यपरिवर्तने स्थाकृत्यानिवेशो वा ? न तावदादित्यपरिवर्तनेनेकस्मिन्नप्यादित्यपरिवर्तने सर्वेषामुत्पादादिति, अस्य परिवर्तने येरुपपत्तिर्ण्येन परिग्रहणमहोरात्रमभिधीयते, तस्मिन्नेकस्मिन्नपि यौगपद्यादिप्रतीतिविवक्षार्थानामुत्पादः प्रतीयते एव तथा व्यपदेशा-भावाच्चेति । १२ क्रिया कालो मविष्यतीत्याह । १३ कालरूपतया यौगपद्यादिप्रत्ययो, न पुनः क्रियारूपतया । १४ भेदाभावात् । १५ तर्हि कर्तृकर्मणी यौगपद्यादिप्रत्ययस्य निमित्तं मविष्यतीत्युक्ते सत्याह । १६ यौगपद्यम् । १७ यौगपद्यप्रत्यये । १८ विषयः, कारणमित्यर्थः ।



कर्ममात्रमालम्ब्यतेऽतिप्रसङ्गादेव । अतस्तद्विशेषणं कालोऽभ्यु-  
पगन्तव्यः । कथमन्यथा चिरक्षिप्रव्यवहारोपि स्यात्? एक एव  
हि कर्त्ता किञ्चित्कार्यं चिरेण करोति व्यासङ्गादनर्थित्वाद्वा,  
किञ्चित्तु क्षिप्रमर्थितया । तत्र 'चिरेण कृतं क्षिप्रं कृतम्' इति  
५ प्रत्ययौ विशिष्टत्वाद्विशिष्टं निमित्तमाक्षिपत इति कालसिद्धिः ।

लोकव्यवहाराच्चः प्रनीयन्ते हि प्रतिनियत एव काले प्रति-  
नियता वनस्पतयः पुष्प्यन्तीत्यादिव्यवहारं कुर्वन्तो व्यवहारिणः ।  
यथा वसन्तसमये एव पाटलादिकुसुमानामुद्भवो न कालान्तरे ।  
इत्येवं कार्यान्तरेष्वभ्युह्यम् 'असवनकालमपेक्षते' इति व्यव-  
१० हारात् । समयमुद्घर्त्तयामाहोरात्रार्द्धमासन्वयनसंवत्सरादिव्यव-  
हाराच्च तत्सिद्धिः । तत्र परपरिकल्पितं कालद्रव्यमपि घटते ।

नापि दिग्द्रव्यम्; तत्सङ्गादेव प्रमाणाभावात् । यच्च दिशः  
सङ्गादेव प्रमाणमुक्तम्—“मूर्तेष्वेव द्रव्येषु मूर्त्तद्रव्यमवधिं कृत्वेद-  
मतः पूर्वेण दक्षिणेन पश्चिमेनोत्तरेण पूर्वदक्षिणेन दक्षिणापरे-  
१५ णाऽपरोत्तरेणोत्तरपूर्वेणाद्यस्तादुपरिष्ठादित्यमी दश प्रत्यया यतो  
भवन्ति सा दिग्” [प्रश्न० भा० पृ० ६६] इति । तथा च  
सूत्रम्—“अत इदमिति यतस्तदिशो लिङ्गम्” [वैशे० सू०  
२२।१०] तथा च दिग्द्रव्यमितरेभ्यो भिद्यते दिगिति व्यवहर्त्त-  
व्यम्, पूर्वादिप्रत्ययलिङ्गत्वात्, यस्तु न तथा न तत्पूर्वादि-  
२० प्रत्ययलिङ्गम् यथा श्रित्यादि, तथा चेदम्, तस्मात्तथेति । न चैते  
प्रत्यया निनिमित्ताः; कादाचित्कत्वात् । नाप्यविशिष्टनिमित्ताः;  
विशिष्टप्रत्ययत्वाद्दण्डीतिप्रत्ययवत् । न चान्योन्यापेक्षमूर्त्तद्रव्यनि-  
मित्ताः; परस्पराश्रयत्वेनोभयप्रत्ययाभावात्तदुपपन्नात् । ततोऽन्य-  
निमित्तोत्पाद्यत्वासम्भवादेते दिश एवांनुमापकाः । प्रयोगः—  
२५ यदेतत्पूर्वापरादिज्ञानं तन्मूर्त्तद्रव्यव्यतिरिक्तपदार्थनिवन्धनं तत्प्र-  
त्ययविलक्षणत्वात्सुखादिप्रत्ययवत् । विभुत्वैकत्वनित्यत्वादय-  
श्चास्या धर्माः कालवद्वगन्तव्याः । तस्याश्चैकत्वेपि प्राच्यादिभेद-  
व्यवहारो भगवतः सवितुर्महं प्रदक्षिणमावर्त्तमानस्य लोकपाल-  
गृहीतदिक्प्रदेशैः संयोगाद्व्यते ।

१ युगपदेते कुर्वन्ति युगपदेतानि कुर्यान्तीति तयोः कर्तृकर्तृणोः । २ पुत्राः ।  
३ पुत्रोत्पत्त्यादिलक्षणेभु । ४ ज्ञानं यवतीति शेषः । ५ लिङ्गसिद्धौ । ६ वस्तुः ।  
७ पदविन्या । ८ साधारणाऽऽकाशादिकारणका न भवन्तीति भावः । ९ पक्ष-  
वस्तुनः पूर्वत्वसिद्धौ सत्त्वा तदपेक्षया इतरस्यापरत्वसिद्धिरितरस्यापरत्वसिद्धौ सत्त्वा  
च तदपेक्षयाऽपरत्वसिद्धिः प्रथमस्य पूर्वत्वसिद्धिः)रिति । १० नान्यस्याकाशादेः ।  
११ इन्द्रादि ।

तदप्यसमीचीनम्; प्रोक्तप्रत्ययानामाकाशहेतुकत्वेनाकाशादि-  
शोऽर्थान्तरत्वासिद्धेः। तत्प्रदेशेऽपि ज्वेव ह्यादित्योदयादिवशात्प्रा-  
च्यादिदिग्द्रव्यवहारोपपत्तेर्न तेषां निहेतुकत्वं नाप्यविशिष्टपदार्थ-  
हेतुकत्वम्। तथाभूतं प्राच्यादिदिक्संबन्धाच्च मूर्च्छद्रव्येषु पूर्वापरा-  
दिप्रत्ययविशेषस्योत्पत्तेर्न परस्परापेक्षया मूर्च्छद्रव्याण्येव तद्धेतवो ५  
येनैकतरस्य पूर्वत्वासिद्धावेत्यतरस्यापरत्वासिद्धिः, तदसिद्धौ  
चैकतरस्य पूर्वत्वायोगादितरेतराश्रयत्वेनोभयाभावः स्यात्।

मन्वेवमाकाशप्रदेशेऽपि कुतस्तत्सिद्धिः? स्वरूपत एव  
तत्सिद्धौ तस्य परावृत्त्यभावप्रसङ्गः, अन्योन्यापेक्षया तत्सिद्धौ  
अन्योन्याश्रयणादुभयाभावः, तदेतद्विप्रदेशेऽपि पूर्वापरादि-१०  
प्रत्ययोत्पत्तौ समानम्। यथैव हि मूर्च्छद्रव्यमवधिं कृत्वा मूर्च्छज्वेव  
'इवमतः पूर्वेण' इत्यादिप्रत्यया दिग्द्रव्यहेतुकास्तथा दिग्मेदमवधिं  
कृत्वा दिग्मेदेज्वेव 'इयमर्तः पूर्वा' इत्यादिप्रत्यया द्रव्यान्तरहेतुकाः  
सन्तु विशिष्टप्रत्ययत्वाविशेषात्, तथा चानर्वास्था। परस्परापेक्षया  
तत्सिद्धावितरेतराश्रयणादुभयाभावः। स्वरूपतस्तत्प्रत्ययप्रसिद्धौ १५  
तेनैवानेकात्तात् कृतो दिग्द्रव्यसिद्धिस्तत्प्रत्ययपरावृत्त्यभावश्चा-  
नुपपन्नः।

सवितुर्मेवं प्रदक्षिणमावर्त्तमानस्येत्यादिन्यायेन दिग्द्रव्ये प्राच्या-  
दिव्यवहारोपपत्तौ तत्प्रदेशपङ्क्तिज्वऽप्यत एव तद्द्रव्यवहारोपपत्ते-  
रलं दिग्द्रव्यकल्पनया, देशद्रव्यस्यापि कल्पनाप्रसङ्गात्-अथमतः २०  
पूर्वो देशः' इत्यादिप्रत्ययस्य देशद्रव्यमन्तरेणानुपपत्तेः। पृथिव्यादि-  
रेव देशद्रव्यम्; इत्यसत्; तत्र पृथिव्यादिप्रत्ययोत्पत्तेः। पूर्वादि-

१ आकाशसंज्ञादिद्रव्यवहारः कथं सादित्वाह। २ आकाशप्रदेशलक्षण।  
३ पूर्वादिः। ४ पश्चिमादिः। ५ मूर्च्छद्रव्येषु पूर्वापरादिप्रत्ययविशेषोत्पत्तिप्रकारेण।  
६ तस्य=पूर्वापरत्वस्य। ७ पूर्वापरादिः। ८ परावृत्तिः=निवृत्तिः। ९ न च तथा  
पूर्वादिदिशामपि कस्याचिदेशस्यापेक्षया पश्चिमादिभ्यः प्रदेशोक्तिः। १० पूर्वापेक्षयाऽपरः,  
अपरापेक्षयापूर्व इति। ११ चोपपत्तिः। १२ अवगमते। १३ दिग्। १४ दिशः  
संज्ञायाह। १५ जैनमते। १६ अन्यदिग्द्रव्यापेक्षयाऽनवस्था तत्रापि तत्प्रत्यय-  
हेतुत्वस्यापरादिद्रव्यहेतुत्वप्रसङ्गात्। १७ दिग्मेदेऽपि दिग्द्रव्यव्यतिरिक्तद्रव्यान्तरानामपि  
पूर्वापरादिप्रत्ययस्य सत्तो जायमानत्वात्। १८ पूर्वापरेति। १९ पूर्वापरादिप्रत्ययेन।  
२० तत्प्रत्ययविलक्षणत्वादित्यस्य हेतोः। २१ दिग्द्रव्यं पूर्वापरादिप्रत्ययस्य कारणं  
न भवतीति भावः। २२ पूर्वापर। २३ तस्य=आकाशस्य। २४ प्राच्यादि।  
२५ तथा च नव द्रव्याणीति द्रव्यसंख्याभ्यासात् स्यात्। २६ तस्य पृथिव्यादि-  
प्रत्ययहेतुत्वेनायमतः पूर्वो देश इति प्रत्ययहेतुत्वाऽनुपपत्तेः।

दिकृतः पृथिव्यादिषु पूर्वदेशादिप्रत्ययश्चेत्; तर्हि पूर्वाद्याकाश-  
कृतस्तत्रैव पूर्वादिकप्रत्ययोस्त्वऽलं दिक्कल्पनाप्रयासेन ।

नन्वेवमादित्योदयादिवशादेवाकाशप्रदेशपङ्क्तिष्विव पृथिव्या-  
दिष्वपि पूर्वापरादिप्रत्ययसिद्धेराकाशप्रदेशश्रेणिकल्पनाप्यनर्थिका  
५ भवत्विति चेत्; न, 'पूर्वस्यां दिशि पृथिव्यादयः' इत्याद्याधारा-  
धेयव्यवहारोपलम्भात् पृथिव्याद्यधिकरणभूतायास्तत्प्रदेशपङ्क्तेः  
परिकल्पनस्य सार्थकत्वात् । आकाशस्य च प्रमाणान्तरैः  
प्रसाधितत्वात् । तत्र परपरिकल्पितं दिग्द्रव्यमप्युपपद्यते ।

नाप्यात्मद्रव्यम् । तद्धि सर्वगतत्वादिधर्मोपेतं परैरभ्युपेयते ।  
१० न चास्य तदुपेतत्वमुपपद्यते; प्रत्यक्षविरोधात् । प्रत्यक्षेण ह्यात्मा  
'सुख्यहं दुःख्यहं घटादिकमहं वेद्मि' इत्यहमहमिकया स्वदेह  
एव सुखादिस्वभावतया प्रतीयते, न देहान्तरे परसम्बन्धिनि,  
नाप्यन्तराले । इतरथा सर्वस्य सर्वत्र तथा प्रतीतिरिति सर्व-  
दर्शित्वं भोजनादिव्यवहारसङ्करश्च स्यात् ।

१५ अनुमानविरोधाच्चास्य तद्धर्मोपेतत्वायोगः; तथाहि-नात्मा  
परममहापरिमाणाधिकरणो द्रव्यान्तराऽसाधारणसामान्यवत्त्वे  
सत्यनेकत्वाद्वटादिवत् । 'अनेकत्वात्' इत्युच्यमाने हि सामान्ये-  
नानेकान्तः, तत्परिहारार्थं 'सामान्यवत्त्वे सति' इति विशेषणम् ।  
तथाकाशादिना व्यभिचारः, तत्परिहारार्थं 'द्रव्यान्तरासाधारण-  
२० सामान्यवत्त्वे सति' इत्युच्यते । एकस्यैव हि द्रव्यादर्थद्रव्यं  
द्रव्यान्तरम्, तदसाधारणसामान्यवत्त्वे सत्यनेकत्वमाकाशादौ  
नास्तीति । अत एव परममहापरिमाणलक्षणशुणेनापि नानेकान्तः ।

तथा, नात्मा तत्परिमाणाधिकरणो दिक्कालाकाशान्यत्वे सति  
द्रव्यत्वाद्वटादिवत् । न सामान्येन परममहापरिमाणेन बाने-  
२५ कान्तः, तयोर्द्रव्यत्वात् । नापि दिगादिना, 'तदन्यत्वे सति'  
इति विशेषणात् ।

तथा, नात्मा तत्परिमाणाधिकरणः क्रियावत्त्वाद्वाणादिवत् ।  
न चेदमसिद्धम्; 'योजनमहमागतः क्रोशं वा' इत्यादिप्रतीति-  
तस्तत्सिद्धेः । न च मनः शरीरं वागतमित्यभिधातव्यम्; तस्याहं-

१ व्योम । २ निखिलद्रव्यावगाहान्यथानुपपत्तेः । ३ आत्मनः सर्वैरात्मभिः सम्ब-  
न्धात् । ४ गोत्याभत्वमहिषत्वादिना । ५ सामान्यवत्त्वादित्युच्यमाने । ६ यतो द्रव्यत्वं  
सत्त्वं वा सामान्यमाकाशादिषु । ७ आत्मलक्षणात् । ८ आकाशस्य । ९ शुण्ठवसामा-  
न्यसङ्ख्यावादेनेकत्वाभावाच्च । १० तत्-परममहत् ।

प्रत्ययाऽवेद्यत्वात्, अन्यथा चार्वाकमतप्रसङ्गः स्यात् । प्रसाध-  
यिष्यते चाग्रे विस्तरतोऽस्य क्रियावत्त्वमित्यलमतिप्रसङ्गः ।

तथा, आत्माऽणुपरममद्वैतपरिमाणानधिकरणः, चेतनत्वात्,  
ये तु तत्परिमाणाधिकरणा न ते चेतनाः यथाकाशपरमाण्वा-  
दयः, चेतनश्चात्मा, तस्मान्न तत्परिमाणाधिकरण इति । ५

ननु चात्मा परममहापरिमाणाधिकरणो न भवतीति प्रति-  
ज्ञाऽनुमानवाधितो । तच्चानुमानम्-आत्मा व्यापकोऽणुपरिमाणा-  
नधिकरणत्वे सति नित्यद्रव्यत्वादाकाशवत् । अणुपरिमाणान-  
धिकरणोऽसौ अस्मदौदिप्रत्यक्षविशेषगुणाधिकरणत्वादद्रादिवत् ।  
तथा नित्यद्रव्यमात्माऽस्पर्शवद्द्रव्यत्वादाकाशवदेवेति । १०

अत्रोच्यते-अणुपरिमाणप्रतिषेधोऽत्र पर्युदासः, प्रसज्यो बाभि-  
प्रेतः । यदि पर्युदासः, तदासौ भावान्तरस्वीकारेण प्रवर्त्तते ।  
भावान्तरं च किं परममहापरिमाणम्, अवान्तरपरिमाणं वा  
स्यात् । प्रथमपक्षे साध्याविशिष्टत्वं हेतुविशेषणस्य । यथा  
'नित्यः शब्दोऽनित्यत्वे सति बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्' इति । १५  
द्वितीयपक्षे तु विरुद्धत्वम्, यथा 'नित्यः शब्दोऽनित्यत्वे सति  
बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्' इति ।

प्रसज्यपक्षेऽप्यसिद्धत्वम्, तुच्छस्वभावाभावस्य प्रमाणाविषयत्वेन  
प्रतिपादनात् । सिद्धौ वा किमसौ साध्यस्य स्वभावः, कार्यं वा ?  
यदि स्वभावः, तर्हि साध्यस्यापि तद्वस्तुच्छरूपतानुपङ्गः । अथ २०  
कार्यम्, तदा, तुच्छस्वभावाभावस्य कार्यत्वायोगात् । कार्यत्वं हि  
किं स्वकारणसत्तासमवायः, कृतमिति बुद्धिविषयत्वं वा ? न  
तावदाद्यः पक्षः, अभावस्य स्वकारणसत्तासमवायानभ्युपगमात्,  
अन्यथा भावरूपतैवास्य स्यात् । नापि द्वितीयः, तुच्छस्वभावा-  
भावस्य तद्विषयत्वासम्भवात् । तस्य हि प्रमाणागोचरत्वे कथं २५  
कृतबुद्धिविषयत्वं सम्भवेत् ? अनैकान्तिकं चैतत् । खननोत्सेच-  
नानन्तरमकार्येऽप्याकाशे कृतबुद्धिविषयत्वसम्भवात् ।

१ अत्रैवात्मसर्वगतत्वादिनिराकरणे । २ काष्ठालयापदिष्टेन हेतुना । ३ परमाणु-  
मिरनेकान्तपरिहारायनेतत्, परमाणुषु नित्यत्वमस्ति व्यापकत्वं च नास्तीति भावः ।  
४ हेतोर्विशेषणसमर्पणार्थनेतत् । ५ योगिप्रत्यक्षविशेषगुणाधिकरणैः परमाणुमिद्वैदि-  
चारस्थलरिहारायमसदादिपदम् । ६ प्रत्यक्षस्य ते विशेषगुणाश्च तेषामधिकरणम् ।  
७ हेतोर्विशेष्यदलसमर्पणार्थम् । ८ किंवाऽनेकान्तपरिहाराय द्रव्येति । ९ हेतो-  
र्विशेषणं निरस्यति नैनः । १० साध्यसमत्वम्, महापरिमाणस्यासौ हि व्यापकत्वम्,  
एवं सति आत्मा व्यापकः व्यापकत्वादित्याचार्य महापरिमाणव्यापकत्वयोः समानार्थ-  
त्वात् । ११ व्यापकत्वविशिष्टसात्मनः ।

नित्यद्रव्यत्वं च किं कथञ्चित्, सर्वथा वा विवक्षितम्? कथञ्चित्चेत्, घटादिनानेकान्तः, तस्याणुपरिमाणानधिकरणत्वे कथञ्चित्तित्यद्रव्यत्वे च सत्यपि व्यापित्वाभावात्। सर्वथा चेत्, असिद्धत्वम्, सर्वथा नित्यस्य वस्तुनोऽर्थक्रियाकारित्वेनाश्ववि-  
 ५ पाणप्रख्यत्वप्रतिपादनात्। अस्मादादिप्रत्यक्षविशेषगुणाधिकरण-  
 त्वाच्चाणुपरिमाणप्रतिषेधमात्रमेव स्याद् घटादिवत्, तस्य चेष्ट-  
 त्वात्सिद्धसाध्यता। अस्पर्शवद्रव्यत्वाच्चात्मनो यदि कथञ्चि-  
 त्तित्यत्वं साध्यते; तदा सिद्धसाध्यता। अथ सर्वथा, तर्हि हेतो-  
 रनन्वयत्वमाकाशदीनामपि सर्वथा नित्यत्वस्य प्रतिषिद्धत्वात्।

- १० ननु 'देहान्तरे परसम्बन्धिन्यन्तराले चात्मा न प्रतीयते'  
 इत्ययुक्तमुक्तम्; अनुमानात्तत्रास्य सद्भावप्रतीतेः; तथाहि-देव-  
 दत्ताङ्गनाथं देवदत्तगुणपूर्वकं कार्यत्वे तदुपकारकत्वाद्भासा-  
 दिवत्। कार्यदेशे च सन्निहितं कारणं तज्जन्मनि व्याप्रियते  
 नान्यथा, अतस्तदङ्गादिकार्यप्रादुर्भावदेशे तत्कारणवत्तद्गुण-  
 १५ सिद्धिः। यत्र च गुणाः प्रतीयन्ते तत्र तद्गुण्यप्यनुमीयते एव,  
 तमन्तरेण तेषामसम्भवात्; इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतो देवदत्ता-  
 ङ्गनाथङ्गादिकार्यस्य कारणत्वेनाभिप्रेता ज्ञानदर्शनादयो देवदत्ता-  
 त्मगुणाः, धर्माधर्मौ वा? न तावज्ज्ञानदर्शनसुखादयः स्वसंवेदन-  
 स्वभावास्तज्जन्मनि व्याप्रियमाणाः प्रतीयन्ते। वीर्यं तु शक्तिः,  
 २० सापि तदेह एवानुमीयते, तत्रैव तर्हि भूतक्रियायाः प्रतीतिः।  
 तज्ज्ञानादेस्तदेह एव तत्कार्यकारणविमुखस्याभ्यक्षादिनां प्रतीतिः  
 तद्वाचितर्कमनिर्देशानन्तरप्रयुक्तत्वेन कालात्ययापदिष्टः 'कार्यत्वे  
 सति तदुपकारकत्वात्' इति हेतुः।

- अथ धर्माधर्मौ, तदङ्गादिकार्यं तन्निमित्तमस्माभिरपीक्यते एव।  
 २५ तदात्मगुणत्वं तु तयोः सिद्धम्; तथाहि-न धर्माधर्मौ आत्मगुणौ  
 अचेतनत्वाच्छब्दादिवत्। न सुखादिना व्यभिचारः; अत्र हेतो-  
 रवर्चनात्, तद्विरुद्धेन स्वसंवेदनलक्षणवैतन्येनास्याऽव्याप्तत्वा-  
 साधनात्। नाप्यसिद्धता; अचेतनौ तौ स्वग्रहणविधुरत्वात्पट्टा-  
 दिवत्। न च बुद्ध्यास्य व्यभिचारः; अस्याः स्वग्रहणात्मकत्व-  
 ३० प्रसाधनात्। प्रसाधितं च पौद्गलिकत्वं कर्मणां सर्वज्ञसिद्धि-

१ हेतोर्विशेष्यं निरसति। २ न तु परममहापरिमाणमवान्तरपरिमाणं वा सिध्येत्।  
 ३ तथाविषयाभ्येन व्यापस्य हेतोर्दृष्टान्ते सत्त्वं नास्तीति शानः। ४ महेश्वरेणा-  
 कान्तपरिहारार्थमेतत्। ५ व्याप्तादिना व्यभिचारपरिहारार्थं तदुपकारकेति। ६ लिङ्ग-  
 शापकम्। ७ आरवाहादिकायाः। ८ देवदत्ताङ्गनाथङ्गादि। ९ वीर्यानुमान।  
 १० पक्षः। ११ वसः। १२ धर्माधर्मरूपाणाम्।

प्रस्तावे तदलमतिप्रसङ्गेन । तदेवं धर्माधर्मयोस्तदात्मगुणत्व-  
निषेधात् तन्निषेधानुमानबाधितमेतत्-‘देवदत्ताङ्गनाथकं देवदत्त-  
गुणपूर्वकम्’ इति ।

अस्तु वा तयोर्गुणत्वम्; तथापि न तदङ्गनाडादिप्रादुर्भावदेशे  
तत्सङ्गावसिद्धिः । न खलु सर्वे कारणं कार्यदेशे सदेव तज्जन्मनि ५  
व्याप्रियते, अङ्गनतिलकमन्त्राऽयस्कान्तादेराकृष्यमाणाङ्गनादि-  
देशेऽसतोप्याकर्षणादिकार्यकर्तृत्वोपलम्भात् । ‘कार्यत्वे सति’  
इति च विशेषणमनर्थकम्; यदि हि तद्गुणपूर्वकत्वाभावेपि तदुप-  
कारकत्वं दृष्टं स्यात् तदा ‘कार्यत्वे सति’ इति विशेषणं युज्येत,  
‘सति सम्भवे धर्मिचारे च विशेषणमुपादीयमानमर्थवद्भवति’ १०  
इति न्यायात् । कालेश्वरादौ दृष्टमिति चेत्; तर्हि कालेश्वरादिक-  
मतद्गुणपूर्वकमपि यदि तदुपकारकम् कार्यमपि किञ्चिदन्यपूर्वक-  
मपि तदुपकारकं भविष्यतीति सन्दिग्धविषयव्यावृत्तिकत्वादनै-  
कान्तिको हेतुः, कचित्सर्वज्ञत्वाभावे साध्ये वागादिवत् । न च  
नित्यैकसमावात्कालेश्वरादेः कस्यचिदुपकारः सम्भवतीत्युक्तम् । १५

नच(ननु च) नकुलशरीरप्रभ्वंसामावोऽहेरुपकारकोस्ति तस्मि-  
न्सति सुखावासभ्रमणादिभावादतः सोपि तद्गुणपूर्वकः स्यात्,  
तथा च कार्यत्वासम्भवेन सविशेषणस्य हेतोरवर्त्तमानाङ्गागा-  
सिद्धो हेतुः । प्रत्युक्तं चाभावस्यानन्तरमेव कार्यत्वम् । अथाऽत-  
द्गुणपूर्वकः; अन्यदप्यतद्गुणपूर्वकमपि तदुपकारकं किञ्च स्यात् ? २०

साध्यविकलं चेदं निदर्शनं प्रासादिवदिति । तत्र ह्यात्मनः को  
गुणो धर्मादिः, प्रयत्नो वा स्यात् ? धर्मादिश्चेत्, साध्यवत्प्रसङ्गः ।  
प्रयत्नश्चेत्, कोऽयं प्रयत्नो नाम ? आत्मनः तदवयवानां वा हस्ता-  
द्यवयवप्रविष्टानां परिस्पन्दः; स तर्हि चलनलक्षणा क्रिया, कथं  
गुणः ? अन्यथा गमनादेरपि गुणत्वानुषङ्गात्क्रियावार्त्तोच्छेदः । २५  
तथा चायुक्तम्-क्रियावत्त्वं द्रव्यलक्षणम् ।

यदप्युक्तम्-‘अदृष्टं श्लाघ्यसंयुक्ते आश्रयोन्तरे कर्मरभते

१ ततश्चाचेतनत्वं कर्मणश्च । २ कर्मणा पीडलितवत्सम्भवेनस्य । ३ आदिना  
लोहादिदेशे । ४ हेतोर्विषये इतिनिवृत्त्यर्थं हेतो विशेषणं योजयन्त्याचार्य इति  
वचनात् । ५ विषये । ६ कुत्रनिनिदर्शने । ७ निषेध्यस्य । ८ हेतोः । ९ अकार्य-  
रूपे । १० अकार्यत्वे सति तदुपकारकत्वम् । ११ तस्य=देवदत्तादेः । १२ अभावस्य  
कार्यत्वासम्भवेन । १३ अनुपरिभाषानधिकरणत्वस्य प्रसङ्गपक्षे । १४ देवदत्ताङ्गना-  
थकमपि । १५ साध्यमसिद्धं यथा तथा धर्मादिगुणत्वमप्यसिद्धम् । १६ स्वाभयः=  
आत्मा । १७ दीपान्तरवार्त्तिपदार्थे ।

एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणैत्वात्प्रयत्नवत् । न चास्य क्रियाहेतुत्वमसिद्धम् ; तथाहि—अग्रेरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्यक्पवनमणुमनसोश्चाद्यं कर्म देवदत्तविशेषगुणकारितं कार्यत्वे सति तदुपकारकत्वात् पाण्यादिपरिस्पन्दवत् । नाप्येकद्रव्यत्वम् ; तथाहि—  
 ५ एकद्रव्यमदृष्टं विशेषगुणत्वाच्छब्दवत् । ‘एकद्रव्यगुणत्वात्’ इत्युच्यमाने रूपादिभिर्व्यभिचारः, तन्निवृत्त्यर्थं ‘क्रियाहेतुगुणत्वात्’ इति विशेषणम् । ‘क्रियाहेतुगुणत्वात्’ इत्युच्यमाने हस्तमुसलसंयोगेन स्वाश्रयासंयुक्तस्तम्भादिक्रियाहेतुनानेकान्तः, तन्निवृत्त्यर्थम् ‘एकद्रव्यत्वे सति’ इति । ‘एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुत्वात्’  
 १० इत्युच्यमाने स्वाश्रयासंयुक्तलोहादिक्रियाहेतुनाऽयस्कान्तेनानेकान्तः, तत्परिहारार्थं ‘गुणत्वात्’ इत्युक्तम् ।

तदेतदप्यविचारितरमणीयम् ; अदृष्टस्य गुणत्वप्रतिषेधात्, अतो विशेष्यासिद्धो हेतुः । विशेषणासिद्धश्च, एकद्रव्यत्वात्प्रसिद्धेः । तत्र किमेकस्मिन्द्रव्ये संयुक्तत्वात्, समवायेन वर्त्तमानात्,  
 १५ नात्, अन्यतो वा स्यात् ? न तावत्संयुक्तत्वात् ; संयोगस्य गुणत्वेन द्रव्याश्रयत्वात्, अदृष्टस्य चाद्रव्यत्वात् । अन्यथा गुणवत्त्वेनास्य द्रव्यत्वानुषङ्गात् ‘क्रियाहेतुगुणत्वात्’ इत्येतद्विधत्ते । समवायेन वर्त्तनं च समवाये सिद्धे सिद्ध्येत्, स चासिद्धः, अग्रे निषेधात् । तृतीयपक्षस्त्वनभ्युपगमादेव न युक्तः ।

२० क्रियाहेतुत्वं चास्याऽनुपपन्नम् । तथा हि—देवदत्तशरीरसंयुक्तात्मप्रदेशे वर्त्तमानमदृष्टं द्वीपान्तरवर्त्तिषु मणिमुकाफलप्रबालादिषु देवदत्तं प्रत्युपसर्पणवत्सु क्रियाहेतुः, उत द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्यसंयुक्तात्मप्रदेशे, किं वा सर्वत्र ? तत्रापक्षस्त्यानभ्युपगम एव श्रयान्, अतिव्यवहितत्वेन द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्यैस्तस्यानभिसम्बन्धेन  
 २५ तत्र क्रियाहेतुत्वायोगात् । ननु स्वाश्रयसंयोगसम्बन्धसंस्मवाचेर्भौमनभिर्सम्बन्धोऽसिद्धः, अमुमेव ह्यात्मानमाश्रित्यादृष्टं वर्त्तते, तेन संयुक्तानि सर्वाण्यप्याकृत्यमाणद्रव्याणि, इत्यप्युक्तम् । तस्य

१ एकद्रव्यमात्मा, यसः । २ यसः । ३ आत्ममनसोः सर्वथा येदात् । ४ अनुमनसोः शरीरोत्पत्तिदेशं प्रति गमनक्रिया । ५ असिद्धमिति संबन्धः । ६ पुद्गलक्षणेकद्रव्यं रूपं यतः । ७ क्रिया—इननलक्षणा । ८ हस्तमुसलद्रव्यद्वयसंज्ञावात् । उल्लसले वान्यादिके खण्ड्यमाने सति दूरतोऽसंयुक्तस्तम्भादिः पततीति भावः । ९ स्वाश्रयो=भूम्यादिः । १० क्रिया=आकर्षणम् । ११ भूम्यादौ स्थितोऽयस्कान्तं कर्षयितुमसंयुक्तं लोहादिकमाकर्षतीति भावः । १२ परस्व तव । १३ तस्यादृष्ट-स्वाश्रय आत्मा तेन संयोगः । १४ अदृष्टस्य । १५ द्रव्याणाम् । १६ अदृष्टेन सह । १७ कथम् ? तथा हि ।

त्रैवर्चाविशेषेण सर्वस्याकर्षणानुषङ्गात् । अथ यददृष्टेन यजन्यते तददृष्टेन तदेवाकृत्यते न सर्वम् । तर्हि देवदत्तशरीरारम्भकार्णां परमाणूनां नित्यत्वेन तददृष्टाजन्यत्वात् कथं तददृष्टेनाकर्षणम् ? तथाप्याकर्षणेऽतिप्रसङ्गः । तच्चाद्यः पक्षो युक्तः ।

नापि द्वितीयः, तथाहि-यथा वायुः स्वयं देवदत्तं प्रत्युपसर्पण-५ वानन्येषां तृणादीनां तं प्रत्युपसर्पणहेतुस्तथाऽदृष्टमपि तं प्रत्युपसर्पत्स्वयमन्येषां तं प्रत्युपसर्पतां हेतुः, द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्यसंयुक्तात्मप्रदेशस्थमेव वा ? प्रथमपक्षे स्वयमेवादृष्टं तं प्रत्युपसर्पति, अदृष्टान्तराद्वा ? स्वयमेवास्य तं प्रत्युपसर्पणे द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्याणामपि तथैव तत् इत्यदृष्टपरिकल्पनमनर्थकम् । 'यदेवदत्तं प्रत्यु-१० पसर्पति तदेवदत्तगुणाकृष्टं तं प्रत्युपसर्पणात्' इति हेतुश्चानैकान्तिकः स्यात् । वायुवच्चादृष्टस्य सक्रियत्वम् गुणत्वं वाचेत । शब्दवच्चापरापरस्योत्पत्तौ अपरमदृष्टं निमित्तकारणं वाच्यम्, तत्राप्यपरमित्यनवस्था । अन्यथा शब्देऽप्यदृष्टस्य निमित्तत्वकल्पना न स्यात् । अदृष्टान्तरात्तस्य तं प्रत्युपसर्पणे तदप्यदृष्टान्तरं तं प्रत्युप-१५ सर्पत्यदृष्टान्तरात्तदपि तदन्तरादिति तदवस्थमनवस्थानम् ।

अथ द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्यसंयुक्तात्मप्रदेशस्थमेव तत्तेषां तं प्रत्युपसर्पणहेतुः, न; अन्यत्र प्रयत्नावावात्मगुणे तथानभ्युपगमात् । न काले प्रयत्नो प्रासादिसंयुक्तात्मप्रदेशस्थ एव हस्तादिसञ्चलनहेतु-प्रासादिकं देवदत्तमुखं प्रापयति, अन्तरालप्रयत्नवैफल्यप्रसङ्गात् । २०

ननु प्रयत्नस्य विचित्रतोपलभ्यते, कश्चिद्धि प्रयत्नः स्वयमपरापरदेशवानभ्यत्र क्रियाहेतुर्यथानन्तरोदितः । अन्यश्चान्यथा यथा शरासनान्यासंपदसंयुक्तात्मप्रदेशस्थ एव शरीरा(शरा) दीनां लक्ष्यप्रदेशप्राप्तिक्रियाहेतुरिति । सेयं चित्रता एकद्रव्याणां क्रियाहेतुगुणानां स्वाश्रयसंयुक्तासंयुक्तद्रव्यक्रियाहेतुत्वेन कित्ते-२५ ष्यते विचित्रशक्तित्वाद्भावानाम् ? इत्यते हि आमकाख्यस्यायस्कान्तस्य स्पर्शो गुण एकद्रव्यः स्वाश्रयसंयुक्तलोहद्रव्यक्रियाहेतुः, आकर्षकाख्यस्य तु स्वाश्रयासंयुक्तलोहद्रव्यक्रियाहेतुरिति ।

१ अनाकृत्यमाणेष्वपि । २-सयोगस्य । ३ सर्वस्याप्याकर्षणप्रसङ्गः । ४ स्वयमुपसर्पताऽदृष्टेन । ५ शब्दवदपरापरादृष्टसोत्पत्तेः कर्म सक्रियत्वमित्याद्युपायमाह । ६ 'इति चेत्' इत्युपरीष्टावोन्यम् । ७ हस्तादिगतात्मप्रदेशस्थः । ८ येन प्रयत्नेन प्राप्नो गृह्यते स प्रथमः प्रयत्नः, अन्तरालप्रयत्नस्तु येन प्रासादिकमूर्ध्वं कृत्वा मुखं प्रति नीयते स इति । ९ यः प्रयत्नो भिन्नं भिन्नं प्रदेशं गृह्णातीत्यर्थः । १० प्रासादौ । ११ शरासनस्य धनुषोऽप्यासः सितित्तस्य पदं स्थान इत्युक्तं तत्र संयुक्तप्रासादात्मप्रदेशस्थ एव तिष्ठतीति विग्रहवाक्यम् । १२ अदृष्टलक्षणानाम् ।



अथात्र द्रव्यं क्रियाहेतुर्न स्पर्शादिगुणः; कुत एतत्? द्रव्यरहि-  
तस्यास्य तद्धेतुत्वादर्शनाच्चेत्; तर्हि वेगस्य क्रियाहेतुत्वं क्रियायाश्च  
संयोगहेतुत्वं संयोगस्य च द्रव्यहेतुत्वं न स्यात्, किन्तु द्रव्यमेवा-  
त्रापि तत्कारणम् । ननु द्रव्यस्य तत्कारणत्वे वेगादिरहितस्यापि  
५ तत्स्यात्; तर्हि स्पर्शस्य तदकारणत्वे तद्गहितस्यैवायस्कान्तदेस्तद्धे-  
तुत्वं किञ्च स्यात्? तथाविधस्यास्यादर्शनाच्चेति चेत्; तर्हि लोह-  
द्रव्यक्रियोत्पत्ताबुद्ध्यर्थं दृश्यते उभयं कारणमस्तु विशेषाभावात् ।  
तथाच 'एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वात्' इत्यस्यानेकांतः ।

सर्वत्र चादृष्टस्य वृत्तौ सर्वद्रव्यक्रियाहेतुत्वं स्यात् । 'यददृष्टं  
१० यद्रव्यमुत्पादयति तददृष्टं तत्रैव क्रियां करोति' इत्यत्रापि शरीरा-  
रम्भकाण्यु क्रिया न स्यादित्युक्तम् । अदृष्टस्य चाश्रय आत्मा, स  
च हर्षविषादादिविवर्तात्मको द्वीपान्तरवार्तद्रव्यैर्विद्युक्तमेवात्मानं  
स्वसंवेदनप्रत्यक्षतः प्रतिपद्यते इति प्रत्यक्षवाधितकर्मनिर्देशानन्त-  
रप्रयुक्तत्वेन कालात्ययापदिष्टो हेतुः । तद्विद्युक्तत्वेनाऽतस्तत्प्रती-  
१५ तावप्यात्मनस्तद्रव्यैः संयोगाभ्युपगमे पटादीनां मेर्वादिभिस्तेषां  
चा पटादिभिः संयोगः किञ्चेप्यते यतः साद्रव्यदर्शनं न स्यात्?   
प्रमाणवाधनमुद्भेद्यत्र समानम् ।

किञ्च, धर्माधर्मयोर्द्रव्यान्तरसंयोगस्य चात्मैक आश्रयः, स च  
भवन्मते निरंशः । तथा च धर्माधर्माभ्यां सर्वात्मनास्यालिक्रितत-  
२० तुत्वाच्च तत्संयोगस्य तत्रावकाशस्तेन वा न तयोरिति ।  
अथ धर्माधर्मालिक्रिततत्स्वरूपपरिहारेण तत्संयोगस्तत्स्वरूपान्तरे  
वर्चते, तर्हि घटादिवदात्मनः सावयवत्वं स्वारम्भकावयवारभ्य-  
त्वमनित्यत्वं च स्यात् ।

एतेनैतन्निरस्तम्- 'देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः पश्वाद्यो देवदत्त-  
२५ गुणाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वाद्भासादिवत्' इति । यथैव हि तद्वि-  
शेषगुणेन प्रयत्नाख्येन समाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पन्तः समुपलभ्यन्ते  
आसादयः, तथा नयनाख्यनादिना द्रव्यविशेषेणाप्याकृष्टाः स्याद-  
यस्तं प्रत्युपसर्पन्तः समुपलभ्यन्ते एव, अतः 'किं प्रयत्नसंघर्षणा

१ अनयवाधितस्य । २ अवयवेत्वेन । ३ अवयवकक्षुणतन्त्राधितस्य संयोगस्य ।  
४ अवयविकक्षुणपटस्य । ५ अवयविद्रव्यम् । ६ क्रियासंयोगद्रव्येत्वेन । ७ तत्सं-  
क्रियायाः संयोगस्य द्रव्यस्य च । ८ स्पर्शवत्त्वान्ता । ९ स्पष्टेन । १० 'किं वा  
सर्वत्र' इति एतौ विस्मयेयम् । ११ पूर्वम् । १२ सर्वं सर्वत्र विधे इति वचनात् ।  
१३ असङ्ख्येकं असङ्ख्येकं च । १४ द्रव्यस्यापि क्रियाहेतुत्वसमर्पणपरेण अन्येन एक-  
द्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वानुमाननिराकरणेन वा । १५ प्रयत्नसदृशेनेत्यर्थः ।

केनचिदाकृष्टाः पश्वादयः किं वाञ्छनादिसधर्मणा इति सन्देहः । शक्यं हि परेणाप्येवं वक्तुम्-विवादापेक्षाः पश्वादयोऽञ्जनादिसधर्मणा समाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वात् कयादिवत् । अथ तदेवावेपि प्रयत्नादपि तद्वृष्टेरनेकान्तः, तर्हि प्रयत्नसधर्मणो गुणस्याभावोऽप्यञ्जनादेरपि तद्वृष्टेर्मवदीयहेतोरप्यनैकान्तिकत्वं स्यात् । अत्रा-  
नुमीयमानस्य प्रयत्नसधर्मणो हेतुत्वादव्यभिचारे अन्यत्राप्यञ्जनादिसधर्मणोऽनुमीयमानस्य हेतुत्वादव्यभिचारः स्यात् । तत्र प्रयत्नस्यैव सामर्थ्यादेरप्यैव फल्ये अत्राप्यञ्जनादेरेव सामर्थ्यात्तद्वैफल्यं किं न स्यात् ? अथाञ्जनादेरेव तद्वेतुत्वे सर्वस्य तद्वतः कयाद्याकर्षणं स्यात्, न वाञ्छनादौ सत्यप्यविशिष्टे तद्वतः सर्वान्प्रति १० कयाद्याकर्षणम्, ततोऽवसीयते तद्विशेषेपि यद्वैकल्यात्तन्न स्यात्तदपि तत्कारणं नाञ्जनादिमात्रम्, इत्यप्यपेशलम्, प्रयत्नकारणेपि समानत्वात् । न खलु सर्वं प्रयत्नवन्तं प्रति प्रासादयः समुपसर्पन्ति तदपहारादिदर्शनात् । ततोऽत्राप्यन्यत्कारणमनुमीयताम्, अन्यथा न प्रकृतेरप्यविशेषात् । १५

अञ्जनादेश्च कयाद्याकर्षणं प्रत्यकारणत्वे घटादिवत्तदर्थिनां तदुत्पादनं न स्यात् । उपादाने वा सिकतासमूहाचैलवन्न कदाचित्त-  
उस्तत्स्यात् । न च दृष्टसामर्थ्यस्याञ्जनादेः कारणत्वपरिहारेणा-  
त्रान्यकारणत्वकरूपने भवितोऽर्नवस्थितो मुक्तिः स्यात् । अथा-  
ञ्जनादिकमदृष्टसहकारि तत्कारणं न केवलम्, इन्तैवं सिद्धमदृष्ट-  
वदञ्जनादेरपि तत्कारणत्वम् । ततः सन्देह एव-किं प्रासादिव-  
त्प्रयत्नसधर्मणाकृष्टाः पश्वादयः किं वा कयादिवदञ्जनादिस-  
धर्मणा तैस्संयुक्तेन द्वैत्येण इति । परिस्पन्दमानात्मप्रदेश-  
व्यतिरेकेण प्रासादाकर्षणहेतोः प्रयत्नस्यापि तद्विशेषगुणस्य परं प्रत्यसिद्धेः साध्यविकलता दृष्टान्तस्य । २५

यच्चोक्तम्-‘देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः’ इति, तत्र देवदत्तशब्द-  
वाच्यः कोर्थः-शरीरम्, आत्मा, तत्संयोगो वा, आत्मसंयोगा-  
विशिष्टं शरीरं वा, शरीरसंयोगविशिष्ट आत्मा वा, शरीरसंयुक्त

१ गुणेन । २ अदृष्टलक्षणेन द्रव्यविशेषेण । ३ जैनेनापि । ४ गुणेन समाकृष्टा  
द्रव्येण वेति । ५ अञ्जनादिसधर्मद्रव्यविशेषाभावेति । ६ तस्य=प्रासादाकर्षणस्य ।  
७ तस्य=कयाद्याकर्षणस्य । ८ उपसर्पणकारणत्वात् । ९ अदृष्टलक्षणाद्रव्यविशेषस्य ।  
१० कयाद्याकर्षणे । ११ प्रासादाकर्षणे । १२ द्रव्यस्य । १३ कयाद्याकर्षणेपि ।  
१४ प्राणिनः । १५ अदृष्ट । १६ वसः । १७ वैशेषिकस्य । १८ दृष्टसामर्थ्य-  
सान्यकारणस्य परिहारेणेत्यादिप्रकारेण । १९ कारणानां पूर्वपूर्वकारणपरित्यागेनाऽपरा-  
परकारणपरिकल्पनात् । २० अदृष्ट । २१ आत्मना । २२ द्रव्यमिदम् ।

प्र० क० मा० ४९

आत्मप्रदेशो वा ? यदि शरीरम्; तर्हि शरीरं प्रत्युपसर्पणाच्छरी-  
रगुणाकृष्टाः पञ्चादय इत्यात्मविशेषगुणाकृष्टत्वे साध्ये शरीरगु-  
णाकृष्टत्वसाधनादिरुद्धो हेतुः ।

अथात्मा; तस्य समाकृष्यमाणार्थदेशकालाभ्यां संदामिसम्भ-  
५ न्धातुं तं प्रति किञ्चिदुपसर्पेत् । न ह्यत्यन्तान्निष्ठकण्ठकामिनी  
कामुकमुपसर्पति । अन्यदेशो ह्यर्थोऽन्यदेशं प्रत्युपसर्पति, यथा  
लक्ष्यदेशार्थं प्रति बाणादिः । अन्यकालं वा प्रत्यन्यकालः, यथाङ्कुरं  
प्रत्युपरापरशक्तिपरिणामलाभेन बीजादिः । न चैतद्भ्रमं नित्य-  
व्यापित्वाभ्यामात्मनि सर्वत्र सर्वदा सन्निहिते सम्भवति, अतो  
१० 'देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः' इति धर्मविशेषणं 'देवदत्तगुणाकृष्टाः'  
इति साध्यधर्मः 'तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वात्' इति साधनधर्मः परस्य  
स्वरुचिविरचित एव स्यात् ।

अथ शरीरात्मसंयोगो देवदत्तशब्दवाच्यः; न; अस्य तच्छब्द-  
वाच्यत्वे तं प्रति चैषामुपसर्पणे 'तद्गुणाकृष्टास्ते' इत्यायातम् । न  
१५ च गुणेषु गुणाः सन्ति, निर्गुणत्वात्तेषाम् ।

'आत्मसंयोगविशिष्टं शरीरं तच्छब्दवाच्यम्' इत्यत्रापि पूर्व-  
वद्विरुद्धत्वं द्रष्टव्यम् ।

'शरीरसंयोगविशिष्ट आत्मा तच्छब्दवाच्यः' इत्यत्रापि प्राक्तन  
एव दोषः नित्यव्यापित्वेनास्य सर्वत्र सर्वदा सन्निधानानिवार-  
२० णात् । न खलु घटसंयुक्तमाकाशं मेवादौ न सन्निहितम् ।

अथ शरीरसंयुक्त आत्मप्रदेशस्तच्छब्देनोच्यते; स काल्प-  
निकः, पारमार्थिको वा ? काल्पनिकत्वे काल्पनिकात्मप्रदेशगु-  
णाकृष्टाः पञ्चादयस्तथाभूतात्मप्रदेशं प्रत्युपसर्पणवत्त्वादिति तद्गु-  
णानामपि काल्पनिकत्वं साधयेत् । तथा च सौगतस्येव तद्गुणकृतः  
२५ प्रेत्यभावोपि न पारमार्थिकः स्यात् । न हि कल्पितस्य पावकस्य  
रूपादयस्तत्कार्यं वा दाहादिकं पारमार्थिकं दृष्टम् ।

पारमार्थिकाश्चेदात्मप्रदेशाः; ते ततोऽभिन्नाः, भिन्ना वा ? यद्य-  
भिन्नाः; तदात्मैव ते, इति नोक्तदोषपरिहारः । भिन्नाश्चेत्; तर्हि-  
शेषगुणाकृष्टाः पञ्चादय इत्येतत्तेषामेवात्मत्वं प्रसाध्यतीत्यन्यात्म-  
३० कल्पनानर्थक्यम् । कल्पने वा सावयवत्वेन कार्यत्वमनित्यत्वं  
चास्य स्यादित्युक्तम् ।

१ नित्यसर्वगतत्वादात्मनः । २ देशकालकृतोपसर्पणम् । ३ वैशेषिकम् । ४ इति  
चेदिति शोध्यम् । ५ पञ्चादीनाम् । ६ अधिर्माणवक इत्यादौ । ७ आत्मनः समा-  
कृष्यमाणार्थदेशकालाभ्यामित्यादिना । ८ तस्य=आत्मनः । ९ आत्मप्रदेशानाम् ।  
१० घटवत् ।

यथान्यदुक्तम्—‘सर्वगत आत्मा सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वादा-  
काशवत्’ इति; तत्र किं स्वशरीर एव सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वं  
हेतुः, उत स्वशरीरवत्परशरीरेऽन्यत्र च? तत्र प्रथमपक्षे विरुद्धो  
हेतुः, तत्रैव ततस्तस्य सर्वगतत्वसिद्धेः। द्वितीयपक्षे त्वसिद्धः,  
तथोपलम्भाभावात्। न खलु बुद्ध्यादयस्तद्गुणाः सर्वत्रोपलभ्यन्ते, ५  
अन्यथा प्रतिप्राप्तिं सर्वज्ञत्वादिप्रसङ्गः।

अथ मन्याखेटवत्खेटान्तरे मनुष्यजन्मवज्जन्मान्तरे चोपलभ्य-  
मानगुणत्वं विवक्षितम्, तर्हि युगपत्, कमेण वा? युगपच्छेत्,  
असिद्धो हेतुः। कमेण चेत्, सर्वे सर्वगताः स्युः, घटादीनामपि  
तथा सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वसम्भवात्। तेषां देशान्तरगमना- १०  
स्तत्सम्भवे आत्मनोपि ततस्तत्सम्भवोस्तु तद्वत्तस्यापि सक्रिय-  
त्वात्। प्रत्यक्षेण हि सर्वो देशदेशान्तरमायातमात्मानं प्रतिपद्यते,  
तथा च वदत्यहमद्य योजनमेकमागतः। मनः शरीरं बागतमिति  
चेत्, किं पुनस्तदहमप्ययवेद्यम्? तथा चेत्, चार्वाकमतानुपङ्गः।

ननु चास्य सक्रियत्वे लोष्टादिवन्मूर्तिभिः सम्बन्धः स्यात्। १५  
तत्र कैयं मूर्तिर्नाम-असर्वगतद्रव्यपरिमाणम्, रूपादिमत्त्वं वा  
स्यात्? तत्राद्यपक्षो न दोषावहः, असीदत्वात्। न हीदृमेव दोषाय  
जायते। रूपादिमती मूर्तिः स्यादिति चेत्, न; व्याप्त्यभावात्। रूपा-  
दिमन्मूर्तिमानात्मा सक्रियत्वाद्वाणादिवत्; इत्यप्यनुन्दरम्, मन-  
साऽनैकान्तिकत्वात्। न चास्य पक्षीकरणम्, ‘रूपादिविशेषगुणा- २०  
मधिकरणं सन्मनोर्ये प्रकाशयति शरीरादर्थान्तरत्वे सति सर्वत्र  
कीनकारणत्वादात्मवत्’ इत्यनुमानविरोधानुपङ्गात्।

ननु सक्रियत्वे सत्यात्मनोऽनित्यत्वं स्यादद्वयदिवत्, इत्यपि  
वार्त्तम्; परमाणुभिर्मनसा चानैकान्तात्।

किञ्च, अस्यातः कथञ्चिदनित्यत्वं साध्येत, सर्वथा वा? कथ- २५  
ञ्चिच्छेत्, सिद्धसाधनम्। सर्वथा चानित्यत्वस्य घटादावप्यसिद्ध-  
त्वात्साध्यविकलता दृष्टान्तस्य।

१ अन्तराले। २ परशरीराद्यौ। ३ आदिना दुःखित्वादिग्रहः। ४ द्वितीयपक्षे  
दूषणान्तरप्ररूपणार्थं परमात्रज्ञाह। ५ अयं शब्दो ग्राम्येदे। ६ तथा प्रतीवेर-  
भावत्। ७ एत आत्मना मूर्तिमता मायमिति भावः। ८ शरीरसर्वगतद्रव्यमत्र।  
९ पक्षस्तत्किं तत्तद्रूपादिमन्मूर्तिमदिति। १० मवसः सक्रियत्वेपि रूपादिमन्मूर्ति-  
मत्त्वाभावात्। ११ एव निरूपणे घटेन व्यभिचारः। १२ इष्टानिश्चयेण। १३ शान-  
कारणत्वादित्युच्यमाने चक्षुषा व्यभिचारस्तन्निवृत्त्यर्थं सर्वत्रेति विशेषणम्, तथापि  
शरीरेण व्यभिचारपरिहारार्थं शरीरादित्वादि। १४ कारणमत्र सहकारि।

किञ्च, आत्मनो निष्क्रियत्वे संसारमावो भवेत् । संसारो हि शरीरस्य, मनसः, आत्मनो वा स्यात् ? न तावच्छरीरस्य, मनुष्य-  
लोके भस्मीभूतस्यामरपुराऽगमनात् ।

नापि मनसः, निष्क्रियस्यास्यापि तद्विरहात् । सक्रियत्वेपि  
५ तत्क्रियायास्ततोऽभेदे तद्वत्तदनित्यत्वप्रसङ्गाभास्य कचित्क्षण-  
मात्रमवस्थानं स्यात् । भेदे सम्बन्धासिद्धिः, समवायनिषेधात् ।

अचेतनं च तदनिष्टनरकादिपरिहारेणैष्टे स्वर्गादौ कथं प्रवर्तत-  
स्वभावतः, ईश्वरात्, तदात्मनः, अदृष्टाद्वा ? प्रथमपक्षे दत्तः  
सर्वत्र ज्ञानाय जल्लोअलिः । अथेश्वरप्रेरणात्, न; तन्निषेधात् ।  
१० को वायमीश्वरस्याग्रहो यतस्तत्प्रेरयति, न तदात्मानम् ? अस-  
प्रेरणे चेदमनुगृहीतं भवति—

“अहो जन्तुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः ।

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वन्नमेव वा ॥”

[ महाभा० वनपर्व० ३०।२८ ] इति ।

१५ ‘तदात्मप्रेरणात्’ इत्यत्रापि ज्ञातम्, अज्ञातं वा तैत्तेन प्रेर्येत ?  
तावदाद्यो विकल्पः, जन्तुमात्रस्य तत्परिज्ञानाभावात् । नापि  
द्वितीयः, अज्ञातस्य ज्ञानादिवत्प्रेरणासम्भवात् । नैतु स्वप्ने स्वह-  
स्तादयोऽज्ञाता एव प्रेर्यन्ते; न; अहितपरिहारेण हिते प्रेरणा(ऽ)-  
सम्भवात्, ज्वलज्वलनज्वालाजालेपि तत्प्रेरणोपलम्भात् ।

२० अदृष्टप्रेरणात्, इत्यप्यसारम्, अचेतनस्यापि(स्यास्यापि) तत्प्रे-  
रकत्वायोगात् । तत्प्रेरितस्यात्मन एव धरं प्रवृत्तिरस्तु चेतनत्वा-  
त्तस्य । दृश्यते हि वशीकरणौषधसंयुक्तस्य चेतनस्यानिष्टगृह-  
गमनपरिहारेण विशिष्टगृहगमनम् । तच्च मनसोपि संसारः ।

१ पर्यायापेक्षया । २ क्रियात्मनसोः समवायेन सम्बन्धो भविष्यतीत्युक्ते सत्साहा-  
चार्यः । ३ परमतेऽचेतनं मनः । ४ मनःसम्बन्धिजीवात् । ५ इष्टानिष्टवस्तुषु ।  
६ ज्ञानाभावैष्यचेतनस्य मनस इष्टानिष्टवस्तुषु प्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात् । ७ मन एव  
प्रेरयति नात्मानमयमेवाग्रह इत्यादिज्ञातम् । ८ अग्रे वक्ष्यमाणं मनच्छासकोक्तम् ।  
९ भवता स्वीकृतम् । १० मनसः प्रेरणे चेदमनुगृहीतं न भवतीति भावः । ११ तदा-  
त्मना । १२ अणुरूपमचेतनमतीन्द्रियं मनस्तस्य । १३ अनैकान्तिकत्वं भावयति ।  
१४ ‘इति चेत्’ इत्युपरितः । १५ त्रयो विकल्पः । १६ मन एव । १७ न मनसः ।  
१८ अनिष्टनरकादिपरिहारेणैष्टस्वर्गादौ । १९ चेतनत्वादात्मनः प्रवृत्तिरसिद्धेत्युक्ते  
सत्साहाचार्यः ।

आत्मनस्तु स्यात् यद्येकदेहपरित्यागेन देशान्तरमसौ व्रजेत्, तथा च घटादिवत्तस्य सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वमित्युभयोः सर्वगतत्वं न वा कस्यचिद्विशेषात् ।

यच्चाकाशवदित्युक्तम्; तत्राकाशस्य को गुणः सर्वत्रोपलभ्यते-शब्दः, महत्त्वं वा ? न तावच्छब्दः; अस्याकाशगुणत्वनिषेधात् । नापि महत्त्वम्; अस्यातीन्द्रियत्वेनोपलम्भासम्भवात् ।

एतेन 'बुद्ध्यधिकरणं द्रव्यं विमु नित्यत्वे सत्यसदाद्युपलभ्यमानगुणाधिष्ठानत्वादाकाशवत्' इत्यपि प्रत्युक्तम्; साधनविकलत्वाद्बुद्धान्तस्य । हेतोश्चानैकान्तिकत्वम्, परमाणूनां नित्यत्वे सत्यसदाद्युपलभ्यमानपाकजगुणाधिष्ठानत्वेपि विमुत्वाभावात् । तत्पा- १० कजगुणानामसदाद्यप्रत्यक्षत्वे हि 'निवादाभ्यासितं सित्यादिकमुपलब्धिमत्कारणं कार्यत्वाद्धटादिवत्' इत्यत्र प्रेथोने ज्यातिर्न स्यात् । अथ 'नित्यत्वे सत्यसदादिबाह्येन्द्रियोपलभ्यमानगुणत्वात्' इत्युच्येते, तर्हि बाह्येन्द्रियोपलभ्यमानत्वस्य बुद्ध्यावसिद्धेर्विशेषणासिद्धो हेतुः । १५

नित्यत्वं च सर्वथा, कथञ्चिद्वा विवक्षितम् ? सर्वथा चेत्; पुनरपि विशेषणासिद्धत्वम् । कथञ्चिच्चेत्; घटादिनानेकान्तः, तस्य कथञ्चिन्नित्यत्वे सत्यसदाद्युपलभ्यमानगुणाधिष्ठानत्वेपि विमुत्वाभावात् ।

यदप्युक्तम्-सर्वगत आत्मा द्रव्यत्वे सत्यमूर्तत्वादाकाशवत् । २० 'द्रव्यात्' (द्रव्यत्वात्) इत्युच्यमाने हि घटादिना व्यभिचारः, तत्परिहारार्थम् 'अमूर्तत्वात्' इत्युक्तम् । 'अमूर्तत्वात्' इत्युच्यमाने च रूपादिगुणेन गमनादिकर्मणा वानेकान्तः, तच्चि- २१ श्रुत्यर्थं 'द्रव्यत्वे सति' इत्युक्तम् ।

१ घटपक्षे देशान्तरपरित्यागेन देशान्तरमसौ व्रजेत् । २ लोकत्रये । ३ आत्म-  
घटयोः । ४ आत्मनोपीत्यर्थः । ५ समवोर्गमनस्य । ६ अतः साधनविकले बृहान्तः ।  
७ सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वादित्यस्य निराकरणपरेण ग्रन्थेन । ८ परमाणुमिथ्याविचार-  
परिहारार्थम् । ९ घटादिना व्यभिचारनिराकरणार्थम् । १० परेणाङ्गीक्रियमाणे ।  
११ ईश्वरस्य । १२ तत्पाकजगुणानामसदाद्यप्रत्यक्षत्वे यवत्कार्यं तत्तदीमदेतुक्रमिति  
मानसप्रत्यक्षेण साकल्येन व्याप्तिग्रहणं न स्यादिति भावः । कार्याप्रत्यक्षत्वे कार्य-  
कारणयोर्व्याप्त्यसम्भवात् । १३ गुणरूपाणाम् । १४ द्रव्यापेक्षया । १५ असर्वगत-  
द्रव्यपरिमाणुलक्षणमूर्तत्वस्य रूपादिभवाद्द्रुपादीनाममूर्तत्वम्, रूपादीनां तत्प-  
रिमाणुभावात् कृतः ? निर्गुण गुणा इत्यभिधानात् ।

तद्रूप्यसमीचीनम्; यतोऽमूर्त्तत्वं मूर्त्तत्वाभावः, तत्र किमिदं  
मूर्त्तत्वं नाम यत्प्रतिषेधोऽमूर्त्तत्वं स्यात्? रूपादिमत्त्वम्, असर्व-  
गतद्रव्यपरिमाणं वा? प्रथमपक्षे मनसानेकान्तः, तस्य द्रव्यत्वे  
सत्यमूर्त्तत्वेऽपि सर्वगतत्वाभावात् । द्वितीयपक्षे तु किमसर्वगत-  
५ द्रव्यं भवेतां प्रसिद्धं यत्परिमाणं मूर्त्तिर्बर्ण्यते? घटादिकमिति  
चेत्; कुतस्तत्तथा? तैथोपलम्भाच्चेत्; किं पुनरसौ भवतः  
प्रमाणम्? तथा चेत्; तद्वदात्मनोऽपि स एवासर्वगतत्वं प्रसाधय-  
तीति मूर्त्तत्वम्, अतः 'अमूर्त्तत्वात्' इत्यसिद्धो हेतुः । तदसाधने  
न प्रमाणम्—“लक्षणयुक्ते बाधार्त्तम्भवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात्”  
१० [ प्रमाणवार्तिकालं० ] इति न्यायात् । तथा चातो घटादावप्यसर्व-  
गतत्वमतिदुर्लभम् । शक्यं हि वक्तुम्—‘घटादयः सर्वगता द्रव्यत्वे  
सत्यमूर्त्तत्वादाकाशवत्’ इति । पक्षस्य प्रत्यक्षबाधनं हेतोः आ-  
सिद्धिः उभयत्र समाना ।

ननु चात्मनः सर्वगतत्वात्तत्रास्त्यमूर्त्तत्वमसर्वगतद्रव्यपरिमाण-  
१५ सम्बन्धाभावलक्षणं न घटादौ विपर्ययात् । ननु चास्य कुतः सर्व-  
गतत्वं सिद्धम्—साधनान्तरात्, अत एव वा? साधनान्तराच्चेत्;  
तदेव (तत एव) समीहितसिद्धेः ‘द्रव्यत्वे सत्यमूर्त्तत्वात्’ इत्यस्य  
वैयर्थ्यम् । अत एव चेदन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि तस्य सर्वगत-  
त्वेऽसर्वगतद्रव्या(व्य)परिमाणसम्बन्धरूपमूर्त्तत्वाभावोऽमूर्त्तत्वं  
२० सिध्यति, अतश्च तत्सर्वगतत्वमिति ।

किञ्च ‘अमूर्त्तत्वात्’ इति किमयं प्रसज्यप्रतिषेधो मूर्त्तत्वा-  
भावमात्रममूर्त्तत्वम्, पर्युदासो वा मूर्त्तत्वादव्यङ्ग्यान्तरमिति?  
तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; तुच्छाभावस्य ग्रीकप्रबन्धेन प्रतिषेधात् ।  
सतोऽपि चास्य ग्रहणोपायामावादज्ञातासिद्धो हेतुः । न हि प्रत्यक्ष-  
२५ स्तद्ग्रहणोपायः; तस्येन्द्रियार्थसन्निकर्षजत्वात्, तुच्छाभावेन सह  
मनसोऽन्यस्य चेन्द्रियस्य सन्निकर्षाभावात् ।

ननु मन आत्मना सम्बद्धमात्मविशेषणं च तर्दभावः, ततः  
सम्बद्धविशेषणीर्भावस्तेन मनस इति । शुक्तिमिदं यद्यसावात्मनो  
विशेषणं भवेत् । न चास्यैतदुपपन्नम् । विशिष्ये हि विशिष्टप्रत्यय-

१ वैशेषिकाणाम् । २ असर्वगतत्वेन । ३ उपलम्भः । ४ असर्वगतद्रव्यपरिमाणो-  
क्तम् प्रमाणस्य लक्षणम् । ५ प्रमाणे । ६ प्रमाणस्यात्मन्यसर्वगतत्वासाधनलक्षणे  
बाधसम्भवे । ७ तस्य=प्रमाणस्य । ८ आत्मन्यसर्वगतत्वोपलम्भस्याप्रमाणत्वे च ।  
९ आत्मनि घटादौ च । १० असर्वगतत्वात् । ११ अमूर्त्तत्वम् । १२ अभावनिराक-  
रणावसरे । १३ तुच्छाभावेन सह मनसः सन्निकर्षं दर्शयति शरः । १४ अमूर्त्तत्वा-  
भावः । १५ सम्बन्धः । १६ परेणोक्तं यत् । १७ मूर्त्तत्वाभावलक्षणं विशेषणम् ।

हेतुर्विशेषणं यथा दण्डः पुरुषे । न च तुच्छाभावस्तत्प्रत्ययहेतु-  
र्घटते; सकलद्रव्यविरहलक्षणत्वादस्य, अन्यथा भाव एव स्यादर्थ-  
क्रियाकारित्वलक्षणत्वात् परमार्थसतो लक्षणांतराभावात् ।  
सत्तासम्बन्धस्य तल्लक्षणस्य कृतोत्तरत्वात् ।

किञ्च, गृहीतं विशेषणं भवति, “नाऽगृहीतविशेषणा विशेष्ये ५  
बुद्धिः” [ ] इत्यभिधानात् । ग्रहणे चेतरेतराश्रयः ।  
तथाहि—आत्मसम्बन्धेनेन्द्रियेणासौ गृहीतः सिद्धः सन्नात्मनो  
विशेषणं सिध्यति, तत आत्मसम्बन्धेनेन्द्रियेण ग्रहणमिति । यदि  
चात्मा स्वयमसर्वगतद्रव्यपरिमाणसम्बन्धविकलः सिद्धस्तर्हि  
तावदेव समीहितार्थसिद्धेः किमपरेण तदभावेनेति कथं विशेषे-१०  
पणम् ? अथ विपरीतः, कथं तदभावो यतो विशेषणम् ?

किञ्च, आत्मतदभावाभ्यां सह विशेषणीभावः सम्बन्धः, अस-  
म्बन्धो वा ? सम्बन्धश्चेत्, तर्हि यथात्मनि विशिष्टविज्ञानविधाना-  
दात्मनस्तदभावो विशेषणम्, तथा विशेषणीभावोपि ‘आत्मा  
विशेष्यस्तदभावो विशेषणम्’ इति विशिष्टप्रत्ययजननात् विशेषणं १५  
समवायवत्प्रसक्तम्, तथा च तत्राप्यपरेण तत्सम्बन्धेन भवितव्य-  
मित्यनवस्था । अथासम्बन्धः, कथं विशेषणविशेष्याभिमतयोः स  
भवेत् यतस्तत्र विशिष्टप्रत्ययप्रादुर्भावः सम्बन्धो वा ? विशिष्टप्रत्य-  
यहेतुत्वाच्चेत्, ईश्वरादौ प्रसङ्गः । तथापि स ‘तयोः’ इति कल्पने  
भावस्याभावः समवायिनोऽस(नोः स)मवायस्तथैव स्यादित्यलं २०  
तत्र विशेषणीभावसम्बन्धकल्पनया । तन्न प्रत्यक्षं तद्ग्रहणोपायः ।

नाप्यनुमानम्, परस्य प्रत्यक्षाभावे तदभावात्, तन्मूलत्वा-  
त्तस्य । नन्विदमस्ति—आत्माऽमूर्त इति बुद्धिमिन्नाभावनिमित्तो,  
अभावविशेषणभावविषयबुद्धिर्त्वात्, अघटं भूतलमित्यादिवुद्धि-  
वत्, इत्यप्यसारम्, तथाविद्याभावस्य विशेषणत्वासिद्धिप्रतिपा- २५  
दनात् । अभावविचारे चानयोर्हेतूदाहरणयोः प्रतिहतत्वान्न  
साध्यसाधकत्वम् ।

१ दण्डीति विशिष्टप्रत्ययहेतुः । २ वातय् । ३ मनसा । ४ मूर्तत्वाभावः ।  
५ असर्वगतद्रव्यं—शरीरम् । ६ असर्वगतद्रव्यपरिमाणसंबन्धरहितः । ७ आत्मा अमूर्त  
इति । ८ मूर्तत्वाभावः । ९ गुणगुणिनोः समवाय इति । १० विशेषणीभावस्य  
विशेषणत्वे च । ११ स्वयं संबन्धरूपोपि नैव । १२ ईश्वरकृपाशब्दादपि विशिष्ट-  
प्रत्ययोत्पत्तौ निमित्तकारणकास्तेषामपि विशेषणीभावः सम्बन्धो भवतीति शेषः ।  
१३ संबन्धस्य । १४ सम्बन्धाभावेति । १५ अभावो विशेषणमस्य, स चासौ  
भावश्च स विषयो यस्मात्तस्मा भाव इति वाक्यम् । १६ द्रव्यत्वे सत्यमूर्तत्वादिलेख-  
विरासेन । १७ तुच्छरूपस्य ।



पर्युदासपक्षेऽप्यसर्वगतद्रव्यपरिमाणसम्बन्धभावान्मूर्त्तत्वादन्य-  
द्मूर्त्तत्वं सर्वगतद्रव्यपरिमाणेन परममहत्त्वेन सम्बन्धा(न्ध)-  
भावः, स च न कुतश्चित्प्रमाणात्प्रसिद्ध इति हेतोरसिद्धिः ।

यच्चान्यदुक्तम्—आत्मा व्यापको मनोन्यत्वे सत्यस्पर्शवद्द्रव्यत्वा-  
५ दाकाशवदिति; तदप्येतेनैव प्रत्युक्तम् : स्पर्शवद्द्रव्यप्रतिपेक्षेऽत्रापि  
प्रागुक्ताशेषदोषानुषङ्गात् । सन्दिग्धानैकान्तिकश्चायं हेतुः; तथाहि-  
अस्पर्शवद्द्रव्यत्वमाकाशादौ व्यापित्वे सत्युपलब्धं मनसि चाऽव्या-  
पित्वे, तदिदानीमात्मन्युपलभ्यमानं किं 'व्यापित्वं प्रसाधयत्व-  
व्यापित्वं वा' इति सन्देहः । ननु मनोद्रव्यत्व(मनोऽन्यत्व)वि-  
१० शिष्टस्यास्पर्शवद्द्रव्यत्वस्य मनस्यनुपलम्भात्कथं सन्देहोऽत्रेति  
चेत् ? अत एव । यदि हि तद्विशिष्टं तत्तत्रोपलभ्येत तदा निश्चि-  
तानैकान्तिकत्वमेवास्य स्यात् न तु सन्दिग्धानैकान्तिकत्वमिति ।  
तन्नात्मनः कुतश्चित्प्रमाणात्सर्वगतत्वसिद्धिरित्यसर्वगत एवासौ  
यथाप्रतीत्यभ्युपगन्तव्यः ।

१५ ननु चात्मनोऽसर्वगतत्वे दिग्देशान्तरवर्त्तिभिः परमाणुभिर्यु-  
गपत्संयोगाभावोऽतश्चाद्यैककर्माभावः, तदभावादन्त्यसंयोगैश्च  
तन्निमित्तशरीरस्य तेन तत्सम्बन्धस्य चाभावादनुपायसिद्धः  
सर्वदात्मनो मोक्षः स्यात् । स्यादेवं यदि 'यथेन संयुक्तं तं प्रति  
तदेवोपसर्पति' इत्ययं नियमः स्यात् । न चास्ति-अयस्कान्तं  
२० प्रत्ययसत्तेनाऽसंयुक्तस्याप्युपसर्पणोपलम्भात् ।

यस्य चात्मा सर्वगतः तस्यारब्धकार्यैरन्यैश्च परमाणुभिर्युगप-  
त्संयोगात्तथैव तच्छरीरारम्भं प्रत्येकमभिमुखीभूतानां तेषामुप-  
सर्पणमिति न जाने कियत्परिमाणं तच्छरीरं स्यात् ।

ननु ये तत्संयोगास्तददृष्टापेक्षास्त एव स्वसंयोगिनां परमाणू-  
२५ नामाद्यं कैर्म रचयन्तीति चेत्, अथ केयं तददृष्टापेक्षा नाम-  
एकार्थसमवायः, उपकारो वा, सहायकर्मजननं वा ? तत्राद्यः  
पक्षोऽयुक्तः, सर्वपरमाणुसंयोगानां तददृष्टैकार्थसमवायसङ्गा-

१ अस्पर्शवद्द्रव्यत्वादित्यत्र ननु पर्युदासः, प्रसन्नो वेत्सादि । २ विपक्षे नाशकं  
प्रमाणं चेदस्ति तदा सन्देहो निवर्त्ततेऽनुपलम्भमात्रेण तु परचेतोवृत्तिविशेषतः सन्देहो  
मुवेदेवेति भावः । ३ शरीरारम्भकानूनां शरीरोत्पत्तिदेशं प्रति गमनार्थं कर्त्तुं ।  
४ शरीरनिष्पत्त्यवसानकालभावस्य । ५ शरीरारम्भकानूनां शरीरोत्पत्तिदेशं प्रति  
गमनम् । ६ अत एव महच्छरीरं न स्यात् । ७ परमाणुसंयोगानाम् । ८ यन्-  
सिद्धान्तरूपक्षणे समवायोऽदृष्टः । ९ तस्यात्मनोऽदृष्टं वेन सहकालिबन्धे आत्मरूपे  
समवायस्य सङ्गात् ।

वात् । उपकारः, इत्यप्ययुक्तम् ; अपेक्ष्यादपेक्षकस्यासम्बन्धान-  
वस्थानुपपत्तेरुपकारस्यैवासम्भवात् । सद्वाचकर्मजननम् ; इत्यप्य-  
सत् ; तयोरन्यतरस्यापि केवलस्य तज्जननसामर्थ्ये परापेक्षा-  
योगात् । यदि पुनः स्वहेतोरेवाहृष्टसंयोग्योः सहितयोरेव कार्य-  
जननसामर्थ्यमिष्यते, तर्हि तत एवाहृष्टस्यैव तत्संयोगनिरपेक्षस्य ५  
तत्सामर्थ्यमस्तु । इदयते हि हस्ताभ्येणायस्कान्तादिना स्वाश्रया-  
संयुक्तस्य भूभागस्थितस्य लोहादेराकर्षणमित्यलमतिप्रसङ्गम् ।

यदप्युक्तम्-सावयवं शरीरं प्रत्यवयवमनुप्रविशंस्तदात्मा  
सावयवः स्यात्, तथा च घटादिवत्समीनजातीयवयवारभ्यत्वमे,  
समानजातीयत्वं सावयवानामात्मत्वमिसम्बन्धादित्येकत्रात्म- १०  
न्यनन्तात्मसिद्धिः, यथा चावयवक्रियातो विभागात्संयोगविना-  
शाद्वद्विनाशः तथात्मविनाशोपि स्यात्, इत्यप्यपरीक्षितामिधा-  
नम् । सावयवत्वेन भिन्नावयवारब्धत्वस्य घटादावप्यसङ्गेः । न  
स्तु घटादिः सावयवोपि प्राक्प्रसिद्धसमानजातीयकपालसंयो-  
गपूर्वको द्रष्टुः, सृष्टिर्पेडात् प्रथममेव सावयवरूपाद्यात्मनोऽस्य १५  
प्रातुर्मात्रप्रतीतेः । न चैकत्र पटादौ सावयवतन्तुसंयोगपूर्वकत्वो-  
पलम्भात्सर्वत्र तैद्भावावो युक्तः, अन्यथा काष्ठे लोहलेख्यत्वोपल-  
म्भादत्रेपि तथाभावः स्यात् । प्रमाणबाधनमुपर्यन्तं समानम् ।

किञ्च, अस्य तथोभूतावयवारब्धत्वम्-आदौ, मध्यावस्थायां वा  
साध्येत ? न तौर्वदादौ, स्तनादौ प्रवृत्त्यभावानुषङ्गात्, तद्धेतुत्वमि- २०  
च्छाद्यप्रत्यभिज्ञानस्मरणदर्शनीदिरभावात् । तैद्वारम्भकावयवानां  
प्राक् सतां विषयदर्शनादिसम्भवे तेषामेवाहृष्टजातवेलायां सत्त्वा-  
न्तराणामिव प्रवृत्तिः स्यात् । मध्यावस्थायां तु तत्साधने प्रत्यक्ष-

१ व्यापित्वादात्मनः । २ अपेक्ष्येणावृष्टेनापेक्षकस्यानुसयोगस्य किमप्यण उपकार-  
स्सादभिन्नो भिन्नो वा स्यात् । अनेदे सोमि तज्जन्यः स्यात् । मेदे सधन्वासिद्धिः ।  
अप्यपकारमुपकारं कृत्वा तत्सम्बन्धीलादिपरिकल्पने चानवस्था । अयं संयोगस्योपकार  
इति न घटते अन्यथातिप्रसङ्गः । यथा संयोगस्य तथान्यस्यापि । तथा चात्मपरमाणु-  
संयोगस्य नित्यत्वव्यापारः स्यात् । ३ अदृष्टानुसयोगबोर्मेधेऽदृष्टस्य परमाणुसंयोगस्य  
वा । ४ अविशेषतः सर्वत्र तज्जननस्यापि प्रसङ्गात् । ५ आत्मनः । ६ अदृष्टात्माणु-  
संयोगयोः । ७ परेण । ८ तत्तत्तत्तत्संयोगपरिकल्पनेन किम् । ९ वयः । १० तत्तत्तत्  
स्वाश्रयासंयुक्तमेव परमाण्वादिकाप्राकृत्यते आत्मना । तत्तत्तत् सर्वगतत्वपरिकल्पनेनाल-  
मात्मनः । ११ आत्मत्वेन । १२ आत्मनः । १३ उपादानकारणत्वात् । १४ आत्मा-  
दिषु । १५ सावयवसंयोगपूर्वकत्वम् । १६ वज्रे आत्मनि च । १७ समानजातीय-  
भिन्नावयव । १८ गर्भावस्थायम् । १९ संस्कारस्य । २० तस्य आत्मनः ।

विरोधः । अन्त्यावस्थायां चास्यात्यन्तविनाशे स्मरणाद्यभावात्स्त-  
नादौ प्रवृत्त्यभाव एव स्यात् । न चेयं विनाशोत्पादप्रक्रिया कचिद्  
दृश्यते । न खलु कटकस्य केयूरीभावे कुतश्चिद्भ्रान्तेषु क्रिया  
विभागः संयोगविनाशो द्रव्यविनाशः पुनस्तदवयवाः केवलास्तद-  
५ नन्तरं तेषु कर्मसंयोगकमेण केयूरीर्भाव इति, केवलं सुवर्णकार-  
का(कारकरा)दिव्यापारे कटकस्य केयूरीभावं पश्यामः । अन्यथा  
कल्पने च प्रत्यक्षविरोधः ।

न च सावयवशरीरव्यापित्वे सत्यात्मनस्तच्छेदे छेदप्रसङ्गो  
दोषाय; कथञ्चित्तच्छेदस्येष्टत्वात् । शरीरसम्बद्धात्मप्रदेशेभ्यो  
१० हि तत्प्रदेशानां छिन्नशरीरप्रदेशेऽवस्थानमात्मनश्छेदः, स चात्रा-  
स्त्येव, अन्यथा शरीरात्पृथग्भूतावयवस्य कम्पोपलब्धिर्न स्यात् ।  
न च छिन्नान्नवयवप्रतिष्ठस्यात्मप्रदेशस्य पृथगात्मत्वानुषङ्गः, तत्रै-  
वानुप्रवेशात् । कथमन्यथा छिन्ने हस्तादौ कम्पादितं छिन्नोपलम्भा-  
भावः स्यात् ?

१५ ननु कथं छिन्नौच्छिन्नयोः संघटनं पश्चात् ? न, एकान्तेन  
छेदानभ्युपगमात्, पश्चानालतन्तुवदविच्छेदस्याप्यभ्युपगमात् ।  
तथाभूतादष्टवशाच्च तदविरुद्धमेव । ततो यद्यथा निर्बाधबोधे  
प्रतिभाति तत्तथैव सङ्घटनवद्भारमवतरति यथा स्वारम्भकतन्तुषु  
प्रतिनियतदेशकालाकारतया प्रतिभासमानः पटः, शरीरे एव  
२० प्रतिनियतदेशकालाकारतया निर्बाधबोधे प्रतिभासते चात्मेति ।  
न चायमसिद्धो हेतुः, शरीराद्बहिस्तत्प्रतिभासाभावस्य प्रतिपादि-  
तत्वात् । उक्तप्रकारेण चानवयवस्य बाधकप्रमाणस्य कस्यचिद-  
सम्भवाच्च विशेषणासिद्धत्वमिति । तच्च परेषां यथाभ्युपगत-  
स्वभावमात्मद्रव्यमपि घटते ।

२५ नापि मनोद्रव्यम्; तस्य प्रागेव स्वसंवेदनसिद्धिप्रस्तावे निरा-  
कृतत्वात् । ततः पृथिव्यादेर्द्रव्यस्य र्थोपवर्णितस्वरूपस्य प्रमाण-  
तोऽप्रसिद्धेः 'पृथिव्यादीनि द्रव्याणीतरेभ्यो मिथ्यन्ते द्रव्यत्वाभि-  
सम्बन्धात्' इत्यादिहेतूपन्यासोऽविचारितरमणीयः, तत्स्वरूपा-  
सिद्धौ हेतोराश्रयासिद्धत्वात् । स्वरूपासिद्धत्वाच्च; द्रव्यत्वाभिस-

१ समानजातीयमिन्द्रियव्यवहारम्यत्वं प्रलक्षणेन न ज्ञायते वतः । २ अग्रे वक्ष्यमाणा ।  
३ कारणात् । ४ अवयवेषु । ५ क्रिया । ६ केयूरोत्पादः । ७ वर्णं ज्ञानः ।  
८ अवयवापेक्षया । ९ जैनस्य । १० आत्मनि । ११ आत्मन्नेव । १२ तस्य=  
आत्मनः । १३ प्रदेशयोः । १४ सङ्घटनकारिकर्मवशात् । १५ शरीरे एव प्रति-  
नियतदेशकालाकारतया निर्बाधबोधे प्रतिभासमानत्वादिति । १६ वैशेषिकद्वारा ।

स्वन्धो हि समवायलक्षणो भवताम्युपगम्यते, न चातौ प्रमाणतः प्रसिद्ध इति । विशेषणासिद्धत्वं च; द्रव्यत्वसामान्यस्य यथाभ्युप-  
गंतस्वभावस्यासम्भवात् । तत्र परपरिकल्पितो द्रव्यपदार्थो घटते ।

नापि गुणपदार्थः । स हि चतुर्विंशतिप्रकारः परैरिष्टः । तथाहि-  
“रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ ५  
परत्वापरत्वे बुद्ध्यः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्च तु गुणाः”  
[ वैशे० सू० १।१।६ ] इति स्वसङ्गृहीताः सप्तदश, वैशब्दसमु-  
च्चिताः शुद्धत्वद्रवत्वलोहसंस्कारधर्माधर्मशब्दाश्च सतेति । तत्र  
कथं चक्षुर्ग्राह्यं पृथिव्युदकज्वलनवृत्तिः । रसो रसनेन्द्रियग्राह्यः  
पृथिव्युदकवृत्तिः । गन्धो घ्राणग्राह्यः पृथिवीवृत्तिः । स्पर्शस्त्व-१०  
निन्द्रियग्राह्यः पृथिव्युदकज्वलनपवनवृत्तिः ।

संख्या त्वेकादिव्यवहारहेतुरेकत्वादिलक्षणा, एकद्रव्या जाने-  
कद्रव्या च । तत्रैकसंख्या एकद्रव्या । अनेकद्रव्या तु द्वित्वादि-  
संख्या । सा च प्रत्यक्षत एव सिद्धा, विशेषवृद्धेश्च निमित्तान्त-  
रापेक्षत्वावनुमानतोपि ।

१५

परिमाणव्यवहारकारणं परिमाणम्, महदणु दीर्घं ह्रस्वमिति  
चतुर्विधम् । तत्र महद्विविधं नित्यमनित्यं च । नित्यमाकाशकाल-  
दिगात्मस्तु परममहत्त्वम् । अनित्यं ह्यणुकादिद्रव्येषु । अण्वपि  
नित्यानित्यमेवाद्विविधम् । परिमाणमनस्तु पारिमाण्यलक्षणं  
नित्यम् । अनित्यं ह्यणुके एव । वैदरामलकविल्वादिषु तु मह-२०  
त्त्वपि तत्प्रकर्षाभावमपेक्ष्य भौकोऽणुव्यवहारः ।

ननु महदीर्घत्वयोः पणुकादिषु प्रवर्त्तमानयोर्ह्यणुके चाणुत्व-  
ह्रस्वत्वयोः को विशेषः ? ‘महत्तु दीर्घमानीयतां दीर्घेषु महदानीय-  
ताम्’ इति व्यवहारमेव प्रतीतेरस्त्यनयोः परस्परतो मेवः । अणुत्व-  
ह्रस्वत्वयोस्तु विशेषो योगिनां तद्दर्शिनां प्रत्यक्ष एव । महदादि २५

१ वैशेषिकेण । २ नित्यनिरक्षत्वेन । ३ च इति कपुस्तके नास्ति । छ, ग,  
घपुस्तकेभ्यः संयोजितः । ४ एव । ५ विशेषः=मेवः । ६ एकादिप्रत्यया विशेषणं  
ग्रहणापेक्षा विशिष्टप्रत्ययत्वाद्दीर्घादिप्रत्ययवदिति । ७ तत्रैकत्वसंख्या नित्यद्रव्येषु  
मिला कार्यद्रव्येभ्यः । द्वित्वादिसंख्या तु परादौन्त्या अणुपणुद्विवन्त्या सर्वेषामिला ।  
८ वर्तुलाकारमित्यर्थः । ९ नन्वणु इत्यणुके एव यदि वर्त्तते तर्हि वैदरामलकादिष्वणु-  
परिमाणव्यवहारः कथमित्याशङ्क्यामाह । १० तस्य=अतिशयस्य । ११ उपचरितः ।  
१२ परिमाणयोः । १३ वस्तुषु । १४ वस्तु । १५ महदादिपरिमाणस्य रूपादि-  
भ्योऽमेवो भविष्यतीत्युक्ते सत्याह ।

च परिमाणं रूपादिभ्योऽर्थान्तरं तत्प्रत्ययविलक्षणबुद्धिग्राह्यत्वा-  
त्सुखादिवत् ।

संयुक्तमपि द्रव्यं यद्द्रशात् 'अत्रेदं पृथक्' इत्यपोद्भिद्यते तदपो-  
द्धारव्यवहारकारणं पृथक्त्वं घटादिभ्योऽर्थान्तरं तत्प्रत्ययविल-  
५ क्षणज्ञानग्राह्यत्वात्सुखादिवत् ।

अप्राप्तिपूर्विका प्राप्तिः संयोगः । प्राप्तिपूर्विका चाप्राप्तिर्विभागः ।  
तौ च द्रव्येषु यथाक्रमं संयुक्तविभक्तप्रत्ययहेतू ।

'इदं परमिदमपरम्' इति यतोऽभिधानप्रत्ययौ भवतस्तद्यथाक्रमं  
परत्वमपरत्वं च । बुद्ध्यादयः प्रयत्नान्ताश्च गुणाः सुप्रसिद्धा एव ।

१० शुक्लत्वं च पृथिव्युदकवृत्ति पतनक्रियानिबन्धनम् । द्रवत्वं तु  
पृथिव्युदकज्वलनवृत्तिः स्प(स्य)न्दर्नहेतुः । पृथिव्यनलयोनैमित्ति-  
कैम् । अपां सांसिद्धिकैम् । स्नेहस्त्वऽस्मत्सेव स्निग्धप्रत्ययहेतुः ।

संस्कारस्तु त्रिविधो वेगो भावना स्थितस्थापकश्चेति । तत्र  
वेगाख्यः पृथिव्यतेजोवायुमनस्सु मूर्तद्रव्येषु प्रयत्नाभिघातविशे-  
१५ चापेक्षात्कर्मणः समुत्पद्यते । नियतदिक्रियाप्रतिब(प्रब)न्धहेतुः  
स्पर्शवद्द्रव्यसंयोगविरोधी च । भावनाख्यः पुनरात्मगुणो ज्ञानजो  
ज्ञानहेतुश्च, इष्टानुभूतश्रुतेष्वप्यर्थेषु स्मृतिप्रत्यभिज्ञाकार्योन्नीय-  
मानसद्भावः । मूर्तमद्द्रव्यगुणः स्थितस्थापकः, घनावयवसन्निवे-  
शविशिष्टं समाश्रयं कालान्तरस्थायिनमन्यथाव्यवस्थितमपि प्रय-  
२० क्षतः पूर्ववद्यथावस्थितं स्थापयतीति कृत्वा, इक्ष्यते च तालप-  
त्रादेः प्रभूततरकालसंवेष्टितस्य प्रसार्यमुक्तस्य पुनस्तथैवावस्थानं  
संस्कारवशात् । एवं धनुःशास्त्राभ्युदयान्तादिषु भर्त्सापवर्तितेषु  
वस्त्रादौ चास्य कार्यं परिस्फुटमुपलभ्यत एव । धर्मादेयस्तु सुप्र-  
सिद्धा एवेति ।

१ विभागात्पृथक्त्वस्य भेदाभावान्पृथक्त्वप्रतिपादनं क्रियमैमित्युक्ते सत्याह । २ पृथक्  
क्रियते । ३ अस्तु विभागात्पृथक्त्वस्य भेदस्तथापि घटादिभ्योऽमेवो भविष्यतीत्युक्ते  
वक्ति । ४ अनिलावेव । ५ अनिलमेव । ६ अनिलमेव । ७ अनिला एव । ८ तत्र  
पार्थिवाप्याणुषु निल द्रव्यगुणादिष्वनिलम् । ९ लासालोहादिषु । १० सर्पिःसुवर्णयोः ।  
११ अनिलमित्यर्थः । १२ निलमित्यर्थः । आप्याणुषु निलमाप्यद्रव्यगुणादिषु त्वनि-  
त्यम् । १३ असर्वगतद्रव्यपरिमाणवत्त्वित्यर्थः । १४ कर्मधारयः । १५ वृक्षादिकेन  
स्पर्शवता द्रव्येण सह वेगाख्यस्य वाणादेः संयोगे सति वेगाख्यः संस्कारः स्वयं  
विनश्यतीत्यर्थः । १६ आकृष्टमुच्छेप्य । १७ च त्रिविधोप्ययं संस्कारो अनिल एव,  
धर्माधर्मात्मविशेषगुणाननिलावेव, शब्दस्वाकाशविशेषगुणोऽनिल एव ।

तदेतत्स्वगृहमान्यं परेषाम्; रूपादिगुणानां यथोपवर्णितस्वरू-  
पेणावस्थानासम्भवात् । न खलु रूपं पृथिव्युदकज्वलनवृत्त्येव,  
वायोरपि तद्वत्तासम्भवात् । तथाहि-रूपादिमान्वायुः पौद्गलिक-  
त्वात् स्पर्शवत्त्वाद्वा पृथिव्यादिवत् । एवं जलानलयोरपि गन्धर-  
सादिमत्ता प्रतिपत्तव्या । रूपरसगन्धस्पर्शमन्तो हि पुद्गलास्तत्कथं ?  
तद्विकाराणां प्रतिनियमः ? रूपाद्याविर्भावतिरोभावमात्रं तु तन्ना-  
विरुद्धम्, जलकनकादिसंयुक्तानले भासुरूपोष्णस्पर्शयोस्ति-  
रोभावाविर्भाववत् ।

संख्यापि संख्येयार्थव्यतिरेकेणोपलब्धिलक्षणप्राप्ता नोपल-  
भ्यते इत्यसती खरविषाणवत् । न च विशेषणमसिद्धम्, तस्या १०  
दृश्यत्वेनष्टेः । तथा च सूत्रम्-“संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं  
संयोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि”  
[ वैशे० सू० ४।१।११ ] इति ।

‘एकादिप्रत्यया विशेष[ण]ग्रहणापेक्षा विशिष्टप्रत्ययत्वाङ्गी-१५  
र्यादिप्रत्ययवत्’ इत्यनुमानतोपि न संख्यासिद्धिः, यतो यथा  
‘एको गुणोपि(णः) बहवो गुणाः’ इत्यादौ संख्यामन्तरेणाप्येकादि-  
बुद्धिस्तथा घटादिष्वप्यसहायादिस्वभावेष्वेकादिवुद्धिर्भविष्यती-  
त्यलमर्थान्तरभूतयैकादिसंख्यया । न च गुणेषु संख्या सम्भ-  
वति; अद्रव्यत्वात्तेषां तस्याश्च गुणत्वेन द्रव्याश्रितत्वात् । न च २०  
गुणेषूपचरितमेकत्वादिज्ञानम्, अस्मल्लहृत्तत्वात् । यदि चाश्रय-  
गता संख्यैकार्थसमवायाहुणेषूपचर्येत, तर्हि ‘एकस्मिन्द्रव्ये रूपा-  
दयो बहवो गुणाः’ इति प्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात्, तदाश्रयद्रव्ये  
बहुत्वसंख्याया अभावोत् । ‘षट् पदार्थाः’ इत्यादिव्यपदेशे च  
किं निमित्तमित्यभिधातव्यम् ? न ह्यत्रैकार्थसमवायिनी संख्या २५  
सम्भवति; तथा सह षट्पदार्थानां केचित्समवायाभावात् । अस्तु  
वा संख्या, तथाप्यस्याः कथं गुणत्वसिद्धिः सत्त्वादिवत् षट्स्यपि  
पदार्थेषु प्रवृत्तेः ?

१ पृथिव्यादीनाम् । २ पृथिव्यायेव गन्ध इत्यादिः । ३ तर्हि सर्वत्र तेषामविर्भावः  
क्रुतो न स्यादिच्छुके सत्याह । ४ उष्ण । ५ अथैरपलं प्रथमं सुगर्णमित्यागमतः  
प्रसिद्धतैलसत्त्वं कनकादीना ततः कथञ्च कनकादिसंयुक्तानल इत्यारेक्यामाह कनकेषु  
पृथिव्यंशोस्तीति । ६ परस्व । ७ अत्र दण्डपुरुषयोः संयोगो विशेषः । ८ निर्गुणा  
[ गुणा ] इति वचनात् । ९ स्रस्वारहितेचिलर्षः । १० जवापि । ११ आश्रय-  
गतद्रव्यलक्षणात् । १२ केवलद्रव्यसमवेत्ता । १३ द्रव्यलक्षणेऽपि ।

- ननु यदि संख्या गुणो न स्याच्छानित्यत्वमसमवायिकारणत्वं चास्या न स्यात् । अस्ति च तदुभयम् । तथा चोक्तम्—“एकादिव्यवहारहेतुः संख्याः । सा पुनरेकद्रव्या चानेकद्रव्या च । तत्रैकद्रव्यायाः सलिलैरुदिरमाणुरूपादीनामिव नित्यानित्यत्वनिष्पत्त्यः ।
- ५ सलिलैरुदिरमाणुरूपैव त्रैविध्यं विग्रहः । अनेकद्रव्या तु द्वित्वादिका परार्द्धान्ता । तस्याः स्वैकत्वेभ्योऽनेकविषयबुद्धिसहितेभ्यो निष्पत्तिः, अपेक्षाबुद्धिनाशाच्च विनाशः क्वचिदार्थविनाशादुभयविनाशाच्चेति चार्थः । असमवायिकारणत्वं च द्वित्वबहुत्वसंख्यायाः द्व्यणुकादिपरिमाणं प्रति” [ प्रश्न० भा० पृ० १११-११३ ]
- १० इति, एतदपि मनोरथमात्रम्, भेदवदस्याः कारणत्वभावात् । यथैव हि कार्यभिन्नतायां कारणभिन्नताया असमवायिकारणत्वं भवता नेष्यते तथैकत्वस्यापि तत्रैक्यं तस्याऽभेदपर्यायत्वात् । अत्र भेदभेदौ च स्वात्मपरात्मापेक्षौ रूपादिर्भेदौ भवतः । यथा चैकमभिन्नमिति पर्यायस्तथानेकं भिन्नमित्यपि । तथा च द्वित्वा-
- १५ दिरप्यनेकत्वपर्यायः, तस्योत्पत्त्यादिकल्पना न कार्या ।

नन्वेवै सर्वत्र ‘त्रे त्रीणि’ इत्यादिप्रतिभासप्रसङ्गात् प्रतिभासप्रवि-

१ उत्तरसंख्योत्पत्तौ प्राक्तनसंख्याऽसमवायिकारणं, द्रव्यं समवायिकारणमपेक्षाबुद्धिनिमित्तकारणमिति । २ आदिशब्देन कुतो द्रष्टव्यः । ३ सलिलादि ( कार्यलक्षण ), रूपादीनामनित्यत्वनिष्पत्तिर्यथा तथाऽनित्यैकद्रव्यगताया एकसंख्याया नित्यत्वनिष्पत्तिः, यथा च जलादिपरमाणुरूपादीना ( कारणरूपाणाम् ) तथा नित्यैकद्रव्यगताया एकसंख्याया नित्यत्वमिति भावः । ४ कार्यरूपाः । ५ कारणरूपपरमाणवः । ६ द्वित्वादिसंख्या प्रत्यपेक्षाशुद्धेः कारणत्वमेकत्वसंख्यायास्त्वसमवायिकारणत्वमिति भावः । ७ इमौ द्वावमी बहवः । ८ संख्येय आशयः । ९ संख्येयस्य च । १० संख्याम् । ११ उत्तरगुणं प्रति प्राक्तनगुणस्यासमवायिकारणत्वास्त्युपगमात् । १२ द्वित्वादिसंख्या प्रति । १३ द्वित्वादिसंख्या प्रति । १४ अनेकत्वपर्यायत्वेऽसमवायिकारणत्वं कुतो न भवतीत्युक्ते सत्याह । १५ एकनानात्वम् । १६ रूपस्य स्वरूपापेक्षयाऽभेदः, परापेक्षया भेदः, यत्वं रसादिषु वाच्यम् । १७ अनेकोऽसमवायिकारणं न भवति द्रव्यादन्यत्र वृत्तिमत्त्वाद्भेदवत्सत्त्वादिवेति । १८ अपिशब्देन द्रव्यं आद्यं तथापि स्वरूपरूपापेक्षयाऽभेदभेदौ । १९ आदिशब्देन नाशस्थितिसंग्रहः । २० द्वित्वादेरनेकपर्यायत्वे वस्तुस्वरूपमेवायातम्, तस्य च स्वकारणकलापादुत्पत्तेरनेकविषयबुद्धिसहितेभ्यो निष्पत्तिरित्यादि निरर्थकमिति भावः । २१ द्वित्वादेरनेकत्वपर्यायत्वप्रकारेण । २२ त्रिचतुःपञ्चषट्कादिवस्तुषु । २३ द्वित्वादेरनेकपर्यायत्वात् ।

सांगो न स्यादऽनेकत्वस्याविशिष्टत्वात् । तत्र ; अपेक्षाबुद्धिविशेष-  
त्वत्तत्सिद्धेरप्रतिबन्धात् । यथैव ह्यनेकविषयत्वाविशेषेपि काचि-  
दपेक्षाबुद्धिः द्वित्वस्योत्पादिका काचित्रित्वस्य । न ह्यपेक्षाबुद्धेः पूर्वं  
द्वित्वादिगुणोस्ति ; अनवस्थाप्रसङ्गात्, अपेक्षाबुद्धिजनितस्य वा  
द्वित्वादेरानर्थक्यानुपङ्गात् । तथा द्वित्वादिप्रत्ययविभागोपि भवि-  
ष्यति । यत एव चाभिन्नभिन्नत्वलक्षणाद्विशेषादपेक्षाबुद्धिविशेष-  
स्तत एवैकत्वादिव्यवहारमेदोपि भविष्यति इत्यलमन्तर्गडुनैक-  
त्वादिगुणेन ।

एवं च गुणेष्वन्येकत्वादिव्यवहारोऽकष्टकल्पनः स्यात् । गणि-  
तव्यवहारश्च 'षट्पञ्चविंशतिभिः सार्धं शतम्' इत्यादिः १०  
सुगमः । तस्मादभिन्नं तावदेकमित्युच्यते, तदपरेणाभिन्नेन  
सह द्वे इति, ते त्वपरेणाभिन्नेन सह त्रीणीत्येवमादिः सम्यो-  
लोके प्रसिद्धो गणितप्रसिद्धश्चैकत्वादिव्यवहारहेतुर्दृष्टव्य इति ।

अथ द्वित्वबहुत्वसंख्यायां द्व्यणुकादिपरिमाणं प्रत्यसमवायि-  
कारणत्वोपपत्तेः सङ्गावसिद्धिः, तत्र ; अस्यास्तदसमवायिका-  
रणत्वे प्रमाणाभावात् । परिशेषोस्तीति चेत् ; न ; कारणपरिमा-  
णस्यैवासमवायिकारणत्वसम्भवाद्भूषादिवत् ।

ननु परमाणुपरिमाणजन्यत्वे द्व्यणुकेपि परमाणुत्वप्रसङ्गः  
स्यात् ; तत्र ; कार्यकारणयोस्तुल्यपरिमाणत्वे दृष्टान्ताभावात् ।  
सर्वत्र हि कारणपरिमाणादधिकमेव कार्यपरिमाणं दृश्यते । २०  
परिमाणवच्च कर्मण्यसमवायिकारणत्वमस्याः स्यात् । दृश्यते  
हि द्वौभ्यां बहुभिर्वा पाषाणाद्युत्थापनम् । न चात्र संख्यायाः  
कारणत्वं भवद्भिरिष्टम् । अथास्यास्तत्रापि निमित्तत्वमिष्यते ;  
को वै निमित्तत्वे विप्रतिपद्यते ? सौमान्यादीनामपि तदभ्युपग-  
मात् । असमवायिकारणत्वं तु तस्याः परिमाणवदुत्थापनादि-  
कर्मण्यभ्युपगन्तव्यम्, न चान्यत्रोपीत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

१ उत्तरमिदम्-द्वित्वादिसंख्या प्रति करणत्वेनाभिमताया अपेक्षाबुद्धेरनेकत्वा-  
विशेषेपि मेदो यथा तथा द्वित्वादिप्रत्ययविभागोपीति । २ अपेक्षाबुद्धेः पूर्वमेव  
द्वित्वादिगुणोस्तीत्युक्ते सत्ताद । ३ द्वित्वादिगुणस्यापि द्वित्वादिकमपरसाद्वित्वा-  
दिगुणात्साम्यपरसादिति । ४ भिन्नाभिन्नत्वलक्षणाद्विशेषादेकत्वादिव्यवहारप्रकरणेन ।  
५ सख्येयात् । ६ एकेन । ७ अपरसख्येयात् । ८ सङ्केतः । ९ द्व्यणुकादिप-  
रिमाणप्रत्ययकारणक सङ्गुपकार्यत्वाद्दृष्टव्यमित्युक्तम् । १० कारणरूपादेर्यथा  
कार्यरूपादिकं प्रत्यसमवायिकारणत्वम् । ११ द्व्यणुकादिपरिमाणस्य । १२ परमाणुपरि-  
माणस्वरूपवत् । १३ पाषाणाद्युत्थापनलक्षणे । १४ नरास्यात् । १५ परः ।  
१६ विषादं करोति । १७ पुरुषत्वादीनाम् । १८ अभ्युपगन्तव्यं नेति सम्बन्धः ।  
१९ परिमाणे । २० संख्यायाः परिमाणं प्रत्यसमवायिकारणत्वनिराकरणेन ।



यदप्युक्तम्—महदादिपरिमाणं रूपादिभ्योर्थान्तरं तत्प्रत्ययविलक्षणबुद्धिप्राह्यत्वात्सुखादिवत्; तदप्युक्तम्; हेतोरसिद्धेः, घटाद्यर्थव्यतिरेकेण महदादिपरिमाणस्याभ्यक्षप्रत्ययप्राह्यत्वेनासंवेदनात् ।

- ५ असत्यपि महदादौ प्रासादमालादिषु महदादिप्रत्ययप्रादुर्भावप्रतीतेरनैकान्तिकश्चायम् । न च यत्रैव प्रासादादौ समवेतो मालाख्यो गुणस्तत्रैव महत्त्वादिकमपि इत्येकार्थसमवायवशात् 'महती प्रासादमाला' इतिप्रत्ययोत्पत्तेर्नानैकान्तिकत्वम्; स्वसमयविरोधात् । न खलु प्रासादो भवद्विरवयविद्रव्यमभ्युपगम्यते  
१० विजातीयानां द्रव्यानारम्भकत्वात् । किं तर्हि? संयोगात्मको गुणः । न च गुणः परिमाणवान्, "निर्गुणा गुणाः" [ ] इत्यभिधानात् । ततो मालाख्यस्य गुणस्य प्रासादादिष्वभावात् 'प्रासादमाला' इत्ययमेव प्रत्ययस्तावदुक्तः, दूरत एव सा 'महती ह्रस्वा वा' इति प्रत्ययः, मालायाः संख्यात्वेन प्रासादानां  
१५ संयोगत्वेन महदादेश्च परिमाणत्वेन परैरभ्युपगमात् ।

- अथ माला द्रव्यस्वभावेत्येते; तथापि द्रव्यस्य द्रव्याश्रयत्वाच्चास्याः संयोगस्वरूपप्रासादाश्रयत्वं युक्तम् । अथासौ जातिस्वभावेत्येते; तर्हि प्रत्याश्रयं जातेः समवेतत्वादेकस्मिन्नपि प्रासादे 'माला' इति प्रत्ययोत्पत्तिः स्यात् । 'एका प्रासादमाला महती  
२० दीर्घा ह्रस्वा वा' इत्यादिप्रत्ययानुपपत्तिश्च तदवश्यैव; मालायां तदाश्रये च प्रासादादावेकत्वादेर्गुणस्याऽसम्भवात् । बह्वीषु च प्रासादमालासु 'माला माला' इत्यनुगतप्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात्, जातावऽपरापरजातेरनुपपत्तेः । न चौपचारिकोऽयं प्रत्ययोऽस्वल्लङ्घितत्वात् । न हि मुख्यप्रत्ययाविशिष्टस्यौपचारिकत्वं युक्तमति-  
२५ प्रसङ्गात् । अत एव मालादिषु महत्त्वादिप्रत्ययोपि नौपचारिकः । ततो यथा स्वकारणकलापात्प्रासादादयो महदादिरूपतयोत्पन्ना-

१ गुणरूपे । २ आदिना पूर्वतमालादिषु । ३ अन्यथा । ४ गुणे गुणसङ्क्रान्त्युपगमात् । ५ वैशेषिकैः । ६ काष्ठादीनाम् । ७ प्रासादलक्षणावयविद्रव्यम् । तस्य । ८ तन्त्वादिना सजातीया ये तन्त्वादप्यत एव घटाद्यवयविद्रव्यारम्भका इति भावः । ९ बहुत्वलक्षणेन । १० काष्ठादिभिः । ११ वैशेषिकैः । १२ वसः । १३ एकस्मिन्नपि प्रासादे मालायाः सङ्क्रान्तात् । १४ महत्त्वगुणयुक्ता । १५ द्वित्वबहुत्वादेः । १६ जातिरूपास्त । १७ निस्सामान्यानि सामान्यानीति वचनात् । १८ मुख्यस्यासौ प्रत्ययश्च खण्डमुण्डादिषु गौर्गौरित्वादिरूपलेनानिश्चिद्योऽनुगतत्वेन समानस्तस्य । १९ मुख्यस्याप्यौपचारिकत्वप्रसङ्गात् ।

स्तत्प्रत्ययगोचरास्तथा घटादयोपीत्यलमर्थान्तरभूतपरिमाणपरि-  
कल्पनया ।

यदप्युक्तम्-‘वदरामलकादिषु भाक्तोऽणुव्यवहारः’ इत्यादि; तद-  
प्युक्तिमात्रम्; मुख्यगौणप्रविभागस्यात्राप्रमाणत्वात् । न खलु यथा  
सिंहमाणवकादिषु मुख्यगौणविवेकप्रतिपत्तिः सर्वेषामविगाने-  
नास्ति तथा ‘ह्यणुके एवाणुत्वह्रस्वत्वे मुख्येऽन्यत्र भाक्ते’ इति  
कस्यचित्प्रतिपत्तिः । प्रक्रियामात्रस्य च सर्वशास्त्रेषु सुलभत्वा-  
ज्ञातो विवादनिवृत्तिः ।

आपेक्षिकत्वाच्च परिमाणस्यागुणत्वम् । न हि रूपादेः सुखादेर्वा  
गुणस्यापेक्षिकी सिद्धिः । योपि नीलनीलतरादेः सुखसुखतरादे-  
र्वाऽऽपेक्षिको व्यवहारः सोऽपि तत्प्रकर्षोपकर्षनिवन्धनो न  
पुनर्गुणस्वरूपनिवन्धनः । ततो ह्रस्वदीर्घत्वादेः संस्थानविशेषाद्व्य-  
तिरेकीभावात्कथं गुणरूपता ? तद्विशेषस्यापि कथञ्चिद्भेदाभिधाने  
व्यस्यचतुरसादेरपि भेदेनाभिधानानुषङ्गात्कथं तद्वतुर्विधत्वोप-  
वर्णनं संशोभेतेति ? १५

यच्चोक्तम्-‘पृथक्त्वं घटादिभ्योर्थान्तरं तत्प्रत्ययविलक्षणज्ञान-  
ग्राह्यत्वात्सुखादिवत्; तदप्युक्तिमात्रम्; हेतोरसिद्धत्वात् । न  
खलु स्वहेतोरुत्पन्नाऽन्योन्यावृत्तार्थव्यतिरेकेणार्थान्तरभूतस्य  
पृथक्त्वस्याप्यक्षे प्रतिभासोस्ति, अत एवोपलब्धिलक्षणप्राप्त-  
स्यास्यानुपलम्भादसत्त्वम् । २०

रूपादिगुणेषु च ‘पृथक्’ इतिप्रत्ययप्रतीतेरनेकान्तः । न हि  
तत्र पृथक्त्वमस्ति गुणेषु गुणासम्भवात् । न च गुणेषु  
‘पृथक्’ इति प्रत्ययो भाक्तः, मुख्यप्रत्ययाविशिष्टत्वात् ।  
न च स्वरूपेणा (ण) व्यावृत्तानभिधानां पृथक्त्वादिवैशाल्य-  
भूयता घटते; भिन्नाभिन्नपृथग्भूयताकरणेऽकिञ्चित्करत्वात् । भेद-  
क्षे हि सम्बन्धासिद्धिः । अमेदपक्षे तु पृथग्भूयस्यार्थस्यैवोत्पत्तेरर्था-  
न्तरभूतपृथक्त्वगुणकल्पनावैयर्थ्यम् । प्रयोगः-ये परस्परव्यावृ-

१ परिमाणे । २ अविप्रतिपत्त्या । ३ ह्यणुके एवाणुत्वह्रस्वत्वे मुख्येऽन्यत्रा-  
न्यवेति प्रक्रियातो मुख्यगौणविवेकप्रतिपत्तिर्निष्पत्तीत्युक्ते सत्याह । ४ अपेक्षानि-  
त्वात् । ५ आशङ्कनीया । ६ आपेक्षिकत्वात्परिमाणस्य गुणत्वं नास्ति यतः ।  
७ परिमाणस्य । ८ व्यतिरेको भेदः । ९ तत्सं-परिमाणस्य । १० पृथक्त्वमिति ।  
११ घटात्पटो व्यावृत्त इति । १२ तद्व्यतिरेकेणार्थान्तरभूतस्य पृथक्त्वस्याप्यक्षे  
प्रतिभासो नास्ति यतः । १३ गणनकमलकम् । १४ घटपटादीनाम् । १५ आदि-  
शब्देन विभागपरिग्रहः । १६ कस्य ? तथा हि ।

सात्मानस्ते स्वव्यतिरिक्तपृथक्त्वानाधाराः यथा रूपादयः, पर-  
स्परव्यावृत्तात्मानश्च घटादयोर्था इति ।

ततो विभिन्नस्वभावतयोत्पत्त्यर्थस्यैव 'पृथक्' इतिप्रत्ययविषय-  
त्वप्रसिद्धेरलं पृथक्त्वगुणकल्पनया । पृथक्प्रत्ययस्याप्यसाधारण-  
५ धर्मादिबोधोपपत्तेः, यदा ह्येकं वस्त्वितरेभ्यो भिन्नं पश्यति प्रतिपत्ता  
तदा 'एकं पृथक्' इति प्रतिपद्यते । यदा तु द्वे वस्तुनीतरेभ्यो  
विलक्षणैकधर्मयोगाद्विभिन्ने पश्यति तदा 'द्वे पृथक्' इति मन्यते ।  
यदा त्वेकदेशत्वादिना धर्मेणेतरेभ्यो बहूनि भिन्नानि पश्यति  
तदा 'एतान्येतेभ्यः पृथक्' इति प्रतिपद्यते, यथा रूपादयो द्रव्या-  
३० त्वृथगिति ।

संयोगस्तु समवायनिराकरणप्रघट्टके प्रतिषेत्स्यते । तदभावात्  
'प्राप्तिपूर्विका अप्राप्तिर्विभागः' इत्यपि निरस्तम् । न हि प्राग्भावि-  
सान्तररूपतापरित्यागेन निरन्तररूपतयोत्पन्नवस्तुव्यतिरेके-  
णान्यः संयोगः संयुक्तप्रत्ययविषयोऽनुभूयते । अविच्छिन्नोत्पत्ति-  
१५ कमेव हि वस्तु निरन्तरप्रत्ययविषयः निरन्तरोपरचितदेवदत्त-  
यज्ञदत्तगृहवत् । न खलु गृहयोः परेणार्पि संयोगगुणाभ्यत्व-  
मिष्टम्, निर्गुणत्वाहुणानाम्, तयोश्च संयोगात्मकत्वेन गुणत्वात् ।  
नापि विच्छिन्नोत्पन्नवस्तुव्यतिरेकेणान्यो विभागो विभक्तप्रत्यय-  
विषयो हिमवद्विन्ध्यवत् । न हि तयोर्विभागाभ्यत्वं प्राप्तिपूर्वि-  
२० काया अप्राप्तेर्विभागलक्षणायास्तयोरभावात् ।

प्रयोगः-या संयुक्ताकारा बुद्धिः सा भवत्परिकल्पितसंयोगा-  
नास्पदवस्तुविशेषमात्रप्रमत्वा यथा 'संयुक्तौ प्रासादौ' इति  
बुद्धिः, संयुक्ताकारा च 'चैत्रः कुण्डली' इत्यादिवुद्धिरिति ।  
यद्वा, याऽनेकवस्तुसन्निपाते सति संमुत्पद्यते सा भवत्परिक-  
२५ ल्पितसंयोगविकलानेकवस्तुविशेषमात्रभाविनी यथाऽविरलाऽव-  
स्थिताऽनेकतन्तुविषया बुद्धिः, तथा च विमत्यविकरणभावापन्ना  
संयुक्तबुद्धिरिति ।

तथा मेधादिषु विभक्तबुद्धिर्विभागरहितपदार्थमात्रनिबन्धना

१ स्वव्यतिरिक्तपृथक्त्वानाधारा घटादयो यतः । २ वस्तुव्यतिरिक्तपृथक्त्वानुभव-  
त्कर्तृ पृथक्त्वप्रत्ययोत्पत्तिरित्युक्ते सत्याह । ३ असाधारणः-तन्मात्रवृत्तिः । ४ आदिना  
कालत्वस्वरूपत्वग्रहः । ५ मित्ररूपतेत्यर्थः । ६ अमित्ररूपतेत्यर्थः । ७ अपृथक् ।  
८ न केवलमसाभिः । ९ गृहस्य गुणत्वमसिद्धमित्याह । १० इन्द्रियाणामनेकवस्तुभिः  
सह सन्निपाते सन्निकर्षः समुत्पद्यते इत्यर्थः । ११ जयमसान्नेयाद्विशो मेघ इत्यादि-  
प्रकारेण ।

विभक्तत्वादनैकपदार्थसंज्ञिधानां यत्तदयत्वाद्धो देवदत्तयज्ञदत्त-  
गृहविभागबुद्धिचद् हिमवद्विन्ध्यविभागबुद्धिवद्वा ।

सत्यपि वा संयोगे विभागस्य तदभावलक्षणत्वान्न गुणरूपता ।  
कथमन्यथा पुत्रादौ चिरनिवृत्तेऽपि संयोगे विभक्तप्रत्ययः स्यात् ?  
न खलु तत्र विभागः संभवति, अस्या कियत्कालस्थायिगुणत्वेना-  
भ्युपगमात् । कथं वा हिमवद्विन्ध्यादौ संयोगेऽनुत्पन्नेऽपि विभक्त-  
प्रत्ययः स्यात् संयोगामौवात् ? व्यतिरिक्तविभागस्वरूपस्य कचिद-  
प्यनुपलम्भाच्चोपचारकल्पनापि सांघवी ।

विभागाभावे कुतः संयोगनिवृत्तिरिति चेत् ? 'कर्मण एव'  
इति ब्रूमः । 'कर्ममार्गादपि तन्निवृत्तिः स्यात्' इत्यप्यदोषः १०  
संयोगमात्रनिवृत्तेरिष्टत्वात् । संयोगविशेषनिवृत्तिस्तु कर्मविशे-  
पात्, त्वन्मते ततो विभागविशेषोत्पत्तिवत् । कर्मणः संयो-  
गोत्पादकत्वात्कथं तन्निवर्तकत्वमिति चेत् ? तर्हि हस्तयाणादि-  
संयोगस्य कर्मोत्पादकत्वोपलम्भात् कथं वृक्षादौ वाणादिसंयो-  
गस्य तन्निवर्तकत्वं स्यात् ? अन्यस्य तन्निवर्तकत्वमन्यत्रापि १५  
समानम् । न खलु येनैव कर्मणा यः संयोगो जनितः स  
तेनैव निवर्त्यते इति ।

यत्तेन विभागजविभागोऽपि चिन्तितः । तस्यापि संयोगाभावरू-  
पस्य क्रियात् एवोत्पत्तिप्रसिद्धेः । ननु यदि विभागजविभागो न  
स्यात्तर्हि हस्तकुड्यसंयोगविनाशेऽपि शरीरकुड्यसंयोगविनाशो न २०  
प्राप्नोति; तन्न; हस्तकुड्यसंयोगव्यतिरेकेण शरीरकुड्यसंयोगस्यै-  
वासंभवात् । हस्तकुड्यसंयोगादेवासौ कल्प्यते इति चेत् ; तर्हि  
हस्तकर्मदर्शनाच्छरीरेऽपि कर्म कस्माच्च कल्प्यते तुल्याक्षेपसमा-  
धानत्वात् ?

१ अनेकपदार्थैः सह सन्निकर्ष इन्द्रियानाम्, तस्यायत्त उदयो यस्या इति  
वाक्यम् । २ विभागस्य । ३ यतो यत्र संयोगपूर्वको विभक्तप्रत्ययस्तत्रैव  
विभागव्यवहारो युज्यते, न चानयोः प्राप्त्युत्पत्तिः पश्चाद्विभाग इति । ४ व्यति-  
रिक्तस्य=वस्तुनः सत्त्वशान्तिरूपस्य । ५ कचिन्मुख्यत्वेनाप्रतिद्वन्द्वोपचाराभावाद्,  
सति संभवेऽप्यत्र निमित्तप्रयोजनवशादुपचारः प्रकल्प्यते यतः । ६ क्रियात्तः ।  
७ तैनाः । ८ कस्मादिदेव कर्मण इत्यर्थः । ९ तस्य=संयोगस्य । १० तैना-  
नाम् । ११ यथा द्रव्यारम्भक ( परमाणु ) संयोगविशेषनिवृत्तिभिषयमानवशापवयवि-  
द्रव्यस्यावयवक्रियात् इति सवन्धः । १२ तत्र=वैशेषिकस्य । १३ अत्र देशादेशान्तर-  
प्राप्तिलक्षणमेव कर्म गृह्यते । १४ वृक्षादौ संयुज्य वागादिः पुनर्न ततोऽप्यदेश-  
पातीत्यर्थः । १५ संयोगनिवृत्तेः कर्मवत्प्रतिपादनम् ।

प्रश्नोच्यते तत्प्रसिद्धयेऽनुमानम्—विर्वक्षितावयवक्रियाऽऽका-  
शादिदेशेभ्यो विभागं न करोति, द्रव्यारम्भकसंयोगविरो-  
धिविभागोत्पादकत्वात्, या पुनराकाशादिदेशविभागकर्त्री सा  
संयोगविशेषनिवर्त्तकविभागजनिकापि न भवति यथाङ्गुलि-  
५ क्रियेति । यदि मिश्रमानवंशाद्यवयविद्रव्यस्यावयवक्रिया आका-  
शादिदेशेभ्यो विभागं कुर्यात् तर्हि वंशादिद्रव्यारम्भकसंयो-  
गविरोधिविभागोत्पादकमेवास्या न स्पष्टङ्गुल्याद्यवयविद्रव्य-  
क्रियावत् । ततोऽवयविद्रव्यस्याकाशादिदेशविभागोत्पादकोऽ-  
विभागोऽभ्युपगन्तव्यः, इत्यप्यसाम्प्रतम्; वक्ष्यं विभागोत्पा-  
१० दकत्वस्यासिद्धत्वात् । क्रियात एव संयोगनिवृत्तेरुक्तत्वात् ।  
अथ 'अवयविनस्तत्क्रियाऽऽकाशादिदेशसंयोगं न निवर्त्तयति  
द्रव्यारम्भकसंयोगनिवर्त्तकत्वात्' इतीदमत्र विवक्षितम्; तथा-  
प्यसाधारणो हेतुः; सपक्षेप्याकाशादिदेशसंयोगानिवर्त्तके रूपादौ  
वृत्तेरभावात् । न चावयवसंयोगादवयविनः संयोगोऽन्यः; तद्भेदे-  
१५ कान्तस्य प्रागेव प्रतिक्षेपात्, विनीशोत्पादप्रक्रियायाञ्च कृतो-  
त्तरत्वात् । तन्न विभागो घटते ।

नापि परत्वापरत्वे, परापरप्रत्ययाभिधानयोस्तदन्तरेणापि  
रूपादौ सम्भवात् । तथाहि—क्रमोत्पन्ननीलादिगुणेषु 'परं नीलम-  
परं च' इति प्रत्ययोत्पत्तिः असत्यपि परत्वापरत्वलक्षणे गुणे दृष्टा  
२० गुणानां निर्गुणतयोपगमात्, तथा घटादिष्वपि स्यात् । अथात्र  
दिक्कालकृतः परापरप्रत्ययः, ननु घटादिष्वप्यसौ तत्कृतोस्तु  
विशेषामावात् । तथा च प्रयोगः—योयं परापरादिप्रत्ययः स पर-  
परिकल्पितगुणैरहितैर्मात्रकृतक्रमोत्पादव्यवस्थानिवन्धनः, परा-  
परप्रत्ययत्वात्, रूपादिषु परापरप्रत्ययवत् । 'विप्रकृष्टं परं संनि-  
२५ कृष्टमपरम्' इति चैनयोरेकार्थत्वाच्च मेदं पश्यामः । ततश्चायुक्त-

१ मिश्रमानवंशाद्यवयविद्रव्यस्य । २ मिश्रमानवंशाद्यवयविन इति शेषः । ३ द्रव्यं  
वंशादि । ४ परमाणु । ५ प्रसारणसङ्कोचनरूपा । ६ द्रव्यारम्भकसंयोगविरोधिवि-  
भागोत्पादकत्वं च स्वादाकाशादिदेशेभ्यो विभागं च कुर्यादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे  
सत्याह । ७ विभागाद्विभागो जात इत्यर्थः । ८ जैनादिना । ९ तर्हि विभागाभावे संयोग-  
निवृत्तिः कथमिति शङ्कायामाह । १० जनैकान्तिकः । ११ तयोः अवयवावयविनोः ।  
१२ अवयवेषु क्रिया क्रियातः संयोगः संयोगादवयविन उत्पत्तिरिति प्रक्रियातस्योपेक्षं  
इत्युक्ते सत्याह । १३ द्रव्यारम्भकसंयोगविरोधिविभागोत्पादकत्वसाधनमसिद्धं यतः ।  
१४ न तु स्वाभाविकः । १५ गुणौ परत्वापरत्वलक्षणौ । १६ अर्थो दिक्काललक्षणः ।  
१७ गुणरूपेषु । १८ परविप्रकृष्टयोरपरसन्निकृष्टयोश्च ।

सूक्तम्-‘विप्रकृष्टसन्निकृष्टबुद्धिम्यां परत्वापरत्वयोरुत्पत्तिः’ इति । न हि घटबुद्धिमपेक्ष्य कुम्भ उत्पद्यते इति युक्तम् । नापि पर्यायशब्दमेवादायर्थो मिद्यते इति ।

किञ्च, सामान्येषु महापरिमाणाल्परिमाणगुणेषु च महद्व्याधारत्वबुद्ध्यपेक्षयोः परत्वापरत्वयोरुत्पत्तिः कल्प्यतामविशेषात् ।<sup>५</sup>

किञ्च, परत्वापरत्वयोरुणत्वमभ्युपगच्छता मध्यत्वं च गुणोभ्युपगन्तव्यः, कालदिकृतमध्यव्यवहारस्याप्यत्र समानत्वात् ।

सुखदुःखेच्छादीनां चाबुद्धिरूपत्वे रूपादिवन्नात्मगुणता युक्ता, बुद्धिरूपत्वे चातो मेदेनाभिधानमयुक्तम् । कंचिद्विशेषमादाय बुद्ध्यात्मकानामप्यतो मेदेनाभिधाने अभिधाना(धादी)दीनामपि १० मेदेनाभिधानं कार्यम् । इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

शुक्त्वादीनां तु पुद्गलगुणत्वं युक्तमेव । ‘अतीन्द्रियं शुक्त्वं पातोपलम्भेनानुमेयत्वात्’ इत्येतन्न युक्तम्, करतलाद्युपरिस्थिते द्रव्यविशेषे पातानुपलम्भेऽपि शुक्त्वस्य प्रतिभासनात् । रजःप्रसृतीनामपि शुक्त्वं कस्मान्न गृह्यते इति चेत् ? ग्रहणायोग्यत्वात् ।<sup>१५</sup> तावत्तैवातीन्द्रियत्वे गन्धरसादीनामप्यतीन्द्रियत्वं स्यात् । कचिद्ग्रेतदाभयस्यात्रफलादेः प्रत्यक्षत्वेऽपि तेषां ग्रहणामावादिति ।

पृथिव्यानलयोरप्यस्ति द्रवत्वम्, इत्यनुपपन्नम्, सुवर्णादीनाम् “अग्नेरपलं प्रथमं सुवर्णम्” [ ] इत्यागतः प्रसिद्ध-तैजसत्त्वानां जनुप्रभृतिपार्थिवद्रव्याणां चाप्यस्यैव द्रवत्वस्य संयु-<sup>२०</sup>क्तमवायवशात्प्रतीतिसम्भवात् ।

अथ ‘सर्वं पार्थिवं तैजसं च द्रव्यं द्रवत्वसंयुक्तं रूपित्वाचो-यवत्’ इत्यनुमानास्य द्रवत्वसिद्धिः, तच्च, प्रत्यक्षेण स्प (स्य) न्दनकर्मानुपलम्भेन च बाधितविषयत्वात् । अथेत्यन्धर्मैकं तत्र द्रवत्वं जातं यत्प्रत्यक्षं न भवति स्प (स्य) न्दनक्रियां च न<sup>२५</sup> करोतीत्युच्यते, तर्हि शुक्त्वरसावप्येवंधर्मैकौ रूपित्वादेव किञ्च तैजसोभ्युपगम्येते तुल्याक्षेपसमाधानत्वात् ? तथा चाऽस्योर्द्ध-गतिसंभावता न स्यात्, ‘रसः पृथिव्युदकवृत्तिः’ इत्यस्य च विरोध इति ।

१ परापररूपेषु श्लेषः । २ क्रमवन्न अपेक्षाबुद्धेः । ३ आदिना मस्तकत्क-  
न्यादिग्रहणम् । ४ आदिपदेन इतितालीतिक्रमग्रहणम् । ५ जलीयस्य । ६ प्रत्यक्षौ  
न भवतः पतनादिक्रिया च न कुरुते इति । ७ प्रत्यक्षेण पतनादिकर्मानुपलम्भेन  
च बाधितविषयत्वात् तैजसो शुक्ल रसत्वमित्याक्षेपः, अथेत्यन्धर्मैकं तैजसि शुक्लं  
रसत्वं च जातं यत्प्रत्यक्षं न भवति तत्पतनादिक्रियां च न करोतीति समाधानम् ।  
८ तैजोद्रव्यस्य शुक्लरसत्वोपगमे च । ९ तैजसस्य रसस्य भावात् ।

‘क्षेहोऽम्भस्येव’ इत्यप्ययुक्तम्; घृतादेरपि लोके वैद्यकादिशास्त्रे च क्षिग्धत्वेन प्रसिद्धत्वात् । घृतादावन्यनिमित्तत्वेनौपचारिकः क्षिग्धप्रत्ययः; इत्यप्यसाम्प्रतम्; विपर्ययस्यापि कल्पयितुं शक्यत्वात् । तथा हि—तोयसम्पर्केऽप्योदनादौ च क्षिग्धप्रत्ययो नास्ति ५ घृतादिसम्पर्के तु क्षिग्धप्रत्ययः सर्वेषामस्त्येवेति । कणिकादौ तोयस्य बन्धहेतुत्वोपलम्भात्तस्यैव क्षेहो विशेषगुणः; इत्यप्यसारम्; भवता क्षेहरहितत्वेनाभ्युपगतस्यापि क्षीरजतुप्रभृतेर्वन्धहेतुत्वेन प्रतीतेः ।

क्षेहस्य गुणत्वाभ्युपगमे च काठिन्यामार्द्धादेरपि गुणत्वाभ्यु-  
१० पगमः कर्त्तव्यः, तथा च तत्संख्याव्याघातः स्यात् । ननु काठिन्यादेः संयोगविशेषरूपत्वात्कथं गुणसंख्याव्याघातहेतुत्वम् ? तथा चोक्तम्—“अवयवानां प्रशिथिलसंयोगो मृदुत्वम्” [ १ ] इत्यादि; तदप्यसङ्गतम्; चक्षुषा संयोगेषु प्रतीयमानेष्वपि मार्द्धादेरप्रतिभासनात् । यो हि यद्विशेषः स तस्मिन्प्रतीयमाने १५ प्रतीयत एव यथा रूपे प्रतीयमाने तद्विशेषो नीलादिः, न प्रतीयते च संयोगेषु प्रतीयमानेष्वपि काठिन्यादिः, तस्मान्नासौ तद्विशेष इति । कटाद्यवयवानां प्रशिथिलसंयोगेपि मृदुत्वाप्रती-  
तेश्च, विशिष्टचर्माद्यवयवानामप्यप्रशिथिलसंयोगित्वेपि मृदुत्वो-  
पलम्बेऽप्येति

२० ननु काठिन्यादेः संयोगविशेषरूपत्वामावे कथं कठिनमेव कणिकादिद्रव्यं मर्दनादिना मृदुत्वमापाद्यते ? इत्यप्यसुन्दरम्; न हि तदेव द्रव्यं मृदु भवति । किं तर्हि ? पूर्वकठिनपर्यायनिवृत्तौ मृदुपर्यायोपेतं द्रव्यान्तरमुत्पद्यते । संयोगविशेषमृदुत्ववादिनापि पूर्वद्रव्यनिवृत्तिरत्राभ्युपगतैव । ततः स्पर्शविशेषो मृदुत्वादि-  
२५ भ्युपगन्तव्यः ‘कठिनः स्पर्शो मृदुः स्पर्शः’ इति प्रतीतिदर्शनात् । तथा च पाकजत्वमपि स्पर्शस्योपपन्नं घटादिषु रूपादिवत् विलक्षणस्पर्शोपलम्भमार्त्तं नान्यथा । न च काठिन्यादिव्यतिरेकेण स्पर्शस्यान्यद्वैलक्षण्यं व्यवस्थापयितुं शक्यमिति ।

वेगाख्यस्तु संस्कारो न केवलं पृथिव्यादावेवास्ति आत्मन्य-  
३० प्यस्य सम्भवात्, तस्यापि सक्रियत्वेन प्रसाधितत्वात् । न च

१ अन्यत्=जलम् । २ मृदुरुपोपि संयोगगुणविशेषः । ३ मृदुत्वादेः स्पर्श-  
विशेषत्वे च । ४ मृदुत्वादेः स्पर्शविशेषस्याभावे स्पर्शस्य न पाकजत्वं विलक्षणस्पर्शो-  
भावादिति भावः । ५ काठिन्यादेः स्पर्शविशेषत्वाभावेपि स्पर्शस्यान्यद्वैलक्षण्यं सम्म-  
न्विष्यति ततश्च विलक्षणस्पर्शोपलम्भेन पाकजत्वमप्यविरुद्धं स्पर्शसेलाद्यभ्यामाह ।  
६ आत्मनो निष्क्रियत्वात्कथं वेगाख्यस्य सत्कारस्य सम्भव इत्युक्तं सलाह ।

क्रियातोऽर्थान्तरं वेगः, अस्याः शीघ्रोत्पादमात्रे वेगव्यवहारप्र-  
सिद्धेः । 'वेगेन गच्छति' इति प्रतीतेः क्रियातोर्थान्तरं वेगः, इत्य-  
प्ययुक्तम्, 'वेगेन गच्छति, शीघ्रं गच्छति' इत्यनयोरेकत्वात् ।  
न च कर्मणः कर्मारम्भकत्वेऽनुपरमप्रसङ्गः, शब्दवत्तदुपरमोप-  
पत्तेः । यथैव हि शब्दस्य शब्दान्तरारम्भकत्वेऽप्युपरमस्तथात्रापि । ५  
“कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते” [वैशे० सू० १।१।११] इत्यपि  
वचनमात्रत्वादविरोधकम् ।

न च विभिन्नः संस्कारो वाणादीनामपातहेतुः प्रतीयते, अन्य-  
था कदाचिदपि तेषां पातो न स्यात्, तत्प्रतिबन्धकस्य वेगस्य  
सर्वदावस्थानात् । न च मूर्च्छिमद्वाद्यादिसंयोगोपहतशक्तित्वाद्दे- १०  
गस्य तेषां पतनम्, प्रथममेव पातप्रसङ्गः, तत्संयोगस्य तद्विरो-  
धिनस्तदापि सम्भवात् । न च प्राग्वेगस्य बलीयस्त्वाद्विरोधिन-  
मपि मूर्च्छब्रह्मसंयोगमपास्य शरं देशान्तरं प्रापयति, इत्यभिधात-  
व्यम्, पश्चादप्यस्य बलीयस्त्वात्तथैव तत्प्रापकत्वप्रसङ्गः । न  
खलु वेगस्य पश्चादन्यथात्वम्, तथोत्पत्तिकारणमाभावात्, तत्स- १५  
मवाधिकारणत्वस्येष्वादेः सर्वदाऽविशिष्टत्वात् । न च कर्माख्यं  
कारणं पश्चाद्विशिष्यते, तस्यापि तुल्यपर्यनुयोगत्वात् । न च  
प्रभूताकाशप्रवेशसंयोगोत्पादनात् संस्कारप्रक्षयादियोः पातः,  
संस्कारस्यैकत्वभावत्वेनावस्थितस्य प्रागिव पश्चादपि प्रक्षयानुप-  
पत्तेः । न चाकाशस्य प्रवेशाः परेण्यन्ते, येन तत्संयोगानां २०  
भूयस्त्वं संस्कारप्रक्षयहेतुत्वं वा युक्तियुक्तं भवेत् । कल्पनाशि-  
ल्पिकदिपतानां संयोगमेवैकत्वं तदायत्तमेवानां च संयोगानां  
संस्कारप्रक्षयहेतुत्वं दूरोत्सारितमेव ।

भावनाख्यस्तु संस्कारो धारणापरनामा नानिष्टः, पूर्वपूर्वानु-  
भवाहितसामर्थ्यलक्षणस्यात्मनोऽनर्थान्तरभूतस्य स्मृत्यादिहेतुत्वे- २५  
नास्यास्माभिरपीष्टत्वात् ।

स्थितस्थापकरूपस्तु संस्कारोऽसम्भाव्य एव । स हि किं  
स्वयमस्थिरस्वभावं भावं स्थापयति, स्थिरस्वभावं वा ? न तावद्-  
स्थिरस्वभावम्, तत्स्वभावानतिक्रमात् । तत्राविधस्यापि स्थापनेऽ-

१ शीघ्रत्वं च क्रियास्वरूपं परमते स्वयमेव च । २ वेगस्य क्रियात्वं क्रियातः  
क्रियोत्पत्तय इति भावः । ३ यद्यपि समवायिकारणमविशिष्टं तथापि कर्माख्यं  
कारणं विशिष्यत इत्युक्ते सहाह । ४ न खलु कर्माख्यस्य पश्चादन्यथात्वं तथोत्पत्ति-  
कारणमावादित्यादिरूपेण । ५ नित्यत्वाद्गुणानाम् । ६ आकाशप्रवेशानाम् ।  
७ संयोगानां नावाकारत्वम् ।



तिप्रसङ्गः । क्षणादूर्ध्वं चार्थस्य स्वयमेवामावात्कस्यासौ स्थापकः स्यात् ? भावे वाऽस्थिरस्वभावताविरोधः । अथ द्वितीयः पक्षः, तदा स्थिरस्वभावेऽवस्थितानामर्थानां स्वयमेवावस्थानातिक्रमकिञ्चित्करस्थापकप्रकल्पनया ? ततः स्वहेतुवशात्तथा तथा परिण-  
५ तिरेवार्थानां स्थितस्थापकः संस्कारो नान्यः ।

धर्माधर्मशब्दानां तु गुणत्वं प्रागेव प्रतिविहितमित्यलमतिप्रसङ्गेन । ततः “कर्तुः फलदाय्यात्मगुण आत्ममनःसंयोगजः स्वकार्यविरोधी धर्माधर्मरूपतया मेदेवानदृष्टाख्यो गुणः” [ ] इत्ययुक्तमुक्तम् । इदं तु युक्तम् “कर्तुः प्रियैर्हितमोक्षहेतुर्वर्मः, १० अधर्मस्त्वप्रियप्रत्ययहेतुः” [ प्रश्न० भा० पृ० २७२-२८० ] इति । तत्र गुणपदार्थोऽपि श्रेयान् ।

नापि कर्मपदार्थः । स हि पञ्चप्रकारः परैः प्रतिपाद्यते- “उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि” [ वैशे० सू० १।१।७ ] इत्यभिधानात् । तत्रोत्क्षेपणं यदूर्ध्वाधःप्रदेशाभ्यां संयोग-  
१५ विभागकारणं कर्मोत्पद्यते, यथा शरीरावयवे तत्सम्बद्धे वा मूर्तिमद्रव्ये ऊर्ध्वदिग्भाषिमिराकाशदेशाद्यैः संयोगकारणमधोदिग्भागावच्छिन्नैश्च तैर्विभागकारणम् । तद्विपरीतसंयोगकारणं च कर्मावक्षेपणम् । ऋजुद्रव्यस्य कुटिलत्वकारणं च कर्माकुञ्चनम्, यथा ऋजुनोक्तुल्यादिद्रव्यस्य येऽग्रावयवास्तेषामाकाशादिभिः स्वसंयो-  
२० गिमिर्विभागे सति मूलप्रदेशैश्च संयोगे सति येन कर्मणाकुल्यादिरवयवी कुटिलः संपद्यते तदाकुञ्चनम् । तद्विपर्ययेण संयोगविभागोत्पत्तौ येनावयवी ऋजुः सम्पद्यते तत्कर्म प्रसारणम् । अनिर्यतदिग्देशैर्यत्संयोगविभागकारणं तद्गमनम् । उत्क्षेपणादिकं तु चतुःप्रकारमपि कर्म नियतदिग्देशसंयोगविभागकारणमिति ।  
२५ तदेतत्पञ्चप्रकारतोपवर्णनं कर्मपदार्थस्याविचारितरमणीयम्, देशादेशान्तरप्राप्तिहेतुः परिस्पन्दात्मको हि परिणामोऽर्थस्य कर्मोच्यते । उत्क्षेपणादीनां चात्रैवान्तर्भावः । अत्रान्तर्भूतानामपि कञ्चिद्विशेषमादाय मेदेनाभिधाने भ्रमणस्प(स्य)न्दनादीनामप्यतो मेदेनाभिधानानुषङ्गात्कथं पञ्चप्रकारतैचास्य ?

१ निष्कृतादीनामपि स्थापकः स्यादित्यतिप्रसङ्गः । २ स्वकार्ये क्रियमाणे सति विरोधोऽभावे यस्य सः । ३ सुसज्जादिवैया । ४ प्रियः सुखदः । ५ हितः परिणामपथ्यः । ६ दुःखकारणम् । ७ ऊर्ध्वाधःप्रदेशाभ्यां विपरीतौ अवकूर्ध्वप्रदेशौ । ८ ऊर्ध्वाः । ९ ऊर्ध्वाधःप्रदेशयोः । १० गमनस्य यथाऽनियतदिग्देशैः संयोगविभागकारणत्वं तयोत्क्षेपणादेरनियतदिग्देशाभ्यां संयोगविभागकारणत्वं तत्र कथमुत्क्षेपणादीनां भेद इत्युक्ते सत्याह । ११ पञ्चप्रकारात्कर्मणः ।

न चैकरूपस्यार्थस्य क्रियासमावेशो युक्तः, सर्वदाऽविशिष्ट-  
त्वात् । यत्सर्वदाऽविशिष्टं न तस्य क्रियासम्भवो यथाकाशस्य,  
अविशिष्टं चैकरूपं वदन्ति । न चैकरूपत्वेऽप्यर्थानां गन्तृसमा-  
वृत्ता युक्ता; निश्चलत्वाभावप्रसङ्गात्, सर्वदा गन्तृत्वैकरूपत्वात् ।  
अथाऽगन्तृत्वरूपताप्येवामङ्गीक्रियते; तथा सत्याकाशवद्गन्तृत्वैव ५  
स्यात् । एवं च गत्यवस्थायामप्यचलत्वमेयां प्रसक्तं तदपरित्य-  
क्ताऽगतिरूपत्वाच्चिच्छेदावस्थावत् । न चोभयरूपत्वादेयार्थम-  
दोषः, गन्तृत्वानन्तत्वाविरुद्धवर्माप्यासेनैकत्वव्याघातानुपपन्नाद-  
र्थाऽनिलवत् ।

यथा क्षणिकैकरूपस्यार्थस्य क्रिया नोपपद्यते तथा क्षणिकैक- १०  
रूपस्यापि; उत्पत्तिप्रदेश एवास्य प्रवृत्तेन प्रदेशान्तरप्राप्त्यसम्भ-  
वात् । यो ह्युत्पत्तिप्रदेश एव प्रवृत्तमुपगच्छति न सोऽन्यदेशमाक्रा-  
मति यथा प्रदीपः, उत्पत्तिप्रदेश(श्च) प्रवृत्तमुपगच्छति च क्षणिको  
भाव इति । न चार्थस्य क्षणिकत्वाद्देशाद्देशान्तरप्राप्तिर्भ्रान्ता;  
क्षणिकत्वात्प्रतिपिद्धत्वात् । ततः परिणामिन्येवार्थे यथोक्तं १५  
कर्मापपद्यते ।

न चेदमर्थादर्थान्तरम्; तथाभूतस्यास्योपलब्धिलक्षणप्राप्तस्या-  
नुपलम्भेनासत्त्वात् । प्रयोगः—यदुपलब्धिलक्षणप्राप्तं सन्नोप-  
लभ्यते तन्नास्ति यथा क्वचित्प्रदेशे घटः, नोपलभ्यते च विशिष्टा-  
र्थस्वरूपव्यतिरेकेण कर्मेति । न चोपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वमस्याऽ- २०  
सिद्धम्; “संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वाप-  
रत्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि” [वैशे० सू० ४।१।११]  
इत्यभियानात् । तत्र कर्मपदार्थोऽपि परेषां घटते ।

नापि सामान्यपदार्थः; तस्य पराम्युपगतत्वमावस्य प्रागेव  
प्रतिपिद्धत्वादिति ।

.. २५

विशेषपदार्थोऽप्यनुपपन्नः । विशेषो हि नित्यद्रव्यवृत्तयः परमा-

१ निर्गुणाऽविचलितस्य र्थावादेः । २ सर्वदाऽविशिष्टस्य स्यात्क्रियासमावेशश्च  
रूपादिति सन्दिग्धान्नैकान्तिकत्वे सत्ताह । ३ गन्तृत्वमेवागन्तृत्वमेवेत्येकान्तप्रसङ्ग-  
रुक्तम् । ४ पर्वतवायुवत् । ५ उष्णवसरो हि सौगतो मृते—अर्थसाक्षणिकैकरूपत्वे  
क्रिया न घटते तर्हि क्षणिकैकरूपत्वे वदन्ति इत्याशङ्क्यामाह । ६ वैद्वज्जपेक्षयो-  
दाहरणम् । ७ सर्वयाऽक्षणिके क्षणिके वार्थेऽवक्रिया न घटते यतः । ८ कर्मरूपतया  
परिपन्नो विशिष्टः । ९ निदेष-गन्तृत्वमित्युक्ते सत्ताह । १० सामान्यनिराकरणसमये ।  
११-नित्यद्रव्यवृत्तनोऽत्यन्तव्यावृत्तिहेतवो विशेषाः, निदेषा इति बहुवचनेनानन्तरं  
निबदिदम् । १२ सान्त्वयित्वनित्यद्रव्यवृत्तनोऽत्या विशेषाः ।

ण्वाकाशकालदिगात्ममनस्सु वृत्तेरत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतवः । ते च जगद्धिनाशारम्भकोटिभूतेषु परमाणुषु मुक्तात्मसु मुक्तमनस्सु चान्तेषु भवा 'अन्त्याः' इत्युच्यन्ते, तेषु स्फुटतरमालक्ष्यमाणत्वात् । वृत्तिस्तेषां सर्वसिद्धेव परमाण्वादौ नित्ये द्रव्ये विद्यते ५ एव । अत एव 'नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्याः' इत्युभयपदोपादानम् ।

व्यावृत्तिबुद्धिविषयत्वं च विशेषाणां सद्भावसाधकं प्रमाणम् । यथा ह्यसदादीनां गौवादिषु आकृत्यिगुणक्रियावयवसंयोगनिमित्तोऽन्वादिभ्यो व्यावृत्तः प्रत्ययो दृष्टः, तथा- 'गौः, शुक्लः, शीघ्रगतिः, पीनककुदः, महाघण्टः' इति यथाकमम् । तथासद्विशिष्टानां १० योगिनां नित्येषु तुल्याकृतिगुणक्रियेषु परमाणुषु मुक्तात्ममनस्सु चान्यनिमित्ताभावे प्रत्याघारं यद्वात् 'विलक्षणोयं विलक्षणोयम्' इति प्रत्ययप्रवृत्तिस्ते योगिनां विशेषप्रत्ययोऽतीतसत्त्वा अन्त्या विशेषाः सिद्धाः ।

इत्यपि स्वामिप्रायप्रकाशनमात्रम्, तेषां लक्षणासम्भवतोऽस्त- १५ त्वात् । तथाहि-यदेतेषां नित्यद्रव्यवृत्तित्वादिकं लक्षणमभिहितं तदसम्भवदोषदुष्टत्वादलक्षणमेव; यतो न किञ्चित्सर्वथा नित्यं द्रव्यमस्ति, तस्य पूर्वमेव निरस्तत्वात् । तद्भावे च तद्वृत्तित्वं लक्षणमेषां दूरोत्सारितमेव ।

यच्चायो (अ-यो) निप्रभवविशेषप्रत्ययबलादेषां सत्त्वं साध्यते; २० तदप्ययुक्तम्, यतोऽण्वादीनां स्वस्वभावव्यवस्थितं स्वरूपं परस्परसङ्कीर्णरूपं वा भवेत्, सङ्कीर्णस्वभावं वा ? प्रथमे विकल्पे स्वत एवासङ्कीर्णाण्वादिरूपोपलम्भाद्योगिनां तेषु वैलक्षण्यप्रतिपत्तिर्न विज्यतीति व्यर्थमपरविशेषपदार्थपरिकल्पनम् । द्वितीये विशेषाख्यपदार्थान्तरसन्निधानेऽपि परस्परान्तिमिश्रितेषु परमाण्वा- २५ दिषु तद्वलाख्यावृत्तप्रत्ययो योगिनां प्रवर्त्तमानः कथमभ्रान्तः ? स्वरूपतोऽव्यावृत्तरूपेष्वण्वादेषु व्यावृत्ताकारतया प्रवर्त्तमानस्यास्याऽतस्मिन्सद्गुणरूपतया भ्रान्तत्वानतिक्रमात् ? तथा चैत- त्प्रत्यययोगिनस्तेऽयोगिन एव स्युः ।

१ असादयं सर्वथा व्यावृत्त इत्यादिरूपेण । २ अन्येऽवसाने भवन्ति सन्तीति यावत्, येभ्योऽपरे विशेषा न सन्तीत्यर्थः, सामान्यरूपेभ्यो विशेषेभ्योऽपरे गुणादयो विशेषाः सन्ति, एभ्यस्तु नापरे किन्वेवैव वैशिष्ट्यं समाप्यते । ३ खण्डमुण्डादिरूपेषु विशेषेषु । ४ आकृतिः=जातिः । ५ गुणः=वेदादिः । ६ क्रिया वच्छलादिः । ७ अवयवः ककुदादिः । ८ घण्टादिभिः । ९ सङ्कीर्णः=जातम् । १० द्रव्यपरीक्षाप्रवृत्तेः । ११ सङ्कीर्णस्वरूपे । १२ तत्सासङ्कीर्णस्य । १३ भ्रान्तप्रत्ययसम्बन्धिनि श्लेषः ।

यदि च विशेषाख्यपदार्थान्तरव्यतिरेकेण विलक्षणप्रत्ययो-  
त्पत्तिर्न स्यात्, कथं तर्हि विशेषेषु तस्योत्पत्तिस्तत्रापरविशेषा-  
भावात्? मावे वा अनवस्था, 'नित्यद्रव्यवृत्तयः' इत्यभ्युपगमक्ष-  
तिश्च स्यात् । अथ स्वत एवात्रान्योन्यवैलक्षण्यप्रतिपत्तिः, तर्हि  
परमाण्वादीनामप्यत एव तत्प्रत्ययप्रवृत्तिर्भविष्यतीति कृतं विशेष-  
पाख्यपदार्थपरिकल्पनया ।

अथ विशेषेष्वपरविशेषयोगाद्वावृत्तबुद्धिपरिकल्पनायामनव-  
स्थादिबाधकोपपत्तेरुपचारात्तेषु तद्बुद्धिः । ननु कोयं तद्बुद्धेरुप-  
चारो नाम? असतो वस्तुस्वभावस्य विषयत्वेनाक्षिप्येत्, कथं  
नास्या मिथ्यात्वं तद्योगिनां चायोगित्वम्? १०

किञ्च, असौ वस्तुस्वभावो विषयत्वेनाक्षिप्यमाणः संशयत्वेना-  
क्षिप्यते, विपर्यस्तत्वेन वा? तत्राद्ये पक्षे व्यावृत्तरूपतया चलित-  
प्रतिपत्तिविषयाणां विशेषाणां यथावत्प्रतिपत्त्यसम्भवाच्चयोगि-  
नोऽयोगित्वमेव । द्वितीयेत्येतदेव दूषणम्, विशेषरूपविकलानपि  
तान् विशेषरूपतया प्रतिपद्यमानस्याऽयोगित्वप्रसङ्गाविशेषात् । १५

यदि च बाधकोपपत्तेर्विशेषेषु व्यावृत्तबुद्धिर्नापरविशेषनिव-  
न्धना, तर्हि परमाण्वादिष्वसौ तन्निबन्धना नाभ्युपगन्तव्या तद्व-  
विशेषात् । परमाण्वादी हि विशेषेभ्योऽन्योन्यं व्यावृत्तबुद्ध्युत्पत्तौ  
सकलविशेषेभ्यः परमाणूनां व्यावृत्तबुद्धिर्विशेषान्तरात्स्यादित्यन-  
वस्थी । स्वतस्तेषां ततो व्यावृत्तबुद्धिहेतुत्वेऽन्योन्यमपि तदेतत्त्वं २०  
स्वत एव स्यादिति व्यर्थमर्थान्तरविशेषपरिकल्पनम् ।

ननु यथाऽमेत्यादीनां स्वत एवाशुचित्वमन्येषां तु भावानां  
तद्योगात्तत्तथेहापि तत्स्वभावत्वाद्विशेषेषु स्वत एव व्यावृत्तप्रत्य-  
यहेतुत्वं परमाण्वादिषु तु तद्योगात् ।

किञ्च, अतर्दात्मकेष्वप्यन्यनिमित्तः प्रत्ययो भवत्येव, यथा २५  
प्रदीपौपटादिर्बुध्, न पुनः पटादिभ्यः प्रदीपे, एवं विशेषेभ्यः  
एवाण्वादी विशिष्टः प्रत्ययो नाण्वादिभ्यस्तत्र, इत्यप्यसमीचीनम्,

१ विशेषेषु विशेषाणां प्रवृत्तेः । २ आदिना नित्यद्रव्यवृत्तय इत्यभ्युपगमक्षतिरिति ।  
३ विशेषेषु । ४ तस्य=व्यावृत्तस्य । ५ अपरविशेषा उपचारभूतास्तत्प्रयोगादेषु आतोमि  
प्रत्यय उपचाररूप इत्यर्थः । ६ असतो वैलक्षण्यस्य । ७ अन्योन्यव्यावृत्तरूपस्य ।  
८ वैलक्षण्यरूपः । ९ उपचाररूपः । १० अननसादिको बाधकः । ११ पर-  
माण्वादिभ्यः सर्वथा भिन्नेभ्यः । १२ विशेषान्तराणामप्यन्येभ्य इत्यादिप्रकारेण ।  
१३ अभ्यावृत्तेषु अणुषु शुक्लमनस्तु च । १४ अन्यो=विशेषः । १५ अन्यनिमित्तात् ।  
१६ इमे पटादय इति प्रत्ययः । १७ सर्वथाभिन्नेभ्यः ।

यतोऽमेध्याद्यशुचिद्रव्यसंसर्गान्मोदकादयो भावा प्रच्युतप्राक्तन-  
शुचिस्वभावा अन्ये एवाऽशुचिरूपतयोत्पद्यन्ते इति युक्तमेवामन्य-  
संसर्गादशुचित्वम् । न चाणवादिष्वेतैस्सम्भवति, तेषां नित्यत्वादेव  
प्राक्तनाविवेकरूपपरित्यागेनापरविवेकरूपतयानुपपत्तये ।

५ प्रदीपदृष्टान्तोप्येत एवासङ्गतः, पटादीनां प्रदीपादिपदार्थान्तरो-  
पाधिकस्य रूपान्तरस्योत्पत्तेः, प्रकृते च तदसम्भवात् ।

अनुमानबाधितश्च विशेषसङ्गावाभ्युपगमः, तथाहि-विवादा-  
धिकरणेषु भावेषु विलक्षणप्रत्ययस्तद्व्यतिरिक्तविशेषनिबन्धनो  
न भवति, व्यावृत्तप्रत्ययत्वात्, विशेषेषु व्यावृत्तप्रत्ययवदिति ।

१० तन्न विशेषपदार्थोपि श्रेयान् साधकामावाद्वाधकोपपत्तेः ।

नापि समवायपदार्थोऽनवद्यतल्लक्षणाभावात् । ननु च “अयुत-  
सिद्धानामाचार्याधारभूतानामिहेदम्प्रत्ययहेतुर्यः सम्बन्धः स सम-  
वायः ।” [ प्रश० भा० पृ० १४ ] इत्यनवद्यतल्लक्षणसङ्गावात्तद-  
भावोऽसिद्धः । न चान्तरालाभावेन ‘इह प्राप्ते वृक्षाः’ इतीहेद-

१५ म्प्रत्ययहेतुना व्यभिचारः, सम्बन्धग्रहणात् । न चासौ सम्ब-  
न्धोऽभावरूपत्वात् । नापि ‘इहाकाशे शकुनिः’ इति प्रत्ययहेतुना  
संयोगेन, ‘आधाराधेयभूतानाम्’ इत्युक्तेः । न आकाशस्य व्यापि-  
त्वेनाधस्तादेव भावोस्ति शकुनेरुपर्यपि भावात् । नापि ‘इह कुण्डे  
दधि’ इतिप्रत्ययहेतुना, ‘अयुतसिद्धानाम्’ इत्यभिधानात् । न खलु

२० तन्तुपटादिवदधिकुण्डादयोऽयुतसिद्धाः, तेषां युतसिद्धेः सङ्गा-  
वात् । युतसिद्धिश्च पृथगाधयैवैतत्त्वं पृथगेतिमत्त्वं चोच्यते ।  
न चासौ तन्तुपटादिष्वप्यस्ति, तन्तून्विहाय पटस्यान्यत्रावृत्तेः ।

तथापि ‘इहाकाशे वाच्ये वाचक आकाशशब्दः’ इति वाच्यवा-  
चकभावेन ‘इहात्मनि ज्ञानम्’ इति विषयविषयिर्भावेन वा व्यभि-

२५ चारोऽत्रैयुतसिद्धेराधाराधेयभावस्य च भावात्, इत्यप्यसाम्प्र-  
तम्, उभयत्रैवधारणोऽऽश्रयणात् । एतयोश्च युतसिद्धेःष्वप्यना-

१ परमते । २ विशेषेभ्यो व्यावृत्तस्वरूपत्वेनोत्पत्तिमत्त्वम् । ३ परमाण्वादीनां  
नित्यत्वादेव । ४ प्रकाशलक्षणस्य । ५ ग्राहकप्रमाणामावाच्च । ६ शुण्णगुण्यादीनाम् ।  
७ आकाशपरमाण्वादीनां युतसिद्धत्वम्यवसापनार्थमिदं लक्षणम् । ८ न इहेदम्प्रत्यय-  
हेतुः स समवाय इत्युच्यमाने । ९ कारणभूतेन । १० कारणभूतेन । ११ अयुतः=  
अपृथक् । १२ नसः, मल्लयोर्यथा । १३ येष्वोर्यथा वा । १४ अयुतसिद्धानामा-  
चार्याधारभूतानामित्युभयपदोपादानेपि । १५ सम्बन्धेन । १६ आकाशतदाचकशब्द-  
योरात्मज्ञानयोश्च । १७ आचार्याधारभूतानामयुतसिद्धानां समवाय एवेति न निश्चय  
इति भावः । १८ अयुतसिद्धानामाचार्याधारभूतानामित्यत्र । १९ अवधारणम्=  
प्रकारः, अयुतसिद्धानामेवाचार्याधारभूतानामेव समवाय इति ।

धाराधेयभूतेष्वपि च भावात्, घटतच्छब्दज्ञानवत् । नन्वेवम्  
‘अयुतसिद्धानामेव’ इत्यवधारणेप्यव्यभिचारात् ‘आधाराधेयभूता-  
नाम्’ इति वचनमनर्थकम्, ‘आधाराधेयभूतानामेव’ इत्यवधारणे  
‘अयुतसिद्धानाम्’ इतिवचनवत्, ताभ्यामव्यभिचारात्; इत्यप्य-  
सारम्, एकद्रव्यसमवायिनां रूपरसादीनामयुतसिद्धानामेव पर-  
स्परं समवायाभावात् एकार्थसमवायसम्बन्धव्यभिचारनिवृत्त्यर्थ-  
मुत्तरावधारणम् । न ह्ययं वाच्यवाचकभावादिव्युतसिद्धानामपि  
सम्भवति । तथोत्तरावधारणे सत्यपि आधाराधेयभावेन संयो-  
गविशेषेण सर्वदाऽनाधाराधेयभूतानामसम्भवता व्यभिचारो  
भा भूदित्येवमर्थं पूर्वावधारणम् । १०

इति भेदकलक्षणस्याशेषदोषरहितत्वादिवन्मुच्यते-तन्तुपटा-  
दयः सामान्यतर्द्वादयो वा ‘संयुक्ता न भवन्ति’ इति व्यवहर्त-  
व्यम्, नियमेनायुतसिद्धत्वादाधाराधेयभूतत्वाच्च, ये तु संयुक्ता  
न ते तथा यथा कुण्डबद्धादयः, तथा चैते, तस्मात्संयोगिनां न  
भवन्तीति । यद्वा तन्तुपटादिसम्बन्धः संयोगो न भवति, निय-  
मेनायुतसिद्धसम्बन्धत्वाद्, ज्ञानात्मनोर्विषयविषयिभाववदिति । १५

ननु समवायस्य प्रमाणतः प्रतीतौ संयोगाद्वैलक्षण्यसाधनं  
शुक्लम्, न चासौ तस्यास्ति, इत्यप्यसत्, प्रत्यक्षत एवास्य प्रतीतेः ।  
तथाहि-तन्तुसम्बद्ध एव पटः प्रतीतमसते तद्रूपादयश्च पटादि-  
सम्बद्धाः, सम्बन्धभावे सहाविन्ध्यवद्विशेषप्रतिभासः स्यात् । २०

अनुमानाच्चासौ प्रतीयते, तथाहि-‘इह तन्तुषु पटः’ इत्यादीह-  
प्रत्ययः सम्बन्धकार्योऽर्थाध्यमानेहप्रत्ययत्वात् इह कुण्डे दधीत्या-  
दिप्रत्ययवत् । न तावदयं प्रत्ययो निर्हेतुकः, कादाचित्कत्वात् ।

१ शब्दश्च धारं च शब्दज्ञाने, तस्य घटस्य शब्दज्ञाने तच्छब्दज्ञाने, घटश्च  
तच्छब्दज्ञाने चेति द्वन्द्वः । २ भूत्याकाशौ घटतच्छब्दाधारे तौ तत्र सिद्धौ,  
‘घटतच्छब्दे’ आत्मभूत्याधारे तौ तत्र सिद्धे इति । ३ आधाराधेयभूतानामिति वचनसमर्थ-  
नार्थमिदम् । आधाराधेयभावस्य रूपरसाद्यवभावाद् । ४ रूपरसाद्य एकार्थाः ।  
५ आधाराधाराभूतानामेवेति । ६ प्रथमावधारणेनैव तदव्यभिचारनिवृत्तिः कुतो न  
भवतीत्याशङ्क्याह । ७ असिग्वर्तौ वृक्षा इति । ८ अयुतसिद्धानामेवेति । ९ अनेन  
प्रकारेणाशेषदोषरहितत्वमयुतसिद्धत्वादिभेदकलक्षणस्य, इतरेभ्यो द्रव्यादिभ्यः समवायस्य  
भेदकत्वालक्षणं भेदकमयुतसिद्धत्वादि । १० अनेतन् प्रसक्तप्रतिषेधार्थमनुमानम् ।  
संयोगानां प्रतिषेधात्समवायस्य सिद्धिर्यतो भवति ततः परितोऽनुमानमित्यर्थः ।  
११ आदिपदेन शुण्णुगिनः क्रियातद्वन्तश्च । १२ प्रत्यक्षतः । १३ पटद्रूपादीनाम् ।  
१४ इहात्मनि रूपादय इत्यादीहप्रत्ययेन नाभ्यमानेन व्यभिचारपरिहारायमिदम् ।

नापि तन्तुहेतुकः पटहेतुको वा; तत्र 'तन्तवः, पटः' इति वा प्रत्ययप्रसङ्गात् । नापि वासनाहेतुकः; तस्याः कारणरहितायाः सम्भवाभावात् । पूर्वज्ञानस्य तत्कारणत्वे तदपि कुतः स्यात् ? तत्पूर्ववासनातश्चेत्; अनवस्था । ज्ञानवासनयोरनादित्वादयमदोषश्चेत्; ५ न; एवं नीलादिसन्तानान्तरस्वसन्तानसंविद्वैतादिसिद्धेरप्यभावा-  
नुपपत्त्यात्, अनादिवासनानावशादेव नीलादिप्रत्ययस्य स्रोतोऽवभासस्य च सम्भवात् । नापि तादात्म्यहेतुकोयम्; तादात्म्यं ह्येकत्वम्, तत्र च सम्बन्धमात्र एव स्यात् द्विष्ट(द्व)त्वात्तस्य । न च तन्तु-  
पटयोरेकत्वम्, प्रतिभासमेवाद्विरुद्धधर्माभ्यासात् परिमाणसंख्या-  
१० जातिभेदाच्च घटपटवत् । नापि संयोगहेतुकः; युतसिद्धेष्वेवार्थेषु संयोगस्य सम्भवात् । न चात्र समवायपूर्वकत्वं साध्यते येन दृष्टान्तः साध्यविकलो हेतुश्च विरुद्धः स्यात् । नापि संयोगपूर्वकत्वं येनाभ्युपगमविरोधः स्यात् । किं तर्हि ? सम्बन्धमात्रपूर्वकत्वम् । तस्मिन् सिद्धे परिशेषात्समवाय एव तज्जनको भविष्यति ।

१५ त(य)च्चेदम्-“विवादास्पदमिदमिहेति ज्ञानं न समवायपूर्व-  
कमवाधितेहज्ञानत्वात् इह कुण्डे दधीतिज्ञानवत्” इति विशेषे(न)  
विरुद्धानुमानम्; तत्सकलानुमानोच्छेदकत्वादानुमानवादिनां न प्रयोक्तव्यम् ।

यद्योर्च्यते-इदमिहेति ज्ञानं न समवायालम्बनम्, तत्सत्यम् ।  
२० विशिष्टाधारविषयत्वात् । न हि 'इह तन्तुषु पटः' इत्यादीहप्रत्ययः केवलं समवायमालम्बते; समवायविशिष्टतन्तुपटालम्बनत्वात् ।  
वैशिष्ट्यं धानयोः सम्बन्ध इति ।

१ तन्वादी । २ सौगतं प्रत्याह । ३ विकल्पज्ञानाद्वासना वासनातो विकल्प-  
ज्ञानमिति बीजाङ्कुरवत् । ४ सन्तानान्तरं च स्वसन्तानम् तौ नीलादीनां ग्राहकौ-  
नीलसन्तानान्तरस्वसन्तानौ च स्वसंविद्वैतादिष्व ज्ञानाद्वैतादिबोध्यः, तेषां सिद्धिरिति  
वाक्यम् । ५ नीलादेः समुत्पन्नमानो नीलं नीलमिति प्रत्ययः सत्वेन समुत्पद्यते  
विद्यमानाभीलादेः समुत्पन्नमानत्वात् तु कल्पनाह्नित्वात्पितवासनातः समुत्पन्नमानः  
सन्समुत्पद्यते । ६ ततोनादिवासनाहेतुकत्वमस्य प्रत्ययस्य नेलरी । ७ कुण्डः ।  
८ न तु नीलादेः । ९ आदिना सन्तानसंग्रहः । १० अन्यतोवभासमाने दैत-  
प्रसक्तिलाङ्घ्रिसाग्रे स्वतो विशेषणम् । ११ संविद्वैतस्य । १२ जैनमतमाशङ्क्याह ।  
१३ सम्बन्धमात्रे साध्ये सम्बन्धविशेषसाधनात् । १४ किन्तु संयोगपूर्वकम् ।  
१५ विशेषणसमवायपूर्वकत्वेन निरुद्धमसमवायपूर्वकत्वं तस्यानुमानम्, विशेषविरुद्धा-  
नुमाने इदमुदाहरणं पर्वतः पर्वतस्तेनाग्निनाग्निमात्रं भवति धूमवत्सामानानसवदिति ।  
१६ पर्वतोऽग्निमान्धूमवत्त्वादित्यादेः सम्बन्धानुमानस्य ऋच्छेदकानुमानं तस्य नकुम-  
शक्यत्वादिति भावः । १७ जैनादिना । १८ वैवादिना । १९ तस्य ज्ञानस्य ।

न चास्य संयोगवन्नानात्वम्; इहेति प्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च सप्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च संज्ञावत् । न च सम्बन्धत्वमेव विशेषलिङ्गम्; अस्यान्यथासिद्धत्वात् । न हि संयोगस्य सम्बन्धत्वेन नानात्वं साध्यतेऽपि तु प्रत्यक्षेण भिन्नाश्रयसमवेतस्य क्रमेणोत्पादोपलब्धेः । समवायस्य चानेकत्वे सति अनुगतप्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात् । संयोगे तु संयोगत्ववच्छानात्वेऽपि स्यात् । न चैतत्समवाये सम्भवति; समवार्थत्वस्य समवाये समवायाभावात्, अन्यथानवस्था स्यात् । 'संयोगस्य गुणत्वेन द्रव्यवृत्तित्वात्, संयोगत्वं पुनः संयोगे सम्भवेत्तमिति ।

न चैकत्वे समवायस्य द्रव्यत्ववहुणत्वस्यार्थमिव्यञ्जकं द्रव्यं १० कुतो न भवतीति बोध्यम् । आधारशक्तिर्निर्धामकत्वात् । द्रव्याणां हि द्रव्यत्वाधारशक्तिरेव, गुणादेस्तु गुणत्वाधारशक्तिरिति । न चानुगतप्रत्ययजनकत्वेन सामान्यादस्याऽसेदः, मिर्लक्षणयोगित्वात् ।

यद्वा, 'समवायीनि द्रव्याणि' इत्यादिप्रत्ययो विशेषणपूर्वको १५ विशेष्यप्रत्ययत्वाद्दण्डीत्यादिप्रत्ययवत् इत्यतः समवायसिद्धिः । न चैन्येषामेवात्रानुरागः सम्भवति । किन्तर्हि ? समवायस्यैव । अतः स एव विशेषणम् । अप्रतिपन्नसमयस्य 'समवायी' इतिप्रतिभासाभावादस्याऽविशेषणत्वम्, दण्डादावपि समानं तस्य

१ सप्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च संज्ञाया नानात्वं नास्ति यथा । २ समवायो नाना सम्बन्धत्वात्संयोगवदिति । ३ संयोगस्य । ४ अर्थं समवायोऽयं समवाय इति । ५ ननु समवायेऽपि समवायत्ववच्छानात्वेऽप्यनुगतप्रत्ययोत्पत्तिः सादिति शङ्क्यामानाह । ६ सामान्यस्य । ७ समवायत्वस्य समवाये सद्भावेऽपरः समवायः समायातलक्षणस्य समवायत्वसमवायेऽपरः समवायः समायात इति । ८ तर्हि संयोगस्याप्यपरसंयोगपूर्वकत्वेनानवस्था कुतो न सादित्याह । ९ कथं तर्हि संयोगत्वमित्याह । १० संयोगान्तरापेक्षा नास्तीति भावः । ११ येन समवायेन द्रव्ये द्रव्यत्वं समवेतं तैवेव समवायेन गुणे गुणत्वमपि समवेतं समवायस्यैकत्वात्, तत्तथात्मनि समवेतस्य द्रव्यत्वस्य द्रव्यं यथाभिन्न्यञ्जकं भवति तथा गुणत्वस्याप्यभिन्न्यञ्जकं कुतो न भवति एकसमवायसमवेतत्वाविशेषादिति भावः । १२ चैनादिना । १३ द्रव्यस्वरूपायाः । १४ द्रव्यस्य । १५ घटादीनाम् । १६ द्रव्यत्वमेव स्वरूपशक्तिरिति भावः, निजा हि शक्तिः प्रथिव्यादीनां प्रथिवीत्वादिकमेव । १७ गुणत्वादिकमेव स्वरूपं शक्तिः । १८ साभिधेयस्यैवाभिन्न्यञ्जकं नान्यथेति भावः । १९ अनाघातानुगतप्रत्ययहेतुः सामान्यमिति लक्षणं सामान्यस्य, समवायस्य त्वनुतसिद्धेत्यादि । २० दण्डलक्षणविशेषणपूर्वकत्वमत्र । २१ शादात्म्यसयोगादीनाम् । २२ समवायीनि द्रव्याणीति वचने । २३ विशेषणत्वम् । २४ अप्रतिपन्नदण्डस्य ।



दण्डाद्युल्लेखेन 'दण्डी' इत्यादिप्रत्ययानुत्पत्तेः । दण्डादेरभिधानयोजनाभावेपि 'अनेन वस्तुना तद्वानयम्' इत्यनुरागप्रतीतिः 'संसृष्टा एते तन्तुपटादयः' इति सम्बन्धमात्रेपि तुल्या । केवलं सङ्केताभावात् 'अयं समवायः' इति व्यपदेशाभावः । प्रतिपन्नस-  
५ मयस्तु दण्डादेरिव समवायस्यापि विशेषणतामभिधानयोजना-  
द्वारेण प्रतिपद्यते ।

यच्चान्यत्समवाये बाधकमुच्यते—'नैनिष्पन्नयोः समवायः सम्बन्धिनोरनुत्पादे सम्बन्धाभावात् । निष्पन्नयोश्च संयोग एव । असम्बन्धे चास्य 'समवायिनोः समवायः' इति व्यपदेशा-  
१० नुपपत्तिः । सम्बन्धे वा न स्वतोसौ, संयोगादीनामपि तथा तत्प्रसङ्गात् । परतश्चेदनवस्था । न च गुणादीनामाधेयत्वं निष्क्रिय-  
त्वात् । गतिप्रतिबन्धकआधारो जलादेर्घटादिवत् । तथा न स्वरूपसंश्लेषः समवायो यतस्तस्मिन्सत्येकत्वमेव न सम्बन्धः ।  
नापि पारतन्त्र्यम्, अनिष्पन्नयोरधारस्यैवास्तत्त्वात् । स्वतन्त्रेण  
१५ निष्पन्नयोश्च न पारतन्त्र्यम्, इत्यप्यसमीचीनम्, यतो न निष्पन्न-  
योरनिष्पन्नयोर्वा समवायः, स्वकारणसत्तासम्बन्धस्यैव निष्पत्ति-  
रूपत्वात् । न हि निष्पत्तिरन्या समवायश्चान्यो येन पौर्वापर्यम् ।

एतेनै 'रूपसंश्लेषः पारतन्त्र्यं वा' इत्याद्यपास्तम् । नापि समवा-  
यस्य सम्बन्धान्तरेण सम्बन्धो युक्तो येनानवस्था स्यात्, सम्ब-  
२० न्धस्य समानलक्षणसम्बन्धेन सम्बन्धस्यान्यत्रादृष्टेः संयोगवत् ।  
अग्रेदण्णतावसु स्वत एवास्य सम्बन्धो युक्तः स्वत एव सम्बन्ध-  
रूपत्वात्, न संयोगादीनां तदभावात् । न ह्येकस्य स्वभावोऽन्यै-  
स्यापि, अन्यथा स्वतोग्रेरुणत्वदर्शनाज्जलादीनामपि तत्स्यात् ।

यच्चोक्तम्—'निष्क्रियत्वात्तेषां नाधेयत्वम्' इति, तदप्यसत्,;  
२५ संयोगिद्रव्यविलक्षणत्वाद्गुणादीनाम्, संयोगिनां सक्रियत्वेनेव  
तेषां निष्क्रियत्वेप्याधाराधेयभावस्य प्रत्यक्षेण प्रतीतेरिति ।

१ समवायस्याभिधानयोजनाभावेपि संसृष्टा एते तन्तुपटादय इति सम्बन्धमात्रेपि  
अनुरागप्रतीतिः । २ नैनादिना । ३ असौ समवायः सम्बन्धिनोरनिष्पन्नयोः स्वाभि-  
ष्पन्नयोर्वैति विकल्पद्वयं हृदि निधाय दूषयति । ४ मित्रादी समवायः समवायिस्था-  
मसम्बन्धः सम्बन्धो वेति विकल्पद्वयं विधाय प्रथमविकल्पे दूषणमाह । ५ सम्बन्धश्चेत्स्वतः  
परतो वेति विकल्पद्वयमत्रापि बोध्यम् । ६ स्वरूपयोः स्वभावयोः सन्धेयः सम्बन्धः ।  
७ स्वकारणसत्तासम्बन्धस्यैव निष्पत्तिरूपत्वादित्यनेन ग्रन्थेन । ८ समवायिना सह ।  
९ अपरसमवायेन । १० संयोगिनोः संयोगस्य च समवायेन सम्बन्धसङ्गात्वात् ।  
११ कथं तर्ह्यस्य सम्बन्ध इत्याशङ्क्यामाह । १२ संयोगस्य । १३ गुणादीनाम् ।  
१४ द्रव्याणाम् । १५ संयोगिनां सक्रियत्वादेव तेषामाधेयत्वमिति नायः ।

अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तमयुतसिद्धेत्यादि, तत्रेदमयुत-  
सिद्धत्वं शास्त्रीयम्, लौकिकं वा ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः, तन्तुप-  
टादीनां शास्त्रीयायुतसिद्धत्वस्यासम्भवात् । वैशेषिकशास्त्रे हि  
प्रसिद्धम्-अपृथगाश्रयवृत्तित्वमयुतसिद्धत्वम्, तच्चेह नास्त्येव,  
'तन्तूनां स्वावयवांश्च पु वृत्तेः पटस्य च तन्तुषु' इति पृथगाश्रय-५  
वृत्तित्वसिद्धेरपृथगाश्रयवृत्तित्वमसदेव । एवं गुणकर्मसामान्या-  
नामप्यपृथगाश्रयवृत्तित्वाभावं प्रतिपत्तव्यः । लोकप्रसिद्धैकमाज-  
नवृत्तिरूपं त्वयुतसिद्धत्वम् दुग्धाम्भसोर्युतसिद्धयोरप्यस्तीति ।

ननु यथा कुण्डदध्यवयवाभ्यौ पृथग्भूतावाभ्यौ तयोश्च  
कुण्डस्य वृद्धश्च वृत्तिर्न तथात्र चत्वारोर्थाः प्रतीयन्ते- 'द्वैवाभ्यौ १०  
पृथग्भूतौ द्वौ र्वाभ्ययिनौ, तन्तोरेव स्वावयवापेक्षयाश्रयित्वात्  
पटापेक्षया चाश्रयत्वाज्जयाणामेवार्थानां प्रसिद्धेः, 'पृथगाश्रयाश्र-  
यित्वं युतसिद्धिः' इत्यस्य युतसिद्धिलक्षणस्याभीवाद्युतसिद्धत्वं  
तेषामिति चेत्, कथमेवमाकांशादीनां युतसिद्धिः स्यात् ? तेषाम-  
न्याश्रयविवेकतः पृथगाश्रयाश्रयित्वाभावात् । १५

'नित्यानां च पृथग्गतिमत्त्वं' इत्यपि तत्रासम्भाव्यम्, न खलु  
विभुद्रव्यपरमाणुवद्विभुद्रव्याणामन्यतरपृथग्गतिमत्त्वं परमाणुव-  
यवदुभयपृथग्गतिमत्त्वं वा सम्भवति, अविभुत्वप्रसङ्गात् । तथैकै-  
द्रव्याश्रयिणां गुणकर्मसामान्यानां परस्परं पृथगाश्रयवृत्तेरभावाद-  
युतसिद्धिप्रसङ्गतोऽन्योन्यं समवायः स्यात् । स च नेष्टस्तेषामा- २०  
श्रयाश्रयिसमवाय (यिभावा) भावात् । इतरैतराश्रयभावा (यश्च-  
समवाय) सिद्धौ हि पृथगाश्रयसमवायित्वलक्षणा युतसिद्धिः,  
तत्सिद्धौ च तन्निपेक्षेन समवायसिद्धिरिति ।

ननु लक्षणं विद्यमानस्यार्थस्यान्यतो मेदेनावस्थापकं न तु  
सङ्गावकारकम्, तेनायमदोषश्चेत्, ननु ज्ञापकपक्षे सुतरामितरे- २५  
तराश्रयत्वम् । तथाहि-नाऽज्ञातया युतसिद्ध्या समवायो ज्ञातुं  
शक्यते, अनधिगतश्चासौ न युतसिद्धिमवस्थापयितुमुत्सहते इति ।

१ गुणादीनां गुणवदादिषु वृत्तिरेषा च स्थावरेषां चान्येषां चान्येषां वृत्तिरिति भावः ।  
२ अतिव्याप्तिदूषणमिदम् । ३ कुण्डं च दधि च तयोर्के तयोरेवयवौ । ४ अपिकरण-  
भूतयोः । ५ तन्तुपटादियु । ६ ते के चत्वारोर्था इत्युक्ते सत्याह । ७ कुण्डदध्यवयवौ ।  
८ आभ्यौ दधिकुण्डावयवलक्षणी विधेते ययोर्दधिकुण्डयोस्त्वावयवयोः । ९ समवाये ।  
१० ततश्च । ११ ततश्च तेषां समवायसिद्धिरिति भावः । १२ आदिना आत्मका-  
दिषा च । १३ विवेकः-अभावः, व्यापकत्वात्तेषामेकाग्रवृत्तेः । १४ पृथगाश्रया-  
श्रयित्वं युतसिद्धिलक्षणं मिलेषु यद्यपि नास्ति तथापि पृथग्गतिमत्त्वं भविष्यतीत्याह ।  
१५ लक्षणम् । १६ मन्वे । १७ यद्वर्ण्यं-विभु आत्मकाद्यादि । १८ वसः ।

न चातो लक्षणात्समवायः सिद्ध्यति व्यभिचारात् । तथाहि-निय-  
मेनायुतसिद्धसम्बन्धत्वमाधारवेयभूतसम्बन्धत्वं च 'आकाशे  
वाच्ये वाचकस्तच्छब्दः' इति वाच्यवाचकभावे 'आत्मनि विषय-  
भूते अहमिति ज्ञानं विषयि' इति विषयविषयिभावे च विद्यते  
५ इति । ननु सर्वस्य वाच्यवाचकवर्गस्य विषयविषयिवर्गस्य च  
नियमेनायुतसिद्धसम्बन्धत्वासम्भवो युतसिद्धेष्वप्यस्य सम्भ-  
वाद्धटतच्छब्दज्ञानैवत्, अतो न व्यभिचारः, इत्यप्यसारम्;  
वर्गापेक्षयापि लक्षणस्य विपक्षैकदेशवृत्तेर्व्यभिचारित्वात् । इष्टं च  
विपक्षैकदेशादव्यावृत्तस्य सर्वैरप्यनैकान्तिकत्वम् ।

१० यच्चोक्तम्-तन्तुपटादयः संयोगिनो न भवन्तीत्यादि; तत्स-  
त्यम्, तत्र तादात्म्योपगमात् ।

यच्चोक्तम्-प्रत्यक्षत एव समवायः प्रतीयत इत्यादि; तदयुक्तम्;  
असाधारणस्वरूपत्वे हि सिद्धे सिध्येदर्थानां प्रत्यक्षता पृथुबुधो-  
दराद्याकारघटादिष्वत् । न चास्य तत्सिद्धम् । तद्धि किमयुतसिद्ध-  
१५ सम्बन्धत्वम्, सम्बन्धमात्रं वा ? न तावदयुतसिद्धसम्बन्धत्वम्;  
सर्वैरप्रतीयमानत्वात् । यत्पुनर्यस्य स्वरूपं तत्तेनैव स्वरूपेण सर्व-  
स्यापि प्रतिभासते यथा पृथुबुधोदराद्याकारतया घट इति ।  
न चैकस्य सामान्यात्मकं स्वरूपं युक्तम्, समानानामभावे सामा-  
न्याभावोद्गमे गगनत्ववत् । नापि सम्बन्धमात्रं समवायस्यासा-  
२० धारणं स्वरूपम्, संयोगादावपि सम्भवात् ।

किञ्च, तद्रूपतयासौ सम्बन्धबुद्धौ प्रतिभासेत, इहेति प्रत्यये  
वा, समवाय इत्यनुमते वा ? यदि सम्बन्धबुद्धौ, कोयं सम्बन्धो  
नाम-किं सम्बन्धत्वजातियुक्तः सम्बन्धः, अनेकोपादानजनितो  
वा, अनेकाश्रितो वा, सम्बन्धबुद्ध्युत्पादको वा, सम्बन्धबुद्धिवि-  
२५ षयो वा ? न तावत्सम्बन्धत्वजातियुक्तः, समवायस्यासम्बन्धत्व-  
प्रसङ्गात् । द्रव्यादित्रयान्यतरूपत्वाभावेन समवायान्तरासत्वेन  
चात्र सम्बन्धत्वजातेरप्रवर्त्तनात् । अथ संयोगवदनेकोपादानज-  
नितः; तर्हि घटादेरपि सम्बन्धत्वप्रसङ्गः । नाप्यनेकाश्रितः; घट-

१ विपक्षे । २ शब्दस्य ज्ञानं च शब्दज्ञाने, तस्य घटस्य शब्दज्ञाने तच्छब्दज्ञाने  
इति द्वन्द्वः । ३ वाच्यवाचकभावविषयविषयिभावसमूहे विपक्षे नास्ति तथापि तस्यैक-  
देशवृत्तित्वादनेकान्तिकः । ४ असाधारणस्वरूपम् । ५ समवायस्य । ६ समवायेन  
सह समानानां वस्तुत्वात् । ७ तस्यैकत्वात्सामान्यस्यानेकवृत्तित्वात् । ८ अयं सन्नव  
इति ज्ञाने । ९ समवायस्य । १० सम्बन्धत्वजातेर्वृत्त्यर्थं समवाये । ११ समवायान्त-  
रासत्वं च समवायस्यैकत्वादवगन्तव्यम् । १२ अनेकोपादानजनितत्वाविशेषात् ।

त्वादेः सम्बन्धत्वानुपपत्तात् । नापि सम्बन्धबुद्ध्युत्पादकः; लोचना-  
देरपि तत्त्वप्रसक्तेः । नापि सम्बन्धबुद्धिविषयः; सम्बन्धसम्बन्धि-  
नोरेकज्ञानविषयत्वे सम्बन्धिनोपि तद्रूपत्वानुपपत्तात् । नैव प्रति-  
विषयं ज्ञानमेदः; मेवमेकज्ञानाभावप्रसङ्गात् ।

अथेहबुद्धौ समवायः प्रतिभासते; नै; इहबुद्धेरधिकरणाध्य-  
वसायरूपत्वात् । न चान्यसिद्धाकारे प्रतीयमानेऽन्याकारोर्थः  
कल्पयितुं युक्तोतिप्रसङ्गात् ।

अथ समवायबुद्ध्यासौ प्रतीयते; तन्न; समवायबुद्धेरसम्भवात् ।  
नहि 'पठे तन्तवः, अयं पटः, अयं च समवायः' इत्यन्योन्यवि-  
विकं त्रितयं बहिर्ग्राह्याकारतया कस्याञ्चित्प्रतीतौ प्रतीयते तथानु-  
भवभावात् ।

सर्वसमवाय्यनुगतैकस्वभावो ह्यसौ तत्र प्रतिभासेत, तद्व्या-  
वृत्तस्वभावो वा? न तावच्चद्व्यावृत्तस्वभावः; सर्वतो व्यावृत्त-  
स्वभावस्यान्यासम्बन्धित्वेन गगनाम्मोजवत्समवायत्वानुपपत्तेः ।  
नापि तदनुगतैकस्वभावः; सामान्यादेरपि समवायत्वानुपपत्तात् । १५  
न चाखिलसमवाय्यऽप्रतिभासे तदनुगतस्वभावतयासौ प्रत्यक्षेण  
प्रत्येतुं शक्यः । अथानुगतव्यावृत्तरूपव्यतिरेकेण सम्बन्धरूपत-  
यासौ प्रतीयते; तन्न; सम्बन्धरूपतायाः प्रागेव कृतोत्तरत्वात् ।

यदप्युक्तम्—'इह तन्तुपु पटः' इत्यादीहप्रत्ययः सम्बन्धकार्यो-  
ऽवाध्यमानेहप्रत्ययत्वादिह कुण्डे वधीत्यादिप्रत्ययवदित्यनुमाना-  
न्नासौ प्रतीयते' इत्यादि; तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; हेतोराभ्या-  
सिद्धत्वात् । तदसिद्धत्वं च 'इह तन्तुपु पटः' इत्यादिप्रत्ययस्य  
धर्मिणोऽसिद्धेः । अप्रसिद्धविशेषणश्चायं हेतुः; 'पठे तन्तवो वृक्षे  
शाखाः' इत्यादिरूपतया प्रतीयमानप्रत्ययेन 'इह तन्तुपु पटः' इति  
प्रत्ययस्य वाध्यमानत्वात् । स्वरूपासिद्धश्चायम्; तन्तुपटप्रत्यये २५

१ आदिपदेन प्रकाशादेश्च, लोचनादिरपि वस्तुषु सम्बन्धबुद्धि जनयति । २ प्रति-  
विषयं ज्ञानमेदात्कार्यं सम्बन्धिनोरेकज्ञानविषयत्वं यतः सम्बन्धिनोरपि सम्बन्धरूपता  
स्यादित्याशङ्क्यामाह । ३ इति चेदिति शेषः । ४ समवायवशात्प्रापेयभावलक्षण-  
सम्बन्धाकारोद्धेतित्वात्समवाय इति न वदते । ५ इहेति बुद्धेरपि सम्बन्धप्रत्ययत्वं कृतो  
न स्यादित्युक्ते सत्याह । ६ अधिकरणलक्षणेर्धे । ७ सम्बन्धलक्षणः । ८ वटप्रतिभासे  
पटप्रतिभासप्रसङ्गात् । ९ कोयं सम्बन्धो नाम? किं सम्बन्धत्वनातिपुङ्कः इत्यादि-  
तीत्या । १० प्रतिवादिनं प्रति । ११ अवयविनि । १२ इह तन्तुपु पट इति अवय-  
वेष्ववयविनो वृत्तिद्वारेण प्रत्ययोत्पत्तिर्यथा तत्रेह पटे तन्तवो वृक्षे शाखा इत्यवयविष-  
यवार्ता वृत्तिद्वारेणापि प्रत्ययोत्पत्तिर्लोकप्रसिद्धैव यतः ।

इहप्रत्ययत्वस्यानुमत्तमात्रात्, 'पटोयन्' इत्यादिरूपवत्तु हि प्रत्य-  
यानुसृतं ।

अनैकान्तिकश्च : 'इह प्रागभावाऽनादित्वम्, इह प्रवृत्तानावे  
प्रवृत्तानावभावाः' इत्यवस्थानानेहप्रत्ययस्य सन्वन्धपूर्वकत्वा-  
भावात् । न चात्र विशेषणविशेष्यभावः सन्वन्धो वाच्यः, सन्व-  
न्धमन्तरेण विशेषणविशेष्यभावस्याऽसम्भवात्, अन्यथा सर्व-  
सर्वस्य विशेषणं विशेष्यं च स्यात् । सन्वन्धे सत्येव हि द्रव्यगुण-  
कर्मादावेकस्य विशेषणत्वनपरस्य विशेष्यत्वं दृश्यम् । तदभावेपि  
विशेषणविशेष्यभावकल्पनायानतिप्रसङ्गः स्यात् ।

- १० न चात्रादृष्टलक्षणः सन्वन्धो विशेषणविशेष्यभावनिवन्धनम्  
इत्यभिधातव्यम् ; षोडशसन्वन्धवादित्वव्याघातानुपपत्तात् । न  
चास्य सन्वन्धरूपता । सन्वन्धो हि द्विष्टो भवतान्युपेतः । अदृष्ट-  
श्चात्मवृत्तितया प्रागभावाऽनादित्वयोरतिष्ठकं द्विष्टो भवतीति  
चिन्त्यमेतत् ? यदि चात्रादृष्टः सन्वन्धः, तर्हि गुणगुण्यादयोर्यत  
१५ एव सन्वद्धा भविष्यन्तीत्यलं समवायादिसन्वन्धकल्पनया ।

- किञ्च, अतोऽनुमानात्सन्वन्धमात्रं साध्यते, तद्विशेषो वा ?  
प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता, तादात्म्यलक्षणसन्वन्धस्येष्टत्वात्तन्नु-  
पपादनीयम् । ननु तेषां तादात्म्ये सति तन्त्रयः पटो वा स्यात्,  
तथा च सन्वन्धनोरेकत्वे कथं सन्वन्धो नामास्य द्विष्टत्वात् ?  
२० तदप्ययुक्तम् ; यो हि द्विष्टः सन्वन्धस्तत्सत्यनभावो युक्तः, यस्तु  
तत्त्वमवतालक्षणः कथं तत्त्वानावो युक्तः ? तन्मुखभाव एव हि  
पटो नार्यान्तरम्, आवातवितानीन्तवस्तुव्यतिरेकेण देशभेदे-  
दिना पटस्यानुपलभ्यमानत्वात् ।

- अथ सन्वन्धविशेषः साध्यते, स किं संयोगः, समवायो वा ?  
२५ संयोगश्चेत्, अन्युपगमवाधा । समवायश्चेत्, दृष्टान्तस्य सान्य-  
विकलता ।

अर्थोच्यते-न संयोगः समवायो वा साध्यते किन्तु सन्वन्ध-  
भावम्, तत्सिद्धौ च परिशेषात् समवायः सिध्यतीति, तदनुसृति-  
मात्रम् ; परिशेषन्यायेन समवायस्य सिद्धेरसंभवात्, तत्त्वानेक-

१ वदः । २ तद्विषयभेदेति विशेषणविशेष्यभावस्य सन्वन्धपूर्वकत्वेति ।  
३ उपलब्धे । ४ सन्वन्धोऽस्य सन् । ५ इह तन्त्रयः स इत्यद्वैतस्य सन्वन्ध-  
संज्ञादवस्थानानेहप्रसङ्गदेहः । ६ वैवाचिकम् । ७ सन्वन्धनोरेकत्वमत्रेयम् ।  
८ सन्वन्ध एव सन्वन्धो यस्य सन्वन्धो तद्विषयस्य सन्वन्धोऽस्य सन्वन्धोऽस्य  
सन्वन्धोऽस्य सन्वन्धो । ९ इह इत्येव इत्यादिसंभवदेहः ।

ोषदुष्टत्वेन प्रतिपादितत्वात् । यदि हि संवन्धान्तरमनेकदोष-  
दुष्टं समवायस्तु निर्दोषः स्यात्, तदासौ तज्यायात् सिध्येत् । न  
चैवमित्युक्तम् ।

कश्चायं परिशेषो नाम ? प्रसक्तप्रतिषेधे विक्षि (वे शि) व्यमाण-  
संप्रत्ययहेतुः सै इति चेत्; स किं प्रमाणम्, अप्रमाणं वा ? न ५  
तावदप्रमाणमभिप्रेतसिद्धौ समर्थम्; अतिप्रसङ्गात् । प्रमाणं चैतिकं  
प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा ? न तावत्प्रत्यक्षम्; तस्य प्रसक्तप्रतिषेध-  
द्वारेणाभिप्रेतसिद्धावैवसमर्थत्वात् । अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानं  
परिशेषः; तर्हि प्रकृतानुमानोपन्यासवैवर्थ्यम्, तस्योपन्यासेपि  
परिशेषमन्तरेणामिप्रेतसिद्धेरभावात् । परिशेषस्तु प्रमाणान्तर-१०  
मन्तरेणापि तत्सिद्धौ समर्थ इति स एवोच्यताम्, न चासाधुक्तः,  
तत् कथं समवायः सिध्येत् ?

ननु चेदप्रत्ययस्य समवायाहेतुकत्वे निर्हेतुकत्वप्रसङ्गात् कादा-  
चित्कत्वविरोधः; तदसत् । तादात्म्यहेतुकतयास्य प्रतिपादित-  
त्वात् । महेश्वरहेतुकत्वाद्वा कादाचित्कत्वाविरोधः । तस्य तदहेतु-१५  
कत्वे वा तेनैव कार्यत्वादित्येवमित्यभिचारः । ननु महेश्वरोऽसम्बन्ध-  
त्वात्कथं सम्बन्धबुद्धेः कारणमिति चेत् ? प्रमुशकेरचिन्त्यत्वात् ।  
यो हीश्वरस्त्रैलोक्यकार्यकरणसमर्थः स कथं 'पटे रूपादयः' इति  
बुद्धिं न विदध्यात् ? प्रभुः खलु यदेवेच्छति तत्करोति, अन्यथा  
प्रभुत्वमेवास्य हीयते । नच 'इह कुण्डे दधि' इत्यादिप्रत्यये २०  
सम्बन्धपूर्वकत्वोपलम्भादत्रापि तत्पूर्वकत्वस्यैव सिद्धिः; तत्रापी-  
श्वरहेतुकत्वं कार्यस्येच्छतस्तत्त्वोद्योगनिवृत्तेः । संयोगश्चायान्तर-  
भूतस्तन्निमित्तत्वेनैव तत्राप्यसिद्धः; तस्यासिद्धस्वरूपत्वात् ।

“ननु संयोगो नामार्थान्तरं न स्यात्तदा क्षेत्रे बीजादयो निर्वि-  
शिष्टत्वात् सर्वदेवाङ्कुरादिकार्यं कुर्युः, न चैवम् । तस्मात्सर्वदा २५

१ संयोगतादात्म्यादिरूपम् । २ प्रसक्तः=प्रसङ्गमाप्तः सर्वजनप्रसिद्धो वा संयोग-  
तादात्म्यरूपः, तस्य प्रतिषेधे सति निश्चिन्त्यमाणः समवायरूपस्यैव सम्यक् प्रतीतिहेतु-  
रित्यर्थः । ३ परिशेषः । ४ प्रलम्बस्य सन्निहितरूपादिष्वेव प्रवर्तमानत्वात् । ५ परि-  
शेषोपि प्रमाणान्तरमन्तरेण तत्सिद्धावसमर्थो मन्त्रिष्वतीत्युक्ते सत्यात् । ६, ७ इहेदमिति  
प्रलयस्य । ८ इहेदमिति प्रलयस्य । ९ इह तन्मृगं पट इत्यादीहप्रलयेपि । १० इह  
कुण्डे दधीत्यादिप्रलये । ११ दधीत्यादिप्रलयस्य । १२ वैशेषिकस्य । १३ तन्मोघ  
हि महेश्वरहेतुकत्वाद्वा कादाचित्कत्वाविरोध इत्यादि । १४ अपरौ संयोगक्रियाधारे  
ताभ्यामन्वः संयोग इत्यर्थः । १५ इहेति प्रलयनिमित्तत्वेन । १६ इह कुण्डेपि ।  
१७ संयोगे सत्यप्यपूर्वसामर्थ्याद्भवाभावादित्यर्थः । १८ गृहे स्थापिताः सन्तोषीत्यर्थः ।  
प्र० क० मा० ५३

कार्यानारम्भात् तेऽङ्कुरादिकार्योत्पत्तौ कारणान्तरसापेक्षाः, यथा मृत्पिण्डदण्डादयो घटकरणे कुम्भकारादिसापेक्षाः । योसावपेक्ष्यः स संयोग इति ।

किञ्च, द्रव्ययोर्विशेषणभावेनाव्यक्षत एवासौ प्रतीयते; तथाहि-  
५ कैश्चित्केनचित् 'संयुक्ते द्रव्ये आहर' इत्युक्ते ययोरेव द्रव्ययोः संयोगमुपलभते ते एवाहरति, न द्रव्यमात्रम् ।

किञ्च, 'कुण्डली देवदत्तः' इत्यादिमतिरुपजायमाना किञ्चिन्वन्धनेत्यभिधातव्यम् ? न तावत्पुरुषकुण्डलमात्रैनिवन्धना; सर्वदा तस्याः सद्भावप्रसङ्गात् ।

- १० किञ्च, यदेव केनचित्कचिदुपलब्धसत्त्वं तस्यैवान्यत्र विधि-  
प्रतिषेधमुखेन लोके व्यवहारप्रवृत्तिर्दृष्टा । यदि तु संयोगो न कदाचिदुपलब्धस्तत्त्वश्चमस्य 'चैत्रोऽकुण्डली कुण्डली' वा इत्येवं विभागेन व्यवहारो भवेत् ? 'चैत्रोऽकुण्डली' इत्यत्र हि न कुण्डलं चैत्रो वा प्रतिषिध्यते देशादिमेवेनानयोः सतोः प्रतिषेधायोगात् ।  
२५ तस्माच्चैत्रस्य कुण्डलसंयोगः प्रतिषिध्यते । तथा 'चैत्रः कुण्डली' इत्यनेनापि विधिवाक्येन चैत्रकुण्डलयोर्नान्यतरस्य विधानं तयोः सिद्धत्वात् । पारिशेष्यात्संयोगस्यैव विधिर्विज्ञायते ।" [ न्यायवा० पृ० २१८-२२२ ]

- इत्यप्युद्धोतकरस्य मनोरथमात्रम्; तथाहि-यसावदुक्तम्-  
२० निर्विशिष्टत्वाद्बीजादयः सर्वदैवाङ्कुरं कुर्युः, तदयुक्तम्; तेषां निर्विशिष्टत्वासिद्धेः, सकलभावानां परिणामित्वात् । ततो विशिष्टपरिणामापन्नानामेव तेषां जनकत्वं नान्यथा ।

- यच्चोक्तम्-'सर्वदा कार्यानारम्भात्' इत्यादि; तत्रापि कारण-  
मात्रसापेक्षत्वसाधने सिद्धसाध्यता, अस्माभिरपि विशिष्टपरिणा-  
२५ मापेक्षाणां तेषां कार्यकारित्वाभ्युपगमात् । अथाभिमतसंयोगा-  
ख्यपदार्थान्तरसापेक्षत्वं साध्यते; तदनेन हेतोरन्वयसिद्धेरनै-  
कान्तिकता, तमन्तरेणापि संभवाविरोधात् । इष्टान्तस्य च साध्य-  
विकलता । यदि च संयोगमात्रसापेक्षा एव ते तज्जनकाः; तर्हि  
प्रथमोपनिपाते एव श्रित्यादिभ्योऽङ्कुरादिकार्योदयप्रसङ्गः पश्चा-

१ कारणान्तरं=संयोगः । २ द्रव्ये संयोगवती इति । ३ पुमान् । ४ पुंसा ।

५ संयोगरूपापूर्वत्वमात्रप्रारब्धत्वावपेक्षा । ६ पुरुषकुण्डलयोः पार्ष्वक्येन सिता-

वस्यायामपीत्यर्थः । ७ चैत्रोऽकुण्डलीति निषेधवाक्येन । ८ अन्वयः=अविनाभावः ।

९ मृत्पिण्डादयः कुम्भकारापेक्षा घटकरणे प्रभवन्ति तथापि नासौ कुम्भकारः संयोगस्वरूप इति ।

दिवाविकलकारणत्वात् । तदा तदनुत्पत्तौ वा पश्चादप्यनुत्पत्ति-  
प्रसङ्गो विशेषाभावात् ।

यदप्युक्तम्-द्रव्ययोर्विशेषणभावेनेत्यादि; तदप्युक्तम्; यतो न  
द्रव्याभ्यामर्थान्तरभूतः संयोगः प्रतिपत्तुः प्रत्यक्षे प्रतिभाति यत्-  
स्तद्दर्शनाद्विशिष्टे द्रव्ये आहरेत् । किं तर्हि ? प्राग्भाविसान्तराव-५  
स्थापरित्यागेन निरन्तरावस्थारूपतयोत्पन्ने वस्तुनी एव संयुक्त-  
शब्दवाच्ये, अथवाविशेषे प्रभावितत्वात् संयोगशब्दस्य । तेन  
यत्र तथाविधे वस्तुनी संयोगशब्दविषयभावापत्ते पश्यति ते  
एवाहरति, नान्ये ।

यदप्युक्तम्-कुण्डलीत्यादि; तदप्युक्तिमात्रम्; यतो यथैव हि १०  
चैत्रकुण्डलयोर्विशिष्टावस्थाप्राप्तिः संयोगः सर्वदा न भवति,  
तद्वत् 'कुण्डली' इति मतिरप्यवस्थैविशेषनिवन्धना कथं तद-  
भावे भवेत् ? विधिप्रतिषेधावपि न केवलयोश्चैत्रकुण्डलयोः,  
किन्त्ववस्थैविशेषस्यैवेत्युक्तदोषानवकाशः । ततो ये अनेकव-  
स्तुसन्निपाते सत्युपजायन्ते प्रत्यया न ते परपरिकल्पित-१५  
संयोगविषयाः यथा प्रविरलावस्थितानेकतन्तुविषयाः प्रत्ययाः;  
तथा चैते संयुक्तप्रत्यया इति ।

यथान्यदुक्तम्-विशेषविरुद्धानुमानं सकलानुमानोच्छेदक-  
त्वात्तत्र वक्तव्यमिति; तत्किमनुमानाभासोच्छेदकत्वात्तत्र वाच्यम्,  
सम्यगनुमानोच्छेदकत्वाद्वा ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; न हि काला-२०  
त्यथापदिष्टदेत्यानुमानोच्छेदकस्य प्रत्यक्षादेरनुमानवादिनोप-  
न्यासो न कर्तव्योऽतिप्रसङ्गे । द्वितीयपक्षोप्ययुक्तः; न हि धूमा-  
दिसम्यगनुमानस्य विशेषविरुद्धानुमानसहस्रेणापि प्रत्यक्षादि-  
भिरपहतविषयेण वाचा विचारुं पार्यते । न च विशेषविरुद्धानु-  
मानत्वादेवेदमवाच्यम्; यतो न विशेषविरुद्धानुमानत्वम-२५  
सिद्धत्वादिवद्वैत्वाभासनिरूपणप्रकरणे दोषो निरूपितो येनानु-  
मानवादिभिस्तदसिद्धत्वादिवन्न प्रयुज्यते । ततो यदुष्टमनुमानं  
तदेव विशेषविधाताय न प्रयोक्तव्यम्-यथा 'अयं प्रदेशोत्रत्ये-  
नाग्निनाग्निमात्रं भवति धूमवत्त्वान्महानसवत्' इत्यादिकम् ।  
यत्तस्तेन यो विशेषो निराक्रियते स प्रत्यक्षेणैव तद्देशोपसर्पणे ३०

१ कुम्भकारस्य संयोगरूपताभावादेव । २ उच्चारितत्वात् । ३ अवस्थान् संयुक्त-  
रूपा । ४ चैत्रकुण्डलयोर्विधिप्रतिषेधकत्वेन उक्तदोषः । ५ इन्द्रियाणां सन्निकर्षे ।  
६ अत्र प्रकरणे विशेषः=समवायः । ७ कालालयापदिष्टदेत्याभासस्यैव प्रत्यक्षादेर-  
प्युच्छेदानुप्रसङ्गात् । ८ जैनाद्यैः । ९ तस्य=अनेके ।



सति प्रतीयते । न चैतत् समवाये संभवति; प्रत्यक्षाद्यगोचर-  
त्वेनास्य प्रतिपादितत्वात् । न चातद्विषयं बाधकमतिप्रसङ्गात् ।

यत्पुनरुक्तम्-न चास्य संयोगवन्नानात्वमित्यादि; तदप्यसमी-  
चीनम्; तदेकत्वस्यानुमानवाधितत्वात् । तथाहि-अनेकः सम-  
५ वायो विभिन्नदेशकालाकारार्थेषु सम्बन्धबुद्धिहेतुत्वात् । यो य  
इत्थंभूतः स सोनेकः यथा संयोगः, तथा च समवायः, तस्मादनैक  
इति । प्रसिद्धो हि दण्डपुरुषसंयोगात् कटकुड्यादिसंयोगस्य भेदः ।  
'निविडः संयोगः शिथिलः संयोगः' इति प्रत्ययभेदात्संयोगस्य  
भेदाभ्युपगमे 'नित्यं समवायः कदाचित्समवायः' इति प्रत्यय-  
१० भेदात्समवायस्यापि भेदोऽस्तु । समवायिनोर्नित्यकादाचित्क-  
त्वाभ्यां समवाये तत्प्रत्ययोत्पत्तौ संयोगिनोर्निविडत्वशिथिल-  
त्वाभ्यां संयोगे तथा प्रत्ययोत्पत्तिः स्यान्न पुनः संयोगस्य निवि-  
डत्वादित्थभावभेदात्, इत्येकं संघित्सोरन्यत् प्रच्यवते ।

तथा, 'नाना समवायोऽयुतसिद्धावयविद्रव्याश्रितत्वात् संख्या-  
१५ वत्' इत्यतोप्यस्यानेकत्वसिद्धिः । न चैदमसिद्धम्; अनाश्रितत्वे हि  
समवायस्य "पण्णामाश्रितत्वमन्यत्र नित्यद्रव्येभ्यः" [ प्रश्न० भा०  
पृ १६ ] इत्यस्य विरोधः । अथ न परमार्थतः समवायस्याश्रितत्वं  
नाम धर्मो येनानेकत्वं स्यात् किन्तूपचारात् । निमित्तं तूपचारस्य  
समवायिषु सत्सु समवायज्ञानम् । तत्त्वतो ह्याश्रितत्वेस्य स्वाश्र-  
२० यविनाशे विनाशप्रसङ्गो गुणादिवत्; इत्यप्ययुक्तम्; विशेषपरि-  
त्यागेनाश्रितत्वसामान्यस्य हेतुत्वात्, दिगादीनामाश्रितत्वापत्तेश्च,  
मूर्च्छद्रव्येषूपलब्धिलक्षणप्राप्तेषु दिग्लिङ्गस्य 'इदमतः पूर्वेण' इत्या-  
दिप्रत्ययस्य काललिङ्गस्य च परत्वापरत्वादिप्रत्ययस्य सङ्गावात् ।  
तथा च 'अन्यत्र नित्यद्रव्येभ्यः' इति विरुद्ध्यते । सामान्यस्या-  
२५ नाश्रितत्वप्रसङ्गश्च; आश्रयविनाशेऽप्यविनाशात् समवायवत् ।

अस्तु वानाश्रितत्वं समवायस्य, तथाप्यनेकत्वमनिवार्यम्;  
तथाहि-अनेकः समवायोऽनाश्रितत्वात्परमाणुवत् । नाकाशादि-

१ गणनकुसुमस्यापि बाधकत्वप्रसङ्गात् । २ संवन्ध इति बुद्धिः संवन्धबुद्धिः,  
तस्याः । ३ दृष्टान्तं सनर्थायति । ४ परमाणुतद्रूपयोः । ५ तन्तुपटयोः । ६ सम-  
वायस्य । ७ वैज्ञेयिकस्य । ८ द्रव्यगुणकर्तृसामान्यविशेषसमवायानां । ९ अन्यत् ।  
१० स्वरूपम् । ११ तन्तुपटादिषु । १२ समवाय इति ज्ञानम् । १३ स्वाभ्यास-  
मिज्ञत्वात् । १४ गुणो गुण्याश्रितः, अवयवोऽवयव्याश्रित इति विशेषपरित्यागेन ।  
१५ आश्रयविनाशेऽप्याश्रितत्वसामान्यस्याविनाश एव तस्य निलत्वात् । १६ दिगा-  
दीनामाश्रितत्वे च सति । १७ नित्यद्रव्याणामाश्रितत्वात् ।

मिथ्यमिचारः; तेपामपि कथंचिन्नानात्वसाधनात् । तैतोऽयुक्त-  
मुक्तम्- 'इहेति प्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावश्चैकः समवायः'  
इति । विशेषलिङ्गाभावस्यानन्तरप्रतिपादितलिङ्गसद्भावतोऽसि-  
द्धत्वात् । इहेति प्रत्ययाविशेषोप्यसिद्धः; 'इहात्मनि ज्ञानमिह पटे  
रूपादिकम्' इतीहेति प्रत्ययस्य विशेषात् । विशेषणानुरागो  
हि प्रत्ययस्य विशिष्टत्वम् । न चानुगतप्रत्ययप्रतीतिः समवाय-  
स्यैकत्वं सिध्यति; गोर्त्वादिसामान्येषु पदपदार्थेषु चानुगतस्यै-  
कत्वस्याभावेऽप्यनुगतप्रत्ययप्रतीतिः ।

'सत्तावत्' इति दृष्टान्तोऽपि साध्यसाधनविकलः; सर्वथैकत्वस्य  
सत्प्रत्ययाविशेषस्य चासिद्धत्वात् । सर्वथैकत्वे हि सत्तायाः १०  
'पटः सन्' इति प्रत्ययोत्पत्तौ सर्वथा सत्तायाः प्रतीत्यनुपपत्तात्  
कचित् सत्तासंदेहो न स्यात् । तस्याः सर्वथा प्रतीतावपि तद्वि-  
शेषणार्थानामप्रतीतिः क्वचित्सत्तासंदेहे पटविशेषणत्वं तस्या अन्य-  
दन्यदर्थान्तरविशेषणत्वम् इत्यायातमनेकरूपत्वं तस्याः ।

यदप्युक्तम्-समवायीनि द्रव्याणीत्यादिप्रत्ययो विशेषणपूर्वको १५  
विशेष्यप्रत्ययत्वादित्यादि; तदप्यनल्पतमोविहितम्; हेतो-  
र्विशेषणसिद्धत्वात् । तदसिद्धत्वं च समवायानुरागस्याप्रतीतिः ।  
प्रतीतौ बानुमानानर्थक्यम् । को हि नाम समवायानुरक्तं द्रव्या-  
दिकं मन्यमानः समवायं न मन्येत ? तदनुरागाभावेऽपि तेनैस्य  
विशेष्यत्वे खरशृङ्गेणापि तत्स्यादविशेषात् । ननु सम्बन्धानुरक्तं २०  
द्रव्यादिकं प्रतिभाति । सत्यं प्रतिभाति, समवाये तु किमायातम् ?  
न च स एव स इति वाच्यम्; तादात्म्यादपि तत्संभवात् संयो-  
गवत् । तथाप्यत्रैवाग्रहे खरविपाणेऽप्याग्रहः किञ्च स्यात् ? 'खर-  
विपाणी पट इति प्रत्ययो विशेषणपूर्वको विशेष्यप्रत्ययत्वात्'  
इति । अत्राश्रयासिद्धतान्यत्रापि समाना । न खलु 'समवायी २५  
पटः' इति प्रत्ययः केनाप्यनुभूयते ।

अथाप्रतिपन्नसमयस्य संश्लेषमात्रं प्रतिपन्नसमयस्य तु 'सम-  
वायी' इति प्रतिभातीति चेत्; न; ज्ञानाद्वैद्यादेः प्रसङ्गात् ।  
शक्यते हि तत्राप्येवं वक्तुम्-अप्रतिपन्नसमयस्य वस्तुमात्रम-

१ अदेष्टुमेदापेक्षया । २ समवायस्य नानात्वं सिद्धं यतः । ३ मिथ्यमिथ्यविशे-  
षणसंभवः । ४ इहेतिप्रत्ययस्य । ५ मिथ्यत्वम् । ६ गोत्वमपि सामान्यं षट्त्वमपि  
सामान्यमिति, अन्यमपि पदार्थोऽप्यपि पदार्थ इत्येवं प्रकारेण । ७ दण्डाभावे दण्डीति  
प्रत्ययो यथा न स्याद्यथा समवायलक्षणविशेषणभावोऽपि विशेष्यप्रत्ययो न स्यादिति  
भावः । ८ समवाय एवानुरागः संबन्धस्य । ९ समवायेन । १० द्रव्यादेः ।  
११ तस्य=अनुरागस्य । १२ आदिना ब्रह्मादिवैद्यादेः ।

मिधानयोजनारहितं प्रतिभाति, संकेतवशाच्चैतत्सर्वं ज्ञानाद्व-  
यादि । स्वशास्त्रजनितसंस्कारवशाद्विज्ञानाद्वयादिप्रतिभासोऽप्र-  
माणम् ; इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि तत्रापि स्वशास्त्रसंस्कारादहे-  
‘समवायी’ इति ज्ञानमनुभवत्यन्यजनः । न चैतच्छास्त्रमप्रमाण-  
५ मेतच्च प्रमाणमिति प्रेक्षावतां वक्तुं युक्तमविशेषात् ।

समवाय इति प्रत्ययेनानैकान्तिकश्चायं हेतुः ; स हि विशेष्य-  
प्रत्ययो न च विशेषणमपेक्षते । अथात्र समवायिनो विशेषणम् ।  
नन्वस्तु तेषां विशेषणत्वं यत्र ‘समवायिनां समवायः’ इति प्रति-  
भासते, यत्र तु ‘समवायः’ इत्येतावाननुभवस्तत्र किं विशेषणमिति  
१० चिन्त्यताम् ? अथ विशेषणमावाभेदं विशेष्यज्ञानम्, तर्ह्यन्यस्य  
विशेष्यस्यात्रासंभवाद्विशेषणज्ञानमपि तन्मा भूत् । न चैतदुक्तम् ।  
कथं चैवं ‘पटः’ इति प्रत्ययो विशेष्यः स्यात् विशेषणमावा-  
विशेषात् ? अथात्र पटत्वं विशेषणम्, तर्हि ‘समवायः’ इति  
प्रत्यये किं विशेषणम् ? न तावत्समवायत्वम् ; अनभ्युपगमात् ।

१५ अथ येन सता विशिष्टः प्रत्ययो जायते तद्विशेषणम्, तत्र  
‘समवायः’ इति प्रत्ययोत्पादे समवायत्वसामान्यस्यानभ्युपग-  
मात्, द्रव्यादेश्चाप्रतिभासनाददृष्टस्यैव विशेषणत्वमिति ; तन्न ।  
यतः किं येन सता विशेष्यज्ञानैमुत्पद्यते तद्विशेषणम्, किं वा  
यस्यानुरागः प्रतिभासते तदिति ? प्रथमपक्षे चक्षुरालोकादेरपि  
२० तदनिवार्यम् । अथ यस्यानुरागस्तद्विशेषणम्, न तर्हि ‘दण्डी’  
इति प्रत्यये दण्डवद्दण्डशब्दोच्छेदेन ‘समवायः’ इति प्रत्ययेष्य-  
दृष्टस्य तच्छब्दयोजनाद्वारेणानुरागं जनो भव्यते । तस्याप्यदृष्टस्य  
विशेषणत्वकल्पनायाम् ‘दण्डी’ इत्यादिप्रत्ययेष्यस्यैव तत्कल्प-  
नास्तु किं द्रव्यादेर्विशेषणमावकल्पनया ?

२५ यच्चोक्तम्-स्वकारणसत्तासंबन्ध एवात्मलाभ इत्यादि ; तन्न ;  
आत्मलाभस्य स्वकारणसत्तासमवायपर्यायतायां नित्यत्वमसंज्ञात्,  
तन्नित्यत्वे च कार्यस्याविनाशित्वं स्यात् ।

१ अभिधानः शब्दः । २ समवाये । ३ वैशेषिकः । ४ विशेषणपूर्वकलक्षणसाध्या-  
भावात् । ५ विशेष्यप्रत्ययत्वादिति । ६ ऊनुपपादयः । ७ समवायिन्या भिन्नस्य ।  
८ समवायिप्रकरणे । ९ उभयं मा भूदिति । १० समवायः प्रतिभासते इति प्रत्यये  
विशेषणभूतस्य ऊनुपपादयः । ११ अदृष्टानीभूतस्य (पुण्य-मापकस्य) । १२ इदं  
विशेष्यमिति ज्ञानम् । १३ संबन्धः । १४ विशेष्ये । १५ दण्डीति प्रत्यये दण्डशब्दो-  
च्छेदेन दण्डस्य यथानुरागं भव्यते जनो न तथा प्रकृतेऽदृष्टशब्दयोननाद्वारेणदृष्टस्यानु-  
रागमिति संबन्धः । १६ अदृष्टानुरागान्भ्युपगमाभावेति । १७ दण्डादेस्तनुपपादयः ।  
१८ कार्यरूपस्य वस्तुनः स्वरूपोद्भवः । १९ सत्तासमवायनोर्नित्यत्वात् ।

किञ्च, असौ सतां सत्तासमवायः, असतां वा स्यात् ? न तावदसताम्; व्योमोत्पलादीनामपि तत्प्रसङ्गात् । अथात्यन्तासत्त्वात्तेषां न तत्प्रसङ्गः; गुणगुण्यादीनामत्यन्तासत्त्वाभावः कुतः ? समवायाच्चेत्; इतरेतराश्रयः-सिद्धे हि समवाये तेषामत्यन्तासत्त्वाभावः, तदभावाच्च समवायः । नापि सताम्; समवायात्पूर्वं<sup>५</sup> हि सत्त्वं तेषां समवायान्तरात्, स्वतो वा ? समवायान्तराच्चेत्; न असौकत्वाभ्युपगमात् । अनेकत्वेऽपि अतोऽपि पूर्व(वं)समवायन्तरात्तेषां सत्त्वमित्यनवस्था । स्वतः सत्त्वाभ्युपगमे तु समवायपरिकल्पनानर्थक्यम् । ननु न समवायात् पूर्व तेषां सत्त्वमसत्त्वं वा, सत्तासमवायात्सत्त्वाभ्युपगमात्; इत्यप्यसङ्गतम्; १० परस्परव्यवच्छेदरूपाणामेकनिषेधस्यापरविधाननान्तरीयकत्वेनोभयनिषेधविरोधात् । न चानुपकारिणोः सत्तासमवाययोः परस्परसम्बन्धो युक्तोतिप्रसङ्गात् ।

अव्यापि चेदं सत्त्वलक्षणम् सत्तासमवायान्त्यविशेषेषु तस्यासंभवात् । “त्रिषु पदार्थेषु सत्करी सत्ता” [ ] इत्यभिधा- १५ नात् । अतिव्यापि चाकाशकुशेशयादिष्वपि भावात् । न च तेषामसत्त्वाच्च सत्तासमवायः, अन्योन्याश्रयानुषङ्गात्-असत्त्वे हि तेषां सत्तासमवायविरहः, तद्विरहाच्चासत्त्वमिति । न च सत्तासमवायः सत्त्वलक्षणं युक्तमर्थान्तरत्वात् । न ह्यर्थान्तरमर्थान्तरस्य स्वरूपम्; अतिप्रसङ्गादर्थान्तरत्वहानिप्रसङ्गाच्च । २०

किञ्च, सत्तासमवायात्पदार्थानां सत्त्वे तयोः कुतः सत्त्वम् ? असत्सर्ववन्धात्सत्त्वे अतिप्रसङ्गात् । सत्तासमवायान्तराच्चेत्; अनवस्था । स्वतश्चेत्; पदार्थानामपि तत्स्वत एवास्तु किं सत्तासमवायेन ?

यदप्यमिहितम्-अग्नेरुष्णतावदित्यादि; तदप्यमिधानमात्रम्; २५ यतः प्रत्यक्षसिद्धे पदार्थस्वभावे स्वभावैरुत्तरं वक्तुं युक्तम् । न च ‘समवायस्य स्वतः सम्बन्धत्वं संयोगादीनां तु तस्मात्’ इत्यव्यक्ष-

१ व्योमोत्पलादीनां सर्वथा असत्त्वे प्रतिपादिते आचार्याः प्राहुः । २ अस-समवायस्य । ३ अतोऽपि-विवक्षितसमवायान्तरादपि । ४ सताम् । ५ व्यवच्छेदो हि परस्पर निरुद्धसंयोगिनामेव स्यात् । ६ परस्परम् । ७ इन्द्रोऽत्र ज्ञेयः । ८ तेषां स्वरूपेणैव सत्त्वस्वभावत्वात् । ९ तेषां हि सत्तासंयन्धदेव सत्त्वं स्वयं तत्सत्त्वमेवेति भावः । १० षट्स्य षट्सरूपत्वप्रसङ्गात् । ११ सत्तां सत्तासमवायान्यां संयन्धः सत्संयन्धः, न सत्संयन्धोऽसत्संयन्धः । १२ गगनकुसुमादिषु । १३ अपरसत्तासमवायान्यां संयन्धाभावेऽपीत्यर्थः ।

प्रसिद्धम्, तत्स्वरूपस्याध्यक्षाद्यगोचरत्वप्रतिपादनात् । 'समवा-  
योन्त्येनै संबध्यमानो न स्वतः संबध्यते संबध्यमानात्वाद्वृत्तादि-  
वत्' इत्यनुमानविरोधाच्च । यदि चाग्निप्रदीपगङ्गोदकादीनामुष्ण-  
प्रकाशपवित्रतावत्समवायः स्वपरयोः सम्बन्धहेतुः; तर्हि तद्वृष्टा-  
५ न्तावष्टम्भेनैव ज्ञानं स्वपरयोः प्रकाशहेतुः किञ्च स्यात्? तथाच  
“ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं प्रमेयत्वात्” [ ] इति प्लवते ।

यच्चोच्यते—‘समवायः सम्बन्धान्तरं नापेक्षते, स्वतः सम्बन्ध-  
त्वात्, ये तु सम्बन्धान्तरमपेक्षन्ते न ते स्वतः सम्बन्धाः यथा घटा-  
दयः, न चायं न स्वतः सम्बन्धः, तस्मात्सम्बन्धान्तरं नापेक्षते इति;

१० तदपि मनोरथमात्रम्, हेतोरसिद्धेः । न हि समवायस्य स्वरूपा-  
सिद्धौ स्वतः सम्बन्धत्वं तत्र सिध्यति । संयोगेनानेकान्तार्थः, स  
हि स्वतः सम्बन्धः सम्बन्धान्तरं चापेक्षते । न हि स्वतोऽसम्बन्ध-  
स्वभावत्वे संयोगौदेः परतस्तद्युक्तम्; अतिप्रसङ्गात् । र्थटादीनां च  
सम्बन्धित्वाच्च परंतोपि सम्बन्धत्वम् । इत्ययुक्तमुक्तम्—‘न ते  
१५ स्वतःसम्बन्धाः’ इति । तस्मात्स्वतः सम्बन्धो युक्तः ।

परंतश्चेत्किं संयोगात्, समवायान्तरात्, विशेषणभावात्,  
अदृष्टाद्वा? न तावत्संयोगात्, तस्य गुणत्वेन द्रव्याश्रयत्वात्,  
समवायस्य चाप्रव्यत्वात् । नापि समवायान्तरात्, तस्यैकरूप-  
तयाम्युपगमोत्, “तत्त्वं भवेन” व्याख्यातम् [ वैशे० सू०  
२० ७।२।२८ ] इत्यभिधानात् ।

नापि विशेषणभावात्, सम्बन्धान्तराभिः सम्बन्धार्थैर्बोस्य प्रवृ-  
त्तिप्रतीतिर्वर्ण्यविशिष्टः पुरुष इत्यादिवत्, अन्यथा सर्वे सर्वस्य  
विशेषणं विशेष्यं च स्यात् । समवायादिसम्बन्धानर्थक्यं च, तद-  
भावेपि गुणगुण्यादिभावोपपत्तेः । समवायस्य समवायिविशे-  
२५ षणतानुपपत्तिश्च, अत्यन्तमर्थान्तरत्वेनातद्धर्मत्वादाकाशवत् ।  
न खलु ‘संयुक्ताविमौ’ इत्यत्र संयोगिधर्मतामन्तरेण संयोगस्य

१ तस्य=समवायस्य । २ तन्तुपटादिलक्षणसंयन्त्रिणा सह । ३ समवायसम-  
वायिनोः । ४ अवष्टम्भोऽवलम्बः साहाय्यं वा । ५ स्वतःसंबन्धत्वादिति हेतोः । ६ न  
केवलं हेतोरसिद्धेरेव । ७ आदिना संयुक्तसमवायादिसंबन्धप्रहणम् । ८ समवायात् ।  
९ तत्=संबन्धत्वम् । १० वृष्टान्तभूतानाम् । ११ संयोगात् । १२ ‘समवायस्य  
संबन्धः स्वसमवायिषु’ इति शेषः । १३ समवायस्य । १४ परेण । १५ एकत्वम् ।  
१६ सत्तया । १७ संबन्धान्तरं=तादात्म्यसंयोगादि । समवायसमवायिलक्षणेभिलसरा  
टिप्पणी । १८ विशेषणभावस्य । १९ अतद्धर्मत्वं च स्वात्समवायिना विशेषणत्वं च  
स्यादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वपरिहारावमिदमाह ।

तद्विशेषणता दृष्टा । न च समवायसमवायिनां सम्बन्धान्तरा-  
भिसम्बद्धत्वम्, अनभ्युपगमात् ।

किञ्च, विशेषणभावोप्येतेभ्योत्यन्तं भिन्नस्तत्रैव कुतो निया-  
म्येत ? समवायाच्चेत्, इतरेतराश्रयः—समवायस्य नियमसिद्धौ हि  
ततो विशेषणभावस्य नियमसिद्धिः, तत्सिद्धेश्च समवायस्य  
तत्सिद्धिरिति ।

किञ्च, अयं विशेषणभावः षट्पदार्थेभ्यो भिन्नः, अभिन्नो वा ?  
भिन्नश्चेत्, किं भावरूपः, अभावरूपो वा ? न तावद्भावरूपः, 'षडैव  
पदार्थाः' इति नियमविरोधात् । नाप्यभावरूपः, अनभ्युपगमात् ।  
अमेदेपि न तावद्भव्यम्, गुणाश्रितत्वाभावप्रसङ्गात् । अत एव १०  
न गुणोपि । नापि कर्मः, कर्माश्रितत्वाभावानुषङ्गात् । "अकर्म  
कर्म" [ ] इत्यभिधानात् । नापि सामान्यम्, समवाये  
तदनुपपत्तेः, पदार्थत्रयवृत्तित्वात्तस्य । नापि विशेषः, विशेषाणां  
नित्यद्रव्याश्रितत्वात् । अनित्यद्रव्ये चास्योपैलम्भात् समवाये  
चाभावानुषङ्गात् । युगपदनेकसमवायिविशेषणत्वे चास्यानेकत्व- १५  
प्राप्तिः । यदिह युगपदनेकार्थविशेषणं तदनेकं प्रतिपन्नम् यथा  
दण्डकुण्डलादि, तथा च समवायः, तस्मादनेक इति । न च  
सत्त्वादिनाऽनेकान्तः, तस्यानेकसभावत्वप्रसङ्गनात् । तत्र  
विशेषणभावेनाप्यसौ सम्बद्धः ।

नाप्यऽद्वयेन, अस्य सम्बन्धरूपत्वासम्भवात् । सम्बन्धो हि २०  
द्विष्टो भवताभ्युपगतः, अद्विष्टात्मवृत्तितया समवायसमवायि-  
नोरतिष्ठन् कथं द्विष्टो भवेत् ? षोढा सम्बन्धवादित्वव्याघातश्च ।  
यदि चाऽद्वयेन समवायः सम्बध्यते, तर्हि गुणगुण्यादयोप्यत  
एव सम्बद्धा भविष्यन्तीत्यलं समवायादिकल्पनया । न चाद्वयो-  
प्यसम्बद्धः समवायसम्बन्धहेतुः अतिप्रसङ्गात् । सम्बद्धश्चेत्, २५  
कुतोस्य सम्बन्धः ? समवायाच्चेत्, अन्योन्यसंश्रयः । अन्यतश्चेत्,  
अभ्युपगमव्याघातः । तत्र सम्बद्धः समवायः ।

नाप्यसम्बद्धः, 'षण्णामाश्रितत्वम्' इति विरोधानुषङ्गात् ।  
कथं चासम्बद्धस्य सम्बन्धरूपतार्थान्तरवत् ? सम्बन्धबुद्धिहेतु-  
त्वाच्चेत्, महेश्वरपदेरपि तत्प्रसङ्गः । कथं चासम्बद्धोसौ सम- ३०

१ समवायस्य । २ समवायिभ्यः । ३ विशेषा मिलद्रव्यवृत्तय इति वचनात् ।  
४ विशेषणभावस्य । ५ पूर्वम् । ६ समवायसिद्धौ हि समवायेनादृष्टस्य सम्बन्धत्वं  
सिध्यति तत्सिद्धौ चाऽदृष्टस्य सम्बन्धस्य समवायहेतुत्वं सिध्यति । ७ समवायः सत  
एव सम्बद्ध इत्यभ्युपगमः । ८ मतस्य ।

वायिनोः सम्बन्धबुद्धिनिबन्धनम्? न ह्यङ्गुल्योः संयोगो घट-  
पटयोरप्रवर्त्तमानस्तयोः सम्बन्धबुद्धिनिबन्धनं दृष्टः । तथा,  
'इहात्मनि ज्ञानमित्यादिसम्बन्धबुद्धिर्न सम्बन्ध्यऽसम्बद्धसम्ब-  
न्धपूर्विका सम्बन्धबुद्धित्वात् दण्डपुरुषसम्बन्धबुद्धिवत्' इत्यनु-  
५ मानविरोधश्च ।

किञ्च, अयं समवायः समवायिनोः परिकल्प्यते, असमवायि-  
नोर्वा? यद्यसमवायिनोः, घटपटयोरप्येतत्प्रसङ्गः । अथ सम-  
वायिनोः, कुतस्तयोः समवायित्वम्-समवायात्, स्वतो वा?  
समवायाच्चेत्; अन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि समवायित्वे तयोः सम-  
१० वायः, तस्माच्च तत्त्वमिति ।

किञ्च, अभिन्नं तेनानयोः समवायित्वं विधीयते, भिन्नं वा? न  
तावदभिन्नम्; तद्विधाने गगनौदीनां विधानानुषङ्गात् । भिन्नं  
चेत्; तयोस्तत्सम्बन्धित्वानुपपत्तिः । सम्बन्धान्तरकल्पने चान-  
वस्था । तत एव तन्नियमे चेतरेतराश्रयः-सिद्धे हि समवायिनोः  
१५ समवायित्वनियमे समवायनियमसिद्धिः, ततश्च तन्नियमसिद्धि-  
रिति । स्वत एव तु समवायिनोः समवायित्वे किं समवायेन?

ननु संयोगेऽप्येतत्सर्वं समानम्; इत्यप्यवाच्यम्; संश्लिष्टतयो-  
त्पन्नवस्तुस्वरूपव्यतिरेकेणास्याप्यसम्भवात् । भिन्नसंयोगवशात्  
संयोगिनोर्नियमे समानमेवैतत् ।

२० यच्चान्यदुक्तम्-संयोगिद्रव्यविलक्षणत्वाहुणत्वादीनामित्यादि;  
तदप्यनुक्तसमम्; यतो निष्क्रियत्वेष्वेवामाधेयत्वमल्पपरिमाण-  
त्वात्, तैकार्थत्वात्, तैथाप्रतिभासाद्वा? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः;  
सामान्यस्य महापरिमाणगुणस्य चानाधेयत्वप्रसङ्गात् । द्वितीय-  
पक्षोऽप्यत एवायुक्तः ।

२५ तृतीयपक्षोऽप्यविचारितरमणीयः; तेषामाधेयतया प्रतिभासा-  
भावात् । तदभावश्च रूपादीनां स्वाधारेष्वन्तर्बहिश्च सत्त्वात् ।  
न ह्यन्यत्र कुण्डादावधिकरणे बदरादीनामाधेयानां तैथा सत्त्व-  
मस्ति । अथ रूपादीनामाधेयत्वे सत्यपि युतसिद्धेरभावादुपरि-

१ सम्बन्धी । २ घटपटाभ्यां प्रथमभूतः । ३ शब्दगणनाभ्यां समवाय्यभिन्नस्य  
समवायित्वस्य समवायेन विधानात्तयोरपि विधानमित्यर्थः, एवं ज्ञानात्मादिष्वपि ।  
४ समवायिनोरिदं समवायित्वमिति सम्बन्धाभाव इति भावः । ५ तत्सम्बन्धित्व-  
सिद्ध्यर्थम् । ६ तस्य=शुण्यादेः । ७ आधेयतया । ८ गगनवर्त्तिनः । ९ जल्पपरि-  
माणत्वाभावात् । १० घटादिषु । ११ आधेयस्य बहिरेव सत्त्वसद्भावादिति भावः ।  
१२ अन्तर्बहिःप्रकारेण ।

तनतया प्रतिभासाभावः न; युतसिद्धत्वस्योपरितनत्वप्रतीत्य-  
हेतुत्वात्, अन्यथोद्भाविस्थितवंशादेः क्षीरनीरयोश्च सम्बन्धे  
तैत्पसङ्गात् । ततः परपरिकल्पितपदार्थानां विचार्यमाणानां  
स्वरूपाव्यवस्थितेः कथं 'पदेव पदार्थाः' इत्यवधारणं घटते  
स्वरूपासिद्धौ संख्यासिद्धेरभावात् ? ५

प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवा-  
दजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छल[जाति]निग्रहस्थानानां नैयायिका-  
भ्युपगतपोडशपदार्थानां पदपदार्थाधिक्येन व्यवस्थानाच्च । न  
च पदार्थपोडशकस्य पदस्वेवान्तर्भावाभातोधिकपदार्थव्यवस्थे-  
त्यभिधातव्यम्, द्रव्यादीनामपि पण्णां प्रमाणप्रमेयरूपपदार्थद्वये- १०  
ऽन्तर्भावात्पदार्थपदकस्याप्यनुपपत्तेः । अथ तदन्तर्भावव्यवस्थान्तर-  
विभिन्नलक्षणवशात् प्रयोजनवशाच्च द्रव्यादिषट्कव्यवस्था, तर्हि  
तत एव प्रमाणादिपोडशव्यवस्थाप्यस्तु विशेषाभावात् । न च  
सापि युक्ता, परोपगतस्वरूपाणां प्रमाणादीनां यथास्थानं प्रति-  
पेक्षात्, विपर्ययानध्यवसाययोश्च प्रमाणादिपोडशपदार्थभ्यो- १५  
ऽर्थान्तरभूतयोः प्रतीतिः ।

धर्माधर्मद्रव्ययोश्च । कुतः प्रमाणात्तत्सिद्धिरिति चेत् ? अनुमा-  
नात्, तथाहि-विवादापन्नाः सकलजीवपुद्गलाभ्याः सकलतयः  
साधारणबाह्यनिमित्तापेक्षाः, युगपद्भाविगतित्वात्, एकसरःस-  
लिला भयानेकमत्स्यगतित्वत् । तथा सकलजीवपुद्गलस्थितयः २०  
साधारणबाह्यनिमित्तापेक्षाः, युगपद्भाविस्थितित्वात्, एककु-  
ण्डाभयानेकवदराविस्थितित्वत् । यत्तु साधारणं निमित्तं स  
धर्मोऽधर्मश्च, ताभ्यां विना तद्वृत्तिस्थितिकार्यस्यासम्भवात् ।

गतिस्थितिपरिणामिन एवार्थाः परस्परं तद्वैतवच्चेत्, न;  
अन्योन्याभयानुपपत्तात्—सिद्धायां हि तिष्ठत्पदार्थेभ्यो गच्छत्पदा- २५  
र्थानां गतौ तेभ्यस्तिष्ठत्पदार्थानां स्थितिसिद्धिः, तत्सिद्धौ च  
गच्छत्पदार्थानां गतिसिद्धिरिति । साधारणनिमित्तरहिता एवा-  
खिलार्थगतिस्थितयः प्रतिनियतस्वकारणपूर्वकत्वादिति चेत्;  
कथमिदानीं नर्त्तकीर्क्षणो निखिलप्रेक्षकजनानां नानातद्देवो-

१ इति चैत्र हलर्थः । २ युतसिद्धयोः । ३ उपरिवचनतया प्रतिभासस्य ।  
४ प्रमाणप्रमेयपदार्थद्वयेन्तर्भावः पण्णा विश्वतत्त्वप्रकाशिकायाश्च । ५ विभिन्नलक्षण-  
वशात्प्रयोजनवशाच्च द्रव्यादिषट्कव्यवस्था भवति प्रमाणादिपोडशभ्युपगता च न भवतीति  
विशेषं नोत्पद्यमानः । ६ वसः । ७ वक्ष्य निमित्तं धर्मः । ८ अत्र निमित्तमधर्मः ।  
९ तत्सम्भवात्सकलजीवादेः । १० नर्त्तकी एव क्षणः पर्यायः । ११ कथमेतद्वदपीति ।



त्पत्तौ साधारणं निमित्तम्? सहकारिमात्रत्वेन चेत्; तर्हि सकलार्थगतिस्थितीनां सकृद्भूत्वां धर्माधर्मौ सहकारिमात्रत्वेन साधारणं निमित्तं किञ्चेष्यते?

पृथिव्यादिरेव साधारणं निमित्तं तासाम्; इत्यप्यसङ्गतम्; ५ गगनवार्त्तिपदार्थगतिस्थितीनां तदसम्भवात् । तर्हि नभः साधारणं निमित्तं तासामस्तु सर्वत्र भावात्; इत्यप्यपेशलम्; तस्यावगाह-निमित्तत्वप्रतिपादनात् । तस्यैकस्यैवानेककार्यनिमित्ततायाम् अनेकसर्वगतपदार्थपरिकल्पनार्थव्यप्रसङ्गात्, कालात्मदि-क्खामान्यसमवायकार्यस्यापि यौगपद्यादिप्रत्ययस्य बुद्ध्यादेः १० 'इदमतः पूर्वेण' इत्यादिप्रत्ययस्य अन्वयज्ञानस्य 'इहेदम्' इति प्रत्ययस्य च नभोनिमित्तस्योपपत्तेस्तस्य सर्वत्र सर्वदा सद्भावात् । कार्यविशेषात्कालादिनिमित्तमेदव्यवस्थायाम् तत एव धर्मादि-निमित्तमेदव्यवस्थाप्यस्तु सर्वथा विशेषामावौत् ।

एतेनैव निमित्तत्वमप्यासां प्रत्याख्यातम्; पुद्गलानामदृष्टा- १५ सम्भवाच्च । ये यद्वात्मोपभोग्याः पुद्गलास्तद्रतिस्थितयस्तैदा-त्माऽदृष्टनिमित्ताश्चेत्; तर्ह्यसाधारणं निमित्तमदृष्टं तासां प्रति-नियतात्मादृष्टस्य प्रतिनियतद्रव्यगतिस्थितिहेतुत्वप्रसिद्धेः । न च तदनिष्टं तासां क्षमादेरिवासाधारणकारणस्यादृष्टस्यापीष्टत्वात् । साधारणं तु कारणं तासां धर्माधर्मविवेति सिद्धः कार्यविशेषा- २० त्तयोः सङ्गाव इति\* ।

अथेदानीं फलविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थमज्ञाननिवृत्तिरित्या-द्याह—

अज्ञाननिवृत्तिः हानोपादानोपेक्षाश्च

फलम् ॥ ५११ ॥

२५

प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च ॥ ५१२ ॥

१ तस्याः । २ अनेकानि—गतिस्थितिवगाहलक्ष्णानि । ३ कार्यविशेषत्वम् । ४ सकृद्भूत्वां सकलार्थगतिस्थितीनां नभोनिमित्तत्वनिराकरणेन । ५ तेषां पुद्गलानाम् । ६ वेनात्मना ते पुद्गला उपयुज्यन्ते तत् । ७ गत्यादीनाम् । ८ पृथिव्यादेः । ९ जनानाम् । १० विषयविप्रतिपत्तिनिराकरणान्तरम् । ११ प्रमाणादभिन्नं न फलमिति यौगाः अभिन्नमेवेति सौगता इति मित्राभिन्नत्वान्यां फले विप्रतिपत्तिः ।

\* ( परीक्षानुष्ठे—प्रमेयरत्नमालयां च अत्रैव चतुर्थपरिच्छेदस्य समाप्तिः 'अज्ञान-निवृत्तिः' इत्यादिसूत्रं तु पञ्चमाध्याये संगणितम् )

द्विविधं हि प्रमाणस्य फलं ततो भिन्नम्, अभिन्नं च । तत्राज्ञान-  
निवृत्तिः प्रमाणादभिन्नं फलम् । ननु चाज्ञाननिवृत्तिः प्रमाणभूत-  
ज्ञानमेव, न तदेव तस्यैव कार्यं युक्तं विरोधात्, तत्कुतोऽसौ प्रमा-  
णफलम् ? इत्यनुपपन्नम्; यतोऽज्ञानमक्षतिः स्वपररूपयोर्व्यामोहः,  
तस्य निवृत्तिर्यथावत्तद्रूपयोर्क्षतिः, प्रमाणधर्मत्वात् तत्कार्यतया  
न विरोधमभ्यास्ते । स्वैर्विषये हि स्वार्थस्वरूपे प्रमाणस्य व्यामोह-  
विच्छेदाभावे निर्विकल्पकदर्शनात् सन्निकर्षाच्चाविशेषप्रसङ्गतः  
प्रामाण्यं न स्यात् । न च धर्मधर्मिणोः सर्वथा भेदोऽभेदो वा;  
तद्भाषविरोधानुषङ्गात् तदन्यतरवदर्थान्तरवच्च ।

अथाज्ञाननिवृत्तिज्ञानमेवेत्यनयोः सामर्थ्यसिद्धत्वादन्यथानुपप- १०  
त्तैरभेदः, तन्न; अस्याऽविरुद्धत्वात् । सामर्थ्यसिद्धत्वं हि भेदे  
सत्येवोपलब्धं निमग्नणे आकारणवत् । कथं चैवं वादिनो हेताव-  
न्वयव्यतिरेकधर्मयोर्भेदः सिध्येत् ? 'साध्यसङ्गावेऽस्तित्वमेव हि  
साध्याभावे हेतोर्नास्तित्वम्' इत्यनयोरपि सामर्थ्यसिद्धत्वा-  
विशेषात् । १५

न चान्येयोरभेदे कार्यकारणभावो विरुध्यते; अभेदस्य तद्भावा-  
विरोधकत्वाज्जीवसुखादिवत् । साधकतमस्वभावं हि प्रमाणम् स्वपर-  
रूपयोर्क्षतिलक्षणाप्रमाणानि वृत्तिं निर्वर्त्तयति तत्रान्येनास्या निर्व-  
र्त्तनाभावात् । साधकतमस्वभावत्वं चास्य स्वपरग्रहणव्यापार एव  
तद्ग्रहणाभिमुख्यलक्षणः । तद्धि स्वकारणकलापादुपजायमानं २०  
स्वपरग्रहणव्यापारलक्षणोपयोगिरूपं सत्सार्थव्यवसायरूपतया  
परिणमते इत्यभेदेऽप्यनयोः कार्यकारणभावाऽविरोधः ।

नन्वेवमज्ञाननिवृत्तिरूपतयेव हेतूनादिरूपतयाप्यस्य परिणमन-  
सम्भवात् तदप्यस्याऽभिन्नमेव फलं स्यात्; इत्यप्यसुन्दरम्; अज्ञान-  
निवृत्तिलक्षणफलेनार्थं व्यवर्त्तानसम्भवतो भिन्नत्वाविरोधात् । २५

१ सौगतः ग्राह । २ अज्ञाननिवृत्तेः । ३ प्रमाणविषये । ४ प्रमाणधर्मत्वादित्ये-  
तस्याऽसिद्धत्वनिरासार्थमिदम् । ५ ज्ञानाज्ञाननिवृत्त्योः सामर्थ्यमक्षतिः तन्नामेदमन्तरेण  
नोपपद्यते तसादनयोरेभेद इति भावः । ६ अभेदमन्तरेण । ७ भेदस्य ।  
८ आज्ञानवत् । ९ अज्ञाननिवृत्तिज्ञानमेवेत्यनयोः सामर्थ्यसिद्धत्वान्यथानुपपत्तैरभेद  
इत्येवंवादिनः । १० नन्वज्ञाननिवृत्तिः प्रमाणादभिन्नं फलमित्यनेन प्रकारेण  
प्रमाणफलयोरेभेदे कार्यकारणभावो विरुध्यत इत्युक्तं सत्याह । ११ प्रमाणाज्ञान-  
निवृत्त्योः । १२ सन्निकर्षादिना । १३ अर्धग्रहणे व्यापारो घुपयोग इति वचनात् ।  
१४ प्रमाणफलयोः । १५ साक्षात्फलमेतत् । १६ परम्पराफलमेतत् । १७ हानादेः ।  
१८ प्रमाणादज्ञाननिवृत्तिः फलं स्यात्, अज्ञाननिवृत्तिफलत्वाद्वादनोपादानोपेक्षाश्च  
फलं स्यादिति भावः ।

अत आह-हानोपादानोपेक्षाश्च प्रमाणाद्भिन्नं फलम् । अत्रापि कथञ्चिद्भेदो द्रष्टव्यः । सर्वथा भेदे प्रमाणफलव्यवहारविरोधात् । अनुमेवार्थं स्पष्टयन् यः प्रमिमीते इत्यादिना लौकिकेतरप्रतिपत्तिप्रसिद्धां प्रतीतिं दर्शयति—

५ यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्त उपेक्षते चेति प्रतीतेः ॥ ५।३ ॥

यः प्रतिपत्ता प्रमिमीते स्वार्थग्रहणपरिणामेन परिणमते स एव निवृत्ताज्ञानः स्वविषये व्यामोहविरहितो जहात्याभिप्रेतप्रयोजनाप्रसाधकमर्थम्, तत्प्रसाधकं त्वादत्ते, उभयप्रयोजनाऽप्र-  
१० साधकं नृपेक्षणीयमुपेक्षते चेति प्रतीतेः प्रमाणफलयोः कथञ्चिद्भेदाभेदव्यवस्था प्रतिपत्तव्या ।

नैवेवं प्रमातृप्रमाणफलानां भेदाभावात्प्रतीतिप्रसिद्धस्तद्व्यवस्थाविलोपः स्यात्, तदसाम्प्रतम्, कथञ्चिल्लक्षणभेदतस्तेषां भेदात् । आत्मनो हि पदार्थपरिच्छिन्नौ साधकतमत्वेन व्याप्ति-  
१५ यमाणं स्वरूपं प्रमाणं निर्व्यापारम्, व्यापारं तु क्रियोच्यते, स्वातन्त्र्येण पुनर्व्याप्रीयमाणं प्रमाता, इति कथञ्चित्तद्भेदः । प्राक्तनपर्यायविशिष्टस्य कथञ्चिदवस्थितस्यैव बोधस्य परिच्छिन्नविशेषरूपतयोत्पत्तेरभेद इति । साधनभेदाच्च तद्भेदः, कैरणसाधनं हि प्रमाणं साधकतमस्वभावम्, कैर्तुसाधनस्तु  
२० प्रमाता स्वतन्त्रस्वरूपः, भौवसाधना तु क्रिया स्वार्थनिर्णीतस्वभावा इति कैथञ्चिद्भेदाभ्युपगमादेव कार्यकारणभावस्याप्यविरोधः ।

यच्चोच्यते-आत्मव्यतिरिक्तक्रियाकारि प्रमाणं कारकत्वाद्वा-  
स्यादिवत्, तत्र कथञ्चिद्भेदे साध्ये सिद्धसाध्यता, अज्ञाननिवृत्ते-  
२५ स्तद्धर्मतया हानादेश्च तत्कार्यतया प्रमाणात्कथञ्चिद्भेदाभ्युपगमात् । सर्वथा भेदे तु साध्ये साध्यविकलो दृष्टान्तः, वास्यादिना

१ इतरः शास्त्रज्ञः । २ यः प्रतिपत्ता प्रमिमीते इत्यादिप्रकारेण । ३ आत्मस्वरूपम् । ४ परिच्छिन्नरूपा । ५ प्रमाणम् । ६ फलरूपतया । ७ साधनं करणं कर्त्रादि । ८ प्रमातृप्रमाणपरिच्छिन्नेभेदः । ९ करणे साधनं श्रुत्यादेन यस्य प्रतीयते वस्तुतत्त्वं वेनेति तत्करणसाधनं प्रमाणम् । १० कर्तारं साधनं श्रुत्यादेन यस्य प्रमातुः, प्रमिमीते इति उपोक्तम् । ११ प्रमितिः प्रमाणम् । १२ यः प्रतिपत्ता प्रमिमीते इत्यनेन प्रकारेण प्रमाणफलयोरभेदे कार्यकारणभावविरोध इत्युक्ते सत्याह । १३ आत्मा=स्वरूपम् ।

हि काष्ठादेदिहदा निरूप्यमाणा छेद्यद्रव्यानुप्रवेशलक्षणेवावति-  
ष्ठते । स चानुप्रवेशो वास्यादेरात्मगत एव धर्मो नार्थान्तरम् ।  
ननु छिदा काष्ठस्था वास्यादिस्तु देवदत्तस्य इत्यनयोर्भेद एव;  
इत्यप्यसुन्दरम्; सर्वथा भेदस्यैवमसिद्धेः, सत्त्वादिनाऽभेदस्यापि  
प्रतीतेः । न च 'सर्वथा करणाद्विज्ञैव क्रिया' इति नियमोस्ति;<sup>५</sup>  
'प्रदीपः स्वात्मनात्मानं प्रकाशयति' इत्यत्राभेदेनाप्यस्याः प्रतीतेः ।  
न खलु प्रदीपात्मा प्रदीपाद्विज्ञः; तस्याऽप्रदीपत्वप्रसङ्गात् पटवत् ।  
प्रदीपे प्रदीपात्मनो भिन्नस्यापि समवायात्प्रदीपत्वसिद्धिरिति  
चेत्; न, अप्रदीपेपि घटादौ प्रदीपत्वसमवायानुपङ्गात् । प्रत्यास-  
त्तिविशेषात्प्रदीपात्मनः प्रदीप एव समवायो नान्यत्रेति चेत्; स १०  
कोऽन्योन्यत्र कथञ्चित्तादात्म्यात् ।

यत्नेन प्रकाशनक्रियाया अपि प्रदीपात्मकत्वं प्रतिपादितं प्रति-  
पत्तव्यम् । तस्यास्ततो भेदे प्रदीपस्याऽप्रकाशकद्रव्यत्वानुपङ्गात् ।  
तत्रास्याः समवायान्नार्थं दोषः; इत्यप्यसमीचीनम्; अनन्तरो-  
क्ताऽशेषदोषानुपङ्गात् । तन्नानैयोरात्यन्तिको भेदः । १५

नाप्यभेदः; तदव्यवस्थानुपङ्गात् । न खलु 'सौरूप्यमस्य  
प्रमाणमधिगतिः फलम्' इति सर्वथा तादात्म्ये व्यवस्थापयितुं  
शक्यं विरोधात् ।

ननु सर्वथाऽभेदेऽप्यनयोर्व्यावृत्तिभेदात्प्रमाणफलव्यवस्था घटते  
एव, अप्रमाणव्यावृत्त्या हि ज्ञानं प्रमाणमफलव्यावृत्त्या च फलम्; २०  
इत्यप्यविचारितरमणीयम्; परमार्थतः खेष्टसिद्धिविरोधात् । न  
च स्वभावभेदमन्तरेणान्यव्यावृत्तिभेदोप्युपपद्यते इत्युक्तं सारू-  
प्यविचारे । कथं चास्याऽप्रमाणफलव्यावृत्त्या प्रमाणफलव्यव-  
स्थावत् प्रमाणफलान्तरव्यावृत्त्याऽप्रमाणफलव्यवस्थापि न स्यात् ?  
ततः पारमार्थिके प्रमाणफले प्रतीतिसिद्धे कथञ्चिद्विज्ञे प्रतिपत्तव्ये २५  
प्रमाणफलव्यवस्थान्यथानुपपत्तेरिति स्थितम् ।

१ दृश्यमाना क्रियमाणा वा । २ मिश्राधिकरणत्वेन । ३ लोके । ४ आत्मा=  
स्वरूपं प्रदीपत्वमिति यावत् । ५ अन्यथा । ६ प्रदीपप्रदीपात्मनोरभेदमति-  
पादनेन । ७ प्रमाणफलयोः । ८ सौगतामाशङ्क्योच्चवे । ९ अर्थेन सादृश्यं  
प्रमाणम् । १० निर्विकल्पकज्ञानस्य । ११ खेष्टः प्रमाणफलयोर्भेदः । १२ पारमा-  
थिककथञ्चिद्विज्ञत्वव्यतिरेकेण ।

योऽनेकान्तपदं प्रवृद्धमतुलं स्वेष्टार्थसिद्धिप्रदम्,  
 प्राप्तोऽनन्तगुणोदयं निखिलविशिःशेषतो निर्मलम् ।  
 स श्रीमानखिलप्रमाणविषयो जीयाञ्जनानन्दनः,  
 मिथ्यैकान्तमहान्धकाररहितः श्रीवर्द्धमानोदितः ॥

इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षासुखालङ्कारे  
 चतुर्थः परिच्छेदः ॥ श्रीः ॥

१ अखिलप्रमाणविषयपक्षे निखिलविद् केवलज्ञानं यस्मादनेकान्तपदात्तनिखिल-  
 विदनेकान्तपदम् । सर्वत्रपक्षे तु निखिलं वेत्तीति निखिलविद् । यस्तत्पदं सर्वत्रापर-  
 नामकं विशेष्यमपराणि विशेषणानि । तस्य निखिलवित्सर्वज्ञो जीयात् । विषय-  
 क्षेत्राखिलानां प्रमाणानां विषयोऽयं इति वसपूर्वकस्तातः । सर्वत्रपक्षे तु निखिलवि-  
 त्कथम्भूतः अखिलप्रमाणविषयः सर्वप्रमाणग्राह्य इत्यर्थः ।

श्रीः ।

## अथ पञ्चमः परिच्छेदः ॥

अथेदानीं तदाभासस्वरूपविरूपणाय—

ततोऽन्यत्तदाभासम् ॥ १ ॥

इत्याद्याह ।

प्रतिपादितस्वरूपात्प्रमाणसंख्याप्रमेयफलाद्यदन्यत्तदाभास-  
मिति । तदेव तथाहीत्यादिना यथाक्रमं व्याचष्टे । तत्र प्रतिपादि-५  
तस्वरूपात्स्वार्थव्यवसायात्मकप्रमाणादन्ये—

अस्वैसंविदितग्रहीतार्थदर्शनसंशयादयः

प्रमाणाभासाः ॥ २ ॥

प्रवृत्तिविषयोपदर्शकत्वाभावात् ॥ ३ ॥

पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थानुपु- १०

रुषादिज्ञानवत् ॥ ४ ॥

चक्षुरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च ॥ ५ ॥

एतच्च सर्वं प्रमाणसामान्यलक्षणपरिच्छेदे विस्तरतोऽभिहित-  
मिति पुनर्नेहामिधीयते । तथा

अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्याकस्मा- १५

द्धुमदर्शनाद् वह्निविज्ञानवत् ॥ ६ ॥

विशदं प्रत्यक्षमित्युक्तं ततोऽन्यसिद्धावैशद्ये सति प्रत्यक्षं तदा-

१ तेषां—प्रमाणसंख्याविषयफलानाम् । २ अस्वैसंविदितस्य स्वप्रादुर्भावावेना-  
र्थप्रतिपक्षयोगात्प्रवृत्तिविषयोपदर्शकत्वाभावात् । ३ निर्विकल्पकं दर्शनम्, तस्य प्रवृत्ति-  
विषयोपदर्शकत्वाभावात्प्रमाणनिरूपितत्वलेखेन तदुपदर्शकत्वात् । ४ आदिना विपर्ययान्तर-  
वसायौ । ५ अत्रोदाहरणानि यथाक्रममाह । ६ सन्निकर्षादिनं प्रत्यक्षं च दृष्टान्त-  
माह । ७ अयमर्थो—यथा चक्षुरसयोः संयुक्तसमवायः समग्रं न प्रमाणं तथा चक्षुर-  
सयोरेव । तस्मादयमपि प्रमाणाभास एवेति ।

भासं वौद्धस्याकस्मिकधूमदर्शनाद्बह्विविज्ञानवत् इत्यप्युक्तं प्रपञ्चतः प्रत्यक्षपरिच्छेदे ।

**वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य  
करणज्ञानवत् ॥ ७ ॥**

५ न हि करणज्ञानेऽव्यवधानेन प्रतिभासलक्षणं वैशद्यमसिद्धं स्वार्थयोः प्रतीत्यन्तरनिरपेक्षतया तत्र प्रतिभासनादित्युक्तं तत्रैव । तथाऽनुभूतेर्ये तदित्याकारा स्मृतिरित्युक्तम् । अननुभूते—

**अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं जिनदत्ते  
स देवदत्तो यथेति ॥ ८ ॥**

१० तथैकत्वादिनिबन्धनं तदेवेदमित्यादि प्रत्यभिज्ञानमित्युक्तम् । तद्विपरीतं तु—

**सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमल-  
कवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम् ॥ ९ ॥  
असम्बन्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम्, यावाँस्त-**

१५ **त्पुत्रः स इयामः इति यथा ॥ १० ॥**

व्याप्तिज्ञानं तर्क इत्युक्तम् । ततोऽन्यत्पुनः असम्बन्धे—अव्याप्तौ तज्ज्ञानं=व्याप्तिज्ञानं तर्काभासम् । यावाँस्तत्पुत्रः स इयाम इति यथा ।

**इदमनुमानाभासम् ॥ ११ ॥**

२० साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानमित्युक्तम् । तद्विपरीतं त्विदं वक्ष्यमाणमनुमानाभासम् । पक्षहेतुदृष्टान्तपूर्वकश्चानुमानप्रयोगः प्रतिपादित इति । तत्रेत्यादिना यथाक्रमं पक्षाभासादीनुदाहरति ।

**तत्र अनिष्टादिः पक्षाभासः ॥ १२ ॥**

१ यथा धूमवाष्पादिविवेकनिश्चयाभावाद्वासिष्ठप्रहणाभावादकसाद्धूमदर्शनाज्जातं यद्बह्विविज्ञानं तत्तदाभासं भवति कसादनित्यवाप, तथा बौद्धपरिकल्पितं यन्निर्विकल्पकमलक्षं तत् प्रत्यक्षाभासं भवति कसादनित्यवाप । २ एकत्वप्रत्यभिज्ञानाभासम् । ३ सादृश्यप्रत्यभिज्ञानाभासम्, खलु स्तेन सङ्गममित्यर्थः । ४ वमलकं=सुगलम् । ५ अविनायावाभावे ।





लोके हि प्राण्यङ्गत्वाविशेषेपि किञ्चित्पवित्रं किञ्चित्पवित्रं च वस्तुस्वभावात्प्रसिद्धम् । यथा गोपिण्डोत्पन्नत्वाविशेषेपि वस्तुस्वभावतः किञ्चिद्दुग्धादि शुद्धं न गोमांसम् । यथा वा मणित्वाविशेषेपि कश्चिद्विषापहारादिप्रयोजनविधायी महामूल्योऽन्यस्तु ५ तद्विपरीतो वस्तुस्वभाव इति ।

स्वप्नचनबाधितो यथा—

माता मे वन्ध्या पुरुषसंयोगेप्यगर्भत्वा-  
त्प्रसिद्धवन्ध्यावत् ॥ २० ॥

अथेदानीं पक्षाभासानन्तरं हेत्वाभासेत्यादिना हेत्वाभासानाह—  
१० हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्ति-  
काऽकिञ्चित्कराः ॥ २१ ॥

साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुरित्युक्तं प्राक् । तद्विपरीतास्तु हेत्वाभासाः । के ते ? असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाऽकिञ्चित्कराः ।

१५ तत्रासिद्धस्य स्वरूपं निरूपयति—

असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः इति ॥ २२ ॥

सत्ता च निश्चयश्च [सत्तानिश्चयौ] असन्तौ सत्तानिश्चयौ यस्य स तथोक्तः । तत्र—

अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षु-  
षत्वादिति ॥ २३ ॥

कथमस्याऽसिद्धत्वमित्याह—

स्वरूपेणासिद्धत्वात् इति ॥ २४ ॥

चक्षुर्मानप्राप्तत्वं हि चाक्षुषत्वम्, तच्च शब्दे स्वरूपेणासत्त्वादसिद्धम् । पौल्लिकित्वात्तत्सिद्धिः, इत्यप्यपेशलम्; तद्विशेषेण्यनु-  
२५ दूतस्वभावस्यानुपलम्भसम्भवाज्जलकनकादिसंयुक्तानले भासुर-  
रूपेणास्पर्शवदित्युक्तं तत्पौल्लिकित्वसिद्धिप्रसङ्गे ।

ये च विशेष्यासिद्धादयोऽसिद्धप्रकाराः परैरिष्टास्तेऽसत्सत्ता-

कत्वलक्षणासिद्धप्रकाराभ्यान्तरम्, तल्लक्षणमेदाभावात् । यथैव हि स्वरूपासिद्धस्य स्वरूपतोऽसत्त्वादसत्सत्ताकत्वलक्षणमसिद्धत्वं तथा विशेष्यासिद्धादीनामपि विशेष्यत्वादस्वरूपतोऽसत्त्वात्तल्लक्षणमेवासिद्धत्वम् ।

तत्र विशेष्यासिद्धो यथा-अनित्यः शब्दः सामान्यवत्त्वे सति ५ चाक्षुषत्वात् ।

विशेषणासिद्धो यथा-अनित्यः शब्दश्चाक्षुषत्वे सति सामान्यवत्त्वात् ।

आश्रयासिद्धो यथा-अस्ति प्रधानं विश्वपरिणामित्वात् ।

आश्रयैकदेशासिद्धो यथा-नित्याः परमाणुप्रधानात्मेश्वरा १० अकृतकत्वात् ।

व्यर्थविशेष्यासिद्धो यथा-अनित्याः परमाणवः कृतकत्वे सति सामान्यवत्त्वात् ।

व्यर्थविशेषणासिद्धो यथा-अनित्याः परमाणवः सामान्यवत्त्वे सति कृतकत्वात् । व्यर्थविशेष्यविशेषणैश्चासावसिद्धयेति । १५

व्यर्थिकरणासिद्धो यथा-अनित्यः शब्दः पदस्य कृतकत्वात् । व्यधिकरणश्चासावसिद्धयेति । ननु शब्दे कृतकत्वमस्ति तत्कथमस्यासिद्धत्वम् ? तदयुक्तम्, तस्य हेतुत्वेनाप्रतिपादितत्वात् । न चान्यत्र प्रतिपादितमन्यत्र सिद्धं भवत्यतिप्रसङ्गात् ।

भागासिद्धो यथा-[अ]नित्यः शब्दः प्रत्येकानन्तरीयकत्वात् । २० व्यधिकरणासिद्धत्वं भागासिद्धत्वं च परंप्रक्रियाप्रदर्शनमात्रं न वर्तते हेतुदोषः, व्यधिकरणस्यापि 'उदेप्यति शकटं कृत्तिकोदयात्, उपरि वृष्टो देवोऽघः पूरदर्शनात्' इत्यादिर्गमकत्वप्र-

१ परमावयवः प्रधानं नास्तीति भावः । २ अयमाश्रयस्तत्र प्रधानेश्वरी न स्यादयम् । ३ कृतकत्वेनाऽनित्यत्वसिद्धिरित्यतः । ४ व्यर्थं विशेषणं यस्य स तयोक्तः, स चासावसिद्धयेति विग्रहः । ५ विशेष्यं च विशेषणं च विशेष्यविशेषणे, व्यर्थं विशेष्यविशेषणे यत्सेति विग्रहः । ६ विभिन्नव्यधिकरणमसेति विग्रहः । ७ शब्दस्य स कृतकत्वम् । ८ स्या प्रतिपादितमपि कृतकत्वं शब्दे सिद्धं अविष्यवीत्युक्ते सत्याह । ९ एकत्र हेतुपन्यासे सर्वत्र साध्यसिद्धिप्रसङ्गात् । १० प्रत्येकभागे असिद्धः, आश्रयैकदेशासिद्धभागासिद्धबोध्यं विशेषः-तत्राश्रयैकदेशोऽसिद्धो हेतुश्च सिद्ध एव, अत्र आश्रयैकदेशे हेतुरसिद्ध आश्रयैकदेशस्तु सिद्ध एव । ११ प्रत्येकानन्तरीयकत्वप्रपञ्चस्यापारोप्यते शब्दे न तु मेधादिसिद्धे इति भावः । १२ परं नैयायिकादयः । १३ जैनानाम् ।

तीतेः । अविनाभावनिबन्धनो हि गम्यगमकभावः, न तु व्यधिकरणाव्यधिकरणनिबन्धनः 'स इयामस्तत्पुत्रत्वात्, धवलः प्रासादः काकस्य काणर्यात्' इत्यादिवत् ।

नै च व्यधिकरणस्यापि गमकत्वे अविद्यमानसत्ताकत्वलक्षण-  
५ मसिद्धत्वं विरुध्यते; न हि पक्षेऽविद्यमानसत्ताकोऽसिद्धोऽभि-  
प्रेतो गुरुणाम् । किं तर्हि ? अविद्यमाना साध्येनासाध्येनोभयेन  
वाऽविनाभाविनी सत्ता यस्यासावसिद्ध इति ।

भागासिद्धस्याप्यविनाभावसद्भावाद्गमकत्वमेव । न खलु प्रय-  
ज्ञानन्तरीयकत्वमनित्यत्वमन्तरेण कापि दृश्यते । यावति च  
१० तत्प्रवर्तते तावतः शब्दस्यानित्यत्वं ततः प्रसिद्ध्यति, अन्यस्य  
त्वन्वतः कृतकत्वादेरिति । यद्वा—'प्रयत्नानन्तरीयकत्वहेतुपादा-  
नसामर्थ्यात्' प्रयत्नानन्तरीयक एव शब्दोत्र पक्षः । तत्र चास्य  
सर्वत्र प्रवृत्तेः कथं भागासिद्धत्वमिति ?

अथेदानीं द्वितीयमसिद्धप्रकारं व्याचष्टे—

१५ अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यगिरत्र  
भूमादिति ॥ २५ ॥

कुतोस्याविद्यमाननियततत्त्वाद्—

तस्य बाष्पादिभावेन भूतसंघाते  
सन्देहात् ॥ २६ ॥

२० मुग्धबुद्धेर्वाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात् । न खलु साध्य-  
साधनयोरव्युत्पन्नप्रश्नः 'धूमादिरीदृशो बाष्पादिश्चेदृशः' इति  
विवेचयितुं समर्थः ।

साङ्ख्यं प्रति परिणामी शब्दः  
कृतकत्वादिति ॥ २७ ॥

२५ चाविद्यमाननिश्चयः । कुत एतत् ?

तेनाज्ञातत्वात् ॥ २८ ॥

१ अन्यधिकरणव्यधिकरणत्वमुभयत्रास्ति तत्राप्यविनाभावभावेनासत्तेतुत्वमिति  
भावः । २ न चाशङ्कनीयम् । ३ दृष्टान्तेन । ४ हेतोः । ५ साधनम् ।  
६ पुरुषस्यापारोक्षिके शब्दे । ७ जेवादिशब्दस्य अतिरूपस्य । ८ पृथिव्यादिकृष्णानां  
भूतानां संघातो भूतसंघातिन् धूमे । ९ विद्यमानभूमेति ।

न ह्यस्याविर्भावादन्यत् कारणव्यापारादसतो रूपस्यात्मलामल-  
क्षणं कृतकत्वं प्रसिद्धम् ।

सन्दिग्धविशेष्यादयोप्यविद्यमाननिश्चयतालक्षणातिक्रामाभावा-  
न्नार्थान्तरम् । तत्र सन्दिग्धविशेष्यासिद्धो यथा-अद्यापि रागादि-  
युक्तः कपिलः पुरुषत्वे सत्यद्याप्यनुत्पन्नतत्त्वज्ञानत्वात् । सन्दि-  
ग्धविशेषणासिद्धो यथा-अद्यापि रागादियुक्तः कपिलः सर्वदा  
तत्त्वज्ञानरहितत्वे सति पुरुषत्वात् । एते एवासिद्धमेदाः केचि-  
दन्यतरासिद्धाः केचिदुभयासिद्धाः प्रतिपत्तव्याः ।

ननु नास्त्यन्यतरासिद्धो हेत्वाभासः, तथाहि-परेणासिद्ध इत्यु-  
क्तावित्ते यदि वादी तत्साधकं प्रमाणं न प्रतिपादयति, तदा प्रमा-  
णाभासवदुभयोरसिद्धः । अथ प्रमाणं प्रतिपादयेत्, तर्हि प्रमाण-  
स्यापक्षपातित्वादुभयोरप्यसौ सिद्धः । अन्यथा साध्यमप्यन्यतरा-  
सिद्धं न कदाचित्सिद्धोदिति व्यर्थः प्रमाणोपन्यासः स्यात्,  
इत्यप्यसमीचीनम्, यतो वादिना प्रतिवादिना वा सभ्यसमक्षं  
स्वोपन्यस्तो हेतुः प्रमाणतो यावन्न परं प्रति साध्यते तावत् १५  
प्रत्यस्य प्रसिद्धेरभावात्कथं नान्यतरासिद्धता ? नन्वेवमप्यस्यासि-  
द्धत्वं गौणमेव स्यादिति चेत्, एवमेतत्, प्रमाणतो हि सिद्धेरभा-  
वात्सिद्धोऽसौ न तु स्वरूपतः । न खलु रत्नादिपदार्थस्तत्त्वतोऽप्र-  
तीयमानस्तावत्कालं मुख्यतस्तदाभासो भवतीति ।

अथेदानीं विरुद्धहेत्वाभासस्य विपरीतस्येत्यादिना स्वरूपं २०  
दर्शयति—

विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धः अपरि-  
णामी शब्दः कृतकत्वात् ॥ २९ ॥

साध्यस्वरूपाद्विपरीतेन प्रत्येकीकेन निश्चितोऽविनाभावो  
यस्यासौ विरुद्धः । यथाऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वादिति । कृत- २५  
कत्वं हि पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेनैवावि-

१ यतस्तस्य सर्वस्य वस्तुनः सद्भावः सदेति वचः । २ साध्यगुहः । ३ साव्ये-  
नोक्तं भवता जैनानां विशेष्यासिद्धो हेतुरिति भावः । ४ वादिप्रतिवादिनोर्मध्ये  
पक्षः । ५ वादिप्रतिवादिनोः । ६ किन्तर्हि ? उभयासिद्ध एव । ७ प्रतिवा-  
दिना । ८ उपन्यस्येति निर्दुष्टे हेतुसाधके प्रमाणे वक्ष्यते नोभयोः सिद्धः स्यात्तर्हि ।  
९ साध्यस्यान्यतरासिद्धत्वात् । १० यत्प्रमाणतः सिद्धेरवाभावस्यावत्स्वरूपस्योप्यसिद्धः  
कृतो न सादित्युक्ते सत्याह । ११ सः । १२ हेतोः । १३ पक्षस्यान्यऽसुगु-  
कलक्षणो निलैकलक्षणः । १४ साध्यविपरीतेन ।

नाभूतं बहिरन्तर्वा प्रतीतिविषयः सर्वथा नित्ये क्षणिके वा तदभावप्रतिपादनात् ।

ये चाद्यौ विरुद्धमेवाः परैरिष्टास्तोन्येतल्लक्षणलक्षितत्वाविशेषतोऽत्रैवान्तर्भवन्तीत्युदाह्रियन्ते । सति सपक्षे चत्वारो विरुद्धाः ।

✓ ५ पक्षविपक्षव्यापकः सपक्षावृत्तिर्यथा-नित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात् । उत्पत्तिधर्मकत्वं हि पक्षीकृते शब्दे प्रवर्तते, नित्यविपक्षीते चानित्ये घटादौ विपक्षे, नाकाशादौ सत्यपि सपक्षे इति ।

✓ विपक्षैकदेशवृत्तिः पक्षव्यापकः सपक्षावृत्तिश्च यथा-नित्यः शब्दः सामान्यवस्त्वे सत्यसदादिबाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात् । बाह्ये-

१० न्द्रियग्रहणयोग्यतामात्रं हि बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वमत्र विवक्षितम्, तेनास्य पक्षव्यापकत्वम् । विपक्षैकदेशव्यापकत्वं चानित्ये घटादौ भावात्सुखादौ चाभावात् सिद्धम् । सपक्षावृत्तित्वं चाकाशादौ नित्येऽवृत्तेः । सामान्ये वृत्तिस्तु 'सामान्यवस्त्वे सति' इति विशेषणाल्लवच्छिन्ना ।

१५ ✓ पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षावृत्तिश्च यथा-सामान्यविशेषवती अस्सदादिबाह्यकरणप्रत्यक्षे वाग्मनसे नित्यत्वात् । नित्यत्वं हि पक्षैकदेशे मनसि वर्तते न वाचि, विपक्षे चास्सदादिबाह्यकरणाप्रत्यक्षे गगनादौ नित्यत्वं वर्तते न सुखादौ । सपक्षे च घटादावैस्याऽवृत्तेः सपक्षावृत्तित्वम् । सामान्यस्य च सपक्षत्वं २० सामान्या(न्य) विशेषवस्त्वविशेषणाल्लवच्छिन्नम् । योगिबाह्यकरणप्रत्यक्षस्य चाकाशादेरसदाद्यऽग्रहणादसपक्षत्वम् ।

✓ पक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षावृत्तिर्विपक्षव्यापको यथा-नित्ये वाग्मनसे उत्पत्तिधर्मकत्वात् । उत्पत्तिधर्मकत्वं हि पक्षैकदेशे वाचि वर्तते न मनसि, सपक्षे चाकाशादौ नित्ये न वर्तते, विपक्षे २५ च घटादौ सर्वत्र वर्तते इति ।

तथाऽसति सपक्षे चत्वारो विरुद्धाः । ✓ पक्षविपक्षव्यापकोऽविद्यमानसपक्षो यथा-आकाशविशेषगुणः शब्दः प्रमेयत्वात् । प्रमेयत्वं हि पक्षे शब्दे वर्तते । विपक्षे चानाकाशविशेषगुणे घटादौ, न तु सपक्षे तस्यैवाभावात् । न ह्याकाशे शब्दादन्यो विशेषगुणः ३० कश्चिदस्ति यः सपक्षः स्यात् । परममहापरिमार्गान्तरैर्न्यापि प्रवृत्तितः साधारणगुणत्वात् ।

१ नैयायिकादिभिः । २ यतः=विपरीतनिश्चितविभाषता । ३ सपक्षे अत्र-तिरवर्तनं यस्य स तथोक्तः । ४ नित्यरूपे सपक्षे ५ नित्यत्वस्य हेतोः । ६ सामान्यस्य सपक्षत्वं सविषयीत्युक्ते सत्याह । ७ अनित्यत्वेन । ८ आदिना सख्यादेशः । ९ आत्मादावपि ।

✓ पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिरविद्यमानसपक्षो यथा-सत्तासम्बन्धिः  
षट् पदार्था उत्पत्तिमत्त्वात् । अत्र हि हेतुः पक्षीकृतषट्पदार्थैकदेशे  
अनित्यद्रव्यगुणकर्मण्येव वर्तते न नित्यद्रव्यादौ । विपक्षे  
चासत्तासम्बन्धिनि प्रागभावाद्येकदेशे प्रवृत्तिसामाये वर्तते न तु  
प्रागभावादौ । सपक्षस्य चासम्भवादेव तत्रास्यावृत्तिः सिद्धा । ५

✓ पक्षव्यापको विपक्षैकदेशवृत्तिरविद्यमानसपक्षो यथा-आका-  
शविशेषगुणः शब्दो बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वात् । अयं हि हेतुः  
पक्षीकृते शब्दे वर्तते । विपक्षस्य चानाकाशविशेषगुणस्यैकदेशे  
रूपादौ वर्तते, न तु सुखादौ । सपक्षस्य चासम्भवादेव तत्रा-  
स्याऽवृत्तिः सिद्धा । १०

✓ पक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापकोऽविद्यमानसपक्षो यथा-नित्ये  
बाह्यमनसे कार्यत्वात् । कार्यत्वं हि पक्षस्यैकदेशे वाचि वर्तते  
न मनसि । विपक्षे चानित्ये घटादौ सर्वत्र प्रवर्तते सपक्षे चावृ-  
त्तिस्तस्याभावात्सुप्रसिद्धा ।

अथानैकान्तिकः कीदृश इत्याह—

१५

**विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः ॥ ३० ॥**

न केवलं पक्षसपक्षेऽपि तु विपक्षेऽपीत्यपिशब्दार्थः । एकस्मि-  
न्नन्ते नियतो द्वैकान्तिकस्तद्विपरीतोऽनैकान्तिकः सव्यभिचार  
इत्यर्थः । कः पुनरयं व्यभिचारो नाम ? पक्षसपक्षान्यवृत्तित्वम् ।  
यः खलु पक्षसपक्षवृत्तित्वे सत्यन्यत्र वर्तते स व्यभिचारी २०  
असिद्धः । यथा लोके पक्षसपक्षविपक्षवर्ती कश्चित्पुरुषस्तथा चाय-  
मनैकान्तिकत्वेनाभिमतो हेतुरिति । स च द्वेषा निश्चितवृत्तिः  
शङ्कितवृत्तिश्चेति । तत्र—

**निश्चितवृत्तिर्यथाऽनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद्**

**घटवदिति ॥ ३१ ॥**

२५

कथमित्याह—

**आकाशे नित्येऽप्यस्य सम्भवादिति ॥ ३२ ॥**

**शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो**

**वक्तृत्वादिति ॥ ३३ ॥**

कुतोऽयं शङ्कितवृत्तिरित्याह—

सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात् ॥ ३४ ॥

एतच्च सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे प्रपञ्चितमिति नेहोच्यते । पराम्युप-  
गतञ्च पक्षत्रयव्यापकाद्यनैकान्तिकप्रपञ्च एतल्लक्षणलक्षितत्वावि-  
५ शेषाभातोऽर्थान्तरम्, सर्वत्र विपक्षस्यैकदेशे सर्वत्र वा विपक्षे  
वृत्त्या विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तित्वलक्षणसम्भवादित्युदाह्रियते । पक्ष-  
१ त्रयव्यापको यथा—अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् । पक्षे सपक्षे विपक्षे  
चास्य सर्वत्र प्रवृत्तेः पक्षत्रयव्यापकः ।

४/ सपक्षविपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा—नित्यः शब्दोऽमूर्तत्वात् । अमू-  
१० र्तत्वं हि पक्षीकृते शब्दे सर्वत्र वर्तते । सपक्षैकदेशे चाका-  
शादौ वर्तते, न परमाणुषु । विपक्षैकदेशे च सुखादौ वर्तते  
न घटादाविति ।

२ पक्षसपक्षव्यापको विपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा—गौरयं विषाणि-  
त्वात् । विषाणित्वं हि पक्षीकृते पिण्डे वर्तते, सपक्षे च गोत्व-  
१५ धर्माभ्यासिते सर्वत्र व्यक्तिविशेषे, विपक्षस्य चागोरूपस्यैकदेशे  
महिष्यादौ वर्तते न तु मनुष्यादाविति ।

३ पक्षविपक्षव्यापकः सपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा—अगौरयं विषाणि-  
त्वात् । अयं हि हेतुः पक्षीकृतेऽगोपिण्डे वर्तते । अगोत्ववि-  
पक्षे च गोव्यक्तिविशेषे सर्वत्र, सपक्षस्य चागोरूपस्यैकदेशे महि-  
२० ष्यादौ वर्तते न तु मनुष्यादाविति ।

८ पक्षत्रयैकदेशवृत्तिर्यथा—अनित्ये चाग्मनसेऽमूर्तत्वात् । अमू-  
र्तत्वं हि पक्षस्यैकदेशे चाग्निं वर्तते न मनसि, सपक्षस्य चैकदेशे  
सुखादौ न घटादौ, विपक्षस्य चाकाशादेर्नित्यस्यैकदेशे गगनादौ न  
परमाणुष्विति ।

२५ ८ पक्षसपक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापको यथा—द्रव्याणि दिक्काल-  
मनांस्यमूर्तत्वात् । अमूर्तत्वं हि पक्षस्यैकदेशे दिक्काले वर्तते न  
मनसि, सपक्षस्य च द्रव्यरूपस्यैकदेशे आत्मादौ वर्तते न घटादौ,  
विपक्षे चाद्रव्यरूपे गुणौ सर्वत्रेति ।

१ सर्वज्ञे वक्तृत्वस्य वाचकप्रमाणाभावात्किं वक्तृत्वं तत्र वर्तते न वेति सदेहः ।  
२ परेः नैयायिकादिभिः । ३ पक्षसपक्षविपक्षाः पक्षत्रयम् । ४ विपक्षेऽप्यविरुद्धेति ।  
५ इत्यत्रावच्छिन्नपरिमाणयोगित्वं मूर्तिमत्त्वम् । निरुपेया गुण्य इति वचनादियत्राव-  
च्छिन्नपरिमाणाभावः ।

८ पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षव्यापको यथा-अद्रव्याणि दिक्का-  
लमर्गान्यमूर्तत्वात् । अत्रापि प्राक्तनमेव व्याख्यानम् अद्रव्यरूपस्य  
गुणादेस्तु सपक्षतेति विशेषः ।

९ सपक्षविपक्षव्यापकः पक्षैकदेशवृत्तिर्यथा-पृथिव्यसेजोवाय्वा-  
काशान्यनित्यान्यगन्धवत्त्वात् । अगन्धवत्त्वं हि पृथिवीतोऽन्यत्र ५  
पक्षैकदेशे वर्तते न तु पृथिव्याम्, सपक्षे चानित्ये गुणे कर्मणि  
च, विपक्षे चात्मावौ नित्ये सर्वत्र वर्तते इति ।

अथेदानीमकिञ्चित्करस्वरूपं सिद्ध इत्यादिना व्याचष्टे—

सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये

हेतुरकिञ्चित्करः ॥ ३५ ॥

१०

सिद्धे निर्णति प्रमाणान्तरात्साध्ये प्रत्यक्षादिबाधिते च हेतुर्न  
किञ्चित्करोतीत्यकिञ्चित्करोऽनर्थकः ।

यथा श्रावणः शब्दः शब्दत्वादिति ॥ ३६ ॥

न ह्यसौ ससाध्यं साधयति, तस्याभ्यक्षादेव प्रसिद्धेः । नापि  
साध्यान्तरम्; तत्राद्युत्तेरित्यत आह—

१५

किञ्चिदकरणात् ॥ ३७ ॥

प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्येऽकिञ्चित्करोसौ—

अनुष्णोभिर्द्रव्यत्वादित्यादौ यथा

किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् ॥ ३८ ॥

कुतोऽस्याऽकिञ्चित्करत्वमित्याह—किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् । २०

ननु प्रसिद्धः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्वचनैश्च बाधितः पक्षा-  
भासः प्रतिपादितः । तद्दोषेणैव चास्य दुष्टत्वात् पृथगकिञ्चित्क-  
रामिधानमनर्थकमित्याशङ्क्य लक्षण एवेत्यादिना प्रतिविधत्ते—

लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य

पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ॥ ३९ ॥

२५

लक्षणे लक्षणव्युत्पादनशब्दे एवासावकिञ्चित्करत्वलक्षणो  
दोषो विनैयव्युत्पत्त्यर्थं व्युत्पाद्यते, न तु व्युत्पन्नानां प्रयोगकाले ।  
कुत एतदित्याह—व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ।



अथेदानीं दृष्टान्ताभासप्रतिपादनार्थं दृष्टान्तेत्याद्युपक्रमते ।  
दृष्टान्तो ह्यन्वयव्यतिरेकमेवाद्विधेत्युक्तम् । तद्विपरीतस्तदाभा-  
सोपि तद्वेदाद्विधैव द्रष्टव्यः । तत्र—

दृष्टान्ताभासा अन्वये असिद्धसाध्य-

५

साधनोभयाः ॥ ४० ॥

अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियमुख-पर-  
माणु-घटवदिति ॥ ४१ ॥

इन्द्रियसुखे हि साधनममूर्तत्वमस्ति, साध्यं त्वपौरुषेयत्वं  
नास्ति पौरुषेयत्वात्तस्य । परमाणुषु तु साध्यमपौरुषेयत्वमस्ति,  
१० साधनं त्वमूर्तत्वं नास्ति मूर्तत्वात्तेषाम् । घटे तुभयमपि पौरुषे-  
यत्वान्मूर्तत्वान्वास्येति । न केवलमेत एवान्वये दृष्टान्ताभासाः  
किन्तु—

विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम् ॥ ४२ ॥

विपरीतोऽन्वयो व्याप्तिप्रदर्शनं यस्मिन्निति । यथा यदपौरुषेयं  
१५ तदमूर्तमिति । 'यदमूर्तं तदपौरुषेयम्' इति हि साध्येन व्याप्ते  
साधने प्रदर्शनीये कुतश्चिद्भ्रामोहात् 'यदपौरुषेयं तदमूर्तम्' इति  
प्रदर्शयति । न चैवं प्रदर्शनीयम्—

विद्युदादिनाऽतिप्रसङ्गादिति ॥ ४३ ॥

विद्युद्वनकुसुमादौ ह्यऽपौरुषेयत्वेऽप्यमूर्तत्वं नास्तीति ।  
२० व्यतिरेके दृष्टान्ताभासाः—

व्यतिरेके असिद्धतद्व्यतिरेकाः परमा-  
ण्विन्द्रियसुखाकाशवत् ॥ ४४ ॥

असिद्धतद्व्यतिरेकाः—असिद्धस्तेषां साध्यसाधनोभयानां व्यति-  
रेको [व्या]वृत्तिर्येषु ते तथोक्ताः । यथाऽपौरुषेयः शब्दोऽमू-  
२५ र्तत्वादित्युक्त्वा यन्नापौरुषेयं तन्नामूर्तं परमाण्विन्द्रियसुखाका-  
शवदिति व्यतिरेकमाह । परमाणुभ्यो ह्यमूर्तत्वव्यावृत्तावप्यऽपौ-  
रुषेयत्वं न व्यावृत्तमपौरुषेयत्वात्तेषाम् । इन्द्रियसुखे त्वपौरुषेय-  
त्वव्यावृत्तावप्यमूर्तत्वं न व्यावृत्तममूर्तत्वात्तस्य । आकाशे तुभयं

न व्यावृत्तमपौरुषेयत्वादमूर्त्तत्वाच्चास्येति । न केवलमेत एव व्यतिरेके दृष्टान्ताभासाः किंतु—

**विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्त्तं तन्ना-  
पौरुषेयम् ॥ ४५ ॥**

विपरीतो व्यतिरेको व्यावृत्तिप्रदर्शनं यस्येति । यथा यन्नामूर्त्तं<sup>५</sup> तन्नापौरुषेयमिति । 'यन्नापौरुषेयं तन्नामूर्त्तम्' इति हि साव्यव्य-  
तिरेके साधनव्यतिरेकः प्रदर्शनीयस्तथैव प्रतियन्नादिति ।

अव्युत्पन्नव्युत्पादनार्थं पञ्चावयवोपि प्रयोगः प्राक् प्रतिपादि-  
तस्तत्प्रयोगाभासः कीदृश इत्याह—

**बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता ॥ ४६ ॥ १०**

यथाग्निमानयं देशो धूमवत्त्वात्, यदित्थं

तदित्थं यथा महानस इति ॥ ४७ ॥

धूमवांश्चार्यमिति वा ॥ ४८ ॥

यो ह्यव्युत्पन्नप्रज्ञोऽनुमानप्रयोगे पञ्चावयवे गृहीतसङ्केतः स  
उपनयनिगमनरहितस्य निगमनरहितस्य बालुमानप्रयोगस्य तदा-<sup>१५</sup>  
भासतां मन्यते । न केवलं कियद्धीनतैव बालप्रयोगाभासः किंतु  
तद्विपर्ययश्च-तेषामवयवानां विपर्ययस्तत्प्रयोगाभासो यथा—

**तस्मादग्निमान् धूमवांश्चार्यमिति ॥ ४९ ॥**

सं ह्युपनयपूर्वकं निगमनप्रयोगं साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं मन्यते,  
नान्यथा । कुत एतदित्याह—

**स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ॥ ५० ॥**

स्पष्टतया प्रकृतस्य साध्यस्य प्रतिपत्तेरयोगात् । यो हि  
यथा गृहीतसङ्केतः स तथैव वाक्प्रयोगात्प्रकृतमर्थं प्रतिपद्येत  
नान्यथा लोकवत् । यस्तु सर्वप्रकारेण वाक्प्रयोगे व्युत्पन्नप्रज्ञः  
स यथा यथा वाक्प्रयुज्यते तथा तथा प्रकृतमर्थं प्रतिपद्येत<sup>२५</sup>  
लोके सर्वभाषाप्रवीणपुरुषवत् । तथा च न तं प्रत्यनन्तरोक्तः  
कश्चित्प्रयोगाभास इति ।

१ कुत इत्याह । २ अविनाशनात् । ३ अनुमानप्रयोगः । ४ बालव्युत्पत्त्यर्थेन ।  
५ पञ्चावयवबालुमानवादी बालो वा । ६ निगमनपूर्वकमुपनयप्रयोगं न मन्यते । ;

अथेदानीमागमाभासग्रहणार्थमाह—

रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमा-

गमाभासम् ॥ ५१ ॥

रागाक्रान्तो हि पुरुषः क्रीडावशीकृतचित्तो विनोदार्थं वस्तु  
५ किञ्चिदप्राप्नुवन्माणवकैरपि सह क्रीडामिलापेणेदं वाक्यमुच्चार-  
यति—

यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति

धावध्वं माणवका इति ॥ ५२ ॥

तथा कचित्कार्ये व्यासक्तचित्तो माणवकैः कदर्थितो द्वेषाक्रा-  
१० न्तोऽप्यात्मीयस्थानात्तदुच्चाटनामिलापेणेदमेव वाक्यमुच्चारयति ।  
मोहाक्रान्तस्तु सांख्यादिः—

अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमार्गैः इति च ॥ ५३ ॥

उच्चारयति । न खल्वज्ञानमहामहीधराक्रान्तः पुरुषो यथाव-  
द्वस्तु विवेचयितुं समर्थः ।

१५ ननु चैवंविधपुरुषवचनोद्भूतं ज्ञानं कस्मादागमाभासमित्याह—

विसंवादात् ॥ ५४ ॥

प्रतिपन्नार्थविचलनं हि विसंवादो विपरीतार्थोपस्थापकप्रमाणा-  
वसेयः । स चोनास्तीत्यागमाभासता ।

अथेदानीं संख्याभासोपदर्शनार्थमाह—

२० प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ॥ ५५ ॥

कस्मादित्याह—

लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य

परबुद्ध्यादेश्चासिद्धेः अतद्विषयत्वात् ॥ ५६ ॥

कुतोऽसिद्धिरित्याह—अतद्विषयत्वात् । यथा चाध्यक्षस्य परलो-  
२५ कादिनिषेधादिरविषयस्तथा विस्तरतो द्वितीयपरिच्छेदे प्रति-  
पादितम् ।

— १ क्रीडाकारणम् । २ बहुवचनव्यतिरिक्तम् । ३ सांख्यमते सर्वं सर्वत्र विद्यते  
यतः । ४ राजते नेदं रजतमिति यथा । ५ रागादक्रान्तपुरुषवचनाज्जाते ज्ञाने ।  
६ आदिना परबुद्ध्यादिग्रहः ।

अमुमेवार्थं समर्थयमानः सौगतादिपरिकल्पितां च संख्यां  
निराकुर्वाणः सौगतेत्याद्याह—

सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षा-  
नुमानागमोपमानार्थापत्यभावैः एकैकाधिकैः

व्याप्तिवत् ॥ ५७ ॥

५

यथैष हि सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां मते प्रत्यक्षानु-  
मानागमोपमानार्थापत्यभावैः प्रमाणैरेकैकाधिकैर्व्याप्तिर्न सिध्यत्य-  
तद्विषयत्वात् तथा प्रकृतमपि । प्रयोगः—यद्यस्याऽविषयो न तत-  
स्तत्सिद्धिः यथा प्रत्यक्षानुमानाद्यविषयो व्याप्तिर्न ततः सिद्धिसौष-  
क्षिखरमारोहति, अविषयश्च परलोकनिषेधादिः प्रत्यक्षमेति । १०

मा भूत्प्रत्यक्षस्य तद्विषयत्वमनुमानादेस्तु भविष्यतीत्याह—

अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम् ॥ ५८ ॥

चार्वाकं प्रति । सौगतादीन्प्रति—

तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वम्

अप्रमाणस्य अव्यवस्थापकत्वात् ॥ ५९ ॥ १५

कुत यतदित्याह अप्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात् ।

प्रतिभासादिभेदस्य च भेदकत्वादिति ॥ ६० ॥

प्रतिपादितश्चायं प्रतिभासभेदः सामग्रीभेदश्चाप्यक्षादीनां प्रप-  
ञ्चतस्तद्वेधेऽप्यत्रेत्युपरम्यते ।

अथेवार्थं विषयाभासप्ररूपणार्थं विषयेत्याद्युपक्रमते—

२०

विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा

स्वतन्त्रम् ॥ ६१ ॥

विषयाभासाः—सामान्यं यथा सत्ताद्वैतवादिनः । केवलं विशेषो  
वा यथा सौगतस्य । द्वयं वा स्वतन्त्रं यथा यौगस्य । कुतोऽस्य विष-  
याभासतेत्याह—

२५

१ अनुमानस्य । २ परलोकनिषेधादेः । ३ अस्तु प्रामाण्यप्रनुमानस्य किन्तु  
तत्फलमेव प्रवान्तर्भावविषयीत्युक्ते सत्याह । ४ ततः प्रत्यक्षेऽनुमानस्यान्तर्भावभाव  
इत्यर्थः । ५ अन्योन्यनिरपेक्षम् ।

तथाऽप्रतिभासनात् कार्याऽकरणाच्च ॥ ६२ ॥

स ह्येवंविधोऽर्थः स्वयमसमर्थः समर्थो वा कार्यं कुर्यात्? न  
तान्नत्प्रथमः पक्षः,

स्वयमसमर्थस्याऽकारकत्वात्पूर्ववत् ॥ ६३ ॥

५ एतच्च सर्वं विषयपरिच्छेदे विस्तारतोमिहितमिति नैह्यभि-  
धीयते ।

नापि द्वितीयः पक्षः,

समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् ॥ ६४ ॥

परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा

१० तदभावादिति ॥ ६५ ॥

अथेदानीं फलाभासं प्ररूपयन्नाह—

फलाभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा ॥ ६६ ॥

कृतोऽस्य फलाभासतेत्याह—

अभेदे तद्वैवहारानुपपत्तेः ॥ ६७ ॥

१५ न खलु सर्वथा तयोरेभेदे 'इदं प्रमाणमिदं फलम्' इति व्यव-  
हारः शक्यः प्रवर्त्तयितुम् ।

ननु व्यावृत्त्या तयोः कल्पना भविष्यतीत्याह—

व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद्व्यावृत्त्याऽ-

फलत्वप्रसङ्गात् ॥ ६८ ॥

२० प्रमाणान्तराद्व्यावृत्तौ वाऽप्रमाणत्वस्येति ॥ ६९ ॥

एतच्च फलपरीक्षायां प्रपञ्चितमिति पुनर्नेह प्रपञ्च्यते ।

तस्माद्वास्तवो भेदः ॥ ७० ॥

१ केवलसामान्यतया केवलविशेषतया द्वयस्य स्वतन्त्रतया वा । २ केवलसामान्य-  
रूपः केवलविशेषरूपश्च । ३ पक्षादपि । ४ परस्व । ५ अनपेक्षाकारपरित्यागेना-  
पेक्षाकारेण परिणमनात् । ६ सर्वथा । ७ तयोः प्रमाणफलयोः । ८ अफलादव्यावृत्तिः  
अथा तथा फलान्तरादव्यावृत्त्या भान्त्वम्, तथा सति फलान्तरादव्यावृत्तिः फलविशेषा-  
दव्यावृत्तिरित्यर्थः, अफलत्वप्रसङ्गः गोप्याद्व्यावृत्त्योर्लभ्यते कथम् ।

. प्रमाणफलयोस्तद्व्यवहारान्यथानुपपत्तेरिति प्रेक्षादक्षैः प्रतिप-  
त्तव्यम् ।

अस्तु तर्हि सर्वथा तयोर्भेद इत्याद्यङ्गापनोदार्थमाह—

भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तिः (तेः) ॥ ७१ ॥

समवायेऽतिप्रसङ्गः ॥ ७२ ॥

इत्यप्युक्तं तत्रैव ।

अथेदानीं प्रतिपन्नप्रमाणतदामासस्वरूपाणां विनयेानां प्रमाण-  
तदामासावित्यादिना फलमादर्शयति—

प्रमाण-तदामासौ दुष्टतयोद्भाविता परिहृता-ऽपरि-  
हृतदोषौ वादिनः साधन-तदामासौ प्रतिवा- १०  
दिनो दूषण-भूषणे च ॥ ७३ ॥

प्रतिपादितस्वरूपौ हि प्रमाणतदामासौ यथावत्प्रतिपन्नप्रति-  
पन्नस्वरूपौ जयेतरव्यवस्थाया निबन्धनं भवतः । तथाहि—चतुर-  
ङ्गवादमुररीकृत्य विज्ञातप्रमाणतदामासस्वरूपेण वादिना सम्य-  
कप्रमाणे स्वपक्षसाधनायोपन्यस्ते अविज्ञाततत्त्वरूपेण तु तदा- १५  
भासे । प्रतिवादिना चाऽनिश्चिततत्त्वरूपेण दुष्टतया सम्यकप्रमा-  
णेपि तदामासतोद्भाविता । निश्चिततत्त्वरूपेण तु तदामासे  
तदामासतोद्भाविता । एवं तौ प्रमाणतदामासौ दुष्टतयोद्भाविता  
परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदामासौ प्रतिवादिनो  
दूषणभूषणे च भवतः ।

२०

ननु चतुरङ्गवादमुररीकृत्येत्याद्युक्तमुक्तम् ; वादस्याविजिगी-  
षुविषयत्वेन चतुरङ्गत्वासम्भवीत् । न खलु वादो विजिगीषतोर्व-  
र्त्तते तत्त्वाव्यवसायसंरक्षणार्थरहितत्वात् । अस्तु विजिगीषतो-  
र्नासौ तथा सिद्धः यथा जलो विर्तेण्डा च, तथा च वादः,

१ वास्तवभेदामात्रे । २ वादिना प्रतिपन्नप्रतिपन्नस्वरूपौ प्रतिवादिनापि तयोस्तयः ।  
३ सम्यक्समापतिवादिप्रतिवादीति चत्वार्यङ्गानि यस्य स तथोक्तः । ४ अन्यवादिना ।  
५ उपन्यस्ते । ६ अन्यप्रतिवादिना । ७ प्रतिवादिना । ८ वादिनेति शेषः ।  
९ स्वपक्षस्य । १० योगः ग्राह । ११ चैनैः । १२ वीतरणकथा वादो योगमते  
पठः । १३ जयेच्छाऽभावत्वेनां सम्पादीनां प्रयोगनामानो वादे इति भावः ।  
१४ जलो विर्तेण्डा च विजिगीषतोर्वो न वादरूपः, व्यतिरेकी दृश्यन्तः ।

तस्माच्च विजिगीषतोरेति । न हि वादस्तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थो भवति; जल्पवितण्डयोरेव तत्त्वात् । तदुक्तम्—

“तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितर्कण्डे बीजप्ररोहसंरक्षणार्थं कंटकशाखावरणवत्” [न्यायसू० ४।१।५०] इति । तदप्यसमीचीनम्; वादस्याविजिगीषुविषयत्वासिद्धेः । तथाहि—वादो नाविजिगीषुविषयो निग्रहस्थानवत्त्वात् जल्पवितण्डावत् । न चास्य निग्रहस्थानवत्त्वमसिद्धम्; ‘सिद्धैरन्ताविरुद्धः’ इत्यनेनापसिद्धान्तः; ‘पञ्चावयवोपपन्नः’ इत्यत्र पञ्चग्रहणात् न्यूनाधिके, अवयवोपपन्नग्रहणाद्धेत्वाभासपञ्चकं चेत्यष्टनिग्रहस्थानानां वादे नियमप्रतिपादनात् ।

- १० ननु वादे सतामप्येषां निग्रहबुद्ध्योद्भावनभावाच्च विजिगीषास्ति । तदुक्तम्—“तर्कशब्देन भूतपूर्वगतिन्यायेन धीतरागकथात्वज्ञापनादुद्भावननिर्यमोपलभ्यते” [ ] तेन सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्न इति चोत्तरपदयोः समस्तनिग्रहस्थानाद्युपलक्षणार्थत्वाद्वादेऽप्रमाणबुद्ध्या परेण छलजातिनिग्रह-  
१५ स्थानानि प्रयुक्तानि न निग्रहबुद्ध्योद्भाव्यन्ते किन्तु निवारणबुद्ध्या । तत्त्वज्ञानायावयोः प्रवृत्तिर्न च साधनाभासो दूषणमासो वा तद्धेतुः । अतो न तत्प्रयोगो युक्त इति । तदप्यसाम्प्रतम्; जल्पवितण्डयोरेपि तथोद्भावननियमप्रसङ्गात् । तयोस्तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणाय स्वयमभ्युपगमात् । तस्य च छलजातिनिग्रहस्थानैः  
२० कर्तुमशक्यत्वात् । परस्य तूर्णीभावार्थं जल्पवितण्डयोदछलाद्यु-

१ वादो न विजिगीषतोर्वैतर्ता तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थस्य भवदिति सन्तिग्नानैकान्तिकत्वे सत्याह । २ स्याः । ३ प्रमाणतर्कं (विचार)साधनो (स्वपक्षस्य) पाठ्यम्; (परपक्षस्य दूषणं) सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वाद इति परकीयं वादलक्षणसूत्रम् । जैनमते तु समर्थे (वादिप्रतिवादिनोरन्यपराजयार्थं) बचनं वाद इति वादलक्षणम् । ४ प्रतिज्ञोपपन्न इत्यनेनाभ्यासिद्धहेत्वाभासग्रहणं, हेतुपपन्न इत्यनेन स्वरूपासिद्धहेत्वाभासस्य, अन्यवृष्टान्तोपपन्न इत्यनेन विरुद्धहेत्वाभासस्य व्यतिरेकवृष्टान्तोपपन्न इत्यनेनानैकान्तिकहेत्वाभासस्योपपन्नोपपन्न इत्यनेन कालालयापदिष्टस्य, निगमोपपन्न इत्यनेन सत्प्रतिपक्षस्य च ग्रहणम् । ५ अनेनात्र भवितव्यं नान्येनेति सम्भावनाप्रत्ययसत्को विचार इति यावत्, वादलक्षणे गृहीतेन । ६ व्याख्यानकाले क्रियमाणे विचारे धीतरागत्वं वादिप्रतिवादिनोस्तथा वादकालेपि तस्याह । कुत धत्तत् ? वादलक्षणे तर्कसङ्कोपादाचाद् ज्ञायते । ७ व्याख्यानकाले विचारो धीतरागत्वस्य हेतुस्तथा वादेपीति तात्पर्यम् । ८ अपसिद्धान्तादिकं निग्रहबुद्ध्या नोद्भावनीयमिति । ९ प्रमाणतर्कसाधनोपात्म्य इति ग्रथमपदपेक्षयोत्तरपदत्वमनयोः । १० तस्य छलनालादीनां निवारणबुद्ध्योद्भावनमिति भावः, निग्रहस्थानैः प्रति-  
वादिनो निराकरणं न तु तत्त्वनिर्णय इति भावः ।

ज्ञावनमिति चेत्, न; तथा परस्य दूर्णीमावाभावादऽसदुत्तरा-  
णामानन्त्यात् ।

[ न च ] तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थत्वरहितत्वं च वादेऽ-  
सिद्धम्; तस्यैव तत्संरक्षणार्थत्वोपपत्तेः । तथाहि—वाद एव  
तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थः, प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भत्वे सिद्धा-५  
न्ताविरुद्धत्वे पञ्चावयवोपपन्नत्वे च सति पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहव-  
त्त्वात्, यस्तु न तथा स न तथा यथाक्रोशादिः, तथा च वादः,  
तस्मात्तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थ इति । न चायमसिद्धो हेतुः;

“प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोप-  
पन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः ।” [ न्यायसू० १।२।१ ] इत्यमि-१०  
धानात् । ‘पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहवत्त्वात्’ इत्युच्यमाने जल्पोपि  
तथा स्यादित्यवधारणविरोधः, तत्परिहारार्थं प्रमाणतर्कसाधनो-  
पालम्भत्वविशेषणम् । न हि जल्पे र्देदस्ति, “यथोक्तोपपन्नदृष्ट-  
जातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः ।” [ न्यायसू० १।२।२ ]  
इत्यमिधानात् । नापि वितण्डा र्थानुषज्यते; जल्पस्यैव वितण्डा-१५  
रूपत्वात्, “स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ।” [ न्यायसू०  
१।२।३ ] इति वचनात् । स यथोक्तो जल्पः प्रतिपक्षस्थापना-  
हीनतया विशेषितो वितण्डात्वं प्रतिपद्यते । वैतण्डिकस्य च  
स्वपक्ष एव साधनैवादिपक्षापेक्षया प्रतिपक्षो हस्तिप्रतिद्वस्ति-  
न्यायेन । तस्मिन्प्रतिपक्षे वैतण्डिको हि न साधनं वक्ति । केवलं २०  
परपक्षनिराकरणायैव प्रवर्तते इति व्याख्यानात् ।

पक्षप्रतिपक्षौ च वस्तुधर्मावैकाधिकरणौ विरुद्धावेककालावन-  
वसितौ । वस्तुधर्माविति वस्तुविशेषौ वस्तुनः । सामान्येनाधिग-  
तत्वाद्धिशेषतोऽनधिगतत्वाच्च विशेषावगमनिमित्तौ विचार्ये ।

- १ हेतुः । २ न जल्पवितण्डे इत्यर्थः । ३ एवकारेण । ४ केवलम् । ५ यथो-  
क्तेन वादलक्षणेनोपपन्नः, यथोक्तोपपन्नग्रहणेन प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भमानमुपलक्ष्यते  
न समस्तं वादलक्षणं सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्न इत्युत्तरपदद्वयस्य निग्रहस्थान-  
नियमनिबन्धनस्यात्र सम्भवाऽभानात् जल्पे समस्तनिग्रहस्थानासम्भवात् । ६ तत्साध्य-  
वसायसंरक्षणत्वेन । ७ प्रतिवादि । ८ इत्येव प्रतिद्वस्ती इत्यन्तरापेक्षया, तस्य  
न्यायेन । ९ स्वपक्षसाधनाय हेतुम् । १० प्रतिवादी यं कश्चन सिद्धान्तमव-  
कम्प्यावस्थितः प्रतिपक्षमज्ञात्रेण विनयी यवति न तु जल्पवत्स्वपक्षसाधनेनेति  
भावः । ११ पक्षप्रतिपक्षयोर्लक्षणं कृत्वा जल्पवितण्डयोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहत्वं निरा-  
करोति नैनः । १२ शब्दाभातिनित्यानित्वादिलक्षणौ । १३ शब्दादिरूपस्य ।  
१४ भवतीति शेषः ।



एकाधिकरणौविति, नानाधिकरणौ विचारं न प्रयोजयत उभयोः प्रमाणोपपत्तेः, तद्यथा-अनित्या दुर्द्धिर्नित्य आत्मेति । अविद्वद्वाच्येवं विचारं न प्रयोजयतः, तद्यथा-क्रियावद्ब्रह्म गुणवच्चेति । एककालाविति, भिन्नकालयोर्विचाराप्रयोजकत्वं प्रमाणोपपत्तेः,

५ यथा क्रियावद्ब्रह्म निष्क्रियं च कालमेवे सति । तथाऽवसितौ विचारं न प्रयोजयतः, निश्चयोत्तरकालं विवादाभावादित्यनवसितौ तौ निर्दिष्टौ । एवंविशेषणौ धर्मौ पक्षप्रतिपक्षौ । तयोः परिग्रह इत्यंभावनियमः 'एवंधर्माय धर्मो नैवंधर्मो' इति च । ततः प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भत्वविशेषणस्य पक्षप्रतिपक्षपरि-  
१० ग्रहस्य जल्पवितण्डयोरसम्भवात् सिद्धं वादस्यैव तत्त्वाभ्यवसायसंरक्षणार्थत्वं लाभपूजाख्यातिवत् ।

तत्त्वस्याध्यवसायो हि निश्चयस्तस्य संरक्षणं न्यायबलाभिखिल-  
बार्धकनिराकरणम्, न पुनस्तत्र बाधकमुद्भावयतो यथाकथञ्चि-  
न्निर्मुखीकरणं लकुटचपेटादिभिस्तन्त्र्यकरणस्यापि तत्त्वाभ्यवसाय-  
१५ संरक्षणार्थत्वानुषङ्गात् । न च जल्पवितण्डाभ्यां निखिलबाधक-  
निराकरणम्, छलजात्युपक्रमपरतया ताभ्यां संशयस्य विपर्ययस्य वा जननात् । तत्त्वाभ्यवसाये सत्यपि हि परिनिर्मुखीकरणे प्रवृत्तौ  
प्राज्ञिकास्तत्र संशेरते विपर्ययस्यन्ति वा- 'किमस्य तत्त्वाभ्यवसा-  
योस्ति किं वा नास्तीति, नास्त्येवेति वा' परिनिर्मुखीकरणमात्रे  
२० तत्त्वाभ्यवसायरहितस्यापि प्रवृत्त्युपलम्भात् तत्त्वोपल्लववादिवत् ।

तथैवाख्यातिरेवास्यं प्रेक्षावत्सु स्यादिति कुतः पूजा लाभो वा ?  
ततः सिद्धश्चतुरङ्गो वादः सैमिमेतार्थव्यवस्थापनफलत्वाद्वा-  
त्त्वाद्वा लोकप्रख्यातवादवत् । एकाङ्गस्यापि वैकल्ये प्रस्तुतार्थोऽप-

१ एकाग्र्यौ नित्यानिलक्षणेन यथा । २ प्रवर्तयते यत इत्यन्वाहार्यम् । ३ प्रति ।  
४ वादिप्रतिवादिनी । ५ नानाधिकरणयोर्वस्तुधर्मयोः । ६ वस्तुधर्मद्वयसैकाधिकरयत्वे  
सति विचारो भवति, न तु नानाधिकरणे सतीति भावः । ७ अनिलस्य दुर्भाषिकरणं  
निलस्य त्वात्माधिकरणम्, अत्र यथा प्रमाणोपपत्तेर्विचारो न स्यात् । ८ वादिप्रति-  
वादिनी । ९ वादिप्रतिवादिनोः । १० प्रति । ११ अनिललक्षणः । १२ छन्दादिः ।  
१३ निललक्षणः । १४ प्रमाणतर्कान्यां पक्षप्रतिपक्षौ साधनोपालम्भस्वरूपौ जल्पवितण्ड-  
योर्न भवतस्तत्र तयोर्विचारत्वात् । १५ लाभपूजाख्यातयो यथा वादस्यैव । १६ बाधकं  
विरुद्धप्रमाणम् । १७ तस्य परस्य । १८ जल्पवितण्डाभ्यां निखिलबाधकनिराकरणं  
भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । १९ उपक्रमः प्रस्तावः । २० पर प्रतिवादी । २१ सत्याम् ।  
२२ सन्देहं कुर्वन्ति । २३ तत्त्वाभ्यवसायाभावेन । २४ अप्रतिभिः । २५ वादिना ।  
२६ हेतोः । २७ चतुरङ्गजाभावसाधनमविजिगीषुविषयत्वसाधनं तत्त्वाभ्यवसाय-  
संरक्षणार्थरहितत्वसाधनमसिद्धं यतः । २८ सन्निष्ठावैकान्तिकत्वपरिहारमाह ।

रिसमाप्तेः । तथा हि । अद्भुतप्रहस्तानां मर्यादातिक्रमेण प्रवर्त-  
मानानां शक्तिव्यसमन्वितोदासीन्योदिगुणोपेतसमापतिमन्तरेण

“अपक्षपतिताः प्राज्ञाः सिद्धान्तद्वयंवेदिनः ।

असद्वादनियेद्वारः प्राज्ञिकाः प्रग्रहा इव ।” इत्येवंविचप्राज्ञि-  
कांश्च विना को नाम नियामकः स्यात् ? प्रमाणतदाभासपरि- ५  
ज्ञानसामर्थ्योपेतवादिप्रतिवादिभ्यां च विना कथं वादः प्रवर्तते ?

ननु चास्तु चतुरङ्गता घादस्य । जयेतरव्यवस्था तु छलजाति-  
निग्रहस्थानैरेव न पुनः प्रमाणतदाभासयोर्दुष्टतयोद्भावितयोः  
परिहृतापरिहृतदोषमात्रेण, इत्यप्यपेशलम् ; छलादीनामसदुत्तर-  
त्वेन स्वपरपक्षयोः साधनदूषणत्वासम्भवतो जयेतरव्यवस्थानि- १०  
बन्धनत्वायोगात् । ततः परेषां सामान्यतो विशेषतश्च छलादीनां  
लक्षणप्रणयनमयुक्तमेव ।

तत्र सामान्यतश्छललक्षणम्—

“वचनविधातोर्यविकल्पोपपत्त्या छलम्” [ न्यायसू० १।२।१० ]  
इति । “तन्निविर्धं वाक्छलं सामान्यच्छलमुपचारच्छलं च” १५  
[ न्यायसू० १।२।११ ] इति ।

तत्र वाक्छललक्षणं तेषाम्—“अविशेषामिहितैर्यै वक्रुरभि-  
प्रायदर्थान्तरकल्पना वाक्छलम्” [ न्यायसू० १।२।१२ ] इति ।  
अस्योदाहरणम्—‘आढ्यो वै वैधवेयोयं वर्तते नवकम्बलः’ इत्युक्ते  
प्रत्यवस्थानम् कुतोस्य नव कम्बलाः ? नवकम्बलशब्दे हि सामा- २०  
न्यवाचिन्यत्र प्रयुक्ते ‘नवोस्य कम्बलो जीर्णो नैव’ इत्यभिप्रायो  
वक्रुः, तस्मादन्यस्यासम्भाव्यमानार्थस्य कल्पना ‘नव अस्य कम्बला  
नाद्यै’ इति । एवं प्रत्यवस्थातुरन्यायवादित्वात्पराजयः । न खलु  
प्रेक्षावर्ता तत्त्वपरीक्षायां छलेन प्रत्यवस्थानं युक्तमिति यौगौः,  
तेष्वतत्त्वज्ञाः, यतो यथेतेवैतैव जिगीषुर्विगृह्येत तर्हि पत्रवाक्य- २५  
भनेकार्यं व्याचक्षाणोपि निगृह्यताम् । न चैवम् । यत्र हि पक्षे  
वादिप्रतिवादिनोर्विप्रतिपत्त्या प्रवृत्तिस्तत्सिद्धेरेवैकस्य जयोन्यस्य  
पराजयः न त्वनेकार्थत्वप्रतिपादनमात्रम् । एवं च ‘आढ्यो वै

१ प्रवृत्ताहमत्रयेदात् । २ उदासीनःपक्षपातरहितः । ३ आदिना पापनीस्तादि-  
संग्रहः । ४ वादिप्रतिवादिनोः । ५ वाक्योपयुक्तमकीर्तद्वन्द्ववरणराक्षस ( वलीवर्दा-  
वरोपकरजनः ) इव । ६ इति चतुरङ्गत्वं सिद्धं वादस्य । ७ इति चातुर्विध्यम् ।  
८ छलनासादिवादिनाम् । ९ न सुखपिधानेन । १० प्रतिवादिना । ११ दूषणदातुः  
प्रतिवादिनः । १२ श्रुक्षिण्याणाम् । १३ ननुति । १४ अनेकार्थप्रतिपादनमात्रेण ।  
१५ छलवादी ।

वैधवेयो नवकम्बलत्वाद्देवदत्तवत् इति प्रयोगे यदि वक्तुः 'नवः कम्बलोऽस्येति, नवास्य कम्बलाः' इति चार्थद्वयं 'नवकम्बलः' इति शब्दस्याभिप्रेतं भवति तदा- 'कुतोऽस्य नव कम्बलाः' इति प्रत्यवतिष्ठमानो हेतोरसिद्धतामेवोद्भावयति । अन्यस्तु तदुभयार्थसमर्थनेन तदेकतरार्थसमर्थनेन वा हेतुसिद्धिं प्रदर्शयति । नवस्तावदेकः कम्बलोऽस्य प्रतीतो भवता, अन्येऽप्येष्टौ कम्बला गृहे तिष्ठन्तीत्युभयथा नवकम्बलत्वस्य सिद्धेर्नासिद्धतोद्भावनीया । नवकम्बलयोगित्वस्य वा हेतुत्वेनोपादानात्सिद्ध एव हेतुः । इति स्वपक्षसिद्धौ सत्यामेव वादिनो जयः परस्य च पराजयो १० नान्यथा । तत्र वाक्छलं युक्तम् ।

नापि सामान्यच्छलम् । तस्य हि लक्षणम्- "सम्मवतोऽर्थस्या- तिसामान्ययोगादसंभूतार्थकल्पना सामान्यच्छलम्" [ न्यायसू० १।२।१३ ] इति । तथा हि- 'विद्याचरणसम्पत्तिर्ब्राह्मणे सम्भवेत्' इत्युक्तेऽस्य वाक्यस्य विद्यातोऽर्थविकल्पोपपत्त्यैऽसंभूतार्थकल्प- १५ नया क्रियते । यदि ब्राह्मणे विद्याचरणसम्पत्तिसम्भवेति भ्रान्त्येऽपि सम्भवेद्ब्राह्मणत्वस्य तत्रापि सम्भवात् । तदिदं ब्राह्मणत्वं विवक्षितमर्थं विद्याचरणसम्पल्लक्षणं 'कचिद्ब्राह्मणे तौदश्येति' कचिदुभ्रान्त्येऽत्येति तदभावेऽपि भ्रान्त्वात् इत्यतिसामान्यम्, तेन योगाद्वक्तुरभिप्रेतादर्थोत्संभूतादन्यस्यासंभूतार्थस्य कल्पना सामान्य- २० छलम् । तच्चायुक्तम् । हेतुदोषस्यानैकान्तिकत्वस्याभ्रान्त्येऽपरेणोद्भावेनात् । न चानैकान्तिकत्वोद्भावनमेव सामान्यच्छलमर्थं । 'अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद्धटवत्' इत्यादेरपि सामान्यच्छलत्वानु- षङ्गात् । अत्रापि हि प्रमेयत्वं कचिद्धटादावनित्यत्वमेति, आका- शादौ तदभावेऽपि भावादत्येतीति । तथैवाप्यस्यानैकान्तिकत्वेऽपि २५ प्रकृतेऽपि तदस्तु विशेषाभावात् । तत्र सामान्यच्छलमप्युपपन्नम् ।

१ प्रतिवादी । २ वादी । ३ प्रतिवादिना । ४ अन्येऽप्येष्टौ गृहे तिष्ठन्तीति, नवकम्बलयोगित्वस्य वा हेतुत्वेनोपादानात्सिद्ध एव हेतुः । इति स्वपक्षसिद्धौ सत्यामेव वादिनो जयः परस्य च पराजयो नान्यथेति वाक्यरचना द्रष्टव्या । ५ नवो नूतनः । ६ स्वपक्षसिद्धिभावे जयपराजयो न भवतो वादिप्रतिवादिनोरिति । ७ जायमानस्य । ८ अथ विद्याचरणसम्पत्तिमान्भवति ब्राह्मणत्वाच्चाष्ट्यब्राह्मणनदिति । ९ वादिना । १० अर्थस्य विकल्पो भेदस्तस्योप- पत्त्या कृत्वा । ११ तर्हि । १२ अष्टे ब्राह्मणे । १३ कर्तुं । १४ व्यस्यन्तरे सपते । १५ प्राप्नोति । १६ विपक्षरूपे । १७ विद्याचरणसम्पल्लक्षणमर्थं ब्राह्मणत्वं अतिकम्बवर्तते इत्यर्थः । १८ ब्राह्मणत्वस्य । १९ अतिकम्बेन ब्राह्मणत्वम् । २० अनुमाने । २१ अन्यथा । २२ अनुमाने । २३ अतिसामान्ययोगेति ।

नाप्युपचारच्छलम् । तस्य हि लक्षणम्—“धर्मविकल्पनिर्देशोऽर्थसंज्ञावप्रतिषेध उपचारच्छलम्” [न्यायसू० १।२।१४] इति । धर्मस्य हि क्रोशनादेर्विकल्पोऽर्थापेक्षस्तस्य निर्देशे ‘मञ्चाः क्रोशन्ति गायन्ति’ इत्यादौ तात्स्थ्यात्तच्छब्दोपचारेणासङ्गतार्थस्य तु परिकल्पनं कृत्वा परेण प्रतिषेधो विधीयते—‘न मञ्चाः क्रोशन्ति किन्तु मञ्चस्थाः पुरुषाः क्रोशन्ति’ इति । तच्च परस्य पराजयाय जायते यथावक्तुरभिप्रायमप्रतिषेधात् । शब्दप्रयोगो हि लोके प्रधानभावेन गुणभावेन च प्रसिद्धः । ततो यदि वक्तुर्गौणोर्थोभिप्रेतः, तदा तस्यानुष्ठानं प्रतिषेधो वा विधातव्यः । अथ प्रधानभूतः, तदा तस्य ताविति । यदा तु वक्ता गौणमर्थमभिप्रेति प्रधानभूतं परिकल्प्य १० परः प्रतिषेधति तदा तेन स्वमनीषा प्रतिषिद्धा स्यान्न परस्यभिप्राय इति नोस्यायमुपालम्भः स्यात्, तदनुपालम्भार्थासौ परजीयते, इत्यन्यविचारितरमणीयम्; यतो यद्येतौवतैवासौ निगृह्येत तर्हि यौगोपि सकलशून्यवादिनं प्रति मुख्यरूपतया प्रमाणादि-प्रतिषेधं कुर्वन्निगृह्येत, सर्वैवद्वारेण प्रमाणादेस्तेनाभ्युपगमात् । १५ ततः स्वपक्षसिद्धौ परस्य पराजयो न पुनश्छलमात्रेण ।

नापि जातिमात्रेण । तथाहि—तस्याः सामान्यलक्षणम्—“साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः” [न्यायसू० १।२।१८] इति । तस्याभ्यानेकत्वं साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य मेदात् । तथा च न्यायभाष्यकारः—“साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य २० विकल्पौजातिबहुत्वमिति” [न्यायभा० ५।१।१] । ताञ्च खल्विमा जातयः स्थापनाहेतौ प्रत्युक्ते चतुर्विंशतिः प्रतिषेधहेतवः—“साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्षवर्ण्यवर्ण्यविकल्पसाध्यप्राप्त्यऽप्राप्ति-प्रसङ्गप्रतिद्वन्द्वान्तानुपपत्तिसंशयप्रकरणाहेत्वर्थोपपत्त्यविशेषोपपत्त्युपलब्ध्यनुपलब्धिनित्यानित्यकार्यसंमाः” [न्यायसू० ५।१।१] २५ इति सूत्रकारवचनात् ।

१ मुख्यार्थप्रतिषेधः । २ उपचारः । ३ प्रयोगे कृते । ४ प्रतिवादिना । ५ वक्ता-भिप्रायानतिक्रमेण प्रतिषेधः सादृश्यात् । ६ अनुष्ठानप्रतिषेधो विधातव्यो, इयं व्यवस्था अवतु । ७ सा व्यवस्थामात्रं भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । ८ प्रतिवादिना । ९ वादिनः । १० प्रतिषिद्धः । ११ नादिनः । १२ पराजयः । १३ तस्य=वादिनः । १४ प्रतिवादी । १५ गौणैर्भिप्रेते मुख्यार्थप्रतिषेधमात्रेण । १६ ननु सकलशून्यवादिनाऽऽमुख्यरूपतयाभ्युपगतस्य प्रमाणादेर्मुख्यरूपतयैव प्रतिषेधं विदधानः कथं यौगो निगृह्येतेत्याशङ्क्यागाह । १७ उपचारेण । १८ नैतावता प्रतिवादिनः पराजयो यतः । १९ दूषणम् । २० मेदात् । २१ विधिसाध्यस्य । २२ कार्याणि, तैः सम्यः ।

तत्र साधर्म्यसमां जातिं न्यायभाष्यकारो व्याचष्टे-साधर्म्य-  
णोपसंहारे कृते साध्यधर्मविपर्ययोपपत्तेः साधर्म्येण प्रत्यवस्थानं  
साधर्म्यसमः प्रतिषेधः । निदर्शनम्-‘क्रियावानात्मा, क्रियाहेतु-  
गुणाश्रयत्वात्, यो यः क्रियाहेतुगुणाश्रयः स स क्रियावान् यथा  
५ लोष्टः, तथा चात्मा, तस्मात्क्रियावान्’ इति साधर्म्योदाहरणेनोप-  
संहारे कृते परः साध्यधर्मविपर्ययोपपत्तितः साधर्म्योदाहरणेनैव  
प्रत्यवतिष्ठते-‘निष्क्रिय आत्मा विमुद्रव्यत्वादाकाशवत्’ इति । न  
चास्ति विशेषः-‘क्रियावत्साधर्म्यात्क्रियावैता भवितव्यं न पुनर्नि-  
ष्क्रियत्वसाधर्म्यान्निष्क्रियेण’ इति साधर्म्यसमो दूषणमासः । न  
१० ह्यात्मनः क्रियावत्त्वे साध्ये क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वस्य हेतोः स्वसा-  
ध्येन व्याप्तिः विमुद्रव्यनिष्क्रियत्वसिद्धौ विच्छिद्यते । न च तद्-  
विच्छेदे तद्दूषणत्वम्, साध्यसाधनयोर्व्याप्तिविच्छेदसमर्थस्यैव  
दोषत्वैनोपवर्णनात् ।

वार्तिककारस्त्वेवमाह-साधर्म्येणोपसंहारे कृते तद्विपरीतसा-  
१५ धर्म्येण प्रत्यवस्थानं वैधर्म्येणोपसंहारे तत्साधर्म्येण प्रत्यवस्थानं  
साधर्म्यसमः । यथा ‘अनित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात्कुम्भादि-  
वत्’ इत्युपसंहारे परः प्रत्यवतिष्ठते-यद्यनित्यघटसाधर्म्यादय-  
मनित्यो नित्येनाप्याकाशेनास्य साधर्म्यमूर्तत्वमस्तीति नित्यः  
प्राप्तः । तथा ‘अनित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात्, यत्पुनरनित्यं  
२० न भवति तन्नोत्पत्तिधर्मकम् यथाकाशम्’ इति प्रतिपादिते परैः  
प्रत्यवतिष्ठते-यदि नित्याकाशवैधर्म्यादनित्यः शब्दस्तदा साधर्म्य-  
मप्यस्याकाशेनास्त्यमूर्तत्वम्, अतो नित्यः प्राप्तः । अथ सत्यप्ये-  
तस्मिन्साधर्म्ये नित्यो न भवति, न तर्हि वक्तव्यम्-‘अनित्यघट-  
साधर्म्यान्नित्याकाशवैधर्म्याच्चाऽनित्यः शब्दः’ इति ।

२५ वैधर्म्यसमायास्तु जातेः-वैधर्म्येणोपसंहारे कृते साध्यधर्म-  
विपर्ययाद्वैधर्म्येण साधर्म्येण वा प्रत्यवस्थानं लक्षणम् । ‘यथात्मा

१ जातिषु मध्ये । २ साध्यस्य । ३ साधनवादिना । ४ सक्रियत्वलक्षणनिष्क्रियत्वं  
यथा विपर्ययः । ५ जातिवादिना । ६ गमनादि । ७ प्रयत्नोत्त गुणः । ८ अन्येन ।  
९ वादिना । १० प्रतिवादी । ११ क्रियावत्साधर्म्यात्क्रियावान्मवत्तु निष्क्रियवत्साध-  
र्म्यान्निष्क्रियो न भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । १२ आत्मना । १३ निराक्रियते ।  
१४ व्याप्तिविच्छेदो मा भवतु तद्दूषणत्वं न भवत्वित्युक्ते सत्याह । १५ साध्यसम  
इति । १६ उक्तसाधर्म्यात् । १७ वैधर्म्यस्य । १८ वादिना । १९ जातिवादी ।  
२० प्रतिदूषकतया परिवर्तते । २१ तर्हि । २२ वादिना । २३ जातिवादी ।  
२४ उक्तवैधर्म्यात् । २५ यदि । २६ आकाशेन सह शब्दस्य । २७ घटेन सह  
शब्दस्य साधर्म्यात् । २८ शब्दस्य ।

निष्क्रियो विमुत्वात्, यत्पुनः सक्रियं तत्र विमु यथा लोष्टादि, विमुश्चात्मा, तस्मान्निष्क्रियः' इत्युक्ते परः प्राह—निष्क्रियत्वे सत्यात्मनः क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वं न स्यादाकाशवत्, अस्ति चैतत्, ततो नायं निष्क्रिय इति । साधर्म्येण तु प्रत्यवस्थानम्—'क्रियावानेवात्मा क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वात्, य ईदृशः स ईदृशो ५ दृष्टः यथा लोष्टादिः, तथा चात्मा, तस्मात्क्रियावानेव' इति ।

उत्कर्षसमादीनां लक्षणम्—“साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पादुभय-साध्यत्वाच्चोत्कर्षापकर्षवर्ण्यवर्ण्यविकल्पसाध्यसमः” [ न्यायसू० ५।१।४ ] इति ।

तत्रोत्कर्षसमायास्तावल्लक्षणम्—दृष्टान्तधर्म साध्ये समासर्ज-१० यतो मतोत्कर्षसमा जातिः । तद्यथा—'क्रियावानात्मा क्रिया-हेतुगुणाश्रयत्वाल्लोष्टवत्' इत्युक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते—यदि क्रिया-हेतुगुणाश्रयो जीवो लोष्टवत्क्रियावाँस्तदा तद्वदेव स्पर्शवान्भवेत् । अथ न स्पर्शवाँस्तर्हि क्रियावानपि न स्याद्विशेषात् ।

यस्तु तत्रैव क्रियावज्जीवसाधने प्रयुक्ते साध्ये साध्यधर्मिणि १५ धर्मस्याभावं दृष्टान्तात्समासञ्जयन्वक्ति सोऽपकर्षसमां जातिं वक्ति । यथा लोष्टः क्रियाश्रयोऽसर्वगतो दृष्टस्तद्वदात्माप्यसर्वगतोऽस्तु, विपर्यये विशेषो वा वैच्य इति ।

व्यापनीयो वर्ण्योऽव्यापनीयोऽवर्ण्यः । तेन वर्ण्येनावर्ण्येन च समा जातिः । तद्यथावैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते—यथा-२० त्मा क्रियावान् वर्ण्यः साध्यस्तदा लोष्टादिरपि साध्योऽस्तु । अथ लोष्टादिरवर्ण्यस्तर्हि त्माप्यवर्ण्योऽस्तु विशेषाभावादिति ।

विकल्पो विशेषः, साध्यधर्मस्य विकल्पं धर्मान्तरविकल्पात्प्र-सञ्जयतो विकल्पसमा जातिः । यथावैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते—क्रियाहेतुगुणोपेतं किञ्चिद्द्रव्यं दृश्यते यथा लोष्टादि, २५ किञ्चित्तु लघूपलभ्यते यथा वायुः, तथा क्रियाहेतुगुणोपेतमपि किञ्चित्क्रियाश्रयं युज्येत यथा लोष्टादि, किञ्चित्तु निष्क्रियं यथात्मेति ।

१ नादिना । २ आत्मा । ३ सामान्यलक्षणम् । ४ साध्यः=पक्षः । ५ विकल्पः=समारोपः । ६ समारोपयतः । ७ क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वस्य । ८ पक्षे । ९ सर्वगतलक्षणस्य । १० सर्वगतत्वे । ११ नादिना त्वया । १२ साध्यधर्मिण्यर्थः । १३ पक्षः । १४ दृष्टान्तोपि । १५ पक्षोऽस्तु । १६ क्रियाश्रयत्वस्य । १७ भेदश्च । १८ तर्काल-रविकल्पेन प्रत्यवस्थानं विकल्पसमा जातिः । १९ प्रतिवादिनः ।

हेत्वाद्यवयवयोगी धर्मः साध्यः, तमेव दृष्टान्ते प्रसङ्गयतः साध्यसमा जातिः । यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्राह-यदि यथा लोष्टस्तथात्मा तदा यथात्मायं तथा लोष्टः स्यात् । 'संक्रियः' इति साध्यश्चात्मा लोष्टोपि तथा साध्योस्तु । अथ लोष्टः क्रियावाच्यः ५ साध्यः, तदात्मापि क्रियावान्साध्यो मा मूढिशेषो वा वार्ज्य इति ।

दूषणाभासता चासाम्-सत्साधने दृष्टान्तादिसामर्थ्ययुक्ते सति साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पमात्रात्प्रतिषेधस्य कर्तुमशक्यत्वात् । यत्र हि लौकिकेतरयोर्बुद्धिसाम्यं तस्य दृष्टान्तत्वान्न साध्यत्वमिति ।

सम्यक्साधने प्रयुक्ते प्राप्त्या यत्प्रत्यवस्थानं सा प्राप्तिरसमा १० जातिः । अप्राप्त्या तु प्रत्यवस्थानमप्राप्तिसमेति । तद्यथा-हेतुः साध्यं प्राप्य, अप्राप्य वा साधयेत् ? 'प्राप्य चेत्, हेतुसाध्ययोः प्राप्तयोर्युगपत्सम्भवात्कथमेकस्य हेतुतान्यस्य साध्यता युज्येत्' इति प्रत्यवस्थानं प्राप्तिरसमा जातिः । अथ 'अप्राप्य हेतुः साध्यं साधयेत्, तर्हि सर्वसाध्यमसौ साधयेत् । न चाप्राप्तः प्रदीपः १५ पदार्थानां प्रकाशको दृष्टः' इति प्रत्यवस्थानमप्राप्तिसमेति ।

ताविमौ दूषणाभासौ प्राप्तस्यापि धूमादेरङ्ग्यादिसाधकत्वोपलभ्यात्, कृत्तिकोदयादेस्त्वप्राप्तस्य शकटोदयादौ गमकत्वप्रतीतेरिति ।

दृष्टान्तस्यापि साध्यविशिष्टतया प्रतिपत्तौ साधनं वक्तव्यमिति २० प्रसङ्गेन प्रत्यवस्थानं प्रसङ्गसमा जातिः । यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-'क्रियाहेतुगुणयोगात्क्रियावाँलोष्टः' इति हेतुर्नोक्तः । न च हेतुमन्तरेण साध्यसिद्धिः ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वमे-यथैव हि रूपं दिदृक्षूणां प्रदीपोपादानं प्रतीयते न पुनः स्वयं प्रकाशमानं प्रदीपं दिदृक्षूणाम् । २५ तथा साध्यस्यात्मनः क्रियावत्त्वस्य प्रसिद्ध्यर्थं लोष्टस्य दृष्टान्तस्य ग्रहणमभिप्रेतं न पुनस्तस्यैव सिद्ध्यर्थं साधनान्तरस्योपादानम्, वादिप्रतिवादिनोरविवादविषयस्य दृष्टान्तस्य दृष्टान्तत्वोपपत्तेस्तत्र साधनान्तरस्याफलत्वादिति ।

प्रतिदृष्टान्तरूपेण प्रत्यवस्थानं प्रतिदृष्टान्तसमा जातिः । यथा- ३० त्रैव साधने प्रयुक्ते प्रतिदृष्टान्तेन परः प्रत्यवतिष्ठते-क्रिया-

१ आदिना प्रतिष्ठाहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनानि । २ उभयोरपि दृष्टान्तसाध्ययोः साध्यत्वापादनेन प्रत्यवस्थानं साध्यसमा जातिः । ३ प्राक्तनवाक्य विवृणोति-१ ४ सक्रिय इति । ५ अस्ति चेच्छि । ६ स्वया वादिना । ७ उत्कर्षसमादिषण्णाम् । ८ विकल्प आरोपः । ९ विषेयाभावात् । १० हेतुमन्तरेण साध्यसिद्धिर्निमित्तीत्युक्ते सत्याह । ११ कथम् ? तथा हि ।

हेतुगुणाभयमाकाशं निष्कियं दृष्टमिति । १-कः पुनराकाशस्य क्रियाहेतुगुणः? संयोगो वायुना सह । कालत्रयेष्वसम्भवादाकाशे क्रियायाः । न क्रियाहेतुर्वायुना संयोगः इत्यप्यस्मरम् । वायुसंयोगेन वनस्पतौ क्रियाकारणेन समानधर्मत्वादाकाशे वायुसंयोगस्य । यत्त्वसौ तत्र क्रियां न करोति तन्नाकारणत्वात्, ५ किन्तु परममहापरिमाणेन प्रतिबद्धत्वात् । अथ क्रियाकारणवायु-वनस्पतिसंयोगसदृशो वाय्वाकाशसंयोगो न पुनः क्रियाकारणम्, न कश्चिदन्वेवं हेतुरनैकान्तिकः स्यात्-अनित्यः शब्दोऽमूर्तत्वात्सुखादिवत् इत्यत्राप्यमूर्तत्वं हेतुः शब्दोऽन्योन्याकाशोऽस्तसदृश इति कथमस्याकाशेनैकान्तिकत्वम्? सकलानुमानो- १० न्छेदश्च, अनुमानस्य सादृश्यदेव प्रवर्त्तनात् । न खलु ये धूम-धर्माः कैचिद्भूमे दृष्टान्त एवान्यत्र दृश्यन्ते तत्सदृशानामेव दर्शनात् । ततोनेनैकस्यचिद्धेतोरनैकान्तिकत्वं कैचिदनुमानात्प्रवृत्तिं चेच्छता तद्धर्मसदृशस्तद्धर्मोऽनुमन्तव्य इति क्रियाकारणवायुवनस्पतिसंयोगसदृशो वाय्वाकाशसंयोगोऽपि क्रियाकारणमेव । तथा १५ च प्रतिदृष्टान्तेनाकाशेन प्रत्यवस्थानं प्रतिदृष्टान्तसमः प्रतिषेधः ।

स चायुक्तः अस्य दूषणमासत्वात् । तथाहि-यदि तावद्दयं ब्रूते-‘यथायं त्वदीयो दृष्टान्तो कोष्टादितथा मदीयोऽप्यौष्ठादिः’ इति, तदा व्याघातः-एकस्य हि दृष्टान्तत्वेन्यस्यादृष्टान्तत्वमेव, उभयोस्तु दृष्टान्तत्वविरोधः । अथैवं ब्रूते-‘यथायं मदीयो न २० दृष्टान्तस्तथा त्वदीयोऽपि’ इति । तथापि व्याघातः-प्रतिदृष्टान्तस्य ह्यदृष्टान्तत्वे दृष्टान्तस्यादृष्टान्तत्वव्याघातः, प्रतिदृष्टान्ताभावे तस्य दृष्टान्तत्वोपपत्तेः । दृष्टान्तस्य चाऽदृष्टान्तत्वे प्रतिदृष्टान्तस्यादृष्टान्तत्वव्याघातः, दृष्टान्ताभावे तस्य तत्त्वोपपत्तेरिति ।

“प्रागुत्पत्तेः कारणमावाद्या प्रत्यवस्थितिः साऽनुत्पत्तिसमा २५ जातिः” [ व्यत्यसू० ५।१।१२ ] तद्यथा-‘विनम्बरः शब्दः प्रयज्ञानन्तरीयकत्वात्कटादिवत्’ इत्युक्ते परः प्राह-‘प्रागुत्पत्तेरनुत्पत्तेः शब्दे विनम्बरत्वस्य यत्कारणं प्रयज्ञानन्तरीयकत्वं तन्नास्ति ततो-यमविनम्बरः, शाश्वतस्य च शब्दस्य न प्रयज्ञानन्तरं जन्म इति ।

सेयमनुत्पत्त्या प्रत्यवस्था दूषणमासो न्यायातिष्ठानात् । उत्पत्त- ३० ख्ये हि शब्दस्य घर्भिणः प्रयज्ञानन्तरीयकत्वमुत्पत्तिधर्मकत्वं वा

१ ऊदात्ताभिः विभिन्नो यवतिष्ठति । २ शार्ङ्गतादवा । ३ गहनसदृशः । ४ वादिना । ५ पूर्वसदृशः । ६ वादीयादौ । ७ दृष्टान्तः । ८ व्याघातं यावयति । ९ शब्दस्य । १० कारणं तावदादि । ११ प्रसिद्धता । १२ शिष्टम् । १३ न्यायातिष्ठानमेव यावयति ।



भवति नानुत्पन्नस्य । प्रागुत्पत्तेः शब्दस्याऽसत्त्वे किमाश्रययमु-  
पाख्यम् ? न ह्ययमनुत्पन्नोऽसत्त्वेव 'शब्दः' इति 'प्रयत्नान्तरी-  
यकः' इति 'अनित्यः' इति वा व्यपदेशं शक्यः । सत्त्वे तु सिद्ध-  
मेव प्रयत्नान्तरीयकत्वकारणं नश्वरत्वे साध्ये, अतः कथमस्य  
५ प्रतिषेध इति ?

“सामान्यघटयोरैन्द्रियिकत्वे समाने नित्यानित्यसाधर्म्यात्सं-  
शयसमा जातिः ।” [ न्यायसू० ५।१।१४ ] यथा 'अनित्यः शब्दः  
प्रयत्नान्तरीयकत्वाद् घटवत्' इत्युक्ते परः सदूषणमपश्यन्  
संशयेन प्रत्यवतिष्ठते-प्रयत्नान्तरीयकेषु शब्दे सामान्येन साध-  
१० र्म्यैन्द्रियिकत्वं नित्येनास्ति घटेन चानित्येनास्ति, संशयः शब्दे  
नित्यत्वानित्यत्वधर्मयोरिति ।

अस्याश्च दूषणामासत्वम्-शब्दाऽनित्यत्वाऽप्रतिबन्धितत्वात् ।  
यथैव हि पुरुषे शिरःसंयमनादीनां विशेषेण निश्चिते सति न  
स्याणुपुरुषसाधर्म्यादूर्ध्वत्वात् संशयस्तथा प्रयत्नान्तरीयकत्वेन  
१५ विशेषेणानित्ये शब्दे निश्चिते न घटसामान्यसाधर्म्यादैन्द्रियि-  
कत्वात् संशयो युक्त इति ।

“उभयसाधर्म्यात्प्रक्रियासिद्धेः प्रकरणसमा जातिः ।” [ न्याय-  
सू० ५।१।१६ ] यथा अनित्यः शब्दः प्रयत्नान्तरीयकत्वाद् घटवत्  
इत्यनित्यसाधर्म्यात्प्रयत्नान्तरीयकत्वाच्छब्दस्यानित्यतां कश्चि-  
२० त्साधयति । अपरः पुनर्गोत्वादिना सामान्येन साधर्म्यात्तस्य  
नित्यताम् इति, अतः पक्षे विपक्षे च प्रक्रिया समानेति ।

ईदृश्यं च प्रक्रियाऽनतिवृत्त्या प्रत्यवस्थानमयुक्तम् ; विरोधात् ।  
प्रतिपक्षप्रक्रियासिद्धौ हि प्रतिषेधो विरुध्यते । प्रतिषेधोपपत्तौ तु  
प्रतिपक्षप्रक्रियासिद्धिर्व्याहृत्यते इति ।

२५ “त्रैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतुसमा जातिः ।” [ न्यायसू० ५।१।१८ ]  
यथा सत्साधने दूषणमपश्यन्परः प्राह-‘साध्यात्पूर्वं वा साधनम्,  
उत्तरं वा, सहभावि वा स्यात् ? न तावत्पूर्वम् ; असत्ययं तस्य  
साधनत्वानुपपत्तेः । नाप्युत्तरम् ; असति साधने पूर्वं साध्यस्य  
साध्यस्वरूपत्वासम्भवात् । नापि सहभावि ; सतत्त्वतया प्रसिद्धयोः

१ सूयोदर्शनाप्रतिष्ठापः साधर्म्यवैचर्याप्राप्तिप्रतिकूलप्रक्रियादिना पक्षे सन्देहो-  
पादानं संशयसमा जातिः । २ शब्दत्वकक्षणेन । ३ साधर्म्यम् । ४ केशवम्नादिना ।

५ अनित्यनित्याभ्यां घटसामान्याभ्याम् । ६ प्रत्यनुमानेन प्रत्यवस्थानं प्रकरणसमा  
जातिः । ७ ऐन्द्रियिकत्वात् । ८ प्रक्रिया अनुमानरचना । ९ साध्यस्य भावोव  
सिद्धत्वात्किमेव हेतुनेति वाचः ।

साध्यसाधनभाषासम्भवात्सङ्गविन्ध्यवत्<sup>१</sup> इत्यहेतुसमात्वेन प्रत्य-  
क्षानमयुक्तम्<sup>२</sup>; हेतोः प्रत्यक्षतो धूमादेर्वैश्वानरादौ प्रसिद्धेरिति ।

“अर्थापचितः प्रतिपक्षसिद्धेरर्थापत्तिसमा जातिः ।” [न्यायसू०  
५।१।२१] यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः ग्राह-यदि प्रयत्नान्तरी-  
यकत्वेनानित्यः शब्दो घटवत्तदार्थापचितो नित्याकाशसाधर्म्या-<sup>५</sup>  
भिल्लोस्तु । यथैव ह्यस्पर्शवत्त्वं खे नित्ये दृष्टं तथा शब्देऽपि<sup>५</sup> इति ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वम्<sup>३</sup> । सुखादिनानैकान्तिकत्वात् । नचा-  
नैकान्तिकत्वेतोः प्रतिपक्षसिद्धिरिति ।

“एकधर्मोपपत्तेरविशेषे सर्वाविशेषप्रसङ्गात् सत्त्वोपपत्तितो-  
ऽविशेषसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।२३] यथात्रैव साधने<sup>१०</sup>  
प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-प्रयत्नान्तरीयकत्वलक्षणैकधर्मोपपत्ते-  
र्घटशब्दयोरनित्यत्वाविशेषे सत्त्वधर्मस्याप्यखिलायैवोपपत्तेरनि-  
त्यत्वाविशेषः स्यात् ।

तस्याश्च दूषणाभासता, तथा साधयितुमशक्यत्वात् । न खलु  
यथा प्रयत्नान्तरीयकत्वं साधनधर्मः साध्यमनित्यत्वं शब्दे<sup>१५</sup>  
साधयति तथा सर्वार्थे सत्त्वम्, धर्मान्तरस्यापि नित्यत्वस्याका-  
शादौ सत्त्वे सत्त्वपलम्भात्, प्रयत्नान्तरीयकत्वे च सत्त्वऽनित्य-  
त्वस्यैवोपलम्भादिति ।

“उभयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।  
२५] यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः ग्राह-यद्यनित्यत्वे कारणं<sup>२०</sup>  
प्रयत्नान्तरीयकत्वं शब्दस्यास्तीत्यनिलोत्तौ तदा नित्यत्वेऽप्यस्य  
कारणमस्पर्शवत्त्वमस्तीति नित्योप्यस्तु<sup>२५</sup> इत्युभयस्य नित्यत्व-  
स्यानित्यत्वस्य च कारणोपपत्त्या प्रत्यवस्थानमुपपत्तिसमो दूषणा-  
भासः । एवं भुवता खयमेवानित्यत्वकारणं प्रयत्नान्तरीयकत्वं  
तावदभ्युपगतम् । एवं तदभ्युपगमाच्चानुपपद्यस्तत्प्रतिषेध इति ।<sup>२५</sup>

“निर्दिष्टकारणभावेऽप्युपलम्भादुपलब्धिसमा जातिः ।” [न्याय-  
सू० ५।१।२७] यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-‘शाखा-  
विभक्तये शब्दे प्रयत्नान्तरीयकत्वाभावेऽप्यनित्यत्वमस्ति’ इति ।

दूषणाभासत्वं चास्याः, प्रकृतसाधनाप्रतिवन्धित्वात् । न खलु<sup>३०</sup>  
‘साधनमन्तरेण साध्यं न भवति इति’ नियमोऽस्ति, साधनस्यैव

१ वर्षाणस्य प्रसक्तत्वम् । २ घटसाधनम् । ३ अनित्यत्वेन । ४ अस्पर्शवत्त्व-  
मिति । ५ परेणाशीकिमन्ते । ६ यथा सर्वार्थे साधनधर्मः सत्त्वमनित्यत्वं च साधयति  
यथा प्रयत्नान्तरीयकत्वसाधनधर्मोऽनित्यत्वं च साधयतीत्युक्ते सत्याह । ७ निर्दिष्ट-  
साध्यमनैतिकारणत्वमनेति साध्यधर्मोपलम्भात् प्रत्यवस्थानम् । ८ साध्यसाधनम् । ९

साध्याभावेऽभावनियमव्यवस्थितेः । न चानित्यत्वे प्रयत्नानन्त-  
रीयकत्वमेव गमकम्; उत्पत्तिमत्त्वादेरपि तद्गमकत्वात् ।

“तदनुपलब्धेरनुपलम्भादभावसिद्धौ तद्विपरीतोपपत्तेरनुपल-  
ब्धिसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।२९] ‘यथा अविद्यमानः शब्द  
५ उच्चारणात्पूर्वमनुपलब्धेरुत्पत्तेः पूर्वं घटादिवत् । न खलु उच्चारणा-  
त्प्राग्विद्यमानस्य शब्दस्यानुपलब्धिः तदावरणानुपलब्धेः, उत्पत्तेः  
प्राग्घटादेरिव । यस्य तु दर्शनात् प्राग्विद्यमानस्यानुपलब्धिस्तस्य  
नावरणानुपलब्धिः, यथा भूम्याद्यावृतस्योदकादेः, आवरणानुप-  
लब्धिश्च भ्रवणात्प्राक् शब्दस्य ।’ इत्युक्ते परः प्राह-तस्य शब्द-  
१० स्यानुपलब्धेरप्यनुपलम्भादभावसिद्धौ सत्यां शब्दस्याभावविपरी-  
तत्वेन भावस्योपपत्तेरनुपलब्धिसमा जातिः ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वम्; अनुपलब्धेरनुपलब्धिसमावतयो-  
पलब्धिविषयत्वात् । यथैव ह्युपलब्धिरुपलब्धेर्विषयस्तथानुप-  
लब्धिरपि । कथमन्यथा ‘अस्ति मे घटोपलब्धिः तदनुपलब्धिस्तु  
१५ नास्ति’ इति संवेदनमुपपद्यते ?

“साधर्म्यानुल्यधर्मोपपत्तेः सर्वानित्यत्वप्रसङ्गादनित्यसमा  
जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।३३] यथा ‘अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद्  
घटवत्’ इत्युक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-यदि शब्दस्य घटेन साधर्म्यं  
कृतकत्वादिनाऽनित्यत्वं साधयेत्, तदा सर्वं वस्तुनित्यं प्रस-  
२० ज्येत घटादिनाऽनित्येन सत्त्वेन कृत्वा साधर्म्यमात्रस्य सर्वत्राऽ-  
विशेषात् ।

तस्याश्च दूषणाभासत्वम्; प्रतिषेधकस्याप्यसिद्धिप्रसङ्गात् ।  
पक्षो हि प्रतिषेध्यः प्रतिषेधकस्तु प्रतिपक्षः । तयोश्च साधर्म्यं प्रति-  
ज्ञादियोगः तेन विना तयोरसम्भवात् । ततः प्रतिज्ञादियोगाद्यथा  
२५ पक्षस्यासिद्धिस्तथा प्रतिपक्षस्यापि । अथ सत्यपि साधर्म्यं पक्षप्र-  
तिपक्षयोः पक्षस्यैवासिद्धिर्न प्रतिपक्षस्य; तर्हि घटेन साधर्म्या-  
त्कृतकत्वाच्छब्दस्याऽनित्यतास्तु, सकलार्थानां त्वनित्यता तेन  
साधर्म्यमात्रात् मा भूदिति ।

१ तस्य=शब्दस्य । २ सन्निवृत्त्यानैकान्तिकत्वपरिहारमाह । ३ व्यतिरेकनिर्देशन-  
माह । ४ जातिवाची । ५ अनुपलब्धेरप्यभावसिद्धिः कथमित्युक्ते सत्याह । ६ द्वितीया-  
नुमानमाश्रित्य जातिं वदति । ७ कुतः । ८ अनुपलब्धेरुपलब्धिविषयत्वं यदि न  
स्यात् । ९ एकस्यानित्यत्वे सर्वस्यानित्यत्वापादनमनित्यसमा जातिः । १० धर्मण ।  
११ पूर्वोच्चाया जातेः । १२ अन्यथा । १३ प्रतिपक्षस्य । १४ कथम् । १५ प्रति-  
ज्ञादियोगेन ।

“शब्दाऽनित्यत्वोक्तौ नित्यत्वप्रत्यवस्थितिर्नित्यसमा जातिः ।”  
[न्यायसू० ५।१।३५] तद्यथा-‘अनित्यः शब्दः’ इत्युक्ते परः  
प्रत्यवस्थितिष्ठते-शब्दाश्रयमनित्यत्वं किं नित्यम्, अनित्यं वा? यदि  
नित्यम्, तर्हि शब्दोऽपि नित्यः स्यात्, अन्यथास्य तदाधारत्वं  
न स्यात् । अथानित्यम्, तथाप्ययमेव दोषः-अनित्यत्वस्याऽ-  
नित्यत्वे हि शब्दस्य नित्यत्वमेव स्यात् ।

दूषणाभासत्वं चास्याः, प्रकृतसाधनाऽप्रतिबन्धित्वात् । प्रादु-  
र्भूतस्य हि पदार्थस्य प्रध्वंसोऽनित्यत्वमुच्यते, तस्य प्रतिज्ञाने  
प्रतिषेधविरोधः । स्वयं तदप्रतिज्ञाने च प्रतिषेधो निराश्रयः  
स्यात् । तन्नानित्यता शब्दे नित्यत्वप्रत्यवस्थितेर्निराकर्तुं शक्येति । १०

“प्रयत्नानेककार्यत्वात्कार्यसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।३७]  
यथा ‘अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात्’ इत्युक्ते परः प्रत्यव-  
स्थितिष्ठते-प्रयत्नानन्तरं घटादीनां प्रागऽसतामात्मलाभोऽपि प्रतीतः,  
आधारकापनयनौत् प्राक्सतामेवामित्येति । तत्कथमतः शब्द-  
स्यानित्यतेति ? १५

दूषणाभासता चास्याः, प्रकृतसाधनाप्रतिबन्धित्वादेव । शब्दस्य  
हि प्रागसतः स्वरूपलभलक्षणं जन्मैव प्रयत्नानन्तरीयकत्व-  
मुपपद्यते प्रागनुपलब्धिनिमित्तस्याभावेऽप्यनुपलब्धितः सत्त्वास-  
म्भवादिति ।

तदेतद्यौगकल्पितं जातीनां सामान्यविशेषलक्षणप्रणयनमयुक्त-  
मेव, साधनाभासेऽपि साधर्म्यादिना प्रत्यवस्थानस्य जातित्वप्रस-  
ङ्गात् । तथेष्टत्वाच्च दोषः, तथा हि-असाधौ साधने प्रयुक्ते यो  
जातीनां प्रयोगः सोऽनभिज्ञतया वा साधनदोषस्य स्यात्, तद्दोष-  
प्रदर्शनार्थं वा प्रसङ्गव्याजेन, इत्यप्यसमीचीनम्, साधनाभास-  
प्रयोगे जातिप्रयोगस्य उद्योतकत्वेन निराकरणात् । २५

जातिवादी च साधनाभासमेतदिति प्रतिपद्यते वा, न वा? यदि  
प्रतिपद्यते, तर्हि य एवार्थं साधनाभासत्वं हेतुदोषोऽनेन प्रतिपन्नः  
स एव वक्तव्यो न जातिः, प्रयोजनाभावात् । प्रसङ्गव्याजेन दोष-  
प्रदर्शनार्थं सा, इत्यप्ययुक्तम्, अनर्थसंशयात् । यदि हि परप्रयु-

१ पक्षस्यानित्यत्वमस्य नित्यत्वापादनेन तृतीयासः प्रत्यवस्थानं नित्यसमा जातिः ।

२ अङ्गीकारे । ३ उच्यते । ४ प्रयत्नेन । ५ उच्चारणात् । ६ शब्दस्यानुपलब्धौ निमित्त-  
माधारकम् । ७ दूषणम् । ८ गम यौगम् । ९ पूर्वपक्षवादिना । १० जातिवादिना  
प्रयुक्तम् । ११ पूर्वपक्षवादिना प्रयुक्ते । १२ प्रतिवादिप्रयुक्तम् । १३ नैयायिका-  
चार्येण । १४ वादिनः । १५ अनर्थः दोषः ।

कायां जातौ साधनाभासवादी स्वप्रयुक्तसाधनदोषं पश्यन् सभा-  
 श्रमेवं ब्रूयात् 'मया प्रयुक्ते साधनेऽयं दोषः स चानेन नोद्भावितः,  
 जातिस्तु प्रयुक्ता' इति तदा तावज्जातिवादिनो न जयः प्रयोज-  
 नम्, उभयोरज्ञानसिद्धेः । नापि साम्यम्, सर्वथा जयस्यासम्भवे  
 ५ तस्याभिप्रेतत्वात् "ऐकान्तिकं पराजयाद्वरं सन्देहः" [ ]  
 इत्यभिधानात् । तदप्रयोगेऽपि चैतत्समानम्-पूर्वपक्षवादिनो हि  
 साधनाभासाभिधाने प्रतिवादिनश्च तूष्णींभावे यत्किञ्चिदभिधाने  
 वा द्वयोरज्ञानप्रसिद्धितः प्राश्निकैः साम्यव्यवस्थापनात् । यदा च  
 साधनाभासवादी स्वसाधने दोषं प्रच्छाद्य परप्रयुक्तां जातिमेवो-  
 १० द्भावयति तदा न तद्वादिनो जयः साम्यं वा प्रयोजनम्, पराजय-  
 स्यैव सम्भवात् ।

अथ साधनाभासमेतदित्यप्रतिपाद्य जातिं प्रयुङ्क्ते, तथाप्यफल-  
 स्तत्प्रयोगः प्रोक्तदोषानुषङ्गात् । सम्यक्साधने तु प्रयुक्ते तत्प्रयोगः  
 पराजयार्थैव । अथ तूष्णींभावे पराजयोऽवश्यंभावी, तत्प्रयोगे तु  
 १५ कदाचिदसदुत्तरेणापि निरुत्तरः स्यात् इत्यैकान्तिकपराजयाद्वरं  
 सन्देह इत्यसौ युक्त एवेति चेत्, न; तथाप्यैकान्तिकपराजयस्या-  
 निवार्यत्वात् । यथैव ह्युत्तरपक्षवादिनस्तूष्णींभावे सत्युत्तराऽ-  
 प्रतिपत्त्या पराजयः प्राश्निकैर्व्यवस्थान्यते तथा जातिप्रयोगेऽप्यु-  
 त्तरप्रतिपत्तेरविशेषात्, तत्प्रयोगस्यासदुत्तरत्वेनानुत्तरत्वात् ।

२० ननु चास्य पराजयस्यैव व्यवस्थान्येत यद्युत्तराभासत्वं पूर्वपक्षवा-  
 द्युद्भावयेत्, अन्यथा पर्यनुयोज्योपेक्षणास्तस्यैव पराजयः स्यात् ।  
 नन्वेवमुत्तराभासस्योत्तरपक्षवादिनोपन्यासेऽपि अपरस्योद्भावनश-  
 क्यशक्यपेक्षया जयपराजयव्यवस्थायामनवस्था स्यात् । न खलु  
 जातिवादिवदस्यापि तूष्णींभावः सम्भवति, सम्यगुत्तराप्रतिपत्ता-  
 २५ वपि उत्तराभासस्योपन्याससम्भवात् । ततश्चोपन्यस्तजातिस्वरूप-  
 स्यातोऽन्यस्य चोद्भावेऽपि उत्तरपक्षवादिनस्तत्परिहारे शकि-  
 मशक्तिं चापेक्ष्यैव पूर्वपक्षवादिनो जयः पराजयो वा व्यव-  
 स्थान्येत जातिवादिन इवेतरस्योद्भावनशक्यशक्यपेक्ष इति ।  
 जातिलक्षणासदुत्तरप्रयोगादेव तत्परिहाराशक्तिनिश्चयात् पुनरु-  
 ३० पन्यासवैफल्ये सत्साधनाभिधानादेवोत्तराभासत्वोद्भावनशक्तेर-  
 प्यवसायाद् इतरस्यापि कथं तद्वैफल्यं न स्यात् ? सत्साधनाभि-  
 धानात्तदभिधानसामर्थ्यमेवास्यावसीयते न परोपन्यस्तजात्युद्भा-

१ परानयायैव न जयायेति । २ वादिना । ३ प्रतिवादिनः । ४ जातिवादिनः ।  
 ५ स्वयां जातिः प्रयुक्तेति वचनीयं तस्योपेक्षणात् । ६ तस्य उद्भावितस्य । ७ उपन्यासो  
 हि जातेः । ८ निश्चयात् । ९ तस्य=जात्युद्भावनस्य ।

वनसामर्थ्यम्; तर्हि जातिप्रयोगेऽप्युत्तराभासवादिनः सम्यगु-  
त्तराभिधानासामर्थ्यमेवावसीयेत न परोद्भावितजातिपरिहारा-  
सामर्थ्यम् । ननु सदुत्तराभिधानासामर्थ्यादेव तत्परिहारासाम-  
र्थ्यनिश्चयः, तत्सद्भावे हि न सदुत्तराभिधानासामर्थ्यं स्यात्;  
एवं तर्हि सत्साधनाभिधानसामर्थ्यादेवाव्य परोपन्यस्तजात्युद्भाव-  
नशक्त्यवसायोस्तु, तदभावे तदभिधानसामर्थ्यायोगात् । सत्सा-  
धनाभिधानसमर्थस्यापि कदाचिदऽसदुत्तरेण व्यामोहसम्भवाच्च  
तदुद्भावनसामर्थ्यमवश्यंभावीति चेत्; तर्हि जातिवादिनः सदुत्त-  
राभिधानासमर्थस्यापि स्वोपन्यस्तपरोद्भावितोत्तराभासपरिहार-  
सामर्थ्यसम्भवात्पुनरुपन्यासश्चतुर्थोऽपेक्षणीयः स्यात् । साधन-१०  
वादिनोपि तत्परिहारनिराकरणाय पञ्चमः । पुनर्जातिवादिनस्त-  
द्विराकरणयोग्यतावबोधार्थं षष्ठ इत्यनवस्थानं स्यात् ।

ननु नायं दोषः पर्यनुयोज्योपेक्षणस्य प्रतिवादिनाऽनुद्भावनात्,  
'कस्य पराजयः' इत्यनुयुक्ताः प्राशिका एव हि पूर्वपक्षवादिनः पर्य-  
नुयोज्योपेक्षणमुद्भावयन्ति । न खलु निग्रहप्राप्तौ जातिवादी स्व-१५  
कौपीनं विवृणुयात् । तर्हि जात्यादिप्रयोगमपि तं एवोद्भावयन्तु  
न पुनः पूर्वपक्षवादी । पर्यनुयोज्योपेक्षणं ते पूर्वपक्षवादिन एवो-  
द्भावयन्ति न जात्यादिवादिनो जात्यादिप्रयोगमिति महामा-  
ध्यस्थ्यं तेषां येनैकस्य दोषमुद्भावयन्ति नापरस्येति । ततः पूर्वप-  
क्षवादिनं तूष्णींभावादिकमारचयन्तमुत्तराप्रतिपत्तिमुद्भावयन्नेव २०  
जातिवादी निगृह्यतीत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

तत्रापि कथम्भूतेनोत्तराप्रतिपत्त्युद्भावनेनासौ विज्ञेयते ? किं  
स्वोपन्यस्तजात्यपरिज्ञानोद्भावनरूपेण, परोद्भावितजालान्तरनिरा-  
करणलक्षणेन चो(वा, उ)त्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्भावनाऽऽकारेण  
वा ? तत्राद्यविकल्पे 'अपकर्षसमाऽन्या वा जातिर्मया प्रयुक्तापि २५  
न ज्ञातानेन' इत्येवं स्वोपन्यस्तजात्यपरिज्ञानमुद्भावयन्नेात्मनः  
सम्यगुत्तराप्रतिपत्तिमसम्बद्धाभिधायित्वं परकीयसाधनसम्य-  
क्तत्वं चोद्भावयतीति जात्युपन्यासवैयर्थ्यम्, अवश्यम्भावितात्प-

- १ प्राशिकानाम् । २ आद्यपक्षवादिनः । ३ तदव्यवस्थया जातिरुद्भावनीयेत्यर्थः ।  
४ पृष्ठाः । ५ जातिवाद्यं जातिमुक्तवान् त्वया वादिना न सम्भावितेति न प्रतिपाद-  
यतीति भावः । ६ गुणेश्चिदयम् । ७ प्राशिकाः । ८ नोद्भावयन्तीति संवन्धः । ९ उप-  
हासवचनमिदम् । १० प्राशिकानाम् । ११ प्राशिकानां माध्यस्थ्यमात्रो यतः ।  
१२ जानन् । १३ परेण । १४ पक्षे । १५ वादिनम् । १६ पूर्वपक्षवादिनः ।  
१७ परः=वादी । १८ जालान्तरं=जातिविज्ञेयः । १९ निषु विकल्पेषु मध्ये ।  
२० उत्कर्षसमा वा जातिः । २१ पूर्वपक्षवादिना । २२ जातिवादी ।

राज्यस्य । परेणाविज्ञातमात्मनो दोषं स्वयमुद्गावयन्नपि न परा-  
जयमास्कन्दतीति चेत् ; परेणाविज्ञातः स दोष इति कुतोऽवसि-  
तम् ? तूष्णीभावादन्यस्य चोद्गावनादिति चेत् ; न ; वादविस्तरपरि-  
हारार्थत्वात्तस्य । स्ववाग्यञ्जिता हि वादिनो न विचलिष्यन्तीति  
५ स्वयमुद्गावनीयं दोषं परेणोद्गावयितुं तूष्णीभावोऽन्यस्य चोद्गा-  
वनं नाज्ञानात् । स्वयमुद्गाविते हि दोषे जाल्यादिवादी तत्परिहा-  
रार्थं किञ्चिदन्यद्ब्रूयादिति न वादावसानं स्यात् । परस्याऽज्ञान-  
माहात्म्यख्यापनार्थं वा, पर्युक्तैर्विधमस्याज्ञानमाहात्म्यं येन  
स्वयमेव स्वदोषकलापमसत्साधनस्य सम्यक्त्वं चोद्गावयतीति ।  
१० एवं सौध्येन पूर्वपक्षवादिना प्रत्यर्वस्थिते किमत्र जातिवादी  
ब्रूयात्-‘जातिर्मया प्रयुक्तापि न ज्ञातानेनेति वचनानुत्तरकाल-  
मनेनैवसितो दोषकलापो न प्राक्, अतोऽज्ञानेनैव प्रतिवादिना  
तूष्णींभूतमन्यद्वोद्गावितम्’ इति । अत्रापि शपथः शरणम् । ननु  
यदि नाम जानैव पूर्वपक्षवादिना तूष्णींभूतमन्यद्वोद्गावितं  
१५ तथापि तेन सदुत्तरानभिधानात्कथं नास्य पराजयः स्यात् ? तदे-  
तज्जातिवादिनो जात्युपन्यासेषि समानं जातीनां दूषणाभास-  
त्वात् । तस्मान्न खोपन्यस्तजात्यपरिज्ञानोद्गावनरूपेणोत्तराऽप्रति-  
पत्त्युद्गावनेन तूष्णींभूतमन्यद्वोद्गावयन्तमितरं निगृह्णाति ।

द्वितीयविकल्पे खोपन्यस्ता जातिः कथं परोद्गावितजात्यन्त-  
२० ररूपा न भवतीति वादिनेतरः प्रतिपाद्यते ? न तावत्खोपन्यस्त-  
जातिस्वरूपानुवादेन, यथा नेयमुत्कर्षसमा जातिरपकर्षसमत्वा-  
दस्या इति, प्रथमपक्षोदितदोषप्रसङ्गात् । नाप्यनुपलम्भात्, अनु-  
पलम्भमात्रस्याप्रमाणत्वात् । अनुपलम्भविशेषस्यापि खोपन्यस्त-  
जातिस्वरूपोपलम्भलक्षणत्वात्, तत्र चोक्तदोषप्रसङ्गात् । तत्र  
२५ जातिवादी जात्यन्तरमुद्गावयन्तं प्रतिवादिनं तदुद्गावितजात्यन्त-  
रनिराकरणलक्षणेनोत्तराप्रतिपत्त्युद्गावनेन विजयते ।

नाप्युत्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्गावनरूपेण, ‘त्वया न ज्ञातमुत्तरम्’  
इत्युत्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्गावने हि पूर्वपक्षवादिनस्तद्विशेषविषयः  
प्रश्नोऽवश्यंभावी ‘मया तावदुत्तरमुपन्यस्तमेतच्च कथमनुत्तरम्’  
३० इति । जातिवादिना चाख्योत्तराप्रतिपत्तिविशेषोद्गावनीया

१ वादिना । २ तूष्णींभावादेः । ३ प्रतिवादिना । ४ वादिना जात्युद्गावनेषि  
वादावसानं न भविष्यति ततश्च तूष्णींभावोऽन्योद्गावनं च वादावसानाय व्यवहित्युक्ते  
सत्याह । ५ प्रयोजनान्तरं तूष्णींभावादेराह । ६ निरीक्ष्यं सूयं सभ्याः । ७ वसः ।  
८ पर्यनुयुक्ते सति । ९ सक्ताशाह । १० पूर्वपक्षवादिना । ११ दोषम् । १२ पूर्व-  
पक्षवादी । १३ दोषः=उत्तराप्रतिपत्तिः । १४ जातिवादी ।

‘मथोपन्यस्ताप्येषा जातिस्त्वया न ज्ञाता जात्यन्तरं चोद्भावितम्’ इति । अत्र च प्राशुकाशेषदोषानुषङ्गः । तदेवमुत्तराऽप्रतिपत्त्युद्भावनत्रयेऽपि जातिवादिनः पराजयस्यैकान्तिकत्वात् ‘ऐकान्तिक-पराजयाद्वरं सन्देहः’ इति जानन्नपि जात्यादिकं प्रयुक्ते इत्येतद्वचो नैयायिकस्यानैयायिकतामाविर्भावयेत् । ततः स्वपक्षसिद्धयैव जयस्तदसिद्ध्या तु पराजयः, न तु मिथ्योत्तरलक्षणजातिशतैरपीति ।

नोपि निग्रहस्थानैः । तेषां हि “विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम्” [न्यायसू० १।२।१९] इति सामान्यलक्षणम् । विपरीता कुत्सिता वा प्रतिपत्तिर्विप्रतिपत्तिः । अप्रतिपत्तिस्त्वा-१० रम्भविषयेऽनारम्भैः, पक्षमभ्युपगम्य तस्याऽस्थापना, परेण स्थापितस्य वाऽप्रतिषेधः, प्रतिषेद्धस्य चाऽनुद्धार इति । प्रतिज्ञाहान्यादिव्यक्तिगतं तु विशेषलक्षणम् ।

तत्र प्रतिज्ञाहानेस्तावलक्षणम्—“प्रतिदृष्टान्तधर्म्य(मो)र्जुहा स्वदृष्टान्ते प्रतिज्ञाहानिः” [न्यायसू० ५।२।२] “साध्यधर्मप्रत्यनीकेन १५ धर्मेण प्रत्यवस्थितः प्रतिदृष्टान्तधर्म स्वदृष्टान्तेऽनुजानन् प्रतिज्ञां जहातीति प्रतिज्ञाहानिः । यथा ‘अनित्यः शब्द ऐन्द्रियिकैत्वाद् घटवत्’ इत्युक्ते परं प्रत्यवसिष्ठते-सामान्यमैन्द्रियिकं नित्यं दृढम्, कस्यचित् तथा शब्दोपि ? इत्येवं स्वप्रयुक्तस्य हेतोरामास-तामवस्थैरपि कैथावसानमकृत्वा प्रतिज्ञास्यागं करोति-यच्च-२० न्द्रियिकं सामान्यं नित्यं कामं घटोपि नित्योत्तिवति । न (स) कर्त्तव्यं ससाधनस्य दृष्टान्तस्य नित्यत्वं प्रसज्यनिगमनान्तमेव पक्षं जहाति । पक्षं च परित्यज्यप्रतिज्ञां जहातीत्युच्यते प्रतिज्ञा-अयत्वात्पक्षस्य” [न्यायमा० ५।२।२] ।

इति भाष्यकारमतमसङ्गतमेव; साक्षाद्दृष्टान्तहानिरुपत्वात्-२५ स्यात्साधनैव साध्यधर्मपरित्यागात् । परम्परया तु हेतूपनयनिगम-

१ प्राशुकाः=उत्तराप्रतिपत्तिलक्षणादिः । २ पराजयो न सपत्नीतिः । ३ तत्त्वप्रति-  
पत्तेरभावो विप्रतिपत्तिः । ४ कथम् ? तथा हि । ५ नादिपक्षस्य । ६ अपरिहारः ।  
७ ठके-हेतौ दूषणोद्भावेन सति पक्षमभ्युपगमः प्रतिज्ञा । ८ अभ्युपगमः । ९ धर्म-  
धर्मिसमुदायः प्रतिज्ञा तस्या हानिः । १० प्रतिवादिना पूर्वप्रयुक्तो पक्षी । ११ पर-  
कीयोदाहरणधर्मस्य । १२ वादिनः । १३ इन्द्रियग्राह्यत्वात् । १४ वादिना ।  
१५ प्रतिवादी । १६ जानन् । १७ कथा वादः । १८ साधनवादी । १९ वादी ।  
२० अभ्युपगमच्छन् । २१ घटादिर्दृष्टान्तः । २२ प्रतिज्ञाहानेः । २३ छन्दानित्यत्वं  
साध्यधर्मैः ।



नानां त्यागः, दृष्टान्तासाधुत्वे तेषामप्यसाधुत्वात् । तथा च 'प्रतिज्ञाहानिरेव' इत्यसङ्गतम् ।

वार्त्तिककारस्त्वेवमाचष्टे—“दृष्ट्यासार्वन्ते स्थितश्चेति दृष्टान्तः पक्षः स्वपक्षः, प्रतिदृष्टान्तः प्रतिपक्षः । प्रतिपक्षस्य धर्मं स्वपक्षेऽभ्यनुजानन् प्रतिज्ञां जहाति । यदि सामान्यमैन्द्रियिकं नित्यं शब्दोप्येवैमस्त्विति ।” [ न्यायवा० ५।२।२ ]

तदेतदप्युद्धृतकरस्य जाड्यमाविष्करोति; इत्थमेव प्रतिज्ञाहानेरवधारयितुमशक्यत्वात् । प्रतिपक्षसिद्धिमन्तरेण च कस्यचिच्चिग्रहाधिकरणत्वायोगात् । न खलु प्रतिपक्षस्य धर्मं स्वपक्षेऽभ्यनुजानन् एव प्रतिज्ञात्यागो येनार्यमेक एव प्रकारः प्रतिज्ञाहानौ स्यात् । अंधिक्षेपादिभिराकुलीभावात् प्रकृत्या सभाभीरुत्वाद्ऽन्यमनस्कत्वादेर्वा निमित्तात्किञ्चित्साध्यत्वेन प्रतिज्ञाय तद्विपरीतं प्रतिजानतोप्युपलम्भात् पुरुषभ्रान्तेरनेककारणत्वोपपत्तेरिति ।

तथा “प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पात्तदर्थनिर्देशः प्रतिज्ञा-  
१५ न्तरम् ।” [ न्यायसू० ५।२।३ ] प्रतिज्ञातार्थस्याऽनित्यः शब्द इत्यादेरैन्द्रियिकत्वाख्यस्य हेतोर्व्यभिचारोपदर्शनेन प्रतिषेधे कृते तं दोषमनुद्धरन् धर्मविकल्पं करोति ‘किमयं शब्दोऽसर्वगतो घटवत्, किं वा सर्वगतः सामान्यवत्’ इति । यद्यसर्वगतो घटवत्, तर्हि तद्वदेवानित्योस्त्वित्येतत्प्रतिज्ञान्तरं नाम निर्ग्रहस्थानं साम-  
२० न्योऽपरिज्ञानात् । स हि पूर्वस्याः ‘अनित्यः शब्दः’ इति प्रतिज्ञायाः साधनायोत्तराम् ‘असर्वगतः शब्दोऽनित्यः’ इति प्रतिज्ञामाह । न च प्रतिज्ञा प्रतिज्ञान्तरसाधने समर्थाऽतिप्रसङ्गात् ।

इत्यप्येतेनैव प्रत्युक्तम्, प्रतिज्ञाहानिवत्तस्याप्यनेकनिमित्तत्वोपपत्तेः । प्रतिज्ञाहानितश्चास्य कथं मेदः पक्षत्यागस्योभयत्राऽविशेष-  
२५ षात् ? यथैव हि प्रतिदृष्टान्तधर्मस्य स्वदृष्टान्तेऽभ्यनुज्ञानात्पक्षत्यागस्तथा प्रतिज्ञान्तरादपि । यथा च स्वपक्षसिद्ध्यर्थं प्रतिज्ञान्तरं विधीयते तथा शब्दाऽनित्यत्वसिद्ध्यर्थम्, भ्रान्तिवशाच्चद्रच्छब्दोपि नित्योस्त्वित्यभ्यनुज्ञानम् । यथा चाभ्रान्तस्येदं विरुध्यते तथा प्रतिज्ञान्तरमपि । निमित्तमेदाच्च तद्भेदेऽनिष्टनिग्रहस्थानान्तरा-

१ विचारान्नो । २ नित्यत्वलक्षणम् । ३ अनित्ये । ४ वादी । ५ ऐन्द्रियिकत्वाविशेषात् । ६ प्रतिपक्षस्य स्वपक्षेऽभ्युपगमनेनैव । ७ वादिनः प्रतिवादिनो वा । ८ प्रतिदृष्टान्तधर्मस्य स्वपक्षेऽभ्युपगमः । ९ अंधिक्षेपस्तिरस्कारः । १० सामान्येन । ११ मेदम् । १२ वादी । १३ वादिनः । १४ ननु प्रतिज्ञान्तरात्पक्षत्यागस्य स्वपक्षसिद्ध्यर्थं विधीयमानत्वादित्युक्ते सलाह ।

णामप्यनुषङ्गः स्यात् । तेषां तत्रान्तर्भावो वा प्रतिज्ञान्तरस्यापि प्रतिज्ञाहानावन्तर्भावः स्यादिति ।

“प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः प्रतिज्ञैर्विरोधः” [ न्यायसू० ५।२।४ ] यथा गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं रूपादिभ्यो भेदेनानुपलब्धेः । इत्यप्यसुन्दरम् ; यतो हेतुना प्रतिज्ञायाः प्रतिज्ञात्वे निरस्ते प्रकारान्तरतः ५ प्रतिज्ञाहानिरेवेयमुक्ता स्यात्, हेतुदोषो चात्र विरुद्धतालक्षणः, न प्रतिज्ञादोष इति ।

“पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्थापनयनं प्रतिज्ञासंन्यासः ।” [ न्यायसू० ५।२।५ ] यथा ‘अनित्यः शब्द ऐन्द्रियिकत्वाद् घटवत्’ इत्युक्ते पूर्ववत्सामान्येनानैकान्तिकत्वे हेतोरुद्भाविने प्रतिज्ञा-१० संन्यासं करोति-क एवमाह ‘नित्यः(अनित्यः)शब्दः’ ? इत्यपि प्रतिज्ञाहानितो न मिथ्य हेतोरनैकान्तिकत्वोपलम्भेनात्रापि प्रतिज्ञायाः परित्यागाविशेषादिति ।

“अविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषिद्धे विशेषमिच्छतो हेत्वन्तरम् ।” [ न्यायसू० ५।२।६ ] निदर्शनम्-‘एकप्रकृतीदं व्यक्तं विकाराणां १५ परिमाणान्मृतपूर्वकघटशराबोदञ्चनादिवत्’ इत्यस्य व्यभिचारेण प्रत्यवस्थानम्-नानाप्रकृतीनामेकप्रकृतीनां दृष्टं परिमाणमित्यस्य हेतोरहेतुत्वं निश्चित्य ‘एकप्रकृतिसमन्वये विकाराणां परिमाणत्वं’ इत्याह । तदिदमविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषिद्धे विशेषं भुवतो हेत्वन्तरं नाम निग्रहस्थानम् । २०

इत्यप्यसुन्दरम् ; एवं सत्यविशेषोक्ते दृष्टान्तोपनयनिगमने प्रतिषिद्धे विशेषमिच्छतो दृष्टान्ताद्यन्तरमपि निग्रहस्थानान्तरमनुबध्यते तत्राक्षेपसमाधानानां समानत्वादिति ।

“प्रकृतादर्थान् प्रतिस्म्वन्धार्थमर्थान्तरम् ।” [ न्यायसू० ५।२।७ ] यथोक्तलक्षणे पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहे हेतुतः साध्यसिद्धौ प्रकृतायां २५

१ प्रतिज्ञाहान्यादौ । २ यत्र प्रतिज्ञा विरुध्यते हेतुना हेतुर्वा प्रतिषेधा विरुध्यते स प्रतिज्ञाविरोधः । ३ उक्तहेतौ दूषणोद्भावेन स्वसाध्यपरित्यागः प्रतिज्ञासंन्यासः । ४ वादिना । ५ सागम् । ६ अविशेषोक्ते हेतौ व्यभिचारेण प्रतिषिद्धे पक्षादिविशेषोपादानं हेत्वन्तरम् । ७ प्रतिवादिना । ८ प्रधानम् । ९ महदादिकार्यम् । १० वस्तुभेदानाम् । ११ वादिनोक्तानुमानस्य । १२ घटमुकुटपटलकुडशकटदीनाम् । १३ एककारणानुत्पत्तये सवीत्यर्थः । १४ वादी । १५ दृष्टान्ताद्यन्तर निग्रहस्थानं न स्यात्तदेत्वन्तरमपि निग्रहस्थानं नाभूदिति । १६ प्रकृतप्रमेयानुपयोगिवचनमर्थान्तरं नाम निग्रहस्थानम् । १७ वस्तुषर्मावेकाधिकरणावित्यादि ।

प्रकृतं हेतुं प्रमाणसामर्थ्येनोहमसमर्थः समर्थयितुमित्यवश्यमपि  
कथामपरित्यजन्नर्थान्तरमुपन्यस्यति-नित्यः शब्दोऽस्पृशवत्त्वा-  
दिति हेतुः । हेतुश्च हिनोतेर्धातोस्तुप्रत्यये कृदन्तं पदम्, [पदं] च  
नामाख्यातोपसर्गनिपाता इति प्रस्तुत्य नामादीनि व्याचष्टे ।

- ५ तदेतदप्यर्थान्तरं निग्रहस्थानं समर्थं साधने दूषणे वा प्रोक्ते  
निग्रहाय कल्प्येत, असमर्थं वा ? न तावत्समर्थः, स्वसाध्यं प्रसाध्य  
नृत्यतोपि दोषाभावाल्लोकवत् । असमर्थेपि प्रतिवादिनः पक्षसिद्धौ  
तन्निग्रहाय स्यात्, असिद्धौ वा ? प्रथमपक्षे तत्पक्षसिद्धौवात्य  
निग्रहो न त्वतो निग्रहस्थानात् । द्वितीयपक्षेप्यतो न निग्रहः पक्ष-  
१० सिद्धेरुर्मयोरप्यभावादिति ।

“वर्णक्रमनिर्देशवन्निरर्थकम् ।” [ न्यायसू० ५।२।८ ] यथाऽ-  
नित्यः शब्दो जवगडदृक्त्वात् श्रमग्रदधष्वत् । इत्यपि सर्वथार्थ-  
शून्यत्वाग्निग्रहाय कल्प्येत, साध्यानुपयोगाद्वा ? तत्राद्यविकल्पोऽ-  
युक्तः, सर्वथार्थशून्यस्य शब्दस्यैवासम्भवात् । वर्णक्रमनिर्देशस्या-  
१५ प्यनुकार्येणार्थानर्थवत्त्वोपपत्तेः । द्वितीयविकल्पे तु सर्वमेव निग्रह-  
स्थानं निरर्थकं स्यात्, साध्यसिद्धावनुपयोगित्वाविशेषात् । केन-  
चिद्विशेषमात्रेण मेदे वा खात्कृताकम्पहस्तास्फालनकक्षापिष्टिका-  
देरपि साध्यसिद्धानुपयोगिनो निग्रहस्थानान्तरत्वानुपपन्न इति ।

- “परिपत्प्रतिवादिभ्यां त्रिरभिहितमप्यविज्ञातमविज्ञातार्थम् ।”  
२० [ न्यायसू० ५।२।९ ] अत्रेदमुच्यते-वादिना त्रिरभिहितमपि वाक्यं  
परिपत्प्रतिवादिभ्यां मन्दमतित्वादविज्ञातम्, गूढाभिधानतो वा,  
द्रुतोच्चारद्वा ? प्रथमपक्षे सत्साधनवादिनोप्येतन्निग्रहस्थानं स्यात्,  
तत्राप्यनयोर्मन्दमतित्वेनाविज्ञातत्वसम्भवात् । द्वितीयपक्षे तु  
पत्रवाक्यप्रयोगेपि तत्प्रसङ्गो गूढाभिधानतया परिपत्प्रतिवादि-  
२५ नोर्महाप्राज्ञयोरप्यविज्ञातत्वोपलम्भात् । अथाभ्यामविज्ञातमप्येत-  
द्वादी व्याचष्टे, गूढोपन्यासमप्यात्मनः स एव व्याचष्टाम् ।  
अव्याख्याने तु जयाभावा एवास्य न पुनर्निग्रहः, परस्य पक्षसिद्धे-  
रभावात् । द्रुतोच्चारपि अनयोः कथञ्चित् ज्ञानं सम्भवत्येव  
सिद्धान्तद्वयवेदित्वात् । साध्यानुपयोगिनि तु वादिनः प्रलपमाने

१ अत्यर्थवत्त्वादिति । २ वादी । ३ वादय । ४ प्रकृतार्थं परित्यज्यमान्यमर्थं ब्रूते  
इत्यर्थः । ५ तस्य वादिनः । ६ वादिप्रतिवादिनोः । ७ अर्धरहितशब्दोच्चारणं निरर्थकं  
नाम निग्रहस्थानम् । ८ पञ्चाक्षर्यमात्रेण । ९ निरर्थकत्वाग्निग्रहस्थानानाम् ।  
१० वादिना । ११ वादिना त्रिरप्यन्यत्समपि परिपत्प्रतिवादिभ्यामविज्ञातमविज्ञातार्थं  
नान निग्रहस्थानं वादिनः । प्रतिवादिनोप्येवम् । १२ उच्यते ।

तयोरज्ञानं नाविज्ञातार्थं वर्णक्रमनिर्देशवत् । ततो नैदममि(वि)  
ज्ञातार्थं निरर्थकाङ्गिद्यते इति ।

“पौर्वापर्यायोगादप्रतिसम्बन्धार्थमपार्थक्यम् ।” [ न्यायसू० ५।  
२।१० ] यथा दश दाहिमानि षड्रूपाः कुण्डमजाऽजिनं पल्ल-  
पिण्डः । ५

इत्यपि निरर्थकाच्च भिद्यते-यथैव हि जवगडवत्त्वादौ वर्णानां  
नैरर्थक्यं तथात्र पदानामिति । यदि पुनः पदनैरर्थक्यं वर्णनैरर्थ-  
क्यादन्यत्वाच्चिग्रहस्थानान्तरमभ्युपगम्यते; तर्हि वाक्यनैरर्थक्य-  
स्याप्याभ्यामन्यत्वाच्चिग्रहस्थानान्तरत्वं स्यात् । पदवत् पौर्वापर्ये-  
णा(ण)प्रयुज्यमानानां वाक्यानामप्यनेकघोषलम्भात् । १०

“शङ्खः कदल्यां कदली च मेर्यां तस्यां च मेर्यां सुमहद्विमानम् ।

तच्छङ्खमेरीकदलीविमानमुन्मत्तगङ्गप्रतिमं वभूव ॥” [ ]  
इत्यादिवत् । यदि पुनः पदनैरर्थक्यमेव वाक्यनैरर्थक्यं पद-  
समुदायात्मकत्वात्तस्य; तर्हि वर्णनैरर्थक्यमेव पदनैरर्थक्यं स्याद्-  
र्णसमुदायात्मकत्वात्तस्य । वर्णानां सैवैव निरर्थकत्वात्पद- १५  
स्यापि तत्प्रसङ्गश्चेत्; तर्हि पदस्यापि निरर्थकत्वात् तत्समुदाया-  
त्मनो वाक्यस्यापि नैरर्थक्यानुषङ्गः । पदार्थापेक्षया पदस्यार्थवत्त्वे  
वर्णार्थापेक्षया वर्णस्यापि तदस्तु प्रकृतिप्रत्ययादिवर्णवत् । न खलु  
प्रकृतिः केवलं पदं प्रत्ययो वा, नाप्यनयोरनर्थकत्वम् । अभि-  
व्यकार्याभावादनर्थकत्वे पदस्यापि तत्स्यात् । यथैव हि प्रकृत्यर्थः २०  
प्रत्ययेनाभिव्यज्यते प्रत्ययार्थश्च प्रकृत्या तयोः केवलयोरप्रयोगात्,  
तथा ‘देवदत्तस्तिष्ठति’ इत्यादिप्रयोगे सुबन्तपदार्थस्य तिष्ठन्त-  
पदेन तिष्ठन्तपदार्थस्य च सुबन्तपदेनाभिव्यक्तेः केवलस्याप्र-  
योगः । पदान्तरापेक्षस्य पदस्य सार्थकत्वं प्रकृत्यपेक्षस्य प्रत्ययस्य  
तदपेक्षस्य च प्रकृत्यादिवर्णस्य समानमिति । २५

“अवयवविपर्यासवचनमप्राप्तकालम् ।” [ न्यायसू० ५।२।११ ]  
अवयवानां प्रतिज्ञादीनां विपर्यासेनाभिधानमप्राप्तकालं नाम निग्रह-  
ज्ञानम् । इत्यप्यपेक्षलम्; प्रेक्षावतां प्रतिपक्षुणामवयवक्रमनियमं  
विनाप्यर्थप्रतिपत्त्युपलम्भाद्देवदत्तादिवाक्यवत् । ननु यथापशब्दाः

- १ पूर्वापराऽसङ्गतपदकदम्बकोष्ठाणादप्रतिष्ठितवाक्यार्थमपार्थक्यं नाम निग्रहज्ञानम् ।
- २ जन्मसा गङ्गा यस्मिन्प्रदेशेऽसाङ्गान्तरगङ्गाः । ३ नाम्ने पदे च । ४ प्रकृत्यादावपि  
पदानामेवावयवत्वं न पुनर्वर्णानां येन दृष्टान्तः सिद्धः स्यादित्युक्ते तस्याह ।
- ५ वर्णस्य । ६ पदस्य । ७ सार्थकत्वम् । ८ यथाक्रमोक्तत्वेन प्रयुज्यमानमनुमान-  
वाक्यम् । ९ अप्राप्तावसरम् । १० देवदत्त नाम्नात्तु शुद्धां दण्डेनेत्यादिवत् ।

च्छ्रुताच्छब्दस्मरणं तैतोऽर्थप्रत्यय इति शब्दादेवार्थप्रत्ययः परस्पर-  
रया तथा प्रतिज्ञाद्यवयवव्युत्क्रमात् तत्कमस्मरणं तैतो वाक्यार्थ-  
प्रत्ययो न तद्युत्क्रमात्; इत्यप्यसारम्; एवंविधप्रतीत्यभावात् ।  
यस्माद्धि शब्दादुच्चरिताद्यत्रार्थे प्रतीतिः स एव तस्य वाचको  
५ नान्यः, अन्यथा 'शब्दात्तत्क्रमाच्चापशब्दे तद्युत्क्रमे च स्मरणं तैतो-  
ऽर्थप्रतीतिः' इत्यपि वक्तुं शक्येत । एवं शब्दाद्यन्वाख्यानवैयर्थ्यं  
चेत्; न; एवं वादिनोऽनिष्टमात्रापादनात्, अपशब्देऽपि चान्वाख्या-  
नस्योपलम्भात् । 'संस्कृताच्छब्दात्सत्याद्धर्मोऽन्यस्मादऽधर्मः' इति  
नियमे चान्यधर्माधर्मोपायानुष्ठानवैयर्थ्यम् । धर्माधर्मयोश्चाप्रति-  
१० नियमप्रसङ्गः; अधार्मिके धार्मिके च तच्छब्दोपलम्भात् । भवतु  
चा तत्क्रमादर्थप्रतीतिः, तथाप्यर्थप्रत्ययः क्रमेण स्थितो येन  
वाक्येन व्युत्क्रम्यते तद्विरर्थकं न त्वऽप्राप्तकालमिति ।

"शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तमन्यत्रानुवादात् ।" [ न्यायसू०  
५।२।१४ ] तत्रार्थपुनरुक्तमेवोपपन्नं न शब्दपुनरुक्तम्; अर्थमेवे  
१५ शब्दसाम्येऽप्यस्याऽसम्भवात्

"इसति इसति स्वामिन्युच्चैरुदत्यतिरोदिति,  
कृतपरिकरं स्वेदोद्गारं प्रधावति धावति ।  
गुणसमुदितं दोषापेतं प्रणिन्दति निन्दति,  
धनलवपरिकीतं यैत्रं प्रनृत्यति नृत्यति ।"

२०

[ वादन्यायपृ० १११ ]

इत्यादिवत् । तैतः स्वेष्टार्थवाचकैस्तैरेवान्यैर्वा शब्दैः सत्याः  
प्रतिपादनीयाः । तत्प्रतिपादकशब्दानां तु संकल्पुनः पुनर्वाभि-  
धानं निरर्थकं न तु पुनरुक्तम् । यद्य(द)न्यथादापर्षस्य स्वशब्देन  
पुनर्वचनं पुनरुक्तमुक्तम् । यथा 'उत्पत्तिधर्मकमनित्यम्'  
२५ इत्युक्त्वाऽर्थादापन्नस्यार्थस्य योऽभिधायकः शब्दस्तेन स्वशब्देन  
ब्रूयात् 'नित्यमनुत्पत्तिधर्मकम्' इति । तदपि प्रतिपक्षार्थप्रति-  
पादकत्वेन वैयर्थ्याभिग्रहस्थानं नान्यथा । तथा चेदं निरर्थकाञ्च  
विशेष्येतेति ।

१ सत्यशब्दस्य । २ स्मृतशब्दात् । ३ विपर्ययात् । ४ स्मृतकमात् । ५ स्मृता-  
पशब्दात्स्मृततत्क्रमात् । ६ शब्दादेरपशब्दादिस्मरणप्रकारेण । ७ पुनः पुनः कथन-  
मन्वाख्यानम् । ८ संस्कृताच्छब्दाद्धर्मोऽन्यस्मादधर्म इति नियमाच्चापशब्देऽन्वाख्यापन-  
मस्तीत्युक्ते सत्याह । ९ इत्याऽच्छवनादिरन्यः । १० सति । ११ क्रियाविशेषणम् ।  
१२ क्रियाविशेषणम् । १३ गौल्येन सङ्गृहीतम् । १४ यत्रमिव यत्र=मूलः ।  
१५ शब्दपौनरुक्त्यमुपपन्नं न भवेत्ततः । १६ प्रथमोच्चारितैः । १७ कथनानन्तर-  
नेकवारम् । १८ अर्थस्य । १९ पुनरुक्तत्वप्रकारेण ।

“विज्ञातस्य परिषदा त्रिरभिहितस्याऽप्रत्युच्चारणमननुभाषणम् ।” [न्यायसू० ५।२।१६] अप्रत्युच्चारयन्किमाश्रयं परपक्षप्रतिषेधं ब्रूयात्? इत्यत्रापि किं सर्वस्य वादिनोक्तस्याननुभाषणम्, किं वा यन्नान्तरीयिका साध्यसिद्धिस्तस्येति? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; परोक्तमशेषमप्रत्युच्चारयतोपि दूषणवचनाऽव्याधातात् । यथा ५ ‘सर्वमनित्यं सत्त्वात्’ इत्युक्ते ‘सत्त्वात् इत्ययं हेतुर्विरुद्धः’ इति हेतुमेवोच्चार्य विरुद्धतोद्भाष्यते-‘क्षणक्षयाद्येकान्ते सर्वथार्थक्रियाविरोधात्सत्त्वानुपपत्तेः’ इति, समर्थ्यते च, तावता च परोक्तहेतोर्दूषणात्किमन्योच्चारणेन? अतो यन्नान्तरीयिका साध्यसिद्धिस्तस्यैवाऽप्रत्युच्चारणमननुभाषणं प्रतिपत्तव्यम् । अथैवं दूषयितुम्-१० समर्थः शास्त्रार्थपरिज्ञानविशेषविकलत्वात्; तदाऽयमुत्तराऽप्रतिपत्तेरेव तिरस्क्रियते न पुनरननुभाषणादिति ।

“अविज्ञातं चाज्ञानम् ।” [न्यायसू० ५।२।१७] विज्ञातार्थस्य परिषदा प्रतिवादिना यदविज्ञातं(न)तदज्ञानं नाम निग्रहस्थानम् । अज्ञानं कस्य प्रतिषेधं ब्रूयात्? इत्यप्यसारम्; प्रतिज्ञाहान्यादि-१५ निग्रहस्थानानां सेदाभावात्तुल्यत्वात् तत्राप्यज्ञानस्यैव सम्भवात् । तेषां तत्प्रमेदत्वे वा निग्रहस्थानप्रतिनियमाभावप्रसङ्गः परोक्तस्याज्ञानादिभेदेन निग्रहस्थानानेकत्वसम्भवात् ।

“उत्तरस्याप्रतिपत्तिरप्रतिभा ।” [न्यायसू० ५।२।१८] साध्यज्ञानान्न भिद्यत एव । २०

“निग्रहप्राप्तस्योनिग्रहः पर्यनुयोज्योपेक्षणम् ।” [न्यायसू० ५।२।२१] पर्यनुयोज्यो हि निग्रहोपपत्त्या चोद्दीयस्तस्योपेक्षणं ‘निग्रहं प्राप्तोति’ इत्यननुयोग एव । एतच्च ‘कस्य पराजयः’ इत्यनुयुक्त्या परिषदा वचनीयम् । न खलु निग्रहप्राप्तः स्वं कौपीनं विवृणुयात् । इत्यप्यज्ञानान्न व्यतिरिच्यत एव । २५

“अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानानुयोगो निरनुयोज्यानुयोगः ।” [न्यायसू० ५।२।२२] तस्याप्यज्ञानात्पृथग्भावोनुपपन्न एव ।

१ वादिवा । २ प्रतिवादिना । ३ प्रतिवाधुकस्य । ४ प्रतिवादिना । ५ अन्यत् कर्मिस्ताम्नादि । ६ सर्वस्य वादिनोक्तस्याननुभाषणं न घटते कतः । ७ परेण । ८ हेतु-चारणं कृत्वा । ९ प्रतिवादी । १० प्रतिवादी । ११ परिषदा विज्ञातस्यापि वादिवाक्यस्य प्रतिवादिना यदविज्ञातं तदज्ञानं नाम । १२ प्रतिवादी । १३ आदिना जडादौदिग्रहः । १४ प्राप्तदोषानुज्ञातनं पर्यनुयोज्योपेक्षणं नाम निग्रहस्थानम् । १५ प्रतिवादिनः । १६ इदं चे निग्रहस्थानमायातवतो निग्रहीतोसीति वचनीयः । १७ पृष्ट्या । १८ शुद्धम् । १९ दोषरहिते दोषोद्भावनं निरनुयोज्यानुयोगो नाम निग्रहस्थानम् ।

“कार्यव्यासङ्गात्कथाविच्छेदो विक्षेपः ।” [न्यायसू० ५।२।१९] सिसाधयिषितस्यार्थस्याऽऽशङ्क्यसाध्यतामवसीर्य कालयापनार्थं यत्कर्त्तव्यं व्यासज्य कथां विच्छिनत्ति-इदं मे करणीयं परिहीयते, तस्मिन्नवसिते पञ्चात्कथयिष्यामि । इत्यप्यज्ञानतो नार्थान्तरमिति ५ प्रतिपत्तव्यम् ।

“स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात् परपक्षे दोषप्रसङ्गो मतानुज्ञा ।” [न्यायसू० ५।२।२०] यैः परेण चोदितं दोषमनुसृत्य ब्रवीति-‘भव-  
त्पक्षेऽप्ययं दोषः समानः’ इति, स स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात्परपक्षे दोषं प्रसजन् परमतमनुजानातीति मतानुज्ञा नाम निग्रहस्थान-  
१० मापद्यते । इत्यप्यज्ञानाच्च मिद्यते एव । अनैकान्तिकता चात्र हेतोः, तथाहि-‘तस्करोऽयं पुरुषत्वात्प्रसिद्धतस्करवत्’ इत्युक्ते ‘त्वमपि तस्करः स्यात्’ इति हेतोरनैकान्तिकत्वमेवोक्तं स्यात् । स चात्मीयहेतोरार्त्तमनैवानैकान्तिकत्वं दृष्ट्वा ग्राह्य-भक्त्यपक्षेऽप्ययं दोषः समानः-त्वमपि पुरुषोऽसि इत्यनैकान्तिकत्वमेवोक्तं-  
१५ यतीति ।

“हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन न्यूनम् ।” [न्यायसू० ५।२।१२] यस्मिन्वाक्ये प्रतिज्ञादीनामन्यतमोऽवयवो न भवति तद्वाक्यं हीनं नाम निग्रहस्थानम् । साधनाभावे साध्यसिद्धेरभावात्, प्रतिज्ञादीनां च पञ्चानामपि साधनत्वात्, इत्यप्यसमीचीनम्, पञ्चावयवप्रयोग-  
२० मन्तरेणापि साध्यसिद्धेः प्रतिपादितत्वात्, पक्षहेतुवचनमन्तरेणैव तत्सिद्धेरभावात् अतस्तद्हीनमेव न्यूनं निग्रहस्थानमिति ।

“हेतुदाहरणाधिकमधिकम् ।” [न्यायसू० ५।२।१३] यस्मिन्वाक्ये द्वौ हेतु द्वौ वा दृष्टान्तौ तदधिकं निग्रहस्थानम्, इत्यपि वार्त्तम्, तथाविधाद्वयत्वात्पक्षप्रसिद्धौ परजयायोगात् । कथं चैवं प्रमा-  
२५ णसंपूर्णवोभ्युपगम्यते ? अभ्युपगमे वाधिकत्वाच्चिग्रहाय जायेत । ‘प्रतिपत्तिदार्ढ्य-संवादसिद्धिप्रयोजनसङ्गावाच्च निग्रहः’ इत्यन्यत्रापि समानम् । हेतुना दृष्टान्तेन वैकेन प्रसाधितेऽप्यर्थे द्वितीयस्य हेतोर्दृष्टान्तस्य वा नानर्थक्यम्, तत्प्रयोजनसङ्गावात् । न चैवमनवस्थाः, कस्यचित्कर्त्तृचिन्निराकाङ्क्षतोपपत्तेः प्रमाणान्तरवत् । कथं  
३० चास्यै कृतकर्त्तृर्वादी स्वार्थिककप्रत्ययवचनम्, ‘यत्कृतकं तदनि-

१ ज्ञात्वा । २ स्वपक्षोक्तदोषमपरिहृत्य परपक्षेऽपि दूषणमुद्गावयतो मतानुज्ञा नाम निग्रहस्थानम् । ३ वादी । ४ प्रतिवादिना । ५ स्वपक्षे । ६ सम्बन्धवद् । ७ वादी । ८ स्वयम् । ९ अनुमानस्य । १० अधिकस्य निग्रहस्थानत्वप्रकारेण । ११ एकसि-  
न्प्रमाणविषये प्रमाणान्तरवचनं प्रमाणसंज्ञकः । १२ परेण । १३ हेतुदृष्टान्तान्तरा-  
न्वेषणप्रकारेण । १४ अनुमाने । १५ अधिकनिग्रहस्थानवादिनः । १६ साधने ।

त्यम्' इति व्याप्तौ यत्तद्वचनम्, वृत्तिपदप्रयोगादेव चार्थप्रति-  
पत्तौ वाक्यप्रयोगः अधिकत्वाभिग्रहस्थानं न स्यात्? तैथाविध-  
स्याप्यस्य प्रतिपत्तिविशेषोपायत्वाच्चेति चेत्, कथमनेकस्य हेतो-  
र्द्वैष्टान्तस्य वा तदुपायभूतस्य वचनं निग्रहाधिकरणम्? निरर्थकस्य  
तु वचनं निरर्थकत्वादेव निग्रहस्थानं नाधिकत्वादिति । ५

“सिद्धान्तमभ्युपेत्यानियमात्कथाप्रसङ्गोऽपसिद्धान्तः ।” [न्याय-  
सू० ५।२।२३] प्रतिज्ञातार्थपरित्यागाभिग्रहस्थानम् । यथा नित्या-  
नऽभ्युपेत्य शब्दादीन् पुनरनित्यान् ब्रूते । इत्यपि प्रतिवादिनः  
प्रतिपक्षसाधने सत्येव निग्रहस्थानं नान्यथा ।

“हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः ।” [न्यायसू० ५।२।२४] असिद्धवि-१०  
रुद्धनैकान्तिककालात्ययापदिष्टप्रकरणसमा निग्रहस्थानम् । इत्य-  
त्रापि विरुद्धहेतुद्भावेन प्रतिपक्षसिद्धेर्निग्रहाधिकरणत्वं युक्तम् ।  
असिद्धाद्युद्भावेन तु प्रतिवादिना प्रतिपक्षसाधने कृते तद्युक्तं  
नान्यथेति ।

एतेनैसाधनाङ्गवचनं निग्रहस्थानं प्रत्युक्तम्, एकस्य स्वय-१५  
सिद्धौवान्यस्य निग्रहप्रसिद्धेः । ततः स्थितमेतत्—

“स्वपक्षसिद्धेरेकस्य निग्रहोऽन्यस्य वादिनः ।

नासाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः ॥” [ ] इति ।

इदं चानवस्थितम्—

“असाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः ।

२०

निग्रहस्थानमन्यत्तु न युक्तमिति नैष्यते ॥” [वादन्यापृ० १]  
इति । अत्र हि स्वपक्षं साधयन् वादिप्रतिवादिनोरन्यतरोऽसाधना-  
ङ्गवचनादऽदोषोद्भावनान्ना परं निगृह्णाति, असाधयन्वा? प्रथम-  
पक्षे स्वपक्षसिद्धौवासा पराजयादन्योद्भावनं व्यर्थम् । द्वितीयपक्षे तु  
असाधनाङ्गवचनाद्युद्भावेनेपि न कस्यचिजयः पक्षसिद्धेरभयोर-२५  
भावात् ।

यच्चास्य व्याख्यानम्—“साधनं सिद्धिः तदङ्गं त्रिरूपं लिङ्गम्,  
तस्याऽवचनं तूर्णीभावो यत्किञ्चिद्भाषणं वा । साधनस्य वा

१ समासोऽत्र वृत्तिः । २ सादेव । ३ अधिकत्वाभिग्रहस्थानत्वं कः कारयेत्-  
वचनम् । ४ निरर्थकत्वाभिग्रहस्थानं भविष्यतीत्युक्ते सलाह । ५ स्वीकृतागमविरुद्ध-  
प्रसाधनमपसिद्धान्तो नाम निग्रहस्थानम् । ६ प्रतिपक्षसिद्ध्याने । ७ सौम्यतममेतत् ।  
८ आदिना अदोषोद्भावनानादि । ९ वादिप्रतिवादिनोः । १० पददीर्घं व्याख्यान-  
मस्त्यग्रे । ११ असाधनाङ्गवचनं वादिन एव निग्रहस्थानमदोषोद्भावनं तु प्रतिवादिन  
यमेति द्वयोरिति पदयुक्तम् । १२ हेतोः । १३ अन्वयस्य दोषस्य ।



त्रिरूपलिङ्गस्याङ्गं समर्थनम् विपक्षे बाधकप्रमाणदर्शनरूपम्,  
तस्याऽवचनं वादिनो निग्रहस्थानम्” [ वादन्यायपृ० ५-६ ]  
इति । तत्पञ्चावयवप्रयोगवादिनोपि समानम्-शक्यं हि तेनाप्येवं  
वक्तुम्-सिद्धिङ्गस्य पञ्चावयवप्रयोगस्यावचनात्सौगतस्य वादिनो  
५ निग्रहः । ननु चास्य तदवचनेपि न निग्रहः, प्रतिज्ञानिगमनयोः  
पक्षधर्मोपसंहारस्य सामर्थ्याद्गम्यमानत्वात् । गम्यमानयोश्च वचने  
पुनरुक्तत्वानुषङ्गात् । ननु तत्प्रयोगेपि हेतुप्रयोगमन्तरेण साध्यार्थ-  
प्रसिद्धिः, इत्यप्यपेशलम्, पक्षधर्मोपसंहारस्याप्येवमवचनानुष-  
ङ्गात् । अथ सामर्थ्याद्गम्यमानस्यापि ‘यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकं यथा  
१० घटः संश्च शब्दः’ इति पक्षधर्मोपसंहारस्य वचनं हेतोरपक्षध-  
र्मत्वेनासिद्धत्वव्यवच्छेदार्थम्, तर्हि साध्याधारसन्देहापनोदार्थं  
गम्यमानस्यापि पक्षस्य निगमनस्य च पक्षहेतुदाहरणोपनयाना-  
मेकार्थत्वप्रदर्शनार्थं वचनं किञ्च स्यात् ? न हि पक्षादीनामेकार्थ-  
त्वोपदर्शनमन्तरेण सकृत्तत्वं घटते; भिन्नविषयपक्षादिवत् ।

१५ ननु प्रतिज्ञातः साध्यसिद्धौ हेत्वादिवचनमनर्थकमेव स्यात्,  
अन्यथा नास्याः साधनाङ्गतेति चेत्, तर्हि भवतोपि हेतुतः साध्य-  
सिद्धौ दृष्टान्तोनर्थकः स्यात्, अन्यथा नास्य साधनाङ्गतेति समा-  
नम् । ननु साध्यसाधनयोर्व्याप्तिप्रदर्शनार्थत्वाद् दृष्टान्तो नानर्थकः  
तत्र तदप्रदर्शने हेतोरगमकत्वात्, इत्यप्यसङ्गतम्, सर्वानित्यत्व-  
२० साधने सत्त्वादेर्दृष्टान्ताऽसम्भवतोऽगमकत्वानुषङ्गात् । विपक्षव्या-  
वृत्त्या सत्त्वादेर्गमकत्वे वा सर्वत्रापि हेतौ तथैव गमकत्वप्रसङ्गाद्  
दृष्टान्तोनर्थक एव स्यात् । विपक्षव्यावृत्त्या च हेतुं समर्थयन्  
कथं प्रतिज्ञां प्रतिक्षिपेत् ? तस्याश्चानभिधाने क हेतुः साध्यं वा  
वर्त्तते ? गम्यमाने प्रतिज्ञाविषये एवेति चेत्, तर्हि गम्यमानस्यैव  
२५ हेतोरपि समर्थनं स्यान्न तूक्तस्य । अथ गम्यमानस्यापि हेतोर्म-  
न्दमतिप्रतिपत्त्यर्थं वचनम्, तथा प्रतिज्ञावचने कोऽपरितोषः ?

यच्चेदम्-‘असाधनाङ्गम्’ इत्यस्य व्याख्यान्तरम्-“साधर्म्येण  
हेतोर्वचने वैधर्म्यवचनं वैधर्म्येण वा प्रेत्योरो साधर्म्यवचनं गम्य-  
मानत्वात् पुनरुक्तम् । अतो न साधनाङ्गम् ।” [ वादन्यायपृ०  
३० ६५ ] इत्यप्यसाम्प्रतम्, यतः सम्यक्साधनसामर्थ्येन स्वपक्षं  
साधयतो वादिनो निग्रहः स्यात्, अप्रसाधयतो वा ? प्रथमपक्षे कथं

१ व्याख्यानम् । २ गौगल । ३ सौगतमतमाळम्भ्याचार्येणोच्यते । ४ प्रतिज्ञा-  
निगमनप्रकारेण । ५ व्यतिरेकेण । ६ सौगतस्य । ७ हेतुतः साध्यसिद्धिर्न भवतीति  
चेत् । ८ साध्यस्याऽज्ञापको भवति-हेतुरिति भावः । ९ विपक्षो न निलः ।  
१० सौगतः । ११ प्रतिपादनम् । १२ हेतोर्वचने । १३ प्रतिपादनम् ।

साध्यसिद्धयऽप्रतिबन्धवचनाधिक्योपलम्भमात्रेणास्य निग्रहो विरोधात् ? नन्वेवं नाटकादिघोषणातोष्यस्य निग्रहो न स्यात् ; सत्यमेवैतत् ; स्वसाध्यं प्रसाध्य नृत्यतोपि दोषाभावाल्लोकवत् । अन्यथा ताम्बूलभक्षणभ्रूक्षेपखातृताकम्पहस्तास्फालनादिभ्योपि सत्यसाधनवादिनो निग्रहः स्यात् । अथ स्वपक्षमप्रसाधयतोऽस्य ५ निग्रहः ; नन्वत्रापि किं प्रतिवादिना स्वपक्षे साधिते वादिनो वचनाधिक्योपलम्भान्निग्रहो लक्ष्येत, असाधिते वा ? प्रथमविकल्पे स्वपक्षसिद्धेर्वास्य निग्रहाद्वचनाधिक्योद्भावनमनर्थकम्, तस्मिन् सत्यपि स्वपक्षसिद्धिमन्तरेण जयायोगात् । द्वितीयपक्षे तु युगपद्वादिप्रतिवादिनोः पराजयप्रसङ्गो जयप्रसङ्गो वा स्यात्स-१० पक्षसिद्धेरभावाविशेषात् ।

ननु न स्वपक्षसिद्धयसिद्धिनिवन्धनौ जयपराजयौ तयोर्ज्ञानाज्ञाननिवन्धनत्वात् । साधनवादिना हि साधु साधनं ज्ञात्वा वक्तव्यं वृषणवादिना च तद्रूपणम् । तत्र साधर्म्यवचनाद्वैधर्म्यवचनाद्वाऽर्थस्य प्रतिपत्तौ तदुभयवचने वादिनः प्रतिवादिना सभायामसा-१५ धनाद्वचनस्योद्भावेनात् साधुसाधनाभिधानाज्ञानसिद्धेः पराजयः, प्रतिवादिनस्तु तद्रूपणज्ञाननिर्णयाजयः स्यात् ; इत्यप्यविचारितरमणीयम्, विकल्पानुपपत्तेः । स हि प्रतिवादी निर्दोषसाधनवादिनो वचनाधिक्यमुद्भावयेत्, साधनाभासवादिनो वा ? तत्राद्यविकल्पे वादिनः कथं साधुसाधनाभिधानाऽज्ञानम्, २० तद्वचनेयत्ताज्ञानस्यैवासम्भवात् ? द्वितीयविकल्पे तु न प्रतिवादिनो रूपणज्ञानमवतिष्ठते साधनाभासस्यानुद्भावेनात् । तद्वचनाधिक्यदोषस्य ज्ञानाद्रूपणज्ञोसाविति चेत्, साधनाभासाज्ञानादद्रूपणज्ञोपीति नैकान्ततो वादिनं जयेत्, तद्दोषोद्भावनलक्षणस्य पराजयस्यापि निवारयितुमशक्तेः । अथ वचनाधिक्यदोषोद्भाव-२५ नादेव प्रतिवादिनो जयसिद्धौ साधनाभासोद्भावनमनर्थकम् ; नन्वेवं साधनाभासानुद्भावनात्तस्य पराजयसिद्धौ वचनाधिक्योद्भावनं कथं जयाय प्रकल्प्येत ? अथ वचनाधिक्यं साधनाभासं चोद्भावयतः प्रतिवादिनो जयः, कथमेवं साधर्म्यवचने वैधर्म्यवचनं तद्वचने वा साधर्म्यवचनं जयाय प्रमवेत् ? ३०

१ सम्यक्सिद्धिसिद्धिभेदनिग्रहः कथं निग्रहश्चेत्सा कथमिति विरोधः । २ साध्यसिद्धयप्रतिबन्धवचनाधिक्यमात्रतोपि न निग्रह इति प्रक्षरेण । ३ साधनरूपणं ज्ञात्वा वक्तव्यम् । ४ साध्यलक्षणम् । ५ यथावत्परिमाणेन साधुसाधनं वाच्यमिति ज्ञानस्य । ६ सर्वथा । ७ ततश्च जयादेवोभयवचनम् ।

कथं चैवं वादिप्रतिवादिनोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहवैयर्थ्यं न स्यात् ? कचिदेकत्रापि पक्षे साधनसामर्थ्यज्ञानज्ञानयोः सम्भवात् । न खलु शब्दादौ नित्यत्वस्यानित्यत्वस्य वा परीक्षायाम् एकस्य साधनसामर्थ्यं ज्ञानमन्यस्य चाज्ञानं जयस्य पराजयस्य वा ५ निबन्धनं न सम्भवति । युगपत्साधनसामर्थ्यस्य ज्ञानेन वादिप्रतिवादिनोः कस्य जयः पराजयो वा स्यात्तद्विशेषात् ? न कस्यचिदिति चेत् ; तर्हि साधनवादिनो वचनाधिक्यकारिणः साधनसामर्थ्याऽज्ञानसिद्धेः प्रतिवादिनश्च वचनाधिक्यदोषोद्भावनात्तद्दोषभावे ज्ञानसिद्धेर्न कस्यचिजयः पराजयो वा १० स्यात् । न हि यो यद्दोषं वेत्ति स तद्गुणमपि, कुतश्चिन्मारणशक्तिवेदनेपि विषद्रव्यस्य कुष्ठापनयनशक्तौ संवेदनानुदयात् । तच्च तत्सामर्थ्यज्ञानाज्ञाननिबन्धनौ जयपराजयौ शक्यव्यवस्थौ यथोक्तदोषानुषङ्गात् । स्वपक्षसिद्ध्यसिद्धिनिबन्धनौ तु तौ निरवद्यौ पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहवैयर्थ्याभावात् । कस्यचित्कुतश्चित्स्वपक्षसिद्धौ १५ सुनिश्चितायां परस्य तत्सिद्ध्यभावतः सकृजयपराजयाप्रसङ्गात् ।

यच्चेदम्—‘अदोषोद्भावनम्’ इत्यस्य व्याख्यानम्—“प्रसज्यप्रतिषेधे दोषोद्भावनाऽभावमौलमदोषोद्भावनम्, पर्युदासे तु दोषाभासानामन्यदोषाणां चोद्भावनं प्रतिवादिनो निग्रहस्थानम्” [ ] इति; तद्वादिना दोषवति साधने प्रयुक्ते २० सत्यनुमैतमेव, यदि वादी स्वपक्षं साधयेत्, नान्यथा । वचनाधिक्यं तु दोषः प्रागेव प्रतिविहितः । यथैव हि पञ्चावयवप्रयोगे वचनाधिक्यं निग्रहस्थानम्, तथा त्र्यवयवप्रयोगे न्यूनतापि स्याद्विशेषाभावात् । प्रतिज्ञादीनि हि पञ्चाप्यनुमानाङ्गम्—“प्रतिज्ञाहेतुदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः” [न्यायसू० १।१।३२] इत्य- २५ मिधानात् । तेषां मध्येऽन्यतमस्याप्यनभिधाने न्यूनताख्यो दोषो-नुषज्यत एव । “हीनमन्यतमेनापि न्यूनम्” [न्यायसू० ५।२।१२] इति वचनात् । ततो जयेतरव्यवस्थायाः ‘प्रमाणतदाभासौ’ इत्यादितो नान्यनिबन्धनं व्यवतिष्ठते, इत्येतच्छब्दादौ तद्विवन्धनत्वेनाग्रहग्रहं परित्यज्य विचारकभावमादायाऽमलमनसि प्रामाणिकाः ३० स्वयमेव सम्प्रधारयन्तु, कुतमतिप्रसङ्गेन ।

१ वादिनः । २ प्रतिवादिनः । ३ जलन्ताभावमात्रम् । ४ प्रतिवादिना । ५ वचनाधिक्यदोषनिराकरणसमये । ६ योगस्य । ७ सौगतस्य । ८ निग्रहस्थानम् ।



श्रीः ।

## अथ षष्ठः परिच्छेदः ॥

प्राचां घाचाममृततटिनीपूरकपूर्कल्पान्नं,  
बन्धान(न्म)न्दा नवकुक्कवयो नूतनीकुर्वते ये ।  
तेऽयस्काराः सुभटमुकुटोत्पाटिपाण्डित्यभाजम्,  
मित्त्वा खड्गं विदधति नवं पश्य कुण्डं कुठारम् ॥

- ५ ननूक्तं प्रमाणेतरयोर्लक्षणमक्षूणं नयेतरयोस्तु लक्षणं नोक्तम्,  
तद्भावश्च वक्तव्यम्, तदवचने विनेयानां नाऽविकला व्युत्पत्तिः  
स्यात् इत्याशङ्कमानं प्रत्याह—

सम्भवदन्यद्विचारणीयम् ॥ ६।७४ ॥

इति ।

- १० सम्भवद्विद्यमानं कथितात्प्रमाणतदाभासलक्षणादन्यत् नय-  
नयाभासयोर्लक्षणं विचारणीयं नयनिष्ठैर्दिग्मात्रप्रदर्शनपरत्वादस्य  
प्रयासस्येति । तल्लक्षणं च सामान्यतो विशेषतश्च सम्भवतीति  
तथैव तद्व्युत्पाद्यते । तत्राऽनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंशग्राही शत्रु-  
रभिप्रायो नयः । निराकृतप्रतिपक्षस्तु नयाभासः । इत्यनयोः  
१५ सामान्यलक्षणम् । स च द्वेधा द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकविकल्पात् ।  
द्रव्यमेवार्थो विषयो यस्यास्ति स द्रव्यार्थिकः । पर्याय एवार्थो  
यस्यास्त्यसौ पर्यायार्थिकः । इति नयविशेषलक्षणम् । तत्राद्यो  
नैगमसङ्गद्वयवहारविकल्पात् त्रिविधः । द्वितीयस्तु ऋजुसूत्र-  
शब्दसमभिरूढैवंभूतविकल्पाच्चतुर्विधः ।

- २० तत्रानिष्पन्नार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः । निगमो हि सङ्कल्पः,  
तत्र भवस्तत्प्रयोजनो वा नैगमः । यथा कश्चित्पुरुषो गृहीतकु-  
ठारो गच्छन् 'किमर्थं भवान्गच्छति' इति पृष्ठः सन्नाह-‘प्रस्थमा-  
नेतुम्’ इति । पृष्ठोदकाद्याहरणे वा व्याप्रियमाणः 'किं करोति  
भवान्' इति पृष्ठः ग्राह-‘ओदनं पचामि’ इति । न चासौ प्रस्थप-

१ कल्पः सङ्कल्पः । २ 'बन्धान्' इति विशेष्यपदमध्याद्यावत् । ३ परीक्षाशुलसः ।  
४ प्रकरणस्य । ५ विकलादेशविशेषमाश्रित्य प्रवृत्तो शत्रुरभिप्रायो (ज्ञानस्वरूपः)  
नयः । ६ सामान्यलक्षणलक्षितो नयः । ७ इवति द्रोण्यलङ्घ्यवृत्तेति द्रव्यं जीवादि ।  
८ जीवस्य यथा नरनारकादिः सुखदुःखादिर्वा । ९ प्रसो मानविशेषः । १० पथः=  
काष्ठम् । दक्षुदकम् ।

र्याय ओदनपर्यायो वा निष्पन्नस्तन्निष्पत्तये सङ्कल्पमात्रे प्रस्थादिव्यवहारात् । यद्वा नैकङ्गमो नैगमो धर्मधर्मिणोर्गुणप्रधानभावेन विषयीकरणात् । 'जीवगुणः सुखम्' इत्यत्र हि जीवस्याप्राधान्यं विशेषणत्वात्, सुखस्य तु प्राधान्यं विशेष(व्य)त्वात् । 'सुखी जीवः' इत्यादौ तु जीवस्य प्राधान्यं न सुखादेर्विपर्ययात् । न चास्यैवं ५ प्रमाणात्मकत्वानुषङ्गः, धर्मधर्मिणोः प्राधान्येनात्र कृतेरसम्भवात् । तयोरन्यतएव हि नैगमनयेन प्रधानतया अनुभूयते । प्राधान्येन द्रव्यपर्यायद्रव्यात्मकं चार्थमनुभवद्विज्ञानं प्रमाणं प्रतिपत्तव्यं नान्यदिति ।

सर्वथानयोरर्थान्तरत्वाभिर्सेन्धिस्तु नैगममासः । धर्मधर्मिणोः १० सर्वथार्थान्तरत्वे धर्मिणि धर्माणां वृत्तिविरोधस्य प्रतिपादितत्वादिति ।

स्वर्जात्यविरोधेनैकैक्यमुपनीयार्थानाक्रान्तिमेवान् समस्तग्रहणात्संग्रहः । स च परोऽपरश्च । तत्र परः सकलभावानां सदात्मनैकत्वमभिप्रैति । 'सर्वमेकं सदविशेषात्' इत्युक्ते हि 'सत्' इति- १५ शौण्डिह्यानां वृत्तिस्त्रिङ्गानुमितसत्तात्मकत्वेनैकत्वमशेषार्थानां संगृह्यते । निराकृताऽशेषविशेषस्तु सर्वोऽद्वैताभिप्रायसिद्धाभासो दृष्टेर्द्रवाधनात् । तथाऽपरः संग्रहो द्रव्यत्वेनाशेषद्रव्याणामेकत्वमभिप्रैति । 'द्रव्यम्' इत्युक्ते ह्यतीतानागतवर्तमानकालवर्तितविक्षिताविवक्षितपर्यायद्रव्यणशीलानां जीवाजीवतद्भेदप्रमेदानामेक- २० स्वेन संग्रहः । तथा 'घटः' इत्युक्ते निखिलघटव्यक्तीनां घटत्वेनैकत्वसंग्रहः ।

सामान्यविशेषाणां सर्वथार्थान्तरत्वाभिप्रायोऽनर्थान्तरत्वाभिप्रायो वाऽपरसङ्गहाभासः, प्रतीतिविरोधादिति ।

सङ्गदृष्टीतार्थानां विधिपूर्वकमवहरणं विभजनं मेदेन प्ररूपणं २५ व्यवहारः । परसंग्रहेण हि सङ्गमाधारतया सर्वमेकत्वेन 'सत्' इति संगृहीतम् । व्यवहारस्तु तद्विभागमभिप्रैति । यत्सत्तद्रव्यं

१ अन्योन्यगुणप्रधानभूतमेदामेदप्ररूपणो नैगमः । २ गौणसुखरूपेण । ३ धर्मो वर्गी वा । ४ अभिप्रायः । ५ भिन्नत्वे । ६ स्वस्वार्थस्य जातिः सदात्मिका । ७ एकप्रकारश्च । ८ अन्तर्हीनविशेषात् । ९ प्रति । १० वस्तुनाम् । ११ विषयीकरोति । १२ द्रव्यम् । १३ इदं सदित् सदिति । १४ यथा एव लिङ्गत्वेन । १५ प्रज्ञावादः । १६ सङ्गहाभासः । १७ दृष्टेन प्रत्यक्षेणैवैतानुमानेन च । १८ प्रतिगमनस्वभावानाम् । १९ विशेषस्य सव्यपेक्षः सन्मात्रग्राही सङ्गहः । २० भेदरूपेण । २१ भवेदरूपेण । २२ योगस्य जीमासकस्य च ।

पर्यायो वा । तथैवापरः सङ्ग्रहः सर्वद्रव्याणि 'द्रव्यम्' इति, सर्व-  
पर्यायांश्च 'पर्यायः' इति संगृह्णाति । व्यवहारस्तु तद्विभागमभि-  
प्रैति-यद्रव्यं तज्जीवादि र्वद्विधम्, यः पर्यायः स द्विविधः सह-  
भावी कमभावी च । इत्यपरसङ्ग्रहव्यवहारप्रपञ्चः प्रायुजुसूत्रात्प-  
रसङ्ग्रहादुत्तरः प्रतिपत्तव्यः, सर्वस्य वस्तुनः कैयञ्चित्सामान्य-  
विशेषात्मकत्वसम्भवात् । न चास्यैवं नैगमत्वानुषङ्गः, सङ्ग्रहविषय-  
प्रविभागपरत्वात्, नैगमस्य तु गुणप्रधानभूतोभयविषयत्वात् ।

यः पुनः कल्पनारोपितद्रव्यपर्यायप्रविभागमभिप्रैति स व्यवहा-  
राभासः, प्रमाणबाधितत्वात् । न हि कल्पनारोपित एव द्रव्यादि-  
१० प्रविभागः, स्वार्थक्रियाहेतुत्वाभावप्रसङ्गाद्गगनाम्भोजवत् । व्यव-  
हारस्य चाऽसत्यत्वे तदानुकूल्येन प्रमाणानां प्रमाणता न स्यात् ।  
अन्यथा स्वमादिविभ्रमानुकूल्येनापि तेषां तत्प्रसङ्गः । उक्तं च—

“व्यवहारानुकूल्यात्तु प्रमाणानां प्रमाणता ।

नान्यर्था बाध्यमानानां ज्ञानानां तत्प्रसङ्गतः ॥” [ लघी० का०  
१५७० ] इति ।

अजु प्रौढलं वर्तमानक्षणमात्रं सूर्ययतीत्युजुसूत्रः 'सुखक्षेणः  
सम्प्रत्यस्ति' इत्यादि । द्रव्यस्य सतोप्यनर्पणात्, अतीतानागतक्षण-  
योश्च विनष्टानुत्पन्नत्वेनासम्भवात् । न चैवं लोकव्यवहारविलो-  
पप्रसङ्गः, नयस्याऽस्यैवं विषयमात्रप्ररूपणात् । लोकव्यवहारस्तु  
२० सकलनयसमूहसाध्य इति ।

यस्तु वहिरन्तर्वा द्रव्यं सर्वथा प्रैतिक्षिपत्यखिलार्थानां प्रतिक्षणं  
क्षणिकत्वाभिमानात् स तदाभासः, प्रतीत्यतिक्रमात् । बाधविधुरा  
हि प्रत्यभिज्ञानादिप्रतीतिर्बहिरन्तर्वाकं द्रव्यं पूर्वोत्तरविवर्तवर्ति  
प्रसाधयतीत्युक्तमूर्द्धतासामान्यसिद्धिप्रस्तावे । प्रतिक्षणं क्षणिकत्वं  
२५ च तत्रैव प्रतिव्यूढमिति ।

कालकारकलिङ्गसंख्यासार्धनोपग्रहमेवाङ्गिजमर्थे शपतीति

१ जीवाऽजीवधर्माऽधर्मनमःकालमेवाद । २ यथा चैतन्यम् । ३ शुद्धादिव्या ।  
४ द्रव्यपर्यायविभिन्नत्वप्रकारेण । ५ नैगमोऽपि संग्रहनयप्रविभागपरो भविष्यतीत्युक्ते  
सत्याह । ६ व्यवहारानुकूल्याभावेन । ७ व्यक्तम् । ८ बोधयति । ९ शुद्धपर्याय-  
ग्राही प्रतिपक्षसापेक्ष अजुसूत्रः । क्षणिकैकान्तनयस्तु तदाभासः । १० क्षणः पर्यायः ।  
११ द्रव्यस्यातीतानागतक्षणयोश्च स्रजकः कुतो न स्यादित्युक्ते सत्याह । १२ विवक्षाऽ-  
भावात् । १३ सुखक्षणः सम्प्रतीलादिप्रकारेण । १४ विराकरोति । १५ जैनेः ।  
१६ संख्या=पक्षवचनादिः । १७ साधनो जुष्पदसंस्तमेदाग्निषा । १८ उपग्रहः=  
उपसर्गः ।

शब्दो नयः शब्दप्रधानत्वात् । ततोऽपास्तं वैयाकरणानां मतम् । ते हि “धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः” [ पाणिनिव्या० ३।४।१ ] इति सूत्रमारभ्य ‘विश्वदृश्याऽस्य पुत्रो भविता’ इत्यत्र कालमेदेप्येकं पदार्थमाह्वताः—‘यो विश्वं द्रक्ष्यति सोऽस्य पुत्रो भविता’ इति, भविष्यत्कालेनातीतकालस्याऽमेदमिधानात् तथा व्यवहारोपलम्भात् । ५ तच्चानुपपन्नम् ; कालमेदेप्यर्थस्याऽमेदेऽतिप्रसङ्गात्, रावणशङ्खचक्रवर्तिशब्दयोरप्यतीतानागतार्थगोचरयोरेकार्थतापत्तेः । अथानयोर्भिन्नविषयत्वान्नैकार्थता, ‘विश्वदृश्या भविता’ इत्यनयोरप्यसौ मा भूतत एव । न खलु ‘विश्वं दृष्टवान्—विश्वदृश्या’ इति शब्दस्य योऽशीतीतकालः, स ‘भविता’ इति शब्दस्यानागतकालो १० युक्तः, पुत्रस्य भाविनोऽतीतत्वविरोधात् । अतीतकालस्याप्यनागतत्वाभ्यारोपादेकार्थत्वे तु न परमार्थतः कालमेदेप्यभिन्नार्थव्यवस्था स्यात् ।

तथा ‘करोति क्रियते’ इति कर्तृकर्मकारकमेदेप्यभिन्नमर्थं तं यवाद्वियन्ते । ‘यः करोति किञ्चित् स एव क्रियते केनचित्’ इति १५ प्रतीतेः । तदप्यसाम्प्रतम् ; ‘देवदत्तः कटं करोति’ इत्यापि कर्तृकर्मणोर्देवदत्तकटयोरमेदप्रसङ्गात् ।

तथा, ‘पुष्यस्तारका’ इत्यत्र लिङ्गमेदेपि नक्षत्रार्थमेकमेवाद्वियन्ते, लिङ्गमशिष्यं लोकाध्ययत्वात्तस्य; इत्यसङ्गतम् । ‘पटः कुटी’ इत्याप्येकत्वानुषङ्गात् । २०

तथा, ‘आपोऽस्मः’ इत्यत्र संख्यामेदेप्येकमर्थं जलाख्यं मन्यन्ते, संख्यामेदस्याऽमेदकत्वाद्वादिद्वैतः । तदप्ययुक्तम् । ‘पटस्तन्तवः’ इत्याप्येकत्वानुषङ्गात् ।

तथा ‘पहि मन्ये रथेन यास्यासि न हि यास्यासि यातस्ते पिता’ इति साधनमेदेप्यर्थाऽमेदमाद्वियन्ते ‘प्रह्लासे मन्यवाचि शुष्मन्म- २५ न्यतेऽसदेकवच्च’ [ जैनेन्द्रव्या० १।२।१५३ ] इत्यभिधानात् । तदप्यपेशलम् ; ‘अहं पचामि त्वं पचसि’ इत्याप्येकार्थत्वप्रसङ्गात् ।

तथा, ‘सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते’ इत्यत्रोपग्रहमेदेप्यर्थामेदं प्रतिपद्यन्ते उपसर्गस्य धात्वर्थमात्रोद्द्योतकत्वात् । तदप्यचारुः ‘सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते’ इत्यापि स्थितिगतिक्रिययोरमेदप्रसङ्गात् । ततः ३०

१ कालादिमेदाभिन्नमर्थं प्रतिपादयति शब्दो नयो यतः । २ शब्दमेदादर्थमेदमनुवर्तताम् । ३ प्रतिपादयन्तः । ४ अत्र पञ्चातीतार्थको विश्वदृश्याशब्दो द्रक्ष्यतीति वत्सत्कालेन विगृह्यते । ५ वैयाकरणाः । ६ वैयाकरणाः । ७ आदिना लब्धादिग्रहः । ८ जैनेन्द्रव्याकरणस्य सूत्रम् । सूक्तं पुस्तके ‘ग्रहसे’ इति पाठोलि । ९ वैयाकरणाः ।



कालादिमेदाङ्गिष्व एवार्थः शब्दस्य । तथाहि—विवादापन्नो विभिन्न-  
कालादिशब्दो विभिन्नार्थप्रतिपादको विभिन्नकालादिशब्दत्वात्  
तथाविधान्यशब्दवत् । नन्वेवं लोकव्यवहारविरोधः स्यादिति  
चेत्, विरुध्यतामसौ तत्त्वं तु मीमांस्यते, न हि मेषजमातुरे-  
५ ष्छानुवर्ति ।

नानार्थान्समेर्त्याभिमुख्येन रूढः सममिरूढः । शब्दनयो हि  
पर्यायशब्दमेदान्नार्थमेदमभिप्रैति कालादिमेदत् एवार्थमेदामि-  
प्रायात् । अयं तु पर्यायमेदेनाप्यर्थमेदमभिप्रैति । तथा हि—‘इन्द्रः  
शक्रः पुरन्दरः’ इत्याद्याः शब्दा विभिन्नार्थगोचरा विभिन्नशब्द-  
१० त्वाद्वाजिवारणशब्दवदिति ।

एवमित्थं विवक्षितक्रियापरिणामप्रकारेण भूतं परिणतमर्थं  
योभिप्रैति स एवम्भूतो नयः । सममिरूढो हि शकनक्रियायां  
सत्यामसत्यां च देवराजार्थस्य शक्यपदेशमभिप्रैति, पशोर्गमन-  
क्रियायां सत्यामसत्यां च गोव्यपदेशवत्, तथा रुढेः सङ्गावात्,  
१५ अयं तु शकनक्रियापरिणतिक्षणे एव शक्रमभिप्रैति न पूजनाभिषे-  
चनक्षणे, अतिप्रसङ्गात् । न चैवंभूतनयामिप्रायेण कश्चिदक्रिया-  
शब्दोस्ति, ‘गौरश्वः’ इति जातिशब्दामिमतानामपि क्रियाशब्द-  
त्वात्, ‘गच्छतीति गौराशुगाम्यश्वः’ इति । ‘शुक्लो नीलः’ इति  
शुणशब्दा अपि क्रियाशब्दा एव, ‘शुचिभवनाच्छुक्लो नीलना-  
२० नीलः’ इति । ‘देवदत्तो यज्ञदत्तः’ इति यज्ञच्छाशब्दा अपि क्रिया-  
शब्दा एव, ‘देवा एनं देयासुः’ इति देवदत्तः, ‘यज्ञे एनं देयात्’  
इति यज्ञदत्तः । तथा संयोगिसमवायिद्रव्यशब्दाः क्रियाशब्दाः  
एव, दण्डोस्यास्तीति दण्डी, विषाणमस्यास्तीति विषाणीति ।  
पञ्चतयी तु शब्दानां प्रवृत्तिर्व्यवहारमात्राच्च निश्चयात् ।

२५ एवमेते शब्दसममिरूढैवम्भूतनयाः सापेक्षाः सम्यग्, अन्यो-  
न्यमनपेक्षास्तु मिथ्येति प्रतिपत्तव्यम् ।

एतेषु च नयेषु क्रजुस्रान्ताश्चत्वारोर्थप्रधानाः शेषास्तु त्रयः  
शब्दप्रधानाः प्रत्येतव्याः ।

१ विशदृशा भविता करोति क्रियते इत्यादिः । २ रावणशङ्खचक्रवर्तीदिशब्दवत् ।  
३ लिङ्गवचनादिमेदानर्थमेदप्रकारेण । ४ समाश्रित । ५ पर्यायमेदात्पदार्थनानात्व-  
प्ररूपकः सममिरूढः । ६ क्रियावयेण भेदप्ररूपणमित्यन्मावोत्र । ७ यथा नमन-  
क्रिया कुर्वतोषि पाचकत्प्रसङ्गः स्यात् । ८ क्रियाप्रधानतया । ९ अस्तीति क्रियात्र ।  
१० जातिक्रियाशुणयद्रुच्छासम्बन्धवाचकप्रकारेण ।

कः पुनरत्र बहुविषयो नयः को वाल्पविषयः कश्चात्र कारण-  
भूतः कार्यभूतो वेति चेत् ? 'पूर्वः पूर्वो बहुविषयः कारणभूतश्च  
परः परोल्पविषयः कार्यभूतश्च' इति ब्रूमः । संग्रहाद्वि नैगमो  
बहुविषयो भावाऽभावविषयत्वात्, यथैव हि सन्ति सङ्कल्प-  
स्तथाऽसत्यपि, सङ्गहस्तु ततोल्पविषयः सन्मात्रगोचरत्वात्, ५  
तत्पूर्वकत्वाच्च तत्कार्यः । संग्रहाद्व्यवहारोपि तत्पूर्वकः सद्दिशो-  
पावयोधकत्वादल्पविषय एव । व्यवहारात्कालत्रितयवृत्त्यर्थगो-  
चरात् क्रजुसूत्रोपि तत्पूर्वको वर्तमानार्थगोचरतयाल्पविषय  
एव । कारकादिभेदेनाऽभिन्नमर्थं प्रतिपद्यमानादजुसूत्रतः तत्पू-  
र्वकः शब्दनयोप्यल्पविषय एव तद्विपरीतार्थगोचरत्वात् । शब्द-१०  
नयात्पर्यायभेदेनार्थभेदं प्रतिपद्यमानात् तद्विपर्ययात् तत्पूर्वकः  
समभिरुद्धोप्यल्पविषय एव । समभिरुद्धतश्च क्रियाभेदेनाऽभिन्न-  
मर्थं प्रतिर्यतः तद्विपर्ययात् तत्पूर्वक एवम्भूतोप्यल्पविषय एवेति ।

नन्वेते नयाः किमेकस्मिन्विषयेऽविशेषेण प्रवर्तन्ते, किं वा  
विशेषोस्तीति ? अत्रोच्यते—यत्रोत्तरोत्तरो नयोऽर्थोऽपि प्रवर्तते १५  
तत्र पूर्वः पूर्वोऽपि नयो वर्तते एव, यथा सङ्कल्पेऽष्टशती तस्यां वा  
पञ्चशतीत्यादौ पूर्वसंख्योत्तरसंख्यायामविरोधतो वर्तते । यत्र  
तु पूर्वः पूर्वो नयः प्रवर्तते तत्रोत्तरोत्तरो नयो न प्रवर्तते, पञ्च-  
शत्यादावष्टशत्यादिवत् । एवं नयार्थे प्रमाणस्यापि सांशवस्तु-  
वेदिनो वृत्तिरविरुद्धा, न तु प्रमाणार्थे नयानां वस्तुंशमात्रवेदि-२०  
नामिति ।

कथं पुनर्नयसप्तभङ्गाः प्रवृत्तिरिति चेत् ? 'प्रतिपर्यायं वस्तुन्ये-  
कत्राविरोधेन विधिमैतिषेयकल्पनायाः' इति ब्रूमः । तथाहि—सङ्क-  
ल्पमात्रग्राहिणो नैगमस्याश्रयणाद्विधिकल्पना, प्रस्थादिकं कल्पना-  
मात्रम्—'प्रस्थादि स्यादस्ति' इति । संग्रहाश्रयणात् प्रतिषेधक-२५  
ल्पना; न प्रस्थादि सङ्कल्पमात्रम्—प्रस्थादिसन्मात्रस्य तंथाप्रतीतेर-  
सतः प्रतीतिविरोधादिति । व्यवहाराश्रयणाद्वा द्रव्यस्य पर्यायस्य

१ निदधाने वस्तुनि । २ अतीतेऽनागते च । ३ पर्यायभेदेन मित्रार्थगोचरत्वा-  
दित्यर्थः । ४ प्राप्नुवतः प्रकटयतो वा । ५ उत्तरोत्तरनयविषये पूर्वपूर्वनयप्रवर्तनप्र-  
कारेण उत्तरोत्तरसंख्यायां पूर्वपूर्वसंख्याप्रवर्तनप्रकारेण वा पञ्चशत्यादावष्टशत्यादष्टप्र-  
वर्तनप्रकारेण वा । ६ अविरोधेनेत्यभिधानात्प्रत्यक्षान्वितिरुद्धनिमित्तप्रतिषेधकल्पनायाः, पञ्च-  
वस्तुनीत्याभिधानादनेकवस्तुनामपनिमित्तप्रतिषेधकल्पनायाश्च सप्तमदीकृतता प्रत्यक्षा ।  
७ विधिनतिषेधौ अस्तित्वनास्तित्वे । ८ सम्यगे नयः । ९ प्रत्यादित्वेन । १० गगन-  
इन्द्रमवत् ।

वा प्रस्थादिप्रतीतिः, तद्विपरीतस्याऽसत्तः सतो वा प्रत्येतुमशक्तेः ।  
 ऋजुसूत्राश्रयणाद्वा पर्यायमात्रस्य प्रस्थादित्वेन प्रतीतिः, अन्यथा  
 प्रतीत्यनुपपत्तेः । शब्दाश्रयणाद्वा कालादिभिन्नस्यार्थस्य प्रस्था-  
 दित्वम्, अन्यथातिप्रसङ्गात् । समभिरुद्धाश्रयणाद्वा पर्यायमेवेन  
 ५ भिन्नस्यार्थस्य प्रस्थादित्वम्, अन्यथाऽतिप्रसङ्गात् । एवंभूताश्रय-  
 णाद्वा प्रस्थादिक्रियापरिणतस्यैवार्थस्य प्रस्थादित्वं नान्यत् अति-  
 प्रसङ्गादिति । तथा स्यादुभयं क्रमार्पितोभयनयार्पणात् । स्यादव-  
 क्तव्यं संहार्षितोभयनयाश्रयणात् । एवमवक्तव्योत्तराः शेषार्थयो  
 भङ्गा यथायोगमुदाहृत्याः ।

- १० ननु चोदाहृता नयसप्तभङ्गी । प्रमाणसप्तभङ्गीतस्तु तस्याः  
 किङ्कतो विशेष इति चेत् ? 'सकलविकलादेशकृतः' इति द्रुमः ।  
 विकलादेशस्वभावा हि नयसप्तभङ्गी वस्तुवशमात्ररूपकैतत्वात् ।  
 सकलादेशस्वभावा तु प्रमाणसप्तभङ्गी यथावद्वस्तुरूपरूपक-  
 त्वात् । तथैव हि-स्यादस्ति जीवादिवस्तु सद्रव्यादिचतुष्टयापे-  
 १५ क्षया । स्यान्नास्ति परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया । स्यादुभयं क्रमार्पि-  
 तद्वयापेक्षया । स्यादवक्तव्यं संहार्षितद्वयापेक्षया । एवमवक्तव्यो-  
 च्चराख्यो भङ्गाः प्रतिपत्तव्याः ।

- कस्मात्पुनर्नयवाक्ये प्रमाणवाक्ये वा सप्तैव भङ्गाः सम्भव-  
 न्तीति चेत् ? प्रतिपाद्यप्रश्नानां तावतामेव सम्भवात् । प्रश्नवशा-  
 २० देव हि सप्तभङ्गीनियमः । सप्तविध एव प्रश्नोपि कुत इति चेत् ?  
 सप्तविधजिह्वासासम्भवात् । सापि सप्तधा कुत इति चेत् ?  
 सप्तधा संशयोत्पत्तेः । सोपि सप्तधा कथमिति चेत् ? तद्विषयव-  
 स्तुर्धर्मस्य सप्तविधत्वात् । तथा हि-सत्त्वं तावद्वस्तुधर्मः, तदन-  
 भ्युपगमे वस्तुनो वस्तुत्वायोगात् खरशृङ्गवत् । तथा कथञ्चिद-  
 २५ सत्त्वं तद्धर्म एव, सैरूपादिभिरिव पररूपादिभिरप्यस्याऽसत्त्वा-

१ सङ्कल्पमात्रस्य प्रस्थादित्वेन कालम् । २ प्रतिषेधकल्पना स्यात् । ३ सङ्कल्प-  
 मात्रेण । ४ प्रतिषेधकल्पनेति सम्बन्धः । ५ पटादेरपि प्रस्थादित्वं स्यात् । ६ प्रतिषेध-  
 कल्पना । ७ संकल्पमात्रेण । ८ सङ्कल्पमात्रेण । ९ प्रतिषेधकल्पना । १० सङ्कल्प-  
 मात्रस्य । ११ यथावता स्यादस्ति स्यान्नास्तीति सङ्गद्वयं सिद्धम् । १२ प्रस्थादिः स्यादस्ति  
 नास्ति च । १३ सह-युगपत् । १४ अर्पितः=विवक्षितः । १५ प्रस्थादिः स्यादस्त-  
 शक्तव्यः, स्यादास्तवक्तव्यः, स्यादस्तिनास्तवक्तव्यश्चेति । १६ कथनात् । १७ नय-  
 प्रमाणसप्तभङ्गा यथाक्रमं भेदज्ञानार्थमुल्लेखः कथ्यते स्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादिः । तथा  
 च स्यादस्ति जीवादिवस्तु स्यान्नास्ति जीवादिवस्तु इत्यादि । १८ आदिना शेषकाल-  
 भावग्रहः । १९ कालमिच्छा निवासा । २० स्वरूपस्य । २१ परेणास्तीक्रियमाणे ।  
 २२ जीवादिपदार्थस्य । २३ अन्यथा ।

निष्ठौ प्रतिनियतस्वरूपौऽसम्भवाद्वास्तुप्रतिनियमविरोधः स्यात् । एतेन क्रमार्पितोभयत्वादीनां वस्तुधर्मत्वं प्रतिपादितं प्रतिपत्तव्यम् । तदभावे क्रमेण सदसत्त्वविकल्पेशब्दव्यवहारविरोधात्, सद्वाऽवकव्यत्वोपलक्षितोत्तरधर्मव्यविकल्पस्य शब्दव्यवहारस्य चासत्त्वप्रसङ्गात् । न चामी व्यवहारा निर्विपया एव; वस्तुप्र-<sup>५</sup>तिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिनिश्चयात् तयोर्विधरूपादिव्यवहारवत् ।

ननु च प्रथमद्वितीयधर्मवत् प्रथमतृतीयादिधर्माणां क्रमेतरापितानां धर्मान्तरत्वसिद्धेर्न सप्तविधधर्मनियमः सिद्ध्येत्, इत्यप्युत्तरम्; क्रमार्पितयोः प्रथमतृतीयधर्मयोः धर्मान्तरत्वेनाऽप्रतीतेः, सत्त्वद्वयस्यासम्भवाद्विवक्षितस्वरूपादिना सत्त्वैक्येकत्वात् । १० तद्वैक्यस्वरूपादिना सत्त्वस्य द्वितीयस्य सम्भवे विशेषादेशात् तत्प्रतिपक्षभूतासत्त्वस्याप्यपरस्य सम्भवादपरधर्मसत्कर्तृसिद्धिः (द्वेः) सप्तमद्वयान्तरसिद्धितो न कश्चिदुपालम्भः । एतेन द्वितीयतृतीयधर्मयोः क्रमार्पितयोर्धर्मान्तरत्वमप्रतीतिकं व्याख्यातम् । कथमेवं प्रथमचतुर्थयोर्द्वितीयचतुर्थयोस्तृतीयचतुर्थयोश्च सहितयोर्धर्मा-<sup>१५</sup>न्तरत्वं स्यादिति चेत् ? चतुर्थेऽवकव्यत्वधर्मे सत्त्वासत्त्वयोरपरमंशात् । न खलु सहापितयोस्तयोरवकव्यशब्देनाभिधानम् । किं तर्हि ? तथापितयोस्तयोः सर्वथा वक्रमशकेरवकव्यत्वस्य धर्मान्तरस्य तेन प्रतिपादनमिष्यते । न च तेन सहितस्य सत्त्वस्यासत्त्वस्योभयस्य वाऽप्रतीतिर्धर्मान्तरत्वासिद्धिर्वा; प्रथमे भङ्गे <sup>२०</sup>सत्त्वस्य प्रधानभावेन प्रतीतेः, द्वितीये त्वसत्त्वस्य, तृतीये क्रमार्पितयोः सत्त्वासत्त्वयोः, चतुर्थे त्ववकव्यत्वस्य, पञ्चमे

१ परेण । २ पृथुद्रोदरायाकारः साक्षादिनत्तादिर्वा प्रतिनियतस्वरूपः । ३ सत्त्वासत्त्वयोर्वस्तुधर्मत्वसमर्पणपरेण अन्वेन । ४ सहापितोभयत्वादीनां च । ५ अवकव्यं सदवकव्यमऽमदवकव्यमुपवाऽवकव्यं चेति । ६ ननु वेभ्यः शब्दव्यवहारेभ्योऽन्यथानुपपत्त्या क्रमार्पितोभयत्वादयः पक्षवन्नां अवस्थाप्यन्ते ते निर्विपया एवावः कर्म वेभ्यः कतिपयैरेत्यारोकायामाह । ७ तथाविधः प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिनिश्चयहेतुमूढः । ८ तस्मात् निर्विपयत्वे सकृदप्रत्यक्षादिव्यवहारपक्षवाच्च कस्यचिद्विद्वत्त्वव्यवसा स्यात् । ९ आदिना द्वितीयादिनादिग्रहः । १० युगपत् । ११ मनुष्यस्वरूपे स्वरूपक्षेत्रकालाभावाः स्वरूपम्, आदिना पररूपसंग्रहः, ते च यवः परकीया द्रव्यादयः । १२ एकजीवस्य । १३ तस्मात् । १४ अन्यस्य देवादेः । १५ भवान्तरापेक्षया । १६ पर्यायकथनम् । १७ सः=द्वितीयसत्त्वः । १८ वृत्तः । १९ प्रथमतृतीयधर्मयोर्धर्मान्तरत्वनिराकरणेन । २० इति । २१ प्रथमतृतीयादिप्रकारेण । २२ सादत्त्ववकव्यमिति । २३ साक्षात्सत्त्ववकव्यमिति । २४ सादत्तिनात्त्ववकव्यमिति । २५ अप्रतीतेः ।

सत्त्वसहितस्य, षष्ठे पुनरसत्त्वोपेतस्य, सप्तमे क्रमे क्रमवत्तदुभययुक्तस्य सकलजनैः सुप्रतीतत्वात् ।

ननु चावक्तव्यत्वस्य धर्मान्तरत्वे वस्तुनि वक्तव्यत्वस्याष्टमस्य धर्मान्तरस्य भावात्कथं सप्तविध एव धर्मः सप्तभङ्गीविषयः ५ स्यात् ? इत्यप्यपेशलम् ; सत्त्वौदिभिरभिधीयमानतया वक्तव्यत्वस्य प्रसिद्धेः, सामान्येन वक्तव्यत्वस्यापि विशेषेण वक्तव्यतायामवस्थानात् । भवतु वा वक्तव्यत्वावक्तव्यत्वयोर्धर्मयोः प्रसिद्धिः, तथाप्याभ्यां विधिप्रतिषेधकत्वेनाविषयाभ्यां सत्त्वासत्त्वाभ्यामिव सप्तभङ्ग्यन्तरस्य प्रवृत्तेर्न तद्विषयसप्तविधधर्मनियमव्या-  
१० घातः, यतस्तद्विषयः संशयः सप्तधैव न स्यात् तैद्धतुर्जिज्ञासा वा तन्निमित्तः प्रश्नो वा वस्तुन्येकत्र सप्तविधवाक्यनियमहेतुः । इत्युपपन्नेयम्-पञ्चवशादेकवस्तुन्यविरोधेन विधिप्रतिषेधकल्पना सप्तभङ्गी । 'अविरोधेन' इत्यभिधानात् प्रत्यक्षादिविरुद्धविधिप्रतिषेधकल्पनायाः सप्तभङ्गीरूपता प्रत्युक्ता, 'एकवस्तुनि' इत्यभि-  
१५ धानाच्च अनेकवस्त्वाध्यविधिप्रतिषेधकल्पनाया इति ।

अथवा प्रागुक्तञ्चतुरङ्गो वादः पञ्चावलम्बनमप्यपेक्षते, अतस्तल्लक्षणमर्जावश्यमभिधातव्यम् यतो नास्याऽविज्ञातस्वरूपस्यावलम्बनं जयाय प्रभवतीति ह्युवाणं प्रति सम्भवदित्याह । सम्भवद्विद्यमानमन्यत् पञ्चलक्षणं विचारणीयं तद्विचारचतुरैः । तथाहि-  
२० स्वाभिप्रेतार्थसाधनानवद्यगूढपदसमूहात्मकं प्रसिद्धावयवलक्षणं वाक्यं पञ्चमित्यवगन्तव्यं तथाभूतस्यैवास्य निर्दोषतोपपत्तेः । न खलु स्वाभिप्रेतार्थासाधकं दुष्टं सुस्पष्टपदात्मकं वा वाक्यं निर्दोषं पत्रं युक्तमतिप्रसङ्गात् । न च क्रियापदादिगूढं काव्यमप्येवं पत्रं प्रसज्यते; प्रसिद्धावयवत्वविशिष्टस्यास्य पत्रत्वाभिधानात् ।  
२५ न हि पदगूढादिकाव्यं प्रमाणप्रसिद्धप्रतिज्ञाद्यवयवविशेषणतया किञ्चित्प्रसिद्धम्, तस्य तथा प्रसिद्धौ पत्रव्यपदेशसिद्धेरवाधानात् । तदुक्तम्—

“प्रसिद्धावयवं वाक्यं स्नेष्टस्यार्थस्य साधकम् ।

साधु गूढपदप्रार्थं पत्रमाहुरनाकुलम् ॥” [ पत्रप० पृ० १ ]

- १ तदुक्तं सत्त्वासत्त्वम् । २ आदिना ह्यसत्त्वं सत्त्वासत्त्वे च संगृह्यते ।  
३ वस्तुनः । ४ सदादिपञ्चत्रयरूपेण संघटते इत्यादिप्रकारेण । ५ कल्पना भेदः ।  
६ यथा स्यादस्ति स्वाभासीत्यादि तथा स्यादुक्तव्यं स्यादवक्तव्यं स्यादकव्यावक्तव्यमि-  
त्यादिप्रकारेण । ७ वसः । ८ परीक्षाशुद्धे । ९ पत्रस्य । १० अपञ्चद्वयगूढम् ।  
११ काव्यादेरपि पत्रत्वप्रसङ्गात् । १२ अवाधितम् ।

कथं प्रागुक्तविशेषणविशिष्टं वाक्यं पञ्च नाम, तस्य श्रोत्रसमधि-  
गम्यपदसमुदयविशेषरूपत्वात्, पञ्चस्य च तद्विपरीताकारत्वात् ?  
न च यद्यतोऽन्यत्तत्तेन व्यपदेशं शक्यमतिप्रसङ्गादिति चेत्;  
'उपचरितोपचारात्' इति ब्रूमः । 'श्रोत्रपथप्रस्थापिनो हि वर्णा-  
त्मकपदसमूहविशेषस्वभाववाक्यस्य लिप्यामुपचारस्तत्रास्य जनै-  
रारोप्यमाणत्वात्, लिप्युपचरितवाक्यस्यापि पञ्चे, तत्र लिखितस्य  
तत्रस्थत्वात्' इत्युपचरितोपचारात्पञ्चव्यपदेशः सिद्धः । न च  
यद्यतोऽन्यत्तत्तेनोपचारादुपचरितोपचाराद्वा व्यपदेशमशक्यम्,  
शक्नादन्यत्र व्यवहर्तृजनाभिप्राये शक्नोपचारोपलभ्यात्, तस्मा-  
च्चान्यत्र काष्ठादादुपचरितोपचाराच्छक्यव्यपदेशसिद्धेः । अथवा १०  
प्रकृतस्य वाक्यस्य मुख्य एव पञ्चव्यपदेशः—'पदानि ज्ञायन्ते  
गोप्यन्ते रक्ष्यन्ते परेभ्यः स्वयं विजिगीषुणा यस्मिन्वाक्ये  
तत्पञ्चम्' इति श्रुत्युत्ते । प्रकृतिप्रत्ययादिगोपनाद्धि पदानां  
गोपनं विनिश्चितपदस्वरूपतदभिधेयतत्त्वेभ्योपि परेभ्यः सम्भव-  
त्येव । तस्योक्तप्रकारस्य पञ्चस्यावयवौ कंचिद्भावेव प्रयुज्येते १५  
तावतैव साध्यसिद्धेः । तद्यथा—

“स्वान्तभासितभूत्याद्यन्यन्तात्मतदुभान्तैवाह ।

परान्तद्योतितोद्दीप्तमितीतस्वात्मकर्तृतः ॥” [ ]

इति । अन्त एव ह्यन्तः, सार्थिकोऽण् वानप्रस्थादिवत् । प्रादि-  
पाठापेक्षया सौरान्तः स्वान्तः उत, तेन भासिता द्योतिता भूति- २०  
रुद्भूतिरित्यर्थः । सा आद्या येषां ते स्वान्तभासितभूत्याद्याः ते  
च ते ज्यन्ताश्च उद्भूतिव्ययप्रौढ्यधर्मा इत्यर्थः । ते एवात्मानः  
तांस्तनोतीति स्वान्तभासितभूत्याद्यन्यन्तात्मतत् इति साध्यधर्मः ।  
उभान्ता वाग्यस्य तदुभान्तवाङ्मविश्वम्, इति धर्मि । तस्य  
साध्यधर्मविशिष्टस्य निर्देशः । उत्पादाविनिश्चस्वभावव्यापि सर्वै- २५  
मित्यर्थः । परान्तो यस्यासौ परान्तः प्रः, स एव द्योतितं द्योतनमुप-  
सर्ग इत्यर्थः । तेनोद्दीप्ता चासौ मितिश्च तथा ईतः स्वात्मा यस्य  
तत्परान्तद्योतितोद्दीप्तमितीतस्वात्मकं 'प्रमितिप्राप्तस्वरूपम्' इत्य-  
र्थः । तस्य भावस्तत्त्वं 'प्रमेयत्वम्' इत्यर्थः, प्रमाणविषयस्य  
प्रमेयत्वव्यवस्थितेः इति साधनधर्मनिर्देशः । इष्टान्ताद्यभावेऽपि ३०  
च हेतोर्गमकत्वम् "एतद्वयमेवानुमानाहम्" [परीक्षामु० ३।३७]

१ यदस्य पदव्यपदेशप्रसङ्गात् । २ पुंसि । ३ प्रतिवादिभ्यः । ४ अनुमानवाक्ये ।  
५ विषयः । ६ प्रमेयत्वात् । ७ प्रपञ्चऽपस्तम्बादिः प्रादिः । ८ व्याप्नोति ।  
९ परान्तद्योतितेन । १० प्राप्तिः । ११ स्वसाध्यप्रतिपादकत्वम् ।

इत्यत्र समर्थितम् । अन्यथानुपपत्तिबलेनैव हि हेतोर्गमकत्वम्, सा चात्रास्त्येव एकान्तस्य प्रमाणागोचरतया विषयपरिच्छेदे समर्थनात् । एवं प्रतिपाद्याशयवशात्प्रभृतयोप्यवयवाः पत्र-वाक्ये द्रष्टव्याः । तथाहि—

- ५ “चित्राद्यदन्तराणीयमारेकान्तात्मकत्वतः ।  
यदित्थं न तदित्थं न यथाऽकिञ्चिदिति त्रयः ॥ १ ॥  
तथा चेदमिति प्रोक्तौ चत्वारोऽवयवा मताः ।  
तस्मात्तथेति निर्देशे पञ्च पत्रस्य कस्यचित् ॥ २ ॥”

[ पत्रप० पृ० १० ]

१०. चित्रमेकानेकरूपम्, तदैततीति चित्रात्-एकानेकरूपव्यापि अनेकान्तात्मकमित्यर्थः । सर्वविश्वयदित्यादिसर्वनामपाठापेक्षया यदन्तो विश्वशब्दो ‘यत् अन्ते यस्य’ इति व्युत्पत्तेः । तेन राणीयं शब्दनीयं विश्वमित्यर्थः । तदनेकान्तात्मकं विश्वमिति पक्ष-निर्देशः । आरेका संशयः, सा अन्ते यस्येत्यारेकान्तः प्रमेयः

१५ “प्रमाणप्रमेयसंशय” [ न्यायसू० १।१।१ ] इत्यादिपाठापेक्षया, स आत्मा यस्य तद्वारेकान्तात्मकम्, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्, इति साधनधर्मनिर्देशः । यदित्थं न भवति यच्चित्राच्च भवति तदित्थं न भवति आरेकान्तात्मकं न भवति यथाऽकिञ्चित्—न किञ्चित् अथवा अकिञ्चित् सर्वथैकान्तवाद्यभ्युपगतं तत्त्वम् । इति त्रयोऽ-

२० वयवाः पत्रे क्वचित्प्रयुज्यन्ते । तथा चेदमिति पक्षधर्मोपसंहार-वचने चत्वारः । तस्मात्तथाऽनेकान्तव्यापीति निर्देशे पञ्चेति ।

यच्चेदं यौगैः स्वपक्षसिद्ध्यर्थं पत्रवाक्यमुपन्यस्तम्— सैन्यलङ्-  
र्भाग् नाऽनन्तरानर्थार्थप्रस्नापङ्कदाऽऽशौर्हस्यतोऽनीकौनेनलब्धुं कु-  
कुलोर्द्ध्वो वैषोप्यनैश्यतापैस्तन्नऽनुरहलहञ्जुः परापरतत्त्ववित्त-  
२५ दन्योऽनादिरवायनीयत्वत एवं यदीहक्तत्सकलविद्वर्गवदेतच्चैव-  
मेवं तदिति पत्रम् । अस्यायमर्थः—इह आत्मा सकलसैहिकपार-  
लौकिकव्यवहारस्य प्रभुत्वात्, सह तेन वर्तते इति सैन्यं । स  
एव चातुर्वैष्णोर्दिवत्स्वार्थिके ज्यणि कृते ‘सैन्यम्’ इति भवति ।  
तस्य लङ्=विर्लोसः, तं भजते सेवते इति सैन्यलङ्गाक्=‘देहः’

१ जैनैः । २ सर्वथा नित्यस्य क्षणिकस्य वा वस्तुनः । ३ अतः सातलगमने ।  
४ खविषाणवत् । ५ आरेकान्तात्मकम् । ६ देहः । ७ प्रबोधकारीन्द्रियादिकारण-  
कलापः । ८ आसमुद्रात् । ९ गिरिनिकटे भुवनसन्निवेशश्च । १० इनलब्धुं=  
सूर्याचन्द्रमसौ । ११ पृथिव्यादिकार्यद्रव्यसमूहः । १२ वदयते स्वयमेवाप्रेसार्यः ।  
१३ ज्ञानभोगादिपदार्थैः । १४ लङ् विज्रासे ।

इति यावत् । अर्थः प्रयोजनं तस्मै अर्थार्थः, न अर्थार्थोऽनर्थार्थः । प्रकृष्टो लौकिकस्वापाद्विलक्षणः स्वापः प्रस्वापः=बुद्ध्यादिगुणवियुक्तस्यात्मनोऽवस्थाविशेषः मोक्ष इति यावत् । न हि तत्सार्धं किञ्चित्प्रयोजनमस्ति; तस्य सकलपुरुषप्रयोजनानामन्ते व्यवस्थानात् । अनर्थार्थश्चासौ प्रस्वापश्च । नन्वेवं सौगतस्वापस्यापि ग्रहणं ५ स्यात्, सोऽपि ह्यनर्थार्थप्रस्वापो भवति सकलसन्ताननिवृत्तिलक्षणस्य मोक्षस्य सौगतैरभ्युपगमात् । तदुक्तम्—

“दीपो यथा निवृत्तिमभ्युपेतो नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षम् ।  
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्छेदशक्त्यात्केवलमेति शान्तिम् ॥  
जीवस्तथा निवृत्तिमभ्युपेतो नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षम् । १०  
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्छेदशक्त्यात्केवलमेति शान्तिम् ॥”  
[ सौन्दरनन्द १६।२८, २९ ]

अत्राह—नान्तरेति । अन्तो विनाशस्तं रति पुरुषाय द्वातीत्यन्तरः । नान्तरोऽनन्तरः पुरुषस्य विनाशदायको नैत्यर्थः । अनन्तरश्चासावनर्थार्थप्रस्वापश्चानन्तराऽनर्थार्थप्रस्वापः । नेति निपातः १५ प्रतिषेधवाची । नानन्तरानर्थार्थप्रस्वापो लौकिको निद्राकृतः स्वाप इत्यर्थः । तं कृन्तति छिनत्तीति नानन्तरानर्थार्थप्रस्वापकृत्—‘प्रबोधकारीन्द्रियादिकारणकलापः’ इति यावत् । शिषु इत्ययं घातुर्मौवादिकः सेचनार्थः, “शिषु शिषु शिषु विषु उक्ष प्रुष वृषु सेचने” [ ] इत्यभिधानात् । तस्माच्छेषणं भावे अभि कृते २० ‘शेषः’ इति भवति । तस्मात्सार्थिकेऽणि कृते ‘शैर्षः’ इति जायते । शैर्षं करोति “तत्करोति तदाचष्टे, तेनातिक्रामति धुरूपं च” [ ] इति णिचि कृते षेः ‘क्षि च कृते शैषीति भवति । “तदन्ता धवः” [ जैनेन्द्रव्या० २।१।३९ ] इति धुसंज्ञायां सत्यां “प्राग्धोस्ते” [ जैनेन्द्रव्या० १।२।१४८ ] इत्याहो योगः । आशौष-२५ यति समन्ताद्भवः सेकं करोतीति किपि तस्य च सर्वापहारेण लोपे ङत्वे च कृते आशौडिति भवति । आशौड् चासौ स्यच्चाशौड्स्यत् लोकप्रसिद्धः समुद्रः । तस्मादाशौड्स्यतः—आ समुद्रादिति यावत् । निपूर्व इप् इत्ययं घातुर्गत्यर्थः परिगृह्यते—“इप् गतिर्हिंसनयोश्च” [ ] इति वचनात् । नीषते ३० गच्छतीति वीड, न नीडऽनीड । तस्मात्सार्थिके के प्रत्ययेऽनीड इति भवति । अचलो गिरिनिकर इत्यर्थः । यदि वा अं विष्णुं नीषति गच्छति समाश्रयतीत्यनीड=भुवनसन्निवेशः । तदुक्तम्—

१ अनर्थार्थप्रस्वापः । २ परममोक्षस्य न बुद्धौ चोक्तम् । ३ य दाने । ४ शेष एव शैषः । ५ लोपे । ६ ‘डु’ इति घातुसंज्ञा । ७ (भाषे) ।



“युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकांसमासते ।  
तनौ ममुस्तत्र न कैटमद्विषेस्तपोधेनाभ्यागमसम्भवा मुदैः ॥”  
[ शिशुपालव० १।२३ ]

न विद्यते ना संमवायिकारणभूतो यस्यासावऽना, “ऋणोः”  
५ (न्मोः) [ जैनेन्द्रव्या० ४।२।१५३ ] इति कप् सौन्तो न भवति  
“सान्तो विधिरनित्यः” [ ] इति परिभाषाश्रयणात् । इनो  
भानुः । लषणं लट् कान्तिः—“लप् कान्तौ” [ ]  
इति वचनात् । लषा युक् योगो यस्यासौ लब्धुक्-चन्द्रः । इनश्च  
लब्धुक् चैनलब्धुक् सूर्याचन्द्रमसौ । कुलमिव कुलं सजातीयार-  
१० म्भकावयवसमूहः । तस्मादुद्भव आत्मलामो यस्यासौ कुलोद्भवः  
पृथिव्यादिकार्यद्रव्यसमूहः । ‘धा’ इत्यनुक्तसमुच्चये, तेनानित्यस्य  
गुणस्य कर्मणश्च ग्रहणम् । एषः प्रतीयमानः । अतो नाश्रयासिद्धिः ।  
अज्ञो हितोऽप्यः-समुद्रादिः । निशायाः कर्म नैश्यमन्धकारादि ।  
ताप औष्ण्यम् । स्तनतीति स्तन् मेघः । एतेषां द्वन्द्वैकवद्भावः ।  
१५ किम्भूतः स तैश्च । न विद्यते नो पुरुषो निमित्तकारणमस्येति ।  
रटनं परिभाषणं तस्य लट् विलासः, तं जुषते सेवते इति—“जुषी  
प्रीतिसेवनयोः” [ ] इत्यभिधानात् । अनुरह-  
लट्जुह । अत्रापि कवऽभावे निमित्तमुक्तम् ।

अत्र साध्यधर्ममाह । परापरतत्त्ववित्तदन्य इति । परं पार्थिवा-  
२० दिपरमाण्वादिकारणभूतं वस्तु, अपरं पृथिव्यादिकार्यद्रव्यम्,  
तयोस्तत्त्वं स्वरूपम्, तस्मिन्विद् बुद्धिर्यस्यासौ परापरतत्त्ववित्-  
कार्यकारणविषयबुद्धिमान् पुरुष इत्यर्थः । तस्मात्परोक्तादन्यः  
परापरतत्त्ववित्तदन्यो बुद्धिमत्कारण इत्यर्थः । यदा नपुंसकेन  
सम्बन्धस्तदा परापरतत्त्ववित्तदन्यदिति व्याख्येयम् । कुत एत-  
२५ दित्याह—अनादिरवायनीयत्वत इति । कार्यस्य हेतुरादिस्तवः  
प्रागेव तस्य भावात् । तस्मादन्योऽनादिः कार्यसन्दोहः । तस्य  
रवस्तत्प्रतिपादकं कार्यमिति वचनम् । तेनायनीयं प्रतिपार्थं तस्य  
भावस्तत्त्वम्, तस्मादनादिरवायनीयत्वतः—“कार्यत्वात्” इत्यर्थः ।  
एवं यदनादिरवायनीयं तदीदृग् बुद्धिमत्कारणम् । तत्कला अव-  
३० यवा भागा इत्यर्थः, सह कलाभिर्वर्तते इति सकला । वित् आत्म-

१ तिष्ठन्ति । २ नारायणस्य । ३ प्रकाशसंपोषणोत्र नारदः । ४ सन्तोषाः ।  
५ समासान्त इत्यर्थः । ६ हेतोः । ७ जन्मादीनाम् । ८ पुष्टिनिर्दिष्टः सर्वः  
नपुंसकलिङ्गनिर्दिष्टं सर्वम् । ९ सायान्वनरः । १० धर्मिणि । ११ गजुदि-  
मत्कारणात् ।

लाभो-“विदुः लाभे” [ ] इति वचनात् । यस्य सकला वित् वृणोति प्रच्छादयतीत्यौणादिके शे वर्ग इति भवति । सकलविद्यासौ वर्गश्चेति सकलविद्वर्गो-पठ इत्यर्थः । तेन तुल्यं वर्तते इति सकलविद्वर्गवत् । एतच्च तन्वादि एवमनादिरवा-यनीयप्रकारं तत्तस्माद्बुद्धिमत्कारणमिति । तदेतदसमीचीनम्; ५ अनुमानाभासत्वादस्य । तदाभासत्वं च तदवयवानां प्रतिष्ठाहेतु-दाहरणानां कालात्ययापदिष्टत्वाद्यनेकदोषदुष्टत्वेन तदाभासत्वा-त्सिद्धम् । एतच्चेत्स्वरनिराकरणप्रकरणाद्विशेषतोवगन्तव्यम् ।

ननु चोक्तलक्षणे पत्रे केनचित्कर्मण्युद्दिष्ट्यावलम्बिते तेन च गृहीते मिते च यदा पत्रस्य दातव्यं ज्ञायात् ‘नायं मदीयपत्रस्यार्थः’ १० इति, तदा किं कर्तव्यमिति चेत् । तदासौ विकल्प्य प्रष्टव्य-कोषं भवत्पत्रस्यार्थो नाम-किं यो भवन्मनसि वर्तते सोस्यार्थः, चाक्ष्यरूपात्पत्रात्प्रतीयमानो वा स्यात्, भवन्मनसि वर्तमानः ततोपि च प्रतीयमानो वा प्रकारान्तरेण सम्भवात् । तत्र प्रथमपक्षे पत्रावलम्बनमनर्थकम् । तद्वि(द्धि)प्रतिवादी समादाय विद्वा- १५ तार्थस्वरूपस्तत्र दूषणं यद्वत्तु विपरीतस्तु निर्जितो भवत्वित्यवल-म्ब्यते । यच्च तस्मादर्थः प्रतीयते नासौ तदर्थ इति न तत्र केनचित्साधनं दूषणं वा चकव्यमनुपयोगात् । यस्तु तदर्थो भवचेतसि वर्तमानो नासौ कुतश्चित्प्रतीयते परचेतोवृत्तीनां दुरन्धयत्वौदिति । तत्रापि न साधनं दूषणं वा सम्भवति । न २० ह्यप्रतीयमानं वस्तु साधनं दूषणं बाह्यत्वात्प्रसङ्गात् । यदि पुनरन्यतः कुतश्चित् प्रतिपद्य प्रतिवादी तत्र साधनादिकं ज्ञायात्, तर्हि पत्रावलम्बनानर्थक्यम् । तत एव तत्प्रतिपत्ति-श्चेत्प्रमेतत्-‘तस्यासार्थ्यो न भवति ततश्च प्रतीयते’ इति, गोशब्दादप्यश्वादिप्रतीतिप्रसङ्गात् । संज्ञिते सति भवतीति चेत्कः २५ संज्ञेत कुर्यात् ? पत्रदातेति चेत्, किं पत्रदानकाले, वादकाले वा, तथा प्रतिवादिनि, अन्यत्र वा । तद्दानकाले प्रतिवादिनीति चेत्, न; तथा व्यवहारभावात् । न खलु कैश्चिद् ‘अर्थं मम चेत-

१ अनुमानस्य । २ वादिना । ३ प्रतिवादिनस्य । ४ प्रतिवादिना । ५ साधने । ६ अर्थं विचार्य पत्रे लक्ष्मीकृते । ७ प्रतिवादिना । ८ कथम् । ९ तत् पत्रम् । १० अभ्यवर्तमानः । ११ प्रमाणात् । १२ अन्ययोः निमित्तकः । १३ चेतसि वर्तमाने-नेति । १४ चेतोवर्तमानपत्रार्थम् । १५ चेतोवर्तमानपत्रार्थम् । १६ तस्य चेतसि वर्तमानपत्रार्थम् । १७ चेतसि वर्तमानः । १८ पत्रादप्रतीयमानोऽसि चेतसि वर्तमा-नपत्रार्थः सङ्केतकाले तदर्थो भविष्यतीत्याशङ्क्याह । १९ पुनरावृत्तेः । २० पत्रदानकाले प्रतिवादिनि सङ्केतप्रकारेण । २१ वादी ।

- स्यर्थो वर्ततेऽस्येदं पत्रं वाचकमस्मात्स्वयायमर्थो वादकाले प्रति-  
पत्तव्यः' इति सङ्केतं विदधाति । तथा तद्विधाने वा किं पत्रदा-  
नेन ? केवलमेवं वक्तव्यम्—'अर्थो मम चेतसि वर्तते, अत्र त्वया  
साधनं दूषणं वा वक्तव्यम्' इति । इदमन्ते साम्प्रतमप्यऽमत्सराः  
५ सन्त एव वदन्तः—'शब्दो नित्योऽनित्य इति वाऽस्माकं मनसि  
प्रतिभाति, तत्र यदि भवतां दूषणाद्यभिधाने सामर्थ्यमस्ति यामः  
सम्भ्यान्तिकम्' इति । कालान्तरेऽविस्मरणार्थं तद्धानं चेत्, तर्ह्य-  
गूढं पत्रं दातव्यम्, इतरथा तद्धानेपि विस्मरणसम्भवे किं कर्त्त-  
व्यम् ? विस्मर्तुर्निग्रहश्चेत्, न; पूर्वसङ्केतविधानवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । न  
१० तत्प्रसङ्गः प्रतिवादिनः पत्रार्थपरिज्ञानार्थत्वात्तस्येति चेत्, तर्हि  
तत्परिज्ञानार्थं विस्मृतसङ्केतस्य पुनस्तद्विधानमेवास्तु, न तु  
निग्रहः । यदि च भवञ्चित्ते वर्तमानोप्यर्थः सङ्केतवलेन पत्रा-  
देव प्रतीयते; तर्हि ततो यः प्रतीयते स तदर्थो न मनस्येव वर्त-  
मानः । यदि पुनः सङ्केतसहायात्पत्रात्तस्य प्रतीतेर्न तदर्थत्वम् ।  
१५ तर्हि न कश्चित्कस्यचिदर्थः स्यात् सङ्केतमन्तरेण कुतश्चिच्छब्दा-  
दर्थोऽप्रतीतेः । तत्र तद्धानकाले प्रतिवादिनि सङ्केतः । नापि  
वादकाले; तथाव्यवहारविरहादेव । किं च वादकालेपि चेद्वादी  
प्रतिवादिने स्वयं पत्रार्थं निवेदयति; तर्हि प्रथमं पत्रग्रहीतुरुपन्या-  
सोऽनवसरः स्यात् । तन्नायमपि पक्षः श्रेयान् ।  
२० अथान्यत्र, तर्हि स एव तदर्थज्ञः, इति कथं प्रतिवादी साधना-  
दिकं वदेत् तस्य तदर्थोऽपरिज्ञानात् ? प्रतिवादिनस्तदर्थोपरिज्ञानं  
वादिनोमीष्टमेव तदर्थत्वात्पत्रदानस्येति चेत्, तर्हि पत्रमनक्षरं  
दातव्यमतः सुतरां तदपरिज्ञानसम्भवात् । अशिष्टवेष्टाप्रसङ्गोऽन्य-  
त्रापि समानः । इति न किञ्चित्प्रागुक्तलक्षणपत्रदानेन प्रयोजनम् ।  
२५ ननु वादप्रवृत्तिः प्रयोजनमस्त्येव—तद्धाने हि वादः प्रवर्तते,  
साधनाद्यभिधानं तु मानसार्थं वचनान्तरात्प्रतीयमान इत्यभि-  
धाने तु पराक्रोशमात्रं लिखित्वा दातव्यं ततोपि वादप्रवृत्तेः  
सम्भवात् किमतिगूढपत्रविरचनप्रयासेन ? तन्नाद्यपक्षे पत्राव-  
लम्बनं फलवत् ।

अथ तच्छब्दाद्यः प्रतीयते स तदर्थः; तर्हि स्थापयिता नो  
३० रत्नवृष्टिः प्रकृतिप्रत्ययादिप्रपञ्चार्यप्रविभागेन प्रतीयमानस्य पत्रा-  
र्थत्वव्यवस्थितेः । अथ नायं तदर्थः; कथमन्यस्तदर्थः स्यात् ?

१ प्रतिवादिना । २ तर्हीति शेषः । ३ सङ्केतितायं स । ४ कर्त्तव्य इति शेषः ।  
५ पुराणान्तरे । ६ अन्यः । ७ स्वमनसि व्यवस्थितार्थे । ८ अस्माकम् । ९ तिष्ठोऽ-  
सादीयः पक्ष इत्यर्थः ।

अथान्यार्थसम्भवेऽपि यस्तदवलम्बिनेष्यते स एव तदर्थः । कुत एतत् ? ततः प्रतीतेऽद्येत्, अन्योप्यत एव स्यात् । अथ ततः प्रतीयमानत्वाविशेषेऽपि यस्तेनेष्यते स एव तदर्थो नान्यः, ननु शब्दः प्रमाणम्, अप्रमाणं वा ? प्रमाणं चेत्, तर्हि तेन यावानर्थः प्रदर्श्यते स सर्वोऽपि तदर्थ एव । न खलु चक्षुषानेकस्मिन्नर्थे घटादिके प्रदर्श्यमाने 'तद्वता य इष्यते स एव तदर्थो नान्यः' इति युक्तम् । अथाप्रमाणम्, तर्हि तेनेष्यमाणोऽपि नार्थः । न हि द्विचन्द्रादिकस्तद्दर्शनेष्यमाणोऽर्थो भवितुमर्हति, अन्यथा परेनेष्यमाणोऽप्यर्थो किं न स्यात् । तन्नायमपि पक्षो युक्तः ।

तैतो यः प्रतीयते तद्वातुञ्चेतसि च वर्तते स तदर्थः, इत्यत्रापि- १०  
केनेदमवगम्यताम् वादिना, प्रतिवादिना, प्राश्निकैर्वा ? तत्राद्यवि-  
कल्पे प्रतिवादिना वादिमनोर्यानुकूल्येन पत्रे व्याख्याते वादिना  
तथावधारितेऽपि स चैर्यात्याद्यदैवं वदति 'नायमस्यार्थो मम चेत-  
स्यन्यस्य वर्चनात्, विपरीतप्रतिपत्तेर्निगृहीतोऽसि' इति तदा किं  
कर्तव्यं प्राश्निकैः ? तथाभ्युपगमश्चेत्, महामध्यस्थास्ते यत्तदर्थ- १५  
प्रतिपादकस्यापि प्रतिवादिनो निग्रहं व्यवस्थापयन्ति वाद्यभ्युपग-  
ममात्रेण । न तावत्प्राज्ञेणास्य निग्रहोऽपि तु यदा वादी स्वमनोग-  
तमर्थान्तरं निवेदयतीति चेत्, ननु 'तेन निवेद्यमानमर्थान्तरं  
पञ्चास्यभिधेयम्' इति कुतोऽवगम्यताम् ? तदप्रातिकूल्येन निवे-  
दनाच्चेत्, तत एव प्रतिवादिप्रतिपाद्यमानोऽप्यर्थस्तदभिधेयोऽस्तु २०  
विशेषाभावात् । वादिचेतस्यऽस्फुरणाच्चेति चेत्, इदमपि कुतो-  
ऽवगम्यताम् ? तत्रार्थदर्शनाच्चेत्, किं पुनस्तच्चेतः प्राश्निकानां  
प्रत्यक्षं येनैवं स्यात् ? तथा चेत्, अतीन्द्रियार्थदर्शिमिस्तर्हि प्राश्नि-  
कैर्मवितव्यं नेतरपण्डितैः । तथा च प्रत्यक्षत एव वादिप्रतिवा-  
दिनोऽसारेतरविभागं विज्ञायोपन्यासमन्तरेणैव जयेतरव्यवस्थां २५  
रचयेयुः । नो चेत्कथं तत्र कस्यचित्स्फुरणमस्फुरणं वा ते  
प्रतियन्तु ? न ह्यप्रतिपक्षभूतलस्य 'अत्र भूतले घटोऽस्ति नास्ति'  
इति वा प्रतीतिरस्ति । अथ स्वयमेव यदासौ वदति- 'ममायमर्थो  
मनसि वर्तते नायम्' इति तदा ते तथा प्रतिपद्यन्तः, न; तदापि  
संदेहात्- 'किं प्रतिवादिना योऽर्थो निश्चितः स एवास्य मनसि ३०  
वर्तते शब्देन तु वदति नायमर्थो मम मनसीति किन्त्वन्य एव-यो  
मया प्रतिपाद्यते, उतायमेव, इति न निश्चयहेतुः । दृश्यन्ते हाने-

१ वादिना । २ पत्रं गृहीत्वा । ३ पत्रात् । ४ वाद्यार्थात् । ५ पक्षस्य ।  
६ लीकर्तव्यः । ७ वादी । ८ प्रतिवादिनिगद्यमानार्थस्य वादिचेतसि स्फुरण-  
स्फुरणप्रकारेण । ९ इति चेदिति शेषः ।

कार्थं पत्रं विरचय्य, 'यदीदमस्यार्थतत्त्वं प्रतिवादी ज्ञास्यति तर्हेवं  
वदिष्यामः, नेदमर्थतत्त्वमस्य किन्त्वदमिति, अथेदं ज्ञास्यति  
तत्राप्यन्यथा गदिष्यामः' इति सम्प्रधारयन्तो वादिनः । अथ  
गुर्वादिभ्यः पूर्वमसौ तन्निवेदयति, तैतस्तेभ्यः प्राश्निकानां तन्नि-  
५ श्रयः, न; अत्राप्यारेकाऽनिवृत्तेः, स्वशिष्यपक्षपातेनान्यथापि तेषां  
वचनसम्भवात् । यदि पुनर्वादी वादप्रवृत्तेः प्राक् प्राश्निकेभ्यः  
प्रतिपादयति- 'मदीयपत्रस्यायमर्थः, अत्रार्थान्तरं ब्रुवन् प्रति-  
वादी भवद्भिर्निवारणीयः' इति । अत्रापि प्रागप्रतिपक्षपत्रार्थ-  
ानां मह्यमध्यस्थानामुभयामभिमतानामकसादाहृतानां सभ्यानां  
१० मध्ये विवादकरणे का वार्त्ता? 'पत्रायः प्रतीयते स एव तत्र  
तदर्थः' इति चेत्, अन्यत्रापि स एवास्त्वविशेषात् । तत्रायः  
पक्षो युक्तः ।

नापि द्वितीयः । न खलु प्रतिवादी वादिमनो जानाति येन  
'योस्य मनसि वर्त्तते स एव मयार्थो निश्चितः, इति जानीयात् ।  
१५ एतेन' तृतीयोपि पक्षश्चिन्तितः, सभ्यानामपि तन्निश्चयोपायमा-  
वात् । किञ्चेदं पत्रं तद्वातुः स्वपक्षसाधनवचनम् परपक्षदूषणव-  
चनम्, उभयवचनम्, अनुभयवचनं वा? तत्रायविकल्पत्रये  
सभ्यानामग्रे त्रिरुच्चारणीयमेव तैत्रत्रापि वैषम्यात् । तथोच्चारि-  
तमपि यदा प्राश्निकैः प्रतिवादिना च न ज्ञायते वाद्यऽभिप्रेतार्थो-  
२० लुक्कल्येन तदा तद्वातुः किं भविष्यति? निग्रहः, "त्रिरभिहितस्यापि  
कष्टप्रयोगद्रुतोच्चारदिभिः परिषदा प्रतिवादिना चाज्ञातमज्ञातं  
नाम निग्रहस्थानम्" [ न्यायसू० ५।२।९ ] इत्यभिधानात्, इति  
चेत्, तस्य तर्हि स्वधाय कृत्योत्थापनम् उक्तविधिना सर्वत्र  
तदेकानसम्भवात् । तैवन्मात्रप्रयोगाच्च स्वपरपक्षसाधनदूषणमावे  
२५ प्रतिवाद्युपन्यासमनपेक्ष्यैव सभ्याः वादिप्रतिवादिनोर्जयेतरव्य-  
वस्थां कुर्युः । चतुर्थपक्षे तु तन्निग्रहः सुप्रसिद्ध एव; स्वपरपक्षयोः  
साधनदूषणाऽप्रतिपादनात् । इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

अथेदानीमात्मनः प्रारब्धनिर्वहणमौद्धत्यपरिहारं च सूचयन्  
परीक्षामुखेत्याद्याह—

१ निवेदनयोगे चतुर्थी । २ वादी । ३ पत्रार्थम् । ४ निवेदनात् । ५ पत्रार्थम् ।  
६ इति चेदिति शेषः । ७ पक्षे । ८ न कापि । ९ अकसादाहृतेषु । १० पूर्व-  
प्राश्निकेण्वपि । ११ उभयपक्षनिराकरणेन । १२ स्वपरपक्षसाधनदूषणकारकपत्रम् ।  
१३ राक्षसी । १४ परिषदि । १५ तस्य—पत्रार्थस्य । १६ स्वपरपक्षसाधन-  
दूषणकारकपत्रम् । १७ पत्रपरीक्षायाः ।

## परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः

संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद्व्यधाम् ॥१॥

परीक्षा तर्कः, परि समन्तादशेषविशेषत ईक्षणं यत्रार्थानामिति व्युत्पत्तेः । तस्या मुखं तद्भ्युत्पत्तौ प्रवेशार्थिनां प्रवेशद्वारं शास्त्रमिदं व्यधामहं विहितवानस्मि । पुनस्तद्विशेष-  
णमादर्शमित्याद्याह । आदर्शधर्मसद्भावादिदमप्यादर्शः । यथैव  
ह्यादर्शः शरीरालङ्कारार्थिनां तन्मुखमण्डनादिकं विरूपकं हेयत्वेन  
सुरूपकं चोपादेयत्वेन सुस्पष्टमादर्शयति तथेदमपि शास्त्रं हेयो-  
पादेयतत्त्वे तथात्वेन प्रस्पष्टमादर्शयतीत्यादर्श इत्यभिधीयते ।  
तदीदृशं शास्त्रं किमर्थं विहितवान् भवानित्याह । संविदे । कस्ये-१०  
त्याह मादृशः । कीदृशो भवान् यत्सदृशस्य संवित्पर्यं शास्त्रमि-  
दमारभ्यते इत्याह-बालः । एतदुक्तं भवति-यो मत्सदृशोऽल्प-  
प्रज्ञस्तस्य हेयोपादेयतत्त्वसंविदे शास्त्रमिदमारभ्यते इति ।  
किंचत् ? परीक्षादक्षवत् । यथा परीक्षादक्षो महाप्रज्ञः स्वसदृश-  
शिष्यव्युत्पादनार्थं विशिष्टं शास्त्रं विदधाति तथाहमपीदं विहि-१५  
तवानिति । ननु चाल्पप्रज्ञस्य कथं परीक्षादक्षवत् प्रारब्धैवंविध-  
विशिष्टशास्त्रनिर्वहणं तस्मिन्वा कथमल्पप्रज्ञत्वं परस्परविरोधात् ?  
इत्यप्यचोद्यम् ; औद्धत्यपरिहारमात्रस्यैवमात्मनो ग्रन्थकृता  
प्रदर्शनात् । विशिष्टप्रज्ञासद्भावास्तु विशिष्टशास्त्रलक्षणकार्योपल-  
म्भादेवास्याऽवसीयते । न खलु विशिष्टं कार्यमविशिष्टादेव कार-२०  
णात् प्रादुर्भावमर्हत्यतिप्रसङ्गात् । मादृशोऽबाल इत्यत्र नञ् वा  
द्रष्टव्यः । तेनायमर्थः-यो मत्सदृशोऽबालोऽनल्पप्रज्ञस्तस्य हेयो-  
पादेयतत्त्वसंविदे शास्त्रमिदमहं विहितवान् । यथा परीक्षादक्षः  
परीक्षादक्षार्थं विशिष्टशास्त्रं विदधातीति । ननु चानल्पप्रज्ञस्य  
तत्संविचेर्भवत इव स्वतः सम्मवाचं प्रति शास्त्रविधानं व्यर्थमेवः २५  
इत्यप्यसुन्दरम् ; तद्ग्रहणेऽनल्पप्रज्ञासद्भावस्य विशिष्ट्य विवक्षि-  
तत्वात् । यथा ह्यहं तत्करणेऽनल्पप्रज्ञस्तज्ज्ञस्तथा तद्ग्रहणे योऽन-  
ल्पप्रज्ञस्तं प्रतीदं शास्त्रं विहितम् । यस्तु शास्त्रान्तरद्वारेणा-  
वगतहेयोपादेयस्वरूपो न तं प्रतीत्यर्थं इति ।

इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे

यष्टः परिच्छेदः समाप्तः ॥ छ ॥

३०

गर्भमीरं निखिलार्थगोचरमलं शिष्यप्रबोधप्रदम्,  
यद्व्यक्तं पदमद्वितीयमखिलं माणिक्यनन्दिप्रभोः ।  
तद्व्याख्यातमदो यथावगमतः किञ्चिन्मया लेखतः,  
स्थेयाच्छुद्धधियां मनोरतिगृहे चन्द्रार्कतारावधि ॥ १ ॥

५ मोहध्वान्तविनाशनो निखिलतो विज्ञानशुद्धिप्रदः,  
मेयानन्तनभोविसर्पणपटुर्वस्तुकिभाभासुरः ।  
शिष्याब्जप्रतिबोधनः समुदितो योऽद्रेः परीक्षामुखात्,  
जीयात्सोत्र निबन्ध एव सुचिरं मार्त्तण्डतुल्योऽमलः ॥ २ ॥

१० गुरुः श्रीनन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः ।  
नन्दताडुरितैकान्तरजाजैनमतार्णवः ॥ ३ ॥  
श्रीपद्मनन्दिसेद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः ।  
प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयाद्भजनन्दिपदे रतः ॥ ४ ॥

श्रीभोजदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपरमेष्ठिपदप्र-  
णामार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्र-  
१५ पण्डितेन निखिलप्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्द्योतपरीक्षामुखपदमिदं  
विवृतमिति ॥

( इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचितः प्रमेयकमलमार्त्तण्डः समाप्तः )

॥ शुभं भूयात् ॥

१ अथेदानीं माणिक्यनन्दिपदव्यावर्जनपूर्वकं तत्पदाशीर्वादपूर्वकं चात्मनः प्रारब्ध-  
निर्वहणमौद्भत्यपदिष्टारं च सूचयन्नाह गम्भीरेत्यादि । २ अप्रमितम् । ३ मार्त्तण्ड  
इत्यस्योपपत्तिं दर्शयति । ४ स्वस्य । ५ माणिक्यनन्दी ।







# प्रथमं परिशिष्टम् ।

## परीक्षामुखसूत्रपाठः ।

### ॥ प्रथमः परिच्छेदः ॥

प्रमाणादर्थसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।	पृ०
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्यं सिद्धमलं लघीयसः ॥ १ ॥	२
१ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ।	७
२ हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ।	२५
३ तद्विषयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ।	२७
४ अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ।	५९
५ दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक् ।	५९
६ खोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ।	९८
७ अर्थस्यैव तदुन्मुखतया ।	९८
८ षट्सहमात्मना वेधि ।	१२१
९ कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतिः ।	१२१
१० सन्धानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत् ।	१२८
११ को वा तत्प्रतिभासितमर्थमध्यक्षमिच्छंस्त्वदेव तथा नेच्छेत् ।	१४९
१२ प्रधीपवत् ।	१४९
१३ तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति ।	१४९

### ॥ द्वितीयः परिच्छेदः ॥

१ तद्वेद्या ।	१७७
२ प्रत्यक्षेतरमेदात् ।	१८०
३ विशदं प्रत्यक्षम् ।	२१६
४ प्रतीत्यन्तरव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैश्वयम् ।	२१९
५ इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः साव्यवहारिकम् ।	२२९
६ नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ।	२३१
७ तदन्वयव्यतिरेकादुविधानाभावाच्च केशोष्णकृत्तानवचकम्बरज्ञानवच ।	२३३
८ अतल्लान्यमपि तत्प्रकाशकं प्रधीपवत् ।	२३९
९ सावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति ।	२४०
१० कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः ।	२४०
११ सामग्रीविशेषविच्छेपिताखिलावरणमतीन्द्रियमक्षेपतो मुख्यम् ।	२४१
१२ सावरणत्वे कारणजन्यत्वे च प्रतिबन्धसम्भवात् ।	२४

## ॥ तृतीयः परिच्छेदः ॥

पृ०

- १ परोक्षमितरत् । ३३५  
 २ प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम् । ”  
 ३ संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः । ”  
 ४ स देवदत्तो यथा । ”  
 ५ दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानम् । तदेवेदं तत्सदृशं  
 तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि । ३३८  
 ६ यथा स एवार्थं देवदत्तः । ७ गोसदृशो गवयः । ३४०  
 ८ गोविलक्षणो महिषः । ९ इदमस्माद् दूरम् । ”  
 १० वृक्षोऽयमित्यादि । ”  
 ११ उपलम्भभानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः । ३४८  
 १२ इष्टमस्मिन्सत्त्वेव भवत्यसति न भवत्येवेति च । ३४९  
 १३ यथाऽभावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च । ”  
 १४ साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् । ३५४  
 १५ साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः । ”  
 १६ सहकर्मभावनियमोऽविनाभावः । ३६९  
 १७ सहचारिणोर्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः । ”  
 १८ पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च कर्मभावः । ”  
 १९ तर्कात्तन्निर्णयः । ”  
 २० इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् । ”  
 २१ सन्दिग्धमिपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदम् । ”  
 २२ अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं माभूदितिष्टाबाधितवचनम् । ३७०  
 २३ न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः । ”  
 २४ प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव । ”  
 २५ साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विनिष्ठो वा धर्मी । ३७१  
 २६ पक्ष इति यावत् । ”  
 २७ प्रसिद्धो धर्मी । ”  
 २८ विकल्पसिद्धे तस्मिन्सत्तरे साध्ये । ”  
 २९ अस्ति सर्वज्ञो नास्ति खरविषाणम् । ”  
 ३० प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता । ३७२  
 ३१ अभिमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा । ”  
 ३२ व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव । ”  
 ३३ अन्यथा तदघटनात् । ”  
 ३४ साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् । ३७३  
 ३५ साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् । ”  
 ३६ को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति । ”

- ३७ एतद्भयमेवावसानाज्ञं नोदाहरणम् । ३७४
- ३८ न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यज्ञं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात् । ”
- ३९ तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः । ३७५
- ४० व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्ताव-  
नवस्थानं स्यात् दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् । ”
- ४१ नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः । ”
- ४२ तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति । ३७६
- ४३ कुतोऽन्यथोपनयनिगमने । ”
- ४४ न च ते तदज्ञे । साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनापेवासंशयात् । ”
- ४५ समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वाऽस्तु साध्ये तदुपयोगात् । ”
- ४६ बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्रयोपगमे बाध एवासी न वादेऽनुपयोगात् । ”
- ४७ दृष्टान्तो द्वेषा । अन्यव्यतिरेकमेवात् । ३७७
- ४८ साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः । ”
- ४९ साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः । ”
- ५० हेतोरुपसंहार उपनयः । ”
- ५१ प्रतिज्ञावास्तु निगमनम् । ”
- ५२ तदनुमानं द्वेषा । ३७८
- ५३ स्वार्थपरायमेवात् । ”
- ५४ स्वार्थमुपलक्षणम् । ”
- ५५ परार्थं तु तदर्थपरामर्शवचनाभ्यामतम् । ”
- ५६ तद्वचनमपि तदेतुलात् । ”
- ५७ स हेतुर्द्वेषोपलब्ध्यनुपलब्धिमेवात् । ”
- ५८ उपलब्धिर्विधिविप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च । ३७९
- ५९ अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ बोद्धा व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरमेवात् । ”
- ६० रसादेकसामान्यजुमानेन रूपाजुमानमिच्छद्विरिष्टमेव किञ्चित्कारणं  
हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये । ”
- ६१ न च पूर्वोत्तरचारिणोऽस्मादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः । ३८०
- ६२ भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्वोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुसम् । ३८१
- ६३ तद्व्यापाराभितं हि तद्व्यावभाषितम् । ”
- ६४ सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च । ३८३
- ६५ परिणामी शब्दः, कृतकत्वात्, न एवं स एवं दृष्टो यथा वदः,  
कृतकश्चायम्, तस्मात्परिणामी, यस्तु न परिणामी स न कृतको  
दृष्टो यथा वन्ध्यास्त्रनन्धयः, कृतकश्चायम्, तस्मात्परिणामी । ”
- ६६ अस्त्यत्र वेदिनि वृद्धिर्व्याहारादेः । ”
- ६७ अस्त्यत्र छाया छत्रात् । ३८४
- ६८ उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् । ”

६९	सदगाद्भरणिः प्राकृत एव ।	५०
७०	अस्सत्र मातुल्लिहे रूपं रसात् ।	३८४
७१	विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा ।	”
७२	नास्सत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ।	३८५
७३	नास्सत्र शीतस्पर्शो धूमात् ।	”
७४	नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ।	”
७५	नोदेव्यति सुद्वर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात् ।	”
७६	नोदगाद्भरणिर्मुद्वर्तत्पूर्वं पुष्योदयात् ।	”
७७	नास्सत्र भित्ती परमागामावोऽर्वाग्भागदर्शनात् ।	”
७८	अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वो- त्तरसहचरानुपलम्भमेदात् ।	३८६
७९	नास्सत्र भूतले षटोऽनुपलब्धेः ।	”
८०	नास्सत्र शिक्षाया वृक्षानुपलब्धेः ।	३८८
८१	नास्सत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽभिर्धूमानुपलब्धेः ।	”
८२	नास्सत्र धूमोऽनमेः ।	”
८३	न भविष्यति सुद्वर्तान्ते शकटं कृतिकोदयानुपलब्धेः ।	”
८४	नोदगाद्भरणिर्मुद्वर्तत्प्राक् तत एत ।	”
८५	नास्सत्र समगुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ।	”
८६	विरुद्धानुपलब्धिर्विधौ त्रेधा । विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिमेदात् ।	”
८७	यथाऽस्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः ।	”
८८	अस्सत्र वेदिनि दुःखमिष्टसंयोगामावात् ।	”
८९	अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः ।	३८९
९०	परम्परया सम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम् ।	”
९१	अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ।	”
९२	कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ।	”
९३	नास्सत्र गुह्यार्था शृङ्गकीर्णं शृङ्गारिसंशब्दनात् कारणविरुद्धकार्य विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा ।	”
९४	व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा ।	३९०
९५	अभिमानयं देशस्तयैव धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा ।	”
९६	हेतुप्रयोगो हि यथाव्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैवधार्यते ।	”
९७	तावता च साध्यसिद्धिः ।	”
९८	तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः ।	”
९९	आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानभागमः ।	३९१
१००	सहजयोग्यतासङ्केतवशादि शब्दादयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ।	४२७
१०१	यथा मेर्वादयः सन्ति ।	४२८

॥ चतुर्थः परिच्छेदः ॥

५०

- १ सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः । ४६६
- २ अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात्पूर्वोत्तराभारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षण-  
परिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च । ”
- ३ सामान्यं द्वेषा, तिर्यगूर्ध्वतामेदात् । ”
- ४ सदृशपरिणामस्तिर्यक्, कण्डमुण्डादिषु गोलवत् । ४६७
- ५ परापरविवर्त्तव्यापिद्रव्यनूर्ध्वता सृष्टेव स्थासादिषु । ४८८
- ६ विशेषपक्ष । ५२०
- ७ पर्यायव्यतिरेकमेदात् । ”
- ८ एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत् । ”
- ९ अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् । ५२४

॥ पञ्चमः परिच्छेदः ॥

- १ अज्ञाननिवृत्तिर्ज्ञानोपादानोपेक्षाश्च फलम् । ६२४
- २ प्रमाणादभिन्नं मिश्रम् । ६२४
- ३ यः प्रमिनीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्त उपेक्षते चेति प्रतीतेः । ६२६

॥ षष्ठः परिच्छेदः ॥

- १ ततोऽन्यत्तदामासम् । ६२९
- २ अस्मत्तद्विदितपृष्टीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः । ”
- ३ स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् । ”
- ४ पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छतृणस्पर्गस्थानुपुरुषादिज्ञानवत् । ”
- ५ चक्षुरस्योर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवत् । ”
- ६ अवैश्वे प्रत्यक्षं तदामासं बौद्धस्याकस्माद्भूतदर्शनाद्विज्ञानवत् । ६२९
- ७ वैश्वेऽपि परोक्षं तदामासं गीर्मासकस्य करणज्ञानवत् । ६३०
- ८ अतस्मिन्नादिति ज्ञानं स्मरणाभासम्, जिनदत्तो स देवदत्तो यथा । ”
- ९ सदृशे सदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमलकवदित्यादि  
प्रत्यभिज्ञानाभासम् । ”
- १० असम्बद्धे तज्ज्ञानं तर्कामासम्, यावत्तत्पुत्रः स द्यामो यथा । ”
- ११ इदमनुमानाभासम् । ”
- १२ तत्रानिश्चयः पक्षाभासः । ”
- १३ अनिश्चो गीर्मासकस्यानित्यः शब्दः । ६३१
- १४ सिद्धः श्रावणः शब्दः । ”
- १५ बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः । ”
- १६ अनुप्योऽभिर्द्रव्यत्वाच्चलवत् । ”
- १७ अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् घटवत् । ”

१८ प्रेक्षासुखप्रदो धर्मः पुरुषाभितत्वादधर्मवत् ।	४०
१९ ह्युचि नरशिरःकपालं प्राप्यतलाच्छङ्खशुक्तिवत् ।	६३१
२० माता मे बन्ध्या पुरुषसंयोगेऽप्यगर्मलात्प्रसिद्धबन्ध्यावत् ।	६३२
२१ हेलाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाक्षित्कराः ।	॥
२२ असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः ।	॥
२३ अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात् ।	॥
२४ स्वरूपेणासत्त्वात् ।	॥
२५ अविद्यमाननिश्चयो सुगन्धबुद्धिं प्रत्यभिरञ्ज धूमात् ।	६३४
२६ तस्य चाष्पादिभावेन भूतसङ्घाते सन्देहात् ।	॥
२७ सांख्यं प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात् ।	॥
२८ तेनाज्ञातत्वात् ।	॥
२९ विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् ।	६३५
३० विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः ।	६३७
३१ निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् षट्पदम् ।	॥
३२ आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात् ।	॥
३३ शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वशो वक्तृत्वात् ।	॥
३४ सर्वशलेन वक्तृत्वाविरोधात् ।	६३८
३५ सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरक्षित्करः ।	६३९
३६ सिद्धः श्रावणः शब्दः सन्देहात् ।	॥
३७ क्षिप्रिदकरणत्वात् ।	॥
३८ यथाऽनुष्णोऽभिर्द्रव्यत्वादित्यादौ क्षिप्रिकर्तुमशक्यत्वात् ।	॥
३९ लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ।	॥
४० दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाध्यसाधनोभयाः ।	६४०
४१ अपौरुषेयः सन्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुषट्पदम् ।	॥
४२ विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम् ।	॥
४३ विद्युदादिनाऽतिप्रसङ्गात् ।	॥
४४ व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत् ।	॥
४५ विपरीतव्यतिरेकश्च यच्चामूर्तं तच्चापौरुषेयम् ।	६४१
४६ बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु क्रियद्दीनता ।	॥
४७ अभिमानयं देशो धूमवत्त्वात् यदित्यं तदित्यं यथा महानस इति ।	॥
४८ धूमवाश्वायमिति वा ।	॥
४९ तस्मादभिमान् धूमवांश्वायमिति ।	॥
५० स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ।	॥
५१ रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम् ।	६४२
५२ यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति धावर्चं माणवकाः ।	॥
५३ अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमास इति च ।	॥

	पृ०
५४ विसंवादात् ।	६४२
५५ प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ।	”
५६ लौक्यायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परब्रुव्यादेश्चासि- द्धेरतद्विषयत्वात् ।	६४३
५७ सौगतसांख्ययोगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमा- नार्थापत्यभावेरैकैकाधिकैर्व्योप्तिवत् ।	”
५८ अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम् ।	”
५९ तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वम् अप्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात् ।	”
६० प्रतिभासमेदस्य च मेदकत्वात् ।	”
६१ विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम् ।	”
६२ तथाऽप्रतिभासनात्कार्याकरणाच्च ।	६४४
६३ समर्थस्य करणे सर्वदोषत्तिरनपेक्षत्वात् ।	”
६४ परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात् ।	”
६५ स्वयमसमर्थस्य अकारकत्वात्पूर्ववत् ।	”
६६ फलाभास प्रमाणावभिज्ञं मिश्रमेव वा ।	”
६७ अमेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः ।	”
६८ व्यावृत्त्याऽपि न तत्कल्पना फलान्तराद्यावृत्त्याऽफलत्वप्रसङ्गात् ।	”
६९ प्रमाणाद्यावृत्त्येवाप्रमाणत्वस्य ।	”
७० तस्माद्वास्तवो मेदः ।	”
७१ मेदे ज्ञात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः ।	६४५
७२ समवायेऽस्तिप्रसङ्गः ।	”
७३ प्रमाणतदाभासौ द्रुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणमूषणे च ।	”
७४ समवदन्यद्विचारणीयम् ।	६७६
परीक्षासुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः । संनिदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद्व्याघ्रम् ॥ १ ॥	६९३
इति परीक्षासुखसूत्रं समाप्तम् ।	



## द्वितीयं परिशिष्टम् ।

प्रमेयकमलमार्त्तण्डगतानामवतरणानां सूचिः ।

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
अकथितम् [ जैनेन्द्र व्या० १।२।१२० ]	७ १
अकर्म कर्म [ ]	६२१ ११
अकुर्वन् विहितं कर्म [ ]	३०९ २१
अभिस्त्रिभावः शक्रस्य [ प्रमाणवा० ३।३५ ]	५१३ १३
अभेरपत्यं प्रथमं [ रामता० उ० ६।५ ]	५९७ १९
अभेरूर्ध्वज्वलनं [ प्रद्य० ज्यो० पृ० ४११ ]	२७४ २
अगोविद्धृतिः सामान्यं [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० १ ]	४३३ ७
अज्ञो जन्मुरनीशोऽयं [ महाभा० वनपर्व ३०।२८ ]	५८० १२
अत इवमिति यत्- [ वैशे० सू० २।२।१० ]	५६८ १७
अतस्त्रेदपरवृत्त- [ ]	१८१ १७
अतीतानागतौ कालौ [ तत्त्वसं० पृ० ६४३ पूर्वपक्षे ]	३९८ २८
अतीतैककालानां [ प्रमाणवा० खट्व० १।१३ ]	३८१ २
अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ [ न्यायवि० पृ० ३९ ]	७८ १५
अत्र द्रुमो यदा [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८० ]	४०८ ७
अथ तद्वचनेनैव [ तत्त्वसं० पृ० ८३२ पूर्वपक्षे ]	२५० १३
अथ तद्रूपविज्ञानं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१३ ]	४१६ २३
अथ शब्दोऽर्थवत्त्वेन [ मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६२-६३ ]	१८४ ४
अथ स्थणितमप्येतद्- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३३ ]	४२२ २१
अथान्यथा विशेष्येपि [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९० ]	४३८ १२
अथान्यदप्रयत्नेन [ ]	१७५ ३
अथापीन्द्रियसंस्कारः [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६९ ]	४२४ ६
अथाऽस्यपि सारूप्ये [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ७६ ]	४३५ ३
अर्थवत्प्रमाणम् [ न्यायभा० पृ० १ ]	२३७ १४
अर्थसहकारितया- [ ]	२३५ १७
अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन- [ न्यायसू० ५।२।१५ ]	३७२ २६
अर्थापत्तिः प्रतिपक्ष- [ न्यायसू० ५।१।२१ ]	६५७ ३
अर्थापत्तिरियं चोक्ता [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २३७ ]	४०५ २०
अर्थापत्त्यावगम्यैव [ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ७ ]	१८८ २०
अर्थेन घटयत्येनां [ प्रमाणवा० ३।३०५ ]	१०४-१, ४७० ११
अदृष्टसगतत्वेन [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४९ ]	४१० १४

अवतरणम्

पृष्ठं पङ्क्तिः

अभिधानाद्युल्लाघ [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८७ ]	४०८	२५
अनादिनिधनं शब्द- [ वाक्यप० १११ ]	३९	१३
अनादेरागमस्यार्थो- [ ]	२५०	११
अनिग्रहस्थाने निग्रह- [ न्यायसू० ५।२।११ ]	६६९	२६
अनिर्दिष्टफलं [ ]	३	७
अनेकदेशवृत्तौ च [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९० ]	४०९	५
अनैकान्तिकता तावदे- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९ ]	४२२	१४
अन्यथैवाभिसम्बन्धा- [ वाक्यप० २।४२५ ]	४४३-१८, ४४७	२
अन्यदेवेन्द्रियप्राप्ता- [ ]	४४६	२३
अन्यधियो गतेः [ ]	३२५	९
अन्यार्थं प्रेरितो वायुर्य- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८० ]	४२३	७
अन्ये तु चोदयन्त्यत्र [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८३ ]	४०८	१५
अन्यैस्त्वान्नादिसंयोगै- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८१ ]	४२३	९
अन्वयेन विना तावद्- [ ]	१८५	७
अन्वयो न च शब्दस्य [ मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८५ ]	१८४	१९
अपरस्मिन् परं [ वैश्वे० सू० २।२।६ ]	५६४	२१
अपूर्वकर्मणामाश्रयनिरोधः [ तत्त्वार्थसू० १।१ ]	३४५	७
अप्रत्यक्षोपलम्भस्य [ ]	२९	२०
अप्राप्तकर्णदिशलाद्- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ७० ]	४२४	८
अप्राप्तार्ण्यं त्रिधा भिन्नं [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५४ ]	१६१	९
अप्सु गन्धो रसश्चामौ [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ६ ]	१९१	१
अप्सुर्यदर्शिनां निर्वृत्तिं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८६ ]	४०८	२३
अभावगम्यरूपे च [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९१ ]	४३८	१४
अभ्यासात्पक्षविज्ञानः [ प्रश्ना० व्यो० पृ० २० ख० ]	३१०	३
अयमर्थो नायमर्थ [ प्रमाणवा० २।३।१२ ]	४३१	५
अयमेवेति यो ह्येष [ मी० श्लो० अभावपरि० श्लो० २० ]	७७	१५
अयुतसिद्धानामाधार्या- [ प्रश्ना० भा० पृ० १४ ]	६०४	११
अवयवविपर्यासवचन- [ न्यायसू० ५।२।११ ]	६६७	२६
अवयवानां प्रक्षिथिल- [ ]	५९८	१२
अविज्ञातं चाज्ञानम् [ न्यायसू० ५।२।१७ ]	६६९	१३
अविनाभाविता चात्र [ मी० श्लो० अर्थो० श्लो० ३० ]	१९३	१७
अविशेषाभिहितेऽर्थे [ न्यायसू० १।२।१२ ]	६४९	१७
अविशेषोक्ते हेतौ [ न्यायसू० ५।२।६ ]	६६५	१४
असंस्कार्यतया पुंभिः [ प्रमाणवा० १।२।३२ ]	१६६	८

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
असदकरणादुपादान- [ सांख्यका० ९ ]	२८७ १८
असर्वज्ञप्रणीतासु [ तत्त्वसं० पृ० ८३२ पूर्वपक्षे ]	२५० १७
असाधनाङ्गवचन- [ चादन्याय० पृ० १ ]	६७१ २०
अस्ति ध्यालोचनाज्ञानम् [ मी० श्लो० प्रत्यक्षसू० श्लो० १२० ]	४८२ २२
आकाशमपि नित्यं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३०-३१ ]	४२२ १७
आख्यातशब्दः सङ्घातो [ वाक्यप० २।२ ]	४५९ २
आगच्छतां च विच्छेदो [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ११० ]	४२७ ५
आचेलकुक्षेय [ जीतकल्पमा० गा० १९७२ भग० आ० गा० ४२७ ]	३३१ ६
आत्मलाभे हि सावानां [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४८ ]	१५३ २१
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं [ ]	३१० १६
आप्तवचनादिनिबन्ध- [ परीक्षासू० ३।१०० ]	३५५ २३
आशङ्केत हि यो [ तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे ]	१५७ १०
आसर्गप्रलयादिका [ ]	२९४ ४
आहुर्विधात् प्रत्यक्षं [ ]	६५ ६
आहिकेन निमित्तेन [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७९ ]	४०८ ३
इदानीन्तनमस्तित्वं [ मी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३४ ]	३३९ १४
इन्द्रियार्थसंश्लेषो- [ न्यायसू० १।१।४ ]	२२०-१८, ३६५ १४
इष्टं गतिर्हिंसनयोश्च [ ]	६८७ २९
ईषत्सम्मिलितेऽङ्गुल्या [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८२ ]	४०८ १३
उत्क्षेपणमवक्षेपण- [ वैशेष० सू० १।१।७ ]	६०० १२
उत्तमः पुरुषस्तन्यः [ भगवद्गी० १।५।१७ ]	२६८ १७
उत्तरस्याप्रतिपत्ति- [ न्यायसू० ५।२।१८ ]	६६९ १९
उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं [ तत्त्वार्थसू० ५।३० ]	२५९ १०
उपदेशो हि बुद्धादेर्वर्मा- [ तत्त्वसं० पृ० ८३८ पूर्वपक्षे ]	२५० २१
उभयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमा [ न्यायसू० ५।१।१५ ]	६५७ १९
उभयसाधर्म्यात् [ न्यायसू० ५।१।१६ ]	६५६ १७
कर्णनाम इवाङ्गतां [ ]	६५ १
कर्तृवृत्तितदेकलाङ्घ [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८८ ]	४०९ १
ऋन्मोः [ जैनेन्द्रव्या० ४।२।१५३ ]	६८८ ४
एकधर्मोपपत्तेरविशेषे [ न्यायसू० ५।१।२३ ]	६५७ ९
एकप्रत्यवमर्शस्य हेतु- [ प्रमाणवा० १।१।१० ]	४७० ३
एकवाङ्मविचारेषु [ तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे ]	२५२ ८
एकस्मिन्नपि दृष्टेऽर्थे [ मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४६ ]	१८७ ७
[ए]कस्यार्थस्वभावस्य [ प्रमाणवा० १।४४ ]	२३६ २

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
एकविन्ध्यहारहेतुः [ प्रश्न० भा० पृ० १११ ]	५९०	२
एतद्भयमेवानुमा- [ परीक्षासु० ३।३७ ]	६८५	३१
एतावन्मात्रतत्त्वार्थाः [ सम्बन्धपरी० ]	५१०	१९
एवं त्रिचतुरज्ञान- [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६१ ]	१५७	५
एवं धर्मैर्विना धर्मिणामेव [ प्रश्नसपादमा० पृ० १५ ]	५३१	९
एवं परीक्षकज्ञानं [ तत्त्वस० पृ० ७६० पूर्वपक्षे ]	१७५	७
एवं परोक्तसम्बन्ध- [ ]	२१	५
एवं प्रागुक्तया वृत्त्या [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८९ ]	४०९	३
एवं अत्यक्षधर्मैर्ल [ ]	१९५	७
ऐकान्तिकं पराजयाद्द्वै [ ]	६६०	५
कर्तुः प्रिमहितमोक्षहेतुर्ध- [ प्रश्न० भा० पृ० २७२-२८० ]	६००	९
कर्तुः फलदाय्यात्मगुण- [ ]	६००	७
कल्पनीयाश्च सर्वज्ञा [ मी० श्लो० बोधनासू० श्लो० १३५ ]	२५४	२५
कस्यचित्तु यदीष्येत [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७६ ]	१५५	७
कारणाद्विधायिलं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१०-२११ ]	४१५	३४
कार्यं धूमो हुतभुजः [ प्रमाणवा० १।३५ ]	३५०	७
कार्यकारणभावादि- [ ]	२१-१, ३८२	१६
कार्यकारणभावोपि [ सम्बन्धपरी० ]	५०९	२१
कार्यत्वान्यल्लेखेन [ ]	२७५	६
कार्यव्यासप्राप्त [ न्यायसू० ५।२।१९ ]	६७०	१
कार्याभयकर्तृवधादिसा [ न्यायसू० ३।१।६ ]	५३६	१८
किं स्यात्सा चित्रतैक- [ प्रमाणवा० ३।२१० ]	९६	१३
किन्तु गौरवयो हस्ती [ तत्त्वस० का० ९११ पूर्वपक्षे ]	४३९	८
कीदृशाद्गचनाभेदाद्- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०९ ]	४२७	३
कुल्यादिप्रतिबन्धोपि [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२९ ]	४१८	२४
कृपादिषु कृतोऽप्यस्तात् [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८४ ]	४०८	१७
क्रमेण भाव एकत्र [ सम्बन्धपरी० ]	५१०	१
क्षणिका हि सा न [ शाबरमा० १।१।५ ]	२३	११
क्षीरे दधि भवेदेवं [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ५ ]	१९०	२६
गत्वा गत्वा इ तन्वेद्यान् [ मी० श्लो० वा० अर्था० श्लो० ३८ ]	२२	१७
गवयश्चाप्यसम्बन्धान्न [ मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४५ ]	१८७	५
गवये शृगामाणं च [ मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४४ ]	१८७	३
गवयोपमित्ताया गोस्त- [ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ४-५ ]	१८८	१६
गवादिष्वनुवृत्तिप्रसयः [ न्यायवा० पृ० ३३३ ]	४७६	९

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
गव्यसिद्धे लघोर्नास्ति [ मी० श्लो० अपो० श्लो० ८५ ]	४३६	१३
गेहाच्चैत्रवद्विर्भाव- [ मी० श्लो० अर्थो० श्लो० ७-८ ]	१८९	३
गोशब्दे ज्ञातसम्बन्धे [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४४ ]	४०६	१४
गृहीतमपि गोलादि [ मी० श्लो० सू० ४ श्लो० ३२ ]	३३९	१०
गृहीत्वा वस्तुसद्भावं [ मी० श्लो० अभावप० श्लो० २७ ] १८९-९, २६५	२६	
चित्रप्रतिभासाप्येकैव [ प्रमाणवार्तिकालं ]	९५	१
चित्राद्यदन्तराणीय- [ पत्रप० पृ० १० ]	६८६	५
चैत्रः कुण्डली [ व्यायवा० पृ० २१८ ]	६१४	१५
चोदनाजनिता बुद्धिः [ मी० श्लो० सू० ५ श्लो० १८४ ]	१५८	३
चोदना हि भूतं भवन्तं [ शाबरभा० १।१।२ ] २५३-२०, २५५	१३	
जननेपि हि कार्यस्य [ सम्बन्धपरीक्षा ]	५१०	२५
जलपात्रेण चैकेन [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७८ ]	४०७	२२
जातेपि यदि विज्ञाने [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४९ ]	१५८	२३
जिष्ठु जिष्ठु जिष्ठु [ ]	६८७	१९
जीवस्तथा निर्धृति- [ सौन्दरनन्द १६-२९ ]	६८७	१०
जुषी प्रीतिसेवनयोः [ पा० धातुपा० ]	६६८	१६
जैनकापिलनिर्दिष्टं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०६ ]	४२६	१७
ज्ञातसम्बन्धस्यैक- [ शाबरभा० १।१।५ ]	२०	१५
ज्ञातैकलो यथा चासी [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९९ ]	४०९	१३
ज्ञाला व्याकरणं दूरं [ तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे ]	२५२	१०
ज्ञानं ज्ञानान्तरवैधं [ ]	६२०	६
ज्योतिर्विच्च प्रकृष्टोपि [ तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे ]	२५२	१२
णोकम्म कम्महारो [ ]	३००	२१
ततो निरपवादत्वात्- [ तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे ]	१७५	५
ततः परं पुनर्वैस्तुधर्मै- [ मी० श्लो० प्रत्यक्षा० सू० ११२ ]	४८२	२४
तत्करोति तदावष्टे [ ]	६८७	२२
तत्प्रतिबिम्बकं च [ ]	४४१	१६
तन्निविधं वाकूलं [ न्यायसू० १।२।११ ]	६४९	१५
तत्त्वं भावेन व्याख्यातं [ वैशे० सू० ७।२।२८ ]	६२०	१९
तत्त्वाध्यवसायसरस- [ न्यायसू० ४।२।५० ]	६४६	३
तत्र ज्ञानान्तरोत्पादः [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५० ]	१५९	१
तत्र प्रत्यक्षतो ज्ञाताद् [ मी० श्लो० अर्थो० श्लो० ३ ]	१८८	१०
तत्र शब्दान्तरापोहे [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० १०४ ]	४४०	१०
तत्रापवादनिर्जुक्तिर्वै- [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६८ ]	१७५	१८
तत्रापूर्वार्थविज्ञानं [ ]	६१	१०

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
तत्रैव बोधयेदर्थं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८५ ]	४०८	१९
तथा ( यथा ) षटादेर्दीपा- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ४२ ]	४२४	२०
तथा च स्यादपूर्वोपि [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४९ ]	४०६	१०
तथाचेदमिति प्रोक्तौ [ पत्रप० पृ० १० ]	६८६	७
तथा भिन्नमभिन्नं वा [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७१ ]	४११	२
तथा वेदेतिहासादि- [ तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे ]	२५२	१४
तथेदममलं ब्रह्म [ बृहदा० मा० वा० ३।५।४४ ]	४५	१
तथैव अत्समीपस्थैर्नादैः [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८५-८६ ]	४२०	१९
तथैवाभावमेदेपि न [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ४६ ]	१९२	१२
तदनुपलब्धेरनुपलम्भा- [ न्यायसू० ५।१।२९ ]	२५८	३
तदन्ता धवः [ जैनेन्द्रव्या० २।१।३९ ]	६८७	२४
तद्वृत्तेरपकृष्टानां शब्दे [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६३ ] १७५-१४ ३९७	१७५-१४ ३९७	१७
तद्भावमाविता नात्र [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२७-१२८ ]	४१८	२२
तद्भावमावाप्तकार्य- [ सम्बन्धपरीक्षा ]	५१०	१५
तद्योरनुपकारेपि [ सम्बन्धपरीक्षा ]	५१०	२७
तर्कशब्देन मूलपूर्वगतित्यायेन [ ]	६४६	११
तस्मात्तत्प्रत्यभिज्ञानात् [ मी० श्लो० आत्म० श्लो० १३६ ]	५२२	४
तस्मात्पूर्वेषु यद्वर्षं [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० १० ]	४३३	१४
तस्मात्स्वतः प्रमाणत्वं [ तत्त्वसं० पृ० ७५८ पूर्वपक्षे ]	१७४	८
तस्मादननुमानत्वं [ मी० श्लो० शब्दप० श्लो० १८ ]	१८३	१०
तस्मादुत्पत्त्यभि- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८२ ]	४२३	११
तस्मादुभयद्वारेण [ मी० श्लो० आत्मवाद० श्लो० २८ ]	५२२	१
तस्माद्वृत्तेभ्यो दोषाणाम्- [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६५ ]	१६१	१४
तस्माद्यतो अतोऽर्थाणां [ प्रमाणवा० १।४२ ]	१८०	२३
तस्माद्यत्सर्वेते तस्यात् [ मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ३७ ] १८६-१, ३४५	१८६-१, ३४५	१३
तस्याद् व्याख्यातृभि- [ मी० श्लो० प्रति० सू० श्लो० २५ ]	३	१६
तस्यापि कारणे श्रुते [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५१ ]	१५६	३
तस्योपकारकत्वेन [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० १४ ]	१९१	१४
तां आह्वयलक्षणप्राप्ताभास- [ प्रमाणवा० ३।५।१३ ]	८४	४
सादात्म्यं चेन्मतं [ ]	४७४	१
सादात्म्यमस्य कस्माच्चेत् [ ]	४७३	२०
तामेव चानुसन्धानैः [ सम्बन्धपरी० ]	५०६	१८
ताभ्यां तथातिरेकत्वे [ प्रमाणवार्तिव्यवर्ध० ]	४६८	५
तां हि तेन विनोत्पन्ना [ मी० श्लो० आकृति० श्लो० ३८ ]	४७४	१२

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
तिष्ठन्त्येव परोधीना [ प्रमाणवा० २।११९ ]	९५	१६
तेन जन्मैव बुद्धेर्विषये [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५६ ]	१६४	१६
तेन सम्बन्धवेलायां [ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३३ ]	१९३	२०
तेन सर्वत्र दृष्टत्वाद्वा- [ मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८८ ]	१८५	३
तेनात्रैवं परोपाधिः [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१८-१९ ]	४१७	१७
तेनेन्द्रियार्थसम्बन्धात् [ मी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३६-२३७ ]	३३९	५
तेषां चाल्पकदेशत्वाद् [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७३ ]	४०७	९
तेषामनुपलब्धेक्ष [ मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० १२ ]	४१७	२८
तौ च भावौ तदन्यक्ष [ सम्बन्धपरी० ]	५०६	७
त्रिगुणमविवेकि विषयः [ सांख्यका० ११ ]	२८६	७
त्रिरभिहितस्यापि [ न्यायसू० ५।२।९ ]	६९२	२०
त्रिषु पदार्थेषु सत्करी [ ]	६१९	१५
त्रैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतु- [ न्यायसू० ५।१।१८ ]	६५६	२५
त्सगप्राप्त्यलमन्ये [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०८ ]	४२७	१
दर्शनस्य परार्थत्वात् [ जैमिनिसू० १।१।१८ ]	६९-१, ४०४	२४
दर्शनस्य परार्थत्वादित- [ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ७-८ ]	१८९	१
दर्शनादर्शने मुक्त्वा [ सम्बन्धपरी० ]	५१०	१३
दृष्टाद्विस्तान्तरं न्योमि [ तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे ]	२५२	१६
धीपो यथा निर्वृत्तिम- [ सौन्दरनन्द १६-२८ ]	६८७	८
दृष्टश्चासावन्ते स्थितश्चेति [ न्यायसू० ५।२।२ ]	६६४	३
देशकालादिभेदेन [ मी० श्लो० प्रत्यक्ष सू० श्लो० २३३-२४ ]	२५८	७
देशभेदेन भिन्नत्वं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९७ ]	४०९	९
दृश्यमानाद्यदन्यत्र [ ]	१८५	१०
दृष्टो न चैकदेशोक्ति लिङ्गं [ तत्त्वसं० पृ० ८३० पूर्वपक्षे ]	२५०	६
द्वयसत्कारपक्षे तु [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८६ ]	४२४	३१
द्वयोरेकमिसम्बन्धात् [ सम्बन्धपरी० ]	५०६	४
द्वाविमौ पुरुषौ लोके [ सगवद्गी० १५।१६ ]	२६८	१५
द्विधा कैश्चित्पदं भिन्नं [ ]	४६४	२०
द्विष्टसम्बन्धसंवित्तिः [ ]	९१	४
द्विष्टो हि कश्चित्सम्बन्धो [ सम्बन्धपरी० ]	५१०	७
द्विस्तावानुपलब्धो हि [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २५० ]	४१०	१६
द्वीन्द्रियग्राह्याग्राह्यं [ ]	२६९	२६
धत्तूरकपुष्पवदादौ सूक्ष्मा- [ ]	३२७	१
धर्मे चोदनेव प्रमाणम् [ ]	४०१	७

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
वर्मयोर्मद इष्टो हि [ मी० श्लो० अमाव० श्लो० २० ]	१९२	७
वर्मविकल्पनिर्देशोऽर्थ- [ न्यायसू० १।२।१४ ]	६५१	१
वर्मोषमौ स्वाश्रयसंयुक्ते [ ]	५५९	५
वर्मैश्वर्यविषयस्तु [ तत्त्वसं० पृ० ८१७ पूर्वपक्षे ]	२५३	५
वातुसम्बन्धे प्रत्ययाः [ पाणिनिव्या० ३।४।१ ]	६७९	२
विधौ ( योऽ ) नीलदिरूप- [ प्रमाण वा० ३।४३१ ]	८४	१६
ध्वनीनां भिन्नदेशत्वं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७३ ]	४०७	७
न च ध्वनीनां सामर्थ्यं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७२ ]	४०७	५
न च स्याद्यवहारोऽयं [ मी० श्लो० अमाव० श्लो० ७ ]	१९०	३
न चागमविधिः कश्चिन्नि- [ तत्त्वसं० पृ० ८३१ पूर्वपक्षे ]	२५०	७
न चान्यरूपमन्यादक् [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८९ ]	४३८	१०
न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्त- [ ]	२५०	९
न चा ( च ) पर्यनुयोगोत्र [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ४३ ]	४२४	२२
न चापि स्मरणात्पञ्चादि- [ मी० श्लो० सू० ४ श्लो० ३५-३६ ]	३३९	३
न चान्यश्चादिशब्देभ्यो- [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८८ ]	४३८	८
न चावस्तुन एते स्युर्मै- [ मी० श्लो० अमाव० श्लो० ८ ]	१८०	८
न चावान्तरवर्णानां [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ११२ ]	४२७	९
न चासाधारणं वस्तु [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८६ ]	४३८	४
न चास्यावयवाः सन्ति [ ]	४१४	३
न चैतस्मानुमानत्वं [ मी० श्लो० उपमावप० श्लो० ४३ ]	१८७	१
न तावदनुमानं हि [ मी० श्लो० शब्दप० श्लो० ५६ ]	१८४	२
न तावदिन्द्रियेणैवा [ मी० श्लो० अमाव० श्लो० १८ ]	१८९	२०
न तावद्यत्र देशोऽसौ न [ मी० श्लो० शब्दप० श्लो० ८७ ]	१८५	१
न तु ( ननु ) आवादभिन्न- [ मी० श्लो० अमाव० श्लो० १८ ]	१९२	५
नदीपूरोप्यघोदेषो [ ]	१९५	३
ननु च प्रागभावावौ [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ११ ]	४७७	७
ननु ज्ञानफलाः शब्दा [ आमहालं० ६।१८ ]	४३२	१३
नन्वन्यापोहकृच्छ्रञ्चो [ तत्त्वसं० का० ९१० पूर्वपक्षे ]	४३२	६
न मेवाद्विधमस्त्यन्यत्सामा- [ ]	४६७	१६
न याति न च तत्रासीद्- [ प्रमाणवा० १।१५३ ]	४७३	१६
नवानां गुणानामस्त्यन्तो- [ ]	२७९	६
न धावलेयाद्गोबुद्धिस्ततोऽ- [ मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४ ]	१७४	२३
न सोस्ति प्रत्ययो लोके [ वाक्यप० १।१२४ ]	३९	७
न स्यादव्यङ्ग्यता तस्मिन्- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ११६-१७ ]	४१६	३४



अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
न हि तत्क्षणमप्यास्ते [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५५ ]	१६४ १४
न हि स्मरणतो यत्प्राक् [ मी० श्लो० सू० ४ श्लो० ३३४-३५ ]	३३९ १
नाकारणं विषयः [ ]	३५५-११, ५०२ ४
नाऽक्रममात्ममिणो मावाः [ प्रमाणवा० १४५ ]	३२५ १६
नायुहीतविशेषणा विशेष्ये [ ]	२१०-७१, ३८३-५, ४३७ १३
ज्ञाज्ञातं ज्ञापकं नाम [ ]	१२४-१९, २०६ ७
नार्थशब्दविशेषण वाच्य- [ ]	३४० ८
नार्थालोकौ कारणं [ परी० २१६ ]	२२५ १७
नादेनाऽहितवीजाया- [ वाक्यप० ११८५ ]	४५६ १९
नान्योऽनुमान्यो बुद्ध्यास्ति [ प्रमाणवा० ३१३२७ ]	९० १०
नाऽपोहल्लयभावानाम- [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९६ ]	४३९ ८
नामुक्तं धीयते कर्म [ ]	३०८ १५
नाधोत्पादौ समं [ ]	४९७ ३
नास्तिता पयसो दग्नि [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ३ ]	१९० १९
निग्रहप्राप्तस्यानिग्रहः [ न्यायसू० ५१२।२१ ]	६६९ २१
निस्सत्त्वं व्यापकत्वं च [ ]	४०६ २०
निस्सनैमित्तिके कुर्यात् [ मी० श्लो० सम्बन्ध० श्लो० ११० ]	३०९ २३
निस्सनैमित्तिकैरेव [ प्रश्न० व्यो० पृ० २० ख० ]	३१० १
निस्साः शब्दार्थसम्बन्धास्त- [ वाक्यप० ११२३ ]	४२९ ५
निर्गुणा गुणाः [ ]	५९२ ११
निर्दिष्टकारणमावेप्युपल- [ न्यायसू० ५।१।२७ ]	५२७ २६
निष्फलत्वेन शब्दस्य [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १३९ ]	४०६ ४
नीलोत्पलादिशब्दा [ ]	४३६ १६
नूनं स चक्षुषा सर्वान् [ मी० श्लो० बोद० सू० श्लो० ११२ ]	४४९ ३
नेष्टोऽसाधारणस्तावद्भि- [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ३ ]	४३३ ११
नो चेद्भ्रान्तिनिमित्तेन [ प्रमाणवा० १४५ ]	४७० ८
नैकरूपा सतिर्गोत्वे [ मी० श्लो० वनवा० श्लो० ४९ ]	४७५ १७
पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्था- [ न्यायसू० ५।२।५ ]	६६५ ८
पक्षहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनान्य- [ न्यायसू० १।१।३२ ]	३७४ १२
पदमार्थं पदं चान्यत् पदं [ वाक्यप० ११२ ]	४५९ ५
पदार्थपूर्वकस्तस्माद्वाक्या- [ मी० श्लो० वाक्या० श्लो० ३३६ ]	४६१ ५
पदार्थानां तु मूललक्ष्मिर्द्वि [ मी० श्लो० वाक्या० श्लो० १११ ]	५६१ ३
शरलोकिनोऽभावात्परलोका- [ ]	११६ ९
परस्परविषयगमनं व्यतिकरः [ ]	५२६ १९

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
पराधीनेषु वै तस्मात्ता- [ तत्त्वसं० पृ० ७५८ पूर्वपक्षे ]	१७४	१०
परापेक्षा हि सम्बन्ध- [ सम्बन्धपरी० ]	५०५	२०
परिषत्प्रतिवाविभ्यां त्रिरमि- [ न्या० सू० ५।२।९ ]	६६६	१९
पर्यायादविरोधश्चेद्यापि- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २०० ]	४०९	१५
पर्यायेण यथा चैको [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९८ ]	४०९	११
पश्यन्तं क्षणिकमेव [ ]	५१८	२४
पश्यन्नेकमहृदस्य दर्शने [ सम्बन्धपरी० ]	५१०	११
पारतन्त्र्यं हि सम्बन्ध- [ सम्बन्धपरी० ]	५०४	२७
पिण्डभेदेषु गोबुद्धिरेक- [ मी० श्लो० वन० श्लो० ४४ ]	४७४	१९
पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन [ ]	१९५-५, २५५	५
पीनो दिवा न भुङ्क्ते [ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ५१ ]	१८८	१२
पुर्वैर्द वेदता जे पुरिसा [ ]	३३३	१२
पुरुष एवैतत्सर्वं यद्भूतं [ ऋक्स० मण्ड० १० सू० ९० ऋ० २ ]	६४	२१
पृथग् न चोपलभ्यन्ते [ मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० ११ ]	४१७	२६
पृथिव्य( व्या )पस्तेजोवायुरिति [ ]	११६	१
पृथिव्यस्तेजोवायुभ्यो [ ]	२३०	४
पौर्वापर्यायोगादप्रति- [ न्यायसू० ५।२।१० ]	६६७	३
प्रकृतादर्थादप्रतिसम्बन्धा- [ न्या० सू० ५।२।७ ]	६६५	२४
प्रकृतेर्महान्ततोऽहङ्कारस्त- [ सांख्यका० २१ ]	२८५	२६
प्रकालनादि पङ्क्तयः [ ]	२८१	२३
प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मी- [ न्या० सू० ५।२।३ ]	६६४	१४
प्रतिज्ञाहेतुताहरणोपनय- [ न्यायसू० ५।२।३२ ]	६७४	२३
प्रतिज्ञाहेतुोर्विरोधो [ न्यायसू० ५।२।४ ]	६६५	३
प्रतिदृष्टान्तधर्म्या( र्मा )नुज्ञा [ न्या० सू० ५।२।२ ]	६६३	१४
प्रतिनियतदेशा वृत्तिरभिव्य- [ ]	१९	१३
प्रतिविम्बस्य मुख्यमन्यापो- [ ]	४४२	४
प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या [ मत्स्यपु० १४५।५८ ]	३९२	१८
प्रत्यक्षं कल्पनापोढं [ प्रमाणवा० ३।१२३ ]	३२	१०
प्रत्यक्षनिराकृतो न पक्षः [ ]	७८	८
प्रत्यक्षपूर्वकं त्रिविधमनु- [ न्यायसू० १।१।५ ]	३६२	१८
प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ११ ]	१८९-१२, २६५	१७
प्रत्यक्षाद्यवतारश्च [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९७ ]	१९१-१७, २०६	१२
प्रत्यक्षेणावबुद्धश्च [ मी० श्लो० स्फोट० श्लो० १४ ]	४१७	३२
प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि [ मी० श्लो० उपमान० श्लो० ३८ ]	१८६-३, ३४५	१५

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
प्रत्यक्षेपि यथा देशे [ मी० श्लो० उपमानप० ३९ ]	१८६	५
प्रत्येकसमवेताय विषया [ मी० श्लो० वन० श्लो० ४६ ]	४७५	६
प्रत्येकसमवेतापि [ मी० श्लो० वन० श्लो० ४७-४८ ]	४७५	१५
प्रधानपरिणामः शुद्धं कृष्णं [ ]	२४४-३,	२८५ २०
प्रमाणं ग्रहणात्पूर्वं स्वरूपे [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ८३ ]	१५६	९
प्रमाणप्रमेयसंवाय- [ न्या० सू० १११११ ]	६८६	१५
प्रमाणं हि प्रमाणेन [ तत्त्वसं० पृ० ७५९ पूर्वपक्षे ]	१७४	१२
प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः [ न्यायसू० ११२११ ]	६४७	९
प्रमाणपञ्चकं यत्र [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ]	१८९-१५, २६५-२२,	३९८ १
प्रमाणभूताय [ प्रमाणसमुच्चय श्लो० १ ]	८०-८, ९५	१४
प्रमाणमविसर्वादि ज्ञानं [ प्रमाण वा० २११ ]	३४१	१३
प्रमाणषड्विज्ञातो [ मी० श्लो० अर्थो० परि० श्लो० १ ]	१८७	१३
प्रमाणस्यागौणत्वादनुमाना- [ ]	१८०	१
प्रमाणेतरसामान्यस्थितेर- [ ]	१८०-५, ३२४	४
प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं [ न्यायभा० पृ० २ ]	१६	१८
प्रमादप्रमेयाभ्यामर्थान्तरं [ ]	२३७	१५
प्रयत्नानेककार्यत्वात्कार्यसमा [ न्यायसू० ५११३७ ]	६५९	११
प्रयत्नानन्तरं ज्ञानं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३१-३२ ]	४२२	१९
प्रयोगपरिपाटी तु अति- [ ]	३७३	१७
प्रसज्यप्रतिषेधे दोषोद्भावना- [ ]	६७४	१६
प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्य- [ न्यायसू० ११११६ ]	३४७-८, ३७४	१८
प्रसिद्धावयवं वाक्यं [ पञ्चपरी० पृ० १ ]	६८४	२८
ग्रहासे मन्यवाचि शुष्मन्मन्यते- [ जैनेन्द्र० २१११५३ ]	६७९	२५
प्रागगौरिति विज्ञानं [ भामह्यालं० ६११९ ]	४३२	१५
प्रागुत्पत्तेः कारणाभावा- [ न्यायसू० ५१११२ ]	६५५	२५
प्रागद्योक्ते [ जैनेन्द्र० ११२१४८ ]	६८७	२५
प्राज्ञोपि हि नरः सूक्ष्मार्थो [ तत्त्वसं० पृ० ८२५ पूर्वपक्षे ]	२५२	६
प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा [ वाक्यप० टी० १११४४ ]	४२	३
प्रामाण्यं व्यवहारेण [ प्रमाणवा० ३१५ ]	२१७-८, ३८३	१४
वाधकप्रत्ययस्त्वनदर्थो- [ तत्त्वसं० पृ० ७५९ पूर्वपक्षे ]	१७४	१४
वाधकान्तरमुत्पन्नं [ तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे ]	१७५	१
बुद्ध्यव्यवसितमर्थं पुरुषक्षेतयते [ ]	१००-१०, ३१७	२३
बुद्धादयो ह्यवेदज्ञाः [ तत्त्वसं० पृ० ८४० पूर्वपक्षे ]	२५०	२३

अवतरणम्

पृष्ठं पङ्क्तिः

बुद्धितीव्रत्वमन्दत्वे [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१९ ]	४१४	१४
बुद्धिरेवातदाकारा [ प्रमाणवार्तिकालं० प्रथमपरि० ]	२१८	५
बोधाद् बोधरूपता [ ]	३४३	२३
भावान्तरविनिर्मुक्तो [ ]	१६०	१२
भावान्तरात्मकोऽभावो [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० २ ]	४३३	९
भावभावयोस्तद्वृत्ता [ न्यायवा० पृ० ६ ]	१४	९
भावे भाविनि तद्भावो [ सम्बन्धपरी० ]	५१०	१७
भिन्ने का वदनाऽभिन्ने [ सम्बन्धपरी० ]	५१०	२१
भिन्ने चैकलनित्यत्वे [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७२ ]	४११	४
भुवनहेतवः प्रधानपरमाण्व- [ न्यायवा० पृ० ४५७ ]	२७०	११
मेवाना परिणामात्सम्बन्ध- [ साध्यका० १५ ]	२८८	१३
मणिवत्पाञ्चकवद्बोधाधि- [ प्रश्न० भा० पृ० ६४ ]	५६६	२
मन्दप्रकाशिते मन्दा [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २२० ]	४१४	१६
महत्त्वनेकद्रव्यत्वाद्- [ वैशेष० सू० ४।१।६ ]	२७०-५, ५४०	९
महामूलादि व्यक्तं [ न्यायवा० पृ० ४६७ ]	२६९	२०
मिथ्याध्यारोपहानार्थ [ प्रमाणवा० २।१९२ ]	३२१	१२
मूर्तेर्नैव द्रव्येषु [ प्रश्न० भा० पृ० ६६ ]	५६८	१३
मूलप्रकृतिरविकृतिर्न- [ साध्यका० ३ ]	२८९	२४
मेयो यद्वदभावो हि [ मी० श्लो० समाव० ४५ ]	१९२	१०
मृत्पिण्डदण्डचक्रादि [ तत्त्वसं० पृ० ७५७ पूर्वपक्षे ]	१५३	२४
मृत्स्रोः स मृत्युमाप्नोति [ बृहदा० व० ४।४।१९, कठ० ४।१० ]	६५	३
यज्वादीयैः प्रमाणैस्तु [ मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११३ ]	२५१	८
यत्र भूमीति तत्राभिरक्षि- [ मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८६ ]	१८४	२१
यत्रापि स्वप्नादस्य [ तत्त्वसं० पृ० ७५९ पूर्वपक्षे ]	१७४	१६
यत्राप्यतिशयो दृष्टः स [ मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११४ ]	२५२	१
यत्रैव जनयेदेना तत्रैवास्य [ ]	३५-१५, ४९२	१२
यथा महत्यां यातायां [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१७ ]	४१७	१५
यथा विशुद्धमाकारां [ बृहदा० भा० वा० ३।५।४३ ]	४४	१९
यथैवास्ति समिद्धोर्मिर्मल- [ भगवद्गी० ४।३।७ ]	३०९	३
यथैव प्रथमज्ञानं [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७६ ]	१५५	५
यथैवोपपद्यमानोऽयं [ मी० श्लो० शब्दनिश्चो० ८४-८५ ]	४२०	१७
यथोक्तोपपन्नश्छलजाति- [ न्यायसू० १।२।२ ]	६४७	१३
यदा वाऽशब्दवाच्यत्वाच्च [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९५ ]	४३९	६
यदा स्वतःप्रमाणत्वं [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५२ ]	१७३	२०

## अवतरणम्

पृष्ठं पङ्क्तिः

यदि गौरित्ययं शब्दः [ भामह्यलं० ६।१७ ]	४३२	११
यदि षट्भिः प्रमाणैः [ मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १११ ]	२४९	१
यद्यपि व्यापि चैकं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६८ ]	४२४	११
यद्यपेक्षय तयोरैकमन्यत्रा- [ सम्बन्धपरी० ]	५१०	३
यद्येकार्याभिसम्बन्धात्कार्य- [ सम्बन्धपरी० ]	५१०	५
यद्वास्तुवृत्तिव्यावृत्ति- [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९ ]	१९०	१२
यद्वेदाध्ययनं किञ्चित्त्वं- [ मी० श्लो० पृ० ९४९ ]	५५७	१२
यस्मात् प्रकरणचिन्ता स [ न्यायसू० १।२।७ ]	३५७	९
यस्य यत्र यदोद्भूतिर्जि- [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० १३ ]	१९१	१२
यावत् प्रयोजनेनास्य [ मी० श्लो० प्रति० सू० श्लो० २० ]	३	१३
युगपज् ज्ञानानुत्पत्तिर्मेवसो [ न्यायसू० १।१।१६ ]	१८	८
युगान्तकालप्रतिसंहता- [ शिशुपालव० १।२३ ]	६८८	१
युज्यते नाधिपक्षे च [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४१ ]	४०६	८
ये तु मन्वादयः सिद्धाः [ तत्त्वसं० पृ० ८४० पूर्वपक्षे ]	२५१	१
येऽपि सातिशया इष्टाः [ तत्त्वसं० पृ० ८२५ पूर्वपक्षे ]	२५२	४
योगोपाधी न तावेव [ सम्बन्धपरी० ]	५१०	९
यो यो गृहीतः सर्वस्मिन्देशे [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७१ ]	४०७	१
यो वेदाश्च प्रहिणोति [ श्वेता० ६।१८ ]	३९२	१९
रजोबुधे जन्मनि सत्त्व- [ कादम्बरी पृ० १ ]	२९८	१७
रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्या [ वैद्ये० सू० १।१।६ ]	५८७	५
रूपश्लेषो हि सम्बन्धो [ सम्बन्धपरी० ]	५०५	१२
लक्षणयुक्ते बाधासम्भवे [ प्रमाणवार्तिकालं० ]	५८२	९
लघू कान्तौ [ पा० चातु पा० भ्वा० ८८८ ]	६८८	७
लिखितं साक्षिणो भुक्तिः [ याज्ञव० स्मृ० २।२२ ]	८	१८
लोगायासपणसे एकैके [ द्रव्यसं० गा० २२ (१) ]	५६५	६
वक्षत्रेभ्यो वेदास्तस्य [ ]	३९२	१७
वचनविधातोर्यलिकत्पोपपत्त्या [ न्यायसू० १।२।१० ]	६४९	१४
वटे वटे वैश्रवणः [ ]	३९२	१४
वरिससयदिविखयाए [ ]	३३०	२४
वर्णक्रमनिर्देशवजिरर्थ- [ न्या० सू० ५।२।८ ]	६६६	११
वर्णान्तरजनौ तावत्तत्पदत्वं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१२ ]	४१६	१
वर्णोऽनवयवत्वाच्च [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१३ ]	४१६	३
वस्तुत्वे सति चालौवं [ मी० श्लो० उप० श्लो० ३४ ]	३४६	३
वस्तुऽसङ्करसिद्धिश्च [ मी० श्लो० अभाव० श्लो० २ ]	१९०	१७

अवतरणम्

पृष्ठं पङ्क्तिः

वाग्रूपता चेदुक्तामेदवबोधस्य [ वाक्यप० १।१२५ ]

३९ १०

नादिप्रतिवादिनोर्यत्र [ ]

३७४ १५

विकल्पोऽवस्तुनिर्भासः [ ]

३१ १७

विगगहगहमावण्णा केवलिणो [ जीवकण्डगा० ६६५ आवकप्रज्ञ० गा० ६८ ]

३०० २६

विज्ञातस्य परिषदा त्रिरमि- [ न्यायसू० ५।२।१६ ]

६६९ १

विदुः कामे [ पा० घातु पा० ]

६८९ १

विधृतकल्पनाजाल [ प्रमाणवा० ३-२८१ ]

३४ १३

विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्ति- [ न्यायसू० १।२।३९ ]

६६३ ८

विशेषेऽनुगमाभावः सामान्ये [ ]

१७७ १६

विश्वतश्छुत विश्वतो [ श्वेताश्वत० ३।३ ]

२६४-२०, २६८ १३

विषयस्यापि संस्कारे [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८३ ]

४२० १५

विषयेण हि ब्रह्मीनां [ मी० श्लो० साकृति० श्लो० ३७ ]

४७४ १०

वेदाध्ययनं सर्वं पुर्व- [ मी० श्लो० अ० ७ श्लो० ३५५ ]

३९६ १९

वृक्षाद्यनिहतानां च [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १११ ]

४२७ ७

व्यक्तिनन्मन्यजाता चेदागता [ ]

४७४ ३

व्यक्तिनाद्यो न श्वेच्छा [ ]

४७४ ५

व्यक्तिनित्यत्वमापर्थं तथा [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७३ ]

४११ ६

व्यक्तेर्जात्यादियोगेपि [ ]

४७४ ७

व्यत्यल्पजमहत्त्वे [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१४ ]

४१६ २५

व्यक्त्यानां चैतदस्तीति [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१५-२१६ ]

४१६ ३२

व्यक्त्यानां हि धातूनां [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ७९ ]

४२३ ५

व्यवहारपञ्चकृत्यास्तु प्रमा- [ लघी० का० १५ ]

६७८ १३

वाक्यः सर्वभावानां कार्या- [ मी० श्लो० धृत्य० श्लो० २५४ ]

५१३ २६

वाक्यस्य सूत्रकं हेतुवचनो- [ प्रमाणवा० ४।१७ ]

४४९ १०

वाक्यः कदल्यां कदली च [ ]

६६७ ११

शब्दं तावदनुचार्य [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २५६ ]

४१० २३

शब्दः स्वसमानजातीय- [ ]

२३० २६

शब्दत्वं गमकं नात्र [ मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६४ ]

१८४ ७

शब्दस्यागमनं तावददृष्टं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०७ ]

४२६ २४

शब्दाद्बुदेति यज्ज्ञानमत्र- [ ]

१८३ ५

शब्दानित्यत्वोक्तौ नित्यत्व- [ न्यायसू० ५।१।३५ ]

६५९ १

शब्दाद्विज्ञाद्या विशेषप्रतिपत्तौ [ ]

२१७ ३

शब्दे दोषोऽवस्तावद्- [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६२ ] १७५-१२, ३९७ १५

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
शब्देनागम्यमानं च [ मी० श्लो० अपो० श्लो० ९४ ]	४३८ १७
शब्दे वाचकसामर्थ्यं ततो [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २३९ ]	४०६ २
शब्दे वाचकसामर्थ्यात्तद्विलसत् [ मी० श्लो० अर्था० श्लो० ५६ ]	१८८ १८
शब्दोत्पत्तेर्निषिद्धत्वाद- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२६-१२७ ]	४१८ २०
शब्दो वर्तत इत्येव तत्र [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७२ ]	४०७ ३
शावलेयाश्च भिन्नत्वं [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ७७ ]	४३५ ५
शास्त्रस्य तु फले ज्ञाते [ ]	३ १७
शिरसोऽवयवा निम्ना [ मी० श्लो० अपो० श्लो० ४ ]	१९० २१
शुद्धाश्चाच्छूद्रसम्पर्कोच्छू- [ ]	४८३ २४
श्रोता तत्तत्ततः शब्द- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७५ ]	४०७ ११
श्रोत्रधीश्चाप्रमाणं [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७७ ]	१७० ७
षण्णामाभितलम् [ प्रश्न० भा० पृ० १६ ]	६१६-१६, ६२१ २८
संख्या परिमाणाणि पृथक्त्वं [ वैश्वे० सू० ४११११ ]	५८९-११, ६०१ २१
संयोगजननेपीष्टौ ततः [ सम्बन्धपरि० ]	५१० २९
संयोगिसमवाद्यादिसर्वमे- [ सम्बन्धपरि० ]	५१० २३
संवादस्याथ पूर्वेण [ ]	१५५ १०
संहृत्य सर्वतश्चिन्तां स्तिमिते- [ प्रमाणवा० ३११२४ ]	३२ ७
स एवेति मतिर्नापि [ मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० १८ ]	४२६ १०
स चेदगोनिवृत्त्यात्मा [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८४ ]	४३६ ११
सत्त्वं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म [ तैत्ति० २।१ ]	६६ ८
सदृशालात्प्रतीतिभे- [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४८-४९ ]	४१० १२
स धर्मोऽभ्युपगन्तव्यो [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४० ]	४०६ ६
सम्बद्धं वर्तमानञ्च [ मी० श्लो० प्रत्यक्ष० श्लो० ८४ ]	५३ ८
सम्बन्धज्ञानसिद्धिश्चेद्भुवं [ मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४३ ]	४०६ १२
सम्भवतोर्थस्यातिसामान्य- [ न्यायसू० १।२।१३ ]	६५० ११
सम्यग्ज्ञानपूर्विका सर्वपुरुषार्थ- [ न्यायनि० १।१ ]	७ ९
सरागा अपि वीतरागवन्धे- [ ]	३२४ ३१
सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारो- [ ]	२७० ७
सर्वं खल्विदं ब्रह्म [ मैत्र्यु० ]	४६-१७, ६४ १९
सर्वचित्तचैतानामात्म- [ न्यायनि० पृ० १९ ]	२९ ११
सर्वज्ञसदृशं कश्चिदि [ तत्त्वसं० पृ० ८३८ पूर्वपक्षे ]	२५० १९
सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं [ तत्त्वसं० पृ० ८३२ पूर्वपक्षे ]	२५० १५
सर्वज्ञो दृश्यते तावदेव- [ मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११७ ]	२५० ४
सर्वज्ञो नावलुब्धश्च येनैव [ मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १३६ ]	२५४ २७

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
सर्वज्ञोऽयमिति हेतुतत्तात्काले- [ मी० श्लो० चोदनासू० १३४ ]	२५४	२३
सर्वप्रमातृसम्बन्धिप्रत्यक्षा- [ तत्त्वसं० पृ० ८२० पूर्वपक्षे ]	२५३	३
सर्वस्यैव हि छात्रस्य [ मी० श्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १२ ]	३	४
सर्वविशेषेण हेतुत्वेत्त- [ मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० १७७ ]	४०७	२०
सर्वेऽप्यनियमा हेतवे [ ]	२१-३, ३८२	१८
सर्वे भावाः स्वभावेन [ प्रमाणवा० ११४१ ]	४८०	२१
सर्वेषां युगपरप्राप्तिः [ ]	५२६	१६
स वैसि विश्वं न हि तस्य [ श्वेताश्वत० ३।३ ]	२६४	२२
सा ते भवतु सुप्रतीता [ ]	३९५	१६
सादृश्यस्य न वस्तुत्वं [ मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० १८ ]	१८५	१७
साधनं सिद्धिः तदङ्गं [ वादन्या० पृ० ५ ]	६७१	२७
साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यक्षस्थानं [ न्यायसू० १।२।१८ ]	६५१	१७
साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यक्षस्थानस्य [ न्यायभा० ५।१।१ ]	६५१	२०
साधर्म्यवैधर्म्यात्कर्पापकर्ष- [ न्यायसू० ५।१।१ ]	६५१	२३
साधर्म्यान्तुल्यधर्मोपपत्तेः [ न्यायसू० ५।१।३३ ]	६५८	१६
साधर्म्येण हेतोर्वचने [ वादन्या० पृ० ६५ ]	६७२	२७
साध्यदृष्टान्तयोर्धर्म- [ न्यायसू० ५।१।४ ]	६५३	७
साध्यधर्मप्रत्यक्षनीकेन [ न्याय० सू० ५।२।१२ ]	६६३	१५
सान्तो विधिरितिः [ ]	६८८	५
सामान्यघटयोरेन्द्रियकत्वे [ न्यायसू० ५।१।१४ ]	६५६	६
सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्ष- [ वैशे० सू० २।२।१७ ]	२३४	५
सामान्यवचनं सादृश्यमेकै- [ मी० श्लो० उपमा० श्लो० ३५ ]	३४६	५
सामान्यविशेषात्मा तदर्थः [ परीक्षासू० ४-१ ]	१७८-२०, ४४५	२
सामान्यविषयत्वं हि [ मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ५५ ]	१८३	२३
सिद्धसागौरवोद्योतं गोतिषेव- [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८३ ]	४३६	९
सिद्धान्तमभ्युपेक्षा- [ न्या० सू० ५।२।२३ ]	६७१	६
सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं [ मी० श्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १७ ]	३	१
सूर्यस्य देशमित्यत्वं न [ मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० १७६ ]	४०७	१८
स्थानेषु विवृते वायौ [ चाक्रयप० टी० १।१४४ ]	४२	१
स्थिरवायवपनीत्या न [ मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० ६२ ]	३१९	३
स्याच्छब्दस्य हि सत्कारा- [ मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० ५२ ]	४१९	१
खतः सर्वप्रमाणानां [ मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४७ ]	१५३	१०
खदेशमेव गृह्णाति [ मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० १८१ ]	४०८	९
खपक्षसिद्धेरेकस्य [ ]	६७१	१७



अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात् [ न्यायसू०-५।२।२० ]	६७०	९
स्वभावेऽप्यविनाभावो [ अभाषणवा० १।४० ]	३५०	१०
स्वरूपन्योतिरेवान्तः [ वाक्यप० टी० १।१४४ ]	४२	५
स्वरूपसत्त्वमात्रेण न [ मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८७ ]	४३८	६
स्वसमवेतानन्तरज्ञानवेद्य- [ ]	१८३	३
स्वान्तभाषितभूत्वाद्यन्य- [ ]	६८५	१७
हसति हसति [ वादन्या० पृ० १११ ]	६६८	१६
हिरण्यगर्भः [ ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १० सू० १२१ ]	२६४	२३
हिरण्यगर्भः समवर्त्तताम्रे [ ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १० सू० १२१ ]	३९९	१८
हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन [ न्यायसू० ५।२।१२ ]	६७०-१६; ६७४	२६
हेतुमदनित्यमव्यापि [ सांख्यका० १० ]	२८६	२२
हेतुदाहरणाधिकमधिकम् [ न्यायसू० ५।२।१३ ]	६७०	२३
हेतोस्त्रिष्वपि रूपेण [ प्रमाणवा० १।१६ ]	३५४	१३
हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः [ न्यायसू० ५।२।२४ ]	६७१	१०



**४ प्रमेयकमलमार्त्तण्डगतानां लाक्षणिक-  
शब्दानां सूचिः ।**

अंगहारस्फोट	४५७	२०	नयामास	६७६	१४
अतीत	४९१	१५	निश्चय	२७	१८
अनागत	४८१	१५	नैगम	६७६	२०
अनुपक्रम	२४४	२६	नैगमाभास	६७७	१०
अनैकान्तिक	६३७	१७	पत्र	६०४।२१,२९	
अध्यक्षत्व	५४६	१०	पद	४५८	६
अवक्षेपण	६००	१८	पदस्फोट	४५६	१०
अहितपरिहार	२७	४	पर्यायार्थिक	६७६	१७
आकुंचन	६००	२१	परिशेष	६१३	४
इष्ट	३७०	२५	पश्यन्ती	४१	१६
उरक्षेपण	६००	१४	पादस्फोट	४५७	१८
श्रुतसूत्र	६७८	१६	प्रध्वंसाभाव	२१५	१
औपरुमिकी	२४४	२५	प्रमाण	२७	२०
करणत्व	९	१५	प्रमाणसप्तमंगी	६८२	१०
करणस्फोट	४५७	१९	प्रसारण	६००	२२
कर्तृता	९।१३; ११३।४;		प्रागभाव	२१४	१६
	२६७।२७; २७९।१		प्राप्ति	२५	१८
कर्तृत्व	५३६	१३	प्रामाण्य	१६३	१२
कर्नेल	९	१४	याचक	७६	१
कारक	११६	१३	याप्य	७६	१७
गमन	६००	२३	भावनाज्ञान	३३७	२
चिन्तामयी	२४६	२८	भावेन्द्रिय	१५।२५; २२९।२८	
जन्म	५३६	१५	भोक्तृत्व	५३६	१४
जाति	६५१	१८	मध्यमा	४१	१५
जीवन	५३६	१५	मरण	५३६	१५
तदामात्र ( श्रुतसूत्र )	६७८	२२	मात्रिकास्फोट	४५७	१९
प्रव्यार्थिक	६७६	१६	मोक्ष	३३४	५
द्रव्येन्द्रिय	२२९	२४	लब्धि	१२२।५; २२९	२९
नय	६७६	१६	वाक्य	४५८	७
नयसप्तमंगी	६८२	१२	वाक्यस्फोट	४५६	१९

१ परिशिष्टेभ्यो प्रथमोऽङ्कः पृष्ठसंख्यां द्वितीयश्च पृष्ठसंख्यां तृतीयः ।



## ५ प्रमेयकमलमार्तण्डनिर्दिष्टाः ग्रन्था ग्रन्थकृतश्च ।

अकलङ्कदेव	६।१४	प्रमेन्दु	१।४
अद्वैतादिप्रकरण	८०।९	प्रबल्लमति	२७०।७
अविद्धकर्ण	२६९।२४	मह	२५।११; ४७४।१८;
अद्योतकर	२७०।११; ४७६।९;		५२१।२४
६१४।१९; ६५९।२५; ६६४।७		भारतादि	३९६।२५
अपवर्ष	४६४।१४	भाष्य	४२९।६
आदम्बर्यादि	३९३	भाष्य ( न्याय )	२३७।१५
कुमारिल	१८७।१२; ४०८।६;	भाष्यकार	१८७।१२
४७४।९		मन्वादि	४०१
जीवसिद्धिप्रघट्टक	७३।१	माणिक्यनन्दिन्	१।७; ६७४।४;
जैमिनि	२५१।२५; २६२।८		६९४।२, ९
तरुवोपल्लववादिन्	६४८।२०	रत्ननन्दिन्	६९४।१२
दिमाग	८०।९; ४३६।१६	रामायणादि	२५८।२
द्विसन्धानादि	४०२।९	वार्तिककार	२६९।१९; २८३।१९;
धर्मेकीर्ति	७।८		६५२।१४; ६३४।३
न्यायभाष्यकार	६५१।२०; ६५२।१;	विद्यानन्द	१७६।६
६६३।२५		वेद	२६२।२
पदार्थप्रवेशकग्रन्थ	१३१।९	वैद्यकादिशास्त्र	५९८।१
पद्मनन्दिसेखान्त	६९४।११	वैशेषिकशास्त्र	६०९।३
परीक्षासुख	३९३।१; ६९४।७	न्यास	२६८।२०
पाणिन्यादि	३९५	समन्तभद्र	१७६।४
प्रज्ञाकर	३८०।१७	सूत्र	४२९।६; ५८९।११
प्रभाकर	२०।४; ५६।२, ७;	सूत्रकार	६५१।२६
१२८।१		स्थितिपुराणादि	३९२।२१
प्रभाचन्द्र	६९४।१२		

## ३ प्रमेयकमलमार्त्तण्डगताः केचिद्विशिष्टाः शब्दाः ।

अंगुलप्रे हस्तियूयशतमात्रे	१२८	८
अंजनतिलकमन्त्रायस्का-		
न्तादि	५७३	६
अकलह्वार्य	२१७; १७६१३	
अक्षर	२९११६; २६८११५	
अक्षिपद्मनिमेष	३०२	१३
अग्निपाषाणादिशब्दभवण	४६	१५
अग्निप्रवीणगजोदकादि	६२०	३
अग्निहोत्रादि	२६२	५
अचेलसंयम	३३०	१७
अजालिन	६६७	४
अतीन्द्रियार्थवेदिन्	५८	२
अत्यन्तोपकारकचक्षु	११२	६
अद्वैत	७०	९
अद्वैतप्रतिपादकागम	७२	११
अधीतानभ्यस्तशास्त्रवत्	५९	१३
अनन्तपर्यायचैतनब्रह्म	७०	१४
अनन्तप्रभादमालाप्रसक्तिः	१७	६
अनन्तसुखवीर्य	३०६	२४
अनन्तानुवन्धिप्रोवादि-		
परमप्रकर्ष	२४५	२५
अनवस्था	५९६	२१
अन्तरंगग्रन्थ	३३२	२०
अन्तरङ्गचहिरज्ञानन्तुज्ञान-		
प्रातिहर्ष्यादिश्री	७	१२
अन्तराभवशरीर	३१४	४
अन्तरावधिषये	३०६	४
अन्तर्गङ्गना	१४११६; ३३११०	
अन्तर्गङ्गना पीडाकारिणा	७१	१२
अन्तर्ज्योतिः	१९४	१६
अन्ध	२३	६
अन्धपरम्परा	२१६	४
अन्धसर्पविलम्बवेदान्याय	४६११७;	
	५३०१७	

अश्व वै. प्राणाः	८	१२
अन्यापोह	४३१; ४४१११०	
अपमृत्युरहित	३०६	२३
अप्रमत्त	३०६	१३
अप्रामाण्य	१६३	१३
अवाधितविषयल	३५८	२६
अभावदोष	५३६	८
अमेदवादिन्	७०	६
अमृत्युदानकयिन्	५४६	१३
अमृशाल्यककल्प	५०४	२०
अवस्कान्त	५८५	६
अयोगोलकादिवामेः	१०१	१
अर्थक्रियाकारिस्तन्माधुप-		
लब्धि	७९	७
अर्थतथालपरिच्छेदरूपा-		
शक्ति	१५३	७
अर्थप्रधाननय	६८०	२७
अर्थवाद	७०	१७
अर्षजरतीयन्याय	१०४११६; १०५१४	
अर्हत्प्रणीतागमाश्रयणप्रसंग	२४८	१४
अर्हदादि	३३१	४
अर्हन्	२५६	११
अनग्रहेहावायधारणास्पृष्टा-		
दिचित्रस्वभावता	३३६	२५
अविद्या	६६	११
असक्यविवेचनल	८२	४
असुप्तप्रकृति	३०३	२५
अश्रुतकाव्यादि	४०२	५
अश्वविषाण	५०४	५
अष्टक	३९३	२०
असंयतसम्यग्दृष्ट्यादि	२४५	२२
असत्कार्यदर्शनसमाश्रयण	१५३	१३
असमवायिकारण	५३७	२८
असातवैदनीयोदय	३०३	१

असाधारणनैकान्तिक	३५५ ५	उपचार	११३ १०
अहमहमिकया प्रतीयमान	७२ १७	ऊर्णनाम	६५१; ७२
आकलङ्क	६ १०	ऊहापोहविकल्पज्ञान	३५२ ८
आकर्षकाख्यायस्कान्त	५७५ २८	ऊद्विधिशेषहेतु	३३० ८
आगम	६३१ २१	एकं सन्धित्सोरन्यत् प्रच्य-	
आगमप्रामाण्यवादिन्	७० १७	वते	६१६ १३
आचार्य २११०; ७३; १७७८;		एककारता	६८ ६
३६७१२२		एकान्तवादिन्	६३१२२; १४८१९;
आत्मश्रवणमननध्यान	६६ १९	५१६११	
आत्माद्वैत ६४११५; ७०१७		एकेन्द्रियाण्डजत्रिदशादि	३०० २४
३१६ २		एवम्भूत	६८० १२
आदर्शादि	१०२ ११	औदारिकशरीरस्थिति	३०१ २
आयुःकर्म	३०२ ९	औशनस	४५४ १५
आर्या	३३० ३४	कंसपाभ्यादिभ्रान	५५० १२
आद्यब्रह्मा योगपथामिमान	१३९ १४	कठकलापादि	४८३ १
आसयोगकैवल्यिन्	३०० १८	क पि ल	६३५
आहार	३०० २१	करणकुशलादि	६३ १८
आहारकथा	३०६ १३	करतलरेखादि ३८११०; ३८२१२०	
आहारिन्	३०० २७	कर्कटिकादि २०२११; ५०२१२५	
इक्षुक्षीरादिमाधुर्यतारतम्य	१७४ १३	कर्कादिव्यक्ति	४६९ २१
इन्द्रधनुष	४६८ १०	कर्मकर्तृकरणक्रिया	८५ १९
इन्द्रियसंस्कार	४२४ ५	कवल्हहार	३०० ९
ईश्वर	५७३ १५	काकदन्तपरीक्षा	२ १८
उत्कलितलमात्रं	१३१ ११	काकस्य काण्ण्याद्वलः	
उत्कृष्टध्यान	३३४ ३	प्रासादः	२१७ २१
उत्तममकमणि	१९८ ४	अकैर्मक्षितम् ३१४११; २३९११;	
उत्पत्तननिपत्तनव्यापार	१३८ १९	५२९१२५	
उत्पाद्यकथा	४७७ ११	आचक्षमलादिदोषलक्षणवि-	
उदक्काहरणशक्तिः	१५३११८;	षिष्टचक्षुरादि	१५० १३
६५९१२९; ६६४१७		काचाग्रकादिव्यवहितार्थ	३७ १
उन्मत्तकादिजनितोन्माद	२४३ १०	काण्णमाध्यन्दिनतैत्तिरीया-	
उपचरितोपचार	६८५ ४	दयः शस्त्रामेदाः	३९२ २१
उभयसंस्कार	४२४ ३०	कात्यायनाद्यनुमानातिशय	२५१ २४
उभयदोष	५२६ १४	कापिल २८११३; २८५१२५; ४३६	
उपयोग	२३० १	कामलाद्युपहतचक्षुषः शुक्ले-	
उपाध्यायज्ञान	३१४ ६	संखे पीतज्ञानम्	१०९ ९

काम्यनिषिद्धकर्म	३०९ २४	शृङ्खराहपिपीलिकादिप्रत्यक्ष	
कायाकारपरिणतभूत	११८ १४		२५१।२२; २५८।३
कालप्रत्यासत्तिः	५०२ ८	शृङ्खल	३३१ ५
कुण्डलादिषु सर्पवत्	५३२ २	गोत्रस्खलन	४४९ २०
कुक्षेत्रलंकाकाश	५६५ ३	गोमयादि	११८ ९
कुल्याजल	५५१ २३	गोमांस	६३२ ३
कुष्ठिनीक्रीवत्	३१६ ८	गोलकायाश्रय	२२२ ९
कुसूल	२८३ ३	घटप्रामारमादि	७३ १३
कुर्मरोमादि	७५ १०	घटाथक्छेदकमेद	६७ २
कृतनाशाकृताभ्यागमदोष	५२१ १८	जातिकर्मचतुष्टय	२५९ ६
कृतिकोदय	३२९।६; ६५४।१७	भूतादिना च पादयोः	
कूपीबलादि	१६७ १४	संस्कारे	२२२ १०
केवलिन	२९९।३०; ३०१।१४	चतुरङ्गवाद	६४५ १३
केशोण्डुकज्ञान	२३३।८; २४०।१९	चन्द्रकान्त	६५१; ५४७।१९
केशोण्डुकादिकादि	६३ ७	चन्द्रार्कादिविषय	२६ ७
कैटभद्रिषु	६८८ २	चाण्डालादि	४८६ १९
कौपीन	६६१।१६; ६६९।२४	चार्वाक	१८० १
क्रियानिशेष्यकौपीनीतादि	४८६ ७	चार्वाकमत	५७१।१; ५७९।१४
क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्ति	५०३ ९	चित्रकूट	२१३ १५
क्षत्रियविद्वद्भ्यः	४८७ १०	चित्रज्ञान	९२ ३
क्षर	२६८ १५	चित्रपट्याविज्ञान	६९ १४
क्षायिक	२४५ २७	चित्रसंवेदन	५१४।२३; ५१६।५
क्षयोपशमिक	२४५ २६		५२०।२३
क्षररटित	२८ ११	चित्राद्वैत	९५ ३
क्षरविषाण	६१७	चित्रैकज्ञान	५४६ १८
क्षरशृङ्ग	५०५ १७	चोदना	२५३ २०
क्षात्पतिता नो रजद्रष्टिः	६९० ३०	चोदनाजनितानुद्धि	१७५ २३
खे पुष्पसंसर्ग	५४ २	जपापुष्पसञ्चिधानोपनीत-	
गजज्ञान	१६६ ६	स्फटिकरफिमा	१०१ ११
गण्डक	३४७ २०	जलनिमग्नमहाकायगजादि	५४० २१
गतसर्पस्य शृष्टिकृष्टनम्याय	६३।६; ७६।१२	जलादेर्मुक्ताफलादिपरिणाम	२३० ६
गर्दभाश्रयभवापला	४८३ २१	जाततैमिरिक	१५९ १८
गिरितरपुरलतादि	४३।८	जाततैमिरिकप्रतिभासविषय	५७ ६
गुणव्यतिरिक्त गुणी	१६८ १३	जिन	३०५ १८
शुक्र	६३४ ६	जिनपतिमत	२९२ ९
		जिनपतिमतानुसारिन्	३७७ ५



जैन	१११३; ९३१६; ३७०१३;	दूरे पर्वतः निकटो मदीयो	
४२६११७, २०; ४८६१६; ६८५१६		बाहुः	१०३ १४
जैनमत १४५१६; ४५९१२२; ४६५१९		देवमनुष्य	७१ ६
ज्ञानामि	३०९ ४	देशप्रत्यासत्तिः	५०२ ७
ज्ञानाद्वयादि	६१७ २८	देशसंयमिन्	३३० १८
तत्त्वबहुष्य	१११ ४	देवरक्षा हि किंशुका केन रञ्जन्ते	
तद्वितोत्पत्ति	५२५ २३		७५ २
तश्चाद्युपयोगजनितविशिष्टा-		दोष	१६३ ८
मिरति	२४२ ११	द्विचन्द्रादि	५७ ६
तपोदानादिव्यवहार	४८६ ६	द्विचन्द्रादिप्रत्यक्ष	२८१५; ३०१११७
तिमिर	४५ १३	द्विचन्द्रादिवेदन	५८१११; ६२११०;
तिमिराद्युपहतचक्षुष्	३७ १७		७९; १०२१३
तिमिरोपहत	४४ १९	इतिन्	६७ ४
तिर्यगृहस्थादिसंयम	३३ ११	नतूरकाद्युपयोगिन्	२४२ २७
दुरज्जमोतभाक्ते शत्रुम्	४ १८	घटुन्धाखाद्यप्रदन्तादि	५८८ २२
उलान्त	४९७ ३	वर्मावर्माव्य	६२३ १७
सुत्रिच्छेदादि	१६९ ४	धूपदहनादिभाजन	५३४ ८
तैमिरिकप्रतिभास	७८ १	धूमधटिका	२७७ ४
तैमिरिकस्य द्विचन्द्रदर्शन	८६११; ९३११२	ध्यामलितवृक्षादिवेदन	२२० १
तौयसीतस्पर्शव्यञ्जकवाच्य-		नखकेशवृद्धादि	३०२ १३
वयविवत्	२३० १७	नङ्गलोदकं पादरोगः	८ १६
त्रयीमय	२९८ १९	नपुंसक	३३३ २८
त्रिगुणात्मन्	२९८ १९	नदीद्वीपदेशस्वर्गापवर्गादि	४४८ १९
त्रिचतुरपिच्छग्रहण	३३२ १४	नरशिरःकर्पालं	६३१ २४
त्रैरूप्य	३५४	नर्तकीक्षण	६२३ २९
दण्डकवाटप्रतरादि	३०३ २९	नर्मदानीर	५५१ २३
दक्षिन्नपुसादयः	४६९ ६	नागकर्णिकाविमर्दकरत-	
दशदाडिमादि	४५०१११; ६६७१४	लवत्	२३० ९
दिवोल्लादिवेदन	२१८ २१	नागवल्लीपत्र	४८४ ६
दिव्यपरमाणु	३०२ ११	नाटकादिघोषणा	६७३ २
दीर्घशाष्कुलीमक्षण	१८१६; २८१६; १२६११८	नारकादिदुःखितप्राणि	७१ ३
दीर्घस्वापवान्	१०४ १	नारिकेलद्वीप	५१८ १
दुग्धादि	६३२ ३	निग्रहस्थान	६६३ १
		नित्यनिरंशव्यापिन्	७२ ९
		नित्यनैसित्तिक कर्म	३०९ २३
		निन्दावाद	७२ ५

निमज्जणे आकारणवत्	६२५ १२	पृथिव्यादिभूतचतुष्टय	११७ १
निराश्रवचित	५०१ २४	पौराणिक	३९२ १७
निरुपाख्य	२०५ १५	प्रकरणसम	३५७
निर्जानिकादिचक्षुष	२५८ २४	प्रशालिताशुचिभोदकपरि-	
निम्बकीटोद्गादि	५ ६	लागव्याय	२८१ २४
नीलकुवलयसूक्ष्मांश	९७ ६	प्रक्रियोद्घोषण	२१६ ३
नीलोत्पलादि	१६५ १२	प्रतिकर्मव्यवस्था	८६ २०
नृपत्यादेरतिभोजिनः	३१९ २२	प्रतिबन्धक्रमणि	१९८ ६
नैयायिकमत	३४७ १	प्रतीतिभूधराशिखारूढमामा-	
नैयायिकादि	९२ १२	रामादिप्रतिभास	९७ १४
नैयायिकान्युपगतबोद्धव्य-		प्रवीप	१३५ ७
दार्थ	६२३ ७	प्रधान	९९ १
नैयायिकस्यानैयायिकता	६६३ ५	प्रभाकरमत	५६ १७
न्यायवेदिन्	४५९ ६	प्रसत्तगुणस्थान	३०० ४
पथिकामि	११८ १३	प्रमाणसम्पन्न	६७० २४
पदानालतन्तु	५८६ १६	प्रमाणसम्पन्नवादिता	५९ ४
परधातकर्म	३०३	प्रमाणान्तरवादिन्	१८३ ६
परमचारित्रपद	३०५ २८	प्रमेयद्वैविध्य	१८० १४
परमनैर्ग्रन्थ	३३२ १७	प्ररोह	६५ २
परमौदारिकचारीरस्थिति	३०१ ७	प्रश्रमआदिसंस्कृतचक्षुष	२५८ २३
प र श्रु रा म	४८६ ८	प्रसंगनिर्णय	२५२ १९
परस्परपरिहारास्थिति	५३३ २१	असङ्गसाधने	५४४ १४
परीषद्	३०६ २६	प्राणिमक्षणलम्प्य	७६ ३
पल्लपिण्ड	६६७ ४	प्रातिमज्ञाने	२५८ ११
पशु	२७ २	प्रामाण्य	१६३
पाटलादिकुसुम	५६८ ८	प्राक्षिक	६४९।४; ६६०
पाटलिपुत्र	२१३ १५	फणिनकुलयोरिव	५३४।४
पारदारिकवद्दीनवद्वा	३०७ १२	बद्धवा	४८३ २१
पारिभाष्य	५८७ १९	बद्धरामलकवत्	५२५ २१
पिच्छौषधादि	३३२ १३	बधिर	४३ १७
पिण्डस्वर्णर	१८४ १४	बलवत्पुरुषभेरितमुद्गराद्यभि-	
पितापुत्रवत्	५२५ २१	धात	२१५ २६
पिशाचादि	२७७	बध्यधातक	५३३ २२
पिष्टोदकगुणधातक्यादि	११५।१४; ११७।२	बहलतमःपटलपटावगुणित-	
पुंवेद	३३८ २२	विग्रह	११२।८; ११९।१९
		बहिराग्न्य	३३२ २०

बाधकारणदोषज्ञान	१५६ १४
बा ह्रु ब लि प्रथति	३०२ ८
बीजाङ्कुरवत्	४४२ ६
बीजाङ्कुरसन्तान	२४५ १५
बीजाङ्कुरादि	२८३ १३
बुद्ध	२४८११८; २५६११५; ३५४१२३
बुद्धचित्त	५०२ १
बुद्धेतरचित्त	५०१ २३
बौद्ध	१८१२६; १०३१५; ६३०११
ब्रह्म	४५११; ४६११८; ६४११५; ६५१६; ६७१५
ब्रह्मकर्तृकवेद	३९२ १७
ब्रह्मन्	४०१ २७
ब्रह्मवाद	९५ १२
ब्रह्मव्यासविद्यामित्र	४८४ १
ब्रह्मादिपिशाचान्त	२८४ १८
ब्रह्माद्यद्वैत	४८३ ११
ब्रह्माद्वैतप्रपञ्चक	७८ ६
ब्राह्मणक्षत्रियादिव्यवस्था	४८७ २६
भाद्र	१३५ ५
भानुना तारानिकरस्याभिभवः	२५ ४
भावनानियोगाद्यर्थ	१६५ १४
भावप्रत्यासत्ति	५०२ १३
भावश्रुतज्ञान	४५६ ११
मिक्षाहृदि	३०५ १५
मिस्ताविव चित्रम्	१५३ ४
मुजगरक्षोयक्षप्रभृति	२८४ २१
भूतसंघात	६३४ २०
भैषज्यमातुरेच्छानुवर्ति	६८० ४
आमकाख्यायस्कान्त	५७५ २६
मणिप्रभायां मणिबुद्धिः	१७० १५
मणिमुक्ताफलप्रवाल	५७४ २१
मंतिज्ञान	३०४ १०
मत्स्यादि	३०५ २०

मदशक्तिवत्	११५११४; ११७१२
मनुष्यपारावतबलीवर्द्ध	२२५१८
मनोज्ञाज्ञानादिविषयोपनीता-	
त्मसुखादि	१०१ १२
मनोराज्यादिविकल्प	३३१३; ३५११८
मन्त्रादिसंस्कृतलोचन	२६१ १६
मन्याखेट	५७९ ७
मरीचिचक्र	४८१२०; ७६१९
महती प्रासादमाला	५९२ ८
महर्षि	४२९ ५
महेश्वर	७११४; १८११४; १३३११३; १४१११२; १४२१५; १४४११०; १४६११०; २८३; २९८; ३१९१२; ६१३
महेश्वरज्ञान	१३२१५; १३४; १३८
महेश्वरंशुद्धिवत्	२७४ ११
माणवके सिंहासुपचार	७० ५
माता मे वन्त्या	२०६ १९
मातुलिङ्गद्रव्य	५३४ १
मातृविवाहोपदेश	२ १९
माध्यमिक	९७ ३
माया	६६ १८
मायापरमप्रकवे	३२९ २१
माषपाक	३३३ ८
मिथ्यालकर्मोदय	४८ ८
मिथ्यास्त्राराधना	३३० १६
मिथ्यादृष्टि	२४५ २५
मीमांसक	३९३ २८
मीमांसकमत	१३८१४; १४३१५
मीमांसकमतानुषङ्ग	१०३१७; ३०११२७
मुक्तात्मवत्	३७७ १४
मुक्ताफल	५४७ १६
मूलकीलोदक	३४३ २
मुच्छकले काश्मनज्ञान	३४३ ३७

मृत्पिण्डदण्डचक्रादि	१५३ २४	खलपुनर्जातनखकेशादि	३४२।२४;
मेचकज्ञान	५२९ २३		४९८।९; ५५४।१५
मेचकज्ञानवत् सामान्यविशे-		लोकपालश्रुतीतदिकूप्रदेश	५६८ २८
धवध	२०१ १४	लौकायतिक	६४२ २२
मेण्ड	५२४ ८	वर्णाश्रमव्यवस्था	४९६ ५
मेध्या आपः	२६९ ४	वर्तिकादाहृतैलशोषादि	२०१।२;
मेवादि	२४२ १		५०३।१
मोहनीयकमी	३०३ ३	वन्ध्यासुताधीन	९५ १७
यज्ञानुष्ठानागम	३३०।२; ३३१।१६	वन्ध्यासुतसौभाग्यव्यावर्जन-	
यज्ञोपवीतादिचिह्नोपलक्षित	४८६ ७	प्रसूय	५६१ १५
यथाख्यातसंयम	३०६ २१	व्यतैलादि	४२४ १६
युगपद्वृत्ति	२८ ७	वर्ध मा न जि न	१७६ ७
योगिन्	३४।१२; ४५	वल्मीकि	२७५ ३
योग १८।२६; ६४३।२४; ६५१।१४;		वशीकरणौषध	५८० २२
	६८६।२२	वसन्तसमय	५६८ ८
योगकल्पित	६५९ २०	वाद	६४५ २२
रजःसम्पर्ककलपोदक	६६ २०	वालाग्रमपि खण्डयिष्टुं	
रजोशुष्	२९८ १८	अक्यवे	४८ १
रजोनोद्यराद्यन्तरिततत्तनि-		वासीकर्तार्यादि	१४० ३
कर	२४२ १९	विग्रहगति	३०० २६
रजुर्वधवण्णादि	५१४ ११	विश्रुतिमात्र	७७ ७
रजःप्रयाराधन	३३२ १९	विनाशोत्पादप्रक्रियोद्घोषण	५०० ४
रक्षादिपदार्थ	६३५ १९	विरुद्धवर्माध्यास	५३० १
रा व ण	३८० १२	विरोध	५२६ १०
रा व ण शं ख च क व र्त्त्या दि		विशेषतोदृष्टानुमान	३५० १७
	१८४।१६; ६७९।६	विषं विषान्तरं घामयति	६६ २२
रा व णा दि	२४२ १	विषयापहारश्च राज्ञां धर्मः	७५ २०
रूपश्लेष	५१६ ३	विधागदवत्	५२५ २०
लकुटचपेटादि	६४८ १४	विधापहारादि	६३२ ४
लघुवृत्ति	२८ १२	मिष्टिकर्मकरादिभत्	२७९ १९
लामान्तराय	३०३।११; ३०६।१८	वीचीतरङ्गन्याय	४२६।१२;
लालवत्	२३० १२		५५८।३
लावकादिपलादिक	३३१ २६	वीणादिरूपविशेष	१७० ९
लिङ्गाशोच्यलघुवृत्तिवत्	१५८ ४	वृक्षशाखासंग	२७२ १२
लुभनादिक्रिया	३३१ १२	वृक्षो न्यग्रोध इति	५९ ७
		वृक्षो हस्ती पलालकूटादिर्वा	२२० ५

शुद्धिकादि-	११८	शुद्ध	४८५ ३
शुद्धलादि	४८४ १६	शुद्धोत्थशरादि	४९३ १३
वैद्य ( वेदनीयकर्म )	३०३ ३०४	श्री व र्द्ध मा न	६२८ ४
वेद्यापाठक	४८६ १६	श्रेणि	३०६ १५
वैद्योपदेश	३१९ २२	श्रोत्रिय	२६० २७
वैद्यवैद्य	६४९ १९	शङ्खपूपाः	६६७ ४
वैनतेयप्रत्यक्ष	२५८ २	शोढासम्बन्धवादिल	६१२।११;
वैयधिकरण्य	५२६ १२		६२१।२२
वैयाकरण	६७९ १	संकेतस्मरणविवक्षाप्रयत्न	
व्यक्त	९९ १२	ताल्वदिपरिस्पन्दक्रमेणो-	
व्यतिकर	५२६ १९	पञ्चायमानशब्द	६९ १६
व्यभिचार	६३७ १९	संविच्छिन्नाद्भावव्यवस्थितेः	१६ १६
व्याधच्छब्दकप्रवृत्ति	३०५ २०	संसर्गविशेषवशाद्विप्रलब्धः	१०० १६
व्योमोत्पल	६१९ २	सकलव्याप्ति	३६५ ९
व्रतबन्धवेदाध्ययनादि	४८५ ५	सकलशून्यता	९७
व्रात्य	६५० १५	सकलशून्यवादिन्	६५१ १४
शंखः कदल्याम्	६६७ ११	सङ्करव्यतिकरौ	५३६ ५
शं ख च क व र्ति	३८० १२	सञ्चलसंयम	३३० १३
शकटोदय	६५४ १७	सत्ताद्वैतवादिन्	६४३ २३
शकटोदयाद्यर्थ	८६ ६	स ल मा मा	४५९- १
शक्रादि	२८४ २६	सत्येतरव्यवस्थासंकर	७६ ९
शत्रुमित्रध्वंस	४९५ १३	सन्तानान्तर	८० ५
शब्दप्रधाननय	६८० २८	सन्निकर्षप्रमाणवादिन्	१७ ११
शब्दब्रह्म -	३९; ४४; ४५; ४६	सप्तमनरकमूषि	२४५ २३
शब्दसंस्कार	४१९ ६	सप्तमपृथिवी	३२८।१६; ३३४।३
शब्दाद्वैत	३१६ १	सप्रतिषादिरूपता	८६ १३
शब्दाद्वैतवादिन्	३९ १	समानकालयावद्भव्यामि-	१३३ ४
शब्दानुविद्धल	४६ १९	समुदितेतरगुह्य्यादि	४६९ १
शरम	३४७ २१	सम्बन्ध	५१४ २२
शलाका	२३२ १४	सम्यग्दर्शनाद्यन्तरङ्गसामग्री	२४१ ८
शशशृंगादि	७३ ११	सम्यग्दर्शनापराधक	३३३ २०
शास्त्रकार	३७३ २२	सर्पस्य कुण्डलेतरावस्था	५३७ ३
शुकशारिकोन्मत्तादि	४५० १५	सर्वज्वरहरतक्षक चूडारत्ना-	
शुक्लध्यान	३०३ ९	लङ्कारोपदेश	२ २०
शुक्लशंखे पीतज्ञान	१३९ २२	सर्वज्ञ	८० ५
शुभप्रकृति .	३०३ २२		



**: ७ आरानगरस्य-श्रीजैनसिद्धान्तभवनसत्कायाः  
प्रतेः पाठान्तराणि ।**

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
१	५	सुधियः	सततम्
१	९	विस्फुरिताङ्ग-	विस्फुरितैर्ग-
२	४	तदपहृति-	तदपकृति-
२	११	प्रयोजनवस्त्वव्यु-	प्रयोजनव्यु-
२	१२	-मक्षुण्ण-	-मक्षूण-
२	१२	-शाल्लार्थसं-	-शाल्लसं-
३	१४	असम्बद्ध-	असम्बन्ध-
५	१	ज्ञापक-	ज्ञायक-
६	९	-हृतं तदेव-	-हृतं सिद्धं तदेव
६	१५	-व्युत्पादनार्थ-	-व्युत्पत्त्यर्थ-
८	१७	-ल्लाभिषानकं	-ल्लाभिषानं
९	२१	-चेत्स-	-चेत्तत्स-
१०	१९	दृष्टस्य पृथि-	दृष्टपृथि-
१०	२०	निलस्रस्त्रमा-	निलैकलभा-
११	८	वाभि-	वाभि-
१३	८	-थोपलब्धि-	-थोपलब्धि-
१४	३	-दिना ( संयुक्तसमवायः रूपलादिना ) सं-	-दिना संयुक्तसमवायः रूपलादिना सं-
१४	७	वाभाव-	वाभाव-
१५	२१	यस्तस्य तत्र	-यस्तत्र तस्य
१६	२	कुठर ( काष्ठ ) च्छे-	काष्ठच्छे-
१६	९	च	वा
१६	१८	भावे तद्-	भावे वा तद्-
१८	१	-णास्य योगजघर्मसह-	-णास्य सह-
१८	३	-करणं ( योगजघर्माब्ज ) गृहीतं	-करणं योगजघर्माब्जगृहीतं
१८	२३	गृह्यते	गृह्येत
१९	१३	-रमिव्यज्येत	-रमिव्यज्यते
२०	६	-देव प्रसिद्धेः	-देव प्रमाणलप्रसिद्धेः
२०	१०	वाह्येन्द्रियजमिन्द्रियाणां	वाह्येन्द्रियाणां
२१	१५	तदनन्तरप्र-	तदनन्तरं प्र-
२१	१९	चास्य	चास्य

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्-
२२	९	-हि को ( एको )	हि एको
२३	१२	वापार्थ-	वापार्थ-
२३	२०	क्रिया परिस्प-	क्रिया स्प-
२४	१६	-शक्तित्वेन	-शक्तिवत्त्वेन
२६	२	-योगि(त्वं)तद्वि-	-योगि तद्वि-
२६	३	-त्वा तूपादे-	-त्वा चारूपादे-
२७	८	-षणमस्मा-	-षणल्लमस्मा-
२८	३	ह्यन्यत्रान्य-	ह्यत्रान्य-
२८	५	-स्वरूपं वै ( पमवैश्वर्यं ) परि-	-स्वरूपं परि-
२८	७	तदिति	तदिव
२९	२	-त्ता साह-	-त्ताकृत्साह-
३०	१५	-अयल्लम् अन्य-	-अयल्लमभ्ये अन्य-
३०	२३	विकल्पधर्मा-	विकल्पकधर्मा-
३२	१३	चात्राव-	चाव-
३३	६	-कलं घटते स्व-	-कलं स्व-
३३	९	-ध्याति( नि )रो-	-ध्याविरो-
३४	१०	अन्योत्पा-	अन्योपपा-
३४	१९	सविकल्पा(त्प)क-	सविकल्पक-
३५	१७	प्रभवत्त ( वात् त ) तो	प्रभवत्ततो
३६	४	-स्माद्रूपादिवत् । रूपाद्यु-	-स्माद्रूपाद्यु-
३६	६	मीयेत्	मीयते
३६	१७	शब्दप्रभवत्तात् ( ग्राह्यार्थं विना-	शब्दप्रभवत्ताद्वा ग-
		तन्मात्रप्रभवत्ताद्वा ) ग-	कचान्यका
३७	१	कचान्यका	-सतस्तस्माद्दे-
३७	११	-सतस्तस्माद्दे-	-पत्तिप्रवृत्ति-
३७	१५	-पत्तिप्रवृत्ति-	शब्दाध्य-
३८	९	शब्दाध्य-	-शार्था-
३८	५	-शार्था-	तत्संस्पर्श-
३९	२	तत्संस्पर्श-	-देशोऽसौ
४०	८	-देशोऽसौ	-तापजाः
४०	१५	-तापजाः	लोचनाध्य-
४१	१३	लोचनाध्य-	घटते
४४	१३	घटते	-ब्रह्मणि
४४	१६	-ब्रह्मणि	



पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
४६	१८	द्वैतप्र-	द्वैतसिद्धिप्र-
४७	१४	-रेवसं-	-रेव स सं-
४८	४	-अश्वहेतुक-	-अश्व हेतुक-
४८	१६	-वामिप्र-	-वामिप्र-
५१	१	अवहिष्ठास्थि-	अवहिरस्थि-
५१	१२	सत्त्वेनासत्त्वेनान्येन	सत्त्वेनान्येन
५४	२	खे खपुष्प-	खखपुष्प-
५७	४	सामान्यमात्रप्र-	सामान्यभावप्र-
५७	६	विषये सद-	विषयेषु सद-
५८	४	सर्वस्यास्तप्र-	सर्वस्याः स्मृतेस्तप्र-
६२	१	मेदे अजु-	मेदानु-
६३	२२	नचानेकान्त-	नवैकान्त-
६५	५	मेदानुप-	तदनुप-
६६	७	वासल्य-	वासल्य-
६६	२२	स्वच्छां	स्वस्थां
६६	२४	मेदे समु-	मेदसमु-
६७	७	मेदातथाव-	मेदाथव-
६७	१३	-य पक्षोप्य-	-य विकल्पोप्य-
६८	१२	तथा तद्व्यक्ति-	तथा व्यक्ति-
६९	२०	-साञ्छन्दे(न्दो)स्तीत्यभ्यु-	-साञ्छन्दोत्पत्त्यभ्यु-
७०	४	-चाररूपं कल्प-	-चाररूपकल्प-
७०	६	मुख्यं मेदा-	मुख्यमेदा-
७०	८	असिद्धिः	असिद्धः
७१	५	प्रवर्तते	प्रवर्तत
७१	१४	परदुःखं	परत्र दुःखं
७१	१४	-न्ति पर-	-न्ति-तेषां पर-
७१	१५	प्रवृत्तेः	प्रवृत्तौ
७२	११	कथंचाद्वैत-	कथं द्वैत-
७५	१३	तस्याबाध्यमानत्वात्	तस्याबाधात्
७५	१७	-सल्लभभ्यु-	-सल्लभिलभ्यु-
७७	१०	यथायः पक्षस्त-	यथायः स्वपक्षस्त-
७८	१३	अनुपलब्धि-	उपलब्धि-
८३	१४	साक्षरो वा ( मित्रकालः समकालो वा ) नी-	साक्षरो वा मित्रकालः समकालो वा नी-

साक्षरो वा मित्रकालः समकालो वा नी-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
८६	१३	सप्रतिपादि-	प्रतिपातादि-
९१	७	-स्याध्यक्षेणसि-	-स्याध्यक्षसि-
९१	१३	जडस्यापि पर-	जडस्यापर-
९२	२१	व्याप्तौ तौ प्रति-	व्याप्तौति प्रति-
९३	७	प्रसिद्ध-	सिद्ध-
९३	७	यतः स्वतः प्र-	यतः प्र-
९६	९	-व्यापित-	-व्यापित-
९६	१२	-व्यापितं	-व्यापितं
९९	९	ज्ञानस्वभावतावि-	ज्ञानस्वभाववि-
१०१	१३	निवर्तन-	निवर्तन-
१०३	१६	आकाराद्यायक-	आकाराभ्यापक-
१०४	५	-दुत्तरार्यक्षण-	-दुत्तरौत्तरार्यक्षण-
१०४	१२	आत्मनोऽर्था-	आत्मनार्था-
१११	१३	पुनस्तद्वक्षणं	पुनस्तद्वलक्षण-
			णान्तरलक्षणं
१११	१८	तत्तद्भावावेदकं	तत्तद्भावावेदकं
११४	४	चैतन्यम्,	चैतन्यस्येन्द्रियं
११९	१२	सर्वं	सर्वत्र
१३४	४	वश्चात्मीयज्ञानमा-	वश्चात्मार्यं ज्ञानमा-
१३५	१९	चास्य संयुक्त-	चास्य सन्निकर्षो वा संयुक्त-
१४१	२	संयोगोऽवि-	संयोगावि-
१४१	११	-स्यानिष्टदेहादि-	-स्यानिष्टदेहादि-
१४१	११	-गेष्टदेहा-	-गेष्टदेहा-
१४२	१	चादृष्ट-	न चादृष्ट-
१४२	१७	-मस्तु ज्ञाना-	-मस्तु किं ज्ञानान्तरेण ज्ञाना-
१४८	१	चार्यं	चार्यं
१४८	२	-नो तर्हि तावेव	-नो तावेव
१४८	१३	न	न
१४९	१७	ज्ञानं	विज्ञानं
१५०	५	-ग्रीतो वा ग-	-ग्रीतो ग-
१५२	२१	न चात्र	न चासौ
१५३	३	येन तदुत्प-	येन प्रामाण्यं तदु-
१५४	१७	शुक्तिशकले	शुक्तिशकले
१५४	२१	प्रवृत्त्याभावै-	प्रवृत्त्याधभावै-

शृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
१५७	६	तावतैवेयं	तावतैवायं
१५८	११	प्रवर्त्तत	प्रवर्त्तते
१५८	२३	तावन्नाथोवचार्यते	तावन्नाथोऽभिधीयते
१५९	३	कारणे शुद्धे तज्ज्ञा-	कारणाशुद्धेशा-
१५९	४	च	तु
१५९	७	-न्द्रिये शक्ति-	-न्द्रियशक्ति-
१५९	१४	-क्षेण तेनो-	-क्षेण तत्तेनो-
१६०	१३	समस्त(सम्मत्तस्त्र)स्य	संयतस्तस्य
१६१	१२	चेन्द्रिये	वेन्द्रिये
१६२	३	कथन्तस्त्वतः	कथन् स्ततः
१६२	५	प्रमाणपञ्चक्रामाव-	प्रमाणिकामाव-
१६२	६	चाभावप्रमाणोत्पत्तौ	चाप्रमाणोत्पत्तौ
१६३	३	नैर्मल्यादियुक्तस्य	नैर्मल्ययुक्तस्य
१६३	७	तत्रापि	तथापि
१६४	१६	अन्नेव	यन्नेव
१६५	३	प्रमाणस्य किं	प्रमाणस्य तु किं
१६५	९	-विनाभावस्य	-विनाभावस्तस्य
१६५	१०	हेतोः स्व-	हेतुस्व-
१६८	११	-क्रियाज्ञानस्याप्य-	-क्रियासाधनस्याप्य-
१६९	४	बुद्धिच्छेदा-	तुद्धिच्छेदा-
१६९	७	स्वप्नार्थक्रिया-	स्वप्नैर्पथक्रिया-
१७१	२	अपर ( अपवर ) कान्तदेश-	
		सम्बन्धे तु मणा-	-अपवरकान्तदेशसम्बन्धमणा-
१७१	१२	-निश्चयात्मकं	-निश्चायकं
१७२	६	-ताशंकाः	-सशंकाः
१७२	११	कश्चित्क-	किञ्चित्क-
१७२	१२	कश्चित्क-	किञ्चित्क-
१७४	३	प्रागेव	इत्यपि प्रागेव
१७४	१०	वैतस्मि-	वैतस्मि-
१७५	११	नेष्यते	नेक्ष्यते
१७५	१४	शब्दे स-	शब्दस-
१७६	७	सिद्धं सर्वजनप्रबोधेसादिश्लोकस्य	व्याख्यानं आ० प्रती नास्ति ।
१७७	३	-तदभिप्रायवास्त-	-तद्व्युत्पादनाभिप्रायवास्त-
१७७	७	-तैकद्वित्र्यादिप्रमाण-	-तैकत्वाद्विप्रमाण-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
१७७	१६	-सावनम् इति-	सावनम् तद्वतोऽनुपपन्नम्-
१७८	७	कुतो (गौणत्वम्)	नुमानकथा कुतः ॥ इति
१७८	११	-अयस्यसा-	कुतो गौणत्वम्
१८१	१५	-विरोधी	-अयस्य-
१८१	२०	ज्ञापक-	-विरोधी
१८१	२२	-ज्ञातसह-	ज्ञापक-
१८२	१३	-न्यस्य विज्ञे-	-ज्ञातस्य सह-
१८२	२१	सम्बद्धं	-न्यविज्ञे-
१८३	१९	अव्यो	सम्बद्धं
१८४	७	नाम	अव्यो
१८४	१०	हि सद्भावेन सतया	आव्यो
१८४	१२	बहिरस्तीसस्ति-	तत्र
१८४	२२	न त्वेवं	हि सतया
१८५	३	आगतोः	बहिरस्ति-
१८५	११	-तत्सर्वज्ञै-	न चैवं
१८६	१२	न तद्व-	आगतो
१८७	१	न वैत-	-परस्वज्ञै-
१८७	३	न	न तस्य तद्व-
१८७	५	-अन्मात्र गो-	न वैत-
१८७	१३	अवन्	वा
१९०	३	-विभागतः	-अन्मात्रो न गो-
१९०	९	को	अवैव
१९०	९	-दिनः	-वियोगतः
१९१	५	आपरस्या-	शो
१९१	१२	बोप-	-दितः
१९२	३	-छेद्यत इति	न परस्या-
१९२	८	-आत्मलाङ्घ-	बोप-
१९२	८	आव-	-छेद्य इति
१९३	६	विना नो-	-आसत्त्वाङ्घ-
१९४	१९	सपक्षानुगमनानुगमभेदः	आव-
१९५	३	स्थिताम्	विना अन्वेनो-
१९४	४	नियामिकाम्	सपक्षानुगमभेदः
१९८	८	न तत्सामिधाने	स्थिता
			नियामिका
			न तत्सामिधाने

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
१९८	१२	सहकारी	सहकारिणोः
१९८	१८	-राभावात्	-रासंभवात्
१९९	३	-प्येतच्चोर्थं समानम्	-प्येतयोः सृष्टं मानम्
२००	११	अनादिनिधन-	अनाद्यनिधन-
२०५	२	-लब्धविशेषतः प्रति-	-लब्धवैशिष्ट्यतः विप्रति-
२०७	१७	अनुष्णाग्नि-	अनुष्णोऽग्नि-
२०८	५	-ल्लपात्स्त्रस्त्रभाव-	-ल्लपात्स्त्रभाव-
२०९	२६	-भावग्रहणस्य	-भावस्य
२१०	६	-भावग्रहणस्य-	-भावस्य
२१०	१३	-पटादिव्यक्तिभ्यो-	-पटादिभ्यो-
२१०	१५	न निखिल-	नाखिल-
२१०	१७	-तराश्रयत्वं च	-तराश्रयत्वाच्च
२१३	४	विनाशोप्युत्प-	विनाशिन्युत्प-
२१५	२	-दिव्यापारवैद्य-	-दिवैद्य-
२१५	११	घटादे-	पटादे-
२१५	१३	भावान्तर-	भावोत्तर-
२१५	१९	-रेव तेन वि-	-रेव वि-
२१८	२३	-स्योपपातः	-स्योपपातः
२१९	१७	वेदं	वेदं
२१९	२३	-नाभ्याप्यस-	-नाभ्याप्यस-
२२०	७	-विशेषवि-	-विशेषवि
२२१	१२	तथा चेन्नि-	यथा चेन्नि-
२२१	१४	-वात्तवेध्यते	-वात्तु नैक्ष्यते
२२१	१९	रूपं चक्षुः	रूपचक्षुः
२२२	१४	-वल्लभं शल्य-	-वल्लभशल्य-
२२३	१०	अन्यथा-	नान्य
२२८	११	-कं तद-	-कं दृष्टं तद-
२३०	२३	रसामिव-	रसव्य-
२३१	८	तत्र	तत्र
२३२	१६	कार्यकारणभा-	कारणकार्यभा-
२३३	१२	भवति	भवेत्
२३३	१४	पुरःस्थतया	पुरःस्थिततः
२३४	१४	तदसतो	तदसतो
२३४	१५	-र्थजत्वे	-र्थजन्यत्वे

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
२३४	२२	कारणकल्प-	कारणकल्प-
२३५	१	तत्तेनोपलभ्यते न	तत्तेनार्योभावेऽपि उपलभ्यते अत्रान्तं तु तद्भावे एवोपलभ्यते न
२३५	३	-मतज्ञानं	-मत्तं ज्ञानं
२३५	१५	लब्धा-	तल्लब्धा-
२३५	१६	-नाप्यतत्का-	-नाप्यक्षा-
२३५	१९	-दे तस्यापि-	-देऽपि तस्यापि
२३५	२४	मित्रे	मित्रे
२३६	५	प्रतीयेत	प्रतीयते
२३६	१६	सामान्यस्यापि	सामान्यस्यापि
२३७	३	तदन्यज्जात-	तदन्यज्जात-
२३९	२६	निखिलर्या-	निखिलज्ञानेनाखिलर्या-
२४०	१५	वा	च
२४३	१५	-त्वेतत्पार-	-त्वात्तत्पार-
२४४	२८	-कर्मणो नि-	-कर्मणो नि-
२४६	२१	-त्राशेषज्ञान-	-त्राशेषज्ञान-
२४७	१३	-यैश्चाहुस्त(ज्ञानस्य त)ज्ज्ञान-	-यैश्चानस्य तज्ज्ञान-
२५०	९	-यैप्रमाणैस्तै-	-यैप्रमाणैस्तै-
२५३	४	लभ्यते	लभ्यते
२५३	८	-अमर्षं वानुमाना-	-अमर्षं वानुमाना-
२५३	९	-ययत्वेन तत्प्र-	-ययत्वे तत्प्र-
२५५	१०	यदि यद्वि-	यद् यद्वि-
२५५	२९	इति तत्सर्वा-	इति च सर्वा-
२५७	६	-त्वाच्च वक्तव्यम्	त्वाच्च वक्तुं शक्यम्
२५७	१०	प्रत्यक्षाप्र-	प्रत्यक्षाप्र-
२५८	५	-सम्बन्धितस्यातीतदर्शन-	-सम्बन्धितस्य च प्राप्ति
२५८	१८	सम्बन्धितस्य च प्राप्ति	-सम्बन्धितस्य च प्राप्ति
२५८	१८	भाविष्यमादेरतीतकालदेरिवावि-	भाविष्यमादेरिवातीतकालदेरिवा-
२५८	१९	-लोकप्रभो-	-लोकप्रभो-
२५९	२	-स्यानालो-	-स्याप्यनालो-
२६१	३	प्रज्ञीण-	ज्ञीण-
२६२	६	यथोक्तं	यथोक्तं
२६३	९	तद्भाष्यस्यातार्थाप्र-	तद्भाष्यस्यानाथ-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
२६५	२	चार्ये	चार्ये -
२६६	५	प्रपञ्चनो-	प्रसङ्गनो-
२६८	१	ज्ञानतो-	ज्ञानतो-
२७२	२२	-न्तिकं च	-न्तिकलाच
२७३	६-९	तत्सम-	सम-
२७३	१०	-कान्ते व्य-	-कान्तेप्यव्य-
२७३	१५	-भूतत्वादि-	-भूतत्वादि-
२७३	२४	-शुद्धिवै-	-शुद्ध्यादिवै-
२७४	२३	व्याप्येत	व्याप्यताम्
२७५	१३	बाधकप्रमाणव-	बाधकव-
२७७	१६	-क्षप्र-	-क्षप्र-
२८१	१५	-गयापि	-गया हि
२८२	३	सेवाभेदाजु-	सेवाजु-
२८३	२६	-सङ्गः स्यादि-	-सङ्गत्वादि-
२८३	२७	तेनैवा-	अनेनैवा-
२८६	१७	-धर्मिवत्	-धर्मि च
२८९	१७	-कत्वे	-कत्वेन
२८९	२०	-ह्यर्थे	-ह्यर्थे
२९३	२८	निश्चयस्योत्पा-	निश्चयोत्पा-
२९४	३	हि भव-	हि ज्ञानं भव-
२९४	१६	तु	च
२९५	२	-णादित्या-	-णादिनियमस्य घटनादुपादान-
			ग्रहणादित्या-
२९५	५	सिद्ध्यति	सिद्ध्येत
३०१	१४	प्रसाध्य-	साध्य-
३०२	२८	-वति तन्निमित्तकर्मसङ्गावे तत्फल-	
		सिद्धिरुत्थाय तन्निमि-	-वति क्षुधादिफलसङ्गावे तन्नि-
		त्तकर्मसङ्गावसिद्धिरिति	मित्तकर्मसिद्धावसिद्धिः तत्सिद्धौ
			च क्षुधादिफलसङ्गावसिद्धिरिति
३०३	१३	-तदुदयेऽपि -	-तदुत्तरं तदुदयेऽपि
३०४	२	-मानं क्रियते -	-मानं कर्म क्रियते
३०४	१३	विरतव्यामो-	व्यावृत्तव्यामो-
३०५	१२	घटेत	घटते
३०९	२४	मोक्षार्थी	मोक्षार्थ



पृ०	पं०	मुद्रितपाठः
३१४	२०	-वनाभ्यासात्
३१५	९	-यां ग्रहो
३१५	१४	न प्रति-
३१८	३०	इन्द्रियजज्ञा-
३२०	२४	-न [ ख ] भा-
३२३	२२	हासि तत्र तत्
३२६	७	-परूपतया
३२६	२४	एवेदानीं शुक्लः
३२७	६	-न्यात्मनिष्ठ-
३२७	२७	-तनप्र(ख)सं-
३२९	१३	-गतेनैव वा-
३३०	२४	दिक्खिणो
३३१	६	-कम्म इत्यादेः

३३२	८	तस्य मतो
३३२	९	-नं साङ्गं दृष्ट्वा क-
३३६	२४	-विवेचनत्वादु-
३३६	३०	-[ प ] रि-
३३७	२३	स्मृतावपि
३३९	२२	तं
३४०	२०	-ज्ञानक्ष-
३४१	२१	तस्य वाच-
३४२	६	इक्ष्वाक्या-
३४२	२०	-स्यापि अन्य-
३४४	५	-भयप्रवृ-
३४५	८	लिङ्गनाम्नु-
३५०	४	-कारेण वोप-
३५०	१०	-नुवन्निनि
३५१	२१	तत्प्रस-
३५५	२०	कोके प्रसि-
३५६	१९	-चितं सा-
३६१	५	सु-
३६६	३	ज्ञाप्यते

पाठान्तरम्
वनावशात्
-यां हि ग्रहो
न व प्रति-
इन्द्रियादिजन्यज्ञा-
-न स्वभा
नासि तत्
-वतया
एव शुक्लः
-न्यात्मनः क्ष-
-तनसं-
-गतेन व वा
दिक्खिण
-कम्मे वदजिह्व-
पक्षिकमणे भासं पञ्जोसम-
णकप्ये इत्यादेः
तन्मतो
-नं दृष्ट्वा यतिं क्ष-
-विवेचनत्वादु-
-परि-
स्मृतावर्थावपि
तत्
-ज्ञाक्ष-
तस्यैवाच-
इक्ष्वाक्या-
-स्यान्वस्त्वान्य-
-भये प्रवृ-
लिङ्गनाम्नु-
-कारेणैवोप-
-नुवन्निनि
तत्प्रभवप्रस-
कोकप्रसि-
-चितसा-
च
ज्ञाप्यते



पृ० पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
३६६ १६	-व्याप्तेरभा-	-व्यापाराभा-
३६९ २१	-चलितप्र-	-मिञ्जप्र-
३६९ २५	-रीतस्य	-रीतार्थस्य
३७१ २३	-न्दिग्रप्र-	-न्दिग्रार्थप्र-
३७३ १०	-नं सा-	-नं हि सा-
३७५ ९	गौरेपि तत्पुत्रे तत्पु-	गौरेऽपि
३८६ १९	-लभ्येत	-लभ्य
३८७ ५	-भाववतो यो-	-भाववादिनो यो-
३८७ १४	यो व्याप्तु-	यु-
३९४ १९	-मानं खविद्यो-	नं
३९५ ५	-इयन्तया	
३९८ २	-क्षिरित (रितीत)रै-	नं रितीत
४०२ ९	-नैकप्रवृ-	-नैकधा प्रवृ-
४०२ १८	संकेते(ता)न-	संकेतान-
४०२ २१	यत्र पु-	यत्र यत्र पु-
४०७ ११	-यान्तमिष	-यातमिष
४०८ ७	यावज्ज-	तावज्ज-
५०९ २६	सम्बन्धावधारणम्	सम्बन्धगमः
४११ १४	-तो लक्षितलक्षणया-	-तो लक्षणा
४१२ १३	चेत्किं यु-	चेत्किं युः यु-
४१३ १७	-पत्तेः	-पत्तिः
४१४ ३०	प्रथमे वि-	प्रथमवि-
४१५ १	-स्वेऽल्पतानि-	-स्वे कल्पानि-
४१५ ३२	ननु चासि-	न चासि
५१६ २१	चापहवायो-	चासद्वावायो-
४१७ २९	-दृश्ये चो-	-दृष्टे चो-
४१८ ८	तान्प्रति-	तावत्प्रति-
४१८ १०	-न्तरं कफांशा-	-न्तरं तत्र कफांशा-
४१८ २४	कुब्जादि-	कुम्भादि-
४१९ ६	-तस्यात्म-	स्वस्यात्म-
४१९ २६	नास्तेव	नास्तेव
४२० ५	-रे सर्वदो-	-रे सर्वत्र सर्वदो-
४२० ६	इत्यप्यच-	इत्यच-
४२० १९	संस्कृतिः	सन्ततिः

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
४२१	९	भित्त्याग्नाधेया-	निखस्यानाधेया-
४२१	२७	स्वदेशे तदाधारकाः तर्ह्यन्तरा-	स्वदेशेन वावारकाः सूर्यान्तरा-
४२२	५	अन्वयम्	शक्यते-
४२२	२८	-घातः । अन्त-	-घातः स्यात् । अन्त-
४२२	३०	मथा च व्यञ्ज-	तथा व्यञ्जयवत् व्यञ्ज-
४२३	९	हि	च
४३४	१	संसृष्ट ( संसृ ) छ-	संसृष्ट-
४३४	११	-असंगः	-असङ्गात्
४३६	१३	-भाविष्य(भावेऽपि)गौः	-भावेऽपि गौः
४३७	४	-वाच्यत्वात्	-व्याप्तत्वात्
४३७	१५	-ज्ञापनं ( ज्ञानम् ; )	-ज्ञानम्
४३८	२१	-मपोद्धत	-मपोद्धत
४३९	११	किञ्च	किञ्चा
४३९	१५	-लक्षणेन(तदवैलक्षण्येन)	-लक्षण्येन
४४१	३	परापेक्षा-	परीक्षा-
४४७	२१	तज्ज्ञा ( तज्ज्ञा )	तज्ज्ञा
४४३	२४	-तत्क्षयो-	-तत्क्षानक्षयो-
४५६	१९	-मन्ये ( न्ये )न	-मन्येन
४५६	२०	बुद्धौ कण्ठोऽव-	शब्दो बुद्ध्याव-
४५८	१९	-णादिगम्य-	-णाभिगम्य-
४६०	२३	पदासि-	पदसि-
४६७	९	-णापिचङ्गावा-	-णाविनाभावा-
४६७	९	ततो व्यक्-	ततो वस्तुव्य-
४६७	१६	बुद्धिभेद-	बुद्धिभेद-
५६८	१६	प्रतिभासवत्	प्रतिभासनवत्
४७२	१५	भिन्नदेशाद्यु	भिन्नदेशोद्यु
४७४	६	जातिः क्वेति	जातिराकृतिः
४८१	९	-पचारे तु	-पचारात्
४८४	१४	अन्यत्र अ-	अन्यत्र-
४८५	७	-तिरिक्तैकनिमि-	-तिरिक्तैकनिबन्धननिमि-
४८६	६	घटते	घटते
४८६	२१	न तज्ज्ञा-	ननु तज्ज्ञा-
४८९	८	-स्थानां त-	-स्थार्यानां त-
४९२	१५	प्रति [क्षण]वि-	प्रसिद्धवि-

पृ० पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
४९२ २६	-णिकलस्याध्य-	-णिकार्यस्याध्य-
५०४ २०	-न्यं सम्बन्धा-	-न्यं वन्धा-
५०७ १७	-वेव यो-	-वेव च यो-
५०७ १७	-वौ का-	-वौ द्वौ का-
५०७ २१	प्रयुक्ते	अनुयुक्ते
५०८ ११	एव कारणाभि-	एव च कारणाभि-
५११ १७	घटप्र-	पटप्र-
५११ १९	पटस्यापि	घटस्यापि
५१२ २२	-ञ तस्य	-ञ चात्र तस्य
५१२ २३	तदभि-	तदेतदभि-
५१६ २४	-रूपता(तां)	रूपतां
५२१ ४	सुखमासे	सुखमासे
५२१ १०	तथा त-	तथाच त-
५२१ ११	-त्पद्येत	-त्पाद्यते
५२२ ९	-स्माम-	-स्मा वा अ-
५२३ ६	स्वस्य	तस्य
५२७ १४	-व्यव्याहृ ( व्यव ) त-	-व्यवृत्त-
५२८ २४	तु वि-	लक्षि वि-
५३१ १६	-वात्कर्त्तृ तत्र	-वात्का तत्र
५३२ २१	-वज्ञोऽनु-	-वज्ञोप्य-
५३६ ६	-वदेव वस्तु-	वदेकवस्तु-
५३३ २७	[ धर्म ] ध-	धर्मव-
५३६ १	चौर [ पार ]	चौरपार-
५३८ ९	-बाध	-धः
५३९ २०	-द्धिः [ हेः ]	-हेः
५४४ १७	[ व्याप्य ] व्या-	व्याप्यव्या-
५४५ १८	शुक्ला	शुक्तिमती
५४५ २२	-द्यवयवानामेवाव-	-द्यवयवान-
५४८ १०	एकद्रव्यः	एकद्रव्यं
५६१ ५	रूपादिना सु-	रूपादिशु-
५६१ १४	-त्वा ( ल ) प्र-	-त्वा प्र-
५६७ २१	यथाऽ( तथाऽ )-	तथाऽ-
५७३ १६	नच	किंच
५७९ ३	-न्तप्रशरीरेन्य-	-वदन्य-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
५८१	१७	तदेव ( तत एव )	तत एव
५८२	१९	-व्या ( व्य ) प-	-व्यप-
५८४	९	मनोद्वयल ( मनोऽन्यल )	मनोऽन्यल-
५८४	१५	दिग्देशा-	हि देशा-
५८५	२०	-मिलाषप्रत्यभिज्ञानम-	-भिज्ञानम-
५८६	१२	-प्रतिष्ठ-	-प्रविष्ट-
५८८	११	-स्प(स्य)	-स्य
५८८	१५	प्रतिब ( प्रब )-	प्रब-
५८९	५	-मन्तो	-मन्तो
५९०	७	-द्विनाशा-	द्विविना-
५९०	८	द्विलब्धु-	-द्विबहु-
६०१	६	-कं तदपरि-	-कामपरि-
६०१	१३	-वा(शे)ष्-	-शेष-
६०१	२६	हि नि-	हि तक्षि-
६०२	१८	लक्षणमेवां	लक्षणं तेषां
६०३	१४	-सीयेत्येतदेव	-सीयोऽप्यसदेव
६०३	१५	-योगिल्लप्र-	योगिवत्प्र-
६०४	३	-नुपप(त्प)त्तैः	नुत्पत्तैः
६०४	१४	-इः भवान्तरालमा-	-इः भावान्तरामा-
६०६	१६	-शेषे(व)ति-	शेषति-
६०७	१८	समवायी इति	समवायीनि इति
६०८	२४	तदप्यसत्	तदसत्
६०९	४	अपृथग्वाअयवृत्ति-	अपृथग्वृत्ति-
६०९	१६	तत्रासंभाव्यम्	तत्रासङ्गावाद्
६०९	२१	-यिसमवाय ( यिभावा ) भावाद्	-यिभावाभावाद्
६०९	२१	-राश्रयभावा ( यश्च समवाय )	-राश्रयस्य समवायसिद्धे हि
		सिद्धौ हि	
६१०	२५	सम्बन्धलजा-	सम्बन्धजा-
६११	१७	-तयासौ प्र-	-तया प्र-
६१२	१८	पटो	घटो
६१५	१५	परपरिक-	परिक-
६१७	१८	-नर्थक्यम्	-नर्थक्यम्
६१७	२२	स एव स इति	स एवमिति
६२१	४	समवायस्य नि-	समवायनि-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
६२१	९	इति नि-	प्रतिनि-
६२२	२०	-हुणत्वादी-	-हुणादी-
६२४	१३	-आ वि-	-आपि वि-
६२५	२४	-प्यमुन्दरम्	-प्यमुकम्
६२६	१७	बोध-	भावबोध-
६२८	६	-दः	-दः समाप्तः
६३४	१७	-नियतते-	-निश्चयते-
६३५	११	-भासवद्-	-भावादु-
६३६	१	नित्ये	नित्यत्वे
६४०	१४	-रीतेऽन्व-	-रीतेऽन्व-
६४८	४	-कयोः वि-	कयोः विवादापक्षयोः वि-
६५३	८	-समः	-समाः
६५६	६	-न्द्रियिकत्वे	-न्द्रियत्वे
६६०	९	ससा-	सोहसा-
६६४	१९	साम-	साधनसाम-
६६५	१७	-नां ह-	नां ह-
६६७	१	नेदममि(वि)ज्ञा-	-नेदमविज्ञा-
६६८	२१	सखाः	सखाः
६६९	२०	-त एव	-ते
६७०	३०	-र्थिकप्र-	-र्थिकप्र-
६७१	१८	-नमदो-	-नं नादो-
६७४	५	ज्ञानेन वा-	ज्ञाने च वा-
६७४	७	-चिदिति चैतर्हि	-चिदेव तर्हि
६७६-		‘प्राचां वाचाभू’ इत्यादिश्लोको आ० प्रती नास्ति ।	
६७७	१३	-कथ्यमु-	-कथ्यमु-
६७८	८	यः पुनः	यत्पुनः
६७८	१९	विषयमात्रप्र-	विषयभावप्र-
६८९	१५	तदि (दि) प्र-	तदिर्धं प्र-
६९४	१३	‘श्रीमोजदेवराज्ये’ इत्यादि प्रशस्तिः आ० प्रती नास्ति ।	

## मूलदिप्पन्युपयुक्तग्रन्थसूचिः सङ्केतविवरणञ्च ।

- अभिसमयालोकं० अभिसमयालोकालङ्कारः (गायकवाढ सीरिज वडौदा) १५,  
 ४५० अष्टशती अष्टसहस्र्यां मुद्रिता ( निर्णयसागर प्रेस बम्बई ) ३५, ३८१  
 ७७, ८१, ८३, ९४, १०९।
- अष्टसह० अष्टसहस्री ( निर्णयसागर बम्बई ) ३५, ३८, ५९, ६२, ६३, ७७, ८१,  
 ९४, ९६-९८, १००, १०९, १११, ११७, ११८।
- आप्तप० आप्तपरीक्षा ( जैनसाहित्यप्रसारक का० बम्बई ) ८३, ९३, ९४, ९९,  
 १३६, १३७।
- आप्तमी० आप्तमीमांसा ( जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था कलकत्ता ) ७७, ९४,  
 ऋग्वेद० } ऋग्वेद संहिता ६४, २६४, ३९९।  
 ऋक्सं० }
- कठोप० कठोपनिषद् ( निर्णयसागर बम्बई ) ६४।  
 कादम्बरी कादम्बरी ( निर्णयसागर बम्बई ) २९८।
- कुमारसं० टी० कुमारसंभवटीका ( " " ) ४२।  
 कथुर० कथुरोपनिषद् ( " " ) ६५।  
 चित्तुखी तत्त्वप्रदीपिका चित्तुखी ( " " ) ५३।  
 छान्दोग्योप० छान्दोग्योपनिषद् ( " " ) ६४।
- जीतकल्पमा० जीतकल्पभाष्यम् ( जैनसाहित्यसंशोधकग्रन्थमाला पूना ) ३३१।  
 जीवकाण्डगो० जीवकाण्डम् गोम्मटसारस्य ( रायचन्द्रशास्त्रमाला बम्बई ) ३००।  
 जैनेन्द्रव्या० जैनेन्द्रव्याकरणम् ( जैनसिद्धान्त प्र० संस्था कलकत्ता ) ७, १७६,  
 ६७९, ६८७, ६८८।
- जैमिनिस्० जैमिनिस्त्रयम् ( आनन्दाश्रय सीरिज पूना ) ६२, ४०४।
- तत्त्ववै० योगभाष्यतत्त्ववैशारदी ( चौखम्बा सीरिज बनारस ) ९४।
- तत्त्वसं० तत्त्वसङ्ग्रहः ( गायकवाढ सीरिज वडौदा ) २९, ३२, ३९, ४४, ४५, ६५,  
 ७१, ७२, ७७, ७९, ८३, ८४, १००, १५०, १५३, १५४, १५७, १६२, १६४-  
 १७१, १७४, २५०, २५२, २५३, ३९२, ४३२।
- तत्त्वसं० पं० तत्त्वसंप्रहृष्टजिका ( गायकवाढ सीरिज वडौदा ) ४३, ४५, ६५,  
 ७९, ८१, ११६, ११७, १५०, १६१, १६३, १६५-१७१,  
 तत्त्वार्थश्लो० तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकम् ( निर्णयसागर बम्बई ) १९, २०, ४२, ४६,  
 ६१, ६२, ९१, ९४, ११०, ११६, ११८, १२०-१२३, १३३, १३७, १४८, १५०।  
 तत्त्वार्थसं० तत्त्वार्थसूत्रम् ( जैनसाहित्यप्रसारकका० बम्बई ) २४५, २५१।
- तत्त्वोपप्लव० } तत्त्वोपप्लवसिंहस्य भूषणलक्षम् ( पं० सुखलाललक्षकम्  
 तत्त्वो० सिंहः } B. H. U. काशी ) ४७, ४८, ५६, ५९, ६२, ७५, ७६,  
 ११६, १७२।

तैत्ति० तैत्तिरीयोपनिषत् ( निर्णयसागर बम्बई ) ६६।

द्रव्यसं० द्रव्यसंग्रहः ( रायचन्द्रशास्त्रमाला बम्बई ) ५६५।

न्यायकुसुदन्तं० न्यायकुसुदन्तः ( माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई ) २८।

३१, ३८, ३९, ४२, ४३-४६, ४९, ५०-५३, ५५, ५६, ५९, ७२, ७७, ८३, ९४।

९७, ९९, १००-१०४, १०६, १०७, ११०, ११२-११९, १२१-१२५, १२९, १३२, १३५-१३७, १४०-१४२, १४५, १४७, १४८, १५०, १६९, १६३, १६५।

१६९, १७०।

न्यायभा० न्यायभाष्यम् ( चौखम्बा सीरिज काशी ) १६, ५९, ९८, १६७, २३७, ६५१, ६६३।

न्यायवा० न्यायवार्तिकम् ( चौखम्बा सीरिज काशी ) १४, १६, ७५, १३२, २६९, २७०, ४७६, ६१४, ६६४।

न्यायवा० ता० टी० न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका ( चौखम्बा सीरिज काशी ) १४, २०, ४९, ५१, ५३, ५९, ९५, १३२।

न्यायमं० न्यायमञ्जरी ( विजयनगरम् सीरिज काशी ) १३, १४, २०, २५, ४६, ४९-५१, ५३, ५४, ५९, ६१, ६२, ६७, ७२-७४, ७७, ७९, ९४, १००, ११४, ११८, १६७।

न्यायवि० न्यायविन्दुः ( चौखम्बा सीरिज काशी ) ७, २२, ७८, ९३, १०३।

न्यायवि० टी० न्यायविन्दुटीका ( „ „ ) २५, २८।

न्यायविनि० न्यायविनिश्चयः ( सिन्धीजैन सीरिज कलकत्ता ) १११।

न्यायलीला० न्यायलीलावती ( निर्णयसागर बम्बई ) ५९।

न्यायसू० न्यायसूत्रम् ( चौखम्बा सीरिज काशी ) १८, ९७, १००, ११४, ११५, ११८, २२०, २५७, २५८, ३४७, ३५७, ३६२, ३६५, ३७२, ३७४, ५३६, ६४६, ६४७, ६४९-६५१, ६५३, ६५५-६५९, ६६३-६७१, ६७४, ६८६, ६९२।

पत्रप० पत्रपरीक्षा ( जैनसिद्धान्तप्रकाशिनीसंस्था कलकत्ता ) ६८४, ६८६, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००।

पाणिनिषातुपा० पाणिनिषातुपाठः ( सिद्धान्तकौमुदन्तर्गतः ) ७, ६८८।

पा० महाभा० पातञ्जलमहाभाष्यम् ( निर्णयसागर बम्बई ) १०४।

पाणिनिव्या० पाणिनिव्याकरणम् ( निर्णयसागर बम्बई ) ६७९।

प्रकरणपं० प्रकरणपञ्जिका ( चौखम्बा सीरिज काशी ) ५३, ५४, १२८।

प्रमाण० } प्रमाणपरीक्षा ( जैनसिद्धान्तप्रकाशिनीसंस्था कलकत्ता ) १५,

प्रमाण प० } १९, ३१, ३३, ३८, ६३, १२१, १२५, १२७, १२८, १३२-१३४,

१५०।

प्रमाणवा० प्रमाणवार्तिकम् ( मिश्र राहुलसांकृत्यायनसत्कं भूषणसूक्तम् ) २८,

३२, ३४, ३८, ८३, ८४, ९०, ९५, ९६, १०३, १०४, १०७, १०८, १६६, १८०,

१५, ३३१, ३४१, ३५०, ३५४, ३८१, ३८३, ४३१, ४४९, ४७०,  
४८१, ५१३।

क्षत्रं अनागवार्तिकलोपशब्दसिः ( भिक्षु राहुलसांक्रयानसत्क  
( १५३ ) ३८१।

कालं पमाणवार्तिकलद्वारः ( भिक्षु राहुलसांक्रयानसत्क सुद्वेणीय-  
एस्तकम् ) ५८, ९५, ८३, ९०, १०६, २१८, ४६८, ५८२।

अनागवार्तिकं अनागवार्तिकसुषयः ( मैसूर यूनि० सीरिज ) ८०, ९५, १०३।

अश० भा० प्रशस्तपादमाप्यम् ( विजयनगरम् सीरिज काशी ) १७, १००,  
१०३, ११३-११५, ५३१, ५६६, ५६८, ५९०, ६००, ६०४, ६१६, ६२१।

अश० कन्द० प्रशस्तपादमाप्यकन्दलीटीका ( विजयनगरम् सीरिज काशी )  
१४, ३१, ५९, ११५, १४०, १५०।

अश० किरणावली प्रशस्तपादमाप्यकिरणावलीटीका ( चौखम्बा सीरिज काशी )  
१३२, १५०,

अश० व्यो० } प्रशस्तपादमाप्यव्योमवतीटीका ( चौखम्बा सीरिज काशी )  
व्योमव० } ८०-८२, ८४-८६, ९३, ९८, १११-११५, १३२, १४०, १४७,  
२७४, ३१०।

अमेयरजमा० अमेयरजमाला ( विद्याविलास प्रेस काशी स० पं० फूलचन्द्रजी )  
७०-७२, ८०-८३, ८५

बृहती शाबरमाप्यबृहतीटीका ( भद्रास यूनि० सीरिज ) ५३, ५४, ९५।

पञ्जिका बृहतीपञ्जिकाशुक्लविमल ( " " ) ९५।

बृहदा० बृहदारण्यकोपनिषद् ( निर्णयसागर बम्बई ) ६४, ६५,

बृहदा० भा० वा० बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिकम् ( आनन्दाश्रम पूना ) ४४,  
४५, ६४, ६५।

अश० अक्षोपनिषद् ( निर्णयसागर बम्बई ) ६५, ६६, ८०, ९४,

अश० शां० भा० रत्नप्रभा अक्षसूत्रशाङ्करभाष्यरत्नप्रभा ( निर्णयसागर बम्बई )  
१०४।

अश० शां० भा० अक्षसूत्रशाङ्करभाष्यम् ( निर्णयसागर बम्बई ) ११४।

सामती अक्षसूत्रशाङ्करभाष्यस्य सामतीटीका ( " " ) ५१-५३, ५९, ६६, ८०,  
९४, ११६।

मगवद्गीता मगवद्गीतोपनिषद् ( " " ) २६८, ३०९।

आमहालं० आमहालं० विरचितः काव्यालङ्कारः ( चौखम्बा सीरिज काशी ) ४३३।

मत्स्यपु० मत्स्यपुराणम् ( मुम्बई ) ३९२।

मग० भा० मगवती आराधना ( सोलापुर ) ३३१।

महाभा० वन० महाभारतम् वनपर्व ( चित्रशाला प्रेस पूना ) ५८०।

मुण्डकोप० मुण्डकोपनिषद् ( निर्णयसागर बम्बई ) ६५।



मी० श्लो० गीर्मांसाश्लोकवार्तिकम् ( चौखम्बा सीरिज काशी )

५९, ७०-७२, ७७, ९४, ९५, ११२, १३७, १५३, १५५-१५९, १६१,  
१७४, १७५, १८०, १८३-१९३, २०६, २४९-२५२, २५४, २५८, २६५  
३०९, ३३९, ३४५, ३४६, ३९६, ४०६-४११, ४१४-४२०, ४२२-४२३,  
४२६, ४२७, ४३३, ४३५, ४३६, ४३८-४४०, ४६१, ४७४, ४७५, ४७६,  
४८२, ५१३, ५२२, ५५७।

मी० श्लो० न्यायरत्ना० गीर्मांसाश्लोकवार्तिकन्यायरत्नाकरव्याख्या ( चौखम्बा  
सीरिज काशी ) १५१, १५२, १५४, १५६, १५७।

मैत्र्यु० मैत्र्युपनिषद् ( निर्णयसागर बम्बई ) ४६, ६४।

शुत्तयजु० शुत्तयजुशासनम् ( माणिकचन्द्रजैनग्रन्थमाला बम्बई ) ९४, ११६,  
११७, १२७, १३२, १४३-१४५।

योगकारिका साङ्गयोगदर्शनान्तर्गता ( चौखम्बा सीरिज काशी ) १९।

योगद० व्यासभा० योगसूत्रव्यासभाष्यम् ( " " ) १९, ९४।

योगसू० योगसूत्रम् ( " " ) ९४।

रत्नाकरावता० रत्नाकरावतारिका ( यशोविजयग्रन्थमाला काशी ) ९८, १२०।

रामता० उ० रामतापिन्युपनिषद् ( निर्णयसागर बम्बई ) ५९७।

लघी० लघीयल्लयम् ( सिधी जैन सीरिज कलकत्ता ) ६७८।

लघी० ख० लघीयल्लयस्त्रिविधः ( " " ) १२२।

वाक्यप० वाक्यपदीयम् ( चौखम्बा सीरिज काशी ) ३९, ४२९, ४४३।

वाक्यप० टी० वाक्यपदीयटीका पुण्यराजीया ( " " ) ४२, ४४७,  
४५६, ४५९।

वादन्या० वादन्यायः ( महाबोधि सोसाईटी सारनाथ ) ६६८, ६७१, ६७२।

विधिवि० विधिविवेकः ( लाजरसकम्पनी काशी ) ७९, ९४, १३२,

विधिवि० न्यायक० विधिविवेकन्यायकणिकाटीका ( लाजरसकम्पनी काशी )  
७९, ९४।

विवरणप्रमेयसं० विवरणप्रमेयसंग्रहः ( विजयनगरम् सीरिज काशी ) ५९।

वैशे० सू० वैशेषिकसूत्रम् ( निर्णयसागर बम्बई ) २३४, २७०, ५४०, ५६४, ५६८,  
५८७, ५८९, ६००, ६०१, ६२०।

शावरभा० शावरभाष्यम् ( आनन्दाश्रम पूना ) २०, २१, २३, ९४, ११२, २५३,  
२५५,

शिष्टपालव० शिष्टपालवधकाव्यम् ( निर्णयसागर बम्बई ) ६८८।

शास्त्रदी० शास्त्रदीपिका ( चौखम्बा सीरिज काशी ) २०, ६०, ९४।

शास्त्र वा० टी० } शास्त्रवार्तासमुच्चयस्य यशोविजयविरचिता टीका  
शास्त्र वा० समु० टी० } ( जैनधर्मप्र० समा भावनगर ) ४५, ४६, १०४।

आवक प्रश्न० आवकप्रश्नाभिः ( जैनधर्म प्र० " " ) ३०६।

श्वेताश्वत० श्वेताश्वतरोपनिषद् ( निर्णयसागर बम्बई ) ६५, २६४, २६८, ३९२।

वन्धपरीक्षा धर्मकीर्तिविरचिता तिब्बतीयभाषोपलब्धा ।

१०६, ५०९-५११।

ति० टी० सन्मतितर्कटीका ( गुजरात पुरातत्त्वमन्दिर अहमदाबाद ) १४,  
१५, २९, ३१, ३८, ३९, ४२, ४४, ४६, ५६, ५९, ६०-६३, ६५, ६७, ७०-७४,  
७७-८०, ८२, ९०-९२, ९४, ९८, १००, १०७, १०८, ११२, ११६, १२६,  
१२७, १२९, १३०, १३२, १३५, १३६, १३९-१४२, १४४, १४६, १४७,  
१६०-१६९, १७२-१७४।

सांख्यका० सांख्यकारिका ( चौखम्बा सीरिज काशी ) ८८, ८९, ९८-१००,  
२८५-२८९।

सांख्यका० गौडपादभा० सांख्यकारिकागौडपादभाष्यम् ( ,, ,, ) ९८, १०१।

सांख्यका० माठरवृत्ति सांख्यकारिकामाठरवृत्तिः ( ,, ,, ) ९८, १०१।

सांख्यप्र० भा० सांख्यप्रवचनभाष्यम् ( चौखम्बा सीरिज काशी ) १९।

सांख्यसं० सांख्यसंग्रहः ( ,, ,, ) ९८।

सौन्दरनन्द० सौन्दरनन्दमहाकाव्यम् ( पंजाब युनि० सीरिज ) ६८७।

स्फुटार्थ० स्फुटार्थ-अभिधर्मकोशव्याख्या ( विज्जोयिका बुद्धिज्ञा सीरिज राधिया )  
१३६।

स्या० मं० स्याद्वादमञ्जरी ( रायचन्द्रशास्त्रिमाला बम्बई ) ९४, ९८, ११३, १३७।

स्या० रत्ना० स्याद्वादरत्नाकरः ( आर्हत्प्रभाकरकार्यालय पूना ) १४, १९, २०,  
२८-३०, ३३, ३५, ३६, ३८-४०, ४२-५२, ५६, ५९, ६२, ६५, ६७-७५, ७७,  
७९, ८०-८३, ८५-८७, ८९, ९१, ९२, ९४, ९६, ९८-१०२, १२०-१२३,  
१२५, १३२, १३३, १३५-१३९, १४७, १४८, १५७, १५९, १६१, १६२, १६७,  
१६८, १७१।

हेतुविन्दुटीका अर्चटकृता लिखिता ( पं० सुखलालसंस्कृत B.H.U. काशी ) १४।  
मीमांसाभाष्यपरि० मीमांसाभाष्यपरिशिष्टम् ( भद्रास युनि० सीरिज ) १५६।

## शुद्धिवृद्धिपत्रम्

पृ० पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
९ १२	कारण-	करण-
९ १७	आस्या-	अस्या-
९ १८	-रूपपता	रूपता
१९ १३	-रभिव्यज्येत	रभिव्यज्येत
२२ ३४	न्यायवि०	न्यायवि०
२३ ३	विरोधे वा	अविरोधे वा
२९ ३१	पृ० ५०	पृ० ८०
३० ३५	पृ० ५०	पृ० ८०
३१ ३२	पृ० ५२	पृ० ८२
३३ ३४	पृ० ५४	पृ० ८४
३४ २	क्षणक्षयादि-	क्षणक्षयादि-
३५ ३४	पृ० ५६	पृ० ८६
३६ १३	अगृहीत-	गृहीत-
३६ ३३	पृ० ५७	पृ० ८७
८४ १६	धियो (योऽ) लादि-	धियो(योऽ)नीलादि-
१०५ २०	सर्वत्रा-	सर्वत्रा-
१११ १६	-धारलक्षण-	धारलक्षण-
११८ ७	-तत्सादृश्यो-	तत्सादृश्यो-
१२० ३४	स्या० रजा०	रजाकराव०
१४१ १०	-स्यादृष्टस्या-	स्यादृष्टस्या-
१४२ १	चादृष्ट-	न चादृष्ट-
१४८ १३	-कथोत्तरप्र-	कथोत्तरप्र-
१५४ २१	प्रवृत्त्याभा-	प्रवृत्त्याभा-
१५६ १	-तद्विषयम्	तद् विषयम्
१५८ ८	-पक्ष	पक्षे
१९७ ४	मेदः	मेदः
२३७ १४	न्यायमा०	न्यायमा०
२४५ २७	हाने-वार्ध	हानेरेवार्ध-
२६० ६	कारणक्रम-	करणक्रम-
२६३ २	-भावत्	भावात्
२६४ २४	न न	न
३०० १०	कण्ठोष्ठ-	कण्ठोष्ठ-

